एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ८ वैशाख १९९७, १९ अप्रैल १९४० [संख्या १

गुरुकुल में आर्यसमाज-स्थापना दिवस

[१२ अप्रैल (१ वैशाख) के दिन सार्वदेशिक सभा की ...ज्ञप्ति के अनुसार गुरुकुल में भी आर्यसमाज-स्थापना-दिवस ...ाया गया। इसके लिये विशेष बात यह की गई कि १२ घण्टे ...देव भर यज्ञ का और यजुर्वेद के अखण्ड पाठ का आयोजन ...ा गया। प्रातः ६॥ सब कुलवासी यज्ञशाला में हवन के ...ये एकत्रित हुए और सायं ६॥ बजे फिर पूर्णाहुति में भी सब ...चारी सम्मिलित हुए। बीच बीच में बारी बारी से आकर ...चारीगण हवन और वेद पाठ का क्रम लगातार चलाते रहे। ...ना, स्वस्ति वाचन तथा प्रारम्भिक हवन के द्वारा प्रातःकाल ...यज्ञ क्रिया के बाद इस दिन के सम्बन्ध में श्री आचार्य जी ...ने भाषण दिया वह निम्न लिखित है। उस से यह स्पष्ट हो ...ता है कि यह दिन गुरुकुल में किस प्रकार मनाया गया और उस में ...भावना रही]

आज नये वर्ष का प्रथम दिन है। संवत् १९९६ ...कल विदा दे कर आज इस सुरम्य पुण्य प्रभात में ...संवत् १९९७ में पदार्पण कर रहे हैं। यह कुछ ...श्चर्य और आनन्द की बात है कि इस बार आज ...ही दिन आर्यसमाज का स्थापना-दिवस पड़ गया है ...से हम 'दयानन्द-महा यज्ञ' नाम से पुकारते हैं, ...कि आज चैत्र शुक्ल पंचमी भी है। सार्वदेशिक आर्य ...प्रतिनिधि सभा की आज्ञा है कि यह दिन विशेष उत्साह ...साथ मनाया जाय। आज से ६५ वर्ष पूर्व (सन् १८७५) आज के दिन स्वयं ऋषि दयानन्द ने बम्बई में ...र्यसमाज की स्थापना की थी। उस दिन आर्यसमाज ...यज्ञ का ऋषि दयानन्द द्वारा प्रवर्तन हुआ था। जब ...व्यक्ति एक भाव से एकत्रित और संगठित होते हैं तो ...माज बन जाता है। समाज बना कर रहना मनुष्य का ...भाव है। जैसे एक व्यक्ति में व्यक्तित्व और पुरुषता ...ती है, आत्मा रहता है वैसे ही ठीक प्रकार के बने ...माज का भी व्यक्तित्व होता है, उसका आत्मा होता है, और वह समाज भी एक पुरुष की तरह काम करता है। वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में समाज पुरुष का सुन्दर वर्णन है। जब व्यक्तियों का यह संगठन किसी पवित्र दिव्य उद्देश्य से परस्पर प्रेम भाव से जुड़ कर काम करता है तो यह दिव्य यज्ञ कहलाता है। यज्ञ-पुरुष यह भी वैदिक साहित्य का एक प्रचलित शब्द है। अतः यदि दयानन्द प्रवर्तित, दिव्य उद्देश्य से संगठित, इस आर्यसमाज स्थापना को हम दयानन्द महायज्ञ कहते हैं तो यह उचित ही है। वैसे तो जगत् में आज बहुत से समाज स्थापित हैं नानाप्रकार के संघ, संस्था, सम्मेलन, सम्प्रदाय, जाति, धर्म, आदि स्थापित हैं, और सब ही पवित्र यज्ञ हैं या हो सकते हैं यदि वे दिव्य, परोपकारमय हैं किसी ईश्वराभिमुख प्रयोजन से काम करते या कर सकते हैं। परन्तु आर्यसमाज को अन्य समाजों से जो विशेषता है वह है वेद की विशेषता। इस लिये यदि समाज के दिन को मनाने के लिये ब्रह्मचारियों के मन में वेद के अखण्ड पाठ करने का संकल्प आया है तो यह बड़ा उत्तम है। आर्यसमाज के दस नियमों में से "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है —" इत्यादि जो वेद संबन्धी नियम है वह आर्यसमाज को अन्य सब समाजों से पृथक करने वाला है। आर्यसमाज के शेष नियम तो ऐसे हैं जो अन्य बहुत से समाजों को मान्य ही हैं या आसानी से हो सकते हैं। आर्यसमाज वेद प्रचार के लिये ही जन्मा है। पर वेद क्या है ? उसका प्रचार कैसे हो ? वेद चार पुस्तकों में परिमित नहीं हैं—वह वेद जो सत्य ज्ञान रूप है, जो नित्य और शाश्वत है। ब्राह्मण में कहा है 'अनन्ता वै वेदाः' और साथ में कहा है कि असली वेद तो विशाल पहाड़ के समान है और ये चार पुस्तकें तो उस में से ली गई चार मुट्ठी के बराबर हैं। अभी हम ने शिव संकल्प के मन्त्रों में पढ़ा है 'यस्मिन् ऋचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः'। अर्थात् हमारे अन्दर-हमारे मन में ही ऋक्-यजु-साम प्रतिष्ठित हैं। स्वयं वेद में कहा है 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति' जो वेदों के एक प्रतिपाद्य उस सत्य स्वरूप को नहीं जानता वह वेद से क्या करेगा ? वेद पढ़ने से भी उस के पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा।

उसके नित्य स्रोत, भगवान् के साथ सम्बन्ध न जोड़कर हम पढ़ेंगे तो निःसंदेह वेद आज के काम के नहीं हैं। वेद इसी लिये नित्य हैं क्योंकि भगवान नित्य है। हमने परमेश्वर की आराधना कर के वेदों को अभी तक जगाया नहीं है। जागे हुए वेद तो हरेक व्यक्ति को, उस की हर एक परिस्थिति और आवश्यकतानुसार ज्ञान देने का सामर्थ्य रखते हैं जैसा कि कोई भी पदार्थ विद्या (सायंस) या अन्य मानुषी तत्त्व विद्या (फिलासफी) नहीं रख सकती। तब वेद सनातन होता हुआ भी नित्य नया हो जाता है, जीर्ण शीर्ण वस्तु नहीं रह जाती। पर ऐसा कर सकने के लिये हमें वेद देने वाले प्रभु से अपना सम्बन्ध जोड़ सकना जरूरी है। हमें वेद की उस सत्य सनातन ऊंचाई से उसे अन्दर उतार लाना चाहिये। यह कैसे हो? इसके लिये हमें और कुछ नहीं करना, अपने आप को आर्य बना लेना चाहिये। 'आर्य' यह बड़ा सुन्दर शब्द है। वेद में यह बड़े ऊंचे भावपूर्ण अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जो वेदों के आराध्य परमात्मा देव की तरफ निरन्तर गति करता रहता है वह आर्य है। यदि हम लोग ऐसे हों, वेदों का सत्य ज्ञान हम में सहज नया प्रकट होने लगेगा। तब वेद प्रचार होगा। जो कुछ कार्य करेंगे वह दयानन्द के इस महायज्ञ को बढ़ाने वाला होगा। नहीं तो, अन्य सब बोलना और करना उस दृष्टि से निरर्थक जा रहा है।

मैं ने कहा है कि यह कुछ आनन्द देने वाली बात है कि इस बार वर्ष का प्रथम दिन ही आर्य समाज स्थापना दिन है। क्या इस का यह मतलब है कि यह वर्ष, यह १९९७ का सम्वत्, आर्यसमाज को बढ़ाने का विशेष अवसर देने के लिये ही आया है। साधारणतया पिछले वर्षों में यह वैशाखी का दिन १३ अप्रैल को पड़ता रहा है और इस का सम्बन्ध देश में मनाये जाने वाले राष्ट्रीय सप्ताह के साथ जुड़ जाता रहा है। पर इस बार यह दयानन्द महायज्ञ के साथ एक हो गया है। आइए, इस से यदि आप के मन में यह कल्पना उठती हो, यह नया वर्ष देश में और जगत में आर्यसमाज का संदेश फैलाने वाला क्यों न हो, तो आप बेशक इस कल्पना को उठने दीजिये। बल्कि यह कल्पना सच्ची हो इसके लिये हार्दिक प्रार्थना कीजिये। जैसे यज्ञ वेदी में जलती हुई अग्नि ऊपर की तरफ उठती है और इसके उठने में यह सामर्थ्य है कि यह ऊपर से वृष्टि उतार ला सकती है, वैसे ही आप की ऊर्ध्वाभिमुख की गई प्रार्थना भी अग्नि बन कर उस हम में दे।

इस प्रकार के सामर्थ्य का संचय करने के लिये ही आर्यसमाज ने गुरुकुल की नींव डाली है। कोई भी समाज तब तक जीता जागता और उन्नति पथ पर अग्रसर होता हुआ नहीं रह सकता जब तक कि वह अपने बालकों को बिलकुल ठीक प्रकार की शिक्षा से शिक्षित होने की परम्परा को स्थिर रूप से जारी नहीं कर देता। इसलिये हम तो आज यही प्रार्थना करते हैं, और शायद आर्यसमाज की (आर्यसमाज रूपी यज्ञ पुरुष को भी) यही प्रार्थना है कि ऐसा सामर्थ्य परमेश्वर इस गुरुकुल को दे। शुभमस्तु। (इस के बाद यजुर्वेद के प्रथमाध्याय का पाठ हुआ उसके उपरान्त)

जैसा कि कुल मन्त्री जी ने हमें सूचित किया है कि इस समय प्रारम्भिक यज्ञ तथा प्रातः क्रिया का कार्य पूरा हो चुका है अतः अन्य सब लोग यज्ञ शेष को प्रातराश के रूप में ग्रहण करने के लिये तथा आगे के अपने अन्य सब कार्यों को करने लिये जा सकते हैं और अपने कर्त्तव्य कर्मों में लग सकते हैं, केवल अखण्ड पाठ और यज्ञ करने वाले ब्रह्मचारी ठहर कर या आ आ कर बारी बारी से यह हवन जारी रक्खेंगे। पर पूर्णाहुति तो शाम को ६॥ बजे ही होगी और तभी सायं का हवन कृत्य भी होगा। पर अच्छा हो यदि यहाँ से जाने वाले हम सब इसी बीच में जो कुछ अपना अन्य कर्त्तव्य कर्म करें वह सब यज्ञिय भावना से ही करें। खाना पीना, पठन पाठन, कातना या कृषि करना, सफाई करना या खेलना यह सब यज्ञ भावना से करें। निष्काम हो कर फलाकांक्षा रहित, परमेश्वरार्पण बुद्धि से और अतएव स्वाभाविक उल्लास के साथ करें तो आज के दिन हम यज्ञिय जीवन का विशेष अभ्यास करने का जो इस अखण्ड यज्ञ के द्वारा हुआ है उस सुअवसर से लाभ उठा सकेंगे। और तब केवल यह नहीं समझा जायगा कि जिन्होंने यहां यज्ञशाला में बैठ कर आहुति डाली है उन्होंने आज १२ घण्टे का अखण्ड यज्ञ किया, किन्तु हम सब ने ही पूरे १२ घण्टे का अखण्ड यज्ञ किया है। और एवं यह आज का अभ्यास इस वर्ष भर हमें अधिक से अधिक यज्ञिय जीवन वाला बनाने में सहायक हो सके।

मैंने अपने बालक को गुरुकुल में क्यों प्रविष्ट कराया ?

आपका लेख गुरुकुल पत्र में पढ़ा जिसमें लिखा था कि संरक्षकों को लिखना चाहिए कि उन्होंने अपना बालक गुरुकुल में क्यों प्रवेश कराया। इसके बारे में कुछ विचार लिखता हूं। जिस वजह से मैंने बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया।

अनुमान से संवत् १९८४ की बात है। पूज्य पिता जी गुरुकुल के उत्सव पर गये थे इससे पहले उन्होंने गुरुकुल को सुना जरूर था लेकिन आंखों से नहीं देखा था। इस उत्सव पर पूज्य गांधी जी भी पधारे थे जिससे उत्सव की शोभा और भी बढ़ी हुई थी। गुरुकुल भी पहले गंगापार की भूमि में था। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के खेल तथा स्वास्थ्य को देखकर पूज्य पिता जी गुरुकुल की शिक्षा पर मुग्ध होगये। इसके बाद स० १९८५ में मैं भी गुरुकुल के उत्सव पर गया। उस वक्त गुरुकुल नई भूमि में आगया था। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य तथा पाठविधि देखकर मेरे मन में खयाल हुआ क्या अच्छा होता जो मैं भी गुरुकुल की शिक्षा हासिल करता। इसके बाद मन में संकल्प किया कि कभी घर में पुत्र पैदा होगा तो उसको गुरुकुल में प्रविष्ट कराया जावेगा। इस संकल्प के एक साल बाद घर में पुत्र पैदा हुआ फिर तो मन में दृढ़ संकल्प किया मगर बीच में कई बार संकल्प विकल्प हुए कुछ पिता जी का देहान्त होना, कुछ स्वामी अभयदेव जी का गुरुकुल छोड़ देना— इससे कुछ विचार कच्चे पड़े। लेकिन भगवान को मेरा यह शुभ संकल्प पूरा करना था। आचार्य अभयदेव जी की बाबत सुना गया कि वह पुनः गुरुकुल की बागडोर संभाल लेंगे। इससे मन में फिर दृढ़ संकल्प हो गया। पहले तो पूज्य माता जी बहुत मना करता रही फिर पीछे मान गई। तथा बैशाख सम्वत् १९९६ में ब्र० रामकुमार को गुरुकुल में प्रवेश करा दिया और सबसे बड़ा विचार जो बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने का था वह यह था कि बालक की जिन्दगी जिन्दगी बन जाएगी और वह दुनिया में स्वतन्त्रता से रोजी कमा कर स्वतन्त्रता से रहेगा और उसके विचार भी स्वतन्त्र रहेंगे क्योंकि ब्रह्मचर्य व्रत स्वतन्त्रता की जड़ है। और दूसरा विचार बालक के संबन्ध में यह था कि हम वैसे तो पराधीन हैं ही मगर एक गांव में रहते हुए हम और भी पराधीन हैं क्योंकि हमारी तरफ गांव में रहने वाली कृषक जाति खुद भूमि की मालिक है वह गांव में रहने वाली दूसरी जाति को अपना मातहत समझती है। जमींदार लोग ज्यादा जाट राजपूत हैं। वैश्य वगैरह जातियों के लड़के जब स्कूल में पढ़ने जाते हैं तो इन जातियों के लड़के हमारे लड़कों को बहुत [illegible] करते हैं जिससे बालक के दिल में बचपन से ही डर बैठ जाता है। और गुलामी का सिक्का बैठ जाता है। गुरुकुल के बच्चे में यह बात नहीं है। वहां बालक भाई भाई की तरह रहते हैं। बालक जब बचपन से ही कमजोर होता है और बचपन से ही उसके मन में डर बैठ जाता है तो उसके बड़े होने पर उसका दिल कमजोर हो जाता है। गुरुकुल में पढ़ने से बालक में यह संस्कार नहीं जमेंगे। यह मोटे विचार आपकी सेवा में लिख दिये जिनसे बालक को गुरुकुल में प्रवेश कराया गया। और मैं ज्यादा विद्वान नहीं हूं जिससे कि मैं आपकी सेवा में अच्छा निबन्ध बनाकर लिख सकूं जो कुछ दिल में बात थी वह लिख दी गई है और इस ब्रह्मचारी से छोटे दो बालक और भी हैं। अगर हालत ठीक रही तो उनको भी गुरुकुल में ही प्रवेश कराने का विचार है। बाकी ईश्वर करेगा जो होगा।

आपका
बनारसीदास आर्य
बिगडाना जि० हिसार

अफ्रीका में कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता

अफ्रीका में जो गुरुकुल के स्नातक काम करते हैं उनके अक्सर पत्र गुरुकुल में आया करते हैं। अभी आये दो तीन पत्रों में जहां आचार्य रामदेव जी के निधन पर उन्होंने अपने उद्गार प्रकट किये हैं और गुरुकुलोत्सव की सफलता की कामना करते हुए नवस्नातकों को बधाई दी है वहां अपनी यह इच्छा भी प्रकट की है कि यदि अफ्रीका में कुछ और भी उत्साही स्नातक आ सकें तो उत्तम हो।

अभी तक अफ्रीका में श्री पं० सत्यपाल जी, श्री पं० सत्यदेव जी, श्री पं० धर्मेन्द्रनाथ जी और श्री पं० रणधीर जी ये चार स्नातक आर्यसमाज का कार्य कर रहे हैं। इनमें से श्री पं० सत्यदेव जी यद्यपि रोज़गार के तौर पर व्यापार में लगे हुए हैं पर वे भी समाज के एक प्रमुख कार्यकर्ता हैं। बाकी तीन तो प्रचार या शिक्षा के कार्य में ही पूरे तौर से लगे हुए हैं। पर वहां अन्य स्नातक कार्यकर्त्ताओं की भी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ऐसे स्नातकों की आवश्यकता है जो प्रचार का कार्य तथा अध्यापन का कार्य भी कर सकते हों या इन दोनों में से किसी कार्य में विशेष प्रवीणता रखते हों। अंग्रेज़ी में निपुण हों तथा परिश्रमी हों। वहां पर गुजरात के लोग अधिक बसे हुए हैं अतः गुजराती अथवा गुजराती भाषा जानने वाले स्नातकों को सफल होने का अधिक अवसर मिलेगा। विदेश में दूर जाना सबको रुचना नहीं है। इसलिये जो भाई विदेश जाने की और वहां काम करने की उमंग रखते हों उनको इस निवेदन पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि कोई इसके लिये तैयार हों तो वे कृपया गुरुकुल कांगड़ी में श्री मुख्याधिष्ठाता जी को या मुझे शीघ्र सूचित करें।

—अभय

गु रु कु ल

८ वैशाख शुक्रवार १९९७

आर्यसमाज राजनीति में ?

[गत सप्ताह के वर्धा के समाचार से ज्ञात होता है कि आर्य-सार्वदेशिक सभा के प्रधान तथा एक प्रमुख सदस्य वर्धा, महात्मा जी से मुस्लिम लीग की विभाजन-योजना के विषय में बातचीत करने गये थे। समाचार पत्रीय अनुमान यह भी था कि शायद यह चीज़ आर्यसमाज के राजनीति में प्रवेश करने का चिन्ह है। हम समझते हैं यह ऐसा नहीं है। और इसी विषय को सामयिक समझकर इसी पर 'गुरुकुल' के पाठकों के सामने अपने विचार रखेंगे।]

जब से मनुष्यता ने अपने आप को पशुता से भिन्न, उच्चतर और अधिक विवेक पूर्ण पहचान कर, विशिष्ट सामाजिक संगठन बनाकर अन्याय से समाज की रक्षा के निमित्त राज्यादि की व्यवस्था को स्वीकार किया है तब ही से राष्ट्रनीति या राजनीति को समाज में प्रमुख और प्रशस्त स्थान प्राप्त होता रहा है। सामाजिक जीवन की आधारभूत वस्तु धर्म के साथ भी इसीलिए राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध अनिवार्य है क्योंकि दोनों-धर्म और राजनीति—उसी सामाजिक जीवन के साथ निकटतया सह-सम्बद्ध हैं। लेकिन धर्म का मुख्यतर अङ्ग राजनीति से सर्वथा पृथक् है यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा।

वैदिक धर्म में भी उन्नत राजनीति का उल्लेख है, निःसन्देह, और शायद इसीलिए उस तत्कालीन राजनीति को धर्म के अन्य अङ्गों के साथ उचित सम्बन्ध में करने और देखने की सूझ और इच्छा बहुत से आर्यभाइयों में उत्पन्न हुई है। यह सूझ और इच्छा हमारी संस्था के जागृत, क्रियाशील और उन्नत्यभिमुख होने का सर्वप्रकाश चिन्ह है, ऐसा बिना किसी संशय या प्रतिवाद की आशंका के कहा जा सकता है।

लेकिन कूदने से पहले सोच लेना ही बुद्धिमानी है। यद्यपि आर्यसमाज का जीवन एक धार्मिक संस्था की दृष्टि से अति दूरगामी नहीं है फिर भी उतने से समय में इसकी जो सर्वतोमुखी उन्नति हुई है वह हमारे लिए क्या, किसी भी भारतीय संस्कृति के प्रेमी के लिए मस्तक गौरवोन्नत करने की बात हो सकती है। जहां तक आधुनिक वैज्ञानिक युग का संबन्ध है, आर्यसमाज ने सैकड़ों और हजारों वर्षों से रूढ़िग्रस्त और अन्धविश्वासमात्र-अवशिष्ट पवित्र वैदिक धर्म को तर्कसङ्गत और अतएव वैज्ञानिक आधार देकर संसार के उच्चतम बुद्धिशिखरों पर प्राचीन ऋषियों की पावन पताका फहराई है। हिन्दू संगठन में आर्यसमाज का काम अद्वितीय है। स्त्रीशिक्षा को आर्यसमाज ने पुनरुद्धारित करके अपने को गौरवमय बनाया है। स्थान २ पर विधवाश्रम, वनिताश्रम और अनाथाश्रम आदि खोलकर आर्यसमाज ने सामाजिक बुराइयों के प्रति अपनी तीव्र दृष्टि को प्रकाशित कर दिया है। राजशक्ति द्वारा तीव्र गति से किये जाते हुए हिन्दुओं के विधर्मीकरण की गाड़ी में आर्यसमाज ने ही शुद्धि का रोड़ा अटका कर अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। निरन्तर ह्रास को प्राप्त होती हुई भारतवर्ष की अदेय सम्पत्ति—गोजाति-की रक्षा में सबसे पहले अपनी सफल आवाज़ आर्यसमाज ने ही उठाई है। लेकिन इन सबसे बढ़कर अधिक शानदार, उपयोगी और आदर्श कार्य आर्यसमाज ने किया है भारतीय युवकों की भारतीय शिक्षा का प्रबन्ध, उनके दिल और दिमाग को भारतीय रखने का उज्ज्वल कार्य, जिसकी पूर्ति के लिए पहले डी.ए.वी. कालिज खोले गये और जिनके असफल हो जाने पर स्थान २ पर गुरुकुलों की स्थापना हुई।

इन सब कार्यों के लिए अतिमात्र धर्मप्रेम और अत्यन्त वीरता की आवश्यकता थी। आर्यसमाज ने उस सब में सफलता पाई। लेकिन यह सफलता एकमात्र दुग्धधौत सफलता न थी—यह सफलता मोदकमात्र ही न थी—इस के साथ एक अभागा लेकिन सच्चा तथ्य संयुक्त था और वह यह था कि आर्यसमाज उन सफलताओं को अधिगत करने में अपने टुकड़े कर बैठा—निष्क्रिय टुकड़े ही नहीं लेकिन ऐसे कि वे टुकड़े परस्पर बद्धमूल वैर वाले होकर एक दूसरे पर घातक आघात करने लगे।

परिणामतः, इस समय आर्यसमाज की शक्ति बिखरी हुई है, इसका सारा बल छिन्न भिन्न होकर पड़ा है। आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही की जाती हुई प्रयत्नशीलता आज दृष्टिगोचर हो रही है, ऋषि के नाम के पर्दे के पीछे अनेक प्रकार के अवांछनीय व्यक्ति समाज के नैतिक नियमों को ठोकर मार मार कर समाज को अन्दर की तरफ से खोखला कर रहे हैं। आज समाज की मान रक्षा करने वालों का दल क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है, समाज के प्रमुख नियमों को व्याख्यान्तर द्वारा अनावश्यक सिद्ध किया जा रहा है, समाज के प्रशस्त पुरुषों के पगड़ी की कीमत ठोकरों से लगाई जा रही है।

ऐसी अवस्था में राजनीति में प्रवेश करना आर्यसमाज के अपने लिए कहां तक हितकर है? आर्यसमाज में हम तो आज एक भी ऐसा व्यक्तित्व नहीं देखते जो आर्यसमाज के बिखरे बल को, तितर बितर सामर्थ्य को एक सूत्रित करके जाति और समाज व देश और धर्म का कल्याण कर सके।

भारतवर्ष में इस समय लोक सत्तात्मक शासन-प्रणाली का ही आश्रय लिया गया है। इस प्रणाली में जैसा कि प्रत्येक राजनीति का विद्यार्थी जानता है-सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सुसंगठित दल-बन्धन का है। जहां भी संसार में लोकसत्तात्मक प्रणाली आज चल रही है वहां ही हम देखेंगे कि दल-बन्धन कितना संगठित और सुपरिचालित है। लेकिन यह संगठित दलबन्धन कभी भी बिना किसी अत्युच्च व्यक्तित्वपूर्ण नेतृत्व के सन्तोषजनक नहीं हो सकता। आज जब हमारे पास एक भी प्रभावशाली नेता नहीं, थोड़े भी श्रद्धालु अनुगामी नहीं हम किस बूते

पर यह कोशिश करना चाहते हैं कि राजनीति जैसे छल-प्रपञ्चमय क्षेत्र में अपना प्रवेश प्रारम्भ करें।

वैसे ही हमारा देश अनेक साम्प्रदायिक (या धार्मिक) आधारों वाले राजनीतिक दलों के होने के कारण उसके कड़वे फल भोग रहा है। यह निःसन्देह सत्य है कि वर्तमान साम्प्रदायिक राजनीतिक दलों में से किसी एक के भी हट जाने से भारतवर्ष की स्वतन्त्रता बहुत शीघ्र प्रत्यक्ष हो जायगी। ऐसी विषम अवस्था में आर्यसमाज का एक दल रूप में राजनीति में प्रवेश करना हमारे देश के लिए कितना नाशक होगा यह सहज ही कल्पनीय है।

साथ ही धार्मिक आधार पर खड़ी की गई राजनीति का अस्पष्ट स्वरूप हमारे अन्दर भीतरी और अनावश्यक मतभेदों और दुर्भावनाओं का कारण होगा। वेदों के अन्दर किस राजनीति का उल्लेख है इसका निश्चयपूर्वक प्रतिपादन करने का साहस कौन कर सकता है। ऐसे विषयों पर मतभेद होजाना सर्वथा स्वाभाविक है और यही मतभेद बढ़ते बढ़ते उग्र रूप धारण कर सकते हैं। एक सर्वप्रिय नेता के न होने से किसी एक ही निश्चय को मान लेने की प्रवृत्ति अभी तक बहुत कम है। इसलिए इस प्रकार के छोटे २ लगने वाले मतभेदों का जो अकल्पनीय परिणाम होगा क्या वह वर्त्तमान दशा से अधिक भयंकर न होगा ?

हमें विश्वास है कि आर्यसमाज आज की दशा में प्रो० इन्द्र जी जैसे राजनीति के पण्डित और आर्यसमाज के मान्य नेता की सलाह का तिरस्कार नहीं करेगा। अभी आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण है, अभी हमने कार्य शुरु ही किया है, सभी कुछ करने को बचा है। फिर क्यों हम अपनी शक्ति की चादर के बाहर अपने पांव पसारने लगें ?

लेकिन इस सबका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि आर्यसमाज अपने धार्मिक और सामाजिक अधिकारों को कुचला जाता हुआ देखता रहेगा। आर्यसमाज किसी को अपने मन्तव्यों का अपमान नहीं करने देगा—हां, उन्हें मानने न मानने के लिये प्रत्येक व्यक्ति अपने मे स्वतन्त्र है। आर्यसमाज जाग्रत है वह अपने सर्वप्रकार के अधिकारों के प्रति जागरूक रहेगा। अपनी आवाज को अधिक और अधिकतर प्रभावशाली बनाता जायगा। कोई आर्यसमाजी तो आर्यसमाज के नियमों के अनुसार भी और ऋषि दयानन्द की व्यवस्था के अनुसार भी राजनीति से बिलकुल अछूता रह ही नहीं सकता। वैसे तो कोई भी शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति अपने को राजनीति प्रूफ नहीं बना सकता और फिर आर्यसमाज जैसी धार्मिक संस्था का सदस्य जिसके धर्म और राजनीति में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह पूछा जा सकता है कि फिर किस प्रकार आर्यसमाज को अपनी आवाज अधिक प्रभावशाली बनानी चाहिए ? हम समझते हैं कि इसका सही तरीका यह नहीं कि आर्यसमाज राजनीति में प्रवेश करे अपितु आर्यसमाज में राजनीति प्रविष्ट हो, प्रत्येक आर्यसमाजी किसी राजनीतिक संस्था में अपना स्थान ग्रहण करे और वहां से अपनी 'वैदिक धर्म की जय' की आवाज गंजाए ! आर्यसमाज के व्यक्ति राजनीति के प्रति अपनी उदासीनता छोड़ दें और किसी न किसी मार्ग से कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट हों। यही कल्याण का मार्ग है, इसी में देश और जाति का, धर्म और समाज, सत्य और न्याय का भला है।

इसलिए राजनीति में आर्यसमाज को पृथक् दल के रूप में उतारने वाले महानुभाव बिना विचारे क्षणिक जोश वश इस आत्महत्या के समुद्र पर अपना बेड़ा न खोलें। अन्यथा जो परिणाम होगा वह एक भयंकर परिणाम होगा, अकल्पनीय और अवांछित परिणाम होगा।

—देवेन्द्रकुमार

महत्वकांक्षा

(अनुवादक श्री विद्यालंकार)

गेटे ने बड़ी सुन्दरता के साथ कहा है कि "मनुष्य का अस्तित्व संस्कृति के लिये है ; इस का महत्व नहीं कि वह क्या कमा सकता है ? महत्व तो इसका है कि वह अपनी आन्तरिक पूर्णता को किस सीमा तक पहुंचता है।

कीर्ति के सम्बन्ध में, हमें नाम और असलियत में गड़बड़ नहीं डाल देनी चाहिये। केवल याद किया जाना ही कीर्ति नहीं है। दुनिया में कीर्ति और अपयश दोनों हैं; और दुर्भाग्य से कीर्ति के लिये जितने याद किये जाते हैं, उतने ही अपयश के लिये याद किये जाते हैं; और जिन्हें दोनों के लिये याद किया जाता है, उनकी संख्या भी थोड़ी नहीं है।

"उत्तम काम करते हुए अप्रसिद्ध रहना, बुरे कामों के कारण इतिहास में प्रसिद्ध होने की अपेक्षा बहुत अच्छी चीज़ है। प्रसिद्ध हिराडियस स्त्री की अपेक्षा, एक कैनान (ऐसा देश जिसके निवासी अपनी प्रतिज्ञा को सदा पूरा करते हैं) स्त्री, जो बिल्कुल अज्ञात है, बड़े सुख से रहती है।

अपनी असफलता और मृत्यु के कारण भी उतने ही राजा और सेनापति स्मरण किये जाते हैं, जितने अपनी सफलताओं और विजयों के लिये याद किये जाते हैं। रामायण का नायक राम था, लेकिन रावण भी उतना ही प्रसिद्ध है। सिकन्दर का साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद छिन्न भिन्न होगया। नेपालियन एक प्रतिभाशाली मनुष्य था, यद्यपि वह नायक नहीं बन सका। उसकी सब विजयों का क्या परिणाम हुआ ? उसकी सब विजय, उसके बन्दूकों के धुएं की तरह से, जल्दी ही अदृष्ट होगई; और वह फ्रांस को, जैसा उसके प्रादुर्भाव से पहिले था, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक गरीब, कमज़ोर और छोटा छोड़ कर मरा था। उसकी प्रतिभा का स्थायी परिणाम, कोई सैनिक विजय नहीं, नैपोलियन का कानून है।

किसी न्याय या आत्म बलिदान के कारण याद किये जाना, कीर्ति की अधिक निश्चित और यश पूर्ण उपाधि

है। लियोनिडस का आत्म बलिदान और रेगुलस का पवित्र विश्वास ही इतिहास के गौरवमय पृष्ठ हैं।

कुछ उदाहरणों में जब किसी स्थान के नाम पर मनुष्य का नाम पड़ता है— मनुष्य तो याद किये जाते हैं, लेकिन उस मूल स्थान को लोग भूल जाते हैं। जब हम पैलेस्ट्रिना या पेरू जिनो, नेलसन या वेलिङ्गटन और न्यूटन या डार्विन का ज़िकर करते हैं, तो इन शहरों का किसे स्मरण होता है? हम केवल मनुष्य के सम्बन्ध में सोच रहे होते हैं।

हमारे पास शेक्सपियर या प्लेटो की बहुत ही अपर्याप्त जीवनियां हैं, लेकिन फिर भी हम उनके सम्बन्ध में बहुत जानते हैं।

गेटे को अपनी शताब्दी की आत्मा कहा जाता था। राजनीतिज्ञों तथा सेनापतियों का अपने जीवन में बहुत आदर सत्कार होता है। उनकी एक २ प्रगति और शब्द समाचार पत्रों में प्रकाशित होते हैं। लेकिन एक दार्शनिक या कवि की ख्याति अधिक स्थायी होती है।

वर्ड्सवर्थ ने इसी दृष्टि से कुछ अपवादों को छोड़ कर कवियों के स्मारक बनाने का विरोध किया है। राजनितिज्ञों की बात यह कहता है, दूसरी है, उनके स्मारक बनना या स्मृति मनाना ठीक है, क्योंकि अन्यथा जनता उनको याद रखेगी, यह कुछ कठिन प्रतीत होता है; लेकिन दार्शनिक और कवि अपनी कृतियों के द्वारा सदा जीवित रहते हैं।

इस संसार के सच्चे विजेता तो विचारक हैं, सेनापति नहीं। सिकन्दर और अकबर नहीं बल्कि कन्फ्यूशस, और बुद्ध या अरस्तू और अफलातून या ईसा और राम। वे शासक या राजे महाराजे, जिन्होंने हमारे पूर्वजों पर राज्य किया था, अज्ञानता या विस्मृति के अगाध समुद्र में डूब चुके हैं, उनको लोग भूल गये क्योंकि उन्होंने ऐसा पवित्र सन्देश नहीं दिया था जो उनको नया जीवन दे सकता। अथवा केवल उनको याद किया जाता है जिन्होंने-जैसे युद्योधन और पाइलेट— अपना सम्बन्ध उच्च आत्माओं से जोड़ लिया था।

ऐसे मनुष्यों का जीवन छोटी २ जीवनियों में बांध कर नहीं रक्खा जा सकता। वे अपनी पीढ़ी में ही नहीं, अपितु सदा जीवित रहते हैं। जब हम एलिजाबेथ के युग के विषय में बात करते हैं, तब हम शेक्सपियर, बेकन और स्पेन्सर के सम्बन्ध में सोचते हैं। हम राज्य के मन्त्रियों को-एक दो अपवाद छोड़कर-शायद ही कभी याद करते होंगे, और स्वयं बेकन को दार्शनिक के रूप में अधिक याद किया जाता है; जब कि वह एक सफल न्यायाधीश भी था।

सेनापतियों और राजनीतिज्ञों की कीर्ति का वास्तविक कारण क्या है? उनका सम्मान उनके कामों के कारण था, लेकिन उन्हें भी कवियों और ऐतिहासिकों का कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि उन्होंने ही उनकी गौरवमयी स्मृति और सदाचरण के उदाहरण हमारे सामने पेश किये हैं।

मौन्ट्रोज़ ने दोनों का बड़ा सुखद सम्मिश्रण किया है, जब वह "मेरी प्यारी और एक मात्र प्रेमिका" में प्रतिज्ञा करता है—

"मैं तुझे अपनी लेखिनी से विख्यात करूंगा और अपनी तलवार से गरिमामय बनाऊंगा"।

यह एक ध्यान देने योग्य और उत्साहप्रद बात है कि बहुत सी बड़ी २ हस्तियां बहुत नीचे दर्जे से उठी हैं, और उन्होंने उन आपत्तियों और बाधाओं पर जो अगम्य और अजेय मालूम होती थीं— बड़ी सुगमता से विजय पाई है। इतना ही नहीं, कभी २ अज्ञातता निश्चित ज्ञान न होने के कारण ही—आज सात शहरों पर उसकी जन्म भूमि होने का दावा किया जाता है।

केवल वैज्ञानिकों को ही लो। वे एक लुहार का लड़का था। वाट का पिता बढ़ई था। फ्रैंकलिन का पिता चर्बी से मोम बत्तियां बनाया करता था। डैल्टन का पिता जुलाहे का काम करता था। फ्रानहाफर, खिड़कियों में शीशा लगाने वाले का लड़का था। जार्ज स्टिफन्सन, कायले के जहाज़ में काम करता था। लैपलेस का पिता एक मामूली किसान और फैरेडे का पिता लुहार था। डेवी, एक अत्तार का सहायक था। और व्हीटस्टोन गाने बजाने के औज़ार बनाया करता था। विरमिङ्घम का पिता बोल्टन, बटन बनाने वाले का बेटा था। गैलिलिओ, केपलर, स्प्रेन्जल, न्यूविअर और सर डब्ल्यू हर्शल—सब के माता पिता बड़े गरीब थे।

इसके अतिरिक्त, कितनी दुःखदायक बात है कि हम अपने बड़े २ उपकार करने वालों का तो नाम तक नहीं जानते हैं। आग को सुरक्षित रखने का, कौन आविष्कारक था? अक्षरों का आविष्कार किसने किया? और कैडमस तो केवल नाम है।

आधुनिक उन्नति भी इतनी धीरे २ और भिन्न २ तरीकों से हो रही है, कि बहुत थोड़े आविष्कारों के सम्बन्ध में ही आंशिक या पूर्ण तौर से कहा जा सकता है कि इस का आविष्कारक अमुक मनुष्य है।

कोलम्बस को अमेरिका का खोजने वाला कहा जाता है, और यह है भी ठीक, लेकिन उत्तरीय मनुष्य, वहां उससे पहले विद्यमान थे।

हम, अंग्रेज़, अपने देशवासियों पर अभिमान करने का अधिकार रखते हैं। मानवीय विचार की उन्नति का इतिहास ह्यूम और हैमिल्टन, बेकन और हौब्स, लाक और बर्कले के नामों के बिना अधूरा रहेगा। न्यूटन गुरुत्वाकर्षण के साथ जुड़ा हुआ है। एडम स्मिथ का राजनीतिक अर्थशास्त्र प्रसिद्ध है

इन्हीं और दूसरे इन जैसों ने हमारे इतिहास का निर्माण किया है, और हमारी सम्पत्तियों को परिवर्धित किया है। यद्यपि अपने जीवन काल में इनका महत्व, अपने देशवासियों की दृष्टि में, अपेक्षया कम था। लेकिन अन्त में वे अजेय शक्ति बन गये, और अब उनकी गरिमामय स्मृति मनाई जाती है।

'गुरुकुल' का नव वर्ष

पाठकों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि उनका प्रिय पत्र 'गुरुकुल' अब अपनी आयु के चतुर्थ वर्ष को समाप्त कर पांचवें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। अपने नव वर्ष के प्रारम्भ के साथ २ गुरुकुल अपने समस्त पाठकों का अभिनन्दन करता है।

'गुरुकुल' ने यथाशक्ति पाठकों की रुचि को तथा अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सदा उनकी सेवा करने का प्रयत्न किया है। 'गुरुकुल' ने आर्यसमाज की कितनी सेवा की है यह किसी से छिपा नहीं है। गुरुकुल पत्र ने इन ४ वर्षों में निरन्तर उन्नति की है, इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यही है कि इसकी ग्राहक संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

हम मानते हैं कि इसमें बहुत सी त्रुटियां हैं, हम इस बात का विशेष प्रयत्न भी कर रहे हैं कि ये त्रुटियां आगे से न रहें। हमें आशा है कि इस नये वर्ष के साथ साथ हम इसको पाठकों के सामने और अधिक अच्छे रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

हम पाठकों से आशा करेंगे कि वे भी समय २ पर अपने इस पत्र की त्रुटियों का ध्यान दिलाते रहेंगे जिससे यह और अधिक उन्नत हो सके।

पाठकों को यह बतलाते हुए हमको हर्ष होता है कि उनकी इच्छा के अनुसार अब से प्रत्येक अंक में श्री आचार्य अभयदेव जी का एक लेख अवश्य रहा करेगा।

अन्त में फिर अपने पाठकों के कल्याण की कामना करता हुआ—

सम्पादक

गुरुकुल समाचार

ब्र० विष्णुमित्र ५म श्रेणी टौन्सिल, वीरेन्द्र ५म मलेरियाज्वर, जितेन्द्र ४र्थ मलेरिया ज्वर, देवेन्द्र(अम्बाला) ४र्थ मलेरिया ज्वर, जगदीश ३य श्लेष्म ज्वर, दीनबन्धु २य श्लेष्म ज्वर, देवव्रत ३य श्लेष्म ज्वर, सहदेव १म खसरा, रामप्रकाश ५म खसरा, भगवद्दत्त ५म खसरा, धर्मपाल ५म खसरा, रघुनाथ २य मलेरिया, श्यामशिवराव १म श्रेणी मलेरिया।

गत सप्ताह ऊपरलिखित ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब प्रायः सब स्वस्थ हैं। ब्र० धर्मपाल, भगवद्दत्त तथा रघुनाथ को अभी ज्वर है। आशा है कि २,३ दिन में वे भी स्वस्थ हो जावेंगे।

इन दिनों गुरुकुल में ऋतु की विषमता अपना प्रभाव दिखा रही है। दिन में व्याकुल कर देने वाली भीषण गर्मी पड़ती है और रात्रि के अन्तिम प्रहर में शरीर को सिकुड़ा देने वाली दो कम्बलों की अच्छी सर्दी।

ऋतु की इस विषमता का प्रभाव ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ा है, फिर भी आसपास के इलाकों की अपेक्षा यहाँ का स्वास्थ्य-वृत्त सन्तोषजनक है।

रामनवमी:—इस सप्ताह की विशेष बात रामनवमी का त्योहार था। श्री आचार्य अभयदेव जी के सभापतित्व में सभा की गई जिसमें मान्य उपाध्यायवृन्द तथा ब्रह्मचारियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति अपनी भाव भरी श्रद्धाञ्जलियां समर्पित की। श्री आचार्य जी ने बताया कि राम के तीन त्यौहार आते हैं जिनमें रामनवमी के त्यौहार को हमें आध्यात्मिक दृष्टि से मनाना चाहिए, आज के दिन हमें अपने हृदयों में राम की भावना को जन्म देना चाहिये, तभी हमारा सच्चे अर्थों में रामनवमी का त्योहार मनाना होगा।

इस सप्ताह की यह भी विशेषता है कि—आचार्य श्री जुगल किशोर जी का—देश की वर्तमान दशा - इस विषय पर व्याख्यान हुआ। आप ने बताया कि हम को किस प्रकार इन गम्भीर परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए भारत की स्वतंत्रता और उसकी अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए।

साहित्य परिषत् की कार्यकारिणी के लिए ब्र० रामदेव तथा ब्र० धर्मेन्द्र का सर्वसम्मति से निर्वाचन हुआ है। हम दोनों बन्धुओं को उनकी इस सफलता पर हार्दिक बधाई देते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी की हौकी टीम की विजय

बाइटन कप हॉकी टूर्नामेंट में

१३ अप्रैल को गुरुकुल का हॉकी का 'अ' दल कलकत्ते में होने वाले बाइटन कप टूर्नामैन्ट में भाग लेने गया था। वहां से निम्न समाचार प्राप्त हुआ है—

कलकत्ते में १६ अप्रैल की शाम को गुरुकुल दल का कलकत्ता फुटबाल क्लब से मैच हुआ। मैच शुरु होने से पहले ही दर्शक गैलरी भर गई थी। गुरुकुल दल को नंगे पैर तथा सादे व श्वेत खद्दर के वस्त्रों में देखकर जनता हैरान थी। एक घण्टे तक तो किसी भी ओर गोल नहीं हो सका क्योंकि दोनों पार्टियां अन्त तक डटकर खेलती रहीं। गुरुकुल दल का खेल आक्रमणात्मक थी तो कलकत्ता वाले अन्त तक अपना बचाव ही करते रहे। खेल समाप्त होने पर अतिरिक्त समय दिया गया। इस समय के पूर्वार्द्ध में ही गुरुकुल के दल ने एक गोल कलकत्ता वालों पर कर दिया। इसके बाद खेल के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता वालों के अनेक प्रयत्नों के होने पर भी गोल न उतर सका। इस प्रकार खेल के परिणाम स्वरूप गुरुकुल का हॉकी दल एक गोल से विजयी रहा।

गुरुकुल दल के खिलाड़ियों के नाम निम्न हैं—

विद्यारत्न, योगेश्वर, श्री गणपति जी, शंकर, श्रीकान्त, विद्यानन्द, श्री हरिवंश जी, श्री हरिप्रकाश जी, श्री बलबीर जी, दिलीप, केवल, बलराम, महेन्द्र।

इनका अगला मैच २२ अप्रैल को होगा।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *
'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"
Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५ । गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ वैशाख १९९७; २६ अप्रैल १९४० । संख्या २

नपुंसक ज्ञान और निर्वीर्य भावावेश

[श्री आचार्य अभय देव जी का एक भाषण]

हम अभी राष्ट्रीय सप्ताह मना कर चुके हैं। देश की वर्तमान स्थिति पर कई चर्चायें और उपदेश सुन चुके हैं। इस संबन्ध में तुम ब्रह्मचारियों को और विशेषतः शिक्षा की दृष्टि से तुम को जो कुछ कहने की इच्छा होती है उस का संकेत आज के मेरे कथन के शीर्षक से तुम को शायद मिल जायगा। हम बहुत काल से पराधीन हैं। और लगभग २०, ३० बरस से हम अपनी पराधीनता को काफी मात्रा में अनुभव भी करने लगे हैं। फिर भी हम पराधीनता से मुक्ति नहीं पा सके हैं। इसका क्या कारण है ? इस के जिस कारण की तरफ मै तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूं वह यह है कि हमारे ज्ञान में तेज नहीं है और हमारे भावावेशों में (Emotions) में वीर्य नहीं है। और यह त्रुटि विशेषतया हम पढ़े लिखेलोगों में है। आम जनता का अन्तःकरण इतना विकृत हुआ हुआ नहीं है। उनके अन्दर जो कमी है वह और प्रकार की कमी है। उन्हें यदि ठीक ज्ञान मिल जाय, उन के भाव यदि जागृत किये जांय तो वे कुछ न कुछ फल अवश्य लाते हैं। पर हम लोग बहुत ज्ञान की चर्चा करते हैं, देश भक्ति के गीत गा कर अपने भावों को उत्तेजित करते हैं पर फिर भी हम जहां के तहां ही रहते हैं, बल्कि अन्यों के बढ़ने में रोड़ा बनते हैं। इसका कारण यह है कि हमारे विदेशी शासकों ने जो हमारा मनःसम्मोहन कर रक्खा है उसके सब से बड़े शिकार हम पढ़े लिखे लोग ही हुए हैं। 'जादू वह है जो सिर पर चढ़ कर बोले।' वह जादू ही बोल रहा होता है जब कि हम खड़े होकर अपने सेवापरायण सच्चे राष्ट्र सेवकों की निरर्थक टीका टिप्पणी कर रहे होते हैं पर स्वयं कुछ भी करना नहीं चाहते होते, जब हम देश विघातक विचारों को बढ़ा रहे हैं और साथ ही अपने आप को पूर्ण देशभक्त समझ रहे होते हैं, जब हम अपने स्वराज्य की आधारभूत भारतीय संस्कृति पर घातक प्रहार कर रहे होते हैं पर साथ ही अपने को बुद्धिमान और विद्वान समझ रहे होते हैं।

विचार की क्रिया में परिणति कैसे होती है

हम क्या हैं ? पहिले तो अन्नमय स्थूल शरीर हम हैं जिस से कि हम सब स्थूल कार्य करते हैं। पर यदि इस में से प्राण निकल जाय तो यह शरीर केवल जला देने के लायक ही रह जाता है, तो शरीर के बाद हम प्राण हैं जो कि हमारा जीवन रूप है। उस प्राण का ही सूक्ष्म भाग है जिसमें कि भाव उत्पन्न होते हैं। और हम इन अच्छे बुरे भावों से प्रेरित हो कर ही नाना विध कर्म करते हैं। पर उस के भी मूल में हमारा मन है जिस के कारण हम मनुष्य हैं। इन मन और प्राण के निःसत्व हो जाने की ही आज मैं बात कर रहा हूं। असल में हमारा मन और कुछ नहीं है, वह जगद्-व्यापक मन का एक वैयक्तिक रूप है। हमारा प्राण भी और कुछ नहीं है वह जगद्-व्यापक प्राण (सूत्रात्मा) में पड़ी एक ग्रन्थि के समान है। उस दृष्टि से देखें तो हम बहुत कुछ जगद्-व्यापी शक्तियों से चलाये हुए ही चल रहे होते हैं, अज्ञानवश ही हम यह समझते हैं कि हम यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं। उस अज्ञान से परे हो कर देखें तो हमें मालूम होगा कि हम सत्य को क्रिया में परिणत करने के लिये एक उत्तम यन्त्र रूप हैं। हमें परमेश्वर ने इसलिये बनाया है। सत्य आत्मा में रहता है। जब कोई सत्य स्थूल रूप में व्यक्त होना चाहता है तो हमारा मन उसको आकार प्रदान करता है, उसे कल्पित करता है और हमारे प्राण-गत भाव उस में जीवन डाल देते हैं और फिर स्थूल प्रकृति (अन्न) उसे स्थूल रूप में ले आती है। इस तरह यन्त्र काम करता है। उदाहरण के लिये, स्वराज्य एक सत्य है। क्योंकि आत्मा स्वराज्य में ही रहना चाहता है और स्वराज्य स्थापित करने के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है। यदि हमारा मन विकृत नहीं है और अपनी शक्ति को

नहीं खो बैठा है तो वह इस सत्य को व्यक्त करने के लिये स्वराज्य की सच्ची कल्पना करेगा। हमारा स्वराज्य क्या होना चाहिये यह उस के सम्मुख स्पष्ट रूप से आया हुआ होगा। उस के साथ २ प्राण यदि शान्त हैं तो उस के अन्दर स्वराज्य पाने के लिये सच्चे भाव उत्पन्न होंगे, ऊंचे और बलवान भावावेश आयेंगे। और इस अवस्था में आत्मा का स्वराज्य का संकल्प बिना पूरे हुए नहीं रह सकता। पर अभी यह हो नहीं रहा है, क्योंकि मन और प्राण ठीक तरह काम नहीं कर रहे हैं। इसी तरह देश की आत्मा से अपने आपको एक करने वाले यह भी अनुभव कर सकते हैं कि भारत की अन्तरात्मा भारतीय स्वराज्य को स्थूल रूप में व्यक्त हुआ देखना चाहती है पर फिर भी वह अभी तक व्यक्त नहीं हो सका तो यह भारतीय मन और प्राण के कलुषित और असमर्थ होने के कारण हैं।

कुछ दिन हुए हमारे यहां 'सत्यं साध्यं साधनं वा' इस विषय पर संस्कृत में वाद विवाद हुआ था। असल में सत्य साध्य भी है और साधन भी। सदा सत्य को ही हम ने सिद्ध करना है इस रूप में सत्य साध्य है। पर साध्य तो दूर की चीज है। जो हमारे नजदीक की चीज है और हमारे बस की है वह तो साधन ही है। वह साधन यदि सत्य होगा तो उस से सत्य साध्य ही सिद्ध होगा। इसलिये हमें आदर्श स्वरूप, अमूर्त्त सत्य साध्य को सामने तो अवश्य रखना चाहिये और उसी पर श्रद्धा पूर्वक लक्ष्य बांधे रखना चाहिये, पर वैसा करते हुए सच्चे साधनों को निरन्तर पकड़े रखना चाहिये, उनका आलम्बन नहीं छोड़ना चाहिये। तब सत्य अवश्य ही और जल्दी से जल्दी क्रिया रूप में सिद्ध होगा।

गांधी जी का अग्नीषोमीय मार्ग

गांधी जी अपने जीवन मार्ग को सत्याग्रह नाम से पुकारते हैं। यह ठीक ही है। क्योंकि उनको मुख्य वस्तु सत्य ही है। जिस पर कि वे सतत आग्रह रखना चाहते हैं। पर इस सत्य का आग्रह करने से ही उन्हें जो दूसरी चीज मिली है उसे वे अहिंसा नाम से पुकारते हैं। यह अहिंसा सत्य के बाद की वस्तु है। उन्होंने देखा कि सत्य का आग्रह अहिंसा के बिना नहीं चल सकता। अतः जो लोग हिंसा अहिंसा के शाब्दिक झगड़े में पड़ते हैं उन के लिये उनकी उलझन को हटाने के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि गांधी जी का मार्ग अग्नीषोमीय साधना का मार्ग है। बहुत दिन हुए मैं ने अलंकार में 'अग्नीषोमीय साधना' इस शीर्षक से एक लेख लिखा था। मुझे इस तरह विचार करना प्रिय लगता है कि जैसे पुराने समय में किसी असुर का संहार करने के लिये तप वा यज्ञ द्वारा देवताओं को या देवताओं की तरफ से किन्हीं दिव्य पुरुषों को कोई दिव्य हथियार मिलते थे वैसे ही मानो आज साम्राज्यवाद, पूंजीवाद आदि (जो पश्चिमी सभ्यता की माया से जन्मे हैं) असुरों का संहार करने के लिये गांधी जी को तपस्या से हमारे देश को एक अग्नीषोमीय वज्र मिला है जिस के द्वारा उपर्युक्त सब असुरों का संहार कर हमें सच्चे भारतीय स्वराज्य की स्थापना करनी है।

इसका उपाय अग्नि और सोम की उपासना है। हम में अग्नि की तेजस्विता भी चाहिये और सोम की शान्ति भी। गांधी जी से पहिले के लोग साधारणतया राजनीति के सम्बन्ध में शान्ति या अहिंसा को चरितार्थ करने का अर्थ यही समझते थे कि "हमें कुछ नहीं करना है। जो कुछ है वह ठीक है। स्वराज्य नहीं है तो न सही।" पर गांधी जी के अर्थों में यह अहिंसा नहीं है। यह तो मृत्यु की शान्ति है। उन की अहिंसा तो एक जीवित जागृत वस्तु है—एक शक्ति है। उन का अहिंसा वह शान्ति है जो अग्नि के साथ जन्मी है। यदि हम में संकल्प की अग्नि है और यह स्वराज्य स्थापित करने के दृढ़ संकल्प की अग्नि शान्ति के विस्तृत प्रेममय आधार पर जल रही है तो यह अजेय वस्तु है। इस वज्र के सामने कोई शक्ति टिक नहीं सकती। इस के द्वारा सफलता अनिवार्य है।

आचार्य जुगल किशोर जी ने कल कहा था कि गांधी जी की क्रान्ति विकासात्मिका है (evolutionary revolution है)। वह ठीक है। पर मैं दूसरे शब्दों में यह कहूंगा कि गांधी जी का मार्ग स्वाभाविक परिपाक होने का मार्ग है; और यह परिपाक अग्नि और सोम की प्रक्रिया द्वारा होना है। हमें स्वराज्य हमारे आत्मा के संकल्प रूपी बाज से परिपक्व हुए फल के तौर पर ही प्राप्त होगा, और कहीं से नहीं आ टपकेगा। जब तक कि फल पक कर तैयार नहीं हो जाता तब तक उसके पाने को जल्दी करना निरर्थक है। जल्दी करने से कुछ और चीज मिलेगी, परिपक्व फल नहीं मिलेगा। अतः हमें धैर्य से अपने अन्दर पूर्ण स्वराज्य के फल को परिपक्व करने का प्रयत्न सतत करना चाहिये। इधर उधर नहीं देखना चाहिये और बीच में ही पत्तों, फूलों कोंपलों या कच्चे फलों को तोड़ने की नादानी भी नहीं करना चाहिये। बिना पके स्वराज्य नहीं स्थापित होगा। और वह परिपाक हमने ही करना है। अंग्रेजों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अंग्रेजों के देने और हमारे लेने की चीज नहीं है। हमने ही अपने देश भक्ति के बीज को विकसित करके उसे प्राप्त करना है। यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और इस विकास में की प्रक्रिया अग्निषोमीय प्रक्रिया है यह भी समझ लेना चाहिये।

परिपाक

भोजन का परिपाक अग्नि और सोम के द्वारा होता है। मैं कई वर्षों तक अपना भोजन अपने आप पकाता रहा हूं। उन दिनों में अग्नि और सोम का लीला देखा करता था। भोजन पकाने में आग अग्नि होती है और पानी सोमरस होता है। रोटी के लिये आटे में पानी डाल कर गूंधा जाता है और फिर आग के द्वारा पकाया जाता है। यदि पानी न हो तो अग्नि की तीव्रता से रोटी जल जाती है। दाल, शाक, चावल—ये सब चीजें पानी और अग्नि की समतायुक्त

क्रिया के द्वारा पकाई जाती हैं। अन्न केवल अग्नि में रख दिया जाय तो वह जल जायगा, यदि केवल पानी में रख दिया जाय तो वह सड़ जायगा, दोनों अवस्थाओं में वह पकेगा नहीं, गांधी जी भी अग्नि और सोम के द्वारा भारत को स्वराज्य के रूप में पकाना चाहते हैं। एक तरफ देशभक्ति की आग हम लोगों में जलाते हैं और दूसरी तरफ अहिंसा की शान्ति को भी कायम रखना चाहते हैं न हम हिंसा के वशीभूत होकर जल मरें और न गुलामी में पड़े सड़ते रहें; दोनों की समता द्वारा स्वराज्य-अवस्था में परिपक्वया विकसित हो जाय। हमारी स्वाधीन होने की इच्छा का जब इस प्रकार ठीक रूप से परिपाक हो जायगा तब हमें कोई गुलाम नहीं रख सकेगा, न अंग्रेज और न जर्मनी, न कोई और। सन् १९२०, २१ में, और फिर १९३० ३१ में देश भक्ति की अग्नि को विशेष रूप से जलाकर उन्होंने भारत वर्ष को गर्म किया है और अहिंसा का सोम रस हमारे अन्दर डाला और दोनों बार देखा है कि हम कुछ कुछ तो पके हैं परन्तु पूर्ण स्वराज्य की अवस्था से अभी दूर हैं। अब फिर सन १९४०—४१ में विशेष रूप से गर्म होने का समय आया दीखता है। क्या इसबार भी पूरा परिपाक नहीं हो पायेगा ? अभी तो यही दीखता है कि हममें न तो काफी अग्नि है और न काफी सोम। हमारा मनः सकल्प जाज्वल्यमान नहीं है। हमारे भावावेशों में वीर्य नहीं आया है (बाहर का जल (आप:) देवता हमारे अन्दर वीर्य (रेतः) बनकर आया है, यह उपनिषद् वचन यहां स्मरण करना चाहिये)। गांधी-जी ठीक कहते हैं कि जब तक शान्ति का व्यापक आधार तैयार नहीं हो जाता है तब तक जलाई हुई अग्नि अपने आपको या अपनी वस्तुओं को ही जलाने लगती है। एक बार मैंने पालक का शाक बनाया था। पालक के पत्तों में वैसे ही पानी बहुत मात्रा में होता है इसलिये उसमें बहुत थोड़ा पानी डाला। कुछ देर बाद कुछ और काम करते हुए मुझे पालक के जलने की गन्ध आई और मैं दौड़ कर आया, बटलोही में और पानी डाला और आग में भी पानी डालकर उसे कम किया। तो मुझे चौरी चौरी काण्ड पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द करने की घटना याद आ गयी भारत वासी वैसे ही ठण्डे, पानी वाले या शान्ति प्रिय समझे जाते हैं पर वे भी ज़रा सी असावधानी से मेरी पालक की तरह जलने लगते हैं यह समझ में आया इसलिये देश को स्वराज्य फल के लिये अग्नि सोमीय प्रक्रिया द्वारा धीमे धीमे ही पकने दो। व्यर्थ में जल्दी मत मचाओ। यही मार्ग सबसे होने से सब से छोटा है इसमें विश्वास रखो।

यह ठीक है कि यदि जल मरने और गुलामी में सड़ने में से ही किसी एक चीज का चुनाव करना हो तो जल मरना अच्छा है। इसी लिये गांधी जी कहा करते हैं कि कायरता की अपेक्षा तो अहिंसा भी अच्छी है। जब गांधी जी पहली बार छः साल के लिये जेल भेजे गये थे उस समय उन्होंने अपना दोष स्वीकार करते हुए यह कहा था कि मैं जानता था कि मैं आग से खेल रहा हूं। आम जनता में देश भक्ति की, स्वराज्य की आकांक्षा की आग जलाना खतरे से खाली नहीं है मैं कोशिश कर रहा था कि अहिंसा के द्वारा यह अग्नि जीवनदायक ठीक रूप में ही जले, विकृत हो कर नाशकारी न हो जाय। पर गुलामी में रहने की अपेक्षा इस खतरे को उठाना भी ठीक ही था।

हम अग्निरूप हों

हवन में जो हम पवित्र अग्नि लगाते हैं उसे भी हम अदितेऽनुमन्यस्व इत्यादि मंत्रों द्वारा चारों तरफ जल से परिवेष्ठित कर देते हैं। इससे भी हम अपनी राष्ट्रीय उत्थान की प्रक्रिया को प्रति दिन स्मरण कर सकते हैं। हमें जल से परिवेष्ठित अग्नि बनना चाहिये शांति का वातावरण रखते हुए हम देश भक्ति की अग्नि से जल रहे हों। हंसी तो किसी भी चीज़ की उड़ाई जा सकती है पर जब हम हंसी उड़ाते हुए यह कहते हैं कि "जब शत्रु हमारे देश पर तोप बन्दूकों से आक्रमण करेंगे तो ये अहिंसा वाले अपने हाथ बांध कर उन के सामने खड़े हो जायेंगे," तब वे यह भूल जाते हैं कि इस तरह खड़े होने वाले लोग अग्निरूप होंगे। जल से परिवेष्ठित होने के कारण हम किसी को अपने ऊपर आक्रमण करने के लिये ललचायेंगे नहीं, पर फिर भी यदि कोई हमारे अन्दर आ घुसेगा तो उसका वही हाल होगा जैसा कि न समझने के कारण अग्नि में अपना हाथ दे देने वाले किसी बालक का होता है। यह हवन कुण्ड में जलने वाली अग्नि किसी पर तोप बन्दूक से आक्रमण नहीं करती उस पर आक्रमण करने वाले को भी वह तब तक कुछ नहीं कहती जबतक वह आक्रान्ता वस्तुतः उसके अन्दर आकर उसके काम में—अग्नि के काम में—हस्तक्षेप नहीं करता। इसी तरह यदि हम देशभक्ति से प्रदीप्त हुए हुए हैं तो एक तो हमारे तेज को जानने वाले को हमारे पर आक्रमण करने का साहस ही नहीं होगा और यदि होगा तो वह हमारे काम में दखल करने पर वहां से चले जाने को बाधित होगा। यदि हम सचमुच एक जीवित जागृत राष्ट्र हैं, हमारे सहयोग के बिना हम पर कौन शासन कर सकता है, हमारे काम में दखल ही कैसे कर सकता है ? असली बात यह है कि हम अग्निरूप नहीं हुए हैं, पके नहीं हैं। इसलिये हमारा निहत्थे खड़े होना हास्यास्पद बात लगती है। ज़रा कल्पना कीजिये जो अपने स्वातन्त्र्य रक्षा के लिये प्राणपण से तैयार हैं इस प्रकार के गांधी जी जैसे बहुत से भारत वासियों का आक्रमण के मुकाबिले में निहत्थे खड़े होने का अपने देशवासियों पर, परदेशियों पर क्या असर होगा ? पर यह तो मुख्यतया जल से परिवेष्ठित होने का असर है। अग्निरूप होने का असर तब होगा जब हमारे तेज के कारण और असहयोग के कारण आक्रमण कारी को हमारे अन्दर आकर भी भागना पड़ेगा।

और सत्याग्रह तो आत्मशक्ति का नाम है। वह बहुत से रूपों में प्रकट होती है। असहयोग, भद्रअवज्ञा, कर न देना, पशु बल को अस्वीकार करना आदि उसके कुछ रूप हैं। सत्याग्रह के असली तत्व को बिना जाने उसके

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

१५ वैशाख शुक्रवार १९९७

तप की आवश्यकता—

[ले० अशोक वेदालंकार]

गुरुकुल एक संस्कृत पाठशाला नहीं है, सरकारी विश्व-विद्यालय नहीं है और ना ही कोई अर्धविकसित शिक्षा संस्था है। उसका मार्ग और उद्देश्य निश्चित है। आज हम गुरुकुल कांगड़ी के विषय में निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह एक निज उद्देश्य में सफल संस्था है। और संसार में शिक्षा के महान आदर्श की ओर पथ प्रदर्शन कर रहा है। गुरुकुल में सजीवता है। और इस प्रकार की संस्था के लिये उस सजीवता का होना आवश्यक है। गुरुकुल की पीठ पर आर्य समाज है। आर्य समाज का संगठन धार्मिक संस्थाओं तथा बहुत सी राजनैतिक संस्थाओं के लिये अनुकरणीय है। इसी लिये आर्य समाज भी एक प्रगति शील एवं सजीव संस्था है जिसका उद्देश्य ऋषि दयानन्द प्रतिपादित मार्ग से वैदिक संस्कृति का प्रसार करना है। आर्य समाज के लिये गुरुकुल गौरव की वस्तु है। गुरुकुल के बिना आर्य समाज पंगु है।

संसार त्रस्त है। सभी दुःखी हैं। इस समय धन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह समझा जाता है कि धन से अक्षय सुख प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु धनिकों की लज्जा जनक आत्म कथाओं ने पुकार कर कह दिया है कि हम सुखी नहीं हैं। इस पुकार को सुनते हुए भी संसार धन के पीछे अन्धा हो भाग रहा है। बस एक वस्तु को 'यथायोग्य' स्थान नहीं दिया गया है। यही दुःख का मूल है। हर उपभोग्य पदार्थ को यथा स्थान यथा योग्य महत्व दिया जावे इसी लिये आर्य समाज की आवश्यकता है। अर्थात् इस त्रस्त संसार के लिये एक शान्ति दायक सन्देश की जरूरत है। और वह सन्देश अमेरिका आदि किसी तटस्थ देश से कोई शान्ति दूत लायेगा यह मिथ्या है। क्योंकि अमेरिका स्वयं एक धन को अनुचित स्थान देने वाला राष्ट्र है। हां, क्षण भर के लिये शायद वह संसार की यह शस्त्रों की लड़ाई बन्द करा सके। परन्तु निरन्तर होने वाले आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सभी प्रकार के कलहों को वह बन्द नहीं करा सकता। इसके लिये तो पौरस्त्य शान्तिदायिनी संस्कृति की आवश्यकता है। जो संस्कृति मनुष्य को अधिकार लालसा से निवृत्त करा के कर्त्तव्य मार्ग पर तत्पर करा सकती है। पौरस्त्य संस्कृति बताती है सादगी से कर्तव्य पालन में सुख है। इसके विपरीत संसार चाहे कि मैं तड़क-भड़क से, व्यर्थ के आडम्बर से, सुख प्राप्त करलू, व्यर्थ है।

पौरस्त्य संस्कृति का बीज—सादगी से कर्तव्य पालन गृह-आश्रम और वर्ण व्यवस्था में निहित है। आश्रम और वर्ण व्यवस्था का आधार ब्रह्मचर्य है जिसके आधार से सादगी से कर्तव्य पालन का पाठ सीखा जाता है। इस ब्रह्मचर्य के लिये आर्य समाज को गुरुकुल की आवश्यकता है। ताकि आर्य समाज गुरुकुल से प्राप्त 'सोम' को संसार के सामने रख सके।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गुरुकुल से उस प्रकाश की आवश्यकता है जो प्रकाश संसार के पथ-भ्रष्ट लोगों को मार्ग दिखा सके। अतः गुरुकुल के ऊपर एक महान उत्तरदायित्व है।

मैं अभिमान पूर्वक एक स्नातक के नाते कह सकता हूं कि गुरुकुल ने अपने उत्तरदायित्व को योग्यता पूर्वक निभाया है। संसार के सामने शिक्षा की समस्या अभी भी समस्या रूप में विद्यमान है। सारा योरुप और उसका अनुकरण करने वाला एशिया और अफ्रिका, सम्मलित-शिक्षा के अभिशापों को भोग रहे हैं। और इस विषय में अमेरिका की कहानी भी काली है। इसके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा के कारण समाज में उत्पन्न विषमता का विष समाज के पलड़े को बराबर नहीं होने देता। इस अवस्था में गुरुकुल ही सच्ची शिक्षा की ज्योति को दिखा रहा है।

ब्रह्मचर्य गुरुकुल का प्राण है। गुरुकुल के पास विशाल भूखण्ड नहीं, गगनचुम्बी प्रसाद नहीं, विद्यार्थियों का घनीभूत रेवड़ नहीं लम्बी लम्बी पदवी धारी उपाध्याय नहीं, सरकार का वरद पाणि पल्लव ऊपर नहीं और कुछ भी नहीं। अगर कुछ है तो एक ब्रह्मचर्य का ही महान् आदर्श है। जिसके कारण गुरुकुल भारत के लिये ही नहीं संसार के लिये गौरव की वस्तु है। और इसी कारण कहना पड़ता है कि गुरुकुल महान् है। उसकी रक्षा हमें प्राण पन से करनी पड़ेगी। गुरुकुल ने बुद्धदेव, श्रद्धानन्द, अभयदेव, चन्द्रगुप्त और मुनि जी को दयानन्द गांधी, सावरकर और अरविन्द के रूप में पैदा किया है। सच मुच कुलमाता का मुख उज्वल करने के लिये इन कुल पुत्रों ने महान् व्रत का पालन किया है।

ये पंक्तियाँ गुरुकुलोत्सव के प्रोपेगेण्डा को दृष्टि में रख कर नहीं लिखी जा रही हैं। गुरुकुल तो प्रोपैगेण्डा जैसी वस्तुओं से दूर रहता है। यह तो एक निश्चित सचाई है। गुरुकुल को उसके कार्य का श्रेय देना पड़ेगा। चाहे साम्प्रदायिकता के लाञ्छन से भयभीत कुछ स्वराज्य विह्वल गुरुकुल के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार न कर सकें, परन्तु दबी जबान उन्हें भी कहना पड़ता है। और आगे आने वाले समाज में भारत के शिक्षा विज्ञ नहीं, अपितु संसार के शिक्षा वैज्ञानिक गुरुकुल की शिक्षा क्षेत्र में की गई स्थापनाओं को स्वीकार करेंगे।

दुर्भाग्य वश गुरुकुल अपने महान् उद्देश्य के अनुसार कुछ परिस्थितियां अभी भी प्राप्त नहीं कर सका है। यह गुरुकुल का दोष न हो, शायद उस वातावरण को बुरा कहा जाय जो आज दिन हमें चारों ओर दीखता है। परन्तु गुरुकुल को भी सावधानी से पैर रखना चाहिये। आज की सभ्यता आडम्बर पूर्ण है। वे विश्वविद्यालयों के ऊँचे प्रासाद बाहर से श्वेत पर अन्दर से काले हैं। उन में भारतीय आत्मायें घुट २ कर मरती हैं। उनके अनुकरण में गुरुकुल को कोई कार्य नहीं कर बैठना चाहिये। एक विद्वान के कथन का भाव है।

—"मैकाले का विरोध ऊंचे २ मंचों से बहुत से भारतीयों ने निश्चय असफलता पूर्वक किया होगा। परन्तु सच्चा जवाब तो आर्य समाज ने गुरुकुल खोल कर दिया है।

गुरुकुल को इस गौरव को स्थापित रखना ही पड़ेगा। और ब्रह्मचर्य के लिये हर आवश्यक त्याग और तपस्या को करना पड़ेगा।

प्रेम

[अनुवादक—श्री विद्यालंकार]

प्रेम जीवन का प्रकाश और आतप है। हम अपना अथवा किसी दूसरी चीज़ का पूर्णतया आनन्दोपभोग तब तक नहीं कर सकते, जब तक हमारा कोई प्रेमी भी उस आनन्द में शामिल न हो। यदि हम भाग्यवश अकेले हों, तो भी हम अपने आनन्द को इस आशा से अव्यक्त रखते हैं, कि इसका पूर्ण उपभोग अपने किसी प्रेमी के साथ करेंगे। यही कारण है कि हम अपनी विजय या उत्कर्ष की प्रसन्नता को जब तक किसी साथी पर व्यक्त न कर दें, तब तक पूरी सन्तुष्टि नहीं होती।

प्रेम सारे जीवन में व्याप्त है। यह हरेक आयु और परिस्थिति के अनुकूल बन जाता है, शैशव में माता और पिता के लिये, यौवन में पत्नी के प्रति, प्रौढ़ावस्था में बच्चों के लिये और सारी उमर भर भाई बहिनों व मित्रों के प्रति, प्रेम किसी न किसी रूप में बना ही रहता है।

"प्रातः काल की मन्द पवन के एक २ झोंके में प्रेम प्रवाहित हो रहा है" मैकडानल्ड

मित्रता की शक्ति से हरेक ही परिचित है। कुछ अवस्थाओं में, उदाहरणार्थ (डेविड और जौन्थन) की मित्रता को तो स्त्री के प्रेम से भी उत्कृष्ट कहा गया है। मैं यहां इस के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहता; क्योंकि मित्रता के सम्बन्ध में मैं ने बहुत कुछ लिखा है।

विश्व नियन्ता और मनुष्य के सम्बन्ध को दिखाते हुए, परमेश्वर की माता पिता और मनुष्यों की बच्चों से तुलना की गई है।

"जिस प्रकार माता अपने स्थान पर बैठी हुई, अपने छोटे २ बच्चों का तरफ पवित्र मधुर चेहरे से देखती है। और एक का सिर चूमती है, दूसरे को गले लगाती है, किसी का अपने घुटने पर बैठाती है और किसी को अपनी गोद में स्थान देती है। और साथ २ अपनी चेष्टा, आकृति, शिकायत से उनके नाना मनोभावों और इच्छाओं को जानने का प्रयत्न करता है; और फिर चाहे वह मुस्करा रही हो और चाहे झिड़क रही हो, किसी को देख कर किसी से कुछ कह कर—सब से प्रेम करती है। उसी प्रकार अनन्त और महान् विश्व नियन्ता, हमारी आवश्यकताओं को देखता है, हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है, और हमारी सहायता करता है। और अगर वह हमारी किसी कामना को, जिसे हम उचित समझते हैं, पूरा नहीं करता मालूम होता, तो भी वह उस इन्कार में ही हमारी आवश्यकता को पूरा कर देता है" Filcaja

सर वाल्टर स्काट ने कहा था "अगर कामना रहित शुद्ध और पवित्र मानवीय आंसू है, तो ये वे हैं, जिन्हें किसी पवित्र पिता ने अपनी कर्त्तव्यपरायणा पुत्री पर बहाया है"

एपामिनौन्डास ने ल्यूक्ट्रा से पराजित होने पर भी प्रसन्न होने के लिये यह युक्ति दी थी कि इस विजय से मेरे माता पिता बहुत प्रसन्न होंगे।

प्राणियों के प्रेम की बिलकुल उपेक्षा न कर देनी चाहिये। किसी जंगली के साथ सहानुभुति न रखना असम्भव है, जब कि वह उनकी अमरता में विश्वास रखता है, और समझता है कि मृत्यु के बाद "स्वर्ग में पहुँचने पर उसका कृतज्ञ कुत्ता उसके साथ रहेगा।" पोप

भारतीय महाकाव्य महाभारत की कथा है। जब वीर पाण्डव, अन्त में स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे तब उनका स्वागत किया गया, लेकिन उन से कहा गया कि वे अपने साथ कुत्ते को नहीं ला सकेंगे। बहुत समय तक उन्होंने युक्तियां दीं, लेकिन जब उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, तो वहां से विदा होने को तैयार हुए और उन्होंने कहा कि वे अपने कृतज्ञ साथी को छोड़ने में असमर्थ हैं। तब अन्त में द्वार के रक्षक देवता ने पछतावा किया और कुत्ते को भी उनके साथ अन्दर जाने की स्वीकृति दे दी।

मुझे विश्वास है कि समय आयेगा, जब हम वर्डस्वर्थ के शब्दों में तुच्छ से तुच्छ प्राणी के दुःख में अपने आनन्द व अभिमान को अनुभव करना छोड़ देंगे।

इस समय मैं उस प्रेम के सम्बन्ध में कह रहा हूँ, जिसका परिणाम विवाह है। इस प्रकार का प्रेम जीवन का संगीत है, नहीं नहीं "इस सौन्दर्य में संगीत है, और हैं प्रेम के शब्द लेकिन सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्र के शब्दों से भी मधुर निःशब्द स्वर" Browne

प्लेटो के संवाद में प्रेम के सम्बन्ध में बहुत ही मार्के की और मनोरञ्जक स्थापनाएं दी गई हैं।

Phaedrus से कहलवाया गया है कि "प्रेम और केवलप्रेम में ही यह शक्ति है कि वह पुरुष और स्त्री दोनों को अपने प्रेमी के लिये प्राण न्योछावर करने का साहस प्रदान करता है। पिलीयास की लड़की Alcestis इस सम्बन्ध में ग्रीक निवासियों के लिये स्मारक बनी हुई है। क्योंकि वह अपने पति के बदले अपने प्राण देने के लिये तैयार थी, जब और कोई, यहां तक कि उसके मां बाप भी ऐसा करने को उद्यत नहीं होते। उसका अपने पति के प्रति सच्चा प्रेम था, जो माता पिता के प्रेम की अपेक्षा कहीं अधिक था। यही कारण था कि उसको अपने माता पिता अजनबी मालूम होने लगे थे, यद्यपि उनके संबन्ध से इन्कार नहीं किया जा सकता। उसका यह पवित्र कार्य देवताओं और मनुष्यों को इतना पसन्द आया, कि उसको भी उन गिनता के धर्मात्माओं में शामिल कर लिया गया, जिनको अपने धर्माचरण के कारण पृथ्वी पर अवतरित होने का सौभाग्य दिया गया है। प्रेम-धर्म और प्रेम-भक्ति को इतना महान् आदर दिया गया है।"

Agathon कुछ और आगे बढ़ गया है—

प्रेम मनुष्यों में सहृदयता उत्पन्न करता है, उनके

वैमनस्य को दूर कर के उनको दावतों में सम्मिलित करता है। उपहारों में सहभोगों में और नृत्योत्सवों में

वह हमारा नायक है। यह दया और मित्रता को निर्दयता और द्वेष को दूर करता है। प्रेम की महान् शक्तियों को देख कर भले आदमी खुश होते हैं, बुद्धिमान आश्चर्य करते हैं, और देवता चकित रह जाते हैं। जिनको यह प्राप्त नहीं है, वे सदा इसकी चाहना करते हैं। जिनको यह प्राप्त है, वे इसे बहुमूल्य समझते हैं। कोमलता, बहुलता, व कामना, विलासिता, और भव्यता का यह उत्पादक है। यह सदा भलाई चाहता है बुराई

से इसे कोई सरोकार नहीं। प्रेम प्रत्येक शब्द में पथ प्रदर्शक, कार्य में साथी, इच्छा में सहायक और भय में रक्षक बन कर रहता है। देवताओं और मनुष्यों की कीर्ति है। प्रेम सर्वोत्तम और सुन्दर नेता है। हरेक को इस के कदमों पर चलते हुए, इस के स्वागत में वह मधुर गान करना चाहिये, जिसके द्वारा इस ने देवताओं और मनुष्यों की आत्मा को मोह रक्खा है।

इन में से किसी एक रूप की हंसी बेशक उड़ायी जा सकती है। पर यह तभी तक है जबतक कि अग्नीषोमीय साधन द्वारा हम पक्के नहीं हैं, जबतक को अग्नीषोमीय वज्र हमको प्राप्त नहीं हो गया है, जब तक अग्नीषोमीय वज्र को चलाने की कला हमको हस्तगत नहीं हो गई है। ऐसा हो जाने पर तो हम भारतीय अन्तरात्मा की प्रेरणा से भिन्न २ रूप से इसका स्वाभाविकतया अनायास प्रयोग करेंगे।

सच्ची शिक्षा

तो असल में तोप बन्दूकों का हमारे स्वराज्य पाने और स्वराज्य की रक्षा से कोई अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है ये हथियार भी वैसे तो अग्नि के ही रूप हैं पर ये विकृत अग्नि के रूप हैं। जो अग्नि हमारे स्वत्व को भी भस्म करने लगती है उस अग्नि के रूप हैं। यह विकार इतना ज्यादा बढ़ गया है कि इसके कारण आज सारा संसार ही सन्निपात रोग से ग्रस्त हो उन्मत्त और विक्षुब्ध हुआ हुआ है असल में स्वराज्य पाने के लिये जिस चीज़ की ज़रूरत है वह तो स्वराज्य के सत्य को ग्रहण कर सकने वाले मन और प्राण की है। इन्हें हम ठीक करेंगे तो यदि किसी बाह्य हथियार की आवश्यकता होगी तो उसे पाने और चलाने की शक्ति भी हम में स्वतः आ जावेगी। गांधी जी तो कहते हैं कि सत्याग्रह या भद्र अवज्ञा का बल प्रयोग करने का भी हमें ज़रूरत नहीं है यदि हम रचनात्मक कार्य को ठीक तरह से करलें रचनात्मक कार्य करना सहज परिपाक करना है। हमें जेल जाने की इस लिये आवश्यकता होती है जिससे कि हमारे दूसरे देश बन्धुओं के मन, प्राण सत्य के लिये जागृत हो सकें और हमें गुलाम रखने वाले विदेशी भाइयों पर भी ठीक प्रकार का प्रभाव पड़ सके। विदेशियों पर असर की बात भी पीछे की है उन पर तो हमारे परिपक्व होने का भी असर पड़ेगा, बल्कि वही सिद्धि दायक असर होगा। अपने को ही पूर्ण रूप से तैयार करना मुख्य बात है। इसके लिये हमें ठीक प्रकार से शिक्षित होना है।

हमारे प्राचीन ऋषियों के कथनानुसार असली शिक्षा अपने आप को जानने में है। "आत्मानं विद्धि" ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता है। सूचनायें इकट्ठी करने से, खबरें सुनने से किताबें पढ़ने से ज्ञान नहीं पैदा होता। ये चीजें यदि ठीक प्रकार बर्ती जाय तो ज्ञान के उत्पन्न करने में केवल सहायक हो सकती हैं। असल में तो शिक्षा का उद्देश्य मन को सत्य ज्ञान पा लेने के योग्य बनाना और उत्तम भावों को विकसित करने योग्य बनाना ही है पर आज जो ज्ञान हम पर लादा जा रहा है. जिस तरह हमारे भाव उत्तेजित किये जा रहे हैं उससे दिनों दिन हमारे और भावावेशों की शक्ति क्षीण ही हो रही है। इनका वीर्य नष्ट हो रहा है। हमारे मनों में स्वयं रचना करने की शक्ति नहीं रही है। हमारे सामने जो विचार ज़ोर से रख दिया जाता है हमें वही ठीक लगता है। हम तर्क वितर्क करते हैं, बाल की खाल उतारते हैं, देश-विदेश की नाना विध चर्चाएं करते हैं पर उनसे कुछ निकलता नहीं, कोई वस्तु बनती नहीं। क्योंकि हम आत्म चिन्तन नहीं करते और सब कुछ करते हैं। भावों में देश भक्ति का भाव बहुत ऊंचा भाव है पर उस भाव से प्रेरित होकर हम क्या करते हैं? एक मामूली गांव का आदमी इस भाव से प्रेरित होता है तब वह कुछ न कुछ कर गुजरता है। पर हम न कुछ करते हैं न करने देते हैं। वस्तुतः गांधी जी का देशोत्थान कराने वाला सीधा सच्चा स्वाभाविक मार्ग जिस के ही कारण आम जनता में गत बीस वर्षों में अद्भुत जागृति हुई है अब तक बहुत अधिक अद्भुत प्रगति कर चुका होता यदि हम मध्यम श्रेणी के लोग अपने नपुंसक मन और निर्वीर्य भावों के साथ बाधक न होते। एक सच्चा आदमी यदि हिंसा करता है तो वह अपनी सचाई के कारण शीघ्र अहिंसा को भी समझ जायगा। पर हम न तो हिंसा करते हैं न अहिंसा, केवल बातें करते हैं। आचार्य कृपलानी जी ने पिछली लड़ाई के विषय में कहा था कि लायडजार्ज जैसे धूर्त, कपटी चालाक नेता को पाकर इंगलैण्ड ने जर्मनी पर विजय पाली, परन्तु हम गांधी जी जैसे दिव्य नेता और दिव्य हथियार को पाकर भी अभी तक विजय नहीं प्राप्त कर सके इस का कारण यह है कि हम में अनुशासन नहीं है, हम सेना पति की आज्ञा पालन करना नहीं जानते। उन्होंने बहुत ठीक कहा है। पर मैं इसके आगे और यह कहना चाहता हूं कि हम अभी इस नेता के योग्य ही नहीं बने हैं क्योंकि हम ठीक तरह से शिक्षित नहीं हुए हैं। आत्मिक शक्ति का हथियार उठाने के लिये जिस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है वह शिक्षा हमें नहीं मिली है। इसी लिये मैं शिक्षा की दृष्टि से तुम गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को कहता हूं कि तुम अपने आप को जानो अपने मन और भावों को अन्तर्निरीक्षण द्वारा जानो। यही सच्ची शिक्षा है।

भावों की निर्वीर्यता

विचारों की अपेक्षा भाव अधिक ऊपरी वस्तु हैं।

इस लिये पहले मैं भावों को लेता हूँ। भावों को निर्वीर्यता का मुझे एक अच्छा उदाहरण याद आता है। कभी पढ़ा था कि रूस में एक आदमी नाटक या सिनेमा देख रहा था वहां दृश्य बहुत करुणाजनक था उसे देखते हुए करुणा के मारे उसकी आंखों से अश्रु की धारा निकल रही थी। परन्तु उसी समय उस रात में-रूस के जाड़े की रात में उस का मोटर गाड़ी का चालक (driver) ठण्ड के मारे ठिठुर कर मर रहा था वस्तुतः मर भी गया तुम जानते हो कि रूस तो मजदूरों का पक्ष पात करने वाला देश है। परन्तु उस रूसी धनी आदमी के अन्दर भावा वेश के कारण आंसू तो निकल सकते थे पर वही भावावेश सच्ची किया में परिणत नहीं हो सकता था। यही है नाटक-सिनेमा, खेल-तमाशे आदि आज तक के प्रचलित मनोरञ्जनों का सबसे बड़ा पाप। तुम जो उथले विचारों का साहित्य कविताएं, संगीत देखते हो वह इस के सिवाय और कुछ नहीं कर रहा कि भावोत्तेजन द्वारा हमारी भाव शक्ति को नष्ट कर रहा है। हमारा प्राण तरल जल की तरह है। उस में बड़ी आसानी से भीष उछाल के रूप में प्रगट होते हैं अपनी सत्ता के इस सुक्षोभ्य भाग के साथ हमें कैसे बरतना चाहिए' भावों का विवेक, सद्भावों की रक्षा और दुर्भावों का विनाश कैसे हो, भाव शक्ति कैसे विशाल और बलवान् हो यही एक बहुत बड़ी शिक्षा की बात है। पुराने गुरु लोग प्राण विद्या और भाव शुद्धि द्वारा इसे ही कराने का यत्न किया करते थे। अन्य सब बातें इसी अन्त विकास के लिये होती थीं। तुम भी इधर ध्यान दो। [असमाप्त] क्रमशः

गुरुकुल समाचार

धर्मवीर १४ श्रेणी आम्र ज्वर कृष्णचन्द्र ५ श्रेणी खसरा, लाजपत राय ४ श्रेणी खसरा, ज्ञानदेव २ श्रेणी खसरा, श्याम शिवराव १ श्रेणी खसरा, अरुण ४ श्रेणी व्रण, बलराज ४ श्रेणी व्रण, मदन ३ श्रेणी अतिसार, रामकृष्ण ३ श्रेणी ज्वर कास।

गत सप्ताह ऊपर लिखे ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० रामकृष्ण को अभी ज्वर और खांसी है। आशा है कि शीघ्र आराम आ जावेगा।

शनिवार ६ वैशाख को गोष्ठी महासभा का इस सत्र का प्रथम अधिवेशन ब्र० सतीश जी के सभा पतित्व में प्रारम्भ हुआ। ब्र० आनन्द, ब्र० सत्यदेव तथा ब्र० विश्वमूर्ति की रचनाएं बहुत पसन्द की गईं। इस सभा द्वारा ब्रह्मचारी कविता, गल्प, प्रहसन इत्यादि लिख कर उत्तम साहित्य का निर्माण करते हैं।

इसी प्रकार वाग्वर्धिनी, संस्कृतोत्साहिनी तथा College union इत्यादि सभाओं के अधिवेशन भी बड़ी सफलता पूर्वक हो रहे हैं। ये सभाएं ब्रह्मचारियों की वक्तृत्व शक्ति के विकास के लिये हैं।

श्री पं० केशव देव जी शास्त्री ने जो अभी हाल ही में बर्मा से लौटे हैं अपनी बर्मा यात्रा के अनुभव सुनाए। आपने बड़े मनोरंजक ढंग से बर्मा की धार्मिक सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन किया। पाश्चात्यदर्शन के उपाध्याय श्री नन्दलाल जी खन्ना जो १ मास के लिये अवकाश पर थे आ गये हैं। अब तक आपके स्थान पर श्री सरयू प्रसाद जी बड़ी उत्तमता से अध्यापन का कार्य करते रहे।

समालोचना

Food-De-Medicine

(आहार ही औषधी है)

श्री डा० लक्ष्मी नारायण रत्रा कृत। The pure-Bio-Dispensary डेरा गाजी खान से १) में मिलती है। पृष्ठ संख्या ८४

इस पुस्तक में मनुष्यों के इस अज्ञान और अनाचार को दूर किया गया है कि संसार में जिह्वा का मिथ्या कल्पित स्वाद ही सब कुछ है और खाना पीना और मौज मनाना ही जीवन का उद्देश्य है। आज कल मनुष्य जिह्वा की तृप्ति के लिये भर पेट, बिना भूक खा कर रोग मोल लेते हैं। और रोगी बन कर औषधियों के पीछे भागते हैं। वे समझते हैं कि किसी न किसी औषधी से ही उनका रोग दूर हो सकता है, इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि यदि मनुष्य का भोजन प्राकृतिक हो तो उसको रोग नहीं हो सकता यदि रोग हो भी जाय तो वह प्राकृतिक आहार से ही दूर किया जा सकता है। पुस्तक में सब प्राकृतिक आहारों की तालिका देकर उनके गुण दिखलाए गये हैं।

प्राकृतिक भोजन के अतिरिक्त इस पुस्तक में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रायः सब उपचारों का भी वर्णन है। सब प्रकार के बाह्य स्नान और आभ्यन्तर स्नान (बस्ति कर्म) की पूरी विधि दी गई है। इस ग्रन्थ को ग्रन्थकर्त्ता ने पश्चिमीय सभ्य देशों की यात्रा कर के अपने जीवन भर के अनुभवों के आधार पर लिखा है। इस एक पुस्तक से ही पाठक प्राकृतिक स्वास्थ्य-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। किन्तु यह पुस्तक अंग्रेजी में है इसलिये सब साधारण इस से लाभ नहीं उठा सकेंगे, यह खेद की बात है कि प्राकृतिक-स्वास्थ शास्त्र के प्रायः सब ग्रन्थ अंग्रेजी में ही हैं और सर्वसाधारण जनता उन से लाभ उठाने से वञ्चित रहती है। क्या ही अच्छा हो यदि इस बहुमूल्य ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाय जिससे साधारण जनता पूरा २ लाभ उठा सके।

यह ग्रन्थ काँगड़ी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय की द्वितीय श्रेणी के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

भवानी प्रसाद
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र उपाध्याय
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ऋतु अच्छी है। सब का परिणाम निकल चुका है। पढ़ाई शुरु होगई है। साहित्यसंजीविनी सभा का वार्षिक अधिवेशन ग्रीष्मावकाश से पूर्व बड़े समारोह से मनाया जायगा। इस में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया है। ग्रीष्मावकाश में ब्रह्मचारी धर्मशाला (कांगड़ा) पर्वत पर ठहरेंगे।

चौधरी हलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २२ वैशाख १९९७, ३ मई १९४० [संख्या ३

नपुंसक ज्ञान और निर्वीर्य भावावेश

गतांक से आगे

[लेखक—श्री आचार्य अभयदेव]

भावों और विचारों का दुरुपयोग

भावों का असली उपयोग मन बुद्धि द्वारा कल्पित, रचित वस्तुओं में जीवन डालना है। पर हम भावों से यह काम न लेकर उन से खेलते हैं, मजा लेते हैं और इस प्रकार भावशक्ति को नष्ट करते हैं। लकड़ी चीरने के लिए बनाई गई आरी से यदि हम खेलने लगे तो उसके दन्दाने टूट जायेंगे और वह चीरने के काम की न रहेगी। उपन्यास नाटकों के उत्तेजक साहित्य द्वारा तथा आजकल के खेल तमाशों द्वारा हमारे प्राणयन्त्र का ऐसा ही दुरुपयोग हो रहा है। उनसे खेलने का काम लिया जा रहा है। कृत्रिम तौर से उन्हें उत्तेजित करके हमारे भावों की शक्ति नष्ट की जारही है। यह ऐसा ही है जैसे कि लोग अपने शारीरिक वीर्य, जो कि वस्तुतः सन्तान उत्पन्न करने के लिए, नया जीवन पैदा करने के लिए बनाया गया है उसे मजा लेने में और आत्मनाश करने में अपव्यय करते हैं। हमारे भाव इसी कारण निर्वीर्य हो रहे हैं।

इसी प्रकार हम बुद्धि से भी खेलते हैं। बौद्धिक विलासिता करते हैं। मजे के लिए या खेल या व्यसन के तौर पर तर्क-वितर्क करते और पढ़ते पढ़ाते हैं। इसी लिए हमारी मन-बुद्धि की रचना-शक्ति नष्ट होगई है।

भावों और विचारों की साधना

यदि हम अपने अन्तः करण रूपी यन्त्र को फिर से ठीक और सशक्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर प्रविष्ट होकर अपने अन्तःकरण को जानना और समझना चाहिए। हमारे मन में क्या है यह बात हम स्वयं नहीं जानते होते। हम किस भाव से प्रेरित होकर अमुक कार्य कर रहे हैं इसका हमें पता नहीं होता। नीचे की तह में कोई भाव काम कर रहा होता है और उसके ऊपर बिल्कुल विपरीत हमारा मन जागृत-अवस्था की वृत्ति को और उसके भी बिल्कुल उपरी भाग को जान रहा होता है। हमारी जो अवचेतना (Sub conscious) है और जो अतिचेतना (Super conscious) है उसे हम बिल्कुल नहीं जानते। आजकल के पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों ने अवचेतना के विषय में तो बहुत कुछ जानने का यत्न किया है पर अतिचेतना तो प्राचीन आस्तिक योग मार्ग द्वारा ही अनुभव गम्य हो सकती है। आजकल मनोविश्लेषण (Psycho analysis) की बहुत चर्चा है। यह बहुत अच्छी चीज है। यह आत्म-निरीक्षण ही है। पर यह अवचेतना और 'काम वासना' नामक एक विकृत भाव को ही मुख्य मानकर चलती है। इसलिए यह अधूरी और भ्रमात्मक है। जैसा कि अभी कहूंगा काम-वृत्ति तो मनुष्य की कोई मुख्य वृत्ति नहीं है। यह तो प्रीति के भाव का एक संकुचित और निम्न कोटि का विकार है। पर इतना ठीक है कि हमें अपने अन्दर प्रविष्ट होना चाहिए और अपने आन्तरिक रूप को अच्छी तरह और पूरी २ तरह सचाई के साथ जानना चाहिए। अपने भावों और विचारों को अच्छी तरह विश्लेषण करके देखना चाहिए।

वैसे तो भाव सैकड़ों प्रकार के हैं। पर हमारे शास्त्रों में सनातन भाव और असनातन भावों के रूप में इनका भेद किया गया है। प्रेम, दया, धैर्य, वीरता, शान्ति, पवित्रता आदि २ की सनातन भावों में गिनती है। और इनके विरोधी भाव असनातन हैं। या इन्हें भाव और भावविकार नाम से भी कहा गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये प्रसिद्ध भाव-विकार हैं। ये षड् रिपु भी कहलाते हैं। इन्हें हटाकर इनके स्थान पर इनके शुद्ध रूप दिव्यभावों को अपने अन्दर लाना 'भाव-साधना' कहलाती है। पातञ्जल दर्शन में सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य में क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के भावों को स्थिर करने द्वारा जो चित्त-प्रसादन की विधि बताई गई है वह बड़ी उत्तम है। बौद्धकाल में इस साधना को बहुत महत्व दिया गया है और इसका बहुत विस्तार किया गया है। पर मैं भावों के जिस वर्गी-करण की तरफ तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूं उसके अनुसार

एक तो परस्पर मिलने, एकता स्थापित करने वाले, मेल का सनातन भाव है जिसे हम एक शब्द में "प्रीति" इस नाम से पुकार सकते हैं। दूसरा एक दूसरे से जुदा करने भेद पैदा करने वाले, हटाव का भाव है। यह 'अप्रीति' या द्वेष (द्विष्=अप्रीतौ) का भाव कहलाता है। बाकी सब भाव इन्हीं दो केन्द्रीय भावों के खेल हैं। सब सनातन भावों का केन्द्र 'प्रीति' का भाव है और सब असनातन भावों का का केन्द्र 'अप्रीति' का भाव है। ये ही दो भाव हमारी आन्तरिक या बाह्य स्थिति के कारण विभिन्न सम्बन्धों के अनुसार भिन्न २ रूप धारण करते हैं। जैसे कि जब हम अपने से बड़े के साथ प्रीति करते हैं तो वह प्रीति 'भक्ति' का रूप धारण कर लेती है। अपने बराबर वाले के साथ 'मैत्री' हो जाती है और अपने से छोटे के साथ की गई प्रीति करुणा-रूप हो जाती है। इसी तरह अपने से बड़े के साथ की गई 'अप्रीति' भय या ईर्ष्या के भाव में प्रकट होती है, अपने बराबर वाले के साथ हिंसा या बदला लेने के भाव में और अपने से छोटे के साथ की गई अप्रीति 'घृणा' के भाव में। अपने से दूसरों के साथ जो संबन्ध पड़ता है उसे मोटे तौर पर इस तरह 'बड़े', 'बराबर' और छोटे इन तीन रूपों में कह दिया है। बाकी सूक्ष्म सम्बन्ध और बहुत से हो सकते हैं। मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि तुम्हें बड़ों में भक्ति, साथियों में मैत्री और छोटों में करुणा या दया के भाव की साधना करनी चाहिए और ऐसा करते जाने से तुम्हारे सभी भाव धीरे धीरे शुद्ध, व्यवस्थित और बलवान् होते जायेंगे। पहिले समय में जो भाव शुद्धि और चित्त प्रसादन पर जोर दिया जाता था उसे हमें फिर से अपनाना चाहिए।

इसी प्रकार विचार-साधना के लिए भी हमें विवेक का अभ्यास करना होगा। इस संबन्ध में हमें पातञ्जल दर्शन का वह सूत्र स्मरण करना चाहिये जिसमें नित्य अनित्य, शुचि-अशुचि, वास्तविक सुख और वास्तविक दुःख, आत्मा और अनात्म का विवेक करने की बात कही गई है। इसी विवेक द्वारा विद्या या सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार विद्या इसी चीज का नाम था और अविद्या से हटकर विद्या को पाना, अन्धकार से हटकर प्रकाश को पाना मृत्यु से हटकर अमृत को पाना इनका प्रयत्न विचार-साधना द्वारा किया जाता था।

इसके उपाय

तो फिर तुम यह जानना चाहोगे कि इस भाव साधना और विचार साधना के उपाय क्या हैं? मैंने जहां तक विचारा है मुझे इसके तीन जबर्दस्त उपाय समझ में आये हैं। उन्हीं की विशेष तौर से मैं चर्चा करना चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि तुम इन्हें पूरे ध्यान से सुनोगे। ये तीन उपाय हैं—सचाई, विचार और भाव के अनुसार अवश्य आचरण करना और शान्ति। इनमें से एक एक को लेता हूं।

सचाई (क)

यदि हम अपने बिगड़े हुए और बेकार हुए हुए अन्तःकरण यन्त्र को फिर से ठीक करना चाहें तो उसके लिए सबसे अधिक और प्रथम आवश्यक वस्तु है 'सचाई', सत्यता, (Sincerity) सत्यहृदयता, सत्य आन्तरिक भाव। हम अपने प्रति पूरे २ सच्चे हों। अन्तः से अन्त तल में पूरी तरह सच्चे और खरे हों— यह न हो कि अन्दर की तह में कुछ और छिपा हो और ऊपर कुछ और हो। किसी चीज को छिपाये रखना, अपने ही आप से छिपाये रखना छोड़ दें। हमारे अन्दर विभेद न हो। एक भाग कुछ कहता हो— दूसरा भाग कुछ कहता हो यह न हो। 'अन्दर की इच्छा कुछ हो पर उसे ढकने के लिए बिल्कुल दूसरी प्रकार की इच्छा प्रकट की जाय यह न हो। जब हम अपने अन्दर प्रवेश करते हैं तो बहुत सी विरोधी इच्छाओं, विरोधी भावों को परस्पर संघर्ष करते हुए, किसी को दबाते किसी को उभारते हुए हम अपने अन्दर पाते हैं। यह हमारी आन्तरिक विभक्त, परस्पर विरोधी अवस्था ही है जिसके कारण हमारे विचार और भाव शक्ति-रूप नहीं हो पाते। हमें सचाई के आग्रह द्वारा अपने अन्दर एकता और अविरोधिता उत्पन्न करनी चाहिए। जगत् में जिन भी लोगों ने बड़ा भारी काम किया है वे सब कम से कम अपने प्रति सच्चे थे। पं० जवाहर लाल जी का सबसे बड़ा गुण 'सत्य हृदयता' है सच्ची देश की लगन है। सचाई ही आत्मविश्वास का रूप धारण करती है। इस लिए सब महापुरुष आत्मविश्वासी होते हैं। श्रद्धा सत्य की धारणा का ही नाम है (श्रत् (सत्य) धा)। और सत्य स्वयं क्रिया शील है। सत्य स्वयमेव अभिव्यक्त होने की शक्ति रखता है। सत्य को क्रिया में परिणत करने के लिए या अभिव्यक्त करने के लिए किन्हीं अन्य बाह्य साधनों की अपेक्षा है यह समझना अज्ञान है। सत्य को छिपाने या जो असल में नहीं है उसे दिखाने के लिए तो बाहर के कृत्रिम साधनों की आवश्यकता होती है, पर सत्य तो स्वयं-प्रकाश है। सूर्य की तरह स्वयं प्रकाश वस्तु है। जो सचमुच स्वयं सत्य है वह तो होकर ही रहेगा— उसको कोई रोक नहीं सकता। सत्य के इस गुण का वर्णन करता हुआ मैं दूसरे उपाय पर आपहुंचता हूं।

अमल करना (ख)

वैसे तो जो सत्य है वह हमें अमल करने के लिए बाधित ही करेगा परन्तु क्योंकि हमारे अन्दर पूरी सच्चाई नहीं है इसलिए हमें इस बात का भी अभ्यास करने की आवश्यकता है कि हमें जो कुछ भी जितना भी सत्य मालूम हुआ हो हम उस पर अमल करें— उसे अवश्य आचरण में लावें—उसे क्रिया-रूप में परिणत करें। हम लोग यह जानते हुए भी कि सचाई के अनुसार हमें यह करना चाहिए फिर भी हम ऐसा नहीं करते। अच्छे और ऊंचे भाव हमारे अन्दर आते हैं पर वे क्रिया में अपरिणत हुए ही रह जाते हैं। यह हमारी बहुत बुरी हालत है। इसी कारण हम लोग 'उपदेश-प्रूफ' बन

जाते हैं। चाहे कितने ही उपदेश सुनते रहें उनका हम पर कुछ असर नहीं होता। हमको यह आदत हो जाती है कि हम अच्छे सत्य उपदेश सुनें— सत्य ज्ञान की पुस्तकें पढ़ें, सत्य-सनातन भावों को जागृत करने वाले वचनों का आस्वादन करें पर उनपर अमल कभी न करें। आदत एक बहुत जबर्दस्त शक्ति है? इसलिए जब हमें ऐसी विनाशकारी-आदत पड़ गई तो समझना चाहिए कि हमारा पतन पूरा हो चुका और हमारा उठना असम्भव है। जब तक कि बड़े भारी यत्न से हम उस आदत को न बदल डालें तब तक असम्भव है। इसीलिए मैं कहता हूं कि हमें सत्य पर तुरन्त अमल करने की आदत डालनी चाहिए। जिन पुरुषों को इस तरह सत्य को ग्रहण करने की आदत रही है उन्होंने एक क्षण में, एक दिन में या एक रात में अपने जीवन को बदल डाला था। इसके उदाहरण तुम बहुत से जानते हो। पर हम रोज़ ईश्वर-भक्ति के मन्त्र पढ़ते हुए भी परमेश्वर से दूर के दूर ही रहते हैं और स्वराज्य की ज्ञानचर्चा करते हुए तथा देशभक्ति के भावों की तरंगों में नहाते हुए भी देश के लिए कुछ नहीं करते हैं। इसका कारण यही है कि हम पूरी तरह सच्चे नहीं होते और अपने ज्ञान और भाव के अनुसार आचरण करने के लिए उद्यत नहीं होते। भावी 'बुद्ध' जन्म-काल से लगातार राजसी ठाठ में घिरे रक्खे गये परन्तु पहिला बार ही जब उनको एक रोगी एक बुड्ढा और एक मृतक दृष्टिगोचर हुआ तो तत्क्षण उनके अन्दर वैराग्य का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होंने 'बुद्ध' बनने के लिये तुरन्त राजलक्ष्मी का त्याग कर दिया और घर से निकल पड़े। वैराग्य का भाव पैदा करने के लिए उन्हें किन्हीं वैराग्य शतक या धार्मिक-ग्रन्थों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं हुई और राज्य छोड़ने के लिए किसी सन्यासी के उपदेश की आवश्यकता नहीं हुई और राज्य छोड़ने के लिए किसी सन्यासी के उपदेश की आवश्यकता नहीं हुई क्योंकि वे अन्तस्तल से सच्चे थे और सचाई से अपनी स्वयं-क्रियाशीलता दिखायी।

शान्ति (ग)

असल में सत्य और क्रियाशीलता को एक ही बात माना जा सकता है। तो अन्दर की अव्यवस्था को ठीक करने के लिए सत्य के साथ जिस दूसरी वस्तु की आवश्यकता है वह है 'शान्ति'। शान्ति के बिना सत्य का पता लगना ही कठिन होता है, उस पर अमल करना तो दूर की बात है। 'शान्ति' सत्य के प्रकाश के लिए आधार भूमि होती है। यह भी असल में सत्य से अभिन्न ही है। पर हमें अपने प्रयोजन के लिये सत्य के इस शान्ति रूप को पृथक अच्छी तरह समझना चाहिये, क्योंकि इसके बिना सत्य की क्रिया— रूप में परिणिति असम्भव है इसी लिये हमारी शिक्षा में सत्य को पाने के लिये मन की शान्ति को बहुत महत्व दिया गया है। योग की बहुत कुछ साधना मन को शान्त, अचंचल करने और चित्त-वृत्तियों को शान्त रखने के लिए है। वेदों के शान्ति-प्रकरण से हम सब परिचित हैं। यह सब शान्ति साधना सत्य विद्या के पाने के लिए आवश्यक समझी जाती थी। जैसे कि कोलाहल-पूर्ण स्थान में काम की बात सुन सकना भी कठिन होता है उसी तरह सचाई की आवाज़ को सुनने के लिए मन की अविचल शान्ति आवश्यक है। जैसे जहां ऊटपटांग अवांछित रचनाएं हुई हुई हैं वहां उनको बिना तोड़े नई और सत्य रचना करना असम्भव है वैसे ही सत्य का ठीक आकार ग्रहण करने के लिए मनः पट का बिलकुल रचना रहित और शान्त होना आवश्यक है। और जैसे हम उछलते हुए और मैले पानी के अन्दर यह नहीं देख सकते कि इसके नीचे के तल में क्या २ पड़ा हुआ है वैसे ही गहरे से गहरे छिपे भावों को स्पष्टतया जान सकने के लिए भावों की शान्ति और शुद्धि की आवश्यकता हैं। भावों का ठीक प्रकार से उपयोग किया जा सके इसके लिए तो प्राणमय शान्ति की विशेषतः भारी आवश्यकता है। भावों में विशालता व्यापकता और अतएव महान् शक्तिमत्ता तभी आसकती जब कि उनमें महान् शान्ति हो। उत्तेजनाओं और आवेशों में कोई शक्ति नहीं होती वहां तो क्षणिक जोश या उबाल होता है जो कुछ देर भी नहीं ठहरता। आवेशों के वश हम रोने हसने या किसी प्रकार का भाव प्रकाशन करने लगते हैं पर उससे बनता कुछ नहीं। इसके विपरीत शान्ति का व्यापक आधार रखने वाले पुरुषों में जो भाव उत्पन्न होते हैं वे बड़े चिरस्थायी और बहुत भारी प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। गांधी जी के अन्दर उड़ीसा में भूखे-नंगे, अस्थि चर्म विशेष मानव देहों को देख कर जो करुणा का भाव उत्पन्न हुआ था वही भाव आज चर्खे के आन्दोलन के रूप में अपने आपको सार्थक कर रहा है। उस करुणा-भावसे उठी गांधी जी की चर्खे के प्रति श्रद्धा कितनी अटल है। उनकी यह श्रद्धा इतने विपरीत ज़माने में लगातार बढ़ती और अपना रास्ता बनाती चली गई है। इस लिये बहुत से अविश्वासी धीमे धीमे चर्खे के सत्य के कायल होते गये हैं। कल श्री स्नातक रामेश्वर जी कहते थे कि मैंने ७-८ साल के इन्कार के बाद अब जो चर्खे को स्वीकार कर लिया वह ऐसा दृढ है कि "अब गांधीवाद चाहे नष्ट हो जाय तो भी चर्खा मुझ से नहीं छूट सकता"। गांधी जी का वह करुणा भाव और उसको अभिव्यक्ति रूप चर्खा आन्दोलन इतना प्रबल इसी लिए है क्योंकि उनमें यह भाव शान्ति के विशाल आधार में उत्पन्न हुआ है और अतएव सत्य की क्रिया में परिणत होने की शक्ति से युक्त है। जिनमें शान्ति नहीं होती उनकी भावशक्ति इतनी कमज़ोर होती है कि वह ज़रासी उत्तेजनाओं से उत्तेजित हो जाती है और उतनी ही जल्दी ठण्डी पड़ जाती है। जिन्हें आन्तरिक शान्ति मिली होती है वे बाहरी उत्तेजनाओं से आसानी से उत्तेजित नहीं होते-वे किसी सचाई को या सच्चे भाव को बिलकुल अपनाने में चाहे देर लगाते हैं पर जब अपना लेते हैं तो वह उनका अंग बन जाता है और बहुत प्रभाव शाली होता है। कमज़ोर लोहा बहुत जल्दी चुम्बकित हो जाता है और

(देखिए पृष्ठ ६ पर)

गु रु कु ल

२२ वैशाख शुक्रवार १९९७

प्रवेश संस्कार

आर्य समाज की स्थापना का एक गौरव पूर्ण इतिहास है, इस इतिहास के पीछे केवल आर्यावर्त का ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण जगत का एक सांस्कृतिक तत्व छिपा हुआ है, इस निगूढ़ सत्य को प्रकट करके एक सार्वभौमक शाश्वत सत्य को जनता के सामने पुनः स्थापित करने के लिये ही आर्य समाज की स्थापना की गई थी। आर्य समाज किसी नए पन्थ के रूप में प्रकट नहीं हुआ है इसके संस्थापक ऋषि को भी ऐसी इच्छा न थी कि यह कोई पन्थ बने, प्राचीन संस्कृति का पुनरुद्धार ही आर्य समाज का एक मात्र उद्देश्य है। जिस दिन यह कार्य पूरा हो जायगा जनता की बहु संख्या पुरातन वैदिक संस्कृति के सिद्धान्तों के प्रति आस्थावान हो जायेगी तब आर्य समाज की आवश्यकता नहीं है, इस अवस्था में आर्य समाज का होना न होना समान है—हानि की सम्भावना अवश्य है, उद्देश्य की प्राप्ति होने पर स्थिति की अवस्था अधिक साधना की अवस्था है, मनुष्य स्वभाव के अनुसार फिर भी चलने का प्रयत्न करता है और उसी ओर चल पड़ता है जहां से प्रयत्न कर के वह इतना ऊपर चढ़ा था।

आर्य समाज ने भारतीय संस्कृति या वैदिक संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिये जो तप और त्याग किया है वह किसी से छिपा नहीं है, आर्य समाज ने जनता की जागृति के लिये जो कुछ किया है उसकी तालिका देने की आवश्यकता नहीं; आज ये सब बातें नई नहीं रह गई हैं। जनता अब आर्य समाज के वास्तविक तत्व को पहले से अधिक समझने लग गई है।

धर्म और राजनीति में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है, हम इतना कह कर ही रुकना नहीं चाहते, हमारे विचार में धर्म और राजनीति इन दोनों का अटूट सम्बन्ध है। हम भारतीयों ने धर्म और राजनीति को कभी भी अलग २ नहीं सोचा है, हमने राजनीति को भी सदा राज धर्म नाम से ही स्मरण किया है, हमारे यहां धर्म और राजनीति समाज शकट के दो समान चक्र हैं, इन को मिलाने वाली धुरा से इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। एक के बिना हम दूसरे के विषय में विचार ही नहीं कर सकते। जहां भी कहीं समाज के नेताओं ने इन में से किसी एक को प्रधानता देने का प्रयत्न किया है वहां समतुलन रखने के लिए बड़ी २ क्रान्तियां हुई हैं जिन से समाजों को हानियां ही उठानी पड़ी है, जिस समाज में दोनों का समान ध्यान रक्खा गया है वह समाज बिना विघ्न बाधाओं के उन्नति ही करता चला गया है।

धर्म और राजनीति सामान्य जनता की वस्तु नहीं; समाज और राष्ट्र की शासन प्रणालियों को चलाने वाले कुछ विशेष व्यक्ति ही इन व्यवस्थाओं को बनाया बिगाड़ा करते हैं। जन साधारण इनके गम्भीर तत्वों को समझने में नितान्त असमर्थ हैं; यही कारण है कि धर्म परलोक में या सन्तों की दुनियां में ही प्रधानता रखता है परन्तु सामान्य संसार में जहां पर मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्तियां अपने पूर्ण रूप में विकसित हैं वहां पर धर्म राज धर्म के इशारों पर ही अवलम्बित है, राज्य का धर्म ही उनका धर्म होता है, इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि सामान्य संसार में धर्म का प्रचार नहीं करना चाहिए किन्तु यह कहने का हम अवश्य साहस कर सकते हैं कि वस्तु स्थिति ऐसी ही है। इतिहास हमारी इस बात का साक्षी है कि धर्म सदा राज्याश्रय में फला फूला है राजनीतिज्ञों का धर्म ही सामान्य जनता का धर्म होता रहा है। राज्य के प्रभाव में आकर ही जन साधारण ने किसी धर्म को स्वीकार किया है। धर्म के स्वीकार करने में एक मुख्य कारण भय का भी है, ईश्वर नरक का भय है, दुःखों का भय है, शासन-सत्ता का भय है अतः हम धर्म को स्वीकार करते हैं। यह ठीक है कि धर्म हमारी आत्मिक पिपासा का शामक है परन्तु इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि धर्म की स्थिति हमारे भय के कारण है। यह भय राज्य के कारण अधिक प्रभाव रखता है। जिन्होंने अपने धर्म को फैलाया है या फैलाने का प्रयत्न किया है उन्होंने उसको राज्य तक पहुंचाया है और वे तभी सफल हुए हैं। बौद्ध धर्म के विस्तार का कारण राज्य द्वारा परिपालना ही थी, शंकर की धार्मिक विजय यात्रा राजाओं की राज सभाओं से ही प्रारम्भ होती है, इस्लाम को फैलाने में मुसलमानों की रक्त रञ्जित तलवारें अधिक सफल रही हैं, बौद्ध धर्म के पतन का कारण भी राज्य है। अकबर का दीने-इलाही भी आश्रय न होने से अपने आप नष्ट हो गया। कौन्स्टैन्टाइन के बाद से ईसाइयत का अधिक विस्तार हो सका था। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य, ऋषि दयानन्द की दिव्य दृष्टि से छिपे न रह सके, यही कारण था कि उन्होंने अपने कार्य के लिये कोई उपयुक्त स्थान चुना तो वह राजस्थान था। वे जानते थे कि राजाओं के और राज पुरुषों के किसी धर्म को स्वीकार करने पर प्रजाएं भी उस को सुगमता से ग्रहण करने लगीं। 'यथा राजा तथा प्रजा'। हम तो समझते हैं कि धार्मिक संस्थाएं बिना राज्याश्रय या राजनीति में प्रवेश किये अपनी एक टांग पर अधिक देर तक खड़ी नहीं रह सकती। यह ठीक है कि इन दोनों के मार्ग अपने २ हैं परन्तु ये हैं समानान्तर, एक के बिना दूसरे की दशा शोचनीय है।

आज हम आर्य समाजियों को इस ऐतिहासिक सत्य को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। आर्य समाज को राजनीति से अलग किया ही नहीं जा सकता, आर्य समाज की स्थापना एक महान् राजनैतिक परिवर्तन ही है, आर्य

समाज ने इस सत्य को भुलाकर केवल एक धर्म मार्ग पर ही चलना प्रारम्भ कर दिया, यही कारण है कि हमको उतनी सफलता नहीं मिली जितनी कि ६५ वर्ष में एक सजीव संस्था से आशा की जा सकती है। सामान्य तथा आर्य समाज के सारे कार्य क्रम राष्ट्र पर एक व्यापक प्रभाव रखते रहे हैं। आर्य समाज के कार्य क्रम को जिन को कि उसने अपने बहुत प्रारम्भिक काल में बनाया था उसे ही आज देश की प्रगतिशील राष्ट्रीय संस्थायें कांग्रेस और हिन्दु महासभा अपना भावी कार्य क्रम बना कर कार्य कर रही हैं और इन संस्थाओं ने अपने इस कार्य में कुछ ही वर्षों में वह अद्भुत सफलता प्राप्त करली है जो हमने अपने ४० वर्षों में भी नहीं की। यहां पर आकर स्पष्ट हो हो जाता है कि राजनैतिक रूप होने से किसी वस्तु का क्या प्रभाव पड़ता है। यदि आर्य समाज ने सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लिया होता जैसा कि वह अब लेने की सोच रहा है तब यह आज की स्थिति से आगे होता। अब संसार की विचार धारा बदल गई है, आज का युग राजनैतिक युग है, कोई युग था जब की मनुष्य धर्म और वेद के ऊपर खून की नदियां बहा सकते थे, परन्तु इस युग में नवयुवकों को संस्था-समाज-और राष्ट्र की भावना धर्म की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती है। हम को इस भेद को ध्यान में रख कर कार्य करना होगा।

कई विचार शील व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि आर्य समाज की शक्ति छिन्न भिन्न हो चली है परन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है हमको अपनी शक्ति पर विश्वास रखना चाहिये। हमारे में ऐसा कोई सैद्धान्तिक मत भेद नहीं है जिनसे यह अनुभव करें कि हम अशक्त या अकले हैं। जीवन, संस्था, समाज और राष्ट्र संघर्षण से ही विकसित होते हैं। केवल किन्हीं वैयक्तिक उदाहरणों को देख कर उनका सम्पूर्ण समाज पर आरोप करना कि समाज की शक्ति बिखर गई है हमको न्याय्य प्रतीत नहीं होता। हमको इस बात से घबराने की भी आवश्यकता नहीं, हमें भय तब होना चाहिये जबकि हमारे उद्देश्यों और आदर्शों में मत भेद हो। यदि किसी का प्राथमिक आधार भूत सिद्धान्तों से ही मत भेद है तो वह आर्य समाजी ही नहीं रहेगा यदि फिर भी वह समाज में रहता है तो उसका समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है जिसको कि अनुभव किया जा सकता है।

आर्य समाज का जन्म संघर्षों और संकटों में हुआ है समाज और राष्ट्र के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आर्य समाज एक विद्रोही संस्था है, इसका काम ही अन्याय और असत्य के सामने लड़ना है, परन्तु कुछ दुःखका विषय है कि आर्यसमाज को यह शक्ति, श्रुति स्मृति ग्रन्थों की प्रामाणिकता सिद्ध करने में ही लगी रही है दूसरे पक्ष की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई है। आर्य समाज ने अन्याय अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई है परन्तु शुद्ध धार्मिक बने रहने का प्रयत्न करने के कारण वह इतना सक्रिय काम नहीं कर सकी जितना कर सकना चाहिए था। हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में आर्य समाज ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक इस बात को अनुभव किया कि उसको राजनीति में भाग लेना चाहिए। केवल शुद्ध धार्मिक रहने से उसको अपने इस आन्दोलन में बहुत देर और असुविधाओं का सामना करना पड़ा। इस सत्याग्रह ने और सत्याग्रह के परिणामों ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि आर्य समाज राजनीति में बहुत पिछड़ा हुआ है। यदि हमारी इच्छा हो तो हम कह सकते हैं कि हैदराबाद सत्याग्रह में हमारी विजय हुई हमें कोई रोकेगा नहीं, परन्तु सुधार घोषणा में कहीं पर भी आर्यसमाज का, उसकी मांगों का या उसकी पूर्ति का आश्वासन नहीं, सत्याग्रही लोग निजाम के जन्म दिवस की प्रसन्नता में छोड़े गये। हैदराबाद का दृश्य अब भी यथापूर्व है, यदि १६-२० के अन्तर को विजय कहा जाय तो इस आनदोलन में हमारी विजय हुई है परन्तु मनको ऐसा कहते हुए कुछ सन्तोष नहीं होता है। आर्य-समाज आज बड़े दुःख और क्षोभ के साथ अनुभव करता है कि वह राजनीति में अनुत्तीर्ण हो चुका है।

हमारे कई दूरदर्शी भाइयों का ऐसा विचार है कि देश में पहले ही इतने दल हैं आर्यसमाज का एक नया दल आकर देश की विषम परिस्थिति को विषमतर बना देगा, यह विचार धारा किसी अंश तक मान्य कही जा सकता है परन्तु आर्यसमाज आंख मूंद कर चलने वाली संस्था नहीं है, हमें आर्यसमाज से विश्वास है तथा हम देश की अन्य शुद्ध अंशों में अपने को राष्ट्रिय समझने वाली संस्थाओं को विश्वास दिलाते हैं कि आर्यसमाज से यह समझना कि उससे देश को हानि होगी बिल्कुल निर्मूल है, हमारी सम्मति में यदि कोई वास्तविक भारतीय संस्कृति को समझते हुए राष्ट्रिय संस्था हो सकती है तो वह आर्य समाज ही है, राष्ट्रिय महासभा कई बार इस संस्कृति के महत्व को भुला चुकी है, । इतना अवश्य है कि आर्यसमाजने किसीको उसके दुर्गुणों को छिपाते हुए प्रसन्न नहीं करना है और न वह किसी भी व्यय पर भारतीय मर्यादा को छोड़ने को तैयार है। आर्यसमाज का पिछला इतिहास उज्वल इतिहास है, मैकाले की भविष्यवाणी को मिथ्या करने का श्रेय आर्यसमाज का है। आर्यावर्त की संस्कृति का विशुद्धतम रूप आर्यसमाज में ही है। हमारे लिये अब समय है कि आगे बढ़कर आर्यावर्त की स्वाधीनता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखें।

आर्य समाज के लिए यह अवसर आखें खोलने का है, आदमी ठोकर खाकर ही कुछ सीखता है। हमें आशा है कि आर्यसमाज के नेतागण इस अवसर को खोयेंगे नहीं किन्तु पूरी तैयारी के साथ अपने सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखते हुए दुर्गम राजनीति में प्रवेश करेंगे।

श्री सतीश

प्रेम

[अनुवादक—श्री विद्यालंकार]

दार्शनिकों को प्रेम के स्रोत ने भी इतना ही परेशान किया है जितना बुराई के स्रोत ने। सम्वाद में आगे चलकर एक वक्तृता है, जो प्लेटो ने ऐरिस्टोफेनो से

दिलवाई है; लेकिन जिसके बारे में Jowelt ने टिप्पणी की था कि एरिस्टोफेन का एक भी शब्द अपना नहीं है।

वह कहता है प्रारम्भिक काल में मनुष्य आधुनिक मनुष्य की तरह नहीं था। प्रारम्भिक मनुष्य "गोल था।" उसकी पीठ और पार्श्व मिलकर एक वृत्त बनता था। उसके चार हाथ और चार पांव थे। एक सिर था जिस के दोनों तरफ चेहरे थे। इनसे वह दोनों तरफ देख सकता था। वह आजकल के मनुष्य की तरह सीधा होकर अपनी इच्छा के अनुसार आगे पीछे, दायें बायें जिधर चाहे चल सकता था इसके अतिरिक्त वह बड़ी तेज गति से अपने चार हाथों और चार पैरों के सहारे हवा में टम्बलर की तरह, लुढ़क सकता था। लेकिन ऐसा वह तभी करता था, जब वह बहुत तेज दौड़ना चाहता था। उनका बल और सामर्थ्य भयङ्कर था। उनके हृदय के विचार महान् थे। उन्होंने एक बार स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। इन आक्रान्ताओं में से Otys और Ephialtes की कहानी लिखते हुए होमर कहता है कि वे दोनों स्वर्ग पर सीढ़ी लगाकर चढ़ गए, और देवताओं पर भी हाथ साफ कर दिया होता? स्वर्ग की राज सभा में खलबली पड़ गई वे सोचने लगे कि इनको मार देना चाहिये और इनकी जाति को, राक्षसों की तरह से बिजली गिराकर नष्ट कर देना चाहिये। लेकिन ऐसा करने से उनको भेंट और पूजा मिलनी बन्द हो जाने का डर था, इसके विपरीत वे बिना प्रतिकार किये अपना अपमान भी बर्दाश्त नहीं कर सकते।

अन्त में बड़े विचार विनिमय के बाद Zeus को एक उपाय सूझा। उसने कहा "मेरा ख्याल है कि मेरी तजवीज उनके अभीमान को मिटा देगी, उनके व्यवहार को दुरुस्त कर देगी। और वे जिन्दा भी रहेंगे, लेकिन मैं उनके दो टुकड़े कर दूंगा। इससे हमें दुगना लाभ होगा। इससे उनकी शक्ति तो आधी हो जायेगी, और हमें भेंट दुगनी चढ़ेगी। वे सीधे खड़े होकर दो टांगों पर चल सकेंगे; और अगर वे फिर भी गुस्ताख रहे और शान्त न हुए, तो मैं उनके फिर दो टुकड़े कर दूंगा। और तब वे एक टांग से फुदका करेंगे। यह कहकर उसने मनुष्य को दो भागों में फाड़ दिया 'जैसे तुम बाल लेकर एक अण्डे को दो टुकड़ों में विभक्त कर दो'।

इस विभाग के बाद मनुष्य के दोनों हिस्से, एक दूसरे को चाहते हुए इकट्ठे हुए।

हम में एक दूसरे के लिये निहित कामना इतनी पुरानी है। जिसके द्वारा हम अपनी पुरानी अवस्था में पहुंच कर, दोनों मिलकर एक होना चाहते हैं और मनुष्य की अवस्था को सुधारना चाहते हैं। हम में से प्रत्येक अकेला होने की अवस्था में फ्लैटफिश की तरह अधूरा है, और सदा अपने दूसरे आधे की तलाश में है।

"और जब उन में से एक अपने दूसरे आधे को ढूंढ लेता है। तब युगल आश्चर्य, प्रेम, मित्रता और गाढ़ता में खो जाता है, और एक मिनिट के लिये भी दूसरे की दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहता। वे दोनों अपना सारा जीवन इकट्ठे व्यतीत करेंगे, लेकिन फिर भी वे यह नहीं बता सकते कि वे एक दूसरे से क्या चाहते हैं। उनकी एक दूसरे के प्रति उत्कट चाह से प्रेमियों के सम्मिलन की इच्छा प्रकट नहीं होता। यह तो कोई अन्य ही इच्छा है, जिससे दोनों की आत्माएं अनुभव करती हैं, लेकिन वर्णन करने में अशक्त हैं; फिर भी वह इसका धुंधला और सन्दिग्ध आभास रखती है"

चाहे कैसे भी हो, लेकिन मानवीय हृदय में एक सहज स्वाभाविक बुद्धि है, जिससे हम कभी २ तत्काल अपनी सम्मति कायम कर लेते हैं, जो बहुत कम बदलती हैं और प्रायः कभी भी गलत नहीं होती। प्रथम दृष्टि का प्रेम, यद्यपि अविवेक मालूम होता है, लेकिन फिर भी यह स्फुरणा है। ऐसा मालूम होता है; मानो हम अपने पुराने सम्बन्ध को फिर ताजा कर रहे हों।

पृ० ३ का शेष

थोड़ी देर के लिये थोड़ी सी चुम्बक शक्ति से भी युक्त हो जाता है। परन्तु दृढ़ (जिसके अवयव परस्पर सम्बद्ध हैं एकता युक्त हैं) लोहा देर में चुम्बकित होता है पर जब होता है तो स्वयं एक बड़ा भारी चुम्बक बन जाता है। यह सब शान्ति की महिमा है।

इसी प्रकार जिनके मन में शान्ति स्थापित नहीं हुई होती उनका मन किसी बड़े सत्य को ग्रहण नहीं कर सकता। उनके अपने कुछ भी विचार नहीं होते-वे जब जिस के विचारों को सुनते, पढ़ते या जानते हैं उस समय के लिये उनके वे ही विचार बन जाते हैं। वे बाहरी विचारों से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं। उनके अन्दर का सत्य का स्रोत खुल जाता है। उनके अन्दर सत्य अपनी महान् अद्भुत रचना शक्ति करने का अवसर ही नहीं प्राप्त कर पाता। अस्तु—

मैंने सचाई, अमल करना, और शान्ति इन तीन उपायों का निर्देश किया है। ज्यों २ तुम इन तीन उपायों को बरतोगे त्यों २ तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध और बलवान होता जायगा तुम आत्म निरीक्षण करने लगोगे तो तुम्हें कभी सचाई की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता प्रतीत होगी, तो कभी अमल करने की तरफ, और कभी शान्ति की तरफ। यह तीनों ही एक दूसरे के सहायक और पूरक है। इन तीनों की ही आवश्यकता है, इस तरह इन उपायों द्वारा तुम अन्तः प्रवेश करोगे, अपने आप को अधिकाधिक जानने वाले बनते जाओगे तब तुम अनुभव करोगे कि सत्य ज्ञान स्वभावतः रचना शक्ति से युक्त हैं और भाव उस में जीवन को डालने वाले हैं। और इस प्रकार हरेक सत्य अवश्यम् भावी रूप से तुम्हारे द्वारा मूर्त-रूप धारण कर लेगा।

शिक्षा का मतलब बहुत सी किताबें पढ़ा देना या ज्ञान को बाहर से अन्दर ठूंस देना नहीं है और भावों को उत्तेजित करना सिखाना तो कभी नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य तो मनबुद्धि को अन्दर से आने वाले सत्य को ठीक २ ग्रहण करने के योग्य-समर्थ बना देना है, मन को रचना करने के समर्थ बना देना तथा भावों को जीवन डालने की शक्ति से युक्त बना देना है।

गुरुकुल समाचार

ब्र० रामदेव १४ श्रेणी आमातिसार, ब्र० वेदराज १४ श्रेणी उन्माद, ब्र० हरिवंश १२ श्रेणी उदरशूल, ब्र० रमेशचन्द्र ५ श्रेणी मलेरिया, ब्र० देवेन्द्र अम्बाला ४ श्रेणी मलेरिया, ब्र० महावीर ४ श्रेणी मलेरिया, ब्र० मनमोहन २ श्रेणी मलेरिया, ब्र० विद्याधर २ श्रेणी मलेरिया, ब्र० विद्याभूषण २ श्रेणी मलेरिया, ब्र० प्रद्युम्नकुमार ५ श्रेणी मलेरिया, ब्र० अविनाशचन्द्र १ श्रेणी मलेरिया।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

ऋतु सुहावनी है, आकाश में बादल घिरे रहते हैं। गर्मी अभी विशेष रूप से प्रारम्भ नहीं हुई है।

श्री आचार्य जी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ से लौट आये हैं।

श्री पंडित के. ज्ञानी जी का College union की ओर से "संसार की वर्तमान समस्याएं और उनका हल" इस विषय पर बड़ा मार्मिक और सुन्दर भाषण हुआ। पण्डित जी अब यहां से क्वेटा के लिये चल पड़े हैं।

ब्रह्मचारियों के श्रेणी सान्मुख्य प्रारम्भ हो गये हैं। हाकी तथा हस्त कन्दुक के अन्तिम संघर्ष शेष हैं। हाकी के अन्तिम संघर्ष में चतुर्दश और द्वादश श्रेणियां है, तथा हस्तकन्दुक में चतुर्दश और एकादश।

धारा सभा के चुनाव की पूरी तैयारियां हो चुकी हैं। कांग्रेस की ओर से श्री रामदेव जी चतुर्दश खड़े हुए हैं तथा हिन्दु महासभा की ओर से श्री सत्यव्रत जी चतुर्दश। अभी जय पराजय का निर्णय देना कठिन है। संघर्ष अच्छा है।

गुरुकुल–सूपा

गुरुकुल सूपा का १६ वां वार्षिक महोत्सव पूर्णा नदी के किनारे बृहद् गुजरात के हजारों नर नारियों के बीच खूब धूमधाम से मनाया गया।

उत्सव बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ। इस वर्ष २० ब्रह्मचारी नवीन प्रविष्ट हुए तथा २ हजार रुपये दान मिला।

इस बार के मान्य अतिथि श्री मोरार जी भाई देसाई भूतपूर्व माल मन्त्री बम्बई, पधारे थे।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र २५ मार्च

१:–ऋतु उत्तम है। पिछले दिनों कुछ वर्षा होने से अभी गरमी शुरु नहीं हुई है ब्रह्मचारियों का स्वास्थ उत्तम है।

२:–कलकत्ते के सेठ मूलचन्द जी माथुर के दान से एक सुन्दर धर्मशाला बनकर तैयार होगई है।

३:–गुरुकुल के योग्य स्नातक पं० विक्रमादित्य जी जो पहले गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में १५–१६ साल से अध्यापक थे पिछले ६ मास से यहां अवैतनिक रूप से पढ़ा रहे थे। प्रसन्नता की बात है कि अब आपने स्थिर तौर पर कार्य करना स्वीकार कर लिया है।

४:–इस वर्ष अष्टम श्रेणी के पांच ब्रह्मचारी परीक्षा केलिये इन्द्रप्रस्थ गये थे सबका परिणाम अन्य गुरुकुलों से उत्तम रहा। सभी ब्रह्मचारी सब विषयों में बड़े अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए हैं।

दो गीत

श्री आनन्द

रुदन

मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?
तब से बंसी के छिद्रों पर,
नचा रहे हो अंगुली नटवर !
परे पटक कर उसे, रागिणी अपनी अरे, सुना दो ना ?
मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?
जिसने इस बंसी के अन्दर,
भर डाला है जीवन का स्वर,
उस अपनी मधु मंजुल ध्वनि से प्रिय, यह विश्व गुंजादो ना ?
मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?
मुसकाते ही जाते हो तुम,
गीत न अब भी गाते हो तुम,
मत गाओ ! पर इन आंखों में प्रिय, रोना तो, ला दो ना ?
मैं भी रो लूंगा, गा दो ना ?

गायन

गीत ही गाता रहूं मैं !
विश्व सारा खिल खिलाये,
हर्ष रव में रव मिलाये,
किन्तु हे प्रभु निज सदन के कोण में बैठा अकेला—
गीत ही गाता रहूं मैं !
सामने कठिनाइयां हों,
गिरि शिखर हों, खाइयां हों,
मैं चढूं, उतरूं, गिरूं, चाहे करूँ कुछ क्यों न, फिर भी–
गीत ही गाता रहूं मैं !
चोट पर खा चोट निष्ठुर,
नाथ यदि फट जाय यह उर,
है विनय मुझ दीन जन की, उस समय भी मूढ़ सा हो–
गीत ही गाता रहूं मैं !

आवश्यकता

आर्य समाज जमशेदपुर (टाटानगर) के लिये एक सुयोग्य गुरुकुल के स्नातक की आवश्यकता है, जो वहां पुरोहित का कार्य कर सकें वहां की शिक्षित जनता में वैदिक धर्म का प्रचार कर सके तथा उनका धर्म सम्बन्धी शङ्काओं का समाधान कर सके। उसके अन्दर वैदिक धर्म के प्रति लगन होनी चाहिये। जमशेदपुर के आसपास के स्थानों पर भी उसे वैदिक धर्म का प्रचार करना होगा। अंग्रेजी भाषा का भी अभ्यास होना आवश्यक है। वेतन ४०) से ५०) तक तथा निवासस्थान का प्रबन्ध आर्य समाज की ओर से होगा। दक्षिणादि को पुरोहित अपने उपयोग में ला सकता है। आर्यसमाज की आर्थिकस्थिति की उन्नति के साथ २ वेतन वृद्धि की आशा करनी चाहिये। प्रार्थना पत्र निम्न पते से भेजना चाहिए।

आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
जि० सहारनपुर

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ५] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २६ वैशाख १९९७; १० मई १९४० [संख्या ४

नपुंसक ज्ञान और निर्वीर्य भावावेश

गतांक से आगे

[लेखक—श्री आचार्य अभयदेव जी]

रचनात्मक कार्य

अब एक बात रह गई कि "तो फिर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को स्वराज्य स्थापना के लिये क्या करना चाहिये"। इसका असली उत्तर तो यह है कि जब तुम्हारा मन सत्य को ग्रहण करने और उसको ठीक कल्पना में लाने में समर्थ हो जायेगा और तुम्हारे भाव उस सत्य कल्पना में जीवन डालने के योग्य हो जायेंगे तब तुम जो भी कुछ करोगे वह ठीक ही करोगे। हरेक सच्चा और समर्थ व्यक्ति अपनी प्रकृति और शक्ति के अनुसार जो कुछ सेवा करेगा उससे देश का लाभ ही होगा। परन्तु फिर भी मैं इस विषय में थोड़ा सा रेखा-चित्रण इसलिये करता हूं जिससे कि तुम कार्य करते हुवे यह परीक्षा कर सको कि तुम ठीक रास्ते से ही देशसेवा कर रहे हो या नहीं।

पहली बात यह है कि तब तुम कुछ रचनात्मक और ठोस कार्य करने के लिये प्रवृत्त होंगे। क्योंकि तुमने स्वराज्य के सत्य को जहां तक देखा होगा उसके अनुसार भारतीय स्वराज्य की एक कल्पना तुम बना चुके होंगे। स्वराज्य सत्य की यह कल्पना तुम्हारे द्वारा क्रियान्वित होकर मूर्त रूप में आना चाहती होगी। उसके लिये तुम कुछ न कुछ करना चाहोगे। प्रत्येक देश वासी के मन में स्वराज्य की कुछ कल्पना है, नेताओं के सामने तो अधिक विस्पष्ट कल्पना बनी होती है, परन्तु जिसने स्वराज्य के सत्य को अधिक से अधिक देखा है जिसने भारत की अन्तरात्मा से अपने को एक करके भारत की आन्तरिक अभीप्सा के सत्य रूप को जाना है उसकी स्वराज्य कल्पना सची से सची होने के कारण अधिक से अधिक रचना शक्ति रखने वाली और बहुत बलवती होगी। आजकल वह रचना शक्ति शायद गांधी जी द्वारा प्रकट हो रही है। अस्तु।

सत्य सदा कुछ रचना करना चाहता है, यदि सत्य किसी चीज़ का ध्वंस करना चाहता है तो भी उस के मूल में रचना का ही भाव होता है। हिंसात्मक युद्ध और ठीक प्रकार के युद्ध में (जिसे मैंने स्वाभाविक परिपाक कहा है और जिसे आजकल के अस्वाभाविक युद्ध के विरोध में अहिंसात्मक युद्ध कहना चाहिये) भेद यही है कि पहला ध्वंसात्मक और अप्रीति (द्वेष) मूलक होता है तथा दूसरा रचनात्मक और प्रीतिमूलक होता है। इसलिये हम अपनी स्वराज्य प्राप्ति के लिये स्वराज्य की कल्पना को मूर्त रचना के रूप में लाने की तरफ़ ही ध्यान देंगे और इस लिये जो कुछ भी कर सकते होंगे वह सब कुछ करेंगे। यदि हम ठीक प्रकार से रचना का कार्य करेंगे तो जो कुछ विरोधी वस्तुएं हैं वे हमारे रचना बल के सामने अपने आप दूर होती जायेंगी।

चर्खा

कल्पना करो कि तुम में से किसी के अन्दर देशभक्ति की अग्नि जल चुकी है (और वह अग्नि सोम की उपासना द्वारा तुम्हारे वश में भी है) तो तुम स्वभावतः यह चाहोगे कि हमारे देश के और लोगों में भी यह पवित्र अग्नि जल उठे। सब देशवासियों को पर्याप्त अंश में सची स्वराज्य कल्पना से युक्त प्रकाशमान देशभक्त बना देना स्वराज्य के भवन को आधे से अधिक खड़ा कर देना है। पर अपने बेपढ़े ग़रीब देशवासियों में व्याख्यान देने से या उपदेश सुनाने मात्रसे देशभक्ति नहीं आ जायगी। यदि देश की अवस्था को तुम ने कुछ भी समझा है तो तुम्हें अपने देश की असीम ग़रीबी दुःखी किये बिना नहीं रहेगा और सेवाद्वारा, और उसमें भी ग़रीबी दूर करने की किसी सेवा द्वारा ही तुम अपना संदेश उनके हृदयों तक पहुंचा सकोगे। इसी कारण चर्खा तथा अन्य ग्रामोद्योग हमारे स्वातन्त्र्य युद्ध के हथियार बने हैं। यदि तुम्हारी स्वराज्य-कल्पना कुछ भी गम्भीर सत्य पर आश्रित है तो तुम देखोगे कि भारतीय सभ्यता ग्रामप्रधान सभ्यता है, भारतीय संस्कृति चर्खे और ग्रामोद्योगों की पुण्य संस्कृति है।

अतः हिंसात्मक युद्ध में जैसे ध्वंस करने वाले तोप बन्दूक आदि हथियार होते हैं वैसे हमारे सत्य और अहिंसा के (सत्य कल्पना और प्रेमभाव से उठे) युद्ध में रचना करने वाले कपड़ा तथा अन्य अत्यन्त जीवनोपयोगी वस्तुओं को बनाने वाले औज़ार ही हमारे हथियार हैं। इन औज़ारों द्वारा न केवल कपड़ा आदि वस्तुएं बनेंगी किन्तु भारत की नष्ट होती संस्कृति का ही पुनर्निर्माण होगा और हम लोगों की सच्ची देशभक्ति के कारण हमारा खादी आदि का बनाना ही विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने की शक्ति भी रखने वाला होगा। अतः यह खादी का काम स्वराज्य की सच्ची कल्पना सामने रखने के भाव से ही प्रेरित होकर होना चाहिये, देखा देखी या किसी को खुश करने के लिये या किसी अन्य विपरीत या केवल जड़ भाव से अतएव अधूरे मन से-नहीं होना चाहिये। क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे तो उस से हम अपने अन्दर के सत्य विचार को और अपने ग़रीब देशवासियों के प्रति करुणा के भाव को नहीं प्रकट कर रहे होंगे। हम यूंही दंभ से या जड़भाव से चर्खा चला रहे होंगे। हमारा चर्खा कातना यदि हमारे अन्दर के उस सत्य भाव को ही क्रिया में परिणत रूप होगया तभी वह स्वराज्य स्थापना की शक्ति से युक्त होगा। अस्तु

एकता

इसी तरह राष्ट्रीय शिक्षा, मद्यनिषेध, अछूतपन-निवारण आदि अन्य कई रचनात्मक कार्य हैं जिनकी कि तरफ मुझे तुम्हारा ध्यान खींचने की आवश्यकता नहीं। आर्यसमाज इन की तरफ पहले से ध्यान देता रहा है। परन्तु साम्प्रदायिक एकता— जिसकी कि आज कल आवश्यकता और भी ज्यादह बढ़ी हुई है— की ओर अवश्य विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, और। सम्प्रदायों में भी हम आर्यसमाजिओं को हिन्दू और मुसलमानों इन दो सम्प्रदायों की परस्पर एकता की ओर हमारी देशभक्ति घोर से घोर सांप्रदायिक मुसलमानों को भारतमाता का अपना सा ही पुत्र और अतएव अपना भाई अनुभव कराये। परस्पर विद्वेष की आसुरी शक्तियां आज स्वराज्य की आधार भूमि इस सांप्रदायिक एकता को ही नष्ट भ्रष्ट कर देने के लिये उग्रता के साथ तत्पर हो रही हैं। हमें आत्म बलिदान से अनुप्राणित प्रेम की शक्ति द्वारा इन्हें परास्त कर भारत माता की सच्ची विजय स्थापित करनी है। यदि तुम में कभी दूसरे संप्रदाय वालों के प्रति कमज़ोरी के कारण द्वेष (अप्रीति) का असनातन आसुरी भाव उत्पन्न होवे भी तब भी कम से कम तुम्हें इतनी सावधानी बरतनी चाहिये कि तुम साम्राज्य वाद की निपुण विभेद-नीति के कभी भी शिकार न बनो मेरा मतलब यह है कि यदि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ना ही चाहें तो वे विदेशी सरकार की पुलिस और फौज की अधीनता में परवशता में, कायरता की लड़ाई कभी न लड़ें। स्वराज्य की भावना को स्पष्ट सामने रखते हुए, अंग्रेज़ी शासन को (जो कि एक असत्य है) बिलकुल भुलाकर हम यदि आपस में खुलकर लड़ेंगे भी तो वह हमारी सच्ची लड़ाई होगी और अतएव हम में जल्दी ही एकता को भी ले आने वाली होगी। बहुत संभव तो यह है कि तब हम लड़ ही नहीं सकेंगे। पर यदि लड़ना अनिवार्य ही हो तो वह सचाई के साथ और स्वराज्य के सत्य को आंखों से ओझल न करते हुए ही होना चाहिये। वह भाई भाई की लड़ाई होनी चाहिये। इस लिये स्वार्थ, मतों Votes की प्राप्ति, ओहदों की लालसा आदि कारणों से जो कुछ लड़ाई होती या छेड़ी जाती है, साम्प्रदायिकता को उभाड़ कर लोगों को गुमराह किया जाता है वह तो खतम होना चाहिये। देशभक्ति की पवित्र अग्नि में ये सब मैल दग्ध हो जाने चाहियें। देश भक्ति के जीवनदायी तेज के कारण इस तरह लड़ने से— कितना भी उकसाये जाने पर—इन्कार करने की शक्ति हम में आजानी चाहिये।

यज्ञ और संग्राम

चर्खे और एकता के अतिरिक्त यदि और कुछ करने को रहता है तो वह सब यह कहने में आजाता है कि हमें अपनी राष्ट्रीय महासभा की आज्ञा का या अपने सेना-नायक की आज्ञा का पूरी तौर से न केवल बाह्य क्रिया के रूप में किन्तु पूरे मन और हृदय से (पूरे विचार और भाव से) पालन करना चाहिये।

यह जो कुछ मैंने कहा है उसे दूसरे शब्दों में कहूं तो वह यह है कि हमें आरम्भ किये इस स्वराज्य प्राप्ति के यज्ञ को पूरा करना चाहिये। वैदिक साहित्य में सब संग्राम वाचक शब्द यज्ञ वाचक भी होते हैं। इसका अर्थ यह है कि वैदिक दृष्टि से एक सच्चा संग्राम यज्ञ रूप ही होना चाहिये। जो संग्राम शुद्ध से शुद्ध आत्म बलिदान चाहता है वह संग्राम उतना ही ऊंचा यज्ञ हो जाता है। तो यज्ञ की भाषा में हमारा यह स्वराज्य प्राप्ति का संग्राम कैसे चले इस की तरफ ज़रासा ध्यान आकृष्ट करके मैं अपना कथन समाप्त करता हूं।

मैंने भावों के प्रकरण में कहा था कि सब सनातन भावों का केन्द्रिय भाव प्रीति है और वह प्रीति भक्ति, मैत्री और करुणा इन तीन रूपों में प्रगट होती है। इन तीन भावों को ही हमें अपने अन्दर विशेष रूप से विकसित करना चाहिए। अर्थात् बड़ों के प्रति भक्ति (न कि उद्धतता) बर बर वालों के साथ मैत्री (न कि द्वेष) और छोटों के साथ करुणा (न कि क्रूरता या अत्याचार)। पर अब मैं यह कहना चाहता हूं कि जब यही तीनों भाव क्रिया रूप में परिणत होते हैं तब ये यज्ञ बन जाते हैं। कर्मकाण्ड ही तो यज्ञ है, और यज्ञ का अर्थ है, 'देव पूजा सगति करण-दानेषु'। बड़ों के प्रति की गयी प्रीति भक्ति का रूप धारण करती है, और भक्ति जब क्रिया रूप में आती है तब वह देवपूजा नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होती है। बर बर वालों के साथ प्रीति मैत्री भाव का रूप धारण करती है और मैत्री भाव जब क्रिया में आता है तब वह संगतिकरण नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होती है एवं छोटों के प्रति की गई प्रीति करुणा भाव का रूप

धारण करती है और करुणा भाव जब क्रिया रूप में आता है तब वह दान नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होता है। तो यदि हमने स्वराज्य प्राप्ति के यज्ञ को पूरा करना है तो हमें इन्हीं भावों को जगाकर ठीक प्रकार से इन्हीं क्रियाओं में परिणत करना होगा। हमारी भक्ति देवपूजा में परिणत हो, देश के नेताओं की हम पूजा करें, उनकी आज्ञाओं का पालन करें, एक सैनिक के तौर पर सेनापति के आदेशों को पूरे विचार और भाव के साथ पालन करते हुए हम सदा अनुशासन में रहें। भारत माता की पूजा, राष्ट्र पताका की वन्दना का अर्थ यही है कि हम राष्ट्रीय महासभा और अपने देश के नेताओं के आज्ञापालक और अनुशासित सेवक और सैनिक बनें। यह यज्ञ का ऊपर का भाग है, उत्तमांग है।

हमारा मैत्रीभावसङ्गतिकरण में परिणत हो, देश के सब भाई परस्पर एकता से जुड़े हुए हों, किसी प्रकार की विसङ्गति न हो, परस्पर सहयोग, मेल, एक सूत्रता, यह सब सङ्गतिकरण की ही व्याख्या है। सम्प्रदायों की एकता के बारे में मैं ऊपर कह चुका हूं, वह एकता, हम यज्ञ के पवित्र भाव से करें तभी वह स्थिर और सच्ची एकता होगी। हम सबने मिलकर अपना सङ्गतिकरण करना है और इस सङ्गति करण के बल से ही अपने राष्ट्र यज्ञ को पूरा करना है यह पवित्र भावना हममें लगातार रहे।

करुणाभाव दान में परिणत हो। जो हम से छोटे हैं, कमज़ोर हैं, किसी भी बात में कम है, उनके प्रति करुणा हो और वह करुणा उन छोटों, दुर्बलों और गरीबों को देने में चरितार्थ हो। चर्खे का आन्दोलन आर्थिक दृष्टि से छोटे, गरीब लोगों को दे सकने के यज्ञीय कर्म का ही आन्दोलन है। और हमारे देश के आर्थिक दृष्टि से ही विशेष कमज़ोर होने के कारण इस करुणा का और इस दान का ही इस समय विशेष महत्व होगया है। इसी प्रकार जिनमें ज्ञान की कमी है उनको ज्ञान दान देना चाहिए। 'अछूत' भाइओं की सेवा करना भी यज्ञ के इसी अङ्ग में आता है। जो वस्तुतः अल्पमत में हैं, जो वस्तुतः कमज़ोर हैं जो किसी प्रकार भी कम है उनको देने द्वारा पूरा करने की प्रवृत्ति हममें सहज भाव से होनी चाहिए। तभी यह हमारा यज्ञ फलीभूत हो सकेगा।

मानसिक जगत में कल्पना या मानसिक रचना के रूप में तो भारतीय स्वराज्य बहुत कुछ बन चुका है, स्थापित हो चुका है। 'बहुत कुछ' इसलिये कि अब भी एक प्रकार का संघर्ष चल रहा है। पर जहां तक विदेशी शासन से मुक्ति का संबन्ध है वहां तक मानसिक चित्र पक्का बन चुका है। यदि हम भक्ति, मैत्री और करुणा के भावों द्वारा हम इसमें लगातार प्राण सञ्चार कर सकें और वह प्राण सञ्चार देव पूजा, संगति करण और दान की क्रियाओं में अभिव्यक्त होता रहे तो हमारे पवित्र स्वराज्य यज्ञ की पूर्ति दूर नहीं है।

प्रेम

[अनुवादक—श्री विद्यालंकार]

"उसको देख मैं उसकी तरफ़ आकर्षित हो गया और उसमें सदा के लिये प्रेम करने लगा।" (बर्न्स) यद्यपि अनुभव ने इस अनुभूति को बहुत कम गलत साबित किया है, लेकिन स्फुशकिस्मती से इसका उलट ठीक नहीं है। गाढ़ प्रेम बहुत धीरे २ प्रगति करता है। गाढ़ प्रेम सच्ची भक्ति से प्राप्त होता है।

Montaigue ने वास्तव में कहा था कि "थोड़े से अपवाद मिलेंगे, जो प्रेम के लिये विवाह करके न पछताये हों"। डा० जोन्सन का ख्याल था कि अगर विवाहों को भी परमात्मा ही निश्चित करता तो ये अधिक सुखी हो सकते। पर मैं यह नहीं समझता कि इन में से कोई भी उचित निर्णय है। जैसा कि Lancelot Astolat की अभागी कुमारी को कहा था 'मैं बाधित होकर प्रेम करने को पसन्द नहीं करता, क्योंकि प्रेम हृदय की वस्तु है; इसे ठोक पीट कर नहीं बनाया जा सकता"।

प्रेम ने कभी समय और दूरी की पर्वाह नहीं की। Sestus और Abydos को समुद्र ने वियुक्त कर रक्खा था, लेकिन उसके धनुष से निकले हुए एक तीर ने उसको फिर मिला दिया।" Symonds।

"प्रेम सर्वत्र आनन्दमय है" बायरन।

"क्या ही अच्छा हो, अगर मैं मरु प्रदेश में भी सारी मनुष्य जाति को भुलाकर किसी से भी द्वेष न रखते हुए लेकिन केवल अपनी प्रिया को प्यार करते हुए; अपना जीवन व्यतीत कर सकूं? और बहुतों ने निस्सन्देह यह अनुभव किया होगा— "कितने सुन्दर थे वे दिन, जब हम खजूर, आड़ू, सन्तरे और अङ्गूर वगैरह के कुञ्जों में प्रेम-विहार किया करते थे"

जो बात दूरी के लिये ठीक है, वह समय के लिये भी उसी तरह लागू है। "शान्ति में प्रेम ग्वालों की बांसुरी में बजता है। वही प्रेम युद्धकाल में मनुष्य को वीर बनाकर घोड़े पर चढ़ा देता है। इसी प्रेम की बदौलत बड़े २ भवन पोशाकी चमक से चौंधियां जाते हैं; और यही प्रेम गांवों में प्राकृतिक हरे मखमली फर्श पर नाचता दिखाई देता है। प्रेम अदालत, लड़ाई और कुञ्ज में सर्वत्र इह लोक के मनुष्यों और परलोक के देवों पर एक रूप से शासन करता है, क्योंकि प्रेम ही स्वर्ग है, और स्वर्ग ही प्रेम है।" Sest.

यद्यपि पूर्वीय जातियों में धर्म और दर्शन दोनों ने मिलकर प्रेम की निन्दा की है, लेकिन सत्य ने कईबार अपने को कहावतों और किम्वदन्तियों के रूप में प्रकट किया है। उदाहरण के तौर पर एक तुर्क कहावत के अनुसार "तुम्हारी प्रेमिका के सिवाय, स्त्रीमात्र तुम्हारे लिये पूर्ण है"।

एक फ़ैश्न महिला ने अब्दुल कादर के सामने पोलिश कहावत पेश की 'एक स्त्री अपने सिर के एक बाल से

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

२६ वैशाख शुक्रवार १६६७

रवीन्द्र जयन्ती

परम पिता की असीम कृपा से विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ८० वां जन्म दिवस ८ मई को मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रायः भारतीयों की आयु बहुत अल्प है, भारत में महापुरुषों की जयन्तियां भी बहुत शीघ्र मनाई जाने लगती है। वस्तुतः यह बड़े हर्ष का विषय है कि कविवर रवीन्द्र ८० वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं, और पर्याप्त दीर्घायुष्य को प्राप्त कर सके हैं। यद्यपि वेद की दैनिक प्रार्थना में "भूयश्च शरदः शतात्" का सन्देश है। हम भी विश्व कवीन्द्र के सभी भक्तों और प्रशंसकों के साथ इस महापुरुष के दीर्घायुष्य के लिये परम पिता से प्रार्थना करते हैं और कविवर के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

विश्व में, वर्तमान युग में परतन्त्र भारत का सिर ऊंचा करने वालों में, विश्व को भारतीय सन्देश सुनाने वालों में रवीन्द्र का नाम महात्मा गांधी के साथ याद आता है। गीताञ्जलि लिखकर 'नोबल प्राइज' जीतने वाले परतन्त्र भारतीय पर देश गर्व कर सकता है। अमेरिका रूस चीन आदि देशों में जाकर विद्वत्समाज को भारत का सन्देश सुनाने का काम कविवर ने ही प्रथम सफल किया। दार्शनिक जगत में, Hibbert Lectures की व्याख्यान माला में 'Religion of man' सुनाया। आज विद्यार्थी काल में अध्यापक नियन्त्रण से बच कर भागने वाले, यूनिवर्सिटी के दरवाजों को न देख सकने वाले इस व्यक्ति को संसार विश्व का सर्वोत्तम मस्तिष्क कहते हुए गर्व अनुभव करता है।

आज कवीन्द्र का शान्ति निकेतन विश्व की विरुद्ध संस्कृतियों के समन्वय की संस्था बनी हुई है। संसार की सभी भूत या वर्तमान संस्कृतियां के प्रतिनिधि उसे अपना तीर्थ स्थान समझते हैं। रवीन्द्र के ग्रन्थों का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है, संसार में भारत का सिर ऊंचा करने का श्रेय श्री रवीन्द्र को स्वभावतः प्राप्त होता है।

रवीन्द्र विश्व विदित कवि हैं। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने अपना विकास किया है। गीताञ्जलि, साधना आदि में इनकी गाम्भीर्यमय आध्यात्मिक कविता उपलब्ध होती है। कहानियां, निबन्ध नाटक गीति सब क्षेत्रों में इनका पूर्ण आधिपत्य है। विचारों का गाम्भीर्य, जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति, संसार के सब पदार्थों से जीवन के सब दृष्टि कोणों से—साक्षात् सम्बन्ध कवि की कृतियों में स्थान स्थान पर परिलक्षित होता है।

रवीन्द्र न केवल साहित्यकार हैं अपितु उन्होंने शिक्षा के विषय में भी एक महान क्रान्ति की है। मैकाले की मन को दास बनाने वाली शिक्षा के विरुद्ध प्रकृति की गोद में रख कर बालकों की आत्मा का मान करते हुए सम्पूर्ण विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करते हुए सब संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय करने वाली प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को ध्यान में रख कर शान्ति निकेतन की स्थापना की। रवीन्द्र के विचार में शक्ति है, उनके सत्य में रचनात्मक प्रवृत्ति है वे क्रिया में आना चाहते हैं।

रवीन्द्र ने भारत को जगाने में महत्व पूर्ण भाग लिया है। बंग भंग के दिनोंमें—लेखों से, नाटकों से, गीतों से सब बंगाल को जगाने वाले यही थे। आपके लेख आज भी देशभक्ति की भावना जगाते हैं। 'अयि भुवन मन मोहनी' आज भी मन में सम्पूर्ण भारत का चित्र खींच देता है। पीड़ित मानवता की, देश और जाति की वेदना रवीन्द्र को व्यथित कर देती है। वह राजनीतिज्ञ नहीं है पर उसका हृदय राजनीतिक दुःखों से व्याकुल रहा है। वह भारतीय संस्कृति का उपासक है, उपनिषदों से उसने प्रेरणा पाई है, कालीदास और बाण का संदेश सुना है। लोक गीतों में रम पाया है। रवीन्द्र के गीत आज मानव की दुर्गम यात्रा में साहस-बधाने वाले हैं भग्न हृदय में आशा का संचार करने वाले हैं। वाल्मीकि व्यास, कालीदास-भवभूति इन सब बड़े कवियों के बाद इस युग में एक बार फिर रवीन्द्र ने उसी प्राचीन भारती का आविष्ठान किया है।

रवीन्द्र जैसी विभूति कई युगों के सुकृत पुञ्ज के परिणाम स्वरूप किसी देश को उपलब्ध हुआ करती है। हम भारतियों को अपने इस महान कलाकार के लिये गर्व है। हमारा इस विश्व गुरु को बार बार प्रणाम है। हम परम पिता से पुनः उनके दीर्घायुष्य के लिये प्रार्थना करते हैं।

—आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस

अभी देहली में देश के प्रगतिशील कहलाने वाले मुसलमानों की एक कान्फ्रेन्स हुई जिसमें मुसलमानों के कुछ सच्चे नेता जिन्होंने देशके लिये अपनी बड़ी २ सेवायें दी है, स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में जो कई बार जेल जा चुके हैं इकट्ठे हुए। इस में उन्होंने बड़ी उदारता पूर्वक देश की वर्तमान गम्भीर परिस्थितियों को हल करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों के इधर कुछ वर्षों के राष्ट्रिय इतिहास में यह कान्फ्रेंस अपना एक विशेष स्थान रखती है। इस प्रकार के उदार विचारों वाले मुसलमानों का इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठा होना उनके लिये एक गौरव की वस्तु है। इस कान्फ्रेंस के प्रधान श्री खां बहादुर अल्लाबख्श भी इस पद के योग्य ही थे। इस कान्फ्रेंस में सर्व प्रथम लाहौर में मुस्लिम लीग द्वारा स्वीकृत पाकिस्तान योजना का बड़े जोरदार शब्दों में खण्डन किया गया और सबने एक मत से स्वीकार किया कि भारत एक है उसकी

अखण्डता बनाए रखना हमारा कर्तव्य है। उसके खण्ड २ करने की योजना हिन्दु मुसलमान दोनों के लिये घातक है, हमारे लिये यह कदापि मान्य नहीं। इस कान्फ्रेंस ने यह भी सिद्ध हो गया कि मुस्लिम लीग मुसलमानों की एक-मात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं है।

कान्फ्रेंस में अन्य कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये जिनको देखकर हमें प्रसन्नता हुई कि देश की लड़ाई में अब मुसलमान अधिक देर तक पीछे रहना नहीं चाहते। हमको मुसलमानों में इस जागृति को देखकर कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु इसके बाद मुस्लिम हितों के संरक्षण के लिये जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसने पहले की गई सब कार्यवाही पर पानी फेर दिया—इस प्रस्ताव के सामने आते ही राष्ट्र-वादी मुसलमान भी अपने को सच्चा भारतीय दिखाने में असमर्थ रहे। यहां आकर 'मुस्लिम लीग' और 'आजाद मुस्लिम कान्फ्रेंस' में भेद नहीं रहा। स्वयं राष्ट्रपति मौलाना आजाद मुस्लिम हितों के संरक्षण के लिये इन्हीं विचारों के पोषक हैं। इन बातों को देखते हुए हमको अपने इन भाइयों से कभी २ बड़ी गहरी निराशा होती है। यह ठीक है कि मुस्लिम लीग जैसी धर्मान्धता और कट्टरता इन नेताओं में नहीं है। ये लोग देश की स्वतंत्रता को पूरे दिल से चाहते हैं परन्तु यह कहते हुए हमको दुःख होता है कि-हमारा यह विश्वास कुछ समय के लिये स्थिर हो गया है कि एक स्तर ऐसा है जहां पर राष्ट्रवादी मुसलमान और मुस्लिम लीगी मुसलमान कन्धे से कन्धा भिड़ाकर अपनी मुस्लिम नीति के नारों को बुलन्द कर सकते हैं और इस अवस्था में उनको देश की स्वतंत्रता की चिन्ता नहीं।

मुस्लिम हितों के संरक्षण के विषय में बम्बई के श्री आबिद अली के विचार हमें पसन्द आये। आपने देहली कान्फ्रेंस में इस संरक्षण के प्रस्ताव का विरोध किया, आप ने कहा कि स्वतंत्र भारत में हमारे क्या अधिकार होने चाहियें इसका निर्णय करने का अधिकार हमको नहीं किन्तु उन प्रतिनिधियों को होगा जो कि उस समय होंगे जबकि भारत स्वतंत्र होगा। उस समय की देश की परि-स्थितियों का ध्यान में रखते हुए तत्कालीन नीति के अनुसार इस विषय में उन्हीं लोगों का विचार करने का अधिकार है। हमारे लिये ऐसी स्थिति नहीं है कि हम उसके लिये व्यर्थ में माथापच्ची करें। उस समस्या पर जो बहुत दूर है—और जिससे पहले कई समस्यायें हल करनी अत्यन्त आव-श्यक हैं विचार करना समय की गति के पीछे रहना है। यद्यपि हम इन विचारों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं परन्तु फिर भी मुसल्मानों की जागृति के लिये ये विचार आशा जनक हैं। हमारी सम्मति में जातीय-या साम्प्र-दायिक अधिकारों के लिये पृथक रूप से राज्य को विचार करने की आवश्यकता नहीं है। राज्य को तो भारतीय की दृष्टि से भारतीय हितों की रक्षा करनी है।

यह कान्फ्रेंस राष्ट्रिय दृष्टि से इतनी सफल नहीं हुई जितनी प्रारम्भ में प्रतीत होती थी, परन्तु फिर भी हमको आशा है कि अब मुसलमान और अधिक रूप से भारत के साथ आत्मीयता स्थापित करके उन क्षुद्र बातों की बिल्कुल उपेक्षा कर देंगे जो कि देश के लिये और उनके अपने लिये घातक हैं।

बीदर को दंगा-

हैदराबाद सत्याग्रह के बाद हमको कुछ आशा बंधी थी कि हैदराबाद में अब कुछ शान्ति से और निष्पक्षता की नीति से काम लिया जायगा, बीच २ में कुछ घटनाएं ऐसी हुई जिनके लिये यह कहा जा सकता था कि अधि-कारी इन बातों को दूर करने में सतर्क हैं-परन्तु बीदर के अमानुषिक नृशंस घटना को देखकर हमें फिर कहना पड़ेगा कि हैदराबाद की दशा पहले की ही तरह है। अब भी वहां के अधिकारी अपने कर्तव्यपालन में उचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। यहां तक की दो मन्त्री जो कि दंगे के स्थान से कुछ ही दूर थे स्थिति को देखने तक के लिये समय के अभाव में नहीं आ सके। और स्थानीय पुलिस ने भी इस विषय में उपेक्षा दिखाई हो यही नहीं किन्तु उसने भी उन मुस्लिम गुण्डों की इस कार्यवाही में सहा-यता दी। ऐसी अवस्था हैदराबाद रियासत के लिये आश्चर्य जनक तो नहीं किन्तु शोचनीय अवश्य है।

हम रियासत के संचालकों से यह आशा करेंगे कि वह इस कांड की निष्पक्ष जाँच कराए और जो अपराधी हैं उनको कठोर दण्ड दिया जाय तथा जिनको हानि हुई है उनकी सहायता की जाय। रियासत को यह मालूम हो कि उसकी अधिक प्रजा हिन्दू प्रजा है उसकी समृद्धि में ही उसकी समृद्धि है, हिन्दुओं के सहयोग के कारण ही उसकी नींव दृढ़ रह सकती है। इतनी बड़ी प्रजा की उपेक्षा करना किसी भी रियासत के लिये अदूरदर्शिता का काम है, इसका परिणाम स्थायी सन्तोष जनक नहीं हो सकता, यह भूलना नहीं चाहिये। हमें आशा है कि हैदराबाद रियासत अब भी संभल कर कदम उठायेगी, जिससे वह अपनी स्थिति को स्थिर बना कर सके।

'श्री सतीश'

प्रभात की रश्मियों में—

ले० श्री सत्यभूषण 'योगी'

(श्री सत्यभूषण योगी गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक हैं-हिन्दी के उदीयमान कवि है-। मेरठ शहर से १२ मील दूर आर्य संस्कृति के क्रियात्मक केन्द्र के तौर पर प्रभात आश्रम की स्थापना हुई है-उसमें आप ललित कला विभागके अध्यक्ष हैं।)

—संपादक

प्रभात आश्रम के घाट की सीढ़ियों पर बैठा मैं कपड़े धो रहा था-तीन चार ग्रामीण बालक मेरे चारों तरफ खड़े होगए-एकने कहा—"क्यों जी तुम कहां रहते हो ?—"

"पंजाब" मैंने कहा—

"पंजाब में इस लड़के का भाई एक वकील के यहां काम करता है, आप उसे जानते होंगे' मैंने कहा—' नहीं, पंजाब बहुत बड़ा है, उसमें इसके भाई का क्या पता ?"

"कितना बड़ा है ?"

जवाब देने को ही था कि दूसरा बोल उठा—"क्यों जी-यह बिलायत किस तरफ है ?"

छोटेपन में भूगोल पढ़ा था भूल गया कि किस तरफ है विलायत। सोचने लगा कि क्या जवाब दूं—इतने में वह लड़का ही बोल उठा—"सुना है कि इस तरफ है ! (उसने उँगली से एक तरफ को इशारा किया)"

मैंने कहा—"शायद" और मैं कुछ सोचने लग गया-क्या ? एक गुलाम क्या सोचेगा !

—२—

गुरुकुल कांगड़ी के जलसे पर शामिल होने के लिये मैं आश्रम से चला—रास्ते में एक ग्रामीण महिला मिली—सिर पर घास का गट्ठड़ लादे चली जा रही थी टीकरी गांव की ओर —मुझे सफर का सामान साथ लिये जाते देख बोली—"क्यों बाबू जी, किधर को चले"

"हरिद्वार"—मैंने जल्दी में संक्षेप में ही कहा—

"हरिद्वार जा रहे हो—? वहां मेरा लड़का सिगरेट बेचने का काम करता है, नाम उसका रघुवर दयाल है, उससे कह देना कि तुम्हारी मां मिली थी, घास का गट्ठर सिर पर ले जा रही थी, कहती थी किसी किस्म का फिक्र न करना—सब आराम से है—" मैंने कहा—"बहुत अच्छा—" हां, और कहता भी क्या ?

—३—

प्रभात आश्रम से १ मील के लगभग एक झाल है—बोहला गांव निकट होने से बोहला की झाल कहलाती है-हरिद्वार से निकली हुई नहर, जो गुरुकुल-माता के चरणों का चुम्बन कर, उसके चंचल बालकों का उच्छृंखल चंचलता अपने में भर, मुसकाती इठलाती गाती चलती है—उसी नहर को झाल यहां है—बड़ा भारी बिजली का संग्रह-गृह यहां पर है।

प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान बड़ा सुन्दर है-कई बाग हैं—लीची, आड़ू, तरह तरह के आम, सबकी बहुतायत है—इनमें से एक बाग में मैं बैठा था—मालियों के पास—ने पूछा—"क्यों जी-हमें कुछ आड़ू के बीज चाहिए मिलेंगे ?"—"क्यों नहीं जरूर, आप जब चाहे ले सकते हैं-पर आपको क्या काम ?" "अपने आश्रम में बोएंगे—" मैंने कहा—

"इसके लिये तो आपको आड़ू के पौधे पर कलम लगवानी होगी-यदि कलम नहीं लगवाएंगे। तो आड़ू ही रह जायगा—कड़वा—!"

"बहुत अच्छा कलम भी लगवालेंगे !"

"पर आप तो कांग्रेसी हैं, आप को तो देसी आड़ू ही लगाना चाहिए" एक दूसरे माली ने कहा—

"क्यों, कलमी आड़ू विलायती होता है क्या ?-मैंने मुसकाते हुए कहा " इसका बीज देसी, जमीन देसी, कलम देसी, कलम लगाने वाला देसी और खाने वाला देसी ! इसमें विलायती पना क्या है।

"ठीक है जी—है तो देसी-"माली ने समझते हुए कहा—

मैंने कहा "भाई, यह सब गुलामी का नतीजा है—जो चीज खराब हो वह देसी, जो अच्छी हो वह विलायती—ऐसा हम समझते हैं। गुलामी हमारे दिल पर भी असर कर चुकी है-नस नस में समा गई है। सुनो, हाथ में हथकड़ियां पहनाने से कोई गुलाम नहीं होता-पर दिल की गुलामी गुलामी है—इन अंग्रेजों ने हमें जो शिक्षा दी है, उसका यह स्वाभाविक परिणाम है—"

तुम्हें कोई बेवकूफ कहे-तो कोई बात नहीं-पर जब तुम दांत निकाल कर खिलखिलाते कहने लगो—कि मैं बेवकूफ हूं-मैं बेवकूफ हूं-तो यही समझा जायगा कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है-माली ने निश्चयपूर्वक कहा—

'बहुत ठीक—तो यह आड़ू देसी है न !'

"हांजी—" माली ने इतना ही कहा—वह गौर से मेरे चेहरे की तरफ देख रहा था—

मैंने कहा—"अंग्रेजों के मुल्क में—इतने फल, सब्जी, फूल, नहीं होते, जितने हमारे यहां—

हमें अपने घरों से इन्होंने निकाल दिया-और कहते हैं-तुम कौन ?

ग़ज़ब तो ये है मकान वाले मकां से बाहर पड़े हुए हैं !

पर वक्त आने वाला है-आज नहीं तो कल इन्हें अपना बोरिया बिस्तरा बांध कर यहां से सात समन्द्र पार ही जाना होगा—

"ठीक है जी" माली ने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—

मैंने कहा-अच्छा, अब चलें, नमस्ते, फिर मिलेंगे—

और मैं लौट गया—कुछ सोचता हुआ- क्या ? गुलाम क्या सोचेगा ?

आवश्यकता

नेटाल (अफ्रीका) में एक हिन्दी पढ़ा सकने वाले सुयोग्य अध्यापक की आवश्यकता है। उन्हें लगभग ३ घंटे हिन्दी पढ़ाने तथा कभी कभी धार्मिक उपदेश देने (हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में) और संस्कार कराने का काम करना होगा। वेतन लगभग ५पौंड (सौ रु०) होगा। आने जाने का किराया संस्था (Lower Tegula Hindi pathshala) की तरफ से दिया जायगा। परन्तु वे यह चाहते हैं कि वह व्यक्ति अविवाहित नौजवान हो। अनाथ हो तो और अच्छा है।

[पृष्ठ ३ का शेष]

बैल के जुए की अपेक्षा कहीं अधिक खींच सकती है, जिस के जवाब में उसने कहा "बाल अनावश्यक परिच्छद है, क्योंकि स्त्री नियति को तरहशक्तिशालिनी है"।

लेकिन हम प्रेम को शासक शक्ति की अपेक्षा आनन्द के देवता के रूप में देखना अधिक पसन्द करते हैं— गृहस्थ का वह आनन्द 'जिसमें दोनों के हृदय परस्पर निश्चिन्त और विशुब्ध होते हैं'।

'प्रेम में एक ऐसी रहस्यमय सहानुभूति है, जो चाँदी की शृंखला और रेशम की डोर के समान आत्मा और शरीरों के मन को मन से और हृदय को हृदय से बांध सकती है, Ibid।

जो बात बेकन ने मित्र के लिये कही है, सहधर्मिणी वह स्त्री के लिये भी बिलकुल ठीक है। वहां लिखा है "जो मनुष्य मित्र को अपने आनन्द में शामिल करता है वस्तुतः वह स्वयं और अधिक आनन्दित हो रहा होता है; और जो मनुष्य मित्र को अपने दुःख में शामिल करता है, वह अपने दुःख को बहुत सीमा तक दूर कर देता है"

हमारे पास कोई ऐसा व्यक्ति, जिससे हम प्यार करते हैं, ज्यों ही आता है "हम अनुभव करने लगते हैं, कि फूलों में वृक्षों में और पृथ्वी पर ही नहीं बल्कि हरेक चीज में कुछ विचित्र परिवर्तन हो गया है। हरेक चीज नई मालूम पड़ने लगती है।" Trench।

मेरा विचार है, होमर ने जो कुछ भाग्य के सम्बन्ध में कहा था, उसे हम प्रेम के सम्बन्ध में लागू कर सकते हैं। "उसके चरण बहुत ही कोमल होंगे, क्यों कि वह इन्हें पृथ्वी पृष्ठ पर न रख कर मनुष्यों के मस्तकों पर रखता है"

[अग्रिम अंक में समाप्त]

गुरुकुल समाचार

विद्यारत्न १४ श्रेणी चोट, पुरुषोत्तम १४ श्रेणी सिरदर्द, नारायणदेव ५ श्रेणी मलेरिया ज्वर, महावीर ४ श्रेणी मलेरिया, जगदीश ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, रामकुमार ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, विद्याधर २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, धर्म दत्त २ श्रेणी मस्स, ओम्प्रकाश २ श्रेणी मस्स, प्रेमनिधि २ श्रेणी मस्स, योगेश्वर १ श्रेणी खसरा।

गत सप्ताह ऊपर लिखे ब्र० रोगी हुए थे अब सब अच्छे हैं। ब्र० योगेश्वर के अभी ज्वर तथा खसरा है। आज ज्वर कम होगया है आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आज कल गर्मी पर्याप्त हो गई है। अधिकतम ताप मान १०० फा० होता है। पिछली रात ठण्ड भी पर्याप्त हो जाती है।

ऋतु परिवर्तन के साथ २ गरमी भी बढ़ती जा रही है, ब्रह्मचारियों ने नहर में नहाना प्रारम्भ कर दिया है। पंचपुरी तैरी सान्मुख्य ६ ज्येष्ठ को होगा इसको सफल बनाने के लिए क्रीडामंत्री श्री विद्यारत्न जी तथा उपमंत्री श्री वासुदेव जी बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के प्रधानमंत्री का चुनाव हो चुका है उसका परिणाम इस प्रकार है। कांग्रेस दल के उम्मीदवार श्री रामदेव जी को ४६ मत मिले, तथा हिन्दू महासभा के उम्मीदवार श्री सत्यव्रत जी को ४० मत मिले, इस प्रकार श्री रामदेव जी प्रधान मंत्री घोषित किए गये।। राष्ट्रप्रतिनिधि सभा की बैठक ६, ७, ८, जुलाई को होगी।

हॉकी तथा हस्तकन्दुक के अन्तिम सान्मुख्य का परिणाम निम्न है। हॉकी में द्वादश श्रेणी विजयी रही, तथा हस्तकन्दुक में चतुर्दश। स्नातक तथा ब्रह्मचारी हॉकी में समान रहे। हस्तकन्दुक में स्नातक बन्धु विजयी रहे।

श्री आचार्य स्वामी अभय देव जी, श्री मुख्याधिष्ठाता पं० सत्यव्रत जी, सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री दीन दयालु जी शास्त्री तथा प्रस्तोता उपाध्याय श्री वागीश्वर जी लाहौर विद्यासभा की बैठक में गये थे अब सब लौट आए हैं।

२७ वैशाख बुधवार को रवीन्द्र जयन्ती मनाई गई जिसमें ब्रह्मचारियों ने कवीन्द्र के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां समर्पित करते हुए योग्यतापूर्ण निबन्ध पढ़े।

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम का २१ वां महोत्सव

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम का २१ वां वार्षिकोत्सव आगामी ता० १७, १८, १९ मई १९४०, तदनुसार वैशाख शुक्ल १० ११, १२, १९९७ शुक्र, शनि, रविवार को बड़े धूमधाम से मनाया जायगा। इस अवसर पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, सरस्वती सम्मेलन, आर्यसम्मेलन आदि होंगे। इस महोत्सव को सफल बनाने के लिए लब्धख्यात श्री महात्मा नारायणस्वामी, श्री पं० अयोध्याप्रसादजी वैदिक-रिसर्च-स्कॉलर, श्री पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थ आदि महानुभाव पधारेंगे। पूर्ण आशा है कि देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद जी भी इस शुभ अवसर पर दर्शन देंगे।

अतः आपको सानुरोध निमंत्रण है कि आप भी अपने परिवार, बन्धु-बान्धव तथा इष्ट मित्रों सहित पधारकर हमारी सफलता में सहायक बन अनुगृहीत करें।

आपके दर्शनाभिलाषी—

दीपचन्द पोद्दार	सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार	वीरेन्द्रविद्यावाचस्पति एम० ए०
प्रधान	मंत्री	मुख्याधिष्ठाता

कविता सम्मेलन

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम के वार्षिकोत्सव के समय ता० १९ मई के ८ बजे रात्रि से कविता सम्मेलन होगा। इसको सफल बनाने के लिए कवियों से सानुरोध निवेदन है कि वे अपनी कविताएं १७ मई तक संयोजक के पास भेज दें। कवितायें सामयिक होनी चाहिए।

समस्यायें-

१ पाकिस्तान
२ मची है
३ चढ़ाऊँगा
१ दलनम
२ वनेस्मिन

संयोजक कविता सम्मेलन
डा० गुरुकुल वैद्यनाथधाम
सन्थालपरगना

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ५ ज्येष्ठ १९९७, १७ मई १९४० [संख्या ४

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-और कांग्रेस

राष्ट्र की नवीन जागृति के साथ २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी निरन्तर उन्नति करता जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों के अधिवेशनों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि सम्मेलन हिन्दी के लिए पहले से कहीं अधिक सतर्क और प्रयत्नशील है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि इन अधिवेशनों में ऐसी कुछ त्रुटियां या ऐसी अप्रिय घटनाएं हो जाती हैं जिनसे हमारा पराधीन मनोवृत्तियां अपना बाह्य रूप प्रकट कर देती हैं परन्तु समय की गति को ध्यान में रखते हुए ये बातें क्षम्य और उपेक्षणीय हैं।

यह आवश्यक नहीं कि जो राजनीति में पटु है, देश की चिन्ताओं का भार जिस पर है वह अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र में उसी वेग के साथ पंचुपात कर सकता है। पहले सम्मेलन ने ऐसा ही समझा और इसके अनुसार कार्य भी किया परन्तु इसका जो कुछ फल प्राप्त हुआ उसे वह आजतक नहीं भुला सका है। उर्दू का राष्ट्र लिपि घोषित करने के बाद और हिन्दी की व्यापक व्याख्या में गुप्त रूप से उर्दू का ही प्रचार तथा अन्यान्य कई इसी प्रकार की बातों ने सम्मेलन के वास्तविक कार्यकर्ताओं को चौकन्ना बना दिया। उन्होंने अनुभव किया कि वे अपने उद्देश्य के लिए गन्तव्य मार्ग को छोड़ बैठे हैं— यहीं से फिर सम्मेलन में अतिरिक्त साहित्य सेवी तथा कांग्रेसी साहित्य सेवियों में विरोध प्रारम्भ हुआ, इस विरोध ने 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार को देखकर और अधिक आग पकड़ी-इसका स्पष्टीकरण शिमला के अधिवेशन में खूब खुल कर हुआ। लोगों के मन में कांग्रेसी साहित्य सेवियों के प्रति कुछ श्रद्धा शेष थी अन्यथा वे घटनाएं होजाती जिनके लिए लज्जित होना स्वाभाविक था।

शिमला के अधिवेशन ने और राजनैतिक परिस्थितियों ने तथा वर्तमान हिन्दुस्तानी ने भविष्य के लिए स्पष्ट कर दिया है कि कांग्रेस साहित्य सेवियों और साहित्य सम्मेलन के उद्देश्यों में एकी करण असम्भव है। इनमें अन्तर कहने या लिखने में सामान्य सा ही हो परन्तु वर्ण संकरता के साथ इसके कर्णधार कहलाने वाले नेताओं द्वारा एक पक्ष की ऐसी हत्या है जिसे देखने से पहले चुल्लुभर पानी में डूब मरना श्रेयस्कर है। यह बात हम कोई भावना के आवेश में आकर नहीं किन्तु पूरे ठण्डे दिमाग से सोचकर ही लिख रहे हैं। हमारे राष्ट्रीय कहलाने वाले दिमागों ने हिन्दी का विरोध कर 'हिन्दुस्तानी' का आविष्कार कर मुसलमानों के शासन का हमारे मनों पर जो प्रभाव पड़ा था उसका परिणाम है। इस हिन्दी हिन्दुस्तानी के विषय में बहुत वाद विवाद पत्रों में चला है अतः हम यहां अधिक नहीं लिखते फिर भी इतना लिखदें कि आंखें खोल कर चलने वाले लोग अब हिन्दुस्तानी के पीछे नहीं चल सकते। हिन्दी के विषय में 'गुरुकुल कांगड़ी' गर्व कर सकता है, इसी के नाते हम यह कह सकते हैं कि शुद्ध और आदर्श हिन्दी यदि कहीं की है तो वह गुरुकुल कांगड़ी की ही है। अपने ही पत्र में अपनी प्रशंसा शिष्टाचार और सम्भवतः नैतिकता के भी विरुद्ध है परन्तु फिर भी हम कह सकते हैं कि हमको अपनी हिन्दी पर गर्व है। अभी निकट भविष्य में पंजाब की व्यवस्थापिका सभा में जब हिन्दी में शिक्षा देने के लिए प्रश्न किया गया तब यही उत्तर दिया गया कि हिन्दी में हमको पारिभाषिक शब्द नहीं मिलते हैं-यह अपूर्ण है। माननीय सदस्य भी इसका कुछ उत्तर नहीं दे सके परन्तु हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि यदि किसी को पारिभाषिक शब्द ज्ञात न हों तो वह हमसे पूछें हम उनको बतायेंगे-अस्तु यह एक अवान्तरिक बात प्रसंग वश कहदी।

इस बार का सम्मेलन पूना में होना निश्चित हुआ था हिन्दी के पुराने कार्य कर्ता श्री काका कालेलकर ने इसके लिए निमन्त्रण दिया था जिसको कि सबने सहर्ष स्वीकार किया, परन्तु स्वागत कारिणी सभा के चुनाव में जैसा कि सुना जाता है कांग्रेसी और हिन्दू महासभा वादियों में संघर्ष हुआ जिसमें हिन्दू महासभा वादियों को बहुमत प्राप्त हुआ और इससे रुष्ट होकर श्री काका कालेलकर जी ने अपना निमन्त्रण लौटा लिया। यदि वस्तुतः यही बात

है तो सचमुच बड़ी दयनीय दशा है। इस बात से कांग्रेस और साहित्य सम्मेलन में और अधिक कटुता उत्पन्न हो जायगा। कांग्रेसी हिन्दुस्तानी साहित्य-सेवियों को यह ध्यान रहे कि वे अपनी इन कृतियों द्वारा एक बड़े भारी शिक्षित वर्ग को व्यापक रूप से विरोधी बना रहे हैं।

'श्री मनीश'

सामयिक साहित्य

योग के आधार—श्रीअरविन्दकी 'बेसेज आफ योग' (Bases of Yoga) नामक अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक श्रीमदन गोपाल गाडोदिया। प्रकाशक श्रीअरविंद ग्रंथमाला पांडीचेरी, सोलएजेन्ट्स दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, (त्यागराय नगर, मद्रास) मूल्य २) रु०।

योग व्यावहारिक मनोविज्ञान है जो मनुष्य को पूर्ण बना देता है। सभी सच्चे धर्मों की आन्तरिक साधना सारूप में योग ही है। श्रीअरविन्द ने अपने पांडीचेरी आश्रम में योगकी जिस कला का विकास किया है वह अभूतपूर्व है। इस योग में प्राचीन आध्यात्मिक साधनाओं की आवश्यक शक्ति तो है ही, बल्कि यह उनके भी परे जाता है और उनको पूर्ण बनाता है। साधारणतया, योग से लोग यही समझते हैं कि यह मनुष्य को जीवन से उदासीन कर देता है और उसको एकांतवासी या वैरागी बना देता है। परन्तु श्रीअरविन्द के योग का उद्देश्य यह नहीं है, यद्यपि मानव जाति के वर्तमान जीवन की अपूर्णताओं पर उनकी दृष्टि प्राचीन योगियों जितनी ही है, तथापि पूर्णता की खोज में वे जीवन से भागते नहीं, बल्कि वे चाहते हैं कि मानवजाति की बुराइयों और अपूर्णताओं को दूर कर दें, जिससे कि मानव जीवन एक दिव्य जीवन में परिणत हो जाय। वे कहते हैं "इस योगकी सबसे पहली शिक्षा यह है कि जीवन और उसकी कठिनाइयों का शांत मन, दृढ़ साहस और भागवत शक्ति पर पूर्ण भरोसा रख कर मुकाबला किया जाय।"

प्राचीन योगों के अनुसार साधक को अपनी ही चेष्टा और तपस्या के द्वारा, हठयोग, राजयोग, तांत्रिक विधियों आदिका अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना होता है। परन्तु श्रीअरविन्द योग में जिस एक मात्र प्रयास की आवश्यकता है वह यह है कि साधक संपूर्ण रूप से अपने आपको भगवती माता के वरद हस्तों में सौंपदे। वे कहते हैं—"'योगी' संन्यासी या तपस्वी बनना यहां का ध्येय नहीं है। यहां का ध्येय है रूपांतर और यह रूपांतर उसी शक्ति के द्वारा हो सकता है जो तुम्हारी अपनी शक्ति से अनन्तगुण महान् है, यह तभी सम्भव है जब तुम भगवती माता के हाथों में सचमुच एक बालक की भांति बन कर रहो।" भागवत उपस्थिति, स्थिरता शांति, शुद्धि, शक्ति, प्रकाश, आनन्द और विशालता आदि ऊपर से तुम में अवतरण करनेको प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऊपरी तलके पीछे रहने वाली इस अचंचलता को तुम प्राप्त करलो तो तुम्हारा मन भी अधिक अचंचल हो जायगा, फिर इस अचंचल मन के द्वारा तुम पहले शुद्धि और शांति का और बाद में भागवत शक्ति का अपने में आवाहन कर सकोगे·········तुम तब यह भी अनुभव करोगे कि वह शक्ति तुम में इन प्रवृत्तियों का परिवर्तन करने के लिये और तुम्हारी चेतना का रूपांतर करने के लिये कार्य कर रही है। उसके इस कार्य में तुम्हें माता की उपस्थिति और शक्ति का ज्ञान होगा। एक बार जहां यह हो गया तब बाकी का सब कुछ केवल समय का और तुम्हारे अन्दर तुम्हारी सत्य एवं दिव्य प्रकृति के उत्तरोत्तर विकास होने का ही प्रश्न रह जायगा।"

साधन-मार्ग में जो व्यावहारिक समस्याएं और कठिनाइयां उपस्थित होती हैं उन्हें गुरु साधक-विशेष की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार हल करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक श्रीअरविन्द ने अपने शिष्यों को उनके प्रश्नों के उत्तर में जो पत्र लिखे उन में से कुछ का संग्रह है और ये पत्र अनेक व्यावहारिक विषयों पर प्रकाश डालते हैं, जैसे कि श्रद्धा, समर्पण, कठिनाई, आहार, काम-वासना, अवचेतना, निद्रा, स्वप्न और रोग। यह पुस्तक इस तरह से तैयार की गयी है कि योग-साधन के जिज्ञासुओं को इससे पर्याप्त लाभ हो सके।

आज कल एक ऐसी प्रवृत्ति दिखायी पड़ रही है कि मानव जीवन और मानव समाज को आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित मानव प्रकृति के आधार पर पुनः संगठित किया जाय, और अवश्य ही यह प्रवृत्ति उचित मार्ग की ओर है, किन्तु अभी तक यह मनोविज्ञान बहुत गहराई में नहीं उतर सका है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि "यह नवीन मनोविज्ञान मुझे तो ऐसा दिखायी देता है जैसा कि बालक यथोचित रूप से वर्णमाला भी नहीं, किन्तु उसके किसी संक्षिप्त रूप को याद कर रहे हों और अवचेतना तथा रहस्यमय, गुप्त अतिअहंकार रूपी अपने क—ख—ग—घ को मिला मिला कर रखने में मग्न हो रहे हों और यह समझ रहे हों कि उनकी पहली किताब जो एक अधलासा आरम्भ है यही ज्ञान का वास्तविक प्राण है।" मनोविश्लेषण यह बताता है कि मनुष्य के जो निम्नतर आवेश हैं, उसकी इच्छा, कामना, लालसा, क्रोध, ईर्षा, डाह, काम-वासना आदि ये उसकी प्रकृति में निहित हैं। यदि तुम उनका निग्रह करो तो वे नष्ट नहीं होंगे, बल्कि अवचेतना में छिपे हुए पड़े रहेंगे और आक्रमण करने के लिये उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करते रहेंगे, अथवा यदि निग्रह बहुत अधिक मात्रा में होगा तो इससे स्वयं जीवन-शक्ति ही नष्ट हो जायगी। अतः उसका यह सिद्धान्त है कि यदि मानव जाति को जीवित रहना और उन्नति करना है तो उसे अपने निम्नतर आवेशों को स्वच्छन्द रूप से क्रीड़ा करने देना होगा। जिस सैन्यवाद का आज संसार में दौर दौरा है उस के तह में यही सिद्धांत भरा पड़ा है, जर्मनी

ने तो इस बात को खुले तौर पर कहा है कि युद्ध और उसकी तैयारी के द्वारा ही कोई जाति बलवान और तेजस्वी रह सकती है और संसार के अन्य सभी राष्ट्र इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए दिखायी देते हैं, फिर चाहे वे इस बात को स्वीकार करें या नहीं। और इस बात से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि इस में कुछ सत्य अवश्य है। प्राचीन यूनान के इतिहास को देखिये, उसकी सभ्यता बहुत अधिक बढ़ी और और वह ध्वस्त हुआ, भारतवर्ष के भाग्य को देखिये जहां उन्नतर नैतिक और आध्यात्मिक जीवनकी खोज में अहिंसा और जीवन-आवेगोंका कठोर निग्रह करने की शिक्षा दी जाती है। अस्तु, मनोविश्लेषण इस भावकी पुष्टि करता है कि मानव सभ्यता की एक सीमा है और वह इस सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती। जीवन के बाह्य संगठन में, शासन विधान में और उत्पादन और वितरण की पद्धति में जो कुछ भी फेर-फार क्यों न किया जाय किन्तु जब तक कामना, लालसा आदि के आवेश मानव प्रकृति में मौजूद हैं तब तक अत्याचार, शोषण और युद्ध जारी रहेंगे, और यदि मानव जाति इन आवेगों को नष्ट करदे तो वह सफलता पूर्वक आत्महत्या ही करेगी। परन्तु योग मानव जाति के सम्बन्ध में इस प्रकार के निराशापूर्ण विचार नहीं रखता। शांतिवादियों और नीतिवादियों में जो दोष हैं वह उन्होंने मनुष्यके सामने जो आदर्श रखा है उस में नहीं, बल्कि वह है, केवल अहिंसा के भाव का प्रचार करने और मनुष्य के मनको शिथिल बना कर शांति और सामंजस्य के साम्राज्य की स्थापना करने की उनकी जो पद्धति है उस में। क्यों कि आवेश, जिन के कारण ही युद्ध होता है और मनुष्य जीवन में पाप घुस आते हैं, अवचेतना में जड़ जमा कर बैठे हुए हैं और सत्ताके इस भाग पर मन और तकका जरा भी नियंत्रण नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य बहुधा अपनी इच्छा के विपरीत भी पाप करते हैं और राष्ट्र इच्छा नहीं रहते हुए भी युद्ध में प्रवृत्त होते है। परन्तु योग अवचेतना को शुद्ध करने और मानव प्रकृति में से इन जहरीले पौधों को उखाड़ फेंकने और वहां शांति,सामंजस्य, प्रकाश,शक्ति और आनन्द से पूर्ण आध्यात्मिक दिव्य जीवन की नींवकी स्थापना करने के लिए सच्ची पद्धतिका दिग्दर्शन कराता है। इस काम को जब कुछ व्यक्ति सफलतापूर्वक कर सकेंगे तब वे दूसरों पर अपना आध्यात्मिक प्रभाव डालेंगे और यह प्रभाव क्रमशः समस्त मानव जाति पर पड़ेगा नया मानव जीवन, समाज अपना स्थिर आधार आत्मा में बनावेगा और पृथ्वी पर स्वर्ग के उतर आने का स्वप्न चरितार्थ होगा।

यह सन्तोष की बात है कि फ्रांस में आज योग और आध्यात्म सम्बन्धी साहित्य का ही सब से अधिक प्रचार है और इन में भी श्री अरविन्दकी 'योगके आधार' और 'योग प्रदीप' पुस्तकों का फ्रेंच अनुवाद विशेषतः प्रमुख है। इस से इस बात का पता चलता है कि बाह्य रूप चाहे जो कुछ भी हो पर मनुष्य का हृदय उचित स्थान पर ही है। श्री अरविन्द जिस भाषा में योग सम्बन्धी विषय पर लिखते हैं वह एक बहुत ऊंची भूमिका से आती है और उसकी आध्यात्मिक शक्ति को अनुवाद में रखा करना संभव नहीं, फिर भी प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है और इस से श्रीअरविन्द ने जिस योग-मार्ग को संसार को बताया है, उसके समझने में हिन्दी-भाषा-भाषियों को बहुत बड़ा सहायता मिलेगा।

– अनिलबरण राय।

आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव

आर्यसमाजों के उत्सव जिस पद्धति से मनाये जाते हैं उससे आम जनता सुपरिचित है। आर्यसमाज की स्थापना के प्रारम्भ से ही, लगभग ६०-६५ वर्षों से, लगातार यही पद्धति चली आ रही है। नगर कीर्तन से प्रारम्भ होकर दो दिनों तक निरन्तर व्याख्यानों वा उपदेशों का तांता बंध जाता है।

यह पद्धति आर्य समाज के प्रारम्भिक काल में आर्य सिद्धान्तों का सन्देश आम जनता तक पहुंचाने के लिये भले ही आवश्यक एवं लाभकारी रही हो किन्तु आज इस पद्धति की जीवन शून्यता तथा अनाकर्षकता स्पष्ट अनुभव होने लगी है। यही कारण है कि अनेक आर्यसमाजों के अधिकारियों ने भी उत्सव पद्धति में परिवर्तन करने की आवश्यकता को अनुभव किया है और उचित परिवर्तन का श्री गणेश भी कर दिया है।

आर्यसमाज लुधियाना ने इस वर्ष निम्न परिवर्तनों के अनुसार अपना उत्सव मनाया है—

(१) नगर कीर्तन केवल सूचना के लिये हो। उस दिन रात्रि को एक स्थान पर विशेष रूप से भजन करवाये जावें और एक व्याख्यान हो।

(२) उत्सव के उपलक्ष्य में ज़िले भर में ८ दिन तक प्रचार करवाया जाय।

(३) दो दिनों तक निरन्तर व्याख्यानों के स्थान पर ज़िला-प्रचार-कार्य के पश्चात् १० दिन तक नगर के भिन्न २ और मुख्य-मुख्य केन्द्रों में रात्रि को विशेष व्याख्यान करवाये जांय।

(४) उत्सव-समाप्ति से पहिले दिन एक विशेष सम्मेलन रक्खा जाय। जैसे, लुधियाना समाज ने इस वर्ष हिन्दु संगठन विषयक सम्मेलन रखा है।

(५) आर्य समाज में उच्च शिक्षा प्राप्त सज्जनों की रुचि पैदा करने के लिये आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों के विशेष व्याख्यान कराये जायं।

तथापि वर्तमान कर्म प्रधान युग की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए अभी कई परिवर्तनों की आवश्यकता प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ाने, मद्यमांसादि का सेवन त्यागने, अछूतपन को मनसा वाचा, कर्मणा मिटाने, जात-पांत के विचार के बिना विवाह करने, बालविवाह-निषेध, ग्राम-सेवा आदि के बारे में आर्यों द्वारा वर्षभर में तथा वार्षिकोत्सवों पर क्रियात्मक सार्वजनिक उदाहरण प्रस्तुत किये जायं तथा इन अमली कामों का

(शेष पृष्ठ ७ पर)

गु रु कु ल

५ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९७

गुरुकुलीय सत्याग्रही दलकी आलोचना

(ले० अभय)

एक स्नातक भाई लिखते हैं—

"गुरुकुल पत्र में 'आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति' वाले लेखों को मैं बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ता रहा हूँ। इस बारे में मेरे मन में जो भाव उठ रहे हैं उन्हें आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ और साथ ही विनम्र प्रार्थना करता हूं कि आप इस पर गुरुकुल पत्र के द्वारा कुछ प्रकाश डालें।

गुरुकुल के साथ सम्बद्ध होने के कारण मैंने इस आहुति की कथा को बड़ी रुचि और एक प्रकार के उल्लास के साथ पढ़ना शुरु किया था परन्तु आप मुझे क्षमा करें यदि मैं कहूँ कि अब मेरी स्पष्ट सम्मति है कि इन लेखों में आहुति शब्द को पवित्रता का ज़रा भी ख़याल नहीं रक्खा गया। मुझे ख्याल आता है कि पांच छः वर्ष पहले आपने एक लेख में लिखा था कि यदि हमारी हवि पवित्र हो तभी वह इष्ट देव तक पहुंच सकती है और यज्ञ के देवता को आहुति देने से पहले हवि की पवित्रता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इन लेखों को पढ़ कर मुझे यह बात स्पष्ट दीखती है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने धार्मिक जोश में आकर अपनी दूषित हवि को पवित्र करने की ओर ध्यान नहीं दिया। यहां मैं यह कह दूं कि ब्रह्मचारियों के अन्दर जो उत्साह था सेवा भाव या बलि चढ़ जाने का भाव था वह तो सचमुच आदरणीय है परन्तु इस में उन्हों ने बहुत उतावलेपन से तथा सत्याग्रह के नियमों को समझे बिना काम किया है।

"मेरी समझ में नहीं आता कि एक सत्याग्रही किस प्रकार धोखे दे सकता है और यहां ब्रह्मचारियों ने श्री गणेश ही धोखे देकर किया है। बहुरूपी शक्लें बनाना, अपने नाम बदलना, अपने ठीक स्थान न बताना और तरह २ से सी० आई० डी० वालों को ठगने के प्रयत्न करना क्या उचित था? सत्याग्रह का आदर्श गांधी जी ने देश के सामने रक्खा है अतः इस बारे में उन्हीं की ओर दृष्टि डालनी चाहिए। डांडी कूच शुरु होती है तो महीनों पहले अल्टीमेटम देकर, धरसाना का नमक चुराना है तो वायसराय महोदय को सूचित करके डंके की चोट पर। मुझे तो लगता है कि विद्यार्थियों ने येन केन प्रकारेण हैदराबाद पहुंच कर वहां का नियम तोड़ने की ठानी। यह सत्याग्रह नहीं कहला सकता। देश में जो क्रान्तिकारी हुए हैं उन्हों ने तो इस मार्ग को अपनाया था पर कांग्रेस ने तो राजनीति में भी सत्य लाने का प्रयत्न किया। यहां से भी धोखे बाज़ों को देश निकाला देने की कोशिश कर रही है। फिर भला धार्मिक काम का श्री गणेश झूठ के साथ हो, यह कैसे सहा जा सकता है? केवल इतना ही नहीं मुझे तो यह लगता है कि इस असत्य व्यवहार में सफल हो जाने पर लेखक महोदय को बहुत गर्व भी है। यदि उद्देश्य निज़ाम सरकार को तंग करना होता या किसी प्रकार जेलें भर विजय प्राप्त करनी होती तो ये बातें समझ में आतीं पर इस में धार्मिकता या सत्य का लेश मात्र भी है क्या? क्या यह धर्म-युद्ध और सत्याग्रह शब्दों का अपमान नहीं है? गुरुकुल के विद्यार्थी भारत के अच्छी से अच्छी सोसायटी के प्रतिनिधि माने जायं तो यहां हमें स्पष्ट दीखेगा कि जब हमारे अच्छे से अच्छे लोग भी यहां तक जा सकते हैं तो साधारण समाज का क्या होगा।

"क्या ही अच्छा हो यदि हम सब इस अवसर से लाभ उठा कर अपने अन्दर दृष्टि डालें और अपनी कमज़ोरियों को दूर करें ताकि हमारा जीवन ही एक सत्याग्रह बन जाय।

यदि कोई कठोर शब्द लिखा गया हो तो उसके लिये क्षमा करें।"

स्नातक भाई के ये शब्द कुछ कठोर तो लगते हैं। इसका कारण शायद यह है कि स्नातक भाई ने-गुरुकुल पत्र के अन्य पाठकों की तरह-इस लेखमाला के वे प्रारम्भिक लेख ही पढ़े हैं जितने गुरुकुल पत्र में छपे हैं। परन्तु इस लेख माला के साथ पूरा न्याय करने के लिये यह आवश्यक है कि ११ अध्यायों की इस सम्पूर्ण लेख माला को पढ़ा जाय। इस के लिये मैं पाठकों को यह सूचना देना चाहता हूं कि सम्पूर्ण लेख माला एक छोटी सी पुस्तक के रूप में इस गुरुकुलोत्सव पर प्रकाशित हो चुकी है और उसका मूल्य केवल ।=) है। जो कोई सज्जन इसे सम्पूर्ण रूप में पढ़ना चाहें वे गुरुकुल के पुस्तक भंडार से मंगा सकते हैं। पुस्तक रूप में छप जाने के बाद उन लेखों को आगे गुरुकुल पत्र में छपाना अच्छा नहीं समझा गया।

यह ठीक है कि इस लेख माला के कम से कम तीन अध्यायों (अर्थात् २ रे, ३ रे और ४ थे अध्यायों) को पढ़ते हुए मुझे भी काफी बुरा लगा था, शर्म भी आती थी कि हमारे ब्रह्मचारी क्या २ कर रहे थे। जेल पहुंचने से पहिले तक गुरुकुल के इस दल ने जो कुछ किया उसे सत्याग्रह कहना उचित नहीं होगा। लेख माला के लेखक ने स्वयं लिखा है कि बिना 'सत्याग्रह' किये पकड़े जायें यह वे नहीं चाहते थे। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने सत्याग्रह के मतलब को ठीक तरह नहीं समझा था हैदराबाद पहुंच कर अमुक प्रकार पकड़े जाने को ही सत्याग्रह करना समझते थे। वेश बदलना अपने नाम और पते गलत बताना, सी. आई. डी. को नाना तरह धोखा देना यह सब उन्होंने इस लिये किया कि वे कहीं हैदराबाद पहुंचने से पहले न पकड़े जायं। इस सब काम को सत्याग्रह की जगह निष्क्रिय प्रतिरोध शब्द से भले ही कहा जा सकता था जैसा कि आर्य सत्याग्रह के

साथ में लड़ने वाले हिन्दु सभा के कार्य कर्ता खुल्लमखुल्ला अपनी लड़ाई को सत्याग्रह के बजाय निष्क्रिय प्रतिरोध कहना ही पसन्द करते थे। इसी लिये मैंने उस समय अपने आर्य सत्याग्रह में अपना कर्तव्य भाग यही समझा कि मैं इस सत्याग्रह को शुद्ध सत्याग्रह बनाने का अपनी शक्ति भर यत्न करूं और नेताओं के परिश्रम तथा परमेश्वर की कृपा से पीछे से धीमे २ यह हमारा आर्य सत्याग्रह बहुत उत्तम हो भी गया था। गांधी जी के द्वारा चलाए गए सार्वजनिक सत्याग्रहों के सैनिकों की अपेक्षा आर्य सत्याग्रह के हमारे सैनिक अपनी भावना और कार्यों में किसी तरह कम दर्जे के थे यह कोई नहीं कह सकता था।

इसी तरह जब ये गुरुकुल के सत्याग्रही वीर लौट कर आये और इन्होंने बड़े प्रेम से सब अपनी आप बीती सुनाई तो जहां इनके घोर कष्ट-सहन वीरता और तपस्या की बातें सुन कर हर्ष होता था, वहां इनकी इस प्रारम्भिक कार्यवाहियों को देख कर कुछ बुरा भी लगता था और इन में भी उनके सरल भाव को देख कर केवल हंसी भी आती थी। यह ठीक है हमारे ब्रह्मचारियों में बड़े से बड़ा कष्ट सहने की उमंग थी पर प्रेमपूर्ण होकर कष्ट सहने से कठोर से कठोर हृदय को भी पिघलाया जा सकता है इसकी तरफ ध्यान नहीं था। अतः शायद इन स्नातक भाई की तरह और मेरी तरह अन्य भाइयों को भी हमारे इन सत्याग्रहियों के वे प्रारम्भिक काम बुरे लगे होंगे। पर यह भी अच्छा ही है कि उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने का काम भी हमारे एक स्नातक ने ही किया है। मुझे इस पर कुछ लिखने की स्वयं आवश्यकता इस लिये नहीं प्रतीत हुई क्योंकि ऐसी बातें मैं सत्याग्रह के दिनों में गुरुकुल पत्र में पहले भी लिखता रहा।

पर यह साफ है कि ऐसा करने में उन थोड़ी उमर के गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का कोई दोष नहीं था-उनकी कोई जिम्मेवारी नहीं थी। जिम्मेवारी तो हमारी थी। इसी लिये मैंने ऊपर कहा है कि यह देख कर मुझे लज्जा आती थी और दुःख भी होता था। पर उनके प्रति जरा भी रोष नहीं आता था बल्कि हंसी आती थी। कारण यह कि इस प्रथम सत्याग्रही जत्थे को तो आदेश ही यह था कि उन्हें हैदराबाद पहुँच कर सत्याग्रह (अर्थात् एक निर्दिष्टप्रकार से कानून भंग) आरम्भ करना है। आज्ञाकारी सिपाहियों की तरह उनकी समझ के अनुसार उन्हें जो कुछ करना चाहिए था वही उन्होंने किया बल्कि उसे बहुत अच्छी तरह किया, आशा से अधिक अच्छी तरह किया। उस दृष्टि से देखें तो उनके इस सब कार्यों के लिये प्रशंसा का भाव पैदा होता है। इसी लिये लेखक की भाषा में अपने इन कार्यों के लिये शर्म नहीं किन्तु गर्व का भाव पाया जाता है। और लेखक ने अपने पकड़े जाने के पहले जो हैदराबाद की स्टेट कांग्रेस के सत्याग्रह को स्थगित करने के बारे में गांधी जी को एक पत्र लिखनेकी हिम्मत की वह क्यों की यह बात भी समझ में आजाती है।

पर आगे जब मैं यह सोचता हूं कि हमारे ब्रह्मचारियों के अन्दर सत्याग्रही के तौर पर इस प्रकार के काम करने की प्रेरणा, उत्साह और कौशल कहां से आया तो स्वभावतः मेरा ध्यान सन् ३३, ३४ की कांग्रेस की लड़ाई की तरफ चला जाता है। उस समय सरकार के कठोर दमन द्वारा कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन के दबा दिये जाने के कारण कांग्रेस की जो लड़ाई जारी रही वह लुक-छिप कर की गई लड़ाई ही थी। कांग्रेस कमेटियों के नाम सब आज्ञायें गुप्त रूप से तैय्यार की जाती थीं, छिपकर ही कापियां बांटी जाती थीं। और कुछ २ समय बाद कुछ लोगों को पकड़वा कर सत्याग्रह जीवित है इसका प्रमाण दिया जाता था। दो साल तक तो कांग्रेस का बृहदधिवेशन भी छिपकर कर डालने का सफलता पूर्वक आयोजन किया गया था। और छिपकर किये गये इन सब कार्यों में सफलता पाने के लिए जो कुछ कौशल किये जाते थे वे सब प्रशंसनीय माने जाते थे। इस लिए कांग्रेस की इस अन्तिम लड़ाई के संस्कार ही गुरुकुल के इन ब्रह्मचारियों के लिए—अन्य किसी तरह का पथप्रदर्शन न होने के कारण—पथ प्रदर्शक हुए हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह कहना बिना किसी को दोष दिये एक सचाई को प्रकट करना है कि हमारा कार्य सत्याग्रह प्रारम्भ काल में बिना किसी विधिवत् नेतृत्व के ही चल रहा था। इस सब को ध्यान में रखते हुये तो यह कहना उचित ही है कि गुरुकुल से भेजे गए इस प्रथम जत्थे ने जो कुछ किया वह अच्छा ही किया। उस पर इस तरह के दोष देखने का हमें कोई अधिकार नहीं रह जाता।

जैसा कि मैंने प्रारम्भ में कहा है कि चित्त को खिन्न करने वाली ऐसी घटनायें तो इनके जेल में पहुँच जाने से पहले २ की ही हैं, इस लेखमाला (पुस्तक) के ११ अध्यायों में से तीन अध्यायों में ही हैं। आगे की सब कहानी चित्त को बहुत हर्षित करने वाली है। लेखक ब्र० क्षितीश ने अदालत में जो बयान दिया है, वह साम्प्रदायिकता से बिलकुल अस्पृष्ट और कितनी उदात्त और सद्भावनाओं से प्रेरित है यह देखकर आनन्द होता है। और जेल में इनमें से प्रत्येक ने कैसी असह्य यन्त्रणायें वीरता पूर्वक और शान्त भाव से सहा है उन सबको सुनकर गुरुकुल के एक अधिकारी के रूप में मैं अपना मस्तक को ऊंचा हुआ अनुभव करने लगता हूं। फिर भी इस विषय पर लिखते हुये मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इन तीन अध्यायों के अतिरिक्त भी एक दो जगह मुस्लिम विरोधी भाव प्रगट किये गये हैं वे भी शोभा देने वाले नहीं हैं। अस्तु।

इस लेख माला में इस सत्याग्रही जत्थे की ६ महीने की यात्रा का बिना किसी बनावट के सच्चा २ हार्दिक वर्णन है। इसमें से कुछ भी छिपाना अभीष्ट नहीं था। इसलिए खुले तौर पर इस जत्थे के अग्रणी द्वारा लिखने दिया गया है और प्रकाशित होने दिया गया है। क्यों कि इसी प्रकार हम अपने पिछले कार्यों से आगे के लिए लाभ

उठा सकते हैं। हमारी इस त्रुटि की तरफ ध्यान आकृष्ट करने वाले उपर्युक्त आनक महोदय के इन शब्दों को अन्त में दुहराना चाहता हूं कि— "क्या ही अच्छा हो यदि हम सब इस अवसर से लाभ उठाकर अपने अन्दर दृष्टि डालें और अपनी कमज़ोरियों को दूर करें ताकि हमारा जीवन ही एक सत्याग्रह बन जावे"। यह सत्य है कि सत्याग्रह एक जीवन का सिद्धान्त है। केवल जेल चले जाने का नाम सत्याग्रह नहीं है। जिसने सत्याग्रही बनना है उसे अपने अन्दर गहराई से गहराई में घुसकर अपने आपको अपनी आत्मा की सत्यमयी प्रेरणा के अनुसार आमूल चूल परिवर्तन करना होता है। ज्यों २ मनुष्य ऐसा बनता जाता है त्यों त्यों उसके जीवन का प्रत्येक कार्य उसका चलना, उठना, बैठना बोलना सब कुछ सत्याग्रह होता जाता है, सत्याग्रह की महान शक्ति से युक्त हो जाता है।

प्रेम

[अनुवादक—श्री विद्यालंकार]

प्रेम और युक्ति ने मनुष्य के जीवन को विभक्त कर रक्खा है। हमें दोनों के साथ न्याय करना चाहिये। यदि हम बुद्धि की सहायता के बिना केवल प्रेम से धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते, तो प्रेम रहित अकेली बुद्धि के लिये भी इसे प्राप्त करना असम्भव है।

Melampp[illegible]des ने कहा था 'प्रेम, कामना की मधुर फसल बोने के साथ २ मनुष्य के हृदय में सबसे अधिक सुन्दर और मधुर वस्तुओं को मिला देता है"

"प्रेम दयालु है और इसमें बहुत सहनशीलता है। प्रेम में नम्रता है, यह किसी का बुरा नहीं सोचता; लेकिन अपने आप में यह मृत्यु से भी अधिक कठोर है। इसलिये हे प्रभु हमें प्रेम दो।"

प्लेटो के संवाद के Phaedrus की तरह अब किसी को यह शिकायत करने का अधिकार नहीं है, कि कवियों में कोई प्रेम का प्रशंसक नहीं हुआ। इसके विपरीत प्रेम ने उनमें से बहुतों को मधुरतम अनुभूतियां दी हैं। शायद मिल्टनके "स्वर्ग" के तुल्य सुन्दर और श्रेष्ठ अनुभूति मिलना कठिन है।

"तुम्हारे साथ प्रेमालाप करते हुए, मुझे समय ऋतुओं और उनके परिवर्तन का जरा भी ख्याल नहीं रहता। मुझे वे सब समान रूप से आनन्दित करते हैं। प्रातःकाल का मधुर पवन, चिड़ियों का चहचहाना, और उगता हुआ सूर्य—बड़े मधुर मालूम होते हैं। इस आनन्दमयीभूमि पर वृक्षवनस्पति और हिमकणों से चमकते हुए पत्र पुष्प पर, गिर कर सूर्य की किरणें अपूर्व सौन्दर्य धारण कर लेती हैं। उसके बाद पवित्र सन्ध्यासमय, और फिर झिलमिल २ करते हुए तारे और मोहक चन्द्रमा के साथ शान्त रजनी मिलकर स्वर्ग बना देती है।

लेकिन तुम्हारी अनुपस्थिति में वे ही मधुर पवन, पक्षियों का कलरव, सूर्य की प्रथम किरण, वृक्षवनस्पति पर चमकते हुए ओस के मोती, सन्ध्याकालीन पवित्रता और पक्षियों सहित सान्ध्यरजनी, और चांदनी में विहार पूर्ववत् होते हुए भी मन में कोई भाव उत्पन्न नहीं करते। सब सूना सा मालूम होता है।"

कभी भी किसी को इससे निराश होने की जरूरत नहीं कि उसका विवाह आदर्श-नहीं हुआ। खुशकिस्मती से हम सब की रुचियां भिन्न हैं। प्रेम में प्रेम को उत्पन्न करने का इतना सामर्थ्य है कि गरीब से गरीब, अगर वह इस योग्य है, तो सुखी से सुखी विवाह की आशा कर सकता है। और शेक्सपियर ने हजारों के हृदयों को खोल कर रख दिया है, जब वह कहता है:—

"वह मेरा है। और मैं इस रत्न को पाकर इतना अधिक धनी हूं; जितना बीसों समुद्रों का अधिपति होने पर भी नव होता, जब उनकी कुल बालू का एक-एक कण मोती बन जाता, सारा पानी अमृत होजाता और शिलाएं सोने की हो जातीं"।

सच्चा प्रेम कभी बुद्धि के विपरीत अथवा थकाने वाला नहीं होता

"मुझे मधुर मत कहो, मैं बहुत ही निर्दय हूं, जो तुम्हारे पवित्र घर और शान्त मन को छोड़ कर समर स्थली की तरफ भागता हूं। और इस क्षेत्र की प्रथम शत्रु तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी के पीछे भागने लगा हूं और उनके तलवार, ढाल और घोड़े का आलिंगन करने लगा हूं। लेकिन मुझे विश्वास है कि इस परस्पर विरुद्धता को तुम भी पसन्द करोगी। यह ठीक है कि मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकता, लेकिन उससे कहीं अधिक मैं तुम्हारा पूजा करता हूं।"

तो भी—

"कितनी तुच्छ बात कभी प्रेमी हृदयों को अलग कर देती है। "कभी २ उन अभिन्न प्रेमी हृदयों को जिन्हें लोग अलग करने की कोशिश करके थक गये; बड़े से बड़े कष्ट ने जिन्हें और समीप कर दिया; जो भयङ्कर से भयङ्कर तूफानों का भी मुकाबला करते रहे— शान्त और स्वच्छ आकाश के समय अचानक जहाज के टूटने की तरह, बड़ी तुच्छ सी बातें फोड़ देती हैं"।

प्रेम क्षणभंगुर है। इसलिये कभी उसमें जरा भी झोंका नहीं लगने देना चाहिये।

प्रेम नाजुक है; "प्रेम को झटकों और उत्तेजना से नुकसान पहुंचता है" और बराबर ठण्डा पड़ने के बाद इसके जीवित रहने की आशा करना ठीक ऐसी बात होगी जैसे कोई वायलिन को निर्दयता से प्रयोग करने के बाद भी मधुर और समस्वरों की आशा करे। लेकिन कितना आनन्द आये अगर इसे "कोई व्यक्ति प्यार और सहृदयता के अनगिनत लेकिन स्मृति से ओझल छोटे२ व्यवहारों से इसे जीवित रक्खे"। —वर्ड्सवर्थ

बोन्डी कहता है 'जिसे से तुम प्यार करते थे, और जिसे तुमने पसन्द किया था, अब तुम्हारी वधू बन चुकी है। यह तुम्हारे विश्वास का फल मिला है, स्वर्ग की देन है; इसका सदा आदर करना; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं अन्धकामुकता के आधीन बन जाओ। उसके सतीत्व

की देखभाल रखना, लेकिन कभी अविश्वास मत करना, उसके यौवन में सदा एक सहायक, संरक्षक और ऐसे पथप्रदर्शक बन कर रहना कि वह तुम्हारे आश्रय में अपने को सदा सुरक्षित अनुभव करे। सुख हो या दुःख, उसको सदा अपने साथ रखना, सुख में उसे कभी भूलना नहीं, और दुःख में कभी उसका साथ मत छोड़ना। उसके सामने वृद्धि के प्रतिकूल न तो कभी बहुत झुकना और नाहीं कभी जबर्दस्ती करना। तुम्हारी जीवन संगिनी न तो तुम्हारा शिकार बने और नाही तुम पर अत्याचार करने पाए। अगर तुम इस तरह से रहे, तो गृहस्थ का यह भाग जो आनन्द को मात देता है, कभी अनुभव नहीं होगा, और तुम्हारी पत्नी तुम्हें सदा अपना प्रेमी ही पाएगी।"

सच्चा प्रेम हरेक को उत्कृष्ट हो देता है:—

शायद लेडी एलीजावेथ हेस्टिंग्स के सम्बन्ध में स्टील के कहे हुए शब्द स्त्री जाति की एक वाक्य में सुन्दर से सुन्दर प्रशंसा है। वे शब्द यह हैं "उसको जानना एक बहुत ही व्यापक और उदार शिक्षा है।" लेकिन शायद प्रत्येक स्त्री अपनी उन्नति के साथ यह अनुभव करती है, कि इस प्रकार वह न केवल अपने लिए सुख एकत्रित करती है, बल्कि जिन्हें वह दुनियां में सबसे अधिक सुखी देखना चाहती है—उन्हें भी सुख और आनन्द पहुँचा रही है।

सच्चा प्रेम संध्या कालीन छाया की तरह समय के साथ २ बढ़ता ही जाता है। पति और पत्नी, जिनका वास्तविक विवाह हुवा है, "इस तरह से रहते हैं कि वे आपस में प्रेम करते २ एक हो जाते हैं। उनके शरीर तो दो दिखते हैं, लेकिन उनमें आत्मा एकही होती है"। प्रेम जीवन के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। और माता के प्रेम की तो कोई सीमा ही नहीं है।"

'जो यह कहते हैं, कि प्रेम भी नष्ट हो सकता है, जीवन में और भी बहुत से उद्वेग हैं, लेकिन वे सब थोथे हैं। स्वर्ग में महत्वाकांक्षा और नरक में लालच देर तक नहीं टिक सकते। ये सब उद्वेग पार्थिव हैं, और पृथ्वी पर ही समाप्त हो जाते हैं। लेकिन प्रेम अनश्वर है। इस की पवित्र ज्योति अमर है। यह स्वर्ग से आया है और स्वर्ग को ही वापिस चला जाता है। यह इस पृथ्वी पर आकर कभी कभी बड़े कष्ट सहन करता है कभी ठगा जाता है, और कभी अत्याचार सहन करता है, लेकिन इस तरह इसकी परीक्षा ही होता है और यह तपाए सोने की तरह और पवित्र हो जाता है। और फिर स्वर्ग में जाकर पूर्ण विश्राम करता है। यहां तो यह बड़े परिश्रम और सावधानी से अपना बीज बो जाता है। उसकी फसल काटने का समय तो स्वर्ग में जाकर ही आता है।

"माता स्वर्ग में पहुंच कर जब अपने बचपन के खोए हुए बच्चे को पा लेती है, तो उसे अपने दिनभर की मेहनत, रातभर के जागने और तरह तरह की आशङ्काओं और भयों के कारण हुवा सब दुःख भूल जाता है, और वह अपने परिश्रम का पूरा मूल्य पा लेती है।"

ज्यों ज्यों यौवन गुजरता जाता है, त्यों त्यों पति अथवा पत्नी, और मित्रों व सन्तान का प्रेम ही वृद्धावस्था में शान्ति और आनन्द प्रदान करने वाली एक मात्र वस्तु बचती है। एक पुत्र भूत की स्मृतियों को ताजा बनाता है; और दूसरा भविष्य के लिये कुछ दिलचस्पी पैदा करता है, और इस तरह हम अपनी सन्तान द्वारा फिर नया जन्म ग्रहण करते हुए अमर बन जाते हैं।

समाप्त

गुरुकुल समाचार

ब्र० वेदराज १४ प्रलाप, ब्र० कृष्णकुमार ११ उदरशूल ब्र० कृष्णकुमार (कर्मालिया) ११ श्लेष्म ज्वर, ब्र० जगन्नाथ Mumps, ब्र० रामकृष्ण मलेरिया ज्वर, राजकिशोर मलेरिया ज्वर, विद्याभूषण मलेरिया ज्वर, अमरसिंह मलेरिया ज्वर स्वास्थ्य गत सप्ताह ये ब्र० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं इस सप्ताह अधिक तापमान १०४ फा० रहा। लूह दुपहर पर्याप्त चलती है।

इस बार के प्रथम मान्य अतिथि श्री जम्बूनादन मद्रास निवासी पधारे, आपका वाग्वर्धिनी सभा की ओर से दक्षिण भारत की समस्याओं विषय पर व्याख्यान हुआ। आपने अछूतों की समस्याओं को हल करने के लिए स्नातकों की मांग की।

द्वितीय मान्य अतिथि श्री शेषाद्रि आचार्य अजमेर कालिज पधारे, श्री मुख्याधिष्ठाता जी के साथ आपने सारे गुरुकुल का पर्यवेक्षण किया और बहुत प्रसन्न होकर गये। अब आप मसूरी गये हैं, लौटते समय फिर गुरुकुल पधारेंगे ऐसी आशा है।

३ ज्येष्ठ को महामना श्री मालवीय जी हरिद्वार पधारे रुग्णावस्था के कारण आप गुरुकुल नहीं आसके, ब्रह्मचारियों ने हरिद्वार जाकर आपके दर्शन किए।

[पृष्ठ ३ शेष]

हिसाब आर्य समाज की सदस्यता—पंजिका में दर्ज किया जाय।

पर जो भी परिवर्तन किये गये हैं वे आर्य समाज-संस्था के जीवित जागृत होने के प्रबल साक्षी हैं तथा भविष्य में अन्य सुधारों का सूत्रपात करने वाले हैं। आर्य समाज रूढ़िवादी न होकर, सुधारवादी संस्था है। इस बात का एक ताजा उदाहरण वर्षों से प्रचलित उत्सव पद्धति के परिवर्तन का श्री गणेश कर आर्यसमाज ने प्रस्तुत किया है।

हमें आशा है कि सभी आर्य समाजें लुधियाना के दृष्टान्त को अपने सम्मुख रखकर उत्सव पद्धति को सुधारने की तरफ पूरा ध्यान देंगी। और जहां तक हो सके उत्सव को जीवन-रूप में मनाने का प्रयत्न करेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि तब आर्यसमाजों के उत्सव आज की अपेक्षा क्रियात्मक दृष्टि से अधिक उपयोगी एवं आकर्षक सिद्ध होंगे।

—'अभय'

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५ | गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ ज्येष्ठ १९९७, २४ मई १९४० [संख्या ६

बीस मई का अनुभव

आर्यसमाजियों की एक बस्ती है। उसमें तीन चार दिन हुए श्री अरविन्द के एक शिष्य जा पहुंचे। श्रीयुत् अरविन्द के इन भक्त महोदय ने अपने गुरु महाराज से तय कर लिया था कि २० मई को सांझ के ७-३० से ८ बजे तक भक्तों का जमघट लगेगा। गुरु महाराज अपनी दिव्य शक्ति का ठीक इसी समय ऐसा सञ्चार करें जिससे एक-एक व्यक्ति को महसूस हो कि उसमें कोई शक्ति बाहर से ऐसे डाल दी गई है जैसे खाली घड़े में पानी। बस्ती के एक एक व्यक्ति को उसके घर पर जाकर निमन्त्रण दिया गया—कुछ को छोड़ दिया गया, शायद इसलिये कि वे इतने काफ़िर समझे गये कि उनका श्रीयुत् अरविन्द जैसे शक्ति शाली महात्मा भी कुछ नहीं बना सकते थे। यह भी सुना गया कि इस सत्संग को जमाने वाले भक्त महोदय का कहना था कि जो श्री अरविन्द के चरणों में नहीं आवेंगे वे स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। शायद इसीलिये 'काफ़िरों' को श्री अरविन्द के आशीर्वाद से जानबूझ कर वञ्चित रखने का प्रयत्न किया गया। लेकिन सुनते हैं 'काफ़िर' खुद-ब-खुद बिना बुलाये सत्संग में आ पहुंचे। जिस प्रकार से इस सत्संग का धूम मचायी गई थी उसका यह परिणाम तो होना ही था। भला ऐसी चीज़ को देखने की किसको उत्सुकता नहीं होती।

* * *

भक्त मण्डली को बैठाने के लिये बहुत उत्तम प्रबन्ध किया गया था। मकान के बाहर बोर्ड लगे हुए थे। मकान की सीढ़ियों के पास पहुंचते ही एक बोर्ड दिखाई देता था—'जूते एक पंक्ति में उतार दो'! ऊपर बरामदे में जाते ही एक बड़ा बोर्ड था जिस पर सम्पूर्ण कार्य-क्रम लिखा हुआ था। कार्य-क्रम तो एक ही था—श्री अरविन्द की मूर्ति के सम्मुख बैठकर आध घंटे भर मौन बैठे रहो! बरामदे से अन्दर मकान में प्रवेश होता था। दो-चार मेज़ों पर श्रीयुत् अरविन्द की पुस्तकें रखी हुई थीं। इस कमरे से निकल कर मकान के आंगन में दरियां बिछी थीं उन पर धुली हुई सफ़ेद चादरें थीं। ऊपर थड़े पर एक मेज़ रखी थी; इस मेज़ पर बीच में श्रीयुत् अरविन्द का फोटो था; फोटो के दोनों ओर सुन्दर फूलों के गुलदस्ते थे, गुलदस्तों के पास अलार्म लगाकर दो घड़ियां रखी हुई थीं; श्री अरविन्द के चरणों में गुलाब के फूलों की भरी एक थाली थी; कोने-कोने से धूप बत्तियों की महक उठ रही थी। इस थड़े के नीचे श्रीयुत् अरविन्द की तरफ़ मुख कर के एक-एक भक्त आकर बैठता गया। देखते ही देखते आंगन पुरुषों तथा स्त्रियों से खचाखच भर गया। सब लोग आंखें बन्द कर के बैठ गये। पूर्ण सन्नाटा था, घड़ी की टिक-टिक के सिवा कुछ सुनाई नहीं देता था। कुछ की आंखें खुली थीं, कुछ की बन्द थीं—परन्तु सब के मन में एक ही बात थी। वे किसी चीज़ की प्रतीक्षा में थे, किसी अलौकिक अनुभव की इन्तज़ार में थे, क्योंकि ठीक साढ़े सात से आठ बजे के भीतर श्रीयुत् अरविन्द पांडुचेरी से आध्यात्मिक धारा का इस भक्त मण्डली में प्रवाह करने वाले थे।

* * *

साढ़े सात का समय हुआ, घड़ी टनटना उठी, उस में अलार्म दिया गया था। भक्त मण्डली का ध्यान अधिकाधिक केन्द्रित होने लगा। प्रतीक्षा बढ़ने लगी, वह उत्सुकता का रूप धारण कर गई। अब कुछ हुआ—अब कुछ हुआ! अरे, दस मिनट बीत गये, अभी तक कुछ नहीं हुआ! भक्त मण्डली ने सोचा कि ध्यान की कमी है। चारों तरफ से ज़ोर लगने लगा—बीस मिनट बीत गये, पच्चीस मिनट बीत गये, छब्बीस सत्ताइस, अट्ठाइस, उनतीस—एक मिनट बाद फिर घड़ी टनटना उठी। अब आठ बज गये थे, अलार्म दिया गया था, सो बज उठा। आध घंटे तक मौन बैठे रहने के बाद भी कोई चमत्कार नहीं हुआ, श्रीयुत् अरविन्द के दर्शन नहीं हुए, कोई नवीन आध्यात्मिक या अलौकिक अनुभव नहीं हुआ। आठ बजे सब लोग आंखें खोल कर एक दूसरे को मूक-भाव से पूछ रहे थे कि क्या तुम भी मेरी ही तरह कोरे के कोरे रह गये?

* * *

श्रीयुत् अरविन्द की मूर्ति के चरणों में थाली भर कर फूल रखे गये थे। भक्त महोदय ने कहा कि मनुष्य के मन की अपेक्षा फूल पर प्रभाव डालना अधिक सरल है। गुरु महाराज ने आध्यात्मिकता की जो धारा पांडुचेरी से छोड़ी है उसका प्रभाव मनुष्य के मन पर नहीं हुआ, फूलों पर हुआ है। इन फूलों को सूंघने से वही प्रभाव मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाता है। वे मूर्ति के चरणों में पड़ी फूलों की थाली लेकर खड़े हो गये, और भक्त-मण्डली उठती गई, और वे एक-एक फूल भक्तों को बांटते गये। इस प्रकार यह सत्संग समाप्त हुआ। जो लोग कुछ आशा लेकर आये थे वे निराश लौटे; जिन्हें कोई आशा थी ही नहीं वे मानव प्रकृति के अन्तर्निहित मनुष्य-पूजा की प्रवृत्ति का उपहास करते हुए घर लौट आये!

एक बात रह गई। भक्तों को फूल तो बांटे ही गये थे, इन फूलों के साथ एक और चीज़ भी बांटी गई। यह थी 'राधा की प्रार्थना'! इस प्रार्थना में जो कुछ लिखा था उसे पढ़ कर मन पूछता था, श्रीयुत् अरविन्द की शिष्य मंडली किधर जा रही है? 'राधा की प्रार्थना' निम्न थी:—

राधा की प्रार्थना

"ओ, तुझे तो पहिले ही दृष्टिपात में मैंने अपनी सत्ता के स्वामी और अपने भगवान् के रूप में पहिचान लिया। तू मेरी भेंट स्वीकार कर।

मेरे सब विचार तेरे हैं, मेरी सब भावनायें, मेरे हृदय के सब आवेग तेरे हैं, मेरे सब इन्द्रियज्ञान, मेरे जीवन की सम्पूर्ण गतिविधि तेरी है, मेरे शरीर की एक-एक बूंद तेरी है। मैं सर्वप्रकार से और समग्र रूप में तेरी हूं। बिना कुछ भी बचाये, निःशेष भाव से तेरी हूं। मेरे लिये तू जीवन चुने या मरण, हर्ष लाए या शोक, सुख दे या दुःख, जो कुछ भी तेरी ओर से मुझे मिलेगा, वह सब मुझे शिरोधार्य होगा। तेरी प्रत्येक देन मेरे लिये सदा ही एक दिव्य देन होगी, अपने साथ परम आनन्द लाने वाली दिव्य देन होगी।"

❀ ❀ ❀

अगले दिन बस्ती में एक सनातनी भाई पधारे। उन से पता चला कि वे भी कल वाले सत्संग में उपस्थित थे। वे कहने लगे, 'देखिये, असल बात यह है कि मूर्ति पूजा इतनी जीवित वस्तु है कि वह मर-मर कर भी जी उठती है। देखिये, श्रीयुत् अरविन्द जैसे महात्मा के शिष्य जब तक राधारूप नहीं होते तब तक उनके अन्तरात्मा को शान्ति नहीं मिलती, इसी लिये तो 'राधा की प्रार्थना' बांटी गई थी। इसके अतिरिक्त देखा न आपने, श्रीयुत् अरविन्द की मूर्ति के सम्मुख बड़े-बड़े आर्य समाजी किस प्रकार आंखें बन्द कर के बैठे थे!' यह बात सुन कर कुछ जोशीले आर्यसमाजी बोल उठे—'नहीं महाराज हम तो यही बतलाने वहां गये थे ताकि आप लोगों को भी पता चल जाय कि यह सब ढोंग है। अगर हम न जाते तो आप दून की हांकते फिरते कि यह हुआ, वह हुआ—अब तो आप को भी पता चल गया कि कुछ नहीं हुआ, और हमें भी पता चल गया कि कुछ नहीं हुआ।'

❀ ❀ ❀

परन्तु क्या सचमुच कुछ नहीं हुआ? बीस मई के सत्संग से दो बातें स्पष्ट होगईं। पहली बात तो यह स्पष्ट हो गई कि जो लोग श्रीयुत् अरविन्द का नाम लेकर ज़मीन-आस्मान की हांकते हैं वे अपने परिमित क्षेत्र में भले ही कुछ कह लें, सर्व साधारण में वे इस पन्थ को एक पाखंड का रूप देकर ही चला सकते हैं, दूसरी तरह से नहीं। पाखण्ड तो सब तरह के चलते ही हैं, इन्हीं पर झाड़ू फेरने के लिये तो ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया था। दूसरी बात यह स्पष्ट हो गई कि श्रीयुत् अरविन्द इतनी दूर तक अपनी शक्ति का, कम से कम उस दिन, संचार नहीं कर सके। अगर कर सके होते तो किसी पर तो कुछ असर दिखाई देता—सभी कोरे के कोरे—और वह भी आध घंटा भर पसीना-पसीना हो जाने के बाद। शायद सारी मंडली में एकआध ऐसे हों जो कहें कि उन्हें कुछ नवीन अनुभव हुआ, परन्तु उन्हें तो वैसे भी होता। चाहे श्री अरविन्द अपनी आध्यात्मिक धारा फेंकते या न फेंकते, उन पर तो कुछ-न-कुछ असर होता ही होता, परन्तु सैकड़ों आदमियों को बुलाने और इकट्ठा करने का तो यही मतलब होना चाहिये था कि ऐसा कुछ होता जिससे नास्तिक भी आस्तिक हो जाते, लोगों के संशय मिट जाते, वे इस मार्ग की तरफ दौड़ने लगते। ऐसा कुछ नहीं हुआ—और सच पूछो तो—कुछ भी नहीं हुआ। हां, एक बात हुई, वह यह कि जो लोग समझते थे कि कुछ होगा, उनकी आंखें खुल गई और उन्हें मालूम होगया कि पाखण्ड और ढोंग से भरे हुए इस देश में दूसरे पाखण्डों और ढोंगों की तरह यह भी मनुष्य पूजा का एक ढोंग है जो धीरे २ मूर्तिपूजा का रूप धारण कर रहा है।

❀ ❀ ❀

इस सत्संग के बाद भक्तों के हृदय में भी एक शंका उठ खड़ी हुई है। अगर ५० आदमी धूप-बत्ती जलाकर, मकान की सफ़ाई करके, सफ़ेद चादरों पर यूं ही आध घण्टा ध्यान करने बैठ जाय, सर्वथा मौन रहें, परमात्मा का ध्यान करें तो क्या उन्हें कुछ कम आध्यात्मिक प्रसाद प्राप्त होगा? क्या इस समय श्री अरविन्द का मूर्ति सम्मुख रखकर, उनके चरणों में फूलों का थाली चढ़ाकर— ये सब आडम्बर रचकर किसी को कुछ अधिक आध्यात्मिक प्रसाद प्राप्त हुआ? सोचने वाले सोचें, और समझने वाले समझें। पाखण्डों को तो जितना बढ़ाया जाय वे बढ़ते जायेंगे, मनुष्य की प्रकृति इसके लिये बहुत उपजाऊ भूमि है, परन्तु देश का भला पाखण्ड बढ़ाने में नहीं, पाखण्ड हटाने में है।

श्री रमणाश्रम के कुछ संस्मरण

[लेखक-प्रो० स्ना० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति "आनन्द कुटीर" ज्वालापुर]

[१]

मद्रास संस्थान के तिरुवन्नामले नामक नगर से ४.५ मील की दूरी पर अरुणाचल की उपत्यका में एक आश्रम है जहां एक श्री रमण नामक योगी रहते हैं। उन्हें लोग 'महर्षि' अथवा 'भगवान्' के नाम से पुकारते हैं। गत कुछ वर्षों से मि० पाल ब्रन्टन् नामक एक योग्य अंग्रेज पत्र सम्पादक द्वारा "The Maharshi and his Message, The Secret Path, Wanderings in Secret India) इत्यादि पुस्तकें लिखी जाने के कारण श्री रमण और उनके आश्रम की देश-देशान्तरों में पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी है। मुझे दक्षिण भारत में रहते हुए दो बार श्री रमणाश्रम को देखने और श्री रमण 'महर्षि' जी से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। कई मित्रों के अनुरोध से मैं उस भेंट विषयक कुछ संस्मरण 'गुरुकुल' के पाठकों के सम्मुख रखना चाहता हूं।

मद्रास के साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र 'Sunday Times' आदि में श्री रमण महर्षि के अद्भुत योग बल और चमत्कारों का वर्णन पढ़ कर तथा उनके कुछ ग्रन्थों को देख कर मेरे मन में उनके सत्सङ्ग करने की इच्छा प्रबल हो उठी। मेरे पूज्य धर्म-पिता जी का स्वास्थ्य जो उन दिनों हमारे साथ बंगलौर में रहते थे तब अच्छा न था। 'सन्डे टाइम्स' आदि के लेखों में यह प्रकट किया गया था कि श्री रमण महर्षि के दर्शन तथा आशीर्वाद मात्र से सब बीमारियां दूर हो जाती हैं और स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। इस लिये मेरे पूज्य धर्म पिता जी ने 'महर्षि' के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने का निश्चय किया। उचित अवसर जान कर हम लोगों ने २ फर्वरी सन् १९३६ को तिरुवन्नामले के लिये, बंगलौर से प्रस्थान किया। सायंकाल हम लोग श्री रमणाश्रम पहुंचे तो वहां सन्ध्या के उपरान्त यजुर्वेद के १८वें अध्याय का मधुर ध्वनि से पाठ हो रहा था जिसे सुन कर हम सब को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। प्रातःकाल आश्रम में प्रतिदिन वेदों और उपनिषदों के कुछ अंशों का सस्वर पाठ श्री रमण जी की उपस्थिति में किया जाता है जिससे श्रोताओं-विशेषतः संस्कृतज्ञ सज्जनों को बड़ा आनन्द लाभ होता है। मुझे स्वयं उस वेद उपनिषद् पाठ के समय एक अलौकिक दिव्यानन्द का अनुभव हुआ ऐसा मैं बिना संकोच के कह सकता हूं। श्री रमण 'महर्षि' सारे वेद पाठ के समय ध्यानस्थ शान्त अवस्था में बैठे थे और ऐसा प्रतीत होता था कि उन से शान्ति का प्रवाह चारों ओर प्रवाहित हो कर अशान्त तप्त हृदयों में भी शान्ति का संचार कर रहा था। संस्कृत न जानने वाले व्यक्ति भी उस आध्यात्मिकता के वायु मण्डल से प्रभावित हुए बिना न रह सकते थे। उन दिनों पाश्चात्य सज्जन तथा देवियां श्री महर्षि के दर्शनार्थ आश्रम में आये हुए थे। उन में से कइयों को मैंने घण्टों तक मौनावस्था में महर्षि के सम्मुख बैठे देखा। पूछने पर उन्हों ने बताया कि उन्हें बिना कुछ प्रश्न किये ध्यानस्थ महर्षि के सन्मुख बैठने मात्र से भी अद्भुत शान्ति और आनन्द का अनुभव होता था। मैंने अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर भी उनके इस अनुभव का समर्थन किया, यद्यपि उन में से कईयों के इस कथन में कि महर्षि के सन्मुख जाते ही सब प्रश्नों का उत्तर स्वयं मिल जाता है मुझे अत्युक्ति प्रतीत हुई जिस का अनुमोदन नहीं किया जा सकता था। मैंने श्री रमण महर्षि से वेदान्त, प्राणायाम, चित्त की एकाग्रता-कर्मयोग, समाज सुधारादि विषयक कई प्रश्न किये जिन के उन्होंने अपने विचारानुसार यथोचित उत्तर दिये। मैंने उनको उस समय अधिकतर ब्राह्मी स्थिति और समाधिस्थ अवस्था में पाया जिस से मैं विशेष प्रभावित हुआ। उन्होंने पूर्ण मौन का अवलम्बन न किया हुआ था-पर बहुत कम-साधकों की आवश्यक जिज्ञासा को शान्त करने के लिये ही बोलते थे। पहले ही दिन यह देख कर कि एकाग्रता आदि विषयक मेरे प्रश्न का उनके शिष्यों ने अपनी इच्छानुसार कुछ का कुछ उत्तर देना शुरू कर दिया कि मन की तो सत्ता ही नहीं है इत्यादि। मैं प्रायः एकान्त समय में (९ बजे रात के बाद या प्रातः ३ बजे के पश्चात्) श्री रमणजी के पास जाता रहा और उन्होंने मेरे प्रति बड़ा प्रेम दिखाया अधिक विस्तार में न जाते हुए इतना ही लिखना पर्याप्त है कि उस समय मेरे मन पर श्री रमण जी की उच्च आध्यात्मिक अवस्था और शान्तता का अत्युत्तम प्रभाव पड़ा और अपने पूज्य धर्म पिता जी के निराश होकर लौट जाने पर भी (क्योंकि ये चमत्कार अधिकतर भक्त शिष्यों के मनघड़न्त होते हैं) मैं कुछ दिन और उस आश्रम में ठहर कर श्री रमण महर्षि का सत्सङ्ग करता रहा।

[२]

इसके बाद अढ़ाई वर्ष बीत गये, २४ अगस्त १९३८ को मद्रास के हरिजन सेवक सम्मेलन से लौटते हुए मैं दूसरी बार एक मित्र के साथ 'महर्षि' के दर्शनार्थ तिरुवन्नामले गया। इस बार भी मेरा विचार आवश्यकतानुसार कुछ दिन आश्रम में ठहरने का था किन्तु मुझे खेद हुआ और आश्चर्य हुआ कि तब और अबके श्री रमण और उनके आश्रम के वायुमण्डल में मुझे आश्चर्यजनक अन्तर दिखाई दिया। मैं इस बार भी घण्टों तक श्री रमण जी के सन्मुख बैठा किन्तु अब उन्हें अधिकतर तिलगु तामिल अंग्रेजी के समाचार पढ़ने, तमाखू मिश्रित पान चबाने तथा मिठाई खाने व बांटने आदि में ही व्यस्त पाया। मैं पहले की उन की समाधिस्थ अवस्था और ब्राह्मी स्थिति के दर्शन करने के लिये तरसता ही रहा जिस से मुझे निराशा उठानी पड़ी। आश्रम के वायुमण्डल से भी आध्यात्मिकता की सुगन्ध उड़ चुकी प्रतीत हुई। श्री रमण जी के सगे भाई और रमणाश्रमके वर्तमान सर्वाधिकारी श्री निरञ्जनानंद स्वामी और आश्रम के एक प्रसिद्ध योगी श्री रामैया को एक बिलकुल तुच्छ-सी बात पर घण्टों झगड़ते हुए देख कर सचमुच आश्चर्य हुआ। भोजन के समय जब महर्षि के शिष्यों को आगंतुक अतिथियों की जाति पूछते और

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

१२ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९७

लाटरी से रुपया कमाना

[श्री आचार्य अभय देव जी के उपदेश का एक अंश—जो महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के बीच दिया गया था]

रेल के टिकटों के पुनः उपयोग से मिलती जुलती एक और बात है, वह है लाटरी की बात। लाटरी से रुपया कमाने में क्या हर्ज है? "हम किसी की चोरी नहीं करते, जबरदस्ती नहीं करते, यदि भाग्य में होता है तो मिल जाता है" तुम में से बहुत से ऐसा सोचते होंगे। बौद्धिक तौर पर इसमें बुराई और पाप समझने वाले तो तुम में से बहुत कम होंगे। अपने संस्कारों के कारण लाटरी डालने में हिचकने वाले बेशक बहुत होंगे परन्तु जरूरत इस बात की है लाटरी में जो बुराई है उसे तुम ठीक प्रकार से जानो और समझो।

एक अच्छे ब्रह्मचारी ने (जो अबतक स्नातक हो चुका है) इस बारे में एक बार मुझसे पूछा था, उसके पास लाटरी के फार्म निकले थे और आश्रमाध्यक्ष जी ने उसे फार्म भरकर भेजने से रोका था, तब उसने मुझसे जिज्ञासाभाव से ही पूछा कि मुझे यह तो बताइये कि इसमें बुराई क्या है? मैंने उसे समझाया और मुझे अच्छी तरह मालूम पड़ा कि वह समझ गया है। इसी तरह एक स्नातक भाई ने लाटरी के टिकट रुपये भेजकर खरीद भी लिये थे, उन्हें समझाने का अवसर हुआ, उन्हें तो इसकी बुराई इतनी अच्छी तरह समझमें आ गई कि उन्होंने स्वयं प्रेरित होकर उतने रुपये दान करके उसका स्वयं प्रायश्चित भी किया। पर इससे भी अधिक बात एक ऐसे महानुभाव की है, जिन्हें मैं पूजा की दृष्टि से देखता हूं, जो बड़े धार्मिक, भजन-साधन करने वाले, परोपकारी और ईश्वरनिष्ठ पुरुष हैं। वे परोपकार के लिये, जैसे गुरुकुल के लिये लाटरी द्वारा धन कमाने में कोई हर्ज नहीं समझते थे बल्कि उनकी बाक़ायदा एक योजना थी कि इस तरह गुरुकुल की तरफ से एक लाटरी जारी की जाय जिससे कि गुरुकुल जैसी धार्मिक संस्थाओं को इतना-इतना आय हो और इनकी बहुत कुछ आर्थिक समस्या हल हो जाय। उनको जब मैंने यह बतलाया कि ऐसा करना इसलिये अनुचित है तो वे इसे तुरन्त समझ गये।

ये तीन दृष्टान्त मैंने इसलिये दिये हैं कि तुम एक तो यह जान सको कि यह बात आजकल इतनी आम है कि यह सर्वत्र प्रचलित है और बड़े अच्छे अच्छे पुरुष भी लाटरी द्वारा धन प्राप्त करने में स्वार्थ के लिये नहीं तो 'परोपकार' के लिये—कोई भी बुराई नहीं समझते, अतः तुम्हें भी यदि इसमें कोई दोष नहीं दीखता तो यह आश्चर्य की बात नहीं। दूसरे यह कि जो निर्मल हृदय और धर्मभावना वाले पुरुष हैं वे जरा सा संकेत पाकर इसकी ख़राबी फ़ौरन समझ जाते हैं, अतः सम्भव है कि तुम भी समझ जाओ।

बात तो जरा सी है, इतनी ही कि यह तरीक़ा मनुष्य की लोभवृत्ति को उकसाता है और उससे लाभ उठाता है। वैसे यदि लोगों से— गुरुकुल के लिये या किसी आर्थिक सहायता के पात्र अन्य कार्य के लिये— एक एक रुपया मांगा जाय तो गांठ से नहीं निकलेगा—एक रुपया क्या? शुद्ध खादी की कीमत यदि ≈) अपेक्षया अधिक है तो वह दुअन्नी अधिक देना आफत लगता है— तो फिर जब लाखों लोग लाटरी में एक एक रुपया खटाखट दे देते हैं तो वह केवल इसी कारण क्योंकि हमारी अधम वृत्तियों में एक प्रमुख वृत्ति—लोभवृत्ति— हमें यह सुझाती है कि शायद दस हजार का इनाम मुझे ही मिल जाय। दस हजार रुपया मिलता एक को ही है या एक को भी नहीं, पर उसकी आशा सबको लग जाती है और करोड़ों लोग बिना किसी लाभ के रुपया दे देते हैं, इस प्रकार अपार धन एक जगह खिंच आता है।

यह है आसुरी माया। इसी माया के वश जुआ खेला जाता है। पहले जमाने में तो लोग बहेड़े के पत्तों से सीधा सादा जुआ खेल लेते थे! आज कल उसके कई चक्करदार और सुहाने तथा फैशन वाले तरीके निकल आए हैं जिन्हें बड़े से बड़े प्रतिष्ठित और धर्मात्मा लोग भी निःशङ्क होकर करते हैं। इन सभ्य तरीकों पर वह दफ़ा भी लागू नहीं होती जो जुआरिओं को दोषी ठहराती है। इस लिये लोगों की लोभवृत्ति को पालने पोसने और उससे लाभ उठाने की हमारी मनुष्यता को गिराने वाली बुराई आजकल जंगल में लगी आग की तरह निःशङ्क फैल रही है। जुए में धननाश, निराशा का दुःख, अन्य पापों में प्रवृत्ति, घर उजड़ जाना आदि जिन बुराइयों का वर्णन किया जाता है मैं उनका यहां वर्णन करना आवश्यक नहीं समझता। वे तो स्वाभाविक परिणाम हैं अतः होते ही हैं। मैं जो मूल वस्तु की तरफ ध्यान खींचना चाहता हूं वह है लोभ, जिसे नरक के तीन द्वारों में से एक द्वार श्री कृष्ण जी ने गीता में बताया है। चाहे नरक के अन्य द्वारों से न जाकर—इस द्वार से अन्दर घुस जाओ तो भी नरक के सब दुःख दर्द तथा यातनाएं मिलेंगी ही। भेद इतना ही है कि अब जुआ बड़े पैमाने पर किन्तु लाटरी सट्टा रेस आदि सुहावने फैशन-बल तरीकों से खेला जाता है, इस लिये आजकल की नरक भी यद्यपि बहुत व्यापक रूप में है, कुछ व्यक्तियों तक नहीं बल्कि कुछ वर्गों और जातियोंतक फैला हुआ है पर वह सुन्दर चमकते हुए परदे से ढका हुआ है। आजकल के उच्च वर्ग, उनकी बनाई व्यवस्थाएं तथा सरकारें इतनी चमकीली हैं कि पीछे छिपे हुए साक्षात नरकपर दृष्टि पड़ना बहुत मुश्किल हो गया है। अस्तु।

इस लोभ वृत्ति के भी मूल में जांय तो इस जुए में जो असली बुराई है, पाप है, जिस के कारण द्यूत की

महापातकों में गिनती, वह है बिना श्रम किये कमाने की इच्छा, बिना दाम चुकाए (और श्रम ही वस्तुओं का असली दाम है) वस्तु पाने की इच्छा। इस बात को ऋग्वेद के प्रसिद्ध द्यूतसूक्त में बड़ी उत्तमता से कहा गया है—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ॥

यह एक ऐसा वेद वचन है जिसकी शिक्षा की आजकल दुनियां को जितनी जरूरत है उतनी और किसी शिक्षा की नहीं। परमेश्वर का मनुष्य को उपदेश है कि 'तू पासों से मत खेल, मेहनत करके खेती ही कर, फिर जो कुछ तुझे मिलता है उसी धन को बहुत मानता हुआ उसमें आनन्द लूट।'

यहां खेती आवश्यक उत्पादक-श्रम का उपलक्षण है। मनुष्य परिश्रम करके असली सम्पत्ति अर्थात् जीवनपयोगी वस्तुएं उत्पन्न करे। अन्न उत्पन्न करे। वस्त्र उत्पन्न करे गोला बारूद उत्पन्न करने का श्रम करने से भी काम न चलेगा, वह श्रम व्यर्थ जायगा और नाशकारी होगा। भोग विलास की चीजें उत्पन्न करना भी हमारी पाशवी वृत्तियों को बढ़ाने में सहायक होगा और नाशकारी होगा। इस लिये कहा है 'श्रमपूर्वक कृषि ही कर अर्थात् बिना श्रम किये धन कमाने की इच्छा मत कर, जुआ मत खेल'— 'जुआ खेलने से तू समझता है कि बहुतसा रुपया आ जायगा पर वह झूठा रुपया होगा, इस लिये परिश्रम से कमाये इस थोड़े दीखने वाले धन को ही बहुत समझ और उस सच्ची सम्पत्ति में आनन्द-मग्न रह, रमण कर।'

पर हमें सच्ची ईमानदारी की परिश्रमपूर्वक की गई कमाई में आनन्द नहीं आता तभी हम जुआ खेलना चाहते हैं। आज की दुनिया की तबाही का कारण क्या है? यही न, कि कुछ व्यक्ति और मनुष्य वर्ग ही नहीं, राष्ट्र भी दूसरे व्यक्तियों वर्गों और राष्ट्रों से नाजायज फायदा उठाना चाहता है। उनके श्रम पर अपने आप को आराम से पालना चाहता है। अपने आप बिना उचित परिश्रम किये दूसरे का धन (दूसरों के श्रम का लाभ) लेना चाहता है। यह नाना प्रकार अक्षों से खेलना-द्यूतक्रीड़ा ही है) इस सब में असली पापभावना यही है कि बिना श्रम किए धन प्राप्त हो जाय। यही पापभावना उसी तरह लाटरी में भी है। जो धन हमने परिश्रम से नहीं कमाया, जो हमारे अपने पसीने की सच्ची कमाई नहीं है, वैसे एक पैसे को भी हम न छुएं। इस का पालन करने से जगत् को सुख मिल सकता है। जो हमारे अपने श्रम की थोड़ी कमाई है उसे हम बहुत मानें और उसमें बादशाहों के बादशाह की तरह पूर्ण गौरव और गर्व के साथ निश्चिन्तरूप से आनन्द मग्न रहें। यदि ऐसा किया जाय तो पृथ्वी पर फिर स्वर्ग आ जाय। इससे लोग क्रम हो पलट जाय। तब मनुष्य की लोभ वृत्ति कामना की वृत्ति इन अधम वृत्तियों के स्थान पर उसकी श्रमशक्ति और रचनाशक्ति को प्रोत्साहन मिले और मनुष्य को सच्चा गौरव तथा आनन्द प्राप्त हो। जो धन हमारी कमाई का नहीं उसे हमें बिल्कुल न छूना चाहिये। फिर उस अनुपार्जित धनको दूसरों की काम और लोभ की वृत्तियों को बढ़ाने का कुकर्म करते हुए खींच लेना कितना भारी पाप है, यह हमें अनुभव करना चाहिये।

मैं जानता हूं कि हमारे देश में भी कई लाटरियां अनाथालय आदि को सहायता पहुंचाने के लिये जारी की जाती हैं और कई संस्थाएं ऐसे चल रही होंगी। पर जैसे द्रव होता हुआ भी विषैला पानी पिया जाकर हमें रुग्ण या नष्ट कर देता है, वैसे ही रुपये पैसे के आकार वाला धन भी बुरे उपायों से प्राप्त होने के कारण दूषित हो कर हमारे काम को बिगाड़ने वाला या हमारा नाश करने वाला ही हो सकता है। लाटरी द्वारा या अन्य किसी प्रकार के द्यूत द्वारा जो प्रलोभन उपस्थित किया जाता है उसे तुच्छ वस्तु मत समझो। हिन्दुस्तान में हजारों शराब की दूकान खोलने वाली ब्रिटिश सरकार भी कहती है कि हम लोगों को शराब पीने के लिये तो नहीं कहते, जो स्वेच्छा से पीना चाहते हैं, उनके लिये सिर्फ यह वस्तु प्रस्तुत कर देते हैं। पर हम जानते हैं कि जहां एक दुकान खुल गई वहां हजारों पीने वाले बन गये। अतएव हम दूकानों के बन्द करने पर जोर देते हैं, दूकानें खोले जाने को पाप समझते हैं, इसे स्वतन्त्रता देना नहीं समझते। इसी तरह अन्य पाप के प्रलोभनों के समान ही लाटरी द्वारा जो लोभवृत्ति को उकसाया जाता है, उसके पाप को हमें समझना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि लोभ है तो वह है ही, वह अपना काम करेगा ही। नहीं, हमें तो शुद्ध कमाई की तरफ प्रेरित करके मनुष्य की उच्च वृत्तियों को जगाने का यत्न करना चाहिये और इस प्रकार लोभ आदि अधम वृत्तियों का शमन करना चाहिये। यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि अपने लिये या गुरुकुल जैसी पवित्र संस्था के लिये शुद्ध धन ही प्राप्त करना उचित है, उसी से हमें पोषण मिल सकता है। और हमें तो उदाहरण उपस्थित करना चाहिये जिससे कि सब लोग वेद की शिक्षा के अनुसार चलते हुए श्रमोपार्जित धन के मूल्य, शक्ति और आनन्द को अनुभव करने लगें। यदि हम ऐसा करेंगे तो समस्त जगत् को ठीक प्रकार का पोषण मिलने लगे और हम उस व्यवस्था के लाने में सहायक होंगे और अपने ध्येय को पूरा करने में समर्थ होंगे।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल-शिक्षा का स्थान

(श्री वीरेश विद्यालंकार)

बाल-शिक्षा का विषय अपने आप में इतना रोचक और मनोरञ्जक है कि इस विषय पर जितना भी लिखा व कहा जाय वह विषय की मौलिकता को मद्धे नज़र रखते हुए फिर भी अपर्याप्त ही समझा जायेगा; इसलिये इस विषय के शास्त्रीय, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बहस करने की कल्पना इस लेख में न करते हुए हम केवल इस विषय के घरेलू व शाला सम्बन्धी कुछ एक प्रयोग में

लाई जा सकने वाली सूक्ष्मों, निर्देशों तथा अनुकरणीय मन्तव्यों का ही दिग्दर्शन कराकर अपने लेख की पूर्ति करेंगे।

लेख के आरम्भ करने के साथ ही लेखक यह विश्वास करता है कि विद्या शाला व गुरुकुल में शिक्षण का आरम्भ करवाने से पहिले बालक का किसी न किसी रूप में कुछ अधूरा या पूरा सा शिक्षण माता- पिता के पास घर में भी हुआ है। ऐसा कहने का यह अर्थ है कि बालक ने अपने घर में या अड़ोस पड़ोस के साथियों के संग रल-मिलकर कुछ एक अपनी स्वाभाविक आदतों (प्रवृत्ति तथा झुका) का जान या अनजाने में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। उदाहरणार्थ-घर में जब वह अभी पांच साल का हो था तो उसने अपने पिता को बाहर आते समय सिर पर पगड़ी-टोपी या पांव में जूता-चप्पल आदि पहिनते देखा है। घर के वस्त्रों को उतार दूसरे नये वस्त्रों को पहिनते देखा है। इसी प्रकार उसने नियम पूर्वक माता को सुबह और शाम रसोई बनाते-वस्त्र धोते और घर को साज सवार करते देखा है। इन सब क्रियाओं को देखने से उसके मन में क्या आता है? मेरी समझ में इसका उत्तर बालक की निजू क्रियाएं ही दे सकती हैं कि इन सब क्रियाओं के बारे में वह क्या २ हरकतें करता है। देखा गया है कि बालक पिता की उपस्थिति व अनुपस्थिति में पगड़ी-छड़ी व जूता धारण करने की हरकतों को तथा माता के वस्त्र धोने व छुरी से सब्जी काटने की क्रिया का अनुकरण करने में न केवल अपना अन्दरूनी शौक ही पूरा करता है परन्तु ऐसा करते हुए एक तरह का आनन्द और कृतकार्य होने का बड़प्पन भी अनुभव करता है। इस प्रवृत्ति का नाम 'अनुकरण' की प्रवृत्ति है। दुनियां में न कोई ऐसा बालक है और न होगा जिसके अन्दर कि यह प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है या न होगी। इस प्रवृत्ति की समुचित प्रेरणा तथा इसका सधा हुआ विकास बाल-शिक्षण का केन्द्रीयतत्त्व है।

एक और अमूर्त्त सा उदाहरण लेकर हम इस प्रवृत्ति की सार्वभौमिकता पर प्रकाश डालना चाहते हैं। हम जानते हैं कि बालक जब बोलना नहीं जानता था तब वे केवल रोना-या ऊं ऊं ऐं ऐं ही करना जानता था। उसने बोलना कहां से-किससे और कैसे सीखा? इस प्रश्न के उत्तर में हम जानते हैं कि चूंकि बालक में अनुकरणात्मक वृत्ति स्वाभाविक थी, उसी के सहारे-उसी का प्रयोग करते २ वह आज अच्छे २ वाक्यों में मां-बाप-और साथियों से बातचीत भी करने लग गया है। घर में वह मां की बोल सुनता था- सुनते सुनते वह भी उसी बोल में पहले गुनगुनाया करता था – उसके पीछे तुतलाने लगा, और अब कह बहुत कुछ स्पष्ट और मीठा बोलने का आदि होगया।। यह बोलने की शिक्षा क्या आप समझते हैं कि बिना बालक या माता आदि के प्रयत्न से प्राप्त हुई। बिलकुल नहीं-इस शिक्षा में उसने अपने जीवन के कुछ एक मधुमय मास ही नहीं अपितु वर्ष भी खोये और आज वह अपने दूसरे भाइयों की तरह शब्दों से बड़ी खूबी से अपने हावभावों को व्यक्त करके अपने को कृतकृत्य तथा ऐसा होने पर अपना व्यक्तित्व अनुभव करने लगा है। यदि एक वाक्य में बालक का बाल्य-जीवन उसकी अनुकरणात्मक प्रवृत्तिका खेल कह दिया जाय तो कुछ असंगत नहीं। बालक क्या है अनुकरणों का पुतला है। जब हम किसी बालक को मंत्र-श्लोक व कविता-सूक्ति को कण्ठाग्र करने को कहते हैं तो हमें जान लेना चाहिये कि हम उसके हाथ पांव में नहीं बल्कि अबतो उसकी मति-बुद्धि में जो स्वाभाविक तौर पर शब्दों और स्वर संगीत को अनुकरण करने का वृत्ति है उसे जगा रहे हैं उसका उपयोग कर रहे हैं।

(असमाप्त)

मधु–मक्खी–पालन

[इस लेख के लेखक श्री रामेश्वेदी आयुर्वेदालंकार गुरुकुल के योग्य स्नातक हैं। वनस्पति विज्ञान और मधु मक्खी पालन के सम्बन्ध में आपका अध्ययन प्रशस्त है। इस लेख में सहायक गृहोद्योग के तौर पर गुरुकुल में परीक्षण करने के बाद मधुमक्खियों के पालन पर प्रकाश डाला गया है। आशा है पाठक इस से उचित लाभ उठावेंगे। सम्पादक]

लगभग अज्ञात ... भवतः पृथिवीके व प्रत्येक भाग में मधु मक्खियों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया गया है। समस्त देशों के प्राचीन साहित्य में मधु, मधुमक्खी और उसके छत्ते का वर्णन मिलता है।

सृष्टि के आदि प्राणी मनुष्य में धीरे धीरे जब कला कौशल का विकास हुआ तो उस ने इस अत्यन्त उपयोगी पदार्थ मधु की ओर ध्यान दिया और मधु मक्खियों का पालना आरम्भ किया। उनके साधन अत्यन्त सरल और परिमित होते थे। उन्होंने दीवारों में सुरंगें बना कर या लकड़ी के खोखले लट्ठों में अथवा तिनके की टोकरियों में मक्खियां पालीं।

मनुष्य ने जब लकड़ी काट कर तख्ते बनाना सीखा तब उन्होंने मक्खियों को रखने के लिए लकड़ी के बक्स बनाए। पहले ये बक्स बहुत भद्दे और मक्खियों के लिए बहुत सुविधा जनक भी नहीं होते थे। धीरे धीरे ज्ञान की उन्नति के साथ साथ अनुभवों से लाभ उठाते हुए मनुष्य ने आधुनिक सब आरामदेह, पूर्ण उन्नत और परिष्कृत साधनों का आविष्कार किया। युरोप में कई स्थानों पर अब भी गरीब किसान, जो आधुनिक महंगे उपकरण जुटाने में असमर्थ हैं, टोकरियों आदि में ही मक्खियां पालते हैं।

भारत में सब से पूर्व मधु मक्खियों का पालन पंजाब में प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। पंजाब और हिमालय के दक्षिण में यह व्यवसाय सम्भवतः अज्ञात काल से चल रहा है। रावलपिण्डी, मरी, हजारा, शिमला पहाड़ और कुल्लू में अब भी मक्खियां बहुत अधिक पाली जाती हैं और इन स्थानों पर इस घरेलू धन्धे का प्रारम्भिक इतिहास ढूंढ निकालना कठिन है।

अब, पिछले ४० ४५ साल से लोगों का ध्यान इस ओर खिंचा है और सरकार ने भी तभी से इस में दिल चस्पी लेनी आरम्भ की। संयुक्त प्रान्त, पंजाब तथा अन्यान्य

प्रान्तीय सरकारें इस धन्धे को इन दिनों विशेष रूप से उन्नत करने के लिए प्रयत्न शील हैं। संयुक्त प्रान्त में नैनीताल और पंजाब में कांगड़ा मधु मक्खी पालन की शिक्षा देने के लिए केन्द्र बना दिया गया है।

वर्तमान समय में यह व्यवसाय भारत में कई स्थानों पर सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है। मधु मक्खी पालने के लिए हमारे देश में अभी बहुत अधिक क्षेत्र है। विशेष कर पर्वतीय प्रदेशों में यह कार्य अच्छी सफलता के साथ चलाया जा सकता है। उत्तर भारत में हिमालय, काश्मीर, कुल्लू, होशियारपुर, मण्डी स्टेट, मसूरी, गढ़वाल, नैनीताल आदि इस के लिए उपयुक्त स्थान हैं। पहाड़ों पर मक्खियां अधिक अच्छा और परिमाण में भी अधिक शहद उत्पन्न करती है। दक्षिण भारत में त्रावनकोर, नीलगिरि, मलेय, कुर्ग आदि पश्चिम घाट के नौ सौ मील लम्बे क्षेत्र में और पूर्व और पश्चिम घाट में तथा आबू, विन्ध्याचल आदि पहाड़ों में भी यह उद्योग चलाया जा सकता है। पहाड़ के पास के स्थानों में-जैसे हरिद्वार, देहरादून और बंगाल में कलकत्ता आदि में-भी मक्खियां पाली जा रही हैं। उपर्युक्त स्थानों में कई जगह अच्छी सफलता मिली है। गृह उद्योग के अतिरिक्त व्यापारिक परिमाण में भी उन स्थानों से शहद बाजार में आने लगा है।

यह एक ऐसा उद्योग है जिस से अमीर गरीब सब लाभ उठा सकते हैं। इस के लिए बड़ी पूंजी और लम्बे चौड़े स्थान की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े से परिश्रम और ध्यान से कोई भी व्यक्ति अपने कमाने के दूसरे धन्धे को करता हुआ भी सहायक उद्योग के रूप में इसे सुगमता से चला सकता है। माली, किसान, बढ़ई, घड़ी साज, वकील, व्यापारी, मिशनरी, सरकारी तथा गैर सरकारी उच्च आफिसर, कॉलेज के प्रोफेसर, स्कूल के मास्टर और विद्यार्थी आदि सभी प्रकार के वर्गों के व्यक्तियों को हमने मधु मक्खियां पालते देखा है। इन में से अनेक यूरोपियन मधु मक्खी पालक भी हैं।

अवकाश के समय इस गृह-उद्योग का अभ्यास मनोरंजन के साथ हमें दुनियादारी चिन्ताओं से भी कुछ देर के लिए मुक्त कर देता है। खेती और बागवानी का काम करने वालों के लिए यह धन्धा बहुत लाभप्रद है। परिश्रमी मक्खियां फूलों के परागों को एक दूसरे फूल में पहुंचा कर उन्हें अधिक उपजाऊ बना देती हैं। परिणामतः फसल की पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है। परीक्षणों से देखा गया है कि जिन बागों में मक्खियों ने पराग का वाहन किया है उन में फल पहले की अपेक्षा आकार में डेढ़ गुने बड़े और फसल का बहुत अधिक प्राप्ति हुई है। संसार में कोई ऐसी चीज नहीं है जो मधु मक्खियों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह फूलों में पराग का आदान प्रदान कर सके।

खेती और बागवानी में मधु मक्खियों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए दक्षिण भारत के कई स्थानों पर गरीब किसानों और फूलों की खेती करने वालों ने इसी उद्देश्य से मक्खियों को पालना आरम्भ किया है। ग्राम वासियों को इस उद्योग के कारण एक मूल्यवान पदार्थ मधु तो मिलता ही है साथ ही उन की आय भी उस उद्योग से काफी बढ़ जाती है। विशेष कर हमारे देश में जब कि और देशों के मुकाबले में मधु मक्खियां अधिक होती हैं।

(असमाप्त)

स्वास्थ्य समाचार

धर्मचन्द्र १२ श्रेणी विषमज्वर, रमेशचन्द्र १४ श्रेणी व्रण, प्रद्युम्न ५ श्रेणी मलेरियाज्वर, बलराज ४ श्रेणी मलेरियाज्वर, रामनन्दन ३ श्रेणी मलेरियाज्वर, सूर्यप्रकाश ३ श्रेणी मलेरियाज्वर, सुरेन्द्र २ श्रेणी मलेरियाज्वर, सहदेव २ श्रेणी मलेरियाज्वर, राजेन्द्र २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, अमरसिंह १ श्रेणी टान्सिल, रमेशचन्द्र ४ श्रेणी भस्म, अविनाश १ श्रेणी खसरा,

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० अविनाश १ श्रेणी तथा रमेशचन्द्र ४ श्रेणी को अभी ज्वर है। आशा है कि शीघ्र आराम आजावेगा। आजकल अधिकतम तापमान १०४ फा० है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

ब्राह्मणों-अब्राह्मणों को अलग २ बैठते जब मैंने देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना रहा, किन्तु मैंने यह कह कर अपने को सन्तोष दिया कि इस प्रकार की बातें 'महर्षि' जी की सहमति और ज्ञान के भी बिना सम्भवतः शिष्यों द्वारा की जाती हो, अतः इस विषय में श्री रमण जी के अभिप्राय को जानने की प्रबल इच्छा हुई। भोजनानन्तर जब मैं उनके पास गया तो इस जाति-भेद के विषय में अपना विचार प्रकट करने की 'महर्षि' जी से प्रार्थना की। प्रारम्भ में यह कह कर कि आध्यात्मिक दृष्टि से इन सब विषयों पर विचार करना चाहिये उन्होंने जब जाति भेद का समर्थन प्रारम्भ किया तो सचमुच आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे कि यह भेदभाव तो यूरोप अमेरिका आदि में सर्वत्र पाया जाता है। क्या तुम्हारा यह मतलब है कि एक बड़ा थाल रख दिया जाय जिसके चारों ओर घोड़ा गधा गाय कुत्ता मनुष्य आदि सब प्राणी बैठ कर भोजन करने आएं अथवा लोग आकर महर्षि को (अपने को उन्होंने इसी नाम से कहा) तख्त से उठा कर स्वयं वहां बैठने जाएं कि हम सब समान हैं इत्यादि वाहियात सी लच्चर युक्तियां जाति भेद के समर्थन में देने लगे। जब उस निस्सार तर्क का मैंने निराकरण किया तो श्री रमणजी बड़ी उत्तेजित अवस्था (Excited mood) में प्रतीत हुए। न जाने उनकी शांतता या सौम्यता उस समय कहां चली गई थी। जब महात्मा गांधी जी का नाम मेरे मुख से निकला तो उन के मुख से कुछ ईर्षा पूर्ण निन्दात्मक वाक्य सुन कर मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा। मुझे यह देख कर और सुन कर आश्चर्य हुआ कि दूसरे उन्हें 'महर्षि' कहें तो कहें वे स्वयं अपने को 'महर्षि' कहने लगे। यह सब देख कर मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि भक्तिका मार्ग बड़ी सावधानी से चलने का मार्ग है क्योंकि अगर इस मार्ग पर सतर्कता से न चला जाय तो इस पर चलने वाले कुछ देर बाद मनुष्य पूजा की तरफ चलने लगते हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ ज्येष्ठ १९९७, ३१ मई १९४० [संख्या ७

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल-शिक्षा का स्थान

(श्री वीरेन्द्र विद्यालंकार)

[गताङ्क से आगे]

मुझे खूब याद है कि जब हम बालोद्यान (Kindergarten) की श्रेणी में थे तो पहिले पहल हमसे सन्ध्या के मन्त्र, अष्टाध्यायी के सूत्र तथा कुछ श्लोकों को कण्ठाग्र कराने का काम लिया गया था इस सिलसिले में यह बात हमें समझनी चाहिये कि हम उस समय-मति-बुद्धि की (रटन विषयक) मैशीनरी का प्रयोग कर रहे थे और वह घोखना हमारा शब्दानुकरण मात्र था-उसमें अर्थों की विद्यमानता नहीं थी। वह कण्ठाग्र करना कण्ठाग्र की खातिर तो था ही परन्तु फलतः उसके समुपस्थित हो जाने पर उस शब्द माला व कोश के अर्थ समझने में हमें बड़ी सहूलियत हुई। इस प्रकार-स्मृति के क्षेत्र में हमारी शब्दानुकरणात्मक वृत्ति ने हमारे पास मन्त्र-श्लोक-सूक्तों का एक मधुर संग्रह बना दिया था जिसको जब चाहते जुगाली द्वारा-व आवृत्ति द्वारा उसके अर्थ-निष्कर्षों का विवेचन कर हमें आनन्द प्राप्त होता रहता था। यह तो हुई मूर्त्त तथा अमूर्त्त ;सक्रिय और निष्क्रिय (शाब्दिक) अनुकरण की प्रवृत्ति।

इसके साथ ही दूसरी इतनी ही मुख्य प्रवृत्ति को यदि हम भुला दें तो बाल शिक्षण का प्रयोग अधूरा ही रह जायगा। वह प्रवृत्ति क्या है-एक शब्द में वह प्रवृत्ति पहचानने-चीन्हने की है। अर्थात् फलां वस्तु जिसका फलां नाम है, वह यह है और वह वस्तु जिसका फलां नाम है वह नहीं है। इस प्रवृत्ति को घरेलू शब्दों में पहचाना या चीन्हना कहकर भी हमें इसके दार्शनिक नाम से परिचित होना चाहिये। इसका दार्शनिक नाम- 'दर्शन' है-देखना अर्थात् पदार्थ को देखना भालना जानना। यह बिना उस पदार्थ के गुण-धर्मों को जाने नहीं हो सकता। बालोद्यान में इस विषयक शिक्षण का प्रारम्भ बहुत छोटे २ और साधारण रोज़ के उपयोग में आने वाले पदार्थों से प्रारम्भ होता है। उदाहरणार्थ, उन वस्तुओं से जो हमारे दैनिक उपयोग में आने वाली हैं। खाने-पीने पहनने तथा आवास की वस्तुएं! बहुतेरा देखा जाता है कि प्राथमिक कक्षाओं के बालकों को खाद्य सामग्री में-शाक और दालों-पहनने के वस्त्रों तथा वासगृह में विद्यमान वस्तुओं और कुछेक पालतू तथा जंगली पशुओं के नाम संज्ञा का अर्थ ज्ञान पूर्वक उन्हें पहचाना नहीं आता है। इसी कमी को पूरा करने के लिये आधुनिक बाल शिक्षण में मूर्त्त और सक्रिय पाठों (Object Lessons Mock Plays) पर प्रारम्भ में बहुत बल दिया जाता है। निस्सन्देह इस पद्धति की नींव में एक गहरी सचाई भी है कि आप जिस २ वस्तु का नाम-संज्ञा निदर्शन- तथा गुण-धर्म प्रकाशन करना कराना चाहते हैं उनका आपकी आंखों व हाथों से, आप के समूचे व्यक्ति के साथ क्या सम्बन्ध है। मझे याद है कि मुझे स्वयं 'चने की दाल' (मा छोलयां दी दाल) का मध्यम श्रेणियों में पहुंच कर ही पता चला था। उससे पहले मैं इसे अपने दिल में 'पंजाबी अरहर' ही समझता रहा था। इसका कारण मुझे पीछे से ज्ञात करने पर पता चला था कि जिन दिनों इन दालों का मूर्तपाठ श्रेणी में चल रहा था मैं अस्पताल की छांह से भी दूर कहीं खसरा कैम्प में बहिष्कृत था। यह कारण था कि मुझे काफ़ी अरसे तक चने की दाल का नाम संज्ञाथक दर्शन व प्रत्यक्ष होने का अवसर न मिला। यह ठीक है कि इसी प्रकार के अनेक पदार्थों के बारे में प्रायः बालकों और कभी प्रौढ़ वयस्कों की नाजानकारी देखकर आश्चर्य होता है।

'दर्शन' जिसे देखना भालना व जानने के रूप में पहिले कहा गया है उस की शुद्ध प्रक्रिया अवगत करने के लिये कुछ एक नियम अपेक्षित हैं। इसमें यहां आर्ष दर्शनों के चार व आठ प्रमाणों की विवेचना नहीं करनी प्रत्युत उन सामान्य नियमों को याद करलेना है जो बाल शिक्षण में कामदेह साबित हों। उदाहरण के लिये-आप बालक के सन्मुख कुछ खिलौने ला रखते हैं-वह पहिले उन्हें देखता है, फिर चीन्ह कर चुन लेता है। बालक की चुनने की इस इस प्रक्रिया में क्या नियम है? पहिले तो वह खिलौने का रूप-आकार-प्रकार, फिर रंग लाल पीला, फिर

कोमलता कठिनता आदि स्पर्श, और जो चाहा तो सूंघकर और चख कर भी देख लेता है। इस प्रकार हमने देखा कि एक ओर जहां वह पंचेन्द्रियात्मक परीक्षण कर रहा होता है वहा साथ ही वह दूसरे खिलौनों से उसकी तुलना भी करता है। यहा सादृश्य तथा विसदृशता का ज्ञान है जिस से वह प्रभावित होकर किसी खिलौने से प्यार करता है और किसी का तोड़ मरोड़कर दूर फेंकता है। बालक का इस तुलनात्मक वृत्ति का उपयोग हमें उसके पास अभिरूप आकार वाली वस्तुओं सुन्दर-दृश्यों तथा स्वादिष्ट और सुगन्धित खाद्य और पेय पुष्प सामग्री पहुंचाकर अथवा उसे उसके समीप पहुंचाकर करना चाहिये। इस प्रकार उसकी सामान्य दर्शनानुमोदित व ऐन्द्रियक वृत्तियों का जागरण और पूर्ण विकास होने का मार्ग खुल जायेगा।

बालकों के प्राथमिक शिक्षण का आधार उसको इन्द्रियात्मक वृत्तियों को न केवल चारुतया जगा कर प्रेरित करना है परन्तु उनकी सन्तुष्टि के लिये उन सरल और सात्त्विक विषयों को उनके सम्पर्क में लाना है जिससे उनका कलात्मक (जीवन-कला को जागृत करने वाला) उद्बोधन और विकास हो सके। इस लेख के लेखक को यह देख कर बड़ा दुःख होता है जब वह जीवन कला की रमणीक सजीव कलाओं का मैशीन की तरह विद्या शालाओं में और शिक्षा के क्षेत्र में दुरुपयोग देखता है। उसके आश्चर्य का तब कुछ ठिकाना नहीं रहता जबकि एक जीवन कला मैशीनकल की तरह काम करने में अशक्त होती है तो उसको उस रूढ़ि प्रसित सांचे में ढालित शाला व शिक्षा के क्षेत्र के लिये अनुपयुक्त करार दिया जाता है। मैं निश्चय से कह सकता हूं कि किसी भी शिक्षा शास्त्र का यह ध्येय तथा किसी शिक्षा प्रणाली का यह दृष्टिबिन्दु अपने आप में शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों का विरोधी है। सच्ची शिक्षा तो वह है जो बालक की प्रवृत्तियों व गुण-धर्मों को पहचानकर सही अर्थों में उसको अपने तथा अपने द्वारा दूसरों के विकास का पथ प्रदर्शन करे। उसकी घातक प्रवृत्तियों को मिटा दे और जीवन प्रद प्रवृत्तियों का परिष्कार करे। सफल है वह विद्यालय जहां का गुरु अपने छोटे छोटे ब्रह्मचारियों की बाल सुलभ कल क्रीड़ा में (को नामासि ? यस्य ते नामामन्महि य त्वा सोमेनातातृपाम !) का प्यार दुलार दे दे कर उन्हें प्रसन्न चित्त-ज्ञानी-तपस्वी कर्त्तव्य निष्ठ प्रजा और वेदों निधिपा बनाने के लिये प्रतिदिन प्रातः सायं परमेश्वर के सन्मुख यह शुभ कामना किया करता है:—"ओं मेधां मे देवः सविता, मेधां देवी सरस्वती। मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ" निस्सन्देह ऐसी परिस्थिति में बालकों का शिक्षण सावधानी से हुआ तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आधार अधिक दृढ़तर हो जायगा। आवश्यकता है इस समय, कि मोम के समान कोमल बालकों को शिक्षित करने के लिये उन से भी कोमलतर और 'चित्त दृश्य' गुण वाले 'सविता'-'सरस्वती' और 'अश्विनौ' तय्यार किये जांय जो गुरुकुल बाल-शिक्षण के क्षेत्र में प्रवेश कर अपने प्रयोगों और प्रेरणाओं द्वारा इस अत्यावश्यक कार्य को संभाल कर इस विषय में पथ प्रदर्शन करें।

लेखक की अन्त में गुरुकुलीय-विद्या सभा से प्रार्थना है कि वह इस विषय की ओर अधिक से अधिक और सक्रिय ध्यान दे ताकि यह उपेक्षित सा विषय शिक्षा का आधार (तालीम का बुनियाद) होने के नाते हमारे शिक्षण विज्ञान में प्रथम स्थान प्राप्त करे।

'२० मई का अनुभव'

'गुरुकुल' के गत अंक में '२० मई का अनुभव' शीर्षक जो लेख छपा है उस से क्योंकि कुछ एक को कुछ गलत फहमी पैदा हो गई है इसलिये उस के लिये हमें खेद है।

हम इतना कह देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि उस द्वारा श्री अरविन्द जैसे महापुरुष के विषय में किसी प्रकार के तिरस्कार के भाव प्रकट हों यह ज़रा भी अभीष्ट न था, किन्तु उस घटना में जिन बातों का वर्णन है वैसी बातों द्वारा क्योंकि जनता में पाखण्ड फैल जाता है इसलिये ऐसे पाखण्ड का खण्डन करना ही अभीष्ट था।

धन

(अनुवादक—श्री विद्यालंकार)

साधारणतया महत्त्वाकांक्षा विरोधता का रूप धारण कर लेती है। बहुत से मनुष्य ऐसे मिलेंगे, जिन्हें सङ्गीत, कविता, अथवा विज्ञान के लिये कभी रुचि नहीं हुई, लेकिन अपनी आजिविका के लिये सब प्रयत्न करते हैं, और इसके परिणाम स्वरूप अपनी आय में वृद्धि न केवल वाञ्छित होती है, बल्कि सफलता सूचक आनन्द प्रदान करती है।

धन की अनुकूल परिस्थिति मानने में बार २ सन्देह प्रकट किया जाता है। मैं स्वयं भी इस बात में विश्वास नहीं रखता कि एक अमीर के घर में पैदा होने वाले व्यक्ति का जीवन आवश्यक तौर से अधिक सुखी होता है। निस्सन्देह धन के कारण मनुष्य को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। और साथ ही साथ चिन्ता उत्पन्न होती है। फिर भी यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि आय की वृद्धि, चाहे कितनी न्यून हो, समय के साथ ज्यों २ बढ़ती है, अपने साथ जीवन में आराम और सुविधा को भी बढ़ाती है। लेकिन इस बात को अपनी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होने देना चाहिए कि हम धन के स्वामी हैं, धन हमारा स्वामी नहीं।

धन की प्राप्ति निस्सन्देह बहुत सी बुराइयों की जड़ है। प्रायः धन और धन प्रेम साथ २ रहते हैं। एक निर्धन व्यक्ति, जैसा इमर्सन ने कहा है, धनी बनना चाहता है, लेकिन ज्यों २ उस के पास धन जुड़ता है, त्यों त्यों उसकी तृष्णा और अधिक हो जाती है। जैसे शराब प्यास बुझाने के बदले, बढ़ाती है, आमतौर पर वैसे ही धन के साथ २ लालसा भी बढ़ती जाती है।

धन को, वास्तव में, विशेष रूप से धन के लिये ही कमाया जाता है। वैसे भी धन को सुरक्षित रखने व भोगने की अपेक्षा कमाना बहुत सुगम है। इसको सुरक्षित रखना बहुत ही नीरस और चिन्ता जनक होता है। धन को जाने की चिन्ता जीवन रूपी आकाश में काले बादल की तरह मंडराती रहती है। 'सेनिका' ने एक स्थान पर लिखा है कि एपिसियस ने अपनी पैतृक सम्पत्ति को बहुत फिजूल खर्च किया। लेकिन वह धन इतना अपार था कि २।। लाख क्राउन अब भी बचे हुए थे। इतनी सम्पत्ति का मालिक होते हुये भी, इस चिन्ता से कि कहीं मुझे पैसों का मुहताज होकर भूखे न मरना पड़े, उसने आत्म-हत्या करली थी।

धन कोई राम बाण औषध नहीं है। धन का मूल्य तो कुछ हद तक उसके कमाने के तरीके और कुछ हद तक उसको उपयोग में लाने की जानकारी पर निर्भर है।

"तुम्हारे मित्र कहते हैं कि खूब धन कमाओ, ताकि हमें भी उस में से कुछ हिस्सा मिल सके। उन से कहो कि ऐसा तरीका बताओ, जिससे मैं खूब धन कमाऊँ पर साथ ही साथ उदार, नम्र व कृतज्ञ रह सकूं। यदि कोई ऐसा तरीका है, तो मुझे धन कमाने में जरा भी आपत्ति नहीं। लेकिन अगर तुम यह चाहते हो कि मैं अपनी अच्छाइयां केवल इस लिये छोड़ दूं कि तुम्हें कुछ ऐसी चीज़ें प्राप्त हो सकें, जो अपने आप में बुरी हैं; तो तुम्हीं बताओ कि तुम कितने अदूरदर्शी और अकृतज्ञ हो। क्योंकि तुम किसे अधिक पसंद करोगे ? धन को अथवा एक विनीत और विश्वास पात्र मित्र को।"

"जिसने इन सब बातों को जान लिया है, वह सदा पवित्र हृदय से जीवनयापन करता है। वह बुरी से बुरी अवस्था के लिये, तैयार रहता है; और जो कुछ हो रहा है, उसको खुशी से सहन करता है। उसके जीवन यापन में बड़ी से बड़ी बाधा भी बाधक नहीं हो पाती। क्या तुम मुझे निर्धन अवस्था में देखना चाहते हो ? तुम खुशी से देखो, और तब तुम्हें पता लगेगा, एक ऐसे मनुष्य के साथ, जो निर्धन का पार्ट भी अच्छी तरह से अदा कर सकता है, निर्धनता का क्या अर्थ है ?"

हमें क्रीसस को दिया हुआ सोलन का उत्तर, सदा स्मरण रखना चाहिये, "हे महानुभाव ! यदि कोई तुम से अधिक शक्ति शाली आजावे, तो वह इस सारे धन और स्वर्ण का स्वामी बन जायेगा।"

साधारणतया धन में आत्मा को निर्बल कर देने की प्रवृत्ति है। लेकिन दूसरी ओर ऐसा कौन सा गुण या प्रभु का दान है, जो भय और आशङ्काओं से रहित हो ?

युरीपीडीस ने कहा था, धन मनुष्यों को मित्र बना देता है, मानव जाति में इसकी शक्ति महती है, और फिर कुछ घृणा के भाव से कहा "धनी मनुष्य और विशेषकर जब उसके उत्तराधिकारी का पता न हो, बड़ा शक्ति शाली होता है।"

शैसेट ने बहुत ही सुन्दर बात कही है "मुझे धन के लिये कोई लगाव नहीं है, लेकिन फिर भी अगर मुझे अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिये जितना जरूरी है, उतना धन मिल जाये; तो मैं समझता हूँ कि मैं कुछ मनुष्य हो जाऊंगा और मेरी आधी से अधिक प्रतिभा लुप्त हो जायगी।"

शैले को लोभी कहना भूल है लेकिन उसने एक जगह कहा है "मैं धन चाहता हूं, क्यों कि मेरा विचार है कि मैं इसका प्रयोग जानता हूं, इसका परिश्रम पर प्रभुत्व है। यह अवकाश प्रदान करता है; और ऐसे मनुष्य को अवकाश प्रदान करना-जो इस अवकाश का सत्य के प्रकाश करने म उपयोग करते हैं,—मनुष्य का समाज के प्रति सर्वोत्तम दान है।"

निस्सन्देह कुछ हद तक यह स्वार्थ पूर्ण सन्तोष था। तो भी किसी व्यवसायी को अपने धंधे को छोड़ने या उस से शर्मिन्दा होने की जरा भी आवश्यकता नहीं; यदि वह वेनिस के गिरजे पर खुदे हुए निम्न वाक्य को सदा स्मरण रक्खे "इस मन्दिर के ईर्दगिर्द प्रत्येक व्यापारी के नियम न्याय्य हों, बट्टे पूरे हों, और सौदे व ठेके ईमानदारी के साथ हों।" रस्किन।

यद्यपि, यदि कोई मनुष्य धन को जोड़ने में ही अपने जीवन की बलि चढ़ा देता है; तो वे साधन हो, जिनके द्वारा यह प्राप्त होता है,-इसका उपयोग करने में बाधक हो जायेंगे। निर्धनता की ठंड उसकी हड्डियों में घुस चुकी है। कंजूस व्यक्ति, इस डर से कि कहीं वह किसी सुख से वञ्चित न रह जाये; किसी भी सुख का उपभोग नहीं कर सकता। सौभाग्य से ऐसे ही व्यक्तियों के लिये कंजूस (Miser) शब्द चुना गया है, क्यों कि वे दया के पात्र (Miserable) हैं।

संग्रहशील मनुष्य बड़ी बड़ी दुकानों में जाकर सुन्दर सुन्दर सूर्योदय, सूर्यास्त आदि के दृश्य व अन्य कृतियां ढूंढता फिरता है, लेकिन प्रकृति की कृतियां प्रतिदिन हरेक गली में नये २ रूप में प्रकट होती रहती हैं। रोज सूर्योदय और सूर्यास्त होते हैं, और मानवीय शरीर की पेचीदा कृति सर्वदा विद्यमान रहती है। अभी हाल में, एक और संग्रह प्रिय व्यक्ति ने लन्डनकी एक नीलामी में शेक्सपियर के हस्ताक्षर १५० पौण्ड में खरीदे थे, लेकिन एक विद्यार्थी एक पाई भी खर्च किये बिना 'हेमलेट' को पढ़ सकता है, और उस में से अनेक ऐसे रहस्य का उद्घाटन कर सकता है जो इस में छुप भी नहीं सकते। और तो भी इस हस्ताक्षर का मालिक उनको देखने के सिवाय और क्या कर सकता है?" सोलोमन—

हम अपने को जितना समझते हैं, उससे वास्तव में कहीं अधिक धनी हैं। हम प्राय भू-क्षुधा की बात सुना करते हैं। मनुष्य एक जागीरदार से ईर्षा करते हैं, और ख्याल करते हैं कि एक बड़ी जागीर का अधिपति बनने में बड़ा आनन्द आता है। लेकिन आमतौर पर जैसा कि एमर्सन ने कहा है। "जब मनुष्य किसी जागीर का स्वामी होता है,तो वह जागीर उस पर शासन करती है।" तथापि क्या हम में से हरेक-एक उच्च दृष्टि बिन्दु से हममें से हरेक- क्या हजारों एकड़ भूमि का अधिपति नहीं है ? बड़े २ पार्क, सड़कें, पगडण्डियां, समुद्रीय किनारे, और

(देखिए पृष्ठ ७ पर)

गुरुकुल

१९ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९७

मनोरंजन

[श्री आचार्य अभयदेव जी का एक उपदेश जो महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के बीच में दिया गया था]

ब्रह्मचारियों को ताश खेलना, चौपड़, शतरंज, कैरम खेलना या अष्टाध्यायी नवाह्निक नामक गिट्टियों के खेल खेलना क्यों बुरा है यह कई विद्यार्थी समझना चाहते हैं। उन्हें मैंने कुछ समझाया भी है। तुम सबको ही मैं आज इसी विषय पर कहता हूँ।

तर्क तो आज कल हरेक अभीष्ट बात के पक्ष में दिया जा सकता है, तैयार रहता है। अतः जब मैंने पूछा कि तुम ही बताओ कि 'इन खेलों से क्या लाभ, इन में क्यों समय बर्बाद किया जाय ?" तो मुझे कई लाभ बता दिये गये। और दुःख की बात यह है कि कई कमजोर दिमाग़ वाले भाई सचमुच, दिल से, इन युक्तियों को सही समझते हैं या समझने लगते हैं। पर उन आत्म वंचना की दलीलों को यदि छोड़ दिया जाय (गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को तो ऐसी मोटी आत्म वंचना से स्पष्ट ऊपर होना ही चाहिये) तो भी एक बात है जो कुछ समझ में आने लायक है और वह है मनोरंजन की बात। "क्या हम मनोरंजन भी नहीं करना चाहिये। क्या हमें मनोरंजन की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये ?"

१. फ़ुरसत कहां है ?

मनोरंजनकी कहां आवश्यकता है, मनोरंजन का स्वरूप क्या है इस तत्त्व-विवेचना को भी अभी छोड़ दें तो इतना तो साफ़ है कि मनोरंजन वही कर सकता है जिसके पास इसके लिये फ़ुर्सत हो। तो क्या तुम्हें इसके लिये फ़ुर्सत है ? या हो सकती है या होनी चाहिये। एक विद्यार्थी, एक ब्रह्मचारी एक गुरुकुल के ब्रह्मचारी के तौर पर तो तुम्हें इसके लिये फ़ुर्सत ही नहीं हो सकती। मैं तो यहां तक कहूंगा कि यदि तुम्हें वस्तुतः फ़ुर्सत है तो तुम विद्यार्थी नहीं हो, गुरुकुल के ब्रह्मचारी तो हो ही नहीं सकते।

'सुखार्थिना कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतः सुखम्'

दयानन्द जी की पुस्तक में पहली श्रेणी में ही हमने यह पढ़ा था। इस श्लोक में सुख से मतलब मनोरंजन का सुख ही समझो। विद्यार्थी और सिपाही एक ही कोटि के होते हैं। धन अर्जन करने वाले को निरर्थक समय खोने की गुंजाइश नहीं हो सकती, तो जो विद्या और ज्ञान को अर्जन करने के कठिन काम के लिये आया है वह कैसे समय खो सकता है ? उसके लिये तो पल पल बड़ा कीमती होता है। यदि तुम में से किसी को कैरम खेलने को समय मिल सकता है तो वह इस बात का चिह्न है कि उस के सामने कोई लक्ष्य नहीं है, उसको कोई ध्येय नहीं, उसने अपनी मनुष्यता को ही नहीं स्वीकारा है, वह महाविद्यालय विभाग की उच्च शिक्षा पाने का अधिकारी नहीं है। और फिर ब्रह्मचारी को फ़ुर्सत कहां, वह तो श्रम और तप का जीवन बिताने ही गुरुकुल में आता है। निश्चय जानो जो तप और श्रम का जीवन नहीं बिताता वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। ब्रह्मचारी को सिपाही की तरह कटिबद्ध रहना ज़रूरी होता है, मेखला धारण का विधान इसी बात का द्योतक है। गांधी जी राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं (सैनिकों) के लिये कहा करते हैं कि उन्हें न तो खुद दम लेना चाहिये और न दूसरों को दम लेने देना चाहिये। यह बात आत्मिक सैनिकों-जो कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी माने जाते हैं-के लिये तो और भी अधिक लागू होती है। क्योंकि आत्मिक लड़ाई इस से बहुत अधिक गहन है और उसकी तैयारी इस से बहुत अधिक कठिन है। इस लिये यह तो समझ में आ सकता है कि तुम्हें समय की तङ्गी की शिकायत हो पर यह नहीं समझ में आ सकता कि तुम्हें समय काटने की तरकीब सोचनी पड़े। क्या तुम नहीं देखते कि आज दुनियां में अमीर और गरीब की विषमता के साथ साथ एक बड़ी भारी विषमता यह भी है कि एक तरफ़ तो (जैसे मज़दूर और किसान) वे लोग हैं जो दिन भर १० १०, घण्टे काम कर के भी भर पेट रोजी भी नहीं कमा पाते, उन्हें अपने अन्य बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिये कुछ करने को फ़ुरसत नहीं मिल पाती, दूसरी तरफ़ (जैसे पूंजीपति या अन्य धनिक) वे लोग हैं जिन्हें अपना समय काटने के लिये शुगल ढूंढने पड़ते हैं और वे निरर्थक, अनुत्पादक तथा हानिकारक बातों में समय बिताते हैं। यदि गुरुकुल से मिला ज्ञान तुम में से किसी को इस दूसरी श्रेणी की तरफ़ खींचता है, उस अवस्था के प्रति विद्रोह नहीं पैदा करता तो समझो कि कहीं ग़लती है। तुम्हें तो इस विषमता का भी क्रियात्मक हल करना है-आवश्यक कर्त्तव्य कर्मों से ही सामंजस्यपूर्वक भरे जीवन बिताने का आदर्श पेश करके हल करना है। तुम जो देश भक्ति के गीत गाते हो, देश सेवा ही नहीं धर्म सेवा का दम भरते हो, तुम्हें तो ज़रा भी समय खोना भारी गुनाह अनुभव होना चाहिये। लोग जो तुम्हारा-गुरुकुल का-आदर करते हैं वे किसी आशा से ही करते हैं—उनकी आशा है कि तुम किसी बड़े काम की तैयारी में लगे हुए हो। तो तुम्हें फ़ुरसत कैसी ? बात यह है कि तुम अपने आपको भूल जाते हो, बहुत नीचे उतर आते हो, तभी तुम अनुभव करने लगते हो कि तुम्हें फ़ुर्सत है या तुम्हें मनोरंजन की ज़रूरत है और तुम्हें बच्चों के लायक मनोरञ्जनों में पड़ना भी प्रिय लगने लगता है।

२. मनोरंजनप्रियता शूद्र का लक्षण है।

बच्चे के लिये तो बेशक मनोरंजन की आवश्यकता है पर ज्यों ज्यों हम आयु के साथ ज्ञान में भी बढ़ते हैं त्यों त्यों इस मनोरंजन की वैसी ज़रूरत नहीं रहती। यह तो साफ़ है कि बच्चों के खिलौनों से या झुनझुना बजाने से अब हमारा मनोरंजन नहीं हो सकता। बात यह है कि ज्ञान के बढ़ने के साथ मनोरंजन का तरीका भी बदलता जाता है। और आगे चल कर जुदा किसी मनोरंजन की ज़रूरत नहीं रहती, कर्तव्य कर्म करना ही मनोरंजन रूप हो जाता है। यह सूत्र बिलकुल ठीक उतरेगा कि जो जितना अज्ञानी है उसे उतना ही अधिक मनोरञ्जन, मनोविनोद व जी-बहलाव की ज़रूरत होगी। काशी के डा० भगवान दास जी वर्णाश्रम धर्म के जगत्प्रसिद्ध विद्वान् हैं। उन्होंने अपने वर्ण सम्बन्धी लेखों में सर्वत्र यह दिखाया है कि ज्ञान, शौर्य, अर्थ, मनोरंजन-प्रियता क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का लक्षण है और अपनी कल्पना के आदर्श राष्ट्र में उन्होंने यह माना है कि वह राष्ट्र जहां ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञान, बल और अर्थ के अधिकाधिक विकास व उत्पादन का यथोचित प्रबन्ध करेगा वहां उसे अपने शूद्रों के लिये मनोरंजन का पूरा प्रबन्ध भी अवश्य करना होगा। यह सत्य ही है, क्योंकि शूद्र ज्ञान में बालक ही तो होता है और बालकों के लिये ही मनोरंजन की ज़रूरत रहती है।

शूद्र के लिये यज्ञोपवीत का विधान क्यों नहीं? इस का मतलब यह तो नहीं है कि शूद्र को अक्षर ज्ञान भी न होना चाहिये या पढ़ना नहीं चाहिये। जिसे 'प्रारम्भिक शिक्षा' कहते हैं वह तो उसे भी मिलनी ही चाहिये। पर ऊंचा ज्ञान, विशिष्ट विद्या वह नहीं पा सकता, पा सकने के वह समर्थ नहीं होता, अतएव शूद्र होता है। उसका कोई विशिष्ट ध्येय नहीं होता अतएव वह दीक्षित नहीं हो सकता। यज्ञोपवीत दीक्षा का, यज्ञ-दीक्षा का चिह्न है। प्रारम्भिक सामान्य ज्ञान तो सबको मिलना चाहिये जैसे देश की वर्तमान बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा-जो वर्धा शिक्षा कहलाती है-आने वाले स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक भारतीय बालक बालिका को ७ वर्ष तक दी जायगी, दी ही जानी चाहिये। उस के बाद जो विशेष शिक्षा होगी वह शूद्रेतरों को जिनके अन्दर विशेष प्रकार के ज्ञान की मांग है (अर्थात् वैश्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों) दी जायगी। इन ७ वर्षों में यह बहुत कुछ पता लग जाना चाहिये कि कौन वैश्यत्व, क्षत्रियत्व या ब्राह्मणत्व में दीक्षित होने लायक है। यदि तुमने आर्य-वर्णव्यवस्था को ध्यान से पढ़ा है तो तुम देखोगे वहां ब्राह्मण वह बालक है जिस में ज्ञान की इच्छा जल्दी पैदा होती है, जो जल्दी ही अपने ध्येय को बनाने और दीक्षित होने योग्य हो जाता है, क्षत्रिय उसके बाद में, वैश्य उसके भी बाद में और जो उस प्रारम्भिक सारे (मानो सात वर्षों) समय में अपना ध्येय बनाने या दीक्षित होने योग्य नहीं होता दीखता वह शूद्र रह जाता है। इस लिये यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार के लिये विधान यह है—

'अष्टमेवर्षे ब्राह्मणमुपनयेत, एकादशे क्षत्रियं, द्वादशे वैश्यम्।

इसका मतलब यह हुआ कि विशेष विद्या में दीक्षित होने की इच्छा ब्राह्मण होने वाले बालक में आठवें वर्ष, क्षत्रिय में ११ वें वर्ष और वैश्य में बारहवें वर्ष में साधारणतया उत्पन्न होती है। असाधारण तौर पर तो कहा है:—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे, वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।

ब्रह्मवर्चस चाहने वाले ब्राह्मण बालक को पांचवें वर्ष से, बलशाली होना चाहने वाले क्षत्रिय को छठे वर्ष से तथा ऐसे विशेष वैश्य को आठवें वर्ष से ही दीक्षित किया जा सकता है। परन्तु साधारणतया मर्यादा यह है कि ८ से १६ वर्ष तक ब्राह्मण और ११ से २२ तक क्षत्रिय तथा १२ से २४ तक वैश्य में विशेष ज्ञान की पिपासा उत्पन्न हो जानी चाहिये, अपने जीवन-ध्येय का मार्ग दीख जाना चाहिये, नहीं तो वे पतित-सावित्रीक, दीक्षित होने के अयोग्य अर्थात् शूद्र हो जाते हैं। तो यह हमारा वर्णों का वर्गीकरण जन्म जन्मान्तर से चले आते मनुष्य के आन्तर विकास ठीक प्रकार से आगे चला सकने में सहायक होने के लिये ही था। जब आगे भावी स्वतंत्र भारत में हम मनुष्य की प्रकृति के अनुसार उस की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकेंगे तो प्रारम्भिक सामान्य शिक्षा के बाद दीक्षित हुए हुए वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ही आगे विशेष ज्ञान पायेंगे और उन में भी वैश्य पहले, फिर क्षत्रिय अपनी शिक्षा समाप्त करेंगे और ब्राह्मण ही विशेष ज्ञान-उच्च शिक्षा तक पहुंचेंगे। तभी शिक्षा वस्तुतः लाभ तथा कल्याण करने वाली साबित होगी, अस्तु। यहां तो यह मतलब है कि इस वैदिक तत्त्व ज्ञान के अनुसार इस उमर में भी तुम में से जिन में मनोरंजन प्रियता ज़ोर कर रही है यह इस बात का ही स्पष्ट लक्षण होना चाहिये कि वे असल में अभी तक दीक्षित नहीं हुए हैं, किसी ध्येय वाले नहीं बने हैं, अतः शूद्रत्व के अधिकारी हैं (क्यों कि वैश्य तो चौबीस वर्ष तक भी यदि दीक्षित न हो सके तो अब शूद्रत्वप्राप्त गिना जा सकता है)। नहीं तो ब्राह्मण या क्षत्रियों का क्या कहना है वे तो जिस गम्भीर ज्ञान साधना और तपस्या में लगे होते हैं, उन्हें कोई मनोरञ्जन मनोरञ्जन के लिये करने की कभी ज़रूरत हो ही नहीं सकती, दीक्षित हुवे वैश्य को भी अपने दीक्षा व्रत का पालन करते हुए मनोरञ्जन की फुर्सत नहीं हो सकती। मनोरञ्जन का अवकाश तो केवल उन अति साधारण मनुष्य भाइयों के लिये है जो बड़े होकर भी बालकों की तरह मस्तिष्क रखते हैं जिनका ज्ञान-विकास अभी शुरू ही हुआ है। आजकल के नाटक, थियेटर, सिनेमा आदि मनोरञ्जनों से शिक्षा मिलती है यह बेशक कहा जाता हो, पर सत्य यह है कि इनको यदि ठीक प्रकार से शुद्ध शुद्ध शिक्षा दृष्टि से ही किया जाय तब भी ये केवल शूद्र भाइयों को शिक्षा देने के साधन हो सकते हैं। नहीं तो आज सभी को (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को भी) गिराने के कारण हो ये हो रहे हैं, मनुष्य की उच्च वृत्तियों को दबा कर उसकी शूद्र प्रवृत्ति को उकसाने

वाले होकर सभी को निम्नतम सीढ़ी पर उतार लाने का, बहुत अंश में तो शूद्र वृत्ति ही नहीं किन्तु पशु वृत्ति को उकसा कर मनुष्य-पशु बनाने का बड़ा भारी काम वहां दिनरात हो रहा है। ऊंचे गम्भीर ज्ञान, सत्यज्ञान को पाने का तो आजकल वायुमण्डल ही दुनिया में नहीं रहा दीखता, क्योंकि असली ज्ञान तो दीक्षित होने, अच्छे गुरुओं द्वारा उपनीत होकर शिक्षित होने, ब्रह्मचर्य और तप की साधना करने के बिना मिलना असंभव है। इन खेल तमाशों से तो, यदि ये शुद्ध रूप से किये जायें, शुद्ध शूद्रता ही कायम रह सकती है और कुछ नहीं हो सकता। क्या तुम्हें भी पशु नहीं तो शूद्र रहना पसन्द है या सब मनुष्य जाति को शूद्र तल पर उतर आकर रहना प्रिय लगता है? यदि नहीं, तो याद रखो मनोरञ्जनप्रियता शूद्रत्व का ही अंश है, और तुम्हारे अन्दर अर्थ प्रियता, बल प्रियता और ज्ञान प्रियता कभी ठीक रह जायेगी तो तुम्हारा यह मनोरञ्जन पाने का अत्यन्त क्षुद्र ख्याल तो असली दीक्षा के प्रथम पग उठने ही न जाने कहां जाता रहेगा।

(असमाप्त)

रमते राम

[श्री ज्ञानी]

बहुत दिनों से ब्रह्म-देश देखने की इच्छा थी। परन्तु अनेक प्रतिकूल अवस्थाओं के कारण इच्छा जल्दी पूरी न हो पाई। आखिर हम ७ मार्च को मद्रास से चल ही पड़े।

जीवन-यात्रा के समान देश-भ्रमण के कार्य में भी एक साथी की निहायत जरूरत होती है। ऐसा साथी, जिसका स्वभाव अपने अनुकूल हो और जो अपना भार खुद उठा सके। बड़ी मुश्किल से हमने एक साथी ढूंढा था। पर चलने के दो दिन पहिले ही उसके बड़े-बूढ़ों ने यह कह कर उसे मना कर दिया कि "आज कल लड़ाई हो रही है। कहीं दुश्मन की सुरंगें समुद्र में बिछी हुई हों तो नाहक जान जोखिम में पड़ जाय।"

हमारे सिर पर तो सैर का भूत सवार था। सुरंगों का भय कहां? फिर, हमारी सम्मति में दुश्मन को इतनी दूर बंगाल की खाड़ी में आने की न तो अभी फ़ुरसत है और न जरूरत।

× × ×

मद्रास से रंगून लगभग १२०० मील दूर है। जहाज ३ दिन में जाता है। क्योंकि तीसरे दर्जे (Deck) में भाड़ ज्यादा थी इस लिये दूसरे दर्जे (Cabin) का टिकट लेना पड़ा। किराया ६२॥) रु० लगा। भोजन के २०) रु० इलहदा।

समुद्र शान्त था। रात चांदनी। प्रकाश में हल्के २ बादल। यात्रा का बड़ा आनन्द आया।

ठीक तीसरे दिन शाम को रंगून के बन्दरगाह पहुंचे। कुछ मित्र लेने आए हुए थे। सिवाय कस्टम के और कोई तकलीफ़ नहीं हुई।

× × ×

ब्रह्मदेश की पहिली विशेषता यहां के मन्दिर हैं जिन्हें बर्मी भाषा में "फया" कहते हैं। अंग्रेजी में इसे ही पगोडा (Pagoda) कहते हैं। बर्मा को अंग्रेज़ लेखकों ने प्राय: Land of Pagodas या मन्दिरों की भूमि कहा है। बर्मी लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। इनके मन्दिरों में भी बुद्ध-भगवान की विशाल काय मूर्तियां पाई जाती हैं। सोने चांदी, कांसे, पीतल और संगमरमर की उत्तमोत्तम मूर्तियां जहां तहां रखी हैं। इनके कई मन्दिर बड़े विशाल हैं। उदाहरणार्थ, रंगून का श्वे-डेगान फया और माण्डले का अराकान फया। ये मन्दिर हैं भी बड़े समृद्ध। लाखों की सालाना आमदनी होगी।

मन्दिरों के बाद बौद्ध भिक्षुओं या फुङ्गियों का नम्बर आता है। सम्पूर्ण जन संख्या का लगभग चौथाई हिस्सा ये साधु होंगे। न ये हल जोतते हैं और न ये कपड़ा बुनते हैं। फिर भी इन्हें भोजन वस्त्र के लिये पर्याप्त मिलता है। नगर से तनिक दूर, खुली हवा में, नदी, पहाड़ या किसी वन के समीप इनके आश्रम होते हैं। ये अति प्रात: काल पंक्तियों में अपना भिक्षा-पात्र लेकर निकलते हैं। गृहस्थी लोग इन्हें भिक्षा देने में अपना गौरव समझते हैं। फुङ्गी लोग १२ बजे मध्यान्ह से पूर्व ही भोजन करते हैं। इनके वस्त्र भी हिन्दू साधुओं के समान गेरु से रंगे रहते हैं।

बर्मा की तीसरी विशेषता यहां की स्त्रियों में है। वे स्वच्छ, सुन्दर और सुशोभित होती हैं। वे फूलों से बहुत प्यार करती हैं। स्वभाव से स्वच्छन्द हैं। और खेती-बाड़ी अथवा व्यापार-कार्यों में पुरुषों से अधिक परिश्रमी हैं

× × ×

हम ब्रह्मा में लगभग डेढ़ महीना घूमे। रंगून से माण्डले गये। माण्डले से लाश्यो। यह ब्रह्मा की सीमा है। आगे चीन की हद शुरु होती है। मार्शल चैंग-के-शेक का New Dominion (नया उपनिवेश) यहीं से प्रारम्भ होता है। यूनांग को रास्ता इधर से ही जाता है।

ब्रह्मा की बड़ी नदी इरावती की यात्रा भी सुन्दर है। हम माण्डले से जहाज में बैठकर "प्रोम" तक आए। यह नगर भी किसी ज़माने में बड़ा मशहूर था। हमें नदी की यात्रा रेल की यात्रा से अच्छी लगी। पानी का नजारा, दोनों किनारे के गांव, जंगल में रहने वाले सीधे लोग और पुराने मन्दिर व स्थान दर्शनीय हैं।

बर्मा के पहाड़ी स्थान यथा कलौ, टांजी, मेम्यो, भामो आदि भी सुन्दर हैं। हरी-भरी पहाड़ियां, उपजाऊ भूमि, ठण्डी स्वास्थ्यकर हवा, और सादा-सस्ता जीवन अपना आकर्षण रखता है। अनेक देशियों, विदेशियों ने इन पहाड़ी- स्थानों पर अपने बंगले बनाये हैं। व्यापार भी अच्छा है। गुरुकुल के दो सुयोग्य स्नातक श्री चेतन देव-जी आयुर्वेदालंकार और श्री परम जी वेदालंकार क्रमश: "टांजी" और "कलौ" में बसे हुए हैं। दोनों की फोटोग्राफी की दुकानें हैं और खूब कमाते हैं।

× × ×

ब्रह्मा बड़ा उपजाऊ देश है। यहां जवाहिरात चांदी, तांबा, रांगा और पीतल आदि की कानें हैं। लकड़ी (Teak wood) के बड़े जंगल हैं। धान की करोड़ों की

उपज प्रति वर्ष होती है। मिट्टी के तेल और पैट्रोल के कुएं हजारों हैं। इन सब चीजों की उपज और व्यापार प्रायः अंग्रेजी कम्पनियों के हाथों में है। और इसी खातिर बर्मा को ३-४ वर्ष पूर्व भारत से जुदा प्रान्त बनाया गया है।

× × ×

ब्रह्मदेश के निम्न दृश्य हमें बड़े सुन्दर प्रतीत हुए। रंगून के श्वा-डेगान् पगोडा का सुवर्ण-शेखर प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियों से झिलमिल करता हुआ। इसे ही रुडयार्ड किप्लिंग ने Winking Wonder के नाम से कहा है।

मेम्यो की झील में कमलों के साथ तैरते हुए सफेद हंस। ये भी अवश्य देखने चाहियें।

फिर नामटू की चांदी की खान और वो अंग्रेजी कारखाना जिसकी भट्टियों में एक ओर मिट्टी के डले डाले जा रहे हैं और दूसरी ओर चांदी की दूध सी सफेद धार बड़े २ ढांचों में पड़ कर भारी श्वेत ईटों (Ingots) की शक्ल अख्त्यार कर रही है।

"यनांजांड" के समीप B. O. C. के तेल के कुएं जो बिजली की मशीनों के जरिये १०-१५ हजार फीट की गहराई से तेल की धारा को खुद ब खुद पम्प कर रहे हैं।

मौल्मीन के समीप लकड़ी के कारखानों में जहां हाथी बड़े २ लकड़ियों के शहतीर उठाकर उन्हें मैशीनों द्वारा टुकड़े कर रहे हैं। ये दृश्य भी दर्शनीय हैं। कैसे दुर्बल मनुष्य ने हाथी जैसे भीमकाय पशु को अपने कार्य के लिये इतना साध लिया है।

× × ×

गत दो-चार वर्षों से बर्मा में भी सांप्रदायिक विद्वेष बढ़ रहा है। वही हिन्दू-मुस्लिम फसाद। वही सिर फुटौवल। बर्मी लोग अब भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। इसके कई राजनैतिक कारण भी हैं।

अस्तु, हमारी यात्रा समाप्त हुई। हमने अपने मेजबान का शुक्रिया अदा किया। हाथ मिलाए। चिट्ठी लिखने का वायदा। और नमस्ते।

जहाज ने आवाज दी। सीढ़ियां उठ गई। जहाज हिलने लगा। साथी किनारे खड़े रुमाल हिला रहे थे। और हम दूर, दूर, अथाह जलराशि की ओर बढ़ते गये।

"अच्छा! अगली यात्रा कहां होगी ?" मन ने पूछा। "जापान जाना चाहिये।" वहां का "चैरी-ब्लासम-सीजन" अच्छा है।" उत्तर मिला। परन्तु लड़ाई खतम हो जाय। फिर अगला प्रोग्राम बनाएंगे।

(पृष्ठ ३ का शेष)

हमारे बड़े बड़े तट—सब हमारी ही सम्पत्ति हैं। समुद्रीय तट के दो बहुत बड़े लाभ हैं। एक तो प्रायः करके, इस पर किसी मनुष्य का दखल नहीं होता, और दूसरे यह प्राकृतिक शक्तियों को निर्देश के साथ प्रदर्शित करता है।

वास्तव में हम सब बड़े २ जागीरदार हैं, केवल न जानने की वजह से हम अपने को निर्धन समझते हैं। हमारे पास भूमि की कमी नहीं है, केवल इसका उपभोग करने वाली शक्ति की कमी है। बल्कि इस विरासत में एक और बहुत बड़ा लाभ है, और वह यह कि इतनी बड़ी जागीर होते हुए भी हमें किसी तरह का परिश्रम व प्रबन्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। एक जमींदार को प्रबन्ध का कष्ट है लेकिन हरेक आंखों वाला व्यक्ति जमीन (प्राकृतिक दृश्य) को देख सकता है। और उसका उपभोग कर सकता है। इस प्रकार किंगस्ले एवरस्ले चारों तरफ के ढेर को अपना "शरत्कालीन उद्यान" कहा करता था। इस लिये नहीं कि कानून की दृष्टि में वह उसका था। बल्कि उस उच्च दृष्टि बिन्दु से, जिस के अनुसार लाखों आदमी उसी एक चीज के मालिक बनने का दवा कर सकते हैं।

गुरुकुल समाचार

धर्मवीर १४ श्रेणी बिच्छूदंश, प्रभाकर १३ श्रेणी टान्सिल, धर्मवीर ११ श्रेणी विषमज्वर, धर्मवीर १२ श्रेणी विषम ज्वर, अजयकुमार ११ श्रेणी विषमज्वर, धर्मेन्द्र नाथ ४ श्रेणी विषमज्वर, वीरेन्द्र ४ श्रेणी विषम ज्वर, मनमोहन २ श्रेणी विषम ज्वर, योगेश्वर २ श्रेणी विषमज्वर, देवदत्त २ श्रेणी विषम ज्वर, मनमोहन १ श्रेणी विषमज्वर, दयानन्द २ श्रेणी मम्स, रामकुमार ३ श्रेणी मम्स।

गत-सप्ताह उपरोक्त ५० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। गतसप्ताह अधिकतम तापमान १०६ फा० रहा। एक दिन थोड़ी वर्षा भी हुई परन्तु उसदिन आंधी का जोर अधिक रहा बाद में गर्मी फिर से पर्याप्त हो गई।

शोक-सभा

कुलवासियों की यह सभा वैदिकमुनि श्री स्वामी हरिप्रसाद जी के देहावसान पर दुःख प्रकट करती है, श्री स्वामी जी वेद, दर्शन आदि प्राचीन शास्त्रों के प्रखर विद्वान् थे, आर्य संस्कृति के उपासक थे, गुरुकुल को अपना मानते थे, तनमन धन को जाति-सेवा में समर्पित करने वाले सच्चे संन्यासी थे। परम पिता दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हम सबों को शक्ति दे कि उनके देहावसान से हुई क्षति पूरी कर सकें। मृत्यु से पूर्व आपने ११॥ हजार रु० का दान विविध संस्थाओं को किया।

स्वा० विचारानन्द जी का देहावसान

२७ मई को प्रातः बहुत चिकित्सा किये जाते हुए भी गुरुकुल कांगड़ी में श्री मान्य स्वामी विचारानन्द जी का शरीर छूट गया। उक्त स्वामीजी (पूर्व नाम त्रिलोक चन्द्रजी) एक बड़े निस्वार्थ सेवक थे। सदा दीन दुखियों के पक्ष में लड़ते रहते थे। जहां जहां काम किया वहां के लोग उन्हें बड़े प्रेम और सन्मान से याद करते थे। अन्तिम कुछ महीनों से वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में वाटिका-गोशाला का कार्य बड़ी उत्तमता और सफलता पूर्वक कर रहे थे। परमेश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २६ ज्येष्ठ १९९७; ७ जून १९४० [संख्या ८

मैंने अपने बालक को गुरुकुल में क्यों प्रवेश किया

आज से लगभग दो वर्ष पूर्व की बात है कि मेरा पुत्र गुरुकुल की धर्मशाला में मुझ से मिलने आया। थोड़ी ही देर के बाद अपनी बाल-सुलभ चपलता के साथ वह मुझ से असगंत बातें करने लगा, गुरुकुल जीवन तथा उस पर जमाई गई गंभीर महत्वाकांक्षाओं वाली बातों की ओर उसका झुकाव था पर उनमें सद्भाव से अधिक हास्य तथा शेखचिल्लीपन भरा था। यकायक उसने अत्यन्त गम्भीर भाव धारण किया और मुझ से पूछा, "पिता जी गुरुकुल में पढ़ लेने से ही ऐसी कौनसी विशेषता मुझ में आ जायगी कि मैं इच्छा करने से अपने को दुनिया का एक महान व्यक्ति बना सकूंगा, आप ऐसा क्यों विश्वास करते हैं?"

इसके इस प्रश्न ने मेरे हास्य व शेखचिल्ली मनोवृत्ति को खत्म कर दिया और मुझे अपने दायित्व का भार कुछ अखरने लगा। मैंने कहा, प्यारे पुत्र! आओ मैं तुम्हें एक पुरानी कहानी सुनाता हूं? कहानी का नाम सुन वह पुनः चपल व हल्का होगया, मुझसे कहानियां सुनने की उसकी एक बंधी आदत थी।

मैंने कहा कि तुम जानते हो कि जब भगवान् रामचन्द्र जी ने रावण को मार कर लंका का राज्य विभीषण को दे दिया तब वे अपने कुछ चुने साथियों के साथ पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आये और भरत ने अयोध्या का राज्य उन्हें सौंप दिया। उनके सिंहासन पर बैठ जाने पर आस पास के राजे महाराजे, सगे सम्बन्धी, ऋषि मुनि लोग उन्हें बधाई व आशीर्वाद देने के लिये अयोध्या आने लगे। एक दिन महर्षि अगस्त्य भी राज दरबार में पधारे। उन्हें देख भगवान रामचन्द्र सहित सब दरबारी गण अपने अपने आसनों से उठ खड़े हुए। श्री रामचन्द्र जी ने आगे बढ़कर ऋषि का स्वागत किया तथा उन्हें राजसिंहासन पर बैठा कर उनका उचित सत्कार किया।

ऋषि कहने लगे हे राम! तुमने रावण को मार कर संसार का भारी उपकार किया है। अगणित वीरों से भरी हुई लंका को जीत कर तुमने अतुल वीरता का परिचय दिया है, हम तुम्हारे वनवास तथा युद्ध का कुछ विवरण ज़बानी सुनना चाहते हैं। रामचन्द्र जी बोले, भगवन्! यह हम जानते हैं कि इच्छा होने से ही आप वर्तमान, भूत व भविष्य का हाल जान सकते हैं पर जब आप की आज्ञा हुई है तो हम सुनाते हैं।

"वनवास के हमारे प्रथम १२ वर्ष बिना किसी विशेष घटना के ऋषि मुनियों के संसर्ग में अपेक्षाकृत शान्ति पूर्वक व्यतीत हो गये परन्तु उसके अन्तिम दो वर्ष मेरे लिये एक भयंकर दुःख स्वप्न की स्मृति हैं। रावण द्वारा सीता के हरे जाने पर हम बहुत ही मोह को प्राप्त हो गये थे, उस समय लक्ष्मण ही हमारा विवेक, हमारा धैर्य व हमारी शक्ति थे। सुग्रीव की मित्रता उस समय हमें दैव के आशीर्वाद की नाईं प्राप्त हुई, और हनुमान ने तो बिना उचित साधनों के ही समुद्र को पार कर सीता का पता लगा कर एक चमत्कार कर दिखाया। रावण के विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष आदि अनेक महारथियों तथा राजपुत्र अक्षकुमार को मार उसने हमारी भारी सहायता की। सुग्रीव ने समस्त युद्ध का संचालन जिस योग्यता से किया वह हमारे आश्चर्य का विषय है, उन्हीं की सैन्य रचना के अनुसार राजकुमार अंगद ने महाबली वज्रदंष्ट्र व नरान्तक, हनुमान् ने धूमाक्ष व अकम्पन, लक्ष्मणने इन्द्रजीत व मेघनाद तथा हमने कुम्भकर्ण व राक्षसाधीश रावण का वध किया। सीता के अपमान को याद कर हम अब भी अपने धैर्य व विवेक को खो बैठते हैं, पर सीता की हमारे प्रति निष्ठा की जो कठोर परीक्षा हुई है उससे हम गौरवान्वित हुए हैं और अपने आप को लक्ष्मीपति विष्णु भगवान से भी अधिक भाग्यशाली समझते हैं।"

महर्षि अगस्त्य बोले, राम! तुम्हारी यह वीर गाथा संसार के मनुष्यों को अनिश्चित काल तक त्याग सेवा व धर्म के मार्ग पर अनुप्राणित करती रहेगी, पर हम स्वयं लक्ष्मण के तप तथा उसके शौर्य से बहुत ही प्रभावित हुए हैं। हमारी यह निश्चित धारणा है कि बिना

लक्ष्मण के लंका विजय कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव थी।

राम यह सुन अवाक् रह गये। जब वह बोले तो उनके मन में ग्लानि तथा उनकी वाणी में रोष साफ झलक रहा था। उन्होंने कहा भगवन् हम तो पहिले ही कह चुके हैं कि सीता के पश्चात् केवल लक्ष्मण ही हमारा विवेक हमारा धैर्य तथा हमारी शक्ति रहे हैं, तिस पर भी हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उनके बिना लंका विजय क्यों असम्भव था।

महर्षि अगस्त्य मुसकराते हुए बोले, राम, इन्द्रजीत-मेघनाद ने वर्षों की तपस्या के पश्चात् यह वर प्राप्त करना चाहा था, कि संसार का कोई भी मनुष्य युद्ध में उन्हें मारने में समर्थ न हो सके परन्तु एक परिमित तप से ऐसी अपरिमित शक्ति उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती थी, तिस पर भी उनसे कहा गया था कि उन्होंने इतना बल अवश्य प्राप्त कर लिया है कि कोई भी मनुष्य जो लगातार कम से कम चौदह वर्ष तक स्त्री का मुख न देखने में संयत न हो सके तथा इतने ही समय तक निद्रा व आहार का त्याग न कर सके वह उन्हें मारने में समर्थ न हो सकेगा। अब जब तुम कहते हो कि लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मारा है तो उसने अवश्य ही इन सब शर्तों का पूरा किया है और चूंकि वह इस रहस्य से अनभिज्ञ था उसने ऐसा अमानुषिक कार्य अपने साधारण कर्तव्य पालन की दृष्टि से ही किया होगा। इस बात से हम साफ अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि उसकी आत्म निग्रह की शक्ति कितनी अपरिमित है।

राम मोह विमुग्ध हो ऋषि की ओर ताक रहे थे, आखिरकार बोले भगवन्, आप का कहना प्रमाणित सत्य होता है इसमें तो हमें तनिक भी सन्देह नहीं, पर सीता १२ वर्ष तक हमारे साथ रहीं, भोजन व विश्राम की व्यवस्था भी हमारे आदेश से हुआ करती थी अतः इस विषय में अपनी अनभिज्ञता से आत्म-ग्लानि हमें विवेक शून्य बना रही है, हम इस बात की सफाई स्वयं लक्ष्मण से चाहते हैं।

राम का संकेत पा हनुमान तुरन्त लक्ष्मण को बुलाने चले गये। उस समय लक्ष्मण महल में माता सुमित्रा के पास बैठे थे, राम का आदेश पा तुरन्त राज सभा में आ पहुंचे।

राम ने कहा, लक्ष्मण, महर्षि अगस्त कहते हैं कि तुमने वनवास में चौदह वर्ष तक न स्त्री का मुख देखा है, न भोजन किया है और न सोये ही हो, तुम्हें इस पर क्या कहना है? लक्ष्मण ने सरल भाव से कहा भगवन्, महर्षि जो भी कहते हैं वह केवल सत्य ही हो सकता है। रामने कुछ आवेश के साथ कहा, लक्ष्मण हम इससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, तुमने ऐसा क्यों किया और हमसे क्यों नहीं कहा। लक्ष्मण ने कहा नाथ, अपने प्रतिदिन का जिम्मेवारी चुकाने के लिये ही हमें ऐसा करना पड़ा था और आप से इसकी चर्चा करने का कभी कोई कारण ही उपस्थित नहीं हुआ।

राम का मन सशंक था, लक्ष्मण के सरल उत्तरों में उन्हें कुछ व्यंग प्रतीत हुआ, वे कुछ क्रोध पूर्ण शब्दों में बोले। लक्ष्मण सीता १४ वर्ष तक वन में हमारे साथ ही रहीं तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि हर समय हम तीनों के साथ साथ रहने पर भी तुमने कभी सीता का मुख न देखा हो। लक्ष्मण बोले भगवन् सीता के साथ रहते भी कभी हमारी दृष्टि उनके मुख पर नहीं पड़ी, यह हम सत्य ही कहते हैं। जब सीता को रावण हर ले गया था और ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से भेंट होने पर उन्होंने सीता के आकाश से छोड़े हुए आभूषण आप को बताये थे तब उन्हें पहिचानने के लिये आप ने हमें भी बताया था। आपको याद होगा कि हमने उनके नूपुर तो पहिचान लिये थे क्यों कि उन्हें प्रति दिन प्रणाम करते हुए देखा करते थे, पर उनके अन्य कोई भी आभूषण हम पहिचान न सके क्योंकि हमने कभी भी उनके मुख की ओर दृष्टि उठा कर देखा न था।

राम ने पुनः पूछा—लक्ष्मण, वन में हम तुम दो कुटी बना कर रहते थे। प्रति दिन रात्रि को साधारण कथा वार्ता के पश्चात् जब हम विश्राम को जाते थे तब तुम्हें भी जाने की आज्ञा देते थे, फिर अपनी कुटी में जाकर भी तुम नहीं सोये तो तुमने ऐसा क्यों किया। लक्ष्मण ने कहा महाराज जब आप सो जाते थे। तब इस आशंका से कि उस निविड़ वन में कोई जंगली जानवर तथा कोई दुष्ट राक्षस आपको तथा माता सीता को कुछ अनिष्ट न कर दे हम धनुष बाण ले चौकसी करते थे, आप जानते ही हैं कि वे वन दुःख से निरापद सोने के लिये सुरक्षित स्थान नहीं कहे जा सकते। एक रात्रि को निद्रा ने हमें बहुत सताया। हमने क्रुद्ध हो उसे दंड देने के संकल्प से अपना धनुष उठाया। वह भयभीत हो हमसे विनीत शब्दों में कहने लगी लक्ष्मण, जब तमाम दिन के परिश्रम से मनुष्य थक कर चूर हो जाता है तब हम उसे विश्राम देकर अपना कर्तव्य पालन करती हैं, अब तुम बताओ कि हम कब तुम्हारे पास आ अपना भाग अदा करें। हमने कहा निद्रा, तुम वनवास काल तक तो हमारे पास न फटकना, जब राम वापस अयोध्या को लौट जाय और वे सीता सहित सिंहासनारूढ़ हों, और हम पीछे खड़े चंवर डुलाते हों तब तुम आकर हमारी आंखों पर अधिकार कर सकती हो। आपको स्मरण होगा कि ठीक उसी अवसर पर हमारे हाथ से चंवर गिर गया था और हम गहरी निद्रा के वशीभूत हो गये थे।

राम ने द्रवित हृदय व कम्पित स्वर से पूछा लक्ष्मण, जब तुम प्रति दिन वन से कंद मूल व फल लाते थे तो हम उन के तीन भाग कर देते थे और तुम्हारा भाग प्रति दिन ही तुम्हें दे देते थे फिर यह क्यों सम्भव है कि तुमने वे फल कभी भी नहीं खाये। लक्ष्मण ने कहा भगवन् आप मुझे प्रति दिन ही कहते थे कि लक्ष्मण ये फल ले जाओ। आपने कभी भी मुझे उन्हें खाने के लिये नहीं कहा अतः मैं वे फल ले जाकर अपनी कुटी में रख दिया करता था। मैंने उन्हें कभी खाया नहीं। राम ने कहा तब लक्ष्मण क्या

हुआ। लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि वे सब मेरी वन वाली कुटी में मेरे तरकस में भरे रक्खे हैं. उन्हें आप देख सकते हैं। राम ने हनुमान को तरकस लाने को कहा।

हनुमान चले गये पर वे अपने में खिन्न थे। वे मन ही मन कह रहे थे कि एक तरकस लाने का तुच्छ कार्य भी राम ने उन्हें ही सौंपा। कुटी में पहुंच कर हनुमान ने लक्ष्मण का विशाल तरकस देखा, वे उसे उठाने लगे पर वह अपनी जगह से नहीं हिला। जब हनुमान अपना पूरा बल लगा कर भी उसे न उठा सके तो वे अत्यन्त लज्जित हो लौट गये और सभा में आकर चुपचाप आंखें नीची कर के खड़े हो गये। राम ने पूछा हनुमान तुम ऐसे विचित्र क्यों दीखते हो. तरकस कहां है। उन्होंने कहा भगवन्, लक्ष्मण का तरकस उठाना कोई खेल नहीं उसे तो वे ही उठा सकते हैं राम ने लक्ष्मण को तरकस लाने का आदेश दिया। लक्ष्मण कुछ देर बाद तरकस उठा लाये उन्होंने उसे राज सभा में उंडेल दिया और राम के आदेश से फलों की गिनती होने लगी। हिसाब लगा कर राम ने कहा लक्ष्मण इस तकस में छः दिन के फल नहीं हैं उनका क्या हुआ। लक्ष्मण ने कहा—'भय्या,मुझ पर व्यर्थ सन्देह न कीजिये उन छः दिनों का हिसाब इस प्रकार है। पहले जब हम पञ्चवटी में पर्ण कुटी बना कर निवास कर रहे थे, एक दिन अयोध्या से पिता के देहवासान की सूचना मिली शोक के मारे खाने पीने की सुध ही न रही और न उस दिन हम खाने के लिये फल लाये। दूसरे जिस दिन सीता हरी गयी उस दिन शोक से आप प्रायः चेतनाहीन ही हो गये थे और हमारे क्षोभ का भी ठिकाना नहीं था। अतः उस दिन भी हमने खाने की कोई व्यवस्था नहीं की थी। तीसरे जब इन्द्रजीत द्वारा हम शक्ति बाण से मूर्छित कर दिये गये थे तब भी हम आपके लिये फल नहीं ला सके थे। चौथे एक दिन रावणने माया की सीता बना हमारे सामने ही उसका सिर काट दिया था उस दिन भी हम व तमाम सेना शोक से विह्वल हो गयी थी अतः उस दिन भी हम फल नहीं लाये। पांचवें, जिस दिन अहि रावण हम दोनों को पताल लोक चुरा ले गया था उस दिन भी हम फल नहीं ला सके। छठे जिस दिन आपने रावण का वध किया था उस दिन समस्त वानर सेना हर्ष में मतवाली हो नाचती कूदती रही, उस दिन तो किसी ने भी भोजन की कोई व्यवस्था नहीं की। इस प्रकार छः दिन के फल इस तरकस में नहीं है।

लक्ष्मण जब इस प्रकार अपनी सफाई दे रहे थे, सारी राज सभा निर्निमेष नैत्रों से उनके मुख की ओर ताक रही थी और राम की आंखों से अश्रु प्रवाह प्रबल वेग से बह रहा था।

मेरे पुत्र ने जो बिना हुंकार दिये ही कहानी सुन रहा था एक लम्बी सांस ली और फिर खुश हुआ। मैंने कहा तुम शीघ्र ही बड़े हो जाओगे और इस कहानी को किसी कवि की कल्पना कह कर रद्द कर दोगे। मैं भी स्वीकार करता हूँ कि यह अतिशयोक्तियों से भरी हुई किस कवि की कल्पना हो पर मैं यह कहना चाहता हूं कि यहां कवि ने किस ऐतिहासिक घटना को केवल ललित बनाने के लिये ही अपनी कल्पना शक्ति खर्च नहीं की बल्कि उसने एक संस्कृति द्वारा सिखलाई जाने वाली त्याग, सेवा, अनुशासन तथा कठोर आत्म निग्रह की उस पराकाष्ठा को जो हमारे लिये आज कल्पनातीत है अपनी कल्पना द्वारा करने की कोशिश की है। मैंने तुम्हें गुरुकुल इसी संस्कृति का अध्ययन करने के लिये भेजा है। गुरुकुल इस संस्कृति के जीवित स्वरूप को प्रकट करने में किस कुशलता से अग्रसर हो रहा है यह तो मैं नहीं कह सकता पर यह उसने अपना लक्ष्य बनाया है और जब तक वह सजीवता से इस ओर अग्रसर होने की आकांक्षा रखता है तब तक उसके साथ पूरा सहयोग करना हमारा कर्त्तव्य है, क्यों कि यदि वह अपने इस परीक्षण में सफल हुआ तो इससे संसार के दृष्टि कोण में क्रान्ति कारि परिवर्तन हो सकता है। "अधिकार" की तृष्णा से तड़पता हुआ यह आधुनिक जगत केवल "सेवा" की सरिता पर पहुंच कर ही अपनी प्राण रक्षा कर सकेगा। रही तुम्हारी बात, यदि तुमने मन वचन व कर्म से गुरुकुल में रह कर इस संस्कृति को अपने जीवन में व्यक्त करने की कोशिश की तो तुम लक्ष्मण जैसे अद्वितीय पुरुष तो शायद न बनो पर अपने समकालीन संसारमें अद्वितीय बनजाना कोई अनहोनी बात न होगी। मेरा पुत्र मेरी सब बातें समझ रहा था इस में तो मुझे-पूरा सन्देह था पर वह यह अवश्य समझ गया कि गुरुकुल द्वारा मैं उसे कोई विचित्र जीव बनाना चाहता हूं।

रामनारायण कुठारी।

पाठकों से—

गुरुकुल के विगत अंक (१२ जेष्ठ वा २४ मई के अङ्क) में जो श्री रमणाश्रम के कुछ संस्मरण छपे हैं उस में जो विचार प्रकट किये गये हैं वे लेखक महोदय के अपने हैं, वे 'गुरुकुल' के विचार नहीं हैं। यह प्रकट करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं—

संपादक।

गुरुकुल

२६ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९७

मनोरंजन

(आचार्य अभयदेव जी का एक उपदेश जो महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के बीच में दिया गया था)

[गतांक से आगे]

३. क्या विश्राम न किया जाय ?

पर इसका यह मतलब नहीं होता है कि विश्राम न लिया जाय या आनन्द प्रसन्न न रहा जाय। विश्राम तो पूरा पूरा करना चाहिये, पर आलस्य नहीं। और अप्रसन्न, दुःखी या उदास होना तो परमेश्वर के प्रति अपराध करना है।

थकने पर आराम की इच्छा स्वाभाविक है। पर प्रायः काम को बदल लेना ही थकावट दूर करने के लिये पर्याप्त होता है। जब हम एक काम करते हुए थक जायं या उकता जायं तो दूसरा उपयोगी काम जिस से उन्हीं शक्तियों पर जोर न पड़े शुरू कर देना चाहिये। पर विश्राम करने के बहाने ऐसे खेलों में पड़ जाना अपना ऊंची स्थिति छोड़कर नाचे उतर आना ठीक नहीं। इसमें अकल्याण के सिवाय और कुछ नहीं। शारीरिक और मानसिक कामों को तो परस्पर बदला ही जा सकता है। दोनों प्रकार के कामों के भी इतने भेद होते हैं कि एक प्रकार का शारीरिक काम छोड़ कर दूसरे प्रकार का शारीरिक काम करने से शरीर को विश्राम भी मिल जाता है और किसी दूसरे अंग का काम भी होता रहता है। इसी प्रकार मानसिक कर्मों को भी बदल बदल कर किया जा सकता है और उन से मानसिक ताज़गी बनी रह सकती है। ऐसा तो कभी होता ही नहीं कि हमारे पास करने को कोई (शारीरिक या मानसिक) काम ही न हो।

पर यदि कुछ भी काम न करके पूरा तरह विश्राम ही लेना हो तो यह भी यदि ठीक ढंग से लिया जाय तो बड़ा उत्तम है। अपने शरीर को-एक एक अवयव को- ढीला छोड़ कर शान्त मन के साथ चुप चाप बैठ या लेट लेने से थोड़े ही समय में अधिक से अधिक विश्राम मिल जाता है। इसी प्रकार का असली विश्राम तृष्णा ताश खेलने जैसे मनोरंजनों द्वारा मिलने वाले विश्राम से हजारों दर्जे अच्छा है। दुनिया के महापुरुषों के जिन्होंने आश्चर्य जनक मात्रा में काम किये हैं, जीवनों में रहस्य यही पाया गया है कि उन्हें किसी न किसी प्रकार का ऐसा अभ्यास था कि वे बीच बीच में ५, १० मिनट के लिये बिल्कुल चुप होकर मन को वश में किये हुए पूर्ण विश्राम ले सकते थे। एक महा पुरुष कहा करते थे कि मैं अपने दिमाग में चार खाने समझता हूं। उनमें से कोई एक या अधिक बन्द करके शेष से काम ले सकता हूं और बराबर लेता रहता हूं और जब सोना हो तो चारों को बन्द कर लेता हूं। उस नैपोलियन के बारे में प्रसिद्ध है कि वह घोड़े की पीठ पर भी आराम कर लेता था। पं० जवाहरलाल जी को कुछ मिनटों के लिये शवासन कर लेते देखा गया है। गांधीजी मौन द्वारा इतना विश्राम ले लेते हैं कि उस दिन वे अधिक काम समाप्त कर लेते हैं। हमारे आचार्यों द्वारा आविष्कृत शवासन यदि ठीक तरह किया जाय तो इससे थोड़ी देर में बड़ा विश्राम मिल जाता है। यही नहीं किन्तु इससे नवप्राण और जीवन का भी शरीर और मन में संचार हो जाता है। इसी तरह मानसिक थकावट को दूर करने के लिये विशेषतया मानसिक अभ्यास भी है जो कि तुम में से जो कोई जानना चाहे जान सकता है। यह असली विश्राम पाने का ऐसा अनुभव तुम्हें होगा तो तुम्हें यह भी पता लग जायगा कि कैरम या ताश खेलने से वास्तव में कोई विश्राम भी नहीं मिलता, यह केवल भ्रम ही है; क्योंकि इनसे शरीर और मन पर अवस्थानुसार कम या ज्यादह जोर तो पड़ता ही है।

४. ऐसे मनोरंजनों की इच्छा का असली कारण

पर मैं तो चाहता हूं कि तुम ज़रा गहराई में घुस कर सोचो, सोच कर देखो कि ऐसे खेलों द्वारा मनोरंजन करने की इच्छा तुम में क्यों पैदा होती है, उसका असली कारण क्या होता है ? यह केवल थकावट के कारण नहीं होती है। थकावट को दूर करने का सीधा इलाज तो विश्राम है। मन की प्रक्रिया बड़ी जटिल होती है, अन्तर्मुख होने पर, पूरी गहराई में जाने पर और वहां भी प्रकाश मिल जाने पर ही ठीक तरह पता चलता है कि हमारी अमुक प्रवृत्ति का वास्तविक प्रेरक भाव क्या है। टाल्स्टाय का एक प्रसिद्ध लेख है "Why-men stupefy them selves" जिस में उन्होंने इस बात का गम्भीर विवेचन किया है कि लोग जो अपने को पागल बनाते हैं अर्थात् शराब, तम्बाकू आदि नशीली चीज़ों का सेवन करते हैं उसका असली कारण क्या है। उन्होंने अच्छी तरह सिद्ध किया है कि इसका मुख्य कारण यह होता है कि वे 'अन्तरात्मा की आवाज़' को दबा देना चाहते हैं। उनका अन्तरात्मा उन्हें काटता है। उसे वे नहीं चाहते, वह बड़ा कड़वा लगता है, अतः वे नशीली चीजें सेवन कर उसे दबा देना चाहते हैं। इस तरह दबाते दबाते उनका अन्तरात्मा की आवाज़ ही मर जाती है। इसी तरह ऐसे मनोरंजन करने की इच्छा का गूढ़तम कारण हमें बहुत बार यह मिलेगा कि हम अपनी मनोवृत्ति की किसी अप्रिय धारा को बदलना चाहते या भुला देना चाहते होते हैं। मन हमारे काबू में नहीं है, वह तो हमारे सामने विचारों को प्रस्तुत करता है, पर हम उन विचारों का सामना नहीं कर सकते, उनसे बचना चाहते हैं तो मन को दूसरी तरफ़ लगाने के लिये कइयों के साथ मिल कर

कैरम खेलने में लग जाना पसन्द करते हैं और उसमें शान्ति पाते हैं। तो बीड़ा सिगरेट पीने की तरह ताश खेलने का मतलब न केवल समय काटना नहीं होता किन्तु मन की आन्तरिक हलचल से छुटकारा पाना भी होता है। चाहिये तो यह कि हम उस आन्तरिक हलचल का सामना करें, असली प्रश्न को हल करें, उससे हमारे शारीरिक सुख में तो जरा बाधा पड़ेगी और आन्तरिक उलझन का दुःख कुछ समय के लिये हमें व्याकुल करे रक्खेगा। पर हम यदि लगे रहे आखिर हमारी यह आन्तर पीड़ा एक नये ज्ञान को पैदा कर बड़े भारी आनन्द के रूप में परिणत हो जायगी। यह स्वाभाविक नियम ही है। पर हम अन्दर से आना चाहने वाले अपने असली आनन्द की उत्पत्ति के प्रारंभिक रूपभूत उस मानसिक उलझन रूपी प्रसव पीड़ा को अशुभ समझ उसे बाहर के बनावटी मनोरंजन के सुख द्वारा दबा देने की मूर्खता करते हैं, और इस तरह इन झूठे मनोरंजनों द्वारा अपने असली, आनन्द की जड़ ही काट देते हैं, भ्रूणहत्या कर देते हैं। यह है ऐसे मनोरंजनों की इच्छा होने का असली, गूढ़, सच्चा रूप और रहस्य।

इसलिये अन्दर घुसने से मत घबराओ। ताश खेलने की अपेक्षा यह लाख दर्जे अच्छा है कि तुम चुप चाप होकर अकेले में सोचने के लिये बैठ जाओ। जब तुम मन की दृष्टि से थक जाते हो अर्थात् उकता जाते हो और किसी हाथ में लिये काम को आगे नहीं करना चाहते तो इस का यह मतलब है कि तुम्हारा मन स्वतन्त्र होकर कुछ सोचना चाहता है, तो तुम उसे सोचने का अवसर दो। वह सोचना यदि अप्रिय है, मन यदि तुम्हें काटता है तो भी घबराओ नहीं और घबराकर अन्तर्मुख प्रवृत्ति को छोड़ बहिर्मुख करने वाले किसी खेल में अपने आप को लगा देने द्वारा उसे दबा मत दो! इससे काम नहीं चलेगा। अपने मानसिक भावों, विचारों को यदि तुम इस तरह दबाते जाओगे तो जब भी तुम्हें अपना उत्थान करना होगा तो संस्कार रूप में पड़ी इन वृत्तियों की तहों को तुम्हें एक के बाद एक भेदन करना होगा और बड़ी मुश्किल होगी। बड़ी लम्बी लड़ाई होगी। "अतः दबाने से मुश्किल बढ़ेगी लाभ कुछ नहीं होगा। इस लिये अन्तर्मुख होने का आदत डालो, अन्दर ही सब सुख है। इसीलिये शिक्षा विधि में आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण, मनन, ध्यान आदि को इतना महत्त्व दिया गया है। यहां तो यह कहना है कि इन मनोरंजनों की सबसे बड़ी बुराई यह है कि ये अन्तर्मुख होने की स्वाभाविक और कल्याणकारी प्रवृत्ति से हट जाने के लिये मनुष्य को ललचाते हैं और अन्तःकरण को दबाने में सहायक होकर हमारे लिये विनाश का रास्ता खोल देते हैं। [असमाप्त]

हिन्दू-महासभा के कर्णधारों से

[ले०- श्री सतीश]

भारत की राष्ट्रिय जागृति के साथ २ देश में जो महान परिवर्तन हुए हैं उनमें हिन्दू महासभा की उत्पत्ति अपना एक विशेष महत्व रखती है। प्रारम्भ में हिन्दू महासभा का वही स्वरूप था जो सब संस्थाओं का हुआ करता है। परन्तु धीरे २ इसने अपने संगठन को अधिक व्यापक रूप देना प्रारम्भ किया। सम्भवतः हिन्दूमहासभा को इतना विशाल रूप देने की आवश्यकता न पड़ती यदि तात्कालिक परिस्थितियां इस बात के लिए बाधित न करतीं। परिस्थितियां समाजों की रचनाओं और संगठन में आमूल चूल परिवर्तन करने की शक्ति रखती हैं। मोपलाओं के कृत्यों ने कोहाट कानपुर तथा इसी प्रकार अन्य कई स्थानों की घटनाओं ने हिन्दुओं को व्यथित कर दिया। मानव का मानवके प्रति ऐसा क्रूर और पाशविक व्यवहार हो सकता है इस धारणा ने हिन्दू हृदय में भीषण आन्दोलन मचा दिया। यदि इतना ही होता तब भी संभव था कि हिन्दू महासभा इस रूप को धारण न करती। विरोध के होने पर मनुष्य अपनी अधिक शक्ति का प्रयोग करता है हिन्दुओं को आवाज को कांग्रेस की आवाज ने-चुप रहो देश की दशा अत्यन्त नाजुक है ऐसे समय में मुसलमानों को नाराज करना ठीक नहीं कह कर दबाना चाहा जिसका उत्तर देने के लिए हिन्दू और अधिक संगठित होगये।

हम मानते हैं कि कांग्रेस देश की स्वतन्त्रता चाहती है, उसकी धारणा उत्तम है। परन्तु यह ध्यान रहे कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था नहीं है। कांग्रेस मुसलमानों की भी संस्था नहीं है। कांग्रेस आज भी चिल्ला २ कर कह रही है कि वह देश की संस्था है, राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था है। परन्तु दुःख है कि उसके इस प्रकार चिल्लाने का दूसरा ही अभिप्राय लिया गया जो कि लिया भी जाना चाहिए था। कांग्रेस कहती है कि मुसलमान जो कुछ चाहें वह ले लें, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या लिया जाय और किस से लिया जाय? मुसलमान अपने अधिकारों से अधिक अधिकार मांगते हैं। कांग्रेस उन्हें लेने को कहती है किस अधिकार से? हिन्दुओं के अधिकारों को कांग्रेस किस मद से लेने को कहती है, जब कि वह केवल हिन्दुओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं करती है। यदि उस में हिन्दू सदस्य बहु संख्या में हैं अतः वह ऐसा कह सकती है तब फिर मुस्लिम लीग का यह आक्षेप कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है ठीक है। कांग्रेस को वर्तमान नीति ने उसे स्वयं पंगु बना दिया है। उसे प्रतिक्षण यह सिद्ध करना पड़ रहा है कि वह संस्था देश की है। परन्तु उसके कार्य देश की विषम सांप्रदायिकता के जाल से ऊपर नहीं उठ सके हैं। हम समझते हैं कि कांग्रेस की इस दब्बू नीति के कारण ही हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग को प्रोत्साहन मिला है। देश में इस प्रकार विषम समस्या उत्पन्न करने का दायित्व कांग्रेस पर है। कांग्रेस की दशा देख कर हमको दया आती है। हम उसका उद्धार चाहते हैं। परन्तु किसी ने अपनी नीति ही ऐसी बना ली हो तब हमारा क्या वश। हमारा उद्देश्य किसी संस्था विशेष की आलोचना करना नहीं है। देश की वर्तमान विषम परिस्थितियों में न यह उचित ही है कि परस्पर के वैमनस्य को बढ़ा दिया जाय। अब तो समय है जब कि हमें भेद भाव भुलाकर देश के लिए एक

हो जाना चाहिए। अस्तु। यह तो एक पाक्षिक सत्य है, कांग्रेस की अपनी महानता है जिस को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। देश की अग्रगी संस्था कांग्रेस है। देश के बहु संख्यकों की आवाज को लेकर बढ़ने वाली संस्था कांग्रेस ही है। परन्तु फिर भी एक बात हम अवश्य कहेंगे कि परिस्थितियों के आधीन रह कर कांग्रेस की अपनी नीति ने एक बहु संख्या को अपने से अलग कर दिया है, यह इस बार के सदस्यों की संख्या से स्पष्ट है।

कालिदास के काव्य

[ले० - हरिवंश वेदालंकार]

आज कालिदास का यश न सिर्फ भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है। संसार का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति कालिदास से अवश्य परिचित होगा। भारतीय वाङ्मय को संसार के कोने २ में पहुंचाने का श्रेय उपनिषदों को और विशेषतया महाकवि कालिदास के काव्यों को ही है। इस कवि-पुंगव ने अपने छोटे से जीवन के कुछ अंशमें ही अपने काव्यों के रूप में जो स्थिर प्रकाश जगत् को दिया है उसके लिये मानव समाज हमेशा के लिये कवि का ऋणी रहेगा। आज दुनियां में 'प्रोपेगैण्डा' का बोलबाला है। कोई लेखक या कवि नाना प्रकार से अपना विज्ञापन करता है। वह अपनी बड़ाई स्वयं करता या अपने अनुयायियों से करवाता है। कालिदास के समय के कवियों की निरीहता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। स्वयंकालिदास ने अपने काव्यों में अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। कालिदास ने अपने वैय्यक्तिक जीवन चरित्र को जितना ही छिपाया है उनके काव्यों में उनका वह ऊँचा चरित्र उतना ही अधिक प्रकट हुआ है।

यद्यपि हमें यह नहीं मालूम कि कालिदासके मां-बाप का क्या नाम था, जन्मस्थान कहां था किन्तु उनके काव्योंको देखने से हमे अच्छी प्रकार यह बात ज्ञात होजाती हैकि कालिदास की रुचि कैसी थी, वह चाहता क्या था? रघुवंश और शकुन्तला को देखने केपश्चात् हमें विदित होता हैकि कालिदास वर्णाश्रम धर्म का अत्यन्त पक्षपाती है। रघुवंश के प्रारम्भ में ही वह लिखता है:—"मैं ऐसे सूर्यवंशीय राजर्षियों का वर्णन करूंगा जिनका वंश परम पवित्र है, जो अपने पुरुषार्थ और उद्योग से समस्त पृथ्वी पर राज्य करते हुए स्वर्ग तक अपना रथ ले जाने की सामर्थ्य रखते हैं। वे प्रजाओं से टैक्स इस लिये लेते हैं कि उस धन को बढ़ाकर प्रजा की भलाई में ही लगावें। विवाह इस लिये करते हैं कि वंशोच्छेद न हो जाय। शैशवावस्था में नाना प्रकार की विद्याओं का अभ्यास करते हैं यौवन में गृहस्थ आश्रम का पालन करते हैं, उमर ढलने पर ईश्वर का चिन्तन करते हुए वनों में प्राणत्याग करते हैं।"

अपने इन्हीं भावों की व्याख्या कवि ने विविध प्रकार से शकुन्तला आदि अन्य काव्यों भी में की है।

आजकल कालिदास के विषय में प्रचलित किंवदन्तियों और आख्यायिकाओं के पढ़ने से ऐसा विदित होता है कि कालिदास से बढ़कर चरित्र हीन शायद ही कोई व्यक्ति संसार में हो। लेकिन कालिदास का व्यक्तित्व जो कि उनके काव्यों में झलकता है वह बहुत ऊंचा है। किसी पाश्चात्य कवि के सारगर्भित इन शब्दों द्वारा 'Style is the man himself' अर्थात् लेखन शैली कवि का अपना स्वरूप है—हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं। कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों के कई स्थलों पर इतने आत्मसंयम का परिचय दिया है जो कि थोड़ा ध्यान से पढ़ने पर हमें आश्चर्य चकित कर देता है। और ऐसा संयमी (जितेन्द्रिय) पुरुष कभी लम्पट हो ऐसी हमारी बुद्धि कल्पना करने को तैयार नहीं।

कालिदास की शकुन्तला

कालिदास सौन्दर्योपासक-मार्मिक कवि समझे जाते हैं। इस कवि ने 'शकुन्तला' नाटक में अपनी कला की पराकाष्ठा कर दी है। कालिदास की कविता स्वाभाविक, सरल, मधुर और हृदय ग्राही होने के अतिरिक्त ऊंचे भावों को प्राप्त कराने वाला है। कालिदास श्रृङ्गारी कवि हैं। प्रेम का वर्णन करना इन्हें बहुत पसन्द है; पर साथही यह कवि चंचल प्रेम को पसन्द नहीं करता। वह प्रेम जिसमें कोई मर्यादा न हो—जो प्रेम सिर्फ सौन्दर्याकर्षण के कारण किया गया हो—ऐसा प्रेम कभी सफल नहीं होता। कालिदास वैसे मिलन को आदर की दृष्टि से देखता है जिसमें प्रेमी और प्रणयिनी दोनोंने अपने को, दीर्घकाल तक संयत रखकर मन के वासना रूपी मलको बिल्कुल जला दिया हो। दूसरे प्रकार के प्रेम पर अवश्यमेव दैव का रोष प्रकट होता है और उस का विध्वंस होजाता है। यही बात कालिदास नेअपनी रचना 'शकुन्तला' और कुमार-संभव में दिखलाई है।

राजा दुष्यन्त, राज्य के विविध कार्य भार से परिक्लान्त होकर शिकार के लिये वन में आता है और एक हरिण के पीछे अपना रथ छोड़ देता है। उस हरिण का पीछा करते २ वह कण्व मुनि के आश्रम में जा पहुंचता है जहां ऋषि कन्याएँ अपने लगाये हुए वृक्षों के आलवालों को जलसे सींच रही हैं। दुष्यन्त लताओं के पीछे से उन्हें सस्पृह—नेत्रों से देखता है। इसके बाद तीसरे अङ्क के अन्त में शकुन्तला से उसका विवाह गान्धर्व-विधि से हो जाता है। सिद्धहस्त कवि, इस चपलता से किये गए विवाह को देखकर भी मौन है, आश्रम वासियों को पीछे मालूम होता है कि शकुन्तला अपना ब्याह कर चुकी। तपस्वियों ने अपने मनमें शकुन्तला को बुरा भला तो अवश्य कहा होगा किन्तु आश्रम के वातावरणमें इसके कारण कोई विशेष खलबली नहीं मची। सब ने यह सोचकर कि 'शकुन्तला का विवाह एक चक्रवर्ती राजा से हुआ है' सन्तोष किया।

इसके बाद इस 'असंयत' प्रेम पर दैव की बिजली गिरती है और दुर्वासा के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है। कई दिनों के बाद भी जब शकुन्तला को लेने वाला पतिगृह से कोई नहीं आया तब कण्व मुनि उसे दो ऋषि कुमारों के साथ दुष्यन्त के पास भेज देते हैं। वहां भरे दर्बार में ऋषि कुमारों के मुख से मानों कवि ही शकुन्तला को डांटता हुआ कहता है:—

"अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः। अज्ञात हृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदम्" ।शकुन्तला० अङ्क ५-२४ ।

"इस कारण प्रीति बहुत परीक्षा करने के बाद जोड़नी चाहिये। क्योंकि बिना स्वभाव पहिचाने की गई प्रीति कालान्तर में वैर के रूप में परिणत हो जाती है।"

शकुन्तला का यह चपल प्रेम उसे पूरा २ प्रतिफल देता है और जबतक तपस्या करते २ वह अपने वासना रूपी मल को धो नहीं देती तबतक उसका पुनर्मिलन दुष्यन्त से नहीं होता। सप्तम अंक में दुष्यन्त जब उसे कुछ दूर से देखता है तब मुश्किल से पहचानता है:—

"वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥"

शाकुन्तल अंक ७-२१।

"क्या वियोगिनी का वेष धारण किये यही शकुन्तला चली आ रही है, जिस का मुख विरह के नियमों ने पीला कर दिया है और मलिन वस्त्र पहिने-जटा कंधे पर डाले मुझ निर्दयी का वियोग-सहती है"।

दुष्यन्त भी पश्चात्तापादि के कारण पर्याप्त तपस्या कर चुका है और इतना क्षीण हो चुका है कि शकुन्तला जब इसे देखती है तब पहचानती ही नहीं कि यह कौन है:—

"न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृत रक्षा मङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति"।

"यह क्या मेरा ही प्राणपति है जो वियोग की आंच से ऐसा कुम्हला गया है। यदि यह मेरा पति नहीं है तो कौन है जिसने बालक को गोद में उठा रखा है और सर्पद्वारा डंसे जाने से बचा हुआ है।"

इतनी लम्बी तपस्या के बाद जब दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम से वासना का मूलोन्मूलन होगया तब जाकर यह प्रेम चरितार्थ हुआ है। प्रेम की पूर्णता यहीं आकर हुई है। कालिदास के अनुसार सच्चा प्रेम मनुष्य को मानव रूप में देवता बना देता है पर अन्धा प्रेम मनुष्य को दुःख-शोक के गहरे गर्त में गिरा देता है।

अपने 'कुमार-सम्भव' में भी कालिदास ने यही दिखलाने का प्रयत्न किया है। पुष्पों के अलंकारों से सजी हुई लज्जारुणा उमा गिरीश के चरणवन्दन को जाती है और विनयावनत होकर नमस्कार करती है। उसके कानों से पल्लव गिर पड़े और केशों से कर्णिकार कुसुम स्खलित होकर शिव का स्पर्श करते हुए भूमि पर गिरे। उस स्पर्श का अनुभव करके महामेघ और महार्णव के समान शान्त-गम्भीर देवादिदेव-महादेव ने अपनी आँखे खोलीं और देखने लगे कि यह उत्पात कहां से हुआ है। सब स्थिति को विचार कर और अपनी इन्द्रियों पर काबू करके वे पुनः समाधिस्थ हो गए। पार्वती का प्रत्याख्यान हो गया और जिस अपने रूप-लावण्य पर भरोसा रख कर वह शिव के पास गई थी-उस रूप की निन्दा करती हुई शून्य हृदया होकर अपने पिता के घर लौट आई। उसने देखा कि शिव को मैं अपने रूप के कारण किसी प्रकार भी न अपना सकूंगी इसलिये उसने सोचा:—

"इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥"

—कुमार० ५-२।

"पार्वती ने तपस्या और समाधि द्वारा अपने रूप को सफल बनाने की इच्छा की। क्योंकि इतना उत्कृष्ट पति और उस पति का प्रेम पाना तपस्या के अतिरिक्त अन्य किसी साधन द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता"।

पार्वती ने घोरघाम और शीत में शिव के लिये भीषण तपस्या की। एक दिन ब्रह्मचारी के छद्म वेश में शिव, उमा की परीक्षा करने आये और तपस्या का कारण पूछा। पार्वती की सखी ने उत्तर दिया:—

"इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियः चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात् पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति"॥

—कुमार० ५-५३।

"यह पार्वती इन्द्र-वरुण कुबेर आदि की तरफ दृष्टि न देकर उस शिव से विवाह करना चाहती है जो अरूप हार्य है। जिसका प्रेम, रूप का प्यासा नहीं है।"

सर्वत्र ही कालिदास ने विवाह को बहुत पवित्र बन्धन, और प्रेम को बहुत ऊँची वस्तु कहा है। कालिदास वर्णाश्रम धर्म के बड़े पक्षपाती थे और उनके इस सम्बन्ध में विचार 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों में स्थान २ पर मिलते हैं। कालिदास चरित्र के बहुत पक्के व्यक्ति थे ऐसा उनके काव्यों को देखने से पूरी तरह विदित होता है न मालूम साहित्यज्ञ उनके निर्बल चरित्र की कैसे कल्पना कर लेते हैं।

गुरुकुल समाचार

ब्र० वेदभूषण ४ श्रेणी शीत पित्त, ब्र० इन्द्रदत्त ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० हरिप्रकाश ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० इन्द्रसेन ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० मदनमोहन २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० विद्याभूषण २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० सर्वमित्र ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० सन्तकुमार १ श्रेणी Mumps, ब्र० रणजीत ४ श्रेणी कर्णशूल।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। इस सप्ताह अधिकतम तापमान १०६ फा० रहा। अब एक दो दिन से मौसम अच्छा है बादल हैं और थोड़ी वर्षा भी हुई है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ६, ७, ८ श्रेणी के ७० ब्र० ग्रीष्मावकाश में देहली से अमृतसर, पठानकोट तथा कांगड़ा होते हुए धर्मशाला १६ मई को सकुशल पहुंच गये थे। पठानकोट तथा कांगड़े में हाईस्कूल से हाकी का मैच हुआ दोनों जगह गुरुकुल की पार्टी ने विजय पाई। धर्मशाला में लगभग ६००० फीट की ऊंचाई पर फर्स्ट गंज में ऊपर गुरुकुल की कोठी है जहां ब्र० ठहरे हुए हैं। प्रायः सभी ब्र० वहां स्वस्थ हैं। ब्र० जयदेव १० म, ब्र० विद्यारत्न ६ म, ब्र० सुखदेव (बड़ा) ६ष, ब्र० धर्मेन्द्र ८ म ब्र० कोमल ८ म, श्रेणी तथा ब्र० रामचन्द्र १० म को खांसी हैं। शेष सब कर्मचारी भी स्वस्थ हैं। वहां ब्रह्मचारियों के लिए दूध, सब्जी व फलका अच्छा तरह प्रबन्ध होगया है। सब्जी और फल पठानकोट व अमृतसर से मंगवाते हैं। शेष खाद्य सामग्री कोतवाली बाजार से आती है। वहां २-३ बार वर्षा हो चुकी है। किसी २ दिन वहां भी गर्मी हो जाती है। ब्र० प्रतिदिन प्रातः भागसू जाते हैं। लौटने के समय ब्र० ज्वालामुखी आदि भी जायेंगे। धर्मशाला से ऊपर १३००० फीट की ऊंचाई पर ज्योंद से परे ३ मील पर बर्फ मिलता है। वहां भी ब्र० घूम आये हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १ आषाढ़ १९९७, १४ जून १९४० [संख्या ६

कर्मों का आनन्द

[लेखक—योगिराज श्री अरविन्द]

तेरे कर्मों में सदा ये तीन तत्व विद्यमान हैं— स्वामी, कार्यकर्ता और यन्त्र। इन्हें अपने अन्दर ठीक प्रकार से लक्षित कर लेना और ठीक प्रकार से अपने में पा लेना ही कर्मों का तथा कर्मों के आनन्द का रहस्य है।

(१) यन्त्र भाव

पहले तू परमेश्वर का यन्त्र होना और उसे स्वामी स्वीकार करना सीख। यन्त्र वह बाह्य वस्तु है जिसे तू 'अपना आप' समझता है। यह है एक मनोमय ढांचा, एक प्राणमय सञ्चालक-शक्ति, एक स्थूल आकार का यन्त्र, एक वस्तु जो नानाविध कमानियों, चक्रदन्तों, शिकञ्जों तथा अन्य कल पुर्जों से भरपूर है। क्या इस बाह्य स्वरूप को तू कार्यकर्ता या स्वामी समझता है? यह कदापि कार्यकर्ता या स्वामी नहीं हो सकता। तू तो पहले इस अपने आप को यन्त्र स्वीकार कर—नम्रता के साथ, फिर भी अभिमान के साथ, भक्तिरत भाव से, शरणागत भाव से और आनन्द पूर्ण होकर अपने को उसका एक यन्त्र स्वीकार कर।

इस से बढ़ कर अभिमान और गौरव की बात और दूसरी क्या हो सकती है कि कोई अपने स्वामी का एक परिपूर्ण यन्त्र हो।

यन्त्र बनने के बाद फिर तू सब से पहले सर्वथा, बिलकुल पूरी तरह से आज्ञा पालन करना सीख। उसने कहां वार करना है यह तलवार तो कभी निश्चय नहीं करती, तीर यह नहीं कहता कि उसे किस लक्ष्य पर छोड़ा जाए, यन्त्र की कमानियां यह आग्रह नहीं करतीं कि उन के कार्य द्वारा अमुक वस्तु निर्माण की जाए। ये बातें तो प्रकृति देवी (जो कार्य कर्त्री है) के अभिप्राय और उस की कार्य प्रणाली के द्वारा निश्चित होती हैं। सचेतन यन्त्र रूप हुआ हुआ मनुष्य अपनी प्रकृति के शुद्ध और सच्चे स्वधर्म को जितना जितना जान लेगा और उस का ही पालन करना सीख लेगा उतनी ही जल्दी उस से निर्मित होने वाला कार्य पूर्ण और निर्दोष होकर तैयार होगा। प्राणमय प्रेरक बल यदि अपनी पसन्दगी से काम करेगा, भौतिक और मानसिक उपकरण यदि विद्रोह करेंगे तो इससे केवल काम बिगड़ेगा ही।

तू अपने आपको परमेश्वर के निश्वसित में बहने दे और अन्धेरी में उड़ने वाले सूखे पत्ते की तरह हो जा। अपने आपको उसके हाथों में रख दे और योद्धा के हाथ की कड़कती हुई तलवार और धनुष से निकल निशाने की तरफ उड़ते हुए तीर की तरह हो जा। तेरा मन यन्त्र की कमानी की तरह और तेरी प्राणशक्ति एञ्जिन के डण्डे की तरह हरकत करे। तेरा कार्य ऐसा चले जैसे कूटता पीसता हुआ और जो अभीष्ट है वह आकार बनाता हुआ फौलादी यन्त्र ऊपर से पड़ता है। और तेरी वाणी? मानों एरण के ऊपर बजने हथौड़े की धड़ाधड़, मानों कारखाने में काम करते एञ्जन का आर्तक्रन्दन, मानों परमेश्वर की शक्ति को दिग्दिगन्तों में घोषित करते हुए नरसिंह का निनाद। जिस किसी प्रकार का भी कार्य कर, पर एक यन्त्र के तौर पर कर और वह कार्य कर जो तेरे प्रकृति धर्म के अनुसार स्वाभाविक हो और तेरे लिये नियत हो।

समरांगण की लीला में तलवार आनन्द पाती है, तीर अपनी उड़ान और सनसनाहट में मज़ा लेता है, पृथ्वी इस आकाश में अपना अंधाधुंध चक्कर लगाते जाने में आनन्द विभोर है, सूर्य नारायण अपने जगमगाते वैभव में तथा अपनी सनातन गति में सदा सम्राट् सदृश आनन्द का भोग कर रहा है। तो फिर, ओ परमेश्वर के आत्म सचेतन यन्त्र! तू भी अपने नियत कर्म करते जाने में मज़ा लूट।

तलवार अपने बनाए जाने की मांग नहीं करती, बन जाने पर वह उपयोगकर्ता को अपने किसी तरह उपयुक्त किये जाने में रुकावट नहीं पैदा करती, और जब वह टूट

[यह श्री अरविन्द का वह लेख है जिसका कि आचार्य अभयदेव जी ने अपने 'मनोरञ्जन' शीर्षक वाले लेख में इसी अङ्क में उल्लेख किया है—सम्पादक।]

जाती है तो कोई विलाप नहीं करती। बनाए जाने में एक प्रकार का आनन्द है और उपयुक्त किये जाने में भी एक अन्य प्रकार का आनन्द है तथा म्यान में बन्द कर रख दिये जाने में और अन्त में तोड़ कर फेंक दिये जाने में भी एक आनन्द है। उस सर्वत्र सम आनन्द को तू ढूंढ निकाल।

क्योंकि तूने यन्त्र को कार्यकर्ता और स्वामी समझने की भूल की है और क्योंकि तू अपनी इच्छा के अज्ञान के कारण अपनी निजी अवस्था की, अपने निजी लाभ की और अपनी निजी उपयोगिता की पसन्दगी करना चाहता है, इसी लिये तुझे दुःख और यातनाएं झेलनी होती हैं, तुझे बार बार लाल दहकती हुई भट्टी के नरक में तपना पड़ता है और बार बार ही नया जन्म लेना, नया आकार और स्वभाव धारण करना पड़ता है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि तू अपना मनुष्योचित पाठ पूरा न कर लेगा।

और ये सब अपूर्णताएं हैं, क्योंकि ये तेरी अधूरी अपक्व प्रकृति में विद्यमान हैं। जब तू यन्त्र हो जाएगा तो देखेगा कि प्रकृतिदेवी कार्यकर्ता है, कार्य करने वाली है। और तू जानता है कि वह क्या कार्य कर रही है? वह अपने इस अपक्व कच्चे मन, प्राण और स्थूल द्रव्य (अन्न) में से एक पूर्णतया सचेतन सत्ता को विकसित कर रही है।

(२) कार्यकर्तृ-भाव

इस के बाद फिर दूसरा कदम उठा, अपने आपको कार्यकर्ता रूप से जान। तेरी प्रकृति कार्य करने वाली है यह समझ और तेरी निजी प्रकृति तथा विश्व प्रकृति ये तू ही है, तेरा ही स्वरूप है यह समझ।

तेरा यह प्रकृतिरूप स्वरूप न तो विशेषतया तेरा सकाय है और न तेरी निजी प्रकृति से परिमित है। तेरी प्रकृति ने ही यह सूर्य और सब सौर मण्डल, यह पृथ्वी और उसके सब प्राणी, तू तेरा और जो कुछ भी तू देखता है इस सब को रचा है। यह तेरी मित्र है और यही तेरा शत्रु है, तेरी माता है और तेरा भक्षण करने वाली है तुझ से प्रेम करने वाली और तुझे पीड़ा पहुंचाने वाली है, तेरी आत्मा की बहन है और बिलकुल अपरिचित पर-जन है, तेरा आनन्द है और यही तेरा शोक है, तेरा पाप है और यही तेरा पुण्य है, यह तेरा बल है और यही तेरी निर्बलता है, यह तेरा ज्ञान है और यही तेरा अज्ञान भी है। और फिर वह इन में से कुछ भी नहीं है किन्तु कुछ ऐसी चीज है जिसे वर्णन करने का प्रयत्न मात्र या अधूरी छाया मात्र उपर्युक्त बातें हैं। क्योंकि वह इन सब से परे अपने दिव्य स्वरूप में मूलभूत आत्मज्ञान रूप, अनन्त शक्ति रूप और असंख्य गुण रूप है।

परन्तु तुझ में प्रकृति की एक विशेष क्रिया, तेरी स्वकीय प्रकृति, तेरी एक वैयक्तिक शक्ति काम कर रही है। तू उस का अनुसरण कर और जैसे एक नदी बहती जाती हुई समुद्र को जा पहुंचती है वैसे तू इसका अनुसरण करता हुआ इसके असीम आदि स्रोत और मूल स्थान को पहुंच जा।

इसलिये तू अपने शरीर को स्थूल द्रव्य-अन्न तत्व-की एक गांठ समझ, अपने मन को विश्व व्यापी मन में उठा एक बबूला तथा अपने जीवन को शाश्वत प्राण सागर में पड़ी एक भंवर समझ। अपनी शक्ति को तू प्रत्येक अन्य प्राणी की शक्ति समझ, अपने ज्ञान को उस महा प्रकाश से आई हुई एक चमक समझ जो कि किसी मनुष्य का अपना नहीं है, अपने कर्मों को अपने लिये किये गए समझ। इस तरह तू अपने को पृथक् व्यक्ति समझने की गलती से छुटकारा पा जा।

जब यह हो जायगा तो तू अपनी व्यक्तिगत सत्ता के सत्य में, अपने वास्तविक व्यक्ति-स्वरूप में अपना मुक्त आनन्द प्राप्त करेगा; तब तुझे अपनी शक्ति में, अपने यश में, अपने सौन्दर्य में और अपने ज्ञान में आनन्द मिलेगा और इन सब के निषेध में भी तुझे आनन्द मिलेगा। क्यों कि यह सब कुछ उस पुरुष का नाटकीय वेष धारण ही तो है, उस आत्म-शिल्पी की आत्ममूर्ति ही तो है।

तुझे अपने आप को परिमित क्यों रखना चाहिये? तू घायल करने वाली तलवार में भी और आलिङ्गन करने वाले हाथ में भी अपने आप को अनुभव कर, सूर्य की जाज्वल्यमान दीप्ति में और पृथ्वी के सतत नृत्य में, गरुड़ की लम्बी उड़ान में और कोयल के कोमल कूजित में, और उस सब में जो कुछ हो चुका है, उस सब में जो भी कुछ विद्यमान है और उस सब में जो कुछ आगे होना चाह रहा है तू अपने आप को अनुभव कर। क्योंकि तू अनन्त है और तेरे लिये यह सभी आनन्द सम्भव है।

कार्यकर्तृ-प्रकृति देवी जहां अपने कर्मों का आनन्द पाती है वहां वह अपने प्रियतम जिस के लिये वह काम करती है, का भी आनन्द पाती है। वह अपने आप को उसकी चेतना और उस की शक्ति कर के जानती है, उस का ज्ञान और उसका ज्ञानविरोध, उसकी एकता और उस का आत्म विभेद, उस की अनन्तता और उसकी सत्ता का सान्त रूप कर के जानती है। तू भी अपने आपको यह सब कुछ कर के जान और तू भी अपने प्रियतम का आनन्द पा।

ऐसे लोग हैं जो अपने को एक कारखाना या एक यंत्र या एक तैयार की हुई वस्तु कर के जानते हैं। पर वे कार्यकर्ता को ही स्वामी समझ लेते हैं, यह भी भारी भूल है। जो लोग इस भूल में पड़ते हैं उनको प्रकृति की ऊंची, पवित्र और पूर्ण कार्य प्रणालियों तक पहुंचना असम्भव सा होता है।

यन्त्र एक पुरुषविध आकृति में होती हुई सीमित वस्तु है, कार्य कर्ता एक पुरुष जैसी प्रकृति से युक्त व्यापक वस्तु है। पर इन दोनों में से कोई भी स्वामी नहीं है क्यों कि इन दोनों में से कोई भी वास्तविक पुरुष नहीं है।

(३) स्वामि-भाव

अन्त में तू स्वामी को अपना आप कर के जान। किन्तु अपने उस दिव्य आत्मा को तू कोई आकार प्रदान मत कर, इसे किन्हीं गुणों द्वारा लक्षित करने का यत्न मत कर। अपनी सत्ता में उसके साथ एक हो जा, अपनी चेतना में उसके साथ सम्यक युक्त हो अपनी शक्ति में

उसका आज्ञा पालक रह, अपने आनन्द में उसका विषयी-भूत बन और उस से आश्लिष्ट हो, अपने प्राण, शरीर और मन में उसे सार्थक कर। तब तेरे अन्दर की उद्घाटित हुई एक चक्षु के सामने वह वास्तविक और एक मात्र पुरुष प्रकट हो जाएगा जो तेरा अपना आप है तथा इस का निषेध रूप है, जो और सब है तथा और सब से अतिरिक्त है, तेरे कर्मों का प्रेरयिता और भोक्ता है यन्त्र का और कार्यकर्ता का स्वामी है, इस विश्व नृत्य धूम धाम के साथ रंगरलियां करने वाला विलासी तथा अपने नाचते हुवे पैरों से सब जगत् को रौंद डालने वाला काली है। पर साथ ही तेरे आत्मा की शान्त और भीतरी कोठरी में चुप, मौन होकर अकेला तेरे साथ बैठने वाला भी वही है।

स्वामी का आनन्द प्राप्त हो गया तो फिर तेरे लिये कोई और वस्तु विजय करने की नहीं रही क्योंकि वह तुझे अपने आपको ही दे देगा तथा सब वस्तुएं देगा और सब प्राणी जो इन्हें प्राप्त करते हैं, रखते हैं, करते हैं भोगते हैं उस सब के तेरे निजी उचित हिस्से को देगा, और वह तुझे वह वस्तु भी देगा जिसके कि हिस्से नहीं किये जा सकते।

तू अपने सत्ता में अपने आप का तथा अन्य सब को समा लेगा और तू वह हो जाएगा जो न तो तू है और न अन्य सब। कर्मों की यह है पूर्णता-प्राप्ति और पराकाष्ठा।

—•—

आदर्श ब्रह्मचारी

[ले०—सुमन-विद्यालङ्कार]

करीबन ६० साल पहिले की बात है। उन दिनों अभी सम्पूर्ण भारतवर्ष में रेलवे का जाल न बिछ पाया था। जो स्थान तब रेलगाड़ी के गन्दे धूएं और शोरगुल से बचे हुए थे वहां डाक, यात्रा आदि का कार्य पुराने ढर्रे पर चलता था यानी दस २ मील के अन्तर पर एक एक धर्मशाला या सराय होती थी जहां सरकार की ओर से कुछ आदमियों के रहने का प्रबन्ध होता था। दो घोड़ों वाली गाड़ियों का प्रचलन उन दिनों काफ़ी था। डाक गाड़ियों के घोड़े हरेक दस मील पर बदलते थे और वहाँ से नये घोड़े जोत दिये जाते थे।

हम लोग जवानी के उम्मीदवार थे। माता-पिता के संस्कारों के कारण हम भी वैष्णव ही थे। आर्य समाज हम लोगों की ही अवस्था में था, इस कारण हम जैसे नटखट, शरारती तथा हुड़दंग मचाने वालों के लिये यह एक मजाक का साधन सा बन रहा था, किन्तु इसका जनक बड़ा हट्टा-कट्टा मोटा ताजा नवयुवक था-जो हम जैसे पतले सिकुड़े कई बालकों का बाप होने के लायक था। वह बाल ब्रह्मचारी सौराष्ट्र के एक निर्धन ब्राह्मण कुल की संतान था। अस्तु।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है जब कि पहिली बार स्वामी जी रावलपिंडी आये थे। एक स्थान पर चौकड़ी लगाये—दोनों हाथों पर डंडा नचाते हुए, हंसते २ वैदिक धर्म की महत्ता पर उपदेश दे रहे थे। उस व्याख्यान में उन्होंने क्या २ कहा—यह तो मुझे आज स्मरण नहीं किन्तु हां एक बात अवश्य याद आती है वह यह कि इसी प्रकरण में उन्होंने कहा था कि मैंने ३ हज़ार से कुछ अधिक पुस्तक वैदिक धर्म विषयक अच्छी तरह पढ़ी हैं जिनसे मेरा इस धर्म पर इतना दृढ़ अविचल और अगाध विश्वास जम गया है। व्याख्यान के समय हम जैसे बालकों को वे प्रायः आगे २ बिठा लिया करते थे। उनका वह रोबदाब वाला चेहरा याद करके आज इतनी वृद्धावस्था में पहुंच कर भी उस महर्षि का जन्मभूमि को देखने के लिये दिल लालायित है—आंखें तरसती हैं किन्तु क्या करूं आँखों में वह ज्योति नहीं-शरीर में वह शक्ति नहीं चेहरे पर वह आभा नहीं और पास में वह धन नहीं।

व्याख्यान के बाद आजकल की तरह प्रश्न करने का रिवाज़ उन दिनों आम बात था। कोई प्रभाव शाली वक्ता व्याख्यान के बाद शंका करने का अवसर देता है तो अधिकतर यही देखने में आता है कि शंका होते हुए भी प्रश्न करने से भय प्रतीत होता है और खासकर भरी सभा में। चिरकाल के अनन्तर एक नवयुवक डरते २ खड़ा हुआ और खड़े होकर भी उसने बड़े संकोच और झिझकते हुए कहा कि शंका निवारण करना भी चाहता हूं और... ..। स्वामी जी ने बड़े हंसते २ कहा-भय्या संकोच क्यों करते हो। प्रश्न तो होते इसलिये हैं कि उनको हल किया जाय। शंका तो पैदा इसलिये होता है कि उनका समाधान ढूंढा जाय। खैर जो-बड़े संकल्प-विकल्प के बाद उसने कहा कि आप यह बतलाइये कि क्या आपको काम विकार आते ही नहीं? क्या आपके शरीर से कभी वीर्य का एक कतरा भी नहीं निकला? पहिले प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—मुझे सोचने विचारने को इतना अवसर ही नहीं कि विकार आदि को रिक्त स्थान मिले और मैं उनके विषय में कुछ सोचूं। वो कहा करते थे कि वेद भाष्य तथा अन्य ग्रन्थों से ही मुझे इतनी फुर्सत नहीं मिलती कि मैं अन्य किसी विषय में कुछ सोच सकूं। भारत का अवस्था इतनी बदतर है कि मुझे भय है कि कहीं आर्य जाति क्रिश्चियन तथा आस्ट्रेलियनों की भांति समूल नष्ट न हो जाय। इत्यादि। द्वितीय प्रश्न का उत्तर देने से पहले दो एक मिनट तक नेत्रों को अंगुलियों से दबाकर अन्तः ध्यान द्वारा सिंहावलोकन करके बोले कि जहां तक मुझे स्मरण आता है—मेरे वीर्य का एक कतरा भी कभी बाहर नहीं निकला। तभी तो उन्होंने बौद्धिक-शारीरिक और आत्मिक नाना प्रकार की शक्तियों में इतना पुण्य और कमाल हासिल कर रखा था। लोग उन्हें महर्षि कहते हैं-वस्तुतः वह एक बड़ा भारी ऋषि था। योगी था और धर्म सुधारक था। आत्मिक शक्ति या ब्रह्मचर्य के विषय में व्याख्यान के बाद सभा विसर्जन के अनन्तर एक "सरदार" ने कहा स्वामी जी आप ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य कहते रहते हैं मुझे यह तो बतलाइये क्या संसार में कोई सच्चा ब्रह्मचारी भी है? स्वामी जी मौन व्रत धारण किये हुए मुस्किराते रहे। कोई जवाब न दिया। चुपचाप वहां से उठकर अलग हो एक स्थान पर टहलते रहे। थोड़ी देर बाद वह सरदार अपनी बग्घी में बैठ कर जाने लगा। उससे पहले उसने स्वामी जी के चरण छू कर प्रणाम किया

[शेष पृ० ६ ठे पर]

गु रु कु ल

१ आषाढ़ शुक्रवार १९९७

मनोरंजन

[गतांक से आगे]

कर्मों का आनन्द

अब रही प्रसन्नता या आनन्द के लिये ऐसे मनोरंजनों को करने की बात। तो क्या तुम्हें भी यह बताने की जरूरत है कि आनन्द तो अपने प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म में आना चाहिये। कर्तव्य पालन में जिसे आनन्द आता है उसे हमेशा ही कर्त्तव्य कर्म करते हुए आनन्द ही आनन्द रहेगा। उसे आनन्द के लिये कोई जुदा कर्म करने की, मनोरंजन करने की जरूरत नहीं होगी। ऐसे तथा कथित मनोरंजनों से तो उसे पीड़ा होगी। मेरा कीमती समय नष्ट हो रहा है, यह मेरा पतन है, यह दीक्षाव्रत का भंग है, यह मुझे मेरे हृदयस्थ अन्तरात्मा से दूर हटा कर न जाने कहां गढ़े में गिरा देगा इत्यादि प्रकार के किसी भाव के कारण वह तो मनोरंजन के विचार से ही घबड़ा जायगा, बड़ा दुःखी होगा। पर यह अवस्था तब होती है जब कर्त्तव्य की दृष्टि से सब कर्म एक बराबर हो जायं, एक बराबर आनन्ददायी हो जायं। दुःखदायी तो केवल अकर्तव्य रह जायं जिन्हें कभी किया न जाय। यदि तुम्हें भोजन खाने में तो आनन्द आता है, पर श्रम करने में नहीं, गर्मी में स्नान करने में आनन्द आता है जाड़ों में नहीं, अमुक विषय के पढ़ने में आनन्द आता है पर अमुक (कर्तव्यतया पढ़ने लायक होने पर भी) में नहीं तो तुम उस अवस्था से दूर हो, तुम में कर्तव्यभावना पूरी तरह विकसित नहीं हुई है। अरे, आनन्द तो किसी न किसी बात में पामर तक को आता है, प्रत्येक आत्मा को आता है। किन्तु किस को आनन्द किस बात में मिलता है यही भेद है जोकि कीट-पतंग से शुरु करके ब्रह्मानन्द भोगने वाले मुक्त जीव तक की ऊंचाई तक पहुंचने वाली प्राणि-शृङ्खला को जुदा जुदा श्रेणी में विभक्त करता है। कौन किस लोक का है, कौन कहां तक पहुंचा है, कौन किस तल पर रहता है इसको बता देने वाली बात, इस की पक्की पहचान यह है कि यह देख लो कि उसे किस बात में आनन्द आता है, वह किस में रस लेता है, उसके आनन्द का विषय क्या वस्तु है। दुःख सुख में थोड़ा बहुत सभी पड़े हैं। बेशक नीचे की श्रेणिओं में दुःख ज्यादह है और ऊपर सुख ज्यादह है, पर निरन्तर सुख और अपार सुख तो उसे ही मिलता है जोकि प्रत्येक कर्म में आनन्द पाता है और जो अपने कर्त्तव्य कर्म को अनायास ही प्रतिक्षण जानता है।

यहां श्री अरविन्द के एक लेख का स्मरण आता है जिसका शीर्षक है "Delight of the Works" अर्थात् कर्मों का आनन्द। वह इतना सुन्दर लेख है कि मेरे एक मित्र ने वह सम्पूर्ण कण्ठ कर रखा था। उस लेख की मैं क्या चर्चा करूं! वह तो उनकी वाणी में ही पढ़ने लायक है। कभी मौका लगा तो वह लेख सुनाऊंगा या उसका अनुवाद कर दूंगा+। उस में यह बताया गया है कि कर्म का आनन्द पा सकने के लिये मनुष्य को यह जान लेना चाहिये कि "मैं क्या हूं"। तीन वस्तुओं के समझ लेने की जरूरत है। पहले तो यह कि मैं एक यन्त्र हूं जिसके शरीर, मन, प्राण आदि मुख्य पुर्जे हैं। प्रकृति माता इस यन्त्र को बरतने वाली है, कार्यकर्त्री है। स्वयं भगवान् इस यन्त्र के स्वामी हैं जो प्रकृति के द्वारा इस यंत्र से जो चाहे काम ले सकते हैं। यंत्र, कर्त्री और स्वामी इन तीनों को मनुष्य जब स्पष्ट अनुभव करता है तो उस यंत्र से होने वाले प्रत्येक कर्म में वह निरन्तर अद्भुत अपार आनन्द पाता है। जैसे तलवार अपने चलाने वाले से या स्वामी से यह नहीं कहता कि तुम मुझे वहां चलाओ, यहां न चलाओ, चलाने वाला जब चाहे उसे कहीं चलाये या बन्द करके म्यान में रखदे या तोड़ कर फेंक दे। तलवार अपनी कुछ इच्छा नहीं रखती। हर स्थिति में खुश है। यहां चलाये जाने में, वहां चलाये जाने में, रख दिये जाने में या तोड़ दिये जाने में भी एक समान आनन्द पाती है। इसी तरह भगवती माता के हाथों में स्वामी की आज्ञा से यंत्रवत् हम से जो भी, जैसा भी, जब कभी काम लिया जाय उस सब कर्म में हमें सदा आनन्द ही आवे। यह है कर्मों का आनन्द। हम अनुभव करें कि माता के हाथों में प्रभु के आदेशानुसार, निरन्तर नाचते रहने में ही महान आनन्द है।

जगत् व्यापी आनन्द

और तुम देखो कि यह सूर्य, यह चांद, पृथ्वी, वायु आदि कैसे अनन्त काल से अपने आयोजित चक्र में घूम रहे हैं। नियम से बंधे हुए निरन्तर चल रहे हैं, कभी उदास नहीं होते, कभी दम नहीं लेते, कभी थक कर बैठ नहीं जाते। उस प्रकृति माता के हाथों में ये सचमुच यन्त्र हैं। इन देवों का हमें अपने जीवन में अनुकरण करना चाहिये। ऐसा वेदों में जगह जगह कहा है। हम इन शाश्वत देवों का आदर्श सामने रक्खें तो हम भी सुदीर्घ या एकरस कर्त्तव्यों को करते हुए भी इतना जल्दी उकता न जायें, इतना जल्दी बेचैन न हो जायं। हम क्यों कुछ घण्टे ही काम करने से थक जाते हैं, उकता जाते हैं और देव अनादिकाल से काम करते भी नहीं थकते? इसका एक ही कारण है। इन्हें अपना यह कर्त्तव्य करते हुए आनन्द आता है। स्वामी के आदेश-पालन में लगे रहते हुए परमानन्द मिलता है। इन्हें आनन्द के लिये किसी अन्य मनोरंजन की जरूरत नहीं। सचमुच इन्हें आनन्द आता है और बड़ा भारी आनन्द। उपनिषदों में कहा है— सूर्य के उदय होते हुए उसकी आनन्द भरी ध्वनियां निकलती हैं, प्रकृति के ये देव एक दूसरे के लिये भी

+ यह लेख इसी अङ्क में प्रथम पृष्ठ पर छपा है—सं०।

आनन्द रूप (मधुर) हैं और यह सब जगत् आनन्द से उत्पन्न होता है, आनन्द में स्थित है और आनन्द में लीन होता है। ज़रा इस जगत् व्यापक आनन्द की झांकी लेने का यत्न करो !

निरन्तर मनोरंजन

इन देवताओं को जाने दो, श्री अरविन्दाश्रम में साधक लोग दसिओं वर्ष तक बिलकुल एक ही प्रकार का भोजन पाते रहते हैं, एक ही प्रकार का काम लगातार करते चले जाते हैं। इसमें उन्हें आनन्द अनुभव होता है। देश के लिये पागल हुए लोगों को देखो, उनका भी ऐसा ही हाल है। उन्हें स्वराज्य प्राप्ति तक चैन लेने की सूझना तक नहीं। एक दफ़ा किसी आलोचक ने महात्मा गांधी को लिखा था कि 'आप जो स्वराज्य के लिये लोगों को इतना कष्ट दे रहे हैं, लोग मर रहे हैं, जेल जा रहे हैं, जेल की पाशविक यन्त्रणाएं भोगने को बाध्य हो रहे हैं इस सबका पाप आप को लगेगा' तो गांधी जी ने उत्तर दिया था "मैं तो किसी को जेल जाने को या मरने को नहीं कहता; असल में लोगों को इस में मज़ा आता है इसलिये वे यह सब कुछ करते हैं"। सचमुच 'यह भारतमाता के लिये है' 'ऐसी जगत् माता की इच्छा है' 'यह गुरु का वचन है' 'स्वामी का आदेश है' 'प्रभु का संकल्प है' ऐसी कोई भी भावना हमें उस सतह पर उठा देती है जहां कोई दुःख दुःख नहीं रहता, निरन्तर मनोरंजन ही रहता है। प्राचीन काल के एकलव्य की या अन्य अद्भुत शिष्यों की कथाओं का स्मरण करो। पुराण आदि में जो वर्णन आते हैं कि अमुक ऋषि ने सैंकड़ों या सहस्रों वर्ष तप किया उन्हें गप्प ही मत समझो। एक ही काम में और इतने लम्बे समय तक लगे रहना बेशक तुम्हें असम्भव लगे, पर मुझे तो जब आज भी ऐसी भावना वाले पुरुष दिखाई देते हैं जो कहते हैं 'हमारे जीवन का तो लक्ष्य ही एक है—"भगवत् प्रसाद को पा लेने के लिये साधना करते जाना। बार बार जन्म लेकर भी हमें यही करना है और दूसरा कुछ नहीं करना" तो वे कथानक आलङ्कारिक नहीं किन्तु शब्दशः सत्य लगते हैं और यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं लगती कि एक ही निष्ठा, भाव या लक्ष्य को लेकर महापुरुष सहस्रों वर्ष तक काम करते जायं। इसलिये तुम भी अपने ज्ञान से या हृदय से किसी ऐसी वस्तु को यहां गुरुकुल में रहते हो पा लेने का यत्न करो जिससे वर्षों तक बल्कि जीवनभर एक ही प्रकार का कार्य करते जाते हुए भी तुम्हारे लिये निरन्तर और नित्य मनोरंजन रहे।

यह मत ख्याल करो ये जो बातें मैंने कही हैं ये बहुत ऊंची हैं। ये तुम्हारे लिये ऊंची हैं तो ये और किसे कही जायं। और यह ऊंचाई तभी तक है जब तक वहां चढ़ नहीं लिया जाता, चढ़ा जा नहीं सकता या चढ़ने की इच्छा ही नहीं होती।

परमेश्वर तुम्हें गुरुकुल के ऊंचे आदर्श के योग्य बनावे।

मधु-मक्खी-पालन

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार]

(गतांक से आगे)

पहले मधु नित्योपयोगी वस्तुओं में था परन्तु अनेक कारणों से इस समय भारत में इसका उतना प्रभाव नहीं है। आयुर्वेद में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत रूप में मिलता है। च्यवन प्राश आदि अवलेह, मकरध्वज आदि रस तथा अनेकानेक चूर्ण, वटी, क्वाथ आदि सिद्ध औषधियों के साथ इसका उपयोग होता है। इस के बिना भारतीय चिकित्सा शास्त्र पंगु है। हिन्दु चिकित्सा के सर्वोत्तम प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुत के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उस काल के लोगों ने इस विषय का बहुत विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। मधु उत्पन्न करने वाली मक्खियों के भेद और विभिन्न प्रकार के शहदों पर विद्वान् लेखक ने बहुत उत्तमता से विचार किया है। यह ग्रन्थ लगभग तीन हजार साल पहिले का लिखा हुआ है जिस से मालूम होता है कि संसार की किसी भी जाति की अपेक्षा सब से पूर्व भारतीयों ने इस विषय की ओर ध्यान दिया था।

हमारी मांग पूरी करने वाला बाज़ारी का शहद भयावह तरीकों से इकट्ठा किया जाता है। भारत के बड़े हिस्से में शहद बहुतायत में जङ्गली उत्पन्न होता है। भारतीय जङ्गल विभाग भोजन और औषधि के इस महत्वपूर्ण पदार्थ की ओर समुचित ध्यान नहीं देता। जंगल से शहद निकालने के ठेकेदार वहां के बाशिन्दों को सारंग मक्खी ('रौक बी') के छत्तों से शहद इकट्ठा करने का आदेश देता है। ये जंगली साहसिक आदमी अपने को बड़ी जोखिम में डाल कर ऊंची ऊंची चट्टानों और वृक्षों पर आग और धुएं से मक्खियों को नष्ट करने और भगाने के लिए चढ़ जाते हैं और छत्ते को काट लेते हैं। तब एक ग्राम्य तरीके से शहद निचोड़ लिया जाता है और ठेकेदार को बेचने के लिए सौंप दिया जाता है।

ज़रा सोचिए, निचोड़ने वाले के मैले हाथ किस बेरहमी से मक्खियों के अंडों की हत्या कर रहे हैं। फिर वह मक्खियों के अंडों के रस से युक्त मधु को तमाखु या किसी दूसरी अप्रिय नाक सिकोड़ने वाली गन्ध छोड़ने हुए कपड़े में छान रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि इसके बीच में उसकी लार या पसीना भी थोड़ा हिस्सा ले ले। तो क्या आप शहद को और देखना तक पसन्द करेंगे, खाना तो दूर किनार। और आगे चलिए। इस शहद में प्रायः खाण्ड की चासनी भी मिला दी जाती है। सब से अधिक दुर्भाग्य तो यह है कि इस में से सब मलिनताओं को निकाल देने के इरादे से यह उबाल डाला जाता है। संग्रह कर्त्ता जंगली को क्या मालूम कि सीधी गरमी इसके उपयोगी गुणों से खो देती है।

वर्तमान समय में भारत के पर्वतीय ग्रामों में किसी २ स्थान पर मक्खी पालने का उद्योग देखने में आता है। बड़े बड़े मटकों, दीवारों के छिद्रों और लकड़ी के खोखलों

म मक्खी पाली जाती है। इकट्ठा हो जाने पर साल में दो या तीन बार छत्ते काट कर शहद निचोड़ लिया जाता है और छत्ते फेंक दिये जाते हैं। इस विधि में निम्न दोष हैं—

(१) छत्ते के निचोड़ने में मक्खियों के अंडों बच्चों के पिस जाने से शहद शुद्ध नहीं प्राप्त हो सकता है।

(२) यह शहद जल्दी ही बिगड़ जाता है। खमीर उठ कर दुर्गन्ध आने लगती है और स्वाद खट्टा हो जाता है।

(३) अण्डे बच्चे मर जाने से मक्खियों के वंश का नाश हो जाता है और हिंसा का पाप लगता है।

(४) परिमाण में शहद कम प्राप्त होता है। नये तरीकों में इस की अपेक्षा कई गुणा अधिक शहद प्राप्त होता है।

मक्खियों को पाल कर प्राचीन तरीके से शहद प्राप्त करने वाले को हम मक्खी पालक की अपेक्षा मक्खी मारक कहना अधिक पसन्द करेंगे। मक्खी मारक मक्खियों के घरों को नष्ट करके जो शहद प्राप्त करता है उस में बहुत सी मलिनताएं होती हैं और यह तथा कथित शहद थोक में दो आने से ढाई आने तक प्रति पौण्ड बिक जाता है। शहद की मक्खियों के अनेक शत्रु होते हैं परन्तु उनका सब से बुरा दुश्मन मनुष्य है और वह भी मक्खी मारक की शक्ल में जो पृथ्वी पर सब से अधिक चतुर लूटने वाला प्राणी है। उसका कार्य शहद की मक्खी को भारत से लोप करना होता है जहां उसने जन्म पाया है। आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का पालना मक्खी मारकों को मक्खी पालक बनाता है। मक्खियों को मार कर शहद प्राप्त करना ठीक वैसा ही है जैसे सोने का अंडा देने वाला मुर्गी का मारना। मक्खियोंको पालनेसे हम उनसे हजार कहीं अधिक लाभ निकाल सकते हैं। आधुनिक भारतीय मक्खी पालक अपना शहद डेढ़ रुपया प्रति पौण्ड बेच लेता है। इससे स्पष्ट है कि मक्खियों को मारकर पुराने तरीकों से शहद प्राप्त करने वाले मक्खी मारक की अपेक्षा मक्खी पालक का लाभ एक हजार प्रति शतक अधिक है।

(असमाप्त)

पृष्ठ ३ का शेष

और फिर जाने के लिये बग्घी में बैठ गया। बग्घी में चार काले रंग के बड़े सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। सरदार ने चाबुक लगाई—घोड़ों ने बढ़ने का यत्न किया—न बढ़ सके—फिर लगाई—न चले। अब की बार एक जोर से लगाई घोड़ों ने दोनों अगली टांगों से अपनी पराजय के लिये क्षमा याचना की। सरदार ने सोचा क्या बात है—कोई गढ़ा नहीं—खाई—खन्दक नहीं। पीछे देखा तो स्वामी जी मुस्करा रहे हैं। सरदार उतरा और फिर चरण स्पर्श कर बोला—महाराज, ठीक बात है हिन्दुस्तान में एक सच्चा ब्रह्मचारी है।

वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव

वाद विवाद सम्मेलन

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी (हरद्वार) की प्रमुख सभा वाग्वर्धिनी ने ३० जून १९४० रविवार को एक अन्तर्विश्व विद्यालय वाद विवाद सम्मेलन का आयोजन किया है। इसके प्रधान-पद को माननीय श्री प्रो. इन्द्र जी विद्या वाचस्पति अलंकृत करेंगे। वादविवाद का विषय— "डेमोक्रसी और डिक्टेटरशिप" होगा।

वादविवाद सम्मेलन के अतिरिक्त दूसरी बैठक उसी ही दिन साहित्यसम्मेलन के रूप में होगी। इसमें सभा पति पद के लिए कविवर श्री भगवती चरण वर्मा को निमंत्रित किया गया है।

गुरुकुलीय अन्तर्विश्व विद्यालय वाद-विवाद सम्मेलन के नियम—

(१) इस अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद में प्रत्येक महाविद्यालय २ प्रतिनिधियों को भेज सकेगा जिनमें एक पक्ष में तथा एक विपक्ष में होना चाहिए।

(२) वक्ताओं की सूचना २० जून तक मंत्री वा. व. सभा के पास पहुंच जानी चाहिए।

(३) प्रत्येक वक्ता को न्यून से न्यून ८ मिनिट तथा अधिक से अधिक १० मिनिट दिए जावेंगे।

(४) भाषण की श्रेष्ठता का निर्णय भाषा, भाषाशैली और प्रति पाद्य विषय के आधार पर किया जावेगा।

(५) विजयी संस्था को श्रद्धानन्द चल विजयोपहार दिया जावेगा जिसे नियत समय तक सुरक्षित रूप में लौटाने की जिम्मेवारी उस संस्था की होगी।

(६) प्रथम दो वक्ताओं को पारितोषिक भी दिए जावेंगे।

(७) सभा में निर्णायकों (जिनकी संख्या ३ होगी) का निर्णय प्रामाणिक माना जावेगा। अन्य विषयों में वाग्वर्धिनी की कार्यकारिणी का निर्णय अन्तिम माना जावेगा।

हमें आप सब साहित्यप्रेमी वक्ता महानुभावों से इस के लिए क्रियात्मक सहयोग की पूर्ण आशा है।

निवेदक
गुरुदत्त
मंत्री वाग्वर्धिनी सभा।

आवश्यकता

गुरुकुल वैद्यनाथधाम के लिये दो सुयोग्य स्नातक अध्यापकों की आवश्यकता है जो अंग्रेजी, गणित, आर्य-भाषा और भूगोल में से कम से कम दो विषयों का उच्च विद्यालय में अर्थात् ९ म, १० म श्रेणियों में अध्यापन कर सकें। वेतन ४०) या ४५) योग्यतानुसार होगा। साथ में वे वक्तृता, संगीत, आलेख्य कताई उद्योग, बागबानी, खेलों में निपुणता में से भी कम से कम किसी एक की योग्यता रखते हों वे प्रशस्त समझे जायेंगे।

अभय

गुरुकुल समाचार

ब्र० गिरधर १३ श्रेणी विसर्प, ब्र० शंकरदेव ४ श्रे० मम्स, ब्र० दमनेश २ श्रे० मम्स, ब्र० तिलक ५ श्रे मलेरियाज्वर, राजेन्द्र २ श्रे० मलेरियाज्वर, रामेश्वर ३ श्रे० श्लेष्मज्वर, प्रेमस्वरूप ३ श्रे० श्लेष्मज्वर, महदेव २ श्रेणी व्रण, रामेश्वर २ श्रे व्रण, विद्याधर २ श्रे० व्रण, उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। गत सप्ताह गर्मी अधिक रही, अधिकतम तापमान १०७ डिग्री रहा।

तैरी सान्मुख्य — बहुत दिनों की लम्बी प्रतीक्षा के बाद पंदपुरी तैरी सान्मुख्य ई ज्येष्ठ शनिवार को बड़े उत्साह के साथ प्रारम्भ हुआ जिसमें लगभग महाविद्यालय के २५ ब्रह्मचारियां तथा अमृतमण्डल, शुगर-फैक्टरी ज्वालापुर, चैतन्य कुटीर आदि स्थानों के १५ अन्य तैराकों ने भी इस ढाई मील की तैरा में बड़े उत्साह पूर्वक भाग लिया। मायापुर के पुल से कूद कर तैराकों को गुरुकुल के घाट तक पहुंचना था। तैरा प्रारम्भ होने के समय अपार जन समूह की भारी उपस्थिति ने सान्मुख्य में भाग लेने वाले तैराकों के उत्साह को द्विगुणित कर दिया। निश्चित समय पर सान्मुख्य प्रारम्भ हुआ। गुरुकुल महाविद्यालय के ही दो विद्यार्थी ब्र० विद्यानन्द तथा चन्द्रगुप्त १३ श्रेणी प्रथम तथा द्वितीय नम्बर पर रहे जो क्रमश. २५, तथा २६ मिनट में निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचे। तृतीय नम्बर पर रहने वाले व्यक्ति श्री सुनीलकुमार जी जो आजकल काफी अर्से से गुरुकुल में ही निवास कर रहे हैं और जिन्हें गुरुकुल के तैरने में प्रवीण विद्यार्थियों से काफी प्रेरणा मिली है।

लम्बी तैरी के बाद सिंहतैरी, ऊंची कूद, डुबकी लगा कर तैरना, तथा डुबकी में भी सान्मुख्य हुवा। इसका परिणाम निम्न है—

सिंहतैरी—प्रथम—श्री व्रजनन्दन ११ श्रेणी।
द्वितीय—डी. पी. सिंह जी।
ट्रफे से लम्बी कूद—ब्र० बलदेव १३ श्रेणी।
डुबकी तैरी—ब्र० शान्ति १२ श्रेणी।
डुबकी मारना—श्री वैद्य वासुदेव जी आयुर्वेदालंकार।

इस सबके बाद पारितोषिक वितरण का समय आया। गुरुकुल के सब मान्य उपाध्याय अध्यापक तथा ब्रह्मचारियों के बीच में तुमुल करतल ध्वनि के साथ गुरुकुल सूपा के आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने विजेताओं को पारितोषिक प्रदान किया। श्री दीन दयालु जी शास्त्री ने अपनी ओर से ब्र० रघुनाथ १४ श्रेणी को सब खेलों में भाग लेने के कारण विशेष पारितोषिक देकर उत्साह को बढ़ाया।

अन्त में श्री क्रीड़ा मन्त्री ब्र० विद्यारत्न ने सबको धन्यवाद देते हुवे कार्य क्रम को समाप्त किया।

गत सप्ताह के मान्य अतिथि श्री डा० रघुवीरशरण सिंह जी अग्रवाल चक्षु विशेषज्ञ के चार व्याख्यान "बिना चश्मे के नेत्रों का पूर्ण स्वास्थ्य और ज्योति" विषय पर हुए।

इस सप्ताह वर्षा हो जाने से ऋतु सुहावनी रही, गर्मी पहले से कम हो गई है। नहर का पानी दिन प्रतिदिन मलिन होता जा रहा है अतः नहर में नहाने वाले तैराकों की संख्या कम होती जा रही है।

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा—

गुरुकुलीय राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के निर्वाचन मंत्री श्री ब्र० धर्मेन्द्र सूचित करते हैं कि प्रधान मंत्री ब्र० रामदेव १४ होंगे और विरोधी दल के नेता श्री सत्यव्रत १५. रहेंगे। हिन्दू महासभा की ओर से चुनाव सम्बन्धी विप्रतिपत्तियों के लिए एक ३ सदस्यों की निष्पक्ष सभा बनाई गई थी सभा ने यद्यपि अपना निर्णय पूर्णरूप से नहीं दिया है फिर भी उसने भी इस बात की घोषणा कर दी है कि प्रधान मंत्री ब्र० रामदेव ही रहेंगें। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा की बैठक १२, १३, १४ जुलाई को होगी। इस सब कार्य वाही के लिए हम ब्र० धर्मेन्द्र को हार्दिक बधाई देते है जिन्होंने बड़ी योग्यता और उत्तमता के साथ अपने कार्य को बिना विघ्नबाधाओं के सपन्न किया, अभी सभा की बैठक का कार्य भार भी आप के ही कन्धों पर है आशा है उसे भी आप इसी प्रकार योग्यता पूर्वक निभायेगें।

मन्त्री, साहित्यपरिषद्

पाश्चात्य व्यायाम शिक्षक श्री विभूति चरणबनर्जी, अपने एक बंगाली साथी को लेकर कैलाश यात्रा पर चल पड़े हैं। हम उनकी यात्रा का निर्विघ्न समाप्ति के लिए शुभ कामना करते हैं।

गुरुकुल कमालिया

१—गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर ६ नये ब्र० प्रविष्ट किये गये थे जो ब्र० समय पर न पहुँच सके थे उनके प्रवेश के लिये पत्र व्यवहार किया जा रहा है।

२—आडीटर साहब ने १९९६ सम्वत् का हिसाब आडिट करके अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि हिसाब किताब बिल्कुल ठीक साफ व सुथरा पाया गया है।

३—इसवर्ष गुरुकुल कमालिया के ३ ब्रह्मचारियों ने ९वीं १० वीं श्रेणी की एक वर्षमें और एक ब्र०ने केवल ६मासमें तैयार कर के पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रीकुलेशन की परीक्षा दी थी एक ब्र० ६२४ नम्बर हासिल करके I डिवीजन में वा शेष २ ब्र० अच्छे नम्बर हासिल करके II डिवीजन में पास हुये है। एक ब्र० गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में भेजा गया था जिसने अच्छे नम्बर हासिल करके नवीं श्रेणी में प्रवेश कर लिया है।

४ ब्रह्मचारियों को गतका, लाठी, लेजम आदि खेलें लाजमी तौर पर करवाई जाती है और सब ब्र० हर प्रकार से राजी हैं।

सुखदयाल, मुख्याधिष्ठाता।
गुरुकुल कमालिया [लायलपुर]

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ८ आषाढ़ १९९७; २१ जून १९४०   [संख्या १०

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[लेखक दिनेश त्रिवेदी, Sanitary Inspector सूरत; अनुवादक, श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

गुरुकुल प्रणाली: एक त्रिकालाबाधित सत्य

आर्य संस्कृति पर प्रबलतम आघात पहुंचा कर भारतीय अन्तःकरण को गुलाम बनाने के लिये मैकाले की शिक्षा पद्धति एक विषैला इन्जेक्शन थी, इस इन्जेक्शन के असर को उतारने के लिये Antidote के रूप में अगर किसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने जन्म लिया तो वह एकमात्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी। किसी प्रजा की संस्कृति का रक्षा करने के लिये जिन बातों की आवश्यकता होती है वे सब इस में थीं और आज भी हैं। इस प्रणाली को मूर्तरूप महर्षि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दिया और अब भी अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षणशास्त्रियों को गुरुकुल में से अवश्य कुछ न कुछ जानने योग्य बातें मिलती ही रहती हैं। मैंने अब से ५ वर्ष पूर्व 'आर्यप्रकाश' (गुजरात प्रान्त का एक आर्यसमाजी पत्र) के अग्रलेखों में अनेक बार अपना यह विचार प्रकट किया था कि आर्यसमाज के आर्यसंस्कृति के रक्षण के लिये तथा भावी आर्यराष्ट्र की स्थापना के लिये गुरुकुलों की अत्यन्त जरूरत है, परन्तु कई परिस्थितियां ऐसी उत्पन्न हो गई हैं कि अनेक लोग ऐसी आशंका कर रहे हैं कि गुरुकुल रूपी दीपक अब टिमटिमाने लगे हैं और कालान्तर में इनकी ज्योति सर्वथा लुप्त हो जायगी। सत्य त्रिकालाबाधित होता है, वैदिक धर्म के सिद्धान्त शाश्वत हैं, इनमें कभी भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता यही वैदिक धर्म की विशेषता है। हज़ारों वर्ष के निरन्तर चिन्तन के पश्चात् निःस्वार्थ तथा तपस्वी ऋषियों ने बालक को "द्विज" बनाने के लिए जिस शिक्षा प्रणाली की मौलिक खोज की है वह जितनी उपयोगी भूतकाल में थी उतनी ही उपयोगी आज भी है और आगे भी रहेगी। जिस शिक्षा प्रणाली की वेदी पर हज़ारों श्रद्धालु माता-पिता अब तक अपने बच्चों को अर्पित करते रहे हैं इस शिक्षा प्रणाली की निष्फलता की आशङ्का से हृदय विक्षुब्ध हो जाता है। जिस प्रणाली ने भारत के ब्राह्मण को 'ऋषि' बनाया, जिस प्रणाली ने सुदामा और कृष्ण के समान मित्र पैदा किए, जिस प्रणाली ने अद्वितीय धनुर्धर अर्जुन को उत्पन्न किया और जिस प्रणाली में दीक्षित होकर वेद की ऋचाओं के ऋषि आविर्भूत हुए वह प्रणाली भारतवर्ष के लिए आज भी उतनी ही उपयोगी है, इतना ही नहीं परन्तु इस समय तो यह अकेली ही प्रणाली उपयोगी साबित हो सकती है।

तथापि प्रश्न होता है कि आज गुरुकुलों में पहले के समान जन साधारण की श्रद्धा और रुचि क्यों नहीं रही? गुरुकुल प्रणाली के परिणाम रूप स्नातक और स्नातिकाओं के समाज के प्रति जो कर्तव्य थे वे उन्होंने पूरी तरह से नहीं निभाए और गुरुकुलों की संख्या किन्हीं कारणों से बढ़ने के स्थान पर लगातार घटती जा रही है। इसका क्या कारण है? गुरुकुल की स्थापना जिस उद्देश्य से हुई थी वह उद्देश्य क्या युग धर्म के अनुकूल था? गुरुकुल की जो आवाज़ वर्षों से विधर्मी तथा विदेशियों के दिल में बेचैनी पैदा कर रही थी वह अब धीमी क्यों पड़ती जा रही है। और स्वयम् आर्य समाज ही गुरुकुलों के प्रति लापरवाह अश्रद्धालु तथा निरुत्साह क्यों दिखाई देता है? दीये में जलने की इच्छा है, बत्ती भी मौजूद है, तेल के लिए पात्र भी विद्यमान है तो फिर तेल भरने का काम क्यों रुका हुआ है? पात्र अगर ठीक न हो तो बदलना चाहिए, यदि बत्ती ख़तम हो गई हो तो नई बत्ती डालनी चाहिए। परन्तु दीये में भरने का 'तेल' तो अक्षय पात्र में भरा पड़ा है फिर भी सदा जलता रहने वाला यह दीपक थोड़ी देर प्रकाश करके हमेशा के लिये क्यों बुझ जाए? ये बातें सोचते हुए आर्य-हृदय सहसा कांप उठता है। जिस शस्यश्यामल नन्दन-वन की आशा और प्रतीक्षा चिरकाल से थी उसे उजड़ते हुए देखने का अवसर मिले इसकी अपेक्षा मौत ज्यादा अच्छी मालूम देती है।

वर्तमान प्रचलित शिक्षा प्रणाली तथा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली दोनों का लेखक को निजी अनुभव है। दोनों

पद्धतियों के गुण, दोषों को एक तटस्थ विचारक की दृष्टि से देखते हुये यदि इस लेख में कुछ कटु-सत्यों का वर्णन करना पड़े तो इसके आधार में शुभ हेतु ही समझना चाहिए।

यह बात तो सिद्ध समझनी चाहिए कि भारत के उद्धार के लिए एक ही शिक्षा प्रणाली है और वही रहनी चाहिए। यह है—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली। परन्तु क्रियात्मक रूप देने के लिए इस प्रणाली के विभिन्न रूप हो सकते हैं इस में जरा भी सन्देह नहीं। उजाला करने वाला दीपक है-यह सच है। दीपक को जलता रखने के लिए तेल बिजली आदि किसी प्रकार की शक्ति आवश्यक है यह सच है। उजाले की आवश्यकता भी सिद्ध ही है। इन तीनों बातों में दो मत नहीं हो सकते। परन्तु इस उजाले को कहां, किस प्रकार और किन साधनों से प्रगट करना चाहिए? यह निर्धारित करने का काम तात्कालिक शिक्षण शास्त्रियों का है। और यदि सच्चे शिक्षण शास्त्रियों के हाथ में गुरुकुलों का नियमन तथा सञ्चालन नहीं होगा तो उचित परिवर्तनों के अभाव में विशाल तथा उपयोगी संस्थाओं के अन्तर्धान होने में देर नहीं लगेगी। समाज के द्वारा दिया गया दान तथा मा बाप के द्वारा सहे गए वियोग के कष्ट इन सबका उचित बदला देने में यदि संस्था के सञ्चालक हिच-किचायेंगे तो भावी प्रजा इसके लिये उन्हें आशीर्वाद देगी या शाप? इस बात का निर्णय भविष्य करेगा। आत्मा शरीर बदलता है-इसी प्रकार शिक्षा प्रणाली के लिये संस्था की रूपरेखा में परिवर्तन हो तो क्या बड़ी बात है? लेकिन इस प्रश्न पर विचार करने के लिये क्या कभी गुरुकुल-प्रेमियों ने गम्भीरता से बैठ कर मन्त्रणा की है? मैंने जब गुरुकुल के संगठन की चर्चा खासकर गुजरात के विषय में शुरू की थी तब जिस भविष्य की ओर इशारा किया था वह आज सच निकल रहा है। गुजरात की पुण्यभूमि में महर्षि दयानन्द, कृष्ण-गांधी के महागुजरात में तीन तीन गुरुकुल-सूर्यों का उदय हुआ किन्तु आज क्या हालत है? सौराष्ट्र (काठियावाड़) में महर्षि दयानन्द के स्मारक रूप सोनगढ़ गुरुकुल की उत्तरोत्तर प्रगति को देखकर तटस्थ आर्य विद्वान् गर्व का अनुभव कर रहे थे। वहां के आदर्श शिक्षण तथा उत्तम जलवायु के परिणाम स्वरूप तेजस्वी बालकों की एक फौज प्रगट हुई और दूसरी के प्रगट होने की तैयारी थी इतने में ही गुरुकुल हाईस्कूल बन रहा है इस तरह के समाचार कानों में टकराने लगे। जिस गुरुकुल के विषय में स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी, कविवर न्हानालाल तथा अन्य विद्वान् विचारक उज्वल भविष्य के स्वप्न ले रहे थे, जिस गुरुकुल के उपस्नातकों के गम्भीर लेखों और भाषणों से गुजरात को यह आशा थी कि उसमें प्रचारक निकलेंगे, जिस गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने हरिपुरा कांग्रेस में स्वयं सेवक बनकर नियन्त्रण (Discipline) तथा कुशलता की परीक्षा पास की थी वह गुरुकुल आज गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को तिलाञ्जलि दे-यह समझ में नहीं आता। अफ्रीका तथा अन्य दूरदेशों में गए हुए भारतीयों के बालक जब शिक्षण तथा पालन पोषण के अभाव में इधर उधर रुल रहे थे उस समय सोनगढ़ गुरुकुल के प्राण-स्वरूप श्री चतुरभाई जी तथा उनका सहकारी वर्ग और गुरुकुल रूपी राष्ट्रिय संस्था अगर न होती तो उन्हें कौन आश्रय देता देता? यदि उस समय सोनगढ़ गुरुकुल हाईस्कूल होता तो क्या देश के बालक इसका आसरा ले सकते थे? सञ्चालकों की कितनी ही शुभ इच्छाएं क्यों न होतीं परन्तु सरकारी संस्था होने के कारण बालकों को आश्रय देने का पुण्य कार्य इस संस्था के द्वारा न हो पाता। इसके अतिरिक्त आज हाईस्कूल का कोई विशेषता नहीं है। विशेषता और विलक्षणता तो गुरुकुलों का है और गुरुकुलों की ही रहेगी। परन्तु यह सब कैसे हुआ? कौन से ऐसे कारण हैं जिनसे गुरुकुल के आधारस्तम्भ हिल गए और अब किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए, इन सब बातों पर मैं अपनी बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार अगले अंक में आलोचना करूंगा।

(असमाप्त)

हैदराबाद और आर्यसमाज

(ले०—श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार)

हैदराबाद में सत्याग्रह आन्दोलन से बड़ी भारी जागृति आ चुकी है। इस रियासत में राजनैतिक बातों पर बोलना मना है। यहां मुसलमानों को बहुत अधिक आजादी है। वे हिन्दुओं के बरखिलाफ कुछ भी लिखें या बोलें, कोई रोकता नहीं है। श्रीयुत बहादुर यारजंग एक सरकारी कर्मचारी हैं। आपने एक भाषण दिया था-जो हैदराबाद के अखबारों में प्रकाशित भी हुआ था। उसमें आपने सत्याग्रह आन्दोलन का बहुत बुरा भला कहा है। आप की राय में इस सत्याग्रह से रियासत की २०० वर्ष का यश मिट्टी में मिल गया है। आप सरकारी कर्मचारी होने पर भी मिनिस्ट्री को धमकाते हैं। क्योंकि आपका ख्याल है कि सत्याग्रह संग्राम मिनिस्ट्री के कारण ही सफल हो सका था। आप फिर सत्याग्रह होने पर गदर मच जाने की बात कहते हैं। साथ ही कहते हैं कि 'मन्त्री मण्डल' भी सम्भल जाय। इस प्रकार की खुली धमकी दी जाती है। परन्तु मुसलमान होने से कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।

इस भाषण के खिलाफ पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने सरकार का ध्यान खींचा। इस विषय पर आर्य समाज शालीबण्डा (हैदराबाद शहर) के उत्सव पर हाजिर जनता करीब १० हजार एवं आर्यसमाज सिकन्दराबाद के उत्सव पर हाजिर १८ हजार जनता के सामने पण्डित जी ने प्रकाश डाला। पण्डित जी ने अपने भाषण का आधार इस नारे से जाहिर किया—"उस्मान अली जिन्दाबाद, गुण्डा-शाही मुर्दाबाद।

पण्डित जी ने बताया कि जब कोई आदमी-दान-सहायता-न्याय आदि अच्छे काम करता है तब कोई न कोई बहकाने वाला मिल ही जाता है। श्रीयुत् बहादुर यारजंग इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। वे राजा को बहकाकर प्रजा से दूर कर देना चाहते हैं। परन्तु वे ऐसा कर न

सकेंगे। परन्तु नावानदोस्त से राजालोग नुकसान उठा लिया करते हैं। परन्तु हमारे राजा ने अपने हाथ न्याय के रंग से रंगे हैं। इसी उदारता पर उन का वंश २०० वर्षों से शासन करता रहा है। इस वंश ने बता दिया है, कि राजा हिन्दु तथा मुसलमान कुछ नहीं होता। वह न्याय (इन्साफ) का प्रतिनिधि होता है। इसी अपने वंश की शान को सत्याग्रह में वर्तमान राजा ने निभाया है। केवल 'देर' ही सत्याग्रह का कारण साबित हुआ, 'अन्धेर' नहीं। इस भाषण का हिन्दु तथा मुसलमान दोनों पर बहुत गहरा असर पड़ा। आपने बहादुर यारजंग जैसे लोगों का पैदाइश-वर्तमान यूरोपीययुद्ध--तथा हिन्दु-मुस्लिम दंगों का कारण 'लेबिलपरस्ती' बताया।

हिन्दु समझता है-कि 'हिन्दु' लेबिल वाले सब अच्छे हैं-मुसलमान सब गन्दे। इसी प्रकार मुसलमान-'सब मुसलमान अच्छे और हिन्दु सब बुरे' इस प्रकार समझ लेता है। यही बात जर्मन तथा अंग्रेज 'लेबल' के साथ है। इसके कारण दोनों दल अपने सर्वोत्तम व्यक्तियों को (जिनको Cream of the Nation चाहिये) लड़ा कर नष्ट कर डालते हैं। इस अवसर पर बदमाश गुण्डे-आलसी डरपोक सब मौज करते हैं। आज हालत यह है कि-शराब-कोकीन- आदि के विक्रेता सब देशों के संगठित हैं-चाहे वे जर्मन हों-चाहे अंग्रेज।

इस प्रकार अच्छे आदमी लड़ते हैं-बुरे आदमी मौज करते हैं। इस गलती का इलाज करना चाहिये। अर्थात् दोनों दलों के श्रेष्ठ पुरुष तथा देवता इन बदमाशों का नाश करें। नहीं, तो, देवता नष्ट होते और असुर बढ़ते जावेंगे। इस प्रकार देव नष्ट होते रहे, तो, असुर ही बच जावेंगे। परन्तु हम 'गुण' की बजाय 'लेबल' का ख्याल अधिक करते हैं। अतः मर्ज बढ़ता जाता है। इसी लेबल परस्ती के कारण हिन्दु मुसलमान भी झगड़ जाते हैं। यदि दोनों प्रेम से एक दूसरे का हृदय जीत कर धर्म प्रचार करें-तो-चाहे-दोनों 'इन्सान' अवश्य बन जावेंगे। कई अंग्रेज श्रोता भी मौजूद थे। सब पर भाषण का समान प्रभाव पड़ा।

इस भाषण की सफलता से वेद और—आर्यसमाज की आवश्यकता स्वतः जाहिर है। आर्यसमाज ने तो अपने जन्म काल से ही-वेद के वैज्ञानिक धार्मिक असूलों द्वारा साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का खण्डन जारी रखा है। जो स्वाभाविक और आवश्यक है। आर्य समाज का सम्बन्ध धर्म से है। देश की नीति से धर्म की नीति सदा व्यापक होती है। क्योंकि देश तथा धर्म, राजा और ईश्वर, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सदा व्यापकता की दृष्टि से पहले पर दूसरे को होने का मौका देते हैं। इस भाषण ने इस लिए राष्ट्रीय एवं साम्प्रदायिक दोनों मनोवृत्तियों की तुच्छता को दिखा कर धर्म की आवश्यकता अनुभव करने को बाधित किया। हिन्दु-मुसलमान तथा अंग्रेज तीनों प्रकार के श्रोता मौजूद थे सभी को व्याख्यान की इस विशेषता ने मुग्ध कर लिया था। इस प्रकार हैदराबादी सांप्रदायिक मनोवृत्ति का इलाज आर्यसमाज कितना – वैज्ञानिक और आवश्यक है यह स्वतः दिल में विश्वास हो जाता है। ईश्वर ने आर्यसमाज को जिस सत्याग्रह का अवसर दिया वह साम्प्रदायिक लोगों के हृदय को जीतकर स्थायी और दृढ़ प्रभाव पैदा करने में लगा है। तब श्रीयुत मैयदहसन का आर्य समाज को क़ियामत में बन्द कर देने का विचार कैसे पनप—सकता है। विज्ञान सत्य तथा धर्म में जब भेद ही न रहा--तो- विजय में देर--कितनी लग सकती है? यह विश्वास रख कर आर्यसमाज सदा निर्भय रहा है।

पुस्तक समालोचना

आस्तिक विचार-लेखक पं० देव प्रकाश जी, मूल्य १।) प्रकाशक-भक्त मुकुन्द लाल; धर्मार्थ ट्रस्ट, चौक पासियां अमृतसर।

आजकल चारों ओर ईश्वर के विरुद्ध जिहाद बोला जा रहा है और तर्क तथा विज्ञान के आधार पर अधिकांश लोग परमेश्वर की सत्ता में सन्देह करने लगे हैं। ऐसे समय में इस प्रकार के ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है जो तार्किक प्रमाण तथा वैज्ञानिक युक्तियों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने वाले हों।

यों तो ईश्वर श्रद्धा का विषय है तर्क का नहीं। प्राचीन ऋषि मुनियों ने तो कहा था 'तर्कोऽप्रतिष्ठः'। पर जब दूसरा पक्ष तर्क द्वारा ईश्वर का खण्डन करता है तो तर्क द्वारा उसका मण्डन करना भी आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक का यही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

वेद, ब्राह्मण और उपनिषदें तो ईश्वर को स्वतः प्रमाण मानकर चली हैं। किसी चीज को सिद्ध करने की आवश्यकता तभी पड़ता है जब उसमें सन्देह प्रकट किया जा रहा हो। उन ऋषियों के लिए तो ईश्वर वैसी ही स्वयं-सिद्ध वस्तु थी जैसे एक गणित के लिये यह बात कि अंश अंशी से छोटा होता है। चार्वाकों और बौद्धों ने सब से पहले ईश्वर की सत्ता से इन्कार किया। चार्वाकों की युक्तियां मनोरंजक हैं तथा बौद्धों की विचारपूर्ण। पंडितों ने बौद्धों की युक्तियों का बड़े विस्तार से खण्डन किया। इन पंडितों में उदयनाचार्य का नाम अमर है। उदयन ने 'कुसुमाञ्जलि' में ईश्वर सिद्धि का साधक बाधक प्रमाणों से पुष्ट किया है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महाशय ने उदयन की युक्ति परम्परा के अनुसार ईश्वर को प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाणों से सिद्ध किया है। साथ में अन्य भारतीय दर्शनों ने जो दूसरे प्रमाण दिये उनको भी साथ में दिया गया है। अन्त में ईश्वर के सम्बन्ध में जो नाना शंकायें चित्त में उठती रहती हैं- उनका समाधान किया गया है।

शब्द प्रमाण की बड़ी महिमा है। प्राचीन लोग वेद को प्रमाण मानकर-चलते थे पर समय के फेर से आज-कल हमारे वेद पश्चिमी विद्वानों के ग्रन्थ हो गये हैं। इस पुस्तक के अन्त में लेखक ने पाश्चात्य लेखकों के ईश्वरसिद्धि-विषयक वाक्य तथा प्रमाण देकर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है।

हिन्दी के धार्मिक साहित्य में इस ग्रन्थरत्न की वृद्धि करने वाले लेखक महाशय हिन्दी प्रेमियों के साधुवाद के पात्र हैं।

-पं० हरिदत्त वेदालंकार

गुरुकुल

८ आषाढ़ शुक्रवार १९९७

वेदों में इतिहास

(आचार्य अभयदेव जी)

आर्य समाज लुधियाना के मन्त्री महाशय बाबूराम जी गुप्त लिखते हैं कि लाहौर के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'प्रताप' में 'प्राचीन हिन्दुओं का इतिहास' शीर्षक से जो एक लेख माला निकल रही है उस में वेदों पर आक्षेप किये गये हैं। प्रताप के २६ मई के साप्ताहिक संस्करण में लेखक ने लिखा है, "मैं पिछले मज़मून में बता चुका हूं कि वैदिक ज़माने का आगाज़ (प्रारम्भ) तकरीबन ७ या ८ हज़ार वर्ष मसीह से पहले हुआ।" फिर लिखा है, "पंजाब और सिन्ध में पहले पहल औशीनर ने अपनी राजधानी कायम की। औशीनर का वर्णन ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ५९ और १७९ में आता है। इसी प्रकार राजा शिवि का वर्णन भी ऋग्वेद के दशम मण्डल सूक्त १७९ में किया गया है। इसी लेख में मद्र राजाओं का वर्णन भी ऋग्वेद में बहुत स्थानों पर आना बतलाया गया है। इसके लिये लेखक ने मंडल १ सूक्त ६०, १५४, १८७, मंडल २ सूक्त ३१, मंडल ३ सूक्त १ और ३६, मंडल ४ सूक्त ३४, ३८, ४२ में आना बताया है। इसी प्रकार ६ जून के साप्ताहिक संस्करण में राजा मान्धाता का इतिहास ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११२ और मंडल ८ सूक्त १३९ में वर्णन किया गया है। यह लेख माला लाहौर के प्रोफेसर गुलशनराय जी की ओर से निकल रही है।"

यह सब बताने के बाद मन्त्री जी लिखते हैं, "वेदों पर इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं प्रतीत होते। मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषय में गुरुकुल पत्र के कालमों में अपनी सम्मति प्रकट करने की कृपा करें।"

इस विषय पर अपनी सम्मति प्रकट करना कुछ कठिन नहीं है क्यों कि वेद का जो कुछ मेरा स्वाध्याय है उसके अनुसार मुझे इस में कोई संदेह नहीं है कि वेद में ऐसा कोई इतिहास नहीं है जिसे कि हम आज कल इतिहास कहते हैं। वेदों में जो मनुष्यों व स्थान आदियों के व्यक्ति वाचक नाम आते दीखते हैं उनसे जो इतिहास प्रगट होता दीखता है यह वह इतिहास है जिसे कि निरुक्त में नित्य इतिहास कर के कहा गया है। बहुत से अन्य वेद का स्वाध्याय करने वाले व्यक्तियों की तरह मेरा यह विश्वास है कि वेदों में आये ऐसे सब नाम यौगिक अर्थों में हैं, रूढ़ अर्थों में नहीं। मेरी सम्मति में ऐसा बिना माने वेदों की सच्ची और सुसङ्गत व्याख्या की ही नहीं जा सकती। पर वेद के सब ऐसे स्थलों का स्पष्टी करण करना आसान नहीं है। वेद में इतिहास मानने वाले लोग ऐसे जिन स्थलों का वर्णन करते हैं उन स्थलों के अनुसार उन की युक्तियों का खण्डन करते हुए उनकी ठीक व्याख्या या स्पष्टीकरण करने के लिये काफी विचार और अध्ययन की आवश्यकता है।

मेरा ख्याल है कि श्री मान्य प्रो० गुलशनराय जी ने वेद में इतिहाससम्बन्धी जो ये बातें लिखी हैं वे सम्भवतः किन्हीं पश्चिमी विद्वानों की पुस्तकों के आधार पर लिखी हैं। क्योंकि पश्चिमी विद्वानों ने और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय लोगों ने अपने विकासवाद तथा अन्य कई ऐसे वादों से प्रभावित बल्कि विकृत हुए दृष्टि कोण और मन के कारण ऐसी बातें बहुत कुछ लिखी हैं। और प्रायः सब अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग उन्हीं विचारों से ही अपने आपको वेद के संबन्ध में ज्ञानवान् बनाते और मानते हैं। मैं पाठकों को यह भी सूचित करदूं कि पश्चिमीय विद्वानों के इन वादों का पूरे विद्वत्ता पूर्ण ढङ्ग से जवाब मैंने जैसा श्री अरविन्द की Secret of veda नामक लेखमाला में पढ़ा है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं पढ़ा। मैं श्री अरविन्द की उस लेख माला का हिन्दी में अनुवाद भी कर रहा हूं। मैं आशा करता हूं कि उसका अनुवाद हो जाने पर हिन्दीभाषाभाषी विद्वानों को वेद के सम्बन्ध में बहुत अधिक प्रकाश मिलेगा और विकासवाद तथा आर्यों और द्राविड़ों की लड़ाई आदि भ्रम पूर्ण वादों को उखाड़ डालने में बड़ी सहायता मिलेगी। पर मैं अंग्रेजी पढ़े लिखे और वेद का रहस्य जानना चाहने वाले सत्यजिज्ञासु विद्वान् पुरुषों को कहना चाहता हूं कि वे यदि संभव हो तो श्री अरविन्द की Secet of veda लेख माला का अध्ययन करें।

मैं तो फारसी लिपि नहीं के बराबर जानता हूं, इस लिये प्रताप अखबार को स्वयं नहीं पढ़ सकता। पर यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं यत्न करूंगा कि गुरुकुल के मेरे अन्य मित्रों और विद्वानों की सहायता से प्रोफेसर गुलशनराय जी के ऐसे अंशों पर आर्य समाज की दृष्टि से ठीक प्रकाश डाला जा सके। यथा संभव गुरुकुल पत्र में इस सम्बन्ध में कुछ संक्षिप्त लेख निकलेंगे ऐसी पाठक आशा कर सकते हैं। पर लुधियाना समाज के मंत्री जी का पत्र प्रारंभ में कुछ विस्तार से दे देने का प्रयोजन यह है कि अन्य वेद के स्वाध्याय शील भाइयों का भी उन स्थलों की तरफ ध्यान आकृष्ट हो जाय और वे भी अपने लिये तथा अन्य जिज्ञासुओं के लिये भी इस विषय में अपने विचार स्थिर कर सकें। सत्य को खोजने, जानने और मानने के लिये हम सब को सदा उद्यत रहना चाहिये।

महर्षि कण्व के आश्रम में

महाकवि कालिदास का जगत् प्रसिद्ध 'शकुन्तला' नाटक आज से सात वर्ष पूर्व साहित्याचार्य के कोर्स में पढ़ा था, तभी से इस पुनीत आश्रम को देखने की अत्यन्त लालसा हृदय में थी। यद्यपि यह आश्रम हरिद्वार से पूर्वोत्तर दिशा में, सिर्फ १२ मील के फासले पर है तथापि गुंथे हुए सघन वनों की अधिकता, हिंस्र पशुओं की बहुलता

और अच्छे रास्ते के अभाव के कारण ग्रामलोग उधर जाने का उत्साह नहीं करते । हमारा निश्चय, क्योंकि कई दिन पूर्व से ही पक्का हो चुका था और वन्य-जन्तुओं के पैंतरों से भी हम कुछ२ परिचित होगए थे इस लिये एक दिन खूब सबेरे उठकर प्रस्थान किया । ग्रीष्म ऋतु में दिन भर के पैदल सफर के लिये साथियों का मिलना मुश्किल होता है इस कारण अकेले ही गन्तव्य स्थान की ओर पग बढ़ाया । गुरुकुल कांगड़ी से ३ मील चलने के बाद गंगा को पार करके हिमालय के वनों में प्रविष्ट हुए । वनों की स्निग्धता, गम्भीरता और नीरवता का यदि पूरा२अनुभव प्राप्त करना हो तो वन-वीथियों पर एकाकी ही जाना चाहिये। गंगा की घाटियों के वनों, पर्वतों, नालों को लांघते हुए सिद्धाश्रम के आगे निकल चले । जंगल अधिकाधिक घना होता जा रहा था । झाड़ियों, झुरमुटों, वृक्षों के पीछे से अकस्मात् आ पड़ने वाला अप्रत्याशित भय हमारी ओर घूर२ कर ताक रहा था । कुछ२ देर बाद सुनाई पड़ने वाला हिंस्र-जीवों का प्रचण्ड नाद पार्वत्य चट्टानों को कम्पित करता था । झींगुरों के 'चों-चीं' शब्द के साथ भोले-भाले हरिणों की आत्मायें कम्पित हो रही थीं । रास्ते के बाईं ओर के नाले में बारहसिंगे की अधखायी लाश, अपने खुले हुए मुंह से विगत रात्रि को हुए शेर के अत्याचार की कष्ट-कथा कह रही थी । शायद जंगल का न्याय दर्शन निर्बलों को सता कर ही चरितार्थ होता है । चारों ओर के ऊंचे-ऊंचे पर्वत इस भय-राज्य को सुरक्षित रखने वाले सन्तरियों के समान सतर्क खड़े पहरा दे रहे थे । श्वापदों द्वारा मारे जाने वाले मृगों का आर्तनाद इसी घाटी के घेरे में गूंज-गूंज कर शान्त हो जाता था ।

इस विभीषिका में से होकर हम आगे बढ़े । जंगल इतना घना होगया कि कई जगह झुक २ कर और लेट२ कर आगे बढ़ना पड़ा । चलते हुए न सिर्फ आगे-पीछे और दायें-बायें देखना पड़ता था बल्कि वृक्षों के ऊपर भी ध्यान देना पड़ता था-कहीं वृक्ष की डाल से अजगर लिपटा न बैठा हो और हमें देखते ही शरीर पर आ कूदे और लिपट जाय । चीतों की भी आदत इसी प्रकार वृक्ष परसे कूदकर झपट्टा मारने की होती है और कुछदिन पूर्व १५ फीट ऊंची डाल पर बैठे हुए एक चीते से मैं बाल २ बच गया था, इसी लिये बहुत सम्भल कर चलना पड़ रहा था ।

हाथी का आक्रमण

इस दुर्गम घाटी को पार करने में एक घंटा से अधिक समय व्यतीत हुआ । जिस रास्ते पर हम जा रहे थे अत्यन्त संकीर्ण था और वह रीछों, शेरों, बघेरों के पग-चिन्हों से भरा हुआ था । रास्ते पर मोटा वृक्ष स्वतः पतित देखकर हमें आश्चर्य हुआ । बिना किसी आंधी के ही यह वृक्ष क्यों गिर पड़ा यह बात सोचते हुए जब हम आगे बढ़ रहे थे कि इतने में पर्वताकार हाथी लताओं को तोड़ता, झाड़ियों को रौंदता हुआ हम पर आ टूटा । टहनियों और टूटते सरकण्डों के शब्द से हमने पहिचान लिया कि विशाल 'गेंडर' के समान यह कौनसा जीव है । हाथियों के झुंडों से जंगलों में अनेक बार पाला पड़ चुका था इस लिये मनमें कुछ विशेष घबराहट नहीं आई । उसे एक छोटा सा चकमा देकर हमने पहाड़की शरणली और अपने मार्गपर अग्रसर हुए । तीन मील जंगलों में भटकते हुए'खारा'पहुंचे । खारा जंगलात की चौकी है इसके आस पास का वन हिंस्र जीवों के लिये प्रसिद्ध है । एक रेस्ट-हाऊस भी है जिस में प्रायः शिकार की घात में आये हुए फौजी अफसर आकर ठहरा करते हैं । यहां तक हम १३ मील आ चुके थे ।

लाल ढांग

खारा में १ घंटा विश्राम करके हम लाल ढांग की ओर रवाना हुए । यह स्थान यहां से ५ मील की दूरी पर है । ऊंचे २ वृक्षों वाले जंगलों के कारण रास्ता सुहावना है । हरिणों की मधु मिश्रित ध्वनियों को सुनते हुए आगे बढ़े । दूर धातकी-पुष्प के गुच्छों से पर्वत लाल दिखलाई पड़ रहा था । अनेक वृक्षों के पत्ते भी लाली लिए हुए थे । शायद-इसी लाल पर्वत का किनारा होने के कारण स्थान का नाम लाल ढांग पड़ा है । यह एक छोटी सी बस्ती है । जंगल का रेंजर भी यहां रहता है । एक छोटा हस्पताल भी है ।

चौकी घाटा

शाम के ४ बजे लाल ढांग में कुछ हलका खाना खा कर आगे १३ मील दूर चौकी घाटा जाने की इच्छा से प्रस्थान किया किन्तु रेंजर के सौजन्य से ११ मील के लिये मोटर की सवारी मिल गई । धन्यवाद करते हुए हम तेजी से आगे बढ़े । दो मील तक मोटर कभी पथरीले नालों को पार करती, और कभी विषम रास्तों पर हमें उछालती रही । इसके बाद का जंगल खूब समतल था । आठ मील लम्बा और ६ मील चौड़ा । मोटर ४० मील की स्पीड से चली । सांयकाल का समय होने के कारण वनों की ठण्डी हवा बड़ी आनन्द दायक प्रतीत हुई । मोटर की आवाज सुनकर दाहिनी ओर के जंगलों से बारह-सिंघों और हरिणों का एक झुण्ड निकल कर सीधा सड़क पर आगे की ओर भाग चला । हरिण आगे आगे और मोटर पीछे पीछे । दौड़ की अच्छी प्रतियोगिता थी । उस समय मुझे हठात् हरिण का पीछा करने वाले दुष्यन्त की याद आई । कुछ देर न हो अपना खेल समाप्त कर मृग मण्डली मुड़ी और छलांगें भरती हुई बाईं ओर के जंगल में अदृश्य हो गई । ११ मील समाप्त होने पर हम 'हरूखाला' स्थान पर उतर पड़े । यहां से चौकी घाटा दो मील रह जाता है । मालिन नदी से निकला हुआ एक छोटा सा नाला इस इलाके में ४-५ मील तक सिंचाई करता है । उसी स्रोत के सहारे हम ऊपर की ओर चले । गुरुकुल-कांगड़ी से चलकर हमने बड़े २ चार जंगलों को पार किया था और अब हम मालिन नदी के ऊंचे किनारे पर खड़े थे । सरिता की शीतल-तरंगों को छू कर बहने वाली हवाओं ने स्वागत किया । दूर दूर तक हरे-भरे कुंजों का वन था जिन में पक्षी सायंकालीन गीत गा रहे थे । नदी के जल में पक्षी किलोल कर रहे थे ।

महर्षि कण्व का आश्रम

मालिन नदी के बांये किनारे के सघन-कुञ्ज वनों में कण्व ऋषि का आश्रम बताया जाता है, यद्यपि अब आश्रम का कोई चिन्ह नहीं मिलता। सृष्टि के आदि में हिमालय की उपत्यकाओं के इन्हीं आश्रमों ने विश्व में विशुद्ध ज्ञान गंगा बहाई थी जिसके प्रतीक रूप आज हमारे यहां ब्राह्मण, उपनिषद् आरण्यक आदि ग्रन्थ विद्यमान हैं। तब से बहुत सहस्र वर्ष बीत गए। इस बीच अनेकों परिवर्तन आये और गए। अनेक राजा शिकार के लिये इन वनों में आये और इन आश्रमों से आर्य सभ्यता का दिव्य सन्देश सुन कर लौट गए। कहते हैं महाकवि कालिदास भी एक बार अपने आश्रयदाता 'प्रचित मित्र' के साथ शिकार प्रसंग में इन वनों में आये थे। बड़े २ दो जंगलों को पार करने के बाद तीसरे जंगल में राजा की सेना दिशाशून्य होकर भटक गई। भूख और प्यास के कारण सेना में त्राहि मच गई। बड़ी परेशानी उठा कर सेना मालिन नदी के किनारे आई और इन आश्रमों का आतिथ्य प्राप्त कर कृतकृत्य होकर लौटी। शिकार यात्रा की समाप्ति पर यद्यपि कालिदास भी सेना के साथ लौट गए किन्तु यहां की छाप जो कवि के हृदय पर पड़ी, यहां का मूक सन्देश जो कवि के हृदय में गूंजा, वह इतना चिरस्थायी हुआ कि वह कालिदास के काव्यों में किसी न किसी रूप में प्रकट हुए बिना न रह सका। यहां का प्राकृतिक दृश्य भी कवि के 'शकुन्तला' नाटक में ज्यों का त्यों शाब्दिक 'फाटोग्राफ' है।

रात्रि को हमने चौकी घाट के प्रतिष्ठित सज्जन श्री प्रयागदत्त जी और उनके बन्धु क्षमादत्त जी का आतिथ्य ग्रहण किया। आप दोनों आर्य संस्कृति से सुसंस्कृत और उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवक हैं। बड़े प्रेम से हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया और किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं होने दी। इनका आतिथ्यभाव दूर २ तक मशहूर है।

सवेरे खूब प्रातःकाल ही उठ कर हम कण्व ऋषि का आश्रम देखने को निकले। वही मालिन का सुन्दर घेरेदार रास्ता था, हरे भरे कुञ्ज थे, सहकार से माधवीलता लिपटी हुई थी। परभृतिका की कूक में शकुन्तला के विरह दिवस की वही मर्मान्तक वेदना भरी थी। वनज्योत्स्ना ग्रीष्म की लपटों से झुलस गई थी, चमेली कुम्हला गई थी, कदली की हालत शोचनीय थी। आश्रम से सटा हिमालय पर्वत अब भी धीर गम्भीर भाव से पास की भूमि पर छाया किए हुए खड़ा था। इस आशा से कि शायद पुनः कण्व ऋषि आकर इसे आबाद करें। यहां के वृक्ष, लता, मृग, पशु पक्षी सब उस जमाने के आने की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करते प्रतीत हुए। हमने उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये प्रभु से प्रार्थना की और एक आह के साथ उनसे विदाई ली।

लौटते हुए रास्ते में आर्यों का हज़ारों-लाखों वर्ष पुराना इतिहास याद आने लगा। हृदय में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ। क्या वह पुराना जमाना लौटा कर नहीं लाया जा सकता? हृदय से आवाज़ आई अवश्य। किन्तु इसके लिये बड़े त्याग और तपस्या की आवश्यकता है। सारे राष्ट्र को बड़ी भारी कुर्बानी करनी होगी। अपने अन्दर के मलों को जलाकर शुद्ध होना होगा। स्वार्थ और संकुचित भावना को दूर करना होगा। उसके बाद संसार में जो वातावरण पैदा होगा उसमें शेर और हरिण एक साथ खेलेंगे मानवता की वृद्धि होगी और तब पृथ्वीलोक पर स्वर्ग आबाद होगा।

अपने आतिथ्यकर्ता प्रेमी सज्जनों से विदाई लेकर हम उसी रास्ते से लौट पड़े। फिर वे ही जंगल पार करने पड़े उन्हीं जङ्गलों ने उसी स्थान पर पुनः आक्रमण किया। और हमने भी शान्त भाव से पहाड़ का आश्रय लिया और सोचा कि जब पुराना जमाना लौट आयगा और मनुष्य की ऊंची भावनाओं के सम्पर्क में आकर ये जीव हिंसा-वृत्ति छोड़ कर मित्र बन जायेंगे तब संसार में जो सुख-सौहार्द बढ़ेगा उसकी क्या कल्पना की जा सकती है?

एक भ्रमण कर्ता।

यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त हो ?

[ले०-श्री पं० प्रयागदत्त जी]

हम जितना अधिक अन्तर्मुख होंगे उतना ही हमारे ज्ञान और शक्ति में परिवर्धन होगा। मौन ध्यान करने के लिये अपनी आध्यात्मिक शक्तियों पर पूर्णतया विश्वास करना पड़ता है। उसमें यह समझना आवश्यक होता है कि हम बिना किसी बाह्य शक्ति की सहायता के सिर्फ आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा ही पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। और इससे आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास होने पर हमारी प्रकृति अधिकाधिक अन्तर्मुखी हो जाती है और अन्ततः हम आत्ममात्रनिष्ठ हो जाते हैं। अपने पर पूर्णतया विश्वास ही पूर्णता है, यही साधन भी है और साध्य भी है। अतः मौन के द्वारा जो प्राप्त वस्तु है, वही मौन का प्रयोजक भी है। मौन के द्वारा प्राप्य वस्तु है अपने को पूर्ण समझना, और बिना अपने को पूर्ण समझे हुए मौन हो ही नहीं सकता। किन्तु प्रारम्भ में स्थूल रूप से समझना पर्याप्त है, ध्यान करते २ वह ज्ञान शनैः २ अधिक परिष्कृत होता जाता है। और अन्ततोगत्वा जब वह ज्ञान पूर्ण निःसंशय हो जाता है तब हमें पूर्णता की प्राप्ति होती है। हम किस प्रयोजन से कार्य कर रहे हैं, इसी को समझना समस्त कार्यों का प्रयोजन है। जिस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर हम कार्य करते हैं उसी को जानना उस कार्य का उद्देश्य है। यह क्यों है? यह इस लिये है कि साधन और साध्य भिन्न नहीं हो सकते। हम क्या चाहते हैं? इसको जान लेने मात्र से हमारी इच्छा पूर्ण हो जावेगी। हम किस प्रयोजन से कार्य कर रहे हैं इसको जान लेने मात्र से हमारा वह प्रयोजन सिद्ध हो जावेगा। हम किस स्थिति में रहते हुए कार्य कर रहे हैं सिर्फ उसे जान लेने भर से हमें वह स्थिति प्राप्त हो जावेगी, जिस स्थिति की प्राप्ति के लिये हम वह कार्य कर रहे हैं। ये सब बातें क्यों हैं? इस लिये है कि प्रारम्भ में ही अन्त छिपा हुआ है। सो कैसे? सो इस लिये कि जहां से हम प्रारम्भ कर रहे हैं वह भी तो एक छोर है। और सारी समष्टि में व्यष्टियों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह तो व्यावहारिक दृष्टि से, वस्तुतः तो

समष्टि अखण्ड है। अतः सब से पहले हम अपने कार्य के प्रयोजन को ही पूर्णतया समझने का प्रयत्न करना चाहिये। बस, उस मूल को ही ग्रहण कर हम इस सारी समष्टि को ग्रहण करने में समर्थ हो जावेंगे। जिसको हम आदि समझ कर उससे आगे बढ़ना चाहते हैं, वही अन्त निहित है, अतः उसी को पूर्णतया समझने का यत्न करना चाहिये। हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं, जो कुछ हम स्वभावतः कर रहे हैं वह क्यों कर रहे हैं? सिर्फ इसको समझ लेना ही हमारा कर्त्तव्य है प्रारम्भ को छोड़कर आगे बढ़ना मूर्खता है, क्योंकि जब प्रारम्भ का ही ज्ञान नहीं हुआ, तब उस पर आश्रित अन्य कार्य कैसे हो सकेंगे? और जब प्रारम्भ का ज्ञान हो जावेगा तब उससे सम्बद्ध मध्य और अन्त का स्वयम ज्ञान हो जावेगा। प्रारम्भ अन्त से भिन्न नहीं है, अपितु प्रारम्भिक ज्ञान की स्थिति में प्रतीत होने वाला अन्त का ही स्वरूप है। अतः जब हम उस प्रारम्भ का पूर्णतया ज्ञान लेंगे तब वही अन्त के रूप में परिणत हो जावेगा। यह कैसे? यह इसलिये कि हमारा सारा कार्य उसके प्रारम्भिक रूप का स्पष्टीकरण मात्र होता है। और विश्व चूंकि एक ही है, (चाहे समष्टि मानें या अखण्ड मानें, दोनों तौर से) अतः इस विश्व में आदि, मध्य, अन्त कुछ नहीं। हमतो अपनी कल्पनाओं के आदि, मध्य और अन्त को विश्व में आरोपित करते हैं। अतः हमारा प्रारम्भिक ज्ञान ही अभिव्यक्ति के क्रम से मध्य और अन्त के रूप को धारण करता है। क्योंकि प्रारम्भ में भी हमने आदि के रूप में समष्टि को ही पकड़ा था, व्यष्टि को तो केवल पकड़ा ही नहीं जा सकता, क्योंकि किसी भी व्यष्टि को उठाने पर सारी समष्टि उठती है, जैसे कपड़े के एक छोर को पकड़ने पर सारा कपड़ा उठता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान के मध्य और अन्त को सिवाय उस प्रारम्भिक ज्ञान की क्रमिक अभिव्यक्ति के और क्या समझा जा सकता है? और यदि वह सत्य है तो ज्ञान के प्रारम्भिक रूप के क्रमशः स्पष्टीकरण के द्वारा उसकी अन्तिम स्थिति या पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न बुद्धिमत्ता पूर्ण एवम् उपादेयतम हो सकता है। संसार में हम जो कुछ प्राप्त करते हैं वह सब पूर्व प्राप्त का अभिव्यक्ति-करणमात्र है। अतः हमें प्राप्त का ही अभिव्यक्तिकरण करना चाहिये, इसी से हमें पूर्णता की प्राप्ति हो जावेगी। सांख्य दर्शन का सत्कार्यवाद और अभिव्यक्तिवाद सत्य सिद्धान्त है।

(अपूर्ण)

सूचना

जो संरक्षक महानुभाव अपने ब्रह्मचारियों की फोटो मंगवाना चाहते हों वे अलंकार चित्रशाला गुरुकुल काँगड़ी के पते से २) में तीन फोटो मंगवा सकते हैं।

गुरुकुल समाचार

अजयकुमार ११ श्रेणी अतिसार, बलराज ४ श्रेणी मलेरिया, इन्द्रसेन ३ श्रेणी मम्स, सर्वमित्र ३ श्रेणी मम्स, लोकनाथ ३ श्रेणी मम्स, मोहन चन्द्र ३ श्रेणी मम्स, गिरीशचन्द्र ३ श्रेणी मम्स, देवप्रकाश १ श्रेणी मम्स।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी थे। अब सब स्वस्थ हैं। इस सप्ताह भी गर्मी पर्याप्त रही। अधिकतम १०७ फा० रहा। अब गत दो दिन से बादल हैं। रात्रि को वर्षा भी हुई।

वर्षा के हो जाने से ऋतु में परिवर्तन आ गया है, गर्मी कम हो गई है, सर्वत्र हरियाली ही दृष्टिगोचर होती है।

इस सप्ताह के मान्य अतिथि डाक्टर इन्द्रसेन जी P. H. D. उपाध्याय हिन्दू कालिज देहली के दो व्याख्यान हुए, पहले व्याख्यान का विषय 'यूरोप का युद्ध' था। दूसरे व्याख्यान का विषय 'मानसिक रोगों की चिकित्सा' था। दोनों व्याख्यान ब्रह्मचारियों के लिए उपादेय एवं ज्ञान वर्धक थे। इस सप्ताह एक और व्याख्यान श्री दीनदयालु जी शास्त्री का हुआ। शास्त्री जी ने यूरोप की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए युद्ध के कारण एवं विचारगम्य परिणामों को बतलाया। श्री शास्त्री जी के राजनैतिक विषयों पर अभी और भी व्याख्यान होंगे।

श्री आचार्य स्वामी अभय देव जी गांधी सेवा संघ की बैठक में भाग लेने के लिए वर्धा को चल पड़े हैं। आशा है २६ तारीख तक लौट आवेंगे।

ब्रह्मचारियों ने एक अजगर सांप पकड़ा है, जो पिछले सब सांपों से अधिक भयंकर है। इसकी लम्बाई १३ फीट ४ इञ्च है, तथा भार ३० सेर है। और घेरा १ फुट ३ इञ्च है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ग्रीष्मावकाश के पश्चात् गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ विद्यालय ६ जुलाई १९४०, को प्रातः ७ बजे खुलेगा। धर्मशाला (कांगड़ा) पर्वत पर गये हुये ब्रह्मचारी ५ जुलाई सायंकाल तक गुरुकुल पहुंच जावेंगे। वे सब वहां सकुशल हैं। सबका स्वास्थ्य समाचार तथा तोल १५ जुलाई तक सब संरक्षकों के पास पहुंच जावेगा।

ग्रीष्मावकाश में अवकाश पर घर गये हुये ब्रह्मचारियों को २१ जून को धर्मशाला (कांगड़ा) पहुँच जाना चाहिये ताकि वे पिछले १५ दिन का मुख्य विषयों की पढ़ाई में सम्मिलित हो सकें। यदि वे मार्गव्यय के कारण धर्मशाला न पहुंच सकते हों तो १५ दिन का अवकाश स्वीकृत करवा लेवें और विद्यालय खुलने से एक दो दिन पूर्व आश्रम में पहुंच जावें।

अवकाश पर गये हुए ब्रह्मचारियों के साथ गुरुकुल नियम पालन अंकित करने अर्थ दैनिक नित्य कर्म फार्म भेजे गये थे। आशा है सब संरक्षक व्रताभ्यास के नियम भली प्रकार भरकर लौटाने की कृपा करेंगे। फार्म न लौटाने की दशा में ब्रह्मचारी व्रताभ्यास में फेल समझा जावेगा।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)　　[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]　　वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५]　　गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १५ आषाढ़ १९९७; २८ जून १९४०　　[संख्या ११

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[७]

गुरुकुल संघरूप संस्था

प्राचीन ग्रन्थों में गुरुकुल के संबन्ध में जो थोड़ा बहुत निर्देश उपलब्ध होता है उससे यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मचारी किसी खास विषय में विशेषज्ञ बनने के लिये निष्णात ऋषियों की उपासना करते थे। ऋषियों के यहां पट्ट शिष्य परम्परा द्वारा शिक्षण का तरीका विद्यमान था। ऋषि का परिवार ही गुरुकुल था। इस प्रकार के गुरुकुल में कौटुम्बिक भावना से रहते हुए विभिन्न प्रान्तों के बालक विद्या तथा संस्कृति के पीयूष का पान करते थे। ऋषि तथा ऋषि पत्नी के सान्निध्य में समस्त शिक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् शिष्यगण आचार्य की प्रेरणा से तथा राज्य के आश्रय से देश सेवा के विविध कार्यों को करते हुए अपनी यौवनावस्था बिताते थे। उस समय ऐसी प्रथा थी कि स्नातक किसी एक विषय का पारङ्गत विद्वान् हो। Jack of all and master of none जैसी हालत तब नहीं थी। उपनिषदों में जो आख्यायिकाएं मिलती हैं उनसे उस वक्त की शिक्षण शैली पर सामान्य प्रकाश पड़ता है। प्रश्नोत्तर से, छोटी छोटी कहानियों और दृष्टान्तों से तथा लकड़ी काटना, दूध दुहना, भिक्षा मांगना, गाय चराना आदि शारीरिक श्रम के कार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। राज्य का आश्रय भी गुरुकुलों को था। समाज पूरा सहयोग देता था। उस समय के गुरुकुलों का स्पष्ट तथा विस्तृत इतिहास मिलना तो कठिन है परन्तु बौद्ध काल में राष्ट्रिय शिक्षा के लिये जो बड़े २ विद्यापीठ थे उनका इतिहास सुलभ है। नालन्दा और तक्षशिला जैसे विशाल विश्वविद्यालयों से लेकर गांव की छोटी २ शालाओं तक एक प्रकार की समरूपता थी और ये सब छोटी बड़ी संस्थाएं प्रजा के पैसे से चलती थीं। वाराणसी के बोधिसत्व नामक प्रख्यात गुरु से ५०० युवा ब्राह्मण विद्या ग्रहण करते थे। बोधिसत्व के मन में एक बार यह विचार आया कि जब तक मैं वाराणसी में हूं तब तक मेरे शिष्य विद्या में दक्ष नहीं हो सकते इसलिये मैं हिमालय की तलहटी में जंगल के बीच घर बनाकर रहूंगा और वहां अध्यापन करूंगा। इस विषय के सम्बन्ध में 'तित्तिर जातक' नामक ग्रन्थ में जो वर्णन है वह ध्यान देने योग्य है। यहां हम केवल सारमात्र लिख रहे हैं। गुरु ने शिष्यों के सामने अपना विचार प्रगट किया और वन में कुटीर बना कर रहने लगा। विद्यार्थियों ने भी अपनी झोपड़ियां बनालीं और गांव के लोगों ने अनाज घी तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं भेंट कर दीं। इस प्रकार शिष्यवृन्द गुरुकी अध्यक्षता में एक जगह रहते हुए, भोजन करते हुए तथा पढ़ते हुए जीवन बिताते थे। इस प्रकार की संस्थाओं में धर्म, कला तथा विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।

बृहदारण्यक उपनिषद् में पांचाल समिति के उल्लेख से शिक्षणसंस्था का अस्तित्व प्रमाणित होता है। उपनिषदों के समय से लेकर नालन्दा तथा विक्रमशिला के विनाश पर्य्यन्त अनेक विद्यापीठों का उदय और अस्त हुआ परन्तु उनके बारे में पूरा परिचय प्राप्त नहीं होता। वेदाभ्यास के लिये विद्यार्थीगृह और पाठशालाओं के संचालन के लिये उस समय का समाज किस प्रकार से दान करता था इसकी साक्षी ई० स० १०२५ के राजेन्द्र चोल के जमाने के एक शिला लेख में मिलती है। इस में लिखा है कि राजराजविष्णुगर के मन्दिर में ऋग्वेद के पढ़ने वाले ७५, यजुर्वेद के ७५, छान्दोगसामके २०, वाजसनेय के २०, अथर्व के १०, बौधायनीय गृह्यकल्प और गण के १० तथा अन्य विद्याओं को पढ़ने वाले कुल मिलाकर २७० विद्यार्थियों में से प्रत्येक को ६ 'नाली' चावल मिलता था। इसी प्रकार व्याकरण, मीमांसा तथा वेदान्त के विद्यार्थियों को भी प्रतिदिन अन्न मिलता था। वेद के अध्यापन के लिये स्टाफ निम्न प्रकार से था:—

ऋग्वेद के	उपाध्याय	३
यजुर्वेद	"	३
छान्दोग्य	"	१

तलवकारसाम	"	१
वाजसनेय	"	१
गृह्यसूत्र	"	१

इन उपाध्यायों के जीवन निर्वाह के लिये मन्दिर को ४५ 'वेलि' भूमि दी गई थी। सारी संस्था का प्रबन्ध वहां की 'ग्रामसभा' करती थी। इस भूमि पर टैक्स नहीं था, इसके अतिरिक्त आचार्य तथा विद्यार्थियों को अनेक राजकीय भारोंसे मुक्त कर दिया था।

इस विवेचना से इतना तो स्पष्ट है कि गुरुकुल का अस्तित्व वैदिक काल में था इतना ही नहीं, प्रत्युत बौद्ध युग में गुरुकुल की सघशक्ति किसी भी तरह से कम नहीं थी, गुरुकुल एक जीती जागती संस्था थी।

प्राचीन काल पर दृष्टिपात करने के बाद अब हम वर्तमान काल पर आते हैं, महर्षि दयानन्द ने वेदों के साथ साथ गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का भी पुनरुद्धार किया। महर्षि का आदेश है—" जिस बालक को ५ वर्षकी आयु तक माता, ६ से ८ वर्ष की आयु तक पिता तथा ८ से २५ वर्ष की आयु तक (कन्या को ८ से १६ वर्ष तक) आचार्य शिक्षा दे वही पुरुष अथवा स्त्री विद्वान् या विदुषी होते हैं।" इस प्रकार गुरुकुल के लिये विजारोपण करने के उपरान्त महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में माता पिता का शिक्षा सम्बन्ध में क्या कर्तव्य है यह बतलाया है—"माँ बाप बालक को ऐसी शिक्षा दें कि उनकी सन्तान सभ्य हो तथा अपने अङ्गों से कुचेष्टा न कर सके। बालकों को शुद्ध उच्चारण करना तथा बड़ों के साथ आदर से बोलना सिखाना चाहिये। सन्तान संयमी विद्याप्रिय और सत्संगी बने ऐसी कोशिश करनी चाहिये। उपस्थेन्द्रिय के व्यर्थ स्पर्श से नपुंसकता उत्पन्न होती है, इस लिए बालक ऐसा न करें इस बातका ध्यान रखना चाहिये। उनसे सत्य भाषण कराना चाहिये। देव नागरी तथा दूसरी लिपियों का और उन विद्याओं का उन्हें ज्ञान कराना चाहिये। श्लोक मन्त्र आदि कण्ठस्थ कराने चाहिये।" इतना उपदेश देने के बाद महर्षि ने आचार्य और उपाध्याय के लिए व्यवहार भानु में और पठनपाठनविधि के विषय में सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सारांश दिया है उसे लेकर महर्षि के एक महान् शिष्य महात्मा मुन्शीराम जी ने 'गुरुकुल' को एक क्रियात्मक रूप दिया। गुरुकुल किस लिये बनाया गया यह स्पष्ट है। महात्मा मुन्शीराम जी ने समग्र जीवन वेद तथा महर्षि के सिद्धान्तों के प्रचार में व्यतीत किया। स्वर्गीय लेखराम जी के पदचिन्हों पर चलते हुए उन्होंने 'प्रचारक' का कार्य स्वीकार किया था। ऐसी परिस्थितियां आईं जब कि उन्हें गुरुकुल बनाने की सामग्री मिल गई और गुरुकुल' का जन्म हुआ। उनकी आन्तरिक इच्छा तथा गुरुकुल का उद्देश्य तो वेद के प्रचारक और उपदेशक पैदा करना था। जब तक गुरुकुल रूपी परीक्षण जारी था, आर्य जगत् में एक आवाज सुनाई देती थी कि गुरुकुल यज्ञ के अन्त में इस में से जो देव निकलेंगे वे समस्त विश्वको आर्य बनाएंगे अर्थात् गुरुकुल की स्थापना प्रचारक तैयार करने के लिये हुई थी। यहां स्थल है जहां विचार करने के लिये खड़े होने की ज़रूरत है। गुरुकुल का उदय एक सांस्कृतिक शिक्षण संस्था (Cultural Institution) के रूप में हुआ है या प्रचारकों की फौज तैयार करने वाला किसी (Propagandist संस्था के रूप में? यह विषय विचारणीय है।

अनुवादक-श्री धर्मराज वेदालंकार (असमाप्त)

याचना !

देव ! याचना है अनन्त की नहीं, केवल अणुभर की। अनन्त मुझ में समायेगा नहीं, मैं तो अणु से भी हीन हैं लघु से भी दीन हूँ, तृण से भी तुच्छ हूँ। मेरे तनु की तनिमा पर तुम हसोगे, मेरे हृदय की लघिमा पर तुम, तरस खाओगे; पर तो भी तुम्हारे अणु अणु से मैं मुग्ध हूं, कण कण पै बलिहारी हूं !

मैं पुकार २ कर कहता हूं कि तुम्हारे अनन्त को देखने की मुझ में शक्ति नहीं ? उस अनन्त का उन महानात्माओं ने भी कठोर साधनाओं के बाद देखा। देखा क्या, केवल झांकी ही तो ली और फिर तुम ओझल ? मैं तो लघु होने के नाते तुम में के लघु का दास हूं, क्षुद्र का सेवक हूं, चाहे भक्त कहलो। उस छोटे से दीन हीन के ढिंग बैठ, कर मैंने जाना कि नाथ! तुम इतने छोटे क्यों हो? जब दुत्कारे हुए कंकाल के सामने खड़े होकर मैंने देखा कि नाथ! तुम इतने नम्र क्यों हो? इतनी बेबसी का भार उठाकर जब उन आखों में दो बूंद आंसू भर कर आहों में अपने छुटपन की बात कह। हो तो नाथ! जान पड़ा कि तुम्हारा बेबसी का क्या अर्थ है। तुम्हीं बताओ इस बेबसी का भार उठाये किस की सोच में इतने आतुर और व्याकुल रहते हो।

वह जिसकी व्याकुलता को देखकर तुम ऊँचे से नीचे उतर आते हो उसका गिड़गिड़ाना भी तो सुनो; वह कहता है मुझे अनन्त नहीं चाहता, मुझ में असीम नहीं समाता; और तुम बराबर उसमें अनन्त को उतारते हो, असीम को निछावर करते हो। देखना वह दान तो तनुमात्र है, अनन्त का भार वहन करने का उसमें सामर्थ्य कहां, असीम की खोज करने का उसमें बल कहां,

बस देव! तुम प्रणत के लिये अनन्त को मत बिखेरो, सेवक के लिये असीम को मत खोलो; इस तुच्छ के लिये तनिक सा दो, लघु के लिये अपने अणु को उतारो, उस महान् को लघु रूप में बिखेरो, उस विराट् को तनुरूप में दर्शाओ, उस असीम को सीमा के द्वार से झांकने दो। भिक्षापात्र लघु है तो मधूकड़ी भी तनिक सी दो जैसे पात्र में अञ्जलि भर अन्न, सीप में स्वाति का अमृत बिन्दु, बस यही तो याचक का सर्वस्व है, तुम्हारे तनिक से उसकी अनन्त तुष्टि, तुम्हारे अणु से उसका असीम आनन्द !!

"द्विरेफ"

प्राच्य और प्रतीच्य

[ले० श्री ब्र० भीष्म देव]

[यह लेख रवीन्द्र जयन्ती के दिन गुरुकुलीय साहित्य परिषद् में पढ़ा गया था। —सं०]

ईसा की सातवीं शताब्दि में हिमाचल के उत्तुङ्ग शृङ्गों की उस ओर एक मानवी अपनी सरस्वती यात्रा के लिये सन्नद्ध हो रहा था। हिमालय की बर्फीली ऊंची चोटियां झांक झांक कर उसे इस यात्रा से रोकना चाहती थीं। उसकी राह में भयावने वनों की भर मार थी, असंख्य हिंस्र पशुओं का वास था, ऊंची पहाड़ियां यात्री को भूलभुलैय्या में डालने के लिये खड़ी थीं। यात्रा में जो २ भयंकरता हो सकती थी, सब थी।

यात्री चल पड़ता है। सभी प्रकार की आपत्तियों का मुकाबला करता है। दिन के बाद दिन बीतते जाते हैं। मास के बाद मास गुजर जाते हैं। एक वर्ष, फिर दो वर्ष और आखिर तीन वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। यात्री उद्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाता है। नालन्दा विश्वविद्यालय के कुल पति शीलचन्द्र के पास जाकर वह कहता है— "योगशास्त्र के सिद्धान्तों को सीखने की इच्छा से मैं चीन देश से चल कर यहां आया हूं।"

यह यात्री अद्भुत् विद्वान ह्वेनसांग था। उसने चीनी भाषा में ७४ भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसके बाद अनेकों भारतीयों ने ऐसी भयंकर यात्राएं की और चीन में भारतीय संस्कृति का सन्देश पहुंचाया। यह संस्कृति चीनतक ही सीमित न रही, वह समुद्र को लांघकर कोरिया और जापान में भी पहुँची।

किसी समय भारत में हिन्दूसंस्कृति का जोर था। अरबस्थान के व्यपारी भारत में आते थे और इस दिव्य संस्कृति से स्पर्श पाकर दिव्य बन जाते थे। अरबस्थान ने ही इस संस्कृति को मिश्र, यूनान और फिर सारे यूरोप में फैलाया। उसने स्पेन में आकर युनिवर्सिटियां खोलीं। वह प्राचीन भारतीयज्ञान धुरा का वाहक रहा है।

राम और रावण की कहानी भिन्न २ रूप में परिवर्तित होकर भिन्न २ देशों में फैल गई। आज भी मेक्सिको में राम और रावण के युद्ध का खेल किया जाता है।

भारतीय संस्कृति का डंका तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, श्याम, इण्डोचीन जावासुमात्रा, फारस, अरब, मिश्र, ग्रीस, स्पेन सभी देशों में बज चुका था।

भारतीय संस्कृति का फव्वारा फूट पड़ा था उसके शीतल जल कण भूमण्डल को मानव जाति का शान्ति दे रहे थे।

पर, आज विधि का व्यतिक्रम हुआ है। प्रतीच्य देशों के मानव प्रबल हुए हैं। अंग्रेजों ने भारत को परास्त किया और अब उसकी संस्कृति का भी नाश करने में लगे हैं, जापान ने तो पाश्चात्य सभ्यता का पूरा २ अनुकरण शुरू कर दिया है। उसने कोरिया के स्वभाग्य निर्णय को छीन लिया और आज भी चीन और जापान प्रतीच्य सभ्यता की भड़कीली छाया में रहकर परस्पर सर्वनाश करने को तुले हुए हैं।

इधर भारत वर्ष में कोई भी ऐसा शिक्षित मिलना कठिन है जो पाश्चात्य सभ्यता से अछूता हो। प्राच्य और प्रतीच्य संस्कृति का आज घोर संघर्ष उपस्थित हो चुका है। आज पश्चिम ने भौतिक बल इतना बढ़ा दिया है कि उसके सामने काल और स्थान ने भी लोहा मान लिया है। जर्मनी में जो बोला जा रहा है वह उसी समय भारत में भी सुना जा सकता है। दूर २ के मनुष्यों का परस्पर सम्मिश्रण हुआ है। सारा संसार एक होता हुआ दिखाई देता है।

परन्तु आज भी वसुन्धरा में "वसुधैव कुटुम्बकं" की भावना नहीं फैल पाई। सभ्यता और संस्कृति के नाम पर गोरे कालों का, धनी निर्धनों का, बली निर्बलों का गला दबाते हैं। जिन भौतिक आविष्कारों के प्रभाव से दुनिया एक होती हुई दिखाई देती है उन्हीं से परस्पर द्वेष, हिंसा की भावना को जागृत किया जा रहा है। प्रतीच्य धन धान्य से समृद्ध होकर भी, आकाश और समुद्र पर विजय पाकर भी अपने आप पर विजय न पा सका। वह आनन्द की प्राप्ति के लिये लालायित हो रहा है।

किसी समय भारतीय संस्कृति का जो फव्वारा सारे संसार के प्रदेशों पर शीतल जल कण छिड़क रहा था उस फव्वारे के छिद्रों में पाश्चात्य के कल कारखानों की मिट्टी पड़ी है। पानी निकलना बन्द हो गया है पूर्व की संस्कृति पराजित होने लगी। भारत में ईसाईयों ने कहा– हम ३० वर्ष में भारत को ईसाइयत की पोशाक पहना देंगे।

पर, इसी बीच में ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव होता है। ऋषि ने बन्द छिद्रों को खोल दिया। आक्रमण कारी पाश्चात्य सभ्यता के सामने आत्म रक्षा की कठोर दीवार खड़ी कर दी। ईसाइयत वहां टकरा टकरा कर स्वयं नष्ट भ्रष्ट हो रही है।

फिर, इस आत्म रक्षा की दीवार पर खड़े होकर, सर्वधर्म समभाव के मूर्त स्वरूप स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानन्द ने समस्त संसार को भारतीय संस्कृति का सन्देश सुनाया। राममोहनराय आदि नेताओं ने मानवता के सम्बन्ध से भारत का सारे संसार से जोड़ने का यत्न किया।

आज भारत में गुरुकुल जैसी संस्थाएं प्राच्य और प्रतीच्य का सम्बन्ध करने में संलग्न हैं। १९१४ के महायुद्ध के बाद आनन्द का गवेषणा करने वाले लोगों को– भारत ही आवास भूमि बन रहा है। उन्होंने इस संहार कारी युद्ध से समझ लिया है कि पाश्चात्य सभ्यता असन्तोष जनक है।

ऐसी अवस्था में राजनैतिक जगत् की आंख आज महात्मा गांधी की ओर लगी हुई है प्रतीच्य के मानव उन्हीं के चरणों में आकर शान्ति प्राप्ति की आशा रखते हैं।

दार्शनिक दुनिया में सर राधा कृष्णन् ने हिन्दू धर्म के तत्व को दिखला कर आध्यात्म पिपासुओं को आकृष्ट किया है।

साहित्य संसार में विश्व कवि रवीन्द्र ने भारतीय संस्कृति का आकर्षक नाटक खेल कर दिखाया है। वही

(शेष पृष्ठ ५ पर)

गु रु कु ल

१५ आषाढ़ शुक्रवार १९९७

प्रोफैस्सर सैयद

(आचार्य अभयदेव जी)

एक दिन प्रातःकाल मैं अपने आचार्य कार्यालय में बैठा था कि हमारे लेखक महाशय ने मुझे सूचना दी कि इलाहाबाद के प्रोफैस्सर सैयद आप से मिलना चाहते हैं। एक प्रोफैस्सर आये हैं यह देखकर मैंने कहा कि अवश्य आ जायं, अभी आ जायं। हैट और छड़ी हाथ में लिये हुए एक सज्जन मेरे कमरे में आ पहुंचे। उनके कपड़े खद्दर के नहीं थे फिर भी उनकी पोशाक सादी थी। उनके चेहरे और शब्दावली से सादगी, सरलता और बेफिक्री प्रकट होती थी।

उन्होंने पूछा, "गुरुकुल के प्रिंसिपल आप ही हैं?"

मैंने कहा, "जी हां"। मैंने भी उनका परिचय प्राप्त किया। हम दोनों का शीघ्र ही एक दूसरे के प्रति नयापन जाता रहा। मैं निःशंक होकर अपनी आंखों द्वारा उन्हें सब तरफ से नापने लगा। अचानक एक भाव पैदा हुआ कि कहीं ये सज्जन वे ही तो नहीं हैं जिन्हें कि मिलने के लिये कई वर्ष हुए कानपुर या इलाहाबाद जाने का विचार बनाया था। अतः मैंने उनसे पूछा, "क्या आप वैदिक मेगज़ीन में भी लेख लिखते रहे हैं?"

"हां, रामदेव जी का शरीर छूट गया है यह खबर मैंने बड़े दुःख से अखबारों में पढ़ी है। वे मेरे बड़े मित्र थे। मैं वैदिक मेगजीन में अक्सर लेख लिखा करता था और उन सब लेखों की कापियां मेरे पास मौजूद हैं। अभी मैंने स्वामी दयानन्द पर 'प्रबुद्ध भारत' ? में एक article (लेख) लिखा है। Apostle of reasoning) तर्कशक्ति का दूत; उसका शीर्षक है। क्या वह अखबार गुरुकुल में आता है?"

अब मैं समझ गया कि ये वे ही महम्मद हफीज़ सैयद हैं जिनका कि ज़िक्र हिन्दू-मुसलमानों की चर्चा छिड़ने पर आचार्य रामदेव जी ने कई बार मुझसे किया था। बल्कि एक बार कहा था कि कभी कानपुर-इलाहाबाद की तरफ जाओ तो उनसे मिलना, वे मिलने लायक आदमी हैं, कानपुर में गंगा के किनारे एक कुटी में रहना इनको बहुत पसन्द है। पर मैंने देखा कि आज अचानक घर बैठे ही उनसे मुलाकात हो गई।

"गुरुकुल के ढंग की शिक्षा मुझे बहुत पसंद है। यहां के वायुमण्डल में आते ही मुझे बड़ी ताज़गी मिलती है। यहां के विद्यार्थी कितने सरल और पवित्र लगते हैं। उनके चेहरे देख कर ही खुशी होती है। कालेजों-स्कूलों की पढ़ाई तो नौजवानों को बर्बाद कर रही है। हिन्दुस्तान का असली जड़ से सुधार तो गुरुकुल जैसी शिक्षा से ही हो सकता है। मुझे कांग्रेस के आन्दोलन में भी कुछ तत्त्व नहीं दिखाई देता। क्योंकि ठीक तरह के इन्सान ही हमारे देश में कहाँ हैं?" इत्यादि बातें वे करते जाते थे।

मैंने कहा "तो आप गुरुकुल में आ जाइये।"

"मैं मुसलमान हूं। मुझे गुरुकुल में कौन रक्खेगा। मेरा तो गुरुकुल से विचार का सम्बन्ध ४० बरसों से है। मैं जब ८-९ बरस का था तभी मैंने महात्मा मुन्शीराम जी को गुरुकुल में दाखिल होने के लिये एक चिट्ठी लिखी थी। शायद वह चिट्ठी अभी तक मेरे पास पड़ी है जिस में मुझे यह उत्तर दिया गया था कि आपको गुरुकुल में दाखिल करना सम्भव नहीं है। पर यह ठीक है कि मुझे अब अपने बारे में साफ अनुभव हो रहा है कि सरकारी कालिज में मेरा जीवन बेकार जा रहा है। वहां कुछ पैसे मिलते हैं परन्तु आत्मा संतुष्ट नहीं होता। अब कहीं और अपना डेरा लगाना होगा यह साफ दीखता है।"

सय्यद साहब ने फ्रांस (पेरिस) की यूनिवर्सिटी से प्राच्यदर्शन विषय पर डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की है। इन्हें अपने जिस निबन्ध पर वह उपाधि मिली है उस निबन्ध में इन्होंने यह सिद्ध किया था कि भारतीय दर्शन निराशावादी नहीं हैं। आज कल आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं।

वे हिन्दी और संस्कृत के शब्द बहुत आसानी से और शुद्ध शुद्ध बोलते थे। कुछ अधिक खुल जाने पर वे मुझ से पूछ बैठे

"क्या आप योग करते हैं?, आप ज़रूर योग करते हैं।"

"अच्छा, यदि मैं योग करता हूं तो क्या हुआ।"

"आप का चेहरा और आप की आंखें बतलाती हैं कि आप योग साधन करते हैं।"

इस पर योग साधन की पद्धतियों के विषय में बात चीत होती रही। प्रोफेसर साहिब योग के जिज्ञासु हैं। योग साधन के लिये हृ. वे अपना जीवन बदलना चाहते हैं। योग के लिये कई जगह दूर२ जा चुके हैं। रमण महर्षि के आश्रम में भी जा चुके हैं। हमारे बातें करते हुए बीच में आचार्य कार्यालय का पुराना सेवक महाशय झब्बूसिंह आ पहुंचा। उसके मैले से कपड़े थे और अपने पीले दांत निकाले हुए अपनी विशिष्ट हंसी हसते हुए जो बात चीत की उसे देख कर मेरे नये मेहमान कहने लगे, "यह आप का आदमी बड़ा अच्छा है, यह सीधा है और बेलाग लपेट है।

× × ×

मैं अपने कार्यालय के काम में लग गया था और क्यों कि प्रोफेस्सर सय्यद थके हुए थे और उन्हें नींद आ रही थी इस लिये मैंने उन्हें पास पड़े हुए एक तख्त पर विश्राम लेने को कह दिया था। और वे उस तख्त पर बिना कुछ बिछाये ही मजे से लेट गये थे और निद्रा ने उनकी आंखें बन्द करदी थीं। इस बीच में मेरे कमरे में झब्बूसिंह जी एक कोपाविष्ट व्यक्ति को साथ लेकर घुसे। वह व्यक्ति हैदराबाद सत्याग्रह में जेल जा चुका था और यह कहता हुआ अन्दर आया कि "मैंने सब देख लिया

है कि यह गुरुकुल क्या है। यह सब ढोंग है। मैं भी लिखना जानता हूं। मैं अखबारों में लिखूंगा कि यहां कैसा खराब इन्तज़ाम है और लोगों से कैसा दुर्व्यवहार किया जाता है।" पता लगाने पर मालूम हुआ कि उनको धर्मशाला में भोजन पकाने के लिये बर्तन आसानी से नहीं मिले थे। इसी शिकायत को करने के लिये वह मेरे पास—उस दिन मुख्याधिष्ठाता का काम मैं ही कर रहा था—आये थे। बात बात में उन्होंने यहां तक कह डाला कि इस से तो मुसलमान हो जाना ज्यादह अच्छा है। मुझे ऐसा लगा है कि यह घटना इस लिये घटी कि यह साक्षात् तुलना हो सके कि एक तो वह मुसलमान कहने वाला व्यक्ति है जो तख्त पर लेटा हुआ है और एक वह हिन्दू कहलाने वाला है जो ऐसी बातें कर रहा है।

× × ×

जब मैं इन्हें भोजन के लिये अपने घर ले जाने लगा तो रास्ते में इन्हें महाविद्यालय आश्रम के कुछ कमरे दिखाये। एक ब्रह्मचारी को देख कर ये कहने लगे, "He looks very intelligent" "यह बड़ा बुद्धिमान विद्यार्थी दीखता है।" वस्तुतः वह अपनी श्रेणी में पहला या दूसरा रहने वाला था। एक दूसरे विद्यार्थी को देख कर कहने लगे कि तुम्हारी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है। क्या तुम्हें Enemia है। क्या इलाज करते हो? विद्यार्थी ने कहा, 'नहीं अच्छा हूं। पर मेरा पेट खराब है।" उन्होंने कहा, "आओ, मैं तुम्हें योग के कुछ आसन सिखाऊंगा, जिन्हें तुम करोगे तो तुम्हारा पेट ठीक हो जायगा। तब तुम स्वस्थ हो जाओगे।" वे उस विद्यार्थी को कहने लगे, तुम अभी मेरे साथ चलो। मैं अभी तुम्हें आसन बताऊंगा।" उस ब्रह्मचारी का पीछा तो मैंने यह कह कर छुड़ाया कि आप यह कष्ट न कीजिये। ब्रह्मचारी आयेगा तो इसे आसन मैं सिखा दूंगा। पर यह ठीक है कि उन्होंने मेरे घर पहुंच कर अपना भोजन करने से पहले अपने नित्य नियम के कुछ आसन किये।

मैंने उनके लिये भण्डार से भोजन मंगाया यद्यपि वे तो यह चाहते थे कि वे मेरा ही भोजन करें अर्थात सत्तू, शाक और बेल ही खायें। हां मैं यह भूल गया कि उन्होंने सुबह ही मुझ से पूछा था कि आप लोग तो यहां गंगा जल पीते होंगे। इस पर मैंने उन्हें कहा कि हमारे कुओं में गंगाजल ही है तो इस से उन्हें संतोष नहीं हुआ और उनका यह आग्रह रहा कि यहां आकर तो मैं गंगाजल ही पीऊंगा। इस लिये मैंने एक सुराही भर नहर का गंगाजल उन के लिये मंगा रखा था। खाते समय जल पीते हुए वे कहने लगे कि गंगाजल कितना मीठा है। मैं तो इसे सोडावाटर कहा करता हूं। यह हाजिम होता है। फिर गंभीर होकर कहने लगे कि "नहीं इस जल में ज़रूर कुछ बड़ी खिफत है। यह बहुत दिनों तक खराब नहीं होता है।"

उन्होंने भोजन बहुत थोड़ा सा किया यह देख कर मैंने कहा, 'आपको यहां का भोजन अच्छा नहीं लगा दीखता।' वे बोले, "नहीं, मेरी खुराक ही थोड़ी है। वैसे ही मैं निरामिष भोजी हूं। मैं तो आपको यह कहने वाला था कि मैं अभी नैनीताल में एक बहुत बड़े सरकारी अफसर का मेहमान था वहां नाना तरह के भोजन मुझे मिलते थे। पर मैं सच कहता हूं कि वहां मैं तंग था। आज ही मैंने जी भर कर भोजन किया है।"

भोजन के बाद मैं अपने काम में लग गया और वे मसूरी चले गये। पर उनका एक वाक्य अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा है, "मेरी राय में वैदिक धर्म कोई मज़हब नहीं है। यह तो एक Science (साइन्स) है इसी लिये मैं इसे सर्व श्रेष्ठ मानता हूं।

उनका यह कहना भी मुझे याद है, जब उन्होंने क्षमा मांगते हुए और बड़े संकोच से कहा था, "आप मुझे माफ करें, मुझे दीखता है कि अब आर्यसमाज मज़हब होता जा रहा है। यह हम मुसलमानों को अच्छा बताये, इसको जगह मुसलमानों की नकल करने लगा है। स्वामी दयानंद आर्यसमाज को जैसा चाहते थे वह बात अब इसमें नहीं रही दीखती।" क्या उनके इस कहने में सचाई नहीं है?

प्रोफेसर सैय्यद को मैंने ब्राह्मण माना। बेशक उन पर मुसलमान का लेबल लगा हो पर वर्णव्यवस्था के अनुसार वे ब्राह्मण विभाग में ही आवेंगे। वर्णव्यवस्था यदि एक जीवित शास्त्र (साइन्स) है, केवल एक साम्प्रदायिक रूढि नहीं है तो यही कहा जाना चाहिये।

(पृष्ठ ३ का शेष)

नहीं, इस विश्व कवि ने विश्व भारती संस्था के द्वारा प्राच्य और पाश्चात्य के मिलन की अनुभूति का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया है। संसार को शान्ति का मौलिक अवस्थाओं को सुदृढ बनाने में लगे हैं।

आज के चरित्र नायक का जीवन प्राच्य और प्रतीच्य के सुमधुर संगम का आधारभूत शिलाओं को रखने में व्यतीत हो रहा है। यह कवि हृदय-उपनिषद् की आध्यात्मिकता से प्रभावित है। उसकी दार्शनिकता का स्रोत ईशोपनिषद् है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा की लीला को देखता है। उसे हर जगह 'सत्यं शिवंसुन्दर' की झांकी मिलती है।

[असमाप्त]

यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त हो ?

[ले०—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

गतांक से आगे

यथार्थ ज्ञान में जब सारी शक्ति निहित है तो उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। वह कैसे प्राप्त हो? शायद उसकी आवश्यकता का तीव्र अनुभव ही उसकी प्राप्ति का उपाय है, क्योंकि पहले कह चुके हैं कि प्रारम्भ में ही अन्त निहित है। यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ बेकार है, अतः सब कुछ छोड़कर यथार्थ ज्ञान को प्राप्ति में

लग जाना चाहिये। मुझ में शक्ति नहीं है, इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि मुझे यथार्थ ज्ञान नहीं है। यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ सत होते हुए भी भी हमारे लिये असत सा है पर मुश्किल तो यह है कि इसकी प्राप्ति कैसे हो? मैं इसका अधिकारी अपने को किस स्थिति में समझता हूं? जब कुछ छोड़ कर इसी की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करूं। अच्छा, मुझे इतना ज्ञान तो इस समय है कि यथार्थ ज्ञान के बिना सब कुछ बेकार है, और मुझे इस समय यथार्थ ज्ञान लेशमात्र भी नहीं है? यदि लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है तब तो इस बात का भी ज्ञान नहीं है, और यदि इस बात का ज्ञान है तब तो सब कुछ ज्ञात ही है, क्यों कि बिना सब कुछ जाने हुए मुझे लेशमात्र का भी ज्ञान नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि समष्टि व्यष्टि से अविभाज्य है। इस प्रकार हम जो कुछ भी जानते हैं उसकी दृष्टि से सर्वज्ञ, और जो नहीं जानते हैं उसकी दृष्टि से नितान्त अज्ञ हैं। यदि हम इस बात को जानते हैं कि हम नितान्त अज्ञ हैं, तब तो सर्वज्ञ ही हैं, क्योंकि बिना सम्पूर्ण के ज्ञान के अंश का भी ज्ञान नहीं हो सकता, इसी हेतु से हम अज्ञ भी ठहरते हैं और सर्वज्ञ भी ठहरते हैं। क्योंकि बिना सर्वज्ञता के अपनी अज्ञता का भी ज्ञान नहीं हो सकता। इस तौर से यदि हम किसी भी निर्णय पर पहुँचें, यदि हमारा वह निर्णय वास्तविक है, तो वह हमारी सर्वज्ञता का प्रमाण है। हम यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि हम इस बात को यथार्थ समझते हैं कि हमें यथार्थ ज्ञान नहीं है, अर्थात् हम समझते हैं कि अपनी अज्ञानता का यथार्थ ज्ञान मुझे प्राप्त है। किन्तु यदि वस्तुतः इतना यथार्थ ज्ञान मुझे प्राप्त है, तो अर्थापत्ति से सारी समष्टि के ज्ञान की सत्ता मुझ में सिद्ध हो जाती है। क्योंकि बिना समष्टि ज्ञान के व्यष्टि-ज्ञान सम्भव नहीं है, जैसे बिना समुद्र के तरङ्ग असम्भव है। यदि कहें कि हम यह भी नहीं जानते, तो यह तो जानते हैं कि हम यह भी नहीं जानते। यह भी ज्ञान हमें बिना समष्टि के ज्ञान के प्राप्त नहीं हो सकता। अतः अन्ततोगत्वा हम किसी भी प्रकार से अपनी सर्वज्ञता से छुटकारा नहीं पा सकते। और इसी प्रकार की युक्ति से हम नितान्त अज्ञानी ठहरते हैं, क्योंकि व्यष्टिगत अज्ञान समष्टिगत अज्ञान के बिना नहीं हो सकता। और दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं कि हम नितान्त अज्ञ भी हैं और नितान्त सर्वज्ञ भी हैं, तो फिर कौन सी बात मानी जावे? अनुभव विरुद्ध तो दोनों ही हैं और युक्ति सिद्ध भी दोनों ही हैं, और दोनों परस्पर विरोधी धर्मों का एकत्र मेल सम्भव नहीं, बड़ी विकट समस्या है। क्या हम अभीष्ट सर्वज्ञता है, अतः उसी को चुनलें? यहां चुनने का तो बात नहीं, यहाँ तो यथार्थानुसन्धान की बात है।

जिस वस्तु को हम नहीं जानते, उसके विषय में यह भी कैसे जानते हैं कि उसे हम नहीं जानते? वह ज्ञान-विषयता के अभावज्ञान का भी विषय कैसे हुआ? अतः (हम नहीं जानते) यह कथन परस्पर विरुद्ध है। यदि हम नहीं जानते तो यह कह भी नहीं सकते कि उसे हम नहीं जानते। अतः अज्ञानता का पक्ष खण्डित हो जाता है। तो क्या यही पक्ष ठीक है कि हम सब कुछ जानते हैं? तो इस तथ्य की अनुभवात्मक स्थिति कैसे प्राप्त हो? यह बड़ी विकट समस्या है! परस्पर इस दर्शन और अपनी अनुभूति के समन्वय को पुनः २ विचार के द्वारा दूर करने का प्रयत्न करने से यह असमन्वय दूर हो सकता है, ऐसी आशा होती है। 'ज्ञान से ध्यान होता है' और 'ध्यान से ज्ञान होता है' इसमें अन्योन्याश्रय दोष जो रामानुज ने दिया है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि दोनों ज्ञान में ईषद्व्यक्त और पूर्णव्यक्त के रूप में अन्तर है।

आपाततः सत्य में कितनी भी अशक्ति मालूम पड़ती हो परन्तु शक्ति उसी में है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति बहुत दुष्कर है। किन्तु हम एक क्षण भी पूर्ण सत्य की अनुभूति, चाहे वह यथार्थ हो या अयथार्थ, के बिना नहीं रह सकते। किसी न किसी बात को हम पूर्ण सत्य अवश्य समझते हैं। किन्तु जब हम उस बात की पूर्ण सत्यता का परीक्षण करने लगते हैं, तब ऐसा लगता है कि पूर्ण सत्य तो अभी बहुत दूर है। इस प्रकार पूर्ण सत्य सर्वदा अज्ञात रूप में रहता है। इस से कुछ पूर्ण सत्य का ऐसा स्वभाव प्रतीत होता है कि वह ज्ञान का विषय नहीं है, वह विषयीरूप है। जबतक सत्य विषयीरूप में रहता है तबतक उसकी पूर्णता की प्रतीति होती है, जब हम उसको विषय रूप में देखते हैं तब उसकी अपूर्णता प्रतीत होती है। अतः ऐसा लगता है कि पूर्ण सत्य विषयी के रूप में है। अर्थात् आत्मा पूर्ण सत्य है, क्योंकि आत्मा विषयी है। फलतः आत्मा के ज्ञान से ही पूर्ण सत्य की प्राप्ति होगी, और उसकी प्राप्ति नितान्त आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना कुछ भी प्राप्य नहीं है। तब यह समस्या है कि आत्मा, जोकि पूर्ण सत्य है, कैसे प्राप्त हो? शायद उसकी इसी रूप में प्राप्ति हो सकती है कि जो कुछ भी विषय है उससे वह भिन्न है, क्योंकि वह विषयी के रूप में ही प्रतीत होता है। हम उसे इसी रूप में समझ सकते हैं कि वह ज्ञाता है, ज्ञेय नहीं है।

और उसकी प्राप्ति का उपाय है सर्वतृष्णा विनिर्मुक्ति, क्योंकि वह जो कुछ भी हमें ज्ञात है उन सबों से भिन्न है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति के बाद कुछ भी प्राप्य नहीं रह जाता, क्योंकि जो कुछ भी प्राप्य है वह पूर्ण सत्य में अन्तर्भूत है। और उसके बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो पूर्ण सत्य है वह ही एक मात्र सत्य है। और वह सर्व-तृष्णा परित्याग से प्राप्त होता है। जैसा कि उपनिषद् में कहा है—"न कर्मणा, न प्रजया धनेन, त्यागेनैके अमृतत्व-मानशुः"। हम लोग तृष्णा से अपनी पूर्ति चाहते हैं, किन्तु पूर्ति सर्व तृष्णा विनिर्मुक्ति से होती है, कितनी विचित्रता है! जबतक सभी वस्तुओं का अनात्मत्व समझ में नहीं आता, तब तक सर्वतृष्णा विनिर्मुक्ति नहीं हो सकती। और इस प्रकार विश्लेषण से हमें सभी वस्तुओं का अनात्मत्व समझ में आता है। इस तरह सभी वस्तुओं का अनात्मत्व क्रमशः विशेष समझने से सर्व तृष्णा विनिर्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

———

गुरुकुल समाचार

ब्र० जगन्नाथ ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० राजकिशोर ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० योगेन्द्र २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० श्यामबिहारी २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, मनमोहन १ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० महदेव २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० हरिप्रकाश ३ श्रेणी M......

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ है। गत सप्ताह भी गर्मी पर्याप्त रही। अधिकतम तापमान १०६° फा. रहा। मङ्गलवार वर्षा होने से मौसम अच्छा हो गया है।

इस सप्ताह वाग्वर्धिनी सभा की ओर से राजनैतिक विषयों पर २ व्याख्यान कराये गये। पहला व्याख्यान इतिहास के उपाध्याय श्री वेदव्रत जी का 'युद्ध की वर्तमान अवस्था' विषय पर बड़ा मार्मिक हुआ। पं० जी ने बड़े सुन्दर ढंग से वर्तमान परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला। आप ने बतलाया कि इस युद्ध का कारण गत महायुद्ध के बाद की गई वार्साई की सन्धि है

दूसरा व्याख्यान श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का हुआ। स्वामी जी कई बार यूरोप हो आए हैं। अन्तरराष्ट्रिय परिस्थितियों का आपको विशेष ज्ञान है। अन्त में आपने शंकाओं का समाधान किया। सभा बड़े मनोरंजक ढंग से समाप्त हुई।

श्री आचार्य जी गांधी सेवासंघ की बैठक में भाग लेने गये थे। लौट आए हैं। उनसे कुलवासिओं ने वहां के अनुभव सुने।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

१:-ऋतु उत्तम है। गरमी अच्छी पड रही है परन्तु कभी २ बादल घिर जाने से ठंड हो जाती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है।

२:-ब्रह्मचारियों की देर से यह इच्छा थी कि गुरुकुल में उनके के तैरने के लिये एक तालाब होना चाहिये। अब स्नानगृह के पास एक ३० फीट लम्बा ३० फीट चौड़ा पक्का तलाब बनना प्रारंभ होगया है जो कि जुलाई के प्रारंभ में बनकर तैयार हो जायगा। यह ज़मीन से ऊंचा होगा और कूएं के ताजे पानी से भरा जाया करेगा।

३:-षाण्मासिक परीक्षा २३ जुलाई से प्रारम्भ होगी और १अगस्तसे दीर्घावकाश प्रारम्भ होगा और प्रथम ५श्रेणियों के ब्रह्मचारी गत वर्षों की तरह पछाद (नाहन) पहाड़ पर तथा ६ ष्ठ से ८म तक बड़े ब्रह्मचारी डलहौजी पहाड़ पर यात्रार्थ जायेंगे।

४:-आश्रम में धूल न उड़ने पाये इस लिये कूएं से पानी लाकर बगीचा लगाई जा रही है। सुन्दर सड़कें बना दी गई है। वर्षाऋतु के बाद आश्रम का आंगन एक सुन्दर बगीचा बन जायगा।

गुरुकुल मुलतान

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। ऋतु सुहावनी है। अभी तक गर्मी का सर्वथा अभाव है। उत्सव के बाद वार्षिक परीक्षा हुई जिस में सभी ब्रह्मचारी उत्तीर्ण हुए। गत वर्ष पढ़ाई के अतिरिक्त समय में ब्रह्मचारियों को शीशे पर वेद मंत्र तथा चित्रादि बनाना साबुन तथा स्याही बनाना सिखाया जाता रहा है। इस वर्ष से खड्डियां लगा कर कपड़ा बुनने का काम भी सिखाया जाएगा। यदि कोई दानी महाशय खड्डियां देदें या दिलादें तो यह काम जल्दी प्रारम्भ हो सकेगा। इसके अतिरिक्त शीघ्र ही एक योग्य व्यायाम मास्टर का प्रबन्ध किया जा रहा है जो ब्रह्मचारियों के सब व्यायामों के अतिरिक्त लाठी, गतका, तलवार छुरा आदि चलाना सिखाएंगे। ब्रह्मचारियों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है। पढ़ाई का अभी प्रारम्भ हुआ है। अब भी जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहें पत्र व्यवहार करके करा सकते हैं।

विष्णुमित्र मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

रजत जयन्ती

आर्य जनता को यह ज्ञात हो चुका है कि इस वर्ष फाल्गुन में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थकी रजत-जयन्ती मनाने का निश्चय हो चुका है। श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरुकुल-कांगड़ी ने २५०००) की अपील की है। इस धन के एकत्रित करने के लिये अभी से उद्योग शुरू हो गया है। अवकाश पर घर गये हुए ब्रह्मचारी पुरुषार्थ निधि की रसीद बुकें अपने साथ ले गये हैं वे अपने संरक्षक और स्थानीय आर्य नेताओं की सहायता से पुष्कल राशि एकत्रित करके लायेंगे। अवकाश पर गये हुए अध्यापक भी दान इकट्ठा करने का उद्योग करेंगे। श्री प्रो० गोपाल जी ने शिमला में अपने आराम का प्रोग्राम स्थगित कर उत्तर पश्चिमीय पंजाब में रजत-जयन्ती धन संग्रह प्रचारार्थ भ्रमण शुरू कर दिया है।

आशा है आर्य जनता के सेवक पूरा सहयोग और सहायता देंगे। गुरुकुल शिक्षा और प्राचीन संस्कृति प्रेमी भाइयों को अभी से गुरुकुल की सहायता में लग जाना चाहिये।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थके 'धर्मशाला' गए हुए ब्रह्मचारियों का वहां के गवर्नमेन्ट कालेज के विद्यार्थियों से हाकी में मैच हुआ। ब्रह्मचारियों ने आयु व कद में बहुत कम होते हुए भी कालेज के विद्यार्थियों को एक गोल से पराजित किया। दर्शकों को आश्चर्य हुआ,जो इस परिणाम के लिये तैयार न थे।

२० जून को मध्यान्ह के समय मीराबेन (मिसस्लेड) कोठी पर पधारीं। उन्होंने ब्रह्मचारियों को ऊन धुनना व कातना सिखाया तथा "देश की सेवा के विद्यार्थियों को किस प्रकार तैयारी करनी चाहिये" इस विषय पर उपदेश दिया।

२२ जून से विद्यालय नियम-पूर्वक प्रारम्भ हो गया है। १५ दिन बाद सब ब्रह्मचारी इन्द्रप्रस्थ पहुंच जायेंगे। सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत".

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २२ आषाढ़ १९९७; ५ जौलाई १९४०   [संख्या १२

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

निदान और चिकित्सा

[मूल गुजराती लेखक, श्री दिनेशत्रिवेदी, अनुवादक; श्री धर्म राज वेदालङ्कार]   (३)

गुरुकुल सांस्कृतिक शिक्षणालय की विशेषताएं

गुरुकुल एक शिक्षणालय है राष्ट्रिय शिक्षा का तीर्थ-स्थान है। गुरुकुल अपने जन्म से लेकर परिपक्व अवस्था तक किन भावनाओं के आधार पर चल रहा था और प्रान्त जाति आदि के भेद को भुलाकर किन ऊंचे आदर्शों से प्रेरित होकर देश के कोने कोने से, माता पिता अपने लाड़ले बच्चों को शिक्षा के उद्देश्य से गुरुकुल की वन भूमि में भेजते थे, इन सब बातों को स्मरण कर लेना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य बालक की शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है। वैदिक शिक्षा में ब्रह्मचर्याश्रमका स्थान इसी लिये है कि इस आश्रम द्वारा ज्ञान और कर्म दोनों की समुचित उन्नति हो सकती है। जिस शिक्षापद्धि से बालक के शरीर का ह्रास होता है, मन निर्बल बनता है तथा आचार में भ्रष्टता आती है, वह शिक्षापद्धति सर्वथा त्याज्य है। जो शिक्षा जीवन संग्राम में सहायक नहीं सिद्ध होती और जिस शिक्षा को भुला देने से ही रोटी का सवाल हल होता हो, ऐसी शिक्षा से इस देश का निर्वाह अधिक देर तक नहीं हो सकता। वर्त्तमान सरकारी शिक्षा का क्रियात्मक जीवन में कोई उपयोग नहीं। धार्मिक शिक्षा के अभाव को पाकर तथा झूठे इतिहास से भारतीयों के भाव को कुलषित होता देखकर आर्यसमाज को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रणाली की विशेषताएँ निम्न हैं:—

१. ब्रह्मचर्य,

२. शरीर स्वास्थ्य,

३. शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा,

४. धार्मिक शिक्षा,

५. ईश्वर स्तुति; सन्ध्या-हवन के रूप में,

६. ईश्वरस्तुति तथा आर्यभाषा (राष्ट्रभाषा हिन्दी) की मुख्य भाषा के रूप में शिक्षा।

७. अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं की गौण रूप में शिक्षा,

८. वेद, वेदाङ्ग, आयुर्वेद तथा इतिहास, अर्थ शास्त्र, पाश्चात्यदर्शन आदि वर्त्तमान विद्याओं का पठन।

९. २४ घण्टे गुरुओं तथा शिष्यों को इकट्ठा रहना,

१०. समान आयु वाले विद्यार्थियों का एक साथ मित्र-भाव से रहना तथा सब के साथ खानपान आदि में समान व्यवहार होना।

११. दुनिया के विषैले वातावरण से दूर रहना,

१२. खुली हवा, रोशनी, उत्तम और सादा भोजन तथा व्यायाम आदि स्वास्थ्य के लिये उपयोगी बातों की व्यवस्था।

१३. देशकी संस्कृति के अनुकूल पाठ्यक्रम (Course of study) का प्रचार करना।

१४ स्वतन्त्र मानस के विकास के लिए उचित वातावरण तय्यार करना।

१५. देश की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखते हुए कम से कम शुल्क दर रखना।

१६ प्रत्येक वर्त्तमान शिक्षापद्धति की खूबियों से फायदा उठाना।

उज्ज्वल भविष्य की कल्पना

उक्त शिक्षापद्धति में से गुज़र कर जो कर्मशील ब्रह्मचारी जगत के सम्मुख अविर्भूत होंगे उनके विषय में जो सुनहरी कल्पनाएं की गई थीं वे निम्न प्रकार से थीं—

(१) संस्कृत की हज़ारों हस्त लिखित पुस्तकें अमुद्रित होने से दुर्लभ हैं। तंजावर तथा देश के अन्य भागों में अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ पड़े हुए हैं जिनके उद्धार के लिए संशोधन की आवश्यकता है। इस प्रकार के कार्य को करने के लिए लौकिक तथा वैदिक संस्कृत के प्रखर एवं धुरन्धर विद्वानों की जो अंग्रेजी भी जानते हों ज़रूरत है। अनुसन्धान का यह कार्य गुरुकुल शिक्षा के परिणाम स्वरूप सफलता से सम्पन्न हो सकेगा।

(२) राष्ट्रिय संस्थाओं में गुरुकुल के स्नातक अध्यापन कार्य कर सकेंगे।

(३) देश की जनता को धर्मोपदेश देने वाले सच्चे प्रचारक होंगे

(४) जो बड़ी बड़ी फीसे नहीं भर सकते, ऐसे गरीब लोगों के लिये हमदर्द वैद्य बनेंगे।

(५) सचाई से कृषि तथा व्यापार करते हुए देशकी समृद्धि का कारण बनेंगे।

(६) क्रियात्मक विज्ञान तथा कलाकौशल द्वारा आर्थिक उन्नति करेंगे।

(७) सरकारी नौकरियों में देश के अच्छे दिमाग खप जाते हैं, यह न होकर राष्ट्र सेवा में स्नातकों का उपयोग होगा।

(८) पाश्चात्य संस्कृति के बहाव में जाती हुई प्रजा को वैदिक संस्कृति का मार्ग दिखायेंगे।

(९) आश्रम धर्मों का पालन करके समाज रचना में जीवन संचार करने वाले होंगे।

(१०) गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को क्रियान्वित करके महर्षि दयानन्द का ऋण अदा करेंगे।

(११) समस्त विश्व में आर्य धर्म की ध्वजा फैलाएंगे। नास्तिकता के अन्धकार को दूर करके आस्तिकता के प्रकाश का विस्तार करेंगे।

(१२) धर्म समाज और राजनीति में विद्यमान पाखण्ड का नाश करेंगे और सच्चे मनु-कानून बनाने वाले-Legislator बनेंगे।

(१३) सामाजिक रूढ़ियों के बन्धनों को तोड़कर क्रान्तिकारक बनेंगे।

(१४) वेद का पुनरुद्धार करेंगे।

(१५) प्रजा में सामाजिक तथा धार्मिक उन्नति हो ऐसे उपायों का अवलम्बन करेंगे।

(१६) गुरुकुल के स्नातकों का वैयक्तिक जीवन उच्च और सादा होगा। वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में विभेद नहीं है, इस सचाई को वे अपने व्यवहार से प्रमाणित करेंगे।

(१७) ऐसे आदर्श विद्याव्रत स्नातक होंगे जो वेद तथा अन्य आर्य ग्रन्थों में वर्णित ब्रह्मचर्य को प्रत्यक्ष करके बतलाएंगे।

इन उद्देश्यों तथा भावी आशाओं के साथ आज से चार दशाब्दी पूर्व महात्मा मुंशीराम जी ने गुरुकुल की स्थापना की थी। गुरुकुल रूपी परीक्षण चल रहा था। इस बीच में इस संस्था के लिये तटस्थ विद्वानों तथा विचारकों ने जो विचार प्रगट किये थे तथा जिन आशाओं का सेवन किया था वे मनन योग्य हैं। बरतानवी (British) साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्रीयुत मैक्डानल्ड ने गुरुकुल पर अपनी सम्मति देते हुए कहा था कि "गुरुकुल आर्य संस्कृति की भावना को फैलाने वाली एक धार्मिक संस्था है। इस संस्था में शिक्षणालय तथा मठ इन दोनों के तत्वों का संगम है। इस संस्था में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं, विद्यार्थियों को सरकारी पाठ्य पुस्तकें नहीं पढ़ाई जाती और न ही उन्हें सरकारी उपाधि मिलती है, भारतीय शिक्षण में यह एक असाधारण क्रान्ति है।" अमेरीकन प्रीहर तथा शिक्षाशास्त्र में माहिर श्रीयुत मायरन ऐच. फैल्पसने गुरुकुलमें रहकर सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद जो लेख लिखे थे उनका सारांश यह है:- "पृथ्वी के एक निवासी के रूप में शिक्षण और कला की खोज में मैं अपने घर से निकला था। मैंने सारे हिन्दुस्तान का शिक्षण संस्थाओं का निरीक्षण किया परन्तु गुरु शिष्य का जो गाढ़ सम्बन्ध मुझे गुरुकुल में दिखाई दिया वैसा अन्यत्र नहीं मिला। हिन्दुस्तान के सरकारी शिक्षणालय हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज बनाने के कारखाने हैं। वर्तमान युग के लिये हरिद्वार का गुरुकुल एक नवीन तथा आह्लाद कारक संस्था है। इसमें बौद्धिक तथा नैतिक शिक्षण का सुन्दर समन्वय है। यहां विद्यार्थी अपने अन्दर सादगी ब्रह्मचर्य स्वाभिमान तथा आज्ञा पालन आदि गुणों का विकास करते हैं। ब्रह्मचारी आपस में एक दूसरे के सुख दुःख में हिस्सा बंटाते हैं। ब्रह्मचारी सख्त मजदूरी का काम भी कर सकते हैं। ब्रह्मचारियों के दिमाग में किसी खास मजहब के सिद्धान्त ठूंसे जाते हों, ऐसी बात नहीं। उनके सामने वैदिक धर्म का आदर्श रखा जाता है। नियन्त्रण कायम करने के लिये धर्ममार्ग द्वारा ब्रह्मचारियों के अन्तःकरण को प्रेरित किया जाता है।

(असमाप्त)

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

(ले०—श्री धीरेश विद्यालङ्कार)

(३)

यों तो शिक्षा स्वयमेव एक महान शास्त्र है परन्तु बाल शिक्षा की समस्या तो इस शास्त्र की 'अथातो शिक्षा जिज्ञासा' होने से आदिम, प्राथमिक अतएव आधारभूत अनुक्रमणी है। यहीं पर हम उस रचना की नींव डालने का उपक्रम करते हैं जो बालक को मनुष्य तथा मनुष्य से देवपन प्राप्त कराने में सहायक होता है। बालक क्या है? यही न कि लघु रूप में मनुष्य कविवर। वर्ड्सवर्थ ने जो (The child is father of the man) कहा है वह इसी स्थापना को पुष्ट करता है कि बालक में मनुष्य बनने की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है। परन्तु जब हम गृह या शाला में या अन्य संबन्धों में बालक के साथ परिचय में आते हैं तब हमें यह मालूम होता है कि हम एक अर्धविकसित, सुकोमल, चञ्चल तथा क्षण २ में सहायता की इच्छा रखने वाले जीव के संपर्क में हैं। यह जीवन भी ऐसा वैसा नहीं है, विविध मांगें हैं, नाना आवश्यकतायें हैं, अद्भुत कौतुक है, चकरा देने वाली शंकाएं और पदे २ जिज्ञासा की अवतरणिका उसके नख शिख से उतर कर कभी माता-पिता को, कभी अध्यापक-उपदेशक को, और कभी गुरु और आचार्य को परेशान करने लगती है। ध्यान से देखा जाय तो यहीं से बाल शिक्षा का प्रयोग प्रारम्भ होता है। अब बालक को उसके माता-पिता ने अपने घर-गांव और शहर की चार दिवारी से अलग कर एक बिलकुल ही नई तथा घर से एक दम भिन्न परिस्थिति में लाकर उसकी जगह उस आश्रम, आंगन व खेल कूद के चौपाल के स्थान में विद्याशाला, गांव या शहर के बदले गुरुकुल को परिवार तथा माता-

पिता की जगह गुरु और अध्यापक के रूप में उसकी पहिली परिस्थिति को बदल दिया है। इस परिस्थिति के परिवर्तन से यह क्या लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तथा बालक के मन पर इसका कैसा प्रभाव पड़ना संभव है इस पर भी विचार करलें। पहले हम यह देखलें कि मानव जीवन में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों और कब होती है। परिवर्तन की आवश्यकता से तो इन्कार नहीं किया जा सकता; हां,उसका समुचित रूप कैसा हो इस पर मत भेद हो सकता है। परिवर्तन की जरूरत—हमें समझ लेना चाहिये-मानवीय जीवन की मांग है, यह मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा है। परन्तु इसकी समग्री हमारे लिये लाभ कारी होनी चाहिये—इसका प्रयोजन हमारा विकास और रंजन होना चाहिये और इसकी दिशा और क्षेत्र एक शब्द में कहें तो परिस्थिति, अनुकूल-सहायक और ज्ञान-कर्म की अभिवृद्धि के लिए उपयोगी होनी चाहिये। हमारे देश के दूसरे शिक्षणालयों में भी प्राइमरी-मिडल हाईस्कूल तथा कालेज (यूनिवर्सिटी के) शिक्षा के केन्द्रों के क्षेत्रों की विभिन्नता हमारी इस स्थापना को पुष्ट ही करती है कि जीवन की तरह शिक्षा में भी परिवर्तन तथा परिस्थिति का स्थान है और वह भी मनुष्य विकास में अपना प्रभाव रखता है। परिस्थिति में परिवर्तन आ जाने से कठिन से कठिन रोगों के शिकार-चाहे वह मानसिक अथवा शारीरिक रोग रहे हों—आसानी से चंगे होते देखे गये हैं। यही परस्थिति में परिवर्तन ला देने का गुर, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में लागू होता है। घर की चहार दीवारी में-घरेलू काम काज, घर गिरस्ती के तरह २ के रगड़े-झगड़े-बच्चों का रोना धोना और घर वालों के रोग-राग वहां रहने वाले को परेशान किये देते हैं। इस लिये यह समुचित समझा गया है कि नवीन ढङ्ग के कायाकल्प के लिए जो कि बाल शिक्षा की औषध द्वारा प्रारम्भ होना है—गुरुकुलों में भूमि तैयार की जाय। यह कुल की भूमियां उन सब अवांछित तथा दूषित वातावरणों से पृथक् होकर अपने नई स्वतन्त्र रूप से शिक्षा का प्रयोग प्रारम्भ करें।

शिक्षा के भिन्न २ प्रयोगों की सफलता में जहां उपयुक्त वातावरण का स्थान है वहां साथ ही शिक्षकों की दक्षता तथा शिक्षा क्रम की व्यवहार-परमार्थ-सिद्धता का स्थान भी उतना ही आवश्यक है। यह ठीक है कि आधुनिक तौर पर बसे हुए नगरों में जहां उचित शिक्षा के लिये उचित वातावरण की कमी है वहां साथ ही अधिकांश शिक्षकों का स्वार्थ परता तथा शिक्षा क्रम की दयनीय शिथिलता और विदेशीपन उससे भी अधिक शोचनीय है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में इन सब कमियों का स्थान नहीं चूंकि यहां की शिक्षा शाला कोई शिक्षा की हाट नहीं-कोई रोजगारी का कम्पनी नहीं, और नाहीं वह ख़ास ढर्रे के तालीम की टकसाल है कि जिस महायन्त्र के सब पुर्जे एक ही तरह चलते हों, एक ही तरह के टके को बनाने के लिये एक ही सांचे में ढाल दिये गए हों। ज़रा गौर तो कीजिये कि छह साल के बच्चे को शिक्षा का प्रारम्भ निरी परदेसी भाषा में हो उसकी लिपि के लिये अक्षर रचना बिलकुल अजनबी ढंग से हो, गिनती के लिये मुख का बोल-बनाना एक दम सात समुन्दर पार वालों का सा हो और अङ्क लेखन की कला भी उनकी देशी लिपि से मिलती जुलती न हो। क्या इस प्रकार की मोडर्न एजूकेशन की नींव हमें हमारे निजी शिक्षा के ध्येय को पूरा करने में सहायक होगी? यदि हो भी गयी तो कल्पना कीजिये कि कितने अधकचरे रूप में यह हमारे जातीय शिक्षा क्रम में रच सकेगी, फिट हो सकेगी। (असमाप्त)

गीता

(ले० श्री धर्मपाल)

यह लेख गुरुकुलीय साहित्य परिषद् में पढ़ा गया था। स०]

मनुष्य शान्ति चाहता है। वह चाहता है सब चिन्ताओं से मुक्त होना। संसार का हाहाकार सुनते २ वह घबरा जाता है, और किसी ऐसी अवस्था को प्राप्त करना चाहता है, जहां वह अकेला हो दूसरा कोई न हो, भगवान को छोड़ कर। पर मीठा मुंह करने के लिये सिर्फ गुड़ गुड़ चिल्लाने से वह मीठा नहीं होता। यदि उसे शांति प्राप्त करनी हो तो उसे गीता का सहारा लेना चाहिए।

गीता एक व्यक्ति के उस समय के वाक्य हैं, जब वह अपनी उत्कृष्ट अवस्था में था। हिन्दू जाति के आधार भूत जो तीन महान ग्रन्थ हैं, उनमें गीता का सब से ऊंचा स्थान है। गीता का जितना हिन्दू जाति में प्रचार है, और जितना इसका स्वाध्याय लाखों मनुष्य करते हैं, उतना और किसी ग्रंथ का नहीं। यहां तक कि इसका सब भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। कई योरोपियन विद्वानों ने कहा है, कि हमारे जीवन ने तभी पलटा खाया, जब हम सत्य की खोज में गीता रूपी अमृत को प्राप्त कर सके।

किसी ग्रन्थ की उत्कृष्टता का पता लगाते समय निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है, उसका आरम्भ और समाप्ति कैसी है? उस में क्या २ विषय आते हैं। उस पुस्तक में नवीनता क्या है, और उदाहरणों की सार्थकता कितनी है।

गीता का आरम्भ अर्जुन के युद्ध करने से मना करने से होता है जब वह अपने बन्धु बान्धवों तथा गुरुजनों को सामने लड़ने के लिये खड़ा देखता है, वह कहता है—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन

इस प्रकार उसे युद्ध से उपरत देख कर भगवान कृष्ण बार २ कर्म करने का उपदेश देते हैं, और युद्ध करने को प्रेरित करते हैं। वह कहते हैं कि कर्म न करने से संसार का नाश हो जायगा। क्यों कि लोग 'महाजनो येनगतः सपन्था' को चरितार्थ करते हैं। इस लिये वे अर्जुन को कहते हैं—'योगस्थः कुरुकर्माणि' 'तस्माद्युद्धस्व भारत' 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः' और इसका

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गुरुकुल

२२ आषाढ़ शुक्रवार १९९७

गुरुकुल में सैनिक कवायद

[श्री मुख्याधिष्ठाता जी के सभापतित्व में १ जौलाई को सब गुरुकुल वासियों की एक सभा हुई जिस में सर्व सम्मति से यह निश्चय किया गया कि गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी ही नहीं किन्तु सबके सब कर्मचारी भी एक घंटा सैनिक कवायद किया करें। इस प्रकरण में कहते हुये गत शनिवार (२९ जून) को श्री आचार्य जी ने जो कुछ ब्रह्मचारियों को कहा वह नीचे दिया जाता है—सम्पादक]

कई कुलवासियों ने मुझे गुरुकुल में सैनिक शिक्षा के विषय में कहा है। एक दो स्नातक बन्धुओं के पत्र भी इस सम्बन्ध में मुझे मिले हैं। एक व्यायाम प्रेमी और सैनिक रुचि रखने वाले स्नातक भाई ने एक विस्तृत पत्र लिखा है, और क्योंकि वे इस विषयक मेरी रुचि को जानते हैं इस लिये उन्होंने अपने पत्र के प्रारम्भ में लिखा है, "मुझे विश्वास तो यह है कि आप इस तरफ पहले से ही जागरूक होंगे फिर भी मैं अपने सन्तोष के लिये आप की सेवा में कुछ कहूंगा" और अन्त में लिखा है, "यह तो मुझे विश्वास है कि आप की दृष्टि में ऊपर की सभी बातें देर से हैं और उनको पूर्ण करने के लिये आप निरन्तर प्रयत्नशील हैं।" सो यह ठीक है कि मुझे सैनिक नियन्त्रण में विश्वास है और कवायद, सब व्यायाम गुरुकुल में अच्छी तरह चलें इसके लिये मैं सदा प्रयत्नशील रहा हूं। कुछ वर्ष पहले मैंने सामूहिक कवायद छोटे बड़े सब ब्रह्मचारियों के लिये बाधित कर दी थी। मैं स्वयं उसमें सम्मिलित होता था। अन्य उपाध्यायों को भी इसमें सम्मिलित होने की प्रेरणा की थी और कई उपाध्याय इस में सम्मिलित होते भी थे। पर पीछे से यह छूट गई। इसी तरह एक बार कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को श्री नारायण राव जी की अध्यक्षता में स्तूप निर्माण आदि व्यवस्था व नियन्त्रण पूर्ण एवं दर्शनीय व्यायामों का अभ्यासी बनाया जाय इसका बड़े यत्न के साथ आयोजन किया था। इस सब का उद्देश्य यही था कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में उत्तम सैनिक भाव उत्पन्न किया जाय।

पर सैनिक शिक्षा का तात्पर्य क्या है यह समझ लेने की आवश्यकता है। असल में सैनिक शिक्षण द्वारा हम लोग जो कुछ सीखते हैं वह है मिलकर व्यवस्था पूर्वक संघशक्ति का उपयोग करना। यही सैनिक शिक्षा का तत्व है। इसी में सैनिक शिक्षा का बल है। अनुशासन आज्ञापालन, नियमित जीवन और अप्रमत्त होकर कार्य तत्परता सैनिक शक्ति की जान है। इस शक्ति द्वारा आगे हम हिंसा करें या अहिंसा, इस शक्ति का दूसरों की भलाई के लिये सदुपयोग करें या अपने स्वार्थ के लिये दुरुपयोग करें यह दूसरी बात है। यह तो एक शक्ति है जो अपने आपमें न तो अच्छी है न बुरी। पर अन्य शक्तियों की तरह इसका सदुपयोग भी किया जा सकता है दुरुपयोग भी।

हम सैनिक कवायद में हम बूट और जुराब पहनते हैं या नहीं, कन्धों पर बन्दूक रखते हैं या लाठी या कुछ नहीं यह हमारे लिये कुछ भी महत्त्व का नहीं है। ये बातें इस पर आश्रय रखती हैं कि हम अपनी संघशक्ति का कैसा उपयोग करना चाहते हैं। पर सब लोगों का एक ही वेष हो यह जरूर एक काम की बात है। इस एक रूप दीखने का अपने ऊपर और दूसरों पर एक-संघ होने का प्रभाव पड़ता है—अपने अन्दर संघभाव बढ़ता है और दूसरों पर हमारी संघशक्ति और एकता का आतंक जमता है। यद्यपि किसी भी प्रकार की बाहरी एकता को मैं विशेष महत्त्व नहीं देता हूं और यह बात मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि यदि हमारे मनों की एकता हो, हम एक भाव से प्रेरित हों, हमारा एक ही ध्येय हो फिर चाहे हमारी पोशाक आदि की बाह्य एकता बिलकुल न हो तो भी यह आन्तरिक एकता बाह्य एकता की अपेक्षा हजरों लाखों गुना बलवती होगी। फिर भी मैं सैनिक कवायद में एक जैसी पोशाक आदि बातों के महत्त्व को समझता हूँ। बाहरी चीजों का भी अन्दर असर होता है। हठ योग में बाह्य क्रियाओं द्वारा अन्तर प्राण या मन पर प्रभाव डाला जाता है। इसलिये बाहिरी एकता का भी एक महत्त्व है। वह एक पोशाक, एक वर्दी यथा संभव सब सुलभ और सादी होनी चाहिये।

पर सब से ज्यादह महत्त्व की बात यह है कि हमारी यह सैनिक कवायद केवल उस एकाध घण्टे तक ही सीमित न हो जितनी देर यह मैदान में की जाती है किन्तु हमारे दिन रात के सम्पूर्ण जीवन में व्यापने वाली हो। यदि वह सैनिक कवायद उस एकाध घण्टे के बाद भुला दी जाय तो वह किसी भी काम की नहीं है। असल में तो अब भी तुम्हारा जीवन सैनिकों जैसा हो इसी आशय से गुरुकुल की दिनचर्या तथा अन्य नियम बने हुए हैं। पर उनका पालन सैनिक के तौर पर नहीं होता है। तुम्हारे कवायद के समय में 'दक्ष' और 'वाम' कहने पर दायां और बायां पैर आगे बढ़े, वैसे ही तुम्हारे दिनभर के नियमबद्ध कार्यों में आज्ञा पालन, समय पालन और कार्य तत्परता क्यों नहीं होना चाहिये? प्रात: जब चार-साढ़े चार बजे की घण्टी बजे तब सब ब्रह्मचारी इतनी अच्छी तरह से जाग जाय जैसे कि दिन के १० बजे जागे हुए होते हैं, और प्रात: कृत्यों में लग जाय और रात्रि को साढ़े नौ बजे सब इतनी अच्छी तरह सो जायं कि बाहर से देखने वाले को मालूम पड़े कि आश्रम में कोई आदमी रहता ही नहीं है। जब विद्यालय की घण्टी बजे तो सब

ब्रह्मचारी प्रार्थना-स्थान के लिये चल पड़ें और जब टकोर बजे तब सबके सब पहुंचे हुए हों। संध्या और अग्निहोत्र में सब ब्रह्मचारी व्यवस्थित रूप से चेतन होकर बैठे हुए हों और एक स्वर से मन्त्रोच्चारण कर रहे हों। प्रत्येक सार्वजनिक स्थान पर सब नियत समय पर पहुंच जाते हों। भोजन के अनन्तर अपने बर्तन मांजते हुए क्रम से व्यवस्था पूर्वक एक दूसरे को इस तरह स्थान देते जांय कि बिना किसी कोलाहल के चुपचाप सब काम कम से कम समय में अच्छी तरह से सम्पन्न हो जायं। यह सब सैनिक कवायद ही तो है। तुम लोग ऊंचे दर्जे के सैनिक अर्थात् धार्मिक सैनिक बनने के लिये यहां आये हो और उसके लिये जितनी बाह्य कवायद सीखने की जरूरत है उसका अवसर तुम्हें सदा मिला हुआ है। प्रातः जागरण की जो घण्टी बजती है उसे तुम सेना नायक की उठ खड़े होने की सीटी या बिगुल समझो, रात को जो सोने की घण्टी होती है उसकी आवाज में तुम सुनो मैं ही तुम में से प्रत्येक को आज्ञा दे रहा हूँ कि 'सो जाओ'–जब किसी भी कार्य की टकोर बजे तो समझो सेना नायक का उपस्थित होने का हुक्म हो गया है।

एक बार शायद मथुरा-शताब्दि के समय मेरा आग्रह था कि महाविद्यालय के ब्रह्मचारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पंक्तिबद्ध होकर ही जायें तो एक ब्रह्मचारी मुझे कहने लगा कि "यह क्या, हम भेड़ों की तरह एक के पीछे एक चलते हैं।" मैंने कहा 'भेड़ों की तरह क्यों कहते हो, सिपाही (सैनिक) की तरह कहो'। तुम भेड़ और सैनिक का भेद समझे? । देखो, दो अंग्रेज यदि टहलने निकलते हैं तो अक्सर उनके कदम इकट्ठे उठते हैं, वे कदम मिलाकर चलते हैं। यह इस बातका द्योतक है कि मिलकर व्यवस्थित तौर से काम करने का गुण उनके नस नस में समा गया है, उनका स्वभाव हो गया है। यदि हमारे चलते हुवे अनायास कदम मिल जांय तो भी हम उन्हें बिगाड़ देंगे–हमें ऐसा लगेगा कि मानों कदम मिलाने से हमारी स्वाधीनता में फर्क पड़ता है। असली बात यह है कि हम स्वाधीनता को जानते नहीं, हम तामसिक हैं। कोई नयी बात करना हमारे लिये दूभर है। जो कुछ चलता है वैसा ही चलते रहने में हम जड़ आनन्द पाते हैं। यही भेड़ों की मनोवृत्ति है। भेडे एक दूसरे के पीछे तो चलती है, पर अन्धी होकर जड़ता वश और पराधीनतावश। इस लिये उनकी यदि दिशा बदलनी हो तो वे एक हुक्म पर सिपाहियों की तरह एकदम दिशा नहीं बदल सकतीं। सिपाही स्वाधीन होकर जब जिधर चाहे उधर ही मिलकर चल सकते हैं। सिपाहियों को कदम मिलाकर चलने में मजा आता है, पराधीनता नहीं लगती। सब बात मनोवृत्ति की है। यदि तुम्हारी मनोवृत्ति भेड़ोंकी सी है अर्थात् तामसिक रूप में एक दूसरे का अनुगमन करके चलते चले जाने की है तो तुम्हें जबरदस्ती कवायद कराने से भी तुम्हारा कुछ लाभ नहीं होगा। यदि सैनिक की मनोवृत्ति है तो गुरुकुलके वर्तमान व्यवस्थामें से ही तुम सच्चे सैनिक बन निकलोगे। अपने अन्दर सैनिक मनोवृत्ति लाओ अर्थात् कठोर अनुशासन, अचूक आज्ञा पालन, नियंत्रित संयत जीवन, बिना प्रमाद के अपने नियत कार्य को ठीक-ठीक पूरा करने की तत्परता लाओ। तो देखो तुम में ऐसी महान शक्ति प्रकट होगी जो आजकल के घोर से घोर हथियारों से सजी सेना को भी परास्त कर सकेगी। सच्ची बात तो यह है कि (आज कल का) सैनिक बनना आसान है, (प्राचीन काल का) शिष्य बनना बहुत कठिन है। जिस ब्रह्मचर्य के तप की, जिस आन्तरिक (मन और हृदय संबन्धी) एकता और अनुशासन की, जिस सर्वात्मना समर्पण की शिष्य से-वैदिक ब्रह्मचारी से-आशा की जाती है उसका करोड़वां भाग भी फौज के सैनिक से नहीं की जाती, नहीं की जा सकती। इसी लिये मैं तुम्हें ऊंचे दर्जे का सैनिक कहता हूं। आजकल सैनिक शिक्षा की हवा चल रही है तो तुम्हें भी जोश है-यह जोश कब तक रहेगा यह पता नहीं-इस जोश का लाभ उठाकर तुम कुछ अधिक नियंत्रित, संयत, समय-पालक शिष्य हो जाओ तो अच्छा है। नहीं तो असल में यह सैनिक कवायद की व्यवस्था तो तुम्हारे सच्चे ब्रह्मचारी बनने का एक बाह्य और छोटा सा साधन ही है।

'गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा'

उपर्युक्त शीर्षक से जो एक लेखमाला 'गुरुकुल' में गत दो अंकों से छप रही है उसके विषयमें इतना परिचय दे देना आवश्यक है कि उस लेखमाला के लेखक श्रीयुत दिनेश जी त्रिवेदी हैं जो गुरुकुल कांगड़ी में बाल्यावस्था में पढ़ते रहे हैं,, जिनके भाई प० चन्द्रकान्त जो गुरुकुल के स्नातक हुए हैं और जिनका पुत्र इस समय गुरुकुल कांगड़ी में विद्या प्राप्त कर रहा है। इनके पिता जी उन पुराने गिने चुने आर्यपुरुषों में से हैं जो कि गुजरात में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रेम के लिये प्रसिद्ध थे। आशा है गुरुकुल के पाठक इस लेख माला को उचित ध्यान से पढ़ेंगे और एक गुरुकुल हितैषी के विचारों से लाभ उठायेंगे।

भ्रम शोधन--'गुरुकुल' के विगत अंक स० १०में इसी "गुरुकुलों पर उमड़ती कालीघटा" लेखमाला के एक लेख की पिछली पंक्तियों में "हिजरतियों के बालक" का अनुवाद "अफ्रीका तथा अन्य दूर देशों में गये हुए भारतीयों के बालक" इस रूप में हुआ है। इस कारण मतिभ्रम की सम्भावना है। लेखक का कथन है कि इसका अभिप्राय बारडोली के उन किसानों से है जो सन् ३० के सत्याग्रह के समय टैक्स न अदा करने के कारण जमीनें जप्त होने पर हिजरत करके देसी रियासतों में चले गये थे। उन माता पिताओं के बालकों के अध्ययनके लिये किसी स्थान पर सहूलियत न थी। वह सुगमता गुरुकुल सोनगढ़ में दी गई थी।

प्रश्न इसी प्रकार से होता है, अर्जुन कहता है नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धात्वत प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मिगत संदेहः करिष्ये वचनंतव
गीता का महत्व इस श्लोक से स्पष्ट है।

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

गीता में कर्मयोग का मुख्य रूप से प्रतिपादन है। गीता में कर्म शब्द प्रत्येक कर्म के लिये आया है, जो मनुष्य प्रति दिन करता है। और योग, मेल उपाय आदि अर्थों में आया है।

योग का अर्थ करते हुये भगवान कहते हैं—
'योगः कर्मसु कौशलं' 'समत्वं योग उच्यते'

कर्मों में कुशलता और दुःख सुख में समानता ही योग है। कर्मयोग का इकट्ठा अर्थ हुआ कि कर्मों को किस कुशलता से किया जाय कि हम उसका यथार्थ उपयोग उठा सकें।

शास्त्रों में हमारे कर्तव्य कर्म नियम और यम बनाये हैं। इनको ठीक २ करता हुआ ही मनुष्य अपनी तथा समाज की उन्नति कर सकता है। गीता इन्हीं इन कर्मों का ठीक २ प्रयोग बताती है। अहिंसा का तात्पर्य यह नहीं कि डाकू घर लूट लें और तुम उसे हाथ न लगाओ। यह आततायी है—भगवान कहते हैं 'इन आततायियों को मार दो' इसी प्रकार अन्य कर्तव्य कर्मों के विषय में हैं। कर्तव्य कर्म करते हुये आत्मा की आवाज का ख्याल रखना चाहिये।

कर्मयोग के तत्व बतलाते हुये कृष्ण कहतेहैं—

कर्मण्यकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्मयः
सबुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।

कर्म में अकर्म, अकर्म में कर्मदेखने वालाही बुद्धिमान और सब काम करता हुआ भी योगी है। कर्तव्य कर्म क्या है, और छोड़ने योग्य कर्म क्या है, इस समस्या का हल विद्वान भी नहीं कर सके। वास्तव में कर्म को जानना चाहिये अकर्म को भी जाना चाहिये, तथा विकर्म भी जानना आवश्यक है, तभी मनुष्य सच्चा कर्मयोगी बन सकता है।

कर्मयोग का यदि संक्षेप में अर्थ कहा जाय तो फल की इच्छा को न रखते हुये कर्म करना है। सन्यासी का लक्षण करते हुये भगवान कहते हैं—"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। ससन्यासी च योगी च न निरग्नि र्नचाक्रियः॥"

निष्फल कर्म करने वाला ही सन्यासी, अग्निहोत्र छोड़ देने वाला तथा अक्रिय मनुष्य सन्यासी नहीं। सात्त्विक त्याग यही है कि कर्तव्य कर्म को अनासक्त होकर किया जाय।

श्रीकृष्ण के मत में तो मनुष्य कर्म छोड़ ही नहीं सकता, अतः मनुष्य ने जब बाधित होकर कर्म करने ही हैं, तो वह क्यों न अनासक्त होकर तथा फलाकांक्षा न करता हुआ, कर्म करे।

दूसरा विषय ज्ञानयोग या सांख्य योग है। कर्मयोग और सांख्ययोग मार्ग भिन्न हैं,पर उद्देश्य एक है"यत्सांख्यैः गम्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते"।

जब अर्जुन आधिभौतिक विवेचन से न माना तो भगवान ने उसे ज्ञानयोग द्वारा समझाना प्रारम्भ किया। ज्ञानयोग का सीधा साधा तात्पर्य यह है, कि अपने विषय में ठीक २ ज्ञान होना। इस के लिये कृष्ण कहते हैं कि आत्मा तो नष्ट नहीं होता, यह शरीर ही नाश को प्राप्त होता है, और होवेगा जन्मता है। जब तू जानता है, कि इसने फिर पैदा होना है, तो अपने कर्तव्य कर्म का पालन कर।

अर्जुनकी युद्ध न करनेकी यही युक्ति थी कि इन बन्धु बान्धव तथा पूज्य गुरुओं को मार कर अपने को सुखी नहीं देखना चाहता। इसी का तत्वज्ञान कराते हुये भगवान ने पहले सांख्य योग का उपदेश दिया है। उस में उसे स्पष्ट बता दिया है, कि आत्मा तो अजर अमर अविनाशी है, फिर तू किसे मारने चला है, यह शरीर तो आत्मा का चोला है, घर है। आज नहीं तो कल यह अपना घर बदलेगा ही।

तीसरा योग राजयोग है, जिसे पातंजल योग भी कहते हैं। राजयोग का कार्यक्षेत्र अत्यन्त महान है। राजयोग द्वारा पहले हम जानते हैं कि दुःख क्या है? फिर इस दुःख का कारण क्या है? तीसरा इस दुःखसे छूटना। चौथा छूटने का उपाय "अर्थात् हेय, हेतु, हान, हानोपाय यह चार चीज़ें ही मनुष्य को मोक्ष दिला सकती हैं।

दुःखों का कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग ही है। जब द्रष्टा मनुष्य दृश्य प्रकृति में फंस जाता है, अर्थात् प्रकृति के मन बुद्धि चित्त अहंकारादि से वह पराभूत हो जाता है, और उसकी क्रिया को अज्ञान वश अपनी क्रिया समझता है। यह अज्ञान ही दुःख का कारण है। लेकिन जब वह परमात्मा के साथ एक हो जाता है, तब उसके लिये सुखों की सृष्टि का सर्जन होता है। यही भाव ओ३म् द्वारा स्पष्ट है, ओ३म् में अउम परमेश्वर जीव, प्रकृति के लिये क्रमशः हैं. जब उ जीव प्रकृति में फंस जाता है, तब प्रकृति उसे नीचे दबा देती है, और वह म् का दास बन जाता है, पर जब वह ईश्वर से लगन लगाता है तो ईश्वर उसे सिर माथे पर चढ़ाता है। यही राजयोग का आशय है।

मन को जीतने का उपाय बताते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'

अभ्यास से तथा वैराग्य से ही यह मन अपने हाथ की कठपुतली बन जाता है, जिस प्रकार कठपुतली जिधर चाहें नचा सकते हैं, उसी प्रकार यह हमारे काबू में होता है।

यह मन काम क्रोध लोभादि शत्रुओं पर विजय पाने से ही निर्मल होता है यह कामादि शत्रु, रजोगुण से पैदा हुये २ मनुष्य को अति दुःख पहुंचाते हैं, व अस्थिर चित्त, चिन्ताकुल होकर अपने धैर्य को खो बैठता है, इससे मुक्ति पाकर ही मनुष्य राजयोग का अधिकारी है।

स्वच्छ स्थान पर आसन जमा कर मन को अपने वश में करता हुआ आत्मा की शुद्धि के लिये योग में जुट जाये और परमात्मा का साक्षात्कार करे।

चौथा भक्तियोग है—परमात्मा के प्रति अतिशय प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भक्ति के लिये सब से पहले यह प्रश्न उठता है, कि परमात्मा तो अव्यक्त है, उस में प्रेम होना अत्यन्त कठिन है। व्यक्त की प्रार्थना तथा उस में प्रेम सरलता से होता है। जब हम परमात्मा को माता, पिता आदि सम्बन्धरूप प्रार्थना करते हैं, तब हम व्यक्त रूप से ईश्वर की प्रार्थना कर रहे होते हैं, लेकिन जब ब्रह्म के गुणों में तन्मय होने की कोशिश करते हैं, कुछ याचना नहीं करते, सिर्फ उसमें तल्लीन होना चाहते हैं यह अव्यक्त की प्रार्थना है।

इस के लिये भगवान कहते हैं—अव्यक्त की उपासना में क्लेश होता है, क्यों कि यह कष्ट साध्य है। चार प्रकार के भजन करने वाले दुःखी, जिज्ञासु, स्वार्थी और ज्ञानी में ज्ञानीश्रेष्ठ हैं। वही अव्यक्तकी उपासनाकर सकतेहैं। दूसरी बात यह हो सकती है कि हम परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि की भक्ति करें। सृष्टि में सर्वोत्तम वस्तु मनुष्य है, मनुष्य मात्र की निष्काम सेवा ही भगवानकी भक्ति है। 'ते प्राप्नु-वन्ति मामेव' वे भी भगवान को प्राप्त करते हैं।

भगवान ने भक्ति की चार श्रेणियां बताई हैं

१. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय-मेरे में ही मन और बुद्धि लगा दे।

२. 'अभ्यासयोगेन ततोमामिच्छाप्तुं धनंजय'-अभ्यास योग से मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर। अर्थात राजयोग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि) को करता हुआ मुझे प्राप्त कर

३ 'मत्कर्म परमो भव' राजयोग में असमर्थ है, तो मेरी प्राप्ति के लिये शास्त्रों में बताये, ज्ञान, ध्यान, भजन, पूजापाठ आदि २ का आचरण कर।

४. यह भी न कर सके तो 'सर्व कर्म फलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्' कर्म फल की इच्छा न करता हुआ लोकोपकार में जीवन बिता दे। परन्तु इन सब को करते हुये श्रद्धा का होना आवश्यक है।

दूसरा साधन सत्यता है। पाखण्ड रहित होकर हम परमात्मा का शुभ दर्शन हो सकता है।

तीसरा साधन आत्म समर्पण है। भगवान कहते हैं-'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' यह आत्म समर्पण है। भक्ति तब तक उपलब्ध नहीं हो सकती जब तक श्रद्धा, सत्यता, आत्म समर्पण तीनों गुण हृदयंगम नहीं हो जाते। यही भक्ति मार्ग है।

अब गीता और वैदिक धर्म की तुलना कर अपने निबन्ध को समाप्त करूंगा—

१. वैदिकधर्म में ईश्वर जीव प्रकृति को अनादि कहा है, तथा इन सब को अलग २ सत्ता मानता हुआ यह त्रैतवादी धर्म है। गीता में भी—

'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'

प्रकृति और पुरुष को अनादि कहा है। तथा 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः' से परमात्मा को कह कर त्रैतवाद की स्थापना की है।

२. दूसरे सिद्धांत वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इस विषय में भगवान कहते हैं—'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवं' वेद को ईश्वर से पैदा हुआ ज्ञान । 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कह कर भी वेदज्ञान स्वीकार किया है। 'ब्राह्मणास्तेनवेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा' आदि वाक्यों से स्पष्ट होता है, कि भगवान कृष्ण वेद को वैदिक धर्मियों के समान ही मानते थे।

३. तीसरा सिद्धांत 'जीवन कर्ममय है'—जब तक जीवन है तब तक ज्ञानयुक्त कर्म करना जरूरी है। गीता का तत्व इसी सिद्धान्त में छिपा है। सब ब्रह्मज्ञान देकर भी भगवान अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करते हैं अर्थात् भगवान कर्म को विशेष महत्व देते हैं।

४. चौथा जीवन शरीर बुद्धि मन और आत्मा के समुदाय का नाम है सिद्धान्त है। इस लिये इन सब का एक साथ उज्वल होना आवश्यक है। वैदिक धर्म का उद्देश्य यही है कि शारीरिक सामाजिक आत्मिक उन्नति साथ २ होनी चाहिये। इसका दूसरा अर्थ ज्ञान और कर्म का समुच्चय ही मनुष्य का ध्येय है—कृष्ण कहते हैं-'एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।' दिल दिमाग का इकट्ठा काम करना ही मनुष्य जीवन को सार्थक बनाता है। सूखा ज्ञान या विचार रहित कर्म दोनों व्यर्थ हैं।

५. पांचवां सिद्धान्त है-प्राणीमात्र की सेवा तथा उसके साथ प्रेम ही ईश्वर की सेवा तथा उसके साथ प्रेम करना है-गीता में—'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रःकरुण एव च' इसी सिद्धान्त का द्योतक है।

६. छठा वर्णव्यवस्था गुण कर्मानुसार है। भगवान कहते हैं-

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'

चारों वर्णों को गुण कर्मानुसार मैंने बनाया है।

इस प्रकार गीता वैदिकधर्म के मुख्य २ सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में विशेष रूप से सहायक है।

गीता का अधिकतर क्षेत्र मानुषी प्रकृति के अनुकूल है और इस लिये इस ग्रन्थ का प्रचार सारे संसार में है। जितनी बार इसे पढ़िये यह ग्रन्थ नये विचार और नई भावनायें पैदा करता है।

गुरुकुल समाचार

ब्र० दयानन्द १९ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० जगदीश ११ श्रेणी व्रण, ब्र० सत्यानन्द ५ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० धर्मेन्द्र ४ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० विद्याभूषण २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० सोमदत्त २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० मनमोहन १ श्रेणी चोट, ब्र० रूपनारायण २ श्रेणी चोट, ब्र० रामचन्द्र १ श्रेणी चोट, ब्र० सूर्यप्रकाश ३ श्रेणी चोट, ब्र० महेन्द्र ५ श्रेणी व्रण, ब्र० रामप्रकाश ३ श्रेणी Mumps ब्र० जीवन प्रकाश ४ श्रेणी Mumps।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० दयानन्द तथा धर्मेन्द्र को अभी ज्वर है। आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आजकल वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाने से मौसम अच्छा होगया है। अधिकतम तापमान १०३° फा० रहता है।——

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म् *
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"
Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २६ आषाढ़ १९९७; १२ जौलाई १९४०   [संख्या १३

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी; अनुवादक—
श्री धर्मराज वेदालंकार]

(४)

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूर्त स्वरूप

क. आदर्श स्थान

लुप्त होती हुई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की भावना को महर्षि दयानन्द ने फिर से उद्बुद्ध किया और इसे मूर्त स्वरूप देने का महान् कार्य महात्मा मुन्शीराम जी के द्वारा हुआ। भावना को मूर्त स्वरूप देना यह किसी सामान्य व्यक्ति का काम नहीं। जिस समय राष्ट्रीय शिक्षा की चारों तरफ कोई भी संभावना दिखाई नहीं देती थी उस समय वकील मुन्शीराम जी ने महर्षि दयानन्द की प्रेरणा को जीवन में ओत प्रोत करके तथा पण्डित गुरुदत्त जी द्वारा दिए गए आदर्श शिक्षक बनने के सन्देश को हृदय में धारण करके एक इस प्रकार की रचना की जिसे बड़े से बड़े शिक्षाविज्ञ भी नहीं कर सके थे। जमींदार मुन्शी अमनसिंह जी द्वारा दान दी हुई कांगड़ी गांव के पास की अरण्यभूमि में कुटियाएं बना कर फाल्गुन बदी १४, १९५८ की शाम को ४ बजे महात्मा मुन्शीराम जी ने भारत की अमृत बूटी का वपन किया। ब्रह्मचर्य, जाति रक्षा और धर्मोद्धार ये इस परीक्षण के मुख्य उद्देश्य थे। महात्मा जी ने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के द्वारा गुरुकुल के जिस कलेवर को घड़ा था उसी के नमूने पर आज भी समस्त भारत में गुरुकुलों की स्थापना हुई है। इसलिए हम इसी कांगड़ी गुरुकुल पर मुख्य रूप से विचार करेंगे। महात्मा जी ने गङ्गा नदी के किनारे को पसन्द किया। शहर के वातावरण से बहुत दूर, इतनी दूर जहां कि संस्कृति को नष्ट करने वाली कार्बोनिक एसिड गैस बिलकुल न लग सके जङ्गल में गुरुकुल की स्थापना की। भारतीय संस्कृति में भागीरथी, हिमालय और अरण्य इन तीन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न इस प्रकार के स्थल को पसन्द करने वाले दिमाग के आगे आज भी सहसा मस्तक झुक जाता है। अरण्य को नन्दनवन बना कर वायु परिवर्तन के लिए वहां बड़े बड़े बङ्गले बनवा देना सरल काम है परन्तु हिन्दुस्तान के विविध भागों से मां बापों की गोद में से उनके छोटे छोटे बच्चों को आकृष्ट करके जङ्गल की झोंपड़ियों में बसा देने का काम जिसने किया है वही इसकी कठिनाई को समझ सकता है। महात्मा जी ने गुरुकुल के लिए जिस स्थल को पसन्द किया वह ठीक ही था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का परीक्षण अगर प्रारम्भ में सफल हुआ तो इसी स्थान के कारण। जैसी साधना करनी हो उसके अनुसार साधन, साधना का स्थान तथा साधक की मनोवृत्ति ये सब बातें जरूरी हैं। महर्षि दयानन्द जी की प्रेरणा ब्रह्मचारी पैदा करने के लिये थी। उन्होंने कभी भी प्रचारक पैदा करने के कारखाने के रूप में गुरुकुल के अस्तित्व की आवश्यकता अनुभव की हो—ऐसा किसी भी आधार पर नहीं कहा जा सकता। अपने आदर्श जीवन से धर्मप्रचार का कार्य हो जाए तो भले हो जाए परन्तु गुरुकुल को मूर्त स्वरूप देने में संस्कृति रक्षा ही मुख्य उद्देश्य था। आर्यसमाज के आगे दो दृष्टि बिन्दु थे। १. संस्कृति रक्षा और २. धर्मप्रचार; अर्थात् आर्यसमाज उस समय दो रूपों में प्रगट हुआ था संस्कृति रक्षक के रूप में और प्रचारक संस्था के रूप में। अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित होकर जो महारथी धर्मप्रचार के लिए निकले थे उन्हें अपने अन्दर एक कमी अनुभव होती थी। वे यह सोचते थे कि अगर हम गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में से गुजरे होते तो आज हम ज्यादा समर्थ होकर धर्म प्रचार कर सकते। पण्डित गुरुदत्त जी, पण्डित लेखराम जी तथा मुन्शीराम जी आदि महारथी वैदिक धर्म के सन्देश का ग्रहण करके जब उसके प्रचार करने में लग गए तो उन्हें यह मालूम हुआ कि एक ऐसी साधना और साधनालय की आवश्यकता है जिस में से ऐसे व्यक्ति जन्म ले सकें जिनमें हमारी कमजोरियां न हों। इन महारथियों के मन में जो विचार आए होंगे उनका अनुमान करके शब्द चित्र के रूप में हम निम्न रूप में रख सकते हैं—"आज भारतवर्ष के बालकों पर पाश्चात्य शिक्षा का

जबरदस्त असर पड़ रहा है। हिन्दू धर्म के विकृत संस्कारों की तह मां बाप पर जमी हुई है और उसका प्रभाव बालकों पर भी पड़ता है। इसलिए ऐसे बालक को पैदा करना चाहिए जिसके मन पर वैदिक धर्म की गहरी छाप हो और जो प्रगति विरोधी विचारों के विरुद्ध क्रान्ति करता हुआ सर्वदमन ब्रह्मचारी के रूप में प्रगट हो सके। हमारा तो ब्रह्मचर्य आश्रम बाल विवाह की भट्टी में भस्म हो गया। हमारा गृहस्थ-आश्रम भी अनमेल विवाह की रङ्गभूमि पर आकर अपना वास्तविक रूप खो चुका है। किन्तु महर्षि के दैवी आदेश को ध्यान में रखते हुए जो कुछ बिगड़ा है उस पर आंसू बहाना छोड़ कर जो कुछ बचा है उसी का हम सदुपयोग करेंगे। हम वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का आश्रय लेंगे, परन्तु एक ऐसा आश्रम भी होना चाहिए जिसमें से ऐसे बालक पैदा हों जो आश्रम धर्म तथा गुण कर्म के अनुसार ऋषि द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था की रचना कर सकें। ये बालक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके और वैदिक धर्म की उच्च शिक्षा लेकर जब संसार में आएं तो सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र के रूप में आएं और आदर्श गृहस्थ, आदर्श वानप्रस्थ और आदर्श सन्यासी बनें। इस प्रकार वैदिक धर्म का समग्र विश्व में प्रचार हो सकता है। महर्षि के सन्देश की मामूली सी चिनगारी ने जो आग हमारे जैसे अधूरे पात्रों में सुलगाई है वही आग अगर 'हिरण्मय' पात्रों में जलाई जावे तो उसकी गरमी सारे संसार में फैले बगैर नहीं रह सकती।"

इस प्रकार के विचारों को नेपथ्य में रख कर गुरुकुल का मूर्त स्वरूप रचा गया और सांस्कृतिक परीक्षण की साधना के अनुकूल उचित पुण्यभूमि को चुना गया। लेकिन बाद में वैयक्तिक अभिमान तथा मतभेदों के कारण और गङ्गा की बाढ़ वगैरह के सबब से स्थान परिवर्तित करके गुरुकुल को ज्वालापुर और कनखल के पास लाया गया। यहां से इस परीक्षण का दूसरा प्रकरण शुरु होता है। वर्तमान गुरुकुल वासियों के लिए गुरुकुल की पुरानी भूमि एक पुण्य तीर्थ के रूप में तथा आचार्य श्रद्धानन्द जी के प्रतीक के रूप में अब भी जीवित जागृत भूमि है। मेरी यह नम्र सम्मति है कि किसी भी परीक्षण के लिए स्थलों का परिवर्तन घातक सिद्ध होता है। इस गुरुकुल के विषय में चाहे यह बात ठीक न हो किन्तु इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा कि गङ्गा के इस पार आने से कई बातें बदल गई हैं। पुरानी भूमि में रह कर जो ब्रह्मचारी स्नातक बने हैं उनमें अधिकांश हिम्मती, अच्छे तैराक तथा शहर के संपर्क से दूर रहने की आदत वाले थे। अब इन बातों में कुछ न कुछ तब्दीली अवश्य हुई है। इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र आदि गुरुकुलों के स्थान पर्याप्त उत्तम हैं। इन्द्रप्रस्थ में पहाड़ी प्रदेश होने से तथा पानी की कमी के कारण जो थोड़ी बहुत त्रुटियां थी वे अब दूर हो गई हैं।

बम्बई प्रदेश के गुरुकुलों के विषय में भी विचार करना अप्रासङ्गिक न होगा। बम्बई आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने लगभग ३० वर्ष हुए एक स्वतन्त्र रूप से एक गुरुकुल इस प्रदेश में खोला था। सन १९१० में देवलाली स्थान पर स्वर्गीय श्री नित्यानन्द जी के हाथों से इस गुरुकुल की स्थापना हुई थी। बाद में यह गुरुकुल अन्धेरी (बम्बई) होकर शुक्लतीर्थ में थोड़ी देर के लिए स्थिर हुआ। वहां आठ वर्ष तक नर्मदा नदी के किनारे पर गुरुकुल प्राचीन और अर्वाचीन विभागों में विभक्त होकर चलता रहा। यह पद्धति अनेक आर्य भाइयों को ठीक प्रतीत नहीं हुई इस लिए बम्बई का आर्य विद्या सभा ने सन् १९३५ में यह निश्चय किया कि प्राचीन विभाग को नावली में और अर्वाचीन विभाग को घाटकोपर (बम्बई) में स्थानान्तरित कर दिया जाए। नावली में जब तक मकान तय्यार नहीं होते तबतक बम्बई का यह पुराना गुरुकुल चरोतर प्रदेश की आर्य समाज की देख रेख में आणन्द के वेदाश्रम में चलाया जा रहा है। इस प्रकार बम्बई प्रदेश का यह पुरातन गुरुकुल अबतक भी अपनी निश्चित जगह पर स्थिर मकानों में 'स्थितप्रज्ञ' नहीं बन सका। देवलाली से अबतक इस गुरुकुल ने इतने स्थान बदले हैं इसीलिए यह गुरुकुल 'प्रवासी' गुरुकुल बन गया है। स्थल का निर्वाचन एक जरूरी चीज़ होते हुए भी बम्बई के आर्यों ने उसमें परिस्थितियों के अनुसार जो बार बार परिवर्तन किया उसका परिणाम आज हम देख रहे हैं। गुजरात के कवि सम्राट् न्हानालाल जी ने बातचीत के सिलसिले में मुझे कहा था कि जुहू के पास इस गुरुकुल के लिए जगह लेने का विचार स्थगित कर दिया गया— यह आर्यसमाज की बड़ी से बड़ी भूल थी। अब यह जगह गुरुकुल के लिए अनेक प्रकार से अनुकूल सिद्ध होती। बम्बई प्रदेश में गुरुकुल की स्थापना से पहले गुरुकुल विद्यालय की योजना को पेश करते हुए स्वर्गीय प्राणजीवनविट्ठल दास-गुप्त ने जो लिखा था वह अब भी मनन योग्य है; इसलिए उसे यहाँ उद्धृत करता हूं:—

"हमारे प्रान्त के आर्य भाई बम्बई प्रदेश में बहुत देर से पञ्जाब आदि अन्य प्रान्तों के पद चिह्नों पर चलते हुए एक ऐसा गुरुकुल खोलने का विचार कर रहे हैं जो गुजरातियों के अनुकूल पड़ सके। उत्साह के आवेश में यदि किसी महान कार्य को करने की हमारी इच्छा है तो इसके लिए दूर दर्शिता से काम लेना चाहिए। गुरुकुल खोलना कोई सरल बात नहीं। बम्बई जैसे प्रान्त में शायद धन की कमी न हो परन्तु गुरुकुल के लिए हमेशा गुरुकुल में रह कर काम करने वाले आदमी तथा योग्य आचार्य शिक्षक मिलने दुर्लभ हैं।"

इन उद्‌गारों से यह स्पष्ट है कि गुरुकुल यह कोई प्राकृतिक सौंदर्य से विभूषित स्थानमात्र ही नहीं; केवल विद्वान्, सदाचारी और निर्लोभी अध्यापकों से भी गुरुकुल नहीं बनता। ब्रह्मचारियों की टोलियाँ भी गुरुकुल नहीं हैं। गुरुकुल का सञ्चालन करने वाली व्यवस्थापक सभा भी गुरुकुल नहीं। सिर्फ बालकों के माँ बाप से भी गुरुकुल नहीं होता, धन और प्रशंसा के ढेर से भी नहीं; प्रत्युत इन सब अंशों के समुचित मेल के बिना किसी भी गुरुकुल का स्थिर अस्तित्व नहीं हो सकता। कोई गुरुकुल खराब स्थान के कारण या स्थान की अस्थिरता के कारण अस्त होता दिखाई देगा, कोई गुरुकुल ब्रह्मचारियों की संख्या घटने से बन्द होता मालूम होगा। कोई गुरुकुल उत्तम

शिक्षा तथा शिक्षकों के अभाव में लुप्त होता प्रतीत होगा परन्तु इतना तो ठीक है कि सिर्फ धन के अभाव के कारण कोई संस्था ख़तम नहीं हुई जाती; किन्तु सच्चे उत्साही व्यक्तियों के अभाव में ही संस्था की पूर्णाहुति होती है।

बम्बई प्रदेश के एकमात्र गुरुकुल को 'प्रवासी' के रूप में देखकर माघ सुदी १३, सम्वत् १९८० के दिन गुजरात गुरुकुल सभा की तरफ से स्वामी श्रद्धानन्द जी के हाथों पूर्णा नदी के पुण्य तीर पर सूपा गांव के पास 'सूपा गुरुकुल' की स्थापना हुई। यह विद्यामन्दिर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की शाखा के रूप में प्रकट हुआ और अब भी इसी जगह इसी रूप में इसका अस्तित्व उज्वल रूप में चमक रहा है। सूपा गुरुकुल का स्थान उत्तम है। बम्बई प्रदेश में तीसरा गुरुकुल सौराष्ट्र (काठियावाड़) में माघसुदी १४ सम्वत् १९८५ (महाशिवरात्रि के) दिन बौड़दा आर्यकुमार महासभा के द्वारा भावनगर से १८ मील दूर सोनगढ़ में स्थापित किया गया। प्रकृतिसौन्दर्य, जलवायु आदि की दृष्टि से यह स्थान उत्तम है और सौराष्ट्र का केन्द्र भी है। इसके अतिरिक्त भुज से १६ मील दूर ईश्वरसागर के तीर पर ईश्वरराम जी गुरुकुल की स्थापना माघ सुदी ५ सम्वत १९९३ (वसन्तपञ्चमी) के दिन हुई थी। सूपा, आनन्द, सोनगढ़ इन तीनों गुरुकुलों के परिणाम स्वरूप स्नातक प्रजा के आगे उपस्थित हुए हैं। सोनगढ़ गुरुकुल अपने स्थिर स्थान में एक दशाब्दि बिताकर गुरुकुल के रूप में अपने कार्यक्रम को पूरा करने की तय्यारी में है। इस पूर्णाहुति का कारण यह नहीं है कि सोनगढ़ का स्थान खराब है। सूपा गुरुकल का स्थान भी पर्याप्त अच्छा है। इस समस्त विवेचन के आधार पर साररूप में निम्न परिणाम निकल सकता है:-

[१] गुरुकुल के लिए स्थान शहर से दूर होना जरूरी है परन्तु बहुत दूर भी नहीं होना चाहिए।

[२] यह स्थान नदी के किनारे होना चाहिए:—

[३] यह स्थान प्रकृति सौन्दर्य से सम्पन्न होना चाहिए।

[४] ऐसा स्थान होना चाहिये जहां मलेरिया आदि बीमारियां न फैलती हों।

[५] पास में अगर सड़क हो तो गाड़ियों और आदमियों के आने जाने से शोर होता है और धूल उड़ती है इसलिए यह स्थान सड़क से दूर होना चाहिए।

[६] एक बार स्थान निश्चित करके बाद उसे बदलना नहीं चाहिए।

प्राच्य और प्रतीच्य

[ले० श्री ब्र० भीष्म देव]

सर राधाकृष्ण ने टैगोर के कार्यों के मूलतत्व को गिनाते हुए कहा था:— (२)

(१) "अध्यात्म अन्तिम सत्य है और उसकी प्राप्ति के लिये सत्यनिष्ठा एवं अन्त: जीवन का निर्माण होना चाहिए।"

(२) "केवल नेतिवाद या सन्यास से सार्थकता नहीं है, परन्तु पवित्र और परिपूर्ण जीवन के विकास की जरूरत है।"

(३) "भद्र और अभद्र— दोनों के प्रति समभाव की प्रत्यक्ष भावना होनी चाहिए।"

"आज प्राच्य को अनेक पुरातन वस्तुएं नष्ट होती जा रही हैं और हजारों नई पैदा हो रही हैं। ऐसे सन्धिकाल में इस सत्य जीवन दृष्टि की जरूरत है।" प्राच्य और प्रतीच्य के सम्मेलन में भी कवि हृदय सत्यं, शिवं सुन्दरं को ही देखता है। वह लिखता है—

"हम समझते हैं कि संसार में स्वत्व की लड़ाई हो रही है-पर यह हमारा अहंकार है, वास्तव में सत्य की लड़ाई हो रही है।"

"जो सबसे श्रेष्ठ है, सबसे पूर्ण है, चरमसत्य है वह सार्व जनिक है और वही बहुत से आघात संघातों के बीच से ऊपर की ओर उठ रहा है। हम अपनी सारी इच्छा से सत्य को जितना आगे की ओर बढ़ा सकेंगे उतनी ही हमारी चेष्टा सार्थक होगी। उसके विपरीत चाहे व्यक्ति के ख़याल से हो, या जाति के ख़याल से हो अपने को ही जयी बनाने की चेष्टा का संसार के विधान में कुछ भी महत्व नहीं है।"

"भारत वर्ष का जो इतिहास संघटित हो रहा है उसका अन्तिम लक्ष्य यह नहीं है कि हिन्दू ही बड़े हों या कोई दूसरा बड़ा हो। भारत वर्ष में मनुष्य का इतिहास एक विशेष सार्थकता की मूर्ति धारण करेगा और परिपूर्णता का एक अपूर्व आकार उसको सारी मनव जाति की सामग्री बना डालेगा। इसकी अपेक्षा कोई भी छोटा अभिप्राय भारत वर्ष के इतिहास का नहीं हो सकता है। इस परिपूर्णता की प्रकृष्ट प्रतिमा गढ़ने में यदि हिन्दू, मसलमान या अंग्रेज अपने वर्त्तमान आकार प्रकार को एक दम लुप्त कर दें; तो उससे उनके जाति-अभिमान का अकाल मृत्यु हो सकती है पर सत्य या मङ्गल का जरा भी ह्रास नहीं हो सकता।"

विश्व कवि का हृदय, पूर्व और पश्चिम के मिलन का अन्तिम परिणाम मङ्गलमय हो यही चाहता है। पर, यह मङ्गल कामना कैसे सार्थक हो सकती है! आज तो प्राच्य और प्रतीच्य का परस्पर विरोध खड़ा हो रहा है। दोनों अपनी संस्कृति को उन्नत समझते हैं फिर इनका समागम और तज्जन्य परिपूर्ण सभ्यता कैसे प्राप्त हो सकती है- चरम सत्य की उपलब्धि कैसे हो सकती है।

कवि इस विरोध में भी मङ्गल देखता है। क्योंकि सत्य का विरोध करने के बाद उसके समीप हारने से ही गम्भीर रूप से सत्य की प्राप्ति होती है। वाद, प्रतिवाद संशय आदि सत्य विरोधी चीजों के आश्रय से ही सत्य की उपलब्धि होती है।

कवि इतना कहकर बस नहीं करता। वह इस विरोध के मूल में जाता है। पूर्व, पश्चिम की जातियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है। दोनों के न मिल सकने का कारण बताता है। (असमाप्त)

'**विजयोत्सव**—रामगढ़ कांग्रेस में चर्खा-प्रतियोगिता के लिए कुल के प्रतिनिधि रूप से ब्र० शान्ति स्वरूप को भेजा गया था। आप उत्तम सूत की प्रतियोगिता में सर्व प्रथम आए हैं। चर्खा संघ की ओर से आपको चांदी का चर्खा दिया गया है। हमारे मान्य भाई पहले भी इस प्रकार की प्रतियोगिता में भाग लेकर विजयी होते रहे हैं। इस विजय के उपलक्ष में एक सभा की गई और करतल ध्वनि के बीच में पारितोषिक दिया गया।

गु रु कु ल

२९ आषाढ़ शुक्रवार १९९७

स्नातकों की कठिनाइयां

(आचार्य अभयदेव जी)

गुरुकुल के स्नातकों के जब कठिनाइयों और मुसीबतों के समाचार आते हैं तो उनसे हमेशा दुःख नहीं होता। कई बार तो उन समाचारों को सुन कर प्रसन्नता होती है, यद्यपि साथ में सहानुभूति का भाव भी पैदा होता है और उन की कठिनाई को दूर करने के लिये जो कुछ बन सके सब कुछ कर डालने की इच्छा भी पैदा होती है। ऐसी प्रसन्नता तब होती है जब कि किसी स्नातक के कष्ट में पड़ने का कारण उनकी सत्यनिष्ठा कर्तव्यपरायणता आदि बातें होती हैं जिनकी कि उन्होंने गुरुकुल में शिक्षा पाई है। स्नातकों ने मामूली दुनियादार लोगों जैसा रहने या बन जाने के लिये तो गुरुकुल में शिक्षा पाई नहीं होती इस लिये बाहरी दुनिया में जाकर उनका मुसीबतों में पड़ना स्वाभाविक सा है, पर वे उन्हें वे मुसीबत समझें या नहीं यह दूसरी बात है। नीचे मैं दो स्नातक बन्धुओं के पत्रों के कुछ अंश उद्धृत करता हूं जो अपनी कहानी अपने आप कह देंगे। यह भी अच्छी बात है कि ये पत्र स्वभावतः लिखे गये हैं, पत्र लेखकों को यह तो कभी ख्याल ही नहीं होगा कि उनके इन पत्रों को प्रकाशित किये जाने की कोई संभावना हो सकती है।

एक स्नातक बन्धु लिखते हैं:—

"मेरे तथा घर के अन्य सदस्यों के बीच में उद्देश्य-आदर्श, स्वभाव तथा विचारों का भेद तो प्रारम्भ से ही था परन्तु कालान्तर में यह भेद घटने के स्थान पर और भी बढ़ता ही गया और परिणाम यह हुआ कि ६ मई को ईश्वर की बलीयसी इच्छा से प्रेरित होकर मैंने घर छोड़ने का विचार कर लिया, और २० मई को स्पष्ट तौर पर मुझे घर छोड़ने के लिये बाधित होजाना पड़ा और आज मैं बे घर द्वार के निराश्रय पड़ा हुआ हूं। मेरे माता पिता को मुझ से प्रेम अवश्य है पर उनकी लाचारी बहुत ही दुःख जनक है। परिवार से सम्बन्धित सम्पूर्ण सम्पत्ति के एकमात्र स्वामी श्री··· हैं जो रुपये को ही भगवान मानते हैं तथा कांग्रेस वालों को निकम्मा, मूर्ख व धूर्त मानते हैं। तथा मेरा एक भाई आगरे मैडिकल स्कूल में पढ़ता है तथा ३ बहिनें अविवाहित हैं इनके खर्च के लिये उन्हीं का मुख ताकना पड़ता है। ऐसी अवस्था में उनकी सहानुभूति के अतिरिक्त मुझे उनसे कुछ भी नहीं मिल सकता है।

"मैं यह आपको स्वाभाविक तौर पर विश्वास दिला देना चाहता हूं कि मैं सत्य मार्ग पर हूं। और जिसे मैं सत्य समझता हूं उस पर दृढ़ रहते हुए जीवन तक देने में संकोच नहीं करता हूं। भारत आज पददलित, गरीब व अत्याचार पीड़ित है और कांग्रेस ही एक मात्र संस्था है जो इस समय भारत की गरीबी आदि को हटा कर उसे स्वतन्त्रता की ओर ले जा रही है। प्रत्येक सच्चे भारतीय का कर्तव्य है कि वह कांग्रेस के प्रति सहानुभूति, प्रेम रखे और उनमें सम्मिलित होकर अत्याचार व पाप का मुकाबला करे। कांग्रेस का सदस्य होकर, सचाई, ईमानदारी के साथ काम करना मैं पवित्र कार्य समझता हूं। यदि तन, मन अथवा धन से या एक साथ तीनों से ही कांग्रेस की सेवा करना कोई पाप समझता है तो उसके साथ मेरा समझौता होना असंभव है। ऐसा ही मैं आर्यसमाज को भी समझता हूं। यहां का प्रत्येक आर्यसमाजी निःसन्देह यह समझता है कि ये स्नातक जी प्रथम आर्य समाजी पश्चात् कांग्रेसी हैं। इस स्नातक की आत्मा वैदिक धर्म से ओत प्रोत है और शरीर मन सत्य मार्ग पर अविचल और दृढ़ रहते हुए अत्याचार के मुकाबले में दृढ़ और हमेशा तत्पर है।

"यह उपरोक्त दोनों भावनायें गुरुकुल ने ही मेरे अन्दर निहित की हैं और यही गुरुकुल की विशेषता है ऐसा मेरा विचार है जो शायद गलत भी हो सकता है। अस्तु।

'अपने विभिन्न स्वभाव के कारण आज मैं घर से पृथक हूं या यों कहना ठीक होगा कि पृथक कर दिया गया हूं। शहर में कई सज्जनों ने अपने २ घर पर मुझे ले चलने के लिये जोर दिया है एक सज्जन तो सहायतार्थ कुछ रुपये भी दे गये हैं। पर मैं इन सहायताओं को लेते हुए हिचकता हूं। दुनियादार आदमियों का कुछ ठिकाना नहीं।

'आपके ऊपर असीम व सच्ची श्रद्धा ने मुझे हृदय की पवित्र आवाज के साथ प्रेरित किया कि मैं आपको अपनी अवस्था अवश्य लिखूं और भविष्य के लिये अमूल्य सम्मति प्राप्त करूं। मैं इस नगर से ही हट जाना चाहता हूं। यहां रहते हुए घर वालों के साथ स्पष्ट व अस्पष्ट सम्बन्ध बना ही रहेगा और मेरी आत्मिक शांति में बाधा पड़ती रहेगी जो मुझे अत्यन्त दुःखदायी होगी। दो दिन के बाद मैं आज अपने मामा के यहां भोजन कर आया हूं इस समय मेरे पास कुल ६) हैं। दुकान में अभी तक इतने वर्षों जो कुछ आता रहा सचाई के साथ पैसा २ मैं घर वालों को ही देता रहा। परिणामतः आज मेरे पास ६) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। घर से निकाले जाने की राम कहानी तो पर्याप्त लम्बी तथा कूट नीति से भरी हुयी है उस का सम्पूर्ण उल्लेख इस पत्र में करना बहुत कठिन तथा आपके लिये अनावश्यक भी होगा। संक्षेप एवं सार यह है कि कांग्रेस के प्रति अत्यन्त प्रेम होने के कारण तथा अपनी आत्मा को स्वतन्त्र सत्ता समझने के कारण हो आज मैं घर से बाहिर कर दिया गया हूं। तथा कुछ अपनी मूर्खता या भोलेपन के कारण घर की कूट नीति का शिकार हो गया हूं जिस का मुझे रत्ती भर भी दुःख नहीं है। और अपने मार्ग पर दृढ़ रहने का संकल्प कर लिया है।"

अपने दूसरे पत्र में वे लिखते हैं:—

"आपको पत्र लिखनेके बाद और पत्रोत्तर मिलनेके समय तक के बीच के दिन मेरे लिये अग्नि परीक्षा के दिन थे। पर आपके प्रेममय आशीर्वाद एवं प्रभु की महान कृपा से सांसारिक आपत्तियां मुझे विचलित न कर सकीं। मेरा विश्वास है कि मैं सत्य मार्ग पर था अतः प्रभु ने मेरी रक्षा की। आज मेरे पास १६) हैं जिन्हें सर्वांशतः-सांसारिक भाषा में-अपना कहने का मैं अधिकारी हूं। पर मानसिक शान्ति अभी तक प्राप्त नहीं कर पाया हूं। विपत्तियों में दृढ़-अविचल, एवं स्वीकृत आदर्शों पर सर्वस्व होम देने की भावना गुरुकुल माता की महान गोद में ही मैंने ग्रहण की थी। और गुरुकुल माता के-मेरे से पहिले निकले हुए-अनेक पुत्रों ने (स्नातकों ने) आदर्श-सत्य-सेवा मार्ग पर अविचल रहते हुए सांसारिक आपदाओं को तुच्छ समझते हुए अपना दृढ़ एवं स्तुत्य कदम आगे बढ़ा कर कुलमाता की अनुपम शान में कमी न आने दी। उसी तरह मुझे भी गर्व है कि सब कुछ विपदायें लेकर इस जगह मैंने कुल माता का गौरव बढ़ाया है। धन को ही सब कुछ समझने वाले स्वार्थों की दल दल में फंसी मेरे कुटुम्ब की दुनियां चाहे मुझे कुछ भी कहे पर शेष दुनियां के साथ २ वह भी मेरी ईमानदारी व सत्य की कायल है। अन्य दृष्टियों से घर के मेंबर विशेष कर मेरे बाबा मेरे से नाराज हैं। क्यों कि उनकी दृष्टि में रुपया ही चाहे कैसे ही आये-सब कुछ है तथा कांग्रेस वाले बदमाश व धूर्त एवं दुराचारी है। अस्तु।

"मैंने यहीं पर एक जगह इन्तजाम कर लिया है। दवायें कुछ मेरे पास हैं। रोगियों को देखने लग गया हूं। दूकान का ढांचा बदल गया है। पहिले मैं मेज़ कुरसी लगा कर डाक्टर की तरह बैठता था तथा डाक्टर की तरह ही प्रैक्टिस करता था पर अब दवायें वैही हैं नीचे फर्श पर ही दरी बिछा कर बैठता हूं। पर इस अशान्त वातावरण में कब तक ठहर सकूंगा कुछ कह नहीं सकता। मुझे परमात्मा और आपका ही केवल मात्र भरोसा है। मेरे जीवन के सब से अधिक शक्ति सम्पन्न तथा क्रियाशील युवावस्था के दिन इसी भांति गुजरेंगे यह सोच कर बड़ा दुःख होता है। मैंने गुरुकुल में परिश्रम पूर्वक विद्याध्ययन किया योग्यता प्राप्त की पर सब बेकार जाती प्रतीत होती है। इस अवस्था में तो पशुओं की तरह पेट भरने के अतिरिक्त कुछ भी कर सकने में असमर्थता सी अनुभव होती है। पर आपका आशीर्वाद बुरे दिनों का वीरता पूर्वक मुकाबला करने के लिये आदेश देता है और सत्य भी है विपदाओं से घबराने वाला गुरुकुल का स्नातक ही कैसा। गुरुकुल के स्नातक को पाप, कपट एवं अपकीर्ति से ही घबराना चाहिये।"

एक दूसरे स्नातक "आज कल दुनिया में कौनसा पेशा है जो उचित तौर से किया जा सकता है" इसका विचार करते हुये लिखते हैं:—

"फिर भी काम के लिये सोचता हूं,क्या काम किया जाये। मैं देख रहा हूं, मनुष्य शरीर ।घस कर-काम करके शरीर को केवल अन्नभर दे रहा है और फिर ऐसा कलपता है कि मुझे मृत्यु खींच रही है। ये-मजदूर कितना काम करते हैं! देखकर आश्चर्य होता है। मैं जब पूछता हूं इतना काम कैसे कर लेते हो तो कहते हैं और उपाय क्या है, आखिर पेट भी भरना है! तो- क्या मनुष्य का काम तन तोड़ परिश्रम करके भी भोजन जुटाना ही है-तो पशु से बढ़ कर वे क्या हैं? काम के कारण हाथ उनके इतने बढ़गये हैं कि सिर की तरफ ध्यान देनेको उनके पास कुछ है ही नहीं। तो फिर स्थूल और सूक्ष्म का वे विचार क्यों करें? और उनकी ज़िन्दगी ऐसे ही बीत जायेगी। इस पर भी ये लोग भगवान् की सृष्टि में शामिल हैं, इनका यह व्यर्थ दीखने वाला काम भी कोई अर्थ रखता है यह मुझे पूर्ण विश्वास है। क्या? मैं नहीं जानता।

"शारीरिक श्रमके सिवाय और भी बहुत से काम हैं। व्यापार-मैं तो व्यापारिक देश में ही रहता हूं। बम्बई और और अहमदाबाद भी हो आया हूं-किसीको भी कहां चैन है? उठते बैठते यहां तक कि शाम को जी बहलाने के लिये बाग में बैठे हुए भी हजार दो हजार रुपयों की बातें रुकती ही नहीं। जैसे-अनवरत बहती रहेंगी। व्यापार में ही चैन हो तो फिर यहां अशान्ति क्यों?मैं तो देखता हूं-व्यापारी भेड़िये की तरह शिकारकी टोह में रहता है। ग्राहक को फंसाकर उस से अधिक से अधिक लाभ उठाकर एक लोलुप मज़ा लेता है। अच्छा, यह मज़ा है तो फिर उसके चेहरे की ज्योति दुःखी क्यों रहती है? यथावस्थित लाभ लेना शायद बुरा नहीं।...... शायद पहले पहले व्यापारिक क्षेत्र में आये नौसिखिये (Novice)को इस क्षेत्र में रहने वाला स्वार्थ, असत्य-खूब खुंचते होंगे पर बार बार दबाकर अपने को इस बारे में शंका-लज्जा-रहित कर लेने के बाद वह भी इस संप्रदाय (Sect) में का एक हो जाता है। मैं इस सारे संप्रदाय के लिये कहता हूं क्यों कि मैं सोचता हूं यदि इस क्षेत्र में मेरा प्रवेश हो तो मैं इस क्षेत्र से अतीत साधु व्यापारियों जैसा नहीं ही होजाऊँगा—ऐसा समझता हूं।

"कहते हैं कि दुनिया सुख के पीछे दौड़ रही है। व्यापारी भी क्या सुख की खोजमें धन कमाता है? शायद कमाता हो पर अन्त में तो व्यापारी का उद्देश्य यह नहीं रह जाता लगता। यही उद्देश्य हो तो फिर अटूट धन सम्पत्ति होने पर भी सैर सपाटा और सिनेमा को छोड़ कर अपने भारी शरीर को लिये गद्दी पर क्यों बैठा रहता है? मैं होऊं तो आनन्दकी खोज में थैली का मुंह एकदम खोल दूं। एक बार देखूं तो यह आनन्द क्या है? लाखों रुपये हैं पर इन्हें उपभोग करना भी नहीं आता। शाम के समय जब दूर दूर से बाग उन्हें- बुलाते हैं, सिनेमा के Records चीख चीख कर पुकारते हैं, तब भी वे ग्राहक से उलझे रहते हैं यह कैसी जड़ता है जो Vital Air का ज़रा भी प्रत्युत्तर नहीं देती। मेरे आनन्द का 'युवक' तो फड़क उठे। पर तो भी जानता हूं अन्दर, बहुत अन्दर जो एक व्याकुल पुकार है वह मुझे चैन नहीं लेने देगी।

"रही नौकरी सो वह भी निर्दोष तो नहीं-पर उसके दोष मैं गिनने नहीं बैठूंगा। नौकरी करूं-पर क्या-कौनसी?

नौकरी मिल भी जाय तो क्या वह मेरे सिर और हाथ को समतुलित रखने में सहायक हो सकेगी-मेरे मनके अनुकूल होगी ? मन को-इस अबूझ को साथ ले चलना इतना मुश्किल होता है कि मुझे हार मान कर बैठ जाना पड़ता है फिर भी आदेश दें।,

फिर दूसरे पत्र में इन्होंनेलिखाः—"मुश्किल में मां का हाथ है यही मेरा (अन्तराल में) सबसे बड़ा आश्वासन है । अन्तराल गुजर जाने के बाद मैं अपने में स्फूर्ति, हल्कापन, कुछ सहने का सामर्थ्य, बढ़ा हुआ देख रहा हूं। अब होना है कि यदि फिर ऐसा ही अन्तराल आये तो मैं किसी तरह की शिकायत नहीं करूंगा चुपचाप सहूंगा और पुकारूंगा। यह एक तरह की प्राणगत (Vital) उत्सुकता प्रतीत होती है । पर Now She has some thing new in her store for me.पुराना खेल वह शायद ही खेले। उस नये खेल में मैं अपने को उसके लिये खोल दूं और प्रतीक्षा करता रहूं। आपने नौकरीकी जगह सेवा करने के लिये कहा है। नौकरी करना मुझे वैसे ही अच्छा नहीं लगता। मन लगे न लगे जबर्दस्ती किसी तरह काम करके स्वामी को रिझाने में ही काम की इतिश्री समझना लोग कैसे कर लेते हैं ? सेवा करनी चाहिये मैं स्वीकार करता हूं पर हो सकता है पूर्वग्रहों के कारण मैं उसमें थोड़ी rigidity देखता हूं । काम करते समय भी सेवक को ख्याल रहता है कि यह सेवा हो रही है शायद पूरी तन्मयता नहीं आने पाती। मैं अपने लिये कहूं जब मैं किसी काम में मग्न हो जाता हूं तो मुझे सेवा या नौकरी किसी का भी ख्याल नहीं रहता, परिणाम का भी नहीं। परिणामके समय सेवक शायद उतने रस का अनुभव न कर सके। पर मैं तो बच्चों की सी प्रसन्नता अनुभव करता हूं। हरेक को दिखाना चाहता हूं-देखो, यह कितना सुन्दर है। अह-का इसमें कितना भाग है मैं नहीं जानता। सेवा की जगह समर्पण मुझे अधिक पसंद है पर उसके लिये एक तो उपयुक्त स्थान कम हैं और हमेशा मन मनाना मुश्किल होता है ।

"संकल्प बल की कमी का मैं अनुभव करता हूं। जिस को मैं स्पष्ट देखता हूं फिर भले ही कठिन हो संकल्प के जोर से मैं पार कर जाता हूं पर जहां सफलता बहुत से अन्तरालों के पीछे छिपी हुई होती है और मुझे दीखती नहीं वहां सकल्प काम नहीं करता, शायद कोई सहारा नहीं रहता इसलिये। एक के बाद एक काम करूंगा अनुभव बढ़ता जायेगा। दृष्टि आवरणोंको भेद सकेगी और और सकल्प सारा काम कर देगा। केवल संकल्प को लेकर अंधेरे में कूद पड़ना अब तो मुश्किल दीखता है। जो चीज़ सामने दीखती है अवश्यम्भावी है उसके लिये संकल्प शक्ति से काम लूंगा।"

इन दोनों स्नातकों ने अपने पत्रों में जो विचार प्रकट किये हैं वे इसके उपलक्षण है कि उन्हें बाहर आकर कैसी कैसी कठिनाईयां झेलनी पड़ती हैं, यह बतलाते हैं कि बाहर दुनिया में बहने वाली हवा उससे कितनी विपरीत है जिस में श्वास लेने के वे गुरुकुल में अभ्यासी रहे हैं। पर इससे घबराने की ज़रूरत नहीं है। यदि गुरुकुल के ब्रह्मचर्यमय जीवन से उन्होंने कुछ भी तेज और शक्ति प्राप्त की है तो वे घबरावेंगे नहीं। इन दोनों बन्धुओं ने जो विचार स्वाभाविकतया प्रकट किये हैं वे वैसे भी काम के हैं। उनसे लाभ उठाया जा सकता है। इसी लिये इन्हें प्रकाशित करने की इच्छा हुई। ये इस बात के भी द्योतक हैं कि गुरुकुल की शिक्षा निरर्थक नहीं जा रही। पर गुरुकुल की शिक्षा पूरी तरह सार्थक तो तब समझी जायगी जब दुनिया में यह माना जाने लगेगा कि हमारे गुरुकुलीय स्नातक दुनिया की विपरीत से विपरीत अवस्था में भी अपना उस ऊंची स्थिति पर कायम रहते हैं उससे नीचे नहीं गिरते, जिसमें रहने की उन्होंने गुरुकुल से शिक्षा पाई होती है, वर्षों तक, दीर्घकाल तक उस स्थिति में स्थिर रहते हुये और आने वाले ऐसे सब कष्टों और आपत्तियों को झेलते हुये भी अपने इस तप द्वारा वे दूसरों को ही ऊपर उठने को मज़बूर करते हैं पर स्वयं कभी उनसे समतल होने को नीचे नहीं आ गिरते।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

(ले०—श्री वीरेश विद्यालङ्कार)

(४)

पहिले कहा गया है कि बालकके अन्दर कुछेक प्रवृत्तियां हैं जिन्हें समुचित गति-विधि देना बाल-शिक्षा का कर्त्तव्य होना चाहिये। बालक यदि अनुकरणों का पुतला है तो उसे अनुकरण करने के लिये किस प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जाय यह शिक्षक को विदित होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि बालक सचेष्ट और प्रयत्नशील है तो आवश्यक है कि उसकी इस प्रवृत्ति को छोटे २ उपकरणों व प्रयोगों द्वारा किसी अच्छी रचनात्मक दिशा में प्रेरित किया जाय। कितना शुभ हो कि यह रचना की दिशा (केवल बना देना) न होकर अपने अन्दर आंशिक कला को धारण करने वाला बन कर सफल रचना की ओर पग उठाये । क्या चिकनी मिट्टी से बनाये गये खिलौने,क्या कागज़ गत्तों से बनाये डिब्बे और क्या बालू से बनाये घर-गांव और किले सभी में बालक की रचनात्मक प्रवृत्ति को न केवल ठीक दिशा बनाना ही ध्येय हो अपितु उसे सफल रचना बनाकर कला की वस्तु कहाने का भी प्रयोजन सिद्ध किया जाय। यह सम्भावना करना कि ६-७ साल का बालक कलामय वस्तुएं रच सकता है शायद हमारी मौजूदा हालत में गलत हो, परन्तु दूसरे देशों के बालकों की कृतियों को जब हम अपनी आंखों से देखते हैं तो निस्सन्देह हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि कलामय कृतियों के बारे में उन बालकों की सफल रचनायें हमें भी इस दिशा में प्रयत्न करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। "वर्धा की बुनियादी तालीम की योजना में जो शिक्षा के व्यावहारिक पहलू को पुनरुज्जीवित करने का

प्रयत्न किया गया है वह इस दृष्टि से बहुत ही उपादेय है कि इस से बालक की रचना शक्ति को कलात्मक और विकासात्मक तरीके से प्रोत्साहित कर उसे कृतिशील बनाने में सुन्दरतम आयोजन हुआ है।" "प्राचीन काल में, शायद कभी वैदिक औपनिषदिक काल में गोपालन व कृषि में-सोता कर्म द्वारा" शिष्य को गुरु, जीवन को व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही आध्यात्मिक विद्या का ज्ञान करा देता था। परन्तु यह बात मौजूदा ज़माने में तो मन्त्र-मुग्ध सफल सिद्ध हो सकती है यदि विद्वान् लोग वर्धा शिक्षा के उद्योग धन्धों द्वारा तालीम देने की मूल स्थापना को अपने परीक्षण और प्रयोगों द्वारा पुष्ट करके इसे उच्च शिक्षा के मंज़िल तक पहुंचा सकें। यही बात हमें बाल शिक्षा के बारे में भी उतनी ही सत्य अतएव उपयोगी दीखती है। चूंकि शिक्षा का उद्योगी करण हमारी मौजूदा हालत में हमें उपादेय दीखता है इसका यह मतलब नहीं कि बौद्धिक तथा मानसिक शिक्षा शैली की बिलकुल उपेक्षा कर दी जाय, नहीं, कदापि नहीं, प्रत्युत् इस शैली को अधिकाधिक व्यावहारिक बनाने की ओर शिक्षकों तथा शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया जाय।

यह नियम कितना सत्य है कि हमारा जीवन न केवल मनन-विचार-और स्मृति से परिपुष्ट तथा नियन्त्रित हो रहा है अपितु चेष्टा-प्रयत्न तथा कर्म द्वारा भी प्रगति शील बन रहा है। इसी नियम की मान्यता को समझ कर क्यों न हमारे प्रारम्भिक व आदिम पाठ या सबक स्मृति के साथ ही साथ क्रिया में भी उतारे जांय? 'सदा सच बोलना चाहिये' इस नियम का कुछ भी अर्थ नहीं यदि यह हमारे लिये व्यावहारिक नहीं अथवा व्यावहारिक होने पर हम इसे जीवन में नहीं ढालते। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य साधन का नियम तथा सेवा धर्म आदि का हमेशा मनन विचार कर लेना ही पर्याप्त नहीं जब तक कि यह नियम हमारे आत्मा और मन प्राण के सूक्ष्म विचारों से लेकर प्रत्येक बाह्य-व्यवहार तथा कार्य में ठीक से नहीं उतरता। संक्षेप में हम इसे यों कह सकते हैं कि विचार और क्रिया (Idea—motion) के पारस्परिक संबन्ध को उपयोग का कसौटी पर कसा जाय जिससे कि व्यावहारिकता रूपी फल (कर्मयोग) हमें सद्यः प्राप्त हो जाय। जिस प्रकार सदाचार की सफलता उसके प्रचार में है इसी प्रकार सद्विद्या की सफलता भी उसके उद्योग मूलक होने में समझी जानी चाहिये। यदि आप यह मान लें कि हिन्दुस्तान का हरेक बच्चा फिलासफर(दार्शनिक) है तो इसके साथ ही यदि उसका दार्शनिकता किसी सदुद्योग व फलवती क्रिया में नहीं उतर सकती तो बेखटके यह समझ लीजिये कि ऐसे दार्शनिक, अधकचरे फिलासफर होंगे या काल्पनिक जगत् में विचरण करने वाले कवि। शिक्षा की कसौटी और ख़ास तौर पर बाल शिक्षा की कसौटी तो यह ही होनी चाहिये कि न केवल बालक को पाठ याद कराया जाय, अच्छी बातों का अनुकरण करना सिखाया जाय परन्तु उसका आंखों-हाथों और मन को इस प्रकार सधाया जाय कि वह अपने आप नकल करते २ कुछ रचना करने में समर्थ हो जाय। रचना से हमारा अभिप्राय मूर्त तथा अमूर्त दोनों रचना है क्योंकि दोनों ही तरह की वस्तुओं को हमारे जगत् में विद्यमानता है और इनके बिना हमारा काम तनिक भी चल नहीं सकता। बच्चों के भावोद्बोधन के लिये अच्छा २ कहानी किस्से जीवन चरित तथा इतिहास-कथानक सुनाना कितना लाभ प्रद होगा यह बालकपन में शिवाजी की माता जीजी बाई द्वारा सुनाये गये वीर रस भरे व्याख्यानों से साबित होता है। कथा कहानियों का ही प्रभाव विशेषतः बालक के मन पर अपनी ऐसी छाप बिठाता है कि वह आजीवन अमिट हो कर ही रहता है। रामायण तथा महाभारत के आदर्श नायकों का चरित्र अथवा बालकों को शीलवान्, वीर, यशस्वी सेवा और सौजन्य से युक्त बनाने में कितना काम कर सकता है यह शिक्षा शालाओं में केवल प्रयोग का ही विषय नहीं रहा अपितु स्वयमेव आत्मानुभव की चीज़ बन चुका है।

गुरुकुल समाचार

वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव—

विश्वनाथ १२ श्रेणी मम्स, वीरेन्द्र १३ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, सुभासचन्द्र १ श्रेणी मम्स, धर्मवीर १ श्रेणी मम्स, योगेन्द्र २ श्रेणी मम्स, विश्वदेव ३ श्रेणी मम्स, वेदप्रकाश ३ श्रेणी मम्स, परशु राम ५ श्रेणी चोट, राजेन्द्र २ श्रेणी चोट, वेदप्रकाश ३ श्रेणी व्रण, बलराज ४ श्रेणी मलेरिया-ज्वर, बालकृष्ण ३ मलेरिया ज्वर, राजेन्द्र(बिहारी)२ मलेरिया ज्वर, दमनेश २ श्रेणी मलेरिया, सुरेशचन्द्र २ श्रेणी अजीर्ण।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। वर्षा ऋतु के कारण मौसम बहुत अच्छा हो गया है।

गत सप्ताह की विशेषता वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव है। सभापति पद को श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने अलंकृत किया। सर्व प्रथम पूर्व सूचना के अनुसार 'प्रजा तन्त्र और अधिनायक तन्त्र' पर वाद विवाद हुआ। ब्रह्मचारियों ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। इसके बाद सरस कविताएं गल्प, तथा प्रहसन पढ़कर सुनाए गये। अन्त में सभापति जी ने समयोचित तथा ब्रह्मचारियों के साहित्यिक विकास के लिए कुछ विशेष बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया। आपने कवियों के लिए विशेष रूप से कहा कि उन्हें अपनी कविता की धारा को किसी वाद के झमेले में न डालकर स्वच्छन्द रूप से बहने देना चाहिए। इसके बाद वाद विवाद में प्रथम तथा द्वितीय आने वाले वक्ताओं को पदक दिये गये। प्रथम ब्रह्मचारी वीरेन्द्र तथा द्वितीय ब्रह्मचारी उदयवीर और वेदराज रहे। सभा बड़ी उत्तमता के साथ समाप्त हुई। इस की सफलता के लिए सभा के मन्त्री गुरुदत्त जी हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके बाद, शाम को मान्य पंडित जी का अन्तरराष्ट्रीय-परिस्थिति पर बड़ा गम्भीर भाषण हुआ।

गुरुकुलीय रक्षा समिति:—

इन सबसे अधिक मुख्य बात यह है कि गत सप्ताह गुरुकुल में रक्षा समिति की बैठक हुई और इस में कुल वासियों के लिए सैनिक शिक्षा (ड्रिल तथा लाठी आदि का अभ्यास) अनिवार्य करदी गई है। ब्रह्मचारी जहां इस बात को पहले ही से करते थे वहां अब उपाध्याय अध्यापक तथा सब कर्मचारी भी करने लगे हैं। अब यह कार्य नियम पूर्वक सुचारु रूप से चल रहा है।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रैस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ५ श्रावण १९९७; १९ जौलाई १९४०   [संख्या १४

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी; अनुवादक—
श्री धर्मराज वेदालंकार]

(५)

(ख) गुरुकुलों के स्थायी मकान

किसी भी संस्था के स्थिर अस्तित्व के लिए संस्था के अपने स्थायी मकान आवश्यक हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारियों के आगे राजाओं के मुकुट झुका करते थे, इस लिए गुरुकुलों की झोंपड़ियां महलों की अपेक्षा अधिक निर्भय तथा सुरक्षित होती थीं। परन्तु आज राजा और प्रजा दोनों के हित एक दूसरे से टकराते हैं। अगर राजा प्रजा के लिए हो तो जहां प्रजा की सन्तानों का शिक्षण होता हो वहां उनके रहने के लिए उचित प्रकार के मकान संस्था के संचालन का खर्च तथा अन्य सब प्रकार की सामग्री राज्य की ओर से मिलने के कारण संस्था के प्रबन्धकों को किसी प्रकार की फिकर करने की आवश्यकता नहीं। अथर्ववेद में कहा है—"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति" अर्थात् ब्रह्मचर्य के तप के द्वारा राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। जिस युग में समस्त राज्य की रक्षा का आधार ब्रह्मचर्य होता था उस युग में ब्रह्मचर्याश्रम के लिए स्थायी मकान आदि की समस्या का अवकाश ही नहीं था। परन्तु अब तो यह कहना पड़ेगा कि संस्था के लिए स्थिर मकान अनिवार्य हैं। गुरुकुलों के लिए किस प्रकार के मकान होने चाहिएं? यह विषय विचारणीय अवश्य है। कई विचारकों का कहना है कि गुरुकुलों में मकानों के पीछे जो खर्च हुआ है वह ठीक नहीं। जिनके सामने प्राचीन काल के गुरुकुलों की कल्पना है उनकी आज भी गुरुकुलों में झोंपड़ियां देखने की इच्छा हो यह स्वाभाविक है। लेकिन देश काल में जो परिवर्तन हुआ है उनकी तरफ भी ध्यान देना चाहिए। इतना तो ठीक है कि मकानों पर ज्यादा खर्च करने की अपेक्षा बालकों रूपी जीवित जागृत मकानों पर अगर यह खर्च किया जाए तो ज्यादा अच्छा है। स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हों, सील वाले न हों, हवा और रोशनी आती हो, रहने का आराम हो और प्राचीन काल के द्योतक हों इस प्रकार के मकान तो होने ही चाहिएं। कलाओं को देखने के लिए देश देशके स्थापत्य कलाविशारद हिन्दुस्तान में आते हैं, इसका क्या कारण है? यहाँ की स्थापत्य कला ने उच्च कोटि तक विकास किया था। गुरुकुलों के मकान चाहे सादे हों लेकिन उनकी दीवारों में से प्राचीनता टपकनी चाहिए। ये मकान भव्य बेशक हों लेकिन इनकी रचना को देखकर पाश्चात्यों की आँखें तो जरूर खुलनी चाहिएं। इन मकानों में बहुत सूक्ष्म चित्रकारी और नकाशी का काम करने की जरूरत है ऐसा मेरा अभिप्राय नहीं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल के मध्यभाग में जो यज्ञशालाको रचा था इससे गुरुकुल की शोभा द्विगुणित हो गई थी। गुरुकुल में यज्ञशाला, गोशाला, धर्मशाला आदि मकानों का होना जरूरी है, परन्तु कर्जा लेकर ये सब मकान बनाने से कोई संस्था स्थायी नहीं बन सकती। संस्था की क्रमिक प्रगति से यदि प्रजा को संतोष होवे तो उदार दानी गृहस्थों के हृदय में ज्योति प्रगट होती है और परिणामतः दान का प्रवाह फूट सकता है। आचार्य का निवास स्थान प्राचीन संस्कृति के सादगी के आदर्श को प्रगट करने वाला होना चाहिए। गङ्गा के परले पार गुरुकुल काङ्गड़ी में तो आश्रम, यज्ञालय, स्नानागार, तथा आचार्य कुटी आदि इमारतें थीं। इन सब में एक भावना ओतप्रोत थी। इस भावना की उपेक्षा करके हम अधिक देर तक संस्कृति की रक्षा का दावा नहीं भर सकते। इन्द्रप्रस्थ के मकान पहाड़ी मकान हैं। मुम्बई प्रदेश के गुरुकुलों में विद्या सभा का जो गुरुकुल है उसके पास तो अभी तक अपने मकान हैं ही नहीं। सूपा गुरुकुल के मकान गुरुकुल कांगड़ी की शैली पर मामूली परिवर्तन के साथ बनाए गए हैं। सोनगढ़ गुरुकुल भव्य महल बनाने में भाग्यशाली हुआ है परन्तु उसके अन्दर अब 'गुरुकुल' की आत्मा नहीं रही है और यह किस प्रकार बस सकेगा यह बात शङ्कास्पद है। शरीर बन गया लेकिन आत्मा उड़ गई।

गुरुकुल के मकानों की दीवारों को किसी रंग से रंगना चाहिए-उदाहरण के लिए पीले रंग से। प्राचीन स्थापत्य के विशेषज्ञ भारत में मौजूद हैं उनसे इस विषय में सलाह अवश्य लेनी चाहिए। अगर इस प्रकार किया जायगा तो मकानों की कृत्रिमता दूर हो सकती है, मकानों में प्राचीनता का दर्शन हो सकता है और अल्प व्यय से बड़े बड़े मकान बनाकर हम परिश्रम पूर्वक कमाए हुए जनता के पैसे को बचा सकते हैं।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बाल शिक्षा का स्थान

(ले०—श्री वीरेश विद्यालङ्कार)

(५)

बालक स्वभावतः चञ्चल है अतएव परिवर्तन प्रिय तथा अस्थिर मति है। उसकी इस चञ्चलता में भी एक प्रकार का विनोद है जो इस चञ्चलता में भद्देपन को नहीं आने देता। चञ्चलता बन्दर जैसे पशुओं में भी विद्यमान है-परन्तु वह औचित्य को अतिक्रमण कर जाने के कारण बहुधा भद्दे रूप में हमारे सम्मुख आती है। बहुधा बन्दर की चञ्चलता की प्रतिक्रिया मनुष्य में उसे ढेले मारने, भर्त्सना करने तथा उसे चिढ़ाने में होती है। परन्तु इसके प्रतिकूल बालक की चञ्चलता मनुष्य के विनोद का सामान बन जाती है और वह उसे इतनी प्रिय लगती है कि वह सहसा उससे प्यार करने लगता है। इस प्यार करने की इच्छा को यदि समझ से काम में लाया जाय तो बाल-शिक्षा के अनेक सुन्दर पाठ बन सकते हैं। बालक को खिलौने देने के साथ नाम बता कर उसे रटवाने से बालक का मनोरञ्जन होना स्वाभाविक है। बालक का हाथ थाम कर उससे वर्णमाला के अक्षर अथवा गिनती के अङ्क लिखवाने से उसकी अंगुलियों और हाथों में के गोल मोल संचालन में लिपि कला का प्रथम अध्याय अपनी झांकी दिखाने लगता है। फूलों की बहुरङ्गी क्यारी में ले जाकर भ्रमण कराने से नाना रङ्ग रूप वाले सुन्दर फूलों से उसकी जानकारी होती है। हरे भरे सुविस्तृत धान व गेहूं के खेतों में खड़े हो कर चारों दिशा-इनकी उप दिशा और कोणों में लक्ष्य कर के दिखाने से उसकी दिशा ज्ञान की सीमा बढ़ने के साथ ही समीपता-दूरी, ऊपर नीचे आदि व्यावहारिक दिशा बोधक परिभाषाओं में उसका प्रवेश होता है। प्रातःकाल का सूर्योदय और संध्या का सूर्यास्त, सुनील आकाश की अनन्त नीलिमा का विस्तार-एक ह झपकी में अनगिनत तारों का आंखों दीखना तथा प्रातः ओझल होना, चन्द्रलेखा का आदिम उदय और उसका निरन्तर बढ़ना-घटना पर्वतों का ध्रुव स्थिरता में ऊपर सिर किये खड़े रहना, नदी सरिताओं का निम्नोन्मुख प्रवाह और वनों का ऐकान्तिक मौन, किस बाल हृदय को अपने सहस्रों प्यार दुलार से पालता पोसता न होगा। यह है बालक का प्राथमिक वातावरण जिसको अपने शत शत हस्तों से सृजन करने में प्रकृति माता ने न केवल अपने अमूल्य वस्त्राभरण परन्तु अन्तर की समस्त भाव प्रतिमाओं को समर्पित करके उन्मुक्त उदारता का परिचय दिया है जिसे कि गुप्त विद्या-कोशों को शिष्य के सम्मुख खोलने वाले ब्रह्मदानी गुरु ही दिया करते हैं।

ऊपर कहा गया है कि बालक में चञ्चलता होती है और इसी कारण प्रारम्भ में उसके पदे २ विक्षिप्त चित्त होने की संभावना है। इस चञ्चलता से उत्पन्न विक्षिप्तता का इलाज शिक्षक किस प्रकार से करे ? एक इलाज जो ऊपर बन्दर के संबन्ध में कहा गया था वह है प्रतिक्रिया यानी डाट-धमका, मार पीट कर सीधा कर देना। परन्तु यह इलाज मानवीय होने की अपेक्षा हमें तो पाशविक अधिक दीखता है। इस कारण इस से मानवीय सुधार की सम्भावना कम प्रतीत होती है। मानवीय इलाज तो चञ्चलता-विक्षिप्तता-पठनभीरुता आदि दोषों के मूल को खोज कर उसका इलाज करना है। मेरी समझ में बालकों की सहज चञ्चलता को दबाने की बजाय उसे हमें रोचक परिवर्तनों के दायरे में ले जाकर विनोदी बनाना चाहिये। यह ठीक है कि चञ्चल प्रकृति मनुष्य कुछ भी स्थिरता से नहीं कर सकता। अर्थात् कोई काम पूरा नहीं कर पाता, सब अधूरा ही करता है। निस्सन्देह ऐसी चञ्चलता दुर्गुण है। यदि बालक में भी इसका बीज है तो उसका इलाज अभी से आरम्भ होना चाहिये। चंचलता से विक्षिप्त चित्तता आती है और इससे कोई काम पूरा नहीं हो पाता। यदि कोई बालक पाठ को पूरा याद नहीं करता--अधूरा सा करता है—डिब्बे या खिलौने कभी पूरे नहीं कर पाता-हमेशा अधकचरे बना कर छोड़ आता है-तकली से कताई करता हुआ तार झट झट तोड़ कर उन्हें ठीक से नहीं जोड़ता, योग या ऋण का सवाल करते हुए अन्तिम अंकों पर पहुंचने की जल्दी में हमेशा गलती करता रहता है तो यह सब कमियां उसकी चंचलता से उत्पन्न विक्षिप्त चित्तता का उदाहरण समझना चाहिये। इन अधूरी आदतों को मार-ताड़ कर दबा देने की बजाय शिक्षक को चाहिए कि बालक के अन्दर अति चञ्चल बन रहे चञ्चल स्वभाव को सोच समझ कर अर्थात् जानबूझ कर स्थिर तथा शान्त बनाने का प्रयत्न करे। इस लिये उसको-चञ्चल स्वभाव को उत्पन्न करने वाली जल्दी को-स्थिर तथा शान्त प्रकृति प्राप्त कराने वाली देरी में तथा पुनः पुनः पर्यवेक्षण और प्रतीक्षा करने की शिक्षाओं से इस प्रकार समझाना बुझाना चाहिये कि वह स्वयमेव अपनी गलतियों को—कमी को जानले और उन्हें जान कर दुरुस्त करने का आदी हो जाय।

वह बालक कितना भला प्रतीत होगा जो कि अत्यन्त चंचल होने की बजाय, शान्त-चञ्चल विनोदों का सृजन कर्ता हो। पठन भीरु होने की बजाय एक बार खेलने में खूब दिल लगा कर फिर पठन प्रारंभ करने में भी खेल कूद की उमंग को अपने साथ बनाये रखता हो। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बालकों को स्वच्छन्द क्रीड़ा-विहार की बजाय पाठशाला, शिक्षक का कमरा, तथा स्कूल की चहार दीवारी क्यों काटती सी है, क्यों भय दिखाती है।

क्या वह वहां पर जहां दूसरे भी सैंकड़ों बालक जमा होते हैं अपने घर का सा आराम और आनन्द अनुभव नहीं कर पाते या अपने मां बाप और भाई बहिनों का सा प्यार नहीं अनुभव करते। होना तो यह चाहिये कि उन्हें इस बात का विश्वास हो जाय कि अब जहां पर घर को छोड़ कर वह पहुंचाये गये हैं वह घर की न्याई या बृहत्तर घर की भांति ही एक शाला है जहां कि वह घर के उन खेलों और विनोदों से भी बढ़ कर हर्षित करने वाले खेलों को अपने पाठों में प्रति दिन पढ़ कर उनका क्रियात्मक अभ्यास करेंगे जिसके लिये यह विस्तृत शाला बनाई गई है। परन्तु देखा जाता है कि शाला का यह अभिप्राय सिद्ध न होकर बालकों के कोमल मनों पर जो कि ऐसे परिवर्तन के लिये तैयार नहीं होते उलटा ही प्रभाव पड़ता है और वह पाठशालाओं और स्कूलों से ऐसे दूर भागते हैं जैसे भेड़ें और बकरियां उन हृदय हीन व डों से जहां उन्हें लाठी के सिवाय और कुछ नहीं मिलता।

घर और परिवार आनन्द और सुख का धाम होता है तो शाला का संसार भी खेल—कूद पठन-पाठन और रचन सृजन का सुखद आगार होना चाहिये। इसके लिये हमें विद्यालय का वातावरण बनाना होगा, जो भी बालक के अभाव-अभिलाषाओं को पूरने के लिये, रुचि और रचनी-वृत्ति का परिष्कार करने के लिये और इसके साथ ही अनजाने में उसके मानस के मृदु स्तरों पर उन गुणों की अमिट छाप छाप बिठाने के लिये जिनके प्रचार के लिये विद्यालय की स्थापना हुई है। आज हमारे देश में सहस्रों की संख्या में विद्यालय खुले हुए हैं पर उनके बारे में यह कहा जा सकता है कि यह बालकों की शिक्षा तथा उन्हें संस्कृत बनाने के लिये नहीं हैं अपितु कुछ पहिले से निर्धारित पाठन क्रम को बालकों के कोमल दिमागों में ठूंसने के लिये ही हैं। मन्त्र-सूत्रादि का स्मरण करना तथा पठित पाठों का घोखना अपने आप में कोई बुरी चीज नहीं है परन्तु जब शिक्षा के एक गौण से अंग को समूची शिक्षा समझ लिया जाय—तो यह खटके की बात है। शिक्षा का ध्येय और विशेषतः बालशिक्षा का ध्येय तो यही होना चाहिये कि जिससे शिक्षार्थी के अन्दर निहित गुण धर्मों और सुप्रवृत्तियों को समुचित प्रेरणा मिले कि जिससे उनकी गति विकासोन्मुख हो। बालकों की शिक्षा के बारे में जिस बात का ध्यान जरूरी है वह यह है कि उनकी नाना प्रवृत्तियों का अध्ययन करके उनकी पूर्ति और प्रेरणा के लिये किसी मूर्त उपादान का आश्रय लिया जाय। जैसे कि हमने प्रारम्भ में कहा था कि घोखना एक स्वरयन्त्रों में निबद्ध ऐन्द्रियिक क्रिया है। (Mechanical repetition of tongue.) यह कथन बालकों के प्रसंग में नितान्त संगत होता है। बालकों का घोखना मानसिक क्रिया के साथ स्पर्श करते हुए भी वस्तुतः स्वर-यन्त्र-जन्य एक मूर्त क्रिया ही है। इसी नियम का अनुशीलन करके हमने बाल शिक्षा के समूचे पाठ्यक्रम को सम्मुखीन (Direct) तथा मूर्त रूप (objective) देने का प्रस्ताव किया है। क्यों कि ऐसा करने से न केवल पाठ्य विषय दुरूह होने की बजाय सुगम हो जायगा परन्तु बाल-बुद्धि में समझ न आने वाले विषय भी सुगम होकर साथ ही बालकों के लिये मनोरञ्जक भी हो सकेगा। यह आवश्यक नहीं कि मूर्त पाठ (object lessons) पढ़ाने के लिये अपेक्षित सामग्री विदेशी व कीमती ही खरीद कर लाई जाय परन्तु उन्हें प्रत्येक शाला के कर्मकार आवश्यकतानुसार स्वयं भी अपने यहां उचित हाथ की सफाई (हस्त कौशल) के साथ निर्माण करने में सफल हो सकते हैं यदि उस ओर भी प्रयत्न किया जाय।

अन्त में हम बालशिक्षा का विषय समाप्त करते हुए एक निवेदन करना चाहते हैं। बालकों को शिक्षा छोटे बच्चों को पढ़ाने की कला है। इसे हर कोई नहीं कर सकता इसके लिये उपयुक्त शिक्षक की अपेक्षा है जो कि बाल स्वभाव और बाल प्रवृत्तियों से परिचित हो। उनकी अवस्था के अनुसार लिखा-पढ़ा सके। खपक सिखा सके। बालकों के दिल और दिमाग और प्रायः शरीर भी मोम से कोमल होते हैं। इस अवस्था में उनकी शिक्षा के लिये कठोर और कटु उपायों की अपेक्षा कोमल और कृपालु उपायों को बरतना ही श्रेयस्कर है। हम ताड़ना और लालना जो कि कठोर और मृदु उपाय हैं दोनों को शिक्षा के क्षेत्र में मानते हैं परन्तु साथ ही कहते हैं कि बालक के दिल और दिमाग की क्षमता को समझने के लिये कोमल व्यवहार तथा सहानुभूति पूर्ण शिक्षण का सिलसिला जारी रहना नितान्त आवश्यक है। यह बात कितनी तथ्य है कि गुरु की कृपा और दया से शिक्षा प्राप्त होनी सहज है परन्तु क्रोध और अक्षमाशीलता से नहीं।

ग्रीष्म कालोऽयमागतः

यह आतप है आया।

संसृति के उच्छ्वास वात में
विकल प्राण कुम्हलाया॥

दिनकर के उन तृषित दृगों ने
क्षीर सिन्धु सुखाया।

गात पुलिन-बन-वीथि राजि में
धर्म जाल बिछाया॥

मीन एक आकुल नांवों से
तल 'आह्वान' आय।॥

क्षुधा तृषा की करुण कथा में
मूक हूक थी माया॥

मरणोन्मुख हो शुक शावक ने
अश्रु आर्त गिराया।

विह्वल श्रान्त पथिक है चिन्तित
यह आतप क्या लाया॥

जगा ग्रीष्म है विश्व देश में
समय शुष्क सा छाया।

मानव पर निदाघ से दारुण
अग्नि ज्वाल झुलसाया॥

"द्विरेफ"

गुरुकुल

५ श्रावण शुक्रवार १६६७

आत्मरक्षा

(आचार्य अभयदेव जी)

१ आत्मरक्षा या आत्मघात

पंजाब के कुछ भागों से लोग अपने घर छोड़ छोड़ कर इधर आ रहे हैं। हरद्वार में ऐसे बहुत से परिवार आ चुके हैं। गुरुकुल में ऐसे पत्र भी पर्याप्त मात्रा में आये हैं जिनमें इधर आजाने की अपनी इच्छा प्रकट की गई है और रहने का प्रबन्ध कर देने को कहा गया है। यह सब देख कर बड़ा दुःख होता है। पहिला ख्याल तो मन में यह आता है "जनाब जिन्ना साहिब तो ज़बानी ही पाकिस्तान की बात कह रहे हैं पर यहां तो वह सचमुच किया जाने लगा है, समझा जाता है और कईओं ने तो स्पष्ट कहा कि असल में मुस्लिम लोग भी पाकिस्तान चाहते नहीं हैं; यह तो केवल धमकी है या धमकी के लिये एक प्रतियोजना मात्र है, पर यहां तो हिन्दुओं की तरफ से इस पर अमल भी शुरू हो गया है।" यह कितने दुःख और दुर्भाग्य की बात है। मेरा जी करता है कि मैं इस समय पंजाब में जा बसूं और इन आस के क्षेत्रों में घूमूं। मुझे यदि गुरुकुलीय कर्त्तव्यों से छुट्टी दी जा सके तो मेरी बहुत प्रबल इच्छा पंजाब जाने की है। ऐसे लोगों को मैंने तो सदा यह सलाह दी है कि यथा शक्त वहीं रहो, अन्य सब के साथ ही जीओ या मरो। पर यह स्पष्ट है कि उन का यह भागना आदि सब कुछ आत्मरक्षा के लिये है, उधर पाकिस्तान की योजना भी मुसलमान अपनी स्थिर सुरक्षा के लिये ही करना चाह रहे हैं। और मैं कहता हूं कि मैं जो उन्हें वहीं जीने या मरने की सलाह देता हूं वह भी उनकी हिन्दुओं की और देश की सच्ची सुरक्षा के लिये दे रहा हूं।

कहीं हम आत्मरक्षा करते हुए असल में आत्मघात तो नहीं कर रहे?

निर्भयता

आक्रमण से आत्मरक्षा करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। प्रकृति ने हरेक प्राणधारी व जीवित संगठन के अन्दर यह प्रवृत्ति रखी हैऔरयहप्रवृत्तिहमारे अन्दर नानाविध खतरों व आक्रमणों केसमय पर नानाविध क्रियाओंका रूप धारण करती है। पर यह आत्मरक्षा हम किन्हींभी क्रियाओं द्वारा करें या किन्हीं साधनों द्वारा करें इसके लिये जो सबसेअधिक प्रतिकूल वस्तु है, और आक्रमण के लिये जो सब से अधिक अनुकूल है वह है भय। भय तो आक्रमण को निमन्त्रित करता है, कठिनाई व मुसीबत को अपनीओर खींचता है। जैसे कहीं गरमी आदि के कारण से हलके होने से वायुमण्डल में किसी स्थान पर शून्यता पैदा होती है तो चारों तरफ की वायु उधर खिंच कर आती है और आंधी आ चल पड़ती है, उसी तरह हमारे अन्दर भय के कारण जिससे हम डरते हैं उसके प्रति शून्यता उत्पन्न हो जाती है जिस से सब तरफ से वह वस्तु हम पर बढ़ कर आने लगती है। भयभीत या बलहीन होने का मतलब ही यह है कि जिससे हम डरते हैं उसके आने के लिये अपने अन्दर स्थान खाली कर देना। कहते हैं एक बार महामारी एक शहर से लौट रही थी जहां दस हज़ार आदमी इस बीमारी से मरे थे। उस से किसी ने पूछा कि तुमने बहुत आदमी मारे। उसने जवाब दिया, 'नहीं' मैंने तो मुश्किल से सौ आदमी मारे हैं, शेष ६ हजार ६ सौ तो भय ने मारे हैं।' जंगलों का अनुभव रखने वाले लोग बताते हैं कि जंगली जानवर, विशेषतः शेर, तभी आक्रमण करता है जब कि मनुष्य की आंख में भय के चिन्ह प्रकट होते हैं। यदि मनुष्य निर्भय होकर उससे आंख मिलाये तो शेर हट जाता है। आक्रमण तभी होता है जब आक्रान्ता और उसके शिकार का धन और ऋण का सम्बन्ध हो जाता है, भाव और अभाव का मेल मिल जाता है। भय है जो प्राणों को ऋणात्मक बना देता है, उस में अभाव उत्पन्न कर देता है। कुत्ते से डरो तो वह और जोर से भौंकता है, डर कर भागो तो वह जोर से भौंकता हुआ पीछा भी करने लगता है, नहीं तो दो चार बार भौंक कर चुप हो जाता है। निर्बल जब भय के लक्षण प्रकट करता है तो, दुष्ट बलवान् को आक्रमण व अत्याचार के लिये प्रलोभित करता है, ललचाता है। न भी आक्रमण करना हो तो उस के भय को देख कर आक्रमण करने को तैयार हो जाता है। आज यही हो रहा है। लोगों ने भय के मारे भागना तक शुरु किया तो दूसरे मनुष्यों की दबी हुई हिंसा वृत्तियां जाग गईं, कइयों को यह हालत देख लूटना याद आ गया, कइयों को इसका मौका मिल गया और कइयों को ऐसा करने का साहस हो गया। नहीं तो इन मनुष्यों की ये नीची वृत्तियां सुप्त पड़ी रहतीं।

भय को छिपाने के लिये सबलता का प्रदर्शन

भयभीत होना हिंसा को बढ़ाना है और मूल रूप में कहें तो निर्बल होना ही हिंसा को बढ़ाना है। इस लिये भयभीत न होना और अपनी सबलता को अनुभव करना आत्म रक्षा का मौलिक इलाज है। यदि हमें अपनी सबलता का भान है, अत एव हम निर्भय हैं तो हम दूसरे में आक्रमण करने के भाव पैदा होने को ही रोक देंगे। इस लिये कभी कभी अपने बल का प्रदर्शन कर देना ही गुंडे हो सकने वाले अपने दुःसाहसी भाइयों को रोकने के लिये पर्याप्त हो सकता है। यदि ये हमारी सैनिक क़वायदें तथा तैयारियां यह प्रकट करने के लिये हैं कि हम जागरूक हैं, हम में संगठन और व्यवस्था की शक्ति है, संयमक है तब तो ठीक है। पर यदि यह भय के कारण है तो बुरा है, त्याज्य है। क्यों कि कई बार अपने भय को छिपाने के लिये ही बल का प्रदर्शन—दिखावा—किया जाता है। पर असल में उनका भय छिपता भी नहीं है। छिपाने के लिये किये बल (?) के प्रदर्शन में से झलक झलक कर वह बाहर झांकता है। और अपने अन्दर का—मन का—

भय तो अन्दर अन्दर अपना (आक्रमण को खींच लाने का) काम करता ही है। मुलतान में लोगों ने अपने घरों में लोहे के दर्वाज़े लगवाने शुरु किये। वहां की सरकार उन्हें तुड़वा रही है। क्योंकि ये लोहे के दर्वाज़े लगाना बल का प्रदर्शन नहीं था किन्तु छिपे हुए भय का प्रदर्शन था। मुलतान शहर में हिन्दूओं और मुसलमानों ने तलवारें भी बढ़ बढ़ कर खरीदीं। पहिले इसकी इजाज़त दे दी गई थी-अब ये छीन ली गई हैं। यह सब भय और पराधीनता का खेल है। ये दोनों चीज़ें साथ ही रहती हैं।

(क्रमशः)

छात्रवृत्ति की आवश्यकता

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के एक होनहार ब्रह्मचारी के लिये एक छात्रवृत्ति १६) मासिक की आवश्यकता है! बालक सदाचारी, धर्मात्मा अपनी श्रेणी में उत्तम तथा अच्छा व्याख्याता है। ८ म श्रेणी में पढ़ता है उसके पिता धनाभाव के कारण शुल्क नहीं दे सकते परन्तु उसे पढ़ाना गुरुकुल में ही चाहते हैं। यदि कोई दानी विद्या-प्रेमी इस ब्रह्मचारी की पढ़ाई का भार अपनी छात्रवृति देकर उठाना चाहें तो बड़ा उपकार होगा! कम से कम सहायता भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की जायगी।

पता:--पं० सोमदत्त जी आचार्य
गुरुकुल कुरुक्षेत्र,
करनाल।

हंस, सुना, तुम चुगते मोती

सच मुच मुझको अपनाओगे ?
मेरे मानस में आओगे ?
तुम क्या जानो, तुम्हें बुलाने मुझे झिझक कितनी है होती !
हंस, सुना, तुम चुगते मोती ?

(२)

मेरा मानस जलता रहता ?
शोले लाल उगलता रहता ?
कहां रहोगे ? क्या खाओगे ? यही सोच चेतनता रोती !
हंस, सुना, तुम चुगते मोती ?

(३)

तुम मुझको कहते पत्थर दिल ?
किन्तु बचा भी क्या मेरा दिल ?
पिघला इसे, तुम्हारे हित आंखों में सतत बनाता मोती !
हंस, सुना, तुम चुगते मोती।

—सत्यभूषण 'योगी'

प्राच्य और प्रतीच्य

(३)

[ले० श्री ब्र० भीष्म देव]

पाश्चात्य सभ्यता को लेकर जो अंग्रेज हमारे भारत वर्ष में आये और आज राज्य करते हैं वे अपने आश्रितों के अन्तरंग बनकर नहीं रह सकते। प्रजा के मनों के जानने की उपेक्षा करते हैं। अंग्रेज उपकार करने से पीछे न हटेंगे किन्तु किसी प्रकार भी मनुष्य के पास जाना नहीं चाहेंगे। अंग्रेजों ने अपने आपको हम लोगों के लिये आवश्यक तो कर डाला पर प्रिय बनाने का आवश्यकता नहीं समझी।

पर अंग्रेजों का ही कमी देखने से यह विवेचन पूर्ण नहीं हो पाती। इन दोनों संस्कृतियों का समागम अभी तक मङ्गल परिणाम क्यों नहीं ला रहा- इस में भारत वासी भी कारण हैं। हम अंग्रेजों में जो सत्य है श्रेष्ठ है उसके साथ सम्पर्क नहीं करते। उन में हम वणिक् भाव ही पाते हैं। हमारा और उनका आफिस का सम्बन्ध है आत्मीयता का नहीं।

मेल समान बल वालों में ही सकता है। हमें मानना पड़ेगा कि भारत वासी दुर्बल हैं। भारतीय स्वयं ही दुर्बलता के वशीभूत हो गये हैं। वे अंग्रेजों के सामने दीन हो जाते हैं। यह दीनता भारतीयों ने अपने आप पैदा की है। आज भी भारत में उच्च वर्ण के लोग नीच वर्ण के लोगों से दीनता करवाते हैं। यहीं से उच्च वर्णों में भी दीनता आगई है। यही दीनता अंग्रेजों के सामने जाकर प्रकट हो जाती है।

अबतक हमने अपने आप को मनुष्य नहीं बनाया। अतः रवीन्द्र कहते हैं- "जबतक हम व्यक्तिगत या सामाजिक मूढ़ता के कारण अपने देश के लोगों के प्रति मनुष्योचित व्यवहार न कर सकेंगे, जबतक हमारे देश के जमींदार अपनी प्रजा को अपनी सम्पत्ति का अङ्गमात्र न समझेंगे, हमारे देश का प्रबल पक्ष दुर्बल को पैरों नीचे दबा रखने को ही सनातन रीति समझेगा, ऊंचे वर्ण के लोग, नीचे वर्ण के लोगों के प्रति पशु से भी अधिक घृणा करेंगे तब तक हम अंग्रेजों से सद् व्यवहार पाने का दावा नहीं कर सकेंगे, और हम अंग्रेजों की प्रकृति को सच्चे भाव से नहीं जगा सकेंगे, और भारत वर्ष वंचित और अपमानित ही होता रहेगा।"

"हम अपने मनुष्यत्व के द्वारा उनके मनुष्यत्व को जगावेंगे। छल छोड़ सत्य ग्रहण करने का और कोई सहज रास्ता नहीं है"।

इस लिये हमें मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिये साधना करनी होगी। हमें एकान्त में जाकर अपने आत्मा को शिक्षित करना होगा। हम सबल होकर ही सबल के साथ मैत्री कर सकते हैं। तब ही हमारी सभ्यता पूर्ण हो सकती है। और हम मानव जाति को शान्ति प्रदान करने वाली संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं।

पूर्व को अपने आध्यात्मज्ञान का अभिमान है। वह आध्यात्म के प्रति बहुत अधिक झुक गया है। पर, यह ध्यान रखना चाहिए कि

पार्थिव परिस्थिति को सिद्ध किये बिना आध्यात्मिक अर्थ सिद्ध नहीं हो सकता। केवल मात्र आध्यात्मिकता कुछ नहीं कर सकती। यदि पाश्चात्य संस्कृति वैषयिकता से पूर्ण है तो पूर्व को आध्यात्मिकता की इसके साथ संगति होनी चाहिए। पूर्व और पश्चिम का, आध्यात्मिकता और वैषयिकता का पूर्ण समन्वय अवश्य ही करना पड़ेगा क्योंकि आत्मा मन के द्वारा ही देह में रहकर कार्य करता है। यदि पाश्चात्य संस्कृति भौतिक वादी है तो आध्यात्मवादी पौरस्त्य संस्कृति को उसका सहारा लेना पड़ेगा। आत्मा भी देह पर ही आश्रित रहकर कर्म करता है।

भौतिक आविष्कारों के मद से मदान्ध प्रतीच्य आध्यात्म में रमण करने वाले भारत पर आज शासन कर रहा है। सदियों से भारत कुचला जा रहा है-पर उसका अस्तित्व आज भी है; क्योंकि उसमें आध्यात्मिकता का सूक्ष्म बल है जहाँ पश्चिम का पशुबल पहुंच नहीं सकता। पशु बल को लेकर प्रतीच्य भारत पर आक्रमण कर चुका है। अब भारत को उसका प्रतिकार आत्मबल से ही करना होगा। प्रतीच्य पशुता ही करेगा, वह अपनी पशुता नहीं छोड़ेगा तो भारत भी अपनी आध्यात्मिकता नहीं छोड़ेगा। आखिर दोनों में सन्धि हो जायगी और एक विश्व संस्कृति का आविर्भाव होगा।

कइयों का विचार है कि भारतीय सभ्यता अपने आप में पूर्ण है, उसे किसी अन्य सभ्यता की आवश्यकता नहीं। पर, यह संकीर्णता है। यदि यह बात सच हो कि हम जो कर सकते हैं वह पहले ही किया जा चुका है तो फिर हमारा-संसार में आना-व्यर्थ होगा। कई सोचते हैं कि प्राच्य और प्रतीच्य का कभी संगम हो ही नहीं सकता। पर उनको ध्यान रखना चाहिए कि प्राच्य में ही बुद्ध, ईसा, मुहम्मद ने जन्म लेकर प्रतीच्य में भी अपना धर्म फैलाया है प्राच्य ने ही प्रतीच्य को धर्म की शिक्षा दी है।

ईसाई धर्म ने उनको यथोचित आध्यात्म का उपदेश दिया है। ईसा ने यूरोप को उपदेश दिया था—

"किसी से वैर मत करो। यदि कोई तुम्हारे बांये गाल पर चपत मारे तो उसके सामने दाहिना गाल भी धरदो। सारे काम काज छोड़कर परलोक में जाने के लिये तैयार होजाओ, कारण दुनिया दो चार रोज में नष्ट होजायगी।"

दूसरी ओर कृष्ण भगवान का उपदेश है-"खूब उत्साह से काम करो शत्रुका नाश करो और दुनियां का भोग करो।" यह प्राच्य को उपदेश दिया गया था पर प्रतीच्य इसका अनुकरण कर रहा है विचित्र उलट फेर होगया है। प्रतीच्य आज कृष्ण का उपदेश ग्रहण किये हुए है और प्राच्य ईसा का अनुकरण कर रहा है। पर, सत्य तो वैदिक धर्म में विदित है जो कहता है स्वधर्म का पालन करो। सब अपने हिस्से का काम करें। वैदिक धर्म कहता है-"अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।" कर्म और ज्ञान दोनों का संगम होना चाहिए। इन दोनों के संगम से ही अमृतत्व की उत्पत्ति होती है। विश्व कवि के दर्शन का स्रोत यही ईशोपनिषद् का वाक्य है। कवीन्द्र का चक्षु देखता है कि प्राच्य निरे ज्ञान में ही लगा है और प्रतीच्य कर्म में ही संलग्न है। एक विद्या का ही पोषक है, दूसरा अविद्या का। ये दोनों अकेले अकेले नाश की ओर जारहे हैं। इस विद्या और अविद्या को मिलने दो जिससे अमृत प्राप्त होगा—चरम शान्ति की स्थापना होगी।

इन दोनों संस्कृतियों का समन्वय ही संसृतियों में शान्ति की प्रसूति करेगा।

आप प्रतीच्य की संस्कृति के केन्द्र पेरिस में जाइए छोटे से बड़े सब स्वच्छ और सुन्दर पोशाक में सजे हुए दिखाई देंगे। पर, स्नान के लिए पानी मांगोगे तो बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ेगा।

प्राच्य संस्कृति के केन्द्र काशी में जाइए-वस्त्रों की किसी प्रकार भी पर्वाह वहां नहीं है- केवल एक अधोवसन से ही काम चल जाता है। कपड़े का मैला होना-उनके मन पर बुरा प्रभाव नहीं करता। रोज रोज स्नान करते हैं पर कपड़ा नहीं बदलते।

अब दोनों संस्कृतियों का संमिश्रण कीजिए-स्नान भी करना चाहिए और शरीर की शुद्धि के बाद स्वच्छ वस्त्र भी पहनने चाहिए। यह है दोनों संस्कृतियों का सामञ्जस्य।

पश्चिम में खाकर सबके सामने मुंह धोना या कुल्ला करना भी बड़ी लज्जा की बात है। लोक लज्जा के भय से होटलों में खा पी कर चुपचाप मुंह पोंछ कर बैठ जाना पड़ता है।

पूर्व में जाइए-सवेरे सवेरे गली में बैठ कर मुंह में हाथ डाल डाल कर मुंह धोते हैं दांत साफ करते हैं, कुल्ला करते हैं। यह असदाचार है।

अब दोनों को मिलाइये- अवश्य ही ये सब कार्य आड़ में करने चाहिए और सर्वथा न करना भी अनुचित है।

यहां पर यह भी देख लीजिए-हिन्दुओं की अन्तर्दृष्टि होती है वे फटी गुदड़ी में कोहनूर रखते हैं। विलायत वाले सोने के बक्स में मिट्टी का ढेला रखते हैं। हिन्दू भीतर साफ रखते हैं। विलायती बाहर साफ रखते हैं।

समन्वय यह है कि भीतर और बाहर दोनों की सफाई होनी चाहिए।

समन्वय का यह अर्थ नहीं है कि भारत अपनी संस्कृति को छोड़ दे। और नये सिरे से पाश्चात्य संस्कृति की स्वीकृति करे। अगर ऐसा हो जाय तो भारत का सर्वनाश हो जायगा। उसे पश्चिम के गुणों को अपने सांचे में ढाल कर लेना होगा। भारत को अपनापन रखते हुए दूसरे की संस्कृति को अपनाना होगा।

भारतीय सभ्यता इतना अधिक अपूर्ण नहीं है कि उसे सब कुछ दूसरों से ही लेना पड़े। परन्तु भारतीय संस्कृति रूपी नदी के विकास स्थान में सम्पूर्ण आध्यात्मिकता तथा उपयुक्त भौतिकता थी। पर, यह नदी केवल आध्यात्मिकता को ही लेकर बह निकली। भौतिकता तनिक भी न रहने पाई। अतः इस नदी को पाश्चात्य संस्कृति की नदी से संगम करना होगा। उसके बाद एक ही नदी मानव मात्र का हित करती हुई बहेगी।

भारत का स्वधर्म आध्यात्मिकता का रहा है। वह मानता है कि राजनैतिक एवं सामाजिक स्वाधीनता बहुत अच्छी चीज है। पर, इसका नम्बर आध्यात्मिकता

के बाद ही है। भारत के इतिहास में देख लीजिए। विदेशी राज्यों ने जब तक राजनैतिक और सामाजिक स्वाधीनता को कुचला भारत को कोई चोट न पहुँची परन्तु जब औरंगजेब ने हिन्दूधर्म को नष्ट करना चाहा–मुगलों का राज्य नष्ट होगया। आज भी यदि अंग्रेज हमारे धर्म कर्म के मामलों में हस्तक्षेप करें तो वे भी अपने नाश को निकट बुलावेंगे। हजारों वर्ष से पराधीन होने पर भी हिन्दू संस्कृतिका विनाश आज तक क्यों नहीं हुआ? इसका कारण यही हो सकता है कि उसकी आध्यात्मिकता जैसी सूक्ष्म चीज पर भौतिकतावादियों का तनिक भी प्रभाव न पड़ा। अतः हमें अपनी उस आध्यात्मिकता को कायम रखते हुए उनकी संस्कृति से आज शिक्षा लेनी होगी।

भारत यदि पश्चिम के प्रजातंत्र को स्वीकार करेगा तो वह अपने तरीके से। प्रजातंत्र राज्य स्थापित करने के लिये उसे पूरी तरह से प्रतीच्य की नकल नहीं करनी होगी। भारत में भी प्रजातन्त्र का जोर रह चुका है। यहां भी पञ्चायतों द्वारा ग्रामों मे निर्णय हुआ करता था। भारत में प्रजा तंत्र रहा है यह बात प्राचीन ग्रन्थ बताते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र, इस बात को बताता है। 'राजा' शब्द का अर्थ ही यह है कि जो प्रकृति अर्थात् प्रजा का रञ्जन करे। महाभारत के शब्द २ में प्रजातन्त्र राज्य को गन्ध आती है। हां, चुनाव जैसी पश्चिमी राजनैतिक जीवन की चीजें यहां दिखाई नहीं देती पर प्रजा सत्ता वैदिक मन्त्रों में भी प्रतीत होती है।

ऐसे ही प्रकारों से इन दोनों संस्कृतियों का सम्मेलन होगा और विश्व कवि का यह स्वप्न पूरा होगा कि– "भारत में जो लोग आए हैं अथवा आते हैं वे सभी हमारी पूर्णता के अंश होंगे, सभी को लेकर हम पूर्ण बनेंगे। भारत में विश्व मानवका एक अति महान समस्या का मीमांसा होगी वह सम्बन्ध यह है कि मानव समाज में वर्ण की, भूषा की, स्वभाव की, आचरण की, और धर्म की विचित्रता है– नर देवता इस विचित्रता के बदौलत ही विराट हुए हैं— भारत के मन्दिर में हम इसी विचित्रता को एकाकार में परिणत करके उसके दर्शन'''करेंगे—पृथकता'''को निर्वासित या लुप्त करके नहीं किन्तु सर्वत्र ब्रह्म की व्यापक उपलब्धि के द्वारा, मनुष्य के प्रति सर्व सहिष्णु परम प्रेम के द्वारा, उच्च और नीच, अपने और पराये, सब की सेवा को भगवान की सेवा मानने के द्वारा।"

(समाप्त)

गुरुकुल समाचार

चन्द्रगुप्त १३ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, सत्यवीर श्रेणी १३ श्लेष्म ज्वर, प्रकाशचन्द्र १२ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, अमरसिंह ११ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, शङ्कर देव १४ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, सहदेव ११ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, विश्वनाथ १२ श्रेणी Mumps चन्द्रकान्त २ श्रेणी Mumps, इन्द्रसेन ३ श्रेणी विषम ज्वर, श्याम बिहारी २ श्रेणी विषम ज्वर, रामचन्द्र श्रेणी ३ विषमज्वर, श्री कृष्ण १ म श्लेष्म ज्वर, देवेन्द्र (हैदराबाद) श्रेणी ४ विषम ज्वर, रामनन्दन ३ श्रेणी चोट।

गत सप्ताह उपरोक्त ८० रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

मान्य अतिथि श्री पन्नालाल जी

संयुक्त प्रान्त के हिज एक्सलेन्सी गवर्नर के सलाहकार श्री डा० पन्ना लाल गत १५ जुलाई को प्रातः काल ८ बजे गुरुकुल भूमि में पधारे। आपके साथ संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के शिक्षा व्यवसाय आदि विभागों के सेक्रेटरी श्रीयुत मेहता भी थे। मुख्याधिष्ठाता जी के साथ आप दोनों ने गुरुकुल के सब विभागों का निरीक्षण किया। गुरुकुल के श्रद्धानन्द सेवाश्रम, व्यवसाय विभाग, आयुर्वेदिक फार्मेसी, म्यूजियम आदि विभागों में आपने काफी दिलचस्पी प्रकट की और सराहना की। सरकार द्वारा यथोचित प्रोत्साहन का आश्वासन भी दिया।

इसके बाद एक कुल सभा में आपने कुछ देर तक अपने विचार भी प्रकट किये। आपने कहा कि मैं गुरुकुल में किसी सरकारी भाव को लेकर नहीं आया हूं। मैं तो एक हिन्दुस्तानी की हैसियत से यहां आया हूं और आप के बीच में आकर अत्यन्त प्रसन्न हूं। गुरुकुल को देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। आप लोग यहां पर ब्रह्मचर्याश्रम के कठोर जीवन को व्यतीत करते हुए 'सरल जीवन और उच्च विचार,के आदर्श को चरितार्थ कर रहे हैं। आप अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म का पुनरुद्धार कर रहे हैं, और साथ में पाश्चात्य विज्ञान की उपेक्षा नहीं कर रहे हैं यह आप की विशेषता है। आपके मकानों को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। आपने इनमें सब आवश्यकताएं पूर्ण की हैं। साफ सुथरे बनाए हैं किन्तु कहीं पर एक पाई भी फिजूल व्यय नहीं की है यह आपके जीवन आदर्श का चित्र प्रतीत होता है।

अन्त में आपने गुरुकुल को सफलता-कामना करते हुए आश्वासन दिया कि मैं आप की सब प्रकार से मदद करने को तैयार हूं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १२ श्रावण १९९७; २६ जौलाई १९४० [संख्या १५

"चतुरङ्ग साधन"

आचार्य चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति वेदमणी रिसर्च स्कॉलर सूरत

संसार के रमणीक उपवन में जहां सुख के सुन्दर सुगन्धित फूल और मधुर मधुर फल हैं वहां दुःख की कंटीली झाड़ियां भी जहां तहां पड़ी हुई हैं। इन्हें साफ करके सौन्दर्यनिधान, प्रेमघन, रसनिधान प्रभु का ध्यान करना ही मानव जीवन की साधना है। अतएव जगत के स्वरूप का विचार करके कपिलवस्तु के शाक्यमुनि-सिद्धार्थ ने "सर्व दुःखं" का उच्चारण किया। जरा, व्याधि और मृत्यु को देख इन्हें वैराग्य हुआ और प्रिय पुत्र और प्रिय पत्नी को निद्रा की मधुर गोद में छोड़ कर, लक्ष्मी की उपेक्षा करके श्यामनिशा में राजपाट छोड़ कर चल दिये। बुद्धदेव की यह वैराग्य भावना कायर की नहीं अपितु दूसरों के दुःखों को देख कर द्रवित हुए कोमल हृदय में से निकली हुई पवित्र भावना है। पुरुषोत्तम राम-चन्द्र जी ने वनवास के कठिन प्रसङ्ग में सीता देवी के सामीप्य की मधुरता को विस्मृत नहीं किया और जब दैवदुर्विपाक से यह माधुर्य लुट गया तब भी पूर्ण वीरता से विपदाओं का मुकाबला किया और विजयी हुये। जब इन दोनों महापुरुषों के जीवन में भी भिन्न भिन्न रूप में वैराग्य की भावनायें काम करती रही हैं तब हम पामर जीवों का तो कहना ही क्या? "संसार सरोवर' का 'ग्राह" हमें कोटि कोटि जन्मों से ग्रस रहा है क्या हमें इससे छुटकारा न मिलेगा? इस "ग्राह" से बच कर भगवान् के चरण शरण में आने के कौनसे साधन हैं? ज्ञानियों ने इसके लिये "चतुरङ्ग अधिकार" पाने की आवश्यकता बताई है वे इस प्रकार हैं।

(१) नित्यानित्यवस्तुविवेक (२) इहामुत्रार्थफल-भोगविराग (३) शम दम, उपरति, तितिक्षा श्रद्धा, समाधानादि षट् दैवी सम्पत्ति (४) मुमुक्षुत्व।

मनुष्य नित्यानित्य वस्तुओं का विवेक कर सकता है पशु नहीं। पशु वर्तमान सुख से संतुष्ट रहता है परन्तु मनुष्य भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों के सुख की प्राप्ति के लिये यत्नशील होता है। प्रभु ने मनुष्य में ऐसी विवेकशक्ति रक्खी हुई है कि वह अपना हिताहित विचार कर काम करता है—मनुष्य आज की रोटी के विचार से शांत नहीं होता है अपितु भविष्य के लिये भी विचार करता है। कुछेक तो इस जन्मके विचारसे शांत न रहकर परजीवनके विचार भी करते हैं। संसारके सुख अनित्य हैं। ऐसा कोई भी सुख नहीं है जो दुःख से रहित हो परन्तु मनुष्य उस सुख को चाहता है जो सर्वथा दुःख रहित हो। एक तरफ यह सुखाभिलाषा और दूसरी तरफ सत्य-जिज्ञासा दोनों ही नित्य सत्य की खोज में मनुष्य को प्रेरित करती हैं। प्रभु-प्राप्ति के ध्येय में यही नित्यानित्य वस्तु-विवेक प्रथम साधन है। हिरण्मय पात्र से आवृत संसार में निमग्न होकर परमसत् प्रभुको खोनेवाला मनुष्य महामूर्ख है। अतः सारदृष्टि के लिये "विवेक" जरूरी है। इसके बाद द्वितीय अंग 'वैराग्य' है। जगत् जगत् की दृष्टि से हेय है यही दृष्टि वैराग्य की जननी है। जगत् परमसत् का आधार होने से सत् है यह ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। आत्मा देह से भिन्न है, मां बाप हमारे नहीं हैं अनाद्यनन्त काल मध्यावधि में हमारे जीवन जल-बिन्दु-मात्र हैं। "परमात्मा ही आत्मा का सच्चा आधार है" "एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्" यह प्रभु ही आत्मा का परम प्रयोजन रस-स्थान है। जैसे पक्षी घोंसले की तरफ लौटते हैं इसी प्रकार हमारी वृत्तियां प्रभु की तरफ आवर्जित होती हैं। इसी लिये भक्तमीरा ने कहा है—"अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई,, संसार के महान आत्मा जगत् में विचरते हुए भी अरण्य तुल्य एकान्त का अनुभव किया करते हैं।

मीरा का उत्कट भक्त हृदय इस विश्व को प्रभु की मुंह बोलती तस्वीर बताता है। वस्तुतः धर्म भावना में वैराग्य एक आवश्यक साधन है। वैराग्य के बिना क्या बुद्ध महावीर, शंकर ईसा आदि महात्मा प्रबल धार्मिक बन सकते थे? योग्य अधिकार को पाये बिना संसार से घबरा कर जो वैराग्य पैदा होता है वह अनिष्ट कारक है। मीरा का वैराग्य प्रभु, प्रेम-रस से सिक्त होने से मधुर था, सुन्दर था। उसका हृदय विश्व के पारमार्थिक दुःखों को देख दया से भर आता और द्रवित हो "जगत देखि बहु रोई" रो उठता था। जिस वैराग्य से यह अनुकम्पा

पैदा हो वही सच्चा वैराग्य है। संसार का वैराग्य प्रभु के राग में जब तक परिणत नहीं हुआ तब तक अधूरा है। प्रभु के साथ प्रेम होने पर प्रेमी अहंता ममता से मुक्त हो जाता है। यही जीवन का सच्चा साध्य है। यह दशा ज्ञान से भी मिल सकती है। आत्मा अहंमय के बन्धन से अतीत है यह समझना भी आत्मस्थिति पाने के तुल्य है। इस दशा में साधक प्रभु में अखिल कर्मों का अर्पण करता है और प्रभु के क्षणमात्र विस्मरण में भी आकुल व्याकुल हुआ करता है। यही "भक्ति" का सत्य स्वरूप है "तदर्पिता खिला चरता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।" संक्षेप में कहें तो दोनों ही लोकों के सुखोपभोग को तिलाञ्जलि देना साधना के पथ का दूसरा मञ्जिल है। इस वैराग्य से ही देशभक्त सच्ची देशसेवा और प्रभुभक्त सच्ची प्रभु भक्ति कर सकते हैं। परलोक के सुखों को पाने की इच्छा से इहलोक के सुखों का परित्याग वाणिज्यवृत्ति है। अत एव शुद्ध वैराग्य की आवश्यकता है। एतदर्थ षट्क सम्पत्ति की साधना परमावश्यक है। प्रथम "शम" है। इसमें अन्तःकरण से विषय वासना को छोड़ने का प्रयास करना होता है। द्वितीय "दम" है अर्थात् बाह्य वृत्तियों से आत्मा को मलिन न होने देने का प्रयास। रूपरसादि विषयों से वृत्तियों को हटा कर आत्माभिमुख करना "उपरम" है। यह तृतीय दैवी सम्पत् है। हजारों विपदाओं को आत्मशक्ति से सहन करना "तितिक्षा" है। इसे पाने पर "विपदो नैव विपदः, सम्पदो नैव सम्पदः" 'विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः" विपत्ति की फांसी के झूले पर साधक हंसते हंसते झूल जाता है। इसके बाद "श्रद्धा" माता की गोद में विश्राम लेने की आवश्यकता है। "श्रद्धा माता मनुःकवि "ईशावास्यमिदं सर्वम्, ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" आदि वाक्यों में वर्णित उन्नत भावना सच्ची है। इस भावना को फैलाने को गुरुजन अपने अनुभवों से जो उपदेश देते हैं वह सर्वथा सत्य है। यह आस्था सच्ची श्रद्धा है। वृत्तियोंके परम-लक्ष्य भगवान की आराधना-साधना में चित्त को लगाना "समाधान" है। यह षट्क सम्पत्ति का सामान्य स्वरूप है। इससे मनुष्य के आचार विचार शुद्ध निर्मल बन जाते हैं।

नित्यानित्य वस्तु-विवेक करते करते अनित्य पदार्थ से वैराग्य हुआ करता है। इस वैराग्य में से षट्क सम्पत्ति का अनुष्ठान शुरू होता है। इन सब के आधार में "मुमुक्षुत्व" की उत्कट भावना अपेक्षित है। संसार से मुक्त होने की तीव्रतम वृत्ति "मुमुक्षुत्व" है। यही धर्मों का अंतस्सार है। दग्ध केश दुखी मनुष्य जिस तीव्र वेग से जलाशय में डुबकी लगाता है उतने ही वेग से विश्व की नश्वरता का ध्यान करके साधक के हृदय में प्रभु के दर्शन की तड़प होनी चाहिये। यह वृत्ति साधना की सहचरी है। जगत के हिरण्मय पात्र में संलग्न मुख को हटा कर मुमुक्षु जब अमृत कलश का चुम्बन करता है तब उसके सब दुख काफूर हो जाते हैं, साधना खिल उठती है और साध्य आंखों के सामने नाच उठता है। प्रभु-प्रेम माता के स्तन्य के समान मधुर है स्तन्य को चूसता हुआ बालक जैसे समीपस्थ जनों को देखता है, और उनसे बोलता है इसी प्रकार साधक संसार को देखते, अनुभव करते हुए भी शुद्धि के लिये प्रभु की ओर सकरुण निर्निमेष नयनों से देखा करते हैं। यह प्रेम शरणागति संसार रूपी ग्राह से बचाने का परम साधन है। यही मानव जीवन का परम चरम ध्येय है। हमें इस ध्येय के लिये प्रतिक्षण साधना करनी चाहिये।

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी; अनुवादक—श्री धर्मराज वेदालंकार]

(६)

गुरुकुलों के लिए दान

"हिन्दुस्तान के प्रत्येक कोने में गुरुकुल के लिए धन की थैलियां खुला मह करके पुकार रही हैं। परन्तु जाकर ले आने वाले पवित्र आत्मा नहीं हैं। मुझे सच्ची आत्माओं की आवश्यकता है। अपने रक्त से गुरुकुल वृक्ष को सींचने वालों की जरूरत है।"

—महात्मा मुन्शीराम.

जब समाज वर्ण आश्रम धर्मके अनुसार चलता था और बालकों की शिक्षा के लिये राज्य का कोष हरदम खुला रहता था तब धन की समस्या नहीं थी। किन्तु वर्तमान समय में प्रत्येक संस्था को किसी न किसी अंश में जनता से प्राप्त दान पर निर्भर रहना पड़ता है। शिक्षा संस्थाओं का सुचारु रूप से सञ्चालन विद्यार्थियों से मिलने वाले शुल्क तथा दानियों द्वारा दिये गये धन के द्वारा ही हो सकता है। आर्य समाज के संस्थाएं धार्मिक हैं और सांस्कृतिक भावनाओं से काम कर रही हैं, अतएव सरकारी संस्थाओं के समान इन्हें अब तक नहीं चलाया जा सका और चलाया भी नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त शुल्क की दर भी देश की आर्थिक स्थिति के सामान्य पैमाने को दृष्टि में रखते हुए ही नियत करनी पड़ती है। इस समय गुरुकुल जैसी संस्थाओं में कितने ही बालक सर्वथा निःशुल्क, कितने ही आधी फीस पर और बाकी नियत शुल्क देने वाले होते हैं। अनेक मां-बापों के शुल्क के खाते में देय धन बढ़ता ही रहता है। यदि ठीक समय पर शुल्क न देने वाले माता पिता की सन्तानों को घर वापिस भेज दिया जावे तो न सिर्फ गुरुकुल की भावना ही खंडित होती है परन्तु कितने ही प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का शुल्क न देने के कारण भविष्य बिगड़ सकता है। इस बात को संस्था के सञ्चालक नहीं देख सकते, इस लिये कई विद्यार्थी बिना शुल्क गुरुकुल में अध्ययन करते रहते हैं। अनेक संरक्षक आर्थिक स्थिति के ठीक होते हुए भी गुरुकुल से नाजायज फायदा उठाते हैं। इस तरह की खराब आदत से सरकारी संस्थाओं में तो घड़ी भर भी काम नहीं चलाया जा सकता। इससे दीपक के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि गुरुकुल के प्रबन्धकों को जनता तथा दानी श्रद्धालु गृहस्थों से मिलने वाले दान के आधार पर ही गुरुकुल चलाने के लिये आश्रित रहना पड़ता है। जब

जनता के सम्मुख धन के लिये झोली पसारी जाती है तब सब भूल जाते हैं कि किस कठिन आर्थिक अवस्था में सञ्चालकों को गुरुकुल चलाना पड़ता है। मां बाप भी इस चीज को भुला देते हैं कि एक विद्यार्थी पर भोजन वस्त्र औषधि शिक्षा आदि का जितना व्यय होता है शुल्क की दर उससे कहीं कम होती है। इसके अलावा गुरुकुल में खेल कूद और कसरत के साधन, दूसरे बालकों तथा अध्यापकों का सम्पर्क, खुली हवा तथा रोशनी वाली विशाल भूमि इत्यादि का जो लाभ मिलता है, इसके लिये मां बापों को कुछ खर्च नहीं करना पड़ता।

यह सब होते हुए भी अब इस बात को तीव्रता से अनुभव किया जा रहा है कि सामान्य जनता तथा लक्ष्मी के कृपा पात्रों में धीमे धीमे चन्दे की तरफ उपेक्षा की वृत्ति बढ़ती जा रही है। दूसरा एक नग्न सत्य यह है कि चन्दे का अधिकांश चन्दा मांगने वाले की व्यक्ति गत वाकफियत या अपन प्रतिष्ठा के कारण इकट्ठा होता है। लोग इसका ख़याल नहीं करते कि संस्था का महत्त्व क्या है और संस्था की ज़रूरियात क्या हैं। संस्था के काम को देख कर धन देने वाले विरले पुरुष होते हैं। लोगों से परिचय बढ़ाना, बार बार जलसे आदि में उनके सामने आते रहना इत्यादि युक्तियों से ही गुरुकुल के लिये धन संग्रह होना सम्भव है। गुरुकुल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में तो अवश्य जनता ने कुछ वर्षों तक पूरे उत्साह से धन की धारा बहाई। भागीरथी के तीर पर गुरुकुल चल रहा था, उस में प्रान्तीयता के दृष्टि कोण को तिलाञ्जलि देकर गुजरात ने भी अपनी शक्ति के अनुसार आहुति दी थी। बाद में गुजरात में ही गुरुकुलों के खुल जाने से इस आहुति में कमी जरूर हुई लेकिन यह आहुति रुकी नहीं। एक ऐसा समय आया जब कि पैसा कमाने के लिए अफ्रिका में गए हुए भारतीयों से चन्दा जमा करने के लिए अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि-मण्डलों ने यहां से प्रस्थान किया। दान लेने वाली संस्थाओं में अगर संगठन होता तो दान दाताओं में बुद्धि भेद होने की सम्भवना नहीं थी। लेकिन सब संस्थाओं का एक उद्देश्य होते हुए भी सब का ढङ्ग अलग अलग होने से दानी लोगों को संदेह हुआ और वे भिन्न २ विभागों में विभक्त हो गए। परिणामतः हरएक संस्था को अपेक्षाकृत कम चन्दा मिलने लगा।

गुरुकुल कांगड़ी पहिले जिस भूमि में था उस भूमि को देने वाले मुन्शी अमनसिंह जी थे और यह दान प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) और पण्डित गङ्गादत्त जी (स्वामी शुद्ध बोध तीर्थ जी) के द्वारा मिला था। इन तीनों के जीवन काल में ही गुरुकुल के भूमि परिवर्तन का प्रस्ताव पास हो जाने से इनके दिल को कितना आघात पहुंचा होगा, इस का अन्दाजा लगाना मुश्किल है।

पुराने दानी उदासीन हो गए, नए दानियों में दान के अंकुर उगते उगते ही कुम्हला जाते हैं। विराट् जनता सब से बड़ा ओडीटर है इस दिशा में सञ्चालक वर्ग को अधिकारियों को और जनता का गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए।

सारांश में मेरी नम्र सम्मति के अनुसारः—

(१) प्रान्तों के गुरुकुलों को परस्पर संगठित होकर एक बन जाना चाहिए। और फिर जनता से दान के लिए अपील करनी चाहिए।

(२) उत्तम उपदेशकों के द्वारा साल भर जनता में प्रचार करने के पश्चात् चन्दे के लिए निकलना चाहिए।

(३) प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा की आधीनता में चन्दा होना चाहिए और यह सभा प्रान्त के भिन्न भिन्न गुरुकुलों को ग्रांट की शकल में दान का धन दे सके ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

(४) निःशुल्क तथा अर्द्ध-शुल्क वाले विद्यार्थियों के माता पिता को अपने बालकों की शिक्षा के लिए यथा-शक्ति शुल्क देना अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

(५) सब प्रकार के अपव्यय को दूर करके प्रतिव्यक्ति जितना खर्च होता हो उसके अनुसार शुल्क की दर रखनी चाहिए।

(६) प्रतिभाशाली विद्यार्थी यदि गरीब भी हों फिर भी उनका शुल्क माफ न करके स्कालरशिप के रूप में उनकी मदद करनी चाहिए।

(७) खर्च का सारा हिसाब जनता के सामने आना चाहिए। और संस्था ने जो अच्छे कार्य किए हों उनसे जनता को परिचित करना चाहिए।

डा० पन्नालाल जी की सम्मतिः——

गुरुकुल का भली प्रकार निरीक्षण करने के पश्चात अपने आवास स्थान पर जाकर डाक्टर पन्ना लाल जी ने यहां के सम्बन्ध में अपनी जो सम्मति लिखकर भेजी है वह पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दी जाती है:—

गुरुकुल के विषय में कई वर्षों से मैं सुनता आ रहा था परन्तु यह अभी तक मेरे लिए केवल नाम मात्र था। आज प्रातः इस संस्था के योग्य और उत्साही मुख्याधिष्ठाता सत्यव्रत जी ने मुझे निमंत्रण दिया और गुरुकुल का दर्शन कराया। मैंने इसके विभिन्न कार्य देखे। विद्यार्थियों को सर्वथा प्राचीन प्रथा के अनुसार कठोर एवं गम्भीर शिक्षण दिया जाता है, साथ ही अन्य प्रथाओं के उत्तम एवं उपयोगी अंशों को भी अपनाया जाता है। कुलवासी असाधारण रूप में सावधान एवं स्वस्थ प्रतीत हुए; उनके चहरे सूक्ष्मदर्शी, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट लगते थे। मुख्याधिष्ठाता और उनके साथियों में आत्म सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना थी जिसका विद्यार्थियों पर अवश्य अच्छा असर पड़ता होगा। मुझे आशा है कि यहां से दुनियां में प्रविष्ट होने वाले नवयुवक सफल होंगे और मातृभूमि के सुपुत्र सिद्ध होंगे।

पन्नालाल

हिज़-एक्सलेन्सी दि गवर्नर यू० पी० के सलाहकार।

(शिक्षा एवं स्वास्थ्य विभाग)

१५-६-४०

गु रु कु ल

१२ श्रावण शुक्रवार १९९७

आत्मरक्षा

(आचार्य अभयदेव जी)

(२)

शस्त्रों की व्यर्थता

जो भयभीत होगा वह शस्त्रों की अपेक्षा रखेगा, शस्त्रों के तथा अन्य बाह्य वस्तुओं के पराधीन होगा, हिंसा करेगा। यह बात इतनी साफ और सीधी है—पर पुराने संस्कारों के कारण हमारे ध्यान में टिकती नहीं है कि भय, शस्त्रों की अपेक्षा, पराधीनता, हिंसा और कायरता एक ही बात हैं और निर्भयता, शस्त्रों की अपेक्षा न होना स्वाधीनता, अहिंसा और वीरता बिलकुल दूसरी बात है। यदि हम में भय है (हिंसा, कायरता आदि हैं) तो हम बेशक हथियार चाहेंगे। पर वे हथियार हमें काम नहीं देंगे, सम्भव है कि ये हमें ही मारने के काम में आवें। और यदि अभय (अहिंसा और वीरता आदि) है तो इन हथियारों की हमें अपेक्षा नहीं होगी। अतः शस्त्र दोनों हालतों में बेकार हैं, एक जगह निरुपयोगी होने से, दूसरी जगह अनावश्यक होने से। फिर भी दुनियां में शस्त्रों की जो कहीं कहीं सार्थकता है वह इसलिये क्यों कि हम हिंसा से अहिंसा की ओर, भय से निर्भयता की ओर और कायरता से वीरता की ओर जा रहे हैं, अभी पहुंचे नहीं हैं। पहुंच जायं तो शस्त्र अनावश्यक होंगे। असल में तो किन्हीं भी बाह्य साधनों का वास्तविक अपना कुछ महत्व नहीं है, क्योंकि शक्ति तो अन्दर है। बाह्य साधन अन्दर की शक्ति से ही शक्तियुक्त होते हैं। शस्त्रों में थोड़ा सा बल तभी प्रकट होता है जब कि शस्त्रधारी के अन्दर बल होता है। हथियारों का कुछ उपयोग तभी उठाया जा सकता है जब कि हम में निर्भयता और वीरता हो और अपेक्षाकृत अहिंसा हो। और शस्त्रों की उपयोगिता का यह थोड़ा सा सच्चा क्षेत्र भी तब था, जब कि शस्त्र हमें निःशस्त्रता की ओर ले जाने के साधन होते थे, आन्तरिक-वीरता को बढ़ाने (शस्त्रकी अपेक्षा को घटाने) के साधन होते थे। क्षात्रियत्व ब्राह्मणत्व को पहुंचाता था। जब कि दुश्मन के निःशस्त्र हो जाने पर उस पर प्रहार करना अधर्म होता था, उसे नये शस्त्र ले आने को कहा जाता था। तब शस्त्र धारण भले आदमियों के लिये होता था। अर्थात् तब जिन बुरे से बुरे आदमियों के लिये शस्त्रों की जरूरत होती थी वे भी आखिर इतने भले होते थे, आज कल की अपेक्षा कहीं भले होते थे। आज कल हम कहते हैं कि ताले तो भले आदमियों के लिये होते हैं—कभी इस देश में चोरी इतनी कम होती थी कि लोग घर में ताले आदि नहीं लगाते थे, पर अब ताले को देखकर जो चोरी नहीं करते वे भले ही आदमी होते हैं, बुरों के लिये ताले बेकार हैं। तो यदि किसी समाज में ऐसे बुरे लोग हो जायं जो ताले तोड़ना खेल समझते हों तो वहां ताले लगाकर सुरक्षा करना मूर्खता होगी। इसी तरह आज कल की दुनियां में 'शस्त्रों द्वारा सुरक्षा बेकार है' यह बुरी तरह साबित कर दिया है। मनुष्य समाज इस बात में इतना बुरा हो गया है कि "भलों के लिये शस्त्र धारण" की बात आज यहां लागू नहीं हो सकती। ताले और शस्त्र अब मनुष्य जाति को चोरी और हिंसा से रोक नहीं सकते। अब तो इससे ऊंचे दर्जे की शक्ति चाहिये—अस्तेय और अहिंसा की शक्ति—जो वर्तमान मनुष्य जगत् की कायापलट करे, बुरों को भला बना सके।

शस्त्र और वीरता

आज कल की शस्त्र विद्या में पारंगत हुये योरुप में ही जब शस्त्र धारण आत्मरक्षा के लिये व्यर्थ साबित हो चुका है तब भी यदि हम भारतवासी आज शस्त्रों की मांग कर रहे हैं तो यह मांग असल में हमारी भीरुता का ही प्रकाशन है (अपनी भीरुता छिपाने की एक तरकीब है)। हमारे सहपाठियों में एक विद्यार्थी डर जाने के लिये प्रसिद्ध था। भय के अवसर पर हम लोग हंसी में उसका नाम लेकर कहा करते थे कि अमुक कहता है कि जिस को डर लगता हो वह उसके चारों तरफ इकट्ठे हो जायं। उसके चारों तरफ इकट्ठा होने से रक्षा तो उसकी होगी, पर दीखेगा यह कि मानों उसने अन्यों की रक्षा के लिये उन्हें इकट्ठा किया है। सो आज संसार में यह बहुत हो रहा है। नाम और की रक्षा का लिया जाता है पर रक्षा अपनी होती है। इसी तरह शस्त्र हथियारों को अपने चारों तरफ इकट्ठा तो किया जाता है अपने भीरुपन के कारण, पर समझा यह जाता है कि ये हथियार वीरता के चिह्न हैं। गुरुकुल के स्नातक देश बन्धु जी का उदाहरण क्षत्रिय के नमूने के तौर पर मैं सुना चुका हूं। एक दंगे के समय जब वे बिना कुछ भी हाथ में लिये निकल पड़े तो दूसरे ने कहा, 'पंडित जी' डंडा-वंडा तो हाथ में ले जाइये"। उनका उत्तर था कि मुझे डंडे या हथियार की क्या जरूरत है, जो मुझ पर हमला करने आवेगा वह कुछ हथियार तो हाथ में लेकर आवेगा, वह हथियार मेरे ही काम आवेगा, उसके नहीं। जो जितना वीर होगा, वह उतना ही निर्भय होगा, उतनी ही अहिंसा करेगा, उतनी ही कम शस्त्रों की जरूरत होगी। जो वीर शस्त्रों के बिना नहीं लड़ सकता वह तो शस्त्रों का गुलाम है, शस्त्रों का स्वामी नहीं। इसलिये मैंने कहा है जो शस्त्रों का गुलाम है उसे तो वे शस्त्र मारेंगे, रक्षा नहीं करेंगे। जो शस्त्रों का स्वामी है वह उन के वैसे ही भरोसे नहीं है। अतः शस्त्र का वीरता से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यदि कुछ सम्बन्ध है तो यह कि जितना कोई वस्तुतः वीर होगा उसे शस्त्र की उतनी ही कम जरूरत होगी। असली बात यह है कि हम शस्त्रों को महत्व इसलिये देते हैं चूंकि हम मरने से डरते हैं, कायर

डरपोक हैं। जरा मृत्यु भय से परे हो कर देखें तो शस्त्रों का कुछ भी गिनने लायक स्थान नहीं रहता।

मनुष्य के असली हथियार

और ये शस्त्र तो मनुष्य के शस्त्र हो भी नहीं सकते, मनुष्य के शस्त्र तो मानसिक होने चाहियें। पशुओं को आक्रमण और आत्म रक्षा करने के लिये प्रकृति ने नख, दन्त, दाढ़ें, डंक आदि दिये हैं। वही उनके हथियार हैं। मनुष्य को ये चीजें प्रकृति ने नहीं दी हैं। पशु से मनुष्य बनते समय उससे छीन ली हैं। मनुष्य को तो मन दिया है, आत्म-शक्ति दी है। यह और बात है कि उसमें जो पशुपन का अंश है उसे ठीक करने की जगह उसे बिगाड़ और बढ़ा कर उसने अपने मनोबल के दुरुपयोग से नख-दन्त आदि की जगह तोप-बन्दूक, बम, गैस, टैंक आदि—उनसे भी अधिक भयंकर पाशविक हथियार बना लिये, पर ये तो उस के असली नहीं हैं। उसके हथियार तो मानसिक, आत्मिक हैं; बाह्य नहीं, आन्तरिक हैं। वे हैं निर्भयता, वीरता, अहिंसा, प्रेम, आत्म विश्वास, परमेश्वर निष्ठा आदि। गीता में दैवी सम्पत्ति 'अभय' आदि गुणों की ही बतायी गई है। वेद, उपनिषद्, रामायण आदि सब धर्म ग्रन्थों में आन्तरिक गुणों को सच्चे हथियारों के रूप में वर्णन किया गया है। मैं कह चुका हूं कि इन गुणों के बिना बाहिरी हथियार भी काम के नहीं होते। तो क्यों न मनुष्य अपने असली इन्हीं हथियारों की फिक्र करें? इन्हीं को प्राप्त करने की दिन रात चेष्टा और परिश्रम करें। बाहर की निरर्थक वैयक्तिक और सामूहिक जगद्व्यापी हथियार बन्दी के बखेड़े को छोड़, उस परेशानी से मुक्त हो, अन्दर की असली अपनी शक्ति को बढ़ाने में लगें जो अपनी शक्ति बड़ी महान है, जिस अद्भुत शक्ति के सामने सारे हथियार खिलौने हैं, जो भयंकर से भयंकर भौतिक हथियार से अनन्तोंगुना बलवती है। मनुष्य जाति शायद अपना रास्ता भटक गयी है।

गत वर्ष श्री अरविन्दाश्रम में एक चीनी महानुभाव कुछ महीने ठहरे थे। एक दिन एक साधक ने बहुत कुछ हंसी में ही उनसे कहा कि 'चीन को तो जापान ने जीत लिया' इस पर वे गम्भीर होकर कहने लगे "नहीं चीन तो अजेय है" आगे और गम्भीरता से कहा 'चीन को जापान नहीं जीत सकता, चीन को तो बहुत वर्ष पहिले जीता था बुद्ध ने, और अब जीतेंगे श्री अरविन्द"। यह है धार्मिक युद्ध, अजेय आत्मिक शस्त्रों का युद्ध जिसके सिपाही बनने के लिये हम यहां गुरुकुल में तैय्यारी (साधना) करना चाहते हैं। तुम बुद्ध के या श्री अरविन्द के नहीं तो, दयानन्द के सैनिक बनो। वह सब एक ही बात है। पर हमें भौतिक शस्त्रों का डर और मोह छोड़ आत्मिक हथियारों की विद्या में दीक्षित होना होगा और मनुष्य जाति को लड़ाई का यह नया तरीका सिखा देना, इसका अभ्यस्त बनाना होगा।

नया इलाज

पर लोगों को अभी लड़ाई का यह तरीका समझ में नहीं आता। आत्मिक शक्ति या अहिंसा से लड़ना उन्हें हास्या-स्पद लगता है। जब कोई आक्रमण करने आये तो उसे बिलकुल न मारा जाय केवल अपने आप ही मरने के लिये तैयार होकर उसका मुकाबला किया जाय—यह तो कोई इलाज न हुआ, वे कहते हैं कि यह तो जानबूझ कर मरना हुआ। पर इससे हम मरेंगे नहीं, बल्कि झीनेका और युद्धों की बीमारी से मुक्ति पाने का यही सर्वश्रेष्ठ इलाज है और स्वाभाविक इलाज है, प्राकृतिक चिकित्सा है। यह कोई नया इलाज भी नहीं है, किन्तु अति प्राचीन और स्वाभाविक इलाज है। पर आजकल की नई रोशनी में हम इसे भूल गये हैं—ऐसा भूल गये हैं कि यह भी कोई इलाज है इस पर हमें विश्वास नहीं होता। यह तो हमारी प्रसिद्ध उपवास चिकित्सा है। आजकल के डाक्टर वैद्यों के रोब में आये हुए लोगों को यदि बीमारी में केवल उपवास करने को कहा जाय या अमुक प्रकार से कोई प्राण संबन्धी कसरत करने को कहा जाय तो वह आश्चर्य से कहेगा कि बिना कोई गोली खाये, कोई चूर्ण फांके, काढ़ा पिये या इन्जैक्शन लिये रोग कैसे भाग जायगा। रोग के नाश के लिये जैसे मनुष्य का दवाई की गोली में विश्वास जम गया है, वैसे ही आक्रमणकारी के नाश के लिये बन्दूक की गोली में विश्वास रूढ़ हो गया है। कोई किस्म की भी दवा मत खाओ, बल्कि रोज का भोजन भी छोड़ दो, तो तुम बड़ी जल्दी अच्छे हो जाओगे ऐसा इलाज बताने वाले वैद्य पर यदि आश्चर्य करना चाहिये; तो गांधी जी जैसे नेता पर भी अवश्य करना चाहिये जो कहता है कि शत्रु को मारने के लिये कोई किसी किस्म का भी शस्त्र मत पकड़ो, बल्कि उसके प्रति मन में उठने वाले प्रतिहिंसा के भाव को भी मत उठने दो तो तुम्हारी विजय बड़ी जल्दी हो जायगी। प्राकृतिक चिकित्सक बेशक कहता है कि भोजन छोड़ने से तुम भूखे नहीं मरोगे किन्तु रोग भूखा मर जायगा—तुम्हें जीवित रखने वाली जो शक्ति है वह तो अब और अधिक स्वतन्त्र होकर—भोजन-पाचन के भार से मुक्त हो-अधिक प्रबलता से रोग को मूल से नष्ट कर देगी; गोली, सूचीवेध (इन्जैक्शन) आदि दवाओं से तो क्षणिक लाभ बेशक दीखे पर ये तो बहुधा विष पैदा करती हैं; और न भी करें तो रोग को केवल दबा देती हैं, नाश नहीं करतीं, इससे रोग का रूपान्तर-अधिक भयानक रूपान्तर-हो जाता है, पर रोग जाता नहीं—किन्तु इन बातों पर आम रोगी विश्वास नहीं करते। इसी तरह गांधी जी जैसा सेनापति बेशक कहता है कि शस्त्रों को छोड़ देने से तुम मरोगे नहीं बल्कि हिंसा—युद्ध का विष—मर जायगी, सचमुच अहिंसक होने से सब जगत् को जीवन देने वाली दैवी शक्ति तुम्हारे साथ हो जायगी, हिंसा का जवाब हिंसा से न देने के कारण वह परम बलवान की शक्ति अपनी अजेय प्रबलता के साथ काम करेगी और शत्रुता का मूल से नाश कर देगी तुम्हारे शत्रु को असली अर्थों में मार देगी, हथियारों की लड़ाई से क्षणिक लाभ बेशक दीखे, भौतिक रूपमें शत्रु मरता दीखे पर इससे शत्रु असल में मरता नहीं, प्रतिहिंसा और द्वेष का विष इससे चौगुना बढ़ता है, इसमें शत्रु केवल थोड़ी देर के लिये दब जाता है, पर उससे भी भयंकर रूप में उभरने के लिए, कभी कभी शकल बदल लेता है पर फिर

दुगने वेग से आक्रमण करने के लिए, इस लिये अहिंसा (हिंसा त्याग) ही ठीक उपाय है-किन्तु इस पर आम लोग विश्वास नहीं करते। अब कि 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' तब दवा न करना ही क्या सबसे अच्छी दवा नहीं है। अब जबकि इतनी दवाईयां पेट में डाली जा चुकीं कि दवाईयों का असर होना बन्द होगया, तो अब तो उपवास चिकित्सा ही एकमात्र इलाज रह गया है। हिंसा और प्रतिहिंसा की परम्परा देखकर अबभी यह इतनी साफ बात है, पर फिर भी हम इसे नहीं देखते। असली बात यह है कि हम किसी तरह मरना नहीं चाहते। यह देह, भौतिक देह में इतनी ममता मोह है तो फिर हिंसा अहिंसा की फिजूल बात करना छोड़िये।

ऋषीकेश की गंगा

(ले०—'श्रीकुमार')

आसमान से मूसलाधार बारिश होकर चुकी है। जमीन, पेड़, मकान, सभी चीजों ने नहा-धोकर मानों नया ही जीवन प्राप्त कर लिया है। कुछ बरस चुकने के बाद निरुपाय, खाली, सफेद बादल आसमान में इधर उधर लुढ़क रहे हैं मानों अलमस्त पियक्कड़ों के चले जाने के बाद मधुशाला के प्याले हों।

रस से भींगी वायु के स्पर्श ने हमें निमन्त्रण दिया—चलो, निकलो कमरे से बाहर। और हम घूमने के लिये गंगा की ओर चल पड़े।··· ··· ···।

पहुंचे। पक्के पत्थरों से चिने हुवे घाट के एक किनारे जा बैठे। गंगा का पानी मैला, काला, मानों किसी ने जहर पिला दिया हो। मूर्छित व्यक्ति की तरह तरङ्गें अपने डरावने लम्बे लम्बे हाथ पागलपन में बड़े वेग से ऊपर नीचे फैंक रही हैं। बदला लेने के तीव्र रोष में तरंगों ने आज सारे संसार में क़हर मचा देने का ठेका सा लिया हुवा है। सारा का सारा प्रवाह भागा चला जा रहा है बेतहाशा, निर्बाध, पता नहीं किस ओर? शहर में आग लग जाने पर 'फायर ब्रिगेड' के दमकलों की तरह शायद इन्हें समुद्र के बडवानल को बुझाने की फिक्र है।

थोड़े ही आगे गंगा का मोड़ है। धारा किनारे की पहाड़ी से लड़ कर आ टकरा कर लौटती है गुस्से की एक भयंकर आवाज के साथ। पर फिर एक दूसरी धारा भीषण हुङ्कार और ललकार के साथ पहाड़ी के किनारों से माथा भिड़ाती है और बहुत सा किनारा तोड़ कर अपने मुंह में निगल जाती है। विजय का तुमुल घोष देर तक दिगन्तों में गूँजता रहता है।

गंगा के बीचों-बीच उठती हुई लहरें। आदमी की ऊंचाई तक आसमान में अपना झण्डा लहराती हैं। कहीं कहीं तो तरंगों की कतार की कतार फौजी कवायद करती हुई चली गई है। काली स्लेटीपहाड़ी की ऊंची चट्टानों की तरह वहां उनका भीषण आकार हो गया है। ओह, इन अजगर जैसी तरंगों के कभी कभी आपस में टक्कर खाने पर कान बहरे हो जाते हैं, हाथ-पैर सुन्न, होश फाख्ता।

मेरे साथी ने बताया—देखो, वह सलीपर उस ओर से बहता आ रहा है। मैंने जब देखा तब तक काफी पास आ चुका था और इन अजगरी तरंगों की चिकनी झूलेदार पीठ पर झूल रहा था। नाच रहा था। शायद वह गाता होगा—

न तथा करिणा यानं तुरगेण रथेन वा।
नरयानेन वा यानं यथा 'तरङ्गमालया'॥
(पंचतन्त्र)

मन में विचार उठा-यदि मैं भी ऐसा झूला झूल सकूं! मैंने अपने साथी से प्रश्न किया—यदि एक सलीपर लेकर लहरों का आनन्द उठाया जाये तो कैसा हो?

उसने धीरे से कहा—"हां, मृत्यु की गोद में झूमते हुवे सुकरात ने ऐसे स्वर्गातीत आनन्द का अनुभव अपने प्रिय शिष्य को पूरा-पूरा लिखवाया था। शायद इन लहरों में उससे कम आनन्द न होगा। पर"—वह रुक गया-कुछ सोचने लगा। 'मनुष्य के लिये मृत्यु की गोद का अनुभव नहीं है। वह उस समय तक डर के मारे सब कुछ भूल चुका होता है। मानवीय साहस की सीमा है जो इन मृत्यु की बाहवों में लड़ने से मनुष्य को जरूर रोक लेगी।

'अच्छा' मेरे मुंह से पराधीनता की एक दबी आवाज निकल गई।

मैंने देखा वह जड़ लकड़ी का तख्ता मजे में गंगा मां के झूले वाले पलने में, लहरों की लोरी में शिशु सा स्वर्गीय आनन्द उठा रहा था। काश! मैं भी··· ··· ···।

× × ×

ऋषिकेश में आकर गंगा कुछ कुछ मैदान-प्रदेश में उतर सी चली है। गंगा की दिव्य शक्ति जो अचल पहाड़ी के तटों में, तंग घाटियों में बंधी पड़ी थी, यहां आकर खुल कर खेलने लगती है। कभी उछल पड़ती है, कभी हंस पड़ती है और सहसा ही कभी नाच उठती है।

शैशव-काल की अगणित इच्छायें जो अब तक अपने में ही दबी पड़ी थी—इस किशोरावस्था में जाग उठी हैं। गंगा अपने बाहु बल से अपनी अदम्य इच्छाओं की पूर्ति करके उछल उछल कर अपनी मां-आसमान-को चूम रही है। गा-गा कर विजय का सन्देश सुना रही है। अल्हड़, मदमाती, बलखाती, इठलाती हुई इसकी मस्तान चाल न जाने मन में क्या क्या भाव भर रही है। 'यह नवयौवन का शृंगार यह नवयौवन का विद्रोह'—मैं गुनगुनाया पर मेरे साथी ने एक प्रश्न उठा दिया—

"यदि कोई व्यक्ति इन लहरों के कब्जे में पड़ जाये तो··· ··· ···"

मैंने उसकी बात पूरी होने से पहिले जवाब दिया—"मैं झटसे उसे जाकर चिपट जाऊंगा, बाहुवों में लपेट लूंगा"।

मेरा उत्तर बिना समझे-बूझे, बिना अपनी शक्ति और साहस का ख्याल किये, बिना उस उद्योग के परिणाम पर विचार किये, दिया गया था। पर थी तो मेरे दिल की बात न।

उसने पूछा-"इससे क्या तुम उसे बचा लोगे?"

"नहीं नहीं" मैंने कहा—"जीवन-रक्षा न तो मेरे आधीन है न और किसी के। मगर हम सब व्यक्तियों में

एकात्मकता अनुभव कराने वाली एक शक्ति है-प्रेम, और इस प्रेम के होते, मैं तो समझता हूँ, जीवन-रक्षा की कुछ आवश्यकता ही नहीं। प्रेम में मृत्यु का आलिंगन प्रियतम के आलिंगन से अधिक सुखदायी है। जीवन से कहीं अधिक हर्षदायक होती है मृत्यु की गोद। यदि मृत्यु की गोद में भी अनुभव-शक्ति का स्पन्दन जागृत रहे। उस संवेदन-शक्ति को प्रेम ही जगाये रख सकता है। मैं अपने बन्धु को बाहुओं का सहारा देकर जीवित रखूंगा और उसके शरीर की गर्मी मुझ में साहस का संचार करेगी। हम दोनों एक होकर मानवीय प्रेम-पाश में बंधकर उस आनन्द का अनुभव करेंगे जो स्वर्ग की तरह कालावच्छिन्न नहीं, जो संसार की तरह दुःख से मिश्रित नहीं। जो नित्य है, शाश्वत है, असीमित है। मैं गुनगुना उठा—

यम की गोदी का आनन्द !

कितना मीठा, कितना सुन्दर, यम की गोदी का आनन्द !

(१)

मां के रेशम के पलने में

मैं झूला, भूला सपने में,

तब मैं था अबोध अज्ञानी दोनों हो आंखें थीं बन्द

कम्पित सा था वह आनन्द।

(२)

तब था सीमित, मैं गति-विरहित,

लोरी-स्वर से पूर्ण अपरिचित,

अब मैं भी तान लगाऊंगा, नाच उठूंगा हो स्वच्छन्द !

यम की गोदी का आनन्द !

(३)

अब दृग खोले सुख लूटूंगा,

नहीं छुटाये भी छूटूंगा,

इस शाश्वत यम की गोदी में सत्य सत्य गाऊंगा छन्द।

यम की गोदी का आनन्द।

कितना मीठा, कितना सुन्दर, यम की गोदी का आनन्द !

साथी ने मुझे हिला कर चौंका दिया—उसने कहा "तुम भावावेश में पता नहीं क्या करने चल पड़े थे !"

मेरे हृदय में तूफान मच रहा था। जीवित जागृत होकर, प्रेम के प्रभाव में मृत्यु का आनन्द लूटं। पर.......।

बादल फिर आसमान में घिर आए। गड़गड़ाहट और बिजली की चमक—पानी की बौछारों की खड़खड़ और मधु—बालाओं की मुसकान। पर सब क्षणिक और भयंकर—।

डर के मारे बकों की श्वेत पंक्तियां वृक्षों के आश्रय में लौट चली। और हमने भी अपना रास्ता पकड़ा।

गुरुकुल समाचार

कुलवासियों के लिए यह सप्ताह विशेष हल-चल का रहा। श्री पं० जयचन्द्र जी विद्यालंकार उपाध्याय काशी-विद्यापीठ का अन्तर राष्ट्रीय परिस्थिति पर २॥ घण्टे तक बड़ा योग्यता पूर्ण व्याख्यान हुआ। पण्डित जी का ऐतिहासिक गम्भीर अध्ययन सब के आश्चर्य का विषय था। इसी सप्ताह पण्डित सुखदेव जी का ज्योतिष पढ़ने के विषय में व्याख्यान हुआ। आपने बतलाया कि वेदों के ठीक अर्थ करने के लिए ज्योतिष का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस सप्ताह की विशेषता विद्या सभा, तथा शिक्षा पटल की बैठक है। तीन दिन तक इनकी बैठक होती रही, और गुरुकुल के प्रबन्ध तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया गया। इस बार विद्या सभा ने कई अत्यन्त महत्व पूर्ण प्रश्नों पर विचार किया। इस बार विद्या सभा ने कई अत्यन्त जटिल प्रश्नों को भी सुलझा दिया है जिनका निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक था।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा समझा जा रहा है कि इस बार छुट्टियों में यात्राओं पर कोई दल नहीं जायगा। सम्भवत: ब्रह्मचारी गुरुकुल में ही रहेंगे या अपने घरों को जा सकेंगे। परन्तु अभी ठीक प्रकार नहीं कहा जा सकता। छः मासिक-परीक्षाएं ८ अगस्त से हैं सब ब्रह्मचारी जोरशोर से तैयारी में लगे हुए हैं।

स्वास्थ्य समाचार

१ श्यामविलास १ श्रेणी Mumps मदनमोहन १ श्रेणी Mumps श्री कृष्ण २ श्रेणी Mumps यशवन्त २ श्रेणी Mumps. प्रेमनिधि २ श्रेणी विषम ज्वर, मनमोहन २ श्रेणी विषम ज्वर,

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

संरक्षक बन्धुओं से नम्र निवेदन

गत वर्ष संरक्षक सभा ने अपने एक विशेषाधिवेशन में सर्व सम्मति से यह पास किया था कि संरक्षक सभा का वार्षिक चन्दा १) मुकर्रर किया जावे। तदनुसार बहुत से संरक्षक बन्धुओं ने यह धन अपने शुल्क के लेखे में जमा कराने की स्वीकृति गुरुकुल कार्यालय को भेज दी थी। जिन संरक्षकों ने अपनी स्वीकृति नहीं भेजी है उनसे प्रार्थना है कि वे शीघ्र गत वर्ष और इस वर्ष के चन्दे को शुल्क में डाल देने की स्वीकृति गुरुकुल कार्यालय को दे दें।

निवेदक—

रामकुमार — प्रधान, संरक्षक सभा

दौलतराम — मन्त्री, संरक्षक सभा

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ५] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ श्रावण १९९७; २ अगस्त १९४० [संख्या १६

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी; अनुवादक — श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

(७)

गुरुकुल प्रणाली का वास्तविक स्वरूप

"गुरुकुल का भी आत्मा है। आन्तरिक भावमय या मनोमय रूप ही गुरुकुल का आत्मा है, बाह्य या मूर्त-रूप नहीं; इस लिये उसे तो मन से जानना होगा। जो पुरुष को त्याग की ओर प्रवृत्त करता है, भोग की ओर नहीं; जो उसे श्रेय बुद्धि की ओर प्रेरित करता है, प्रेय बुद्धि की ओर नहीं; जो मनुष्य को समग्र विश्व के उपकार के लिये प्रेरित करता है, सत्य का मार्ग दिखाता है और उस सत्य के द्वारा जीवन के प्राप्तव्य पदार्थ को प्राप्त करानेमें सहायक होता है वही गुरुकुल का आत्मा है।"

पण्डित विधुशेखर भट्टाचार्य

(आचार्य विश्वभारती, शान्ति निकेतन)

गुरुकुल प्रणालीके बाह्य मूर्त स्वरूप का अवलोकन करने के बाद अब इसके आन्तरिक स्वरूप के सूचक अङ्गों पर भी विचार करना आवश्यक है। मनुष्य के लिये शरीर और आत्मा ये दोनों आवश्यक हैं। इसी प्रकार गुरुकुल के आत्मरूपी अङ्गों के बिना कोई संस्था सच्चे अर्थों में गुरुकुल नहीं हो सकती। मेरी विनम्र सम्मति में ये अङ्ग निम्न प्रकार हो सकते हैं।

(१) सञ्चालक सभा। (२) आचार्य। (३) मुख्याधिष्ठाता। (४) अध्यापक वर्ग। (५) ब्रह्मचारी। (६) संरक्षक। (७) जनता। (८) राज्याधिकारी।

१ सञ्चालक सभा—गुरुकुल के प्रबन्ध के लिये एक उत्तरदायी सभा होती है। इस सभा के सदस्य दानी, विद्वान् तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। गुरुकुल को बाहर की दुनिया के साथ जोड़ने का काम यह सभा करती है। सभा की एक आंख में गुरुकुल के सञ्चालन का उत्तरदायित्व और दूसरी आंख में जनता का विश्वास होना जरूरी है। गुरुकुलके आचार्य पर इस प्रकारकी सभा का अंकुश होना चाहिये या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है। एक विचार धारा ऐसी है कि आचार्य क्योंकि ब्राह्मण है इस लिए उसके ऊपर कोई अधिकारी नहीं होना चाहिए। गुरुकुल की भावना में आचार्य का स्थान इसी प्रकार महत्वपूर्ण है जिस प्रकार शरीर में मस्तिष्क का। सभा में भिन्न भिन्न विचार वाले व्यक्ति होते हैं। इस लिए सभा के अंकुश के नीचे आचार्य खुले मन से काम नहीं कर सकता। दिमाग पर अगर वैश्य रूपी पेट अथवा क्षत्रिय रूपी हाथ अंकुश चलाना शुरु करे तो जो हालत शरीर की होगी वही हालत गुरुकुल रूपी शरीर की सभा के अंकुश के नीचे होगी। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को तथा अध्यापक वर्ग को जब इस बात का भान होता है कि आचार्य को सभा तथा सभा के मन्त्री और प्रधान के नीचे रह कर गुरुकुल चलाना होता है तो उनकी दृष्टि में आचार्य का पद हीन प्रतीत होता है। आर्थिक कारणों से आचार्य के ऊपर भी सभा का हाथ होने से गुरुकुल की भावना में धन को उच्च स्थान मिलने की संभावना बन जाती है। अतएव जनता को चाहिये कि वह किसी योग्य आचार्य को चुन कर उस पर विश्वास रखे और जमीन मकान तथा दैनिक व्यय के लिये आवश्यक धन उसके हाथों में सौंप कर निश्चिन्त हो जाए। ये विचार तो सर्वांश में सत्य नहीं हो सकते। जब ब्राह्मण वीतराग होकर त्याग के आदर्श को अपने जीवन में मूर्त-रूप करता था तब आचार्य के चरणों में राजाओं के मुकुट गिरते थे। फिर भी आचार्य का मन सर्वथा निरभिमान और लोभ शून्य रहता था। इस प्रकार का त्यागी आचार्य मिलना आज कल मुश्किल है। और यदि ऐसा आचार्य किसी गुरुकुल को प्राप्त हो जाए तो वह गुरुकुल सचमुच धन्य है। ऐसे निर्लोभी, संयमी त्यागी और भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप आचार्य पर अंकुश रखने के लिये किसी सभा की जरूरत नहीं। इतना ही नहीं बल्कि ऐसे आचार्य के तेज के सामने सभा को स्वयम् ही अन्तर्धान होजाना चाहिये। परन्तु जब तक ऐसा आचार्य नहीं

मिलता तब तक सभा के अङ्कुश का होना जरूरी है। क्योंकि सभा में विभिन्न विचारकों के सामने जो समस्याएं आएंगी उन पर वे अपने अपने ढङ्ग से विचार करेंगे और इस प्रकार अगर शुद्ध मनसे विचार किया जाए तो किसी प्रकार की भूल रहने की बहुत कम सम्भावना है।

यह सब होते हुए भी इतना स्पष्ट है कि मौजूदा सभाओं में सब सदस्य सतर्क नहीं होते और विचारणीय प्रश्नों पर वे अपने अनुभव तथा अध्ययन के आधार पर विचारों को रख सकें इस प्रकार के नहीं होते। इस लिये मुट्ठी भर और कई बार तो एक ही प्रमुख व्यक्ति की सम्मति के अनुसार पेश किए जाने वाले प्रस्तावों पर सारी सभा अपनी स्वीकृति का ठिकका बैठा देती है। इस परिस्थिति में कितनी ही बार प्रबन्ध और व्यवस्था में बहुत सरलता होती है, लेकिन अनेक बार गड़बड़ भी बहुत होती है। इस हालत में सभा का प्रमुख व्यक्ति यदि आचार्य के साथ परामर्श करके काम करे तो संस्था का काम सुचारु रूप से चल सकता है। लेकिन मतभेद होने पर आचार्य के काम में बाधा पड़ती है। दोनों पक्षों को चाहिये कि एक दूसरे को समझें और विचार-विनिमय के लिये अवकाश बनाए रखें। स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे अद्वितीय व्यक्ति को सभा के साथ मतभेद होने पर जो कटु अनुभव हुआ था उस पर गुरुकुल के सञ्चालकों को विचार करना चाहिए। जिस व्यक्ति ने गुरुकुल का आरम्भ किया, जिसने इसकी जड़ को अपने खून से सींचा जिसने इसके लिये अपने सारे जीवन को सौंप दिया, ऐसे व्यक्ति के कार्यों की सभा ने आलोचना की थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी के आचार्य पद को छोड़ने के तुरन्त बाद ही आर्य जनता ने देखा था कि गुरुकुल का समस्त शरीर बहुत कुछ बदल गया है।

गुरुकुल कांगड़ी की सञ्चालक सभा ने गुरुकुल के सञ्चालन का उत्तरदायित्व स्वामी अभयदेव जी को सौंपना आरम्भ किया है। यह कार्य प्रशंसनीय है। और इस प्रकार के त्यागी तथा गुरुकुल की भावना को अच्छी प्रकार समझ कर आचरण करने वाले आचार्य को प्राप्त करनेमें पञ्जाब आर्यप्रतिनिधि सभा सौभाग्यशाली है। इस गुरुकुल का भविष्य उज्ज्वल हो ऐसी मेरी अभिलाषा है। परन्तु जिस संस्था के पास योग्य आचार्य न हो उसके लिये एक प्रबन्धक सभा आवश्यक होनी चाहिये। इस सभा की रचना में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) सञ्चालक सभा में स्नातकों की आवाज ऊंची होनी चाहियें।

(२) ऐसे माता पिता जिनके बालक संस्था में शिक्षा पाते हों वे ही सभामें निर्वाचित किये जाने चाहियें। क्यों कि अपने लड़कों को सरकारी शिक्षणालय में पढ़ाने वाले पिता को गुरुकुल के लिये जितनी होनी चाहिये उतनी सहानुभूति नहीं हो सकती।

(३) शिक्षा शास्त्र में धुरन्धर व्यक्तियों को तथा विभिन्न विद्याओं के प्रखर विद्वानों को सभा का प्रतिष्ठित सदस्य बनाना चाहिये।

(४) बड़ी धनराशि देने वाले को सदस्य बनाने का अर्थ है धन को प्रधानता देना। लेकिन जो दानी महाशय गुरुकुल प्रणाली में अटल विश्वास रखते हों और जो समय समय पर गुरुकुल के कामों में सक्रिय भाग लेते हों, इस प्रकार के दानवीरों को सभा में निमन्त्रित करना चाहिये।

(५) उत्साही संरक्षकों को विशेष रूप से आमन्त्रित करना चाहिए। इस प्रकार संरक्षकों के साथ गुरुकुल का गाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

(६) सभा का प्रधान यदि कोई वानप्रस्थी हो तो अधिक उत्तम है। प्रधान के चुनाव करने में सभा की वास्तविक सफलता है। संरक्षक, आचार्य, ब्रह्मचारी, जनता इन सब में सुन्दर पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना प्रधान का काम है।

(७) सभा के नियम उदार भावना के पोषक होने चाहियें। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे कि उद्देश्य की ओर कालानुसार सतत प्रगति की जा सके।

(८) सभा के अमुक व्यक्तियों से बना डैपुटेशन या प्रतिनिधि मण्डल का काम होना चाहिये कि वह जनता के पास से चन्दा इकट्ठा करे।

२ आचार्य और मुख्याधिष्ठाता—सामान्यतः गुरुकुल में दो मुख्य अधिकारी होते हैं; एक आचार्य और और दूसरा मुख्याधिष्ठाता। ब्रह्मचारियों के पालन पोषण की व्यवस्था करना, चन्दे आदि का प्रबन्ध करना तथा अन्य बाह्य काम मुख्याधिष्ठाता को करने होते हैं। गुरुकुल में स्थिर रूप से रह कर ब्रह्मचारियों के शिक्षण तथा आत्मिक विकास की देख रेख आचार्य के सुपुर्द होती है। ऊपरी दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि ये दो अधिकारी अलग अलग होने चाहिएँ किन्तु दीर्घ काल का अनुभव इस बात की साक्षी देता है कि गुरुकुल रूपी यन्त्र में इस द्विमुख पद्धति से काम नहीं चल सकता। गुरुकुल के वातावरण में आचार्य की प्रधानता होनी चाहिये। आचार्य पर सभा के प्रधान के अतिरिक्त यदि मुख्याधिष्ठाता का भी अङ्कुश चलता हो तो आचार्य आचार्य न रह कर हेडमास्टर जैसी स्थिति वाला व्यक्ति बन जाता है। बालकों के हृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करके उनके अन्तःकरण अपनी अन्त ज्योति से प्रदीप्त करना आचार्य का कर्तव्य होता है। स्टाफ के द्वारा भी आचार्य बालकों का सम्पोषण करता है। इस लिये दोनों की दृष्टि का मुख्य लक्ष्य आचार्य ही होना चाहिए। जिस क्षण अध्यापक लोग ऐसा समझ लेते हैं कि हम वेतन देने वाला तथा वेतन वृद्धि की स्वीकृति देने वाला तथा अन्य सब प्रकार से हमारे ऊपर निरीक्षण करने वाला मुख्याधिष्ठाता है उसी क्षण आचार्य की तरफ से उनका लक्ष्य हट जाता है। जब ब्रह्मचारियों को यह मालूम हो जाता है कि हम भोजन पुस्तक आदि की सुविधा देने का अन्तिम अधिकार मुख्याधिष्ठाता के हाथ में है तब आचार्य के लिये उनका पूज्य भाव शिथिल हो जाता है। आचार्य के पद का महत्व प्रिन्सिपल या हेडमास्टर के पद से कहीं अधिक है। सरकारी शिक्षणालयों में भी प्रिन्सिपल या हेडमास्टर के ऊपर और कोई अधिकारी न होकर सीधी कोई सभा ही

होती है। बोर्डिंग सुपरिन्टेण्डेण्ट इनके नीचे ही होता है। इस अवस्था में काफी हद तक प्रिन्सिपल अथवा हैडमास्टर के हाथ खुले होते हैं। लेकिन गुरुकुल की मशीन किसी और ही ढंग पर चलती है, इस लिये निम्न बातें इस विषय में ध्यान देने योग्य हैं—

(क) आचार्य ऐसा चुना जाना चाहिये जो मुख्याधिष्ठाता का भी काम कर सके।

(ख) इस प्रकार के आचार्य की सहायता के लिये उसी की सम्मति से एक व्यक्ति नियुक्त होना चाहिये जो मुख्याधिष्ठातृत्व के कार्यों में आचार्य की मदद कर सके।

(ग) समिति का प्रधान ही यदि मुख्याधिष्ठाता के पद को संभाल सके तो इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिये। समिति के प्रधान में सेवा भाव तो होगा ही, अगर वह मुख्याधिष्ठाता का काम अवैतनिक रूप से करे तो व्यवस्था चमक उठेगी। जिस गुरुकुल में आचार्य और मुख्याधिष्ठाता अलग रहे हैं वहां मतभेदों का साम्राज्य रहा है और दोनों पदों के एक होने पर काम सरल होता हुआ भी देखा गया है। अतएव योग्य व्यक्ति को ढूंढ निकाल कर आचार्य बनाने में ही सभा की परख है।

(घ) वर्ष भर में समय समय पर अथवा दीर्घावकाश के दिनों में गुरुकुल के आचार्य ने भिन्न भिन्न स्थलों में घूम कर गुरुकुल की जो उन्नति की है उससे लोगों को परिचित कराना चाहिये। इसके अलावा जनता की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के लिये अनुकूल उपदेश भी देने चाहियें। इस मौके पर चन्दा एकत्र करने का काम नहीं होना चाहिये। आचार्य को तो स्वयं चन्दा मांगना भी उचित नहीं है। स्थान स्थान पर आचार्य के उपदेशों के हो जाने के पश्चात् योग्य समय में सभा के डैपुटेशन को चन्दे के लिये निकलना चाहिये।

(ङ) गुरुकुलों में आचार्य का निरन्तर उपस्थित होना आवश्यक है। विशेष परिस्थितियों में ही आचार्य को गुरुकुल से बाहर जाना चाहिये।

(च) समाजों के उत्सवों पर भाषण देने के अवसर का लाभ आचार्य को अवश्य लेना चाहिये। इससे लोकमत जागृत होता है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कारों में भी कहीं कहीं आचार्य की उपस्थिति लगाकर हो सकती है। सामान्य अध्यापक की अपेक्षा यदि इन अवसरों पर आचार्य इन संस्कारों का महत्त्व समझावें तो अधिक प्रभाव पड़ सकता है। 'संस्कारों' के द्वारा आम जनता के साथ सम्पर्क भी बढ़ सकता है। जब इस प्रकार आचार्य बाहर जाए तो उपाचार्य अथवा सहायक मुख्याधिष्ठाता को व्यवस्था का कार्य संभालना चाहिये।

(छ) गुरुकुलों में दाखिल होने से स्नातक होने पर्यन्त ब्रह्मचारी के आचरण शिक्षण आदि का समस्त दायित्व आचार्य पर है। ब्रह्मचारियों की ऐसी त्रुटियां जो दूर हो सकती हों, दूर की जानी चाहियें। जो अपरिहार्य त्रुटियां हों उनसे ब्रह्मचारियों के संरक्षकों को परिचित कराना चाहिये।

आदर्शों में श्रद्धा

विद्यार्थियों को कवीन्द्र टैगोर का उपदेश

गत २५ जुलाई को शान्ति निकेतन के प्रार्थना-मन्दिर में विश्व कवि श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने विद्यार्थिमात्र के हित के लिये निम्न शब्दों में प्रवचन किया:—

"प्रेम व शान्ति के महान सत्यों का मजाक उड़ाने की आधुनिक भावना में ही विनाश के बीज विद्यमान हैं"।

"आज दुनिया में युद्ध का जो अभिशाप जोर पकड़ रहा है, यह इन्हीं बातों का नतीजा है कि लोगों ने उपनिषदों द्वारा उच्चारित प्रेम व शान्ति के संदेश को घृणा की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया है।"

"विद्यार्थियों को चाहिये कि वे पवित्र वस्तुओं का मजाक उड़ाने वाले मौजूदा फैशन का अनुसरण न करें और पवित्र आदर्शों में श्रद्धा बनाए रखें।"

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का सफल उत्सव

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का द्वादश वार्षिकोत्सव १५ १६, १७ जून १९४० को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया गया। प्रतिदिन प्रातःकाल ७ से ८ बजे तक बृहद्यज्ञ होता रहा। १५ जून को ब्र० ब्रह्मदेव जी व्रती ने 'सत्यसुख की प्राप्ति के अधिकारी बनो' इस विषय पर, श्री प० विद्यासागर जी वेदालंकार ने 'ईश्वर की सत्ता' पर, श्री पं० शङ्करदेव जी उपाचार्य गुरुकुल चित्तौड़गढ़ ने 'दुःख निवृत्ति का यथार्थ साधन यथार्थ ज्ञान है' इस विषय पर तथा नवम कक्षा के ब्र० भीमसेन ने 'वेद का स्वरूप' पर व्याख्यान दिया। चित्तौड़ नगर में नगर-कीर्तन बड़ी सफलता पूर्वक हुआ जिसमें श्री प० गोकुलदत्त जी एवं श्री राधाकृष्ण जी के भजनों का विशेष प्रभाव पड़ा।

१६ जून को श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज ने 'यज्ञमय जीवन' पर, श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने 'सत्सङ्ग महत्त्व' पर, श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार चतुर्वेद-भाष्यकार ने 'सात्विक दान के महत्त्व' पर व्याख्यान दिये तथा अपने करकमलों से वेदाङ्ग विद्यालय भवन का उद्घाटन किया। ब्रह्मचारियों ने कुश्ती, लाठी, लेजिम का प्रदर्शन किया। अष्टम कक्षा के ब्र० सत्यदेव ने गुरुकुल के महत्त्व पर भाषण दिया मुख्याधिष्ठाता जी के द्वारा 'सदाचार के सार' पर व्याख्यान एवं अपील की गई जिसमें ६३५।।) चित्तौड़ प्राप्त हुए। इनमें ३००) श्री बाबू सुगुण चन्द्र जी ने एक वर्ष के यज्ञ के व्यय के तथा उत्सव के भोजन व्यय के प्रदान किये। सन् १९३९ में ५४९९।=) कलदार प्राप्त हुये।

गु रु कु ल

१९ श्रावण शुक्रवार १९९७

आत्मरक्षा

(आचार्य अभयदेव जी)

(३)

वैयक्तिक अहिंसा के उदाहरण

उपवास करना या हिंसा से अपने आपको रोकना इतना कठिन नहीं है जितना कि ख्याल में मालूम पड़ता है। एकबार कुछ दिन उपवास करके देखें, कुछ समय हिंसा और द्वेष का प्रत्युत्तर अहिंसा और प्रेम से देकर देखें तो मालूम पड़ेगा कि यह ऐसा मुश्किल नहीं है, बल्कि यह भी मालूम पड़ेगा कि यह उस समय बिलकुल स्वाभाविक है। तुम अपने खुद के या अपने साथियों के कये ऐसे दृष्टान्त याद करो कि कोई झगड़ा एक तरफ से शान्ति ग्रहण करने द्वारा या द्वेष का प्रत्युत्तर प्रेम से दिये जाने द्वारा सफलता से निपट गया हो। तुम्हें बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे। इन्हें बढ़ाने की जरूरत है। अहिंसा भाव को जितना बढ़ाओ उतना थोड़ा है। यह अनुभव करो कि अहिंसा के विस्तार के लिये क्षेत्र अनन्त पड़ा हुआ है। जितना परमेश्वर का क्षेत्र है उतना अहिंसा का क्षेत्र है।

मेरे योग के गुरु महाराज एक साधु की स्वयं देखी घटना सुनाया करते थे। उन साधु का नाम तो याद नहीं रहा। वे जब दुनियावी आदमी थे तो दुबले पतले थे, दुनियावी लोगों की तरह व्यवहार करते थे। पर जब उन्हें परमेश्वर की लौ लग गई तो सब कुछ छोड़ एक लंगोटी लगाकर साधु हो गये और दिन रात भगवद्भक्ति में मस्त रहने लगे। जो कुछ मिलता खा लेते। इस बेफिक्री और आनन्द और मस्ती के कारण उनका शरीर भी बड़ा हृष्टपुष्ट-हट्टाकट्टा हो गया। एक बार वे तेजी से एक गांव के बाहर निकल रहे थे कि एक गांववासी ने उन्हें चोर उचक्का समझ लिया-शरीर तो डाकुओं जैसा था ही, लंगोटी के सिवाय नग्न भी थे—और उनके कन्धे पर कुल्हाड़ी मारी। अब तुम सोचो कि यदि कोई तुम्हें कुल्हाड़ी मारे तो तुम क्या करोगे? शायद बदले में मारोगे, मुकदमा चलाने का निश्चय करोगे। कम से कम उसी समय कुछ गालियां देना या और क्रुद्ध शब्द बोलना तो सामान्य बात समझी जायगी। पर इस कहानी की जिस बात पर मैं तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूं वह यह है कि उस साधु ने कुल्हाड़ी लगने पर एक बार मुंह फेर कर यह भी नहीं देखा कि किसने कुल्हाड़ी मारी है। हम अपने मारने वाले को चाहे कुछ भी न कहें, बदला भी न लें पर यह जरूर जान लेना चाहेंगे कि किसने मारा है इसके बिना हमें सन्तोष नहीं होगा। आगे कहा तो यह जाता है कि उनके कन्धे के उस घाव में कीड़े पड़ गये थे, धीमे २ वह घाव अपने आप बिलकुल अच्छा होगया। यहां तक कहते हैं कि जब जख्म में कीड़े पड़े हुए थे तब कोई कीड़ा घाव से बाहर निकल जाता था तो उसे वे उठाकर फिर घाव में रख देते थे। शायद यह अत्युक्ति हो, पर उस साधु को जानने वाले बहुत से लोग विद्यमान हैं। उस साधु की यह बेफिक्री और अनासक्ति हमारे लिये ईर्ष्या का विषय होनी चाहिये जिस के कारण उसके मन में और स्थूल शरीर में भी यह इच्छा नहीं पैदा हुई कि वह अपने मारने वाले को कम से कम जान लेने के लिये एक बार मुड़ कर तो देखें। मानो यह प्रहार भी उस के प्यारे का एक प्रकार का प्यार ही था। इस से अधिक उन्हें कुछ और जानने की जरूरत नहीं थी। उनका कोई शत्रु है या पराया है यह तो उनकी कल्पना में आने की भी बात नहीं थी।

इसी तरह एक बार बुद्ध भगवान की पुराने जन्मों की साधना के विषय में एक जगह एक ऐसी बात पढ़ी थी जो कि तब से हमेशा याद रहती है। हृदय पट से मिट नहीं सकती। उसमें यह कहा गया था कि किसी पुराने जन्म में वे हरिण थे (या कोई ऐसे ही क्षुद्र जन्तु थे)। उधर से एक भूखा शेर आया जो अपनी क्षुधा निवृत्ति के लिये उन को खाना चाहता था। इन्हें उस भूखे शेर पर बहुत करुणा आई और इन्होंने सोचा कि मेरा हरिण का शरीर तो बहुत छोटा सा है, इसके खाने से इसका पेट नहीं भरेगा। इस लिये उन्होंने अपने योगबल से हाथी का शरीर धारण कर लिया और उसे उस शेर के सामने रख दिया। यह बात हमें अजब लगेगा। शायद दिमाग को चकराने वाली लगे। परन्तु क्या इस बात में एक ऐसा अद्भुत सौन्दर्य नहीं है कि इसे पकड़ लेने के लिये हम इसके पीछे दौड़ना चाहें। हम सौन्दर्यों से आकृष्ट होकर उनको पकड़ लेने के लिये, पा लेने के लिये ही तो बहुत कुछ दौड़धूप करते हैं? मुझे तो इसमें एक ऐसा जबरदस्त सौन्दर्य लगता है कि इसे पाने के लिये और इसके साथ तद्रूप हो जाने के लिये यदि मुझे कई जन्मों तक दौड़ लगाना पड़े और चाहे कितनी मुसीबतें उठाना पड़ें तो भी इसे पाये बिना चैन न पड़ेगी। अस्तु।

पर आखिरकार यह भी वैयक्तिक अहिंसा के ही उदाहरण हैं। सामूहिकरूप से करने का, संघ का, अपना जुदा ही एक और बड़ा भारी बल होता है।

संघबल

अतः इन अहिंसा, (अभयता वीरता, ईश्वर निष्ठता) आदि मनुष्य के असली हथियारों को यदि हम मिलकर संघ शक्ति द्वारा चलायें तो इनकी शक्ति और भी चामत्कारिक रूप से प्रकट हो। अभयता आदि दैवी शस्त्रों का उपयोग तो संसार में महात्मा पुरुष सदा से करते आये हैं और अद्भुत विजय प्राप्त करते आये हैं। पर शायद वैयक्तिक रूप से (कम से कम स्थूल जगत् में वैयक्तिक रूप से). सामूहिक रूप से नहीं। पर अब समय आ गया है कि मिलकर संगठित रूप में भी इनका उपयोग हो। गांधी जी की नयी देन शायद यह है कि संगठित सामूहिक

हिंसा, अनीश्वरता, असुरता का मुकाबिला संगठित सामूहिक अहिंसा, ईश्वर-निष्ठता और दिव्यता से किया जाय।

संगठन का बल कितना है यह हम सब जानते हैं। जब बचपन में हम गुरुकुल में पढ़ते थे तभी सुना करते थे कि हिमालय के जंगलों में गौएं संगठित होकर शेरों का मुकाबिला करती हैं। शेर के आने पर वे अपने बच्चों को बीच में करके चारों तरफ मुह करके गोलाकार में खड़ी हो जाती हैं और शेर को एक भी गौपर आक्रमण करने से रोक देती हैं। तो मान लो हम हिन्दुस्तानी गौएं हैं और आक्रमणकारी शस्त्रों से सुसज्जित होने से शेर के समान हैं। हम यदि उन जंगली गौओं का अनुकरण करें तो संगठित शक्ति द्वारा अपनी पूरी सफल रक्षा कर लें। क्या हम भारत वासी मनुष्य गौ (अपना पुण्यपशु) जैसा भी संगठन नहीं कर सकते। पर असली बात यह है कि हम अब जंगली गौएं नहीं रहे हैं, हम शहरी गौएं हो गये हैं। अंग्रेजों की पालतू शहरी गौएं हो गये हैं। इस लिये अपनी सब पुरानी शक्ति भूल गये हैं। उन से बिलकुल अनजान हो गये हैं। शहरी पालतू गौओं को खूंटे से बांधे रखने वाली जो सुन्दर सुन्दर जंजीरें होती हैं उनके रूप में विदेशी चमकीले चमकीले हथियारों से (जिन के द्वारा हमारी रक्षा की जा रही कही जाती है) इतना प्रेम हो गया है कि हम उन्हें ही याद करते हैं, अपनी असली निजी शक्ति से बिलकुल बेसुध हो गये हैं।

और अभी डेढ़ दो सौ साल पहले, अंग्रेजी हुकूमत के जमने से पहले जब ये मुग़ल पठान, मराठे, सिक्ख आदि राज्य करते थे तब भी हमारी क्या शक्ति थी? विदेशी लोग ही अपनी तरफ से लिखते हैं कि तब इस देश में एक एक गांव एक एक राष्ट्र (रिपब्लिक) के समान संगठित था। आन्तरिक शासन, आर्थिक व्यवस्था आदि में ही ग्राम स्वावलंबी और आत्म-निर्भर नहीं था किन्तु जब कभी लड़ती आती हुई फौजें गांव के पास गुजरती थीं तो ये संगठित होकर इन फौजों से अपनी रक्षा करते थे। तब जो फौजों से हम अपनी रक्षा करते थे तो आज भी क्यों आत्म-रक्षा नहीं कर सकते। असली बात तो संगठनका बल था, वह आज नहीं रहा है। इस लिये संगठित, सामूहिक बल की तरफ ध्यान न दे हथियार के अभाव को या किसी और बात को कोसना केवल मोह जाल है।

सच्ची स्वराज्य स्थापना

तो असली आत्मरक्षा के लिये न तो भय के मारे भागने की जरूरत है, न हथियारों की। किन्तु निर्भयता की, सच्ची वीरता की आवश्यकता है, जो कि जो जितना ही अधिक अहिंसक होगा उतनी ही उस में अधिक होगी। और फिर ऐसे निर्भय, अहिंसक वीरों के संगठित होने की आवश्यकता है। ऐसे वीरों की जो मरने से नहीं डरते हों, जिनमें देश भक्ति की अग्नि जलरही हो और इस उत्कट देश प्रेम और मनुष्य प्रेम के कारण जो दुःखितों और अबलों की रक्षा के लिये सदा कटिबद्ध और तत्पर हों और अपने देश की स्वाधीनता के प्राणपन से रक्षक हों।

पर इन बातों की आवश्यकता आक्रमणों का मुकाबिला करने के लिये तो क्रियात्मक रूप से तब होगी जब कि सचमुच हम पर कोई अचानक ही आक्रमण हो जाय; जिसकी कि कोई विशेष संभावना नहीं है। पर इस तैयारी से भी पहिले हमें जिस बात की बहुत भारी आवश्यकता है वह यह है कि चारों तरफ जो कुछ हो रहा है उसे हम अच्छी तरह से जानें। हिंसक युद्ध में भी इसकी आवश्यकता होती है। हमारे चारों तरफ जो कुछ हो रहा हो वह हम से छिपा न हो। जो लोग गुण्डा होने की तैयारी कर रहे हैं, मौका आने पर लूट पाट करने का इरादा रखते हैं हमें उनका पता लगाना चाहिये और उनसे संबन्ध स्थापित करना चाहिये। ये सब काम किये जा सकते हैं यदि इच्छा हो, यदि इनकी आवश्यक समझा जाय। और इसकी इतनी अधिक आवश्यकता है कि इसके बिना आगे के काम किसी महत्व के नहीं रहते। लड़ाई दंगे कहां से कैसे हो सकते हैं यह ठीक ठीक जाना जाय। जागरूक रहा जाय। और इनको मूल से ही, प्रारंभ से ही बढ़ने न दिया जाय। मैं तो यह सोचता हूं कि जब ऐसे लोग गड़बड़ का मौका देख अपनी अराजकता की वृत्तियों को पूरा करने का आयोजन करते हैं तो हमें भी अपनी स्वराज्य की [व्यवस्थित स्वायत्त शासन का] भावना को चरितार्थ करने का प्रयत्न करने का क्यों आयोजन नहीं करना चाहिये? हुल्लड़बाजी, अराजकता, दंगा, गड़बड़ की जो शक्तियां इस समय अंग्रेजी हकूमत के रोब से दबी हुई हैं उन्हें हम अपने रोब से अपनी स्वदेशीय शक्ति द्वारा काबू रखें, रख सकें यही तो स्वराज्य है। तो इसे हम सच्चा स्वराज्य स्थापना करने का मौका क्यों न समझें? अंग्रेजी हकूमत भी तो-जैसा वह कहता है-यही चाहता है कि हम अपना शासन स्वयं करने के लायक हो जायं। इसके लिये प्रत्येक जगह किसी विश्वसनीय व्यक्ति को--जो वहां सब का-सब वर्गों और सम्प्रदायों का-स्वभावतः नेतृत्व कर सकता हो उसे नेता बनाकर सब अराजक शक्तियों को बिगड़ने से बचाय। यदि हम यह याद रखें कि हम सब देशवासियों का स्वार्थ एक ही है, भिन्न भिन्न नहीं तो गड़बड़ों के दूर होते रहने में कठिनाई न होगी। एक विश्वसनीय नेतृत्व में संगठित हो धनियों को अपने रुपयों को खुलकर अराजकता हटाने में व्यय करना चाहिये; बलवानों को अपनी शक्ति निर्भय होकर स्त्रियों बच्चों और अन्य सब प्रकार के निर्बलों की रक्षा में लगानी चाहिये तथा विद्वानों को सच्ची बातें, नेक सलाह, उत्तम उपदेश देते हुए न्यायभावना का प्रसार करना चाहिये। इस प्रकार की एक स्वयंनिर्मित सच्ची स्वभाविक व्यवस्था बनाने का यत्न करना ही अराजकता को हटाने का सही उपाय है।

ऐसा करने का हम यत्न ही करेंगे—चाहे पूरी तरह सफल न हों—तो इतने से ही हम असली स्वराज्य की तरफ निश्चित रूप से बहुत अधिक अग्रसर होंगे। इस तरह व्यवस्थाको कायम रखने के लिये बुराई का मुकाबिला करते हुए यदि कुछ अहिंसक बहादुरों की जानें भी चली जायंगी तो वे ऐसे कीमती बलिदान होंगे कि उन से गुण्डापन और बुराई की जड़ें ही हिल जायंगी और समाज

में एक भारी पवित्रता का वायु मण्डल पैदा हो जाएगा। वैसे तो यदि प्रारम्भ से बुराई का पता लगा कर उसे ठीक किया जायगा तो गड़बड़ी होने का अवसर ही न आयेगा, फिर यदि कुछ गड़बड़ी हो ही गई तो भी यदि निर्भय और शान्त तथा विश्वास पूर्ण रहा जायगा तो कम से कम जानें जायंगी, क्योंकि ऐसे अहिंसक उत्तम पुरुषों पर हथियार उठाना कठिन होगा, पर यदि ऐसा हुआ भी तो वह जितना हम समझते हैं उतना अधिक नहीं होगा। और यह तो है ही कि ऐसे पवित्र बलिदान राष्ट्रजागृति के लिये बड़ा चमत्कारिक प्रभाव पैदा करने वाले होंगे।

सब को आर्य बनाना

'प्रारम्भ से ही बुराई का पता लगा कर उसे ठीक किया जाय" यह जो मैंने कहा है उसे और अधिक समझने की आवश्यकता है। हम सोचें कि गड़बड़ी क्यों पैदा होगी? हम पर क्यों कोई आक्रमण करेगा? यदि कुछ ग़रीब लोग-जिन में कुछ साहस भी है—अब मौका पाकर गरीबों के सताये हुए हम पर इसलिये आक्रमण करते हैं कि हमने बहुत सा रुपया जमा कर रक्खा है तो इसका इलाज यह तो नहीं है कि हम उन पर बन्दूकें चलायें और उसके लिए अभी से अंग्रेज़ी सरकार की खुशामद कर बन्दूकों का लायसेंस लेकर बहुत सी बन्दूकें जमा रक्खें या उन की लाठियों से बचने लें और उसके लिये अभी से लाठी चलाना सीखें और लाठियां जमा करके रक्खें। इस का इलाज तो यह है कि हम उनकी गरीबी दूर करें। यदि यहां गुरुकुल में कोई लूटने वाले आयें तो मैं तो अनुकूल अवस्था पैदा कर उन से पूछूंगा कि 'भाई! तुम क्यों आये हो?' उन पर कोई हाथ उठाये यह मैं कदापि सहन नहीं करूंगा। अपनी जान खतरे में डाल कर भी अपने सामने ऐसा नहीं होने दूंगा। वे पहले ही ग़रीब, फिर उन्हें मारना। मैं उन्हें चोर उचक्का भी कहने को तैयार नहीं। वे चोरी करने या डाका डालने आये हैं तो इसलिये क्योंकि वे सताये हुए हैं और कुछ अज्ञानी हैं। हम उनसे कोई अच्छे नहीं हैं। हम यदि उन्हें मारना चाहते हैं तो हम भी उतने ही अज्ञानी हैं। और हम यदि उनकी तरह चोरी व डाका नहीं डालते तो साधारणतया उसका कारण यह नहीं कि हममें दूसरों का भाग ले लेने की इच्छा नहीं रहती, हम अस्तेय का पालन करते हैं, किन्तु सम्भवतः कारण यह है कि हम में इतना साहस नहीं है कि ऐसा काम कर सकें। वैसे मौका मिलने पर दूसरे का भाग हम भी हड़पते ही रहते हैं, केवल ज़रा सभ्य तरीके से। जो हमें लूटने आये हैं उनके ग़रीब रहने में हमारी ज़िम्मेवारी है हमें तो यह सोचना चाहिये। और अपनी इस बुराई का प्रतीकार करना चाहिये। यदि हमने अपने चारों तरफ़ के लोगों की गरीबी दूर करने का कभी पूरी तरह यत्न नहीं किया, फिर यदि वे गलती से भी यह समझ लेते हैं कि हम भी उनका शोषण करने वालों में हैं और अतएव हमें उन्हें समझाने का यत्न करते हुए उनके हाथों मर जाना पड़ता है तो इसमें मैं कुछ बुराई नहीं समझूंगा। हमने अपने उनके प्रति कर्तव्यों को पूरी तरह न करने का प्रायश्चित्त ही समझूंगा। पर हम उन्हें मारें यह तो अन्याय पर और अन्याय करना है।

किन्तु यदि हम गुरुकुल वालों ने आस पास के लोगों की सदा सेवा की है, उनके शोषण में हिस्सा नहीं लिया है तो वे गुरुकुल को लूटने का कभी सोच ही नहीं सकते। उन्हें कोई इसके लिये उकसाये या बाधित करे तो भी वे ऐसा करने को कभी तैयार नहीं होंगे। बल्कि यदि कोई पराया गुरुकुल को नुकसान पहुँचाने आवे तो उसे भी जान जान से वैसा करने से वे रोकेंगे। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि प्रसिद्ध सुलताना या अन्य डाकुओं ने चारों तरफ डाके डाले पर गुरुकुल पर-इसके अरक्षित होने पर भी-डाका डालना पाप समझा। यह हमारी स्वाभाविक आत्मरक्षा हुई।

मतलब यह कि बिना कारण कोई चोर डाकू नहीं बनता। उस कारण को हटाओ तो कोई आक्रमणकारी नहीं रहेगा। तुम शायद कहोगे कि बहुत से ऐसे भी होते हैं जो गरीबी आदि कारण से नहीं किन्तु वैसे ही ऐसे कामों में मज़ा लेते हैं। वे उपद्रव प्रिय या साहसिक होते हैं। उनका क्या किया जाय? उनका भी कुछ कारण होता है। प्रायः उनकी वीरता व साहसिकता कुपथ-गामिनी होती है, उसे ठीक रास्ते पर ले आना चाहिये। आज कल जो डाकू करके बदनाम हैं उनमें से बहुतों के विषय में आसानी से कहा जा सकता है कि यदि हमारा देश स्वाधीन होता, भारतीय सभ्यता पर आश्रित अपने स्वराज्य में हम रहते होते तो ये लोग यहां हमारे स्वराज्य में एक ऊंचे दर्जे के क्षत्रिय होते, सेना या पुलिस के एक अधिकारी के रूप में देश की सेवा करने वाले होते। यदि चोर और डाकुओं को उत्तम नागरिक बना देना, आर्य बना देना हमारा काम नहीं तो हम धर्म प्रचारक लोग और किस मर्ज़ की दवा हैं?

यहां मुझे एक बहुत ही पवित्र नाम स्मरण आता है। श्री रवि शंकर जी महाराज। कई वर्ष हुए 'गुरुकुल' पत्र में मैंने इन पर दो लेख लिखे थे। 'एक गुजराती आर्य' यह शीर्षक था। उनका पुत्र मेधाव्रत गुरुकुल में १४ वर्ष पढ़ कर निकला है और अब गुजरात में सेवा कार्य कर रहा है। ये रवि शंकर जी महाराज वे पुरुष हैं जिन्होंने सैंकड़ों हजारों चोर। पेशा लोगों की चोरियां छुड़वा दी हैं—उनके 'गुरु' माने जाते हैं। अभी गांधी जी ने अपने लेख में उनका उल्लेख किया है और कहा है, इन के जीते जागते दृष्टान्त से हमें प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। उत्तर भारत के आर्य समाजी यह जान कर शायद अपने को गौरवान्वित अनुभव करेंगे कि श्री रवि शंकर जी एक आर्य समाजी हैं। और एक ऐसे दृढ़ आर्य समाजी हैं कि उन्होंने कभी सत्यार्थ प्रकाश कण्ठस्थ याद कर रखा था। मुझे कहना चाहिये कि वे सच्चे आर्य समाजी हैं। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का मतलब उन्होंने ठीक समझा है और उस पर अमल किया है।

इसी तरह खान साहिब अब्दुल गफ्फार खां को देखो। वे खूंखार समझे जाने वाले पठानों का काया पलट कर रहे हैं। जो विश्व को आर्य बनाने का काम कर रहे हैं। चारों तरफ के लोगों को दरिद्र, निर्बल और अज्ञानी

रखना और अनात्मीय सरकार के सहयोग से उनकी दरिद्रता, निर्बलता और अज्ञान से फायदा उठा कर अपने स्वार्थ पूरे करने में व्यग्र रहना, और वे सताये हुए कभी आक्रमण कर बैठें तो उन्हें 'आत्म रक्षा' के नाम से बन्दूकों या लाठियों से मारना यह सब शुरू से आखिर तक अनार्यत्व है। आर्यत्व तो वह है जो श्री रविशंकर जी कर रहे हैं या खानसाहिब कर रहे हैं। हम जिन्हें गुंडे, बदमाश, जंगली या पशु समझते हैं और इसके कारण उनसे डरते या उनकी हिंसा करना चाहते हैं, उन से यदि हम निर्भय हो कर प्रेमपूर्वक जरासा संपर्क स्थापित करके देखें तो हमें पता लगेगा कि वे भी हम जैसे ही अच्छी और बुरी भावनाओं के बीच में लटकने वाले मनुष्य हैं, और ऊंची भावनाओं के लिये उनके हृदय में भी स्थान रहता है। बल्कि उन में से बहुत से तो ऐसे होते हैं कि उन्हें केवल संकेत मिलने की देर होती है वे हमसे भी ऊंचे दर्जे के बन जाते हैं, क्यों कि उ। में सचाई का गुण होता है। और यदि इन धन, ज्ञान नीति आदि में पिछड़े हुए अपने भाइयों क धार्मिक व आत्मिक सेवा में हमें कभी अपनी जान भी देनी पड़े तो क्या हर्ज है? ये तन,मन और धन और किस काम के लिये हैं? ये आत्म देव की सेवा में बलि चढ़ा देनेके लिये ही तो हैं। आत्मा की ही रक्षा सदा करनी चाहिये। आत्म रक्षा से मेरा यही मतलब है। इस मट्टी के देह और इन धातुओं के टुकड़ों को और किस के लिये बचाना है? मैं तो कहता हूं कि कोई दूसरा राष्ट्र हम पर हमला करे—पैसे तो जब हम किसी का कुछ बिगाड़ते नहीं हैं, किसी तरह का शोषण नहीं करते हैं, अन्य किसी प्रकार भी दूसरों को अपने पर आक्रमण करने के लिये ललचाते नहीं तो हम पर कोई आक्रमण करेगा ही नहीं —तो भी हम क्यों अरबों रुपये रोज़ खर्च कराने वाले हथियारों को अपने ऊपर बांधने की अपेक्षा अपने ईश्वर-प्रदत्त निर्भयता, अहिंसा, परमेश्वरनिष्ठ देश भक्ति के दिव्य हथियारों से ही उनका मुकाबिला न करें? ऐसा करने में यदि हमारे बहुत से वीरों को शरीर भी छोड़ना पड़े तो क्या हुआ? मरना जीना तो दुनियां में लगा ही रहता है। पर इस तरह पवित्र बलिदान देने से हमारे इस पुरातन महान् देश की सच्चे अर्थों में रक्षा होगी—इससे भारतीय सभ्यता की रक्षा होगी, ऐसी ज़बर्दस्त रक्षा होगी कि यह दुनियां भर की रक्षा के लिये अपना सिर ऊपर उठा सकेगी, यह भारतीय सभ्यता जिस पर कि आज एक के बाद एक घातक प्रहार हो रहे हैं—अर्थात् इस से भारत की आत्मा की रक्षा होगी। क्यों कि यज्ञवेदि में जलने वाली अग्नि की तरह वैयक्तिक आत्मा की अग्नि और राष्ट्र-आत्मा की अग्नि भी सतत शुद्ध आहुतियों और बलिदानों से ही जीवित और रक्षित रहती है। आत्म रक्षा का पूरा और सही अर्थ यही है।

(समाप्त)

प्रभात आश्रम

मेरठ शहर से १२ मील दूर, गङ्गा की नहर के किनारे प्रभात किरणों में झिलमिलाता और संध्या किरणों में मुसकराता प्रभात आश्रम दीख पड़ता है। मीलों लम्बे हरे भरे खेतों के बीच में दो तीन छोटी छोटी कुटियां हैं। इसके संस्थापक हैं प्रसिद्ध विद्वान आदर्श त्यागी श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। प्राचीन आर्य संस्कृति को क्रियात्मक रूप में दिखाने के लिए, वर्णव्यवस्था का सच्चा रूप—प्रचलित करने के लिए, वेद और वैदिक सभ्यता की दुन्दुभि बजाने के लिए इस आश्रम की स्थापना हुई है।

दिनरात विद्या विलास में लीन रहने वाले ब्राह्मण, देश धर्म जाने के लिए प्राण हथेली पर लिए हुए क्षत्रिय, ईमान दारी से धन कमा कर शुभ कृत्यों में लुटा देने वाले वैश्य उत्पन्न करना इस आश्रम का उद्देश्य है। यहां एक बड़ा भारी पुस्तकालय होगा। विभिन्न आठ विद्याओं के विद्वान यहां अपनी विद्याओं का अध्ययन करेंगे। दुनियां जिसे स्वप्न समझती है वह यहां सत्य है।

लोग कहते हैं कि आर्यसमाज के सामने कोई प्रोग्राम नहीं—मैं कहता हूं कि यह आर्यसमाज के लिए बड़ा भारी और एक मात्र प्रोग्राम है। जो आश्रम के कामों और उद्देश्यों को अच्छी तरह विस्तार से जानना चाहें वे श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार लिखित 'काया कल्प' नामक पुस्तक पढ़ें।

हमारी आवश्यकताएं—

१. यज्ञशाला—७ मार्च से एक लाख आहुति का यज्ञ शुरू है। थोड़े दिन हुए हमारी घास फूस की यज्ञशाला को आंधी ने ढाह दिया। हमारा यज्ञ अब भी जारी है। यज्ञ-शाला निर्माण के लिए ५००) की आवश्यकता है।

२. गोशाला—गोशाला के लिए १०००) की आवश्यकता है—५००) गौएं खरीदने के लिए और ५००) गोशाला निर्माणार्थ।

३. अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का भाष्य जिसे श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार कर रहे थे, समाप्त हो गया है। उसे छपवाने के लिए ४००) की आवश्यकता है।

जो भाई अपनी सामर्थ्यानुसार थोड़ी बहुत जितनी भी रकम दे सकें सधन्यवाद स्वीकृत होगी।

निवेदक

प्रबन्धक

प्रभात आश्रम (मेरठ)

स्वास्थ्य समाचार

विश्वमित्र ११ श्रेणी विषमज्वर, राजेन्द्र २ श्रेणी विषमज्वर, सत्यप्रकाश ३ श्रेणी विषमज्वर, बलराज ४ श्रेणी विषमज्वर, रणजीत ५ श्रेणी चोट, कर्मेन्द्र २ श्रेणी व्रण, विजेन्द्र १ श्रेणी भस्म।

गत सप्ताह उपरोक्त ७० रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी दुलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)　　[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]　　वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—सत्यव्रत हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५]　　गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २६ श्रावण १९९७; ९ अगस्त १९४०　　[संख्या १७

देवों की विजय

(ले० श्री रामनाथ वेदालंकार)

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः।
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्॥

ऋग् १०।१५७।४,५

(यदा देवा असुरान् हत्वाय) जब देव असुरों का संहार करके (देवत्वम् अभिरक्षमाणाः आयन्) अपने देवत्व की रक्षा करते हुए आये (देवाः) तब उन देवों ने (शचीभिः अर्कं प्रत्यञ्चम् अनयन्) अपनी शक्ति रूपी किरणों से [छिपे हुए] आत्म-सूर्य को प्रकट कर दिया (आत् इत्) फिर इसके बाद ही उन्होंने (इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) रसीले अन्नों [भोगों] की ओर दृष्टि की।

यह देखो, प्रकृति में देवों और असुरों के बीच संग्राम हो रहा है। अभी गगनमण्डल में सूर्य अपने अद्वितीय तेज के साथ चमकता हुआ अपनी किरणों से भूलोक को प्रकाशित कर रहा था। किन्तु अगले ही क्षण आकाश मेघाच्छन्न हो गया, सूर्य मेघों से रुक गया, भूलोक पर अन्धकार छा गया। बस, मानो सूर्यरश्मि रूपी देवों का इन असुरों-मेघों की टुकड़ियों से संग्राम छिड़ गया। यह लो, देखते ही देखते वे मेघ रूपी असुर पस्त होकर छिन्नभिन्न हो चले। देवों की विजय हुई। वह सूर्य उसी अपने पुराने तेज के साथ फिर चमकने लगा। सूर्य-रश्मियां फिर इस भूलोक पर आकर यहाँ के रसों का आस्वादन करने लगीं।

यह तो हुई बाहर की बात, हमारे शरीरों के अन्दर भी यही खेल हो रहा है। शरीर में जीवात्मा रूपी सूर्य अपनी दिव्य किरणों के साथ चमक रहा है। इस आत्म-सूर्य की ज्योति से हमारा मानस रूपी चन्द्रलोक और चक्षु आदि अन्य लोक प्रकाशित हो रहे हैं। लेकिन जब बीच में आसुरी भावों का दुर्भेद्य आवरण आजाता है तब यह प्रकाश रुक जाता है। और तब हमारे सब मानस सङ्कल्प और हमारे सब इन्द्रिय-व्यापार ठण्डे पड़ जाते हैं, अन्धकार से घिर कर तामसिक हो जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि इस प्रकाशमान सूर्य के लुप्त होते ही सब लोकों में अन्धकार का राज्य हो जाता है। इस समय हमारी आत्मा की दिव्य किरणें इस आसुरी आवरण का भेदन करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं और इन दोनों विरोधी शक्तियों में-प्रकाश और अन्धकार में, देव और असुरों में युद्ध छिड़ा रहता है। कभी आशा की झांकी दिखाई देती है कि अब यह आवरण हटा और अब सूर्य का उदय हुआ, पर एक के बाद दूसरा आवरण आजाता है। और फिर वही काली निशा छा जाती है। आखिर यह संग्राम कब तक चलता है? मन्त्र में कहा है कि देव भावों ने आसुरी भावों पर विजय प्राप्त की और इसका परिणाम यह हुआ कि आत्म-सूर्य जो आसुरी भाव की बदली के बीच में आजाने से छिप गया था फिर प्रकट हो गया। और शरीर के सारे लोक मन बुद्धि, चक्षु आदि आत्मा की दिव्य ज्योति से जगमगा उठे।

मन्त्र के अन्तिम भाग में कहा है कि इस छिपी हुई आत्मज्योति को जगा लेने के बाद ही देवों ने रसीले भोगों की ओर दृष्टि की। सचमुच जब तक आत्म-शक्ति को भूल कर हम भोगों में प्रवृत्त होते हैं तब तक कवि की उक्ति के अनुसार हम भोगों को नहीं भोगते प्रत्युत भोग ही हमें भोग रहे होते हैं। जैसे बादल से रुक कर आती हुई निस्तेज सूर्य की किरणों में वह सामर्थ्य नहीं होता कि वे रसों को हरण करके द्युलोक तक पहुंचा सकें वैसे ही आत्म-तेज से छूछी, दिव्य नेतृत्व से हीन हमारी भोग-साधन इन्द्रियों में वह शक्ति नहीं होती कि वे रस-हरण के द्वारा हमें अपने उच्च उद्देश्य के द्युलोक तक ऊँचा उठा सकें।

भाइयो! हमारे शरीर की इस देव-पुरी के अन्दर देवराज आत्मा का शासन चल रहा है। देखो, इस इन्द्र का सिंहासन डोलने न पावे। अपनी पराजय के बाद भी कामक्रोध आदि असुर फिर व्यूह बांध कर आक्रमण के लिये तैयार हैं। सावधान! चारों ओर से ख़तरा है। अपनी देवसेना को जागरूक रखो और अपने दिव्य संकल्पों के बल से असुरों को पराजित करते हुए इस हर्षनाद के साथ आगे बढ़ते चलो-देवों की विजय! देवों की विजय!'

———

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर द्विवेदी; अनुवादक—

श्री धर्मराज वेदालंकार]

(८)

"हमारा जीवन दिन प्रतिदिन नीरस बनता आ रहा है। हम में से सौन्दर्य की दृष्टि चली गई है। आकाश में सारी रात ग्रह और नक्षत्रों की क्रीड़ा जारी है। यह क्रीड़ा और कहां देखने को मिलेगी ?

शेक्सपीअर की अंग्रेजी कविता अथवा कालिदास की कृतियाँ पढ़ लेने मात्र से ही हृदय में सौन्दर्य और कला की अनुभूति नहीं हो जाती। जिस देश के मन्दिरों में भी सङ्गीत को भ्रष्ट करने वाला हारमोनियम संगीतज्ञ समाज की शोभा बन बैठा है उस देश में संगीत शास्त्र का सर्वथा ह्रास हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ? अब दिन बदलने आ रहे हैं। हमें फिर से 'संस्कृत आर्य' बनना है। इस लिये पाठ्य क्रममें कला का स्थान अवश्य होना चाहिये। यदि यह परिश्रम जारी रहा तो मुझे विश्वास है कि हमारे घर महल तथा गांव के झोंपड़े पुनः चित्रों से विभूषित हो सकेंगे। आकाश, झरने, सरिता, पर्वतमाला, हरे खेत और रंग बिरंगे बादल लोगों के सजीव मित्र बन जाएंगे। उस समय कवियों के काव्यों में और ग्राम्य संगीतों में एक अद्भुत स्फूर्ति और उत्साह का दर्शन होगा।"

—पण्डित सम्पूर्णानन्द ।

(४) अध्यापक वर्ग

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को क्रिया में परिणत करने वाले अध्यापकोंको इन उद्गारों पर विचार करना चाहिये। आधुनिक अंग्रेजी शिक्षणालयों और कौलिजों में अध्यापकों का काम कुछ घण्टे विद्यार्थियों को पढ़ाना होता है। पढ़ाने के अतिरिक्त विद्यार्थियों के सदाचार को उन्नत करने के सूक्ष्म कार्य के लिये उनके पास अवकाश नहीं होता। इसका परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक शिक्षा में विद्या तथा सदाचार के बीच में एक बड़ी खाई दिखाई देती देती है। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की विशेषता 'गुरुका कुल' होने में है। ब्रह्मचारी अविद्या और विद्या दोनों का ज्ञान प्राप्त करे और अन्त में आत्मविद्या को भी जाने तभी वह सच्चा ब्रह्मचारी हो सकता है। और इस प्रकार भी आत्म-विद्या सिखाने वाले को ही सच्चा गुरु कह सकते हैं। इससे यह बात सिद्ध है कि गुरुकुल के अध्यापकों का ढङ्ग आधुनिक शिक्षणालयों के अध्यापकों से भिन्न प्रकार का होना चाहिये। आदर्श के अनुसार सब चीजें नहीं मिल सकती, तथापि यदि आदर्श दृष्टि के सम्मुख हो तो आदर्श विरोधी बातें नहीं होती। शुरू में गुरुकुल को चलाने के लिए ऐसे आदमी रखने पड़े थे जिन्होंने आधुनिक शिक्षणालयों से शिक्षा पाई थी अथवा जो पुराने विचार रखने वाले पण्डित लोग थे। यह सब होते हुए भी सचाई के लिये यह [illegible] प्रकार के अध्यापकों से ब्रह्मचारियों ने जो कुछ सीखा था उतना ही पिछले वर्षों में भी सीखा हो इसमें सन्देह है। आरम्भ से गुरुकुल में बी० ए०, एम० ए० उपाधि वाले जो अध्यापक थे वे स्वाध्याय शील थे। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली को सफल बनने के लिये उनमें उत्साह था। पुराने पण्डितों का यद्यपि किसी सिद्धांत में मतभेद होता था लेकिन वे अपने अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे इसी लिये ज्यादातर उत्तम स्नातक निकल सके। इसके बाद ज्यों ज्यों आर्य विचार वाले अध्यापक तथा गुरुकुल के स्नातक गुरुकुल के कार्य को संभालने लगे त्यों त्यों गुरुकुल के अध्यापन कार्य में जल्दी जल्दी विकास होता गया। जिस प्रकार प्रचारक्षेत्र में आरम्भ से जिन लोगोंने काम किया वे महात्मा मुन्शीराम जी आदि आधुनिक शिक्षणालयों की ही पैदायश थे उसी प्रकार गुरुकुल के अध्यापकों में आरम्भ के अध्यापक आधुनिक शिक्षणालयों से निकले हुए होने पर भी सेवा भावसे कार्य करने वाले व्यक्ति थे। जब गुरुकुलोंसे स्नातक निकलने लगे तब से स्वभावतः गुरुकुलों में उन्हें स्थान मिलने लगा। गुरुकुल स्नातकों का है और स्नातक गुरुकुलों के हैं यह दृढ़ सत्य है तथापि जितनी स्फूर्ति, स्वाध्याय-शीलता, सदाचार शिक्षण के लिये तत्परता स्नातक अध्यापकों में होनी चाहिये उतनी उपलब्ध नहीं होती। स्नातक अध्यापकों के भी दो वर्ग हो सकते हैं पुराने और नए। आर्य जनता को स्नातक अध्यापकों से अधिक आशा रखने का पूरा अधिकार है क्योंकि ब्रह्मचारियों की कठि-नाइयों और त्रुटियों का जितना अनुभव स्नातकों को हो सकता है उतना दूसरों को नहीं। बाहर के शिक्षक वैदिक सिद्धान्तों में पले नहीं होते इस लिये उनके द्वारा शिक्षण में हानि हो सकती है। बाहर के शिक्षक कार्बोनिक एसिड गैस वाले शहरों के दूषित वातावरण में विद्यमान शिक्षणालय तथा समाज के उपज होने से अमुक प्रकार के वैदिक वातावरण को अनजाने में खराब भी कर सकते हैं। परन्तु जिन स्नातकों ने वर्षों तक सदाचार, नीति, संस्कृति, वैदिक धर्म, विद्या, अविद्या, आस्तिक वाद आदि की शिक्षा प्राप्त की है, जिन्होंने कठोर संयमी जीवन बिताया हो, जिन्होंने अपने प्यारे माता पिता का वियोग सहन करके भी गुरु का सान्निध्य सेवन किया हो ऐसे स्नातक यदि अध्यापन कार्यको अपने हाथमें लें तो फिर गुरुकुलके ब्रह्मचारियों में चामत्कारिक परिवर्तन की आशा रखना अनुचित नहीं। गुरुकुल के कई पुराने अध्यापकों को महात्मा मुन्शीराम जी ने कई कारणों के आधार पर गुरु-कुल से अलग किया था। महात्मा मुन्शीराम जी ने एक बार मेरे पूज्य पिता जी के साथ बात चीत करते हुए कहा था कि ब्रह्मचारियों से एक रात भी अलग होना मुझे असह्य मालूम होता है। महात्मा जी ब्रह्मचारियों की सारी रात चौकीदारी करते थे। पञ्जाब आदि प्रांतों की नैतिक खराबियों के वातावरण में पले हुए कई अध्यापक दुर्भाग्य से गुरुकुल में आ पहुंचने हैं तो उनमें बीमारी

ज़रूर फैलती है, लेकिन सतर्क आचार्य की उपस्थिति में बीमारी के संक्रमण से पहले ही बीमारी का निवारण हो जाता था। वर्षों तक गुरुकुल के सामने यह डर था। महात्मा मुन्शीराम जी ने इसी लिये संयमी, त्यागी और सदाचारी स्नातकों की एक सेना तय्यार की थी। स्नातक अध्यापकों के अध्यापन काल में तो इस भय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इतना तो स्पष्ट है कि आचार्य और अध्यापकों के सतर्क न रहने पर गुरुकुल के नैतिक कलेवर में अवश्य विकार आना सम्भव है। इसके लिये निम्न बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है:—

(१) पहली पांच श्रेणियों में अध्यापक और अधिष्ठाता एक ही होने चाहिएं, अर्थात् जो अध्यापक हों वे ही अधिष्ठाता भी हों। इसके लिये यदि आवश्यक हो तो दुगुना स्टाफ रखना चाहिये ताकि प्रत्येक कार्यकर्ता पर अधिक बोझ न पड़े। इन छोटी श्रेणियों में वानप्रस्थी या गृहस्थी कार्यकर्ता होने चाहिए।

(२) छठी से दसवीं श्रेणी तक अध्यापन का काम स्नातकों को तथा अधिष्ठातृत्व का काम वानप्रस्थियों अथवा किन्हीं उत्तम गृहस्थियों को देना चाहिये।

(3) ग्यारहवीं से चौदहवीं श्रेणी तक पढ़ाने वाले जो अध्यापक हों उन्हें बहुत सोच समझ कर नियुक्त करना चाहिये। आचार्य की आंख सामान्यतः प्रत्येक ब्रह्मचारी के अन्तर्देह तक पहुंचनी चाहिये। थोड़े में कहें तो आचार्य की एक आंख छोटे ब्रह्मचारियों पर और दूसरी आंख महाविद्यालय के बड़े उमर के समझदार ब्रह्मचारियों पर होनी चाहिये।

(४) जिन अध्यापकों के बालक गुरुकुल में न पढ़ते हों उनसे इसके खुलासेकी अपेक्षा करनी चाहिये, खुलासा सन्तोष जनक हो तभी उन्हें अध्यापक के रूप में रखना चाहिये।

(५) जब तक अनुभवी तथा वात्सल्य सम्पन्न व्यक्ति छोटी श्रेणियों को नहीं संभालते तब तक प्रेम की उस कमी को पूरा नहीं किया जा सकता जो कि माता पिता की अनुपस्थिति में छोटे ब्रह्मचारियों को ढूंढनी पड़ती है। सदाचार के शिक्षण को मातृ शिक्षा माना जाता है और जो शिक्षक माता बन सकते हैं उन्हें ही पहिली से पांचवीं श्रेणी तक रखना चाहिये। उसके बाद जो शिक्षक प्रखर किरणों के द्वारा तपते हुए सूर्य के समान पिता के रूप में आचरण कर सकते हों उन्हें मध्य विभाग में रखना चाहिये। जो शिक्षक सच्चे मित्र भाव से विद्यार्थियों का उपकार कर सकते हों उन्हें महाविद्यालय विभाग में उपाध्याय के रूप में नियुक्त करना चाहिये।

(६) प्रत्येक श्रेणी के अध्यापक या अधिष्ठाता को हर एक ब्रह्मचारी के सदाचार तथा शिक्षण आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करके उसे लिपिबद्ध करते रहना चाहिये। और यह जानकारी प्रतिमास आचार्य के सामने तथा प्रतिवर्ष मां बाप के सामने आनी चाहिए।

(७) प्रत्येक अध्यापक व अधिष्ठाता के आचार व्यवहार आदि के विषय में आचार्य को नोट करते रहना चाहिये।

(८) प्रत्येक अध्यापक के वेतन का ग्रेड उसके आश्रम धर्म के अनुकूल बनना चाहिए। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग में अनिश्चित भविष्य का जो सामना करना पड़ता है इसका भी ख्याल करना चाहिये। कई बार यह प्रश्न उठता है कि अध्यापकों को इतना वेतन नहीं लेना चाहिए कि उन्हें बैंकों में जमा करवाना पड़े, लेकिन जब तक संस्था अध्यापक वर्ग के लिये कोई ऐसी व्यवस्था नहीं कर देती जिसमें उन्हें वृद्धावस्था में आर्थिक सहायता मिलती रहे तब तक वेतन का ग्रेड ऊंचा होना ही चाहिये।

(९) अध्यापकों को अपनी स्थिरता का अनुभव हो इसके लिये पेन्शन या प्रोवीडेंट फण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए। अध्यापकों के बच्चों की शिक्षा की जिम्मेवारी गुरुकुल सभा कहां तक ले सकती है इस पर भी विचार होना चाहिए।

(१०) अब अध्यापक श्रेणीवार होते हैं इसके बदले विषयवार होने चाहिए। उदाहरण के लिए भूगोल में निष्णात अध्यापक को पहली से पांचवीं श्रेणी तक भूगोल के शिक्षण, पाठ्यक्रम बनाने तथा पाठ्य पुस्तक चुनने आदि का सारा उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए। इस प्रकार होने से अध्यापक किसी एक विषय का विशेषज्ञ हो सकेगा और संस्था को भी इससे लाभ होगा।

समालोचना

कल्याण—

'कल्याण" गोरखपुर का प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्र है। प्रति वर्ष इस पत्र का बृहद् विशेषाङ्क प्रकाशित होता है। निस्सन्देह इतना उपयोगी, विविध विषय विभूषित तथा बृहद्काय वार्षिक विशेषाङ्क किसी दूसरी पत्र-पत्रिका का नहीं निकलता।

इस वर्ष का 'साधनांक' भी पिछले विशेषांकों की भांति सुन्दर, चित्ताकर्षक तथा साधक महानुभावों के लिए उपयोगी सामग्री से विभूषित प्रकाशित हुआ है। इस सारी सामग्री को संग्रह कर, सुव्यवस्थित ढंग से छपाने के लिए जिस असीम कार्य [illegible]लता की अपेक्षा होती है उसका अनुमान किया जा सकता है। ऐसे सुन्दर विशेषांक को प्रकाशित करने लिए गीता प्रेस तथा 'कल्याण' के यशस्वी संपादक श्री युत् हनुमानप्रसाद जी पोद्दार बधाई के पात्र हैं।

गु रु कु ल

२६ श्रावण शुक्रवार १९९७

चांदी का चर्खा

(ले०— श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार)

अखिल भारतीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में पिछले तीन वर्षों से प्रदर्शनी के साथ कताई-स्पर्धा का भी आयोजन होने लगा है। सब से प्रथम फैज़पुर कांग्रेस में प्रदर्शनी के साथ इसे जोड़ कर चर्खे व खादी के महत्त्व को तथा प्रदर्शनी की उपयोगिता को जनता के सम्मुख मौलिक ढंग से स्थापित किया गया था। इस स्पर्धा के संक्षिप्त नियम नीचे दिये जाते हैं—

१- कुल ६ प्रकार की स्पर्धायें होंगी और सभी स्पर्धाओं में एक से नियम होंगे।

२- परीक्षाफल मज़दूरी के हिसाब से घोषित किया जायेगा और अधिक से अधिक आमदनी करने वाले को कमाई के क्रम से इनाम दिया जायेगा, जो सफल उम्मीदवार को दो आने रुपया रकम घटा कर दिया जायेगा।

३- स्पर्धा में वही लोग शामिल हो सकेंगे जिनकी गति कम से कम नीचे बताई गई स्पर्धाओं में उनके सामने दिये गये गज़ मुताबिक प्रति घंटा की होगी:—

मोटे सूत की स्पर्धा सूत नं० ५॥ से १०॥ तक ५५० गज़ या ४१५ तार चार फीट के, मध्यम सूत की स्पर्धा सूत नं० १०से२० तक ४३० गज़ या ३३० तार चार फीट के, बारीक सूत की स्पर्धा सूत नं०२१से४० तक ३३०गजया२५० तार चार फीट के, बारीक सूत की स्पर्धा सूत नं० ४० से ऊपर २०० गज या १५० तार चार फीट के, मगन चर्खा स्पर्धा मध्यम सूत वाली ८०० गज़ या ६०० तार चार फीट के, तकली स्पर्धा मध्यम सूत वाली ३३३ गज़ या २५० तार चार फीट के।

प्रत्येक स्पर्धा चार घंटे चलेगी तथा प्रत्येक दिन एक ही स्पर्धा चलेगी।

४- स्पर्धा प्रदर्शनी से ६ दिन पहिले शुरू होगी; प्रदर्शनी १० मार्च १९४० को खुलने की आशा है, अतएव स्पर्धा ४ मार्च के लगभग शुरू होगी।

५- इनाम का बटवारा निम्न प्रकार होगा:—

मोटे सूत की स्पर्धा	१,२,३,	(व्यक्तिगत)	रेशमी	लि० अं० सूचा	
मध्यम	”	”	”	सुवर्ण भारत	”
बारीक	”	”	”	चांदी चरखा	”
खास बारीक	”	”	”	सुवर्ण कलश	”
तकली स्पर्धा		”	”	चन्दन वट वृक्ष	”
मगन चर्खा स्पर्धा		”	”	गांधी जी के हाथ के कते हुये सूत की खादी पर उनका आशीर्वाद!	

सब सूत के लिये आवश्यक मज़बूती कम से कम ६० प्रतिशत होनी चाहिये, इससे कम मजबूत सूत को खारिज किया जायेगा। ७० से ऊपर प्रति ५ फी सदी मजबूती बढ़ने पर प्रति रुपया दो पैसा मजदूरी अधिक दी जायेगी।

सब लोग अपना२ चरखा व अटेरन लायेंगे-अटेरन चार या ३ फीट घेरे का होगा। कताई स्पर्धा के प्रवेशार्थी के प्रवेश नियम निम्न प्रकार के होंगे।

(१) प्रदर्शनी उद्घाटन के एक महीना पहिले अर्जी पता, उम्र तथा योग्यता के साथ प्रदर्शनी मंत्री के पास पहुंचनी चाहिये।

(२) स्पर्धाओं में से कौनसी स्पर्धा में उम्मीदवार प्रविष्ट होगा यह लिख भेजना चाहिये और वह किस सूबे या संस्था की ओर से आवेगा यह भी लिखना चाहिये।

(३) जिस २ स्पर्धा में प्रवेश का इच्छा हो उसकी गति उल्लिखित सूची के मुताबिक होनी चाहिये।

(४) प्रवेशार्थी के जीवन का कताई अभ्यास का कताई पत्र का संक्षिप्त परिचय।

(५) प्रवेशार्थी ने कहां२ और कौनसे दंगल पिछले तीन वर्षों में जीते हैं तथा प्रति घण्टा कितनी मजदूरी दिखाई है और इनाम कितना पाया है इसकी सूचना भी मिलनी चाहिये।

(६) जो कोई धुनाई परीक्षा में सम्मिलित होना चाहे वह अपनी पूनी एक तोला नमूना भेजदें— और पिंजाई की गति और पींजन का वर्णन चित्र सहित तथा पिंजाई की विशेषता आदि के बारे में लिखें।

(७) प्रदर्शनी में पहुंचते ही प्रवेशार्थी प्रदर्शनी मन्त्री से कताई स्पर्धा-प्रवेश-पत्र प्राप्त करलें।

इस वर्ष मार्च मास में रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर गुरुकुल के एक कलाकोविद ब्रह्मचारी दिल बांध कर समस्त भारत के सूत्रकलाकुशल महारथियों से टक्कर लेने चर्खा प्रतियोगिता में सम्मिलित हुए। वे यद्यपि चित्रकला, बढ़ईगिरी, कताई-कला आदि अनेक कलाओं में निसर्ग निष्णात हैं फिर भी एक अखिल भारतीय प्रतिस्पर्धा में भाग लेते हुए उनके हृदय में धुकधुकी सी उत्पन्न हो जाती थी। ऐसी मनोदशा में उन्होंने गुरुकुल-संस्था के प्रतिनिधि के रूप में प्रथमबार प्रतियोगिता में भाग लेने का प्रयास किया। उन्होंने उपर्युक्त स्पर्धाओं में से दो अर्थात् २१-४० अंक का सूत और ४० से ऊपर का महीन सूत कातने की प्रतियोगिताओं में भाग लिया। इन में से पहली में तो वे सर्व प्रथम रहे और दूसरी में, सब से बारीक और अधिक सूत कातने पर भी, नियमों का ठीक ज्ञान न होने से और नियत समय में सूत अटेर कर न दे देने से असम्मिलित माने गये। उन का सूत जांच के लिये लिया ही नहीं गया, अन्यथा वे इस में भी प्रथम ही आने वाले थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस के महान् एवं पवित्र अवसर पर इस शानदार विजय के फलस्वरूप गुरुकुल संस्था को चांदी का एक चर्खा बलविजयोपहार के रूप में प्राप्त हुआ और ब्रह्मचारी शान्तिस्वरूप जी को २०) जो चर्खे का वास्तविक मूल्य है पारितोषिक रूप में पुरस्कृत किये गये।

गुरुकुल के विद्यार्थी इससे पूर्व भी अन्तर्विश्वविद्यालय वाद्‌विवाद, दाण्डा-साम्मुख्य और तैरीसाम्मुख्य आदि अनेक विध व्यापक प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहे हैं और सफलता पाते रहे हैं किन्तु इस अखिल भारतीय चर्खा-प्रतियोगिता का क्षेत्र अन्य सब प्रतियोगिताओं से व्यापक एवं विशिष्ट था। पर इस में भी कुल वासियों और विशेषतया गुरुकुल के मान्य आचार्य जी के आशीर्वाद से ब्रह्मचारी ने विजय श्री का सेहरा गुरुकुल के मस्तक पर बांधा। इस अवसर पर हमें दाण्डा-साम्मुख्य की उस सर्व प्रथम विजय का स्मरण आता है जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के आशीर्वाद से मेरठ के एक प्रसिद्ध टूर्नामेंट में नंगे सिर पैर वाले और खादी की सादी वर्दी पहने विद्यार्थियों ने पायी थी।

इस विजय के उपलक्ष्य में लोकमान्य तिलक की पुण्य तिथि १ अगस्त के दिन कुलवासियों की एक सभा बुला कर ब्र० शान्ति स्वरूप जी को उनका उचित स्वागत एवं अभिनन्दन कर के चांदी का चर्खा समर्पित किया गया। और जिस प्रकार एक लकड़ी-लोहे के बने चर्खे पर सूत कातने के बदले उन्हें चांदी का चर्खा मिला था उसी प्रकार श्री आचार्य जी ने २०) के पुरस्कार को भी १०) दाम की सुवर्ण मुद्रा ('अशर्फी') में परिणत कर स्नेह-सम्मान पूर्वक ब्रह्मचारी को भेंट किया।

विजयोत्सव की इस सभा में श्री आचार्य जी ने अपने अन्तिम भाषण में बताया कि ब्र० शान्तिस्वरूप सिर्फ कला की दृष्टि से ही इस विशेष विजय का अधिकारी नहीं बना किन्तु गांधी जी के और खादी के सिद्धान्तों में उसकी हार्दिक श्रद्धा भी इस विजय के अनुरूप चिन्ह हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि ब्रह्मचारी कहता है,"इस इनाम से क्या-मेरी असली इच्छा तो यह है कि गांधी जी के सूत की खादी पर गांधी जी के हाथ का लिखा आशीर्वाद जो मुझे सर्व श्रेष्ठ पारितोषिक लगता है उसे प्राप्त करूं।" श्री आचार्य जी ने ब्रह्मचारी की इच्छा की सराहना की और आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर की कृपा से उस का यह शुभ संकल्प भी पूर्ण होगा और वह इस चान्दी के चर्खे को तथा अन्य पुरस्कारों को एवं गांधी जी के वरद आशीर्वाद को भी प्राप्त कर गुरुकुल माता के मस्तक को उज्ज्वल करेगा और अपनी प्रतिष्ठा कोभी बढ़ायेगा।

इस चर्खे के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण प्रमाणपत्र भी ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप जी को मिलना है और वह है 'विहार की कोकटी खादी पर गांधी जी के हस्ताक्षरों द्वारा विजय-सूचक प्रमाणपत्र।' खेद है कि यत्न करने पर भी यह प्रमाणपत्र विजय-सभा के नियत दिन नहीं पहुँच सका और चर्खा प्रतियोगिता के अन्यतम संयोजक श्री प्रभुदास जी गांधी की अनुमति से १ अगस्त की पुण्यतिथि को बिना प्रमाणपत्र पहुँचे ही विजयोत्सव और पारितोषिक वितरण का कार्यक्रम समारोह के साथ सम्पन्न कर दिया गया। सभा के बाद विजयी बन्धु के यथार्थ स्वागत के लिये १ घण्टे तक तकली तथा चर्खे का दंगल भी किया गया जिस में कताई-कला के माहिर ब्रह्मचारियों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। कुछ समय पश्चात् उपर्युक्त प्रमाणपत्र भी आजाने पर ब्रह्मचारी जी को सम्मान पूर्वक दे दिया जाये गा।

ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप जी ने गुरुकुल के इतिहास में एक पुनीत प्रथा का प्रारम्भ किया है। अपने प्रथम प्रयास में ही अपूर्व सफलता पाकर उन्होंने भविष्य के लिये विजयाशा के संकल्प में प्रबल बल डाल दिया है और कुलवासियों के सामने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। आशा है कि ईश्वर की कृपा से और कुलमाता के वरद हस्त के स्पर्श से आगामी वर्षों में भी हमारे कुलबन्धु इसी प्रकार विजय श्री को प्राप्त करेंगे, तथा महात्मा गांधी जी के हस्त-लिखित आशीर्वाद द्वारा—भारतमाता के हार्दिक आशीर्वाद के द्वारा—गुरुकुल को भारतभूमि का वरद पुत्र उद्‌घोषित करेंगे।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में तिलक-दिवस

पहली अगस्त को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में लोकमान्य तिलक दिवस बड़े समारोह से मनाया गया। श्री स्वामी रामानन्द जी महाराजकी अध्यक्षता में ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों के ओजस्वी भाषण हुए। तदनन्तर विद्यालय बन्द रहा। ब्रह्मचारियों ने उनकी जीवनी पर विशेष रूप से प्रकाश डाला। श्री स्वर्गीय गोखले, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी जी के राजनैतिक मत पर खूब विवेचन हुआ। सभा में समाप्ति तक बड़ा उत्साह था। सारा हाल खचाखच भरा हुआ था।

छात्रवृति की आवश्यकता

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के एक होनहार ब्रह्मचारी के लिये एक छात्रवृति १६) मासिक की आवश्यकता है। बालक ब्रह्मचारी, धर्मात्मा अपनी श्रेणी में उत्तम तथा अच्छा व्याख्याता है। ८ म श्रेणी में पढ़ता है उसके पिता धनाभाव के कारण शुल्क नहीं दे सकते परन्तु उसे पढ़ाना गुरुकुल में ही चाहते हैं। यदि कोई दानी विद्याप्रेमी इस ब्रह्मचारी की पढ़ाई का भार अपनी छात्रवृति देकर उठाना चाहें तो बड़ा उपकार होगा! कम से कम सहायता भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की जायगी।

पता:—पं० सोमदत्त जी आचार्य
गुरुकुल कुरुक्षेत्र,
करनाल।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

श्री दानवीर सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला अचानक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पधारे। आपने उन सब भवनों का सम्यक्तया अवलोकन किया, जो गत वर्ष आपकी आज्ञा से निर्माण किये गये थे। उन भवनों के निर्माण से गुरुकुल का सारा रूप बदल गया है। उनके सम्बन्ध में जो कार्य शेष रह गया था, उनके निर्माण के लिये भी आप आज्ञा दे गये हैं। रजत-जयन्ती महोत्सव पर सारा विद्यालय एक नये रूप में सुन्दर सुव्यवस्थित दिखलाई देगा।

आपने यह भी आज्ञा दी है कि यहां पर वृक्षारोपण-यज्ञ किया जावे, जिसमें यहां के सब कर्मचारी तथा ब्रह्मचारी उस दिन अपने हाथ से वृक्ष लगायें। श्रावणी के दिन उस यज्ञ को करने का विचार है। आप उन वृक्षों के सींचने का व्यय अपनी ओर से देने के लिये आदेश दे गये हैं।

उत्तरीय पार्श्व (wing) में जो शेष मकान रहते है, उनकी ओर भी आपका ध्यान आकर्षित कराया गया है। आशा है आपका उसमें भी सहयोग प्राप्त होगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत जयन्ती-महोत्सव

आर्य जनता को यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि सं० १६७२ में स्व० दानवीर सेठ रघुमल जी के एक लाख रुपये के दान से जिसकी आधार शिला अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने कर कमलों से रखी थी, इस समय वह अपने शैशवकाल को समाप्त कर २५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। आर्यजनता के पूर्ण सहयोग, प्रेम व उत्साह के कारण यह संस्था शनैः २ उन्नति करती हुई इस अवस्था तक पहुँची है। आर्य भाइयों ने इसे विशेष रूप से अपनाया है। अपने कठोर परिश्रम व पसीने से सींचा है तथा इसके विकास में अनेक तरह से सहयोग प्रदान किया है। यह सब कुछ उन्हीं की कृपा का फल है। मुझे आर्य जनता को इस बात की सूचना देते हुए प्रसन्नता है कि इस वर्ष फाल्गुन तदनुसार फरवरी १६४१ के अन्तिम सप्ताह में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत जयन्ती-महोत्सव मनाया जायगा। इस अवसर पर हमें विशेष रूप से इस बात पर विचार करना होगा कि गुरुकुल ने क्या उन्नति व अवनति की। किस तरह यह अपने भावी जीवन को अधिक उन्नतिमय व गतिशील बना सकता है। परन्तु इस समय मैं आर्य जनता का ध्यान विशेष रूप से उस कमी की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूं, जो हम सब अनुभव कर सकते हैं। गत वर्षों में विद्यार्थियों के रहन-सहन व पठन-पाठन के मकानात की कमी को पर्याप्त मात्रा में आर्य जनता ने पूरा कर दिया है। अब से ऊपर का मैदान समतल करके उसमें वृक्ष लगा दिये गये हैं तथा जुगल किशोर जी बिड़ला ने बुर्जियों के अतिरिक्त आश्रम एवं विद्यालय के भवन हिन्दू स्थापत्य-कला के अनुसार परिमार्जित कर दिये गए हैं, तब से यह स्थान भव्य तथा निवास योग्य हो गया है। परन्तु विद्यालय तथा आश्रम के बीच का पार्श्व (wing) जो अभी आधा अधूरा पड़ा है इस सौन्दर्य में रुकावट है। इस हिस्से के पूरा हो जाने से गुरुकुल की बची हुई आवश्यकताएं भी पूर्ण हो सकती हैं। एक विशाल व्याख्यान-भवन (Lecture Room) तथा दो और मकानों के बन जाने से यह पार्श्व (wing) पूरा हो सकता है। इन सब मकानों के लिये केवल दस हजार रुपयों की आवश्यकता है। इनके बन जाने पर गुरुकुल सदा के लिये मकानानात के कष्ट से मुक्त हो जायगा। इसके अतिरिक्त एक और आवश्यकता है, जिसके पूरा हो जाने पर गुरुकुल बहुत कुछ अपनी आय का साधन उपलब्ध कर सकता है। इस समय गुरुकुल में केवल एक कूआं है, जिससे कुलवासियों के खान पान तथा स्नानादि की आवश्यकता कठिनता से पूर्ण होती है। गुरुकुल के पास जो जमीन है, उससे कोई लाभ उठाया नहीं जा सकता। दो-तीन कूओं के खुद जाने से ही यह कमी पूर्ण हो सकती है। उस अवस्था में कृषि व गोशाला के द्वारा गुरुकुल अपनी आय का एक स्थिर साधन प्राप्त कर सकता है। देहली निवासी एक दानी महोदय ने इसके लिये एक हजार रुपये दान देने का वचन दिया है। यदि इसी प्रकार १०-१५ व्यक्ति गुरुकुल की न्यूनताओं को पूर्ण करने में अपना सहयोग दें, तो उनकी कृपा से गुरुकुल की चिरसंगिनी आपत्तियां दूर हो जावें। वे सज्जन अत्यन्त पुण्यभागी होंगे, जो इस शिक्षणालय के कष्ट निवारण में हाथ बटायेंगे। मैं इस अवसर पर सम्पूर्ण आर्य जनता से तथा विशेषतया देहली निवासी भाइयों से प्रेम तथा आग्रह पूर्वक अपील करता हूं कि मेरे इस नम्र निवेदन पर समुचित ध्यान देंगे और पुण्य के भागी होंगे। आपने ही इस गुरुकुल के पौधों को लगाया है, सींचा है, बड़ा किया और आशा है कि आप ही इसे अपने हाथों से पूरा भी करेंगे। रजत-जयन्ती महोत्सव के अतिरिक्त और कौनसा शुभ अवसर हो सकता है जब कि इस पुण्य कार्य की इतिश्री की जावे। इस समय उत्सव के छः मास शेष हैं। इस बीच में यह कार्य बड़ी आसानी से पूरा किया जा सकता है। मेरी यह प्रबल इच्छा है कि उत्सव से पूर्व सब मकानात बन कर तैयार हो जावें, तब यहां की समस्या सर्वथा हल हो जावे, जिससे उत्सव पर आने वाली आर्य जनता इस गुरुकुल को भव्य तथा उन्नत रूप में देख कर अत्यंत प्रसन्न हो तथा हृदय से दानी महोदयों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करें। आशा है कि आर्य जनता मेरे इस नम्र निवेदन पर अवश्य ध्यान देगी और इन आवश्यकताओं को पूर्ण करके अपने कर्तव्य का पालन करेगी।

दो गद्य गीत

(१)

(लेखक की गद्य गीताञ्जलि "मां" से)

स्नेह और दया की अमूल्य भेंटें अपनी भरपूर झोली में लेकर न जाने कब से मां के चरण मेरे आंगन के कोने कोने को पवित्र कर रहे हैं। ग्रीष्म के उत्ताप का सन्तापन जब शुष्क निराशाओं के दुर्दिन की विभावरी लेकर आंखों के सामने आता है तो बकुल के सुवासित, पुष्पहारों से वह भीना भीना सान्त्वन कितना सुखद लगता है। वह झुलसती हुई ज्येष्ठ की रातें पर्वतों की उपत्यका में बिखरी हुई बालुका द्वारा मृग-जल की तृष्णा उत्पन्न करके चित्त को अति व्याकुल करती हैं। ऊपर हिममण्डित शिखरों पर स्निग्ध चन्द्रमा का रस-वर्षण तृष्णा की उस वेला में मृग जल की थकान को अपनी शीतलता से शांत किया करता है। वह कैसा है मां का मोहन जिसने स्नेह और दया के अविरल आंसू असंख्य वेदनाओं का भार वहन करते हुए मां के कपोलों से ढुलक कर जगत् के मस्तक को स्पर्श करते हैं।

(२)

बालक खिलौनों से खेलता है, उनसे प्यार करता है।

यह वह खिलौने हैं जो मां ने बनाये हैं।

खिलौने बालक की जोड़ के हैं चूंकि मां ने बनाये हैं।

मां चाहती थी कि खिलौने बालक जैसे हों ताकि उसे पसन्द हों।

मां ने इसलिये खिलौनों में अपना प्यार रख दिया।

तभी बालक मां के खिलौने के लिये इतना उतावला है।

घर के कोने २ में खिसकता जाता है और मां के बनाये खिलौने ढूंढता है।

किलकारी भरता है; कहीं राम-रावण, कहीं कान्ह-कंस को पाता है।

कहीं सिंह-सियार और हिरण-बहेलिया देखता है। फिर कहीं सुग्गा,मैना, मोर और कौआ उसकी नजर में आता है।

उसे अचरज है और खुशी है।

सब से प्यार भरी आंखों से बात करता है।

मंह से रूसता है फिर भी सब से खेलता है।

सब उसे अपने से लगते हैं।

मां का सर्वोत्तम खिलौना सब खिलौनों से यकसां प्यार करता है।

सबसे खेलता है और खुश होता है।

चूंकि खिलौने मां ने बनाये हैं॥

"द्विरेफ"

गुरुकुल--समाचार

ऋतु बहुत सुहावनी है, सब ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। वर्षा अपने पूरे यौवन पर है।

१ अगस्त को श्री आचार्य अभयदेव जी के सभापतित्व में तिलक जयन्ती मनाई गई। इस सप्ताह श्री महात्मा टेकचन्द जी 'प्रभु-आश्रित' का सुन्दर धर्मोपदेश हुआ।

श्री अभयदेव जी पांडिचेरी चले गये हैं। जिन भाइयों ने आप से वैयक्तिक पत्र व्यवहार करना हो वे पांडिचेरी, अरविन्द आश्रम के पते से ही पत्र व्यवहार करें।

ब्रह्मचारियों की षाण्मासिक परीक्षाएं प्रारम्भ हो गई हैं।

स्वास्थ्य समाचार

धर्मपाल ५ श्रेणी चोट, सुमतकुमार ४ श्रेणी वेदभूषण ४ श्रेणी, देवेन्द्र (अम्बाला) ४ श्रेणी, महेन्द्र ३ श्रेणी, यमनेश २ श्रेणी, राजेन्द्र २ श्रेणी, सूर्यकुमार २ श्रेणी, मलेरियाज्वर। राजबहादुर २ श्रेणी, रघुनाथ २ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ओमप्रकाश १ श्रेणी, व्रण, वीरेन्द्र ३ श्रेणी चोट, भीमसेन ४ श्रेणी अतिसार,

गतसप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ समाचार

ऋतु उत्तम है। पिछले वार्षिकोत्सव पर—१७ जून को नवीन प्रविष्ट हुये ६ ब्रह्मचारियों का उपनयन तथा वेदारम्भ संस्कार हुआ। नवम कक्षा के ब्र० वेदानन्द ने प्राचीन भारत विषय पर व्याख्यान दिया। तदनन्तर श्री मूलचन्द्र जी अग्रवाल के सभापतित्व में 'वीर कुमार सम्मेलन' हुआ जिस में चित्तौड़गढ़ तथा इन्दौर आदि के हिन्दू मुसलमान वीर कुमारों ने भाग लिया। अन्त में श्री पन्नालाल जी 'पीयूष' के मनोहर भजन तथा मुख्याधिष्ठाता जी के द्वारा धन्यवाद एवं शान्ति पाठ के पश्चात निर्विघ्न कार्यवाही समाप्त हुई।

व्रतानन्द—

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल चित्तौड़गढ़ (मेवाड़)

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १ भाद्रपद १९९७; १६ अगस्त १९४० [संख्या १८

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी; अनुवादक—श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

(६)

ब्रह्मचारीगण

"गुरुकुल संस्था की स्थापना एक ऐसे अक्षय कीर्ति स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के हाथों से हुई है जिसने अपने बलिदान, परिश्रम और श्रद्धा से हमारे बीच में आर्य-शिक्षा की उस प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित करने में सफलता प्राप्त की है– जिसका उद्देश्य ब्रह्मचर्य के कठोरतम शासन में रहकर सच्चे मनुष्यत्व की उन्नति करना है और मानवीय आत्मा की वैयक्तिक और राष्ट्रीय जीवन को शक्तियों को विकसित करना है। हमारे वर्तमान पीढ़ी तथा भविष्य में आने वाली पीढ़ियों का पथप्रदर्शक होने का सौभाग्य गुरुकुल को प्राप्त है।"

"मुझे बड़ा खेद है कि मौलिक विचार शीलता और अन्वेषण के क्षेत्र में भी भारतीय मस्तिष्कों ने सन्तोष-जनक परिणाम उत्पन्न नहीं किए हैं। यदि हम अपने प्राचीन यश को प्राप्त करना चाहते हैं और अपने आपको एक जीवित, जागृत और उन्नतिशील राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो आर्यों को प्राचीनतम साहित्य वेदों के पठन पाठन का गम्भीर और संघटित प्रयत्न करना चाहिए और पाश्चात्य सभ्यता की अच्छाइयों को ग्रहण करने के साथ साथ वैदिक संस्कृति की विशेषताओं को अपने जीवन का अङ्ग बना लेना चाहिए। इसके लिए हमें गुरुओं के चरणों में ब्रह्मचारी बनकर उपस्थित होना चाहिए और धैर्य तथा परिश्रम से पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। वेद मंत्रों का ज्ञान अस्थिर अध्ययन से कभी नहीं हो सकता। वेदों का जानना स्वयं ब्रह्म का साक्षात्कार करना है।"

—डा. अविनाशचन्द्र, एम. ए.

"मैं यह नहीं मानता कि प्राचीन भाषा संस्कृत की पढ़ाई से समय और शक्ति बरबाद होती है। इससे आधुनिक भाषाओं की पढ़ाई में मदद मिलती है। हर राष्ट्रवादी को संस्कृत पढ़ना चाहिए। हिन्दू भाइयों को यदि अपने धर्म की भावना हृदयंगम करनी है तो प्रत्येक लड़के या लड़की को संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान अवश्य प्राप्त कराना चाहिए।"

—महात्मा गांधी

इन उद्गारों से स्पष्ट है कि समस्त गुरुकुल प्रणाली के आत्मा रूप ब्रह्मचारी हैं, इन्हीं पर सारी इमारत चिनी जाती है। आधुनिक शिक्षणालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में महान् भेद है। विद्यार्थी का उद्देश्य अर्थ-कारी विद्या प्राप्त करना है लेकिन ब्रह्मचारी का आदर्श ब्रह्म विद्या है। इस बातको ख्याल में रखते हुए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर गौर करना चाहिए। जिस वक्त गुरुकुल से ब्रह्मचारी स्नातक बनकर बाहर नहीं निकले थे उस वक्त जो सुन्दर कल्पनाएं और भावनाएं लोगों ने बनाई थीं वे कितने अंश तक मूर्त-रूप में परिणत हुई हैं, यह हम आसानी से देख सकते हैं। बालक-सृजन मां-बाप द्वारा होता है। इस सृजन में माँ बाप ने कौन सी भूलें की हैं इन्हें हम बालक के विकास को देख करके मालूम कर सकते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मचारी के विकास में समाज, प्रणाली, अध्यापक, आचार्य अथवा राष्ट्र द्वारा जो भूलें हुई हों उन्हें जानने के लिए ब्रह्मचारी में विद्यमान् भूलों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। माता पिता बालक की त्रुटियों को देखते हैं इसमें यह हेतु होता है कि वे चाहते हैं कि उनकी अपनी त्रुटियां बालक में से निकल जाएं और ये वंश परम्परा में संक्रान्त न होने पाएं। इसमें बालक को नीचा दिखाने का कोई हेतु बिल्कुल नहीं होता। इस प्रकरण में परिपक्व ब्रह्मचारी के गुण दोषों का विवेचन मैं तटस्थभाव से तथा शुद्ध बुद्धि से अपनी समझ के अनुसार करूंगा।

(१) आराम तलबी

आधुनिक शिक्षणालयों से जो ग्रेजुएट निकलते हैं उनमें आराम तलबी का होना स्वाभाविक है परन्तु [illegible]

और स्नातिकाओं में आराम तलबी नहीं होनी चाहिए। जिन्होंने विद्यार्थी अवस्था में शारीरिक कठोर व्रतों का पालन किया हो उसमें ऐसी आदत नहीं होनी चाहिए। जिस संस्था की स्थापना का उद्देश्य ब्रह्मचर्य के अनुशासन में रहकर मनुष्यत्व का विकास करना है ऐसे गुरुकुल के स्नातकों में आराम की ओर प्रीति होना अस्वाभाविक है। इस अवस्था में अगर ऐसी प्रवृत्ति स्नातकों में नजर आती हो तो उसके कारणों की खोज करना आवश्यक है। १–या तो चौदह वर्ष तक जिस नियम पालन के शासन में से वे गुजरे हैं वह शासन अस्वाभाविक और अनुचित होना चाहिए। २–आघात प्रत्याघात के सिद्धान्त के अनुसार अस्वाभाविक संयम की यह प्रतिक्रिया होनी चाहिए। ३–शायद यह आचार्य और अध्यापकों की आराम पसन्द जिन्दगी का परिणाम है। ४–या बाहरी समाज का असर हो। ५– मां बापों की कमी का नतीजा हो। ६– अथवा गुरुकुल प्रणाली में ही सम्भवतः कोई गम्भीर त्रुटि हो।

इस प्रकार के कारणों की कल्पना की जा सकती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि स्नातकों में कॉलिजियनों जितनी आराम और मौज बहार की ओर प्रवृत्ति नहीं होती, यह ठीक है। लेकिन प्रमाद वश कभी कभी उनमें भी यह वृत्ति जागृत हो जाती है। अगर ऐसे अवसर पर समाज तथा माता पिता स्नातक को ठीक दिशा में प्रेरित कर सकें तो यह प्रमाद दूर होकर स्नातक लोग जगत् में बहुत आगे बढ़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त क्योंकि ब्रह्मचारी को गुरुकुल में विद्याभ्यास के अतिरिक्त और किसी प्रकार का परिश्रम विशेष रूप से नहीं करना पड़ता इसलिए भी आराम तलबी की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है। पहनने के वस्त्र तय्यार मिलें, भोजन के समय घण्टी बजने पर थालियों में तय्यार भोजन मिले इसी प्रकार अन्य साधन भी यथावसर बड़ी आसानी से मिल जाते हैं। इस हालत में खाली मानसिक श्रम करने वाले विद्यार्थी को इस बात की खबर ही नहीं पड़ती कि ये श्रम-साध्य वस्तुएं उसे किस रीति से और किस किस के प्रयत्न से मिली हैं। जिस ब्रह्मचारी के सामने पढ़ने में दत्तचित्त रहने के सिवाय और कोई श्रम का कार्य नहीं है अगर उसे बाद के जीवन में अन्यक्षेत्रों में आराम की अभिलाषा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि स्नातकों में जो आराम-तलबी मौजूद है वह चौदह चौदह वर्ष तक अखण्ड रूप से निश्चिन्त होकर विद्याभ्यास करते हुए दुनिया की कशमकश से दूर रह कर एकान्त सेवन के कारण होती है। इसके उपाय के लिए मैं निम्न बातें विचारार्थ प्रस्तुत करता हूं।—

(१) पहली से पांचवीं श्रेणी तक के ब्रह्मचारियों को कटोरी थाली आदि भोजन के बरतन स्वयं मांजने चाहिएं और कमरे स्वयं साफ करने चाहिएं, कपड़े फट गए हों तो उनकी मरम्मत करनी आनी चाहिए। कुरता धोती साबुन से धोकर और नील लगा कर व्यवस्था में रखना चाहिए। ये काम यदि रोज रोज न करवाए जा सकें तो कम से कम सप्ताह दो सप्ताह में जरूर करवाए जाने चाहिएं। जिससे कि इन कामों को करने की आदत पैदा हो सके।

(२) छठी से दसवीं श्रेणी तक के ब्रह्मचारियों को शाक काटना और बनाना, दूध दुहना, कपड़ा काटकर कुरते आदि बनाना, कपड़ों पर इस्त्री करना, छोटी आयु के ब्रह्मचारियों को शारीरिक श्रम में सहायता देना—ये सब काम सिखाने की जरूरत है।

(३) महाविद्यालय विभाग में शारीरिक श्रम का स्थान इससे भी ऊंचा होना चाहिए।

(४) सूत कातना–(गुरुकुल कांगड़ी में यह आरम्भ कर दिया गया है) मौन होकर यदि मिलकर ब्रह्मचारी सूत कातें तो उसमें एकाग्रता, मन का समतोलन और चित्त की शांति आदि गुण विकसित हो सकते हैं, और आध्यात्मिक साधना भी सूत्र यज्ञ के द्वारा हो सकती है।

(५) इसके अतिरिक्त और जो उद्योग तथा दस्तकारियां गुरुकुल के पाठ्यक्रम के अनुकूल हो उन्हें स्थान देना चाहिए। उदाहरणार्थ-जिल्दसाजी, बांस की टोकरियां आदि बनाना, बढ़ई, राज, कुम्हार, लुहार आदि के धन्धों का प्राथमिकज्ञान, दही बना कर मक्खन निकालना प्रेस का कम्पोजिंग आदि। ये सब बातें लिखते हुए गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को पढ़ाई के लिए जो समय देना पड़ता है वह मेरे ध्यान में है। गुरुकुल के पाठ्यक्रम में बाहर के शिक्षणालयों की अपेक्षा संस्कृत, आर्यसिद्धान्त आदि कई विषय ज्यादा हैं और इनके अध्ययन के महत्व को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता, किन्तु परीक्षा पद्धति में उचित परिवर्तन करने से तथा उत्साही शिक्षकों के सहयोग से शारीरिक श्रम का कार्य भी पाठक्रम का एक आवश्यक अङ्ग बन सकता है। उक्त उद्योगों को इतना ही हद तक करना पर्याप्त है जिससे कि उसका आरम्भिक ज्ञान हो सके। उन कार्यों को करने की अभिरुचि उत्पन्न हो और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुएं इतने अधिक श्रम से प्राप्त होती हैं इस बात का भान ब्रह्मचारियों को हो सके। अगर ब्रह्मचारी अपने फटे कपड़े की मरम्मत के लिए दरजी की प्रतीक्षा करे तो उसकी ऊंची शिक्षा किस काम की? वास्तविक शिक्षा किताबों में नहीं है। शिक्षण की परिणति शारीरिक श्रम में होती है। महात्मा गांधी जी ने एक ग्रेजुएट को सलाह देते हुए कहा था कि अगर तुम्हें मेरे पास रहना है तो जो कुछ सीखा है वह सब भूल जाओ और सारा दिन कातने का कार्य शुरू करो। यह सलाह कई लोगों को उपहासास्पद लगेगी, परन्तु जैसे प्राचीन काल में गुरु ब्रह्म विद्या के जिज्ञासुओं को गाय चराना, भिक्षा मांगना, ईंधन लाना तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य सौंप कर इस बात की परीक्षा करते थे कि जिज्ञासु की शारीरिक श्रम की ओर किस प्रकार की प्रवृत्ति है? इसी प्रकार गांधी जी के भी इस सलाह में गम्भीर सत्य विधमान है। वर्तमान आरामतलबी को दूर करने के लिये गुरुकुल की शिक्षा में कातने के अतिरिक्त अन्य उद्योगों की तरफ भी रुचि जागृत हो सके ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

सतपुड़ा-शैल-शिखर पर

[ले० श्री 'चक्र-चरण']

'चक्र-चरण' को भला चैन कहां ! चपल-चंचल चित्त, सुरत चाल और चारों ओर के चक्कर का चस्का !

तो, चल-चल करते-करते एक दिन चल ही दिये-दक्षिण की ओर, क्योंकि सूचि में एक एक करके उत्तर-भारत के सब पर्वत-प्रदेशों (हिल-स्टेशन) के नाम के आगे 'राइट' का निशान लग चुका था।

× × ×

"क्यों भाई ! सामने आसमान में यह काले काले बदलों की सेना दीखती है न ! उसके पास ही, ठीक मुकाबले में, यह दूसरा और कौनसा कृष्णकाय भयङ्कर दैत्य उपेक्षा-भाव से लम्बा ताने मस्त पड़ा है ? देखो तो—कितना विशाल ....!"

"हां, यह सतपुड़ा शैल की शृंखला है।"

बरार—जिसको विदर्भ कहना चाहिये—में एक छोटा सा क़स्बा है। नाम है एलिचपुर। मैंने कहा—छोटा सा, किन्तु छोटा सा तो वह अब है। उसे देखना तो तब था, उन मुगलों के जमाने में-जब यह सारे बरार की राजधानी था, जिन तलवारों की चमक से बिजली चल खा कर शरमाती छिपती थी, उनकी उस चमक को म्यानमें छिपाये निर्द्वन्द्व घूमने वाले असंख्य सिपाहियों की सेना की यह छावनी थी, और अपने राजसी ठाठ की बदौलत एक दूसरी अमरावती थी। अब क्या है ! अब तो खण्डहर खड़े हैं-चुपचाप, उस सर्वभासी काल की कहानी की ओर निर्देश करते हुए, जिसको कोई सुने या न सुने किन्तु जो आदि काल से एक रस और एक रूप में कही जाती रही है। इस लिये अब तो एक यह छोटा-सा कस्बा ही है।

उसी एलिचपुरमें आकर जब देखा किहम सतपुड़ाशैल के इतने पास खड़े है कि हमारे और उसके बीच में मील नाम के परिमाण की तीस बार से अधिक आवृत्ति नहीं होती, और मोटर केवल तीन घण्टे के अन्दर शिखर के ऊपर पहुंचा देती है, तो प्रलोभन रोकना मुश्किल हो गया। उसे अभागा ही समझना चाहिये जो इतना निकट आकर भी अपने आपको इस दृश्य से वञ्चित रखे !

लोगों ने समझाया—"आजकल 'सीजन' (ऋतु) नहीं है-जुलाईका मध्य वहांका मौसम नहींहै। 'सीजन'तो जून समाप्त होने से पहले ही समाप्त हो जाता है। उस समय तो बरारके सब अंग्रेज अफसर, बड़े बड़े अमीर श्रीमन्त और शौकीन सैलानी लोग शैल के शिखर पर आकर मैदान की गर्मी से गर्म हुए अपने दिल और दिमाग को शीतल करते हैं-खूब रौनक रहती है। पर आज कल तो वहां कुछ भी नहीं होगा-बड़े बड़े आलीशान बङ्गले और टेनिस के ग्राउण्ड खाली पड़े होंगे। खूब वर्षा, और सर्दी, चारों ओर सुनसान—न तो रङ्ग बिरङ्गे फूल और न मधुलोभी भ्रमर। न कोई चहल पहल। आजकल जाने का कोई फायदा नहीं।"

पर जिनका उद्देश्य केवल प्राकृतिक दृश्यों की छवि निहारना है, उनके लिये तो आदमियों की रौनक और चहल पहल अन्यथा सिद्ध है। 'सीजन' वर्षा और सर्दी की दलील भी उनके लिये अकिञ्चितकर है।

इस लिये अगले दिन सवेरे १० बजे की डाक वाली मोटर से एक सीट रिज़र्व करा ही ली गई, आखिर !

× × ×

चार मील मैदान की सीधी और सम सड़क पर दौड़ने के बाद, सड़क के एक ओर किनारे पर बोर्ड टंगा है—'अब चढ़ाई शुरू होती है' और फिर लगातार चढ़ाई ही चढ़ाई।

१० मील के बाद आता है नाका-रेहाली—दो तीन झोंपड़े पड़े हैं-वन-विभाग का अफसर रहता है। २० मील पर आता है घटांग—छोटा-सा गांव, मज़दूर सड़क की मरम्मत कर रहे हैं। फिर २५ मील पर आता है सिलोना—पहाड़ की चोटी पर हरा-भरा खुला मैदान, छोटी बस्ती-स्कूल में छोटे छोटे बच्चे गिनती और पहाड़े याद कर रहे हैं। और फिर तीसवां मील पार करते न करते आ गया चिखलदा—सतपुड़ा-शैल का सर्वोच्च शिखर, बरार का गर्मियों का विहार-पर्वत।

मार्ग का वर्णन ? उसके लिये तो चाहिये कविता, चाहिये कला और सौन्दर्य पारखी मन, और चाहिये प्रकृति के अन्तस्थल में प्रवेश करके गूढ़ तत्त्व की भेदक दृष्टि। सो मैं कहां से लाऊं ? हां, मैंने तो यह देखा कि उस दिन प्रकृति-परी नख-शिख रूप-रूप से भरी हरित परिधान पहने खड़ी थी। नीचे हरी-हरी घास का मखमली कालीन, हरित-पल्लवा लताएं परिचारिकाएं, हरित-पादपों की हरित-शाखाएं आन्दोलित होते हुए चंवर, हरित ही रङ्गमञ्च, हरित ही नेपथ्य-और बीच में हरित-वसना प्रकृति-परी का नृत्य ! हरीतिमा के अतिरिक्त अन्य सब अवाञ्छनीय ! क्यों, पक्षपात क्यों ? हरिदालोक नयन-सुखकारी—यह तो विज्ञान-सम्मत !.........और फिर कल-कल छल-छल करके बहती हुई स्रोतस्विनी, झर-झर करके झरता हुआ निर्झर, कठोर चट्टानों से टकरा कर उन्मत्त पवन में उनके इठलाते हुए रजतोज्ज्वल सलिल-सीकर—हैं ! सलिल-सीकर कहां—ये तो उस प्रकृति-परीके कर्ण-फूल ! और फिर स्थान-स्थान पर विशाल सरोवर, उनमें नील-गगन की प्रतिच्छाया-सा अगम्य नील—शुभ्र स्वच्छ जल—है ! शुभ्र स्वच्छ जल कहां—ये तो उस प्रकृति परी के अवलोकनार्थ स्वच्छ मुकुर !......अरे ! यह तो प्रकृति-परी का एकान्त प्रसाधन-प्रासाद है। इस निभृत शृङ्गार—सदन के दिव्यालोक में कोई पाप-तापमय वसुधा का वासी पार्थिव प्राणी कहां से ? कैसे ?

और यही सोच कर उधर से दृष्टि हटा ली। उसे अपने में ही सीमित कर लिया। तब रह गई केवल सड़क और मोटर......मोटर और सड़क—लगातार बल खाती हुई सड़क और लगातार ऊपर चढ़ती हुई मोटर......

अरे ! यह सड़क-सर्पिणी तो लगातार बल खाती हुई तुड़ती-मुड़ती अपनी कमर लचकाती ही चली

(शेष पृ० ६ पर)

गु रु कु ल

१ भाद्रपद शुक्रवार १९८७

जिज्ञासुओं की कुछ सेवा
पूर्ण अहिंसक बनने का प्रयत्न

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी)

अपने जीवन को उन्नत करना चाहने वाले, देहली की एक आर्यसमाज के एक पदाधिकारी "वैदिक उपदेश-माला" के बारह उपदेशों के लिये मेरा धन्यवाद करने और कृतज्ञता प्रकट करने के पश्चात् अपने एक पत्र में 'अहिंसा' के विषय में निम्न प्रकार से जिज्ञासा करते हैं—

"आपने लिखा है कि जो हम से द्वेष करता है, हम उसको कभी कष्ट न दें, वह सर्वशक्तिमान् प्रभु हिंसा आदि पाप करने वाले को स्वयं ठीक कर रहा है। हमें उस पर विश्वास रखना चाहिये। यह सब बात मुझे ठीक लगती है। परन्तु कई विद्वान् कहते हैं कि आत्म-रक्षा, समाज रक्षा, तथा राष्ट्र की रक्षा के लिये शत्रु को, हिंसा करने वाले को दण्ड देने में हिंसा नहीं होती, क्योंकि भगवान् भी उस की सहायता करते हैं, जो अपनी रक्षा स्वयमेव करता है। और दुराचारी तथा अधर्मी लोगों को उन के सुधार के लिये—यह तो आवश्यक है ही कि उस समय भी सुधार की भावना होनी चाहिये और दिल में द्वेष नहीं होना चाहिये—दण्ड देना ही उचित है। 'रामायण' और 'महाभारत' का सारांश एक तरह से यही है कि वहां दुष्टों को दण्ड दिया गया है। यही उपदेश भगवान् 'श्रीकृष्ण' ने 'अर्जुन' को दिया और अर्जुन ने अपने गुरु, आचार्य, पितरों तथा बन्धुओं को जो कि अधर्म पर थे, मारना स्वीकार किया।"

"वेद में भी हम बहुत से ऐसे मन्त्र देखते हैं, जिन द्वारा दुष्ट, हिंसक लोगों को दण्ड देना कहा गया है। जैसे:—

"यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।
अ० । १ । १६ । ४ ।

(यदि हमारी गौ की हिंसा करेगा और यदि हमारे अश्व और हमारे मनुष्य की हिंसा करेगा तो तुझ को सीसे से हम बेध देते हैं। जिस से हमारे में अवीरों (दुर्बलों) का नाश करने वाला कोई न हो।)

"ऐसी अवस्था में इस तरह मारना क्या हिंसा है? पाप है? इस सम्बन्ध में आपके विचार जानना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि आप मेरे भाव को भली प्रकार समझ कर मुझे उत्तम उपदेश देने की कृपा करेंगे।"

यह ठीक है कि सच्चे अर्थों में अहिंसक वही हो सकता है जो परमेश्वर में जीवित श्रद्धा रखता है, जो आस्तिक है। 'उदगादयमादित्यः' इस वेद मन्त्र का यही मुख्य आशय है। गांधी जी आज कल जिसे बलवान् की अहिंसा कहते हैं (यही वास्तविक अहिंसा है अर्थात् भौतिक बल के होते हुए भी या उसे हीन समझ कर उस का उपयोग न करना। आत्म बल या परमेश्वर के अपार बल से अपने को बली अनुभव करते हुये दूसरों पर सहज दया करना) उसे वही मनुष्य धारण कर सकता है जिसने इस वेद मन्त्र में वर्णित अनुभूति को कुछ न कुछ प्राप्त किया है, जो यह देखता है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् इस सब जगत् में सर्वत्र और सब काल में सूर्य के समान प्रकट रूप में उदय हुए हुए हैं अतएव उसे कहीं किसी से भय नहीं होता। वह सब मनुष्यों में, वस्तुओं में अपने भगवान् को देखता है। 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' उपनिषद् में यह ठीक ही कहा है। इस तरह एकत्व अनुभव करने वाला पुरुष स्वयं तो किसी से द्वेष करता ही नहीं, कर ही नहीं सकता। पर यह ठीक है कि यदि कोई दूसरा अज्ञान वश उस से द्वेष करता है तो वह उस अहिंसक पुरुष से द्वेष करता है इतना नहीं किन्तु असल में यह कहना चाहिये कि वह भगवान् से भी द्वेष करता है। आज कल के शब्दों में कहें तो वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है और प्रतिक्रिया के रूप में दुःख, कष्ट और विनाश को निमन्त्रित करता है। ऐसे व्यक्ति पर ऐसे परमात्म परायण अहिंसा वादी को तो करुणा ही आती है, द्वेष और क्रोध (जो हिंसा के उत्पादक हैं) की तो वहां कोई बात ही नहीं। वह तो यह चाहेगा कि मुझे कष्ट पहुँच कर या मेरा शरीर पात होकर भी (क्योंकि शरीर तो मेरे आत्मा का बाह्य रूप ही है) यदि उस बेचारे का अज्ञान दूर किया जा सके तो यह सर्वथा उचित ही है। कष्ट और मृत्यु ऐसे उच्च वीर पुरुष के लिये आनन्द देने वाली वस्तु होती है, दुःख देने वाली नहीं। हिंसक, अतएव कायर पुरुष अपने लिये कष्ट और मृत्यु के आने से घबराते हैं, क्यों कि वे अज्ञानी होते हैं, शरीर के सिवाय और किसी आत्मा को नहीं पहिचानते अतः वे दूसरों को कष्ट और मृत्यु पहुंचाने में संकोच नहीं करते। जो हिंसक होते हुवे भी वीर होते हैं वे जहां दूसरे को कष्ट और मृत्यु पहुंचाते हैं वहां अपने को भी इसके खतरे में डालते हैं। अपने आपको ख़तरे में डालने में ही उनकी वीरता है। पर जो असली वीर अर्थात् अहिंसक होने के कारण वीर होते हैं वे दूसरे के भले के लिये केवल अपने आपको ही कष्ट पहुंचाते हैं, अपने बाह्य रूप को कष्ट होने देते हैं जो कि उन के अन्दर की आत्मा के लिये आनन्ददायक होता है। इस लिये जो अपने आपको जानने के कारण मरने से नहीं डरते, भौतिक, नश्वर वस्तुओं में आस्था नहीं रखते, अपने आत्मा की अमरता को अनुभव करते हैं, वही सच्चे अहिंसक हो सकते हैं। और ऐसे लोग हिंसा कभी करेंगे ही नहीं। उन्हें हिंसा करने की आवश्यकता ही नहीं हो सकती। पर जिन्होंने ऐसा अनुभव नहीं पाया है फिर भी जो उस तरफ़ जाना चाहते हैं और जा रहे हैं वे आंशिक वीरता के कारण उतनी अहिंसा करेंगे और शेष अशक्ति के कारण हिंसा भी। पर जो

कायर हैं, जिन में आत्मा का प्रकाश कुछ भी नहीं है वे बिचारे हिंसा का ही आश्रय लेंगे, जो देखने में अहिंसा करेंगे वह भी भय आदि के कारण करेंगे, वह झूठी अहिंसा होगी।

तो आत्मा का गुण तो अहिंसा ही है। और धर्म वह है जो कि हमें आत्मा की तरफ ले जावे। इस लिये हिंसा धर्म तो किसी अवस्था में और कभी भी नहीं है, धर्म बल्कि परम धर्म तो अहिंसा ही है। पर हमने इस हिंसामय जगत् से अहिंसामय परमेश्वर की तरफ जाना है, इस लिये बीच में अपनी अशक्ति के कारण हम बहुत सी अहिंसाओं को अपरिहार्य बुराई के तौर पर स्वीकार कर लेते हैं। पर यह बुराई है, इसे छोड़ना है, यह मानते और जानते हुए किसी हिंसा को सह लेना और बात है और किसी समय में हिंसा करनी ही चाहिये, हिंसा धर्म है यह मानना दूसरी बात है। परमेश्वर की तरफ जाने वाला आदमी हिंसा को कभी धर्म नहीं मानेगा, यद्यपि बहुत सी अपरिहार्य हिंसाओं का करना वह दुःख के साथ स्वीकार करेगा। इस लिये शत्रु को भी मारने में हिंसा तो है ही, चाहे वह कायरता से अच्छी हो और किसी की अवस्था में अपरिहार्य कही जा सकती हो।

"भगवान् उसी की सहायता करते हैं जो अपनी रक्षा आप करता है।" जहां यह ठीक है वहां यह भी ठीक है कि "निर्बल के बल राम"। अर्थात् मनुष्य जब अपनी तरफ से बिलकुल हार मान लेता है, अपने आप को पूरी तरह परमेश्वर के अर्पित कर देता है, निःशेष भाव से उस के आगे झुक जाता है तभी ईश्वरीय सहायता मिलती है। पहला वचन तामसिक अवस्था में पड़े लोगों के लिये है जो यह चाहते हैं कि उन्हें कुछ भी करना न पड़े, पर उन्हें यों ही ईश्वरीय सहायता मिल जाय। दूसरा वचन उन राजसिक लोगों के लिये है जो अपने अहंकार में अपने क्षुद्र मानुषी या भौतिक बल को ही सब कुछ समझते हैं।

हिंसा और अहिंसा के विषय में दो बातों की तरफ ध्यान रखना जरूरी है। पहिली यह कि हिंसा से अहिंसा की तरफ जाते हुए जब तक कि हम पूर्ण पुरुष नहीं हो गये हैं तब तक हमें बहुत सी हिंसायें विवश होकर स्वीकार करनी पड़ेंगी। वह अहिंसा के लिये हिंसा होती है। आपने जो गोघातक को मारने का आदेश करने वाला वेदमन्त्र उद्धृत किया है वह वैसी ही हिंसा है। गौ का, निर्बल का घात नहीं होना चाहिये यह अहिंसा की मांग है। इस लिये उस अहिंसा के लिये विवश होकर ऐसा करने वाले की हिंसा करने का विधान किया है, पर यह विवश होकर के ही है। यदि 'अघोरहा' दुर्बलों को सताने वाले आदमी का सुधार बिना उसे मारे हो सके तो उसे मारना उतनी ही हिंसा या पाप होगा जितना कि गौ के मारने में। सो ऐसे सब वचन अपरिहार्य हिंसा के क्षेत्र में आते हैं। पर ज्यों ज्यों मनुष्य जाति उन्नत होवेगी, परमेश्वर की तरफ पहुँचती हुई अग्रसर होगी त्यों त्यों वह क्षेत्र कम होता जायगा। मनुष्य आन्तरिक शक्ति से इतना बलवान होता जायगा कि उस के लिये अहिंसा आसान होती जायगी।

इसी तरह आपने जो रामायण, महाभारत और गीता की बात कही है वह भी उस समय की अपरिहार्य हिंसा की अवस्था का सूचन करती है। पर वह सब अहिंसा के लिये थी यह सदा याद रखिये। रामायण में आप यह तो देखते हैं कि राम ने तीर कमान से या उस समय के अन्य हथियारों से रावण को मारा, पर आपकी इस बात की तरफ भी दृष्टि जानी चाहिये कि जब रामचन्द्र ने रावण के धनुष, बाण, रथ, घोड़े आदि को नष्ट कर उसे निरस्त्र कर दिया उस समय राम ने उस पर वार नहीं किया और कहा कि अपने नये हथियार और रथ लाओ तब लड़ेंगे। यह इसी लिये क्योंकि हिंसा धर्म नहीं है। एवं लङ्का को जीत कर उन्हों ने उसे अपने साम्राज्य में नहीं मिला लिया किन्तु वहीं के एक उत्तम पुरुष को वहां का राज्य दे दिया। रामायण का तत्त्व तो यह भी बताया गया है कि युद्ध में जितने राक्षस मारे गये वे सब सद्गति को प्राप्त हुए। पर इसकी चर्चा करना अधिक गहराई में उतरना होगा। इसी तरह महाभारत में हम यह तो देखते हैं कि कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई हुई और श्री कृष्ण ने लड़ाई से विमुख हुए अर्जुन को भी लड़ने और शत्रुओं को मारने के लिये तैयार कर दिया, पर यह नहीं देखते कि श्री कृष्ण ने स्वयं हथियारों को न उठाने की प्रतिज्ञा ली हुई थी। इतना ही नहीं, किन्तु जब उनके पास सहायता मांगने के लिये कौरव और पाण्डव दोनों पहुंचे तो श्री कृष्ण ने उनके सामने एक तरफ अकेले बिना हथियार के अपने आपको तथा दूसरी तरफ अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सशस्त्र यादवों की सेना, इन दोनों में से एक का चुनाव कर लेने को कहा तो धार्मिक पक्ष अर्थात् पांडवों ने सशस्त्र सेना को छोड़ कर निःशस्त्र अकेले श्रीकृष्ण को चुना था। इस लिये केवल 'हिंसा हो रही है' इतने से हमें भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। जब तक हम दुनियां में हैं और दुनिया के हैं तब तक हिंसा से बिलकुल बचे नहीं रह सकते हैं। परन्तु सब बात इसमें है कि हमारा मुंह किस ओर है। जो आदमी शहर से ऊब कर बाहर निकलना चाहता है और निकल रहा है वह भी तब तक शहर में ही है ऐसा कहा जायगा, जब तक कि वह बिलकुल बाहर नहीं पहुंच जाता। और जो बाहर से शहर की तरफ आकृष्ट होकर शहर में आया है वह भी शहर में ही है। भेद इतना है कि पहले का मुंह शहर से बाहर जाने की ओर है और दूसरे का मुंह शहर के भीतर जाने की ओर है। इसी तरह एक समान दीखने वाली हिंसा करते हुए भी इन दोनों में आकाश—पाताल का फर्क है कि जो अहिंसा को परम धर्म मानता हुआ हिंसा से अहिंसा की ओर जा रहा है और जो हिंसा को धर्म मानता हुआ अहिंसा को छोड़ हिंसा की तरफ अग्रसर हो रहा है।

दूसरी बात जिस पर ध्यान रखने की जरूरत है वह यह है कि हिंसा या अहिंसा बाहरी कर्म से नहीं जानी जा सकतीं। ये कर्ता के अभिप्राय, उसके आंतर भाव पर आश्रित हैं। जो कार्य हम प्रेम से दूसरे का लाभ करने

के इरादे से करते हैं उससे यदि दूसरे को कुछ कष्ट भी पहुंचता है तो भी वह हिंसा नहीं है। इस के विपरीत यदि दूसरे को कष्ट पहुंचाने के इरादे से जो काम किया जाता है उससे यदि दूसरे को कष्ट पहुंचने की जगह, लाभ पहुंचाता है, तो भी वह 'हिंसा' ही है। इस लिये दिल में जरा भी द्वेष न रखते हुए हितकामना से जो माता-पिता, गुरु, स्वामी, सेनापति आदि, अपने पुत्रों, शिष्यों, सेवकों और सैनिकों को कठोर नियन्त्रण में रखते हैं; तपस्या कराते हैं तो वह हिंसा नहीं। बालक, शिष्य, सेवक और सैनिक भी यह जानते होते हैं कि यह सब कष्ट-सहन उनके हित के लिये है, इसी लिये वे उनकी अध्यक्षता या निगरानी में रहना पसन्द करते हैं। इसके विपरीत दूसरे का नाश करने के लिये यदि उसे ऊपर से सुख पहुंचाया जाता है, अथवा दूसरे को द्वेष-वश पीड़ा पहुचाने का यत्न किया जाता है, पर किसी कारण वह यत्न उसके सुख का कारण हो जाता है, तो भी ऐसा यत्न करने वाले को 'हिंसा' का पाप लगता है।

इन दो बातों को हम यदि अच्छी तरह स्पष्टतया समझ लें तो हिंसा अहिंसा संबन्धी बहुत सी निरर्थक उलझनों में पड़ने से हम बचे रहें।

(पृ० ३ का शेष)

आयेगी! किन्तु बिचारी मोटर :—यह-ठहरी 'लद्दू', इतने कचक कहां से आवे! कहीं उसके साथ बस जान जाने बिचारी मोटर की कमर टूट ही न जावे !!

× × ×

लगातार मूसलाधार वर्षा—यदि न रुकती? यहां आना क्या व्यर्थ होता? तब तो फिर लोगों की 'साजन' वाली युक्ति सत्य होती!

आखिर दो घण्टे बाद वह धारासार—झड़पात कम हुआ तो अपना छाता उठा कर चल—बादलों के बीच में होते हुए एक ओर को निकल गये। यह जो सामने तालाब नजर आता है इसका नाम है—कालापानी। इसके चारों ओर की टकरिया पर गाफ़ (golf) खेलने के लिये ग्राउण्ड बने हुए हैं। इसके दाईं ओर जो यह सड़क ऊंची ऊंची चढ़ती चली गई है। इसी ओर सब अंग्रेज अफ़सरों के और बड़े २ अमीरों के बंगले बने हुए हैं। गवर्नर की कोठी भी इधर ही है। कचहरी भी इधर ही और डाकघर भी इधर ही। चिकित्सालय भी इधर ही है। ठीक चोटी पर पहुंचकर एक चतुष्पथ है—एक पथ 'रेस्ट हाउस' की तरफ़ जाता है, एक साहबों के बंगले की तरफ़, एक कचहरी और डाकघर की तरफ और चौथा 'बार ताल' की तरफ़—जो यहां से दो मील दूर है।

जिस तरह नैनीताल की तरफ भिन्न २ सात तालाब 'सप्त ताल' के नाम से प्रसिद्ध हैं वैसे ही इधर भी सप्तताल हैं—कोई कालापानी, कोई बीर ताल, कोई देव ताल, और अमृत कुण्ड-इत्यादि। इन तालों के ही कारण इस प्रदेश की शोभा है।

उपरोक्त शिखर ही असली चिखल्दा है। वहीं दर्शनीय है—सघन आम्र, पीपल और कहीं २ चाड़ के कुञ्जों के बीच में छोटे छोटे रंग बिरंगे बंगले असूर्यम्पश्या-राजदाराओं की तरह खड़े हैं, क्योंकि सूर्य की प्रखर किरणें उन पादप-कुञ्जों की सघनता को अतिक्रान्त करके झांक नहीं सकतीं। इसी का सौन्दर्य देखने लोग आते हैं। यों नीचे घाटी में चिखल्दा नाम से दस-बारह झोंपड़ियों का एक छोटी सी बस्ती भी है। पर उसकी ओर कौन निहारता है? ये बंगले, कुंजों की छाया में खड़ी असूयम्पश्या राजदारायें और वे झोंपड़ियां चिलचिलाती धूपमें नंगी खड़ी भिखारनें! कोई क्यों देखे?

१४ मील दूर है विराट नगर—जो आजकल बिगड़कर बैराट नगर बन गया है। उस पर्वत के ठीक नीचे ही बहती है कीचक नदी। कहते हैं कि भीम ने कीचक को मारकर इसी नदी में डाला था इसीलिये इसका नाम भी कीचक-नदी पड़ गया। पहले कभी वहां बड़ा भारी किला था, पर अब तो उसके ध्वंसावशेष भी काल के द्वारा साफ़ नहीं हुए। एक देवी का मन्दिर अब भी विद्यमान है। किन्तु इस सबके निर्णय के लिये इस समय वहां जाया तो नहीं जा सकता—क्योंकि सायंकाल तक लौट कर आना कठिन है।

तो चलो, उस किले पर चलें जो यहां से केवल २ मील दूर है—जिसकी ऊंची ऊंची दीवारें अब भी उस ग्वाल वंश की याद दिलाती हैं जिसने निकटवर्ती अन्य सब राज्यों को परास्त कर इस दुर्गम शैल-शिखर पर अपना अभेद्य प्रासाद बनाया था। इस विज्ञान के युग में भी लोग आश्चर्य करते हैं कि वे इतनी बड़ी बड़ी चट्टानें कैसे उठा उठा कर पहाड़ की चोटी पर लाई गई होंगी।

होटल वाले ने कहा था कि उधर अकेले मत जाना। खतरनाक रास्ता है। पर अब तो चल दिया हूं। अकेला हूं तो क्या हुआ। कोई खतरा खास मेरी ही प्रतीक्षा में बैठा होगा, यह कैसे मान लूं!... ...निर्जन-सुनसान-भयानक जंगल......पार करके किसी तरह अब किले के मुख्य द्वार से अन्दर घुसा। द्वार के सामने ही एक ओर एक तालाब, दूसरी ओर एकदम ढलवां—कांटेदार झाड़ियां ऊपर से नीचे तक-सघन। आपस में इतनी गुंथी कि आगे नहीं दिखता। एक स्थान पर भग्न दीवार के ऊपर चढ़कर देखा तो तीसरी ओर एक भयानक खड्ड, गहरा इतना कि नीचे देखते हुए भी भय। और ठीक तलहटी में बहती हुई नदी की तीव्र हर-हर नाद, कैसा भयानक दृश्य!......दीवार पर से उतर कर आगे बढ़ता हूं। सात बज चुके हैं—अंधेरा लगातार बढ़ता चला आता है। मैं भी लगातार बढ़ा चला जाता हूं। आगे और भयानक जंगल-कहीं ऊंचा कहीं नीचा, एकदम सुनसान, एकाकी।......अब पगडण्डी दीखनी भी बन्द होगई। क्या करूं?......धीरे धीरे गुर्राने की-सी आवाज! यह क्या! अरे उन ग्वालों ने इधर आने के लिये मना किया था न!—कहते थे कि इधर बघेरों का बहुत डर है-कल उसकी गाय खाई गई थी-परसों उसकी-और फिर अगले दिन एक ग्वाला भी गायब होगया!......पर यह तो मन का भ्रम ही है। कहीं कुछ भी नहीं। जबां

बन्द, गति बन्द, सांस बन्द, हृदय की धड़कन बन्द—कान लगाकर सुनूं—एक बार फिर वही हल्के हल्के गुर्राने की-सी आवाज़......

बस, अब नहीं। हिम्मत जवाब दे गई। उलटे पांव—चुपचाप।

न जाने किस तरह गिरते-पड़ते रात को १० बजे होटल में पहुंचा तो होटल वाला हैरान रह गया—'अरे! इस वक़्त! किला देखने! अकेले? हरे राम !!!

× × ×

अगले दिन ठीक समय पर भी जब मोटर नहीं आई तब यह अनुमान करके कि कहीं रास्ते में किसी नाले में वर्षा के कारण पानी बहुत बढ़ जाने से वह नहीं आसकी और अब प्रतीक्षा करना व्यर्थ है, समय काटने के बहाने मैंने पूछा—'क्यों, हीराचन्द (होटल का एक कर्मचारी)! यहां चिखल्दे में सर्दियों में सर्दी कैसा पड़ता है ?"

"बाबू जी, सर्दी का क्या पूछना। बस चिखल्दा और शिमला दो ही तो स्थान हैं जहां सबसे अधिक सर्दी पड़ती है।"

मैंने आश्चर्य से पूछा—"तो क्या शिमला तुमने देखा है ?"

नहीं, बाबू जी! मैंने तो नहीं देखा। हां, मेरे बापने शिमला ज़रूर देखा था। और शिमले की तथा सारे जमाने की बातें सुनाया करते थे"—उसने मन में कुछ अभिमान सा अनुभव करते हुए कहा।

मैंने फिर पूछा—"अच्छा, तुमने क्या क्या देखा है ?"

उसने कहा—"बाबू जी! मैं वैसे इलाहाबाद का रहने वाला हूं। किन्तु बचपन में ही इधर आ गया था। और तब से लगातार २० साल तक मैं यहीं का यहीं हूं—न कहीं आना, न जाना। सगे सम्बन्धी भी मिलने-मिलाने यहीं आजाया करते हैं, किन्तु मैं तो यहां से कभी बाहर गया नहीं।"

मैंने बात चलाने के लिये पूछा—"अच्छा तो फिर, तुम्हारे बाप ने और क्या क्या देखा था ?"

"अजी, उनका क्या पूछना। वे तो ठेठ विलायत तक देखकर आये थे। इधर हिन्दुस्तान में ऋषिकेश-टिहरी तक......"

"बस, ऋषिकेश टिहरी तक ही, आगे नहीं ?"

"बाबू जी, आगे कहाँ से! आगे तो ज़मीन है ही नहीं। आगे तो समन्दर ही समन्दर है।"

मुझे मन में हँसी आई। किन्तु हँसना उचित न समझ मैं—"अच्छा !"—कहकर चुप हो गया।

तो फिर थोड़ी देर बाद हीराचन्द ने अपने आप ही पूछा—"क्यों बाबू जी, आजकल लड़ाई का क्या हाल-चाल है ?"

मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—"अभी लड़ाई चल ही रही है, भाई !"

उसने फिर पूछा—"बाबू जी! ये गांधी महाराज आज-कल क्या कर रहे हैं? ......सुना है कि इनके लाखों रुपये बैंकोंमें जमा हैं। इनका वासियां मिलें चलती हैं और दिन-रात मोटर में घूमते, ऐश करते हैं।......पता नहीं, जब से यह सत्याग्रह चला है, तभी से गरीब भूखों मर रहे हैं—कहीं अकाल, कहीं भूकम्प, कहीं बाढ़ और कहीं कुछ, कहीं कुछ......"

मैंने बीच में ही बात काटकर पूछा—"क्यों, क्या गांधी महाराज से पहले अकाल, बाढ़ और और भूकम्प नहीं होते थे ?"

तब बीच में एक पण्डित जी जो रात को तुलसी रामायण की चौपाइयों का पाठ कर रहे थे, बोल उठे—"अजी, पहले का क्या बात कहते हो। उस समय तो सत्ताईस सत्ताईस गज़ के आदमी हुआ करते थे— और फिर मस्ती में आंखें बन्द करके वे थोड़ी देर तक रामराज्य का वर्णन करते रहे। जब ज़रा गांजे का नशा उतरा तो फिर प्रकृतिस्थ होकर कहने लगे—"हमारे बाप दादा ने तो कभी नहीं बताया कि सरकार से दुश्मनी करनी चाहिये, या सत्याग्रह भी कोई चीज़ होती है। यह तो जब से कांग्रेस आई है तभी से गरीबों के गले पर छुरी चली है।"

दो-तीन मुसल्मान चाय पी रहे थे। उन्होंने भी अब हां में हां मिलाई, और कांग्रेस को गालियां देते हुए गिनना शुरू किया कि अमुक २ बैंक में गांधी के इतने २ लाख रुपये जमा हैं; तब मैंने भी अत्यन्त शान्त भाव से सरलता के साथ उनके आक्षेपों का उत्तर देते हुए वस्तुस्थिति को स्पष्ट करना शुरू किया और अनजाने में ही एक व्याख्यान दे डाला—व्याख्यान न जाने कब तक जारी रहता कि इतने में ही मोटर का हार्न सुनाई दिया। मैं खुशी से एकदम उछला और अपना सामान ठीक करने लगा।

जब मोटर पर रखने के लिये एक लड़का होटल से मेरा सामान ले जा रहा था और मैं हाथ में छाता घुमाता हुआ उसके पीछे २ आ रहा था तो, उन भलेमानसों में से एक ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—"अरे, यह खुफिया पुलिस का आदमी लगता है ?"

दूसरे ने कहा—"यार, ये खुफिया पुलिस वेष भी खूब बनाते हैं। देखो न, कैसे जण्टलमैनों की तरह सफेद चकाचक कपड़े......"

गुरुकुल--समाचार

ब्रह्मचारियों की षाण्मासिक परीक्षाएं समाप्त हो गई हैं। पर्वतीय स्थानों पर यात्रा जाने की मुख्याधिष्ठाता जी द्वारा आज्ञा मिल गई है अतः ब्रह्मचारियों ने गंगोत्री, शिमला, चकरौता इत्यादि स्थानों पर जाने के लिये दलों का संगठन प्रारम्भ कर दिया है

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० शान्तिस्वरूप १२ श्रेणी प्रलाप, ब्र० रामदेव १४ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० राजेन्द्र देहरादून ४ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० ज्ञानचन्द ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० राजेन्द्र २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० कल्याण २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० शिवदत्त २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० ओ३म्प्रकाश १ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० देशबन्धु २श्रेणी आन्त्र ज्वर, ब्र० रामकृष्ण ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० गुरुदेव १ श्रेणी Mumps.

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० ओम्प्रकाश को अभी ज्वर है। आशा है कि शीघ्र स्वस्थ हो जावेगा।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ८ भाद्रपद १९९७ः २३ अगस्त १९४० [संख्या १९

श्रावणी का सन्देश

(आचार्य चन्द्रकांत जी वेदवाचस्पति, रिसर्च स्कॉलर, सूरत)

गर्मी के बाद वर्षा होती है और वर्षा में चराचर जगत् आनन्दित एवं उल्लसित हुआ करता है। यही समय है जब कि श्रावणी का उत्सव आ-आ कर अज्ञानी एवं निर्बल जनों को कुछ सन्देश सुनाया करता है। बहिनें भाइयों को राखड़ी बान्ध उनसे आत्मरक्षण एवं अभय की आशा रखती है, जनसाधारण यज्ञोपवीत पहन कर ऋषि, पितृ तथा देव ऋणों से उऋण होकर आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ा करता है. तात्पर्य यह कि यह पर्व हर एक को कुछ सन्देश सुनाने को आता है। क्या यह सन्देश प्रकृतिरूपी नटी के अभिनय का है ? क्या यह सन्देश सुन्दर, मधुर, जयघोषों के साथ, विश्व के रूप, राग एवं रास को बताने का है या मीठी मीठी धीमी धीमी सुर में आनन्दघन आत्मदेव के मोहक रूप को प्रकट करने का ?

बृहदारण्यक उपनिषद् में जगमाया की छाया से अभिभूत होकर "किमहं तेन कुर्याम, येनाहं नामृता स्याम्" "अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन" के तंत्री नाद को सुनने में लीन हुई मैत्रेयी को महर्षि याज्ञवल्क्य ने जो उपदेश दिया था वही श्रावणी का सन्देश है—आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" आत्मा का दर्शन करना चाहिये कैसे ? श्रवण, मनन एवं साक्षात्कार (निदिध्यासन) के द्वारा । तत्वज्ञ विज्ञानभिक्षु ने कहा है—"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः, मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः। मत्वाच सततं ध्येय इतीमे दर्शनहेतवः" श्रुतियोंसे आत्माका श्रवण करना चाहिये, तर्कसे मनन और ध्यान एवं योगाभ्यास से साक्षात्कार करना चाहिये। श्रवण के बिना मनन एवं निदिध्यासन निस्सार है। अर्थ को समझे बिना वेद की ऋचाओं को सुनना श्रवण नहीं श्रावणाभास है। "उतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्" अबोध जन वेद की ऋचाओं को सुनते हुवे भी अर्थ को समझ न सकने से बधिर हुआ करते हैं। उन्हें संसार की निरर्थक आवाजें, ऊंचे ऊंचे दुन्दुभिनाद, मोटर तथा गाड़ियों के शोर प्रिय होते हैं अतः वे "उच्चैःश्रवा" हैं। इस प्रकार का जीवकोटि को अनुभवी भक्तों का उद्बोधन है "पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन्। स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमावह सुस्रजम्" (अथर्व) कि हे ऊंचा सुनने वाले ! कल्याण मार्ग में विजयी होने के लिये इन्द्र को माला पहिना, आत्मा की स्तुति कर। आत्मा (Inner Monitor) की धीमी आवाज (Small Voice With in)को कोई "नीचैःश्रवा" ज्ञानी पुरुष ही सुन सकता है। इसी दैवी आवाज को सुनाने के लिये ही हर साल श्रावणी आ आ कर कर्णकुटी के आसपास ढोल बजा बजा कर कहती है—"एतं पृच्छ कुहं पृच्छ, कुहाकं पक्वकं पृच्छ" (अथर्व) रे नादान ! आत्मा के बारे में किसी परिपक्व विचार ज्ञानी भक्त से पूछ।

(क) गुरुमुख सेः—आत्मा के श्रवण का एक मार्ग अज्ञान को दूर करने वाले गुरुमुख से उपदेश सुनना है। मुण्डकोपनिषत् में लिखा है—तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" हृदय के काम क्रोधादि विकारों की समिधाओं को गुरु की अग्नि में डाल कर, ब्रह्मज्ञान के महानल में राख बना कर ही "समित्पाणि" शिष्य सच्ची गुरुसेवा और अग्निहोत्र के तत्व को समझ सकता है। तब समग्र आत्मा हृदय तथा बुद्धि द्वारा आचार, विचार तथा उच्चार में, परात्पर, सूत्र के सूत्र, उद्गीथ प्रभु की गूंज को रोम रोम से सुनने वाला "श्रोत्रिय" हुआ करता है जो कि "आत्मैवेदं सर्वं" की ध्वनि में दृढ़ आस्था रखने के कारण "ब्रह्मनिष्ठ" हुआ करता है। साधक का सच्चा मार्गदर्शक अन्तर्यामी "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" भगवान तथा अन्तरात्मा ही होता है। सांसारिक सिद्ध पुरुष देही होने से अपूर्ण हैं—यहां मार्गच्युति तथा दिक्भ्रम की संभावना है, प्रभु के द्वार पर नहीं। इस लिये हृदय का समग्र समर्पण भगवान् के चरणों में करना है परन्तु गुरु के सामने हाथ को जोड़ कर निरभिमानिता से नतमस्तक होना साधक का धर्म है। संत तुलसीदास ने क्या ही सुन्दर कहा है—"संत सदा सिर ऊपर, राम हृदय होई।"

इस संसार में सच्चे गुरु की प्राप्ति दुर्लभ है। नीर क्षीर न्याय से सच्चे साधकों को जुदा कर लेना किसी परमहंस का ही काम है। ठीक ही कहा गया है "साधु

न चलें अमात" करोड़ों में कोई एक प्रबुद्ध वेषमें पुरुषरत्न साधु हुआ करता है-तब सच्चे गुरु न मिलने से आत्मा की आवाज़ दबा देनी चाहियें? नहीं, हरगिज़ नहीं। सच्चे मनोनीत गुरु की तलाश में सतत प्रयत्न मग्न होते हुवे भी प्राचीन गुरुओं के रूप में आध्यात्म ग्रन्थों का सहारा लेना चाहिये।

(ख) ग्रन्थ मुख से—ग्रंथों की सहायता से बहुत दूर तक आत्मा के पथ पर चला जा सकता है। वेदोपनिषत्, दर्शनशास्त्र, स्मृतियां नानामुख से उसी सच्चिदानन्द का बखान कर रही हैं। ग्रंथ वे गुरु हैं जो विदेह और वीतराग होते हुए भी निष्पक्ष रूप से ज्ञान का अमर उपदेश दिया करते हैं। मानस शास्त्र, आचारशास्त्र तथा सौन्दर्य--शास्त्र को हृदयंगम कर के परब्रह्म के स्वरूप को समझने के लिये तत्वज्ञान के सपूर्वग्रन्थों का स्वाध्याय करना साधक का परम धर्म है। "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" तत्वज्ञान से सतत्व को समझने के बाद कविप्रतिभा से हृदय को आवर्जित करने वाले भक्ति रस से आप्लुत कविता के ग्रंथों में डुबकी लगानी चाहिये। अन्त में परांविद्या के ग्रंथों से ब्रह्मज्ञानियों के आचार विचारों को अध्ययन करके जीवन के परम सत्य को आधिगत किया जासकता है। जीव, प्रकृति तथा प्रभु के स्वरूप का जाने बिना आत्म-दर्शन साधक के लिये असम्भव है। आध्यात्म ग्रंथोंके पुनः पुनः परिशीलन से चित्त से रजोमल दूर होता है सत्य का उद्रेक होता है। निर्बीज समाधि से पूर्व ग्रंथ गुरु आत्मा के श्रवण में सहायक हुआ करते हैं। परन्तु अपार संसार पारावार को तैरने के लिये गुरु एवं ग्रंथ पतवार का काम अवश्य करते हैं, नाविक का नहीं। नाविक तो मनुष्य की हृदय गुहा में और प्रकृति के दामन में छुपा हुआ है।

[ग] यही विश्वमुख से आत्मा का श्रवण करना है। प्रकृति की गुहा में आंख मिचौनी खेलते हुए आत्मदेव की झांकी लेने के लिये प्रकृति का निरीक्षण करना चाहिये। वेद तथा उपनिषद के ऋषियों ने प्रकृति से बातचीत की और प्रकृति को गुहा से मूक मंत्र सुने और सुनाये हैं। विद्युत की अनुकरण ध्वनि "द" कार से दान, दमन, दया का उपदेश दिया गया है। ब्रह्मचारी को पशु, पक्षी, सूर्यादि प्रकृति बिहारी देवों से ब्रह्मचर्य का महान् पाठ सिखाया गया है। प्रकृति के अणु अणु के मुख से चैतन्य की धड़कन सुनी जा सकती है। वर्षा की सुनहरी हरियाली, लाल लाल वीर बहूटियां, नदी नालों की कलकल ध्वनि, उड़ती घुमड़ती मेघ की घनघोर घटायें, बिजली की चकाचौंध इन सब रूपों में-"रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव--" सत्य,शिव, सुन्दर भगवान देखे जा सकते हैं। पक्षियों के मधुर मधुर कलरव में, नदी नालों के गान में अनहत नाद सुना जा सकता है। प्रकृति प्रिय वर्डस्वर्थ ने पत्थर, नदी नाले तथा वृक्ष लताओं में आत्मा की गंभीर ध्वनि सुनी थी। हृदय की गुफा से भी आत्मा की आवाज सुनाई देती है। प्राचीन ऋषि, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तथा महर्षि दयानन्द ने इसी आवाज़ को सुनकर (Inspiration) प्रेरणा प्राप्त की थी। हृदय के अधिवासी आत्मदेव हमें कर्तव्य कर्म बताते हैं-हमारा प्रिय धर्म इसी हृदय की ही तो पुकार है—"हृदयेनाभ्यनुज्ञातः यो धर्मः"॥

रंग बिरंगी प्रकृति के सुन्दर मोहक चित्रों को देखकर मानव हृदय कारणविचार में प्रवृत्त होता है और हृदयगुहा की अव्यक्त मन्द मधुरध्वनि सुनते हुवे कर्तव्य विचार करने लगता है। दोनों से ही प्रभु का श्रवण होता है। यह अलौकिक श्रवण है। प्राचीन में प्राचीन और अर्वाचीन में अर्वाचीन श्रवणों में यही सर्वतो भद्र श्रवण है- इसी से अन्तर्यामी भगवान देखे जा सकते हैं। श्रावणी पर्व के इस पवित्र दिन क्या हम श्रावणी को यह आत्म--पुकार न सुनेंगे?

गुरुकुल कांगड़ी में वर्धा शिक्षा की प्रगति

(ले०-श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार)

वर्धा शिक्षा या जीवनोपयोगी हस्तोद्योग द्वारा शिक्षा अब केवल विवाद और विचार का विषय ही नहीं रही किन्तु देश में विभिन्न स्थानों पर उसे क्रियात्मक रूप देने के प्रयत्न भी हो रहे हैं। अमर शहीद श्रद्धेय स्वा० श्रद्धानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी की प्राथमिक कक्षाओं में इस वर्ष के प्रारम्भ से यह परिश्रम किया जा रहा है। गुरुकुल कांगड़ीमें सब गुरुकुलों के अध्यापकोंका वर्धाशिक्षणकेन्द्र चलाने के लिये पहले भी पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार को तथा लेखक को वर्धा में इस शिक्षण पद्धति का अध्ययन करने के लिये भेजा गया था। गत वर्ष के अन्त में वे यहां आये। उस समय मामूली तौर से इस पद्धति को प्रारम्भिक श्रेणियों में लागू किया गया। इसी बीच में मालवाड़ी आश्रमवासी श्री सत्यन जी-जिन्होंने कई वर्ष कताई शास्त्र की साधना की है तथा इस कला के विशेषज्ञ हैं--यहां बुलाये गये। इस साल के शुरू से बुनियादी तालीम का प्रयोग शुरू हुआ।

२ महीने के प्रयोग से हमें जो सफलता मिली है-वह आश्चर्य जनक है। शैक्षणिक तथा आर्थिक दोनों पहलुओं से विद्यार्थियों को, अध्यापकों को तथा संस्था को पर्याप्त लाभ हुआ है।

यद्यपि 'उद्योग द्वारा शिक्षा' पद्धति में शिक्षा और उद्योग का अविनाभाव संबन्ध है। शिक्षण शास्त्रियों की शिक्षा अद्वैतवादियों के ब्रह्म की तरह एक अखण्ड सत्ता है किन्तु फिर भी माया और ब्रह्मको अलग २ समझ कर जिस प्रकार उस अखण्ड ब्रह्म को समझने में सुविधा होती है, उसी प्रकार इस अखण्ड शिक्षा की प्रगति समझने के लिये व्यवहार में थोड़ी देर के लिये शिक्षा तथा उद्योग की पृथक २ प्रगति को देखा जाय तो सम्पूर्ण शिक्षा की प्रगति सुगमता से समझा जा सकेगी। पहले शैक्षणिक पहलू को लीजिये। इस पद्धति में शिक्षा का ढंग समन्वयात्मक या अनुबन्धात्मक है। शिक्षा जीवन के लिये, जीवन की वस्तुओं को

होनी चाहिये। प्रारम्भ की सारी शिक्षा जीवन से संबद्ध होनी चाहिये। यह ठीक है कि उद्योग जीवन का बहुत बड़ा भाग है पर फिर भी जीवन में उससे व्यतिरिक्त भाग भी बहुत सा है। अतः शिक्षा को जीवन से संबद्ध करने के लिये हमें उद्योग के साथ २ प्राकृतिक परिस्थिति और सामाजिक परिस्थिति भी अनुबन्ध के केन्द्र बनाने पड़ते हैं। पू० विनोबा जी के शब्दों में वर्धा शिक्षा एक त्रिचक्रिका (ट्राइसिकल) की भांति है जिसका अगला बड़ा पहिया उद्योग है तथा दो छोटे पहिये प्राकृतिक तथा सामाजिक परिस्थिति हैं।

समन्वयात्मक शिक्षा यहां पहली और दूसरी श्रेणी में दी जाती है। गणित, भूगोल, मातृभाषा, सामाजिक विश्व विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान आदि के सभी पाठ उपरोक्त तीनों बातों में से किसी एक केन्द्र को बनाकर ही दिये जाते हैं। इस प्रकार की शिक्षा से यह फायदा हुआ है कि विद्यार्थियों में उत्सुकता, अवधान, जिज्ञासावृत्ति की वृद्धि हुई है। वे इस में ज्यादा रस लेते हैं। साथ ही शिक्षकों को भी सुविधा हुई है। प्रत्येक चीज समझाते या पढ़ाते समय उनके आगे निश्चित लक्ष्य रहता है। सम्बद्ध पाठों की पहली पुस्तक भी तैयार की गई है जिसमें कताई के उद्योग को मूल बनाकर हिन्दी का अक्षराभ्यास बताया गया है।

यहां पर मूलोद्योग कताई है। प्रतिदिन इसके लिए १॥ घण्टा दिया जाता है। आधा घण्टा पढ़ाई के शुरु में और एक घण्टा बीच में। आधा घण्टा इस लिये रखा गया है कि विद्यार्थी उद्योग की महत्ता को अनुभव करें तथा अध्यापक को बाद में औद्योगिक प्रक्रियाओं से अपने पाठ्य विषय को अनुबद्ध करने में सुविधा हो। पिछले दो महीने में इस उद्योग की प्रगति इस विद्यालय में किस प्रकार हुई यह सारिणी सं० १ से प्रकट है। इस में पहली पांच श्रेणियों का प्रतिदिन १॥ घण्टा के हिसाब से तकली पर काते गये सूत का ब्यौरा है। साथ में नम्बर और मजदूरी भी दी गयी है--

सारिणी सं० १

तिथि	कातने वालों की संख्या	कताई दिवस १॥ घण्टा	सूत तोलों में	नम्बर	कुल मजदूरी	कपास	शेष मजदूरी
१ ज्येष्ठ से १३ ज्येष्ठ तक	१४५	६	३३४	११	४॥-)॥	१॥≈)।	३≠)॥
१४ ज्येष्ठ से २६ ज्येष्ठ तक	१६६	१०	७६६	११	६।≈)	१॥-)।	७।-)॥
२७ ज्येष्ठ से ६ आषाढ़ तक	१६८	११॥	१०८३	११	६॥=)॥	१॥≡)।	७॥≈)।
१० आषाढ़ से २३ आषाढ़ तक	१६३	१०।	६८६	१२	१३॥)॥	२॥=)॥।	११-)॥।
२४ आषाढ़ से २ श्रावण तक	१४४	१०।	५४०	१२	८।)॥	१॥।=)॥।	६।-)॥।
३ श्रावण से १६ श्रावण तक	१७०	११॥	१०६५	१२	२६=)	२।≡)।	१३॥=)॥।
	कातने वालों की औसत में १५१	६२॥	४७७४		६२=)।	१२।)॥।	४६॥।-)॥।

इस सारिणी से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की उत्पादन क्षमता निरन्तर बढ़ती जा रही है। विद्यार्थियों की परीक्षा के लिये बीच २ में आध २ घण्टे की प्रतियोगितायें की जाती रहीं। २ महीने के अन्त में हुई प्रतियोगिता का परिणाम सारिणी सं० २ में दिया गया है।

सारिणी सं० २

कक्षा	विद्यार्थी संख्या	कुलतार	अधिकतम तार	न्यूनतम तार	औसत तार
द्वितीय (क)	१८	६८७	७२	१२	३८
द्वितीय (ख)	२२	६०८	८६	१२	४१
तृतीय (क)	२२	६३६	४६	६	२६
तृतीय (ख)	२२	१०६३	८६	१३	४८
चतुर्थ (क)	२२	११०४	७३	३१	५०
चतुर्थ (ख)	२२	११७०	१०३	३१	५३
पंचम	४२	२६६५	१०३	१७	६३

जाकिर हुसैन समिति द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम में पहली कक्षा के पहले सत्र के अन्त में अर्थात् ६ महीने बाद विद्यार्थियों के औसत तारों की संख्या ४० और दूसरे सत्र के अन्त में ५३ होनी चाहिये। इस दृष्टि से दो मास का उपर्युक्त परिणाम संतोषप्रद है।

पहले यह शंका की जाती थी कि बालकों द्वारा काता गया सूत इतना निकम्मा, रद्दी और कच्चा होगा कि आर्थिक दृष्टि से यह योजना घाटे पर ही चलेगी। परन्तु अनुभव ने यह शंका निर्मूल सिद्ध कर दी है। शुरु से मात्रा या परिमाण की बजाय गुण पर बल देने का सुपरिणाम यह हुआ है कि जुलाहे अब सूत के कच्चे-पन की बजाय उसके पक्केपन की शिकायत करते हैं। छीजन (वेस्टेज) की मात्रा धीरे २ कम हो रही है। यह सारिणी सं० ३ से स्पष्ट है—

सारिणी संख्या ३

समय	छीजन की प्रतिशतक मात्रा
१ ज्येष्ठ से १३ ज्येष्ठ तक	११.७ 0/0
१४ ज्येष्ठ से २६ ज्येष्ठ तक	६.७ 0/0
२७ ज्येष्ठ से ६ आषाढ़ तक	८.७ 0/0
१० आषाढ़ से २३ आषाढ़ तक	३.२ 0/0
३ श्रावण से १६ श्रावण तक	१.२ 0/0

[देखिए पृष्ठ ५पर]

गु रु कु ल

८ भाद्रपद शुक्रवार १९९७

गुरुकुल में वैदिक वायुमण्डल

(श्री आचार्य अभयदेव जी का एक उपदेश)

हमारे यहां वैदिक वायुमण्डल हो–ऐसा प्रबल वैदिक वायुमण्डल हो जिससे कि गुरुकुल में आते ही किसी भी मनुष्य को इसका अनुभव हुए बिना न रहे। यह हम सब चाहते हैं, चाहना चाहिये। पर यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि वैदिक कर्म-काण्ड और वैदिक ज्ञान-चर्चा, ये दोनों ही सत्यता द्वारा, वास्तविकता द्वारा अनुप्राणित न हों। हम मुर्दा कर्मकाण्ड करते जाय और थोथी कर्मकाण्ड विषयक बातें करते रहें इससे क्या होना है। इन दोनों के विषय में तुम ब्रह्मचारियों को अब जो अगला कदम उठाना चाहिये उसकी आज चर्चा करना चाहता हूं।

कर्मकाण्ड में जीवन फूंकने की दृष्टि से मैं तुम्हें याद दिलाता हूं कि मैं हाथ से काम करने के विषय में जो तीन उपदेश तीन दृष्टियों से दे चुका हूं उनका स्मरण करो तो यज्ञोपवीत बनाने का तो गुरुकुल में एक महकमा खुल जाना चाहिये। जैसे कई कार्यों को तुम ब्रह्मचारी स्वेच्छा से आयोजन करते हो वैसे जिन ब्रह्मचारियों को इस में श्रद्धा हो वे एक को मुखिया मान कर इसे प्रारम्भ करें या चाहे एक ही ब्रह्मचारी इसे प्रारम्भ करे। सब के लिये तुम अपने हाथ से बना कर यज्ञोपवीत तैयार कर लो, यह सम्भव होना चाहिये। गुरुकुल में बाहर से यज्ञोपवीत मंगाना लज्जास्पद समझा जाना चाहिये। कपास चुनने से लेकर अन्तिम ग्रन्थि लगाने तक की सब क्रिया मन्त्रपाठ पूर्वक पवित्रता की भावना के साथ की जाय। क्रिया में किस किस मंत्र का विधान है यह मैं बता दूंगा। मैं इसके लिये बहुत वर्षों से कोशिश कर रहा हूं। सबसे पहले मैंने गुरुकुल रजत जयन्ती वाले वर्ष–आज से लगभग १४ वर्ष पूर्व–अपने एकान्त वास से नवीन स्नातकों के लिये अपने हाथ से यज्ञोपवीत बनाकर भेजे थे। इसी तरह महात्मा टेकचन्द जी के यज्ञ में सम्मिलित होने वाले व्रतियों के लिये ऐसे यज्ञोपवीत बना कर भेजे हैं। कई स्नातकों, प्रेमी मित्रों को मुझ से यज्ञोपवीत मांगने की आदत हो गई है। अभी स्नातक अवनि मोहन जी ने अपने शुभ-विवाह के अवसर के लिये मुझ से यज्ञोपवीत मांगा था। मैंने यहां एक ब्रह्मचारी द्वारा शुद्ध-भाव से गायत्री मंत्र जपते हुए बारीक सम सूत कतवाया और इसी तरह त्रिवृत करवाया और अन्त में अपने हाथ से मंत्र पढ़ते हुए ग्रंथि लगाई और ऐसा यज्ञोपवीत उन्हें दिया। ऐसा यज्ञोपवीत पहनते हुए उन्हें कितना आनन्द आता होगा इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। उससे पहिले तो वे यज्ञोपवीत पहिनने में–अन्य बहुत से स्नातकों की तरह–शिथिलता कर देते थे, पर वे कहते थे कि अब यह नहीं हो सकता। अब वैसा समय आ गया है जबकि गुरुकुल का तैयार किया हुआ–विधिपूर्वक तैयार किया हुआ ही यज्ञोपवीत पहिना जाय। मैं तो अब यहां तक कहूंगा कि दूसरी तरह के बाजारू यज्ञोपवीत पहनने की अपेक्षा तो यज्ञोपवीत न पहनना अच्छा है। मैं जानता हूं तुम में से कई ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत पहनने में लापरवाही करते हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत न पहिने हुए देखे जाते हैं ऐसी शिकायत आर्य भाइयों की तरफ़ से कई बार सुनाई गई है–मुझे कई आर्य महानुभावों ने इस बारे में कहा है। पर मेरी समझ में इस शिकायत का इलाज यज्ञोपवीत में फिर से उसको अपनी जान डाल देना है, यज्ञोपवीत को यज्ञोपवीत बनाना है, न कि ज़बरदस्ती यज्ञोपवीत पहिनाना और न पहिनने पर नाराज़ होना। गुरु (आचार्य) का संस्कार पूर्वक दिया हुआ, उस द्वारा गुरु मन्त्र (पवित्र सावित्री) के पाठ पूर्वक ग्रथित किया हुआ, गुरुकुल माता के पुत्रों (सहाध्यायिओं) द्वारा कपास चुनने से लेकर त्रिवृत करने तक सब प्रक्रियायें विधिवत् पवित्र भाव से मंत्र पाठ पूर्वक करते हुए निर्मित किया हुआ, इस प्रकार गुरुकुल माता द्वारा दिया हुआ, दीक्षा के चिह्न–यज्ञ के चिह्न रूप इस यज्ञोपवीत को जब पहिना जाय तो यह एक ऐसा प्रेम की और पवित्रता की चीज़ होगी कि इसके साथ हलकेपन के साथ व्यवहार नहीं किया जा सकेगा। तभी यज्ञोपवीत पहिनना सार्थक होगा। यज्ञोपवीत भग्न हो जाने पर जबतक दूसरा अपने आचार्य जी से, आश्रमाध्यक्ष जी से न लेलो तबतक चैन न मिलेगा। मैं आशा करता हूं कि अब छोटे बड़े सब ब्रह्मचारिओं के यज्ञोपवीत बनाये जाने की व्यवस्था तुम बड़े ब्रह्मचारिओं में से कुछ ब्रह्मचारी ले लेंगे, बल्कि बाहर के जो भक्त लोग गुरुकुल से यज्ञोपवीत मंगवाना चाहें उन्हें भी दिया जा सकेगा। इससे न केवल हम अपने कुल में यज्ञोपवीत के सत्य को पुनरुज्जीवित कर देंगे किन्तु आर्य (वैदिक) धर्म में (अतएव हिन्दू धर्म में) यज्ञोपवीत का जो पवित्र और उचित स्थान है वह उसे पुनः प्राप्त करा देने में अग्रसर होंगे।

इसी प्रकार दैनिक अग्नि होत्र में हमारी पूरी तन्मयता प्रकट होनी चाहिये। हवनकुण्ड, हवन के सब यज्ञपात्र साफ़ सुथरे और ठीक ठीक होने चाहियें; यज्ञपात्रों को हम स्वयं मांजें और शुद्ध पवित्र रखें। समिदाहरण हम स्वयं करें या कम से कम यज्ञ के लिये समिधाओं को काट कर शुद्धता से तैयार कर ला कर रखलें। हवन सामग्री की सब औषधियां शुद्धता से इकट्ठी करके स्वयं धार्मिक भाव से कूट कर तैयार की जायं। तब हमारा दैनिक अग्निहोत्र कुछ और ही वस्तु हो जायगी। और यज्ञ के लिये घृत! ब्रह्मचारियों को यज्ञघृत के लिये ही गोपालन करना चाहिये। यज्ञाग्नि में घृत डालने का यही मतलब है कि हम स्वयं घृत खाने से पहले सूक्ष्म रूप में वायुमण्डल में घृत फैलाकर अन्य सबको घृत खिलावें। पर आजकल घी कहां है? आजकल दूध देने वाली गौएं कहां हैं?

स्वामी दयानन्द जी की 'गोकरुणा निधि' पढ़ो। गोवंश की रक्षा और पालन के बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। गोपालन के बिना सच्चे अग्निहोत्र का ही प्रारम्भ नहीं हो सकता। गुरुकुल में अच्छी अच्छी गौएं हों, ब्रह्मचारियों को सेवा के लिये बांटी गई हों, ब्रह्मचारी कर्त्तव्य और धर्म समझ कर गोसेवा-सम्बन्धी सब श्रम करें, यज्ञ के लिये शुद्ध पवित्र गो घृत तैयार करें। गौओं का चराना, उनके लिये चारा सानी तैयार करना, उनको दोहना; दही-दूध, मक्खन घी बनाना, यह सब प्रेम पूर्ण परिश्रम के रूप में धार्मिक भाव से किया जाय तो यह वैदिक वायुमण्डल होगा। और यही वायुमण्डल है जिसमें तुम ब्रह्मचारी पालित पोषित हो कर वह बन सकते हो जैसा बनने का आशा, न जानते हुए भी तुम्हारे माता पिता करते हैं। आओ यह वायुमंडल पैदा करने का हम यत्न करें।

(शेष दूसरे लेख में)

टिप्पणी

पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि इस उपदेश के उपरान्त यज्ञोपवीत विधि पूर्वक स्वयं बनाने की प्रथा कुछ न कुछ गुरुकुल में चल पड़ी है। गत दीक्षान्त संस्कार तथा नव बालकों को वेदारम्भ तथा यज्ञोपवीत संस्कार में जो यज्ञोपवीत दिये गये थे वे इसी तरह बनाये गये थे। अब श्रावणी पर भी बड़े ब्रह्मचारियों ने स्वयं यज्ञोपवीत बनाये हैं।

यज्ञोपवीत बनाने की जो विधि श्री आचार्य जी ने प्रवर्तित की है वह 'गुरुकुल' के इसी अंक में नीचे प्रकाशित है।

—सम्पादक

"यज्ञोपवीत बनाने की विधि"

[यह विधि कात्यायन, बोधायन, देवल ऋषियों के; उनकी स्मृतियों के विधान के अनुसार है। इसे ढूंढने के लिये भी मुझे कुछ श्रम नहीं करना पड़ा है। यह मुझे महात्मा टेकचन्द जी "प्रभु आश्रित" की कृपा से आसानी से मिल गई। मैं केवल इसे ज़रा सा क्रमिक और सर्वसामान्य के लिये सुलभ रूप देकर नीचे लिख रहा हूं —अभय]

कपास की फुट्टी उतारते समय प्रणव-जाप करता रहे।

कपास से बिनौला पृथक् करते समय सप्त-व्याहृति का जाप करता रहे।

(धुनने का कोई विधान नहीं दीखा। सम्भवत: देव कपास जैसी किसी ऐसी कपास से यज्ञोपवीत बनाने का रिवाज होगा, जिसे कि धुनने की आवश्यकता नहीं होती होगी। आजकल हम धुनने के लिये भी ओंकार की ध्वनि या ऐसे ही किसी अन्य जप का विधान कर सकते हैं। इस विषय में अनुभवी विद्वान् लोग अपनी सम्मति प्रदान करने की कृपा करें)

कातते समय पुरुष-सूक्त का पाठ करना चाहिये।

अब दाहिने हाथ की अंगुलियों पर लपेटे तो (भूः) व्याहृति का जाप करता रहे, दूसरी बार लपेटे गिनने में (भुवः) का, तीसरी बार (स्वः) का जाप करे। पलाश-पत्र (ढाक के पत्ते) पर उतारे। पुनः इन तीन चप्पों को "ओ३म् आपोहीष्ठाः" आदि तीन मन्त्रों से, या "शन्नो देवी" और 'गायत्री मन्त्र' से पानी के छींटे दे, भिगो दे। और पुन: उसे हाथ से फटफटाये, जिस से पानी सारे सूत्र में पहुंच जाये।

फिर शुद्ध स्थान में जाकर यज्ञोपवीत बनाये। अन-ध्याय के दिन को छोड़कर स्वाध्याय के दिन (अर्थात् यज्ञोपवीत बनाने को फालतू काम न समझे; आवश्यक, गम्भीरतापूर्वक किया जाने वाला कर्तव्य समझे) प्रातःकाल मध्याह्न और भोजन से पूर्व स्नान, सन्ध्या करके १०८ या १००० बार गायत्री-जाप करे, तत्पश्चात् यज्ञोपवीत बनाये। यज्ञोपवीत बनाते हुए आरम्भ से अन्त तक गायत्री-जाप करता रहे।

ग्रन्थि लगाते समय "त्र्यम्बकं यजामहे......" आदि मन्त्र पढ़कर ग्रन्थि लगाये।

(यज्ञोपवीत के सूत्र के लिये कहा गया है कि यह ब्रह्मचारिणी कन्या या कर्मकाण्डी ब्राह्मण या सुहागिन पतिव्रता स्त्री का काता हुआ हो। एवम् विधवा स्त्री के काते हुए अथवा अनध्याय-दिन में बनाये हुए, टूटे हुए, नीचे पड़े हुए और भोजन के पश्चात् निर्माण किये हुए सूत्र को यज्ञोपवीत के लिये ग्रहण न करे, ऐसा कहा गया है। इस के भाव का ग्रहण भी हमें पूरी तरह करना चाहिये)

(पृ० ३ का शेष)

२४ आषाढ से २ श्रावण तक की छीजन का हिसाब इस लिये नहीं दिया गया कि इस समय कई विद्यार्थियों ने सूत के साथ अपनी पूरी २ छीजन वापिस नहीं की थी।

धुनाई की दृष्टि से अब विद्यालय स्वावलम्बी हो गया है। प्रारम्भ में एक धुनिया रखा गया था किन्तु उसकी धुनी हुई रुई उत्तम नहीं होती थी। जब कुछ विद्यार्थी तकली में सन्तोष जनक प्रगति कर चुके तो उन्हें धुनना भी सिखाया गया। १ महीने के अभ्यास से अब दो विद्यार्थी १॥ घण्टे में १० तोला रुई धुनकर पूनियां बना लेते हैं। आखिर हुमैन समिति के पाठ्य क्रम में यह गति ६ महीने के अभ्यास के अन्त में ३ तोला प्रति विद्यार्थी प्रति घण्टा बतलायी है। यह स्पष्ट है कि यहां की गति उससे अधिक है। इन से विद्यालय की दैनिक आवश्यकता पूरी हो जाती है और ये पूनियां इतनी उत्तम होती हैं कि कातने वालों को दूर २ के मशहूर स्थानों से मंगायी जाने वाली पूनियों से ज़्यादा बढ़िया मालूम होती हैं।

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में बालशिक्षा का स्थान

(ले०—श्री धीरेश विद्यालङ्कार)

(६)

यह ठीक है कि आज से ३६ साल पहले जब गुरुकुल की स्थापना हुई थी तभी से इसके जन्म दाता और संस्थापकों के दिल में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की प्रारंभिक शिक्षा व दूसरे शब्दों में बाल शिक्षा किस प्रकार की हो यह प्रश्न शिक्षा सम्बन्धी अन्य प्रश्नों के समान ही आया था। उन्होंने तब स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा प्रतिपादित वैदिक शिक्षा के पाठ्य क्रम की रूप रेखा को ही अपनी आधार भूत शिक्षा पद्धति के तौर पर न केवल कबूल किया था प्रत्युत उसी आधार पर ही प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्य क्रम निर्धारित किया था। जहां तक लेखक को मालूम है चन्द एक वर्षों में ही पुरातन प्रणाली के पृष्ठ पोषकों तथा नवीन (मिश्रित) पद्धति के अभिभावकों में मत भेद प्रकट होना प्रारम्भ हो गया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन प्रणाली के पृष्ठ पोषकों का असन्तोष यहां तक बढ़ गया कि उन्होंने इस नवीन मिश्रित पद्धति से असहयोग कर के ही सन्तोष लाभ किया। निस्सन्देह यह एक तथ्य है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का जन्म उस प्राचीन वैदिक व आरण्यक शिक्षण पद्धति को ही पुनरुज्जीवित करने के लिये हुआ था। आर्य समाज की उस समय की सुसंस्कृत अन्तरात्मा की यह पुकार थी जो कि तत्कालीन स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पद्धति के विरोध में एक दम बुलन्द होकर गुरुकुलों के रूप में सुन पड़ी थी। हम यहां गुरुकुलों का इतिहास नहीं लिख रहे—तोभी इतना निर्देश कर देना आवश्यक समझते हैं कि गुरुकुल प्रणाली के पृष्ठ पोषकों में भी कुछेक दल प्रारंभ से लेकर आज तक विद्यमान रहे हैं। पहला दल तो वह था जो कि धार्मिक मामलों की तरह शिक्षा जैसे समाज सुधारक कामों में भी सरकार का हस्तक्षेप व सरकारी पद्धति व कार्य प्रणाली का किसी भी तरह गुरुकुलों में अनुकरण नहीं होने देना चाहता था। यह दल था पूर्ण असहयोगियों का। दूसरा दल कहता था कि आज वैदिक ज़माना नहीं, परकीयों का राज है, उनकी भाषा-वेष भूषा तथा संस्कृति सभ्यता का ही, इस देश में बोल बाला है। गांव के थाने से लेकर वायसराय की बड़ी कौंसिल तक के क्षेत्र के सभी हल्कों में अंग्रेज जाति की घड़ी हुई मशीनरी-उस के कल पुर्जे-उसकी गति-विधि उसकी करामात और रोब सब कहीं नज़र आता है तो ऐसी अवस्था में हम एक अपना नया राग अलापने लगे हैं-एक पुराने ढांचे की नई मशीनरी (सो भी किसी बियाबान जङ्गल में) प्रतिष्ठापित करने लगे हैं, इसकी कौन पूछेगा इस लिये इस नये ज़माने और पश्चिम की नई रोशनी से अगर हमारे काम की चीजें हमें मिल सकती हैं तो उन से इनकार कर अपने को अन्धकार में रखना सरासर मूर्खता नहीं तो क्या है? इस प्रकार पहिले पहल गुरुकुलीय आदर्श वादियों तथा मिश्रित पद्धति के (व्यवहार वादी) पृष्ठ पोषकों के बीच जो गहरा अन्तर हो चला था उसे अपने २ विचार धाराओं के अनुसार कुछ कुछ भिन्न रूप दिया गया। परन्तु यह अत्यन्त सन्तोष का विषय रहा कि मूलभूत मन्तव्यों में-जैसे कि गांव और नगर से कुछ दूर गुरुकुलों का स्थान होना, विद्योपार्जन के समय आश्रम में वास तथा ब्रह्मचर्य और सदाचार के नित्य नियमों का अनुष्ठान, वैदिक तथा संस्कृत साहित्य की उच्च विद्या (अध्यात्म विद्या तक) का पठन पाठन, गुरु व आचार्य का सहवास प्राप्त होना, माता पिता तथा अन्य, संबन्धियों से अलग रहना, आर्यभाषा (राष्ट्रभाषा) द्वारा संपूर्ण शिक्षा का दिया जाना तथा विद्योपार्जन के साथ ही देश, समाज तथा राष्ट्रीय परिस्थिति से पूर्णतया परिचित होने के लिये आर्यभाषा या आंग्ल भाषा में पाश्चात्य साहित्य-दर्शन-विज्ञानादि विद्याओं का अभ्यास भी यथा रुचि आवश्यक होना इत्यादि मन्तव्यों में गुरुकुलीय आदर्श वादियों तथा व्यवहार वादियों में कभी भी घना मत भेद प्रकट न हुआ।

परिणामतः दोनों ही विचार धाराओं के गुरुकुल अपने २ दृष्टि बिन्दु को लक्ष्य रख अपना पाठ्य क्रम निर्धारित कर कार्य कर सञ्चालन करते रहे। इस सिलसिले में यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि प्रायः सभी गुरुकुलों का प्रारंभिक पाठ्य क्रम एक सा रहा। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वस्तुतः गुरुकुल का शिक्षा विषयक मूलभूत सिद्धान्त एक ही है। अर्थात् गुरुकुल शिक्षा की नीव या आधार शिला तो वही है जो ऋषि द्वारा प्रतिपादित है परन्तु ऊपरी और बाहरी ढांचे में फर्क आ गया है। जो कि इस बात का सबूत है कि सिद्धान्त और ध्येय एक होते हुए कार्य प्रणाली में भेद हो जाना संभव है। और कार्य प्रणाली में भेद होना तभी सम्भव है जब कि आप किसी उपस्थित समस्या को हल करने के लिए समस्या के किसी पहलू को अधिक आवश्यक समझते हैं, किसी पर ज्यादह जोर देते हैं और किसी को गौण समझ कर उसे आंखों से ओझल किया चाहते हैं। यह भी कदाचित सत्य है कि जो समस्या हमारे लिये गौण हो वही दूसरों के लिये ज़रूरी हो और हमारा उसे सामान्य समझना दूसरों की दृष्टि में भारी भूल या भ्रम हो। जो भी हो—परन्तु यह सब भेद आदर्श का चश्मा पहिन कर अपनी २ दृष्टि से ज़माने को देखने के कारण होता है। यही कारण है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आदर्श एक होते हुए भी जब वह कार्य रूप में (मूर्त रूप में) आया तो अपने २ दृष्टि बिन्दु की ताक के कारण भिन्न रास्तों को अख्तियार कर गया। इसका नतीजा जो कि वस्तुतः शोचनीय है यह हुआ कि सब को समान रूप में बांधने वाली बुनियादी एकता न रही और सब संस्थाएं भी एक और शृंखलित होने के स्थान में (कभी २) विशृंखल होने का परिचय देती रहीं। इस कमजोरी को जो कि गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की नींव को

ढीला कर सकती है हमें जल्द से जल्द दूर करना चाहिये। उसका जो सब से सरल और अत्यन्त व्यावहारिक उपाय है वह है प्रारम्भिक पाठ्य क्रम या बाल-शिक्षा की विधि में साम्य लाना।

जिन महानुभावों ने ऋषि कृत सत्यार्थप्रकाश, भूमिका तथा संस्कारविधि के वह स्थल ध्यान से देखे हैं जिनमें ब्रह्मचारियों की प्रारम्भिक शिक्षा की पाठविधि प्रदर्शित की गई है उनका पता चलेगा कि ऋषि का दृष्टिकोण लुप्त प्राय हुई संस्कृत-विद्या को ही पुनरुज्जीवित करने का था। वह चाहते थे कि प्रत्येक आर्यपुत्र की शिक्षा का आरम्भ वेद माता गायत्री मन्त्र से हो और उसकी दीक्षा का अवसान भी किसी अजरामर वेदों के सिद्धांत को परिपुष्ट करने वाले वेदांत सूत्रों से ही हो। यह पाठविधि अपने आप में आदर्श है और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आत्मा है। परन्तु इस आदर्श को देश काल तथा अपनी शक्ति के अनुसार कार्य रूप में लाने के लिये जिस साधना, तपो-निष्ठा तथा लगन की अपेक्षा है क्या वह हमारे पास पर्याप्त मात्रा में है। यदि नहीं है तो क्यों न हम उस प्रणाली में यथायोग्य परिवर्तन न करके देश कालानुसार उसे इस प्रकार का जामा दें जिससे हम आदर्शवाद को सुरक्षित रखते हुए और प्राचीनता की मर्यादा में विश्वास रखते हुए उस प्रणाली का विश्वास करें जिसे हम गुरुकुल शिक्षा के नाम से पुकारते हैं।

पहिले यह कहा गया है कि हमारी मौजूदा शिक्षा और खास तौर पर सरकारी व अर्ध सरकारी शिक्षा प्रायः कर बौद्धिक है। बालोद्यान की कक्षा से लेकर ग्रेजुएट (स्नातक) बनने तक सूत्र-सबक-गुर-सिद्धांत-अपवादादि ज्ञान के नियमों को घोखने में फिर चर्चा और आलोचना करने में ही सारा का सारा समय निकल जाता है। इस बीच यदि कुछ हमने क्रियात्मक व व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया होता है वह भी प्रयोगशाला तक ही परिमित रहता है। बाहर उसका कुछ भी उपयोग होता हो ऐसा कम देखा गया है। ऐसी हालत में कुछेक प्रोफेशनल (पेशेवर) शिक्षार्थियों के सिवाय जिन्हें अपने पेशे का क्रियात्मक शिक्षा मिल जाने से कमा कर जिन्दगी बसर करना आसान हो जाता है-दूसरे शिक्षार्थियों का आजीविका विषयक प्रश्न अत्यन्त जटिल हो जाता है। यहां तक कि उन्हें अपना भविष्य एक दम अन्धकारमय दीखता है और वह विद्यार्थी जीवन के उन पढ़ाई के वर्षों को खोया हुआ समय समझने लगते हैं। मौजूदा शिक्षा की इस कमजोरी को और अधूरपन को दूर करने के लिये ही देश के शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान विद्यार्थियों की शिक्षा को प्रारम्भ से ही उद्योग मूलक बनाने की ओर गया है। शिक्षा विदों को यह तथ्य खूब अच्छी तरह दीखने लग गया है कि किसी भी शिक्षा की उपादेयता उसके व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक होने में है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा की उपादेयता हमारी मौजूदा परिस्थिति में उसके उत्पादक होने पर निर्भर करती है। जिस प्रकार यन्त्र कलाओं की सार्थकता उनके वस्तु सृजन में होती है उसी प्रकार शिक्षा रूपी कला की उपादेयता उसके चारुतर सृजन में होनी चाहिये। और यह सृजन का क्षेत्र न केवल बौद्धिक और मानसिक स्तर तक सीमित होना चाहिये अपितु इसका विस्तार कला-कौशल अथवा शिल्प की मूर्त वस्तुओं को भी अपने अन्दर समाने वाला होना चाहिये। जब हम 'कला-कौशल व शिल्प' इस प्रकार के शब्दों का एक साथ विधान करते हैं तो हमारा अभिप्राय इन सबके सुप्रयोग द्वारा उत्पादित उन वस्तुओं से होता है जिनमें इन तीनों में से किसी का कम या अधिक अंश विद्यमान हो। आप जानते हैं कि इस प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में न केवल एक प्रकार का श्रम और धैर्य अपेक्षित है अपितु कर्ता की दक्षता व कुशलता भी अनिवार्य होती है। और यह सम्पूर्ण क्रिया कला पर यान्त्रिक क्रिया तब उद्योग नाम से कही जाती है। शिक्षा और विशेषतया प्राथमिक शिक्षा के उद्योगी करण का तात्पर्य यही है कि उत्पादन तथा कलामय सृजन के लिये ऐसे प्रयोगों नमूनों व परीक्षणों का सहारा लिया जाय जिससे बालकों के अन्तर में निहित हस्त-लाघव(उनकी मन और बुद्धि का सहारा लेकर) स्वाभाविकतया ऐसे क्रिया कलाप में फले फूले जिसके मूल तो हों उद्योग एवं फल और फूल हों वह वस्तुएं जिनकी उपयोगिता का माप मानवीय आवश्यकताओं की तृप्ति प्रद पूर्ति हो। (असमाप्त)

गुरुकुल समाचार

सब कुलवासियों ने श्रावणी के पवित्र त्योहार को बड़े उत्साह से मनाया। यज्ञोपवीत परिवर्तन के समय श्री आचार्य जी ने इसके तीन सूत्रों में निहित तीन ऋणों की याद दिलाते हुए कहा कि हमें इनसे मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये। इनसे उऋण होना हमारा धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक कर्तव्य है।

छुट्टियां प्रारम्भ हो जाने के कारण महाविद्यालय विभाग के अधिकांश ब्रह्मचारी अपने २ घरों को चले गये हैं। अवशिष्ट बन्धु भी धीरे २ जा रहे हैं। छोटे ब्रह्मचारी यहीं पर स्वास्थ्य लाभ करेंगे।

श्री मुख्याधिष्ठाता जी छुट्टी लेकर मसूरी चले गये हैं आज कल उनके स्थान पर श्री ठाकुर सत्यपाल जी कार्य कर रहे हैं।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० योगेश्वर १४ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० रामप्रकाश ५ श्रेणी चोट, ब्र० रामप्रकाश (बरेली) ३ श्रेणी उदरशूल।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १५ भाद्रपद १९९७; ३० अगस्त १९४०   [संख्या २०

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में बालशिक्षा का स्थान

(ले०—श्री धर्मेश विद्यालङ्कार)

(७)

सम्भवतः बाल शिक्षण का यह ढांचा पुरातन बौद्धिक शिक्षा के दृढ़ पोषकों को न जंचे। क्योंकि इसके द्वारा स्मृति और मेधा वर्धक वृत्तियां जिनके सहारे से बालक पहले बौद्धिक क्षेत्र में खूब पनपता था अब कुंठित होकर व्यर्थ पड़ी रहेंगी और उनका स्थान बालक की क्रियात्मक वृत्तियां-हस्त लाघव आदि ले लेंगी। परन्तु यह आशङ्का उस अंश तक ठीक हो सकती है जिस अंश तक कि बालक की क्रियात्मक वृत्तियां अन्धाधुन्ध नकल करने की ओर से प्रेरित की जाएं; जैसे कि बालक की बौद्धिक वृत्तियां भी निरर्थक घोखने में (ज़ुबानी यान्त्रिक अनुकरण करने में) व्यर्थ खोई जा सकती हैं। इन दोनों प्रकार के दोषों से ही बचने के लिये प्रारम्भ में यह कहा गया था कि बालक की ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियात्मक वृत्तियों में सहयोग उत्पन्न करते रहने से हमें वह मनोवांछित सामञ्जस्य प्राप्त होगा जो कि बाल-शिक्षा का आधारभूत तत्त्व कहा जा सकता है।

बाल मनोविज्ञान और बाल शिक्षा के बारे में जो भी खोजें अब तक हुई हैं उन से एक परिणाम तो बेखटके निकाला जा सकता है—वह यह कि बालक स्वभावतः कुछ सीखना चाहता है चाहे वह माता पिता या अध्यापक के सिखाने से सीखे या अनुकरण करने से सीखे और इस सीखने में भी एक प्रकट रहस्य यह मिलता है कि वह सीख जाने पर सीखी चीज का जैसे तैसे उपयोग करना चाहता है। हमने पहिले कहा था कि मनुष्य विचारों और कर्मों का पुतला है और यह बात बालक के बारे में भी उतनी ही सच्चाई से कही जा सकती है। यही भाव उठता है कि "बाल शिक्षण तो ऐसा ही होना चाहिये जिससे बालक को आसानी से अगले और अच्छे विचार प्राप्त हों और साथ ही अच्छाई से कुछ काम करना भी आ जाय। अब रहा बात यह कि वह अच्छे विचार कैसे हों कब और किस २ अवस्था में दिये जायं और साथ ही अच्छाई और सुन्दरता से सिखाये जाने वाले कार्य कैसे हों, कौन २ से हों और उन्हें किस २ समय में करना सिखाया जाय। यह विषय शिक्षाशालाओं के पाठ्यक्रम के साथ सम्बन्ध रखता है और प्रायः अनुभवी अध्यापकों के अनुभव के आधार पर अथवा उन २ विषयों पर उपलब्ध होने वाली पुस्तकों की सूची के अनुसार संपन्न किया जाता है। हमारे लिये फिर भी झमेले की बात तो वह ही रह जाती है कि हम किस आधारभूत (Basic) उद्योग व कला कौशल का आश्रय लेकर यह पाठ्य क्रम जारी करें। और क्या इसे जारी करने के लिये हमारे पास उपयुक्त सामग्री है? उचित क्षमता है, जिसकी बुनियाद पर हम कह सकें कि हम जिस पद्धति को अपना रहे हैं वह पहिले की पद्धतियों से (बौद्धिक और मानसिक तौर पर) अधिक व्यावहारिक है। और निश्चय ही इस पद्धति में पले हुए विद्यार्थी जीवन की यात्रा और संग्राम में पहिले से अधिक सफल और विजयी सिद्ध होंगे। यह उपरोक्त सन्देह स्वाभाविक है और इस प्रकार के सन्देह का उत्तर भी इस नवीन कही जाने वाली प्राचीन पद्धति के अनुसार ही प्रयोग जारी होने पर मिल सकेगा। मेरी समझ में तो गुरुकुल कोई किसी एक ही रूढ़ प्रणाली की निदर्शक संस्था नहीं है। गुरुकुल का अपनापन गुरुकुल की ठोस छाप यदि पाश्चात्य विज्ञानों और अंग्रेजी पढ़ाने से नहीं मिट सकी तो इसका अपनापन बुनियादी तालीम के ढांचे की दस्तकारी भी पढ़ाई के साथ ही साथ सिखाने से मिट न जायेगा। प्रत्युत तुलनात्मक और व्यावहारिक दृष्टि से देखने वालों को तो इससे अधिक क्या प्रसन्नता होगी कि प्राचीन जमाने के गुरुकुलों की तरह आज भी फिर से गुरुकुलों में उद्योग धन्धों के सहयोग से तालीम की व्यवस्था हो सकी। कहा जाता है कि प्राचीन जमाने के आरण्यक (गुरुकुलों) में गुरु अपने शिष्यों को (प्रायः पुस्तकों के बिना) उनके दर्शन, अनुभव और गवेषणाओं के आधार पर उन्हें अक्षरमाला आम सूक्तपदों

के ज्ञान से लेकर उच्चतम ब्रह्मविद्या की कोटि तक का ज्ञान करा दिया करते थे। यदि उस समय ज्ञान का संपादन उदात्त कला तक पहुंच चुका था तो क्या आधुनिक समय में हमसे इतना न हो सकेगा कि हम उन नन्हें २ बच्चों को जो कोई तो बर्मा और सिन्ध से, कोई मद्रास और गुजरात से, कोई बङ्गाल और पञ्जाब से और कोई बिहार राजपूताना और महाराष्ट्र से, एक एक करके गुरुकुलों में आजुटे हों, सरल—सुबोध तरीके से, व्यापक–व्यावहारिक दृष्टांत से अपने पाठों की ओर आकर्षित करें। और उनमें शिक्षा के लिये ऐसी दिलचस्पी पैदा करदें जिससे उनका वस्तु वस्तु को देखना और अंगुलियों के सहारे ताने बाने में लगे रहना स्वयं ऐसा पाठ सिद्ध हो जिसका पुनः पुनः दोहराना उनके लिये न केवल मनोरञ्जन का विषय हो अपितु अग्रिम पाठों की नई सूझ और अगली कलाकी सजीव झांकी हो।

यह सब कैसे सम्पादित हो सकेगा यदि इस दिशा में अपने आपको खोकर खोज करने वाले कुछेक शिक्षाशास्त्री इस आवश्यकीय कार्य में सहयोग न दें। उनका इस कार्य के लिये अपने आपको अर्पित करना इस लिये भी आवश्यक है क्यों कि यही 'बालशिक्षा' का सवाल कुछ ही सालों में (सम्भवतः) इस देश के बाधित प्राथमिक शिक्षा (compulsory primary education) के परीक्षण के रूप में हमारे सामने आये। देश की सहज साक्षरता तथा निःशुल्क शिक्षा के ध्येय को जब हम अपने सामने देखते हैं और दूसरी ओर देशवासियों का निरक्षर भद्दापन और दर्दनाक गरीबी तथा बढ़ती हुई घनी आबादी आंखों के सामने आती है तो यह समस्या विकट रूप धारण कर लेती है। परन्तु हमें निराश न होना चाहिये क्योंकि यह समस्यायें इसी लिये बनी हैं कि इनका ठीक २ हल सोचा जाय और तदनुसार आचरण किया जाय। समस्यायें समस्या बन कर हमारे सामने आती हैं और हमें उनका हल पेश करने को कहती हैं। ठीक यही बात आज हमारी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सम्मुख है: हमारी समस्या यह नहीं है कि गुरुकुल के स्नातकों को सरकारी नौकरियां नहीं मिलतीं? हमारी समस्या यह भी नहीं है कि इस शिक्षणालय की डिग्री को कौन स्वीकार करता है और कौन नहीं; यह भी हमारी समस्या नहीं कि हमारे यहां के स्नातक सरकारी स्कूलों के ग्रेजुएटों की तरह क्यों नहीं अंग्रेजी में लिख–बोल सकते, या वकालत कर सकते; परन्तु हमारी असली समस्या तो यह है कि गुरुकुल प्रणाली ने जो देश में प्रचलित सरकारी शिक्षा प्रणाली के मुकाबले में अपना शोध और ढांचा पेश किया है क्या वह देश और काल, राज्य और प्रजा की मौजूदा हालतों में अपने पन की छाप अमिट कर सकेगा। बहुतेरे लोग गुरुकुल को एक परीक्षण कहने का चाव रखते हैं–वह ऐसा कह कर परीक्षणों के सन्देहात्मक परिणाम की तरफ लोगों का ध्यान खींच कर कुछ सशंक आनन्द भी अनुभव कर लेते हैं–परन्तु सच कहा जाय तो मेरे लिये गुरुकुल भी परीक्षण के रूप में न तो था, न रहेगा; यह तो एक आजमाई हुई, चिरपरिचित, प्रणाली है, शिक्षा की शैली पद्धति है जिसके अनुसार, पग २ बढ़ने से, कभी असफलता हो ही नहीं सकती। क्या किसी शिक्षापद्धति को राज्याश्रय प्राप्त न होना, उसकी असफलता में कारण हो सकता है? अथवा उसके स्नातकों को मोटी तनख्वाहों की नौकरियां न मिलना शिक्षणालय की नींव को हिला सका है? यह सब बातें शिक्षणालयों के गौरवको न तो घटा सकी हैं न बढ़ा सकी हैं और मौजूदा हालत में उनका मिलना या न मिलना राष्ट्रीय संस्थाओं के लिये कुछ विशेष अर्थ भी नहीं रखता। तब फिर वह बात क्या है जिसको लेकर हम शिक्षा के क्षेत्र में आये हैं और जिसे जनता को दिखा कर हम इस क्षेत्र में टिकने का वायदा करते हैं। एक शब्द में कहा जाय तो वह है 'गुरुकुल' जो कि भारतीय शिक्षा की आत्मा है, आर्य्यावर्त देश की मानी हुई शिक्षा प्रणाली है। और है मौजूदा जमाने में शिक्षा का वह आदर्श जिसके अन्दर धार्मिक, जातीय और और राष्ट्रीय शिक्षा तानों इस खूबी से समा जाते हैं कि 'गुरुकुल' का अपनापन ठीक २ झलक पड़ता है।

इन शब्दों के लिखने के उपरान्त यह आवश्यक जान पड़ता है कि बालशिक्षा विषयक लेखों को समाप्त करते हुए हम उन सचाईयों, सूक्तों और व्यवहार्य प्रयोगों को संक्षेप में एक बार फिर दोहरादें जिससे इस विषय में उपयोगी सामग्री एकत्रित करने के लिये हमें सहूलियत हो। कार्य प्रारम्भ करने के पहिले जैसे सामग्री जुटाना आवश्यक होता है वैसे ही कार्य की पद्धति–दिशा तथा रूप रेखा को भी कार्यकर्ता को जानकारी होनी चाहिये। शायद केवल जानकारी होने से भी काम न चलेगा जब तक कि जानकारी के साथ उसका व्यावहारिक प्रयोग भी न सोचा हो। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सब से पहिले बाल मनोविज्ञान तथा बाल शिक्षण कला को सीखे समझे हुए शिक्षक तय्यार किये जायें। बिना शिक्षित और परीक्षित अध्यापकों के बालकों की शिक्षा जैसी (अति सुगम अतएव अति कठिन) शिक्षा शास्त्र की प्रथम कला का संपन्न होना संभवनीय नहीं। जिस प्रकार व्योम विहारी विधाता चन्द्रकला को प्रथम चाप को खींचने में अपनी समस्त कला की सत्यता और संपूर्णता घोतित करता है इसी प्रकार बालोद्यान के अध्यापक के लिये आवश्यकीय है कि वह भी बालक के मानसपटल पर शुभ विचारों की शुद्ध-सुन्दर छाप खींचे; उन्हें समता और संयम की ओर लजाने वाली सुकला का प्रति दिन दिग्दर्शन कराता रहे, तथा स्वयं प्रत्येक बात में उनका उदाहरण बन उन्हें सुविचारी होने और सत्कर्मी बनने की शिक्षा साथ ही साथ दे।

रह रह कर एक प्रश्न दिल में उठता है कि क्या बालकों को प्रथम कक्षा से ही किसी दस्तकारी का सिखाना लाजमी होना चाहिये। क्या वह पद्धति जिसमें स्मरण द्वारा स्मृति और मति बुद्धि को पुष्ट किया जाता था इतनी हेय है कि उसका सर्वथा त्याग कर दिया जाय। इस का यथाकथित उत्तर तो यही है कि ऐसा करने का अभिप्राय किसी का भी न होना चाहिये। परन्तु इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये यह बतलाना उचित जान पड़ता है कि

केशरी कृष्ण को शुभमुहूर्त में गुरुकुल मे प्रविष्ट कराया। इस प्रकार मेरा संकल्प पूरा हुआ। मैंने अपने चिरन्तन मित्र श्री पं० वागीश्वर विद्यालंकार जी से कहा कि मेरे बच्चे के प्रवेश से सनातन जगत में गुरुकुल का बड़ी भारी विजय हुई ऐसा आप समझें। क्योंकि वह काशी में रहकर वहां के सनातन धर्मी विद्वानों के पास अध्ययन करके उनके भावों से पूरे परिचित हैं।

अस्तु यह तो एक ओर की बातें हुई। मेरे साहस को उत्तेजित करने वालों तथा उसके सहायक महापुरुषों का दिग्मात्र निर्देश कर देना चाहता हूँ। सन् १६३२ ई० में राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण फैज़ाबाद में साथी हुए भाई पूर्णचन्द जी विद्यालंकार, श्री काशीविद्यापीठ के तत्कालीन आचार्य श्री रामशरण लाल जी, हरिजन गुरुकुल परिआपुर आज़मगढ़ के आचार्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती एवं गुरुकुल के प्रधानाचार्य प० अभयदेव जी महाराज प्रभृति महापुरुषों की कृपा से ही मेरे में इतना साहस आगया कि मैं सनातनधर्मी समुदाय के बीच में रहता हुआ भी अपने ज्येष्ठ पुत्र को गुरुकुल में भर्ती करा सका। सब के अन्त में दानवीर श्रीमान् भाई टेकचन्द जी सेठ को धन्यवाद देना चाहता हूं जिनकी आर्थिक सहायता से श्री केशरी कृष्ण ऐसे ब्रह्मचारियों का प्रवेश गुरुकुल में हो पाता है। और व ब्रह्मचारी गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली से लाभ उठ पाते हैं। इस प्रकार यह संक्षिप्त ब्रह्मचारीके प्रवेश की कथा यहां ही समाप्त होती है।

श्री गोपाल शास्त्री जी का बालक

इसी अंक में ऊपर छपे 'श्री केशरी कृष्ण का गुरुकुल प्रवेश' शीर्षक लेखकी तरफ पाठकों का ध्यान खींचना उचित ही है, विशेषत: जब कि सहृदय लेखक महानुभाव ने अपने इस लेख में गुरुकुलोत्सव पर मुझ द्वारा सुनाये गये अपने एक पत्र का उल्लेख कर दिया है। यह बात ठीक है कि गुरुकुल के गत वार्षिकोत्सव पर गुरुकुल सम्मेलन के अवसर पर जब मुझे कुछ बोलने के लिये कहा गया तो अनायास ही इन श्री गोपाल शास्त्री जी के उसी समय मुझे मिले एक पत्र का कुछ अंश सुना देना भी, अन्य एक दो दूसरी चर्चाओं के अतिरिक्त, अपने उस समय के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये अनुकूल हुआ था। गुरुकुलोत्सव पर वेदारम्भ संस्कार के समय से पहिले पहिले इनके बालक के आजाने की प्रतीक्षा थी। पर इनके बालक की जगह इनका एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि ये अपने बालक को लाने के लिये सब तैयारी कर चुके थे कि ठीक वक्त पर बालक को उड़ा लिया गया है। एक षड़यन्त्रों के द्वारा बालक के वृद्ध संबन्धियों ने उसे रातों रात दूसरा जगह पहुँचा दिया था। श्री गोपाल शास्त्री जी डटकर फिर अपने बालक को कई मास बाद अब गुरुकुल ले आये हैं। उन्होंने शास्त्रार्थ द्वारा भी विजय प्राप्त की, जैसा कि उन्होंने अपने लेख में लिखा है। इस प्रकार जो बालक गुरुकुल में आवे, निःसंदेह उसकी बहुत कीमत है। श्रीमान्य पंडित जी सनातन धर्मी हैं, काशी के एक प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान हैं, वहां की पंडित सभा के मंत्री हैं। निःसन्देह किसी समय यह असंभव बात थी कि काशी के ऐसे सनातनी पंडित आर्यसमाज के गुरुकुल में अपने बालक को प्रविष्ट करने का विचार भी करें। पर गुरुकुल के आदर्श की सचाई की ओर श्री गोपाल शास्त्री जी जैसे उदार और सत्य प्रेमी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट न होना भी कब तक बचा रह सकता था। गुरुकुल के आदर्श के अनुसार जो थोड़ा सा भी क्रियात्मक अनुसरण अभी तक किया गया है उसी का यह फल है। यदि हम गुरुकुल को सचमुच उसके आदर्श की तरफ कुछ भी अधिक अग्रसर कर सकें तो गुरुकुल में बहुत से उत्कृष्ट उत्कृष्ट आत्माओं को आकृष्ट करने की शक्ति प्रकट हो सकती है इसमें कोई संदेह नहीं। यह तो कहने की ज़रूरत नहीं कि श्री गोपाल शास्त्री जी ने गुरुकुल की जो बड़ाई की है उसे मैं अभी स्वीकार नहीं करता हूं। यह तो श्री शास्त्री जी की सज्जनता और गुणग्राहता की ही परिचायक है। पर यदि इन जैसे सज्जनों का सहयोग मिलता रहा तो हम उस तरफ पहुंच सकते हैं ऐसी आशा अवश्य है। इसलिये इस लेख को भेजते हुवे पंडित जी ने जो पत्र लिखा है उसके इन शब्दों को उद्धृत करते हुवे "हमारी यह धारणा है कि भारत ही ज्ञान का गुरु है। वही:—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

यह कहने का अधिकारी है। सो आपकी गुरुकुल की शिक्षा पद्धति के द्वारा ही हो सकता है।"

आशा करता हूं इन जैसे विद्वान पुरुष हमें सदा इसी तरह हमारे कठोर कर्त्तव्य के प्रति सदा चेताते रहेंगे और परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे हमें ऐसे भावों से भेजे गये बालकों को संभालने की और उनके माता पिताओं की ऊंची आशाओं को पूरी करने की शक्ति हमें प्रदान करें।

—अभय

गीत

जग कैसा हमरा।
दूर क्षितिज तक बिछी मही है, सागर नीर भरा॥
गंग नीर निर्मल है बहता, निर्झर शैल गिरा।
नद नदियां गलबाहियां डाले चल देतीं लहरा॥
सीमाओं का निशि अवगुंठन हो जाता गहरा।
प्रात पताका दिग्वधुएं भी सब देतीं फहरा॥
दूब घास उगती है बन में, ग्वाल बाल चरा-
गौओं को, गाता रहता है पीपल तले परा॥
घनी सांझ पै घण्टो बजती, घर घर दीप जला।
सोते किसान हैं भाई- प्रिय देते पहरा॥

"द्विरेफ"

[देखिए पृष्ठ ३ का शेष]

मेरा और आगे पुस्तक का पढ़ना न हो सका। मेरा दिमाग़ अनेक दर्द पैदा कर देने वाले ख्यालों से भर उठा। मैंने सोचा- 'ओह, अपने मां बाप, भाई बहन, सगे सम्बन्धी और अपने गांव के परिचित लोगों एवं अपने साथ खेलने वाले हमउम्र दोस्तों को जबरन् छोड़ कर, उनके साथ गुंथे हुए अपने स्नेह के तागों को १४ बरस के लम्बे अर्से के लिये तोड़कर गुरुकुल में प्रविष्ट हुए २ ये बच्चे अपने ही गांव के निवासी के साथ बात चीत करके अपने वियोग के दुःख से दग्ध होते हुए हृदय को कुछ तसल्ली देने के वास्ते यहां आये थे, मगर बेचारों को वह भी नसीब न हो सका !'

आप ज़रा उस दृश्य की कल्पना तो कीजिये, जब नन्हें २ बच्चे अपने घरबार को छोड़ कर, दूर इस आचार्य के कुल में रोते हुए प्रविष्ट होते हैं, और अपने को एक दम अपरिचित लोगों के बीच में घिरा देख कर घबरा उठते हैं, तथा छटपटाते हैं किसी परिचित व्यक्ति को प्राप्त करने के लिये ! कितनी करुणा को उत्पन्न करने वाला चित्र हमारी आंखों के सामने उपस्थित हो उठता है ! मुझे याद आता है हम भी इसी तरह रोते हुए अपने मां बाप का घर छोड़कर गुरुकुल के दायरे से घिरे हुए इस आसमान के नीचे आये थे। उस वक्त हम कितना तड़फते थे, मां बाप को और अपने गांव को याद करके ! जब मैं दूसरी श्रेणी में था, तब विद्यालय की दीवार पर टँगे एक चित्र पर जोकि 'चित्रशाला प्रेस पूना' का छपा था, और जिसमें भारत वर्ष की प्रचलित मुद्राओं की आकृतियां दिखा रक्खी थीं, मराठी के वाक्यों को पढ़कर, अपने घर को याद करके बुरी तरह रो पड़ा था।

पाठक, अपने गुरुकुलीय जीवन के उषःकाल में हम लोगों के कोमल हृदयों पर अपने घर वालों से बिछड़ने के जो घाव लगे थे, वे इतने बड़े अर्से के गुज़र जाने के बाद भी उसी तरह हरे हैं। थोड़ी देर के लिये उनपर खुरंड आ जाता है, और हम समझने लगते हैं कि हमारे वे घाव अब सूख चले हैं, मगर साल के बाद जब फिर दीक्षारम्भ संस्कार का दृश्य उपस्थित हो जाता है, तब न जाने कौन उन घावों को खुरच डालता है और हमारे दिल एक नितान्त असह्य पीड़ा और विषाद से भर उठते हैं।

एक यह विछोह है, जिसके बड़े भारी पत्थर को अपने कलेजे के साथ चिपटाये हुए हम उस गुरुकुलीय जीवन के तपोमय मार्ग पर आगे और आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

× × ×

अब उन बच्चों ने बहुत ही आकुल स्वर में मुझ से पूछा कि '''गये ?' तब मेरे हृदय में भी यह प्रश्न सौ २ स्वरों में फूट पड़ा 'गये ?'

उस दिन अभी हमारा उत्सव हो रहा था। अकस्मात् किसी ने मेरे कन्धे को हिलाकर कहा, बाहर आओ; नरेन्द्र जी बुला रहे हैं। मैं बाहर आया। इसी वर्ष के नव स्नातक पं० नरेन्द्र जी वेदालंकार खड़े हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने कहा, फ़रमाइये। पं० जी ने अपनी जेब से चमड़े का बटुआ निकाला, उसमें एक छोटी सी ताली थी उसे मेरे हाथ में देते हुए उन्होंने कहा, यह लीजिये, साहित्य परिषत् की अलमारी की ताली पकड़िये। मैं जा रहा हूं।

मैंने ताली लेकर अपनी जेब में रख ली। अगले दिन जब कि उत्सव समाप्त हो चुका था, मैं महाविद्यालय के 'अ' नामक कमरे में घुसा। मैंने साहित्य परिषत् की ताकी खोलकर अन्दर पड़े हुए काग़ज़ात को देखा। पं० नरेन्द्र जी गत वर्ष साहित्यपरिषत् के मन्त्री थे, मैं उनका सहकारी था। उन कागज़ों में पं० जी का कर्तृत्व बोल रहा था। पं० जी की हस्तलिपि, पं० जी की स्वतर्कता, प० जी की विचार शीलता, पं० जी की योग्यता, नीति निपुणता और विद्वत्ता एक २ वस्तु उन कागज़ों पर अक्षरों के रूप में अंकित हो रही थी। सहसा ध्यान में आया पं० नरेन्द्र जी तो चले गये हैं। उनकी ताकी में धरी हुई वे कागज़ की पुर्जियां पुकार कर पूछने लगीं—' ''गये ?'

मैंने अपने हृदय में उत्पन्न होने वाली एक विचित्र प्रकार की बेचैनी से बचने के लिये उस कागज़ के पुलिन्दे को बांध करके ताकी में ताला लगा दिया।

उसी दिन सांझ को मैं नहर पर घूमने निकला। अकेला तो था ही, नहर के पुल पर बैठे हुए एक साधु ने मुझे बात चीत करने के लिये बुला लिया। मैं उस बहरे साधु से बात चीत कर ही रहा था कि, सामने कुछ गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और नव स्नातकों का एक छोटा सा समूह आता हुआ दिखाई दिया। उसके नज़दीक आने पर मालूम पड़ा, कि, पं० ब्रह्मदत्त जी अपने चौदह बरस के गुरुकुल के अध्ययन काल से हमेशा के वास्ते बिदा ले रहे हैं। ये लोग उन्हीं को स्टेशन पर छोड़ने के लिये जा रहे हैं। मैंने कहा, कल एक तो जा ही चुका है, लो मां; यह दूसरा भी चल दिया।

आश्रम में आकर मैं १ नं० के कमरे में घुसा। पं० ब्रह्मदत्त जी की ताकी खुली हुई थी। मैंने जाकर देखा ताकी का हर एक फट्टा एक सुन्दर ढंग से पीले २ चिकने कागज़ों से मढ़ा हुआ है। ताकी के किवाड़ों पर पं० जी कुछ लिखा हुआ छोड़ गये हैं, एक कागज पर उनके हस्ताक्षर हैं, दूसरे पर समय विभाग सा कुछ लिखा हुआ है। जब मैंने ब्रह्मदत्त जी की ताकी खोली तो अन्दर से फिर वही प्रश्न उठा–'...गये ?' मेरा हृदय बेचैन हो रहा था, मैंने तत्काल ताकी बन्द कर दी। थोड़ी देर बाद मैंने देखा, उनका सीट को कैप्चर करने के इरादे से हमारी श्रेणी के किसी साथी ने उस ताकी पर अपना ताला लगा दिया है।

जब बादल आसमान में मँडराते २ जल कणों के बोझ से लद जाते हैं, तब पहले पहल एक बूंद नीचे की ओर टपकती है, फिर दो चार बूंदें टपकती हैं और फिर एकदम धड़धड़ करके झराझर वर्षा शुरू हो जाती है। इसी तरह दो दिन तक एक दो करके गुरुकुल से विदा लेने वाले

हम तो शिक्षा के दायरे में परस्परोपकारिता अर्थात् सह-योग के नियम को अपना मन्तव्य समझते हैं। जिस प्रकार मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भिन्न २ क्षेत्रों में काम करती हुईं भी परस्पर एक दूसरे की सहायिका बन कर एक दूसरे के ज्ञातव्य और कर्तव्य को पूरा करती हैं इसी तरह शिक्षा के प्रारम्भ से ही हमारी मति-बुद्धि तर्क और स्मृति को हमारे रचनात्मक उद्योगों में सहा-यक होना चाहिये। सादी भाषा में इसे यों कहा जायगा कि "हमारे दिमाग और हाथ को एक दूसरे के लिये काम करना चाहिये।" वस्तुतः यही उद्योग मूलक शिक्षा है अथवा शिक्षा का उद्योगी करण है।

प्राचीन गुरु 'यज्ञ' अथवा 'वेदि' के प्रतीक द्वारा प्रकृति तथा ऋतुओं के तारतम्य और परिवर्तन द्वारा तथा कृषि, गोपालन, वस्तुवाय के धन्धे द्वारा और अश्व, रथ, नावादि यन्त्र कलाओं का परिचय करा कर शिष्य का कल्याण कर शिक्षण करते थे। यद्यपि यह पद्धति अब लुप्त हो चली परन्तु खोज लगन और परीक्षणों से इसे फिर प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि वर्धा की बुनियादी तालीम की योजना में प्रारम्भिक कक्षाओं के लिये इसकी रूप रेखा निश्चित भी करली गई है।

शिक्षा के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ हमें उद्योग मूलक दृष्टिकोण का कबूल करने में संकोच नहीं करना चाहिये। क्योंकि हमारी गुरुकुल प्रणाली की तह में यह दोनों ही दृष्टिकोण पहले विद्यमान थे और आज भी ज़रा से अध्यवसाय से इसकी योजना बन सकती है, बशर्ते कि हम इस उद्योग मूलक परिवर्तन का स्वागत करने को तैयार हों।

लेख के बीच में एक संकेत किया गया था कि सब गुरुकुलों की प्रारम्भिक शिक्षा का समीकरण होना चाहिये। उससे हमारा मतलब यह था कि क्योंकि बालकों की शिक्षा विषयक आदिम ज़रूरियात प्रायः एक-सी होती हैं इस लिये कम से कम वृत्त के मूल या निचले तने की तरह प्रारम्भिक पाठ्य क्रम को ठोस (मूर्त) रूप में एकाकार करके श्रेणी बद्ध करना चाहिये। इसका फल यह होगा कि हम बालकों की आवश्यकताओं, और झुकाव के अनुसार उन्हें उत्तम से उत्तम सबक सरल और सुबोध तरीके से दे सकेंगे। (यानी किसी मूर्त प्रक्रिया द्वारा दे सकेंगे)

देश की औद्योगिक उत्पादन शक्ति का जो ह्रास हो चुका है उसे पुनरुज्जीवित करने के लिये न केवल हमारा ध्यान ही जावेगा परन्तु अपने ढंग से पुनर्निर्माण में हम सक्रिय हाथ बंटा सकेंगे।

शिक्षा शास्त्र की नींव में दस्तकारी (कला कारीगरी) को उचित स्थान देकर इसके मितव्यय और अनुत्पादक रूप को बदलना आसान होगा और अपने देश के छात्रों की लोकोक्त (मौखिक) कला विहीनता को दूर करने का यत्न निभाया जा सकेगा।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सुदृढ़ और गुरुकुलों को शृंखला बद्ध करने के लिये यह इस प्रकार का पुरोगम होगा जिसमें आर्य भाषा की तरह किसी व्यापक उद्योग धन्धे का भी शिक्षा का माध्यम बनाने सम्बन्धी खोजें और शोध होकर शिक्षा शास्त्र की उस उदात्त कला को प्राप्त किया जा सकेगा जो श्रम और सृजन के द्वारा स्वावलम्बी होना सिखाती है।

......गये ?

(ले०—श्री आनन्द)

अभी कल या परसों ही जलसा समाप्त हुआ था। गुरुकुल महाविद्यालय भवन १ नं० कमरे में एक बिस्तर का तकिया बनाकर लेटे लेटे मैं एक पुस्तक बांच रहा था। उस पुस्तक के पढ़ने में मेरा दिल लग भी रहा था या नहीं, यह तो मैं ही जानता हूं; लेकिन इस में कोई शक नहीं कि वह पुस्तक बहुत उपादेय थी और विशेष करके जिन्होंने आगे चल कर आर्य समाज का प्रधान बनना हो, उनके लिये।

इतने में दो छोटे ब्रह्मचारी उस कमरे के किवाड़ के नज़दीक आकर खड़े हो गये। वे अभी इसी वर्ष गुरुकुल में प्रविष्ट हुए थे, उनका अभी तक मुंडित सिर इस बात का सबूत पेश कर रहा था। मैंने उनकी ओर देखा; उन्होंने भी मेरी तरफ अपनी नजर की। मैं शायद अपने मुंह से दो चार शब्द निकालना चाहता था कि उन्होंने ही पूछ लिया, पं० धर्म प्रकाश जी कहां हैं ?'

मैंने उनके सवाल का जवाब न देते हुए खुद उन से पूछा—'तुम चरथावल के रहने वाले हो ?'

'हां' उन्होंने जवाब दिया।

'तो क्या पं० धर्मप्रकाश जी से मिलने आये हो ?'

उन्होंने कहा—'हां'।

गत वर्ष दीर्घावकाश के दिनों में मैंने अपने मित्र पं० सुशीलकुमार जी वेदालंकार के साथ गांवों की पैदल यात्रा की थी, उसी प्रसंग में मुझे अपने आचार्य स्वामी-अभय देव जी की जन्म भूमि चरथावल में भी जाने का सौभाग्य लाभ हुआ था। चरथावल के इन दो बच्चों को देखकर मुझे सहसा चरथावल की सारी मधुर स्मृतियां याद आ गईं। हम तब तो दो थे। जब आर्य समाज के प्रधान जी ने हम दोनों से नाम पूछे, और मैंने बतला या कि मेरा नाम 'आनन्द' है और मेरे साथी का नाम 'सुशील' तो मुझे याद है, उन्होंने हम दोनों के नामों को लेकर एक बहुत ही मीठी मज़ाक करते हुए कहा था, 'वाह, बड़ी अच्छी जोड़ी है, जहां सुशील होगा, वहां आनन्द को तो होना ही चाहिये।' अपने सामने खड़ी इन दो बच्चों की नवदीक्षित जोड़ी को देखकर मुझे अपनी वह पुरानी बात स्मरण हो आई।

खैर। मैंने उन बच्चों से कहा— पं० धर्म प्रकाश जी तो कल ही सांझ को चरथावल चले गये।

'.......गये ?' मैंने देखा, उन दोनों बच्चों की आंखें पानी से भर आईं और वे अत्यन्त उदास एवं म्लान मुख बनाकर यहां से चल दिये।

× × ×

[शेष पृष्ठ ६ पर देखिए]

गु रु कु ल

१५ भाद्रपद शुक्रवार १९९७

श्री केशरी कृष्ण का गुरुकुल प्रवेश

[ले०--श्री गोपाल शास्त्री जी, मंत्री श्री काशी पंडित सभा, काशी]

मैं श्री काशी विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति की बैठकों में प्रसंगानुसार श्री शिव प्रसाद जी गुप्त द्वारा प्रायः गुरुकुल की प्रशंसा सुना करता था। और बाहर भी अपने विशिष्ट मित्रों से गुरुकुल की प्रशंसा सुनने में आती थी। जिससे अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री केशरी कृष्ण को गुरुकुल में प्रवेश कराने का मेरा सङ्कल्प हुआ। उस सकल्प की दृढता उस समय हुई जब मेरे प्राचीन मित्र पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार यू०पी गवर्म्मेण्ट द्वारा निर्वाचित होकर संस्कृत कालिज बनारस की शिक्षा सुधार समिति की बैठक में मिले, और उनसे गुरुकुल की पाठ्य पद्धति के विषय में विशेष बातें हुईं। अब मुझे अपने संकल्प को पूरा करने की चिन्ता हुई। क्योंकि मेरा परिवार प्राचीन पद्धति के अनुसार सनातन धर्म का आचार्य पुरोहित कुलगुरु है। इस अवस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र को आर्य समाज के गुरुकुल म रखना मेरे लिये एक बड़ी भारी समस्या थी। तो भी मैंने सब प्रकार के त्याग करने पर आरूढ होकर इस संकल्प को पूरा करने की इच्छा से अपने मान्य मित्र पं० रामनारायण जी मिश्र प्रिन्सिपल डी ए वी कालेज बनारस तथा डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री प्रिन्सिपल संस्कृत कालेज बनारस द्वारा बच्चे के प्रवेशार्थ आवेदन पत्र को प्रमाणित कराकर नियमानुसार गुरुकुल के आचार्य जी के पास भेज दिया। साथ ही अपने कट्टर सनातनधर्मी परिवार तथा श्री काशी पण्डित सभा के सदस्य विद्वानों से सनातन धर्म एवं आर्य्य धर्म के लाघवगौरव के शास्त्रार्थ में भी प्रविष्ट हुआ। अन्त में सच्चे सनातन धर्म और आर्य धर्म में कुछ भी अन्तर न दीख पड़ने के कारण मेरे मित्रों ने तथा परिवार के विशिष्ट व्यक्तियों ने बच्चे को गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश कराने की आज्ञा देदी। एक बड़े कट्टर सनातन धर्मी काशी के विशिष्ट दाक्षिणात्य विद्वान् ने अपना अनुभव बताते हुए कहा कि 'गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार के एक अभिनव स्नातक कुछ दिन हुए मेरे यहां यात्रा क्रम से आकर ठहरे थे। उनकी शिष्टता, विद्वत्ता व्यवहार पटुता तथा देश प्रेम सदाचार-परायणता प्रभृति सद्गुणों को देखकर मैं मुग्ध होगया हूं। और मैं गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार की शिक्षा पद्धति का हृदय से समर्थक होगया हूं। आप अवश्य जिस प्रकार भी हो सके अपने बच्चों को गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश करावें' इत्यादि बातें कहकर उन्होंने मेरे उत्साह को द्विगुणित कर दिया।

अस्तु अब मेरे सामने मुख्य अड़चनें रह गयीं बच्चे के पितामह (मेरे पिताजी) को तथा उसकी माता के स्वाभाविक वात्सल्य के मोहसे सामना करने की। इनके द्वारा ऐसी अड़चनें आयीं जिनका लिखना दुस्तर है। मेरे पिताजी द्वारा जिस प्रकार की अड़चन लगायी गयी थी, उसको तो गुरुकुल के वार्षिकोत्सव संस्कार के समय उपस्थित सज्जनों ने सुना ही होगा। मैंने उसी समय उस घटना को लिख भेजा था और प्रधानाचार्य जी ने उत्संव पर उस पत्र को ही पढ़ सुनाया था। बच्चे की माता का पुत्रमोह तो गुरुकुल कांगड़ी में आकर बिलकुल काफूर होगया। उसकी भी बड़ी लम्बी कहानी है। पर उसका अति संक्षिप्त स्वरूप यह है कि मैं बच्चे की माता को लेकर गुरुकुल पहुंचा। वहां कनखल में ठहर कर गुरुकुल देखनेके वास्ते बराबर आने जाने लगा। बच्चेकी माता तो रास्ते में तांगे पर या डेरे में मेरे समक्ष तथा परोक्ष में जो कोई भी विशिष्ट व्यक्ति मिले उससे गुरुकुल के विषय में जांच पड़ताल करने लगी। परोक्ष का तो मुझे मालूम नहीं। पर मेरे सामने जितने लोगों से उन्होंने गुरुकुल के विषय में पूछा सभीने एक स्वर से उसकी बड़ी प्रशंसा की। एक टांगे वाले ने तो गुरुकुल के विषय में अपने अनुभव का वर्णन कर बच्चे को भर्ती करने के लिये बच्चे की मां को खूब समझाया। उसने तो उनका सारा मोहान्धकार दूर भगादिया। वह गुरुकुल में पहले नौकर था किसी कारण से उसका सम्बन्ध विच्छेद होगया था। उसी समय मैंने अपने मनमें सोचा कि ऐसी संस्थाएं बहुत ही कम होती हैं जिनकी प्रशंसा वहां के निवासी हृदय खोलकर करतेहों और खासकर वह साधारण कर्मचारी जिसका उस संस्था से सम्बन्ध टूटगया हो। ऐसी बातें इस गुरुकुल के ही विषय में सुनने तथा देखने में आ रही है। तभी से बच्चे की माता का हृदय बिलकुल बदल गया। वह भर्ती करने के वास्ते तैयार होगयीं। फिरतो—

> "मतिरुत्पद्यते तादृग् व्यवसायोऽपि तादृशः।
> सहायास्तादृशा ज्ञेया यादृशी भवितव्यता" ॥

अर्थात् जो होने को होता है वैसी ही बुद्धि होती है। मनुष्य उद्योग भी वैसा ही करता है। सहायक भी वैसे ही मिलते हैं। इसी अटल नियम के अनुसार मेरे इस दृढ उद्योग में अकारण बन्धु स्वामी नर्मदानन्द जी मिल गये। जिनकी कृपा से गुरुकुल के विद्यालय विभाग के प्रधानाध्यापक पं० विश्वनाथ जी से हम लोगों का परिचय हुआ। आपके सपरिवार-स्वाभाविक प्रेम तथा आतिथ्य सत्कारने बच्चे की मां के मोहान्धकार को हटाने में सूर्य रश्मि का काम किया। साथ ही गुरुकुल के हार्दिक-अजीज़ पहलवान जी के सतत उद्योग तथा उनके परिवार की प्रेरणा से इस कार्य में बड़ी सहायता मिली।

अन्त में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री काशी पण्डित-सभा के सञ्चालक पं० पद्मनाभ शास्त्री जी उस समय कनखल में पहुंच गये थे। वह कट्टर सनातनधर्मी विद्वान् हैं। उन्हों ने और देखकर बच्चे की मां को प्रेरित कर भी

नवस्नातकों के बाद, तीसरे दिन एक दम कई नवस्नातकों की बिदा लेने की बारी आई।

इसी दिन सांझ को मेरे मित्र प० सुशील कुमार जी ने भी मुझे विदाई का अन्तिम नमस्कार किया। मैं नमस्कार का प्रत्युत्तर नहीं दे सका। मेरी आंखें भरी हुई थीं, डर लग रहा था कहीं ज़रा सा भी इतस्ततः हुआ तो आंखों का बांध टूट न जाय और व्यर्थ में सयानों के बीच मुझे शर्मिन्दा होना पड़े। मैं देख रहा था, मेरे मित्र अपनी स्वाभाविक चाल में अपने घर की ओर मुह किये आगे की तरफ डग पर डग बढ़ाते चले जा रहे थे। जबतक वे मेरी आंखों से ओझल न हो गये मैं उन्हें एक टक देखता रहा। अकस्मात मेरे मुंह से निकल पड़ा—

हंस न पाया, रो न पाया!

ओह, क्या कुछ रक्खा था, मगर कुछ हो न पाया!

मेरे भगवान, इस अन्तिम क्षण में भी मेरे दिल रूपी बरफ की पेशल सिल्ली पर एक ज़ोर की हथौड़े की चोट करके चल दिये। मैं अपने कलेजे के इधर उधर उड़े हुए टूटे टुकड़ों को हाथ से संभाल ही रहा था कि मेरे एक वर्गबंधु ने मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—'चल कवि' चल ज़रा घूमघाम आयें।' मैं बेबस उसके साथ चल दिया। मेरा वर्गबन्धु भी चुप था। मैं भी चुप था।

रात को भाई महेशचन्द्र जी वेदालंकार को छोड़ने गया। स्टेशन पर गाड़ियों पर गाड़ियां आ रही थीं और हमारे कुलबन्धु एक २ करके सवार होते चले जा रहे थे। मैं सोच रहा था, चौदह बरस तक एक साथ रहने उठने बैठने, खाने पीने, हंसने मुस्कराने, खेलने कूदने, लड़ने झगड़ने और रोने रुलाने वाले आज एक दूसरे से बिछुड़ रहे हैं। भगवान जाने कौन कुल पुत्र भारत के किस कोने में अपने अरमानों के साथ चमक रहा होगा। न जाने इस जीवन में फिर मिलें या न मिलें। मुझे हठात् याद आया, दिल्ली के चावड़ी बाजार आर्यसमाज की अर्ध शताब्दी के वक्त कोई ग्रामीण भजनीक अत्यन्त मर्म स्पर्शी स्वर में गा रहा था—

ना जाने फेर कब मिलेंगे जी!

× × ×

यह हमारा दूसरा बिछोह है। हमारे गुरुकुलीय जीवन के आदि में बिछोह, मध्य में बिछोह, और अवसान में भी बिछोह ही है! मैं आश्रम में लौटकर आया। लगता था सम्पूर्ण आश्रम मुझ से पूछ रहा है—'...गये ?'

—०—

मानव!

मानव यह तू क्या करता है ?

मनुज मनुज का प्यार छीनकर क्यों तू नित्य लुटा करता है?
हिंसा-प्रतिहिंसा की ज्वाला दावानल सी धधकाकर
भू-जल-व्योम-दिशा संकुल में क्यों रण ताण्डव करता है?
लोभ-स्वार्थ-साम्राज्य चिकीर्षा तेरे मन की इच्छा बन।
देश देश के कोने में फिर छल बल क्योंकर करता है?
विकट भयंकर शस्त्रों से सज कर तेरी सेना।
दीन प्रजा के आर्तनाद में नगर विनाश विजय करता है!
जब से मानव तेरे हाथों प्रभु ने अपने विश्व नियम की—
बागडोर रखदी है तब से क्या कुछ तू न किया करता है!

"द्विरेफ"

गुरुकुल समाचार

वर्षा ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर है। कुलभूमि में चारों ओर हरियाली नज़र आती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है। मलेरिया की मौसम होने पर भी चिकित्सालय रोगियों से बिलकुल खाली है।

पिण्डारी ग्लेशियर को प्रस्थान

महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की एक पार्टी पिण्डारी ग्लेशियर की यात्रा के लिये नैनीताल पहुंच गयी है। यह ग्लेशियर पिंडर-गंगा का उद्गमस्थल है। नन्दा देवी के दक्षिण पार्श्ववर्ती हिम-शृङ्खलाओं में विविध पर्वतीय फूलों की अनुपम शोभा के लिये यह पिण्डारी की उपत्यका मशहूर है। आशा है यह पार्टी अपने उद्देश्य में सफल होकर लौटेगी।

चौधरी दुलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत

Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २२ भाद्रपद १९९७; ६ सितम्बर १९४० [संख्या २१

ईश्वर और वेद

(श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के अप्रकाशित धर्मोपदेश से)

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

नदी के किनारे पर देखो कैसे मीठे स्वर से ध्वनि निकल रही है। आगे बढ़कर देखो एक दिव्य धोती धारण किये, टीका लगाये, वेदपाठी ब्राह्मण सामवेद का गायन कर रहा है। दूसरी ओर यजुर्वेद के मन्त्रों के उच्चारण से एक दूसरा तैलंग ब्राह्मण आकाश को गुंजा रहा है। तीसरी ओर मधुर स्वर वाला महाराष्ट्र ऋग्वेद की ऋचाओं का उच्चारण कर रहा है। हजारों हिन्दु इकट्ठे हैं और धन्य! धन्य! के शब्दों से आसमान सिर पर उठा रहे हैं। "सत्ययुग आ गया! कैसा धर्म का प्रभाव है? अब संसार में शान्ति क्यों न फैलेगी?" इस तरह के शब्द चारों ओर से उठ रहे हैं। मैं भी इस जोश के दरया में बहकर धन्य! धन्य!! करता हुआ घर को चल दिया। इन में से कई वेद मंत्रों के अर्थ सुने हुए थे। कैसी पवित्र शिक्षा उनसे मिल रही थी! मन ने कहा तेरा सब प्रयत्न व्यर्थ है। जिन वेदों की थोड़ी सी शिक्षा सुनकर तू आर्यावर्त को सुधारना चाहता है उसके सम्पूर्ण जानने वाले ये उपस्थित हैं। अब क्या चिन्ता है? तेरे सब प्रयत्न निर्मूल हैं।" मैं शान्त हो गया परन्तु जब सायंकाल को बाजार गया तो एक शराब की दूकान के पास से गुजरा। तो क्या देखता हूं तीनों वेद पाठी एक दूसरे की सेहत के जाम पी रहे हैं। आह! क्या घोर कष्ट मन को पहुंचा। वेदपाठी और यह करतूत! आश्चर्य के साथ उनसे पूछा। "महाशय आज प्रातः तुमने क्या उत्तम उपदेश दिये थे, अब तुम्हें क्या हो गया।" सामवेदी बोले, "क्या उपदेश? हम तो उजरत (वेतन) लेकर वेद पाठ कर देते हैं। हमें उपदेश से क्या अभिप्राय!" मन में तरह तरह के विचार उठने लगे। कभी उस पर अविश्वास-कभी उससे निराश। अर्थात् मनुष्य मात्र पर से विश्वास उठाकर मैं घर पहुँच कर-चिन्ता समुद्र में निमग्न हो गया। मन की अवस्था शिथिल पड़ गई। काम धन्धे से दिल उचाट होगया। इसलिये दूसरे दिन फिर समय व्यतीत करने के लिये बाहिर निकला। क्या देखता हूं कि जंगल में एक बड़ी मनोहर वाटिका है। उसके मध्य में एक विस्तृत थड़ा है जिस के चारों ओर फुलवाड़ी की बहार आंखों को तरावट दे रही है। थड़े पर एक चौकी पर क्या सुन्दर आसन बिछा हुआ है? और उस आसन पर कैसे दिव्य मूर्ति महात्मा बैठे हुवे हैं। चेहरे से शान्ति तथा प्रसन्नता की वर्षा हो रही है। होठों पर कैसी सुन्दर मोहनी मुस्कराहट नजर आ रही है! चारों तरफ चुपचाप सैंकड़ों आदमी बैठे हुए हैं और महात्मा वेद मंत्रों का उच्चारण, उसका पदच्छेद, अन्वय आदि करते हुये कैसी मीठी और प्रभावात्मक वाणी में उनका अर्थ समझा रहे हैं। ऐसी प्रचलित भाषा का दृष्टान्त ऐसा उत्तम देते हैं कि मूर्ख से मूर्ख भी अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये शिक्षा उस स्थान से लेकर जाता है। मोहित होकर मैं उसी स्थान पर बैठ जाता हूं। कैसे उच्च आचरण की शिक्षा मिल रही है। हिंसा, चोरी, निन्दा, छल, कपट, ईर्ष्या और क्रोध आदि त्याग के कैसे कैसे उत्तम उपाय बताये जाते हैं! आज तो मेरे आनन्द की सीमा नहीं रहती। जिस प्रकार कल निराश हुवा था उस से चार गुणी आशायें बन्ध रही हैं। वेदार्थ जानने वाले महात्मा के जब दर्शन हो गये तो अब बेड़ा पार है। अभ्यास तथा वैराग्य के कैसे कैसे उत्तम उपदेश सुन चुका हूं। स्वभाव मानता नहीं कि योग के नियमों से एक क्षण भी अब वञ्चित रहूं। प्रातः ही महात्मा के दर्शनों के लिये पहुँचता हूं। आशा थी महात्मा अभ्यास में लगे होंगे। समाधि से आंखें खोलेंगे तो दर्शन करूंगा। परन्तु वहां जाकर देखता हूँ कि अब तक महात्मा शौच ही नहीं गये। महात्मा का एक मुकद्दमा है और उसके लिये चन्दा करने के अभिप्राय से आये हैं। उस समय भक्त जनों से चन्दा एकत्र हो रहा है। दिल पर ऐसी चोट लगती है कि पागलों की तरह वहां से भागता हूँ। संसार से निराश होकर ऐसे समाज से पृथक होने की सूझती है-जिस में ऐसे आडम्बर भरे जाते हैं। उस समय आगे से ऋषि चले आते दिखाई देते हैं। मेरी अवस्था देखकर उन्हें दया आती है और हाथ पकड़ कर कहते हैं, "कुल वेद उस अविनाशी परम रक्षक परमात्मा में निवास करते हैं, जिसके अन्दर सब

दिव्य गुण वास कर रहे हैं। इस लिये जो कोई उस परमात्मा को नहीं जानता, वह वेद से क्या कर लेगा और जो मनुष्य उस परमात्मा को जानते हैं वही संसार के दुःखों से छूट कर मुक्त होते हैं।" ऋषि की आवाज़ ने जादू का काम किया। मेरी आंखें खुली और मैंने जाना कि जबतक वेद के स्वामी परमात्मा को नहीं जानता तब तक वेद तुझे क्या लाभ पहुंचा सकते हैं? जबतक गुणी को नहीं जानता गुणों को कैसे समझ सकता है। प्रभु मुझे अपनी सेवा में लो।

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—

श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

कार्यसाधन वृत्ति

(६)

अंग्रेजी में जिसे Efficiency कहते हैं, वही यहां अभिप्रेत है। परिश्रमी तथा बुद्धिमान होते हुए भी मनुष्य अपने कार्य में Efficiency के बिना सफल नहीं हो सकता। थोड़े समय में अल्प परिश्रम द्वारा व्यवस्था पूर्वक कार्य करने की वृत्ति को Efficiency कहते हैं। इसे 'कार्य दक्षता' भी कह सकते हैं। गुलाम प्रजा में यह विशेषता नहीं होती। जो लोग आलसी और पराधीन होते हैं वे काम करने में चुस्त कैसे हो सकते हैं? कार्य-दक्षता न रहने से गुलामी आ घेरती है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिये कार्य दक्षता की साधना अनिवार्य है। व्यवस्था और कार्य दक्षता ये दोनों राष्ट्रीय गुण हैं। आज देश भर में डिसिप्लिन या नियन्त्रण कायम करने की चर्चा है। परन्तु हिरण्मय पात्र में विद्यमान विद्यादुग्ध में अभी तक इन दो तत्त्वों का समावेश नहीं हुआ है, इस लिये जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक योग्य से योग्य भारतीय बालक परदेशी सत्ता के सामने व्यवस्थित रूप से अपना माथा ऊंचा नहीं कर सकता। आजकल विद्यार्थियों में efficiency प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार की भावना जागृत होती हुई नहीं दिखाई देती। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में भी अभी तक यह भावना विकसित नहीं हुई, लेकिन इस भावना के पनपने के लिये वहां अवकाश अवश्य है। ऐसा देखा गया है कि कई बार अन्तिम समय में अचानक किसी काम को करने के लिये स्नातक तय्यार हो जाते हैं, दौड़ धूप शुरु हो जाती है और आखिर में अत्यन्त परिश्रम के परिणाम स्वरूप यह कार्य सम्पन्न होने वाला होता है कि इतने में समय शक्ति धन तथा मित्रों और परिचितों का आवश्यकता से अधिक उपयोग हो जाता है। किसी काम को करने से पूर्व इसकी एक व्यवस्थित योजना मस्तिष्क में बननी चाहिये। बाद में इसका निश्चित कार्यक्रम बनना चाहिये। इसके लिये उचित साधन कहां से मिल सकेंगे, यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये और साक्षात् मिलकर अथवा पत्र व्यवहार द्वारा सम्बद्ध व्यक्तियों से परामर्श लेना चाहिये। लोगों का सामान्य विचार ऐसा बन गया है कि स्नातकों में 'प्रोग्राम' बनाने के लिये आवश्यकता से अधिक उत्साह होता है। उनकी बात बात में 'प्रोग्राम' शब्द की गूंज सुनाई देती है किन्तु अन्तिम क्षणतक निश्चय नहीं हो पाता और इसलिये कहीं पत्रव्यवहार आदि भी नहीं हो सकता। प्रोग्राम नहीं बनता इसलिये अन्त में जो क्षणिक प्रेरणा होती है उसके अनुसार काम हो जाता है। इस कमी की वजह से जगत् के रण संग्राम में हार की सम्भावना रहती है। मेरे एक प्रोफेसर मित्र ने मुझे एक महीना पहिले अपना प्रोग्राम तय करके मुझे पत्र लिखा था, मुझे वे कितने बजे किस दिन मिल सकेंगे यह भी उन्होंने लिखा था। ठीक नियत दिन और नियत समय पर उन्होंने मेरे यहां आकर अपना कार्य क्रम पूरा किया। जिसे संसार में महान् कार्य करना है जिसका उद्देश्य जनता में अमुक मिशन का प्रचार करना है उसमें इस प्रकार के गुणों का होना विशेष जरूरी है। अनियमितता के कारण और मामूली लगने वाली भूलों की वजह से आदमी लोगों के विश्वास को खो बैठता है। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज के नवनीत रूप जिन स्नातकों को व्यवस्था प्रिय तथा कार्यदक्ष पाश्चात्य देशों की प्रजा के आगे उपस्थित करना है उनमें भी अगर इन गुणों का अभाव होगा तो दुनिया में यही समझा जाएगा कि गुरुकुल शिक्षापद्धति निष्फल है। जर्मनी और इंग्लैण्ड की राजनैतिक हालत को देखते हुए आसानी से कल्पना की जा सकती है कि वहां के लोगों की efficiency कितने ऊंचे दर्जे की होगी। गुरुकुलों में इस गुण का किस प्रकार से विकास किया जा सकता है इस दिशा में निम्न बातें उपयोगी हो सकती हैं।

(१) ब्रह्मचारी की आयु तथा योग्यता के अनुसार किसी कार्य का निश्चय ब्रह्मचारी से कुछ दिन पूर्व कराना चाहिये। उदाहरण के लिये अध्यापक ब्रह्मचारियों को आदेश दे कि इस आने वाले रविवार के दिन तुम्हें अमुक अमुक कार्य करना है। इस कार्य को करने के अनुकूल साधनों की खोज का अवसर ब्रह्मचारियों को मिले और नियत समय पर वह कार्य किस प्रकार हो रहा है शिक्षक इस बात का निरीक्षण करे।

(२) व्यवस्थित पत्र व्यवहार करना ब्रह्मचारियों को सिखलाना चाहिये।

(३) निश्चय करने की शक्ति उत्पन्न हो इस प्रकार के उपायों का अवलम्बन करना चाहिये। ब्रह्मचारियों के सन्मुख उलझन भरी समस्याओं को रखकर शिक्षक उनसे पूछे कि तुम ऐसे प्रसङ्ग में क्या निश्चय करोगे। साधनों की शीघ्र प्राप्ति के लिये किन उपायों का सहारा लेना चाहिये इस की शिक्षा भी अनुभवी बातों द्वारा दी जा सकती है।

(४) आकस्मिक कार्यों को छोड़ कर प्रत्येक काम व्यवस्थित कार्य क्रम के साथ हो, ऐसी आदत ब्रह्मचारियों में डालनी चाहिये।

(५) इस गुण के विकास के लिये किसी विशेष अभ्यास क्रम की अपेक्षा नहीं है, प्रत्युत दैनिक व्यवहार-शिक्षण में ही ऐसे अवसर उपस्थित करने चाहिये जिन में efficiency की जांच हो सके। उदाहरण के लिये यदि अनध्याय के दिन ब्रह्मचारियों को घुमाने ले जाना है और वहां उनसे कुछ काम करवाना है तो शिक्षक को सात दिन पूर्व इस विषय की सूचना ब्रह्मचारियों को दे देनी चाहिये ताकि वे तैयारी आरम्भ कर सकें। जाने से एक दिन पहले ब्रह्मचारियों ने क्या तय्यारी की है उन्हें किन साधनों की आवश्यकता प्रतीत हुई है, इत्यादि बातों की पड़ताल करनी चाहिये। एक विद्यार्थी शिक्षक को कहेगा कि वहां हमें चाकू ले जाना है क्योंकि फल आदि काटकर खाने में इसकी जरूरत पड़ेगी, इसी प्रकार दूसरा कहेगा कि वहां पहाड़ पर चढ़ने उतरने चोट लगने की सम्भावना है अतः दवा भी साथ ले जानी चाहिये। इन बातों से प्रत्येक विद्यार्थी के लक्षण ज्ञात होंगे। नियत स्थान पर पहुंचने के पश्चात् जो कठिनाइयां झेलनी पड़ी हों उनके बारे में शिक्षक विद्यार्थियों को समझाए कि अगर तुम इस प्रकार करते तो इन मुश्किलों का सामना न करना पड़ता।

(६) विचार विनिमय आवश्यक है परन्तु यह गपशप के रूप में नहीं होना चाहिये। आनन्द तथा हंसी मजाक के विशेष प्रसंगों को छोड़कर आदमी को गम्भीर बनने की आवश्यकता है। जिसे व्यवस्थित रूप से विचार करना आता है, व्यवस्थित कार्य क्रम बनाने की विधि जिसे मालूम है, व्यवस्थित रूप से साधन का मार्ग जिसे ज्ञात है, जिसे व्यवस्थित रूप से सहायता लेना, आभार मानना आता है उसी व्यक्ति का कार्य व्यवस्थित होता है और उसे 'कार्यदक्ष' Efficient कहा जा सकता है। महान् नेता थोड़े समय में जो महान् कार्य कर सकते हैं उसका कारण उनकी कार्य दक्षता और निर्णायक बुद्धि है। कार्य दक्षता के लिये व्यवस्था, कार्य कुशलता और निर्णायक बुद्धि की आवश्यकता है। इन तीनों गुणों के होने पर कार्य सिद्धि हो सकती है।

(७) समय का सच्चा मूल्य समझ सकें ऐसी ऐसी शिक्षा देनी चाहिये।

(८) शक्ति का सदुपयोग करना सिखाना चाहिये। अधिक शक्ति हो तो उसका व्यर्थ उपयोग नहीं होना चाहिये।

(९) साधनों तथा धन का भी व्यवस्थित उपयोग करना सिखाना चाहिये। जहां रुपया खर्च करने की जरूरत हो वहां कम और ज्यादह खर्च न हो ऐसी आदत डलवानी चाहिये। साधनों के उपयोग के प्रकार का ज्ञान कराना चाहिये।

(१०) ब्रह्मचारी क्षिप्रनिश्चय कारी बनें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् वे किसी बात को सोचने २ ही समय न काटें।

(११) प्रमाद के स्थान पर परिश्रम, गपशप और वितण्डावाद के स्थान पर विचार विनिमय की आदत डालनी चाहिये।

(१२) छोटे २ काम प्रत्येक परिस्थिति में निश्चित समय पर किए जा सकें ऐसी आदत ब्रह्मचारियों में डालनी चाहिये। उनमें कार्यक्रम निश्चित करने के स्वभाव को विकसित करना चाहिये।

(१३) स्वकेन्द्रित न बनकर अर्थात् न केवल अपने आप में ही मस्त रह कर पास वालों के लिये भी वाणी तथा कार्य से काम करना सिखाना चाहिये। दूसरे लोगों से सहायता की आशा भी इसी रीति से हो सकती है।

उक्त गुणों का ब्रह्मचारियों में समावेश होने पर उन की कार्य शक्ति विद्युत् के समान प्रकट हो सकेगी ऐसा निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है।

गीत

अपना मस्तक सहलाता हूँ—
–ये क्षीण कांपने कर मेरे–
जलता मस्तक सहलाता हूँ।
धीरे धीरे चलती अगुँली,
बुझ जाये शायद आग जली,
कितना असफल-श्रम ज्वाला को पँखुरियों से दुलराता हूँ।
अपना मस्तक सहलाता हूँ।
उड़ उड़ आती रूखी अलकें,
पीड़ा से ढँक जातीं पलकें,
जल जल उठते लोचन मेरे-दृगजल से और जलाता हूँ।
अपना मस्तक सहलाता हूँ।
अन्तर में घोर बंवडर है,
अकुलाये प्राणों का स्वर है,
बैठा–एकाकी बिस्तर पर-गाता हूँ, मन बहलाता हूँ।
अपना मस्तक सहलाता हूँ।

—श्री सूर्यकुमार

एकाकी

सारे उपवन में एक फूल !
इसके साथी सब दूर कहीं—
हैं गए सूख हो चूर कहीं,
वह हाय अभागा ही ऐसा मरने की विधि भी रहा भूल !
यह देख रहा सब ओर विकल,
अपना संगी, पर हाय विफल,
वे यहां कहां, वे बड़ी देर से चाट रहे हैं पड़े धूल।
हैं वही अभी भ्रमरावलियां,
पर नहीं और खिलतीं कलियां,
सब रस इस से ही लेते हैं सामोद इसी पर भूल भूल !
यह करता है अभिसार वहां
है खड़ी मृत्यु साकार जहां
इसके पीछे से पढ़ने को रह जावेंगे दो चार शूल !

—श्री विराज !

गुरुकुल

२२ भाद्रपद शुक्रवार १९९७

गुरुकुल में वैदिक वायुमंडल

[लेखक—श्री आचार्य अभयदेव जी]

(२)

वैदिक वायुमण्डल के एक पार्श्व का कुछ दिग्दर्शनात्मक वर्णन मैंने (पहले लेख में) किया। यह हुआ वैदिक वायु मण्डल का उसके कर्मकाण्ड की दृष्टि से, उसके बाह्य रूप व देह की दृष्टि से वर्णन। पर वैदिक वायुमण्डल का जो ज्ञान की दृष्टि से, उसके आन्तरिक रूप व आत्मा की दृष्टि से दूसरे पार्श्व का वर्णन है उसकी भी आवश्यकता है, उसका भी कुछ दिग्दर्शन कराने का यत्न किया जाय इसकी आवश्यकता है। नहीं तो गुरुकुल के वैदिक वायुमण्डल का वर्णन अधूरा रहेगा, बल्कि निर्जीव रहेगा। जैसे आत्मा के बिना देह निर्जीव (मृत) होता है वैसे वैदिक सत्यज्ञान, आत्मिक प्रकाश के बिना, (एक शब्द में वैदिक आध्यात्मिकता के बिना) वैदिक कर्मकाण्ड निर्जीव होगा। पर आध्यात्मिकता का वर्णन करना कठिन है। कर्मकाण्ड का तो कुछ वर्णन कर दिया, आध्यात्मिकता का कैसे वर्णन करूं ? यह तो अनुभव का विषय है। इस विषय में बोलने से बहुत काम नहीं बनता।

एक महानुभाव प्रेम के साथ और सच्चे हृदय से मुझ से कहते थे 'आप पोंडिचेरी रहकर आते हैं उसका कुछ लाभ हमें भी पहुंचना चाहिये'। मैंने उन्हें कहा कि 'वह तो पहुंचता ही है'। विद्यासभा के सदस्य महानुभावों को तथा दूसरे गुरुकुल के प्रेमियों को जो मैं यह कहता हूं कि श्री अरविन्दाश्रम में जाकर मेरा रह आना गुरुकुल के ही लाभ के लिये होता है सो यह बात सर्वथा ठीक है। पर यह मैं कैसे समझाऊं ? बहुत से लोग मुझ से योग के बारे में पूछते हैं। वे समझते हैं कि मैं कुछ जानता हूं पर बताता नहीं हूँ। पर ऐसी कुछ बात नहीं। योग तो मेरी समझ में आत्म विकास का नाम है, अन्दर से आत्मा के विकसित होने का नाम है। जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज उगता है, स्वयं विकसित होता है, विकसित होना उसका स्वभावगत धर्म है, इसी तरह प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अन्तरात्मा रूपी बीज विद्यमान है, जो भगवत्प्रेम (भगवान के लिये प्रेम) के रूप में कुछ न कुछ अंश में सबको अनुभव भी होता है—क्योंकि असल में किसी का भी प्रेम छिपा हुआ अन्त में भगवत्प्रेम ही है— उसका स्वभावतः विकसित होना ही योग है। इसे ही आध्यात्मिक उन्नति भी कहते हैं। यह बीज हरेक में किसी न किसी रूप में उग ही रहा है, उगने का यत्न कर ही रहा है। तो इसमें लेने, देने, बतलाने, सिखाने की कुछ ऐसी बात ही नहीं। यह (विकास) तो होता है; योग तो स्वयं होता है। और वह हो रहा है।

और मेरी आध्यात्मिक उन्नति हो और दूसरे की न हो ऐसी कुछ बात की गुंजायश भी नहीं है। मेरी अपनी उन्नति तो कुछ चीज ही नहीं। मैं औरों से जुदा कुछ नहीं हूँ। अहंभाव में मुझ से देर तक नहीं रहा जाता, जब अहंभाव में आता हूँ तो दम घुटने सा लगता है और उससे निकलने के लिये व्याकुल हो जाता हूं। अतः मेरी उन्नति तुमसे कुछ भिन्न नहीं है। विशेषतः जब कि मेरा अहंकार इस (मेरे) व्यक्ति से हटकर संपूर्ण गुरुकुल को स्पर्श करने वाले एक रूप में प्रायः रूपान्तरित हुआ रहता है, तो कम से कम तुम्हारी उन्नति के साथ— यदि सारे जगत की उन्नति के साथ नहीं—मेरी उन्नति बंधी हुई है। अग्नि से प्रकाश और ताप आदि की किरणें स्वभावतः निकलती ही हैं और पास के लोगों को प्रभावित करती हैं, उसी तरह इस आधार में ('मुझ में' ऐसा न कहूं तो ठीक है) जो आत्माग्नि जलती है उससे आध्यात्मिक समीपता रखने वाले सब व्यक्तियों को उसका ताप, आंच और प्रकाश पहुँचता ही है। उसमें 'मेरा' कुछ नहीं, मेरा परोपकार या सेवा कुछ नहीं। वह तो होता है। और तुम सभी में वह अग्नि अपने अपने रूप में प्रकट हो रही है, प्रकाशित हो रही है और इस तरह हम सब में— विशेषतः जो हम सब परस्पर निकटता बल्कि अभेद का संबन्ध रखना चाहते हैं उन हम सब में—इन अग्नियों के परस्पर नाना तरह से संबन्ध होने का एक खेल चल रहा है। तो इसमें हमने करना धरना क्या है। हां, तुम शिष्य रूप में सुनने बैठे हो—और गुरुकुल गुरु शिष्य संबन्ध द्वारा परस्पर ज्ञानदीप्त करने का ही तो साधन है—तो यह कहूँगा कि यदि तुम दो तीन बातों का ख्याल रखो तो शिष्य के रूप में गुरु के संबन्ध द्वारा जो आध्यात्मिकता तुम पा सकते हो उसे अधिक से अधिक पा सकोगे। वैसे विकास तो तुम्हारा अपना ही होना है और स्वयं होना है, यह बातें उसमें केवल सहायता देने वाली होंगी।

(१) ऊपर उठने की सच्ची अभिकांक्षा, आंतरिक अभीप्सा होनी चाहिये। ऊपर जाने की जितनी ही प्रवृत्ति होगी उतना ही अधिक लाभ होगा। ऊपर का जीवनदायी प्रकाश मिलेगा। तुम्हारे भगवत्प्रेम के बीज के पूरे रूप में उग सकने के लिये ही जहां स्वाभाविक ऊर्ध्वगति चाहिये, वह अन्धकारमय पृथ्वी को फाड़ कर ऊपर सूर्य प्रकाश में आ निकले—अन्धकार के पर्दे को फाड़ कर व्यापक प्रकाश में आजाय—यह चाहिये, वहां उसे और ऊपर बढ़ने के लिये भी सूर्य प्रकाश निरन्तर रूपसे मिलते रहना चाहिये। इसके लिये और सब इधर उधर के आवरण हटा कर उसे भगवान के दिव्य प्रकाश में खुला हुआ—बिलकुल खुला हुआ—रहना चाहिये। पौधे को असली जीवन सूर्य से ही मिलता है—सूर्य से उस बीज का ही कोई छिपा हुआ घनिष्ठ संबन्ध है जिस से वह पृथ्वी के अन्दर दबा पड़ा हुआ भी फूट कर ऊपर सूर्य की तरफ ही उगने लगता है। तो ऊर्ध्वगति और प्रकाश के प्रति अपने आपको सर्वथा खुला रखना यह पहली बात हुई।

(२) फिर इस भगवत्प्रेम के बीज को पौधे के रूप में सफलता पूर्वक उगाने के लिये यह भी आवश्यक है कि जो अन्य घास फूस उग रहा हो उसे लगातार उखाड़ कर फेंकने का काम-निलाई-जारी रहे। भगवत्प्रेम के प्रतिकूल और विरोधी जो भाव हैं-जैसे स्वार्थ,विषयों से प्रेम आदि-उनका दृढ़ता पूर्वक त्याग आवश्यक है।

(३) और फिर तुम्हारे बीज का मजबूत होना सब से पहले जरूरी है। तुम्हारा आधार (मन प्राण और शरीर) इतना मजबूत होना चाहिये कि वह आध्यात्मिक शक्ति को धारण कर सके, सहन कर सके। सूर्य की किरणें भी जब सहन नहीं होती तो पौधे को जला देती हैं, सुखा देती हैं। पानी की सिंचाई भी जो सहन न हो वह पौधे का पुष्ट करने की जगह गला देती है। आध्यात्मिक शक्ति, योग की शक्ति बहुत भारी शक्ति है। उसे बरतना आसान नहीं है। वह कमजोरों के बस का नहीं। उसे सहन न कर सकने के कारण ही गड़बड़ी, उन्माद या अन्य रोग आदि हाने का डर रहता है। अतः जल्दी बहुत सी शक्ति पाने के लोभ में पड़ कर अति नहीं करना चाहिये। जैसे कमजोर कील को दृढ़ दीवार में घुसाने के लालच में उसे अधिक ठोका जाता है तो वह अन्दर नहीं घुसती किन्तु मुड़ जाती है, शरीर सर्दी नहीं सह पाता तो सिकुड़ जाता, मुड़ जाता है, उसी तरह सब टेढ़ापन, कुटिलता, झूठ, असत्य कमजोरी के चिन्ह हैं। जिसके अन्दर इतना बल नहीं है कि सचाई का मुकाबिला कर सके, कुटिल न हो जाय, सच्चा रह सके उसे योग का नाम नहीं लेना चाहिए। वह यदि आध्यात्मिक शक्ति पाने का यत्न करेगा तो अवश्य विपत्ति में पड़ेगा। तुम में से बहुत से झूठ तभी बोलते हैं जब वे यहां के नियम का पालन नहीं कर सकते और फिर उसे छिपाना चाहते हैं। सत्यनिष्ठता योग के लिये पर्याप्त बलवान होने की सब से पहली पहिचान है।

तुम कहोगे कि फिर निर्बलता कैसे हटायें। इसके लिये स्वाभाविक सहज उपाय है समर्पण। समर्पण के विषय में मै पहले काफी कह चुका हूं। समर्पण करने से शिष्य न जिस शक्तिशाली महान (गुरु)—अन्त में वे परमेश्वर ही हैं-के प्रति जितना समर्पण किया है उतना ही उससे उसमें शक्ति, बल प्राप्त होने लगता है। स्वभावतः उसका बल बढ़ने लगता है और वह परिपुष्ट होता जाता है। तुम तो अभी गुरुकुल के सामान्य नियमों को ही सच्चे भाव से पूरे हृदय से पालन करके देखो कि तुम्हारी शक्ति कितना बढ़ता है। अस्तु;

अभिप्राय यह कि तुम में आध्यात्मिक उन्नति पाने की चाह होनी चाहिये। गुरुकुल इसी काम के लिये है। यहां जो तुम वेद पढ़ते हो और वेदांग के रूप में अन्य बहुत कुछ पढ़ते हो वह सब तुम्हारा आध्यात्मिक विकास करने के उद्देश्य से ही है। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के पुस्तक हैं। वेदों का अंतिम अर्थ आध्यात्मिक है। तो गुरुकुल में वैदिक-वायुमण्डल होने का मतलब केवल कुछ वेदपाठ होना, अग्निहोत्र होना और वेदों के नाम से सब काम किये जाना नहीं है। किन्तु उस सबके मूलमें सच्ची आध्यात्मिकता की भावना होना जरूरी है। **यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति** तो गुरुकुल में सच्चा वैदिक वायुमण्डल तब कहा जायगा जब कि यहां के सब गुरु आध्यात्मिकता को महत्व देते हों, आध्यात्मिक सम्पत्ति से सम्पन्न हों और इसे दिनों दिन और बढ़ाने के यत्न में हों; यहां के सब ब्रह्मचारी आध्यात्मिकता के पिपासु हों और यहां के सब कर्मचारी भी भगवदर्पण बुद्धि से आध्यात्मिक कल्याण के लिये ही यहां सेवा कार्य करते हों।

हैद्राबाद में आर्यसमाज प्रचार

(लेखक—श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार)

हैदराबाद रियासत में सबसे पुरानी समाज धारूर में है। इस समय वास्तविक इस समाजकीदशा क्या है?यह तो मैं जानता नहीं। किन्तु श्रीयुत पं० आर्यभानु जी से परिचय हुआ था। आप धारूर के ही रहने वाले हैं। रियासत में प्रचार कार्य में बराबर हाथ बटाते रहते हैं। आप के कारण समाज की हालत अच्छी होगी यह स्वतः विश्वास होता है।

धारूर के बाद दूसरा नम्बर आर्यसमाज सुलतान बाजार का है। इस समाज की हालत इस समय रियासत में सभी समाजों से अच्छी है। आर्य नेताओं में अग्रणी पं० विनायकराव जी विद्यालंकार इस समाजके प्रधान हैं। रियासत की राजधानी तथा सबसे बड़े शहर में यह कायम है।

सत्याग्रह के बाद सबसे पहला जलसा आर्यसमाज की ओर से सुलतान बाजार समाज का किया गया था। पहला जलसा होने के कारण आर्य तथा मुसलमान दोनोंही उत्सुक थे। उनकी इच्छा के अनुसार जलसा बहुत ही शानदार हुआ। ३०, ३५ हजार की जबरदस्त हाजिरी प्रतिदिन होती थी। परन्तु इतनी बड़ी भीड़ होने पर भी जलसे में शानदार शान्ति विराजती थी। जिसके कारण सभ्य एवं सुशिक्षित आर्य भाइयों की प्रबन्ध कुशलता एवं शान्ति प्रियता का गौरव बहुत बढ़ जाता है। पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार के व्याख्यानों ने जलसे में जान फूंक दी थी। इस उत्सव का प्रभाव शहर पर बहुत पड़ा।

इस समाज के बाद किशनगंज, शालिबण्डा, एवं सिकन्दराबादके उत्सव बहुत शानदार हुए। अन्य समाजों के उत्सवों की भी अपनी २ विशेषता थी। सिकन्दराबाद में दो उत्सव हुए। आर्यसमाज बाजार के नवयुवकों ने अपने प्रथम साल का उत्सव मनाकर बहुत ही साहस का काम किया था। इस उत्सव ने बूढ़े आर्य समाज सुलतान बाजार को भी फीका कर दिया था। प्रथम साल होने के साथ सारे कार्य कर्ता नौजवान थे। फिर शालिबण्डा के प्रसिद्ध उत्सव के साथ साथ ही मना रहे थे। परन्तु तो भी हाजिरी २०,२५ हजार से कम न थी। इस उत्सव की जान श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ही थे। आपके व्याख्यानों से आर्यसमाज के

प्रति फैलाई गई गलत फहमी का बहुत ही प्रभावशाली उत्तर दिया गया।

इन जलसों की धूम से रियासत के शहरों में आर्य समाज का प्रचार और प्रभाव बहुत बढ़गया। कार्यकर्ताओं में मौजूद धुन के साथ देहात भी जागृत हो जायं इस दृष्टि से श्रीयुत पं० बंसीलाल जी मन्त्री आ० प्र० स० निजाम राज्य ने देहातों की ओर भी ख्याल करना आवश्यक समझा। देहातों में आपके परिश्रम से खुली हुई समाजें अच्छी दशा में हैं। उनका ख्याल इसलिये भी आपको होना स्वाभाविक था। अतः देहात प्रचार का प्रोग्राम बना।

मैं इस समय जनगणना के सम्बन्ध में होने वाली मीटिंग में शामिल होने के लिये शोलापुर चला आया था अतः शोलापुर उपदेशक विद्यालय में ठहर गया। राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री इस विद्यालय के आचार्य हैं। पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय प्रचार एवं विद्यालय की देख भाल का कार्य दक्षिण में करते हैं। आपके परिश्रम के कारण विद्यालय बहुत तरक्की कर रहा है। पं० त्रिलोकचन्द जी शास्त्री तथा पं० महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री बड़े परिश्रम पूर्वक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। उपदेशकों में अच्छी रुचि और प्रतिभा का विकास हो चुका है। एक साल की दृष्टि से हालत बहुत ही शानदार है। पं० बन्सीलालजी ने संस्कृत भाषण को प्रोत्साहन देकर विद्यालय की तरक्की के लिये बहुत उत्साह पैदा कर दिया है। पं० अवध बिहारी लाल जी एम.ए. बी. एल. की सहायता से विद्यार्थियों ने कई व्याख्यान नोट किये थे। आप सार्वदेशिक सभा देहली की ओर से निजाम राज्य में नियुक्त हैं। आप मौजूदगी हालत की दृष्टि से उपदेशक बहुत ही योग्य साबित होंगे। इस विद्यालय का सारा खर्च सार्वदेशिक सभा देहली उठाती है। इस विद्यालय में पढ़ने वाले नवयुवकों की उत्साहयुक्त भावना से रियासत में आर्य समाज के प्रचार की दशा का ख्याल करते हुए मैंने कई दिन बिता दिये।

इसी समय 'सभा' के मन्त्री श्रीयुत बंसीलाल जी ने मुझे देहात प्रचार का प्रोग्राम दिया। जिसका वृत्तान्त अगले लेख में लिखूंगा। देहात प्रचार की दृष्टि से यह रियासत काफी सफल है। आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री तथा उपदेशक इस प्रान्त की दशा तथा कठिनाइयों से मुकाबला करके देखेंगे, कि उनके प्रान्त की क्या हालत है ?

इंडियन प्रेस की योजना

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद शीघ्र ही एक योजना को कार्यान्वित करने जा रहा है। इस योजना के अनुसार विविध मनोरंजन विषयों पर ३००० पुस्तकें छापी जायंगी। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ८ आने होगा। इस योजना का सारा हिन्दी-भाषी भारत वर्ष उत्साह के साथ स्वागत करेगा। हमारे देश की जनता अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने में असमर्थ है, इसलिये इंडियन प्रेस, लिमिटेड की इस योजना को अवश्य ही भारी सफलता मिलेगी। भारत के सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति का यही मार्ग है कि भारतीय जनता के ज्ञान के भण्डार में वृद्धि हो। यद्यपि भारत में सिर्फ ५ फ़ी सदी जनता साक्षर है; परन्तु इस ५ फी सदी जनता के भी अल्पांश में ही राष्ट्रीयता की प्रगति में योग देने के लायक योग्यता है। जबतक इस जनता को जीवन की विविध समस्याओं का परिचय उचित शिक्षा अथवा पुस्तकों-द्वारा नहीं दिया जाता, तबतक हम इतनी उन्नति नहीं कर सकते, जितनी करना चाहते हैं।

इस प्रकार प्रकाशक का यह उद्देश्य कि भारत की अर्द्ध-शिक्षित जनता को शिक्षा दी जाय, परोक्षरूप से राष्ट्रीय प्रगति में भी योग देगा।

प्रकाशक ने पुस्तकों की जो सूची प्रकाशित की है, उससे यह प्रकट होता है कि यह ग्रन्थमाला बहुत ही उपयोगी होगी। आशा की जाती है कि प्रत्येक घर में, प्रत्येक लाइब्रेरी में, प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में और प्रत्येक सहयोग-समिति में इस ग्रन्थ माला की पुस्तकें खरीद कर रक्खी जायँगी, जिससे जनता इन पुस्तकों को पढ़े और अपने ज्ञान की वृद्धि करे।

प्रकाशक का विश्वास है कि पुस्तकों के अत्यन्त सस्ते प्रकाशन की ओर बहुत-से ग्राहक आकर्षित होंगे, क्योंकि उन्हें अब तक अधिक मूल्य के कारण विविध विषय की पुस्तकों का परिचय प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है अतः अब वे इस सस्ते प्रकाशन का स्वागत करेंगे। हमें आशा है जिस प्रकार भूत-काल में 'इंडियन प्रेस लिमिटेड' ने अपनी योजनाओं में सफलता प्राप्त की है, उसी प्रकार वह इस योजना में भी सफलता प्राप्त करेगा और इस तरह वह हिन्दी-साहित्य की उन्नति में और अप्रत्यक्ष रूप से देश की राष्ट्रीय प्रगति में सहायक होगा।

सारस्वत सत्र

किसी भी शिक्षण संस्था के विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनीयों को नीचे के किसी भी एक या अधिक विषय पर 'मौलिक' शुद्ध तथा कम से कम १५ फुलस्केप कागजों पर हिन्दी व गुजराती भाषा में निबन्ध लिख कर अधिक से अधिक १९९७ कार्तिक सुदी ५ तक (५ नवम्बर १९४०) "प्रेम चन्द जो मगन लाल पटेल, मोरी सालवी वाड, सरसपुर अमदावाद" के पते पर भेजने का सप्रेम निमन्त्रण दिया जाता है। उत्तम निबन्ध लेखकों को क्रमशः ३०), २०) तथा १५) के प्रथम मध्यम तथा साधारणरूप के पारितोषिक दिये जावेंगे। विजेता लेखक की इच्छानुसार सुवर्ण पदक (मोहन लाल सुवर्णपदक, मगन लाल सुवर्ण पदक, तथा जमना बाई रजत पदक), मनोनीति पुस्तकें या निरीक्षण-समिति द्वारा नियुक्त की गई धार्मिक तथा तात्विक पुस्तकें दी जावेंगी। निबन्ध के विषय निम्न हैं।

(१) वेदारम्भसंस्कार (२) वेद ईश्वरीय ज्ञान है (३) आदर्श शिक्षा (४) गीता का महात्म्य (५) विवाह-

संस्कार (६) वास्तविक धर्म (७) भक्ति का स्वरूप (८) योगेश्वरकृष्ण (९) वर्णधर्म (१०) आश्रम धर्म (११) हिन्दु धर्म की महत्ता।

निरीक्षक समिति के सदस्य निम्न हैं:—

(१) आचार्य चन्द्रकान्त जी वेद-वाचस्पति, रिसर्च-स्कॉलर।

(२) प्रोफेसर जेठालाल चीमनलाल स्वामीनारायण एम. ए अहमदाबाद।

(३) प्रोफेसर केशवदेव जी, गुरुकुल कांगड़ी।

(४) श्रीयुत दिनेश नर्मदाशंकर त्रिवेदी सूरत।

निबन्ध लेखक महानुभाव निबन्ध के ऊपर अपना नाम, स्थान वगैरह साफ लिखें। प्रथम तीन पारितोषिक विजेताओं की सूचना समाचार पत्रों से दी जावेगी, अन्य लेखकों को भी एक दो पुस्तकें श्रम के उपलक्ष्य में दी जावेंगी।

निवेदक

प्रेमचन्द्र मगन लाल पटेल
सरसपुर मोरी सालवीवाड़;
अहमदाबाद।

गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० राजकिशोर ४ श्रेणी मलेरियाज्वर, ब्र० चन्द्रकेतु ४ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० प्रेमस्वरूप ३ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० वेद-भूषण ४ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० महेन्द्रपाल ५ श्रेणी मोच।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

जन्माष्टमी का उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। प्रातःकाल बृहद्यज्ञ हुआ और गीता का पाठ हुआ। तत्पश्चात् श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति का उपदेश हुआ। रात्रि के समय कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें बाहर से साहित्य रत्न श्री सुधीन्द्र जी ए० एम पधारे थे। इनकी कवितायें ब्रह्मचारियों ने बहुत पसन्द कीं।

श्री सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला के आदेशानुसार वृक्ष लगवाये जा रहे हैं। वृक्षों के गमले पक्के करवाये जा रहे हैं। श्री सेठ जी ने गमलों के लिये २००) प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के भवन आर्य स्थापत्य कला के अनुसार परिवर्तित करने के लिये जो कार्य गत वर्ष शेष रह गया था, उनकी तरफ से अब पूरा करवाया जा रहा है। इस कार्य के लिये यह संस्था उन को धन्यवाद देती है। अब रजतजयन्ती के अवसर पर आर्य-जनता यहां पधारेगी, तो उसे यह गुरुकुल बिलकुल नये रूप में दिखाई देगा।

ऋतु आज कल बहुत सुहावनी है। अभी तक मलेरिया का कोई प्रकोप नहीं हुआ है। षाण्मासिक परीक्षा १० सितम्बर से प्रारम्भ होगी और विजया दशमी से पूर्व समाप्त हो जायगी।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी
ब्रह्मचर्याश्रम बैद्यनाथधाम

ता० २६-८-४० को योगीराज श्री कृष्ण जी के जन्मोपलक्ष में एक सभा का आयोजन श्री स्वामी नाथ जी "साहित्याचार्य" के सभापतित्व में हुआ। सर्व प्रथम वेदमन्त्रों द्वारा प्रार्थना की गई। श्री पं० विश्वनाथ जी शास्त्री, श्री पं० प्रयागदत्तजी ठाकुर एवं अन्य गण्य मान्य व्यक्तियों के विद्वत्ता पूर्ण भाषण हुए। आश्रमस्थ ब्रह्मचारियों ने उनके प्रति श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कीं। सभापति जी के भाषणोपरांत शांति पाठ द्वारा सभा विसर्जित की गई।

ब्र० आशुतोष पाल
मन्त्री "विद्यापरिषद्"

भूल संशोधन—

गत १६ अगस्त के अंक में प्रूफ की निम्न अशुद्धियां रह गई हैं पाठक उन्हें शुद्ध करके पढ़ें:—

पृष्ठ ५, कालम १ पंक्ति ११ में 'हिंसाओं' की जगह 'अहिंसाओं' छपा है। इसी तरह पृष्ठ ५ का. २, नीचे से तीसरी पंक्ति में 'कर्म' की जगह 'कम' और पृ० ६ का. १. पंक्ति ५ में 'पहुंच जाता है' की जगह, 'पहुंजाता है' छपा है।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २६ भाद्रपद १९९७; १३ सितम्बर १९४० [संख्या २२

परमात्मा की प्राप्ति

(स्व० श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी के अप्रकाशित धर्मोपदेश से)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

आपके पांव तले एक भारी कोष गड़ा है पर यदि आपको उसका ज्ञान नहीं तो आपके निकट होते हुवे भी वह आपसे बहुत दूर है। आप चाहे सारा संसार खोज डालें, जब तक कि उस विशेष स्थान को नहीं खोदेंगे वह कोष आपको प्राप्त नहीं हो सकेगा। आपकी गिरह में कुछ धन पड़ा है परन्तु आपको उसकी याद भूल गई है। इधर उधर बहुतेरा खोजते फिरते हैं पर जब तक आप अपनी गिरह में हाथ नहीं डालते आपको वह धन सूझ नहीं लगता। इसी प्रकार परमात्मा यद्यपि सारे ब्रह्माण्ड में अन्दर बाहर एक सम व्यापक हैं; सूरज, चन्द्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां कि हर समय विद्यमान न हों। यहां तक कि आकाश भी उनके अन्तर्गत है इस लिये वह निकट से निकट हैं परन्तु यदि आपको उनके स्वरूप का ज्ञान नहीं तो आप चाहे सारा ब्रह्माण्ड खोज डालें आपको उनका चिन्ह न मिलेगा। इसी अवस्था में वह आप से दूर से दूर होंगे। किन्तु जब आपको उनके स्वरूप का ज्ञान हो गया तो आपको उनके दर्शन अन्दर ही अन्दर हो जावेंगे। कारण कि वह किसी स्थान विशेष में स्थित नहीं हैं अपितु घट घट में व्यापक हैं। यदि आपके हृदय-नेत्रों का अन्धकार दूर हो गया और ज्ञान चक्षु खुल गये हैं तो आपको उन्हें ढूंढने के लिये इधर उधर जाने की आवश्यकता नहीं है आप उन्हें हर समय अपने आत्मा के अन्दर ज्ञान नेत्रों से देख सकते हैं। जैसा कि एक कवि ने कहा है :—

दिल के शीशे में है तस्वीरे यार,
जब जरा गर्दन झुकाई देखली।

यद्यपि यह पद्य पूर्ण रूप से असली भाव को प्रगट नहीं करता परन्तु तात्पर्य यह है कि वह सर्वमित्र हमसे दूर नहीं है किन्तु हमारे हृदय के अन्दर विद्यमान है। जिसमें हम उनके दर्शन ज्ञान नेत्रों द्वारा वैसे ही पा सकते हैं जैसे कि एक दर्पण में किसी मित्र का चित्र देख सकते हैं। इसी भाव को दर्शाने के लिये ऊपर कही श्रुति में बताया गया है कि वह परमात्मा मूर्खों से जिनके आत्मिक चक्षु अन्धे हैं दूर से दूर है। वह युगों पर्यन्त भी यदि उसे ढूंढते फिरें और सारा ब्रह्माण्ड खोज डालें तो भी उनको प्राप्त नहीं हो सकता। परन्तु जिनके ज्ञान नेत्र खुले होते हैं उनके लिये वह निकट से निकट है। वह कहीं भी जावें परम पिता को अपने अन्दर विद्यमान पाते हैं। इस लिये एक विद्वान ने कहा है कि परमात्मा एक वृत्त है जिसका केन्द्र सब जगह है परन्तु दायरा कहीं भी नहीं। अहा! ज्ञान और अज्ञान में कैसा भारी भेद है। एक सत्यमार्ग से भटकता है और दूसरा लक्ष्य तक पहुंचता है। एक नास्तिक बना देता है, दूसरा परमात्मा के साक्षात् दर्शन करा देता है। इसी लिये कहा गया है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः,' कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है।

अतएव भक्तजनो! यदि सचमुच परमात्मा के दर्शन करना चाहते हो, यदि उस सुन्दर स्वरूप की अद्भुत छवि के दर्शन पाने की अभिलाषा है तो वेदोक्त कर्मों द्वारा अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करके ज्ञान अवस्था को प्राप्त हो कि जिससे तुम्हारे आत्मिक चक्षु खुल कर उस सर्वान्तरात्मा के जो तुम्हारे समीप से समीप है दर्शन पा सको। कल्याण का मार्ग एक मात्र यही है। नहीं तो युगों पर्यन्त भी तुम्हारा उद्धार नहीं होगा। जन्म जन्मान्तर के चक्र में भूलते भटकते और ठोकरें खाते फिरोगे! परमदेव!! हमारे हृदय अन्धकार से आच्छादित हैं, अविद्या ने हमारे आत्मिक चक्षु अन्धे कर रखे हैं। विषय विकारों ने हमारे अन्तःकरण की उज्ज्वलता को हर लिया है। हम हर प्रकार से अत्यन्त मलीन और बलहीन हैं। तुम हमारे हृदयों को अपनी ज्योति से प्रकाशित करो कि हमारे ज्ञान नेत्र खुल जावें जिससे हम आपको जो कि सदा हमारे संग संग हैं जान सकें।

———

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले० श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—

श्री धर्मराज वेदालंकार]

व्यवहार कुशलता

(१०)

आज जनता में सामान्यतया ऐसी राय पड़ी हुई है कि गुरुकुल वाले अव्यवहारी होते हैं। दृष्टि बिन्दु में भेद होने के परिणाम स्वरूप ऐसे अभिप्राय प्रकट होते हैं। दुनिया का बड़े से बड़ा राजनीतिज्ञ भी व्यवहार कुशलता का दावा नहीं कर सकता। उससे भी गम्भीर भूलें होती हैं। व्यवहार शास्त्र बहुत विशाल और भिन्न २ प्रकार का है। यह तो समय के गुजरने के साथ अनुभव प्राप्त करके मनुष्य व्यवहार कुशल बन सकता है। जीवन में जिस व्यक्ति के लिये 'धर्म' मुख्य ध्येय होगा वह धर्म के लिए प्राण देता है धन का त्याग करता है और ऐश्वर्य को त्याग देता है तो ऐश्वर्य शालियों के अभिप्राय से वह धर्मात्मा अव्यवहारी सिद्ध होता है। कारण यह है कि क्षणभंगुर ऐश्वर्यों का इच्छुक अन्त में फायदे में है या शाश्वत सिद्धान्तों को प्राप्त करने वाला धर्मात्मा फायदे में। इन दोनों दृष्टिबिन्दुओं को समझने की आवश्यकता है। मुझे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि परिश्रमी प्रामाणिक, सत्यवादी और सुशील स्नातक की आर्थिक जीवनवृत्ति कैसी भी हो परन्तु वह सच्चा व्यवहार कुशल गिना जाना चाहिए। चालाक, धूर्त, दूसरों को ठगने वाला आदमी सामान्य दृष्टि से चाहे व्यवहार कुशल हो परन्तु वह तो सच्चा अव्यवहारी है। शास्त्रों का पढ़ा हुआ जब अव्यवहारी बनता है तब उसकी "बदीया ढोरे" इस उपनाम से टीका होती है परन्तु मैं कहता हूं कि अंग्रेजी पढ़ कर जो अव्यवहारपना हमारे नवजवान दर्शाते हैं उनको क्या कहा जाय ? मेरे व्यक्तिगत अनुभव में अच्छे प्रोफेसरों और शिक्षितों में भी ऐसे अव्यवहारपना देखा है, परन्तु हम अपनी प्रिय चीज़ में सदा उत्तमता देखना चाहते हैं इस कारण गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के फल स्वरूप स्नातकों में व्यवहार कुशलता होनी चाहिए ऐसी इच्छा करें इसमें कोई गलती नहीं है। यह बात ठीक है कि जिस समाज में कार्य करना है उस समाज के प्रचलित शिष्टाचार के नियमों का ज्ञान लेना चाहिए। कितनी ही सामान्य बातें होती हैं कि जिनका अज्ञान असह्य गिना जाता है। उदाहरण के लिए किसी ने किसी कार्य को करने के लिए हमें कहा हो तो उस कार्य की समाप्ति होने पर उस का उपकार न मानना अशिष्ट गिना जाता है। किसी का पत्र आया हो उसका उत्तर न देना, किसी ने प्रेम से कुछ सूचनायें दी हों उनका अनुग्रह से स्वीकार न करना, कुछ अहंकार दिखाना आदि व्यवहार में असभ्यता है और उससे उसमें अव्यवहारपना है ऐसा कहना चाहिए। व्यवहार कुशल बनने वाले को चाहिए कि वह सामने वाले का अनुभव, सामने वाले की परिस्थिति, और सामने वाले का स्वभाव परखना सीख लेवे। हमारे लिए दूसरे नहीं हैं परन्तु हम दूसरों के लिए हैं इस महान् गुण के कारण मनुष्य सच्चा व्यवहार कुशल बन सकता है। चलते समय बोलते समय, जंभाई लेते समय, स्नान करते समय और और ऐसे ही जीवन की प्रवृत्ति के समय देश और काल को समझ कर शिष्टाचार के अनुसार बर्ताव करना चाहिए। ऐसी कुछ एक त्रुटियां गुरुकुल के शिक्षितों में से कुछ एक में देखने में आती हैं इसका मुख्य कारण मेरी समझ में यह है कि वर्षों तक ब्रह्मचारियों को समाज से अलिप्त रखा जाता है।

बाह्य सम्पर्क:— गुरुकुल में पढ़ने वालों को एक निश्चित समय तक समाज से बिल्कुल अलिप्त रखने की जो प्रथा गुरुकुलों में पड़ी हुई है वह हानिकारक है। इस से ब्रह्मचारियों का Finer Feelings मन्द हो जाती हैं। उसमें से पारिवारिक भावनाओं में स्थित कोमलता नष्ट हो जाती है। वह हिमालय के एकान्त में स्थित शिखर के समान उच्च बनता है, रम्य बनता है परन्तु जैसे शिखर पर वनस्पति पैदा नहीं हो सकती या प्राणी विहार नहीं कर सकते वैसी प्रकृति वाला व्यक्ति नीरस बन जाता है। हिमाच्छादित शिखर को देख कर सिर झुक जाता है परन्तु उसपर चढ़ते हुए मनुष्य को थकान लगती है। बाह्य सम्पर्क से अलग रह करके ब्रह्मचारी समाज में एकाकी सा बन जाता है।

सम्बन्धियों के सुख और दुःख में सक्रिय हमदर्दी लेने की भावनायें लुप्त हो जाती हैं। वह मधुर वाणी या सुन्दर लेखनी से सम्बन्धियों की या समाज की सेवा करने का उत्साह दर्शाता है परन्तु जब यह कार्य करने का मौका आता है तब वह अव्यवहारी बन जाता है। इस प्रकार के अव्यवहारीपने का सच्चा कारण बाह्य सम्पर्क का अभाव है। ब्रह्मचारियों को समाज के दूषित वायुमण्डल से पृथक् रखने की भावना गलत नहीं है परन्तु जो ब्रह्मचारी समाज का अंग है, समाज में ही जिसके भविष्य का निर्माण होना है उस समाज में स्थित अच्छे या बुरे तत्वों को, मगर, हंस और कोयलों को पहचान लेने का अवसर उसको देना ही चाहिए। अतः इस विषय में गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के ज्ञाता और अध्ययन करने वालों के साथ बहुतसा वादविवाद हुआ है। एक पक्ष ऐसा कहता है कि ब्रह्मचारियों को गुरुकुल काल के समय समाज के दूषित वायुमण्डल से अलिप्त रख कर स्फटिक की तरह ब्रह्मचारी पैदा करने चाहिए, परन्तु यह बात सिद्ध नहीं हो सकी है; यह परिणाम बिलकुल निष्फल गया है। बचपन में बालक की जातीय भावना (Sexual Impulse) उग्र या नीति विरोधी नहीं होती। उसके आगे माता या बहन का प्रेम बारी २ से सम्मुख आते रहना चाहिए। प्रासंगिक बाह्य सम्पर्क या सम्बन्धियों के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप यदि कोई विषैला प्रभाव ब्रह्मचारियों में प्रतीत होगा तो गुरुकुल के आन्तरिक सम्पर्क

के परिणाम स्वरूप वह विष उतर जायगा। इस प्रकार बारी २ से प्रयोग होने से वह ब्रह्मचारी अभ्यासी हो जाता है और उसको अच्छा बुरा पहचानने की आदत पड़ जायगी। दुनिया में कितना खराब है और कितना अच्छा होना चाहिए यह ब्रह्मचारी समझ सकेगा। हम श्वास प्रश्वास की क्रिया से जीते हैं श्वास में औक्सिजन लेते हैं परन्तु इस औक्सिजन का उपयोग अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने में करते हैं और फिर प्रश्वास के रूप में कार्बोनिक एसिड गैस निकालते हैं। यदि हम अकेले औक्सिजन को ही लेते रहें तो हम जी नहीं सकते और यह अव्यवहारपना कहा जाता है। इसी तरह से समाज या सम्बन्धियों से अलग रखने की जो प्रथा गुरुकुल में जारी है वह प्रथा भी बालक के जीवन को कृत्रिम बना देती है। गुरुकुल के संचालकों को क्यों ऐसा मान लेना चाहिए कि समाज में मगर मच्छ ही हैं और गुरुकुल का वातावरण केवल "नन्दनवन समान" है एक बालक को अनध्याय के दिनों में सम्बन्धियों के पास भेजने से ब्रह्मचारियों के जीवन स्रोत में नये पानी की वृद्धि होगी। माता पिता इस विद्यार्थी के सम्पर्क में आने से ब्रह्मचारी ने कितनी उन्नतियां अवनति की उसे परख सकते हैं। यह तो गुरुकुल के अभ्यास का 'परीक्षा काल' बन सकेगा। वर्षों तक बालक की प्रवृत्ति न समझने वाले माता पिता उसे स्नातक होने के बाद किस तरह से आगे प्रेरणा दे सकते हैं यह समझ में नहीं आता। इस लिए मेरी तो दृढ़ धारणा है कि प्रारम्भ के २-३ वर्ष की श्रेणी बाद ब्रह्मचारियों को दीर्घावकाश के दिनों में उनके माता पिता के पास भेज देना चाहिए। इससे संरक्षकों के साथ गुरुकुल का और ब्रह्मचारी का सम्पर्क बढ़ेगा। गुरुकुल की त्रुटि संरक्षक लोग बता सकेंगे और संरक्षकों की त्रुटि गुरुकुल के संचालक सूचित कर सकेंगे। इस तरह से ब्रह्मचारी को दुगना लाभ होगा। उसमें कोमलता आवेगी, सच्ची सुश्रूषा करने का स्वभाव बनेगा, सहिष्णुता आयगी और वह Social being बन सकेगा। सूपा गुरुकुल के ब्रह्मचारी दीर्घावकाश के दिनों घर आते हैं फिर भी उन में विशेष दोष आ जाते हों ऐसा देखा नहीं गया इसके विपरीत विवेकी और सभ्य तरीकों से आगे बढ़ते हुए गिने जाते हैं।

जीवन संघर्ष में विजयी होने के लिए जीवन की चट्टानों से दूर रहने में बहादुरी नहीं है परन्तु उसके अभ्यास होने में है। आज जो निष्फलता देखने में आती है उसका मूल कारण यह है। सम्बन्धियों के परिचय में आने से परस्पर के विरोधी स्वभाव होते हुए भी उसमें एक रस होकर किस तरह रहा जाता है वह सहिष्णुता का स्वभाव सीखा जाता है। और माता पिता को उसके सिद्धान्तों के विकास का परीक्षण करने की, गुरुकुल के अध्यापकों ने बालक में क्या वृद्धि की है यह देखने का अवसर वर्षों तक नहीं मिलता। इससे मातापिता और गुरुकुल ये दोनों बिना उत्तरदायित्व वाले होकर बालक का विकास इस प्रकार का करते हैं कि वह न तो गुरुकुल का बनता है और न गृहकुल का बनता है। उसमें विरोधाभासी गुणों और अवगुणों का आविर्भाव होता है वह सहनशील होते हुए भी असहिष्णु, प्रेमी होते हुए भी कठोर, व्यवहारी होते हुए भी अव्यवहारी, सेवा भाव होते आलसी, ज्ञानी होते हुए अज्ञानी गम्भीर होते हुए भी उथला, सरल होते हुए भी अभिमानी, संयमी होते हुए भी असंयमी, कार्य करने की लगन होने पर भी कम न करना पड़े ऐसी इच्छा वाला, बन जाता है। ऐसे स्नातक अव्यवहारी गिने जायं इसमें क्या नवीनता है। चौदह वर्ष तक गुण कर्मानुसार वर्ण मानने वाले स्नातक भी जाति बन्धन में पड़ गये इसका दूर का कारण भी यही है। गुरुकुल और कुल इन दोनों के बीच में खाड़ी (gulf) रहने से ऐसा प्रत्याघात होता है। अब तक विद्यावृत फिर मगन लाल बन जाता है। अमुक ब्रह्मचारी किस जाति का है इससे निश्चित समय तक अपरिचित रहने वाले स्नातक को दूसरे ही क्षण से जात पात के पाठ पढ़ने पड़ते हैं। इससे जो वायुमण्डल पैदा होता है उसके परिणाम में स्नातक अव्यवहारी माने जाते हैं इस लिए गुरुकुल और गृहकुल के बीच की शृंखला जोड़ी जाय यह जरूरी है। इतना ही नहीं परन्तु यह अत्यावश्यक है। एक ओर माता पिता की प्रासंगिक और काम चलाऊ माया और थोड़े समय के विषैले वायुमण्डल का प्रभाव और दूसरी ओर सारे जीवन में से कोमल भावनाओं का अभाव और जीवन के विरोधी तत्वों के बीच में लटकना इन दो में से क्या पसन्द करना यह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रखर विचारकों पर छोड़ता हूँ।

श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री कैद में

जनता को यह भली भांति विदित है कि गत २८ अगस्त को पं० दीनदयालु जी शास्त्री को देवबन्द में व्याख्यान देने के कारण दफा ३८ के आधीन पुलिस ने गिरफ्तार किया था किन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि उसके बाद से अभी तक श्री शास्त्री जी के साथ साधारण कैदियों का-सा व्यवहार किया जा रहा है। ठा० फूलसिंह जी वकील ने हाकम परगना का ध्यान इस ओर दिलाया, परन्तु उसने जिला मजिस्ट्रेट के यहां दरख्वास्त देने को कहा। शास्त्री जी के भाई परिवार सहित सहारनपुर पहुँचे। उन्होंने भी हाकम परगना के इजलास में शास्त्री जी के साथ उच्च श्रेणी का व्यवहार करने की दरख्वास्त दी, जिस पर तहसीलदार से रिपोर्ट मंगाई गई है। ३ सितम्बर को शास्त्री जी के मुकदमे की अफवाह थी। बहुत से कार्यकर्ता कचहरी पहुँचे थे। परन्तु उनका मुकदमा पेश नहीं हुआ।

सुना जाता है कि अभी पुलिस ने कागजात और चालान अदालतमें नहीं भेजा है। हमें अधिकारियों के इस रवैये से गहरा असन्तोष है।

गुरुकुल

२६ भाद्रपद शुक्रवार १९९७

तरणोपाय* कौनसा ?

[ले० श्री विनोबा जी]

वैधानिक आन्दोलन करना, जनता की शिकायतें सरकार के सामने पेश करना और बड़े मीठे ढंग से उन शिकायतों का इलाज करा लेना; और इतना करने से सन्तोष मानना—यही शुरू शुरू में कांग्रेस का कार्यक्रम था। लेकिन न तो शिकायतें दूर होती थीं, और न सन्तोष ही मिलता था। एक युग के अनुभव के बाद कांग्रेस इस निष्कर्ष पर पहुँची कि स्वराज्य के बिना चारा नहीं है। और स्वावलंबन के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। यह अनुभव का सन्देश तरुणों को सुना कर पितामह दादा भाई निवृत्त हो गये।

धुन के पक्के तरुण काम में जुट गये। गुप्त षड्यन्त्र करके, सरकारी अहलकारों के खून करके और सरकार को डरा कर स्वराज्य प्राप्त करने का, अपनी दृष्टि से स्वावलम्बी प्रयोग, उन्होंने शुरू कर दिया। आन्दोलन के लिए पैसे की जरूरत होती है। वह कहां से लाया जाय? पुराने नेता भिक्षा मांगकर निधि जमा करते थे लेकिन यह मार्ग परावलंबी था। इसके अलावा, अराजक तरुणों के लिए वह खुला भी नहीं था। तरुणों ने डाके डालकर पैसे कमाने के स्वावलंबी मार्ग का अवलंबन किया। शुरू में इन डाकुओं की— अगर जिन के घरों में डकैती हुई, उन लोगों ने नहीं—तो दूसरे सुरक्षित लोगों ने, थोड़ी बहुत प्रशंसा भी की। इसलिए स्वार्थी डाकू भी, उनके लिए इस अधिक सुसाध्य, साधन का प्रयोग करने लगे। जो भजन जैसी उज्वल संस्था पर भी कब्जा कर सके, उन के लिए डकैती हस्तगत करना मुश्किल तो था ही नहीं। फलतः दोनों प्रकार की डकैतियों से जनता पीड़ित हुई। उधर सरकार ने भी दमन-नीति अख्त्यार की। तरुणों के लिए जो सहानुभूति थी, उसका स्रोत सूखने लगा।

इतने में समझदार अहिंसावादी सामने आये। वे कहने लगे कि पुराना वैधानिक आन्दोलन का मार्ग जिस प्रकार बेकार था, उसी प्रकार यह गुप्त साजिशों का मार्ग भी बेकार है। इतस्ततः दो-चार खून करने से क्या फायदा? हिंसा भी कार्यकारी होने के लिए संगठित होनी चाहिए। असंगठित, अव्यवस्थित, लुक-छिप कर की हुई अहिंसा, किसी काम की नहीं है। और संगठित अहिंसा तो हमारे वश की बात नहीं है। इसलिए हमें अहिंसा से ही प्रतिकार करना चाहिए। गांधी जी हमें रास्ते दिखाने के लिये समर्थ हैं। उनके मार्गदर्शन से लाभ उठाकर हमें जनता की प्रतिकार-शक्ति संगठित करनी चाहिए। जनता की शक्ति संगठित होने पर उसकी बदौलत, यदि सम्पूर्ण नहीं तो थोड़ी-बहुत, सत्ता हमारे हाथों में अवश्य आयेगी। वह सत्ता आने पर आगे का विचार कर लेंगे।

आजकल यह अहिंसा नीति के रूप में थी, जो हमारे तरुणों को भी गुप्त षड्यन्त्रों की असफलता के और दक्षिण आफ्रिका में गांधी की सफलता के अनुभव के कारण कुछ कुछ जँची। जो लोग अपनी परछाई से भी डरते थे, उनके सिवा सारा-का-सारा राष्ट्र एक दिल होकर अहिंसा प्रतिकार के इस नये आन्दोलन में शामिल हुआ। गांधी जी की नैष्ठिक अहिंसा और उनके अनुयायियों की राजनैतिक अहिंसा के जोड़-घटाने से जितनी शक्ति प्रकट हो सकी, उस परिमाण में उसका परिणाम भी निकला और असंगठित हिंसा की असहायता अन्वय-व्यतिरेक से सर्वमान्य हुई।

इतने में यूरोप में महायुद्ध सुलगा। शौर्य, साधन-संपत्ति, संगठन, साहस, आदि गुणों के लिए प्रसिद्ध शक्तिशाली राष्ट्र पांच-पांच दस-दस दिन में अपनी स्वतन्त्रता गवां बैठे। बीस साल पहिले वैभव के शिखर पर पहुंचा हुआ फ्रान्स जैसा राष्ट्र भी तीस लाख की फौज खड़ी कर, इंग्लैंड जैसे राष्ट्र का सहयोग प्राप्तकर, और शूरता की पराकाष्ठा कर, गुलामों से भी गुलाम हो गया। जिन हाथों ने पिछले महायुद्ध में फ्रांस को विजय प्राप्त करा दी, शरण-चिट्ठी लिख देने के लिए भी उसे उनके सिवा दूसरे हाथ उपलब्ध नहीं हुए।

हमारी आंखें खुल गयीं। असंगठित हिंसा तो बेकार साबित हो ही चुकी थी। लेकिन वर्किंग कमेटी कहती है कि अब यह स्पष्ट हो गया है कि चाहे जितने बड़े पैमाने पर की हुई संगठित हिंसा भी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए बेकार है।

असंगठित हिंसा और सुसंगठित हिंसा—नहीं नहीं, अति सुसंगठित हिंसा—दोनों, या तीनों, बेकार सिद्ध हो चुकी हैं। तब क्या किया जाय?

गांधी जी कहते हैं—"अहिंसा के प्रति अपनी निष्ठा दृढ़ करो।"

हम कहते हैं—"हम अभी तैयार नहीं हैं"।

"तो तैयारी करो।"

"अवसर बड़ा विकट है; ऐन वक्त आगया है। हम मनुष्य दुर्बल हैं। इस लिए उस प्रकार की तैयारी के लिए आज तुरन्त अवकाश नहीं है।"

"तो फिर घड़ीभर के लिए स्वस्थ (शान्त) रहो। मिल्टन कहता है न; कि जो स्वस्थ (शान्त) रह कर प्रतिक्षा करते हैं वे भी सेवा करते हैं?"

"हां कहता तो है; लेकिन हम पर जिम्मेदारी है। हमें कुछ-न-कुछ हाथ-पैर हिलाना ही चाहिए।"

पानी में तैरने वाला तर जाता है। पानी पर स्वस्थ (शान्त) लेटने वाला भी पानी की सतह पर रहता है। केवल हाथ-पैर हिलाने वाला तह में पहुँच जाता है। केवल 'हम कुछ-न-कुछ कर आयेंगे' ही से क्या होने वाला है?

(मराठी 'ग्राम-सेवा-वृत्त' से)

*तरणोपाय=तरण+उपाय, अर्थात् तरने का या बचने का उपाय।

स्त्री समाज और शिक्षा

(लेखिका—श्रीमती विद्यावती जी बनारस)

नारी जाति की समस्या पर आज कल बहुत कुछ आन्दोलन हो रहा है, आज की नारी घर की चार दीवारी को लांघ कर पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ा आगे बढ़ रही है, उनका क्षेत्र विशाल हो गया है और वह अपने पददलितसमाज को उन्नति की चरम सीमा तक पहुंचाना चाहती है. परन्तु एक ओर उनका क्षेत्र और दूसरी ओर संघर्ष कौनसा मार्ग उसके लिये उचित है, ताकि वह अपने पति और बच्चों के बीचमें रहते हुए भी अपने ध्येय की पूर्ति कर सके। वह संस्कृत साहित्य, कला और इतिहास का अध्ययन करे, या आधुनिक आन्दोलनों का ?

आज मैं आपके सामने स्त्री समाज की उन्नति किस प्रकार हो इस पर अपने तुच्छ भावों को प्रगट करना चाहती हूं। वर्तमान शिक्षा का आदर्श हमारे भारतवर्ष में किस कोटि तक पहुंच चुका है यह आप लोगों से छिपा नहीं है। प्राचीन शिक्षा के आदर्श को देख और आज की दशा को देख कर हमारा हृदय विदीर्ण हो जाता है. स्त्री शिक्षा का स्थान हमारे देश में कितना प्राचीन है सब से पहिले वेदों के तुल्य उपनिषदों को लीजिये, मातृजाति की विद्वता से उपनिषद् साहित्य सारा भरा पड़ा है। जो कि गर्व से एक अमूल्य शिक्षा, अपने सभ्यता वंशस्थल को फैला कर दिखा रहा है। जैसे—

"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ,तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा-पृथिव्यौ विधृते तिष्ठत. एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्यो नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्यन्याः यां यांश्च दिशमन्वेति एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याःप्रशंसन्ति यजमानं देवादर्वी पितरो-ऽन्वायत्ता."

ऐसे २ अनेकों वाक्य हैं जिनमें गार्गि शब्द गूंज रहा है. बल्कि सारा उपनिषद् ऐसे ही वाक्यों से भरा पड़ा है। इससे पता चलता है कि गार्गी दर्शन शास्त्र की कितनी विदुषी थी स्त्रियोंकी प्राचीन शिक्षा का प्रमाण उपनिषदों में आज तक मौजूद है।

अस्तु, अत्यन्त पुरानी बातों को छोड़ कर ५ सौ वर्ष पूर्व स्वामी शंकराचार्य के समय को ही ले लीजिए, जिस समय स्वामी शंकर और मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हुआ तो उसकी मध्यस्था मंडन मिश्रकी धर्मपत्नी भारती नियुक्त हुई और जब मंडन मिश्र की हार हुई तो भारती ने उनको हराने का दावा किया और उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये प्रस्तुत हुई जिसके लिये शंकर स्वामी को उनके प्रश्नों के उत्तर देने में एक साल की अवधि मांगनी पड़ी। स्त्री जाति की शिक्षाका प्रभाव जरा देखिए ? जिन शंकराचार्य के भाष्य पढ़ने में बड़े २ विद्वानों के दांत खट्टे हो जाते हैं उन्हीं को एक स्त्री शास्त्रार्थ के लिये चेलेञ्ज देती है और शास्त्रार्थ में हराने का दावा रखती है। यह हमारी प्राचीन दीक्षा का जीता जागता नमूना है।

परन्तु आजकल के नवयुवक और नवयुवतियां पाश्चात्य असभ्यता में फंस कर अपनी तथा अपनी भावी संतति का जीवन सदा के लिये बर्बाद कर रहे हैं और अपने जीवन से सदा के लिये हाथ धो बैठने को तैयार हैं। अस्तु यह भी देश का दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहा जा सकता है।

भारतवर्ष दुनियां की तपोभूमि है यहां उत्पन्न होने वाले स्त्री पुरुष समान साधन में लीन होकर श्रेय सम्पादन करते हैं, वे कर्तव्य के यज्ञ में अपने आपको होम देते हैं। और स्त्रियां भी उनसे कभी पीछे नहीं रहीं। उदाहरणार्थ केकई, और आधुनिक झांसी वाली रानी लक्ष्मी बाई ने यह सिद्ध कर दिखाया—

"क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हो नारियां
रण रंग राज्य सधर्म रक्षा कर चुकीं सुकुमारियां ॥"

अब आप इस पद्य से समझिए कि यदि मातायें तथा बहिनें शिक्षित हों तो क्या नहीं कर सकतीं। शिक्षा शब्द से आप पाश्चात्य कुशिक्षा को न समझ कर अपनी देववाणी संस्कृत विद्या पर ही दृष्टि डालें। तब देखेंगे कि उक्त देवियों सरीखी मातायें होती हैं या नहीं।

इतना सब लिखने का सार यही है कि आप लोग देववाणी संस्कृत विद्या का प्रचार हमारी माताओं बहिनों में करें और उनको दिल-चस्पी से पढ़ायें तभी स्त्री जाति की उन्नति हो सकती है और तभी मनुष्य समाज की भी उन्नति हो सकती है वरना पाश्चात्य ढंग से उन्नति होना असम्भव है। कहा भी है:—

साहित्य नहीं जिस देश में वह देश ही बर्बाद है।
फिर भी यही कहते 'गिरीश' प्राचीन गौरव याद है ॥

यह प्रसन्नताकी बात है कि हमारे देशकी महिलाओंने शिक्षा के महत्व को भली भांति हृदयङ्गम कर लिया है। यही कारण है कि प्रति वर्ष स्कूलों व कालेजों में शिक्षा लाभ करने वाली लड़कियों की संख्या बढ़ती आ रही है। परन्तु शिक्षा प्रचार के साथ ही हमारे सामने कई विकट समस्यायें भी आए दिन उपस्थित होती रहती हैं। उनमें एक है बालिकाओं की शिक्षा-पद्धति सम्बन्धी समस्या। हमारे देश में बालक बालिकाओं के लिये एक ही प्रकार की शिक्षा पद्धति निर्धारित की गई है। आधुनिक पद्धति द्वारा बालक बालिकाओं को जो शिक्षा दी जाती है, वह न तो बालकों के लिये उपयोगी है और न बालिकाओं के लिये। कालेजों की बड़ी २ डिग्रियां प्राप्त करने के बाद अधिकांश युवकों का एक मात्र लक्ष्य नौकरी करना होता है, यदि भाग्यवश कोशिश पैरवी करने से कोई नौकरी मिल गई, तो वे अपनी शिक्षा को सार्थक और जीवन को धन्य समझते हैं। और अगर कहीं नौकरी का कोई सिल-सिला न बैठा तो उनका सारा जीवन बेकार हो जाता है। और यदि कुछ रोजगार-धन्धा करने का कोई उद्योग करते हैं तो पग पग पर उन्हें असफलताओं का शिकार होना पड़ता है। इसका एक मात्र कारण है शिक्षा-पद्धति,

जो हमें केवल नौकरीके सिवाय जिन्दगी में और कोई काम करने योग्य नहीं बनाती है।

अब उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकों का यह हाल है, तो उच्च उपाधिधारिणी युवतियां अपने जीवन में किस प्रकार सफल हो सकती हैं, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। बी० ए०. बी० टी० पास करने वाले पुरुषों को तो नौकरी मिल भी जाती है; परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि शिक्षित महिलाओं को सरकारी महकमों व गैर-सरकारी आफिसों में मिल भी नहीं सकती। इस लिये यह बहुत आवश्यक है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए पुरुषों से भिन्न और कोई शिक्षा—पद्धति जारी की जाय, जिसमें वे पुरुषों की भांति नौकरियों के चक्कर में न पड़ी रहें, बल्कि पढ़ लिख कर योग्य गृह—णियां और माताएं बनें।

जो महिलाएं असाधारण प्रतिभावान् हैं, वे भी पुरुषों के साथ वर्तमान पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो सकती हैं। पर जिन्हें शिक्षा प्राप्त कर विवाहित जीवन में प्रवेश करना है, जिन्हें गृहणी बन कर घर गृहस्थी को सम्भालना है, उनके लिये वर्तमान शिक्षा बहुत कुछ व्यर्थ और अनुपयोगी है। इसके बदले यदि वे यह सीखें कि गृहस्थ जीवन में किस प्रकार थोड़े खर्च में सुन्दर से घर का काम काज चलाया जा सकता है, घर के आमद खर्च का किस प्रकार हिसाब रक्खा जाय, बाल बच्चों की देखभाल किस प्रकार की जाय, घर में कोई बीमार पड़ जाय, तो कैसे उसकी सेवा-शुश्रूषा की जाय, तो इस से उनको बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

इसी विषय को लक्ष्य में रख कर स्त्री-शिक्षा की वर्तमान पद्धति में सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा पद्धति से हमारा समय और स्वास्थ्य दोनों नष्ट हो रहे हैं, लाभ होना तो दूर रहा। इस सम्बन्ध में मेरी विशेष कर अपनी शिक्षिता बहनों से ही प्रार्थना है इस आवश्यक विषय की ओर उनके ही ध्यान देने से वर्तमान शिक्षा—पद्धतिमें परिवर्तन कर उसे उपयोगी बनाया जा सकता है।

वास्तव में वही मनुष्य मनुष्य है, जिसका संसार में जन्म लेना सब दृष्टि से सार्थक हो।

सच्चा नेता, सच्चा समाज सुधारक वही है, जो समाज में फैली हुई कुरीतियों और व्याधियों को दूर कर ज्ञान, शिक्षा और सभ्यता का प्रकाश कोने कोने में फैला दे। वही सन्तान सन्तान है, जो अपनी प्रतिभा से पतन की ओर लेजाने वाली विचारधारा की गति दूसरे रूप में बदल कर संसार को अपने विचारों के प्रवाह में बहा कर उन्नति और अभ्युत्थान की ओर ले जाए। ऐसे महापुरुषों के आविर्भाव के लिए माता अत्याचारों और क्लेशों से पीड़ित पृथ्वी निरन्तर रोया करती है, जिन माताओं के गर्भ से युग प्रवर्तक महात्माओं का जन्म होता है, वास्तव में उनका नारी जीवन धन्य है, उनका मातृत्व गौरव—मय है।

यह बात विश्वविदित है कि जो आज कन्या हैं वह कालान्तर में जाकर माता अवश्य बनेंगी, और बन भी रही हैं; पर सुमाता होने का सौभाग्य बहुत कम को प्राप्त होता है। ज्ञानी, विद्वान, तेजस्वी, वीर और साहसी पुत्रों को प्रसव करने वाली माताओं की गणना सुमाताओं में होती है; ऐसी सुमाताएं वर्तमान युग में महात्मा गांधी, देशभक्त जवाहरलाल नेहरू आदि महापुरुषों की जन्म—दात्री माताएं हैं।

पुत्र को गुणवान, विद्वान और महापुरुष बनाने के लिये माता को गुणवती और सुशिक्षिता होना आवश्यक है। परन्तु सुशिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से नहीं है, जो आज कल स्कूलों और कालेजों में दी जाती है। माता की सुशिक्षासे मेरा मतलब है उन सद्गुणों और सद्भावनाओं से विभूषित होना, जिनसे वह अपनी सन्तान को संसार-क्षेत्र में उतरने के लिये 'मनुष्य' के रूप में गढ़ सके। आधुनिक शिक्षा की कसौटी में कस कर देखने से तो शिवा जी, राणा प्रताप, ऋषि दयानन्द, स्वामी शंकराचार्य, स्वामी अखण्डानन्द जी जिनका वर्तमान में शरीर विद्यमान है जो चित्रकूट के निवासी हैं तथा तुलसीदास, कबीरदास, गुरु गोविन्दसिंह आदि महा पुरुषों की माताएं अशिक्षिता ही उतरेंगी।

वर्तमान समय में हमारे देश में महिलाओं की समस्याओं को समझने और उनका उचित समाधान करने की काफी दिलचस्पी दिखाई जा रही है। आप किसी भी मासिक या साप्ताहिक पत्र को उठा कर देखिए, आपको प्रायः हर एक अङ्क में एक या दो लेख अवश्य मिलेंगे। कितने ही पत्रों ने तो नियमानुकूल महिलाओं के लिये स्वतन्त्र स्तम्भ नियत कर दिये हैं, जिनमें बराबर महिला समस्याओं की चर्चा हुआ करती है। पर साथ ही कुछ ऐसे अनुदार व्यक्ति भी हैं, जो महिलाओं को पूर्व की भांति आज भी रूढ़ियों और कुसंस्कारों के जाल में कसे रखना चाहते हैं। एक श्रेणी के कुछ ऐसे भी लोग हैं जो बीच के मार्ग से चलना चाहते हैं। स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में तो जरूर हैं, पर वे नहीं चाहते कि स्त्रियां बिल्कुल स्वतन्त्र करदी जायं। मेरे विचार में भी उनका कथन बहुत अंशों में ठीक है। स्वतन्त्रता कोई बुरी चीज नहीं है, पर स्वतन्त्रता से वही स्त्री लाभ उठा सकती है, जो उसका ठीक २ उपयोग कर सके और जिस में इतनी शक्ति हो कि दूसरे उसकी स्वतन्त्रता हड़प जाने का साहस न दिखावें। जैसा कि इसी वर्ष बनारस में स्वामी सत्यदेव जी ने विश्वविद्यालय में लड़कियों के बीच में भाषण देते हुए कहा था, कि तुम अपनी रक्षा अपने आप करना सीखो। तुम गुण्डे और धूर्तों से बचने के लिये अपने हाथ में बेंत रक्खो या छुरी रखो, मैंने स्वयं ही जब 'आर्य समाज मन्दिर' में जाकर यह प्रश्न किया कि लड़कियां अपने धर्म की रक्षा गुण्डों से किस प्रकार कर सकती हैं तब उन्होंने वही उत्तर दिया जो कि मैंने लिखा है। ऐसी ही स्त्रियां राष्ट्र निधि और चिरस्थायी सम्पत्ति को प्राप्त कर सकती हैं।

गुरुकुल समाचार

आज कल गुरुकुल का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुहावना है। सारी कुलभूमि हरी घास से आच्छादित है। इस हरियाली के बीच महाविद्यालय, विद्यालय, आश्रम, चिकित्सालय की गुलाबी-रंग की इमारतें बहुत भली मालूम देती हैं। नहर के साथ-साथ जाने वाली गुरुकुल की पक्की सड़क बड़े २ पत्तों वाले वृक्षों की सघन छाया से दिन में भी अन्धकार पूर्ण बनी रहती है। वहां की छटा अवर्णनीय है।

शरत काल के आगमन के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। आकाश में श्वेत-रंग के बादल जहां तहां मण्डराते दृष्टिगोचर होते हैं। गुरुकुल से दीखने वाली हिमालय की सुविस्तृत हिम शृङ्खला लोचनों को पुनः शीतल करने लगी है खेतोंमें चारों ओर फूले हुए कास-पुष्प आकाश में चलतेहुए शारदीय मेघोंसे हास-परिहास करते प्रतीत होते हैं। गुरुकुल की नारंगी की बगीचियों में फूलोंके साथ छोटे-छोटे फल अधिक संख्या में लग रहे हैं।

गंगा का जल दिनों दिन स्वच्छता एव मर्यादा धारण करने लगा है। ब्रह्मचारी भ्रमणार्थ गंगापार के जंगलों जाने लगे हैं।

पिंडारी का दल—पिण्डारी का दल अपने लक्ष्य तक पहुंच कर अब सकुशल लौट रहा है। मार्ग में वर्षा आदि के कारण इन्हें पथ में दिक्कत उठानी पड़ी। किन्तु ब्रह्मचारियों ने बड़े धैर्य और साहस के साथ परिस्थिति का मुकाबला किया और सफल हुए।

गुरुकुल का क्रीडाक्षेत्र—पिछले कई वर्षों से गुरुकुल के अधिकारियों का ध्यान क्रीड़ा क्षेत्र की सुधरवाई की ओर जा रहा था। इसवर्ष श्री मुख्य अधिष्ठाता जी ने अपनी विशेष आज्ञा द्वारा क्षेत्र का सुधरवाना शुरू कर दिया है। वर्तमान स० मुख्याधिष्ठाता श्री डा० सत्यपाल जी बड़ी तन्मयता से इस कार्य का देख रेख कर रहे हैं। आशा है छुट्टियों के अन्त तक सुन्दर मैदान तैयार हो जायगा।

स्वास्थ्य समाचार

गुरुदेव २ श्रेणी नेत्ररोग, धर्मवीर १ श्रेणी विषमज्वर रमेशचन्द्र ५ श्रेणी टान्सिल।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल में शोक-सभा

गुरुकुल वासियों की यह शोक सभा कविराज श्री शालिग्राम जी शास्त्री साहित्याचार्य विद्याभूषण, वैद्यभूषण लखनऊ के असामयिक देहावसान पर गहरा दुःख प्रकट करती है। उनके उठ जाने से न केवल साहित्य जगत को किन्तु वैद्य जगत को भी अपरिमेय क्षति पहुंची है। यह सभा शोक सन्तप्त परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करती है तथा परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति प्राप्त हो।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

श्री प० जगन्नाथ प्रसाद जी M. A. L. L. B.L. T जो गुरुकुल में सात वर्ष से अंग्रेजी तथा इतिहास पढ़ाया करते थे, अपनी वृद्ध अवस्था के कारण एक वर्ष का अवैतनिक अवकाश लेकर यहां से चले गये हैं। उनके स्थान पर श्री पं० रूपनारायण जी बी. ए. एल. एल. बी. नियुक्त हुये हैं। श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी की विदाई में उन्हें कुल की ओर से अभिनन्दन पत्र दिया गया और सहभोज हुआ। अध्यापकों तथा कर्मचारियों की तरफ से फल भोज दिया गया। जो अध्यापक उनके स्थान पर काम करने के लिये आये हैं वे गुरुकुल कांगड़ी में उपाध्याय थे। आप भी बड़े योग्य और सौम्य हैं।

षाण्मासिक परीक्षा की तय्यारियां बड़े जोर शोर से हो रही हैं सब अध्यापक वर्ग कमजोर विद्यार्थियों को सहायता देने के लिये आश्रम में विशेष समय में पढ़ाते हैं।

स्वास्थ्य सामान्यतया सब का अच्छा है। केवल एक दो ब्रह्मचारियों को बुखार है।

रजत जयन्ती की तय्यारियां प्रारम्भ हैं। धन एकत्र करने के लिये थोड़े दिनों में यहां से बाहर डेपूटेशन जाने वाले हैं।

आवश्यकता

आर्य समाज उदयपुर के लिये एक विद्वान कर्मनिष्ठ उपदेशक की आवश्यकता है। जो इसके लिये अच्छी लग्न व विशेष योग्यता रखते हों। वेतन ५०) तथा मकान मिलेगा।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी सहारनपुर

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ५ आश्विन १९९७; २० सितम्बर १९४० [संख्या २३

वेद में गो-पालन का सन्देश

(ले०— श्री पं० रामनाथ वेदालंकार)

[नीचे गो-पालन विषयक कुछ मन्त्र दिये जाते हैं। पाठक देखें कि वेद में गो-पालन की कितनी स्तुति की गई है। इन मन्त्रों से प्रकट होता कि गौएं घर की शोभा हैं, गौओं से घर स्वर्ग बन जाता है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थी को गौओं की कामना करनी चाहिये। और ऐसी राज्य-व्यवस्था होनी चाहिये जिससे समाज में गो-घात बिलकुल न हो सके।]

(१)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः॥

(गावः आ अग्मन) गौएं हमारे यहां आयें (उत भद्रम् अक्रन्) और हमें सुख देवें (गोष्ठे सीदन्तु) गो-शाला में आकर बैठें (अस्मे रणयन्तु) हमें आनन्दित करें (प्रजावतीः पुरुरूपाः इह स्युः) प्रजाओं अर्थात् बछड़े बछियों से युक्त, अनेक रंग-रूपों वाली गौएं यहां हमारे पास हों (पूर्वीः उषसः इन्द्राय दुहानाः) और वे पूर्व उषः-कालों में गो-स्वामी के लिये दूध देती रहें।

(२)

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥

(गावः भगः) गौएं बड़ी अच्छी सम्पत्ति हैं (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) इन्द्र मुझे गौएं देवे (गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गो-दुग्ध व गो-दुग्ध से बने दही घी आदि पदार्थ श्रेष्ठ सात्त्विक मनुष्य का भोजन है (जनासः, इमाः या गावः स इन्द्रः) हे मनुष्यो! ये जो गौएं हैं वह बड़ा भारी ऐश्वर्य है (हृदा मनसा चित् इन्द्रम् इत् इच्छामि) मैं हृदय और मन से इस गो-धन की ही कामना करता हूं।

(३)

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु॥

(गावः यूयं कृशं चित मेदयथ) हे गौओ! तुम कृश-काय मनुष्य को भी हृष्ट-पुष्ट कर देती हो (अश्रीरं चित सुप्रतीकं कृणुथ) कान्ति-हीन मनुष्य को भी सुन्दर बना देती हो (भद्रवाचः, गृहं भद्रं कृणुथ) हे सुख पूर्वक रभाने वाली गौओ! तुम घर को सचमुच स्वर्ग बना देती हो (वः वयः सभासु बृहद् उच्यते) तुम्हारे दूध रूपी अन्न की सभाओं में बड़ी प्रशंसा की जाती है।

(४)

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन॥

हे गौओ तुम (अबिभ्युषीः संजग्मानाः) निर्भय होकर एक साथ विचरती हुई (अस्मिन गोष्ठे करीषिणीः) इस गो-शाला में रह कर गोबर मूत्र आदि करती हुई (सोम्यं मधु बिभ्रतीः) मधुर सात्त्विक दूध को धारण करती हुई (अनमीवाः उपेतन) रोग-रहित होकर हमारे पास आकर रहो।

(५)

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्ती र्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम॥

(गावः मया गोपतिना सचध्वम) हे गौओ! तुम मुझ गो-पालक के साथ प्रेम से रहो (अयं वः गोष्ठः) यह तुम्हारे लिये गोशाला बनी हुई है (इह पोषयिष्णुः) यहां सब पोषक सामग्री उपस्थित है (रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः) पोषक धान्य आदि के द्वारा बहुत संख्या में होती हुई (जीवन्तीः वः) और दीर्घ काल तक सुख से जीती हुई तुम गौओं को (जीवाः उपसदेम) हम जीव प्राप्त करते रहें।

(६)

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः॥

हे गौओ तुम (प्रजावतीः) बछड़े-बछड़ियों से युक्त हो वो (सूयवसं रिशन्तीः) उत्तम चारा खाया करो (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) स्वच्छ चौबचों में शुद्ध पानी पिया करो (मा वः स्तेनः ईशत मा अघशंसः) चोर, पापी, क्रूर मनुष्य तुम्हारा स्वामी न बने (रुद्रस्य हेतिः वः परिवृज्याः) क्रूर कसाई आदि का शस्त्र तुमसे दूर रहे।

(७)

विषं गवां यातुधाना भरन्तामावृश्चन्तामदितये दुरेवाः।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम्॥

(यातुधाना भरन्ताम्) यदि यातना पहुँचाने वाले क्रूर लोग गौओं को विष देवें (दुरेवाः अदितये आवृश्चन्ताम्) अथवा वे कुचाली लोग बेचारी बेकसूर न मारने योग्य गाय को काटें तो (सविता देव एनान् पराददातु) सविता देव इन्हें समाज से बाहर करदे, [और उनकी ऐसी दुर्गत बनावे कि वे] (ओषधीनां भागं पराजयन्ताम्) ओषधियों के भाग से भी पराजित हो जावें अर्थात् शाक-वनस्पति और अन्न तक के लिये दर-दर भटकते फिरें [उन्हें दूध नसीब होने की तो बात ही दूर है]।

(८)

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि॥

(नृचक्षः अग्ने) हे सब मनुष्यों पर अपनी आंख रखने वाले राजन् ! (उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः) गाय का जितना भी वर्ष भर में दूध होता है (यातुधानः तस्य माशीद्) निर्दयी गो-हत्यारा मनुष्य उसमें से बूंद भर भी न पाने पावे (यतमः पीयूषं तितृप्सात्) और जो कोई गो-हत्यारा उसके अमृत रूप दूध से तृप्त होना चाहे तो (तं प्रत्यञ्चं मर्मणि अर्चिषा विध्य) उसे तू सबके सामने मर्म-स्थानों में तपती हुई शलाकाओं से छेद डाल।

(९)

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः॥

वैदिक राज्य-व्यवस्था ऐसी होती है कि (ताः रेणुककाटः अर्वा न अश्नुते) काट-काट कर टुकड़े कर देने वाला हिंसक मनुष्य उन गौवों को नहीं पा सकता है। (न ताः संस्कृतत्रम् अभि उपयन्ति) और न वे गौएँ कसाईखाने की ओर जाने पाती हैं, किन्तु (तस्य यज्वनः मर्तस्य ताः गावः) उस यज्ञशील मनुष्य की वे गौएं (उरुगायम् अभयम् अनु विचरन्ति) विस्तृत खुले चरागाहों में निर्भय होकर विचरती हैं।

(१०)

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

यह गाय (रुद्राणां, माता, वसूनां दुहिता आदित्यानां स्वसा) रुद्र रूप बछड़ों की माता है, वसु रूप सांडों की कन्या है और आदित्य रूप बैलों की बहिन है (अमृतस्य नाभिः) यह अमृत रूप दूध का केन्द्र है, स्रोत है। इस लिये मैं (चिकितुषे जनाय प्रवोचं नु) समझदार मनुष्य को कहे देता हूं कि (अनागाम् अदितिं गां मा वधिष्ट) इस बेकसूर-भोली-भाली, न मारने योग्य गाय का वध कभी मत करना।

यह है गो-पालन का वैदिक सन्देश! इन मन्त्रों से यह भी प्रकट होता है कि वैदिक राज्य-व्यवस्था में गो-हत्या का कभी कोई स्वप्न भी नहीं ले सकता है। महर्षि दयानन्द ने वेद के इस सन्देश को सुना और उन्होंने भारत में गायों की दुर्दशा को देख कर उनकी रक्षा के लिये जी-जान से कोशिश की। महर्षि दयानन्द के प्रकाशित पत्र-व्यवहार को पढ़ने से विदित होता है कि वे गो-वध को रोकने के लिये भारतीय जनता से लाखों और करोड़ों हस्ताक्षर कराके ब्रिटिश-सरकार की सेवा में भेजना चाहते थे और उन्होंने इस कार्य में रियासती राजों-महाराजाओं को भी सम्मिलित करना चाहा था। उन्होंने जगह-जगह गोकृष्यादि-रक्षिणी सभायें कायम की थीं जिनके नियम उपनियम आदि महर्षि-कृत 'गोकरुणानिधि' में विस्तार से दिये हैं। देखिये, महर्षि के निम्नलिखित वाक्यों से गो-रक्षा के विषय में उनकी कैसी आतुरता प्रकट होती है—

"गो आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती होती है। देखो, इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ७०० वर्ष के पूर्व मिलते थे उतना दूध, घी और बैल आदि पशु इस समय दश गुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते। क्योंकि ७०० वर्ष के पीछे इस देश में गवादि पशुओं को मारने वाले विदेशी मनुष्य बहुत आ बसे हैं, वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़-माँस तक भी नहीं छोड़ते।......हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं? हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर (जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं) दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इनके लिये तेरी न्याय सभा बन्द हो गई है?"

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले०—श्री विनोद नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

शंकाशील स्वभाव

(११)

आज कल के युवक मण्डल में संशयात्मिका बुद्धि बढ़ती जा रही है। जिनमें शक्ति होती है वे हमेशा निर्भय होते हैं। यह एक अवगुण है। इस अवगुण के कारण आस पास का वायुमण्डल निर्जीव सा बन जाता है। गुरुकुलों के वायुमण्डल में भी इस प्रकार की कुछ गन्ध मुझे मालूम दी। किसी अध्यापक के साथ बात करने वाले ब्रह्मचारी के प्रति दूसरे ब्रह्मचारियों को शक होता है, किसी ब्रह्मचारी की प्रगति को देख कर दूसरों को सन्देह होता है, सन्देह से ईर्ष्या, ईर्ष्या से षड्यन्त्र की वृत्ति, निन्दा तथा चुगली इत्यादि अनेक बातें पैदा होती हैं। अन्य स्थानों में जिस शंकाशील वायुमण्डल को हम हटाना चाहते हैं वैसा वायुमण्डल गुरुकुलों में तो बिलकुल न होना चाहिए। जिन गुरुकुलों में अभय मन्त्र का पाठ प्रतिदिन संध्या समय होता है वहां एक क्षण के लिए भी संशयात्मिका बुद्धि उत्पन्न होनी नहीं चाहिए। "संशयात्मा-

विनश्यति" इस नीति सूत्र को समझ कर दीवार पर चिपकाने के बाद निर्भय और निःसंशय बन जाना चाहिए।

मुझे इसमें गुरुकुलों के कार्य कर्ताओं का दोष मालूम पड़ता है। वे अपनी निर्बलता के कारण विद्यार्थियों को हथियार बनाते हैं। अपनी कार्य सिद्धि के लिए कार्यकर्ताओं में फूट पड़ जाने की सम्भावना रहती है और इसकी छाप ब्रह्मचारियों पर पड़ने पर जैसे जैसे ब्रह्मचारी बड़े होते जाते हैं वैसे वैसे इस अवगुण की वृद्धि ही होती रहती है। उसको दूर करने के लिए सदाचारी आचार्य की आवश्यकता होती है, उसकी अनुपस्थिति में निम्न नियमों की ओर ब्रह्मचारियों का ध्यान आकृष्ट करना ही काफी है परन्तु उस मंत्र को हम अपनावें तभी यह अवगुण दूर हो सकता है ऐसा मैं मानता हूँ।

छोटे ब्रह्मचारियों में दो पक्ष हो जाते हैं उनमें किसी एक के लिए पूर्वग्रह के भाव पैदा होते हैं। अधिष्ठाता या अध्यापक को इस उद्दण्डता को जान लेना चाहिए, उस ज्वर का जो नहीं पकड़ सकता वह अध्यापक अपने कर्तव्य से च्युत हो गया है ऐसा समझना चाहिए। इस ज्वर का पता लगते ही इसकी तात्कालिक चिकित्सा करनी चाहिए, जिन कारणों से दल बन्दी और यह पूर्वग्रह पैदा हुए हों उनको नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। अध्यापक को समान व्यवहार रखने के आदर्श को कार्य रूप में लाना चाहिए।

प्रत्येक ब्रह्मचारी में उसके मतभेदों को साहस पूर्वक कह देने की आदत डालनी चाहिए। इसमें चिड़चिड़ा स्वभाव दूर हो जाता है।

प्रत्येक ब्रह्मचारी के मनमें यह ठूंस ठूंस कर भर देना चाहिए कि यदि किसी की तरफ से निन्दा की दृष्टि से कोई बात कहने में आवे कि अमुक ब्रह्मचारी तुम्हारे लिए यह अभिप्राय रखता है तो उसका हिसाब उसी समय अपने सामने कर लेने की नैतिक हिम्मत आनी चाहिए। इस तरह से थोड़े समय के लिए विरोधमय वायुमण्डल उत्पन्न होगा लेकिन फिर इन बादलों के बिखर जाने पर सचाई का सूर्य अपने यौवन पर होगा जिससे न्याज्य वातावरण दूर हो जावेगा।

किसी की निन्दा न करने की आदत डालनी चाहिए। जिन वाक्यों को हम सामने सामने छाती ठोक कर कह सकते हैं उन्हीं वाक्यों को उसकी अनुपस्थिति में भी कहने की आदत डालनी चाहिए। व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके बारे में मौन रहना बहुत ही अच्छा है इससे विरोध कम होगा और मैत्री भाव जागृत होगा।

प्रत्येक ब्रह्मचारी को यह पता लग जाना चाहिए कि यदि हम किसी का भला करते हैं और उसके बदले में हमें बुराई मिलती है तो उससे हमारी कीमत घटती नहीं है। इसलिए निन्दा को सुनकर मानसिक व्यथा के प्रभाव में नहीं आना चाहिए।

मनुष्य के स्वभाव की आसुरी वृत्ति निन्दा की बातों में रस पैदा करती है इसलिये ऐसी गप्पों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

यदि हमारा उद्देश्य अच्छा होगा और हेतु अच्छा होगा तो सैकड़ों गैरसमझ और निन्दा से भरी बातों के प्रचलित होने पर भी सत्य का अन्त में विजय होगा। यह सत्य जब से समझ में आ जायेगा तब से आदमी निर्भय बन जायगा। हम गुरुकुल के कार्यकर्ताओं में ऐसा वायु-मण्डल बनाने की आशा क्यों न रक्खें? जो आदमी अकर्मण्य होता है वो ही गप्पें लड़ाया करता है, वही निन्दा की बातें करता तथा सुनता है और वही संशय-शील बनता है! ऐसा आदमी अपनी डींग हांकता है और दूसरे का नीचा दिखाने के लिए शंकाशील वायु-मण्डल बनाता है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का बहिरङ्ग

माता पिता तथा समाज— इस प्रणाली के बाह्य अङ्ग को बनाने में मुख्य हाथ माता पिता का है, प्रथम ब्रह्मचारी को आचार्य की गोद में रखने के बाद माता पिता का कर्तव्य पूरा नहीं होता। इसलिए प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि वे कर्तव्य च्युत कभी न होते हुए अपनी जिम्मेदारी को दूसरे के सिर डाल देने की आलसी प्रवृत्ति को छोड़ कर अपने बच्चों के विकास का विवरण बराबर गुरुओं से मंगाते रहना चाहिए और कार्यकर्ताओं को इस कार्य का सहर्ष सत्कार करना चाहिए, इस कार्य की सरलता के लिये ब्रह्मचारियों को अपने अपने माता पिताओं के पास छुट्टियों में भेजने की प्रथा होनी चाहिए। इसलिए निम्न बातें ध्यान में लेनी चाहिए:

यदि मौका हो तो गुरुकुल के उत्सव पर या किसी दूसरे मौके पर सपरिवार आकर सारे गुरुकुल का और सकल अङ्गभूत संतान के विकास का निरीक्षण माता पिता को करना चाहिये।

यदि आर्थिक स्थिति अच्छी न हो तो बालक को घर बुलाकर उसके शारीरिक मानसिक और अभ्यास विषयक उत्थान का निरीक्षण कर लेना चाहिए। उसकी अच्छी और बुरी आदत को नोट करके आचार्य को लिखना चाहिए और आचार्य का पवित्र कर्तव्य है कि उनके इस कार्य के लिये समुचित प्रबन्ध करें।

बालक स्नातक बन गया है इसलिये उसको सलाह मानना और उसको सलाह या सूचना देना माता पिता का कर्तव्य नहीं है यह मानना बड़ी भारी भूल है। केवल विद्या से मनुष्य पूर्ण नहीं होता। संसार का शास्त्र भिन्न होता है, संसार के झंझावात और आपत्तियां कुछ और ही प्रकार की हैं। स्नातक लोग विद्वान होने के कारण जो कुछ करते हैं वह ठीक ही होगा इसलिए हमें टांग अड़ाने की कोई जरूरत नहीं है ऐसा मानने वाले और इसी रीति से उनको चलने देने में स्नातकों के साथ माता पिताओं ने अन्याय किया है, उनको कड़े नियमों से बाह्य जगत् का ज्ञान कराना भी माता पिता का परम कर्तव्य है।

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

५ आश्विन शुक्रवार १६६७

सिर्फ शिक्षण

[आचार्य विनोबा]

एक देशसेवाभिलाषी युवक से किसी ने पूछा—"कहिए! अपनी समझ में आप क्या काम अच्छा कर सकते हैं?"

उसने उत्तर दिया "मेरा ख़याल है मैं सिर्फ शिक्षण का काम कर सकता हूं और उसी का शौक है।"

"ठीक है, अक्सर आदमी को जो आता है, मजबूरन उसका उसे शौक होता है, पर यह कहिए कि आप दूसरा कोई काम कर सकेंगे या नहीं?"

"जी, नहीं। दूसरा कोई काम नहीं करना आवेगा। सिर्फ सिखा सकता हूं। वह अच्छा सिखा सकता हूं, यह विश्वास है।"

"हां, हां, अच्छा सिखाने में क्या शक है; पर अच्छा क्या सिखा सकते हैं? कातना, धुनना, बुनना अच्छा सिखा सकेंगे?"

"नहीं, यह नहीं सिखा सकता।"

"तब सिलाई? रंगाई? बढ़ईगिरी?"

"ना, यह सब भी कुछ नहीं।"

"रसोई बनाना, पीसना वगैरा घरेलू काम सिखा सकेंगे?"

"नहीं काम नाम से तो मैंने कुछ किया ही नहीं, मैं सिर्फ शिक्षण का…………"

"भाई, जो पूछा जाता है, उसी में 'नहीं' कह देते हो; और कहते हो सिर्फ शिक्षण का काम कर सकता हूं; इसके मानी क्या है? बाग़वानी का काम सिखा सकिएगा?"

देशसेवाभिलाषी ने ज़रा गरम होकर कहा "यह क्या पूछते हैं? मैंने शुरू में कह दिया न, मुझे दूसरा कोई काम करना नहीं आता। मैं हिन्दी-साहित्य सिखा सकता हूं।"

प्रश्नकर्ता ने ज़रा मज़ाक से कहा—"अबकी ठीक बात कुछ आपके समझ में आई! आप 'रामचरितमानस' जैसी पुस्तक लिखना सिखा सकते हैं क्या?"

अब तो देशसेवाभिलाषी महाशय का पारा गरम हो गया और कुछ ऊटपटांग बोलने वाले ही थे कि प्रश्नकर्ता बीच में ही बोल उठा-शांति, क्षमा, तितिक्षा रखना सिखा सकेंगे?"

लीजिए, हद हो गई। आग में जैसे मिट्टी का तेल उँडेल दिया हो। यह संवाद खूब जोर से भभकता, लेकिन प्रश्नकर्ता ने तुरन्त पानी डाल कर बुझा दिया।

"मैं आपकी बात समझ गया। आप लिखना-पढ़ना सिखा सकेंगे और इसका भी जीवन में थोड़ा सा उपयोग है, बिलकुल नहीं हो ऐसा नहीं है। लेकिन आप यह बतलाइए कि आप बुनाई सीखने को तैयार हैं?"

"अब कोई नई चीज सीखने का हौसला नहीं है और उसमें भी बुनाई का काम तो मुझे आने ही का नहीं। क्योंकि आज तक हाथ को ऐसी किसी चीज़ की आदत ही नहीं।"

"माना, सीखने में कुछ ज्यादा वक्त लग जायगा, लेकिन आवेगा ही नहीं यह कैसे?"

"मैं समझता हूं आवेगा ही नहीं। पर मानिए बड़ी मेहनत से आया भी तो मुझे इसमें बड़ा झंझट लगता है; इस लिए मुझ से नहीं होगा; यही मानिए।"

"ठीक है, जैसे लिखना सिखा सकते हैं, वैसे खुद लिखने का काम भी कर सकते हैं?

"हां, ज़रूर कर सकता हूं। लेकिन सिर्फ बैठे लिखते रहने का काम है झंझटी; फिर भी उसके करने में कोई आपत्ति नहीं है।" यह बातचीत यहीं पूरी हो गई। नतीजा इसका क्या हुआ, यह जानने की हमें ज़रूरत नहीं।

शिक्षकों की मनोवृत्ति समझने के लिए यह बातचीत काफी है। शिक्षक यानें किसी तरह का भी जीवनोपयोगी क्रिया शीलता से शून्य;

कुछ नई कामलायक चीज़ सीखने में असमर्थ;

कि शीलता से बराबर परेशान;

सिर्फ शिक्षण का घमण्ड रखने वाला;

सिर्फ शिक्षण का मतलब है जीवन से तोड़ कर बिलग किया हुआ मुर्दार शिक्षण और शिक्षक के माने 'मृतजीवी' मनुष्य।

'मृतजीवी' को ही कोई-कोई बुद्धिजीवी कहते हैं। पर यह सरासर वाणी का व्यभिचार है, तब बुद्धिजीवी किसे कहना चाहिए? कोई गौतमबुद्ध, सुकरात, शंकराचार्य अथवा ज्ञानेश्वर आदि बुद्धिजीवन की ज्योति जगा कर दिखाते हैं। 'गीता' में बुद्धि-ग्राह्य जीवन का अर्थ अतीन्द्रिय जीवन बतलाया है। जो इन्द्रियों का गुलाम है, जो देहासक्ति से मारा हुआ है, वह बुद्धिजीवी नहीं हो सकता। बुद्धि का पति आत्मा है। उसे छोड़ कर देह-परायण हो जाने वाली बुद्धि व्यभिचारिणी बुद्धि है। ऐसी व्यभिचारिणी बुद्धि के जीवन के माने हैं मरण; और ऐसा जीवनधारी मृतजीवी कहा जायगा। सिर्फ शिक्षण पर जीनेवाले लोग इस विशेष अर्थ में मृतजीवी होते हैं। इन सिर्फ शिक्षण पर जीने वालों को मनु ने 'भृतकाध्यापक' उर्फ 'वेतन-भोगी शिक्षक' नाम देकर श्राद्ध के काम में उनका निषेध किया है। ठीक ही है। श्राद्ध में तो मृत पूर्वजों की स्मृति को जीवित करते रहना है और जिन्होंने प्रत्यक्ष जीवन को मृत कर दिखाया है, उनसे इस काम में क्या उपयोग है?

शिक्षकों को पहले 'आचार्य' कहा जाता था। आचार्य अथवा आचारवान्। स्वयं श्रद्धा से जीवन का आचरण करते हुए राष्ट्र से उनका आचरण कराने वाला आचार्य है। ऐसे आचार्यों की करनी से ही राष्ट्र बने हैं। आज हिन्दुस्तान का नया ढांचा बनना है। राष्ट्र-निर्माण

का काम आज हमारे सामने है। आचारवान् शिक्षकों बिना वह सम्भव नहीं है। तभी तो राष्ट्रीय-शिक्षण का प्रश्न सब से महत्वपूर्ण है। उसकी व्याख्या और व्याप्ति हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

राष्ट्र का सुशिक्षित वर्ग निरग्नि और निष्क्रिय होता जा रहा है। इसका उपाय राष्ट्रीय शिक्षण की आग चेताना ही है।

पर वह अग्नि चाहिए। अग्नि की दो शक्तियां मानी गई हैं। एक 'स्वाहा' और दूसरी 'स्वधा'। ये दोनों शक्तियां जहां हैं वहां अग्नि है। 'स्वाहा' के माने हैं आत्माहुति देने की, आत्मत्याग की शक्ति और 'स्वधा' के माने हैं आत्म-धारण की शक्ति। ये दोनों शक्तियां राष्ट्र-शिक्षण में जाग्रत होनी चाहिएं। इन शक्तियों के होने पर ही वह राष्ट्रीय शिक्षण कहलावेगा। बाक़ी सब 'ठन-ठन गोपाल' है। सिर्फ़ शिक्षण ऊपर से दिखाई देता है।

अब तक हमारे राष्ट्रीय शिक्षकों ने बड़ा आत्मत्याग किया है। पर यह उतना सही नहीं। छुटपुट स्वार्थ-त्याग अथवा मतलबी त्याग के माने आत्मत्याग नहीं हैं। उसकी कसौटी है। आत्मत्याग की शक्ति के साथ-साथ आत्म-धारणा की शक्ति न हुई तो त्याग कोई काहे का करेगा? जो आत्मा अपने को खड़ा ही नहीं रख सकता, वह कुरबान कैसे? मतलब, आत्मत्याग की शक्ति में आत्मधारण पहले से शामिल है। यह आत्मधारण की शक्ति—'स्वधा'—राष्ट्रीय शिक्षकों ने अभी तक भी सिद्ध नहीं की है। इस लिए आत्मत्याग का जो आभास-सा है, वह आभास भर ही है।

पहले स्वधा होगी; उसके बाद स्वाहा। राष्ट्रीय शिक्षण को, अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षकों को अब स्वधा-सम्पादन की तैयारी करनी चाहिए।

शिक्षकों को 'सिर्फ़ शिक्षण' की भ्रामक कल्पना छोड़ कर समग्र जीवन की जिम्मेदारी—जैसी किसानों पर होती है वैसी—अपने पर लेनी चाहिए। और विद्यार्थियों को भी उसी में दायित्व पूर्ण भाग देकर उनके चारों ओर शिक्षण की रचना करनी चाहिए, अथवा अपने-आप होने देनी चाहिए। 'गुरोः कर्मातिशेषेण' इस वाक्य का अर्थ 'गुरु के काम पूरे करके वेदाभ्यास करना' यह लेना ठीक है। नहीं तो गुरु की व्यक्तिगत सेवा इतना ही अगर 'गुरोःकर्म' का अर्थ लें तो गुरु की सेवा वह इतनी कितनी ज्यादा होगी? और उसके लिए कितने लड़कों को कितना काम करने को रह जायगा? इस लिए 'गुरोः कर्म' करने के माने हैं गुरु के जीवन में जिम्मेदारी से हिस्सा लेना। ऐसा दायित्वपूर्ण-भाग लेकर उसमें जो शंका वगैरा पैदा हों उन्हें, गुरु से पूछे और गुरु को भी चाहिए कि अपने जीवन की जिम्मेदारी निबाहते हुए और उसी का एक अंग समझ कर उसका यथाशक्ति उत्तर देता जाय। यह शिक्षण का स्वरूप है। इसी में थोड़ा स्वतन्त्र समय प्रार्थना स्वरूप, वेदाभ्यास के लिए रखना चाहिए। प्रत्येक कर्म ईश्वर की उपासना के लिए ही होने पर भी जैसे सुबह-शाम थोड़ा वक्त उपासना के लिए देना पड़ता है, वही न्याय वेदाभ्यास अथवा शिक्षण के लिए लागू करना चाहिए। मतलब जीवन की जवाबदारी के काम ही दिन के मुख्य भाग में करने और उन सबों को शिक्षण का ही काम समझना चाहिए। साथ ही अलग एक दो वक्त शिक्षण के निमित्त मानकर देने चाहिएं।

राष्ट्रीय जीवन कैसा होना चाहिए, इसका आदर्श अपने जीवन में उतारना राष्ट्रीय शिक्षक का कर्तव्य है। यह कर्तव्य करते रहने से उसके जीवन में से अपने आप उसके आसपास शिक्षा की किरणें फैलेंगी और उन किरणों के प्रकाश से आसपास के वातावरण का अपने आप काम हो जायगा। इस प्रकार का शिक्षक यह स्वतः शिक्षण-केन्द्र है और उसके समीप रहना ही शिक्षण पाना है।

मनुष्य को पवित्र जीवन बिताने की फ़िक्र करनी चाहिए। शिक्षण की फ़िक्र करने को वह जीवन ही समर्थ है; उसके लिए 'सिर्फ़ शिक्षण' की हवस रखने की जरूरत नहीं है।

['जीवन साहित्य' से]

भगवान की खोज

(स्व० श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी का एक उपदेश)

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः॥

नास्तिकपन की उग्र से उग्र युक्तियों के होते हुवे और जड़ जगत् के उग्र से उग्र स्रोतों के आकर्षक रूप के होते हुवे ऐसा कौनसा मनुष्य है जो संकट के समय अन्त में उस प्रभु की ओर नहीं दौड़ता? वह कौन है? कहां है? कैसा है? यह सब जानते हुवे भी मनुष्य उसकी ओर इस प्रकार दौड़ते हैं जिस प्रकार कि उस माता की तरफ बालक दौड़ता है जिसकी गोद में बैठकर उसने एक बार दूध पीया है। इस लिये उसको न जानते हुए उसका महायश हो रहा है। मूर्तिपूजक हो या मनुष्यपूजक, यहां तक कि नास्तिक भी स्पष्ट शब्दों से उसकी महानता, श्रेष्ठता को स्वीकार कर रहे हैं। उस अनन्त का अन्त कौन पा सकता है? इसलिये पूरे तौर पर उसको मनुष्य की बुद्धि में न समाने वाला जानते हुवे भी, हरेक मनुष्य की टिकटिकी उसी ओर बन्ध जाती है। क्योंकि अपनी निर्बलता से परिचित होकर प्रत्येक मनुष्य अपने समानों से सहायता की आशा से निराश होकर नीचे से ऊपर को उठना चाहता है। यही कारण है कि जहां अपने कठिन समय में अफ्रीका का मूर्ख और मनुष्याहारी हबशी आकाश की ओर दृष्टि उठाता है वहां सभ्य युरुपीयन भी ईसा के अनुकरण में अपने आसमानी बाप को तरफ़ ही प्रवृत्त होता है। लाखों ने उसे बिजली की कड़क और बादल की गरज के भीतर ढूंढा। करोड़ों ने संसार के ऊंचे से ऊंचे पहाड़ों और चमकीले से चमकीले सूर्यों की रोशनी के भीतर उस की ढूंढ की। जब तक यथार्थ ज्ञान से वञ्चित रहे तब तक किसी मात्रा में बच्चों की तरह संतुष्ट रहे। परन्तु ज्योंही ज्ञान नेत्र खुले, तुरन्त आंख झपक गई। आकाश क्या समझे? क्या उसके चमकते हुए मग़ार बड़ सितारे की

ओर उस महान् आत्मा की खोज में सर उठावें जो कि सप्त ऋषियों के एक ओर सितारों के झुरमुट का केन्द्र दिखाई देता है जिसने उसकी खोज में अपने पैर की ओर पृथ्वी के दूसरे भाग के आकाश की ओर नज़र दौड़ावें। इस कशमकश के अन्दर प्रकाशित अनेक आत्मा अकस्मात् चिल्ला उठते हैं कि वह न ऊपर, न वह न तिरछा, न बीच में, इन स्थानों में उसे कौन देख सकता है। जब उसका कोई आकार ही नहीं, जब उसकी कोई मूर्ति नहीं, जब निराकार आकाश से भी वह अति सूक्ष्म है तो फिर दिशाओं में उसकी खोज कहां हो सकती है? किस दिशा में उसे ढूंढें।? यदि पश्चिम न हो तो पूर्व में मिल सकता है? यदि उत्तर में व्यापक न हो, तो दक्षिण में उसके दर्शन हो सकते हैं? परन्तु जब कि वह सारे ब्रह्माण्ड के अन्दर व्यापक है, जब आकाश और पृथ्वी, जल और वायु, अग्नि और विद्युत कोई भी उसकी व्यापकता से पृथक नहीं; तो एक स्थान या एक वस्तु के अन्दर उसकी खोज; पूर्ण मूर्खता है। जब कोई स्थान कोई वस्तु भी उसकी व्यापकता से पृथक नहीं तो मक्का मदीना, जगन्नाथ और काशी, जैरूसलम और रोम अर्थात् किसी विशेष स्थान में भी मारे मारे फिरने से आयु का अभिप्राय प्राप्त नहीं हो सकता। फिर क्या उसकी खोज ही न करें? क्या सर्व-व्यापक कहते हुवे भी उसके दर्शनों से वञ्चित रहें? कदापि नहीं? अपितु उससे पवित्र और स्वच्छ स्थान में खोज करें जहां कि हमें उसके खुले दर्शन हो सकते हैं जो हिमालय की चोटी के अतिरिक्त पृथ्वी की गहरी से गहरी कन्दराओं में उपस्थित रहे। क्या वह चेतन महानात्मा चेतन जीवनात्मा के अन्दर ही व्यापक नहीं? जब मनुष्य के हृदय का वह ईश्वर है और वही उसका उत्तम आसन है तो फिर अपने अन्तःकरण के भीतर उसकी खोज न करके ऊपर नीचे, दायें और बायें निगाह दौड़ाना और पहाड़, नदी, जंगल और बियाबान की खाक छानते फिरना कब बुद्धिमत्ता है? उस निराकार अनन्त स्वरूप परमात्मा को अपने आत्मा के अन्दर ही ढूंढना चाहिये। और जब उसके दर्शन हों तो उसके दरबार से कभी भी अनुपस्थित न होना चाहिये।

हे प्राणपति परमेश्वर! आपके सत्स्वरूप को भूल कर मैंने स्थानों और वस्तुओं के अन्दर आप को ढूंढा। मनुष्यों और पशुओं के जीवन के अन्दर आपके प्रकाश की खोज की परन्तु कहीं पर भी शान्ति न मिली! कृपानाथ! इस तरह का भटकना सदैव बना रहेगा? युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध करें कि आप मेरे अन्दर विराजमान हैं। परन्तु क्या मेरा जीवन सिद्ध करता है कि मेरा यह विश्वास वास्तविक है? यदि सचमुच आप के हृदयेश्वर होने का मुझको विश्वास होता तो मैं क्या संसार के भले के लिये आपके सत्य को प्रकाश करने से रुक सकता? हे दयामय! कृपा करके इस अविश्वासी हृदय को विश्वासपात्र बना मुझे मेरे कर्तव्य का सीधा मार्ग दिखाइये।

रमते राम

[श्री ज्ञानी]

मैंने भारत की प्रदक्षिणा की है। कलकत्ता से रामेश्वर तक और करांची से बम्बई और धनुष्कोटी तक। ऊपर का लगभग सारा फ्रंटीयर सीमा-प्रान्त भी देखा है।

गत वर्ष काश्मीर की यात्रा के पश्चात् उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त—ऐबटाबाद, पेशावर, कोहाट, बन्नू आदि चला गया था। उसके बाद कुमांयू प्रान्त के नैनीताल, रानी खेत, अल्मोड़ा आदि स्थान देखे।

आज दो चार महीनों से क्वेटा-बिलोचिस्तान में बैठा हूं। गुलाब के फूल खिले। सारा शहर महक उठा। जिधर देखो स्त्री-पुरुष गुलदस्ते बना रहे हैं। बालक-बालिकाएं लुकी-छुपी बाग़ों में घुस कर फूल चुरा रही हैं। युवकों तथा युवतियों के लिये तो गुलाब के फूलों में एक विशेष आकर्षण है, मादकता है। वसन्त ऋतु में अतिशय प्रसन्नता के कारण उनके अपने चेहरे भी खिल कर गुलाब हो रहे हैं।

हठात् मौसम बदला। हवाएं चलीं। कोमल गुलाब की नाज़ुक पंखड़ियां गिर कर ज़मीन पर बिखर गईं। चारों तरफ़ लाली, लेकिन सूर्यास्त की। बस, फूलों की दो दिनकी ख़ुशी ख़त्म हुई। अब पौदे खड़े हैं। शाखें और पत्ते भी। गुलाब तो फिर अगले साल ही खिलेगा।

× × ×

फूल के बाद फल आते हैं। आप क्वेटा की मार्कीट में सुबह के वक्त आइये। फलों के टोकरे ही टोकरे। आड़ू, सेब, नासपाती, अंगूर, सरदे, तरबूज़ आदि, आदि। क्वेटा फलों के लिये मशहूर है। किस्म २ के फल मीठे और रसीले। फलों में यहां का मुकाबला शायद भारत का कोई स्थान नहीं कर सकता।

× × ×

क्वेटा एक स्वास्थ्यप्रद स्थान है। समुद्र की सतह से ५ हज़ार फ़ीट ऊंचा। चारों ओर पहाड़ियां और बीच में विशाल मैदान। हवा ख़ुश्क और ताकतवर। कुदरती चश्मों का पानी ठण्डा और मीठा। गरमियां में—अप्रेल से अगस्त तक—ऋतु बड़ा सुहावना। गरमी तो नाम को नहीं। और न दूसरे पहाड़ों की सी मूसलाधार वर्षा। हमारे देखते तो फ़कत दो-चार बार हलकी बूंदा बांदी हुई। बस। कहते हैं सर्दियों में वर्षा होती है। वो भी बरफ़ की। क्या दृश्य होगा! रुई सी सफ़ेद बरफ़ीली बहार पड़ रही हो। कुछ कुहासा हो। दिसम्बर, जनवरी का महीना। मानो हम इंगलिस्तान पहुंच गये हैं।

क्वेटा, बिलोचिस्तान का मुख्य नगर है। इसकी आबादी ८० हज़ार के लगभग होगी। इसके साथ छावनी भी है। यह स्थान बिलोचिस्तान का सिंहद्वार समझना चाहिए। इसीलिये अंग्रेज़ों ने ख़ासी नाका बन्दी की है। हमने बन्नू, कोहाट, पेशावर के पठानी इलाके भी देखे हैं। हमारी राय में बिलोची कौम अपेक्षया ग़रीब, सीधी और

वस्तु है। यही कारण है कि इस ओर इतनी मारधाड़ या डाकाजनी नहीं। जहां पठानी इलाके में दिन को एक भी अकेले जाना भय वह होता है वहां इस ओर आधी रात में भी कोई खतरा नहीं मालूम होता। अनेक स्त्री-पुरुष अकेले दुकेले रात के बारह बजे तक दूर २ की सड़कों पर घूमते रहते हैं और कोई दुर्घटना नहीं होती। यहां की पुलिस और फौज दोनों खूब हुशियार हैं। अब तो सिविक गार्ड का भी इन्तजाम हो रहा है। रमते-राम ने भी लाठी उठाने की ठानी है। उसे भी डर है कि कहीं हिटलर बाबा के चरण-कमल इधर आये तो उसका दण्ड-कमण्डल न गुम हो जाय।

× × ×

अस्तु, हमने यहां के अनेक स्थान देखे हैं यथा अमन पेशीन, शालाबाग, बलेली, आदि। बिलोचिस्तान का शिमला जियारत में है। कोटा से लगभग ६० मील दूर। ऊंचाई ७ हजार फुट। हरियाली की अधिकता। हवा-पानी ज्यादह ठण्डा। यहां के ए. जी जी. साहिब गरमियों में जियारत रहते हैं। और उनके दूसरे अहलकार भी। सन् १९३५ का भयंकर भूचाल शायद पाठकों को स्मरण होगा रात के तीन बजे जमीन हिली थी और सब इमारतें कुछ ही क्षणों में भूमिसात् हो गई। जान-माल का बड़ा नुकसान हुआ।

आज ५ वर्षों के अनन्तर कोटा फिर आबाद हो गया। जिधर देखो भूचाल-मुक्त नई इमारतें। पहले से बड़ी और सुन्दर। नई सड़कें, नये बाग।

सचमुच "चलती का नाम गाड़ी" है। इसने तो चलना है। यदि आप चाहें तो इस पर चढ़ जाएं। नहीं तो खड़े २ ताका करें। आपके रोने-धोने व बुरा-भला कहने से इसका कुछ नहीं बिगड़ना।

इसी से "रमते-राम" ने आशा का पाठ पढ़ा है। आशा ही जीवन है। जीवन गति—निरन्तर गति—का नाम है। शायद 'जगत्' शब्द का भी यही अर्थ है। ——

[पृष्ठ ३ का शेष]

माता पिताओं ने अपने बालकों के लिए इस समाज में कौनसा ऐसा स्थान बनाया है कि जिस में वे रह सकें। बालक माता के गर्भ से जब बाहर निकलता है उस समय जैसा ध्यान बच्चों के लिए रखते हैं क्या वैसा ध्यान माता पिताओं ने बालकों के लिए रक्खा है? जिस जगत में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति अभाव राजकीय दृष्टि से उत्पन्न किया गया था उस जगत् (राष्ट्रीय-मूलधन) के फल के परिपक्व होने के लिए आवश्यकतायें पूरी न करता शासक की इच्छा हो तो वह बालक समाज के कौनसे पद को शोभित करें क्या यह देखना माता पिता का कर्तव्य नहीं है? समाज के अन्दर बालक का मान हो और अग्रणी नियुक्त हो ऐसे क्या प्रयत्न माता पिताओं ने और समाज ने किए हैं?

आर्यसमाजको राष्ट्रनीति और शासक प्रजा के साथ संबंध होने से उस गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में पढ़ने वाले बालकों को भारत में कौनसा स्थान मिलना चाहिए, यह सोचना अथवा पिता तथा गुरुकुल के कार्यकर्ताओं का और समाज का विशेष तौर से फर्ज है। ——

गुरुकुल समाचार

गुरुकुल में शीघ्रता से ऋतु परिवर्तित होती आ रही है। रात के समय कुछ २ ठंड पड़ने लग गई है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य ऋतु की विषमता के होने पर भी उत्तम है। महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ कर २२ होगई है। पिण्डारी ग्लेशियर की पार्टी सकुशल गुरुकुल पहुंच गई है। श्री डा० इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालङ्कार गुरुकुल की सेवा से विरत होकर गत १६ सितबर को भारतीय सेना विभाग में उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो रावलपिण्डी चले गये।

श्री डा० इन्द्रसेन जी की विदाई

गत सोमवार के दिन श्री डाक्टर इन्द्रसेन जी के गुरुकुल की सेवा से त्यागपत्र देने पर, उनकी विदाई की सभा श्री उपाचार्य लालचन्द जी के सभापतित्व में हुई जिसमें उनको कुल की ओर से निम्न आशय का अभिनन्दन पत्र दिया गया—"आपने जिस लगन, अदम्य उत्साह, धैर्य और कार्य कुशलता से इस कुल माता और आयुर्वेद महाविद्यालय की इस छोटे से कार्यकाल में सेवा की है यह इस कुल के प्रत्येक व्यक्ति को विदित है। यह आपके ही उद्योग का फल है कि गुरुकुलीय आयुर्वेदिक वनस्पति वाटिका आज लहलहा रही है। हमारे इस अकिंचन अभिनन्दन पत्र की अपेक्षा यह वाटिका ही आपका यथार्थ रूप में गुणगान कर रही है। आप ही का यह कार्य था कि आज गुरुकुलीय रोग परीक्षाशाला वर्तमान समय में उन्नति की सीमा पर पहुंच गई है। आपका सरल स्वभाव और सेवा भाव हमें सदा स्मरण रहेगा। आपके जाने से गुरुकुल को, विशेषतया आयुर्वेद महाविद्यालय को जो क्षति होगी उसे आसानी से पूरा नहीं किया जा सकता।

आप जैसे उपयोगी महानुभाव का गुरुकुल से जाना निस्सन्देह हम सब के लिये दुःख जनक है। लेकिन हमें इसके साथ इस बात का हर्ष भी है कि आप और भी अधिक प्रतिष्ठित और उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर जा रहे हैं। इस सफलता पर हम आपको बधाई देते हैं और शुभ कामना करते हैं। आप उपाध्याय के अतिरिक्त इस कुल माता के स्नातक भी हैं आशा है आप जहां भी जायंगे इस संस्था के नाम को उज्ज्वल करेंगे।"

इसके बाद डाक्टर जी ने ब्रह्मचारियों के प्रति निर्देश करते हुवे कहा कि तुमको सदा ज्ञान के लिए यत्नशील होना चाहिए और जो तुमने अपना उद्देश्य बनालियाहो चाहे वह कैसा ही क्यों न हो उसके लिये रात दिन एक करके उस तक पहुंच कर ही दम लेना चाहिए।

स्वास्थ्य समाचार

१ ब्र० श्यामबिलास १ श्रेणी विषम ज्वर, २ ब्र० सुखदेव ३ श्रेणी विषमज्वर, ४ रामपाल ५ श्रेणी फोड़े, अब सब अच्छे हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत Reg. No. A 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १२ आश्विन १९९७ : २७ सितम्बर १९४० [संख्या २४

हमारा सूर्य

(स्व० श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी के अप्रकाशित धर्मोपदेश से)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।

यजु० ३१ । १६ ।

हिन्सक जन्तुओं से भरे जंगल में अन्धेरी रात को भटकना और रास्ता न पाना कैसा भयानक है! मनुष्य थर थर कांपता है और डर कर भागता है। जब तक कोई रास्ता बताने वाला और रोशनी के उजाले से भयानक स्थानों से उसको बचाने वाला न मिले उसका हृदय शान्ति नहीं पाता और उसका भय दूर नहीं होता। समझता है कि अब किसी जन्तु ने खाया। कल्पना कर लो यदि ऐसा न हुआ—कहीं खाई व खन्दक में गिर गया निकलने का मार्ग न पाया—तो भी बिचारा व्याकुल होता रहा और अपनी असमर्थता तथा भटकने पर रुदन किया। अथवा अन्धेरे में किसी नदी में बह गया तो और भी व्याकुलता का सामना हुआ। निस्सन्देह अन्धेरे में जंगल की यात्रा कष्टों का घर है। रोशनी के उजाले में मनुष्य अपना पराया तथा ऊँचनीच सब देख लेता है। अन्धेरे में ठोकर पर ठोकर; धक्के पर धक्का लगता है और स्थान-स्थान पर गिरता पड़ता है। परमात्मा ने इसी लिये संसार में सूर्य का उजाला किया है कि उससे प्राणी सुरक्षित, सुखपूर्वक अपने लक्ष्य पर पहुंच जावें और मार्ग के कष्टों से आराम पावें। अहा! हमारा प्रभु हम पर कैसा दयालु तथा कृपालु है। हर समय हमारा सुध रखता है। हमें गिरने और भय से बचाता है। ठण्डी ठण्डी वायु हर उद्देश्य पर हमें प्राप्त है। शीतल जल पीने के लिये है। अच्छी अच्छी लुभावनी वनस्पतियां तथा नदियों के शीतल जल झाझपर झाग लाते और आंखों को तरावट देते हैं और हमारी सतोष्ण पृथ्वी को सींचते हैं। समुद्र, बरफ की चट्टानें, सूर्य, चान्द व तारामण्डल, पृथ्वी के बहुमूल्यपदार्थ, औषध पदार्थ हमारी आयु के साधन हैं। यह सब पदार्थ परमात्मा की देन हैं उनके सहवास में हमें जिस प्रकार आनन्द है, वह सृष्टि की किसी वस्तु में पाया नहीं जाता।

कोई अच्छे से अच्छा खाना खावो। सोने, चान्दी व अतलस, व जलफूल का भूषण धारण करो। राजा व सम्राट बनजावो। भूमि व आकाश पर चढ़ जावो—अगर परमात्मा प्यार न करें, तो यह सामान हमें अच्छा नहीं लगता। उसके सामने हम कैसे ही निर्धन, हां-यदि वे हम से प्रेम करते हैं तो हमारे लिये वही स्वर्गधाम है। क्यों वह ऐसा सुन्दर, बुद्धिमान्, प्रकाशमान, विचित्र आनन्दस्वरूप, न्यायकारी सर्व शक्तिमान् है कि विशाल सूर्य चन्द्र आदि उसके द्वार पर खड़े हैं। वायु जिसके आगे हाथ बान्धे खड़ी है—जल जिसका आज्ञापालक है अग्नि जिसका तुच्छ सेवक है, वह महान से महान, तेजस्वी से तेजस्वी है। राजाओं का राजा है। सब का दुःखविनाशक और रक्षक है। जो मनुष्य सच्चे हृदय से उसका उपासक है वह सदा उसके सहायक हैं वह मनुष्य के साथ हो तो उसके मार्ग व जंगल में चाहे कितनी कठिनाइयें हों किञ्चित मात्र भयभीत नहीं होता—क्योंकि वह सब भय तथा कष्टों का दूर करने वाला है। यह सत्य है कि दुःख उसके नाम से भाग जाते हैं। परन्तु कठिनता यह है कि वह बाह्य चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होता और न ग्रहण होता है। उसके दर्शन के लिए आत्मा की स्वच्छता तथा आत्मा की पवित्रता, तथा उज्वलता आवश्यक है। परमात्मा कहते हैं :—'यज्ञमयजन्तदेवाः' कि जिन लोगों ने विद्या के सूर्य से रोशनी पाई है। वही शुद्ध होकर हम देख सकते हैं और जिन मनुष्यों ने विद्या के प्रकाश से अपना आत्मा को शुद्ध नहीं किया वह अन्धे हैं और सूर्य का दर्शन नहीं कर सकते हैं। सत्य है जब मूर्ख अपने आलस्य तथा प्रमाद में पड़कर सूर्य से अपनी आंख चुराते हैं और अन्धे बन जाते हैं उनको परमात्मा का दर्शन प्राप्त नहीं होता। इसलिये हे परमेश्वर—देव का हमारे हृदय में प्रकाश करो ताकि शुद्ध हृदय से हम आप की शरण में आसकें और आप के दर्शन करने का आनन्द पाने के अधिकारी बन सकें।

कृष्ण कौन ?

[लेखक— आचार्य प० चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति वैदिक रिसर्च स्कालर]

गीता के अन्त में संजय की उक्ति है "यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीति मंतिर्मम॥" जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, धनुधर अर्जुन हैं वहां लक्ष्मी है, विजय है, स्थिर नीति है—यह मेरी दृढ़ सम्मति है"। श्लोक में ऐतिहासिक कृष्ण तथा अर्जुन की आड़ में अलौकिक कृष्ण की अनोखी झलक दिखाई दे रही है। कृष्ण तथा अर्जुन की इस गुह्य स्वरूपता को समझने में गीता का हार्द समझा जा सकता है। कुछ समय पूर्व पादरियों तथा कुछेक पाश्चात्य विचारकों ने एक कपोल कल्पना उड़ाई थी कि भगवद्गीता पर ईसाइयतका, कृष्णचन्द्र पर ईसा मसीह का प्रभाव है। ओफ्र्यूस की कथाओं में, एशिया माइनर के बौसरी धर्म में कृष्ण जीवन का स्रोत है। इस कल्पना को शिलालेखों तथा साहित्य के प्रबल प्रमाणों से निस्सार प्रमाणित किया है। कृष्णचन्द्र के वैष्णव अंश को प्रतिपादित करके गोप-गोलोक संबन्धी अनेक लीलायें भारतीय वाङ्मय में दिखाई देती हैं। ऋग्वेद के "विष्णुर्गोपा अदाभ्यः" "यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः" इन मंत्रांशों में इन कथाओं का बीज अवश्य है। ईसा तथा बाइबिल से पूर्व के वेद की इन अमर कविताओं में जो विष्णु गोपा हैं वे ही महाभारत-पुराण तथा भागवत के ग्रन्थों में स्वच्छन्द गोप बन गये हैं। फिर इन्हीं वेद के विष्णु तथा महाभारत के गोप कृष्ण ने रूपक की ओढ़नी ओढ़कर sheep तथा lamb के मार्गप्रदर्शक shepherd—ईसा मसीह का रूप क्यों न धारण किया हो ?

महाभारत के ऐतिहासिक वातावरणमें जो कृष्ण तथा अर्जुन नायक रूप में अभिनय कर रहे हैं। उनको क्रमशः विष्णु का अंश और इन्द्र के पुत्र रूप में स्मरण करने पर वेद के विष्णु तथा उनके सखा इन्द्र "इन्द्रस्य युज्यः सखा" हमारी आंखों के सामने नाचने लगते हैं। महाभारतकार ने मंगलाचरण के आद्य श्लोक में ऐतिहासिक कृष्ण तथा अर्जुन के चित्रों पर अध्यात्मिक रंग की लाली छिड़ककर क्या ही अनुपम कहा है ? "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्"कृष्ण नारा अर्थात् जीवों के समूह के अयन या शरण होने से नारायण हैं और अर्जुन कर्मफल में रमण करने की इच्छा न करने से निष्काम पथ का पथिक 'न रमते इतिनरः'-मनुष्यों का मार्गदर्शक "नयतीति नरः" है। गीता में अर्जुन ने कृष्ण को सखा कह कर पुकारा है। "सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति"। यह मित्रभाव वर्णन कृष्ण तथा अर्जुन के आध्यात्मिक रूपक नारायण-नर और जीव तथा शिव में भी दृष्टिगोचर होता है। कठोपनिषद् की श्रुति आती है कि "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति—अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" अर्थात् संसार रूपी पलाश व अश्वत्थ वृक्ष पर भोक्ता तथा द्रष्टा रूप में जीव तथा परमात्मा रूपी दो पक्षी मित्रभाव से बैठे हुए हैं। जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् है। ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् आनन्दघन "उत्तम" पुरुष है। ब्रह्म संसार में व्याप्त होते हुए भी अनासक्त हैप्रकृतिपराङ्मुख है। यही अनासक्ति कृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन के सारथी रहते हुए निःशस्त्र रहकर पालन की है। संसार सरोवर में कमल पत्र के समान असंग रहने में ही प्रभु की प्रभुता है। राजसू यज्ञ में दिये गये तिलक को महाभारत संग्राम का मूल समझ अश्वमेध यज्ञ के समय अर्घ्य लेने से इन्कार करके कृष्णचन्द्र जी ने असंगता की पराकाष्ठा बताई है। वेदान्त के ब्रह्म तथा सांख्य के पुरुष में इसी अनासंग के भाव की खूबी देखी जा सकती है।

कृष्ण के पवित्र चरित्र पर मध्यकाल में अनीति का आरोप आ गया था। समय समय पर सुधारकों के प्रहार से कृष्ण जीवन पर चढ़े हुए इस आशय को दूर किया जाता रहा है। आगे चलकर उपनिषदों की खोज के साथ पुराणों की महत्ता लुप्त होती गई। रामचन्द्र जो भारतीय इतिहास में अपने शुद्ध वेष में दिखाई दिये। कृष्ण पर्दे के पीछे छिप गये। बंकिमचन्द्र की तर्क प्रधान नीरक्षीर विवेक दृष्टि ने कृष्ण के जीवन से संबद्ध धर्म के गहन भावों की उपेक्षा करके कृष्ण जीवन को स्वच्छ स्वरूप में उपस्थित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। कराल काल महोदधि की तरंगों में आज भी कृष्ण जीवन के कुछ अमर अंश चमक रहे हैं। इसी लिये हम कहते हैं कि कृष्ण जीवन की ऐतिहासिकता में भी अमरता छिपी हुई है। गौरांगमहाप्रभु भक्त चैतन्य देव तथा वल्लभाचार्य के पन्थ के गोस्वामियों ने कृष्णकथा की आध्यात्मिकता बताई है। भागवत में भी कृष्ण के आयुधों को प्रभु के विशेष गुणों के रूप में वर्णित किया गया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के चतुर्व्यूह का क्रमशः प्रभु, जीव, अहंकार तथा मन के रूप में वर्णन करके व्यास के शारीर भाष्य ने कृष्ण के अध्यात्म स्वरूप की महत्ता बताई है। सर जोर्ज ग्रीयर्सन के निम्न शब्दों में यही कुछ भाव भरा हुआ है। "Hence the souls devotion to the deity pictured by Rdha self-abandonment to her beloved Krishna and all the hot blood of Oriental passion."

वस्तुतः संस्कृत साहित्य के प्राचीन इतिहास में कविता की धारा में इतिहास के पुष्प बिखर गये हैं। इतिहास को कल्पना से अनुप्राणित करके प्राचीन विचारकों ने विश्व के गुह्य सत्य प्रकट करने का सुन्दर मार्ग निकाला है। "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" श्लोक में कृष्ण के व्युत्पत्तिजन्य यौगिक अर्थके द्वारा अतिमानव रूपका प्रतिपादन है।

कृष्णचन्द्र जी में विष्णु (व्यापक-प्रभु) का अंश होने से जहां वे वैष्णव हैं वहां उनमें विष्णु अर्थात्-सूर्य का रूपक चरितार्थ होने से भी वे वैष्णव हैं। नील आकाश में चारों दिशाओं में अपनी किरणें फैलाने वाले सूर्य को विष्णु कहते हैं-इसी प्रकार नील वपु चतुर्भुज, पीताम्बरधारी कृष्ण को विष्णु का अंश कहा जा सकता है। विष्णु के आधिभौतिक सूर्य महिमा को समझाने के लिये कवियों

में कृष्ण जीवन को उपर्युक्त रूप में चित्रित किया है। इसी प्रकार गोपियों के रास में रस लेने वाले कृष्ण में ज्योतियों के रास के केन्द्र स्थानीय सूर्य (विष्णु) का स्वरूप देखा जा सकता है। कहीं कहीं रास में मध्य बिन्दु कृष्ण तथा राधा दोनों बताये गये हैं। यह नाना शक्तियों से आलिंगित ब्रह्म स्वरूप बताने का एक प्रयत्न है। कृष्ण जी रास के मध्य में ही नहीं अपितु परिधि में भी हैं—क्या प्रभु संसार के केन्द्र तथा परिधि दोनों में (Both Centre and circumference) नहीं है? परब्रह्म विश्व के अणु अणु में व्यापक-अन्तर्यामी होते हुए भी Transcendent (अतीत) परात्पर हैं "स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु" रास में रमण करते हुए भी प्रभु नित्य ब्रह्मचारी हैं। यह रहस्य प्रभु को सूर्य 'उद्गीथ' रूप में बता कर उसमें संगीत के अध्यारोप से पुष्ट किया गया है।

कहीं कहीं कृष्ण जीवन को कुब्जा के साथ जोड़ कर कलुषित चित्रित करने का प्रयत्न हुआ है। परन्तु सचाई यह है कि सत्व, रज, तम रूपी गुणों की विषमावस्था ही कुब्जा है। पुरुष को नीरस बन कर इस में भागना नहीं है। अपितु इसे समता में लाकर सुन्दर बनाना है गीता का सांख्य सन्यासवादी सांख्य से इसी अन्श में भिन्न है। गीता की दृष्टि में पुरुष प्रकृति में रमता हुआ भी असंग रहता है। भागवत के दशमस्कन्ध में कृष्णलीला की कथा का रहस्य खोला गया है। पूतनावध में भगवान की कल्याणी शक्ति की महत्ता का ही प्रदर्शन मात्र है। कृष्णचन्द्र जी ने गोपियों के वस्त्र हर लिये थे इस ज्ञानोपमा से प्रभु तथा हम आत्माओं के बीच में कोई अवकाश नहीं है इस तात्विक सत्य को प्रस्फुट किया गया है। ग्रीक साहित्य में आत्मा (Phyche-सीधची) धर्मराज के सन्मुख नग्न दशा में उपस्थित हुआ करता है। इसका भी यही तो अन्दर का रहस्य है कि कृष्ण का गोपी जन प्रिय कह कर प्रभु को प्रेम का भूखा बता कर कवि ने क्या ही सौन्दर्य भर दिया है। भागवत के रास के रूपक में और उपनिषदों के उद्गीथ में कैसा अपूर्व साम्य और सौन्दर्य है? संसार की अनन्त शक्तियों परमाणुओं का तथा अन्तवृत्तियों का Tug of war ही रास है। इस स्वरूप को समझ कर ही हम "रसो वैसः" के इस सागर में डुबकी लग सकते हैं। कृष्ण का यह स्वरूप ही हमें प्रिय है इसी स्वरूप ने कृष्ण के इतिहास को अलौकिक रंग रूप दिया है। मधुसूदन सरस्वती ने इसी लिए कहा है "कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जाने"।

गुरुकुलों पर उमड़ती हुई काली घटा

(निदान और चिकित्सा)

[ले०—श्री दिनेश नर्मदा शंकर त्रिवेदी, अनुवादक—
श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

(१२)

राज्यः—गुरुकुल प्रणाली को सच्ची सहायता देने का कार्य राजा का है। जिस समय राजे महाराजे गुरुकुल को आश्रय देते थे तब इस प्रणाली की सफलता थी। परन्तु इस समय तो यह देश पराधीन होने के कारण "राजा राष्ट्रं रक्षति" नहीं रहा। राष्ट्र का सच्चा पति राजा नहीं है परन्तु राष्ट्रीय भावना द्वारा बलिदान करने वाले राष्ट्र नेता ही राष्ट्र के सच्चे पति हैं। और पराधीन राष्ट्र के पति के पास भावना और आत्मबलिदान के अतिरिक्त अन्य भौतिक साधन नहीं हो सकते। इसलिए गुरुकुल जैसी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं को जो सहायता राष्ट्रपति के हाथ से होनी चाहिए वह हो नहीं रही। किसी भी संस्था का संचालन करने के लिए अधिकार और अर्थ संयुक्त अधिकारी की सहायता होनी ही है। परन्तु आजकल यह न होने के कारण राष्ट्रीय संस्थाओं को संकीर्ण वातावरण में काम करना पड़ता है। इतना ही नहीं परन्तु कितनी ही बार विरोधी वातावरण को भी दूर करने की आवश्यकता पड़ती है। और शिक्षण का कार्य तो शान्त एवं रम्य वातावरण में ही अच्छा हो सकता है। इसके अतिरिक्त आर्य समाज धन्य है कि उसने असंख्य झंझावातों में गुरुकुल प्रणाली के प्रयोग की साधना जारी रक्खी है। राज्य का आश्रय हो तो गुरुकुल के स्नातकों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान मिले इतना ही नहीं परन्तु उनकी विद्या और शक्ति का योग्य उपयोग हो सके। इस प्रकार के संकीर्ण अवसर होने पर प्रयोग के साफल्य के लिए नीचे लिखे हुए प्रयत्नों की आवश्यकता है।

(क) राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करने वाली संस्थाओं एवं अन्य नेताओं का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

(ख) राज्यकर्मचारी यदि हिन्दु हों तो उनमें विचार क्रान्ति फैलानी चाहिए। और उनको इस प्रणाली की विशेषता समझनी चाहिए।

(ग) हिन्द के हिन्दु राजा, राजगुरु एवं प्रधानों में 'गुरुकुल प्रणाली' प्राचीन भावना की चिनगारी फूंक देनी चाहिए। यह कार्य करने वाली कोई राजर्षि आर्यसमाज में होना चाहिए।

यदि देशी राजाओं को इस रहस्य को पूर्णतया समझावें तब उनकी ओर से आर्थिक सहायता के अतिरिक्त उनके राज्यों में गुरुकुल के स्नातकों को भी अच्छा स्थान मिल सकता है। इस तरह धार्मिक भावना प्रजा में फैल सकती है। स्व० बड़ोदानरेश सयाजीराव गायकवाड़ के समय राजर्षि स्वामी नित्यानन्द जी का नरेश बहुत ही आदरणीय सत्कार करते थे। एक समय महाराज ने राज्य में कौनसी भाषा और लिपि राष्ट्रभाषा के तौर पर नियुक्त करनी चाहिए इस समस्या के लिए भिन्न भाषा शास्त्रियों की कान्फरेंस की। अन्त में जब महाराज ने स्वामी नित्यानन्द जी से सलाह मांगी तब उन्होंने ने कहा था कि हम प्रजा को नपुन्सक बनाना नहीं चाहते अतः जिस भाषा में नपुंसक लिंग न हो वही भाषा हमें स्वीकार करनी चाहिए। ऐसी भाषा हिन्दी होने से राष्ट्र लिपि और भाषा के तौर पर हिन्दी का प्रस्ताव पास हुआ। यदि स्वामी जी का महाराज के साथ संपर्क न होता तो यह जन कल्याण का कार्य नहीं हो सकता था। (शेष पृष्ठ ५ पर)

गुरुकुल

१२ आश्विन शुक्रवार १९९७

गांधी जी का बल

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

जब पहली ही बार गांधी जी से साक्षात् परिचित होने का—साबरमती आश्रम में चार दिन तक उनके साथ निकटता से रहने का—सुअवसर प्राप्त हुआ तो उन से मैंने जो बात चीत की वे आध्यात्मिक थीं। उनसे पूछने के लिए कुछ प्रश्न लिखकर ले गया था, वे सब आध्यात्मिक प्रश्न थे।

अन्य कई उच्च कोटि के पुरुषों को मैं जानता हूं जो कि या तो निराश होकर योगसाधन और तपस्या के लिए हिमालय जाने की तैयारी कर चुके थे या कर्मयोग की दृष्टि से 'अनार्किस्ट' पार्टी के सदस्य हो चुके थे किन्तु गांधी जी की आवाज़ सुनकर ठहर गये। गांधी जी के किसी लेख, भाषण व वर्णन का समाचार पाकर उनमें एक उज्ज्वल आशा का संचार हो गया। इन पंक्तियों का लेखक भी गुरुकुल कांगड़ी की सातवीं आठवीं श्रेणी में देश के उद्धार के लिये बॉम्ब बनाने की तैयारी कर चुका था, पर दसवीं श्रेणी में ही दक्षिण अफ्रिका के कोई गांधी जी के लेख पढ़ने को मिले तो एक नये प्रकाश के लिए आंखें खुल गयीं। ऐसे हज़ारों, शायद लाखों, लोग हैं जिनकी जीवन धारा को गांधी जी ने बहुत अधिक पलटा दिया है। गांधी जी में ऐसा अद्भुत बल कौनसा है?

यह कोई बाह्य भौतिक बल तो नहीं है, एक प्रकार का अन्दर का आध्यात्मिक बल है. सच्ची धार्मिकता का बल है, और ठीक ठीक शब्दों में कहें तो, अत्युत्कृष्ट नैतिक बल है। अपने इस बल द्वारा अपने वैयक्तिक जीवनरूपी मथानी से जब जब उन्होंने त्याग, कष्टसहन और तपस्या के लिये देश वासियों को आह्वान करते हुए देशको आन्दोलित किया, मथा, तब तब जिनमें ज़रा भी आध्यात्मिकता, सच्ची धार्मिकता और नैतिकता थी वे अवश्य प्रभावित हुए और मक्खन की तरह ऊपर आ गये। आन्दोलन के वेग में कुछ अन्य हलकी वस्तुएं भी कभी कभी ऊपर आ जाती रहीं और कभी कभी अधिक सूक्ष्म मक्खन भी देर तक नीचे पड़ा रहा. पर बार बार के मन्थन से भारत की सब उत्कृष्टता गांधी जी के बल से ऊपर आती गयी, सामने आती गयी है इसमें कुछ सन्देह नहीं। अब एक और मन्थन का समय आया हुआ है।

जब धार्मिक कहाने वाली संस्थाओं में भी मामूली 'पॉलिटिकल' और कपटनीति भरे में चलती है, वहां कांग्रेस जैसी विशाल और राजनैतिक संस्था में यहां तक सत्य और अहिंसा की पवित्रता ले आना गांधी जी का ही काम है। गांधी भारत में ही नहीं किन्तु दुनिया में नैतिकता की पवित्रता को स्थापित करते पैदा हुए दीखते हैं।

आज दुनिया में हिंसा घोर से घोर रूप में अपना रौद्र और बीभत्स ताण्डव करते उठ खड़ी हुई है तो इधर गांधी जी में भी उतने ही जोर से, बल्कि उससे भी अधिक जोर और आत्म विश्वास के साथ अहिंसाशक्ति मुस्कराती हुई उस हिंसा दानवी का मुकाबिला करने के लिए जागृत हो उठी है। गांधी जी जब कोई ऐसा आश्चर्यकारक नया कदम उठाते हैं तो बहुत बार उनके नजदीकी साथी भी हैरान रह जाते हैं। मानों उनकी नैतिकता की ऊंचाई को देखकर हमारा सिर चकराने लगता है। पर हम देखते हैं कि उनकी नैतिकता न केवल हिमालय जैसी ऊंची है किन्तु अपार समुद्र की तरह विस्तृत और फैली हुई भी है। क्योंकि वे जो कदम उठाते हैं वह आम जनता के साथ एकात्मता स्थापित किये हुये उनके पवित्र हृदय से निकला होने के कारण जनसाधारण में जादू का सा असर करता है और व्यापक परिणाम उत्पन्न करता है।

पर ऐसा बल रखने वाले गांधी को पाकर भी आजतक भारत वर्ष गुलामी में पड़ा है। कोई पूछ सकता है—हम सुनें या न सुनें जगत आज पूछ रहा है—'गांधी को पाकर, ४२ वर्ष से गांधी को अपना कर भी, हे भारतवर्ष! तूने क्या सिद्ध किया है. क्या प्राप्ति की है?'। इसका उत्तर जितना जल्दी हो सके, भारतवासी भाइयो! दे दो. समय बड़ी तेजी से गुजरता जा रहा है।

मौन क्यों?

[श्री ज्ञानी]

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस चीज का हम में अभाव हो वह हमें विशेष प्रिय प्रतीत होती है। पतले आदमियों को इसी कारण मोटे मनुष्य भले लगते हैं। ऐसे ही निर्बलों को सबल। निर्धनों को धनी। रोगियों को स्वस्थ। तथा कुरूपों को सुन्दर।

कभी २ यह भावना ईर्षा अथवा घृणा में भी परिवर्तित हो जाती है यहां तक कि कई व्यक्ति इस घृणा से पागल होकर कभी २ दूसरों की हिंसा तक कर देते हैं।

× × ×

परन्तु यहां हमें इतनी दूर नहीं जाना। हम अपने विषय में कह सकते हैं कि हमें वो व्यक्ति प्रिय प्रतीत होते हैं जो शान्त, गम्भीर और बुद्धिमान हों। मूर्खों का मौन रखना ही उपयोगी है जितना कि एक कुरूपा का घूंघट। परन्तु एक बुद्धिमान व्यक्ति, सब कुछ समझते बूझते हुए भी, यदि मौन का अवलम्बन करे, वह अनुकरणीय है।

हमें मौन क्यों भला लगता है? कारण यह है कि हमारी अधिक बोलने की प्रवृत्ति है। जहां बैठेंगे, कुछ न कुछ बोला करेंगे। फिर बोलना भी वो चाहते हैं जिससे दूसरा खुश हो और हम उसकी नजरों में ऊंचे दिखाई दें। इस कारण सामने वालों की खुशामद, उसके विरोधी

की झूठी निन्दा तथा अपने गुणों का अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन किया करते हैं।

घण्टे भर की गप-शप के बाद हमने प्रायः अनुभव किया है कि "हम आदर्श से बहुत नीचे गिर गये।" हमें इस प्रकार दूसरों को प्रसन्न करने के लिये असत्य अथवा अत्युक्ति से काम न लेना चाहिये था। और यदि किसी ने धोखे में आकर यह मान भी लिया कि हम बड़े आदमी हैं तो इससे ठोस प्राप्ति क्या हुई ?

मनो विश्लेषण शास्त्र में हमारे इस कृत्य का कारण Inferiority Complex (अभाव-विषमता) कहा है। क्योंकि हममें वास्तविक महानता नहीं है, इस लिये हम उस अभाव को गप-शप अथवा दिखावट व अत्युक्ति से पूरा करना चाहते हैं। परन्तु सच पूछें तो वो इससे पूरी होती नहीं। संभव है कि इस प्रकार हम अल्प काल के लिये स्वयं अथवा अन्यों को धोखे में डाल दें। लेकिन कुछ अरसे बाद, जब मुलम्मा उतर जायगा, तब पीतल को सोना कोई क्योंकर समझेगा ?

× × × ×

हमारी वासनाएं जन्म-जन्मान्तरों की हैं। जब तक हम उन्हें पूर्णतः शान्त न करदें तब तक ये अवस्था बनी रहेगी। हमारे अन्दर जो अन्तरात्मा है वो प्रायः हमारी छिपी वासनाओं की ओर इशारा करता है और उन्हें दूर करने की प्रेरणा भी। परन्तु हम हैं कि उस प्रेरणा की निरन्तर उपेक्षा करते हैं। हमें क्षणिक-भोगों की प्रवृत्तियां प्रिय प्रतीत होती हैं। परिणाम यह है कि हम सहस्रों वर्षों में भी विकास के प्रथम सोपान को पार नहीं कर सके।

जब हम कॉलिज में पढ़ते थे, हमें योरप की फ़िलासफ़ी भी पढ़ाई गई थी। नीशे, काण्ट, स्पैन्सर आदि की अपेक्षा हमें 'इपिक्टेटस' और 'मार्कस ओरेलियस' अच्छे लगे। उनकी 'स्टोइक' फिलासफी बहुत पसन्द आई।

इसी प्रकार अपने शास्त्रों में निम्न का वाक्य हमें सदा स्मरण रहता है:—

जानन्नपि हि मेधावी :
जडवल्लोक आचरेत ॥

फिर राजनीतिक क्षेत्र में हमें महात्मा गांधी इस लिये अच्छे लगते हैं कि वो मौन और शान्ति के पक्षपाती हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू का त्याग व योग्यता यद्यपि प्रशंसनीय है, परन्तु उनकी जल्दबाजी, दिखावट और क्षुब्धावस्था हमें नहीं सुहाती। हमारा आदर्श तो हैं वे व्यक्ति जो समुद्र की तरह विशाल और हिमालय की बर्फीली चोटियों की तरह ठण्डे हों। जिन्हें दुनिया की कोई उथल-पुथल हिला न सके।

हां ! इस तरह के एक महान व्यक्ति देखे तो हैं। हमारा अभिप्राय पाण्डिचरी के श्री अरविन्द से है। उन में वे सब गुण हैं जो एक आदर्श पुरुष में होने चाहियें।

मैं एकान्त में बैठा हुआ उन से पूछ रहा हूं कि क्या मुझ में भी इतनी शान्ति और गम्भीरता आ सकती है ? वो मुस्किरा कर कहते हैं "जरूर"। "परन्तु एक बात है—बातूनीपना छोड़कर मौन रखना होगा।"

मौन क्यों ! मैंने पूछा।

मौन से ही तो शान्ति मिलती है। इसी से सत्य का ज्ञान होता है। सात्वी-वृत्ति का यही द्वार है। जब पूर्ण मौन अथवा पूर्ण शान्ति हो जाय तब मनुष्य अपने संकुचित क्षेत्र से निकल कर विशाल विश्वरूप का अनुभव करता है। तब विषय-वासना की समस्याएं स्वयमेव तुच्छ प्रतीत होने लगती हैं। तभी "रसो वै सः" का भान होता है।

लो ! फिर मैं बोलने लगा। सुनी-सुनाई बात को दिखावे में आत्म-अनुभव का रूप देने लगा। विचार हो आया कि पढ़ने वाले शायद समझेंगे कि मैं कितना पहुँचा हुआ हूँ !

बस इसी आत्म-श्लाघा ने तो मुझे तंग कर रखा है। यथाकथं लोगों की नजरों में बड़ा बनने की इच्छा मुझे खाए जा रही है। इसका अब एक ही उपाय है—मौन। केवल वाणी से ही नहीं, अपितु हृदय के प्रत्येक कोने से।

हां ! मुझे मौन रखना होगा। मौन, निरन्तर मौन।

(पृष्ठ ३ का शेष)

(च) देश के धनाढ्य पुरुषों में इस प्रणाली द्वारा विश्वास पैदा करना चाहिए।

अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार मैंने भिन्न भिन्न विषय पर विचार प्रगट किए हैं। मुझे अभी तात्कालिक उपाय के लिए जो विचार आते हैं उनको प्रकाशित करता हूं:—

अभ्यास पद्धतिः—

(१) विषयों के अन्दर जो विषय (Subject) भविष्य के लिए अनुपयोगी हो उन्हें हटा देना चाहिए। भूगोल वगैरह विषय प्रश्नोत्तर के रूप में पढ़ाने चाहिए। Manual labour में दिलचस्पी पैदा हो ऐसे विषय अभ्यास में होने चाहिएं।

(२) दीर्घावकाश में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को अच्छे एवं सुप्रसिद्ध दंत वैद्य और नेत्र वैद्य के पास गुरुकुल के आचार्य को भेज देने चाहिएं। ये दोनों विषय थोड़े खर्च में एवं थोड़े समय में सिखाए जा सकते हैं।

(३) भिन्न २ यूनिवर्सिटियों के या कालेज के किसी विषय (Subject) के निष्णात विद्वानों को आमन्त्रण देकर उनके भाषण (lecture) कराने चाहिए। इन भाषणों को छपवा देना चाहिएं। इसी तरह गुरुकुल के विद्वानों के अन्य कालेज में भाषण हों इसी तरह का प्रबन्ध करना चाहिए। इसी तरह के विनिमय से गुरुकुल को बाह्य-जगत कीमत करेगा और बाह्यजगत को गुरुकुल पहचानेगा।

(४) सिलाई, बढ़ईगिरी, लुहारी, राजगिरी, जिल्दसाजी बागवानी, बुनने का काम वगैरह हस्तकलाओं का प्राथमिक ज्ञान देना चाहिए।

(५) अधिकारी परीक्षा के बाद जिस विद्यार्थी को यूनीवर्सिटी की जैसी योग्यता प्राप्त करनी हो तो उस के लिए उसी तरह का प्रबन्ध गुरुकुल में करना चाहिए। यदि इस प्रकार करना योग्य न हो तो विदेश की यूनिवर्सिटियों के साथ पत्र व्यवहार करके यहां के विद्यार्थियों की इच्छानुसार विषयों का निष्णात बनाने के लिए विदेश भेजने का

प्रबन्ध करना चाहिए। इस कार्य में गुरुकुल और संरक्षक दोनों को मिलकर कार्य करना चाहिए। यह के कालेज या महाविद्यालय का कोर्स चार वर्ष करने की अपेक्षा विदेश का दो साल का शिक्षण ज्यादा लाभदायी होता है। इस प्रकार होने से भी जिसको स्नातक बनना ही हो उसके लिये वैसा प्रबन्ध करना चाहिये। ऐसे स्नातक को स्नातक होने के बाद २-३ साल तक अन्य संस्थाओं में अनुभव लेते रहना चाहिए। आजकल हमारे पास वेद के स्नातक, आयुर्वेद के स्नातक और सिद्धांत एवं विद्या के स्नातक हैं। इस में आयुर्वेद के स्नातकों को व्यावहारिक ज्ञान मिले ऐसे वैद्यों के पास गुरुकुल की ओर से स्नातकों को आचार्य द्वारा भेजा जाना चाहिए। वेदालङ्कारों का रिसर्च कार्य के प्रबन्ध के लिये पूना का भांडारकर इन्स्टीट्यूट, शांतिनिकेतन, अडियार एवं वेद के किसी अभ्यासी के पास विचार परिवर्तनार्थ भेज देना चाहिए। इस तरह जब तक नहीं होगा तब तक गुरुकुल की शिक्षा समाज को पूरी तरह लाभदायी नहीं हो सकता।

(६) जिस प्रकार ट्रेनिंग स्कूल या कालेज होते हैं उसी तरह जिस स्नातक को उपाध्याय बनना हो उसको शिक्षण कैसे देना चाहिए यह सिखलाना आवश्यक है। और उसी तरह प्रेक्टिसिंग वर्ग गुरुकुल में खोलने से विद्यार्थियों एवं शिक्षक समुदाय को बहुत लाभ होगा।

परीक्षा पद्धतिः—शिक्षण शास्त्रियों के कहने के अनुसार परीक्षा पद्धति खराब है फिर भी गुरुकुल में यह प्रणाली जारी है। इसकी आवश्यकता है परन्तु पद्धति में परिवर्तन की जरूरत है। उदाहरण के तौर पर यदि इतिहास की परीक्षा लेनी हो तो परीक्षा के समय विद्यार्थियों की इच्छानुसार उत्तर देते समय पुस्तकों का आश्रय देना चाहिए। प्रश्न निकालने के समय यदि बुद्धिमत्ता से प्रश्न निकाले होंगे तब तो जिस विद्यार्थी ने इतिहास पढ़ा होगा वही उत्तर दे सकेगा। और जिसने इतिहास नहीं पढ़ा होगा उसके पास चाहे पुस्तकों का ढेर ही क्यों न हो वह उत्तर नहीं लिख सकेगा। इस से बहुत सारी बातें याद रखने के बोझ से विद्यार्थी बच जावेगा। और जीवन में लेखक या वक्ता को भाषण के लिए पुस्तकों की सहायता लेनी पड़ती है इस लिए सब से बड़ा लाभ यह होगा कि विद्यार्थियों को Selection सूचना या Reference खोज करना और उसको योग्य स्थान पर नियुक्त करना बहुत आसान हो जायगा। इससे विद्यार्थी निष्णात पण्डित बनेगा। आज कल अभ्यास क्रम में कितने ही घोटने के विषयों के होने से विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति लुप्त होती जाती है। यह ठीक है कि संस्कृत के सुभाषित श्लोक एवं अन्य ज्ञातव्य वस्तुएं याद करा देनी चाहिये। घोटना यह खराब नहीं है परन्तु इसका उपयोग बहुत ही कम वर्ष तक कराना चाहिए। इतिहास, भूगोल वगैरह विषयों की परीक्षा के समय पाठ्यपुस्तक पास रखने की आज्ञा देनी चाहिए। सारे साल की प्रगति को देख कर वार्षिक परीक्षा में भी भाग देना चाहिए। चरित्र, सदाचार एवं शिष्टाचार की भी परीक्षा होनी चाहिए। और इनका परिणाम अलग २ रखना चाहिए। शिक्षक को हरेक विद्यार्थी के असद्‌व्यवहार सुपरिन्टेन्डेन्ट को प्रेषित करना चाहिए और उनके संरक्षक को बताना चाहिए कि उन असद्‌व्यवहारों को सुधारने में क्या उपाय किये और क्या परिणाम आया, यह भी लिखना चाहिए।

संरक्षकों के साथ सम्पर्क:—

गुरुकुल की 'संरक्षक सभा' मात्र बना देने से ही कार्य पूरा नहीं होता। संरक्षकों के साथ जितना ज्यादह गुरुकुल का सम्पर्क होगा—उतना ही गुरुकुल उन्नति कर सकेगा। मैं तो मानता हूं कि जबतक विद्यार्थियों को इस समाज में, संरक्षकों के पास भेजने का प्रबन्ध नहीं करेंगे तबतक बहुत से अनिष्ट दूर नहीं होंगे इस के लिए जल्दी सचेत होने की जरूरत है।

अन्त में उपसंहार में इतना लिखता हूं कि गुरुकुल की जितनी जरूरत भूतकाल में थी उससे ज्यादह आजकल है और भविष्य में भी जरूरत रहेगी। परन्तु इसके लिए गुरुकुल के संचालन में, अभ्यासक्रम में एवं अन्य बातों में शीघ्र परिवर्तन की जरूरत है। गुरुकुलों का प्रान्तीय संगठन होना चाहिए, इतना ही नहीं परन्तु गुरुकुल यूनिवर्सिटी एक ही होनी चाहिए। सारे हिन्द के स्नातक एक ही गुरुकुल से बाहर निकलने चाहिए। प्रान्तीय संगठन के बिना यह सब आकाश भवन है। आजकल गुरुकुल इने गिने हैं उनको समृद्ध करने की जरूरत है। मुझे श्रद्धा है कि आर्य समाज को जीवित संस्था के तौर पर जीना है तो गुरुकुल के अस्तित्व की बहुत जरूरत है। इसके बिना आर्य समाज बांझ बनेगा। और इस प्रकार होते हुए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की उद्भावना निरर्थक बनेगी।

अन्त में गुरुकुल के सम्बन्ध में कुछ महापुरुषों की सूक्तियों को दिये बिना यह निबन्ध अधूरा समझा जायगा।

"गुरुकुल के उस महान् प्रवर्तक श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को राष्ट्र निर्माता Nation Builder के रूप में प्रणाम करता हूँ। भारत की प्राचीन पुण्य भूमि की कुछ एक जीवित स्मृतियों का ज्वलन्त साक्षीरूप गुरुकुल है। नवीन भारत के विकास में गुरुकुल का स्थान महत्वपूर्ण है और रहेगा। वर्तमान भारत के शिक्षण क्षेत्र में सबसे बड़ी से बड़ी भेंट 'गुरुकुल' है!"

— साधु टी. एल. वास्वानी।

"हिन्दुस्थान के प्रत्येक कोने में गुरुकुल के लिये थैलियां खुला मुंह करके पुकार रही हैं। परन्तु जाकर ले आने वाले पवित्र आत्मा नहीं हैं। मुझे सच्चे आत्माओं की आवश्यकता है। अपने रक्त से गुरुकुल वृक्ष को सींचने वालों की जरूरत है।"

—महात्मा मुंशीराम।

"मैं गुरु दयानन्द का पुजारी हूं। उनके अनुयायियों की स्तुति करने वाला हूं। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षण का और ज्यादह प्रचार किया है। राष्ट्रीय शिक्षण का ज्यादह प्रचार करने में उनके अनुयायियों का ज्यादह भाग है।

ये धार्मिक राष्ट्रीय विद्यालय जीते जागते मंदिर हैं। मैं निश्चय से कहता हूँ कि हिन्दुधर्म, राष्ट्रीय शिक्षा, और ब्रह्मचर्य का संगम यदि किसी भी स्थान पर हुआ हो तो वह गुरुकुल में है।"

—सरदार बल्लभभाई।

"मुझे, लोकमान्य और देश बन्धु आज कल की अयोग्य, विषैली और निर्वीय शिक्षा प्रणाली के विद्यार्थी दिखाई देते हैं। पर मुझे कहना चाहिए कि यदि हम देश की कुछ भी सेवा करना चाहते हैं तो उस विषवल्लरी के विष का वमन करके ही कर सकते हैं। जब तक एक भारत वासी अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी चालचलन से विभूषित न हो तब तक वह देश की कुछ भी सेवा नहीं कर सकता यह पागल का प्रलाप है। ऐसे मिथ्यावादी लोगों के सामने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का ज्वलन्त उदाहरण है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि स्वामी जी का चिरजीवी कार्य (गुरुकुल) शुद्धभारतीय दिमाग का कारण था।"

—महात्मा गांधी जी।

"सारे हिन्द में मौलिक और रसदायी शिक्षा का प्रयोग करने का कार्य गुरुकुल ने किया है। ऋषिमुनियों की पुराण-पुनीत पद्धति के साथ वर्तमान वैज्ञानिक पद्धतियों का सुन्दर मिश्रण करके एकांत जंगल में धार्मिक कर्त्तव्य करने वाले तपस्वियों का यह तपोवन है। यहां पर ब्रह्मचारियों का शरीर नीरोग और बलिष्ठ बनता है और उनका मन आज्ञाकारी सत्यवादी और भक्तिमय बनता है। गुरुकुल एक आदर्श यूनिवर्सिटी है।"

—सर जेम्स मेस्टन। (समाप्त)

गुरुकुल समाचार

गुरुकुल में ऋतु दिनोंदिन सुखदायी होती जा रही है। धूप में कम उष्णता प्रतीत होती है। महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही है आशा है विजयादशमी का त्योहार उत्साह पूर्वक मनाया जायगा। २ अक्तूबर को गांधी-जयन्ती मनाने की तैय्यारियां हो रही हैं।

गुरुकुल कांगड़ी का
आयुर्वेद महाविद्यालय भवन

आर्य जनता के हर्ष का विषय है कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में आयुर्वेद महाविद्यालय भवन बनकर तैयार होरहा है। अभी तक ब्रह्मचारियों की पढ़ाई वृक्षों के नीचे, मैदानों में, आश्रम के बरामदों में हुआ करती थी जिसमें वैज्ञानिक उपकरणों के लाने और ले जाने में विकल उठानी पड़ती थी। किन्तु इस भवन के बन जाने पर ब्रह्मचारियों की पढ़ाई के साथ-साथ बाहर से आए हुए ग्रामीण-रोगियों को विशेष सुविधा होगी। क्योंकि आयुर्वेद महाविद्यालय भवन में पढ़ाई के ५ कमरों के अतिरिक्त रोगियों को देखने के लिए दो कमरे एक्सरे के लिये १ कमरा तथा स्टोर, डिस्पेन्सरी और डार्करूम के लिए पृथक् २ कमरे बन रहे हैं। इस भवन के साथ ही एक अच्छा ऑपरेशन गृह भी तैयार हो रहा है। ऊपर के मंजिल पर विशाल आयुर्वेदिक प्रदर्शनी बन रही है। उदार दानियों को अच्छा अवसर है कि विद्यादान के इस पवित्र कार्य में हाथ बंटाकर, हजारों रोगियों को नीरोग करने में सहयोग देकर पुण्य के भागी बनें।

गुरुकुल--इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती के लिये धन संग्रह करने के लिये एक डेपूटेशन श्री प्रो० गोपाल जी की अध्यक्षता में अम्बाला गया था। वहां पर उसको बहुत सफलता मिली। ३६५) एकत्र हुए। अम्बाला आर्य समाज ने ५१) दिये तथा स्त्री समाज ने ५१) दिये। स्त्री समाज ने यह धन पैसा-पैसा चन्दा करके एकत्र किया था। श्री ला० मुकन्दलाल जी ने १०) वार्षिक दान देने का वचन दिया है।

श्री ला० हलाकीदास जी तथा श्री ला० उग्रसेन जी, जो गुरुकुल के दो ब्रह्मचारियों के संरक्षक हैं, अपना अमूल्य समय देकर और धूप में घूम-घूम कर चन्दा एकत्र करवाया। यद्यपि श्री ला० हलाकीदास जी के एक निकट सम्बन्धी की उन दिनों मुरादाबाद में मृत्यु हो गई थी और उनको तार द्वारा बुलाया गया था फिर भी उन्होंने गुरुकुल के काम को आवश्यक समझ कर वहां जाना स्थगित कर दिया और चन्दा एकत्र करवाते रहे। श्री ला० उग्रसेन जी ने जो अम्बाला के एक बड़े प्रतिष्ठित महानुभाव हैं चन्दाएकत्र करवाने में बहुत सहायता प्रदान की। दोनों महानुभावों का गुरुकुल इस सहायता के लिये हार्दिक धन्यवाद करता है। यदि इसी प्रकार प्रत्येक संरक्षक महोदय सहायता करें तो २५०००) इकठ्ठा करना कोई कठिन कार्य नहीं।

कसौली आर्यसमाज के उत्सव पर भी श्री प्रो० गोपाल जी व्याख्यान देने गये थे। वहां पर समाज का उत्सव होने से गुरुकुल के लिए चंदा एकत्र न हो सका। परन्तु वहां की आर्यसमाज ने जनवरी में गुरुकुल को रजत जयन्ती के लिए एक पुष्कल धन राशि भेजने का वचन दिया है।

लाहौर से हिंदी "आर्यावर्त्त" का प्रकाशन

१५ सितम्बर से श्रीमती शकुन्तला देवी के सम्पादकत्व में उर्दू और मुसलिम सभ्यता के गढ़ पञ्जाब में आर्य धर्म, आर्य संस्कृति, आर्य सभ्यता, व आर्य भाषा के प्रचार तथा आर्य महिलाओं को जागृत करने के लिए "आर्यावर्त्त" का प्रकाशन आरम्भ हो चुका है जिसका पहला अङ्क स्त्रियोपयोगी उच्चकोटि के १२ लेखों, ३ मूल्यवान कविताओं, २ गद्य काव्य, २ रोचक कहानियों, तथा ५ चित्रों का शानदार संग्रह है। मूल्य २) रु० वार्षिक, छात्रा २॥) रु०, विदेश ५ शिलिं०।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० धर्मवीर १४ श्रे० की विषम ज्वर, ब्र० मनमोहन १ श्रे० की विषम ज्वर, ब्र० प्रेमनिधि २ श्रे० की विषम ज्वर, ब्र० धर्मेन्द्र २ श्रे० की विषम ज्वर, ब्र० श्रीकृष्ण २ श्रे० की फोड़ा। गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १६ आश्विन १९९७: ४ अक्टूबर १९४० [संख्या २५

हमारी मृत्यु से रक्षा करो

[स्व० श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के अप्रकाशित धर्मोपदेश से]

मानस्तोके तनये मा न आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिष । वीरान्मा रुद्र भामिनोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥

जब मनुष्य अपनी निर्बलता का अनुभव कर लेता है और यह भी जान लेता है कि सिवाय परमात्मा के और कोई भी ऐसा नहीं है जो उसकी दिन रात रक्षा कर सके तब वह विचारने लगता है कि कौन कौन से विघ्न थे जिनके कारण ईश्वर प्राप्ति के साधन यथावत् नहीं हो सकते। अनुभव से इन विघ्नों के मूल कारण को जानना कठिन नहीं है। किसी बड़े शहर में चले जाओ अभी दस कदम नहीं चले हो कि अकस्मात् सामने से एक पुरुष अपने हाथों में कपड़ों में लपेटी हुई कुछ वस्तु लिये आ रहा है। पीछे बहुत सी स्त्रियें हाहाकार करती आ रही हैं। जिन में से एक की शोकजनक आवाज़ पत्थरों को भी रुला रही है। उस कपड़े में क्या लिपटा हुआ है ? और यह मुसीबत की मारी स्त्री कौन है ? सवाल करते ही तुम्हारा साथी तुम्हें बताता है कि कपड़े में लिपटी हुई नवजात बच्चे की लाश है और यह उसकी माता जो दुःख से पीड़ित, जान की भी परवाह न करती हुई साथ चली आ रही है। आगे अभी बीस कदम और न चले होगे कि एक भव्य भवन के अन्दर हिलगुल मची हुई है कि डाक्टर पर डाक्टर आ रहा है। रुपया ठीकरियों की तरह खर्च हो रहा है। सन्ध्या का समय है। गुरुकुल के ब्रह्मचारी उस समय संध्या से निवृत्त होकर एकान्तदेश में उस समय हवन की तैयारी कर रहे हैं। परन्तु यहां एक आर्य धनाढ्य पुरुष का बड़ा महल है। अब तक सन्ध्या का किसी को ध्यान तक नहीं। तुम्हें फिर आश्चर्य होता है कि ऐसा क्यों है ? क्योंकि तुम मकान के मालिक को सन्ध्या में रत देखा करते थे परन्तु देखो उसका चेहरा कैसा मुरझाया हुआ है ? पूछने पर जान पड़ता है कि उसका प्यारा इकलौता लड़का बीमार है। उसके दुःख से दुःखी होकर सब कुछ भुला दिया गया है। तीसरी ओर जाओ तुम्हें एक बीस वर्ष का नवजवान आदमी टेढ़ी कमर किये चलता दिखाई देता है। कठिनता से हिल सकता है। दस दिन के बाद देखो तपेदिक ने उसे श्मशान भूमि के समीप पहुंचा दिया है। नाड़ी डाक्टर के हाथ में है। कुछ दिन का ही यह महमान है। आह ! कैसा दुःख इस युवा पुरुष को मिल रहा है। फिर चौथी ओर जाओ सारे कुटुम्ब को दूध से पालने वाली गाय मरने के समीप है, तड़फ रही है और एक शानदार आदमी उसके सिरहाने खड़ा आंसू बहा रहा है पांचवी तरफ एक अमीर, घोड़े के पास पशु डाक्टर को लिये खड़ा है। मानो फांदने हुए घोड़े के सख्त चोट आगई है। एक और मुहल्ले में जा निकले हो। स्यापा हो रहा है। स्त्रियें बड़ी बेदर्दी से छाती पीट पीटकर खून निकाल रही हैं और एक अमीरी पोशाक पहने प्रभावजनक मनुष्य एक मृतक का मुख देख देख कर रो रहा है। इनका एक युवा सम्बन्धी इसी समय मरा है। दुःख से सबकी यही अवस्था हो रही है। कहां तक वर्णन किया जाय। अपने सम्बन्धियों के वियोग और उनके कष्ट के कारण बड़े से बड़े धार्मिक मनुष्य भी ऐसे व्याकुल हो जाते हैं कि सन्ध्या हवन और ईश्वर प्राप्ति आदि समस्त अध्यात्मसाधनों को भी भूल जाते हैं। कौन मनुष्य है जिसमें ज़रा भी सोचने का माद्दा है और वह यह नहीं समझता कि परमेश्वर प्राप्ति के बिना सांसारिक क्लेशों से छूटना कठिन है। परन्तु उनमें से कितने पुरुष हैं जो कि ऐसे समयों पर सावधान रहकर अपने साधनों को स्थिर रख सकते हैं ऐसी निर्बलता क्यों है ? यह प्रश्न ही व्यर्थ है ? मुझे तो तब अचम्भा होता अगर मनुष्यों के अन्दर ऐसी निर्बलता न पाई जाती। निर्बल तो मनुष्य हैं ही। परन्तु यह निर्बलता तब तक है जब तक प्रकृति के संसर्ग से इसके दास बन रहे हैं। ज्यों-ज्यों प्रकृति की दासता से छुटकारा होता जाता है और परमात्मा के साथ प्रीति का सम्बन्ध स्थिर होता जाता है त्यों त्यों यह निर्बलता दूर होती जाती है। इस जगह साधारण पुरुषों को फिर सन्देह उत्पन्न होता है। वे सोचते हैं जब जब "ईश्वर सर्व व्यापक है तो हमारे साथ उसका पहले से ही सम्बन्ध है अब हमारा नया सम्बन्ध

क्या होगा।" यह सच है कि परमेश्वर का हमारे साथ सदैव का सम्बन्ध है और सदा रहेगा परन्तु जब तक कि हम इस सम्बन्ध को न समझें, जब तक कि हम उस परम पुरुष को स्वीकार न करें तब तक दुःख दूर नहीं हो सकता। परमेश्वर को स्वीकार करना, उसी के परायण हो रहना कर्म है। जिसके कारण से कि सम्बन्धियों के क्लेश और दुःख हम को सता नहीं सकते। अन्यथा हमारी निर्बलता तो ऐसी है कि स्वयं हम कुछ भी करने के योग्य नहीं हैं। हे रुद्र परमात्मन्! इसलिये आपकी पवित्र सेवा में उपस्थित होकर बड़ी नम्रता से प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे सम्बन्धियों की रक्षा कीजिये और हमारी आयु को भी सुख पूर्वक बढ़ाइये ताकि हम निर्विघ्न आपकी प्राप्ति के साधनों पर आचरण करते हुये आप के पवित्र और शान्तिदायक ब्रह्मधाम के अधिकारी बन सकें।

—o—

देशभक्ति और अहिंसा

[हरिकृष्ण मोहनी]

हमारे देश में आज जो देशभक्त मौजूद हैं वे राष्ट्रीय भावों के विविध स्थित्यंतरों में से गुजरे हैं। मोटे हिसाब से यह कहा जा सकता है कि इन चालीस वर्षों में हमारे देश में तीन प्रभावशाली और व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन हुए। हमारे राष्ट्रीय भावना-समुद्र में १९०६, १९२१ और १९३० में देशभक्ति का अजस्र लहरें उठीं। उन लहरों के कारण जो ज्वार आया, उसने संवेदनाक्षम मनों को प्रभावित किया। कुछ व्यक्तियों के जीवनोद्देश में ही परिवर्तन हो गया। उन्होंने पुराना लीक का राज-मार्ग छोड़ दिया और अपनी जीवन-नौका दूसरी ही दिशा में खेना शुरू कर दिया।

१९०६ में जो आन्दोलन हुआ उसमें अहिंसा सम्बन्धी विचार का कोई स्थान नहीं था। यद्यपि उस वक्त देश-भक्तों के नरम, गरम और क्रान्तिकारी, ऐसे तीन दल बने, तथापि देशभक्ति का अहिंसा से कोई सम्बन्ध है, या होना आवश्यक है, यह किसी दल के देशभक्तों ने महसूस नहीं किया। कुछ देशभक्तों को क्रान्तिकारी, आतंकवादी अथवा अत्याचारी, आदि नाम दिए जाते थे। लेकिन उनका पक्ष हिंसक होने के कारण त्याज्य है, ऐसा मत प्रचलित नहीं था। ठण्डे दिमागवाले नरम दल की यह विचार-धारा थी कि 'अंग्रेजों का खून करने से कानून नहीं हो सकता और सशस्त्र बगावत करने की शक्ति हमारी भुजाओं में है नहीं। जबकि स्वराज्य प्राप्त करने की भारतवासियों की तैयारी ही बिल्कुल कम है, ऐसी हालत में एकाध अंग्रेज का खून करना महज़ दीवानेपन के कलंक का पात्र होना है'। नरम दल का यह विरोध तात्त्विक या धार्मिक नहीं था। उसका जड़ व्यावहारिक नीति-सम्बन्धी मतभेद में थी। इस विचार-धारा का अहिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

१९२१ से राजनीति में गांधी युग का आरम्भ हुआ। गांधी जी का राजनैतिक तत्त्वज्ञान बिलकुल नया, उनका व्यक्तित्व आश्चर्य जनक, उनका आन्दोलन का तरीका परम्परागत तरीके से बिलकुल भिन्न था। इसलिये देशभक्ति की प्राचीन परम्परा या विचार धारा में पले हुए देश भक्तों के मन में काफी उलझन हुई। ऐसी उसकी हुई मनस्थिति में वे गांधी-प्रवर्तित आन्दोलन के प्रवाह में बहने लगे। उन्होंने गांधीजी के सिद्धान्त अपनाये नहीं थे। इतना ही नहीं, बल्कि उन सिद्धान्तों का विरोध करते हुये या उन सिद्धान्तों की जड़ उनके दिल में गहरी न बैठ पाये ऐसा प्रयत्न करते हुए भी, ऊपर ऊपर से नये आन्दोलन का अनुशासन उन्होंने मान लिया। स्वयं गांधी जी ने प्रारम्भ में ही सत्य और अहिंसा पर जोर दिया था, लेकिन फिर भी, विचारवान देशभक्तों को ऐसा नहीं प्रतीत होता कि सिद्धान्त और व्यवहार, ध्येय और उसकी साधना की भेद दर्शक रेखा बिलकुल सुस्पष्ट रख कर आन्दोलन चलाया जा रहा हो। इसमें कोई शक नहीं है कि अधिकतर लोग अहिंसा को केवल एक तात्कालिक नीति के रूप में मान कर ही आन्दोलन में शामिल हुये थे। मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली तो विचार में भी अहिंसा को धर्म का स्थान शायद ही देते रहे हों। लेकिन उनके जैसे कट्टर मुसलमानों को भी गांधी जी ने अपने आन्दोलन में शामिल कर लिया था। गांधी जी की सेना कोई रोज़ कवायद करने वाले अनुशासन-निष्ठ सैनिकों की सेना नहीं थी। वह तो असंगठित सूरमाओं के या यों कहिये कि पिंडारियों के समुदाय के ढंग की सेना थी। गांधी जी की व्यवहार-कुशलता के कारण जिन लोगों ने उनके आन्दोलन में हिस्सा लिया था, उन लोगों ने यह कभी ठीक ठीक महसूस नहीं किया कि गांधी जी के अनुयायित्व की क्या क्या जिम्मेवारियां हैं। आन्दोलन में भाग लेने वाले अधिकतर लोगों के विचारों का अधूरापन और उलझन कई वर्षों तक कायम रहा।

गांधी जी का व्यक्तित्व असाधारण है और सत्य और अहिंसा में उनकी निष्ठा ज्वलंत है। लेकिन उनके आन्दोलन में शामिल होने वालों ने यह आवश्यक नहीं समझा कि गांधी जी के साथियों और अनुयायियों की भी सत्य और अहिंसा-विषयक श्रद्धा तथा भावना उतनी ही ज्वलंत होनी चाहिये। स्वराज्य की नितान्त आवश्यकता, निहत्थी जनता की निपट असहायता और गांधी-प्रणीत आन्दोलन की प्रत्यक्ष और स्थूल सफलता देखकर ही आन्दोलन में शामिल होने वालों की संख्या बढ़ने लगी।

हिन्दुस्तान के लोग १९२१ के पहले से ही यह जानते थे कि गांधी जी ने हजारों निःशस्त्र, हतवीर्य और पददलित अफ्रिका-निवासी हिन्दुस्तानियों को जगाया था। गांधीजी की वीरता का प्रत्यक्ष प्रमाण उन्हें मिल चुका था। निःशस्त्रों की प्रभावशाली सत्याग्रही-प्रतीकार-नीति का एक छोटा-सा प्रयोग पहले ही किया जा चुका था। गांधी जी के भारत को लौटने के बाद चम्पारन, खेड़ा, अहमदाबाद के मजदूरों और रौलेट ऐक्ट के आन्दोलन और संगठन, भारत की जनता ने प्रत्यक्ष देख भी लिये थे। गांधी जी के निःशस्त्र प्रतिकार, असहयोग,

सत्याग्रह, सविनय-भंग, आदि का तत्त्वज्ञान अपूर्व भले ही हो, तो भी उनका मार्ग अव्यवहार्य नहीं है, इस प्रकार का आन्दोलन शत्रु पर निस्सन्देह परिणाम कर सकता है; उसे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिल सकती है—यह अनुभव हलके हलके लोगों को होने लगा। गांधीजी का राजनैतिक तत्त्वज्ञान जिनको समझ में नहीं आता था, या जो उनके तत्त्वज्ञान का मखौल करते थे, अथवा उसका विरोध करते थे, वे भी आगे चलकर उसी सत्याग्रह का—निःशस्त्र प्रतीकार का—आश्रय करने लगे।

१९२१ के बाद जो दो मुख्य आन्दोलन हुये। उनके अलावा अकाली-सत्याग्रह, झण्डा-सत्याग्रह, शहीदगंज-सत्याग्रह, शस्त्र-सत्याग्रह, काकड आरती-सत्याग्रह (नागपुर), सोन्या मारुति-सत्याग्रह (पूना), आगा नगर निःशस्त्र प्रतिकार (हैदराबाद, दक्षिण), आदि कई आन्दोलन हुये। व्यक्तिगत और सार्वजनिक अन्यायों के निवारण के लिये जेल में और जेल के बाहर कई छोटे-बड़े व्यक्तियों ने भूख-हड़ताल या अनशन किये। निज़ाम राज्य के विरुद्ध इधर जो प्रतिकार किया गया, उसके सञ्चालक गांधी-तत्त्वज्ञान से बिलकुल सहमत नहीं है। यह भी नहीं कह सकते कि शहीदगंज की मसजिद के लिये लड़ने वाले मुसलमान अहिंसा के तत्त्वज्ञान के कायल थे। तो भी जो गांधी तत्त्व-ज्ञान में नहीं मानते या उसका विरोध करते हैं वे भी उन्हीं की प्रतीकार-नीति का अनुकरण करने लगे हैं। कई बेवकूफ और जड़मूढ़ व्यक्ति भी अन्न-सत्याग्रह या प्रायोपवेशन करते पाये गये हैं। वे ऐसे उपवासों के उदात्त उद्देश्य समझते भी न होंगे।

इन उदाहरणोंके कारण आपाततःऐसी धारणा हो जाती है कि सत्याग्रह की विजय हो रही है और गांधी जी का तत्त्व विलक्षण-मार्ग आम रास्ता हो रहा है। विरोधकोंका भी सत्याग्रह का स्वीकार करना उस सिद्धान्त के प्रवर्तक के लिये भूषणास्पद है, इस में कोई शक नहीं। तथापि विचारवान व्यक्ति को इन सब घटनाओं में भारत की भीषण असहायता प्रतीत हुए बिना न रहेगी। हिन्दुस्तान में जो सत्याग्रह होते हैं वे वीरों के, बहादुरों के, रणबांकुरों के सत्याग्रह नहीं हैं वह तो लाचारी और विवशता की उद्वेग-जनित ज़िद या हठ है। वह विवशता, अज्ञान और तमोगुण से लबालब है।

भारत में जो सत्याग्रही वर्तमान हैं वे सावित आंखों वाले सत्याग्रही नहीं हैं; अन्ध सत्याग्रही हैं। वे फल प्राप्ति के कायल हैं, सिद्धान्त के नहीं। उन्हें स्वराज्य से मतलब है, अहिंसा और सत्य की कोई परवाह नहीं। गांधी जी ने भारत में सत्याग्रह का नया तरीका प्रचलित किया, लेकिन आज तो यही कहना पड़ेगा कि दरअसल सत्याग्रह का स्वांग करने वालों ने गांधी जी की शक्ति से लाभ उठाया। जनता और उसके नेताओं ने गांधीजी को स्वराज्य के आन्दोलन का साधन बना लिया। भारत के लोग गांधी जी के अहिंसात्मक प्रयोगों के साधन नहीं बने। स्वराज्य अहिंसा का साधन बनने के बदले अहिंसा ही स्वराज्य का साधन बनाई गयी।

यदि सच देखा जाय, तो गांधी जी अहिंसा की अंगूठी में स्वराज्य का नग जड़ना चाहते हैं। अहिंसा-रहित स्वराज्य वे नहीं चाहते। अहिंसामय स्वराज्य ही उनके मत में वास्तविक स्वराज्य है। अहिंसा का मूल्य स्वराज्य से कहीं अधिक है। इस श्रेष्ठ मूल्य को स्वराज्य का साधन बनाना, मानो मूल्यों के तारतम्य-भाव को भुला देना है। परन्तु अहिंसा गांधी जी का अपना व्यक्तिगत और सार्वजनिक साध्य होते हुये भी भारतीय जनता और उसके अधिकांश नेताओं का साध्य स्वराज्य से अधिक श्रेष्ठ नहीं है। उस मर्यादा तक हिन्दुस्तान की नैतिक उन्नति नहीं हुई है, भारतीय जनता की आकांक्षा स्वराज्य से ऊपर नहीं उठ सकी है।

भारत में जो ज़बरदस्त राजनैतिक आन्दोलन हुए, वे अहिंसा से प्रेरित हो कर या उसकी सिद्धि के नहीं हुये। अपने मन के मन्दिर में अहिंसा और सत्यरूपी अन्तिम मूल्यों को जनता या उसके नेताओं ने प्रतिष्ठित नहीं किया है। हमने अपने हृदय-मन्दिर में इन प्रतिमाओं की पूजा नहीं की। जनता और उसके नेताओं को केवल इतनी ही चिन्ता है कि सत्याग्रह, निःशस्त्र प्रतीकार असहयोग और सविनयभंग, आदि साधनों से स्वराज्य कहां तक निकट आता है। वे तो अहिंसा को स्वराज्य की कसौटी पर कसते हैं। उनकी मनोभूमिका इससे उच्च नहीं है। जनता या उसके नेताओं ने इस बात का ज्ञान बीन किञ्चित ही की होगी कि अहिंसा के मार्ग पर हम कितने अग्रसर हुये हैं। ख़ुद गांधी जी के अनुयायी भी इस बात का अहर्निश आग्रहपूर्वक नापतौल का प्रयत्न करते नहीं पाये जाते कि हमने अहिंसा की दिशा में कितनी प्रगति की है और हम इस नैतिक शस्त्र को बरतने के कहां तक योग्य हुये हैं। कारण, भारतीय देश भक्तों पर अहिंसा की धुन सवार नहीं है। अधिक-से-अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि कुछ महात्माओं पर स्वराज्य की धुन सवार है। अहिंसा का ज्ञान युक्त निष्ठा में इतनी शक्ति अवश्य है कि उसकी आराधना से अनेक सद्गुणों का विकास अनायास हो ही। किन्तु पिछले बीस वर्षों में या एक पीढ़ी में सत्य और अहिंसा का सतत उद्घोष होने पर भी कोई यह नहीं कह सकता कि हिन्दुस्तान में सात्विक और सद्गुणी व्यक्तियों की अविच्छिन्न शृङ्खला बन गयी हो।

[शेष अगले अंक में]

छुट्टी की सूचना—

'गुरुकुल' का ११ अक्टूबर का अंक 'आयुर्वेदांक' विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। प्रतिवर्ष की तरह इसमें अगले अंक का—जो १८ अक्टूबर को प्रकाशित होने को था—अवकाश रहेगा। पाठक इस बात को नोट करलें।

गु रु कु ल

१९ आश्विन शुक्रवार १९९७

विजय प्रयाण

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

'विजय हमेशा राम की होती है, रावण की नहीं; इस लिये जो विजय प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें राम की लीला करनी चाहिये रावण-लीला नहीं।' यही है एक संदेश जिसे भारतवासियों को फिर फिर सुनाने के लिये विजया-दशमी नित्य नये रूप में प्रति वर्ष आती है।

तो यदि विजय की तैयारी करनी है तो आज से राम की लीला के मार्ग पर चल देना प्रारम्भ कर देना होगा। विजय तो अवश्य मिलेगी ही, वह तो एक दिन आने ही वाली है, पर उस शुभ दिन के आने से पहले वर्षों तक तुम्हें दुःख दरिद्रता बेबसी अज्ञानान्धकार के कारण भयंकर बने हुए, सघन बसे हुए भारतीय ग्रामोंरूपी जंगलों में भटकना होगा। वहीं से तुम्हें 'पुराने ढर्रे का' सब लड़ाई का सामान जुटाना होगा। रावण के बस में आये हुए लोग तुम्हें इस तपस्या और तैयारी में विघ्न डालेंगे, तुम पर हंसेंगे, तुम्हें पागल कहेंगे। तुम्हें शाबासी देने वाले थोड़े ही रामभक्त मिलेंगे। पर राम की लीला तो यही है। इसके विपरीत राक्षसी रावण लीला तो, देखो, आज जोरों पर चल रही है। देश की इस दुर्दशा के समय में भी अन्य सब की तरफ से आंखें मींचकर अपने लिये धन कमाया जा रहा है और भोग भोगे जा रहे हैं। जो धन, बल, ज्ञान में निर्बल हैं उनकी इस निर्बलता का लाभ उठा कर और अपने पास जो जरा सी धन शक्ति और विद्या है उसका दुरुपयोग कर करके निर्बलों का निरन्तर शोषण किया जा रहा है या उनके शोषण में हाथ बटाया जा रहा है। दम्भ, छल, कपट, हिंसा और क्रूरता का नग्न नृत्य हो रहा है। पर यह सब भयंकर रावण की लीला तभी तक है जब तक कि राम की बनवास की तपस्या पूरी नहीं हो जाती। उसके बाद तो कुछ ही दिनों में सांप्रदायिकता और संकुचित देशभक्ति के भी समुद्रों को पार कर पराधीनता की लंका का ध्वंस कर शोषण के रावण का अन्त कर दिया जायगा और राम की विजय होगी।

तो उठो, आज से ही राम की कठिन किन्तु मंगलमयी लीला का प्रारम्भ करो, आज के शुभ महूर्त में ही इस विजय के लिये प्रयाण कर दो।

जीवन-साहित्य का एक उपेक्षित अङ्ग

[लेखक—श्री पं० सत्यव्रत विद्यालंकार]

लेखक का, कवि का, साहित्यकार का अपनी रचना के आधारस्तम्भ कथानक, घटना, और चरित्रनायक के साथ आत्मसात् हो जाना ही साहित्य में सजीवता, प्राणशक्ति और अमरता पैदा कर सकता है। 'रामचरितमानस' ही को ले लें, जो आज देश में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है और जिस में जनता को एक अद्भुत आकर्षण, अद्वितीय मनो-मोहकता और अमर आत्मीयता मिली है। उसका मुख्य रहस्य यही है कि 'मानस' की रचना के पूर्व 'मानसकार' ने उसके हार्द के साथ अपने को आत्मसात् कर दिया। उसमें असली जीवन-शक्ति आई है उस अनुशीलन, मनन और साधन से, जिसे हम भक्ति कह कर उपेक्षित कर देते हैं—उसमें कल्पना या भावनाओं का ही वैभव नहीं है, वरन उसमें एक अनुभूति है, जिसमें भावना और कल्पना के मनके पिरोये गये हैं। यह अनुभूति तुलसी में न होती तो उनकी रचना में हृदय को बलवान और मस्तिष्क को तेजस्वी बनाने का सामर्थ्य भी न होता, आज 'मानस' लाखों करोड़ों के लिए स्फूर्ति का पुंज न होता। आत्मसात् करने का ही नाम स्वानुभूति है। इस दृष्टि से 'मानस' लोकोत्तर ग्रन्थ है और उसकी लोकोत्तर लोकप्रियता का यही प्रधान रहस्य है।

यह स्वानुभूति जिस साहित्य में नहीं है, वह दूसरों को अनुप्राणित नहीं कर सकता। मदारी के खेल के समान उसके बिना की गई रचना अवास्तविक सृष्टि है, जो कुछ समय के लिए ही विनोद, आमोद या मनोरञ्जन का साधन बन सकती है। उससे व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र के निर्माण के लिए कोई ठोस या स्थिर सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती।

हमारे समाज की रचना का आधार वैदिक दृष्टि से 'यज्ञ' या 'होम' की जो भावना है, उसका सीधा-सादा अर्थ अपने व्यक्तित्व को समष्टि के लिए उत्सर्ग कर देना है। वेदान्त की व्यवहारिकता भी इसी भावना में निहित है। दिया यदि अपने तेल और बत्ती का उत्सर्ग नहीं करे, तो वह दुनिया में उजाला करने का साधन बन नहीं सकता। रत्नगर्भा पृथिवी के पेट में बीज यदि अपने को गला न दे, तो उसके गर्भ से पैदा होने वाली वनस्पति दुर्लभ हो जाय और उस पर निर्भर रहने वाले प्राणियों का जीवन दूभर हो जाय। लेखक या साहित्यिक के पास उत्सर्ग करने के लिए क्या है? शब्द-कोष, शब्द-प्रयोग, पद योजना, वाक्य-रचना, प्रबन्ध-शैली, भाषा-लालित्य रस-माधुर्य, अलंकार-सौन्दर्य, दृश्य-वर्णन, चरित्र-चित्रण, भाव-अभिव्यक्ति और प्रतिभा एवं भावुकता के चमत्कार आदि से प्रगट होने वाला काव्य-कौशल साहित्य का केवल स्थूल शरीर है। लेखक, कवि या साहित्यिक उसमें स्वानुभूति से ही उस आत्मा की प्रतिष्ठा कर सकता है, जो उसमें दीप्ति,

चेतना और जीवन पैदा करके दूसरों के लिए उसे चुम्बक बना देती है। इस स्वानुभूति के रूप में ही वह दूसरों के लिए अपना उत्सर्ग करता है और समाज की रचना तथा राष्ट्र के निर्माण के महान् कार्य में योगदान करता हुआ अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है। बिना इसके कुम्हारों के घड़ों की तरह पोथियों को तैयार करते जाना किसी भी महान् उद्देश्य या आदर्श की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकता।

लेखक व साहित्यिक के आत्मसात और स्वानुभूति की दृष्टि से सर्वोत्तम साहित्य का एक सुन्दर अंग 'पत्र साहित्य' है, उसकी ओर हम लोगों का अभी ध्यान ही नहीं गया। दूसरी भाषाओं में इस साहित्य का अच्छा सम्मान है। वह आदर की दृष्टि से देखा जाता है और बहुत चाव से पढ़ा जाता है। कुशल क्षेम के पत्रों तक में उनको लिखने वाला जैसे अपना दिल खोलकर रख देता है, वैसे ही किसी महान् मिशन, लक्ष्य, उद्देश्य अथवा आदर्श की पूर्ति में लगे हुए महापुरुषों के पत्रों में भी उनके हृदय की असली छाप अंकित हो जाती है। मुझे इसकी प्रतीति सब से पहले तब हुई, जब मैं स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जीवनी लिखने में लगा हुआ था। उनके कागजों की छान-बीन करने से कुछ ऐसा पता चला कि अपने सब पत्रों की नकल रखना उनका स्वभाव-सा बन गया था। अपने सब पत्रों के जवाब का मसविदा वे स्वयं अपने हाथों से तय्यार किया करते थे। उनका क्लर्क उसकी नकल करके डाक में छोड़ देता था और वह मौलिक मसविदा फाइल में पिरो दिया जाता था। उनके इस प्रकार संभाल कर रक्खे हुए बहुत पुराने पत्र-व्यवहार को पढ़ने का उस समय अवसर मिला और मैंने यह अनुभव किया कि उनके अन्तरात्मा की ध्वनि उन पत्रों में बराबर गूंज रही थी और उनके हृदय का असली चित्र उनमें झलक रहा था। अफ्रीका से गांधी जी के साथ हुआ उनका पत्र-व्यवहार, राजर्षि गोखले के साथ हुई उनकी चिट्ठी पत्री और ऐसे ही कुछ और पत्र भी कितने बोध-प्रद प्रतीत हुए। दीनबन्धु एण्ड्रूज के साथ हुआ पत्र व्यवहार तो एक छोटी-सी पुस्तिका बन सकता है और उसमें दो महापुरुषों की जागती व उठती हुई आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। 'जागती व उठती' शब्द मैंने इसलिए कहे कि उस समय न तो एण्ड्रूज 'दीनबन्धु' बने थे और न मुन्शीराम जी 'स्वामी श्रद्धानन्द' बन पाये थे। दो उठती हुई आत्माओं ने 'महान' पद के शिखर पर पहुँचने के लिए अन्धकार में एक दूसरे के लिए सहायक होकर जो रास्ता टटोला था, उसका सजीव चित्र उनके उन पत्रों में अंकित है। 'गुरुकुल' उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य है। उससे सम्बन्ध रखने वाले पत्रों में गुरुकुल के प्रति उनकी भावना कहीं-कहीं सजीव होकर जाग उठती है। स्वामी जी के जीवन की प्रगतियां जैसे चतुर्मुखी थीं, वैसा ही उनका पत्र-व्यवहार भी है।

इस साहित्य के दो ताजे उदाहरण हम सबके सामने हैं। 'सरस्वती' के संचालकों ने आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदी के पत्रों का संकलन करने के लिए 'सरस्वती' में उन्हें प्रकाशित करना शुरू किया है। वे कितने उद्-बोधक स्फूर्ति दायक और मनोरंजक होते हैं— यह उन्हें पढ़ने वालों से छिपा नहीं होना चाहिए। 'हरिजन' या 'हरिजन-सेवक' के कालमों में एक नया शीर्षक 'डाक का थैला' इन्हीं महीनों में शुरू किया गया है। वह गांधी जी के साथ होने वाले पत्र-व्यवहार का सार्वजनिक बाजू है! उसे पढ़ने से जो स्फूर्ति, प्रेरणा एवं उत्साह मिलता और पथ प्रदर्शन होता है, वह अद्भुत है। किसी भी एक पाठक के पत्र के जवाब में लिखी गई दस-पांच पंक्तियां सैकड़ों की मानसिक शान्ति का साधन बन जाती हैं।

बात यह है कि पत्र लिखने में मनुष्य को शब्द-योजना वाक्य रचना अथवा भाषा-साहित्य आदि किसी भी दृष्टि से कुछ थोड़ी-सी भी बनावट नहीं करनी पड़ती। उसमें बिलकुल सीधी-सादी, सरल भाषा में हृदय की भावनाओं को मौलिक रूप में उतार दिया जाता है। न वहां पाठकों की रुचि का सवाल सामने होता है और न किसी को प्रसन्न करने का। किसी की आलोचना का भी कोई ख्याल सामने नहीं आता। 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' ने श्री 'सुमन' जी की एक पोथी 'भाई के पत्र' के नाम से प्रकाशित की है। वे पत्र सम्भवतः इस पोथी के लिए ही लिखे गये हैं, फिर भी उनमें अपना अनोखा सौन्दर्य है। भाई उससे बढ़िया सीख बहिन को और क्या दे सकता है? यदि कहीं मौलिक पत्र होते, तो सोने में सुगन्ध हो जाती। विवाह के अवसर पर अपने नये साथी (पत्नी) के लिए मैं किसी सुन्दर भेंट की खोज में था कि कलकत्ते में सहसा मेरे हाथ योगीराज श्री अरविन्द के वे पत्र लग गये, जो उन्होंने सम्भवतः पहली जेल-यात्रा का अवसर उपस्थित होने पर अपनी सहधर्मिणी को लिखे थे। मैंने कुछ पत्रों की उस पुस्तिका के सिवा कोई और उपहार अपने विवाह में अपने हाथों से अपने नये साथी को नहीं दिया। मुझे खुले शब्दों में अभिमान व गौरव के साथ यह स्वीकार करना चाहिए कि हम दोनों में विद्यमान साधारण सी राष्ट्रीयता को उत्तरोत्तर बढ़ाने में उन पत्रों से यथेष्ट बल मिला है।

महापुरुषों के पत्र वस्तुतः उनकी अनुभूतियों के चित्र ही तो होते हैं। महापुरुषों के छाया चित्रों एवं चरित्रों से मिलने वाली स्फूर्ति से कहीं अधिक प्रेरणा इन भावना चित्रों से मिल सकती है। लेकिन हिन्दी में ऐसे उपयोगी साहित्य का प्रायः अभाव है। उसे 'अत्यन्ताभाव' कहना भी कोई अत्युक्ति नहीं। चरित-चित्रण सम्बन्धी जीवन साहित्य का हिन्दी साहित्य में अभी विकास हुआ ही नहीं। 'पत्र साहित्य' जीवन साहित्य का ऐसा अंग है कि उसके बिना उसका पनपना जरा मुश्किल जान पड़ता है। लेकिन उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। जीवन-प्रेरक शक्ति और स्फूर्ति के पुञ्ज इस साहित्य की ओर भी जीवन साहित्य के निर्माताओं का ध्यान जरूर जाना चाहिए।"

पिण्डारी ग्लेशियर

(ले० श्री ब्र० अमरसिंह जी)

काश्मीर से दार्जिलिङ्ग तक सुविस्तृत हिमालय में प्रकृति नटी की अनेकों गुप्त रङ्गभूमियां ऐसी हैं जिनके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं। पिण्डारी ग्लेशियर भी इनमें से एक है। कुमाऊं प्रदेश के अन्तस्तल में, विश्व विख्यात नन्दा देवी की उपत्यका में, पार्वत्य पुष्पों की महक से सुवासित पिण्डारी ग्लेशियर परम नयनाभिराम है। किसी ऊंचे स्थल से देखने पर इस घाटी की जो शोभा नज़र आती है वह लेखनी का विषय नहीं, बल्कि स्वयं प्रत्यक्ष करने की वस्तु है। अगस्त-सितम्बर मास में जिसने भी यह नज़ारा एक बार देख लिया, वह जीवन भर उसे भूल नहीं सकता। इस छोटे से प्रदेश में ईश्वर ने इतनी रमणीयता न जाने कहां कहां से लाकर एकत्र की है। देखते हुए शरीर पुलकित हो उठता है, मारे आनन्द के नशा सा आने लगता है और उस नटाधिराज का शत-शत धन्यवाद किये बिना जी नहीं मानता जिसकी इस कला में उसकी अपनी ही सुन्दरता अभिव्यक्त हो रही है।

कहना न होगा कि पिण्डारी जाने की हमारी इच्छा बहुत दिनों से थी और इसके लिये कुछ समय पूर्व से हम तैय्यारी भी कर चुके थे। गत २५ अगस्त को श्री आचार्य जी और मुख्याधिष्ठाता जी की अनुमति लेकर हम गुरुकुल कांगड़ी के १२ विद्यार्थी गन्तव्य मार्ग की ओर चल पड़े। गर्मी के दिन और देहरा-हावड़ा एक्सप्रेस में भीड़, कुछ मत पूछिये। राम-राम जपते बरेली पहुँचे और छोटी लाइन की गाड़ी पर सवार होकर १० बजे काठगोदाम जा पहुंचे। काठगोदाम उस ओर रेल का अन्तिम स्टेशन है। यहां से आगे हिमालय की श्रेणियां सीढ़ियों की तरह ऊंची ऊंची होती हुई तिब्बत तक चली गई हैं। यहां से अलमोड़ा की दूरी ५० मील और नैनीताल ११ मील है। पहाड़ की तराई होने के कारण काठगोदाम में गर्मी अधिक पड़ती है। बरसात में मलेरिया भी खूब जोर से फैलता है।

काठगोदाम में अधिक देर तक ठहरना हमें पसन्द नहीं था इस लिये समीपवर्ती नदी के शीतल जल में स्नान करने के बाद कुछ खा-पीकर हमने अलमोड़ा की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि नैनीताल-जिसके स्वर्गीय दृश्यों की तस्वीरें हम हर एक स्टेशन पर देखते आ रहे थे—समीप ही था, पर हमने यात्रा के कठोर अंश को पहले पार करके अन्त में लौटते समय नैनीताल जाने का विचार किया और आगे बढ़ चले। १० मील की कठोर चढ़ाई चढ़ कर भुवाली पहुंचे। सूर्य की खिलखिलाती धूप और पार्वत्य-ताज़ी शीतल हवाओं का आनन्द यहां खूब मिलता है। मैदानों के गरम वातावरण से तंग आकर जो लोग यहां पहुँचते हैं उन्हें जो तबियत की ताज़गी प्राप्त होती है उसे एक मूक भोगी ही जान सकता है। यहां का तपेदिक का हस्पताल भारत भर में विख्यात है। हिन्दुस्तान के कोने २ से तपेदिक के रोगी यहां स्वास्थ्य लाभ करने आते हैं। कुछ विश्राम करने के बाद हमने भली प्रकार से इस हस्पताल को देखा। यहां और आसपास के वन-पर्वतों में हजारों चीड़ के वृक्ष अपनी 'मरमर' ध्वनि से रोगियों को ज़िन्दगी दान देते हैं। शायद 'मर-मर' कहने से रोगियों में रोग विनाशिनी प्रतिक्रिया (Reaction) पैदा होती है और वे शीघ्र ही सबल और नीरोग होने लगते हैं। हस्पताल के कर्मचारियों ने हमें गुरुकुल कांगड़ी से आया जान कर सम्मान के साथ, अच्छी प्रकार से सारे रोगी गृह, रोगियों की चिकित्सा पद्धति, पद्धति में नए सुधार, कुछ परीक्षण आदि व्याख्या करके समझाये। हस्पताल में सफाई करने के लिए प्रथम तो प्रकृति की सेविकाएं धूप हवा वर्षा आदि बहुत कुछ कार्य करती हैं फिर भी यहां सफाई आदि का सारा प्रबन्ध बहुत उत्तम है। हिन्दुस्तानियों के वार्ड से यूरोपियनों का वार्ड कहीं बेहतर है। यहां से उतर कर रामगढ़ की ओर चले।

रामगढ़ स्थान छोटा होते हुए भी आर्य जगत में पर्याप्त मशहूर है। त्याग मूर्ति श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का प्रसिद्ध योगाश्रम यहीं है। स्वामी जी के भक्त व श्रद्धालु सज्जन बड़ी दूर २ से दर्शनार्थ यहां आते हैं। यहां हमारे गुरुकुल के अनेक संरक्षक सज्जनों के मिल जाने से किसी बात की कोई तकलीफ नहीं हुई।

अल्मोड़ा के मार्ग में मुक्तेश्वर दर्शनीय स्थान है। यहां पर तपेदिक आदि सैकड़ों बीमारियों के कीटाणुओं के परीक्षण के लिए एक बड़ी रसायनशाला है। पर्वत की चोटी पर सघन कुञ्जों में आबाद यह बस्ती विशेष चित्ताकर्षक है। यहां से अल्मोड़ा तक जाने के लिये एक साधारण रास्ता है।

अल्मोड़ा, कुमाऊँ (कुर्माञ्चल) का समृद्धि शाली नगर है। न सिर्फ मकानों और होटलों की दृष्टि से बल्कि आबो-हवा और प्राकृतिक दृश्यों की दृष्टि से भी। सुमित्रानन्दन पन्त का छायावाद यहां के वृक्षों के धीरे २ कटते जाने के कारण प्रकाश से आबाद हो रहा है। अब उनकी कविता, छाया का पुतला छोड़ चुकी है। नृत्याचार्य उदयशङ्कर की नाट्यशाला देवदारुओं के कुञ्जों में परम रमणीक बनी है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर को अलमोड़ा के सर्वोच्च शिखर (Snow View) पर निवास करना बहुत पसन्द है। ईश्वर उन्हें शीघ्र नीरोग करें।

अल्मोड़ा में दो दिन विश्राम और भार उठानेवाले खच्चरों का प्रबन्ध करके बागेश्वर की ओर चले। यहां से पिण्डारी ग्लेशियर ७५ मील है। लम्बे २ देवदारु वृक्षों को चीरती हुई सड़क, नागिन सी बल खाती चली गई है। शीतल हवा के झोंके खाते और हरियाली को नेत्रों से पीते हुए तबियत में वह मादकता छाई कि १६ मील चल चुकने पर भी किंचित् थकावट महसूस नहीं हुई। बागेश्वर पहुंच कर हम ने मन्दिर में आकर डेरा डाल दिया। ठहरने के लिए यहां सबसे खुली और हवादार यही जगह मालूम हुई। मंदिर की सीढ़ियों को धोती हुई सरयू नदी गर्जन-तर्जन के साथ बह रही थी। दूसरी ओर से गोमती नदी, सरयू से मिल कर आनन्द की उमङ्गों को प्रकट कर रही थी। दो बहनों के मिलन का कितना मनमोहक दृश्य था।

बागेश्वर से कफकोट १४ मील है। ५ मील के बाद एक रास्ता कैलाश मानसरोवर की ओर जाता है और दूसरा नाले के साथ २ पिण्डारी ग्लेशियर की ओर। हमने नाले के सहारे २ ग्लेशियर की ओर चढ़ना प्रारम्भ किया। सड़क तंग थी। दिन के दस बजेका समय था; धूप निकली हुई थी और हर-हर करती हवा श्रम-सीकर को हर रही थी। ज्यों २ आगे बढ़ते गए जंगल में नीरवता और स्तब्धता का साम्राज्य बढ़ता गया। पक्षियों का कलरव शान्त था, मनुष्य की कहीं गन्ध भी नहीं मिलती थी। हराभरा विशाल जंगल आकाश के सूने आवरण से ढका हुआ था। झरनों का गम्भीर अनहतनाद एकान्त का प्रियसंगीत सुना रहा था। दूर, नन्दा देवी का गगन भेदी २६०००फीट ऊंचा शिखर दोपहर की धूप में चमचमा रहा था। इस नीरवता में वन की लावण्य-श्री मुस्करा रही थी, सरिताएं हर्ष की किलकारी भर रही थीं। चारों ओर खुशी और उन्माद छा रहा था।

अचानक बादल आ घिरे, शायद इन्हें हमारा सुख सह्य नहीं हुआ। अथवा 'सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख' इस फिलासफी को समझाने के लिए ही ये आए थे। लगे कड़क-कड़क कर बरसने ? हमने दौड़कर पर्वत कन्दरा की शरण ली और शीत-पानी से बच गए। इन पर्वतों में बड़ी २ कन्दरायें देखने में आईं जिनमें पूरी की पूरी बरात मजे में रात बिता सकती है।

क्योंकि ओढ़ने बिछाने का सामान हम बहुत कम ले गए थे— १ कम्बल और २ चादरें— इस लिये सर्दी सहकर तपस्या करने का हमें अच्छा अभ्यास होगया था। डाक बंगलों में रात का पड़ाव करते ३ दिनबाद फुरकिया पहुंचे। इस यात्रा में शायद ही कभी कोई ऐसा दिन आया होगा जिस दिन दोनों समय रोटी मिली हो। इन यात्राओं में चने और सत्तू में ही वह स्वाद आता था जो मोहनभोग में नहीं।

अस्तु;

फुरकिया से ग्लेशियर कुछ-एक मील के फासले पर ही है। हम खूब तड़के ३ बजे उठकर चल पड़े किन्तु अन्धेरे में मीलों भटक गये। सूर्य निकलने पर असली रास्ते में जाने के लिए हमें फिर वहीं आना पड़ा जहां से हम चले थे। अपनी नासमझी पर बड़ी हंसी आई। जब ग्लेशियर पर चढ़ते हुए हम आगे चले तो बड़ा डर मालूम हुआ। पचास-पचास साठ-साठ फीटी मोटी बरफ की तह ५ मील तक जमी हुई थी—जिसमें जगह २ लम्बी २ दरारें पड़ी हुई थीं। कई जगह बरफ की पर्त बहुत हलकी थी। यदि पैर रखते ही बर्फ फट जाय और कोई अंधेरी दरार में धंस जाय तो मौजूदा जमाने में विज्ञान के पास ऐसा कोई साधन नहीं जो मृत्यु के मुख से निकल सके। थोड़ी२ देर में तोप छूटने का सा शब्द सुनाई देता था और पहाड़ पर से पिघल कर बड़े २ बरफ के ढोंके तराई में गिर रहे थे। यदि लपेट में कोई मनुष्य आजाय तो चट्टान के नीचे चींटी की तरह पिस जाय। हमने अपने अन्दर की सारी शक्ति और हिम्मत बटोरी और फूंक २ कर, एक २ कदम रखते हुए पहाड़ पर चढ़े। यहां से सम्पूर्ण घाटी का और नन्दा-देवी का जो दृश्य दीखता है वह अवर्णनीय है। चंचल हिम चारों ओर बिखरा हुआ है जिसमें से धीरे २ पानी की बूंदें पिघल २ कर द्रवित हो रही हैं। १३ हजार फीट ऊंचे इस विशुद्ध वातावरण में पवित्र-मन से अनेकों प्रकार की बड़ी २ उमंगें प्रकट होती हैं। शायद इसी कारण हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को हिमालय इतना प्यारा था। हमारे उपनिषदों, आरण्यकों और शास्त्रों की जन्मभूमि हिमालय के ये ही प्रदेश हैं, यह बात यहां पहुंचने पर अनुभव के द्वारा सत्य प्रतीत होती है।

हिमालय के उन्नत भाल नन्दा देवी को नमस्कार करके हम लौट चले। इसकी ऊंची चोटियां हमें आशीर्वाद देती हुई—यह कहती प्रतीत होती थीं:—"भारत माता के सपूतो! यदि संसार में अपना मस्तक ऊंचा रखना चाहते हो तो त्याग-तपस्या के आदर्श को अपनाकर अपनी लगन पर दृढ़ रहना सीखो।"

गुरुकुल समाचार

गुरुकुल के १२ विद्यार्थियों का एक दल भ्रमणार्थ ७ दिन के लिए मसूरी गया है। इस दल में अधिकतर वे विद्यार्थी हैं जो सब तरह की खेलों में विशेष रुचि रखते हैं। आशा की जाती है कि यह दल रास्ते में प्रचार के साथ २ अपने हस्तलाघव का भी अच्छा परिचय देता जायगा।

गुरुकुल में इमारतों का काम पूर्ववत् जारी है। आयुर्वेद महाविद्यालय भवन के साथ २ वेद व कला महाविद्यालय भवन बनाने का काम भी शुरू कर दिया गया है। नींव में पत्थरों की कुटाई जारी है। उदार दानी महानुभावों को इस पवित्र लक्ष्य के लिये दान करने का अच्छा अवसर हाथ आया है। आशा है दानी सज्जन शीघ्र से शीघ्र योग्य सहायता देकर जहां अपना नाम व यश स्थाई बनायेंगे वहां विद्यादान के पवित्र कार्य में सहायता देकर अक्षय पुण्य के भी भागी होंगे।

नयी धर्मशाला— गुरुकुल में बाहर से आकर ठहरने वाले सज्जनों की सुविधा के लिए चौथी धर्मशाला बनकर तैयार होगई है। आशा है यदि दानी लोग इस दिशा में उचित ध्यान देंगे तो शीघ्र ही और भी धर्मशालाएं बन सकेंगी और इस सम्बन्ध में हम बहुत कुछ सुधार कर सकेंगे।

गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० रामेश्वर २य श्रेणी विषमज्वर, ब्र० प्रेमस्वरूप ३य श्रेणी विषमज्वर, ब्र० राजकिशोर ३य श्रेणी विषमज्वर, ब्र० रामचन्द्र ३य श्रेणी विषमज्वर, ब्र० सत्यदेव १२वी श्रेणी विषमज्वर, धर्मवीर १२वी श्रेणी विषमज्वर, ब्र० सुभाषचन्द्र १ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० सर्वमित्र ३य श्लेष्मज्वर, ब्र० सोमदत्त २य श्रेणी आन्त्रज्वर, ब्र० दमनेशकुमार २य नेत्ररोग, ब्र० देशबन्धु २य श्रेणी फोड़ा।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

आयुर्वेदांक
लकी नंबर
LUCKY NO
रजि० नं० ए २६२७

वर्ष ४]
सम्पादक
साहित्यरत्न पण्डित हरिवंश वेदालंकार
[संख्या २६

शुक्रवार ३ कार्तिक सं० १९९७ वि०; ता० १८ अक्तूबर १९४०

☞ इस अङ्क को सम्भाल कर रखिए इस मे आपको ५०) तक नकद मिल सकते हैं पूरा– विवरण पृष्ठ २१ पर देखिए–

विजयादशमी

[क—साहित्यरत्न पं० हरिवंश जी वेदालङ्कार शास्त्री काव्यतीर्थ विद्यारत्न गुरुकुल कांगड़ी]

विजयादशमी हिन्दुओं का सब से बड़ा ...र है। यह पर्व, शरद ऋतु के प्रारम्भ ...तिवर्ष आता है। आज के दिन यह ...सब एक वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद ...र समय पुनः आ उपस्थित हुआ है। ...ते नदी अपने शस्य श्यामल नवीन हरित-...न को पहिन कर हमारी आंखों के ...पिरक रही है। वर्षा से धुले हुए वृक्ष-...रियां और वन पर्वत कितने भले मालूम ...हैं। मेघों से हीन निर्मल आकाश और ...ओर फूले हुए श्वेत काम-कुसुमों का ...ल हास कितना चित्ताकर्षक है। ...रों में प्रफुल्ल कमलों पर भौंरों की ...और सरिताओं के मोती जैसे स्वच्छ ...जल में हंस-कारण्डव प्रभृति पक्षियों ...मस्त विहार, कैसा हृदयाह्लादक है! ...हुए हर्षातिरेक से शरीर पर रोमांच हो ...है। अपने चारों ओर नव जीवन, ...नता, नवस्फूर्ति, नवजागृति और नई-नई ...नजर आरही हैं।

...विजयादशमी शक्ति की पूजा का, बल की ...ना का त्यौहार है। कहते हैं कि ...के दिन लाखों वर्ष पूर्व मर्यादा ...म भगवान रामचन्द्र जी ने दुष्टों के ...लंकापति रावण पर विजय प्राप्त की ...तेज की प्रतिमूर्ति दुर्गा ने भी इसी ...हादुर्धर्ष महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ, ...मुण्ड आदि अत्याचारी दैत्यों का वध ...था। तभी से इस पर्व को हिन्दु ...ड़ी तैयारी के साथ प्रति वर्ष मनाती ...। दशहरा आने से महीनों पूर्व से ...रत के स्वांग के रूप में रामलीले की ...शुरू हो जाती हैं। इन दिनों में ...छोटे बड़े सभी शहरों में भगवान् ...पवित्र नाम पर नाना प्रकार के राग-...माते हैं; जुए का बाज़ार गर्म होता ...एं नाचती हैं और इस प्रकार हमारे राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाने वाली सारी शक्ति आमोद-प्रमोद में बर्बाद हो जाती है।

कहां विजयादशमी का बल-ओज प्राप्त करने का यह महान् पर्व और कहां जाति के जड़ को खोखला करने वाले ये अनाचार! इस दिन के आने पर तो हमारे अन्दर ऐसी अग्नि प्रकट होनी चाहिये जो समस्त विकारों को जलाकर खाक कर दे। न सिर्फ अपने अन्दर के विकारों को ही नष्ट करे बल्कि दीन-दुनिया में फैले हुए सैकड़ों प्रकार के अनाचार, पाप और अनीति को भी मिटा कर उनका नाम निशान तक बाकी न रहने दे। ऐसी उत्कट भावना आज के दिन हमारे अन्दर अवश्य उठनी चाहिये।

किन्तु शोक का विषय है कि आज के दिन शक्ति-संचय करने के बदले हम अपने देश की शक्ति का अपव्यय करने की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। यह ठीक है कि आज हमारा देश स्वाधीन नहीं है, पर फिर भी हम संगठन के द्वारा बहुत कुछ कर सकते हैं। आज के दिन राम का नाम लेकर हमें अपनी खोई हुई शक्ति को बटोरने में लग जाना चाहिये। रामचन्द्र जी ने भी जंगलों की अल्प शक्ति वाली वानर, भालू आदि जातियों का संगठन करके वह शक्ति प्राप्त की थी जिससे लंका जैसे सुदृढ़ दुर्ग को जीता था। यदि हमने अपने अन्दर के दुर्गुणों पर विजय पा ली है और हाथ में सत्य निष्ठा, आत्म-संयम, बुद्धि विवेक की ध्वजा थाम ली है तो निश्चय है हमें नष्ट करने वाला इस पृथिवी पर कोई नहीं है। किन्तु यदि हम राम-चरित को इसी प्रकार दुर्गति करते रहेंगे तो हिन्दू जाति के नाश के दिन अब दूर नहीं हैं। राम तो अपने उज्ज्वल चरित्र के कारण संसार में सदा अमर रहेंगे। किन्तु ऐसे अनर्थ करती हुई हिन्दू जाति एक दिन दुनियां से अवश्य विदाई ले लेगी और हमारी इस अनमोल निधि 'रामायण' को पृथिवी-मण्डल की अन्य जातियां प्रतिष्ठा के साथ सगर्व अपनावेंगी।

तो आज के दिन क्या करना चाहिये, क्या हमने इस पर भली भांति सोचा-विचारा है। आइये, हम सब मिलकर विचार करें। संसार की सब जातियां परस्पर प्रतिस्पर्धा में आकर उन्नति-शिखर की ओर बड़े वेग से बढ़ती जा रही है। सन् ४० की इस नाजुक परिस्थिति में भी हम पूर्ववत् ही गफलत की नींद में सोए रहें, यह किसे मंजूर होगा। इस दिन हम अपने वैय्यक्तिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में आए सब मलों को दूर करके शुद्ध पवित्र हो जायं। आज के दिन कागज के बने रावण के पुतले को न जला कर, हम अपने अन्दर के वास्तविक दुश्मन लोभ, मोह, मत्सर्य, जातीय-विद्वेष और पतन की ओर ले जाने वाली दुष्टमनोवृत्तियों को जलावें। कर्मनिष्ठ और उद्योग शील बनें। मन्दिरों में बकरों और भैंसों की बलि देना बन्द करके अपने मनों में घर किए हुए ऐश—आराम और भोग-विलास की बलि दें। आत्मोत्सर्ग, आत्म त्याग, ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या, व्रत अनुष्ठान की दीक्षा लें। अपने हृदयों में धार्मिक संयम की भावना जागृत करें, बुराइयों को दूर करके अपनी पवित्र प्राचीन-संस्कृति की रक्षा करें। हम उस समय के आर्यों के चरित्र से अपने अन्दर असीम साहस लावें, पापों-अत्याचारों का दलन करने की प्रखर भावना मन में उत्पन्न करें, और उन अदम्य विजया-कांक्षाओं का हृदय में आह्वान करें जिनसे कोई राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुंचता है।

इसलिये आज विजयादशमी के दिन यदि हम अपने मन से रस-रंगों को छोड़ कर शक्ति-संचय करेंगे, अपने अन्दर क्षात्र-भावना को जागृत करेंगे, बुराइयों और कुरी-तियों के प्रति हृदय में घोर विरोध की भावना जाग्रत करेंगे तो वे दिन अब दूर नहीं जब हमारा देश भी उन्नति की ओर तेजी से प्रगति करने लगेगा और तब हम खुले दिल से कह सकेंगे कि विजया दशमी का मनाना हमारे लिए सार्थक हुआ।

केश (बाल) और उन की रक्षा

क्या सफेद बाल काले किये जा सकते हैं ?

(लेखक श्री प्रो०. एफ़. सी. मेहन, एम. एस सी (आ स) इण्डस्ट्रीयल कैमेस्ट्र व प्राक्टेसर रसायन गुरुकुल विश्वविद्यालय)

नोट:— यह लेख कापी राइट है अतः कोई महानुभाव नकल करने का यत्न न करें।

सौन्दर्य छिप नहीं पाता। मनुष्य के शरीर का एक मुख्य भाग सिर है और यह प्रायः ढक कर भी नहीं रखा जाता इस लिये यदि यह कहा जाये कि मनुष्य के सिर का सौन्दर्य मनुष्य का सौन्दर्य है तो अनुचित नहीं होगा। एक युवक के बाल यदि किसी कारण से सफेद हो जायें या झड़ जायें तो वह कहीं अधिक आयु का एक बूढ़ा आदमी नजर आने लगता है। और यदि एक काफी उमर के बूढ़े आदमी के बाल खिजाब से काले कर दिये जायें, तो उसकी आयु कम नजर आने लगती है। और वह जवान सा लगता है, अर्थात सिर के सौन्दर्य के लिये पर्याप्त बालों का होना जरूरी है। देखें चित्र सं० १ और २

चित्र सं० १

इस चित्र में आधे सिर पर बाल तथा आधे पर गंज दिखाया गया है। गंज वाले भाग को ढांपने से यह चित्र युवक का लगता है परन्तु यदि बालों वाले भाग को ढांप दिया जावे और गंज को नंगा कर दिया जावे तो वही युवक बूढ़ा नज़र आने लगता है।

चित्र सं० २

इस चित्र में आधे सिर के बाल सफेद और आधे पर काले दिखाये गये हैं। सफेद बालों को ढक देने से यह चित्र युवक का मालूम होता है। परन्तु काले बालों वाले भाग को ढांप देने से यह युवक वृद्ध हो जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि बालों की रक्षा कैसे की जाये। जब बच्चा पैदा होता है तो उसके सिर पर लाखों की तादाद में बाल होते हैं उनकी ठीक तरह से परवाह न करने से ही वे बड़ी आयु में झड़ने लगते हैं और उनको खुराक अच्छी तरह न मिलने से ही जल्दी सफेद होने लगते हैं। सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र की सहायता से देखने से मालूम होता है कि बाल त्वचा के नीचे मांस में एक विशेष प्रकार से गड़े हुये होते हैं इनकी जड़ों में रक्तवाहिनियों से रक्त प्रवाह होता है जिससे बाल को भोजन मिलता है और उसकी वृद्धि होती है। यदि किसी कारण से यह भोजन ठीक ढंग से न मिले तो बालों की वृद्धि बन्द हो जाती है और उन में कुछ खराबियां भी आ जाती हैं। देखें चित्र सं० ३।

बाल झड़ते क्यों हैं

(१) बालों को रक्त देने वाली नाड़ियों की दीवारें कुछ कारणों से कुछ अधिक मोटी हो जाती हैं उन में से रक्त
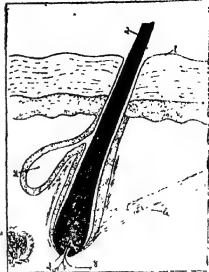
चित्र सं० ३ बाल की रचना

१—चर्म का बाहिर का हिस्सा, २—बाल, ३—बाल जड़ ४—रक्त वाहिनियां, ५—बालों को चिकना करने वाली द्रव की ग्रन्थि।

पूरी मात्रा में नहीं जा सकता इस लिये बालों की जड़ें कमजोर तथा कुछ ढीली हो जाती हैं और बाल झड़ने लगता है।

(२) बालों की जड़ों के पास कुछ ग्रन्थियां (Glands) होती हैं जिन से कि बालों को चिकना रखने वाला एक द्रव निकलता रहता है। कुछ व्यक्तियों में इस की मात्रा कम तथा कुछ में अधिक होती है। यदि अधिक निकलता हो और उसे साफ सफाई न की जाये तो बालों को कमजोर कर देता है।

(३) दाद, कोढ़ आतशक और इसी तरह की कई अन्य बीमारियां हैं जिन के कृमि बालों की जड़ों को या तो खराब कर देते हैं या उगते ही काट देते हैं। सिकरी (Dandruff) भी एक तरह की बीमारी होती है, यदि यह अधिक मात्रा में निकलती हो तो यह भी एक कारण हो सकता है।

(४) शरीर के अन्दर खाद्योज Vitamin F की कमी।

(५) खुश्क तथा अधिक सोडे वाले साबुनों का प्रयोग बालों को कुछ कमजोर करता है।

(६) कई बार किसी लम्बी बीमारी जैसे Typhoid Fever के बाद भी बाल झड़ने लगते हैं इस का कारण भी बालों की जड़ों में ठीक रक्त प्रवाह का न होना है।

(७) यदि बाल बहुत देर तक गीले रहें तो भी उन में कमजोरी आजाती

झड़ने अथवा गंजेपन का इलाज

। बाल झड़ने लगे तो एक दम ।। जरूरी है सब से पहले यह देखना के सिर में दाद आदि बीमारी तो यदि हो तो उसका इलाज किसी ।। वैद्य से तुरन्त कराना चाहिये । ो ओर ध्यान देना भी अति आव- यदि हो सके तो पोटाश से बने हुये काम में लावें, ये साबुन कुछ नरम अतः इन की टिक्की नहीं बनायी ो ये द्रव साबुन liquid soap या नाम से बिकते हैं। किसी अच्छी क काम में लाने चाहिये। गुरुकुल सोप या पाम आलिव शेम्पू साधारण ी अपेक्षा बहुत अच्छे सिद्ध हुये हैं ग्लिसरीन और कुछ कृमिनाशक ी होते हैं, ये बालों में उपस्थित ो दूर कर देते हैं परन्तु उनको नहीं करते। यदि किसी और कारण झड़ रहे हों तो उन में ये साबुन सहायक नहीं होते उस कारण को ना चाहिये। ये लिक्विड सोप बालों की वृद्धि भी करते हैं। आंवला चूर्ण १ तोला शिकाकाई चूर्ण १ तोला सायं काल १ सेर पानी में भिगो देवें प्रातः हाथ से मल कर छान लेवें इस द्रव को साबुन के स्थान पर काम में लायें। इस से बाल चमकीले और लम्बे होते हैं और झड़ने भी बन्द हो जाते हैं। बाल झड़ने को दूर करने के लिये कुछ केश तैल भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं आंवला, भांगरा, ब्राह्मी, कैन्थराडीन के तेल इस काम के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इन को लगातार काम में लाना चाहिये। गुरुकुल ब्राह्मी हेयर आयल में आंवला, भांगरा आदि के साथ ब्राह्मी भी होती है यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। कई व्यक्तियों के तो इस ने बहुत ही जल्दी बाल झड़ने बन्द कर दिये हैं। यदि बाल अधिक झड़ रहे हों तो यदि संभव हो तो सिर पर उस्तरा फिरवा कर रात को सोते समय ऊपर लिखे तेलों की मालिश करनी चाहिये। अंगुलियों के अगले भाग से सिर को अच्छी तरह दस मिनट रगड़ना चाहिये, ऐसा करने से रक्त का प्रवाह बालों की जड़ों में होता है। यदि उस्तरा न फिरवाया जा सके तो प्रतिदिन दस मिनट मालिश करके कपड़ा बांध कर सोना चाहिये। प्रातः ऊपर लिखे या अन्य किसी अच्छे साबुन से सिर को धो कर, तथा उसे सुखा कर ऊपर लिखा थोड़ा सा तेल लगा देना चाहिये ऐसे तेल काम में लाओ जिसमें खाद्योज (F vitamin) की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो। गंज बहुत बढ़ गया हो तो Ultra violet treatment, करवाना चाहिये। इससे भी रक्त प्रवाह बढ़ता है और बालों को भोजन ठीक प्रकार से मिलने लगता है। गंज के लिये Lactic acid घोल (आधा प्रतिशत) दिन में दो बार लगाने के १ घंटा बाद सिर को धो देना चाहिये। सिर धोने के लिये यदि टिक्की के साबुन भी काम में लाये जायें तो अच्छी किस्म के ही होने चाहियें।

काले बालों के सफेद होने के कारण

इस में शक नहीं कि इस विषय में और अन्वेषण (Research) की जरूरत है। पर फिर भी सौन्दर्य विशेषज्ञों की यह सम्मति है कि बाल निम्न कारणों से श्वेत होते हैं।

(१) काले बाल सूर्य के प्रकाश में ज्यादा देर रहने से श्वेत होने लगते हैं इसी

लिये कहते हैं कि धूप बालों को श्वेत करती है किन्तु जब तक बालों की जड़ों में रक्त प्रवाह ठीक तरह होता है, तब तक ये श्वेत नहीं होते। इसलिये इसका मुख्य कारण रक्त प्रवाह की कमी है। इसमें भी रक्त वाहिनियों की दीवारें मोटी तथा रक्त प्रवाह कम हो जाता है।

(२) कई बार जुकाम का भी बालों पर प्रभाव पड़ता है और श्वेत हो जाते हैं। इसके लिये जुकाम का इलाज करना चाहिये ऐसा करने से कईयों के बाल काले होते देखे गये हैं। इसके साथ पौष्टिक भोजन का खाना भी जरूरी है।

(३) बाजारी हेयर आयल—जिन में White oil की कुछ मात्रा होती है, के प्रयोग से भी बाल श्वेत हो जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि ये तेल धीरे २ उड़ता रहता है इसका असर बालों की जड़ों पर होता है।

बालों के सफेद होने का इलाज

आज कल बाल काले करने के तेलों के हाथ पर सरसों जमा कर दिखाने वाले सैंकड़ों विज्ञापन पत्र पत्रिकाओं में आते रहते हैं। हमने ऐसे बहुत से भारतीय तथा विदेशी तेलों का प्रयोग करवा कर तथा विश्लेषण करके देखा है लेकिन लिखे के बराबर कोई नहीं निकलता। सच तो यह है कि आधुनिक विज्ञान भी ऐसी औषधि नहीं निकाल सका जिससे सफेद बाल थोड़े में काले हो जायें और फिर काले ही उगें; यद्यपि बाल काला करने के अच्छे २ खिजाब बने हैं। यदि किसी तरह से सफलता हुई है तो यही कि पौष्टिक भोजन किया जाये। दवाई के तौर पर आयुर्वेद की रसायन औषधियां 'मकरध्वज, आंवला, स्वर्ण' भी इसमें लाभदायक सिद्ध हुई हैं। इनके प्रयोग से रक्त प्रवाह बढ़ता है, बालों की जड़ें मजबूत होती हैं, और बाल पुनः काले हो जाते हैं। आयुर्वेद में आंवला, आंवले का तेल और ब्राह्मी को दिमागी ताकत के लिये अच्छा समझा जाता है। परन्तु तेल का स्वरस से बना होना जरूरी है। तेल का असर इस तरह होता है कि तेल बालों की जड़ों में आंवले के असर को पहुंचाता है इस से भी रक्त प्रवाह बढ़ता है। ऐसा ही ब्राह्मी के लिये भी सिद्ध हुआ है। २ माशा आंवला तथा त्रिफला के चूर्ण को सोते समय पानी के साथ फांकना चाहिये और तेल को लगाना चाहिये। आंवले ब्राह्मी आदि के तेल को प्रयोग करने की विधि यह है रात्रि में उसकी कम से कम आध घण्टा मा[...] के सवेरे अच्छे साबुन से जैसा कि गंज[...] लिखा गया है सिर को धोक[...] दुबारा थोड़ी मात्रा लगानी चाहिये[...] प्रयोग उगे सफेद बालों को भी का[...] देता है। पर यह तेल किसी विश्वस्त[...] का ही होना चाहिये। गुरुकुल ब्राह[...] आयल जिसका वर्णन ऊपर भी गंज[...] आया है, इसमें भी लाभदायक सिद्ध[...] पर इसे देर तक लगाना चाहिये[...] काले बालों वाले इसका प्रयोग करें [...] बाल बहुत देर तक काले ही रहेंगे[...] थोड़े सफेद हों उनके तो दो तीन [...] काले हो सकते हैं। बाजारू Wh[...] वाले तेलों का इस से उलटा प्रभाव प[...] इसलिये उनको काम में न लाना[...] चाहिये। साधारण प्रयोग के लिये [...] स्नान के समय ही उचित होते हैं[...] बाल काफी सफेद हो गये हों उन[...] लिखी विधि द्वारा रात्रि में भी[...] चाहिये। बालों के मुख्य रोग यही[...] हैं। दूसरे रोगों का वर्णन किसी [...] में करेंगे।

च्यवनप्राश

(कविता)

लेखक - श्री आनन्द उपस्नातक

वनप्राश, दे च्यवनप्राश
बिलकुल बहरे होगए कान
खा खा कर वह कड़वी कुनीन
चौबीसों घण्टे कानों में
मानों बजती है एक बीन।
सेवन की कितनी दफा वही
टिकिया टिकिया सी एटेब्रीन
तब भी तो मेरे मानव का
ज्वर हुआ नहीं है मूल हीन।
हे वैद्यराज ! हे वैद्यराज !
आया मैं तेरे निकट आज
: 'चूर्ण सुदर्शन", तू करना मुझ रोगी को हताश
रहा हू मुद्दत से, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश ॥
मैं नहीं "नेच रो पै थी" से
करवाऊंगा अपना इलाज
उस टब के अन्दर जाने क्यों,
जाने में आती मुझे लाज।
मैं जिन्दा भी रह पाऊंगा
हो हो कर के उपवास भार ?

देगा मुझ को 'एनेमी' रूप
यह विकट अनीमा शीघ्र मार।
हे वैद्य प्रवर ! हे वैद्य प्रवर !
यह नेचर क्यों नहीं सुखकर।
इस में तो तजना होगा हा, मुझको वह प्यारा प्रातराश
मैं मांग रहा हू आतुर हो, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश ॥
यह च्यवनप्राश है वही वस्तु
खा जिसे वृद्ध भी हों जवान
यदि खाले स्वयं युवा इसको
तो हा देगा वह गजब क्या न !
मेरा यह भारतवर्ष देश
भी तो है हा ! बल वीर्य हीन
सदियों से गैरों के हाथों
यह चुसता ही है रहा दीन।
हे वैद्य देव ! हे वैद्यदेव !
दे यही हमें भी शीघ्रमेव !
कट जाएं जिससे क्षण में ही इसके व सारे बधपाश।
मैं मांग रहा जाने कब से, दे च्यवनप्राश दे च्यवनप्राश॥

सोयाबीन

लेखक—श्री डा० सत्यपाल जी आयुर्वेदालङ्कार

परिचय:—

सोयाबीन क्या है ? यह एक पौदे का बीज है, और गेहूं आदि अनाज की तरह खाने के काम आता है। परन्तु अन्य सब अनाजों से अधिक पौष्टिक, इस भोजन से भारतवर्ष की आम जनता परिचित नहीं। अतः इसके गुणों पर कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। इसमें प्रोटीन और फैट जैसे शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व बहुत मात्रा में है। इतनी मात्रा में अन्य किसी खाद्य सामग्री में नहीं मिलते। जैसा कि आगे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जावेगा। बल्कि मांस व अण्डे की अपेक्षा भी इस में प्रोटीन तथा फैट क्रमशः दुगनी और चार गुणा है। अर्थात् सोयाबीन वैज्ञानिक विश्लेषण से भी इन अभक्ष्य पदार्थों का मुकाबला करता है।

इसके अतिरिक्त शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक अन्य तत्त्व लवण तथा विटामीन भी इसमें पर्याप्त हैं। यही कारण है कि चीनी और जापानी बहुत देर से लगभग ३००० वर्ष से इस प्रयोग में लगे हैं और अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक शक्ति व स्फूर्ति रखते हैं। इस अनाज के बल पर ही वे लोग १२ घंटे कड़ा परिश्रम कर के भी थकते नहीं और थोड़े पैसों में अधिक शक्ति सम्पादन कर इन्डस्ट्रियल जगत का मुकाबला करते हैं। यही नहीं बल्कि कर्नल जार्ज डगलस ग्रे (जो कि चीन में २० वर्ष मेडिकल आफिसर रहे हैं) ने अनुभव के आधार पर अपने इंग्लैण्ड निवासियों को इसके प्रयोग के लिए बहुत जोर दिया है। उनका ख्याल है कि सोयाबीन के कारण ही चीनियों में दांत व पेट के रोग नहीं होते। उसने एक २ लाख के शारीरिक निरीक्षण में एक भी रोगी नहीं देखा। जब कि फ्रांस में ऐसे सिपाही कम मिले जिनके खराब न हों। यह तो स्पष्ट ही है भोजन से ही दांत रोगी होते हैं। मांस व अण्डे खाने वालों को ये रोग होते हैं। जापान ने इस की उपर भोजन और इन्डस्ट्री दोनों में ला है। अकेले मन्चूरिया में इसके २२,०००,०००, पौंड का लाभ तो अमेरिका, इंगलैण्ड जर्मनी आ यह प्रिय होता जा रहा है। सम्भव के सिपाहियों की भोजन की टिकि- वीन से ही बनी हैं।

इसका पौद २ ४ फीट ऊंचा इसके पत्तों पर रोयें होते हैं। फूल भ है। फलियें लगकर उस में बीज के सोयाबीन होता है; जो कि मटर होता है। इसे glycin wax, soja wax चीन में yellow be भाषा में सोयाबीन या जापानी मटर

ऊँचे दर्जे की है। वानस्पतिक लैसिथीन ज्ञान तन्तुओं व दिमाग की थकावट को दूर करता है। फ्रांस में इससे मानसिक रोगों की चिकित्सा भी की गई है।

३—विश्लेषण से यह भी पता लगा है कि सोयाबीन में कार्बोहाइड्रेट की ऐसी मात्रा बहुत थोड़ी है जिसे शरीर अपने काम लाता है। इसमें निशास्ते की मात्रा केवल ०·८ प्रतिशतक ही है। इस ही लिए मधुमेह शक्कर (Diabetes) के रोगियों के लिए यह बड़ा उपयोगी है। शक्कर के रोगी के शरीर की ताकत बढ़ाने तथा सताने वाली भूख को शान्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और फैट रखते हुए भी अन्य अनाजों की तरह हानिकर तत्व निशास्ता न के बराबर होने से सोयाबीन ने चिकित्सकों की एक बड़ी कठिनाई को हल कर दिया है। और यही नहीं बल्कि इसके प्रयोग से शक्कर आना कम हो जाती है।

४—स्वास्थ्य के लिए आवश्यक खनिज लवण, मात्रा में पर्याप्त होने से सोयाबीन आजकल की सभ्यता की प्लेग मलबन्धता व कब्ज को भी दूर करता है। इसमें क्षार ५·०६ प्रतिशतक है। जब कि गेहूं में १.६०, मटर में २·६, जौ में ०·९६ तथा अन्य अनाजों में १·३५ प्रतिशतक ही है। इस की Ash में पोटाशियम तथा फैस्फोरिक एसिड अधिक हैं। शेष कैल्शियम आदि भी पर्याप्त है। इस तरह शरीर के ज्ञान तन्तु व अस्थियों की पुष्टि के लिए भी यह उपयोगी है। फिर इसकी Ash क्षारीय गुण रखती है। जब कि अन्य अनाज, मांस व अन्डे अम्लीय गुण रखने से सोयाबीन के मुकाबले में भोजन के लिए घटिया ठहरते हैं। मि. कैलोग ने इसकी क्षारीयता Alkalinity ४१.३ आंकी है। जब कि नारंगी में ५.६, सेब में ३.७ तथा दूध में २·० ही है। अम्लीय लवण युक्त भोजन से हमारा खून भी खट्टा हो जाता है। जिस से कमर व जोड़ में दर्द, गठिया तथा गुर्दे आदि के कई रोग सताते हैं। मि. कैलोग का ख्याल है कि हम लोग अम्लीय गुण के भोजन विशेषतः मांस व दालें तथा अन्य अनाज खाकर रक्त की क्षारीयता कम कर लेते हैं। परिणामतः कार्य से थकान, रोग से लड़ने की प्रतिशक्ति का घटना जिगर, गुर्दे तथा रक्त वाहिनियों के नानाविध रोगों के शिकार होते हैं। उनका ख्याल है कि मृत्यु प्रायः इन्हीं रोगों से अधिक होती है। इस तरह लवणों के अधिक मात्रा के साथ क्षारीय गुण रखने से अन्य भोजनों की अपेक्षा स्वास्थ्य कायम रखने व बनाने में यह अधिक श्रेष्ठ है।

५—सोयाबीन में विटामीन भी है। इस का तेल ए की मात्रा में और दूध का मुकाबला करता है। अनाजों की अपेक्षा बी, सी, डी जी है विटामीन भी पर्याप्त हैं। सोयाबीन में बीजों से एक और विशेषता पाई ग इस में पाई जाने वाली विटामीन, फै जल दोनों में घुलनशील हैं। इस प्रक आदर्श भोजन के लिए अधिक ठहरता है।

ऊपर दिये गये विश्लेषण से कि शरीर की पुष्टि के लिए आवश्य तत्व प्रोटीन, फैट, कार्बोहाइड्रेट, लवण विटामीन प्रचुर मात्रा में होने के साथ श्रेणी के हैं। और मांस अण्डे जैसे पदार्थों के खाने की जरूरत नहीं तालिका से यह भी स्पष्ट है कि इसकी मात्रा से शरीर की आवश्यकता सकती है। भोजन से शरीर को जो शक्ति मिलती है उसे कैलरी में माप साधारण आदमी को दिन में २००० से तथा मजदूर को २५०० से ३५०० की आवश्यकता होती है। जहां एक कार्बोहाइड्रेट (रोटी, आलू व अनाज) १६२, फैट १ पौंड (मक्खन, क्रीम, ४३२; १ पौंड (मांस, मछली, ६६० कैलरी देते हैं वहां १ पौंड से १८३० कैलरी देता है। इसही लिए चीनी व जापानी अधिक कीमती भोज मांस आदि न लेकर भी सोयाबीन से शक्ति बनाये हुए हैं। सोयाबीन उपयोगी पदार्थ होने से यह तपेदिक दोष व अन्य शारीरिक निर्बलताओं उपयोगी है। ऐसे आदर्श खाद्य प प्रचार भारत में भी जरूरी है।

ोजन में प्रयोग के लिये पीले रङ्ग के धिक व्यवहृत होते हैं। क्योंकि ये पौष्टिक हैं। दानों को भून कर मेवे की स कर दलिया बना कर खाते हैं। इस ा बना कर दूसरे आटे में २५%मिला ो केक आदि बनती हैं। बिस्कुट, पेस्ट्री, , काफी भी तय्यार होती है। दूध, ाईस क्रीम व सोडावाटर में मिला कर । हरी अवस्था में इसके स्वादु से । बनती है। चीनी इस का दूध बना र २ बच्चों को भी देते हैं। इस का ने व तलने के काम लाते हैं।

ोयाबीन का तेल:—आज की इन्डस्ट्री महत्व रखता है। इसका तेल लैपों में के काम आता है। मोटर, रेलगाड़ी ा पहयों में चिकनाई देने के काम । इस से नहाने के बढ़िया साबुन । जो कि समुद्र के पानी में भी काम । अमेरिका में इस से ऊंचे दर्जे की सफेद पेन्ट व अनमल बनाये जाते अलसी के तेल की तरह पीछे से पीला रंग नहीं बदलते और साथ ही घुल जाते हैं। इस से बनाया गया क सीमेंट पुर्तों के लिए सस्ता और उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस से बनी रबड़, बिजली के तार व रबड़ के पाइप में बड़ी सहायक हुई है। प्रेस की बढ़िया मलाने ही बना, पीतल पालिश, यह के खिलौने भी बनते हैं। इसके से नकलाइट का सामान बिजली न, प्याले आदि) नकली सींग की घी व बटन आदि बनते हैं। फोटोग्राफी फ्लम, ग्ल्यू, कागज आदि लगभग में ५० तरह की वस्तुयें तैयार होती पयोगिता को देख कर ही अमेरिका ने सन् ३४ में १० लाख एकड़ इसकी खेती बढ़ाली। १ टन बीज से लगभग ३० गैलन तेल प्राप्त होता है।

तेल निकालने के बाद सोयाबीन की केक पशुओं को खिलाने के काम आती है। इस के पौदे का भूसा भी अच्छा बनता है।

सोयाबीन की खाद जमीन के लिए बड़ी उपयोगी होती है। इसकी खेती करने के बाद गेंहू बोजने से प्रति एकड़ ६ बुशेल गेंहू तथा १०४० पौंड भूसे की जगह १७½ बुशेल गेंहू तथा २५४० पौण्ड भूसा पैदा होता है। यहीं २ तो १४ बुशेल गेंहू अधिक पैदा हुआ है। एक बुशेल ४० पौण्ड के बराबर होता है। सोयाबीन की केक (तेल निकल ने के बाद भी) खाद के काम आती है।

इस थोड़े से परिचय से स्पष्ट है कि सोयाबीन जहां आदर्श भोजन के तौर पर जाति के जीवन में दृढ़ता, ताकत व स्फूर्ति देकर स्वास्थ्य तथा कार्य शक्ति को बढ़ाता है; वहां इन्डस्ट्री में कितनी तरह की वस्तुएं देकर देश को धन दौलत से भी सम्पन्न बनाता है। इस ही लिए आवश्यकता है कि भारतवर्ष में भी इसे जगह २ बीजकर देश की खुशहाली तथा स्वास्थ्य को उन्नत किया जावे। सर रौबर्ट मैककिसन, जिन्होंने कुनूर में भारतीय भोजनों का विश्लेषण कर बड़ी खोज की है, इस बात पर दुःख प्रगट किया है कि इतने उपयोगी अनाज सोयाबीन को भारतवर्ष ने अभी तक क्यों नहीं अपनाया। इसकी उपयोगिता पर पीछे महात्मा गान्धी जी ने भी लेख लिख कर इसकी बड़ी प्रशंसा की थी। आशा है कि चिकित्सक तथा अन्य महानुभाव इसके परीक्षण कर जनता में पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपने अनुभव देकर इसे प्रचारित करेंगे और स्वयं तथा जनता का स्वास्थ्य देकर यश के भागी बनेंगे। धनी लोग इसकी इंडस्ट्री से देशको अधिक सम्पन्न बना सकते हैं।

अतिसार चिकित्सा

(लेखक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार)

अतिसार दो प्रकार का होता है। प्रथम ज्वर का रूप, और दूसरा स्वतन्त्र रूप।

जिस रोग में ज्वर मौजूद हो और उसके साथ बार २ पतला दस्त आता हो उसको ज्वरातिसार कहते हैं।

(१) ज्वरातिसार—इसमें चिकित्सा की विपरीतता आती है। इस लिए विचार कर इलाज करना चाहिए, अर्थात मलारोधक पदार्थों के सेवन से ज्वर बढ़ जाता है और सारक तथा पाचक द्रव्यों के सेवन से अतिसार बढ़ने का भय रहता है। इसलिए परस्पर विरुद्धता चिकित्सा में आ जाती है। ऐसी अवस्था में ज्वरनाशक धारक द्रव्य और अनुपान का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार चिकित्सा करने से शीघ्र लाभ होता है; जैसे आनन्द भैरव रस को प्रथमावस्था में मुस्तक (नागर मोथा) इन्द्रजौ बिल्व चूर्ण का अनुपान, द्वितीयावस्था में पाचक और धारक जैसे मु[...] जीरे का चूर्ण, अजवाइन पिप्पली तथा अतिविषा के अनुपान से लेना चाहिए। कलिंगादि गण, गंगाधर, ह्रीबेरादि कषायों के साथ भी इन औषधियों का प्रयोग कर सकते हैं।

ज्वरातिसार में प्रथम वमन कराएं फिर पेया आदि का प्रयोग। अम्ल सात्म्य के लिए अम्ल पेया का प्रयोग करना चाहिए। औषधियों में नीचे लिखी औषधियों प्रयोग करनी चाहिए। सिद्धप्राणेश्वर, आनन्दभैरव, मृतसंजीवन और संजीवन वटी आदि। पथ्य; प्रथमावस्था में मसूर का यूष और यवमण्ड आदि, द्वितीयावस्था में ज्वरानुसार लघु भोजन देना चाहिए।

(२) अतिसार—जिस रोग में बार २ पतला दस्त निकले उसे अतिसार कहते हैं। यह वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, त्रिदोषज और शोकज छः प्रकार का होता है। फिर चिकित्सा एवं अनुपान के सुभीते के लिए आम और निराम भेद से दो भागों में विभक्त हो जाता है। पित्तातिसार की ही एक अवस्था रक्तातिसार होती है।
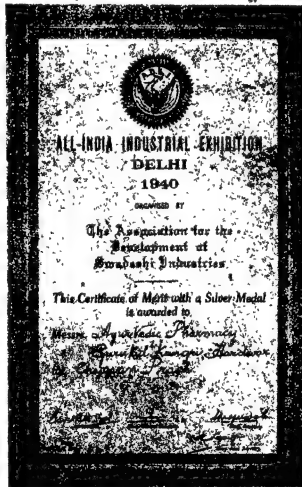
उपर्युक्त अतिसारों में कारणानुसार चिकित्सा एवं पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। तथापि प्रारम्भ में साधारण पाचक और धारक औषधि तथा अनुपान का प्रयोग करना चाहिए। कोष्ठ शुद्ध होने और पाचक औषधियों का प्र[...] चाहिए। किन्तु दुर्बल, गर्भिणी, ब[...] वृद्ध रोगियों को धारक और पाच[...] ही देनी चाहिये।

ALL-INDIA INDUSTRIAL EXHIBITION

DELHI

1940

ORGANISED BY

The Association for the Development of Swadeshi Industries

This Certificate of Merit with a Silver Medal is awarded to

Messrs. Ayurvedic Pharmacy Gurukul Kangri Hardwar

अतिसार की चिकित्सा व[...] निराम को पहिचानना कठिन इसलिए इनकी पहिचान कर लेनी जिसको नीचे लिखे तरीकों से म[...] चाहिए।

भारी होने के कारण आम [...] में डूब जाता है किन्तु पका मल [...] है। लेकिन अतिद्रव आम मल तैरता और गाढ़े पके मल [...] भी हो जाता है, इसको वि[...] लेना चाहिए। [...] कभी [...]शैत्य से दूषित पका मल भी डूब जाता है।

[...] मल की दुर्ग[...] में दर्द होना, दर्द के साथ [...] शूल के साथ मल का [...] और थोड़ा २ मल निकल[...] समझना चाहिए। इसके [...] निराम समझें। इस प्रकार [...] निराम का निश्चय हो [...] चिकित्सा करनी चाहिए।

आम की अवस्था में [...] कराना उत्तम है। क्योंकि [...] के लिए प्रथम लंघन छोड़[...] बढ़े हुए दोषों को शान्त क[...] तथा आम का पाचक भी [...] लंघन के बाद शालि तण्डु[...] (लाज मण्डादिक) देना [...] प्यास में नेत्रबाला, सोंठ, ना[...] पित्त पापड़े का जल अथवा [...] और नागरमोथे का जल [...] चाहिए।

यदि रोगी बलवान् हो तो [...] को रोकने की कोशिश नहीं करनी क्योंकि रोकने से अनेक बीमारियां कुष्ठ, पाण्डु, प्लीहा, गुल्म, उदर, [...] हो जाती हैं।

विदग्धाहार (अजीर्ण) से मूर्च्छित दोष सञ्चित रहते हैं और उनके अतिसार ा की सभावना हो तो ऐसी हालत में उन ा को निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

थोड़ा २ अथवा बधा हुआ जब किसी दर्द के साथ अतिसार हो तो उसको हरीत- और पिप्पली के कल्क से विरेचन करवा चाहिए।

पक्व अतिसार जब बार २ अल्पा को ा से होता रहता है तब गरड़ी सांग्राहिक हने का] विधि करना चाहिए।

गुदद्दाह या पाक में पटोल पत्र [परवल] गुलहड़ी के पानी से सेचन करना चाहिए। ा बकरी के दूध से भी सेचन कर ा हैं।

जीर्ण अतिसार में दूध [विशेषतः ी का] अमृत के समान है। इस दूध को अतिसार क औषधियों का तीन भाग मिला कर गर्म करके पिलाना ए।

साधारण अतिसार में आनन्द , संजीवन वटी, लवणादि वटी भुनी हुई जीरे और मधु के साथ न हिए।

आमातिसार में पीयूषवल्ली रस गेष कर बच्चों को] जाती- म और अमृतार्णव रस को क अनुपान या स्वरस चूर्ण, मधु के साथ प्रयोग करना ए।

रक्तातिसार में तिलयोग , कुटजादि, नागरादि चूर्ण, दिनेह महा गन्धक आदि का प्रयोग अनार का रस— मधु, लाक्षा चूर्ण-मधु लाक्षादि क्वाथ, मुस्तक चूर्ण-मधु आदि के अनुपान से करना चाहिए।

सिद्ध प्राणेश्वर, कर्पूर रस, कर्पूरेश्वर तथ ग्रहणी कथित औषधियों का प्रयोग भी अवस्थानुसार करना चाहिए।

शोथ, शूल, ज्वर, तृष्णा, कास, श्वास, अरोचक, छर्दि, मूर्छा, हिचकी इन उपद्रवों से युक्त अतिसार असाध्य है। यदि अतिसारी बहुमेही भी हो तो असाध्य होता है।

स्नान, अभ्यंग, अवगाहन, गुरू, स्निग्ध, भोजन अतिभोजन व्यायाम, अग्निसन्ताप आदि अतिसारी के लिए अपथ्य हैं।

सभी प्रकार के अतिसारी को प्रथम लंघन करवा कर तब हलका पथ्य देना चाहिये बाज मण्ड, यवमण्ड, दही, साबूदाना, दही भात, केला (कच्चा) शाक, दही, खिचड़ी, आदि तथा क्षीरपाक विधान में बिल्वाद्यादि क्षीर का पथ्य अवस्थानुसार देना चाहिए। शारीरिक स्थिति ठीक होने पर धीरे २ पथ्य बढ़ाना चाहिए। इस रोग में केला, सन्तरा, गूलर और अनार आदि फलों का प्रयोग करना चाहिए।

ग्रहणी

अतिसार होने के बाद आहार विहार की असावधानी से पाचक संस्थान विशेषतः पच्यमानाशय (ग्रहणी) में विकृति हो जाती है। जिस से कभी पक्का मल और कभी कच्चा (आम) पतला मल आता है। इस रोग को ही ग्रहणी की विकृति होने के कारण ग्रहणी कहते हैं। यह वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज भेद से चार प्रकार का होता है।

ग्रहणी रोग में भी अतिसार की तरह ही चिकित्सा करनी चाहिए, अर्थात अपक्व में पाचक, दीपक अनुपान औषधियों का प्रयोग करना चाहिए और पक्व मल में धारक औषध का प्रयोग करना चाहिए।

सब प्रकार के ग्रहणी में जाति फलादि चूर्ण, जीरकादि मोदक आदि औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

वात प्रधान में पञ्चक गुन्ज रस, हिंग्वष्टक, हिंग्वादि चूर्ण औषधियों का प्रयोग करना ठीक है।

पित्त प्रधान में मृत शंखर, लवणभास्कर, प्रवालपंच मृत आदि औषधियों का प्रयोग होता है।

कफ प्रधान में जातिफलादि, शंखवटी आदि करें।

आम संग्रहणी में ग्रहणी कपाट, आनन्द भैरव, दशमूल रिष्ठ, लक्ष्मीभास्कर, कुटजारिष्ट पंच मृतपर्पटी आदि का

प्रयोग करना चाहिए ।

प्रथम ग्रहणी में सुवर्णभूपति, सुवर्ण पर्पटी आदि औषधियां प्रयोग करें ।

यकृत् प्लीहा विकृति के साथ ग्रहणी हो तो पंचामृत पर्पटी, विजय पर्पटी और ताम्रपर्पटी का प्रयोग करना चाहिए ।

गंगाधर चूर्ण, लवंगादि चूर्ण, ग्रहणी शार्दूल चित्रकादि वटी, नृपतिवल्लभ मुक्तकादि मोदक, कामेश्वर मोदक आदि औषधियों का भी अवस्थानुसार प्रयोग किया जा सकता है ।

इस रोग में पर्पटी का प्रयोग सब से उत्तम है । पंचामृत पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी विजय पर्पटी आदि किसी के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है । यदि यह भी विचार किया जाए कि किस पर्पटी का किस अवस्था में लाभ होगा तो और भी उत्तम है ।

प्रायः अतिसार रोग में जो अनुपानादिक कहे गए हैं उनका ही प्रयोग इस रोग में भी कर सकते हैं, फिर भी पुराना गुड़, दही, तक्र, ईसबगोल, अनार का रस, अनार पत्र-स्वरस, तण्डुलोदक व मधु का प्रयोग अनुपानों में करना चाहिए । पर्पटी का केवल दूध या तक्र के साथ ही सेवन करना चाहिए ।

औषधियों का निर्णय

(ले० श्री ... B. A., M. B. B. S., D.T

आयुर्वेद प्रेमी आज इस बात की आवश्यकता को अच्छी तरह अनुभव करता है कि प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखी हुई कई औषधियां पूरी तरह निर्णीत नहीं हैं । इनका निर्णय यथाशक्ति शीघ्र किया जाना बहुत आवश्यक है । आयुर्वेद के प्रेमियों से यह भी छिपा हुआ नहीं कि वर्तमान समय के औषध बेचने वाले गांव के अनपढ़ लोग होते हैं । पैसे के लालच से वे एक औषधि की जगह दूसरी औषध जो रूप रंग में मिलती जुलती होती है और आसानी से बड़ी मात्रा में प्राप्त हो सकती है उठा लाते हैं । यह देखने में आया है कि इसी कारण बिलकुल भिन्न २ औषधियां एक ही नाम से पुकारी जाती और बेची जाती हैं । इन औषध ... खुदगर्जी का नतीजा बहुत बु... आयुर्वेद की औषधियां सेवन ... पूरा २ लाभ नहीं होता है । ... कि आयुर्वेदिक औषधि गुणकारी ... परन्तु इस लिए कि पंसारी ... खरीदी औषध बहुधा बनाव... औषध खरीदने के बाद उनको ... से सुखाना और जमा करना भी ... है । नहीं तो इन जमा करने के ... तरीकों से अपनी बूटियों के ... जाते हैं । हमारे पंसारी भाई ... कुछ ध्यान नहीं देते हैं । अधि... ऐसी हैं जो कि चिरकाल तक ... निर्वीर्य हो जाती हैं । काल

पुरानी होने पर नहीं फेंकते हैं बल्कि र को बेचकर अपने पैसे खरे करते हैं। नदारों के कच्ची औषधियों के रखने क भी अच्छे नहीं है। इन सब की वजह से आयुर्वेद पर विश्वास वाले और आयुर्वेद चिकित्सा के को बड़ा धोखा होता है।

न गड़बड़ों को दूर करने के उपायों में हमारे हाथ में है और कुछ राजकीय सञ्चालन वालों के। राजकीय नियन्त्रण सी गड़बड़ बड़ी आसानी से दूर हैं। हमारे हाथ में यह है कि हम ों के पारखी हों, उन्हें परख कर लें। ताजी और गुणकारी असली औषध खरीदें। अगर दुकानदार को यह ो जायगा कि उसका माल तभी कता है जब कि वह अच्छा ताजा क र होगा तो फिर वह भी अपना न बातों की तरफ करेगा। नहीं तो हो रहा है वह होता चलेगा।

समय आयुर्वेद को या अन्य उन का एक बड़ा भारी कर्तव्य है जो वेद के शिक्षणालय, फार्मेसियों और अन्वेषण के कार्यों को खोले हुए हैं। इन संस्थाओं को इन औषधियों के खरीददार तक ठीक २ पहुंचने में बड़ी दिलचस्पी होनी चाहिए। जिन औषधियों के बारे में जो गड़बड़ होती है और उसका हल क्या है यह समय २ पर आयुर्वेदीय या अन्य पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहना चाहिए। इससे वैद्यों का और जनता का बड़ा लाभ होता है।

सौभाग्य वश गुरुकुल कांगड़ी की संस्था भी इस कार्य को भरसक कोशिश से कर रही है यद्यपि संस्था के पास इस दिशा में कार्य करने के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं हैं तो भी जितना कुछ है उससे प्रशंसनीय कार्य हो रहा है। इन आर्थिक साधन की कमी को दूर करना तो उदार दानियों का आवश्यक कर्तव्य है और इस में सन्देह ही नहीं है कि आयुर्वेद के प्रेमी धनी महानुभाव इस तरफ अपना ध्यान देंगे ही।

जो कार्य यह संस्था इस सम्बन्ध में कर रही है उसका इस मासिक विवरण संक्षेप में भी इस आयुर्वेदांक में नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इसका प्रकाशन आयुर्वेद के अधिक Technical पत्रों या पत्रिकाओं में अपेक्षित है; और वहीं होते रहना उचित भी है।

इस मास धतूरा, तथा अर्क के भिन्न २ प्रकारों के निर्णय के विषय में कार्य हुआ तथा ज्योतिष्मती, तेजोवती, दुरालभा, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, सारिवा अनन्तमूल, श्यामा नागदमनी मूर्वा, मुसली, शतावरी भेदों अशोक, त्रिवृत्त दन्ती मेषशृंगी, चम्पा, मल्लिका, मजदवडा, उशीर आदि अनेकों औषधियों के सम्बन्ध में बहुत सी गवेषणात्मक सामग्री इकट्ठी की गई। औषधियों के निर्णय में एक छोटी सी वनस्पति वाटिका भी हमने रक्खी हुई है। इससे भी बहुत सहायता मिलती है। यह वाटिका जहां एक ओर आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों को औषधियां दिखाने तथा वनस्पतिशास्त्र की शिक्षा में सहायक होती है वहां साथ ही साथ थोड़ा बहुत ठोस गवेषणा का कार्य करवाने में भी बड़ी लाभकर है। इस समय गुरुकुल भूमि में ६०० शास्त्रीय आयुर्वेदिक औषधियों के वृक्ष या बूटियां उपस्थित हैं।

यह कुछ शब्द मैंने सर्वसाधारण का ध्यान इस उपयोगी कार्य की ओर आकर्षित करने के लिए लिख दिए हैं।

गुरुकुल फार्मेसी का संक्षिप्त परिचय

सन् १६०२ में स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति तथा विज्ञान का पुनरुद्धार करने के उद्देश्य से गंगा के पार कांगड़ी ग्राम के समीप गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। अन्य वेद, वेदांगों के समान ही श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को प्राचीन आयुर्वेद के साथ भी विशेष प्रेम था। आयुर्वेद का उद्धार और उससे दुःखियों की सेवा द्वारा समाज की सेवा करना, इन दो महान् उद्देश्यों से प्रेरित होकर उन्होंने महाविद्यालय में आयुर्वेद के पाठन का भी प्रबन्ध किया। इस प्रकार आज से लगभग २१ वर्ष पूर्व आयुर्वेद महाविद्यालय की नींव डाली गई।

शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि आयुर्वेद की क्रियात्मक शिक्षा के बिना केवल पुस्तकों की शिक्षा एकांगी रह जाती है। इस लिए ब्रह्मचारियों को औषध निर्माण की शिक्षा देने के लिए लगभग २० वर्ष पूर्व आयुर्वेद फार्मेसी का भी प्रारंभ किया गया। इस में औषधालय के लिए ही औषधियां बनती थीं प्रयोग में उनकी सफलता को देख कर इन औषधियों को बनाने का विस्तृत आयोजन करने का निश्चय किया गया कि जनता भी इन से लाभ उठा सके। दो तीन साल में ही इस आयोजन में लाभ प्रतीत होने लगा, इस में लगाया गया धन वसूल हो गया और अधिकारियों का उत्साह और भी बढ़ने लगा।

इस समय फार्मेसी को स्थापित हुए लगभग २० वर्ष हो गए हैं। जनता का प्रेम प्रति दिन बढ़ता जाता है। इस का परिणाम यह है कि अब फार्मेसी से ६०००० रु० का सामान एक वर्ष में बाहर जाता है, कि आयुर्वेद म० वि० को भी पर्याप्त यता मिलती है। गुरुकुल की औषधि शुद्धता को देख कर सरकारी औ भी फार्मेसी को अपनाने लगे हैं।

इस प्रकार माल की बढ़ती हु को देख कर इस वर्ष मशीनों से काम भी क्रम बांध गया है। अब दवाइ कूटना, पीसना, घोटना, व टिकी बन सब काम मशीनों से होने लगे हैं।

द्राक्षासव आदि के लिए बड़े का प्रबंध किया गया है।

फार्मेसी का उद्देश्य— फार्मे मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचारियों को बनाने की क्रियात्मक शिक्षा देने ही साथ जनता के पास सच्ची प्र दवाइयां भेज कर उनका उपकार क

फार्मेसी की कुछ विशेष

(१) गुरुकुल कांगड़ी फा सब दवाइयाँ बिलकुल शास्त्रीय

सफाई तथा सावधानी के साथ जाती हैं।

१) गुरुकुल के पास गंगा तथा की तराई होने के कारण जंगल से दवाइयां बहुतायत से मिल जाती हैं। दवाइयां ताज़ी बूटियों से बनाई इस लिये पूरा लाभ पहुंचाती हैं।

२) औषधियों की मांग अधिक रहने पुराना स्टाक नहीं रहता, हमेशा रहता है।

३) औषधियों का मूल्य यथा संभव गया है।

४) ग्राहकों के पास दवाइयां बड़ी तथा सावधानी के साथ भेजी।

५) औषधियों की बिक्री से जो लाभ होता है उसे आयुर्वेद कालेज के बच्चों को मुफ्त शिक्षा देने में जाता है।

प्र २ औषधियां— गुरुकुल कांगड़ी यूं तो सभी दवाइयों का जनता ने या है परन्तु प्रायः नित्य प्रयोग में कुछ एक औषधियों का विशेष किया है। इनमें भीमसेनी सुरमा, ब्राह्मी तेल, सत शिलाजीत, भीमसेनी मंजन, द्राक्षासव, व सिद्ध का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ल फार्मेसी की शाखाएं

र्मेसी की औषधियों की सर्वप्रियता ह भी प्रमाण है कि जनता में सी लेने की मांग बहुत बढ़ती जा इस समय हमारी निम्नलिखित व एजेंसियों की वार्षिक बिक्री ज़ार के लगभग है—

देहली ब्रांच-गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी क

लखनऊ— एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी श्रीराम रोड

३. लाहौर— एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हस्पताल रोड

४. पटना—एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी मछुआ टोली

५. अजमेर—वैद्य सरदारीलाल जी, कड़क्का चौक

जनता की जानकारी के लिए सब ब्रांचों व एजेंसियों के पते नीचे दिए जाते हैं—

१. लुधियाना—पं० विष्णुदत्त जी विद्यालंकार, अलंकार औषधालय, कूचा लालूमल

२. पेशावर शहर—मैसर्स प्राणनाथ कक्कड़ ऐण्डसन्ज़ चौक रेशमगरां,

३. शिमला—ठाकर ब्रदर्स, लोअर बाजार

४. .... (.......) श्री .... रामबाग़ आरवाड़ी

५. पीलीभीत—डा० नारायणलाल गुप्त मौजा दौलतपुर पो० ......

६. कोटा स्टेट—शर्मा बुक डिपो बारां

७. लाहौर— एजेंसी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हस्पताल रोड

८. बदायूं—वैद्य निरंजनदेव आयुर्वेदालंकार सेवाश्रम बिल्डिंग, आर्यसमाज

९. करांची—श्री हरिश्चन्द्र जी, पटेल काटन को० लिमिटेड

१०. पालमपुर (कांगड़ा) मै० वासुदेव एण्ड सन्ज़, बुकसेलर

११. क्वेटा–वैद्य सोम्प्रकाश जी, न्यू मेडिकल हाल, एण्डरसन रोड

१२. शिकोहाबाद– डा० गुरुदत्त जी आयुर्वेदालंकार ११५ कटरा मीरा

१३. तिर्वा (फर्रुखाबाद) आर्य मेडिकल स्टोर

१४. उन्नाव पं० बालगोविन्द गयाप्रसाद अवस्थी

१५. नगीना—डा० हरकरण लाल गुरुशरनलाल, आयुर्वेदिक औषधालय

१६. रुड़की–वैद्य चन्द्रकिरण आयुर्वेदालंकार गुरुकुल स्नातक मेडिकल हाल

१७. अम्बाला छावनी– पं० प्रेमसागर गुरुकुल अलंकार आयुर्वेदिक फार्मेसी

१८. देहरादून–डा० सुदर्शन, सुदर्शन फार्मेसी, पल्टन बाजार

१९. पटियाला–पं० वेदप्रकाश अलंकार औषधालय

२०. करनाल–डा० मनीराम सौदागर, सदर बाजार

२१. भागलपुर–डा० बी. दत्त कचहरी बाजार

२२. अबोहर–पब्लिक सोप वर्कस

२३. बड़ौदा–आल इंडिया ट्रेडिंग कारपोरेशन मंडली

२४. दादू (सिंध)-लोक सेवक भंडार

२५. मसूरी–दि दून प्रोविजन स्टोर कुलड़ी बाजार

२६. महसवान–ला० बालीराम कन्हैयालाल, आर्य औषधालय

२७. सुलतानपुर (अवध)– श्री महादेव प्रसाद देव चौक

२८. आजमगढ़ ओ३म्प्रकाश भंडार

२९. सूर्यपुरा (शाहबाद) श्री जानकीराम शिवप्रसाद जी

३०. डाल्टनगंज–श्री रामप्रताप प्रसाद खेतान

३१. सहारनपुर– मैसर्स भगवद्दयाल चन्द, पंसारी बाजार

३२. पटना–एजेंसी गुरुकुल महुआ टोली, बांकीपुर

३३. दामकड़ी–वैद्य मुरलीधर सुनाम पो० (पटियाला स्टेट)

३४. फैजाबाद श्री कृष्णादत्त आयुर्वेद श्रद्धानन्द औषधालय, चौक

३५. सरगोधा-- मलिक [illegible] आर्यसमाज ब्लाक नं० २

३६. लखनऊ–एजेंसी गुरुकुल फार्मेसी श्रीराम रोड

३७. कलकत्ता– एजेंसी गुरुकुल फार्मेसी ४ बी महुआ बाजार स्ट्रीट

१. अजमेर—वैद्य मन्दारीलाल जी चौक

२. मोतीपुर—श्री रामचन्द्र वर्मा एजेन्ट फार्मेसी रामसेयगंज

३. बुलन्दशहर—मैसर्स परमात्माशरण छिप्टी गंज

४. मियाचन्नू (मुलतान) श्री फांगी-हकीम

५. नयलाइ—जनरल स्टोर्स बड़ा बाजार स्टेट)

३. पटियाला—मैसर्स नीरुमल चिरंजी-ी लाल मगनीराम

४. हरदोई—महेश प्रसाद भागवतप्रसाद नार

५- बिजनौर—पं० रामचन्द्र राधेश्याम

६. भागलपुर—श्री नरेन्द्रनाथ गुप्त र्य समाज

७. इलाहाबाद—पं० नत्थन जी ार एजेन्ट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी १६ गंज

के अतिरिक्त मेरठ में यद्यपि पहिले थी और उसमें अच्छी बिक्री हो रही भी वहां और गुञ्जायश देख कर ब खोल दी गई है जिसका पता निम्न है:—

ठ ब्रांच गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी इ

रुकुल फार्मेसी की एजेंसी के नियम जनक हैं। हमारी हार्दिक इच्छा है कि सज्जन आगे आएं और गांव २ में की औषधियों की एजेंसी लेकर गरीब को उन्हीं दामों पर औषधियां देकर कर अपना तथा जनता दोनों का न करें—

—सम्पादक

पुस्तक–समालोचना

[समालोचनार्थ भेजी जाने वाली पुस्तकों की दो–दो प्रति आनी चाहिये]

वैदिक विनय (तीन भाग)—लेखक आचार्य अभयदेव जी। पृष्ठ सं० ३०० प्रति भाग। मूल्य १) प्रति भाग। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

लेखक के नाम से जनता भली भांति परिचित है, आपके लेखों और पुस्तकों से धार्मिक और भक्त जनता को बहुत लाभ पहुंचा है। वैदिक विनय आपकी लेखनी की जीवन-कृति है बड़ी खोज और चिरकाल के वेदाध्ययन से आपने अपने जेल जीवन के दिनों में इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त हुई है। एक दिन के लिये एक प्रार्थना नियत है। इसका गुजराती अनुवाद भी हो चुका है। इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं। देश के मान्य नेताओं आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों और समाचार पत्रों ने मुक्त कंठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की हैं। उत्तम टाइप और बढ़िया कागज पर यह ग्रन्थ छपा है।

सोमसरोवर—लेखक श्री प० चमूपति जी एम. ए.। पृष्ठ सं० २७६ मूल्य—सजिल्द १।।) अजिल्द १।)। मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

सामवेद भक्तों के लिये भक्ति-स्रोत है। पाठक भक्तिरस के इस झरने का पय: पान करें, निश्चिन्तता से अध्ययन करें, मनन करें। पुस्तक की सजीव भाषा, बढ़िया कागज, छपाई सफाई सब उत्तम है।

वेद गीताञ्जलि— संग्रह कर्त्ता मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी। पृष्ठ संख्या—२४४ मूल्य २), मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

वेद मन्त्रों के आशय को अभिव्यक्त करने वाले गीतों का इस पुस्तक में संग्रह है। वेद के कुछ चुने हुए मन्त्रों के शब्दार्थ और उन पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा हिन्दी में भावात्मक सुन्दर गीत इस पुस्तक में दिये गये हैं। यह अपने ढंग की एक निराली पुस्तक है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (दो भाग):—सगृहीता लाला लब्भूराम जी नैय्यड़। पृष्ठ सं० ११४+१०८। मूल्य बारह आने, प्रति भाग मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

यह पुस्तक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उच्च, गम्भीर, आत्मा को उठाने वाले धर्मोपदेशों का संग्रह है। प्रत्येक घर और पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक २ कापी का होना आवश्यक है।

बृहत्तर भारत—ले० श्रीयुत पं० चन्द्रगुप्त वेदालं सं० ४००, मू० ४।।), मिलने का पता, पुस्तक भण्ड कांगड़ी।

भारतीय संस्कृति का विदेशों में अर्थात् चीन, जाप कम्बोडिया, तुर्किस्तान, अफ्रीका और अमेरिका प्रभृति प्रचार किस प्रकार हुआ, किस प्रकार भारतवर्ष के धर्मप्र विदेशों में जाकर अपने धर्म को फैलाया। यह पुस्तक में पाठकों को मिलेगा। बृहत्तर भारत अतीत इ सुवर्णमय झांकियों का एक सुन्दर संग्रह है। इस विषय प में और कोई इससे अधिक प्रामाणिक पुस्तक आपको न पुस्तक बढ़िया एन्टिक कागज पर छपी है।

आत्म मीमांसा—ले० श्रीयुत प्रो० नन्दलाल पृष्ठ सं० ३०३, मू० २), मिलने का पता पुस्तक भण्डा कांगड़ी।

यह अपने ढंग की अद्वितीय पुस्तक है। विद्वान 'जीवात्मा' के सम्बन्ध में हर एक पहलू पर बड़े विस्तार किया है। 'आत्मा' जैसे गूढ़ विषय को उदाहरणों इतने मनोरंजक ढंग के साथ लिखा है कि पुस्तक हाथ से इच्छा नहीं होती। इसकी खूबी पढ़ने पर ही मालूम होगी।

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति— ले क्षितीश वेदालंकार, पृष्ठ स० ५०, मूल्य।-)।

योग्य लेखक ने इस पुस्तिका में सजीव भाषा में ढंग से आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दि वीरता का तथा जेल के विचित्र अनुभवों का दिग्दर्शन क प्रत्येक गुरुकुल प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

ब्रह्मचर्य सन्देश—लेखक श्रीयुत प्रो० सत्यव्रत लंकार। पृष्ठ सं० २६१, मूल्य दो रुपया। मिलने का पता भण्डार गुरुकुल कांगड़ी। 'ब्रह्मचर्य' जैसे नाजुक विषय अच्छी दूसरी पुस्तक हिन्दी साहित्य में नहीं है। 'कर्मवीर' की सम्मति है कि—"इस विषय पर हिन्दी में अधिक प्रामाणिक, सब से अधिक खोज पूर्ण और सब ज्ञातव्य विषयों से भरी हुई पुस्तक देखने में नहीं आई है।

यह पुस्तक ऐसी है जिसे पिता को पुत्र के हाथ शुभ चिंतकों को अपने नवयुवक मित्रों के हाथ में जल्दी से देनी चाहिये। अंग्रेजी में यह पुस्तक 'Confidential T Youngmen' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत पुस्तक, इसक संस्करण है।

शिक्षा-मनोविज्ञान—लेखिका श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए० बी. टी.। पृष्ठ सं० ३३७, छपाई सफाई अत्युत्तम है, मूल्य ३॥), मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

बच्चों को शिक्षा किस प्रकार देनी चाहिए, बालक का मानसिक विकास किस प्रकार होता है, इस बात को समझ कर यदि सच्ची शिक्षा दी जाय, तो वह एक पुष्प की तरह खिलने लगता है। आजकल हमारे बालक मुरझाये हुये क्यों दिखलाई देते हैं, इसका कारण यह है कि माता, पिता और शिक्षक बालक के मानसिक शास्त्र का अध्ययन किये हुए नहीं होते।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस पर १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया है और नागरी प्रचारिणी सभा ने २००) 'बिड़ला' पुरस्कार दिया है।

ट्रेनिंग स्कूलों और कालेजों के लिये इससे अच्छी दूसरी पुस्तक किसी भाषा में नहीं निकली।

स्त्रियों की स्थिति—लेखिका श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए० बी० टी०। पृष्ठ सं० १८३ छपाई सफाई उत्तम, मूल्य) । मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

स्त्रियों के पढ़ने के लिये यह सब से उत्तम पुस्तक समझी गई है। स्त्रियों के हाथों में देने के लिये, कन्या पाठशालाओं में इनाम देने के लिये इससे अच्छी दूसरी पुस्तक नहीं मिल सकती।

पुस्तक इतनी अच्छी है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस पर ५००) का पुरस्कार दिया है।

सन्ध्यासुमन—लेखक श्री पं० नित्यानन्द जी वेदालंकार। पृष्ठ सं० १५६, छपाई सफाई अत्युत्तम मूल्य १)। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने कई वर्षों तक शिमला आर्य समाज में पुरोहित के प्रतिष्ठित पद पर रहे हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक में सन्ध्या जैसे गूढ़ विषय पर बड़ी स्पष्टता एवं मार्मिकता के साथ प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ अपने विषय का अनमोल रत्न है। प्रत्येक भक्त व जिज्ञासु को इस पुस्तक का एक बार अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

जल चिकित्सा विज्ञान—लेखक श्रीयुत पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति। पृष्ठ संख्या ५००। मूल्य १॥)। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

आजकल रोगियों और चिकित्सकों का ध्यान प्राकृतिक चिकित्सा की ओर बड़े वेग से बढ़ रहा है। लेखक ने जल चिकित्सा के सिद्धान्तों का त्रिदोष के आधार पर विचार किया है। हिन्दी भाषा में यह पुस्तक बहुत लाभदायक प्रकाशित हुई है। पुस्तक चिकित्सकों और रोगियों दोनों के लिये उपयोगी है।

हिन्दी निरुक्त भाष्य—लेखक पार्लीरत्न श्रीयुत पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार। पृष्ठ संख्या ८७४। मूल्य ७), मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

वेद के मर्म को समझने के लिये निरुक्त भाष्य का अध्ययन आवश्यक है। लेखक ने निरुक्त के गूढ़ मर्मस्थलों को सुस्पष्ट तथा विवाद शून्य बना दिया है।

रायल एशियाटिक सोसायटी लंदन, श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, वाइसचान्सलर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, आदि महानुभावों ने मुक्त कण्ठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है। वेद प्रेमी सज्जनों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

इनके अतिरिक्त निम्न पुस्तकें भी समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं जो गुरुकुल पुस्तक भण्डार से मिल सकती हैं:—

१. ब्राह्मण की गौ, ॥)
२. भारत वर्ष का इतिहास (तीन भाग) ६।) सेट
३ गुरुकुल प्रार्थना एकादशी)॥
४ फन फिजायल माजा [उर्दू में] २)
५ रंगाई धुलाई व ड्राइ क्लीनिंग [उर्दू में] ॥)
६. फन रंगसाजी [उर्दू में] १॥)

अरे मित्र!
तुम्हारे दान्त अब तो बहुत सुन्दर दीखते हैं।
हां भाई!
तुम तो जानते ही हो कि मेरे दांत पहिले बहुत खराब थे उनसे पाप आता था। दुर्गन्ध के कारण कोई पास बैठना भी पसन्द न करता था। परन्तु मेरे एक और मित्र ने
सलाह दी कि
प्रतिदिन
गुरुकुल कांगडी का
भीमसैनी दंत मंजन
किया करो
O
यही मेरे इन सुन्दर दांतों का रहस्य है मैं रोज दोनों समय इससे अपने दांत साफ करता हूं।
पता गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

चौधरी इलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' Reg No A 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक—श्री [illegible] विद्यालंकार

वर्ष ७] गुरुकुल कांगड़ी शुक्रवार १० कार्तिक १९९७ २५ अक्टूबर १९४० [संख्या [illegible]

ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान

(ब्र० श्री [illegible])

ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन का एक व्यापक नियम है। पशु जगत् में भी यह नियम स्वाभाविकतया सञ्चालित हो रहा है। मनुष्य को यह नियम अपनी उन्नति और विकास के लिए प्राप्त हुआ है और पशु को अपनी सजातीय स्थिति बनाये रखने के लिये। पशु को इस पर चलने से पशुबल व शारीरिकबल मिलता है और मनुष्यको शरीर का बल मिलने के साथ बुद्धि और आत्मा का बल भी प्राप्त होता है। पशु कुछ प्राकृतिक नियमों और स्वभाव के वशवर्ती होकर ब्रह्मचर्य का आश्रय लेते हैं, परन्तु मनुष्य विद्या-शिक्षा और बल प्राप्ति के लिए—यानी अपनी चहुमुखी उन्नति के लिए इसे एक पवित्र नियम समझ कर इसका आचरण करते हैं। इस तरह ब्रह्मचर्य से जहां पशु को शारीरिक बल मिलता है वहां मनुष्य को शारीरिक बल के अतिरिक्त बुद्धि और आत्मा का बल भी प्राप्त होता है।

हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा गाई गई है। ईश्वर के महान् गुण-कीर्तन से लेकर सत्य अहिंसा मैत्री-भक्ति आदि के गुण धर्म कथन के साथ ही ब्रह्मचर्य का भी प्रभावशाली रूप से व्याख्यान हुआ है। शास्त्रों में तो ब्रह्मचर्य को वर्णाश्रमधर्म के मूल रूप में माना है। न केवल वर्णाश्रमधर्म का अपितु मनुष्य जीवन का प्रारम्भ भी ब्रह्मचर्य द्वारा होता है। जीवनके स्वर्णीय उषा से लेकर रक्तिम सन्ध्या तक का सारा समय ब्रह्मचर्य के नाना रूपों में से किसी एक द्वारा अनुप्राणित हुआ दृष्टिगोचर होता है। देखने वाले को हर एक वस्तु में ब्रह्मचर्य की हृदयग्राहिणी परिभाषा दीखती है। वृक्षों के बीजारोपण से अंकुर के आविर्भाव से लेकर पत्र-पुष्प फल तथा परिपाक आने तक की प्रक्रिया में डाल २ और पात २ ब्रह्मचर्य की अगणित उमंगों में अपनी विकासोन्मुख आख्यायिका का वर्णन करते हैं। दूसरे ब्रह्मचर्य जीवन को विकसित करने वाला वह नियम है जिसके पालन से मनुष्य का देह, मन इन्द्रिय-समूह और आत्मा परिपुष्ट हो कर प्रकाशित होता है।

ब्रह्मचर्य को शास्त्रों में नाना व्याख्या हुई है। ब्रह्मचर्य शब्द के अर्थ भी अनेक हुए हैं। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से विविध लाभ होते हैं और नाना प्रकार के फल मिलते हैं यह भी कहा गया है। इसलिये ब्रह्मचर्य क्या है (किस वस्तु का नाम है) यह भी हम समझ लेना चाहिये। ब्रह्मचर्य के शास्त्रीय अर्थ बड़े सुन्दर हैं और तत्त्व बोधक हैं। शास्त्र कहते हैं कि 'ब्रह्म' सर्व व्यापक परमात्मा का नाम है। उसको जानने के लिये जो पवित्राचरण करना है वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म का अर्थ वेद भी होता है। और वेद का अध्ययन करने के लिए जिस व्रताचार में दीक्षित होना है वह भी ब्रह्मचर्य है। पार ब्रह्म परमात्मा और वेदोक्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए जिस धर्मानुष्ठान रूप व्रत और तप क्रिया में आरूढ होना है यह ब्रह्मचर्य है। इन शास्त्रोक्त अर्थों के साथ संगति रखते हुए दूसरे भी अनेक अर्थ ब्रह्मचर्य शब्द से निकलते हैं। जिनका ज्ञान होना भी हमारे लिए आवश्यक है। क्योंकि इसका ज्ञान होने से हम ब्रह्मचर्य की सर्वांगीण श्रेष्ठता व उपयोगिता का परिचय हो जायगा। अर्थ ज्ञान होने से हम उस पर-ब्रह्म की उपासना के लिए, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए, उसके दर्शन और जानने के लिये निरन्तर उसकी ओर गति कर सकेंगे। हमारा पल पल और घड़ी घड़ी ब्रह्माभिमुख प्रगति करने में व्यतीत होगा। हमारा श्वासोच्छ्वास का चलना और प्राणायामादि क्रियायें ब्रह्म के अन्तर में विचरण करते हुए अत्यन्त नियमित रूप से उस द्वारा सुरक्षित होकर होंगी। हमारे आचार्य ज्ञान और धर्म के नियमों द्वारा परिचालित करता हुआ वह ब्रह्मदेव हमें अपना अनुचर बनाकर सतत ब्रह्मचर्य की शिक्षा-दीक्षा में विनियुक्त रक्खेगा।

अथर्व वेद काण्ड ११ में इसी महान् आशय का कितना सुन्दरता से वर्णन हुआ है। वहां कहा है 'आचार्य उपनय करता हुआ मानो ब्रह्मचारी को [illegible] के अन्दर धारण कर लेता है वह उसको तीन दिन-[illegible] पर्यन्त विद्या गुहा में निवास कराके जब चौथे दिन अन्ध-वास से मुक्त करता है तो उस विद्या जन्म से प्रकाशित हुए को विद्वान् लोग सब तरफ से देखने' आते

हैं"। यहां विद्या की गुहा में आचार्य के समीप तीन रात्रि पर्यन्त ज्ञान प्राप्ति के लिये गुप्तता से रहना इस बात का निर्देश करता है कि वैदिक ब्रह्मचर्याश्रम का अनुष्ठान वेद की त्रयी विद्या अर्थात् ज्ञान कर्मोपासना काण्ड के पठन पाठन के लिये किया जाता था। रात्रि में जिस प्रकार मनुष्य का बाह्य जगत् आंखों से ओझल होता है और केवल अन्तर्जगत् अपने में विद्यमान होता है इसी प्रकार आचार्य कुल में ब्रह्मचारी की आत्मा केवल सत्य विद्याओं के आभ्यन्तर में होनी चाहिये, बाह्य जगत की उथल पुथल में फंस कर डांवाडोल न होनी चाहिये। यही है ब्रह्म कुल में ब्रह्मचारी का निवास। यहीं पर वह 'ब्रह्मकर्म समाधिना' वाली सिद्धि सुलभ करता है। और 'गर्भोभूत्वा अमृतस्य योनौ' मोक्ष सुख देने वाली ब्रह्मविद्या में गर्भ की तरह नियम में रहकर उसका ज्ञान प्राप्त करके कृत कृत्य हो जाता है।

ब्रह्मचर्य सब तपों का मूल है। यह महान् तप है। 'ब्रह्मचर्यं परंतपः' कहा है। अथर्व काण्ड ११ में, अनु० ३। सू. ५ में तो ब्रह्मचर्य के तप को अत्यन्त प्रबल तप माना है। वहां पर बारबार-"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत, इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत" तथा "ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति" इत्यादि वाक्यों से ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल की महिमा बखानी गई है। विचारने की बात है कि वह ब्रह्मचर्य कितना दुर्धर्ष होगा-जो आई हुई मृत्यु को भी हनन करने में समर्थ है; दीन-हीन दुर्बल और पददलित प्रजा को सुप्रजा बनाकर राष्ट्र रूप में उसका संरक्षण करने में योग्यता प्रदर्शित करता है-और प्रबल आत्मा, जैसे विकल इन्द्रियों को स्वस्थ बनाने में योग्य है, वैसे ही ऐश्वर्यवान होकर धर्मात्मा विद्वानों को सुखसामग्री प्रदान करने में सशक्त होता है। कितनी सत्यता से यह बात वेद में कही गई है कि "ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति"। यथार्थ में तो इस मन्त्र खण्ड में ब्रह्मचारी के समस्त कर्त्तव्य संक्षेप में निर्दिष्ट कर दिये हैं। ब्रह्मचारी का समिधाचयन हविराज्यादि साकल्य का संग्रह कर अग्निहोत्र द्वारा यज्ञाग्नि का प्रज्वलित रखना, गुप्तेन्द्रिय का संयम तथा वीर्य के स्खलन से बचने के लिये मेखला और कौपीन का धारण करना, सत्य विद्या की प्राप्ति के लिये यत्नवान् रहकर, स्वास्थ्य रक्षा और आरोग्य लाभ के लिये कठोर श्रम करने में तत्पर रहना तथा अत्यन्त तपश्चरण द्वारा 'घर्मं वसानः' वाला, तपोजा अग्नि से आच्छादित होना, यह सब कर्त्तव्य कर्म ब्रह्मचारी का पालन और पूरण करने हैं। इनका नित्य नियम के तौर पर अनुष्ठान करने वाला वर्णी सब लोकों को अपनी साधना से परिपुष्ट और आनन्दित करता है इसमें सन्देह नहीं।

वेद का रूपक वह जिसमें ब्रह्मचर्याश्रम पूर्व समुद्र और गृहस्थादि आश्रमों को उत्तर समुद्र कहा गया है कितना भाव प्रवण है। यह ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त हुई शक्ति है जिससे पूर्व समुद्र से सहसा उत्तीर्ण होके उत्तर समुद्र को भी धैर्य और साहस से ब्रह्मचारी तरने में समर्थ होता है। पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र तक पहुंचने में ब्रह्मचर्य मूल-कारण है। ब्रह्मचर्याश्रम सब आश्रमों के मूल में होने से सबका आधार है यह ऐसी नींव है जिसके दृढ़ होने पर अन्य सब आश्रमों का उत्कर्ष अर्थात् फलना फूलना होता है और इस नींव के दृढ न होने पर उत्तराश्रमों का विकास कभी भली भांति नहीं हो पाता।

(अगले अंक में समाप्त)

दीपावलि

[एक अनुसन्धान पूर्ण लेख]

विजयादशमी के दिन मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने रावण का वध किया था— तथा दीपावलि के दिन अयोध्या पहुंचे थे ऐसा विचार प्रचलित है। परन्तु यह धारणा कल्पित प्रतीत होती है।

(१) वाल्मिकी-रामायण, अग्निवेशपुराण तथा पद्मपुराण (पातालखण्ड) इस कल्पना के विरुद्ध हैं।

(२) पं० हरिमंगल मिश्र एम० ए० वैशाख कृष्ण चतुर्दशी, पं० महादेव प्रसाद जी त्रिपाठी फाल्गुन सुदी एकादशी तथा पं हरिशंकर जी दीक्षित चैत्रकृष्ण अमावस, रावण वध को तिथि मानते हैं।

(३) तुलसीकृत रामायण से भी विदित होता है कि विजयादशमी के समय श्री रामचन्द्र जी पम्पापुर में ही थे। वर्षा बीतने पर हनुमान् जी सीता की खोज में जाते हैं।

(४) भविष्योत्तर पुराण में विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बनाकर उसके हृदय को बींधने का विधान है। रावण वध का नहीं।

हां! इस कल्पना से बिगड़ते २ रावण वध की प्रथा चल पड़ी हो-ऐसा मान सकते हैं। अतः आश्विन शुक्ला दशमी को रावण वध की कल्पना बे बुनियाद प्रतीत होती है।

जब विजयादशमी के दिन रावणवध झूठ है-तब इसदिन अयोध्या में श्रीराम का आना भी असम्भव है। जब रावण-वध फाल्गुन या वैशाख में हुआ-तब श्री राम कार्तिक में अयोध्या कैसे पहुंचे। अतः इस पर्व का श्री मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है।

यह प्राचीनतम पर्व है। श्रीराम के जन्म से हज़ारों वर्ष पुराना है। अतः विद्वानों के बनाये धर्मशास्त्रों में इसका नाम ऋतु के अनुकूल दिया है। आर्यों में ऋतु के अनुकूल पर्व मनाने की रीति थी। ऐतिहासिक पर्व मध्यकाल की रीति है। ऋतु के अनुसार पर्व-सब जातियों सब संप्रदायों (हिन्दु मुसलमान दोनों) के लिये एक जैसी वस्तु है। उसका सम्बन्ध देश की (कुदरती) प्राकृतिक दशा से होता है, न कि पुरुष विशेष, जाति विशेष या समय विशेष से होता है। ये पर्व सब जाति एवं समयों में मनाये जा सकते हैं।

मेरा अपना ख्याल है, कि इन पर्वों से किसी व्यक्ति (शख्स) का सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। क्योंकि कुछ कालबाद व्यक्ति की उपयोगिता उतनी नहीं रहती। क्योंकि वह- समयानुकूल विचार व सत्य का पोषक होता है। सब समयों के लिये आवश्यक सत्य का पोषक विचार या ज्ञान ईश्वर का ही हो सकता है। परन्तु जिस समय जिस महापुरुष की सचाई देश की दशा को सुधारने में

अनुकूल हो उसका उस काल तक पर्व से सम्बन्ध मानना श्रेयस्कर है। यह आर्य-वैदिक-संस्कृति की भावना पर्वों के सम्बन्ध में मुझे नजर आती है।

यह दीपावलि का पर्व शरद् ऋतु एवं वर्षा ऋतु के बीचों बीच आता है। वर्षा की समाप्ति एवं शरद् के आगमन की सूचना देता है। ऋतु बदलते समय रोग की आशंका स्वाभाविक है। हर आदमी इसका ख्याल रखता ही है। दूसरी बात ऋतु बदलते समय अन्न पर असर है। इसके मुताबिक इस समय अन्न-पकना और कटना शुरू होजाता है। किसान का घर भरपूर होना शुरू होता है। व्यापारी अपना बहीखाता नया करते हैं। लेन देन चुकता किया जाता है। ताकि अन्न खरीदने के लिये रुपया हो-नया उत्साह और संकल्प साथ हो। यह पर्व अब तक प्रभाव पैदा कर रहा है। अतः धर्मशास्त्रों में इस पर्व का नाम नव सस्येष्टि या नवान्नेष्टि रखा गया है। मठों --गुरुकुलों में- ब्राह्मणों में, व्यापारियों --किसानों में आज से ही अन्न भण्डार जमा होता था। अतः सबको खुशी का कारण अन्न होता था।

(१) गोभिल गृह्य सूत्र, प्रपाठक ३, खण्ड ७ तथा ७ से २४ सूत्र तक इसका विधान है।

(२) पारस्कर गृह्य सूत्र, काण्ड २, कण्डिका १७, सूत्र १ से १८ तक इसका विधान है।

(३) आपस्तम्बीय गृह्य सूत्र, खण्ड १६, म इसी का वर्णन है।

(४) मानव गृह्य सूत्र, खण्ड ३, में सुन्दर प्रक्रिया है।

(५) मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २६ भी इसका पोषक है।

प्रत्येक अमावस्या पर दर्शेष्टि का विधान होने से कार्तिकी अमावस्या में नवसस्येष्टि यज्ञ के साथ उसको किया जाता है।

परन्तु इस वर्तमान भारत की समस्या का इलाज करने वाले प्रथम पुरुष का भी उस दिन से खास सम्बन्ध हो गया है। अतः वर्तमान भारत की दशा से दुःखी दिल इस पर्व पर उसकी स्मृति को भुला नहीं सकता। इसी दिन सायंकाल अक्तूबर ३० तारीख १८८३ ईस्वी मंगलवार को महर्षि दयानन्द जी की आत्मा शरीर का परित्याग किया था। अतः यह पर्व वर्तमान भारत के इतिहास में अमर हो गया है।

श्री विद्यानन्द वेदालंकार।

सब कर सकते शृङ्गार नहीं

[श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद एम० ए०]

किस को मिलता यह शुभ अवसर
पाये आसन बलि-वेदी पर
किसका ललाट इतना उन्नत
जिस पर सिंदूर लगे सुन्दर
हर छाती पर, हर ग्रीवा पर
सजता फूलों का हार नहीं ॥

(२)

गाती सबकी जीवन-सरिता
पर किसका जीवन ही कविता
किसने सद्भाव अरुणिमा से
रंजित हो बन आने सविता
हर मांसल तन पर निराकार
मानव होता साकार नहीं ॥

(३)

किसका दिल अब तब दे देता
पर सुख हित निज सुख को देता
किसका बलिदान गुणाकर क्र
संचित पापों को धो देता
सब करुणानिधि के न्याय दण्ड
का ले सकते हैं भार नहीं ॥

(४)

लखकर अपने को मृत्यु ग्रस्त
सब हो जाते अस्त व्यस्त
इतनी तदस्त किसकी मस्ती
जिसके सम होवें उदय अस्त
सब सकते खींच रजत रेखा
घनघोर घटा का पार नहीं ॥

(५)

मसि के काले अक्षर नश्वर
रक्तिम अक्षर ही हैं अक्षर
काला कर देती श्वेत पृष्ठ
कविता सुन्दर से भी सुन्दर
प्रत्येक आत्म-अभिव्यञ्जन में
होती है सदा बहार नहीं ॥

(६)

दुनिया में ऐसे दिल कितने
जो होते हैं विशाल इतने
जो चमकाते वैरी का यश
वे दुर्बल हों चाहे जितने
सब प्राप्त विजय को अपने
रिपु के हित कर सकते हार नहीं ॥

(६)

हर एक सुवर्ण फुहार नहीं
आभूषण का उपहार नहीं
सब के शोणित ले काल-राशि
पाती नारी का हार नहीं
संहार सभी हो सकते पर
कर सकते उपसंहार नहीं ॥

(७)

आत्माहुति से मिलता प्रकाश
पर आत्मघात-है सर्वनाश
यह निर्णय सभी न कर सकते
है किधर मुक्ति, है किधर पाश
सबको जीने का स्वत्व मगर
मरने का है अधिकार नहीं ॥

गुरुकुल

१०कार्तिक शुक्रवार १९९७

तेरा यह दीपक

(श्री आचार्य अभय देव जी)

कार्तिकी अमावस आ गयी है और बहुत से दीपक जलाये जा रहे हैं। ये क्यों जलाए जा रहे हैं? यह तो इन दीपकों के मालिक जानें पर इतना जानता हूं कि दीपक की सार्थकता ही इसके जलाए जाने, प्रकाशित व प्रदीपित किये जाने में है। प्रदीपित करने से यह दीपक होता है। और उस में दीपित करने की जितनी शक्ति होती है उसी के अनुसार वह अपने चारों तरफ़ के अन्धेरे को थोड़ा या बहुत दूर करता है।

वैसे तो अपने २ घर में हरेक रात को लोग दीपक जलाते हैं पर इस रात बहुत से दीपक इकट्ठे जलाये जा रहे हैं, दीपावलि जलाई जा रही है। यह विचित्र बात है। यही नहीं, दीपावलि भी कभी कभी किन्हीं अन्य अवसरों पर जलाई जाती है और आज कल सिनेमा घरों पर या किन्हीं किन्हीं अन्य दुकानों पर हर रोज़ ही दीपावलि हो हो रहा होता है। पर फिर भी इस कार्तिक अमावस की पवित्र दीपावलि की महिमा और शोभा अपनी ही है। दीपावलि यही कहाती है। इस में एक पवित्रता की भावना है, जो अन्यत्र कहीं नहीं। इस को पवित्र बनाने वाली विशेषता क्या है?

* * *

जलता हुआ दीपक कितना सुन्दर लगता है। उस की ऊपर उठने वाली स्थिर प्रकाशमय लौ कितनी मनमोहिनी होती है!

"यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा स्मृता।"

इस दीपक में ध्यान केन्द्रित करके, दीपक की इस सुन्दरता में तल्लीन होते मैं स्वयं दीपक बन जाता हूं। ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं भी एक जीता जागता दीपक हूं। यद्यपि अभी अनजला दीपक हूं। इस भौतिक देहरूपी ज़रासे मिट्टी के बरतन में जो शुक्र रूपी तेल भरा गया है और मेरुदण्ड रूपी बत्ती लगाई है वह मानव-दीपक के रूप में जलने के लिये ही तो किया गया है। जगत के सब ब्रह्मचारी जलते हुए दीपक हैं। ऋषि दयानन्द जैसे आजन्म ब्रह्मचारी बहुत बड़े और बहुत भारी प्रकाशवाले, बहुत दूर दूर तक का अंधकार दूर कर सकने वाले महाप्रकाशमान दीपक थे जो उन से प्रकाश चाहने वाले अन्य बहुत से अनजले दीपकों को जला सकते थे और न जाने कितनों को जला गये थे। निःसन्देह जलता हुआ दीपक ब्रह्मचर्य जीवन की कहानी ही कहता है।

* * *

आज बहुत से दीपकों को जलाया जाता देख कर, हे मेरे स्वामी! मुझ में भी भावना उठती है कि क्या आज तेरे इस दीपक के जलाये जाने का भी समय आ गया है? मैं बहुत समय से इस की बाट जोह रहा हूं। क्यों कि मैं जानता हूं कि मेरी सार्थकता इसी में है कि मैं एक दिन जल उठूं, प्रदीपित हो जाऊं। मैंने तेरी कृपा से, अभीतक अपने इस तैल को कभी बरबाद नहीं होने दिया है, इस बत्ती को कभी झुकने और गिरने नहीं दिया है। इस बर्तन को मज़बूत और सुरक्षित रखा है कि कहीं छेद हो कर, ठेस आकर या किसी अन्य तरह इसका तेल चूने न लगे इस का पूरा फ़िकर रखा है। यह सब मैंने बड़े धैर्य पूर्वक इसी लिये किया है कि एक दिन तूने अपनी ज्योति के क्षणभर के स्पर्शसे सिर्फ इसे जगा देना है, जला देना है, प्रकाशित कर देना है और मेरे जीवन को सार्थक कर देना है। क्या वह शुभ घड़ी आज आ गई है? दीपकों को जलता देख कर और दयानन्द का स्मरण आ कर कुछ ऐसी ही आशंका होती है कि शायद अब मेरे भी जल उठने का समय आ गया है। यह मैं जानता हूं कि जब भी तुम मुझे प्रदीपित करना चाहोगे तो तुम्हारी दिव्यज्योति का केवल एक क्षण भर का पवित्र स्पर्श ही काफी होगा। उस क्षणिक स्पर्श से ही मैं जल उठूंगा, जगमगा उठूंगा, और निहाल हो जाऊंगा। क्या वह क्षण अब भी नहीं आया है? मैं तो ज्योति का प्यासा हूं, तेरी अक्षय ज्योति को तू अपनी ज्योति से ऐसा जगा दे कि मैं अनवरत जगता रहूं, सदाही तेरी ज्योति से जगता हुआ तेरे काम आता रहूं।

* * *

जैसे एक मानव-दीपक जलता है, वैसे मानव दीपकों की दिवाली भी होती है। बहुत से ब्रह्मचर्य दीप्ति रखने वाले ऊर्ध्वरेता मिल कर जलते हैं, और मिल कर जगत् के अन्धकार को दूर करते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि अक्षय ज्योति से ज्योति पाने वाले, एक बड़े भारी दीपक के चारों ओर अन्य बहुत से दीपक जल उठते हैं और शताब्दियों के अन्धकार को देखते देखते दूर कर देते हैं। शायद ऐसा ही एक दीपावलि का समय अब आगया है। उस के लिये दीपक जलाए जाने प्रारम्भ हो गए हैं ऐसा भी दीखता है। इसी लिए मैं पूछता हूं कि इस पवित्र दिवाली में हिस्सा लेने के लिये, हे मेरे रचियता स्वामि! तू आज क्या मुझे जला देगा?

मैं पवित्र दिवाली की बात करता हूं। अपवित्र दिवाली तो रोज सिनेमा घरों जैसी बहुत हो रही हैं। लोग मिल कर जल रहे हैं; चमक दमक रहे हैं; इस लिए कि वे इस तरह लोगों को अपनी इस बाहरी चमक दमक द्वारा फसावें और उन्हें पतित करें। लोग मुझे भी अपनी (अपवित्र) चमक से जल जाने को प्रलोभित करते रहते हैं। पर मैं तो इतने काल से तेरे पवित्र प्रकाश-स्पर्श को पाने के लिये ही तपस्या कर रहा हूं। उस तेरी पवित्र दिवाली में काम आने के लिये तैयारी करता हुआ चिर काल से प्रतीक्षा कर रहा हूं, जो कि विश्व को अन्य लोगों

को सचमुच अंधकार से और अंधकारजनित पीड़ाओं से छुड़ाने वाली होती है और (अतएव) दिव्य होतीहै। उस दिवाली में अब क्या देर है? मैं तो देख रहा हूँ कि अमावस आ गई है, अधिक से अधिक अंधकार का समय आ चुका है और मैं आशाभरी निगाहसे यह भी देख रहा हूँ कि कुछ दीपकों का जलना भी प्रारंभ हो गया है। फिर अब मेरे इस दीपक को जलने में क्या देर है?

हैदराबाद में

आर्यसमाज का प्रगति

[कुछ अनुभव]

(लेखक—श्री विद्यानन्द वेदालंकार)

शहरी वातावरण में उत्सव बहुत शान से मनाये गये। मैं इन शहरी उत्सवों से छुट्टी पाकर जन गणना की मीटिंग में शामिल होने के लिये शोलापुर आया था। शोलापुर में ही सत्याग्रह की तैयारी के लिये वह ऐतिहासिक आर्यकान्फ्रेन्स हुई थी। तब से आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यालय शोलापुर में ही है। 'सभा' का एक प्रेस भी है। 'सभा' की ओर से जो अखबार निकलता रहा है उसके ग्राहक ३,४ हजार से कम कभी नहीं हुए। परन्तु सरकारी कुदृष्टि का शिकार होकर उसे बार २ बन्द कर देना पड़ा। बार २ नये २ नाम से आज्ञा लेकर अखबार निकाला गया परन्तु बार २ बन्द कर दिया गया। अब पत्र "आर्य सन्देश" नाम से निकल रहा है। लोग बन्द होने के भय से ग्राहक बनने में हिचकते हैं। परन्तु तो भी पत्र बहुत शीघ्र तरक्की कर रहा है। शोलापुर में मुझे श्रीयुत परशुराम जी गम्पा जो लखपति सेठ हैं तथा गुलबर्गा समाज के प्रधान हैं, मिले। आप के साथ मैं गुलबर्गा पहुँचा।

गुलबर्गा शहर रियासत का दूसरे नम्बर का शहर है। रियासत के ४ सूबों में एक गुलबर्गा सूबा भी है। आज कल मैं इसी सूबे के प्रचार कार्य का संचालक नियत किया गया हूँ। सारी रियासत में १५० के करीब समाजें हैं। जिनमें १२५ आर्यसमाज गुलबर्गा सूबा में हैं। इसका नगर-समाज भी कार्यशील है। श्रीयुत लालासहजी इसके बड़े लगन के कार्यकर्ता थे। आपके समय प्रत्येक मुहल्ले में प्रचार होता था। आप पर इस कारण सरकारी कर्मचारियों की कड़ी नजर थी। अतः आप पकड़ कर जेल में डाल दिये गये। आज कल नगर समाज के मन्त्री श्रीयुत तुकाराम जी हैं। "सत्यार्थ प्रकाश केस" के कारण आपका नाम भारत भर में रोशन हो चुका है। इस रियासत में, मुखबिर को करोड़गिरि बोलते हैं। इसके कर्मचारी प्रायः अनपढ़ होते हैं। अतः घूस लेने के लिये सामान जब्त कर लिया करते हैं। आर्य समाजी भी कभी कभी भूल से चक्कर में पड़ जाते हैं। श्रीयुत मन्त्री जी भी पड़ गये। बस इतनी सी गलती पर मामला सरकार और आर्यसमाज के बीच में खड़ा होगया। अब सब निबट चुका है।

गुलबर्गा से चलकर मैं यादगिरी पहुँचा। यादगिरी के प्रधान सेठ ईश्वर लालजी हैं। आप मारवाड़ी हैं। बहुत सम्पन्न हैं। आप के घर पर ही मैं ठहरा था। एक जैनमन्दिर में व्याख्यान का बन्दोबस्त हुआ। सेठ जी पर एक मुकदमा चला हुआ था। आप से पुलिस को खून दंगे का डर था। मैं तो इस मुकदमे पर एकदम हैरान था। मैं स्थानीय वकील तथा सेठों से मिला। सब ने इस मुकदमे को अधिकारियों का मजहबी पक्षपात बताया। सारी यात्रा में मुझे कोई हिन्दु अधिकारी मिला ही नहीं। बीदर की तरह ही गुलमरकल में भी अरब मुसलमानों के बहकाने से मुसलमानों ने लूट मचा दी थी। परन्तु पुलिस ने उनको बचाने के लिये आर्यसमाजियों को पकड़ लिया है। श्रीयुत दत्तात्रेय प्रसाद जी वकील भी मेरे साथ आये थे। आप इस मामले की जांच कर रहे थे।

मैं यादगिरी से सोरापुर गया। यहां पहले बेडर जाति का राज्य था। यह एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम जगह है। मैं सेठ शिवरप्पा जी का अतिथि बना। सेठ जी ने समाज मन्दिर के लिये जगह देने का मुझे वचन दिया था। स्थानीय सभी हिन्दू वकीलों से मिलकर उन्हें आर्यसमाज का मेम्बर बनाया।

सोरापुर के मन्त्री रंगप्पा जी हैं। मैंने रंगमपेट में भी प्रचार किया। यह बस्ती जुलाहों की है। सब बुन कर गुजारा करते हैं। इन में आर्यसमाज का बहुत उत्साह है। इनका संगठन तथा उत्साह सराहनीय है। मेरे व्याख्यान में मुसलमान भी काफी आये थे। यह प्रथम देहात था जहाँ मुसलमान भाषणमें दिखाई दिये। सोरापुर में मन्त्रीजी ने मकान पर बुलाकर हवन भी कराया। इस से पुलिस सर्कल इन्स्पेक्टर चिढ़ गया। उसने मन्त्री को बुलाकर थाने में डांटा। "तुम सड़क पर हवन करते थे यहां दंगा होगा—तो, तुम पर जिम्मेवारी रहेगी।" अधिकारी डरा धमका कर कार्य में बाधा डालने की कोशिश करते हैं। जब डराने से काम नहीं चलता तो, चुप होकर इजाजत दे देते हैं। झूठे मुकदमों में फंसा देते हैं। लोग (मुसलमान) अपना मुकदमा जीतने के लिये दूसरे को आर्यसमाजी कह देते हैं। तब बिचारा डर कर इन्कार करता है, कि मैं आर्य समाजी नहीं हूँ। परन्तु सन्देह होने पर, तो मुकदमा हार ही जाता है। सोरापुर से मैं रामचूर पहुंचा। यहां सात दिन किसी जाति के लोगों ने प्रचार कराया। यहां हिन्दुओं की एक जाति होती है जो रंगारी–शिम्पी या भावसार क्षत्रिय कहलाती है। इनका पुश्तैनीपेशा रंगना बुनना था किन्तु आजकल दर्जी का है। प्रायः ६० फीसदी अब भी दर्जी है। इन लोगों में बहुत अच्छा प्रचार हुआ। राजपूत एवं कसाब लोगों ने भी प्रचार कराया। ये सब अपने को आर्यक्षत्रिय लिखायेंगे। भाषा हिन्दी लिखायेंगे। यहां मेरे साथ हर समय दो पुलिस रहते थे। ४, ५ (C. I. D.) भी रहती थी। बावजूद इन कठिनाइयों के मैंने जिद में बहुत काम कर डाला। रियासत में छोटे अधिकारी बहुत

तंग करते हैं। प्रायः सर्वत्र कोई न कोई भाषण का शोर करने वाला रहता ही है। नामादि प्रायः उपदेशकों से ही पूछते हैं। अभी संक्षेप से इतना ही लिखता हूं।

कालिदास-जयन्ती

आगामी ३१ अक्तूबर को भारत के सभी भागों में महाकवि कालिदास की जयन्ती समारोह पूर्वक मनाने की तैय्यारियां हो रही हैं। यह बड़े हर्ष का विषय है कि अब हमने धीरे २ अपने रत्नों को पहचानना प्रारम्भ कर दिया है। जिस महाकविने अपनी अमर-साधना से विश्वमें हमारा मस्तक ऊँचा किया है उसे हमने अभी तक नहीं पहचाना था यही आश्चर्य की बात है। भविष्य में यदि इसी प्रकार हम अपने पुराने कलाकारों की प्रतिष्ठा करते रहेंगे तो शीघ्र ही वह दिन आवेगा जबकि हमारे साहित्य का भण्डार भर जायगा।

राष्ट्रीय दृष्टि से कालिदास का महत्व हमारे लिये बहुत अधिक है। भारत का मस्तक संसार में हिमालय के कारण स्वतः ही सर्वोच्च है। उस पर भी कवि कालिदास के अमर काव्यों ने और भक्ति स्रोत प्रवाहित करने वाले उपनिषदों ने चार चांद लगा दिये हैं जिसकी जोड़ का साहित्य, संसार भर में मिलना दुर्लभ है। इस कवि पुंगव ने अपने उत्तराधिकार में हमें अभिज्ञान शाकुन्तल, मेघदूत, कुमार सम्भव आदि जिन विभूति-रूप ग्रन्थों का दान किया है उनका मोल पार्थिव-पत्थरों —हीरा, मोतियों— द्वारा नहीं आंका जा सकता। यदि ये ग्रन्थ-रत्न विदेशों में न पहुँच जाते तो आज भारत की संस्कृति और सभ्यता का वह उज्वल पृष्ठ दुनियां की आंखों के सामने नहीं आ सकता था।

धन्य हैं कवि कालिदास और धन्य है उनका कला-लालित्य। जिसके द्वारा संसार के सर्वोच्च कवि और विद्वान सबसे अधिक प्रभावित हो सके हैं।

आज उनका स्मृति दिवस मनाते हुए हम सबको विविध प्रकार के प्रतिभा सम्मेलनों द्वारा इस दिवस को सफल बनाना चाहिये।

कविता

[श्री आनन्द]

मुझको सूझ रही है कविता।
पूर्व दिशा में उदित देखकर वह स्वराज्य का सविता
मुझको सूझ रही है कविता।

बीत चुकी है काली रात,
हुआ आज भारत में देखो, नव विभात अवदात।
बीत चुकी है काली रात।

यह है हर्ष-वर्ष की वेला,
आओ, हो उन्मुक्त आज हम हिल मिल खेलें खेला।
यह है हर्ष-वर्ष की वेला।

हिंदू हों या हों ईसाई
या हों मुसलमान, सब भारतवासी भाई भाई।
हिंदू हों या हों ईसाई।

वह गत सत्याग्रह का साका,
जिसमें हम सब ने मिलकर थी रोपी राष्ट्र पताका,
स्मरण कराता रहे प्रतिक्षण हमको भारत मां का।
वह गत सत्याग्रह का साका।

कन्या गुरुकुल देहरादून

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून का १३वां वार्षिकोत्सव इस वर्ष दिसम्बर में बड़े दिनों की छुट्टियों में बड़े समारोह पूर्वक मनाया जायगा. इस उत्सव पर देश के अनेक प्रसिद्ध नेता पूज्य सन्यासी, विद्वान् उपदेशक तथा विदुषी महिलाएं पधारेंगी और देव वाणी, सरस्वती तथा राष्ट्रभाषा सम्मेलन, अन्तर्महाविद्यालय वादविवाद संगीत और महिला सम्मेलन आदि में प्रधान पद स्वीकार कर धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों पर सार-गर्भित एवं शिक्षाप्रद भाषण से जनता को संतृप्त किया करेंगे। कन्यायें भी विभिन्न विषयों पर निबंध पढ़ेंगी और व्याख्यान देंगी, संस्कृत तथा हिन्दी में वादविवाद करेंगी।

नवस्नातिकाओं का दीक्षान्त भाषण और नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारिणियों का वेदारम्भ संस्कार भी इस अवसर पर होगा जो कि गुरुकुल उत्सव के बड़े महत्व पूर्ण अंग हैं। अतएव गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पक्षपातियों तथा स्त्री शिक्षा के प्रेमियों को इस सुअवसर पर पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ानी चाहिये।

चूंकि इस समय गुरुकुल आश्रम में कन्याओं की संख्या २५० है अतः स्थानाभाव के कारण इस वर्ष थोड़ी सी कन्याएं ही आ सकेंगी। जिन सज्जनों को अपनी कन्याएं प्रविष्ट करानी हों वे प्रवेश पत्र मंगवाकर उन्हें भर कर २० नवम्बर से पूर्व कन्या गुरुकुल कार्यालय को भेज दें।

उत्सव पर पधारने वाले सज्जनों के रहने आदि का प्रबंध कन्या गुरुकुल की ओर से किया जावेगा। जो सज्जन अपने पृथक तम्बू लगवाना चाहें उन्हें पूर्व सूचना भेज देनी चाहिये, ताकि उस समय कठिनाई न हो।

गुरुकुल समाचार

सभी ब्रह्मचारी यात्राओं तथा अपने २ घरों से सकुशल गुरुकुल में आगये हैं। महाविद्यालय और विद्यालय दोनों विभागों की पढ़ाइयां नियमानुसार प्रारम्भ हो गई हैं। श्री आचार्य जी विद्यासभा की बैठक में सम्मिलित होने के लिये गये थे अब लौट आये हैं। इस बार विद्या सभा में कई अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया।

चतुर्दश श्रेणी के दो उत्साही छात्र ब्र० सतीश और ब्र० विधारक इस वर्ष यात्राओं में साईकिलों पर ही संयुक्त-प्रांत बिहार तथा बंगाल के मुख्य नगरों व ग्रामों का अवलोकन करते हुए कलकत्ते तक गये, इन्होंने लगभग २५०० मील का मार्ग केवल एक महीने ८ दिन में ही समाप्त किया। ये ब्रह्मचारी कुल के आन्तरिक कार्यों में भी इसी प्रकार बड़े उत्तरदायित्व के साथ कार्य करते हैं, ये क्रमशः कुलमंत्री और क्रीडामंत्री हैं।

गुरुकुल में शोक सभा

सब कुलवासियों की यह शोक सभा गुरुकुल के भूत-पूर्व आचार्य, मुख्याधिष्ठाता व उपाध्याय तथा कोल्हापुर कालेज के प्रिंसिपल प्रो० बालकृष्ण जी P. H. D. के आकस्मिक देहावसान पर अत्यन्त शोक अनुभव करती है और परमात्मा से उनकी दिवंगत आत्मा के लिये सद्गति की प्रार्थना करती हुई उनके शोक संतप्त परिवार के साथ गहरी समवेदना प्रकट करती है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

विजया दशमी का उत्सव गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में बहुत धूम-धाम से मनाया गया। चार दिन तक हाकी फुटबाल तथा वालीबाल आदि खेलों के सम्मुख्य होते रहे। देसी खेलें भी होती रहीं। अन्तिम दिन श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में एक सभा हुई। सभा में गुरुकुल कांगड़ी के महाविद्यालय से आये हुए विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। ब्रह्मचारियों तथा अध्यापकों के भी मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के जीवन पर भाषण तथा कवितायें हुईं। सभा के अन्त में देसी खेलों में विजयी ब्रह्मचारियों को श्री स्वामी रामानन्द जी ने पारितोषिक वितरण किये। तत्पश्चात् सबका सम्मिलित सहभोज हुआ।

अगले दिन ब्रह्मचारियों की प्रार्थना पर भारत के प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकान्त जी त्रिपाठी "निराला" तथा श्री सोहनलाल जी द्विवेदी गुरुकुल में पधारे। गुरुकुल की ओर से श्री निराला जी को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया। तत्पश्चात् एक कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें यहां के ब्रह्मचारियों ने तथा दोनों माननीय कवियों ने अपनी २ कवितायें सुनाईं। श्री निराला जी तथा श्री सोहनलाल जी द्विवेदी की कवितायें बहुत पसंद की गईं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

दीर्घावकाश के बाद १ अक्टूबर को नियमानुसार गुरुकुल खुल गया है। अवकाश के दिनों में छोटे ब्रह्मचारी गतवर्षों की तरह पहाड़ (सोलन) में रहे। बड़े ब्रह्मचारी इस वर्ष यात्रार्थ कहीं न जाकर गुरुकुल में ही रहे।

२ अक्टूबर को कुल में गांधी जयन्ती बड़ी धूम धाम से मनाई गई। प्रातः प्रभात फेरी के बाद राष्ट्रीय पताका का अभिवादन किया गया। और सायंकाल सभा में महात्मा जी के जीवन पर विविध ब्रह्मचारियों के तथा अध्यापकों के व्याख्यान हुए।

दानवीर श्री जुगल किशोर जी बिड़ला ने एक व्यायाम शिक्षक गुरुकुल में अपनी ओर से रखना स्वीकार कर लिया है और उसका ६ मास का वेतन भेज दिया है। इसके लिए सब कुलवासी सेठ जी का धन्यवाद करते हैं।

छमाही रिपोर्ट गुरुकुल कमालिया

इस समय गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी बिलकुल आनन्द प्रसन्न हैं। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर ६ नये ब्रह्मचारी प्रवेश हुए थे जो ब्रह्मचारी उस समय न पहुंच सके थे उन को दाखला के लिए समय दिया गया था। पांच नये ब्र० ने गुरुकुल में प्रवेश किया है। इस समय भी कई सज्जनों के साथ पत्र व्यवहार हो रहा है दो चार लड़कों के और आने की आशा की जाती है।

पिछली छमाही में श्रावणी जन्माष्टमी, विजयादशमी के त्यौहार बड़े शान से मनाये गये थे।

ब्र० को गुरुकुल की पढ़ाई के अतिरिक्त प्रतिदिन गदका, लाठी, लेजिम व दूसरी कई खेलें व आसन सिखलाये जाते हैं इसके लिये एक लाठी मास्टर रखा हुआ है। ब्र० की मेहनत ने इस छमाही में खास तौर पर तरक्की की है। कई ब्रह्मचारी १०, १० पौंड बढ़े हैं। कमालिया का जलवायु बहुत उत्तम है। ब्रह्मचारियों को भोजन में हरएक खाने की चीजें पूरे नियम से और मौसमानुसार दी जाती है इसलिए रोगी बहुत ही कम होते हैं। हमें इस बात के जतलाने में फख्र है कि १२ वर्ष के काफी समय में केवल दो ब्रह्मचारी टाईफाइड से रोगी हुए हैं। मलेरिया यहां बहुत कम होता है।

पढ़ाई के लिए काबिल अध्यापक लगाये हुए हैं जो जो ब्रह्मचारी को प्रेम व लगन से पढ़ाई करवाते हैं।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० मनमोहन १ श्रे० चोट, ब्र० जगदीश ३ श्रे० चोट, ब्र० देवव्रत ३ श्रे० चोट, ब्र० श्रीकृष्ण ३ श्रे० Mumps, ब्र० प्रेमनिधि २ श्रे० मलेरिया, श्यामस्वरूप २ श्रे० मले०, ब्र० कर्मेन्द्र २ श्रे० मलेरिया, ब्र० प्रेमपाल ५ श्रे० मलेरिया, ब्र० भवभूति १३ श्रे० मलेरिया, ब्र० विमलचन्द्र १३ श्रे० मलेरिया। गत मास ये ब्रह्मचारी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १७ कार्तिक १९९७; १ नवम्बर १९४० [संख्या २९

वास्तविक दीपावलि

(ले० श्री अशोक कुमार जी)

रामायण की जिस कथा को लेकर हिन्दुसमाज में प्रथमबार जिस दीपावलि का प्रारम्भ हुआ था-तब से लेकर आज तक प्रतिवर्ष वही दीपावलि मनाई जाती है लेकिन अब और तब में कितना अन्तर है। आज भी दीवाली अपनी उस मनमोहन शान से, निराली अदा से आती है लेकिन अपनी चिता पर दीपकों की कालिमा लिये निराशा भरे भाव के साथ लौट जाती है। फिर अगले वर्ष ठीक उसी समय इसका आगमन होता है नयी आशा के साथ लेकिन फिर खाली हाथों लौट जाना पड़ता है। अगले वर्ष के लिये फिर वही चक्कर है। इस प्रकार न मालूम कितने चक्कर लग चुके-कितनी बार दीपमालिका अपना खाली प्याला लिये चली गई लेकिन हम वहीं के वहीं हैं न एक कदम आगे, न एक कदम पीछे। दीपमालिका का पवित्र संदेश जो इस अवसर पर अंधकार का सर्वनाश करने वाले दीपकों की आत्मा में प्रतिध्वनित होता है हमारे बहरे कानों में सुनाई नहीं पड़ता। वह पवित्र दृश्य जिस में आत्म त्याग, व जनता जनार्दन की सेवा का मूक भाव दिखाई देता है हमारी आंखों को दिखाई नहीं देता। क्या यही दीपावलि का प्रयोजन है? भगवान राम के गुणगान करने वाले इन करोड़ों जनों का क्या यही फर्ज है?

कहते हैं कि इस दिन राम और भरत का मिलन हुआ था-जब कि वे १४ वर्ष के बाद रावण का सर्वनाश कर सीता के साथ अयोध्या में लौटे थे। संभव है कि यह कथन सत्य हो और इस अवसर पर अयोध्यानिवासियों ने अपने राज्य के अधिष्ठातृ देव के स्वागत में घी के दिये जलाये हों जिनसे सारी अयोध्यानगरी देदीप्यमान हो उठी हो। लेकिन यदि इस पौराणिक कथानक को छोड़ दिया जाय और इस पक्ष के आध्यात्मिक अर्थ को लिया जाय तो इसका वास्तविक उद्देश्य हमारे सामने आ सकता है। रामायण के वर्णित सीता और रावण इन दो शब्दों का विशेष मतलब है जिसे भूल से व्यक्तियों का नाम समझ लिया गया है। सीता शब्द उन पवित्र भावनाओं का, दैवीय शक्तियों का नाम है जो मनुष्य में परमात्मा ने उत्पन्न की हैं जिनको सम्यक्तया समझने में व्यक्ति इस जीवन और मरण के झगड़ों से छूट कर परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है और रावण भी उन दूषित शक्तियों का, आसुरी भावनाओं का सूचक है जो समय २ पर व्यक्ति के सतत जागरूक न रहने से उसके शुद्ध अन्तःस्थल पर आकर अपना अधिकार जमा लेती हैं और व्यक्ति को अपनी उंगली के इशारे पर नचाती हैं इनका रूप इतना सुन्दर एवं आकर्षक होता है कि प्राणी सोचते समझते हुए भी इनकी ओर खिंचा चला जाता है। जिन सुनहरे मृग आदि का जिकर हम पढ़ते हैं वे सब इसी के ही रूप हैं। हां तो-अपने विद्यार्थी जीवन में रामचन्द्र जी इस सीता रूपी पवित्र भावनाओं की धरोहर को अच्छी तरह संभाले हुए थे लेकिन अवसर ऐसा हुआ कि उनके आंख झपकते ही रावण रूपी शक्ति ने उन पर आक्रमण किया उनकी इस पवित्र धरोहर को कब्जे में कर लिया। रामचन्द्र जी लुट गये, जिस शक्ति को उन्होंने इतने प्रयत्न से संग्रहीत किया था वह शक्ति उनके देखते २ शत्रु के हाथों में चली गई। पिता दशरथ की आज्ञा हुई, जाओ! जबतक पूर्ण परिपक्व न हो जाओ तब तक मत लौटना। रामचन्द्र को घने जंगलों में ऋषि मुनियों के पास जाना पड़ा और तब उन्होंने कठोर तप किया जिसके पूर्ण होने में उन्हें पूरे १४ वर्ष लगे। इस समय में उन्होंने अपनी सब शक्तियों पर एकाधिपत्य कर लिया। रावण रूपी आसुरी भावनाओं का नाश किया और पुनः सीता रूपी पवित्र भावनाओं की धरोहर लिये वे अपने घर लौट आये। अस्तुः—इस प्रकार से इस कथानक का हमारे जीवन से बहुत निकट सम्पर्क हो जाता है। हम भी जब बाल्यकाल में अबोध थे, अभी हमारी आंखे पूरी तरह खुली भी न थीं रावण रूपी दुष्ट शक्तियों ने हमारी सीता रूपी पवित्र भावनाओं के खजाने को लूट लिया तभी हम लुटे हुए बालकों के संरक्षकों ने हमें हमारे पूज्य गुरुवृन्दों के पास भेज दिया, उस लुटी हुई शक्ति के संग्रहार्थ। प्रति वर्ष आती हुई यह दीवाली

(शेष पृष्ठ ३ पर)

ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान

(ले० श्री अन्तेवासी)

[गताङ्क से आगे]

स्मृतिशास्त्रों में ब्रह्मचर्यानुष्ठान के अनेकानेक नियमों का विवेचन किया गया है। उन सबका निष्कर्ष तो यही निकलता है कि जो कामना, विचार या क्रिया मनुष्य के शरीर मन, प्राण और आत्मा की स्वाभाविक उन्नति में बाधक है, अथवा जो विषय (रूप-रस-गन्ध-शब्द और स्पर्श) इनको फंसावट में डालकर इनमें विकार उत्पन्न करके इनके पतन का कारण होते हैं उनसे सतर्कता से बचाया जाय। यही एक गुर है जिससे आबालवृद्ध ब्रह्मचर्याचरण का लाभ उठा सकते हैं। महाराज मनु जी ने अपने धर्म शास्त्र में जिन २ विषयादि वस्तुओं को वर्जित किया है उनसे बचकर रहना ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वाले के लिये अत्यन्त आवश्यक है। भोगेच्छा के सर्वथा परित्याग के बिना ब्रह्मचर्याश्रम रूपी समुद्र से पार होना सम्भव नहीं। जितना भी हो सके कामादि वासनाओं को उत्पन्न करने वाले मिथुन भाव को दृश्यरूप में, शब्द श्रवण में तथा व्यवहार-विचार में न आने देने से ब्रह्मचर्य सुरक्षित रह सकता है। यह सब संयम, निरोध और शम दम नाम से कहे जाते हैं। भोजनाच्छादन में, स्नान-संचार में, शयन-जागरण में व्यवहार व्यायामादि में वेला का उल्लंघन करना (अनियमित होना) तथा अतिचार करना ब्रह्मचर्य की रक्षा में विघ्नवत् है। इन्द्रियों को चाहे वह ज्ञानेन्द्रियां हों या कर्मेन्द्रियां हों और उभयात्मक होने से मन को भी हरण करके बाहर ले जाने वाले विषयों से रोकता रहे, ऐसा करने से उग्र-तप चरण द्वारा जो स्तुत्य धी.. मनोजय और वशेन्द्रियत्व की सिद्धि प्राप्त होती है वह साधक को प्राप्त होगी। अर्थात् वह ब्रह्मविद्या और ज्ञान विज्ञान के ग्रहण में समर्थ मेधा को प्राप्त करेगा। इससे अधिक ऊंचा उठने के लिये योगाङ्गानुष्ठान द्वारा शरीरेन्द्रिय मन प्राण को सहज पीड़ा देता हुआ गुह्य अध्यात्म विद्याओं को भी सिद्ध करने में समर्थ हो सकता है।

"ब्रह्मचर्य परम् बलम्" ब्रह्मचर्य महान बल है। मनुष्य के शरीर इन्द्रिय मन प्राण और आत्मा तक के बल का मूल है। सभी बलों को प्राप्त कराने वाला ब्रह्मचर्य है इस कारण ब्रह्मचर्य को परम बल कहा है। यह बल परा-कोटि का है क्योंकि यह सूक्ष्म, सबसे उन्नत आध्यात्मिक बल के रूप में भी प्रकट होता है।

उपनिषदों में ब्रह्म का अन्न नाम से वर्णन किया गया है। 'अन्नं ब्रह्म' 'अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत'। अन्न ब्रह्म है, अन्न की ब्रह्म के समान उपासना करनी चाहिये, इत्यादि। वेद में अन्न का द्रविण-धन-सम्पत्ति के तौर पर भी कहा गया है। इससे यह विदित होता है कि ब्रह्मचारी को परमदेव प्रभु का अन्न बनकर रहना है-अपने समस्त आत्मामादि द्रव्यों तक को ईश्वर का अन्न समझकर स्वाहाहुति या समर्पण बुद्धि से प्रस्तुत करते रहना है। परम प्रभु बड़े अन्नाद हैं इस लिये ब्रह्मचारी अन्न प्रसूत हविरंश अवश्य ग्रहण करेंगे ऐसा भाव हृदय में धारण कर उनकी परिचर्या में प्रस्तुत रहना है। इसका एक और मनोरंजक अर्थ भी हृदय में धरना चाहिये कि ईश्वरीय बल के लिये तृण से ब्रह्माण्ड पर्यन्त और स्वयं ब्रह्मदेव भी जो इसमें 'ओत प्रोत' है अन्न रूप में प्राप्त हुए हैं। इन सबको भक्षण कर ('चर' गति भक्षणयोः) अर्थात् अपना खाद्य विषय बनाकर रखनेसे उसका ब्रह्मचर्य पूरा होगा। अन्न तथा ब्रह्माण्डस्थ पदार्थों को आत्मसात् करना उनका जीवनोपयोग ठीक २ बूझ लेना ब्रह्मचर्य का चिन्ह होना चाहिये।

अन्न के लिये चलना, धनसम्पदा के लिये सुश्रम और कौशल पूर्वक आचरण करना भी ब्रह्मचर्य का एक अर्थ है। अन्न को कृषिव्यापार द्वारा प्राप्त करना फिर ब्रह्मचर्या के अनुसार बर्ताव करना ब्रह्मचर्य का द्योतक है। "ब्रह्म अन्न तत्संसिद्ध्यर्थं यत्तपःश्रमादिकं कृत्यादिवृत्तं तद्ब्रह्मचर्यम्" इस प्रकार नाना अन्नों का उत्पादन-विभाजन और पाक भक्षणादिक तक सकल क्रिया कलाप ब्रह्मचर्य नाम से पुकारा जाने को यो यता रखता है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में वैदिक काल से आजतक ब्रह्मचर्य को शिक्षा का आधार माना गया है। गुरु शिष्य के सम्बन्ध से लेकर आश्रम वासियों के व्यापारतक सभी बातों में ब्रह्मचर्य का वायुमण्डल निर्माण करने पर ध्यान रक्खा गया है। वस्तुतः यदि ब्रह्मचर्य का सूक्ष्मतम आत्मा गुरुकुलाश्रमों के रूप में हो तो इसका सार्वजनीन सार्वदेशिक स्वरूप विश्वव्यापी होकर ही रहेगा। ब्रह्मचारी की आत्मा को परमात्मा और साथ ही साथ विश्वात्मा के लिये प्रस्तुत और समर्पित करना है इसलिये इस अवस्था में (ब्रह्मचर्याश्रम में) आत्मा और आत्मा के योग्य देहेन्द्रिय मन-बुद्धि-प्राणों को समिध-मेखला-श्रम-तपस्या द्वारा दृढ़ बनाना और अमृत योनि में निवास के द्वारा इस पुरुषार्थ बढ़ाना आवश्यक है। यदि जीवन के इन रमणीक प्रभातों में ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य नियमों के अनुष्ठान में चूकेंगे और परिस्थितियों के वश में आकर यूनाभ्यास में आलस्य प्रमाद करेंगे तो वह सर्वौषध रूप, संसार के सभी रोगों का रामबाण, ब्रह्मचर्य रूपी ब्रह्मास्त्र कभी नहीं प्राप्त होगा। तब यह हमारा जीवन, समाज और संसार इस के बिना इस प्रकार का हो जायगा जिस प्रकार कि सूर्य के बिना समस्त ग्रह-नक्षत्र मण्डल, आचार्य के बिना समस्त गुरुकुल, राजा के बिना समस्त प्रजा और शरीरात्मबल के बिना मानवीय काया। इसलिये हमें इस अद्भुत गुण देने वाले-सर्वौषधवत् संजीवन रस की प्राप्ति-रक्षा-वृद्धि और उत्तम उपयोग के लिये निरन्तर यत्नशील होना चाहिये।

—✻—

प्रो० बालकृष्ण जी का परिचय

[श्री किशोर सिंह चोपड़ा

डा० बालकृष्ण का जन्म सन् १८८२ में मुल्तान नगर में एक मातिशय सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता उन्हें उच्च शिक्षा देने का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते थे इसी लिए उन्हें एक स्थानीय दर्जी के यहां शागिर्द रूप में काम सीखने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु बालक बालकृष्ण एक महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही इस लोक में भेजे गये थे। उच्च शिक्षा की उत्कट इच्छा ने उन्हें दर्जी का काम छोड़ने के लिए प्रेरित किया और वे अदम्य उत्साह के साथ अध्ययन में लग गये। D. A. V. कौलिज लाहौर में सन् १९०८ में अपनी शिक्षा समाप्त करके, छात्रवृत्तियों की सहायता से उन्होंने पञ्जाब विश्वविद्यालय में गवर्नमेंट कालिज से इतिहास के M. A. की उपाधि प्राप्त की। इस परीक्षा में वे पञ्जाब विश्वविद्यालय में सर्व प्रथम आये।

इस शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के साथ साथ वे स्थानीय आर्य समाज के कामों में भी अत्यधिक क्रियात्मक भाग लेते थे। उनकी बौद्धिक शक्ति एवं आर्यसमाज में अत्यधिक रुचि ने शिक्षा के क्षेत्र में उनके लिये मार्ग संशोधन का कार्य किया और वे गुरुकुल कांगड़ी (हरद्वार) में क्रमशः उपाध्याय, उपाचार्य, आचार्य और आखिर में मुख्याधिष्ठाता के पद पर नियुक्त हुए और अपनी अत्यधिक योग्यता के बल पर वे आर्यसमाज के एक प्रमुख नेता बन गये।

बाद में वे इङ्गलैण्ड भी गये और सन् १९२२ में लण्डन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र के पी. एच. डी की उपाधि प्राप्त की। वहां से लौट कर वे कोल्हापुर स्टेट (बाम्बे प्रसीडेन्सी) में राजारामकालिज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। उस उच्चपद पर लगभग १८ वर्ष तक कार्य करते रहे और १९४० के अक्टूबर मास की २१ वीं तिथि की मङ्गल रात में उनकी महान् आत्मा इस नश्वर संसार को छोड़ कर स्वर्ग सिधारी।

डा० बालकृष्ण का कर्मठ जीवन हमारे लिये एक आदर्श उपस्थित करता है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप कोल्हापुर रियासत बॉम्बे यूनिवर्सिटी में एक मुख्य शिक्षा केन्द्र बन गया था। आज राजाराम कॉलिज में एक बड़ी तादाद में आर्ट्स और साइन्स में योग्य व्यक्ति तय्यार होकर निकल रहे हैं। उन्होंने कोल्हापुर में एक लॉ कॉलिज एवं ट्रेनिङ्ग कॉलिज की भी स्थापना की थी और एक पृथक् विश्वविद्यालय स्थापित करने के विचार से वहां एक मैडिकल कालिज खोलने की भी कोशिश कर रहे थे। वे बम्बई विश्वविद्यालय के एक योग्य सदस्य थे। इतिहास - अर्थशास्त्र, राजनीति, संस्कृत, हिन्दी और मराठी के उत्तम लेखक थे। उनकी अनेक पुस्तक पाठ्य-पुस्तकों के रूप में बाम्बे यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती हैं।

सन् १९३३ में अन्तर्राष्ट्रीय सर्व धर्म सम्मेलन में आर्य-समाज के प्रतिनिधि बनकर उपस्थित होने के लिये अमरीका भी गये। न्यूयार्क, शिकागो, लण्डन और अन्य बड़े नगरों की—समितियों के तत्वावधान में दिये गये उनके सार्वजनिक व्याख्यान अधिक प्रसंशा एवं आलोचना के विषय बने।

उन्होंने कोल्हापुर में एक आर्य समाज और गुरुकुल भी स्थापित किया। आखिरी दम तक उन्होंने हिन्दी का प्रचार करते हुए आर्य समाज की सेवा की। अछूतोद्धार और शुद्धि के सम्बन्ध में उनका किया हुआ महान् कार्य सम्पूर्ण महाराष्ट्र में विख्यात है। कोल्हापुर नरेश और बड़ौदा नरेश गायकवाड़ उनका बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें अपना गुरु मानते थे। वे अपने सम्पर्क में आने वाले सब व्यक्तियों के आदर और स्नेह के पात्र थे। ५८ साल की अल्पायु में उनके असामयिक देहावसान से कोल्हापुर के शिक्षा विभाग और आर्यसमाज को बड़ी हानि पहुंची है। वे आज अपने बड़े परिवार और हम सब को दुःखी करके परलोक सिधार चुके हैं।

(पृष्ठ १ का शेष)

हम हमारे उस कर्तव्य की याद दिलाता है। दीपमालिका का प्रकाशित होता हुआ एक २ दीपक अपने टिम टिम के मद्गान में यही कहता है कि भोले प्राणी! हमारे इस प्रकाश में देख तेरे अन्तस्थल का अन्धकार दूर हुआ है या नहीं, आंखे खोल और इस प्रकाश के सहारे आगे बढ़ने का प्रयत्न कर। काश! कि आज का भारतीय समाज इस संदेश को सुन पाता।

दीपमालिका का त्यौहार मिलन का त्यौहार है, आज के दिन राम और भरत, एक मां के लड़के वर्षों के बाद मिले थे। आज भारत मां के करोड़ों पुत्र जो उसके एक ही स्तन्य दुग्धपान करते हैं- एक ही हाथ से मधुर अन्न खाते हैं-उसकी छाती पर खेल कूद कर इतने बड़े हुए हैं—आज एक दूसरे से पृथक् अपने झंडे उठाये भिन्न भार्गों पर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। जो मार्ग एक को इष्ट है-वह दूसरे को हेय है। जिस मार्ग पर चल कर १ व्यक्ति स्वतन्त्रता के मन्दिर पर पहुंचने का विचार रखता है दूसरा उसे अपने पक्ष की स्वतंत्रता के लिये घातक समझता है। अधिकार लोभ, सांप्रदायिक वैमनस्य और जाति भेद इन सब ने मिल कर भारतीय आंगन को विषमय एवं विद्वेष पूर्ण बना दिया है। हिमाचल की जिन उत्तुंग शृंखलाओं से सभ्यता का प्रकाश निकल कर सुदूर पूर्व एवं पश्चिम में फैल गया था, आज उसी हिमाचल के अधिवासियों की पवित्र भूमि में पश्चिमी सभ्यता का प्रकाश व्याप्त हो रहा है। जो कभी शिक्षा और ज्ञान का आधार समझा जाता था आज उसी के खाली कोश को भरने के लिये पश्चिमीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। हमारी अवनति की यह पराकाष्ठा है! दीपावलि के इस प्रकाश में—हमें चाहिये कि हम साम्प्रदायिकता के इस अंधकार को मिटा कर भगवान की सब प्रजा में व्याप्त एक ही आत्मा का साक्षात्कार करें और एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला हिन्दु और मुसलमान का भाव मिटा कर अपने देश की आजादी के लिये प्रयत्न करें। जिस दिन इस तत्व को समझ लिया जायगा—उस दिन हम सच्चे अर्थों में दीपावलि मना रहे होंगे।

गुरुकुल

१७ कार्तिकशुक्रवार १९९७

प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

गुरुकुल में ता० २२ अक्टूबर को कोल्हापुर से तार आया कि प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी का देहावसान हो गया है। सुन कर दुःख छागया और कुछ आश्चर्य भी हुआ। जिन का कि सम्बन्ध गुरुकुल से आचार्य और मुख्याधिष्ठाता के रूप में था- ऐसे पुरुष के देहावसान से दुःख होना तो स्वाभाविक ही था। परन्तु उनकी आयु अभी इतनी अधिक नहीं थी इस लिये कुछ आश्चर्य हुआ। परन्तु उन्हें दमे की बीमारी थी-यह भी हम जानते थे।

इस शोक समाचार को सुन कर मुझे अपनी विद्यार्थी काल की बहुत सी बातें याद आगयीं क्योंकि मै प्रो० बालकृष्ण जी का ही विद्यार्थी था। श्री बालकृष्ण जी इतिहास, अर्थ शास्त्र और राजनीति के उपाध्याय (प्रोफेसर) थे और मैं इसी विषय का विद्यार्थी था। अपने खास विषय के उपाध्याय से विद्यार्थियों का कुछ विशेष सम्बन्ध होता ही है। एक बार योग सीखने की धुन में मैंने गुरुकुल से भागने का सोच लिया था, उस समय प्रो० बालकृष्ण जी का अति सहृदयता पूर्ण व्यवहार ही था जिसके कारण मुझे रुक जाना पड़ा। अभी उनके प्रेम पूर्ण व्यवहार की कई बातें स्मरण आती हैं और ऐसे महानुभाव नहीं रहे हैं—यह याद करके कुछ व्यथा सी होती है।

परन्तु प्र. बालकृष्ण जी की मुख्य विशेषता यह थी कि उन में एक उत्तम बुद्धि और प्रतिभा थी। पढ़ने लिखने का इतना अधिक शौक था कि उसे व्यसन तक कहा जा सकता था। उनकी यही विशेषता थी— जिसने उन्हें गुरुकुल का आचार्य तक बनाया तथा गुरुकुल के बाद वे इंगलैण्ड जाकर अर्थशास्त्र के पी. एच. डी. बने और कोल्हापुर के राजाराम कालेज के प्रिन्सिपल पद पर काम करते हुए अपना जीवन समाप्त किया। वे घर से गरीब थे और घर वालों का विचार था कि वे दरजी का काम करके अपना जीवन व्यतीत करें किन्तु थोड़ा ही पढ़ने पर उन की बुद्धि और प्रतिभा ने अपना रूप दिखाया और वे लगातार वजीफा पा २ कर कालिज तक पढ़ते गये और एम. ए. की परीक्षा में पंजाब यूनिवर्सिटी में पहले आये। कालेज जीवन में ही वे आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो चुके थे और आर्यसमाज का काम करने लगे थे। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर जब इनका पहला ही व्याख्यान हुआ तो वह इतना पसन्द किया गया कि तब से वे एक वक्ता के तौर पर भी प्रसिद्ध होगये। उनका डीलडौल भव्य था और स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद उन्हीं के विषय में कहा जा सकता है कि जब वे गले में पीला दुपट्टा डाल कर आचार्य की हैसियत से घूम रहे होते थे तो बहुत शोभायमान होते थे।

गुरुकुल में आकर उन्होंने संस्कृत का भी अध्ययन किया। अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों की जगह संस्कृत के पारिभाषिक शब्द खोजने और बनाने में उनकी बहुत दिलचस्पी थी। पाठकों को शायद आश्चर्य हो कि उन्होंने 'अग्निहोत्र व्याख्या' नाम की पुस्तक लिखी थी जिसमें अग्निहोत्र के मंत्रों का अर्थ और तात्पर्य बताया गया था। यह उनके संस्कृत और वेद के अनुशीलन तथा प्रेम को प्रकट करता है। वैसे तो उन्होंने अन्य विषयों पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। शायद अर्थशास्त्र पर हिन्दी में एक विस्तृत पुस्तक उन्हीं के द्वारा सर्व प्रथम लिखी गई है। स्कूलों के लिये भारतवर्ष के इतिहास की पुस्तक भी उन्होंने लिखी थी।

इनके विशेष अध्ययन की इच्छा को देखकर पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा ने अपनी तरफ से वजीफा देकर इन्हें इंगलैण्ड पी० एच० डी० होने के लिये भेजा। इंगलैण्ड से पी० एच० डी० होकर लौट आने पर वे पंजाब प्रतिनिधि सभा की किसी सेवा में कई कारणों से नहीं लग सके और पीछे यू० पी० प्रतिनिधि द्वारा संचालित कोल्हापुर के राजाराम कालेज के प्रिन्सिपल हो गये। तब उन्होंने यह उचित समझा कि पंजाब प्रतिनिधिसभा के वजीफे के रुपये को लौटावें और धीमे २ करके उन्होंने वह सब रुपया लौटा दिया। इनकी विद्वत्ता के कारण बम्बई प्रेजीडेन्सी में भी ये शिक्षाविज्ञ के तौर पर प्रसिद्ध होगये थे और अन्तिम दिनों में बम्बई यूनिवर्सिटी के सिण्डीकेट के मेम्बर भी थे।

अपने गुरुकुल के एक भूतपूर्व आचार्य और मुख्याधिष्ठाता के शोक में गुरुकुल में एक दिन विद्यालय और महाविद्यालय बन्द रहे। शोक सभा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ वह 'गुरुकुल' के गत अंक में छप ही चुका है। आशा है, पंजाब के, आर्यजगत् तथा शिक्षा जगत् के अन्य सब परिचित बन्धु भी इस अवसर पर उनके स्मरण करने में और समवेदना प्रकट करने में हमारे साथ होंगे।

परमेश्वर दिवंगत आत्मा को शुभ गति प्रदान करे और उनके परिवार को शान्ति।

आयुर्वेद परिषद् का जन्मोत्सव—

आयुर्वेद प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आयुर्वेद महाविद्यालय की मुख्य सभा "आयुर्वेद परिषत्" का जन्मोत्सव १० नवम्बर ४० तदनुसार २६ कार्तिक को कुलभूमि में मनाये जाने का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर उसकी प्रमुख पत्रिका "आयुर्वेद" का भी एक सुन्दर बृहत् विशेषांक "जन्मोत्सवांक" निकालने का विचार किया गया है। विचारशील लेखकों, भावुक कवियों एवं अवैतनिक रात्रिकों की सहायता अपेक्षित है।

प्रेम

[श्री विद्यालंकार]

प्रेम एक बहुत ही व्यापक वस्तु है। इसके विषय में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यह हमारे सारे जीवन में ओत प्रोत रहता है। केवल इसके रूप में भेद होता है। यही प्रेम बड़ों के प्रति श्रद्धा, भक्ति व आदर का रूप धारण कर लेता है। छोटों के प्रति दया या करुणा में बदल जाता है। बराबर वालों के साथ यह प्रेम या सहानुभूति की शकल में रहता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार, भक्ति, प्रेम, और दया तीनों को ही स्वाभाविक प्रवृत्ति माना गया है। पर यदि इनको प्रेम का ही भिन्न २ अवस्था में एक रूप मान लें, तो कोई हर्ज नहीं। साधारण-बचपन में, मनुष्य में बड़े के अनुकरण की या उनके प्रति आदर प्रवृत्ति देखी जाती है। किशोरावस्था या जवानी में, मनुष्य में श्रद्धा का अंश बढ़ जाता है। उनमें अहंभाव आ जाता है। वह किसी का अनुकरण नहीं करना चाहता। अपनी स्वतन्त्र सम्मति रखता है। इसी समय उसका अपने बराबर वालों से विशेष परिचय होता है। उनसे सम्बन्ध करने की इच्छा होती है। इसके बाद बुढ़ापे में मनुष्य में दया की प्रधानता होती है। वह किसी भी युवक को साहस और वीरता के कार्य की ओर प्रवृत्त होता हुआ देखकर घबराता है। वह उसे इस काम को करने से रोकने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में उसका कोई स्वार्थ नहीं, वह सिर्फ हित की भावना से ऐसा करता है। इसलिये यदि इन तीनों को प्रेम का ही एक रूप मान लें तो कोई आपत्ति न होनी चाहिये। इसकी व्यापकता इतनी ही नहीं, कि यह मनुष्य के सारे जीवन में व्याप्त है। यह न केवल मनुष्यों में अपितु अन्य प्राणियों में भी उपलब्ध होता है। पशुओं में भी एक प्रेमिका के लिये उसी प्रकार लड़ाई होती है, जिस प्रकार मनुष्यों में।

प्रेम एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह कहा जा चुका है, कि यदि इसको व्यापक अर्थों में लें, तो यह जन्म से लेकर मृत्यु तक कायम रहता है। पर इसको जिन अर्थों में साधारणतया प्रयुक्त किया जाता है, उन अर्थों में इस के प्रारम्भ का समय १५ या १६ वर्ष की अवस्था है। इस समय से लेकर यह २५, ३० वर्ष की अवस्था तक किसी भी समय, या इसी बीच में कई बार प्रकट हो सकता है। इसके बाद इसका इतना तीव्र रूप नहीं रहता।

यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, यह कहने से ही यह समझ लेना चाहिये कि यह प्रत्येक के जीवन में अनिवार्य रूप से आता है। संसार का कोई भी व्यक्ति, इस प्रकार का नहीं ढूंढा जा सकता है, जिसने प्रेम का कभी भी अनुभव और स्वागत न किया हो।

प्रेम अजीब चीज है। 'प्रेम अन्धा होता है' यह उक्ति मशहूर ही है। इस क्षेत्र में अच्छे और बुरे का निर्णय करना लगभग असंभव है। यद्यपि अच्छे बुरे की कसौटी किसी भी क्षेत्र में निर्णीत नहीं हो सकी है, पर इस क्षेत्र में तो इसके लिये कोई नियम बनाने का प्रयत्न करना भी व्यर्थ ही होगा।

एक मनुष्य का किसी भी व्यक्ति से प्रेम हो सकता है। वह व्यक्ति औरों की दृष्टि में, कितना ही कुरूप और गुणहीन हो, पर प्रेमी को संसार में इससे सुन्दर व्यक्ति की कल्पना भी नहीं हो सकती। प्रेमी-अपने कुरूप प्रेम पात्र के लिये जान देने को भी तैयार होता है, छोटे मोटे समर्पणों की बात ही क्या? उदाहरण के तौर पर एक प्रसिद्ध कहानी को ले सकते हैं। लैला और मजनूं की प्रेम कहानी किसने नहीं सुनी। यह जानकर आश्चर्य होगा कि लैला बड़ी ही कुरूप और बुढ़ी थी। पर मजनूं उसी के लिये मरता था। कहते हैं- कि एक बार राजा ने कैस (मजनूं) को बुलाकर बहुत समझाया कि तू इस कुरूप औरत के पीछे क्यों पड़ा हुआ है। मैं तेरा एक अनुपम सुन्दरी से विवाह करा दूंगा। इस का उत्तर जो कैस ने दिया है, वह ध्यान देने योग्य है। कैस ने कहा कि राजन् 'तू कैस नहीं है, अन्यथा ऐसी बात न कहता'। इसी भाव को प्रकट करने वाली कई उक्तियां भी मशहूर हैं। यथा (१) जो जिसके दिल में खुप जाये वो बेहतर है सब में।

(२) संस्कृत के कविशास्त्री श्री हर्ष ने भी इन्हीं भावों को प्रकट किया है :—

चित्रमत्र विबुधैरपि यत्नैः सर्वविहाय बत भूरनुरक्ते।
ग्रामं क्वचिद्यथावस्तु निरूढ़ा सेवसा बलातिथ्याहिचित्तम्॥

(३) सुख है न जाने कहां, चाहे जहां मान लो।
मन अपना है, और मानना भी अपना।

(४) पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा न जातु दुग्धान्मधुनोऽथवाज्यकादपि।

(५) क्रमेलकं निन्दति कोमलेच्छुः क्रमेलकः कण्टकलम्पटस्तम्। प्रीतौ तयोरिष्टभुजोः समायां मध्यस्थता नैकतरोपहासः॥

प्रेम का कारण आकर्षण होता है। यह आकर्षण दो प्रकार हुआ करता है। एक स्वाभाविक आकर्षण, और दूसरा प्रेम आकर्षण। प्रथम का दूसरा नाम Love at first-sight है। इसकी दो तरह से व्याख्या की जाती है।

एक व्याख्या पौरस्त्य विद्वान् करते हैं, उनका कहना है कि हम इस जीवन में देखते हैं कि मनुष्यों में सहवास, उपकारादि से प्रेम हो जाता है। इसलिये First sight Love को यह समझना चाहिये कि यह दो व्यक्तियों के पिछले जन्म के सहवास या किसी अन्य सम्बन्ध का परिणाम है।

पाश्चात्य विद्वान् पुनर्जन्म को पूर्णतया नहीं मानते। अतः उनका कहना है कि इसका कारण यह है कि कई व्यक्ति स्वाभाविक तौर पर आकर्षक होते हैं। पर यह व्याख्या अधूरी है। यदि कई व्यक्ति स्वाभाविक तौर पर आकर्षक होते हैं, तो उनके प्रति सब क्यों आकृष्ट नहीं होते? पर हम इस विवाद में नहीं पड़ते कि इन दोनों में से कौनसा

सिद्धान्त (Theory) ठीक है। यह सर्वसम्मत है कि स्वाभाविक आकर्षण भी होता है।

इस आकर्षण की विवेचना नहीं की जा सकती। यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक अपने प्रेमपात्र के किस विशेष गुण पर मुग्ध है, बस इतना ही कहा जा सकता है, कि वह मुग्ध है।

दूसरा आकर्षण कृत्रिम होता है, या यह कह सकते हैं कि वह किसी विशेष गुण या परिस्थिति के कारण हुआ करता है। उदाहरण के लिये—१ दो व्यक्ति यदि बराबर आयु के गुरु शिष्य बने हुवे हैं। तो उनमें प्रेम हो जाता है। इसका कारण शिक्षा को कहा है। २. यदि दो व्यक्ति किसी समान मुसीबत में पड़े हों, तो उनमें भी एक दूसरे से अपना दिल खोलने २ प्रेम हो जाता है। कई बार एक व्यक्ति किसी दूसरे की किसी क्षेत्र में विशेषज्ञता को देखकर मुग्ध हो जाता है। ४. कई व्यक्तियों की क्रिया और व्यवहार ऐसा होता है, जो हरेक ही-व्यक्ति को आकर्षित करता है। उनमें जो भी-किसी-प्रकार का सम्बन्ध रखता है, वह यही समझता है, कि यह मुझ से प्रेम करता है। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति बहुतों के प्रेमपात्र बने होते हैं। साधारणतया अपने इन प्रेमियों में से किसी एक पर उनका भी आकर्षण हो जाता है।

इन दोनों प्रकार के आकर्षणों में से किसी के लिये भी यह न समझना चाहिये कि यह दोनों में होता है। ऐसी अवस्था बहुत कम समय होती है, कि दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हों। बहुधा एक प्रेमी और एक प्रेमपात्र बना होता है। ऐसी अवस्था में प्रेमियों की मानसिक अवस्था बड़ी ही अजीब होती है। वह अपने प्रेमपात्र को हरेक तरह से खुश करने का प्रयत्न करता है। दिन रात उसके स्वप्न लेता रहता है, नाना-कल्पनाएं करता है। इस आकर्षण की अवस्था को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक सफल आकर्षण, और दूसरा असफल आकर्षण अर्थात् जब केवल इकतर्फा आकर्षण हो। इस असफल आकर्षण की भी दो श्रेणियां हैं। इनमें से एक प्रेमी तो बिलकुल निराश हो जाते हैं। और दूसरे वे हैं जिनको अन्त तक आशा बनी रहती है। अब इन दोनों प्रकार के प्रेमियों की मानसिक अवस्था पर थोड़ा सा विचार करेंगे।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के वाइस-चान्सलर गुरुकुल में—

गतसप्ताह कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति (वाइस चान्सलर) तथा बंगाल धारा सभा के प्रधान (स्पीकर) श्री एम. अज़ीज़ुल हक़ कुलभूमि में पधारे। श्री मुख्याधिष्ठाता जी व आचार्य जी के साथ उन्होंने सारे गुरुकुल का निरीक्षण किया। इसके बाद एक सभा हुई जिसमें उन्होंने हिन्दु मुस्लिम समस्या पर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि हिन्दु मुस्लिम समस्या विशुद्ध राजनैतिक समस्या है। इस समस्या को शिक्षा द्वारा हल करने के लिये वे आजकल देश भर की प्रमुख शिक्षा संस्थाओं का अवलोकन कर रहे हैं।

इस समस्या का हल कठिन नहीं है क्योंकि भारत की मुख्य विशेषता समन्वय है। यहांपर यूनानी, शक, हूणी आदि अनेक जातियां आयी-नाना धर्म आये उन सबका यहां समन्वय हो गया। इसी तरह हिन्दुमुस्लिम समन्वय भी कठिन नहीं किन्तु कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के कारण, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या म्यूनिसिपैलिटी के आठ, दस स्थानों के लिये हजारों आदमियों में यह कृत्रिम मतभेद पैदा किया जाता है। हिन्दुमुस्लिम झगड़ों को अनावश्यक रूप से बढ़ाया जाता है। आखिर, झगड़े हिन्दु हिन्दु में और मुसलमान मुसलमान में भी तो होते हैं किन्तु उन झगड़ों को कोई गम्भीर समस्या नहीं समझता। किन्तु हिन्दुमुसलमान के झगड़ों को एकदम महत्व दे दी जाती है। अन्त में आपने यह आशा प्रकट की कि इस विश्वविद्यालय और कलकत्ता विश्वविद्यालय में आज जो सम्बन्ध बना है-वह आगे भी बना रहेगा।

अन्त समय में पने दोनों विश्वविद्यालयों के प्रकाशित साहित्य के विनिमय की प्रार्थना भी स्वीकार करली।

दो गीत

मैं भी उत्सव आज मनालूं।
बहुत दिनों तक अश्रु बहाए
रोदन में त्योहार बिताए
आज उदास करों से अपने मैं भी अपनी कुटी सजालूं।

कभी कभी आती दिवाली
और सदा तो रजनी काली
जो न पायगी अब यह ज्वाला मैं भी दीपक एक बनालूं।

सब ने दीप अनन्त जलाए
अपने युवक हृदय बहलाए
अपनी छोटी सी कुटिया में मैं छोटा सा दीप जलालूं।

[२]

जल मेरे लघु दीपक जल।
मेरी इस कुटिया में सूनी
बाहर से अंधियाली दूनी
तू अपना कर्तव्य निभा, रे अपनी ज्योति जगा निर्मल!

मेरा स्नेह तुझे दे जीवन
जिसमें पाकर मादक यौवन
कुटिया को आलोकित करदे तेरी दीप शिखा चंचल!

ओ! मेरे दीपक सोने के
भूषण कुटिया के कोने के
चिर अतीत के क्लेश भुलादे तेरी यह जगमग झलमल!

"विराज"

प्रभात की रश्मियों में

(ले० 'एकलव्य')

[६ अक्तूबर, ४० का दिन]

मेरठ शहर से १२ मील दूर, गङ्गा की नहर के किनारे कुछ तम्बू और एक पंडाल दृष्टिगोचर होते हैं. गांवों के लोग दल के दल बनाकर आ रहे हैं—खुला नीला आकाश, सूरज की झिलमिलाती धूप, गन्ने के खेत, ग्राम का दृश्य !

एक तरफ दो छोटे से कमरे, कमरों की छत पर एक फूस की कुटिया—यहां कौन रहता है—चलो ऊपर चढ़ कर देखें—ओह, ये कोई मुनि वेद के ग्रन्थ खोले मनन में लीन हैं—ये हैं वैदिक साहित्य के अग्रतम विद्वान् त्याग और साधना की साधु मूर्ति श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार।

उत्सव बड़े साज से हो रहा है। प्राचीन संस्कृति के प्रेमियों का यह सम्मेलन समारोह कितना स्फूर्तिप्रद एवं सुखदायक है।

आइए, आपको मण्डप में ले चलें। श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यावाचस्पति, श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी बी. ए, श्री पं० भगवद्दत्त वेदालंकार सबके सब शोभायमान हैं।

वह देखिए आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी और हरिजनों के लिए आमरण उपवास करने वाले श्री भगत फूलसिंह जी अभी यान से उतर कर चले आ रहे हैं।

मण्डप के एक पार्श्व में विद्याध्यायी ब्राह्मणों के लिए कुटिया तैयार हो रही हैं। यहां विभिन्न आठ विषयों के विद्वान् अपनी अपनी विद्याओं का अध्ययन करेंगे।

अल्प समय में ही आश्रम ने आशातीत उन्नति करली है। गोशाला तैयार हो गई है- कुछ पशु आ चुके हैं। आशा है कि दानी महानुभावों की सहायता से यह भी सम्पन्न हो जाएगा।

अस्थायी तौर से एक कोष्ठ को पुस्तकालय का रूप दे दिया गया है। शीघ्र ही पुस्तकालय का बनना आरम्भ हो जायगा। भवन के लिए दिल्ली के विश्रुत बन्धुद्वय श्री ला० रलाराम मलाराम जी ५०००) व्यय करेंगे। पुस्तकालय का नाम आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री आचार्य रामदेव जी की स्मृति में रामदेव पुस्तकालय रखा जायगा। भवानी कलां मेरठ के निवासी स्वर्गीय श्री सेठ जयन्ती शरणजी ने अपनी बहुमूल्य पुस्तकें आश्रम के पुस्तकालय के लिए दी हैं।

आशा है दानी भाई पुस्तकालय की यथा शक्ति पुस्तकादि से सहायता करेंगे।

उत्सव से पूर्व श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के मेरठ में व्याख्यान हुए। हजारों की संख्या में जनता ने उन्हें सुना और बौद्धिक एवं आत्मिक लाभ प्राप्त किया।

आश्रम में तीन विद्याओं के अध्ययन का कार्य शुरू हो चुका है।

नक्षत्रविद्या विभाग के अध्यक्ष श्री सत्यबन्धु जी भारद्वाज हैं। आप डी. ए. वी कॉलिज लाहौर के स्नातक हैं तथा अत्यन्त योग्य एवं उत्साही कार्य कर्त्ता हैं।

ललितकला विभाग के अध्यक्ष श्री सत्यभूषण जी 'योगी' वेदालंकार हैं। आप प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री आचार्य रामदेव जी के सुपुत्र हैं। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं। एवं हिन्दी के उदयीमान कवि हैं। आपका प्रथम कविता-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

समाज शास्त्र विभाग की अध्यक्षा कुमारी प्रभा शोभा जी हैं। आप श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की सुपुत्री हैं तथा कन्या गुरुकुल देहरादून में स्नातक श्रेणी में अध्ययन कर रही हैं। आपके बारे में इतना कहना ही पर्याप्त है कि आपको अपने विद्वान् पिता के तुल्य ही प्रतिभा का वरदान मिला है।

वेद विभाग के अध्यक्ष स्वयं श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार हैं। वे अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण का भाष्य कर रहे हैं। अथर्व वेद के प्रथम काण्ड का भाष्य हो चुका है- शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

अन्त में संस्कृति प्रेमी जनता से प्रार्थना है कि वह स्वयं आकर आश्रम को देखें-और आर्यसमाज के विद्वान् तपस्वी की साधना का साक्षात्कार करें आने का पथ सीधा है—मेरठशहर स्टेशन पर उतरें-बागपत दरवाजे पर पहुंचें-वहां से आपको 'जानी' जाने वाली लारियां और तांगे मिलेंगे। जो आपको 'जानी' पुल पर उतारेंगे। यह पुल गङ्गा की नहर पर बना है। यहां तांगों का अड्डा है। यहां से आश्रम दो मील है।

कलकत्ता निवासी श्री मिहिर चन्द्रजी धीमान ने आश्रम के प्रचारकार्य के लिए एक मोटर दान दी है तथा २५) मासिक देते रहने वायदा किया है। इससे आश्रम के प्रचार कार्य में बहुत सरलता हो गई है।

पुरातन वैदिक संस्कृति को क्रियात्मक रूप से दुनिया के सन्मुख दिखाने के लिए वैदिक साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए-ऋषि के संदेश को दिग्दिगन्त में गुंजाने के लिए आश्रम की स्थापना हुई है।

यह विद्या और संस्कृति की रश्मियां फैला कर अन्धकार जगती में प्रभात लाएगा- इस लिए यह प्रभात आश्रम है।

गुरुकुल--समाचार

१५ कार्तिक को दीपावली का पुनीत त्योहार बड़ी धूम धाम से मनाया गया। इस वर्ष ब्रह्मचारियों ने आमोद प्रमोद के स्थान पर इस उत्सव को वास्तविक लक्ष्मी पूजा के रूप में मनाया। खेलें भी की गईं। हॉकी पादकन्दुक व हस्तकन्दुक इत्यादि के साथ देसी खेलें विशेष रूप से की गईं, कुश्ती लम्बीकूद, ऊंचीकूद तथा अन्यायुक्त खेलों में विजयी ब्रह्मचारियों को पारितोषिक दिया गया। सायंकाल श्री आचार्य जी के सभापतित्व में सभा की गई।

अगले दिन दयानन्द निर्वाण दिवस के उपलक्ष में सभा हुई, इसमें आर्यसमाज की वर्तमान अवस्था तथा उसके भावी कार्यक्रम पर विचार किया गया। अन्त में अन्य उपाध्यायों तथा ब्रह्मचारियों ने वर्तमान क्रान्ति के अग्रदाता महर्षि के चरणों में अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलियां समर्पित कीं।

चौधरी हुलासराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत
Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)
[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]
वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २४ कार्तिक १९९७; ८ नवम्बर १९४० [संख्या ३०

दार्शनिक दयानन्द

[श्री धर्मपाल]

बहुत से लोग बिना तात्विक दृष्टि से निरीक्षण किए ही वैदिक धर्म को अदार्शनिक तथा ऋषि दयानन्द को भी इससे अछूता ही बता देते हैं। लेकिन ऋषि दयानन्द की फिलोसफी थी, और अत्यन्त उत्कृष्ट थी। उन्होंने संसार में तीन चीज़ों की सत्ता मानी थी। जिसे वैदिक त्रैतवाद का नाम दिया था। अर्थात्-ईश्वर जीव और प्रकृति।

इससे पहले हिन्दुस्तान के तख्ते पर दो और आचार्य हो चुके हैं-जिनका अपना दर्शन है। एक तो शंकराचार्य और दूसरे रामानुजाचार्य। शंकराचार्य जगत् को मिथ्या बताते हैं, और एक ब्रह्म की सत्ता का ही प्रतिपादन करते हैं।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि किमर्थं ग्रन्थकोटिभिः
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥

इसे उन्होंने 'अद्वैतवाद' का नाम दिया है लेकिन वह इसका खंडन स्वयं कर देते हैं। एक माया की सत्ता भी उन्होंने स्वीकार की है, जिस से द्वैत वाद आजाता है।

रामानुजाचार्य अपने सिद्धान्त को विशिष्ट अद्वैत नाम देते हैं।

ऋषि दयानन्द ने त्रैतवाद के सम्बन्ध में वेद के प्रमाण पेश किये थे—

द्वा सुपर्णा सयुजाः सखाया समानंवृक्षं परिषस्वजाते
तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यः अभिचाकशीति

कितनी सुन्दर उपमा के ढंग से इस सिद्धान्त को कहा गया है। प्रकृति को एक सुन्दर वृक्ष बताया गया है, उस वृक्ष पर दो पक्षी जो हमेशा रहते हैं, और मित्र हैं, बैठे हुए हैं। उन में से एक स्वादु फल का भोग करता करता है, और दूसरा न खाता हुआ केवल देखता है। वो दो पक्षी जीवात्मा तथा परमात्मा हैं, और वृक्ष प्रकृति है।

सृष्टि की उत्पत्ति में उन्होंने ३ कारण बताये हैं। जिस मंत्र से स्पष्ट हैं।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः
अजोह्येको जुषमाणो नियेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः ॥

प्रकृति परमात्मा और आत्मा तीनों किसी से पैदा नहीं किये गये। यह तीनों सारे संसार के कारण हैं। इन का कोई कारण नहीं है। और नित्य हैं। जीवात्मा प्रकृति का भोग करता है और इस में लीन हो जाता है, दूसरी तरफ परमात्मा न इसका भोग करता है, और नांही इसमें फंसता है।

सृष्टि के तीन कारण हैं—

१. उपादान कारण २ निमित्त कारण ३ निमित्तोपादन कारण। उपादान कारण परमेश्वर है जो सब पर शासन करता है। और जो प्रकृति में से सृष्टि पैदा करता है और फिर इन तत्वों में लय कर देता है। निमित्तोपादान कारण जीवात्मा है। यह परमात्मा की बनाई सृष्टि में से भिन्न २ पदार्थों को लेकर उनको भिन्न २ आकार दे देता है। प्रकृति भौतिक कारण है। सब प्रकार का ज्ञान, शक्ति, उपकरण, समय, स्थान जो किसी पदार्थ को बनाने के लिये जरूरी हैं, साधारण कारण है।

आरम्भ में सारा संसार अंधकार में घिरा था 'तमआसीत्तमसा गूढमग्रे'। इस में से परमात्मा ने इस संसार को बनाया। वर्तमान संसार १,९६,०८,५२,९२७, साल पहले बना था, और यह २, ३३, ३२, २७, ०१२ साल और रहेगा। इसके बाद यह संसार लय हो जायगा और फिर पैदा किया जायगा।

वेदान्ती यह विश्वास करते हैं, कि संसार मिथ्या है यह पानी के बुलबुले के समान है, पर ऋषि दयानन्द के मत में यह वास्तविक है। वेदान्तियों के पास कोई प्रमाण नहीं है।

वेद हमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और तारों के विषय में विस्तार से बताते हैं। और तारों के विषय में भारतीय विज्ञान इतना पूर्ण हो चुका है कि एक ज्योतिषी अनेक साल पहले बता सकता है, कि एक विशेष तारे की उस समय क्या स्थिति होगी। जब सारा संसार एक नियम और व्यवस्था में चल रहा है तो कैसे अवास्तविक हो सकता है। मध्यकाल में भारतीय दार्शनिक संसार को मिथ्या बताकर उसे न रहने योग्य बताते थे। स्वामी दयानन्द ने हमें बताया कि संसार सत्य और रहने योग्य है। और हमें आराम से रहना चाहिए।

स्वामी जी ने देखा कि जाति पद दलित है, गरीब हो गई है। उन्होंने इसे शक्ति-शाली बनाने का ध्येय बनाया। उन्होंने मनुष्यों को व्यापार और व्यवसाय में उन्नत करने के लिये उभारा। उन्होंने कहा-धन इकट्ठा करना चाहिए पर उसका दुरुपयोग बुरा है, उसे दूसरे की भलाई में लगाना चाहिए, और परमात्मा में श्रद्धा रखनी चाहिए।

संसार के विभिन्न मतों में मुक्ति के विषय में बहुत मतभेद है। ईसाई मुसलमान और यहां तक कि हिन्दुओं में भी यह विचार घर किये हुए हैं कि स्वर्ग एक विशेष स्थान है, मुक्तात्मा वहां जाकर निवास करती है। Holy Bible में और कुरान में हम स्वर्ग का वस्तुतः स्पष्ट वर्णन करते पाते हैं। उन में जीवात्मा को सब सांसारिक पदार्थ मिलने का विश्वास प्रकट किया गया है। जैसे, शराब, स्त्री और दूसरे पदार्थ। परन्तु ऋषि दयानन्द का स्वर्ग का लक्षण बिल्कुल विभिन्न है। वे कहते हैं, कि स्वर्ग भौतिक सुखों से बढ़ कर है। जब हम मरते हैं, दफना दिये जाते हैं, या गाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार भौतिक शरीर आग में या कीड़ों से खत्म कर दिया जाता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है-भौतिक पदार्थ हमें सन्तुष्ट नहीं कर सकते। आत्मा रहती है, परन्तु आत्मा कभी भी शराब आदि का उपयोग नहीं कर सकता। यह आत्मिक रूप में कुछ उत्तम चीज चाहती है, यह ईश्वर के साथ पवित्र सम्बन्ध स्थापित करती है, इस प्रकार ऋषि दयानन्द के कथनानुसार जब आत्मा मुक्ति प्राप्त करता है, तो सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पा जाता है। यह आवागमन के चक्कर से छूट जाता है। न जन्म लेता है न मरता है।

ऋषि दयानन्द के अनुसार मुक्ति कुछ निश्चित वर्षों की अर्थात् सान्त है। जब यह अरसा समाप्त हो जाता है तब आत्मा फिर पैदा होकर अपने कर्म का फल भोगता है। परन्तु आत्मा बन्धन में क्यों है इस का कारण स्वामी जी बताते हैं कि अज्ञानता इसका कारण है। जो पापों का स्रोत है यही मनुष्य को परमात्मा के बजाय अन्य की पूजा में लगाता है, उसकी मस्तिष्क सम्बन्धी शक्तियों को क्षीण कर देता है। जिसका परिणाम पीड़ा और कष्ट है।

इस प्रकार ऋषि के अनुसार मुक्ति का सब से सस्ता तरीका अज्ञान का दूर करना है।

इतना तत्व आंखों के सामने होने पर भी ऋषि को अदार्शनिक कहने वाले को क्या औषधि दी जा सकती है। ऋषि ने वेद को स्वतः प्रमाण मानते हुए उसके अनुसार अपने दर्शन की रचना की है और संसार के सब पहलुओं पर स्पष्ट विचार किया है।

[दयानन्द निर्वाण दिवस पर साहित्य परिषद् में पठित - सं०]

भारत की एक नवीन सेविका होमियोपैथी

[इस लेख माला के लेखक श्री डाक्टर ओम्प्रकाश जी विद्यालङ्कार होमियो पैथी के विद्वान् हैं। गत वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय में इस विषय पर आपके अनेक व्याख्यान कराए गए थे। हम पाठकों के लाभ के लिये उनके विचारों को यहां प्रकाशित कर रहे हैं। स०]

[१]
भारत और सेविका

किसी समय हमारा यह भारतवर्ष देश भूमण्डल के सब देशों से अधिक सुशिक्षित, शक्तिशाली, धनधान्य समृद्ध तथा परम सुखसम्पन्न देश था। उस समय (राम राज्य के समय) इसके वासी गोस्वामी तुलसी दास जी के शब्दों में निम्न प्रकार के होते थे:—

"अल्पमृत्यु नहिं कवनउ पीरा,
सब सुन्दर, सब विरुज शरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना,
नहि कोउ अबुध न लक्षण हीना।"

भारत का यह अद्वितीय उत्कर्ष महाभारतकाल से पहिले तक तो बहुत कुछ बना ही रहा परन्तु तबसे इसका शतमुख विनिपात प्रारम्भ हो गया। आज भारत एक पराधीन देश है। इसमें विदेशीय राज्य के साथ २ अशिक्षा, दरिद्रता तथा रोग-राक्षसों का साम्राज्य भी चिरकाल से स्थापित हो चुका है। परन्तु, चूँकि:—

"कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततोवा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण"

के अनुसार किसी का समय एकसा नहीं रहा करता; अतः भारत का भाग्य चक्र भी एकबार रसातल को छूकर अब ऊपर उठने की दिशा में गति करने लग गया है।

आज भारत में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये जो भगीरथ प्रयत्न हो रहा है उससे कौन विज्ञ पुरुष अपरिचित है? शिक्षा के प्रचार के लिये यत्र तत्र सर्वत्र बहुत से शिक्षणालय खुल हो चुके हैं। वैदिक सभ्यता को पुनरुज्जीवित करने के लिये प्रान्त प्रान्त में गुरुकुलों की स्थापना भी हो चुकी है। भारत के दारिद्र्य को दूर करने के लिये भिन्न २ प्रकार के उद्योग-धन्धे भी दिन प्रतिदिन जारी किये जा रहे हैं तथा भारत के रोग-ग्रस्त बलहीन जनता के दुःख निवारण करने के लिये हमारी सरकार की ओर से नगर २ में हजारों अस्पतालों का जाल सा बिछाया जा चुका है।

यह सब कुछ होते हुये भी भारत का, अधोगति के गर्त से कुछ विशेष उद्धार हो पाया है या नहीं इसका निर्णय करना हमारे लिये एक कठिन समस्या है। हमें तो आज भी उस की दशा लगभग वैसी ही प्रतीत होती है जैसी कि आज से पचास वर्ष पूर्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित "भारत दुर्दशा" नाटक में चित्रित पाई जाती है। आज भी भारत में अशिक्षा का अन्धकार

अमावस्या की निशा के समान छाया हुआ है, आज भी भारत दरिद्रता के पङ्क में आकण्ठ निमग्न है तथा आज भी भारत को रोग राक्षसों ने चारों ओर से घेर रखा है।

अशिक्षा, दरिद्रता तथा रोग राक्षसों की गुटबन्दी ने भारत को किस प्रकार ग्रस्त कर रखा है इसकी कुछ कल्पना देशों की मृत्यु तालिका के अवलोकन से सहज में ही हो सकती है। प्रायः इन तीन लुटेरों द्वारा ही भारत के बीस सहस्र लाल प्रतिदिन लूट लिये जाते हैं। इन तीन संकटों के कारण ही भारत को इतनी बड़ी मनुष्य संख्या को प्रतिदिन सीधा स्वर्ग का टिकट कटा लेना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों भगवान ने भारत सन्तान को इन शिकारियों के पञ्जे से शीघ्र से शीघ्र मुक्ति दिलाने के लिये ही भारतवासियों की औसत आयु २२ से ३२ वर्ष तक की नियत करदी है जबकि उसी भगवान की पश्चिमीय देशों की सन्तान ४४ से ५१ वर्ष तक की औसतन आयु का उपभोग कर रही है।

शिक्षा के क्षेत्र में आज कल, जो थोड़ी बहुत उन्नति हुई है वह अवश्य प्रशंसनीय है, परन्तु उस पर भी आज केवल ७ प्रतिशत जनता ही शिक्षित हो पायी है। इस नगण्य सी शिक्षा के प्रचार से भारत का कितना कल्याण हो पाया है इसका परिज्ञान प्राप्त करने के लिये हमारे लिये आवश्यक हो जाता है कि हम सरकारी विश्वविद्यालयों के उन स्नातकों की ओर भी दृष्टिपात करें जो उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी छोटी-२ नौकरियों की टोह में मारे २ फिरते रहते हैं। वैदिक शिक्षा प्राप्त गुरुकुलों के स्नातकों को भी क्या वृत्ति की खोज में दर-दर टक्करें नहीं मारनी पड़तीं? क्या इस प्रकार की शिक्षाओं द्वारा भारत की दीनता दूर करने का प्रश्न हल हो सकता है? क्या शिक्षा के इतने धुंधले प्रकाश में भारत का अधोगति के गर्त से वास्तविक उद्धार हो सकता है?

भारत के दारिद्र्य की कथा कितनी दर्दनाक है इसका पता तो उन्हें लग सकता है, जिन्हों ने भारत के गांवों में प्रतिदिन होने वाला इसका भीषण ताण्डव अपनी आंखों देखा है। कहते हैं "सर्वशून्या दरिद्रता"। इसका अर्थ योरोप तथा अमेरिका के उन सम्पन्न पुरुषों की समझ में तो आ ही नहीं सकता जिन्होंने भारत के ग्रामों की दशा को एकबार भी अपनी आंखों से नहीं देख पाया है। भारत के नगरों की ऊपरी टीपटाप तथा समृद्ध-पुरुषों की विलासिता को देखकर विदेशीय लोगों को भारत के "सोने की चिड़िया" होने का भ्रम आज भी बना हुआ है। उन्हें यह कैसे पता लग सकता है कि इस सोने की चिड़िया के सोने के पंख कभी के एक २ करके बीते जा चुके हैं तथा आज यह पक्षी दाना पानी के बिना जलहीन मीन के समान पड़ा २ तड़फ रहा है!

भारत में रोग राक्षसों ने जो लोम-हर्षण दृश्य उपस्थित कर रखा है उसका भद्दा चित्र भी भारत के ग्राम्य-जीवन पद पद पर ही स्पष्टतया दीख सकता है। देखिये:—वहां कितने हल चलाने वाले हट्टे कट्टे किसान भी प्लेग-द्वारा काल के गाल में पहुंचा दिये जाते हैं तथा कितने नौजवान-जीव हैजे के काम आ जाते हैं? कितने माताओं के लाल शीतला (चेचक) की भेंट चढ़ा दिये जाते हैं तथा कितने बालक ब्रोन्कोन्युमोनिया द्वारा कथावशेष कर दिये जाते हैं? क्या जूड़ी-बुखार द्वारा प्रत्येक गांव प्रतिवर्ष संचित्त-सा नहीं बना जाता क्या इस प्रकार के अनेक संक्रामक रोग-राक्षसों के प्रकोप से हजारों बसे बसाये गांव प्रतिवर्ष शिथावान नहीं कर दिये जाते? क्या इन रोग राक्षसों द्वारा होने वाला हर साल का यह नरसंहार गत महायुद्ध के कुल नरसंहार से संख्या में कुछ कम होता है।

भारत की यह दीन-दशा आज भी विद्यमान है उस सरकार के सुव्यवस्थित राज्य में जिसके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं हो पाता! क्या ऐसे प्रतापी राजा का कर्तव्य नहीं कि वह प्रजा से लिये कर को इस प्रकार व्यवहार में लावे जिससे प्रजा का पूर्ण हित साधन हो सके! महाकवि कालिदास कहते हैं कि राजा दलीप केवल प्रजा की भलाई के लिये ही कर लिया करते थे इसप्रकार जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस खींच कर उसे सहस्रगुणा कर फिर वर्षा के रूप में उन्हीं पर बरसा देता है। क्या हमारी सरकार का भी यह कर्तव्य नहीं कि वह इस उच्च आदर्श को अपना कर अपनी प्रजा के हित-साधन में तत्पर हो जाय? भारत में रोग-राक्षसों द्वारा होने वाले इस नर संहार को प्रतिदिन अपनी आँखों से देखकर भी क्या उसके हृदय पर कुछ भी चोट नहीं पहुंचनी चाहिये। क्या रोज होने वाली हजारों विधवाओं के करुण क्रन्दन से भी उसकी कुम्भकर्णी निद्रा का भङ्ग नहीं हो जाना चाहिये? क्या बिलखते हुये बालकों के अश्रुमुक्ता फलों के आघात से उसकी पीठ पर जूं न रेंग जानी चाहिये?

राजा रामचन्द्र जी लक्ष्मण को उपदेश देते हैं:—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवशि नरक अधिकारी"

क्या अन्तरिक्ष में दिखाई देते नरक-यातनाओं के इन दृश्यों को देख कर भी हमारी सरकार का एक मात्र यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि वह कम से कम इन रोग-राक्षसों द्वारा होने वाले अत्याचार से तो अपनी प्रिय प्रजा का परित्राण करने में प्राणपन से जुट जाय?

हमारी सरकार सदा से यह कहती चली आयी है कि वह प्रजा के सर्वप्रकार के दुःखों को दूर करने में कभी भी कोई कसर उठा नहीं रखती। वह कहती है कि उसने प्रजा की स्वास्थ्य-रक्षा के निमित्त क्या नहीं कर रखा? इसलिये प्रत्येक जिले में लोगों को रोगों के आक्रमण से बचाने के लिये हैल्थ अफसर लोग तैनात रहते हैं, रोगियों को स्वास्थ्य लाभ कराने के लिये नगर २ में तथा कस्बे २ में अस्पताल खुले हुये हैं तथा ग्राम वासियों की चिकित्सार्थ चल अस्पताल (Travelling Dispensaries) लगातार फेरियां लगा रहे हैं।

सरकार की इन सब सेवाओं के लिये उसका हार्दिक धन्यवाद करते हुये हम उससे पूछना चाहते हैं कि क्या उसकी इन सेवाओं द्वारा भारत की असली समस्या भी

(शेष पृष्ठ ६ पर)

गु रु कु ल

२५ कार्तिक शुक्रवार १९९७

धन-शक्ति

[वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में 'गुरुकुल' के गत अंकों में आचार्य अभयदेव जी द्वारा लिखित एक उपदेश माला प्रकाशित होती रही है। प्रस्तुत लेख उसी माला का अगला भाग है। इसमें वैश्यवर्ण पर प्रकाश डाला गया है। —स०]

ब्राह्मण और क्षत्रिय के विषय में कह चुका अब वैश्यवर्ण पर आता हूं। वैश्य के गुण कर्म का ठीक ठीक वर्णन कर सकूं, वैश्य की वृत्ति और कर्तव्यों को भली प्रकार तुम्हें समझा सकूं इसके लिये तुम्हें पहले वैश्य की शक्ति अर्थात् धनशक्ति क्या है, यह कैसे काम करती है इस विषय में कुछ आधारभूत बातें स्पष्टता पूर्वक समझलेना आवश्यक है। मैं तुम्हें यह भी बतादूं कि यद्यपि मैं गुरुकुल में वेद का उपाध्याय होकर आया, और मैंने भी रुपये पैसे की बातें करने वाले दुनियावी आदमियों सा नहीं समझा जाता, तो भी गुरुकुल में मेरा ऐच्छिक विषय अर्थशास्त्र था। और उसमें होशियार था, परीक्षा में बहुत अङ्क मिलते थे। उन दिनों इतिहास—अर्थशास्त्र और राजनीति एक इकट्ठा विषय होता था। यही विषय मैंने लिया था क्योंकि समझता था कि देशसेवा करने के योग्य बनने के लिये यही विषय सर्वश्रेष्ठ है, यद्यपि गणितोपाध्याय मेरी गणित सम्बन्धी प्रतिभा देखकर बहुत चाहते थे कि मैं गणित का विषय लूं। इसलिए यदि मैं अर्थशास्त्र की भी कुछ बातें कहूं तो यह अनधिकार चेष्टा नहीं समझी जायगी। यह तो मुझे कह ही देना चाहिये कि आधुनिक अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास के अध्ययन ने भी मुझे तो 'दुनयावी' कहलाने वाले बनाने की अपेक्षा मुझे परमेश्वर के अधिकाधिक नजदीक पहुंचाने में ही सहायता दी है इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। अस्तु,

धन (अर्थ) क्या है ?

धन या अर्थ या संपत्ति क्या है? इस विषय में आज कल की भाषा के कारण हमारे अन्दर ऐसे अशुद्ध विचार और गलत धारणाएं बैठ गयी हैं कि इस सम्बन्ध में मामूली सी स्पष्ट और सची बातें देखना भी हमारे लिये कठिन होगया है। इसे हमें ठीक करना होगा। मैं अर्थ शास्त्र के कोई विशेष पारिभाषिक शब्द इस्तेमाल नहीं करता, सीधी भाषा में बोल रहा हूं। ये रुपये पैसे धन या अर्थ नहीं हैं। ये तो मुद्रा हैं, सिक्के हैं, चिन्ह हैं जो विनिमय के लिये साधन के तौर पर सहूलियत के लिये बरते जाते हैं। जो काम में आने वाली, उपयोग में आने वाली वस्तुएं हैं वे धन हैं, अर्थ हैं, सम्पत्ति हैं। तो तुम देखो कि तुम्हें जो रुपये पैसे रखने से मना किया जाता है तो इससे तुम्हें धन रखने की मनाही नहीं है। धन तो तुम्हें रखने दिया जाता है। ये तुम्हारे पहिने हुए कपड़े धन हैं, तुम्हारे लोटे थाली आदि बरतन धन हैं, भोजन धन है। यह अन्न देने वाली पृथ्वी और श्वास द्वारा प्राण जीवन देने वाले वायु का आकाश, ये परमेश्वर के दिये हुए धन हैं। ये कोई आध्यात्मिक या आलंकारिक अर्थों में धन नहीं हैं, किन्तु अर्थशास्त्र की भाषा में ही ये धन हैं, जब मैं पहली बार अपने ग्राम में गया और देखा कि ग्राम के पशु-समूह को बल्कि उनके एकत्रित होने के स्थान को 'धन' कहते हैं तो एक स्फूर्ति दायक आनन्द मिला। क्योंकि आधुनिक ग्राम-भाषा जिस परम्परा से आयी है उस समय के लोगों में जो वस्तुओं के शुद्ध दर्शन करने की शक्ति या ज्ञान था उसकी झांकी मिली। सचमुच ये गौएं धन हैं, ग्राम के सब गौ आदि पशु ग्राम के अति उत्कृष्ट धन हैं। हम सब मनुष्य भी राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, धन हैं, जैसे भारत की भूमि, यहां के नदी, पहाड़, समुद्र, जंगल आदि भारतीय राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, मतलब यह कि सब काम में आने वाले, सार्थक उपयोगी पदार्थ अर्थ हैं, धन हैं। तो

धनोपार्जन का क्या मतलब ?

यह सामने मेज़ पड़ी है। इसका बनाया जाना अर्थ की उत्पत्ति, धनोत्पत्ति है। जब तक यह लकड़ी निरर्थक (निरुपयोगी) थी तब तक यह अर्थ (धन) नहीं थी। जब श्रम द्वारा बुद्धि और हाथ के श्रम द्वारा इसे उपयोगी (सार्थक) रूप में ले आये तो हमने एक अर्थ की उत्पत्ति करदी। कपास निरुपयोगी (या कम उपयोगी) पड़ी थी, हमने उसे चुन, कात और बुनकर कपड़ा बना लिया तो हमने धन का (अधिक मूल्यवान् धन का) उत्पादन किया। रुपये पैसे टकसाल में बनने से धनोत्पत्ति नहीं होती रुपयों के जेब में आने से धनार्जन नहीं होता। रुपये या, नोट बनाने में चांदी या कागज़ को अभीष्ट व्यवहारोपयोगी आकार देने में टकसाल के श्रमियों द्वारा जो श्रम किया जाता है बस उतनी ही उत्पत्ति है। जिस श्रम के बदले में हमें रुपये मिले हैं और हमने जेब में डाले हैं उस श्रम में जो उपयोगी वस्तु सिद्ध हुई है वही धन का अर्जन हुआ है, रुपया तो उसका केवल एक चिन्ह है, 'टिकट' मात्र है, एक प्रमाण पत्र है जिससे दूसरों से धन (उपयोगी वस्तुओं और श्रम) के लेन देन में आसानी हो सके। ये सिक्के रूपी प्रमाण पत्र असल में फर्जी हैं, एक धातु या कागज के टुकड़े को सौ, हजार या लाख रुपये मान लिया गया है। यह ऐसा ही है जैसे हम परीक्षा में तुम्हें अंक देते हैं और काटते हैं। असल में न कुछ देते हैं और न कुछ रख लेते हैं। ये केवल योग्यता की सापेक्ष माप लेने के लिए फर्ज कर लिए जाते हैं। वैसे ही ये सिक्के संपत्ति का सापेक्ष माप करने के लिए फर्जी चिन्ह हैं। धन को जो माया कहा जाता है सो इन सिक्कों के रूप में तो यह माया है ही। क्योंकि ये कुछ भी न होते हुए सब कुछ हैं। ये इतना प्रभाव रखते हैं कि लोग असली धन को छोड़कर भी सिक्के बटोरने की धुन में पागल

पड़ते हैं। तुममें से भी बहुतों को अंकों की माया का इतना जबरदस्त प्रभाव है कि वे जिस किसी तरह अंक पा लेना चाहते हैं। अंक तो कल्पित किये जाते हैं स्पर्द्धा द्वारा योग्यता बढ़ाने के लिए। पर मायान्ध होकर जब बिना योग्यता बढ़ाये भी अंक पाने की इच्छा होती है तो पर्चे चोरी करना या परीक्षा में नकल करने आदि की प्रवृत्ति होती है, जैसे कि जब श्रम किये बिना धन (उपयोगी वस्तु) प्राप्त करने की इच्छा होती है तो जाली सिक्के व नोट बनाने या सिक्के चुराने की प्रवृत्ति होती है। यह सब सिक्के की माया है।

और यह सिक्के रूपी टिकटें विनिमय के लिए हर हालत में जरूरी हैं यह भी नहीं। जैसे पहले गुरु लोग निकट और वैयक्तिक संबन्ध होने से शिष्य की योग्यता को वैसे ही जान लेते और जांच लेते थे, वैसे पुराने लोग सिक्के के बिना ही, वस्तुओं का ही लेन-देन कर लेते थे। मेरे दादा और चाचा जी कहते थे कि उन्हें रुपयों पैसों को छः छः महीने और वर्षों तक देखने की भी जरूरत नहीं पड़ती थी। दोनों फसलों पर अन्न होता था उसे खाते थे, कपास कात लेते थे। फिर बढ़ई लुहार जुलाहा चमार धोबी आदि से जो सहायतायें लेते थे उनके बदले में उन्हें भी नियत परिमाण में अन्न दे देते थे। कभी कभी ही बनियों के साथ व्यवहार में सिक्का ढूंढना पड़ता था। सचमुच जब से सिक्के का महत्व बढ़ गया और इसका चलन बढ़ गया तब से मुश्किलें और पेचीदगी भी बढ़तीं गईं। इसीलिए अनेक विचारक सिक्के रहित समाज-व्यवस्था या अर्थ-व्यवस्था की कल्पना करते हैं और इसी में संसार का भला देखते हैं। हमारी प्राचीन प्रणाली में तो कौन कितना धनी है यह उसके पास कितनी मुद्रा है इसकी अपेक्षा उसके पास कितनी गाएं हैं या कितनी भूमि है इससे ही गिना जाता था। प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था ही ऐसी थी जिसमें सिक्के को बहुत कम स्थान था। वर्णों में शायद वैश्य शूद्र को और आश्रमों में केवल गृहस्थाश्रमी को सिक्के की जरूरत होती थी, वह भी बहुत कम। बहुत कुछ वस्तु विनिमय से ही काम चलता था। यह कहा जा सकता है कि वह असभ्यता का जमाना था। पर अब तो वर्तमान सभ्यता को महारोग भी कहा जा रहा है। हमारी समझ में तो मुद्रा को महत्व न देने वाली वह सभ्यता ही सभ्यता था, क्योंकि उसमें लोग अधिक सुखी थे और उनकी शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति करने का अनुकूल वायुमंडल था। इसलिए तुम्हें तो अहोभाग्य मानना चाहिये कि तुम्हें मुद्रा के झगड़े से रहित अवस्था में रखकर तुम्हें पाला पोसा जा रहा है, तुम्हारी सब आवश्यकतायें पूरी की जा रही हैं। तुम यदि इस आदर्श की उत्कृष्टता को समझ जाओ तो बाहर जाकर भी यथा-संभव इसको स्थापित करने का यत्न करो। मुझे गुरुकुल के छोटे ब्रह्मचारियों में यह देखकर दुःख हुआ— इतना ही दुःख हुआ जितना कि ग्राम में गौओं के समूह को 'धन' सुनकर आनन्द हुआ था— कि वे रुपये पैसे को महत्व देना सीख रहे हैं। मैं प्रति पूर्णिमा को छोटे ब्रह्मचारियों में जाता हूँ। पिछली बार वे पूछते थे कि आपको कितनी तनख्वाह मिलती है—आप बड़े हैं तो आपको बहुत तन-ख्वाह मिलती होगी। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि रुपये की जरूरत ही क्या है, खेती करके अनाज और फल शाक पैदा करलो उसे खाओ, कपास से कात बुन के कपड़ा बनाकर पहिन लो, थोड़ासा बढ़ई लुहार और मकान बनाने का काम सीखलो— बस रुपये की जरूरत ही क्या है। असल में यदि गुरुकुल प्रणाली ने विस्तृत होना है तो ग्राम ग्राम में जो गुरुकुल होंगे, वे भिक्षा में रुपये पैसे नहीं किन्तु अन्न वस्त्र ही लिया करेंगे। अब भी छोटे कह-लाने वाले गुरुकुल ऐसा ही कर रहे हैं, यह हमारा गुरुकुल तो शाही गुरुकुल है; अमीरों का गुरुकुल है। ब्रह्मचारी पैसे न रक्खें, बल्कि इस सब बड़े भारी परिवार का आन्त-रिक सब व्यवहार बिना पैसे रुपये के बीच में आये हो— इस प्रणाली के पीछे जो आदर्श था उसे अब हम बिलकुल भूलते जा रहे हैं यह बात है जिसे देखकर मुझे उस दिन दुःख हुआ जब कि मैंने उन गुरुकुल के छोटे छोटे बालकों में भी ऐसे विचार देखे। नहीं तो छोटे बालक के लिये तो रुपये पैसे का भी तभी मूल्य है यदि वे खाये जा सकते हों उनके खिलौने का काम दे सकते हों। छोटा बच्चा तो नारंगी या गुड़ के मुकाबिले में पैसे रुपये या नोट को फैंक देगा। पर जरा बड़े होकर हमारी आसक्ति को देखकर बालक भी जानने लगता है कि पैसे में तो खाने की चीजों को भी प्राप्त करा देने की शक्ति है, वह देखता है कि मिठाई बनाकर रखने वाला आदमी मांगने से उसे खाने के लिये मिठाई नहीं देता पर पैसा देने से दे देता है, तो वह भी इसके महत्त्व को जान जाता है और खाने की चीजों की जगह अपने माँ-बाप से पैसे मांगने लगता है। एक बार तो मैंने देखा कि एक कौआ भी हमारे घर में चारपाई पर से एक चवन्नी चोंच में उठाकर ऊपर जा बैठा। पशु पक्षी भी हमारे सहवास से 'सभ्य' होते जा रहे दीखते हैं?

सिक्का असली धन नहीं है इस बात को एक बार एक गांव के आदमी ने मजाक में अच्छी तरह प्रकट किया था। हमारे पास के गांव में एक जिमींदार का बैल सौ रुपये के नोट खा गया। नोट तो मिल नहीं सकते थे। उसके एक मित्र ग्रामवासी ने हंसते हुए पूछा कि 'तेरा यह बैल कितने रुपये का था?'। उसने कहा कि डेढ़सौ को लिया था। "तो यह अब ढाईसौ का होगया। डेढ़सौ का था ही, सौ रुपये और इसके पेट में चले गये। २५०) का होगया।"

अस्तु;

(असमाप्त)

(पृष्ठ ५ का शेष)

हल हो रहा है या नहीं ? क्या अन्य पाश्चिमीय देशों के समान भारत में भी संक्रामक रोगों का प्रकोप लगातार कम होता चला जा रहा है ? क्या समुचित चिकित्सा प्राप्त न होने के कारण अकारण मौत के घाट उतारने का सिलसिला भारत में बन्द हो गया है ?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है तो भारत को सरकार के लम्बे चौड़े गालबजाने अथवा कागज़ी घोड़ों से क्या सन्तोष हो सकता है ?

हमारी तुच्छ सम्मति में भारत सरकार विशेषतया इस दिशा में—स्वास्थ्यरक्षा के कार्य में—अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में बहुत कुछ असमर्थ सी रही है तथा इसका दोष भारत की दरिद्रावस्था पर डालती रही है। वह कहती है कि भारत से गरीब देश में वह बात कैसे पैदा की जा सकती है जो अमेरिका, इंगलैण्ड तथा जर्मनी आदि धनी देशों में पायी जाती है। यदि उक्त देशों में संक्रामक रोगों से परित्राण पाने में सफलता प्राप्त हुई है तो उसके लिये धन भी किस प्रकार पानी के समान बहाया जाता है ? क्या भारत को उनकी बराबरी करने की इच्छा करने से पूर्व अपनी चादर की ओर नज़र नहीं डाल लेनी चाहिये ?

भारत सरकार की इस समुचित विचार परिपाटी को बिना ननुनच के स्वीकार कर लेने के पश्चात् हम उस से यह पूछना चाहते हैं कि वह उन प्राचीन व अर्वाचीन चिकित्सा प्रणालियों को क्यों नहीं अपनाती जिनके द्वारा उतने ही खर्चे में, जो ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली पर किया जाता है, उससे कई गुणा अधिक लाभ उठाया जा सकता है। यह कौन नहीं जानता कि ऐलोपैथी एक ऐसी मंहगी चिकित्सा प्रणाली है जिसके द्वारा इलाज कराने का बोझ, गांव वाले तो क्या, शहर वाले भी आसानी से नहीं उठा सकते।

जब आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा भारतीय अस्पतालों में चिकित्सा का कार्य प्रचलित करने का प्रस्ताव भारत सरकार के सम्मुख उपस्थित किया जाता है तो उत्तर मिलता है कि चूंकि आयुर्वेद विज्ञान (science) नहीं है अतः उसे चिकित्सा का एक मात्र अधिकारी किस प्रकार बनाया जा सकता है, तथा जब आयुर्वेद सब रोगों की चिकित्सा या परित्राण करने में भी असमर्थ है तो सरकारी अस्पतालों में उसे किस प्रकार स्थान दिया जा सकता है !

यद्यपि सरकार की इन बेतुकी बातों का समुचित उत्तर आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा समय २ पर दिया जाता रहा है तथापि सरकार का पूर्णपरितोष अभी तक नहीं हो पाया है। इसपर भी आयुर्वेद की उन्नति के लिये बहुत से आयुर्वेदिक कॉलिज खोलकर तथा उनमें शिक्षा प्राप्त वैद्यों को म्युनिसिपैलिटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अस्पतालों में नियुक्त करके भारत सरकार ने आयुर्वेद का जो उपकार किया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। आयुर्वेद का अधिकाधिक प्रचार होने पर भारत का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है इसमें किसे सन्देह हो सकता है !

परन्तु भारत से इस विशाल देश में, जिसकी आबादी ३५ करोड़ से भी अधिक है, लाखों दो लाख वैद्यों अथवा डाक्टरों से भी क्या काम चल सकता है ! ये सब तो प्रायः नगरों में ही खप जाते हैं जहां भारत की जन संख्या का लगभग ५ वां हिस्सा ही वास करती है। इस प्रकार भारत की ८० प्रति सैकड़ा आबादी जो गांवों में रहती है प्रायः किसी प्रकार भी उत्तम चिकित्सा प्राप्त करने से वञ्चित रह जाती है। शहरों से बुलाकर वैद्यों या डाक्टरों से इलाज कराना उनकी सामर्थ्य से इसलिये बाहर होता है कि वे उनकी फीस या दवा के दाम इत्यादि का प्रबन्ध कभी २ अपना सर्वस्व बेचकर भी नहीं कर पाते। अतः गांववासी भारतवासी आज भी गिजाइयों की मौत मर रहे हैं।

वृद्धभारत अपनी सन्तान का इस प्रकार पशु-मार-मरना देखकर दुःख से शतधाभिन्न हो, फूट २ कर रोने लगता है। वह दीन दृष्टि से चारों ओर निहारता है- इसलिये कि उस दरिद्र तथा अशक्त का भी कहीं कोई सहायक मिल जाय ! वह बार २ पुकार मचाता है-इसलिये कि शायद उसकी पुकार का सुनने वाला भी कहीं कोई हो !

जब सब प्रकार से निराश हो वह थक कर बैठ जाता है तो अचानक उसके कानों में एक धीमी सी ध्वनि "मैं आपकी सेवा करूंगी" सुनाई पड़ती है।

भारत चौंक कर चिल्ला उठता है:- "तुम कौन हो" गगन गिरा गिड़गिड़ाती सी कहती है:- "मैं हूं आपकी एक परम-भक्तसेविका"।

भारत इस मरी सी आवाज़ को सुनकर तिरस्कार भरे स्वर में कह उठता है "किं भक्तेनासमर्थेन" ? (असमर्थ भक्त से क्या लाभ ?) अबकी बार गगन गिरा कड़क कर कहती है "किं शक्तेना-पकारिणा" (अपकारी शक्त से ही क्या लाभ है)। भारत इस व्यङ्ग वचन को सुनकर समझ जाता है कि यह अवश्य कोई दिव्य शक्ति है। वह कह उठता है "भक्त शक्त सेवक मुझे चाहिये जो कोई होय"। आकाश वाणी कहती है "मैं दोनों गुण युक्त हूं राजन् परखिय जोय"।

भारत अपनी दयनीय दशा पर दृष्टिपात करके कहता है:-

"कृशे कस्यास्ति सौहृदम्"

गगन गिरा दृढ़ता पूर्वक तीव्र स्वर में कहती है:-

"भक्तां शक्तां च मां राजन् नावज्ञातुंत्वमर्हसि"

भारत गद् गद् कण्ठ से कहता है "तथास्तु" अब तुम प्रगट होकर हमें अपना परिचय दो।"

पाठकवृन्द, "गुरुकुल" के अगले अङ्क में भारत को इस नवीन सेविका का "भारत के दरबार में होमियोपैथी" इस शीर्षक के नीचे परिचय दिया जायगा।

दीपक-माला

जलो, जलो, प्रदीपपुञ्ज ! तुम जलो, जलो, दीपक माला !
अब तम में उद्भ्रान्त पथिक पग धीमे धीमे धरता हो,
आशा दीपक जला, जला, कुछ कुछ में अकता हो बुझता हो;
तब तुम उसको मार्ग दिखाने, सत्पथ पर ले जाने को,
ज्योतिष्पथ दिखलाओ अपना, संदीपित दीपक माला !

इष्ट उपासक मन्दिर में जब देव-अर्चना करने को,
अर्घ्य-थाल सज, स्नेह दीप्त दीपक से पूजा करने को;
विवश करें प्रारम्भ आरती, तब निज वरद हस्त देकर;
करो आरती सफल तुम्हीं हो, तेजोमय दीपक माला !

यज्ञ यज्ञ में तुम्हें दीप्त कर, अग्निरूप से कर पूजा,
अग्नि-उपासक देव अङ्गिरस, गन्ध द्रव्य से कर स्वाहा;
अपने अन्तर में भी फिर कर, उसी अग्नि का ही उत्थान:
आत्मार्पण की हवि देते हैं तुझ में ए दीपक माला !

राष्ट्र-यज्ञ में तुम्हें दीप्त कर, आज़ादी के युद्धों में
लोग देखते तुम्हें, क्रान्ति विप्लव के सर्व रूपों में:
तब धीमे धीमे वे कुछ कण भड़क इस तरह हैं पकड़ते:
बुझा नहीं पाते जिसका लाखों पानी: दीपक माला !

ऊर्ध्वलोक में सूर्य तुम्हारा ही प्रतीक बन खड़ा हुआ;
अन्तरिक्ष में तड़िल्लता बन चित्र तुम्हारा गड़ा हुआ;
लोक पूजता तुझ को; विकिरित ज्योतिरिङ्गणों में तू हो;
व्यापक बन सर्वत्र खड़ी है तू ही ए दीपकमाला !

प्रलयक[illegible] में फैल तुम्हीं ही भस्म सभी जग हो करतीं,
फिर उत्पत्ति समय में तुम ही रूप नया जग को देतीं,
यह सारा जग लीन तथा उद्बुद्ध तुम्हीं से है होता
जग की उत्पादक संहारक बनी तुम्हीं-दीपक माल !

जिस में तेरी आग न रहती वह बन जाता है मुर्दा,
जिस में तेरी ज्योति न रहती वह बन जाता है काहिल:
तेरे कारण ही सारा जग घूम रहा है इधर उधर:
ज्योति रूप बन आओ हम में, तुम ही ए दीपक माला !

भारत माता के सुपूत, निस्तेज वदन जो हैं फिरते;
गली गली कूचे कूचे में धक्के जो खाते फिरते;
उनमें तेज-पुञ्ज भरने को करने को नव वीर्य-प्रदान;
भारत-भू में आकर उतरो तुम ही ए दीपक माला !
भूल गये हैं भारतवासी, आज़ादी क्या होती है, ?
पिंजड़े से निर्मुक्त विहग में क्या मादकता होती है ?
इन सब में अपनी अपनी अन्तर्हित शक्ति निरखने को
आत्म ज्ञान के दीप जलाओ, तमनाशक दीपक माला !

भारत-मां जो लोह-निगड़-कुत्सित पापों से है जकड़ी,
शत्रु-हस्तगत मुह से जो है नहीं आह ! तक कर सकती;
उसको अक्षम दुख-बन्धन से मोचन करने का भगवान्;
भारत-भू में आकर उतरो तुम ही ए दीपकमाला !

देश धर्म की बलिवेदी पर मिटने वाले दीवाने,
दीपक से क्षिप्र क्षण क्षण में, जल जल, बन पागल परवाने,
स्वर्ग, मर्त्य, जो अग्नि स्फुलिङ्गों से आलोकित कर देते:
ऐसे महाप्राण शिशु पायें, भारत मां, दीपकमाला !

तुमने पुञ्ज रूप होकर, शिव के मस्तक में स्थान लिया,
जिसके इक-भ्रू-भङ्ग मात्र से देव मदन था दग्ध हुआ,
नाग-यज्ञ में उतर तुम्हीं ने, नागों को था भस्म किया,
भस्म करो आ शत्रु तुम्हीं ही भीषण बन दीपक माला !

शत्रु मुण्ड हों दीपक, उनसे थाल सजा भारत माता,—
रक्त वस्त्र से सज, मस्तक पर लगा रक्त का ही टीका,
शत्रु नयन जल से अभिषिञ्चन करना श्री चामुण्डा का,
शत्रु सदन-स्तोत्रों से पूजा करे आज दीपक माला !
पूज्य राम के विजयोत्सव में दीप जलाकर कुछ तुमने,
स्वागत था कुछ किया अयोध्या में, उनका उस अवसर में,
आज उसी का एक अनुकरण ही भारत जनता करती,
बन सजीव आओ भारत में, फिर पुनीत दीपक माला !

— × — श्री जयदेव।

गीत

(ले० श्री आनन्द)

(दीपावली की सभा में ब्र० देवेंद्र ४ र्थ द्वारा पठित)

दिन में दस दस बार दिवाली
जब प्रभात की वेला आती,
सूरज की लाली छा जाती,
अंखुवे अंखुवे में प्रतीत तब होती दीयों की उजियाली !
दिन में दस दस बार दिवाली
प्रभु ने एक दिया बाला है,
उगता सूर्य जहां ज्वाला है,
जलनिधि जिसमें तैल तरलतर, पृथिवी है मिट्टी की प्याली !
दिन में दस दस बार दिवाली !
हम सब भी दीये की लौ बन,
जग मग करदें जग का कन कन,
तितर बितर कर डालें सारी वह अंधियाली काली काली !
दिन में दस दस बार दिवाली !

—०:०—

तपोधन की दिवाली

[श्री भीष्मदेव जी]

आज दिवाली है। एक भिखमंगा ऊंचे प्रासाद के तले खड़ा है। सेठ उसे एक पैसा देने आता है. भिखारी कहता है मुझे यह भिक्षा नहीं चाहिए। सेठ ने पूछा—क्या आज दिवाली के दिन तुझे और भी कुछ देदूं। भिखारी ने यह भी नहीं चाहा। तो फिर तुझे क्या चाहिए सेठ ने पुनः प्रश्न पूछा।

भिखारी ने भीख मांगी—मुझे यही चाहिए कि आज तुम पटाखे न बजाओ। दीपमाला न रचो। जो पैसे बचें उसको गांव के लिये स्कूल बनने वाला है। उसके चन्दे में देदो।

सेठ—वाह ! तो फिर हम दिवाली कैसे मनावें। एक तो आनन्द मनाने का दिन था उसे भी खाली जाने दें ?

भिखारी—तुम इस प्रकार दिवाली मनाओ—जब लोग दिये जला रहे हों—पटाखे बजा रहे हों उस समय तुम एक अंधेरे कमरे में चले जाना—साथ में कुछ भी न ले जाना। वहां जाकर केवल एक ही दीपक जलाओ—जिस के जलाने में ऐसा आनन्द होगा जो घर में सहस्रों दीपकों के जलाने में न होगा।

सेठ—तुम अजीब बात करते हो। खाली कमरे में बिना किसी चीज़ के मैं दीपक कैसे जलाऊंगा।

भिखारी—यह अजीब बात नहीं है। जीव के लिए यः काम की चीज़ है। देखो ! तुम उस खाली अंधेरे कमरे में चले जाना। बैठकर सोचना—"बचपन में मैंने क्या

किया है ? आनन्द प्राप्ति के मैंने कितने यत्न किये हैं और कितने में मैं सफल हुआ हुआ हूं।" तुम्हें पता लगेगा पहले तुम्हें शरबत पीने में आनन्द आता था। तुम थोड़ी थोड़ी देर में शरबत के प्याले मंगवाते थे। आज तुम्हें शरबत का प्याला देखकर घृणा आती है। तुम मिष्टान्न का खूब स्वाद लेते थे। अब तुम से ३ रोटी से ज्यादा नहीं खाया जाता। यह सब क्यों है ? इसके कारण को ढूंढना। अपने वर्ष भर के कार्यों की डिब्बी हाथ में लेकर उस पर कड़ी आत्म निरीक्षण की दियासलाई रगड़ना। एक ज्योति प्रकट होगी। उसके प्रकाश में सच्चे आनन्द के स्रोत को देख लेना। फिर उस ज्योति को हृदय मंदिर में ले जाना। वहां उस आनन्द-स्रोत को दिखाने वाला दीपक पड़ा हुआ होगा। उस बुझे हुए दीपक को आज तुम जला देना। फिर, उसे कभी बुझने न देना। उसके प्रकाश में हमेशा सच्चे आनन्द को पाना।

तुम्हारे पास जो पैसे बचें उसको गांव में एक विद्यालय स्थापित करने में लगाना जहां विद्यार्थियों के दिल में उस दीपक को जलाया जाय।

इस प्रकार इस गांव में एक चलती फिरती दीपमाला रोज मनाई जावेगी।

हे धन के मालिक ! यह तपोधन आज तुमसे यही भीख मांगने आया है। आज तपोधन ऐसी ही दिवाली मनाने जा रहा है। [दीपावली की सभा में पठित]

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में दिवाली तथा ऋषि दयानन्द निर्वाण उत्सव

ये दोनों उत्सव बड़े समारोह से मनाये गये। दीपमाला के दिन सारा आश्रम तथा विद्यालय दीपों से जगमगा रहा था। ब्रह्मचारियों ने कन्डील बनाकर अपने २ कमरों को सुसज्जित किया हुआ था।

श्री प० परमानन्द जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए। श्री मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा ऋषि दयानन्द की जीवनी पर रोशनी डाली गई। ब्रह्मचारियों ने कविताओं, संगीत तथा अपने निबन्धों से जनता को अभिनन्दित किया। कई दर्शक महोदय बाहर से पधारे हुए थे। रात्रि को सबका सम्मिलित सहभोज हुआ था। तत्पश्चात् ब्रह्मचारियों ने गुब्बारे उड़ाये।

इसके अतिरिक्त निर्वाण उत्सव के दिन अंग्रेजी रैजीमैंट के साथ ब्रह्मचारियों का हाकी मान्मुख्य हुआ, जिसमें दोनों दल बराबर रहे। खेल बड़े उत्साह से समाप्त हुई।

गुरुकुल-समाचार

दीपावली के बाद प्रथा के अनुसार कुल की सभी सभाओं के मंत्रियों का नूतन निर्वाचन हो गया है। सभी मंत्रियों ने अपने २ कार्यों को बड़े उत्तर दायित्व के साथ पूरा किया था। ब्र० सतीश कुमारजी के स्थान पर ब्र० गिरिधर जी, सर्वसम्मति से कुल मंत्री बनाये गये, आप इस पद के योग्य और उपयुक्त हैं। अपनी इस सफलता पर वे हम सब के बधाई के पात्र हैं। अन्य सभाओं के मंत्री निम्न प्रकार से चुने गये हैं।

सभा	मंत्री	उपमंत्री
साहित्य परिषत्	भीष्मदेव जी	धर्मपाल जी
संस्कृतोत्साहिनी	वीरेन्द्रकुमार जी	दयानन्द जी
वाग्वर्धिनी	चन्द्रगुप्त जी	प्रकाश चन्द्र जी
कॉलिज यूनियन	देवेन्द्र जी	हरिवंश जी

हम इन सब बन्धुओं का स्वागत करते हैं, आशा है कि अपने मंत्रित्व काल में आप सभाओं की खूब उन्नति करेंगे। इन दिनों प्राय सभी ब्रह्मचारी यज्ञ के रूपमें चर्खा या तकली कातते हैं परन्तु यह कार्य नियमित रूप से नहीं होता था, अब चर्खा संघ की स्थापना हो गई है, उसके प्रधान ब्र० धर्मवीर जी हैं। कुलोपमंत्री हरिवंश जी चुने गये हैं।

टाइप रायटिंग का कार्य प्रारम्भ हो गया है. १२ ब्रह्मचारी बड़े उत्साह से सीख रहे हैं, सभी ने इन थोड़े ही दिनों में आश्चर्य जनक उन्नति करली है।

श्री आचार्य जी गांधी सेवा संघ की बैठक में भाग लेने वर्धा गये हैं, आप वहां से ११ तारीख को आयेंगे।

दर्शन के उपाध्याय श्री सुखदेव जी विद्यावाचस्पति आन्त्र ज्वर से ग्रस्त थे, अब धीरे २ स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

इस सप्ताह के मान्य अतिथि श्री पं० विराट् जी विद्यालंकार हैं। वाग्वर्धिनी सभा की ओर से आपका 'मेरे संसार के अनुभव' विषय पर बड़ा अनुभव पूर्ण मनोरंजक एवं उपादेय व्याख्यान हुआ।

स्वास्थ्य समाचार

गुरुदत्त १३ वीं श्रेणी व्रण, दिनमणि ११ वीं श्रेणी ज्वर प्रतिश्याय, सच्चिदानंद ११ वीं श्रेणी ज्वर प्रतिश्याय, सत्यप्रकाश ११ वीं श्रेणी ज्वर प्रतिश्याय, राजेन्द्र २ श्रेणी, आन्त्र ज्वर, दिलीप २ य श्रेणी चोट-ज्वर, गोपाल ५ श्रे० ज्वर, हरिवंश १२ श्रेणी ज्वर, सुरेन्द्र १४ श्रेणी चोट।

अब सब अच्छे हैं। ब्र० राजेन्द्र का भी ज्वर कम हो रहा है। आशा है कि शीघ्र आराम आजावेगा।

चौधरी दुलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १ मार्गशीर्ष १९९७; १५ नवम्बर १९४० [संख्या ३१

प्रकाश का मूल आधार

[स्व० श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का एक अप्रकाशित धर्मोपदेश]

नतत्रसूर्योभाति न चन्द्रतारकन्नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥ कठोपनिषद्।

यह पृथ्वी जो सहस्रों मील तक नाना प्रकार की वनस्पति, पत्थर, रेत, धातु आदि अनेक वस्तुओं से आच्छादित है, अपना चक्कर नित्य प्रति दिन काटती हुई किसी विचित्र दैवीय शक्ति का आधार ढूंढती है। यह आकाश जिसमें करोड़ों मील तक तारे सितारे और अनेक सूर्य अपनी गति में अटल नियम का पालन कर रहे हैं जतलाता है कि यह उत्पत्ति, यह सृष्टि और यह दृश्य किसी सर्वज्ञ और पूर्ण सर्वव्यापक शक्ति के आश्रित है। वायु-चक्र, विद्युत् और भौतिक पदार्थ जब वैज्ञानिक तौर पर निम्न शक्तों को धारण करते हैं, क्रियात्मक रूप में बतला रहे हैं इस सृष्टि का कर्म महागम्भीरता और ज्योतिमय शक्ति से अलंकृत है। जिज्ञासु जब इन विचित्र लीलाओं को विचारता है तो अपने नित्य के कार्यों में प्रकाशमय शक्ति की लीला का अनुमान करता है। दिन रात के समय में परिवर्तन हो रहा है। मौसम दिन प्रतिदिन बदल रही है। आज यदि पतझड़ से वृक्षों के पत्ते झड़ गये हैं वायु शुष्क और तीक्ष्ण चल रही है गरम वायु शरीर झुलस रही है तो वह दिन दूर नहीं जब शीतल वायु आकाश मण्डल में मेघ दल को एकत्र करके इस हमारे निवास स्थान से वर्षा को विभूषित कर देगी। वर्षा की ऋतु कुछ थोड़े दिन रहती है कि शीत ऋतु का आरम्भ होजाता है। फल फूल वनस्पति आदि सब अपने नियम से समय पर सृष्टिक्रम का प्रकाश करते हैं। जिज्ञासु आश्चर्ययुक्त भावों को अपने मन में विचार कर इस परिणाम में पहुंचता है कि इस प्रकृति, इस ब्रह्माण्ड का जो रक्षक स्वामी और सृष्टा है उससे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब जरा और अधिक सोचता है तो अपनी बनावट और ईश्वरीय आत्मिक शक्तियां उसे पूर्ण विश्वास दिलाती हैं कि मैं इस स्रष्टा के अनेक अनेक और असीम गुणों को ग्रहण कर अपने जन्म का सुधार कर सकता हूं। इस भाव को धारण कर जिज्ञासु अपने से उत्तम गुणों वाले महात्मा पुरुष की खोज करता है जो उसे अपने क्रियात्मक अनुभव और दुख सुख का वर्णन कर सके। ऐसे महान् पुरुष संसार में प्रायः कम दीखते हैं। आत्मिक बल के अभाव में और विद्याहीन होने के कारण वह किसी स्थूल वस्तु को अपना आधार बनाना चाहता है जिससे वह ऐसे महान् ज्योति स्वरूप को प्रत्यक्ष कर सके। परन्तु भौतिक इन्द्रियां अपने भौतिक विषयों में ही मग्न रहती हैं। उस ज्योतिर्मय अद्भुत अनन्त बलवान और सर्वज्ञ ईश्वर को जो केवल स्थूल ही नहीं अपितु सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है क्यों कर पासकते हैं। जिज्ञासु विस्मित चित्त हो हारकर घबरा जाता है और उसके मन की शांति के स्थान में अविश्वास घेर लेता है। कभी धीरजपन के विचार सिर पर सवार हो जाते हैं। कभी पुराने विचारों के संस्कार पुनः आकर जगाते हैं कि सूक्ष्म जगत् स्रष्टा को स्थूल पदार्थों का विषय न समझो। हमारा रूप का प्रत्यक्षज्ञान एकमात्र हमारी चक्षु द्वारा होता है। वस्तुयें तभी दृष्टि गोचर होती हैं जब इस भौतिक चक्षु को अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, तारों और सूर्य की ज्योति प्रकाश दान देती है। परन्तु यह पदार्थ तो स्वयं स्थूल हैं। इनसे स्थूल पदार्थ प्रतीत होंगे। अतएव मन्त्रद्रष्टा ऋषि विचार करते करते अपने विचारों को सरल उपदेश भरी वाणी में प्रगट करते हैं कि इस महान प्रकाशमान् अनन्त जगत् रचयिता को अनुभव करने के लिये इस स्थूल ज्योति देने वाले भौतिक पदार्थों का आश्रय मत लो; क्योंकि न वहां सूर्य का गमन है, न चन्द्रमा और तारों की ज्योति पहुंचती है न यह आंखों के चुंधियाने वाली बिजली उस स्थान पर प्रवेश कर सकती है और यह भौतिक अग्नि तो कहां जा सकेगा? उस महान् ज्योति के प्रकाश से यह सब प्रकाशित होता है और भौतिक प्रकाश देने वाले पदार्थ भी अपनी ज्योति उस ज्योतिर्मय से प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार से रूप आंख का विषय होता हुआ भी सूर्य, चन्द्रमा, तारे बिजली या अग्नि के आश्रय से चक्षु को प्रतीत होता है ऐसे ही इन भौतिक पदार्थों का प्रकाश भी उसी प्रकाशमय के आधार है। आवो! ईश्वर के दर्शन करने वाले सज्जनो! हम अपनी अज्ञानता को विचारें और सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत् स्रष्टा को अनुभव करने के लिये अपने आत्मा के अन्दर गोता लगावें। क्योंकि इन भौतिक पदार्थों का ज्ञान उस अनन्त सरोवर की ओर हमें लेजाने में असमर्थ हैं।

भारत के दरबार में होमियोपैथी

(ले० श्री डा० ओम्प्रकाश जी]

(गतांक से आगे)

(वह भारत अपने सचिवों सहित दरबार में सिंहासनारूढ़ है। प्रतिहारी एक शुभ्रवसना, शशिवदना महिला को भारत के सम्मुख प्रस्तुत करता है)

भारतः—क्या तुम वही महिला हो जिसने कल गगनगिरा द्वारा अपनी सेवायें हमें समर्पित की थीं ?

महिलाः—भगवान् मैं आपकी वही तुच्छ सेविका हूँ जो श्रीमान् की सेवा करने का अवसर प्राप्त करने में अपना परम सौभाग्य समझती हूँ (यह कहती हुई नत मस्तक हो नमस्कार करती है)।

भारतः—(ध्यान पूर्वक महिला को नख से शिख तक देखकर) परन्तु तुम्हारा यह शिरीष कुसुम के समान सुकुमार शरीर, हमारी भयङ्कर रोग-राक्षसों द्वारा दलित, दीन दरिद्री तथा महानिर्बल सन्तान की क्या सेवा कर सकेगा ?

महिलाः—श्रीमन् ! आप मेरे इस बाह्यावरण पर ध्यान मत दीजिये। मेरे इस कृश शरीर के तरकश में ऐसे २ शर भरे पड़े हैं जो आपके भीषण से भीषण रोग राक्षसों का संहार करने में भी राम-बाण का बल रखते हैं तथा इसी कामधेनु-सामान स्वल्पकाय में सुधा के वे स्रोत भी विद्यमान हैं जिनके मधुमय पय का पान कर आपकी निर्बल से निर्बल सन्तान भी बड़े २ कतानों का सामना करने से भी विमुख न हो पायगी। श्रीमन् ! मैं आपका ध्यान इस ओर विशेषरूप से आकर्षित करना चाहती हूं कि मेरी इन सेवाओं का मूल्य भी इतना स्वल्प होगा जितना कि कल्प वृक्ष से झड़े फलों का।

भारतः—(आश्चर्य से) तो क्या तुम दीन-दरिद्रों का दुःख दूर करने के लिये साक्षात् दुर्गा, कामधेनु, तथा कल्प वृक्ष का अवतार धारण कर हमारे दरबार में उपस्थित हुई हो। परन्तु तुम्हारे शस्त्रास्त्र तो हमें दृष्टिगोचर हो ही नहीं रहे हैं।

महिलाः—भगवन् ! मेरे शस्त्रास्त्रों का, औषधभंडार का संक्षिप्तरूप यह आपके सन्मुख प्रस्तुत है। (यह कह कर वह एक छोटी सी सन्दूकची खोलती है जिसमें कुछ शुभ्रवर्ण की नन्हीं २ गोलियों से भरी कुछ शीशियां तथा कुछ स्वच्छ जल समान द्रव से भरी अनेक एक २ ड्राम की शीशियां पंक्तियों में सजी दिखाई देती हैं)

भारतः—(होमियोपैथिक दवाइयों से भरे बक्स को देख कर) यह क्या ! यह तो एक अच्छा खासा भानुमती का पिटारा है। बालकों का मन बहलाव तो इससे बखूबी हो सकता है। देवी जी ! क्या तुम हमें भी इनसे बहकाया चाहती हो ?

महिलाः—नहीं महाराज ! ऐसी धृष्टता यह तुच्छ-सेविका कदापि नहीं कर सकती। श्रीमन् ! मेरे इन शस्त्रास्त्रों में—इन स्वल्पकाय गोलियों में—रोग-राक्षसों का सर्वनाश करने के लिये वह दिव्य-शक्ति भरी पड़ी है जो बड़े २ तोप के गोलों में भी नहीं पायी जा सकती तथा इन शीशियों के शिशिर जल में जगत् के जीवमात्र को जीवन प्रदान करने की वह अमोघ शक्ति अन्तर्निहित है जो जगदाधार जलद-पटलों में भी दुर्लभ होती है !

भारतः—वह २ क्या कहने हैं तुम्हें गाल बजाना तो खूब ही आता है ! अच्छा, अब आप कृपया अपने इस भानुमती के पिटारे को समेट कर शीघ्र ही यहां से सरपट हो जाइये। पधारने का कष्ट करने के लिये बहुत २ धन्यवाद। अर्थ सचिव ! श्रीमती जी को कुछ पारिश्रमिक पारिश्रमिक भी तो मिल.........।

महिलाः—नहीं महाराज ! मैं पारिश्रमिक प्राप्त करने की लालसा से आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हुई हूं अपितु.........

भारतः—(बातकाट कर) देवी जी ! जो रोग-राक्षस बड़े-बड़े सुतीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से कट-छंटकर तथा विविध-विध इंजेक्शनों की सुइयों से बिंध कर भी वश में नहीं आ पाते, भला वे तुम्हारी इन नन्हीं २ गोलियों की भोली भाली शक्ल देखकर थोड़े भाग खड़े होंगे, बशर्ते कि इन में कुछ जादू ही न भरा हो।

महिलाः—भगवन्। इनमें सचमुच जादू ही भरा होता है जिसका पता इनकी परख करने पर ही चल सकता है।

भारतः—(आश्चर्य से) क्या तुम सच कह रही हो ?

महिलाः—भगवन्—सत्य ! पूर्ण सत्य !! नहीं तो क्या पर्वताकार शरीरवाला हाथी ही सबसे अधिक शक्ति-शाली होता है ? क्या उसे एक छोटी सी चींटी नहीं उलट देती ? क्या महाकाय मर्कट, नट द्वारा तरह २ के नाच नहीं नाचता ! क्या एक-ग्रास में ही अर्धभूमण्डल को निगल जाने वाली निशा-निशाचरी बालातप के आगमन की सूचना मात्र प्राप्त करते ही समुद्र में नहीं जा कूदती ? क्या हमारा यह [illegible] काम मोक्ष प्राप्ति का साधन भूत मूर्त शरीर अदृश्य आत्म-शक्ति से परित्यक्त होकर निश्चेष्ट नहीं हो जाता ! (गाती है)—

> कंह कुंभज, कंह सिन्धु अपारा,
> सोखेऊ सुजस सकल संसारा।
> रवि मण्डल देखत लघु लागा,
> उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।

भारतः—यद्यपि तुम्हारी युक्तियां तो बड़ी प्रबल हैं परन्तु तुम्हारी दवाइयों में भी कुछ बल हो सकता है इसका विश्वास हमें तो होता नहीं।

महिला:—भगवन् बिना परखे कैसे विश्वास हो सकता है (गाती है)

जाने बिनु न होइ परतीति,
बिन परतीति होइ नहिं प्रीति।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई,
जिमि खग पर जल की चिकनाई।

भारतः—लेकिन हमारे सचिव गण भी तो तुम्हारी इन दवाइयों का उपहास ही कर रहे हैं।

महिलाः—"न वेत्ति यो यस्य गुण-प्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति" जो जिसके गुण को नहीं जानता वह उसका उपहास ही नहीं अपितु निन्दा तक कर डालता है। भगवन्! यदि आपके ये हंस वंशावतंस सचिव गण एकबार इनका गुण पहिचान जायगें तो इनके भक्त बन जायगें। "संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने"। यदि इनकी परख हो जाने के पश्चात् इनका संग्रह किया जायगा तो मेरा दावा है कि आपका एक सचिव भी कटु तिक्त कषाय औषधियों के भर भर गिलास पीने में फिर कभी भी प्रवृत्त न हो पायगा। इस पर भी यदि कोई पक्षपातवश इनका परिहास करेगा तो भी उससे इनका कल्याण ही होगा। (गाती है)

"खल परिहास होइ हित मोरा,
काक कहहिं कल कण्ठ कठोरा"।

भारतः—हमने माना कि तुम्हारी ये गोलियां तुम्हारी वाणी के समान खूब मधुर मधुर हैं परन्तु ये "प्लाक् का तौर" कैसे पकड़ सकेगीं। प्लेग के कीटाणुओं को ये पिल्स किस प्रकार किल Kill कर सकेंगीं?

महिलाः—इस प्रकार जैसे अग्निकण तृण भण्डार को, सिंहशावक मत्त हस्तियों को व । कोटिकाम सुन्दर रामचन्द्र दशकंधर को भगवन्, मेरे इस कथन में लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है। देखिये तुलसी दास जी भी कहते हैं— "तेजवंत लघु गनिय न काहू" यदि श्रीमान् इन अल्पकाय गोलियों की बल परीक्षा करेंगे तो श्रीमान् की भी वही दशा हो जायगी जो कौशल्या जी की लङ्का विजयी श्रीराम जी को देखकर होगयी थी। (गाती है)

"कौशल्या पुनि पुनि रघुवरहिं,
चितवहि कृपासिंधु रघुवरहिं।
हृदय विचारति बारहिंबारा,
कवन भांति लङ्कापति मारा।
अति सुकुमार युगल मम बारे,
निशिचर सुभट महाबल भारे।

भारतः—अच्छा, तुम्हारी गोलियों की बल परीक्षा तो बाद को होगी पहिले अपना नाम धाम तो बताओ।

महिलाः—भगवन्! सेविका का नाम "होमियोपैथी" है तथा धाम "जर्मनी"।

भारतः—(चौंक कर) हैं जर्मनी !!! देखने में तो तुम गौरी पार्वती सी लगती हो पर हो हिटलर की बहिन! बस अब तुम्हारे गोल. गोले हमें न चाहियें। अब आप कृपया यहीं से......

महिला—(बात काट कर) लेकिन मेरी पहिली जन्मभूमि तो भारत ही है। श्रीमन् मैं आपके लिये कोई विदेशीय वस्तु नहीं हूँ। आज भी आपके अनेक कविराज जो मेरे सिद्धान्तों के अनुसार "शतपुटी तथा सहस्रपुटी" औषधियों के निर्माण करने में पूर्ण निपुण हैं, मेरे भारतीय होने में साक्षी-रूप होकर प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

भारतः—हां याद तो कुछ हमें भी पड़ता है कि तुम इसी खान की मणि हो। ठीक है "मनो हि जन्मान्तर संगतज्ञम्"। अच्छा यह तो बताओ तुम अब तक कहां लुप्त रहीं?

महिलाः—भगवन् आपके वैद्यराजों ने लक्ष्मी महारानी का पूर्णाधिपत्य होते ही मेरा इस प्रकार परित्याग कर दिया जिस प्रकार रामचन्द्र जी ने सीता जी का। तब अशरण हुई मैं भस्मसात् हो भूतल में समा गया।

भारतः—लेकिन अब तुमने अपनी मातृभूमि का परित्याग कर विदेश में क्यों जन्म लिया?

महिलाः—यद्यपि मेरी मातृभूमि भारत ही है तथापि परम पिता परमात्मा की आज्ञानुसार मुझे पश्चिमीय देश में इसलिये जन्म लेना पड़ा जिससे संसार मात्र का कल्याण हो सके। (गाती है)

"औषधि भषति भूति भल सोई,
सुरसरि सम सब कर हित होई।"

इसके अतिरिक्त मणि जिस खान में पैदा होती है वहां उसका पूर्ण आदर या सम्मान कभी नहीं हो पाता। (गाती है)

"मणि माणिक मुकता छवि जैसी,
अहि गिरि गज सिर सोहन तैसी।
नृप किरीट, तरुणी तन पाई,
सकल लहहिं शोभा अधिकाई।

इसी प्रकार मेरा भी जो आदर परदेश में हुआ वह स्वदेश में कभी नहीं हो सकता था।

भारतः—लेकिन तुम परदेशियों के सम्मान तथा आदर का मोह परित्याग करके हमारी सेवा करने के लिये यहां कैसे आ पहुंची?

महिलाः—श्रीमन्! "सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि"।

चूंकि मैं आपकी पूर्व जन्म की सती सेविका हूं अतः आपकी भक्ति मेरे हृदय से त्रिकाल में भी नहीं जा सकती। इसी लिये मैं दूर देश में जन्म लेकर भी आपकी सेवा में आ उपस्थित हुई हूं।

भारत—परन्तु तुम्हारा और अब हमारी सेविका होने का क्या अर्थ हो सकता है?

[शेष पृष्ठ ५ पर]

गु रु कु ल

१ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

गताक से आगे

मैं जो तुम्हारे हृदय पर अङ्कित करना चाहता हूं वह यह है कि तुम रुपये पैसे को धन समझना छोड़दो। धन (अर्थ) तो वे सब वस्तुएं हैं जो हमारे लिए उपयोग की हैं। सिक्के (रुपये पैसे) तो उन वस्तुओं के विनिमय के केवल साधन हैं। बहुत सी अनुकूलताएं देखकर मनुष्यों ने इन धातु के (या कागजों के भी) टुकड़ों को विनिमय साधन के तौर पर स्वीकार कर लिया है। इनका धनत्व केवल विनिमय साधन होने में ही है। असली धन तो वे सब वस्तुएं हैं—खाना, कपड़ा, पुस्तकें आदि— जिन्हें हम इन मुद्राओं द्वारा खरीदा जाता हुआ देखते हैं। असल में ये वस्तुएं इन मुद्राओं द्वारा नहीं खरीदी जातीं किन्तु जिन वस्तुओं को हमने अपने श्रम से बना कर इन मुद्राओं को प्रमाण पत्र के रूप में पाया है उन वस्तुओं द्वारा ही खरीदी जाती हैं। मुद्रा तो केवल एक प्रकार की सहूलियत के लिये बीच में रख ली गयी है। बल्कि हम जरा और बारीकी से देखें तो हम पायेंगे कि हमारे श्रम से बनी उपयोगी वस्तुएं नहीं, बल्कि हमारा वह उपयोगी श्रम ही धन है। सिक्के के द्वारा दो आदमियों के श्रमों से बनी उपयोगी वस्तुओं का विनिमय नहीं होता, किन्तु उन दोनों के उपयोगी श्रमों का ही परस्पर विनिमय होता है ऐसा कहना चाहिए।

यदि उपयोगी वस्तुएं या उपयोगी श्रम धन है तो धनोत्पत्ति, अर्थोपार्जन है उपयोगी वस्तुएं उत्पन्न करना, उपयोगी श्रम करना। कुम्हार मिट्टी से घड़ा बना देता है तो वह कुछ उत्पन्न करता है, अनुपयोगी को उपयोगी बनाता है। खेत में एक दाना डालने से हमारे श्रम द्वारा उसमें १०० दाने पैदा होते हैं तो यह धन का उत्पात्त है। पर रुपये का जेब में आजाना धनोपार्जन नहीं। वह तो केवल विनिमय के साधनभूत सिक्के का आजाना है जो कि एक जगह से दूसरी जगह जाता ही रहता है। उससे कोई नयी वस्तु नहीं पैदा हुई, कोई उत्पत्ति नहीं हुई केवल हेराफेरी हुई, केवल स्थानान्तर हो गया। किन्तु मैंने जो अपने श्रम से कोई उपयोगी वस्तु रची—सूत काता या ज्ञान की कोई पुस्तक लिखी—जिसके प्रमाणस्वरूप मुझे पैसे जेब में डालने को मिले, उस वस्तु की रचना तो बेशक अर्थोत्पत्ति, नयी वस्तु का उपार्जन हुआ, न कि रुपये का मेरे पास आना। उस कातने या पुस्तक लेखन के श्रम के बदले में मुझे प्रमाणपत्र के रूप में पैसे मिले या न मिले पर अर्थोपार्जन तो हो ही गया, अर्थोत्पत्ति होगयी। वह उत्पन्न अर्थ किसी काम में लाया ही जा सकता है। तो बार बार सामने आने वाले सिक्के के पीछे जो असली धन है उसे तुम अच्छी तरह समझलो, पहचानलो इसी लिए इतने विस्तार से इस विषय को कहा है। असली अर्थ, धन यही है ऐसी तुम्हारी धारणा दृढ़ होजानी चाहिए। और अर्थ की यह व्याख्या मैंने कोई आध्यात्मिक अर्थों में या किन्हीं दूसरे अर्थों में नहीं कही है, अर्थशास्त्र के अनुसार ही अर्थ की जो व्याख्या है वही मैंने बतायी है।

अब तुम यह देखो कि धन की शक्ति क्या है, इसकी शक्ति का स्वरूप क्या है? धन की यही शक्ति है न कि इसे देकर हम बदले में दूसरी अपने काम की चीज ले सकते हैं। अपना श्रम करके मैंने जो गेहूं पैदा किया है (कमाया है) उसका कुछ अंश मैं लोहार को और चर्मकार को देकर चाकू और जूता प्राप्त कर लेता हूं। अनाज को मैं सहूलियत के लिये सिक्के के रूप में परिणत कर लूं तो भी वही बात है। आज कल ज्यादा तर होता ऐसा ही है, पर इस तरह सोचने से असली बात ओझल हो जाती है। यदि मैं अनाज के पैसों से खरीदता हूं तो भी असली बात यही है कि मैं अपने अतिरिक्त अनाज से चाकू और जूता आदि लेता हूं। अनाज जगह बहुत घेरता है उसे इधर उधर लेजाना कठिन है अतः हम सिक्के को ही बरतते हैं। पर सिक्के का जहां यह लाभ है वहां यह दोष भी है कि इसी के कारण अति संग्रह तथा धन का अति दुरुपयोग संभव होता है और इन की सब हानियां समाज को और व्यक्ति को भोगनी पड़ती हैं, अनाज आदि वस्तुओं का संग्रह एक व्यक्ति बहुत नहीं कर सकता पर सिक्के बहुत रख सकता है एवं सिक्के के होने से धन शक्ति का दुरुपयोग (जिसका कि मै आगे जिक्र करूंगा) अधिक आसान हो जाता है। खैर, अनाज से (या अनाज को बेच कर इकट्ठे किये पैसे से) मैं दूसरी चीजें खरीद सकता हूं यही धन की शक्ति है। पर अनाज क्या है? यह मेरे श्रम से कमाया मेरा धन है। चाकू और जूता क्या है? ये लोहार और चर्मकार के श्रम के फल हैं। तो और मौलिक भाषा में कहें तो धन की शक्ति यह है कि इससे हम दूसरों के श्रम को (अतएव श्रम के फल को) खरीद सकते हैं। तो धन इसी लिये जमा किया जाता है—अपनी तात्कालिक आवश्यता से अधिक रखा जाता है—कि उससे हम दूसरों के श्रम का फायदा उठा सकें, बल्कि दूसरों के श्रम पर अधिकार पा सकें, मनुष्य के (शारीरिक या मानसिक) श्रम से जो कुछ बन सकता है उस सब में से जो चाहें वह पा सकें, जो चाहें मनुष्य के श्रम से बनवा सकें। अतएव समझा जाता है कि धन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, या जैसा कहा जाता है "खरीदा जा सकता है"।

पर असल में धन की यह शक्ति कितनी परिमित है यह हम जान लें तभी हम यह समझ सकेंगे कि ब्राह्मण या क्षत्रिय का वर्ण वैश्य के वर्ण से ऊंचा क्यों है। सब से मुख्य बात तो यह है कि धन की यह शक्ति तभी काम करती है जब कि किन्हीं दूसरे लोगों में धनाभाव, धनाकांक्षा, निर्धनता हो। जैसे विद्युत 'शक्ति' तब बनती है, धारा रूप में तब बहती है जब कि धन-ऋण रूप में वह द्वन्द्वापन्न हो जाती है। वैसे ही धन की शक्ति तभी बनती है जब कि एक धनी है तो दूसरा निर्धन है, उसे धन की

आकांक्षा है अतः वह उस धनी से धन पाने के लिये अपना श्रम देने को तैयार है। नहीं तो कुछ नहीं। कल्पना करो किसी आदमी के पास हजारों बीघे जमीन है या अरबों रुपया है, पर किसी कारण से दूसरे लोगों में से कोई भी उसकी जमीन या रुपये से फायदा नहीं उठाना चाहता, उसे अपना श्रम नहीं देना चाहता। वे अपने में संतुष्ट हैं अतः उन्हें उसकी जमीन या उसके रुपयों की दरकार नहीं। तो उस धनी आदमी का धन किस काम का? इसमें कोई शक्ति नहीं। उसकी जमीन जंगल के समान है, उसके रुपयों का ढेर उतनी मिट्टी के ढेर के समान है। और यह केवल कल्पना नहीं है। संसार में सब जगह ऐसे कारण और ऐसी अवस्थाएं प्रति दिन उपस्थित होती हैं जब ऐसा वस्तुतः होता है। पर हमारा उनकी तरफ ध्यान नहीं जाता। पं० धर्मेन्द्रनाथ जी सुनाते थे कि एक बार सफर में बरसात के दिनों में बाढ़ के कारण उनकी रेलगाड़ी जिसमें वे यात्रा कर रहे थे ऐसी जगह फंस गयी जहां उनका सब तरफ से संबन्ध टूट गया, वे सब शायद दो दिन तक भूखे रहे, यद्यपि उनकी जेब में रुपये नोट बहुत थे। क्यों कि उनके रुपये लेकर अपना श्रम देने वाला कोई आदमी लभ्य नहीं था। अतः उस समय उस गाड़ी में बैठे हुए बड़े से बड़े अमीर और जिनके पास एक छदाम भी नहीं ऐसे गरीब एक बराबर थे। रुपया पैसा तो खाया या ओढ़ा नहीं जा सकता था। यदि किन्हीं के पास असली धन अर्थात् भोजन बन्धा होगा या वर्षा से बचने को कम्बल आदि होगा तो वह तो काम आया होगा, पर सिक्के के रूप में आया धन तो वहां बिलकुल शक्तिहीन था। हम धनी इसी लिये होना चहते हैं न, जिससे हम स्वयं आराम करें और मौज करें और अपनी धन की शक्ति से दूसरों का श्रम खरीद कर अपने इस आराम और मौज के लिये साधन जुटायें। हमारे घर में झाड़ू दूसरा लगावे, हमारी टट्टी दूसरा साफ करदे, हमारा भोजन दूसरा बनावे, और फिर इसके बाद हमारी और अनगिनत इच्छायें हैं जिनकी पूर्ति हम धन द्वारा चाहते हैं। पर ऐसे बहुत से कारण हो सकते हैं, और रोज होते हैं, कि जिनसे हमें दूसरा हमारे चाहे जितना धन देने पर भी अपना श्रम देने को न मिले। यही धन शक्ति की मर्यादा है। हम यूं ही समझते हैं कि धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है। मैं धन द्वारा उसी आदमी से वही वस्तु खरीद सकता हूं जो आदमी उस वस्तु के लिये मुझ से धन पाने की परवाह करता है। यह जरूरी नहीं है कि चूंकि कोई निर्धन है अतः वह मेरे धन की आकांक्षा भी रखता होगा। भौतिक धन न रखता हुआ भी कोई मनुष्य आत्म संतुष्ट, आत्मनिर्भर, बल्कि बादशाहों की तरह बेधड़क और बेपरवाह हो सकता है। उसे कौन निर्धन कह सकता है? और उस पर किसी की धनशक्ति क्या असर कर सकती है?

स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि तु परितुष्टे कोऽर्थवान्, को दरिद्रः?

ऐसे क्षत्रिय और ब्राह्मण होते हैं। वे निर्धन होते हुए भी (ऊँचे धन से) धनी होते हैं। अतः धन शक्ति उन्हें वशीभूत नहीं कर सकती। वे क्षत्रिय या ब्राह्मण पद को इसी लिये पहुंचे होते हैं क्यों कि वे इस वैश्य की शक्ति धनशक्ति—की परिमितता को अनुभव कर इस के बन्धन से मुक्त हो इससे ऊंची शक्ति को प्राप्त कर चुके होते हैं।

(क्रमशः)

(पृष्ठ ३ का शेष)

महिला:—भगवन्! यद्यपि भगवान् ने मुझे समस्त भूमण्डल के प्राणियों की सेवा करने के लिये भेजा है तथापि भारत से मुझे विशेष प्रेम है। मेरे बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेने पर श्रीमान् को स्वयं पता चल जायगा कि अब भी मेरी बनावट (Make up) भारतीय ही है।

भारत:—परन्तु तुम्हारे शरीर और आयुर्वेद में तो बहुत अन्तर प्रतीत होता है।

महिला:—भगवन्! बाह्य-रूप में अन्तर होने पर भी मेरी और आयुर्वेद की अन्तरङ्ग बनावट लगभग एकसी ही है। देखिये, कोई पश्चिमीय चिकित्सा प्रणाली, मेरे समान, आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती सिवाय भारतीय आयुर्वेद के। तथा आयुर्वेद ही मेरे समान औषधियों को पुटों में (Potencies में) व्यवहार में ला चुका है। औषधियों के गुणों का केवल मनुष्यों पर परीक्षा करके परिज्ञान प्राप्त करने की विधि मुझ में और आयुर्वेद में ही समान है तथा आयुर्वेद और मैं ही समस्त रोगों की उत्पत्ति प्रथम कर्मज तथा बाद को त्रिदोषज मानते हैं। यदि मेरा चिकित्सा का एक मात्र नियम "समः समं शमयति" (Similar Cures similar) है तो आयुर्वेद में भी "विषस्य विषमौषधम्" का सिद्धान्त चिरकाल से प्रचलित है।

इस प्रकार आयुर्वेद से अपनी समता का कहां तक बखान करूं। सच पूछिये तो मुझ में और आयुर्वेद में नाम मात्र का ही भेद है। जब मैं आयुर्वेद सुजाता कन्या हूं तो भेद होने का कारण भी क्या हो सकता है।

परन्तु आयुर्वेद ने मुझे चिरकाल से भुला दिया था। अब महात्मा हनीमैन के प्रसाद से मेरा "पुनर्जन्म" हो गया है जिसके द्वारा मेरा शुद्ध-स्वरूप संसार भर में पुनः प्रकाशित होगया है।

भारत:—यद्यपि तुम्हारे इस कथानक को श्रवण कर तुम्हारे जन्मदाता महात्मा हनीमैन की तथा जन्म कथा सुनने के लिये हमारी उत्सुकता बढ़ती ही जारही है तथापि समय का विचार कर यह कार्य कल के लिये स्थगित किया जाता है।

महिला:—भगवन्! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है तथा मुझे पूरी आशा है कि श्रीमान् मुझ पर सदा कृपादृष्टि बनायें रक्खेंगे। (गाती है)

"बढ़े सनेह लघुन पर करहीं
गिरि निज सिरनि सदा तृण धरहीं।
जलधि अगाध, मौलि बह फेनू,
संतत धरणि धरत सिर रेणू"

प्रेम

[अनु०— श्री विद्यालंकार]

(गतांक से आगे)

प्रथम अवस्था जिस में दोनों में आकर्षण होता है, बहुत ही आनन्द प्रद है। इस समय प्रेमी जन अपने को बहुत सुखी अनुभव करते हैं। उनका दृष्टि बिन्दु बहुत आशावादी होता है। संसार की प्रत्येक वस्तु और क्रिया उनको सुखदायी प्रतीत होती है। उनको दुःखी मनुष्यों को देखकर बहुत आश्चर्य होता है। इस अवस्था में हरेक व्यक्ति यह अनुभव करता है, कि हमारा प्रेम-अवर्णनीय है। आज तक हमारे सिवाय किन्हीं दो में इतना गाढ़ प्रेम नहीं हुआ, न होगा।

"अपने युग में सबको अनुपम ज्ञात हुई अपनी हाला,
अपने युग में सबको अद्भुत ज्ञात हुआ अपना प्याला,
फिर भी वृद्धों से जब पूछा एक यही उत्तर पाया,
अब न रहे वे पीने वाले, अब न रही वह मधुशाला।"

हमारा प्रेम अनन्तकाल तक इसी तरह से रहेगा। वह इस विचार की कल्पना को भी मूर्खतापूर्ण समझते हैं- कि एक समय आयेगा, जब हमारा प्रेम घट जायेगा। इस समय प्रेमियों में अपने प्रेम के विषय में अलौकिक सम्बन्ध जोड़ने की आदत होती है। वे कहते हैं कि हमारा यह सम्बन्ध स्वाभाविक ही था। मेरी रुचि भी ऐसी थी। लोग मुझे ऐसा ही कहा करते थे। यथा—ब्रह्मदेव को चाहने वाला व्यक्ति, कहता है, कि लोग मुझे ब्रह्मसिद्ध कहते थे, अर्थात् मेरा तो इससे सम्बन्ध होना ही था। सत्यदेव को चाहने वाला कहता है, मेरे माता पिता का ख्याल था कि मैं अगले जीवन में सत्य प्रेमी बनूंगा। ऐसी बातें अचानक हुई होती हैं, परन्तु वे इन से अपना सम्बन्ध जोड़ने लगते हैं।

इस समय दोनों में एक दूसरे को सुखी देखने की इच्छा होती है। वे अपने प्रेम पात्र को खुश करने के लिये अपने आप दुःख भी सहते हैं। ऐसी चीजें भी करने लगते हैं, जिनमें उनकी रुचि न थी। अपने प्रिय से प्रिय शौक को भी, जो प्रेमपात्र को पसन्द न हो, स्थगित कर देते हैं। प्रेमी को खुश करने के लिये ऐसे साहसपूर्ण और ख़तरनाक कार्य भी करने को तैयार हो जाते हैं साधारण अवस्था में जिनके वर्णन को भी वे सहन न करते थे। इस समय दोनों एक दूसरे के लिये व्याकुल रहते हैं। दोनों को देखने निकट पहुंचने और स्पर्श करने की इच्छा होती है, और इनसे उनको आनन्द प्राप्त होता है।

यह एक दूसरे को चाहना-इतना अधिक बढ़ जाता है, कि प्रेमी अपने प्रेमपात्र को केवल अपना ही देखना चाहता है। यदि उसका किसी और से सम्बन्ध जोड़ा जाये तो इसको वह सहन नहीं कर सकता। उस दूसरे के प्रति उसमें ईर्ष्या का भाव जागृत होता है। इसी को प्रेमचन्द ने इन शब्दों में कहा है। प्रेम सीधी सादी गौ नहीं, खूंख्वार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी को आंख भी नहीं पड़ने देता।

किन्तु यह आकर्षण स्थायी वस्तु नहीं। कुछ समय बाद, भोजन की तरह से प्रेम पात्र से भी ऊब जाते हैं। कोई भी वस्तु बहुत अधिक सहवास से नापसंद हो जाती है। प्रसिद्ध भी है Familiarily breeds contempt, इस समय दोनों अनुभव करते हैं, कि दूसरा मेरे प्रति उदासीन होता जा रहा है। बच्चन के शब्दों में—

दो दिन ही मधु मुझे पिलाकर, ऊब उठी साकी बाला,
भरकर अब खिसका देती है, वह मेरे आगे प्याला।
नाज, अदा, अंदाजों से अब हाय पिलाना दूर हुआ।
अब तो कर देती है केवल फर्ज अदाई मधुशाला।

आगे वह इसी को सिद्धान्त के रूप में रखते हैं:—

कितनी जल्दी साकी का आकर्षण घटने लगता है।
अरे दूसरे ही दिन पहले सी रह न गई मधुशाला।

इस समय दोनों में सन्देह और भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं और मन में एक बार भ्रम का प्रवेश होने पर उसे निकालना कठिन है। इस समय वह भावना नष्ट हो जाती है कि मेरा प्रेमी सुखी रहे। परहित की जगह स्वार्थ की भावना आजाती है। और वह प्रेम जिसको दोनों व्यक्ति संसार की बेजोड़ मिसाल समझते थे; सन्देह, निराशा और दुःख से भरे हुए दुःखान्त नाटक के रूप में समाप्त हो जाता है।

इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम का निराशा और दुःख अनिवार्य परिणाम है। इस निराशा और दुःख से बचने का भी एक उपाय है। जिस समय प्रेमियों में प्रेम की आग प्रज्वलित हो, उस समय उनको बेख़बर होकर पड़े न रहना चाहिये। अपितु अवसर का महत्व समझ कर अपने प्रेम का बन्धुत्व में परिवर्तित कर लेना चाहिये। यह बन्धुत्व यद्यपि प्रेम का परिणाम है, किन्तु उसकी तरह अस्थिर नहीं। इस को सारे जन्म भर भी चलाया जा सकता है। यह उपयोगी बहुत है। जीवन में इस प्रकार के बन्धु बहुत ही सहायक होते हैं। 'यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च' में मित्र से ऐसे बन्धु का ही तात्पर्य है। यदि दो प्रेमी बन्धु बन चुके हों, तो फिर उन में किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेमपात्र का प्रेमी देख कर भी ईर्ष्या नहीं होती, क्योंकि उनका प्रेम बन्धुत्व में परिवर्तित हो चुका होता है।

प्रेम में साधारणतया संयोग और वियोग दो अवस्थाएं होती हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं का बहुत वर्णन किया गया है; किन्तु फिर भी वियोग का महत्व अधिक है। क्योंकि संयोग में यद्यपि पहिले व्याकुलता और अधीरता होती है, किन्तु फिर भी धीरे २ तृप्ति होती जाती है, चित्त को शान्ति मिलती है। किन्तु वियोग में उसको इस व्याकुलता को तृप्त होने का मौका ही नहीं मिलता। अतः प्रेमी अपने प्रेमपात्र के लिए अधिक तन्मय होजाता। दूसरे बहुत समय तक साथ २ रहने से कभी न कभी अनबन भी हो जाती है, और इस प्रकार उनमें कुछ मनोमालिन्य हो जाता है। किन्तु वियोग की अवस्था में उन कटु अनुभवों की स्मृतियां भी मधुर हो जाती हैं। क्योंकि इस समय ये कटु अनुभव स्थूल रूप में तो होते नहीं; अपितु प्रेमी को जो प्रेम पात्र के लिए व्याकुल है,

प्रेमपात्र की स्मृति देते हैं, अथवा उसमें कुछ समीपता ले आते हैं, और इस प्रकार दुःखदायी होने के स्थान में सुखदायी हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में कवियों की उक्तियां भी प्रसिद्ध हैं—

१. विरह के आघात से प्रिय प्यार भी दूना हो गया है॥ अज्ञेय,

२. प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा।
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा॥
अज्ञेय.

३. किसी वस्तु के मूल्य का उस समय पता लगता है, जब वह न रहे। प्रेमचन्द,

अब उन प्रेमियों पर आते हैं जिनका आकर्षण इक तरफा होता है। इन में भी पहिले उनको लेते हैं, जो कि अपने प्रेमपात्र से बिलकुल निराश हो चुके हैं। यह निराशा की अवस्था बहुत ही दुखदायी होती है। प्रेमी अपने को असहाय, और नगण्य समझने लगता है। उसकी किसी भी काम में रुचि नहीं होती, और इस प्रकार वह सामाजिक क्षेत्र में भी पिछड़जाता है। परिणामतः उसमें Inferiority complex का प्रादुर्भाव होता है, जो अवनति की जड़ है। इस प्रकार के मनुष्यों को कई बार तो इतना धक्का लगता है, कि वे पागल भी हो जाते हैं। इन निराश प्रेमियों का देखकर दया आये बिना नहीं रह सकती। यह अवस्था बहुत ही अवांछनीय है। यदि कोई मनुष्य इ अवस्था में स्थित हो जाये तो समझना चाहिये कि उसका जीवन बर्बाद हो ग ।

(असमाप्त)

गुरुकुल-समाचार

श्री आचार्य जी गांधी सेवासंघ की बैठक में भाग लेकर लौट आये हैं। वाग्वर्धिनी सभा की ओर से सब कुल वासियों के बीच में आपने देश की वर्तमान परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला। अन्त में ब्रह्मचारियों की शंकाओं का समाधान किया गया।

आयुर्वेद जन्मोत्सव की सफलता

आयुर्वेद परिषद् का १६ वां जन्मोत्सव २६ कार्तिक रविवार को बड़ी धूमधाम से श्री पं० केशवदेव जी शास्त्री के सभापतित्व में मनाया गया। इसमें गुरुकुल के कृति कारों ने अपनी २ लेखन शैली का दिग्दर्शन कराया। साथ ही श्री सभापति जी तथा उपाध्याय श्री वैद्य धर्मदत्त जी सिद्धान्तालंकार, प्रधान आयुर्वेद परिषद् के भाषण बहुत ही सारगर्भित एवं गवेषणा पूर्ण हुये। श्री वैद्य जी ने आयुर्वेद की महानता को दर्शाते हुये बहुत ही सुन्दर एवं रोचक ढंग से आयुर्वेद के आधार भूत सिद्धान्तों (वात, पित्त, कफ) का विवेचन किया। इसके अतिरिक्त इसमें निबन्ध प्रतियोगिताएं भी थीं। जिनमें एक प्रतियोगिता श्री ला० लब्भूराम जी नैय्यड़ की मित्रमंडली की ओर से थी। इसमें भिन्न सर्वोत्तम निबन्ध लेखकों को ३ इनाम दिये गये। प्रथम पुरस्कार—ब्र० रामदेव जी १४ श० ५)
द्वितीय पुरस्कार—ब्र० रघुनाथ जी १४ श० ३)
तृतीय पुरस्कार—ब्र० ओम्प्रकाश जी (मु०) १४ श० १)
दूसरी प्रतियोगिता श्री स्नातक धर्मप्रकाश जी मेरठ निवासी की ओर से थी, उसमें ब्र० अशोक कुमार जी १३ श० को ४) पुरस्कार रूप में दिये गये।

आयुर्वेद परिषद् की ओर से कविता, गल्प, प्रहसन और गद्यगीत प्रतियोगिताओं में निम्न प्रकार से पारितोषिक वितरित हुआ।

सर्वश्रेष्ठ गल्पकार ब्र० जगदीश जी ११ श० १)
सर्वश्रेष्ठ प्रहसन ब्र० वेदराज जी १४ श० १)
सर्वश्रेष्ठ गद्यगीत ब्र० आनन्द जी १४ श० १)

सर्वश्रेष्ठ कविता का पुरस्कार ब्र० उदयवीर जी १०श० श्रेणी को दिया गया था, परन्तु उन्होंने छोटे ब्रह्मचारियों की गायक पार्टी से प्रसन्न होकर उनको ही देने की घोषणा करवाई।

सभा के उपरान्त एक प्रतिभोज का आयोजन किया गया उसमें भाई रमेशचन्द्र जी १२ श० ने अपने सुमधुर गानों से सबको आनन्दित किया।

सायंकाल को आयुर्वेद महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का कुल से हस्त कन्दुक में साम्मुख्य हुआ जिसमें आयुर्वेद वालों की विजय हुई।

अगले दिन रात को सभा का नवीन चुनाव निम्न प्रकार से हुआ जिसमें निम्न महानुभाव अपने पदों के लिये उपयुक्त समझकर चुने गये:— डा० भारद्वाज जी
(अध्यक्ष आयुर्वेद महाविद्यालय) प्रधान-
ब्र० अशोककुमार जी १३ श०-मन्त्री
ब्र० विश्वमूर्ति जी १२ श०-उपमन्त्री
ब्र० दयानन्द जी १२ श०-सम्पादक "आयुर्वेद" पत्रिका
ब्र० शंकरदेव जी ११ श०-उपसम्पादक

अन्त में भूतपूर्व मन्त्री श्री ब्र० रघुनाथ जी १४ श० और श्री उपमन्त्री दिलीपचन्द्र जी १३ श० ने जो इस वर्ष पर्याप्त सफलता पूर्वक कार्य किया है, उनको सम्पूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालय के सदस्यों की ओर से धन्यवाद दिया गया। इसके अनन्तर शान्तिपाठ के बाद सभा विसर्जित .

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० वेदप्रकाश ३ श्रेणी ज्वर, ब्र० रवीन्द्र ३ श्रेणी ज्वर, ब्र० देवदत्त ३ श्रेणी ज्वर, ब्र० देवेन्द्र ४ श्रेणी ज्वर, ब्र० वेदभूषण ४ श्रेणी चोट, ब्र० अमर सिंह १ श्रेणी व्रण।

गत सप्ताह ये ब्रह्मचारी बीमार थे—अब सब स्वस्थ हैं।

भूल सुधार— गत अंक में भूल से वर्कासंघ के प्रधान पदके लिये ब्र० धर्मवीर जी का नाम छप गया था। प्रधान श्री सत्यभूषण जी हैं। ब्र० धर्मवीर जी मन्त्री हैं।

चौधरी दुलासराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल काँगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ८ मार्गशीर्ष १९९७; २२ नवम्बर १९४० [संख्या ३२

जिज्ञासुओं की कुछ सेवा

(इस लेख में श्री प्रो० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय प्रश्नों के उत्तर देते हैं)

प्रश्न—शिखा से क्या मुराद है। सर पर सम्पूर्ण बाल रखना अथवा सर के मध्य में थोड़े से बाल रखना?

उत्तर—शिखा के प्रमाण निम्न हैं—

(क) "अथ विस्रंस्यग्रंथिं पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति "विष्णो-स्तुपोऽसीति"। यज्ञो वै विष्णुः, तस्येयमेव शिखा स्तुपः। एतामेवास्मिन्नेतद्दधाति। पुरस्तात् गृह्णाति, पुरस्ताद्धयं स्तुपः, तस्मात्पुरस्ताद् गृह्णाति" (शतपथ ब्राह्मण १।३।३।५)

नोटः—शतपथ ब्राह्मण को भारतीय विद्वान लगभग ३००० ई० पू० का मानते हैं।

(ख) "ये भूतानामधिपतयः विशिखासः कपर्दिनः।" (यजु० १६।५९)।

नोटः—विशिखासः—शिखाविशिष्टाः।

(ग) "यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा: विशिखा: इव" (यजु १७।४८)।

प्रश्न—शिखा रखने की कब से प्रथा है? क्या आदि काल से है अथवा किसी दूसरे काल से?

उत्तर—शिखा सम्भवत: एक चिन्ह है मस्तिष्क की सुरक्षा और उन्नति का।

प्रश्न—शिखा रखने का क्या प्रयोजन है। यह आर्यों का चिन्ह ही है या इसका कोई और विशेष प्रयोजन भी है। इससे क्या लाभ है?

उत्तर—स्त्रियों में हृदय की उन्नति अधिक अपेक्षित है इस लिए मस्तिष्क की उन्नति का चिन्ह उनके लिये नहीं नियत किया गया।

प्रश्न—यदि यह चिन्ह रूप ही है अथवा इसका कोई दूसरा प्रयोजन भी है तो सन्यासी और स्त्रियों के लिये क्यों इसका विधान नहीं है?

उत्तर—संन्यासी सभी चिन्होंसे मुक्त रहते हैं। संन्यास अवस्था में स्वोन्नति के स्थान में परोन्नति का मुख्य स्थान होता है। इस लिये स्वोन्नति के चिन्ह संन्यासावस्था में कोई भी नहीं रखे जाते। इस लिये शिखा सूत्र आदि चिन्ह जो सर्व साधारण के हैं उनका धारण करना सन्यासी को वर्जित है।

प्रश्न—मुण्डन संस्कार के समय जब बच्चे के पहिले बाल काटे जाते हैं उस समय क्यों शिखा नहीं रखी जाती? दूसरी बार बाल कटवाने पर रखी जाती है।

उत्तर—प्राचीन समय में कई सम्प्रदाय या वंश एक से अधिक शिखाएं भी रखते थे। ये मस्तिष्क की भिन्न २ शक्तियों की सुरक्षा तथा उन्नति के चिन्ह रूप होते होंगे—सम्भवतः यही धारणा यहां काम करती हो।

प्रश्न—शिखा के लिये सर का मध्य स्थान क्यों निश्चित किया गया? इस में क्या खूबी है: सर के आगे-पीछे-दायें बायें क्यों नहीं रखते?

उत्तर—वस्तुतः ये सब चिन्ह ही हैं किसी विशेष उद्देश्य के स्मारक रूप में हैं। इन चिन्हों को ध्येय समझ लेना भूल है। इस लिये ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में गरमी आदि के आधिक्य में शिखा कटा देने का भी विधान किया है।

होमियोपैथी के जन्मदाता महात्मा हनोमैन का अवतारः—

(ले०श्री० डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालङ्कार)

(३)

यद्यपि आधुनिक होमियोपैथी के आविष्कार कर्ता सैम्युल फ्रेडरिक हनीमैन (१७५५-१८४३) ही हुवे हैं तथापि होमियोपैथी के प्रथम जन्म का दाता भारतीय आयुर्वेद ही है, अतः होमियोपैथी की जन्म-कथा आयुर्वेद के जन्म काल से ही प्रारम्भ होती है।

आयुर्वेद का जन्म, बीज रूप से, अथर्ववेद के अन्तर्गत समझा जाता है। भावप्रकाश लिखता है "विधाताथर्व-सर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्" अर्थात् ब्रह्माने अथर्व वेद के सर्वस्व आयुर्वेद का प्रकाशन किया है।

आयुर्वेद का व्युत्पत्त्यर्थ "आयुषो वेदः" है। अर्थात् जो विज्ञान आयु विषयक सब ज्ञान वा प्रक्रियाओं का प्रतिपादन करता है वह आयुर्वेद कहाता है। आयुर्वेद शब्द की निम्न दो व्युत्पत्तियों के आधार पर आयु विषयक सब ज्ञान आयुर्वेद शब्द के अन्तर्गत हो जाता है। (१) "आयुः विन्दतीत्यायुर्वेदः," जिस विज्ञान द्वारा मनुष्य रोगों द्वारा अपहरण की जाती आयु को पुनः प्राप्त कर लेता है वह आयुर्वेद कहाता है। इसके अनुसार चिकित्सा-विषयक (Treatment) सारा क्षेत्र आयुर्वेद के अन्तर्गत हो जाता है तथा (२) "आयुर्वेत्तीत्यायुर्वेदः," जिस विज्ञान द्वारा मनुष्य आयु को प्राप्त करने के साधनों को जान लेता है वह भी आयुर्वेद कहाता है। इसके अनुसार स्वास्थ्य रक्षा (Hygeine) तथा परित्राण (Prophylaxis) का सारा कार्य भी आयुर्वेद शब्दान्तर्गत हो जाता है। सारांश यह है कि संसार की सब भाषाओं में आयुर्वेद शब्द ही एक ऐसा व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत आयु सम्बन्धी सब ज्ञान आ जाता है।

जब आयुर्वेद इतना व्यापक तथा विस्तृतार्थ बोधक है तो उनमें उन सब विद्याओं का जिनके द्वारा आयु सम्बन्धी कुछ भी कार्य होता है सन्निवेश होना परमावश्यक है तथा उसके जनक अथर्ववेद में भी उसका बीज रूप में पाया जाना आवश्यक हो जाता है। आधुनिक होमियोपैथी के "समः समं प्रशमयति" के सिद्धान्त के अनुसार चूँकि चिकित्सा तथा परित्राण विषयक सब कार्य भली भांति सम्पन्न हो रहा है अतः उसका सन्निवेश आयुर्वेद में अवश्य होना चाहिये तथा बीजरूप से उसका अस्तित्व अथर्ववेद में भी पाया जाना अनिवार्य है।

आयुर्वेद में "विषमौषधम्" का सिद्धान्त तो पाया जाता है जिसके क्रियात्मक रूप "दग्धानां किल वह्निना हितकरः संकोपितस्योद्भवः" से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक होमियोपैथी के "समः समं प्रशमयति" के नियम का आदिस्थान आयुर्वेद ही है।

अथर्ववेद में भी यह सिद्धान्त बीजरूप से कहीं विद्यमान है या नहीं इसको खोज करने पर हमें निम्न मन्त्र प्राप्त हुवा है।

"अपेहि अरिरसि अरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था, विषमिद्वा अपृक्थाः। अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि।" सप्तम काण्ड। अनुवाक ८, सूक्त८८, मंत्र १।

हमारी तुच्छबुद्धि द्वारा इसका यह अर्थ हो सकता है:—

"दूर हो तू शत्रु है, या शत्रु सा है। उसे दूर करने के लिये इस प्रकार कार्य कर जैसे विष को दूर करने के लिये विष का प्रयोग किया जाता है, विष का ही प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ-सांप को पकड़ और उसके विष से विष को मार। इसका सारांश यह है कि जिस प्रकार विष से विष को मारा जाता है उसी प्रकार शत्रु को शत्रु द्वारा मार। इस प्रकार बिना किसी प्रकार की खैंचातानी किये इस मंत्र में "विषस्य विषमौषधम्" का बीज स्पष्टतया झलक रहा है।

इतिहास वेत्ता विद्वान् प्रायः एक मत होकर स्वीकार करते रहे हैं कि भारत से ही सब विद्यायें देश देशान्तरों में प्रवाहित हुई हैं। सिकन्दर के आक्रमण काल से अन्य देशीय मनुष्यों का भारत में आना-जाना खुलकर होने लगा था। तभी से भारतीय सभ्यता सरिता अविच्छिन्नरूपेण अन्य देशों में बहने लगी; जो अरब तथा पर्शिया इत्यादि देशों में बहती हुई ग्रीस में जा पहुंची। भारतीय आयुर्वेद विज्ञान का भी इस मार्ग से ग्रीस में पहुंच जाना असम्भव नहीं हो सकता।

ग्रीस का प्रसिद्ध डाक्टर Hippocrates (B. c. 456) पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का आदि गुरु समझा जाता है। उसने लिखा है "Diseases can be cured either by opposites or similars।" अर्थात् रोगों का प्रशमन या तो "समां" अथवा "विषमों" के सिद्धान्त के अनुसार हो सकता है। उसके इन विचारों का जन्मदाता क्या हमारा आयुर्वेद तो नहीं है?

डाक्टर मैकडॉनल्ड साहिब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "A History of Sanskrit Literature" में लिखते हैं:

"Some close parallels have been discovered between the works of Hippocrates and Charaka". अर्थात चरक और हिप्पोक्रेट्स के लेखों में बहुत सी समानतायें पायी गयी हैं।

इस लेख को पढ़कर हमारी सम्मति तो यही हो जाती है कि आयुर्वेद का प्रभाव हिप्पोक्रेट्स पर पड़ा जिसने योरोप को चिकित्सा विज्ञान के दोनों सिद्धान्त साथ २ समर्पित किये। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक योरोप में केवल "विषमों" के सिद्धान्त के अनुसार ही चिकित्सा का कार्य होता रहा जिसका मूलमन्त्र "विषमः विषमं शमयति" रहा। इस सिद्धान्त के अनुसार होने वाली चिकित्सा पद्धति "Allopathy" कहलायी, जिसका सब से विख्यात प्रवर्तक Dr. Galen हुआ।

Allopathy के इतिहास के अनुशीलन से हमें पता चलता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा होने

पर जो कुछ सफलता होती रही उससे न केवल साधारण जनता के विद्वान पुरुष अपितु इसके उपासक भी बहुत कुछ असन्तुष्ट ही रहे।

बेकन (१६२१ सन्) के नाम से कौन विज्ञ पुरुष अपरिचित है। उसने तत्कालीन प्रचलित एलोपैथी की चिकित्सा विषयक अशक्तता को अनुभव करते हुए लिखा था कि "बार २ असाध्य कहकर छोड़ दिये जाने वाले रोगों का इलाज कर सकने वाली विद्या की बड़ी सख्त आवश्यकता है, क्योंकि रोगों को असाध्य वा अचिकित्स्य घोषित करना अपना अज्ञान वा प्रमाद प्रगट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

इसी भाव को रसायन शास्त्र के आदि गुरु Boyle ने भी भिन्न शब्दों में प्रगट किया था "मैं विद्वान चिकित्सकों से यह कहे बिना नहीं रह सकता कि उन्हें चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत अन्य सब विषयों की अपेक्षा रोगों की चिकित्सा विषयक उन्नति की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये; क्योंकि चिकित्सकों का मुख्य उद्देश्य रोगियों को रोग-मुक्त करना मात्र ही होता है।

Boyle के ज़माने में चिकित्सा विज्ञान ने Anatomy, Physiology, तथा Pathology में विशेष उन्नति प्राप्त की थी। परन्तु उसकी सम्मति में यह सब बेकार थी जब कि वह चिकित्सा के कार्य्य में कुछ विशेष सहायक न हो पायीं।

Sir Johan forbs ने जो कि इङ्गलैंड का उस समय का सबसे प्रसिद्ध डाक्टर था लिखा था:--

"Things in medicine have arrived at such a pitch that they cannot be worse, they must mend or end" (अर्थात्-चिकित्सा का कार्य असफलता की उस पराकाष्ठा का पहुंच चुका है कि जहां पर या तो निःशेष हो जाना चाहिये अथवा इसका पूर्ण सुधार हो जाना चाहिये.)

इस प्रकार के अनेक और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनसे यह विषय स्पष्ट हो जाता है कि योरोप के डाक्टर लोग हो तत्कालीन चिकित्सा से असन्तुष्ट होकर या तो उसे सदा के लिए समाप्त ही कर देना चाहते थे या फिर उसमें सुधार करना अनिवार्य्य समझते थे। चिकित्सा के कार्य्य को सदा के लिए समाप्त कर देने को कहना उसकी उन्नति के लिए अधिक से अधिक जोरदार शब्दों में अपील करना मात्र ही हो सकता है।

इस अपील से प्रेरित होकर योरोप के भिन्न २ देशों में अनेक चिकित्सकों ने चिकित्सा विषयक उन्नति करने के लिए विशेष प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। चूंकि इनके पास भी, इनके पितरों के समान, चिकित्सा विज्ञान के सत्य नियम का कोई दिग्दर्शक यन्त्र मौजूद न था, अतः इनके घोर प्रयत्नों का परिणाम पहिले से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ। इन्होंने डांड तो खूब जोर २ से खेनी प्रारम्भ करदी परन्तु नाव खोलना—लङ्गर उठाना—भूल गये। ज्यों २ इन्होंने खूब बल के साथ नाव खेना प्रारम्भ किया त्यों २ नाव के अधिकाधिक हिलने डुलने से नाव में पानी भरने लगा। भारी नाव का क्या हुआ करता है यह सब जानते ही हैं।

ब्रूसो नामक फ्रांस के एक प्रसिद्ध चिकित्सक ने रोग सागर से पार पाने का एक नया साधन आविष्कृत किया। उसने बताया कि तमाम रोग रक्त की अधिकता तथा उसके संचालन में तेजी आ जाने के कारण ही पैदा होते हैं, अतः यदि रोगी के शरीर में से कुछ रक्त निकाल लिया जावे तो रोग प्रशमन शीघ्र ही हो सकता है।

इस Physiological System के अनुसार रोगियों को रक्त के भार से मुक्त करने के लिये उसने फस्त खुलवाना (Venesection) जोंक लगवाना, तथा cupping द्वारा रक्त निकालना इत्यादि उपायों का भी आविष्कार किया। इन उपायों द्वारा रोगियों को रक्त से मुक्त करने की अन्ध परम्परा योरप में सर्वत्र जारी हो गई। उस समय किसी ने भी यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि नाव में सवार यात्रियों की भोजन-सामग्री समुद्र में फेंक कर नाव को हलका करके उसे शीघ्र से शीघ्र उद्दिष्ट स्थान पर पहुंचाने का यत्न करने का क्या परिणाम हो सकता है! क्या आने वाले काल्पनिक तूफ़ान द्वारा डूब कर मरने की आशङ्का से यात्रियों को भूखा मारना उचित है? समझिये या मत समझिये, जिस प्रकार आग में हाथ डालने पर आग जलाने का काम किये बिना कभी नहीं चूकती उसी प्रकार ब्रूसो की यह विवेकशून्य चिकित्सा प्रणाली समाप्त तैल-दीपकों के समान अन्तिम टिमटिमाहट दिखाकर रोगियों को सदा के लिये शान्त करने लगी। रोगियों के सम्बन्धी-गण अपने प्रिय जनों को, उनकी चीख पुकार बन्द हो जाने के कारण पहिले कुछ २ अच्छा होता समझ तथा बाद को अचानक चुपचाप खिसकता देखकर आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे। उनका इस आश्चर्य सागर से निस्तार करने के लिये डाक्टर लोग दार्शनिक विचारों का सहारा ढूंढने लगे। भारत के समान यहां भी भाग्य, आयु, विधि-विधान इत्यादि आवरणों द्वारा डाक्टर लोग अपने चिकित्सा-विषयक अज्ञान तथा अशक्तता को छिपाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु स्वर्ग का सीधा टिकट कटा चुके रोगियों के प्रियजनों के टूटे दिल इन दलीलों के ऊपरी टांकों से कहां जुड़ सकते थे। उनके वे टांके निज प्रियजनों की वियोगाग्नि में पिघल पिघल कर बलात् अलग २ जा पड़े तथा उनके हृदयरूपी घट फूट २ कर अविरल अश्रुधारा बरसाने लगे। योरोप में चारों ओर हाहाकार मच गया तथा यत्र तत्र सर्वत्र "त्राहि माम् त्राहि माम्" की पुकार सुनाई पड़ने लगी। हजारों विधवाओं का करुण क्रन्दन, लाखों माताओं की अश्रुवर्षा सैंकड़ों पिताओं की दहाड़े तथा असंख्य बालकों का आर्तनाद् आसमान के मानों पर्दों को फाड़ कर परम पिता के कर्ण कुहरों में जा ही पहुंचा!

(शेष पृष्ठ ६ पर)

गु रु कु ल

८ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

[ले० श्री आचार्य अभयदेव जी]

(गतांक से आगे)

क्षत्रिय की शक्ति वीरता-शक्ति है, और ब्राह्मण की शक्ति ज्ञानशक्ति है। धनशक्ति से जो कुछ मिलता है क्षत्रिय और ब्राह्मण को वह तो बिना धन के ही मिल जाता है और धनशक्ति से जो नहीं मिल सकता वह भी इन्हें वीरता और ज्ञान की शक्ति से भरपूर मिलता है। वीर, साहसी, उत्साही पुरुष को अपने भरण पोषण के लिए फिक्र करने की जरूरत नहीं होती, उनके अनुयायी, उन्हें अपना संरक्षक और पालक देखने वाले उन्हें इस फिक्र से निश्चिन्त रखते हैं। इसी तरह ज्ञानी पुरुष को उनके दूसरी तरह के अनुयायी, शिष्य, भक्त, उनकी ये सब चिन्ता करते हैं, उन्हें इसकी भी परवाह नहीं होती कि उनकी चिन्ता हो भी रही है या नहीं, यदि चिन्ता नहीं हो रही तो भी वे किसी भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। मतलब यह है कि धन से जो कुछ मामूली तौर का मनुष्य के श्रम का फल मिलता है वह भरण पोषण आदि तो क्षत्रियों और ब्राह्मणों को यों ही मिलता ही है पर मनुष्य के ऊंचे दर्जे के श्रम का परिणाम भी (जो धन से नहीं खरीदा जा सकता) उन्हें उत्तरोत्तर अधिक मिलता है—यह महान और अद्भुत परिणाम वैश्य से अधिक (वीरता शक्ति वाले) क्षत्रिय को और क्षत्रिय से भी अधिक (ज्ञान शक्ति वाले) ब्राह्मण को मिलता है। प्रतापसिंह जैसे क्षत्रिय को भामाशाह जैसे वैश्य ढूंढते फिरते हुए आकर मिलते हैं और सब कुछ दे देते हैं। रामदास जैसे ब्राह्मण को शिवाजी जैसे क्षत्रिय अपना 'संपूर्ण' राज्य तक समर्पित करके उनके आज्ञाकारी अनुचर हो जाते हैं। धन में मनुष्यों का वह अद्भुत और महान् श्रम प्राप्त करने की शक्ति कहां है जो कि वीरता और ज्ञान में है? जब एक सच्चा वीर पुरुष किसी दुष्कर कार्य के लिये ललकार करता हुआ उठता है तो सैकड़ों हजारों पुरुष अपनी जान हथेली पर रख कर उसके पीछे हो लेते हैं। क्या वह उन्हें धन देकर अपना अनुगामी बनाता है? एक महान गुरु के शिष्य अपना सर्वस्व, शरीर और भौतिक संपत्ति ही नहीं किन्तु मन हृदय भी श्रद्धा से उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं, अपना कल्याण समझते हुए उनकी सब आज्ञा मन और हृदय से पालन करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। क्या वे वीरता या ऐसे किसी भावावेश में आकर स्वयंसेवक सैनिकों की तरह कुछ काल के लिये अपनी सेवाएं दे देने का, अपने को जोश में खपा देने का आनन्द पाने के लिये कहीं ऐसा करते हैं? धन मिलने की तो वहां बात करना ही व्यर्थ है। मनुष्य धनाकर्षण या धन शक्ति से ही परिचालित होता है यह मानना मनुष्यता का अपमान करना है। रस्किन ने ठीक कहा है कि आज कल के अर्थशास्त्री तो यह समझ कर चलते हैं कि मनुष्य एक केवल स्थूल भौतिक तत्त्व का बना हुआ यन्त्र (एञ्जिन) है जिस में जितना धन रूपी कोयला झोंका जायगा वह उतना ही अधिक काम देगा। पर मनुष्य केवल भौतिक शरीर नहीं है उसमें अनुभव करने और विचारने की शक्ति है, (प्राण और मन भी है,) वह जीती जागती भावनाओं से भरा हुआ है, उसमें हृदय है और उसमें अत्यन्त अद्भुत शक्ति वाला आत्मा भी है। सो मनुष्य के अन्दर की जितनी ऊंची से ऊंची शक्ति को स्पर्श किया जाता है, उतनी ही अधिक और अद्भुत कार्य क्षमता, श्रम सामर्थ्य, रचना शक्ति उसमें प्रकट होती है। धनशक्ति तो मनुष्य के बहुत ही स्थूल तत्त्व को स्पर्श करती है। केवल धन से तो मामूली मजदूर भी अधिक काम नहीं करता। वह जहां प्रेम, सहानुभूति, मानरक्षा पाता है वहां वह कम वेतन पर भी अधिक काम करता है। पहले जो स्वामी और सेवक का, मालिक और मजदूर का सम्बन्ध होता था (जो केवल आर्थिक नहीं होता था) वह धन को महत्त्व देने वाली इस नयी सभ्यता के प्रचार से अब लगभग भग्न हो चुका है। इसी लिये कारखानों में रोज हड़तालें होती हैं। यदि मालिक की कोई चीज खराब हो रही है पर उससे यदि मजदूर का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं—यदि उस बारे में उससे जवाब तलब नहीं किया जा सकता तो आज कल का मजदूर उसे खराब होने देगा। पर अपने पन के साथ रखे जाने वाले सेवक स्वामी के सामान की रक्षा के लिए भी अपनी जान तक दे देते देखे जाते हैं। सो केवल धन से तो कुछ भी बड़ा काम नहीं कराया जा सकता। अपने देश की रक्षा की भावना से स्वयं आये स्वयंसैनिक युद्ध में जितनी वीरता से लड़ेंगे, मन और प्राण की शक्ति भी उसमें पूरी तरह उंडेली जाने के कारण उनकी शारीरिक शक्ति भी जितना अद्भुत बल रखेगी, क्या रुपयों से खरीदे गये सैनिक कभी उतनी वीरता या, अधिक हृष्ट पुष्ट होते हुये भी, उतनी शारीरिक शक्ति प्रकट कर सकेंगे? तो मनुष्य के प्राण बल को स्पर्श करने वाली क्षत्रशक्ति और उसकी बुद्धि व आत्मा को भी स्पर्श करने वाली ब्रह्मशक्ति मनुष्यों से जितना भारी और चामत्कारिक कार्य ले सकती है, धनशक्ति उनके मुकाबिले में कुछ भी काम नहीं ले सकता। दुनिया भर के इतिहास की घटनाएं, बल्कि वर्तमान की रोज की घटनाएं भी इसकी साक्षी हैं। इतिहास की आर्थिक व्याख्या ('इकॉनॉमिक इन्टरप्रिटेशन ऑफ हिस्ट्री' इस नाम की एक पुस्तक कभी पढ़ी थी) की आज कल काफी चर्चा सुनी जाती है। पर इस सम्बन्ध में एक महा पुरुष-वाद (ग्रेटमैन थियरी) भी है। यदि आर्थिक व्याख्या वाले वाद में कुछ सचाई है तो इस वाद में भी है। यह ठीक है कि साधारण लोग (आम जनता, प्रजा, विश, वैश्य लोग) सामान्य अवस्थाओं में बहुत कुछ आर्थिक विचार से परिचालित होते हैं। पर यह आम लोगों की, 'वैश्यों' की और शूद्रों की बात है। जन साधारण वैश्य लोग अधिक होते हैं, अतएव आम प्रजा को

'विश' कहा जाता रहा है। पर ये वैश्य भी जो आर्थिक विचारों से परिचालित होते हैं सो वे भी पूरी तरह से नहीं, हमेशा नहीं, और जरा भी असाधारण अवस्था में नहीं। क्षत्रिय और ब्राह्मण समाज में अपेक्षा कम होते हैं पर वे आर्थिक विचार से परिचालित नहीं होते, बल्कि बहुत बार अर्थ उनका अनुसरण करता है। उन्हीं में जो विशेष महापुरुष समय समय पर होते हैं वे जगत में महान् और असली परिवर्तन करते हैं, इतिहास को बनाते हैं, धन-शक्ति प्रारम्भ में ही नहीं तो कुछ समय बाद केवल उनका अनुसरण करती है। अकेली धनशक्ति द्वारा जगत् में कोई भी महान् और वास्तविक परिवर्तन, कोई भी महान या वास्तविक नवनिर्माण नहीं हुआ। या तो मामूली परिवर्तन या निर्माण हुए हैं या वे वस्तुतः परिवर्तन व नवनिर्माण हैं ही नहीं, केवल ऊपरी परिवर्तन हैं या केवल ज़रा इधर उधर होना है। पर अधिकतर तो यह है कि ऐतिहासिक जिन बड़ी घटनाओं को आर्थिक कारण से हुआ देखते हैं उनमें अर्थशक्ति ने किसी अन्य बड़ी शक्ति का (जिसे वे देख नहीं पाते) केवल अनुसरण किया होता है। अतः धन की शक्ति जितनी है उतनी ही हमें देखनी चाहिए। हम अपने मन आत्मा की दुर्बलता के कारण—दरिद्रता के कारण—ही धन को वह महत्त्व दे देते हैं जो कि उसमें है नहीं। तुमको—तुममें से ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेष निकलने चाहियें ऐसी आशा जनता करती है—तो अपनी छिपी हुई आन्तरिक शक्तियों के पहचानने द्वारा अपनी आन्तरिक दरिद्रता हटा देनी चाहिए, तो फिर बाहरी धन का जो असली थोड़ा सा महत्त्व है वही रह जायगा। और तब भी या तो बिना धन के तुम्हारा बहुत सा काम चलेगा या धन तुम्हें ढूंढता हुआ आकर मिल जायगा। स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका गये तो वहां का नियम था कि जिसके पास कम से कम ५०० डालर न हों उसे अमेरिका में उतरने न दिया जाय क्यों कि वे अपने देश में भिखमंगों को नहीं पैदा होने देना चाहते। जब उनसे इतना धन दिखाने के लिये कहा गया तो उन्होंने झटसे अमेरिका के तत्कालीन प्रेसिडेन्ट का नाम लेकर कह दिया कि उसके खजाने में जो रुपया है वह सब मेरा ही है। वे सचमुच ऐसा अनुभव करते थे तभी वे ऐसा कह सके, तभी सुनने वाले पर भी उसका प्रभाव पड़ा और उन्हें जाने दिया गया। सच्चा क्षत्रिय अपनी उदार दृष्टि से सचमुच विश्वास करता है कि सब धन मेरे देश या मेरे राष्ट्र का है जिसका कि मैं एक सेवक हूँ, एक सच्चा ब्राह्मण अपनी ज्ञान दृष्टि से, और भी अधिक ठीक रूप से, साक्षात् देखता है कि सब धन उसके परमेश्वर का है जिसका कि वह एक पुत्र है। अतएव वे कभी धन के अभाव को नहीं अनुभव करते, धन के प्रति दीन होने की बात तो दूर रही, और अतएव धन भी उन्हें अपना समझता है और उनकी सेवा के लिए सदा तैयार रहता है। वे धन की परवाह नहीं करते, अतएव धन उनके पीछे पीछे फिरता है। वे धन में आसक्त नहीं होते धन से ऊपर अलिप्त रहते हैं अतएव असल में वैश्य की अपेक्षा (जो कि डरता है कि धन के बिना उसका जीवन कैसे चलेगा अतः धन के लिये दीन होता और उसमें आसक्ति रखता है) धनोपभोग का आनन्द भी अधिक प्राप्त करते हैं, वे धनोपभोग का मुक्त, खुला और अधिक पूरा आनन्द प्राप्त करते हैं। धन में आसक्ति रखने वाले कञ्जूस को देखो जो अपने ऊपर भी धन खर्च नहीं करता, जो आता है उसे जमा करता जाता है। उसने जो एक-दो लाख रुपया जमीन में गाड़ कर रखा उसे मैं अपना क्यों न समझूं?

त्याग भोग विहीनेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम्?

वह रुपया किसी भी दूसरे आदमी का उतना ही है जितना कि उस गाड़ने वाले का है जब कि उसने उसे खर्च नहीं करना है और जीवन भर केवल इस मानसिक सन्तोष का ही आनन्द लेना है कि 'मेरे पास इतना रुपया है', 'वह रुपया मेरा है'। इससे हम अगले विषय पर आजाते हैं कि धन का सदुपयोग और दुरुपयोग क्या है।

(क्रमशः)

प्रेम

[अनु०— श्री विद्यालंकार]
(गतांक से आगे)

इस अवस्था से मुक्त होने का एक तरीका है। वह यह कि ऐसा प्रेमी इस निराशा को निराशा की सीमा तक पहुंचा दे, अथवा इसके द्वारा अपने में आत्मसम्मान को जागृत करले। यदि प्रेमपात्र उस की उपेक्षा करता है, तो वह यह सोचे कि मैं भी कुछ हूं। यदि वह नहीं प्रेम करता तो क्या हुआ? मुझे उसकी कोई परवाह नहीं। मैं किसी अन्य से प्रेम कर सकता हूं। अथवा कई बार यह प्रेम की निराशा मनुष्य का क्षेत्र बदल देती है। वह किसी अन्य क्षेत्र में जाकर अपना खूब नाम कमा लेता है। तुलसी का उदाहरण जगत् विख्यात ही है। इस प्रकार वह अपने आत्म सम्मान के द्वारा कई बार अपने निराश करने वाले प्रेमपात्र से बदला भी ले रहा होता है। और Unconsciously बदले की भावना भी उन्नति में बहुत सहायक होती है। जब मनुष्य निराश हो जाता है, तो उसे पग २ पर आशा दिखाई देने लगती है।

किन्तु यह आत्मसम्मान की भावना को जागृत करना और उपेक्षा करने वाले प्रेमपात्र की उपेक्षा करना बहुत ही कठिन है 'प्रेम एक चीज है जो एक बार जमकर बड़ी मुश्किल से उखड़ता है' वाक्य स्पष्ट रूप से इस कठिनता का निर्देश करता है साथ ही वह इस प्रयत्न में बाधक भी होता है। किन्तु उन्नति प्रिय और इस अशान्तिमय अवस्था से छुटकारा चाहने वाले के लिए यह आवश्यक है।

अब ऐसे प्रेमी को देखते हैं, जो असफल हैं, किन्तु निराश नहीं। ऐसी अवस्था भी यद्यपि वांछनीय तो नहीं, किन्तु कम से कम सह्य है। ऐसा व्यक्ति कम से कम अपने को सन्तोष तो देता रहता है। उसे कभी असह्य अशान्ति का अनुभव नहीं होता। वह प्रतीक्षा की अवस्था

में होता है। और प्रतीक्षा कइयों के मत में मिलन से भी आनन्द प्रद है। यह हम दैनिक जीवन में भी देखते हैं। हम किसी उद्देश्य की प्राप्ति में बड़े उत्साह से लगे होते हैं, किन्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति के अनन्तर हम शान्त हो जाते हैं। अर्थात् प्रतीक्षा और आशा हमें सक्रिय बनाये रखता है। हम किसी साधना में लगे रहते हैं। इसलिए कई तो इस असफल किन्तु आशा वादी प्रेम को सफल प्रेम से भी उत्कृष्ट मानते हैं। और वास्तव में इसमें सत्य भी है। क्योंकि हम पहिले ही देख चुके हैं, कि प्रेम अस्थिर है, और यदि प्रेम को वस्तुस्थ में न बदला जाये, तो वह दुःख और निराशा में परिणत हो जाता है, किन्तु ऐसी अवस्था में निराशा का कोई स्थान ही नहीं। दूसरे (प्रेमचन्द जी के शब्दों में) जीवन का सुख तो अभिलाषा में है। यह अभिलाषा पूरी हुई तो कोई दूसरी आ खड़ी होगी। जब एक न एक अभिलाषा का रहना निश्चित है, तो यही क्यों न रहे? इससे सुन्दर आनन्द प्रद और कौनसी अभिलाषा हो सकती है? इसके सिवा सफल प्रेम में यह भी तो भय होता है कि कहीं जीवन का यह अभिनय वियोगान्त न हो?

इसके अतिरिक्त:—

"देकर हृदय, हृदय पाने की आशा व्यर्थ-लगाना क्या?"।

प्यार नहीं पाजाने में है, पाने के अरमानों में!
पाजाता तब, हाय, न इतनी प्यारी लगती मधुशाला॥

आदि वाक्य भी ऐसे व्यक्ति को सन्तोषप्रद होते हैं। और सन्तोष से बढ़कर दुनिया में कोई सुख नहीं। यही कारण है— कि परमात्मा का प्रेमी, उसकी आशा में अपना सारा जीवन एक साधनामय और शान्तिमय बनाए रहता है। उसको कभी अशान्ति नहीं अनुभव होती, क्योंकि उसकी एक अभिलाषा है, उद्देश्य है। उसे अन्य वस्तुओं को देखने की फुरसत ही नहीं। इसी प्रकार इसी तरह का प्रेमी भी इधर उधर भटकता नहीं फिरता। उसके प्रेमपात्र भी बदलते नहीं रहते।

परन्तु इस स्थिति को बनाए रखना भी बड़ा कठिन है। इस प्रकार का प्रेमी मिलना उतना ही दुर्लभ है, जितना परमात्मा का प्रेमी मिलना। साधारणतया यह आशा निराशा में परिवर्तित हो जाया करती है। और उस समय प्रेमियों की अनुभूति एक विचित्र प्रकार की होती है।

इस प्रकार की निराशा को न आने देना चाहिये। यदि निराशा न आये तो यह स्थिति बहुत अच्छी है। किन्तु यदि निराशा आजाये तो इसको आत्म सम्मान में परिवर्तित कर लेना चाहिये।

यह देख चुके कि प्रेम का आधार आकर्षण है। इस आकर्षण के ३ विभाग हो सकते हैं। इन तीनों में मानसिक स्थिति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। यदि इन स्थितियों में रहते हुए प्रेमी में विवेकात्मक शक्ति न आजाये, तो इनका परिणाम दुःख है।

आकर्षण में आंखों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्य साधन ये आंखें ही हैं। साधारणतया देखने पर ही एक दूसरे को आकर्षण होता है। प्रारम्भ में प्रेमी इन आंखों की भाषा से ही बातचीत करते हैं। वे एक दूसरे के भावों को इन्हीं के द्वारा जानते हैं। मनुष्य को वश में करने के लिए आंखों का उपयोग, मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी स्वीकृत है। सीजर ने अपने आप कहा है:—
"I went, saw and won the field."

आंखों की भाषा के प्रयोग का एक लाभ भी होता है। प्रेमी प्रारम्भ में अज्ञातरूप से बातचीत करना चाहते हैं। ऐसा वाणी से हो नहीं सकता। अतः वे आंखों के इशारे से बात चीत कर लेते हैं। ये आंखें एक दूसरे को पढ़ने में बड़ी सहायक होती हैं। वे यदि अपने भावों को छिपाने का प्रयत्न करें, तो ये आंखें हृदय का भेद खोल देती हैं।

नेत्रों का सुन्दरता से घना सम्बन्ध है। संस्कृत—साहित्य में तो आँखों को प्रेम का उद्भव स्थान माना गया है। मुरारि-कवि ने अपने अनर्घराघव में—स्पष्ट लिखा है—

"चक्षुः प्रीतिमुकुलवन्ती मनुकुर्वन्ति चापराणि कुसुमशर चापलानि।" सभी भाषाओं के साहित्य में सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में आंखों को प्रमुख स्थान मिला है। (क्रमशः)

—o—

(पृष्ठ ३ का शेष)

क्या परम कारुणिक भगवान अब भी अपनी प्रजा की पुकार की उपेक्षा कर सकते थे? क्या उसकी मुसीबत का प्याला भरने में अब भी कुछ कसर बाकी थी? क्या वे अपनी प्रतिज्ञा को भुला सकते थे? क्या उनकी निम्न प्रतिज्ञा न थी?

"जब जब होय धर्म की हानि,
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाइ नहीं बरनी,
सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।"

भगवान ने अवसर जान अपनी अंशभूत एक महान् आत्मा को तुरन्त आज्ञा दी कि "जाओ बच्चा! अब तुम शीघ्र ही मर्त्य लोक में जाओ और चिकित्सा के नाम पर होने वाले इस अत्याचार से व्यक्तियों का परित्राण करो; जाओ, जाओ, घबराओ नहीं—मैं तुम्हारे अन्तरात्मा में एक ऐसी दिव्य विद्या का प्रकाश करूंगा जिसके द्वारा तुम समस्त भूमण्डल का उपकार करने में समर्थ हो सकोगे। जाओ, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ जावेगा।"

सन् १७५५ ईस्वी के अप्रैल मास की ११ वीं तारीख को ब्राह्ममुहूर्त में योरोप के जर्मनी प्रदेश में एक दिव्यद्युति बालक का जन्म होता है जिसकी प्रभा से सारा घर जगमगा उठता है। इस बालक का नाम सैम्युल-फ्रैडरिक हनीमैन रक्खा जाता है। (सैम्युल का अर्थ है रक्षक)।

क्या इस बालक के तेजस्वी शरीर में वही दिव्य आत्मा तो नहीं आबसी है जिसे स्वयं भगवान ने मर्त्यलोक

की रक्षार्थ अवतरित होने की आज्ञा दी थी ? इस प्रश्न का उत्तर तो समय ही देगा परन्तु उस बालक का जीवन-चरित्र लेखक लिखता है कि उस दिन कई दिनों के घना-डम्बर के पश्चात् आकाश पूर्णतया मेघ-मुक्त हो गया था तथा अन्तरिक्ष बालातप की सुनहरी किरणों से जगमगा रहा था; पक्षीगण शीत से परित्राण पाकर प्रेम मग्न हो चहचहा रहे थे तथा जर्मनी का बच्चा बच्चा एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहा था।

यह वर्णन पढ़ कर हमें राजा रघु का जन्म दिन याद आ जाता है जिसके विषय में महाकवि कालिदास ने लिखा है:—

"दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः,
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे
बभूव सर्वं शुभ शंसितत्क्षणं,
भवोहि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्"

क्या इस बालक का जन्म भी लोक के अभ्युदय के लिये नहीं हुआ था ? क्या सैम्युल हनी मैन वास्तव में संसार का रक्षक सिद्ध नहीं हुआ ?

गुरुकुल समाचार

विजयोत्सव—प्रयाग-विश्वविद्यालय की ओर से होने वाली वाद विवाद प्रतियोगिता में इस वर्ष सभा की ओर से कुल के तीन सदस्य ब्र० वेदराज जी, ब्र० उदयवीर जी और ब्र० वीरेन्द्र जो को प्रतिनिधि बना कर इतिहास के उपाध्याय श्री वेदव्रत जी अध्यक्षता में भेजा गया था, बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे कुलबन्धु कुल के गौरव की रक्षा करते हुए बड़ी शानदार विजय प्राप्त करके आये हैं और अपने साथ संस्था को मिले हुए विजय चिन्ह 'ट्रौफी' को भी ले आये हैं।

हमारी संस्था की इस प्रकार की विजय प्रथम विजय नहीं है, हमारे प्रतिनिधि जब भी इस प्रकार की प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए जाते हैं, चाहे वह प्रतियोगिता हिन्दी की हो या संस्कृत की हो सदा विजय प्राप्त करके आते हैं। विजयी कुल बन्धुओं का बाद्य के साथ स्वागत किया गया, और कुल के सम्मान में महाविद्यालय ब्रह्मचारियों की ओर से कुल के सब माननीय उपाध्याय एवं अध्यापकों को प्रीतिभोज दिया गया।

कुश्ती-दङ्गल— कुल में रहते हुए ब्रह्मचारी जहां बौद्धिक और मानसिक प्रतिभा का विकास करते हैं वहां शारीरिक प्रतियोगिता में भी उतनी ही दिलचस्पी रखते हुए अपने शरीरों को सुन्दर और स्वस्थ बनाते हैं। इस सप्ताह दङ्गल का बृहदायोजन किया गयाथा,ब्रह्मचारियोंके कुश्ती कौशल से प्रसन्न होकर श्री पं० केशवदेव जी ज्ञानी ने विजयी ब्रह्मचारियों को पारितोषिक प्रदान किया।

—श्री आचार्य जी १ मास के लिए पाण्डिचेरी चले गये हैं, जिन महानुभावों ने व्यक्तिगत रूप से पत्र व्यवहार करना हो वे अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी के पते से ही पत्र व्यवहार करें।

दर्शन के उपाध्याय श्री प्रो० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति अब पूर्ण स्वस्थ हो गये हैं और अब आपने पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया है।

वाग्वर्धनी सभा की ओर से श्री डाक्टर रघुनाथ जी आयुर्वेदालङ्कार का 'मेरे मलाया के अनुभव' विषय पर व्याख्यान हुआ, श्री डाक्टर जी दो वर्ष से मलाया में, प्रसिद्ध नगर पिनांग में अपना कार्य कर रहे हैं।

स्वास्थ्य समाचार

धर्मपाल १२ श्रेणी प्रवाहिका, आत्मानन्द ५ श्रेणी चोट, रामकुमार ३ श्रेणी चोट, दिलीप २ श्रेणी चोट, वीरेन्द्र ३ श्रेणी ज्वर, लक्ष्मण २ श्रेणी ज्वर, ज्ञानचंद्र Fracture of the Tibia. गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० बीमार थे अब सब अच्छे हैं। ब्र० ज्ञानचंद्र की हड्डी सैट कर दी गई है। आशा है कि शीघ्र जुड़ जावेगी।

गुरुकुल मुलतान के समाचार

दो तीन ब्रह्मचारियों को साधारण ज्वर है शेष सभी ब्रह्मचारी प्रसन्न हैं। ६, १० नवम्बर को ब्रह्मचारियों की साहित्योत्साहिनी सभा का वार्षिकोत्सव था जिसे ब्रह्मचारियों ने बड़ी धूम धाम से मनाया। इस में शहर के आर्य सज्जन भी उपस्थित होते रहे। सभा में ब्रह्मचारियों ने अपने लिखे निबन्ध, गल्प तथा कविताएं आदि पढ़ीं।

दान वीर श्री बिड़ला जी ने ३०) मासिक हमें इस उद्देश्य से दिए हैं कि ब्रह्मचारियों को सिखाने के लिए एक व्यायाम मास्टर रख लिया जाए जो कि सभी खेलों के अतिरिक्त लाठी, तलवार आदि का चलाना भी सिखा सकता हो। जैसा वह चाहते थे वैसा अध्यापक रख लिया गया है।

वञ्चना

तुम अपने ही को ठगते हो!
पूजा की उठती स्वर-लहरी-
गुंजित होती प्रतिध्वनि गहरी,
तुम अपनी दीवारों को ही पूज्य समझने में लगते हो!
तुम अपने ही को ठगते हो!
मेरी प्रतिमा है भावात्मक-
पर, तुम उसमें बनते बाधक,
असफलता से रुक जाता हूं,
तुम तब भी निज को रंगते हो!
तुम अपने ही को ठगते हो!
मुख से आहें गर्म निकलतीं-
बन ज्वालामय झोंका-चलतीं,
मैं ज्यों ज्यों तुम्हें बुझाता हूं-
तुम त्यों त्यों अधिक सुलगते हो!
तुम अपने ही को ठगते हो!

श्री राजकुमार शर्मा 'श्रीकुमार'।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्य-पत्र]

वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ७] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १५ मार्गशीर्ष १९९७: २९ नवम्बर १९४० [संख्या ३३

गोपालन की महिमा

(ले० डाक्टर रामस्वरूप जी)

१. गौ माता है

भारतवर्ष संसार भर में एक कृषि प्रधान देश माना गया है। खेती बाड़ी ही के सहारे यहां के ९० फी सदी लोगों का गुजारा है, और जितने पेशे व मसकत हैं वे सब खेती ही के आधीन हैं। इस देश में भिन्न २ जलवायु वाले प्रान्त हैं। हरेक प्रकार की उपज इस देश में है। यहां किसी समय पशुओं के लिये वन तथा हरी उपजाऊ भूमियां अधिक परिमाण में थीं। गुरुकुलों तथा ऋषि मुनियों के आश्रमों पर गौओं तथा केले वृक्ष सुशोभित थे। मनुष्यों का स्वास्थ्य गौओं पर ही निर्भर है। अभी कुछ काल पहले भारत में प्रत्येक कृषक अपनी योग्यतानुसार गौएं पालता था। दूध, घी, मक्खन पर्याप्त मात्रा में था। अन्न भी काफी होता था। वैद्य, हकीम, डाक्टर कम थे और औषधालय तथा चिकित्सालय प्रायः न होते थे। रोग पास न आते थे। लोगों का आत्मिक व शारीरिक बल खूब समुन्नत था।

जीवन की सब आवश्यक वस्तुएं यथा दूध, दही, मक्खन और भिन्न २ प्रकार के अन्न यथा गेहूं, जौ, चना, चावल, गुड़, शक्कर, कपास, सन, अलसी, सरसों,—(अभिप्राय यह है कि खाने पीने तथा पहिनने के कपड़े तथा घरों में जलाने के लिए ईन्धन तैल इत्यादि) ये सब वस्तुएं गौ माता ही के कारण मिलती रहती थीं। भारत दूसरे देशों पर आश्रित नहीं था। उन दिनों यहां दूध की नदियां बहती थीं, मूल्य पर दूध का बेचना अवगुण समझा जाता था। उस प्रथा का प्रभाव हमारे देश के कई घरों में अब भी दिखाई देता है, वे घी तथा दूध के क्रय-विक्रय को पाप समझते हैं। एक चीनी यात्री को अपनी भारत यात्रा के अनुभव में यह लिखना पड़ा कि मैं भारत में प्यासा रहा। अर्थात् कहीं जल मांगता था तो उसके स्थान पर दूध दिया जाता था। आर्य-जाति गौ को गो-माता के नाम से आह्वान करती है क्यों कि जन्म-माता तो कुछ मास ही दूध पिलाती है मगर गौ माता तो जीवन पर्यन्त दूध पिला कर शक्तिशाली बनाती है। दूध के असीम गुणों के कारण ही गौ का माता के रूप में मान है।

मनुष्य के लिये भोजन में जिन २ तत्वों की आवश्यकता है वह सब दूध में उचित प्रमाण में उपलब्ध होते हैं। यह एक सब से उत्तम पेय है। जैसे पशु का दूध पिया जायगा उसमें वैसा ही प्रभाव होगा रासायनिक परीक्षाओं के द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है। इतना ही नहीं दूध से भिन्न २ बीमारियों की चिकित्सा की जा रही है। अमेरिका में इस प्रकार के चिकित्सालय खुल रहे हैं। हर तरह के रोग दूध के आश्चर्य कारी गुणों के कारण दूर होते हैं। अनेक रोगी जो असाध्य समझे गये थे दूध के इलाज से पूर्ण स्वस्थ हो गये। एक प्रसिद्ध लेडी "एला-व्हेलर विलकोक्स" (Ealla Wheeler Wilcox) का कथन है कि हृदय सम्बन्धी रोगों (Organic Heart Troubles)को छोड़ कर कोई शारीरिक रोग ऐसा नहीं जो यत्न करने पर दूध के सेवन से दूर हो जाय, यहां तक कि क्षय, अर्बुद (Tuberculosis, Cancer) तथा घातक रोगों को भी पूर्ण रूप से दूध के जरिये ठीक किया जा सकता है। सारांश यह है कि दूध आत्मिक व शारीरिक व्याधियों को दूर करने वाला है।

ग्रामों व नगरों में बालकों व मनुष्यों को यद्यपि शुद्ध दूध नहीं प्राप्त हो सकता। किसी पौधे को उगने ही बाद पानी नहीं मिले तो वह फूलता फलता नहीं परन्तु कुम्हला कर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार इस देश के बच्चे दूध के अभाव से अल्पायु, निर्बल, अधीर, तथा अत्यन्त रोगी होते हैं। मिसेज़ "ईसा टुवीड" जो दुग्ध विज्ञान में बहुत अनुभवशील हैं अपनी पुस्तक (Cow Keeping in India) में लिखती कि "जिन माता पिता को अपने बच्चों की भलाई का ख्याल है वह उनको भैंस का दूध कभी न दें, यदि बच्चों को ऐसा दूध दिया जायगा तो उन्हें आंत (Intestines) व जिगर (Liver) के कई प्रकार के रोग हो जायेंगे"। लंदन की "नेशनल मिल्क पब्लिसिटी कौंसिल" की तरफ से "Milk of the Home" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जो बड़े विद्वान् डाक्टरों की सम्मति से लिखी गई है। इस पुस्तक में जहां रोग नाशक शक्ति का वर्णन किया गया है वहां गर्भस्थिति के लिये दूध को परमावश्यक बताया गया है। दूध गर्भिणी तथा शिशु दोनों की पुष्टि करता है इसको इङ्गलैण्ड की सरकार भी अनुभव करती है तथा स्थानीय अधिकारियों के द्वारा

गर्भवती स्त्रियों के अन्तिम ३ मास तथा दूध पिलाने वाली माताओं के लिये भी जिनकी पारिवारिक आय पर्याप्त नहीं होती, दूध का प्रबन्ध करता है।

पश्चिमी देशों म अब से कुछ वर्ष पूर्व वहां के मनुष्य दूध के गुणों को ठीक प्रकार से नहीं जानते थे, वे मक्खन तो खूब खाते थे: अब अमेरिका व योरप वालों द्वारा दूध के पोषक तत्वों की खोज हुई है। पता चला है कि दूध में पदार्थों के अतिरिक्त सब तरह के विटामिन भी विद्यमान हैं। अब वह इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि जिस देश के निवासी दूध, दही और मक्खन प्रयोग में ला येंगे वहां के निवासी अधिक बलवान, स्वस्थ बहादुर तथा दीर्घायु होंगे तथा उनकी मृत्यु संख्या घट जायगी। बीमारियां भी कम हो जायेंगी। आज कल अमेरिका, रूस जर्मनी, इङ्गलैण्ड, इटली, नार्वे, डेनमार्क, फ्रांस, आष्ट्रेलिया, हालैण्ड, न्युज़ीलैण्ड, स्वीडन और जापान आदि देशोंकी सरकारें दूध और मक्खन अधिक परिमाण में मिल सकें ऐसा प्रयत्न कर रही हैं। भारत में तो प्राचीन समय से ही दूध का प्रयोग होता रहा है। आश्रमों व गुरुकुलों में प्रारम्भिक शिक्षा गोपालन से आरम्भ होती थी। उस समय उत्तम शुद्ध ताज़ा दूध पर्य्याप्त मिलता था जिससे उनका स्वास्थ्य उत्तम,कान्ति उज्ज्वल तथा बुद्धि तीव्र होती थी। जब ब्रह्मचारी गोपालन की कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता था तब गुरु अन्य शिक्षाएं देता था। उस समय के आर्य्य स्त्री पुरुष गोपालन को परम धर्म मानते थे। उन्हें गौओं का पालन पोषण तथा दूध दुहने का कार्य्य अपने हाथ से करने म अति आनन्द आता था और उस समय गोपालन की शिक्षा (Dairy) प्रत्येक घर में विद्यमान थी।

मिस्टर ए० सी० अग्रवाल प्रौफ़ेसर वेटेरिनरी कालिज-लाहौर ने वैज्ञानिक रीति द्वारा दूध दुहने पर एक पैम्फलेट लिखा है, तथा उसमें एक चित्र भी है। इस पुस्तिका में ४४०० वर्ष पूर्व गौओं के दूध दुहने व मक्खन निकालने की विधि का वर्णन है। उक्त चित्र Babylonia (इराक) "Tell El Obeid" में विद्यमान मन्दिरों के खण्डहरों से प्राप्त हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि वहां भी गोमाता का सम्मान था।

ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व मिश्र के मीनारों पर गौ जाति के चित्र पाये जाते हैं। ग्रीस में जो सिक्का पहले चलता था उस पर बैल की (वृषभ) मूर्त्ति अंकित थी। ग्रीक तथा रोमन ग्रन्थों में भी गो-पूजन पाया जाता है। सिकन्दर आज़म ने जब भारत पर आक्रमण किया तो वह लौटते समय दो लाख गौएं अपने साथ ले गया था। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल से गौ-वंश का सब देशों में अत्यंत आदर था।

श्री कृष्ण गौओं की सेवा तथा उनके चराने का कार्य स्वयं करते थे, तथा दूध, दही, मक्खन आदि का खूब प्रयोग करते थे। महाराज विराट के यहां लाखों गौएं रहती थीं। गो-पालन और खेती के विषय में सब प्रकार का प्रबन्ध करना हमारे राजाओं का मुख्य धर्म माना जाता था। प्राचीन काल में धन की गणना में मुख्य गौ-धन ही माना जाता था। राजा ऋतुपर्ण और नल गोपालक थे तथा महाराजा युधिष्ठिर के छोटे भ्राता सहदेव को गो-चिकित्सा का अच्छा परिज्ञान था। महाराजा अशोक के समय में भी जगह जगह पशु चिकित्सालय थे। नैपाल राज्य में अब भी गो माता का बड़ा आदर है। "आइने अकबरी" में लिखा है कि गौ से नाना प्रकार के उपकार होते हैं इसी कारण अकबर ने अपने राज्य में गो वध का निषेध कर दिया था। "आइने अकबरी" से यह भी सिद्ध होता है कि अकबर से ३२५ वर्ष पूर्व एक २ गाय आधा मन तथा उससे भी अधिक दूध देती थी। उस समय की भूमि भी अधिक उपजाऊ थी। उन दिनों वे लोग अन्न का प्रयोग बहुत न करके दूध, दही, मक्खन, घी आदि का प्रयोग अधिक मात्रा में करते थे। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि गौ के दर्शन से सुख की प्राप्ति होती है, और दूध, दही, मक्खन घी गोबर व मूत्र द्वारा रोगों की निवृत्ति होती है।

होमियोपैथी का जन्म

(ले० श्री० डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालङ्कार बिजनौर)

(४)

भगीरथ के उग्रतप से प्रसन्न हो ब्रह्मा जी ने कहा "वर मांगो"। भगीरथ ने नत मस्तक हो उत्तर दिया "महाराज! हमारे पूर्वजों का उद्धार करने के लिये पतित पावनी गङ्गा जी को मर्त्य लोक में प्रवाहित कर दीजिये।।" ब्रह्मा जी ने कहा "मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिये सुर-सरिता का मर्त्य लोक में अवतरित होने की आज्ञा तो दे दूंगा परन्तु स्वर्गलोक से सवेग गिरती उसे धारण कौन कर सकेगा? वह तो अपने तीव्र वेग के कारण धरातल को फोड़ पाताल लोक में प्रवेश कर जावेगी।

भगीरथ ने कहा "भगवन्! इसका उपाय भी श्रीमान् ही बतावेंगे" ब्रह्मा जी ने बताया कि सिवाय शिवजी के और किसी का शिर उसे धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। भगीरथ ने कैलाश-वासी शिव जी के पास जाकर कुछ काल तक भक्ति पूर्वक उनकी सेवा की। "भक्त्याहि तुष्यन्ति महानुभावाः" के अनुसार शिव जी ने प्रसन्न हो उसे वरदान देने को कहा। भगीरथ ने स्वर्ग से सवेग गिरती गङ्गा जी को निज शिर पर धारण करने को उनसे प्रार्थना की। शिव जी ने उसकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार करली। महादेव जी ने गङ्गा को किस प्रकार अपने शिर की जटाओं में धारण किया तथा उसे लोकोपकारार्थ पृथ्वी तल पर प्रवाहित कर दिया, इस कथानक से कौन भारतीय विद्वान् अपरिचित है?

सरसरी नजर से देखने पर गङ्गावतरण की यह कथा यद्यपि एक अच्छी खासी गप्प मालूम होती है परन्तु गम्भीर विचार करने पर जब इसका असली तत्व पता चलता है तब विज्ञ पुरुष इसे एक सत्य, केवल सत्य घटना ही समझने लगते हैं।

न्यूटन ने पेड़ से गिरते सेब को देखा। उससे पूर्व न जाने कितने मनुष्यों ने सेब को गिरते देखा होगा—सेब गिरता होगा और धरती में समा जाता होगा। परन्तु न्यूटन ने गिरते सेब को शिर पर धारण कर लिया—और अपने शिर से विज्ञान के एक अज्ञात नियम का आविष्कार करके उसे लोकोपकारार्थ संसार क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया। पृथ्वी में सदा से विद्यमान् आकर्षणशक्ति के नियम का केवल प्रादुर्भाव कर देने तथा उसे प्राणिमात्र के उपकारार्थ दान दे देने के कारण आज सारा संसार न्यूटन का चिर ऋणी तथा चिर-कृतज्ञ है।

परमपिता परमात्मा द्वारा, इसी प्रकार, अनेक दिव्य ज्ञान प्रतिक्षण निरन्तर प्रवाहित होते रहते हैं, परन्तु उनको धारण करने का सामर्थ्य किसी २ महान् आत्मा में ही हुआ करता है।

सैम्युल हनीमैन के शरीर में भी एक ऐसी महान् आत्मा का वास था जिस ने सकल ज्ञानविज्ञानागार, आदिगुरु विष्णु भगवान् के चरणारविन्द से अविरत प्रवाहित होने वाले चिकित्सा विज्ञान के एकमात्र सत्य नियम को अपने मस्तक में धारण कर उसे धरती में समाने से बचाकर, सुरसरि की धारा के समान प्राणि-मात्र के कल्याणार्थ समस्त संसार क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया। यह नहीं कि चिकित्सा के इस सत्य नियम की धार हनीमैन से पहिले होने वाले अन्य चिकित्सकों की तीव्र-दृष्टि से एकदम ओझल ही रहा हो, परन्तु उसको धारण करने का सामर्थ्य हनीमैन की शक्ति शाली आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में न था।

महान् आत्माओं के चरित्र सर्वसाधारण पुरुषों के चरित्रों से सर्वथा भिन्न हुआ ही करते हैं। उनकी तो:—

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिः
अन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम्
लोकोत्तराच्च कृतिराकृति रार्द्र-हृद्या,
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः॥

के अनुसार सब बात ही निराली होती है।

हम देखेंगे कि महात्मा हनीमैन का जीवन-चरित्र भी पग पग पर विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है तथा संसार को उसकी देन भी लोकोत्तर ही हुई है।

हनीमैन के पिता एक बहुत ही साधारण हैसियत के मनुष्य थे, जो पोर्सलीन के बर्तन बनाने का कार्य किया करते थे: परन्तु असाधारण प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण, वे जो बर्तन बनाया करते थे उन्हें हरबार उत्तम से उत्तम तथा नवीन से नवीन रूप दे दिया करते थे। उन्होंने बालक हनीमैन को भी एक नवीन सांचे में ढालना प्रारम्भ कर दिया। वे उसे विचार शील बनने का बारम्बार उपदेश दिया करते थे तथा सत्य के अन्वेषण में उद्यत रहने का आदेश। उन्होंने बालक हनीमैन के सुकोमल हृदय में यह विचार विशेषतया अङ्कित कर दिये थे कि किसी बात को स्वयं परीक्षा किये बिना कभी भी नहीं मानना चाहिये तथा परीक्षित वस्तु का परित्याग किसी प्रकार की कठिनता, भय तथा प्रलोभन के कारण कदापि नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार पितृ-भवन में भविष्य-जीवनोपयोगी उत्तमोत्तम शिक्षाओं से दीक्षित पितृमान् बालक हनीमैन तत्कालीन शिक्षणालयों में लौकिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया गया; जहां उसने अल्पकाल में ही योरप की पांच मुख्य २ भाषाओं प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त करके अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया।

यद्यपि हनीमैन की प्रवृत्ति साहित्य की ओर विशेषतया से प्रतीत होती थी परन्तु परम पिता की प्रेरणानुसार उसके पिता ने स्कूल की शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् उसे Leipgio के प्रसिद्ध Medical College में दाखिल करा दिया।

कुशाग्रबुद्धि हनीमैन ने २४ वर्ष की अवस्था में एलोपैथी की M D की डिग्री सम्मान पुरस्सर प्राप्त करके चिकित्सा का कार्य प्रारम्भ कर दिया "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के अनुसार उसने कुछ ही वर्षों में चिकित्सा जगत् में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली। डाक्टर Hafeland ने, जो उस समय जर्मनी का सबसे प्रसिद्ध चिकित्सक था, हनीमैन के विषय में लिखा था कि वह जर्मनी के विशेषतया परिगणित डाक्टरों में से एक था ("Hahnemann was one of the most distinguished physicians in Germany")। इसी प्रकार योरप के अन्य देशों के चिकित्सक भी उसकी अगाध प्रतिभा तथा चिकित्सा विषयक योग्यता की कभी२ मुक्तकंठ से प्रशंसा करते ही रहा करते थे।

परन्तु ज्यों २ संसार उसकी चिकित्सा विषयक सफल-ताओं को देख २ कर उसकी प्रशंसा करने में लगा हुआ था, वह स्वयं अपनी असफलताओं का विचार करके अपनी चिकित्सा से असन्तुष्ट होता चला जा रहा था। इस असन्तोष के वशीभूत होकर उसने लिखा था कि उसे इस बात में सन्देह है कि उसके मरीज़ अधिकतया उस की दवा के बिना अधिक चङ्गे रहते हैं अथवा उस की दवा खाकर।

कुछ काल पश्चात् जब उसने देखा कि उसके पूर्ण प्रयत्न करने पर भी बहुत से अबोध बालक तथा युवा-युवतियां काल के गाल में बलात् चलने चले जा रहे हैं तो उसकी एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में पैदा हुयी अश्रद्धा निराशा में परिणत हो गयी। अतएव, शीघ्र ही, उसने प्रचलित चिकित्सा के उपायों को रोगोपशमन के कार्य में न केवल अशक्त अपितु हानिप्रद समझकर चिकित्सा के कार्य का सर्वथा परित्याग कर दिया।

क्या कोई साधारण मनुष्य इतनी ख्याति तथा संपत्ति-प्रद प्रैक्टिस को केवल अपनी अन्तरात्मा की धुमन के कारण छोड़ने का साहस कर सकता है? क्या हनीमैन "यो मर्त्तुकामादपि हर्त्तुकामः" वाला वैद्य था? क्या हनी-मैन "यमराजसहोदर" बनने के लिये अवतरित हुआ था?

हनीमैन उन वीर पुरुषों में से था जो अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को किसी भाव भी नहीं बेच सकते। उसके साथियों ने उसे बहुत समझाया कि "स्वयमुपागता श्रीः त्यज्यमाना शपतीति लोके प्रसिद्धम्" के अनुसार उसे

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गुरुकुल

१५ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

[ले० श्री आचार्य अभयदेव जी]

(गतांक से आगे)

धन का सदुपयोग और दुरुपयोग क्या है?

हर एक शक्ति का सदुपयोग भी किया जा सकता है दुरुपयोग भी। यही बात धन-शक्ति को भी लागू होती है। दुरुपयोग दो तरह से हो सकता है। धन का जहां उपयोग करना चाहिये वहां उपयोग न करने से भी दुरुपयोग होता है, जैसे कि जहां नहीं करना चाहिए वहां करने से होता है। पहली तरह का दुरुपयोग तामसी पुरुष करते हैं और यह शायद अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में बहुत होता है। लोग रुपयों को गाड़ कर, सन्दूकों में बन्द करके या अन्य तरह रोक कर रखते हैं, सोचते रहते हैं पर खर्च नहीं करते। अन्त में प्रायः उनके मरने के बाद लूटा या ठगा जाकर वह बुरे उपयोग में व्यय हो जाता है।

दानं भोगो नाशः, तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति, न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

जैसे पानी जब बहता नहीं रहता तो वह सड़ांद पैदा करता है, वैसे ही धन भी रुक जाने से, न बहने से, गंदगी पैदा करता है जिसके नाना रूपों से हम परिचित हैं: अतः यह केवल अनुपयोग की बुराई नहीं है किन्तु एक जगह रुका रहने से जो उस व्यक्ति तथा उसके आस पास विकार का (सूक्ष्म रूप में कहें तो ईर्ष्या, द्वेष, मोह, आसक्ति, चोरी, षड्यन्त्र आदि का) वातावरण पैदा करता है वह एक भावात्मक बुराई है। दूसरे प्रकार का दुरुपयोग तो साफ ही है जो राजसिक लोग करते हैं। जहां धन का उपयोग नहीं करना चाहिए वहां करते हैं। एक शब्द में यह दुरुपयोग है— शोषण के लिये धन का उपयोग। सभी शक्तियों का ऐसा दुरुपयोग किया जाता है। यह आसुरी भाव से होता है। यदि ज्ञानी अपनी ज्ञान शक्ति का उपयोग अज्ञानियों से फायदा उठाने में करे तो वह ब्राह्मण नहीं, वह असुर है। यदि क्षत्रिय अपनी शक्ति का उपयोग निर्बलों के सताने में करे तो वह क्षत्रिय नहीं वह दानव है। इसी तरह धनशक्ति का उपयोग निर्धनों को, और चूसने में किया जाय तो यह मनुष्य का काम नहीं, राक्षसी काम है। पर यह राक्षसी काम दुनिया में बहुत हो रहा है। और शायद हम सब जानते हुए या न जानते हुए उसमें कुछ न कुछ सम्मिलित हैं। क्योंकि आज कल धनशक्ति का जितना व्यापक दुरुपयोग हो रहा है उतना और किसी शक्ति का नहीं। असल में आज अन्य सब शक्तियां ही लुप्त हैं, छिपी पड़ी हैं या क्षेत्र से पीछे हटी हुई सी हैं। यह ज़माना ही भौतिकवाद या धनशक्ति की प्रभुता का है। तभी तो हम देखते हैं कि बुद्धि रखने वाले ज्ञानधनी भी अपने ज्ञान को बेच रहे हैं, क्षत्रिय अपने बल को बेच रहे हैं। वे भ्रष्ट ब्राह्मण और भ्रष्ट क्षत्रिय हैं। धन के बल से दिमागों को इस काम में लगाया जा रहा है कि वे मनुष्य की हत्या करने के अधिक से अधिक कारगर तरीकों का आविष्कार करें। धन के बल से—अपने कारखानों का गोला बारूद बिक सके इस लिये—बिना ज़रूरत के भी लड़ने को अपने राष्ट्र को तैयार कर दिया जाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के भ्रष्ट हो जाने से 'वैश्य' (वैश्य तो नहीं कहना चाहिये, धन वाले) उन पर राज्य कर रहे हैं। असल में वर्ण रहे ही नहीं हैं। वर्णों का नाम तो मैं वर्ण व्यवस्था को ठीक दिशा दिखाने के लिये ले रहा हूं। आज तो ज्ञान वाले, वीरता वाले और धन वाले सब मिल कर आसुरी चक्र पर चढ़े हुए यथाशक्ति दूसरे निर्बलों का (ज्ञान, बल और धन में निर्बलों का) शोषण कर रहे हैं और आसुरी सुख पा रहे हैं। पर धन इनके केन्द्र में है। अपनी आर्थिक व्यवस्था द्वारा ही, धन के जादू से ही दूसरे लोगों को वश में करके रखा गया है। दुनिया इस धन के दुरुपयोग से उत्पन्न की गई दुरवस्था से निकलना भी चाहती है। इसी लिये जो जो नये वाद उत्पन्न होते हैं वे मुख्यतया धन की ही किसी नयी व्यवस्था को स्थापित करना चाहते हैं—समाजवाद है, कम्यूनिज़म है, बोल्शेविज़म है। पर ये धन के दुरुपयोग को संगठित करने वाली पूँजीवाद, साम्राज्यवाद आदि की शक्तियों का अभी तक सफल मुकाबिला नहीं कर सके। क्यों कि इन में देवभाव नहीं आया-असुर भाव पूरी तरह से नहीं गया। मेरी कल्पना में तो इसका ठीक इलाज जगत्-व्यापी वर्ण व्यवस्था है। अर्थात् धनशक्ति का इतना भारी संगठित दुरुपयोग तब तक नहीं रुक सकता जब तक कि धन शक्ति पर जगत व्यापी रूप में क्षत्रिय और ब्राह्मणों का (ऊंची भावना और ज्ञानका) अंकुश न हो। सीधी सी बात है कि यदि हम चाहते हैं कि धन का दुरुपयोग न हो, सदुपयोग हो तो ऐसा करना चाहिये जिससे धन अधिक से अधिक अच्छे आदमियों के वश में हो, बुरे आदमियों के नहीं। धनशक्ति को परिचालित करना, जैसे आदमी के हाथ में होगा वैसा ही धन का उपयोग होगा। धन असुर के हाथ में जायगा तो वह आसुरी काम करेगा, गरीबों दुखियों को और सताने के काम आयगा। देव के हाथ में जायगा तो वह यज्ञार्थ, उपकार, सब की भलाई में उपयुक्त होगा। वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय का तो जीवन यज्ञमय होना ही था किन्तु वैश्य को भी यज्ञार्थ जीवन बिताने का ही आदेश था, यज्ञ तीनों वर्णों के लिये एक समान कर्त्तव्य था। जैसे धन के सब दुरुपयोग को 'शोषण' इस एक शब्द में कहा जासकता है वैसे सब सदुपयोग को 'यज्ञ' इस एक शब्द में कहा जा सकता है। ज्ञानी जब अपना ज्ञान अज्ञानियों को ज्ञान युक्त करने में अर्पण करता है तो वह महान ज्ञान-यज्ञ करता है। यही ज्ञानशक्ति का सदुपयोग है। क्षत्रिय जब अपने बल को निर्बलों की रक्षा में लगा देता है, निर्बल को सताये जाने से बचाने के लिये बलवान दुष्ट का दलन करने में

अपनी शक्ति 'आहुत' करता है तो वह अपना यज्ञ करता है। इसी तरह वैश्य का धर्म—उसका यज्ञिय कर्म—यह है कि वह धन का ऐसा उपयोग करे जिससे निर्धनों के पास धन पहुंचे। लेकिन आज यह हो रहा है, आर्थिक व्यवस्था ऐसी बनी हुई है कि जो निर्धन है वही और सताया जा रहा है, वह दिनों दिन और निर्धन होता जाता है। और जो धनी है वह दिनों दिन और धनी होता जाता है। इस तरह आर्थिक विषमता बढ़ती जाती है। एक तरफ एक आदमी है जो दिन भर तन तोड़ कर मेहनत करता है पसीना बहाता है फिर भी उसे खाने तक को नहीं मिलता। दूसरी तरफ एक लखपति निठल्ला बैठा है जो केवल भोगता है, अन्य कुछ नहीं करता। अमेरिका के एक सब से बड़े धनी के विषय में सुना गया था कि उसे किसी काम में एक लाख की हानि की खबर दी जाती है तो वह टेनिस खेलता खेलता ही कह देता है—क्यों कि व्यापार पर उसका इतना एकाधिकार है—कि उस वस्तु पर एक पाई की दर से वृद्धि कर दो बस। उसके लिए एक लाख की हानि ऐसी है जैसे हमारी एक रुपये की हानि। कभी यह भी पढ़ा था कि अमेरिका के केवल सात-आठ आदमियों के पास इतना धन है जितना अमेरिका के बाकी सब निवासियों के पास मिला कर है। धन की यह विषमता इसी लिये हुई है क्यों कि आर्थिक नीति के द्वारा शोषण का एक ऐसा सुन्दर सहज तरीका बना लिया गया है जिससे निर्धन शोषित होकर दिनों दिन और और क्षीण होता जाता है और धनी रक्त पी पी कर दिनों दिन और और पीन होता जाता है। इस शोषण का सही इलाज एक ही है-यज्ञ। शोषण द्वारा असुर को तृप्त करना छोड़ कर यज्ञ द्वारा देव को तृप्त करने की ओर मुंह मोड़ा जाय। सब क्रम बदल जाना चाहिये। अब तो धन वाले अपनी अधम वृत्तियों को तृप्त करने में बेसुध होकर लगे हुये हैं, इसी में धन खर्च करते हैं। ज्ञान और बल वाले भी उनकी मदद करते हैं या अपने को बेच देते हैं, सारा वायुमण्डल ही ऐसा है। चाहिये यह कि धन वाले भी अपनी ऊंची वृत्तियों को जागृत करने का यत्न करें, हम अपने मनुष्यत्व को उठाने और विकसित करने में ही धन को व्यय करके अपने धन को सफल करें, जब कि धन से ऊपर रहने वाले क्षत्रिय और ब्राह्मण ऊँची भावना और ज्ञान द्वारा उनका ठीक दिशा में सञ्चालन करें। धन की कोई ऐसी ही यज्ञपरायण व्यवस्था, जिसमें धन अपने उचित स्थान पर ही रहे और इससे ऊपर की उच्च शक्तियों के स्वभावतः आधीन रहे, यदि प्रवर्तित हो सके तभी धन के असह्य दुरुपयोग से पीड़ित वर्तमान जगत को सच्ची राहत मिलेगी इस मौलिक परिवर्तन को न कर अन्य परिवर्तनों के जोर शोर से करने से भी कुछ बनेगा नहीं।

प्रेम

[अनु०—श्री विद्यालंकार]

(गतांक से आगे)

प्रेम होने वाले दोनों व्यक्तियों के स्वभाव में क्या सम्बन्ध है? इस विषय में मुख्यतः दो विरोधी सिद्धान्त प्रचलित हैं। एक कहते हैं कि--प्रेम विरोधी गुण वालों में होता है। सामान्य गुण वाले तो ऋण से ऋण और धन से धन विद्युत की तरह एक दूसरे से भागते हैं। दूसरे विद्वान् का मत है, कि प्रेम विरोधी गुण वालों में न होकर सामान्य गुण वालों में होता है। विरोधी गुण वालों की तो कभी बन ही नहीं सकती। किसी ने कहा भी है:—

> ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलं।
> तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्ट विपुष्टयोः।

इस प्रकार इन दोनों ही पक्षों के विषय में पर्याप्त कहा जा सकता है। किन्तु यह मानना उचित होगा कि प्रेम पूरक गुण वाले व्यक्तियों में होता है। इस सिद्धान्त से पिछले दोनों ही सिद्धान्तों का समन्वय हो सकता है। पूरक गुणों को विरोधी समझ लेना तो एक सामान्य भूल है। अतः इस पक्ष में अधिक कहना व्यर्थ है। सामान्य गुण वालों में प्रेम होता है--ऐसा समझने का कारण यह है, कि—साधारणतया प्रेम अस्थिर होता है, यह हम पहिले ही बता चुके हैं। इसको स्थिर बनाने की दो विधियां हैं। जिनमें से एक का तो पहिले जिक्र हो चुका है। (प्रेम को बन्धुत्व में परिवर्तित करना)। दूसरी विधि यह है कि दोनों प्रेमी किसी एक विषय में अपनी दिलचस्पी उत्पन्न करलें। यदि ऐसा करलें तो उनका प्रेम नष्ट नहीं होता, पर वास्तव में यह भी प्रथम विधि के अन्तर्गत ही है। इससे उन दोनों के लिए एक सामान्य उद्देश्य बन जाता है इस उद्देश्य की प्राप्ति में लगे होने पर दोनों के सामान्य गुण ही, सामान्य लोगों को दृष्टिगोचर होते हैं। इसी लिए एक यह सिद्धान्त बन गया है कि प्रेम सामान्य गुण वालों में होता है। किन्तु सत्य यह है कि प्रेम पूरक गुणवालों में होता है।

इतने विवेचन के बाद थोड़ा सा इस पर भी विचार कर लेना चाहिये, कि प्रेमियों की क्या २ विशेषताएं हैं। इनको साधारणतया ५ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है!

१. कुछ प्रेमी ऐसे होते हैं, जो किसी के बिना रह नहीं सकते। इनके लिए प्रेम पात्र के प्रति सच्चा रहना, उनकी अनुपस्थिति में कठिन हो जाता है। इनका मुख्य सिद्धान्त यह बना होता है कि आनन्द करो। एक के लिए कबतक रोते रहें। आज एक मरा तो कल दूसरा मौजूद है। किसी के लिए रोने का क्या लाभ? वह रोने से लौटने तो लगा नहीं? इस लिए व्यर्थ में क्यों रोएं।

२. कुछ प्रेमी इस प्रकार के होते हैं, जिन्होंने एक बार जिससे प्रेम किया, वह अनन्त काल के लिए प्रेमपात्र बन गया। ये मरने पर भी उसे नहीं भूलते। इन का

सिद्धान्त है कि हमें अपने प्रेम पात्र के लिए सच्चा रहना चाहिये। अब नहीं तो अगले जन्म में मिलेंगे। इस में विश्वास होता है। वह अपने प्रेमपात्र पर छोटी छोटी बातों पर सन्देह नहीं करते। परिणाम सुख होता है। भारतीय पवित्र आदर्श यही है। यही कारण है कि यहां विवाह होने पर तलाक नहीं होता।

३. एक प्रेमी ऐसे होते हैं, जो किसी से लड़ते समय तक प्रेम नहीं कर सकते। इनका सिद्धान्त है कि सदा एक से प्रेम करने का क्या फायदा। प्रेम का उद्देश्य तो आनन्द है। और आनन्द विचित्रता में है। परिवर्तन का नाम जीवन है। प्रवाह में स्वच्छता है। रुका हुआ पानी भी सड़ जाता है। फिर प्रेम का तो कहना क्या? इसलिए एक से रूठे, और दूसरे से किया। इनके लिए प्रेम पात्र की अनुपस्थिति भी आवश्यक नहीं। यह गोटोपियन आदर्श है। इसमें और पहिले में कुछ भेद है। पहिले में तो फिर भी कुछ वफादारी कही जा सकती है, किन्तु यह तो बिलकुल ही त्याज्य स्थिति है। पहिली श्रेणी तो कुछ हद तक जायज भी होनी चाहिये। युवती विधवा के लिए जन्म भर पतिव्रता रहना बड़ा कठिन है: जब कि विषयों को इतना प्रबल कहा गया है—

दुस्त्यजा हि विषया विदुषापि,

४. यह श्रेणी ऐसी है जो एक समय में एक से प्रेम करती है। इसको प्रथम और तृतीय श्रेणी में अन्तर्गत किया जा सकता है। यदि यह प्रथम श्रेणी में है, तब तो ग्राह्य और हितकर भी कही जा सकती है। किन्तु यदि यह अवस्था तृतीय श्रेणी के रूप में है, तो इसका सहन करना समाज के लिए एक समस्या हो जायगा।

५. यह उन लोगों की श्रेणी है, जो एक ही समय में कइयों से प्रेम करते हैं। यह अवस्था सबसे अधिक खतरनाक है। इस प्रकार के प्रेमी सदा धोखेबाज होते हैं। All is fair in love and war, यह ऐसे ही प्रेमियों का सिद्धान्त है। इसके कारण बहुत से नवयुवकों और नवयुवतियों के जीवन बर्बाद हो जाते हैं। इस प्रेम को एक दम अस्थिर कहना चाहिये। ऐसे प्रेमियों को भी वेश्या श्रेणी में समझना चाहिये। इनको भी समाज में वे ही लाभ और हानियां हैं, जो वेश्याओं को।

इन प्रेमियों का एक अन्य दृष्टि से भी भेद किया जा सकता है। इस दृष्टि के अनुसार प्रेमी दो प्रकार के होते हैं, एक आत्मसमर्पक और दूसरा आत्मसम्मानी। ये दोनों ही स्थितियां यदि Extreme पर हों तो अच्छी है। क्योंकि जो पूर्ण रूप से आत्म समर्पक है, उसे कभी सन्देह, शिकायत हो नहीं सकती। और यदि कोई पूर्ण रूप से आत्मसम्मानी है, तो वह थोड़े भी अपमान व उपेक्षा को सह नहीं सकता। इसलिए वह ऐसे प्रेम को एक दम समाप्त कर देगा। अधिक देर तक अशान्त नहीं रह सकता। किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। ये दोनों ही गुण प्रेमियों में पाये जाते हैं। और यदि दोनों ही न हों तो प्रेम हो भी नहीं सकता; क्योंकि आत्म समर्पण के बिलकुल अभाव में तो प्रेम असम्भव है, और यदि पूर्ण आत्म समर्पण हो तो यह प्रेम न होकर दासता हो जायगी। अतः जिसमें इन दोनों में से जिस गुण की मुख्यता होती है, उसके अनुसार उसको नाम दे दिया जाता है। [क्रमशः]

[पृष्ठ ३ का]

जाती लक्ष्मी की मार्गभूत अपनी विपुल प्रैक्टिस को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये; परन्तु उसने यही उचित समझा कि चिकित्सा के नाम पर प्राण-हरण की प्रक्रिया द्वारा उदर-दरी-भरण करने की अपेक्षा किसी साधनान्तर से जीविका चलाना ही कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा।

क्या हनीमैन के इस अलौकिक पथावलम्बन पर भर्तृहरि का निम्न प्रसिद्ध श्लोक पूरा नहीं उतरता?

"निन्दन्तु नीति-निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

यद्यपि अन्तरात्मा की आज्ञानुसार हनीमैन ने चिकित्सा के कार्य से सर्वथा हाथ खींच लिया तथापि उसका मस्तिष्क प्रतिक्षण चिकित्सा विज्ञान के उन्नत करने के उपायों को सोचने में ही लगा रहता था। उसका पूर्ण विश्वास था कि परम दयालु परमात्मा ने अपनी सन्तान को, रोगोपशमन के किसी सशक्त साधन बिना इस प्रकार रोगों से निर्बाध सताये जाने के लिये कदापि उत्पन्न नहीं किया है।

अपने इस दृढ़ विश्वास के अनुसार वह उस उपाय व साधन को पा जाने के लिए सदा सजग रहता था।

प्रायः निराशा में आशा की झलक इस प्रकार छिपी रहती है जिस प्रकार बादलों में बिजली तथा अमावस की रात में प्रतिपच्चन्द्रलेखा। निराशा-निशा के पूर्ण होते ही आशा की चमक दीखने लगती है। हनीमैन की इस पूर्णता को प्राप्त हुई निराशा-निशा का जिस दिव्य परीक्षण द्वारा अवसान हुआ उसके आगमन का अवसर भी आ ही पहुंचा था।

हनीमैन ने चिकित्सा के कार्य्य का परित्याग करके सन् १७९० ईस्वी में अंग्रेजी में लिखित Cullins के Materia Medica का जर्मन भाषा में अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया था। उक्त पुस्तक का अनुवाद करते २ हनीमैन Cinchona Officin Nalis नामक औषधि पर आ पहुंचा। सिन्कोना क्यों ज्वर संहारक है इसकी व्याख्या करते हुए Cullins की पुस्तक में यह लिखा था कि चूंकि यह बड़ा कटु पदार्थ है अतः यह आमाशय (Stomach) को शक्ति प्रदान करके ज्वर का नाश करता है। यह पढ़ने ही हनीमैन ने कलम मेज़ पर रखदी तथा तर्कना शक्ति के सहसा जागृत हो जाने के कारण वह यूं सोचने लगा, "यदि सिन्कोना कटु पदार्थ होने के कारण ज्वर संहारक है तो Coffee, कालमिर्च, आरसनिक तथा आरनीका इत्यादि पदार्थ क्यों ज्वर संहारक हैं? ये सब तो ऐसे कटु पदार्थ नहीं

हैं। अपितु, सिनकोना भी ज्वर के कुछ ही रोगियों पर असर करता है, सब पर नहीं। उसे याद आया कि काफी इत्यादि न केवल ज्वर सहारक हैं अपितु कभी कभी, अधिक मात्रा में लेने पर, ज्वर को पैदा भी कर देते हैं। तब उसने सोचा कि क्या सिनकोना भी ज्वर उत्पन्न कर सकता है? बस, इस विचार के आते ही उसने सिनकोना का Liquid extract तय्यार करके दो ड्राम सुबह तथा दो ड्राम सायंकाल स्वयं पीना प्रारम्भ कर दिया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि उसने देखा कि उसे उसी प्रकार के जाड़े बुखार ने सता दिया जिस प्रकार के जाड़े बुखार के रोगियों को सिनकोना देकर वह अच्छा किया करता था। अब हनीमैन सोचने लगा कि "क्या यह बात तो नहीं है कि सिनकोना रोगियों में ज्वर-संहारक इसलिए है कि चूंकि वह स्वस्थ मनुष्यों में ज्वर उत्पन्न भी कर सकता है?"

पाठकवृन्द! इसी विचार द्वारा परमात्मा ने हनीमैन के हृदय में चिकित्सा के उस सत्य-नियम का प्रकाश कर दिया जिसे प्राप्त करने के लिये वह अब तक तड़फड़ा रहा था तथा जिसके प्रकाश करने का समाश्वासन देकर भगवान् ने उसे इस मर्त्य-लोक में अवतरित किया था। हनीमैन के मस्तिष्क में इस विचार का समाना ही "होमियोपैथी का गर्भ में आना" है।

गर्भ में आते ही यह विचार हनीमैन के परीक्षणों द्वारा परिपुष्ट होने लगा। हनीमैन ने अनेक औषधियों द्वारा यही परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया तथा बहुत सी औषधियों का लक्षण-संग्रह तयार कर लिया। अब जब कभी उसे किसी रोगी के लक्षण उन औषधियों में से किसी औषधि के सम्प्रहीत लक्षणों से मिलते दिखाई दिये, उसने उसे वह औषधि परीक्षणार्थ देनी प्रारम्भ कर दी। फल यह हुआ कि वह रोगी स्वस्थ हो गया।

इन परीक्षणों द्वारा उन्हें यह निश्चय हो गया कि न केवल सिनकोना अपितु समस्त औषधियां रोगों का शमन इसलिये करती हैं क्योंकि वे स्वस्थ मनुष्यों में रोगलक्षणों के समान लक्षण पैदा कर भी सकती हैं।

इस प्रकार किये गये अनेक परीक्षणों की सफलता प्राप्त होने पर हनीमैन ने चिकित्सा का कार्य पुनः नियमानुसार प्रारम्भ कर दिया, जिससे उसे अशातीत सफलता प्राप्त होने लगी। इस ऐकान्तिकी सफलता के कारण पर विचार करते हुवे उसे डा० हिप्पाक्रेटस का "रोगोपशमन कार्य समों तथा विषमों दोनों के अनुसार हो सकता है" यह वचन याद आया। विषमों के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा करने पर उसे जो असफलता प्राप्त हुई थी उसे वह कैसे भुला सकता था! उसी के कारण तो उसे चिकित्सा के कार्य से हाथ धो बैठना पड़ा था। उसने समझ लिया कि हो न हो यह सफलता "समों" के सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा करने का ही परिणाम है। शीघ्र ही उसके हृदय में यह दृढ़ निश्चय हो गया कि जिस की खोज में वह अबतक मारा फिर रहा था, चिकित्सा का वह सत्य नियम—"समों" का ही है। इस नियम के हाथ लगते ही उसने उसे "समः सम प्रशमयति" का प्रत्यक्षरूप दे कर संसार के सामने प्रस्तुत कर दिया। पाठकवृन्द! चिकित्सा के इस एक मात्र सत्य नियम का संसार में प्रगट होना ही "होमियोपैथी का जन्म" है।

गुरुकुल समाचार

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। चिकित्सालय में कोई नवीन रोगी प्रविष्ट नहीं हुआ। ऋतु की उत्तमता का प्रभाव ब्रह्मचारियों के सब चेहरों पर स्पष्टतया प्रकट हो रहा है। महाविद्यालय की सभाओं के साप्ताहिक अधिवेशन नवीन मन्त्रियों की क्रियाशीलता के कारण सोत्साह हो रहे हैं।

गोष्ठीसभाः—गत शुक्रवार की रात्रि को गोष्ठी-सभा का साधारण अधिवेशन श्री प्रो० वागीश्वर जी के सभापतित्व में किया गया। सभा में कवियों, गाल्पिकों तथा प्रहसनकारों ने अपनी उत्कृष्ट कला का अच्छा परिचय दिया। सर्व श्री सच्चिदानन्द, सत्यदेव, सूर्य कुमार, श्री कुमार, आनन्द, सत्यभूषण जी 'योगी' की कवितायें खूब पसन्द की गईं। श्री सभापति जी ने अन्त में कवियों का मार्ग प्रदर्शन करते हुए उनका उत्साह बढ़ाया।

दो गद्य गीत

[लेखक की अप्रकाशित कृति 'मां' से]

[१]

मां के पास जो बैठता है वह मां का हो जाता है।
बालक मां की गोदी में बैठकर मां को अपना समझता है।
मां का स्तन्य पाकर मां पर स्वत्व समझता है।
बछड़ा गाय का दूध पीकर स्तन त्याग करना नहीं चाहता।
पक्षी पेड़ की खोल में रहकर पेड़ छोड़ना नहीं चाहता।
मां का प्यारा जब मां के पास जाता है तब मां उसे समीप बिठाती है।
समीप बैठने से पल पल मां का प्यार मिलता है।
दूर भटकने से मां आंखों से ओझल हो जाती है।
मां का प्यार दुलार कोई दूर की चीज़ नहीं है।
वह तो पास में मिलता है।
बालक मां की मीठी गोदी में मां का प्यार पाता है।
मां के कोमल स्पर्श में मां का आशीष पाता है।
मां की साया में रहकर फूला नहीं समाता।
मां के पास जो बैठता है, वह मां का प्यार पाता है।
मां की गोदी में बैठकर मां का हो जाता है॥

[२]

अशान्ति के कालिके! अपने रौरव रहस्यों की ओट में छिपकर जब सुख सौहार्द और सौन्दर्य के भव्य कुटीरों और प्रसादों पर हमला करते हो तो ओ! मातृ-प्रेम के बन्दे; तू उन बूंद बूंद पिये हुए स्तन के दूध की शक्ति से शत्रु का सामना कर कि जिससे शत्रु के भयानक आक्रमणों का प्रतीकार तेरी रौद्र रस चातुरी करने में समर्थ हो। अन्याय और असमता से सुसज्जित आक्रान्ताओं के सैन्य में विद्युद्वेग से घुसकर तेरे वीर योद्धा उन्हें पद पद पर शिथिल और निर्वीर्य बनावें जिससे उन हिंसक रहस्यों का वीभत्स ताण्डव तेरे मुख के सहस्र विजय-शंखों की ध्वनि से टकराकर अपने सर्वनाश में चकनाचूर हो जाय॥

'द्विज'

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥

आचार्य--रामदेव--अंक "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २२ मार्गशीर्ष १९९७; ६ दिसम्बर १९४० [संख्या ३४

आचार्य रामदेव–दिवस

प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रबल पोषक, आर्यसमाज के सर्वश्रेष्ठ वक्ता और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सुदृढ़ स्तम्भ आचार्य रामदेव जी को दिवंगत हुए ९ दिसम्बर को पूरा एक वर्ष होता है। इस पुरुष-सिंह ने अपनी अमूल्य सम्पत्ति (अपनी यौवनावस्था) की कुर्बानी करके लगभग ४० वर्ष तक अथक रूप से देश और धर्म की जो उत्कृष्ट सेवा की है उससे कौन देशवासी अपरिचित है ? इतिहास, धर्मशास्त्र, आचार-शास्त्र, और राजनीति के इस धुरन्धर विद्वान् ने भारतीय संस्कृति की धूम न सिर्फ़ आर्यावर्त में अपितु, इङ्गलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका तक में मचा दी थी। रुपयों पैसों के लोभ से बहुत दूर, यथापि शारीरिक शृंगारों से सर्वथा निरीह, देश के अक्लान्त सेवी, उग्र कर्मठ और महान् आशावादी इस वीरात्मा की चर्चा, एक वर्ष से भारत के प्रत्येक क्षेत्र में—सभी सभा-सोसाइटियों और समाचार पत्रों में—होती रही है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने ६ दिसम्बर को समस्त भारत में 'आचार्य- रामदेव-दिवस,' ससमारोह मनाये जाने की घोषणा की है। आशा की जाती है कि देश के सभी छोटे बड़े शहरों की आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं तथा आम पब्लिक इस दिवस को बड़ी तैय्यारी के साथ मनायेगी।

आचार्य रामदेव जी का सेवाकार्य

भारतीय धर्म और संस्कृति की सेवा करते हुए आचार्य रामदेव जी ने राष्ट्र की भी बड़ी सेवा की। राजनीतिक आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेते हुए सिक्खों, इसाइयों और पारसियों को भी समय २ पर सहायता देते रहे। यों तो भारत का शायद ही कोई सामाजिक या सांस्कृतिक क्षेत्र ऐसा बचा होगा जिसमें आचार्य रामदेव जी ने अपनी अमूल्य सेवाएं न दी हों, फिर भी शिक्षण क्षेत्र में क्रान्ति-कारी होने के नाते आपकी सबसे अमूल्य सेवाएं गुरुकुल को ही प्राप्त हुईं। आपने अपने जीवन का सबसे बेशकीमत हिस्सा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और कन्यागुरुकुल देहरादून को उन्नत करने में लगाया। आर्य जनता की ये दोनों शानदार संस्थाएं आचार्य रामदेव जी के दृढ़-परिश्रम और अध्यावसाय के बल पर ही खड़ी हैं और दिनोंदिन अधिकाधिक उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रही हैं। इनके देख रेख और आगे उन्नत करने की ज़िम्मेदारी निस्सन्देह जनता पर है।

दो लाख की अपील

गतवर्ष आचार्य रामदेव जी के देहावसान के पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनके शेषकार्य को पूरा करने के लिए दो लाख रुपयों की अपील निकाली थी—जिसमें से प्रथम एक लाख रुपया विशेषतः कन्या गुरुकुल के लिये है। आज 'आचार्य रामदेव दिवस' पर क्या हम ऐसी आशा करें कि न सिर्फ आर्य जनता बल्कि भारतीय-संस्कृति प्रेमीमात्र उस महान् कार्यशील आत्मा का स्मरण करके अपने कर्त्तव्य को पहचानेंगे ? उनके प्रारम्भ किए हुए कार्य को अपने हाथों में लेकर उसे पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक रूप इन दोनों शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकताओं और कमियों को अनुभव करेंगे, और इस दिशा में अधिक से अधिक प्रयत्नशील होंगे।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूरा विश्वास है कि हमारे देश का समुन्नत सुसंस्कृत समाज इस तथ्य को अनुभव करके और आचार्य जी का कार्य-सूत्र अपने हाथ में लेकर इन दोनों संस्थाओं की उन्नति में उचित सहयोग देगा। गत वर्ष महात्मा गांधी जी ने आचार्य जी के निधन के पश्चात् कन्या गुरुकुल की सहायता के लिए एक मार्मिक अपील 'हरिजन' में प्रकाशित की थी— उससे प्रेरित होकर अनेक धनी मानी सज्जनों ने योग्य सहायता भी दी थी। किन्तु वह अपर्याप्त रही। आज के दिन हम आपको पुनः कर्त्तव्य स्मरण कराते हैं। आशा है आप इसे भूलेंगे नहीं और तन, मन, धन, से पूरी सहायता देकर अपनी सचेष्टता, उत्साह और जागरूकता का परिचय देंगे।

—पं० हरिवंश वेदालंकार

महात्मा गान्धी की अपील

स्व० आचार्य रामदेव स्मारक की सहायता कीजिये

गत मास जगद्वन्द्य महात्मा गान्धी ने अपने जिस पत्र में कन्यागुरुकुल देहरादून की सहायता के लिये अपील की है उसे हम अविकल रूप में नीचे प्रकाशित करते हैं।

सेवाग्राम,
वर्धा
२०.११.४०

आचार्य रामदेव स्मारक निधि के लिए जो धन इकट्ठा होगा उसका उपयोग देहरादून कन्यागुरुकुल चलाने में होगा। एक लाख रुपैये इकट्ठा करने का संरक्षकों का संकल्प है। आचार्य रामदेव का कन्या गुरुकुल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मेरी आशा है कि दानी लोग इस स्मारक को अपनायेंगे।

मो. क. गान्धी

❋ ❋ ❋

कन्यागुरुकुल की सहायता कीजिए

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी मेरे पुराने मित्र थे। उन्होंने अपनी आयु भर जिस लग्न और तप के साथ आर्य समाज की हर प्रकार से सेवा की वह आर्य जगत को भली प्रकार प्रकट है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान के पश्चात् उन्होंने गुरुकुल काङ्गड़ी के कार्य भार को सम्भाला। कन्यागुरुकुल देहरादून के तो वह प्राण ही थे। श्रीमती विद्यावती जी सेठ आचार्या जी के सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति नही जिस ने स्वर्गीय रामदेव जी से अधिक उक्त कन्यागुरुकुल की सेवा की और उसको उन्नत किया। शरीर छोड़ने से कुछ ही समय पहिले कन्या गुरुकुल के गत वार्षिक अधिवेशन पर वह बहुत रुग्ण थे और बोलने में भी बड़ा कष्ट होता था। तिस पर भी जो उनके मित्र वा दर्शक उनको देखने के लिये आते थे उन से वह गुरुकुल के हित की चर्चा करने से नहीं चूकते थे। कन्या गुरुकुल की आर्थिक दशा इस समय विचारणीय है। महात्मा गान्धी जी ने ठीक लिखा है कि स्वर्गीय-रामदेव जी की कीर्ति अमर करने का सब से अच्छा उपाय यही है कि कन्या गुरुकुल की सहायता करके उसको अमर बना दिया जाये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने भी रामदेव जी के स्मारक के लिये फण्ड खोला और अपील की है। आशा की जाती है कि आर्य जनता दिल खोलकर उस फण्ड के लिये दान देगी जिस से कन्या गुरुकुल की आर्थिक दशा सुधरे और स्वर्गीय-रामदेव जी की आत्मा को शान्ति मिले।

गङ्गा प्रसाद रिटायर्ड चीफ़ जज
टिहरी (गढ़वाल स्टेट)

ता० १७-११-४०

होमियोपैथी का विकास

(ले० श्री० डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालङ्कार बिजनौर)

(५)

यद्यपि सहकार के मधु-पादप के बालारुण के समान रक्तवर्ण तथा कोमल २ नव पल्लवों को देखकर अनायास यह अनुमान किया जा सकता है कि यह होनहार पादप समय आने पर अवश्य ही किसी ऐसे महान् वृक्ष के रूप में विकसित हो जायेगा जिसका सौरभ संसार को मुग्ध करने वाला तथा जिसके मधुर-मधुर फल खाने वालों से कोकिलों के समान इसका गुणगान करा लेने वाले होंगे, तथापि वट वृक्ष के सर्षप-समान क्षुद्र बीज को देखकर सिवाय किसी विज्ञ पुरुष के सर्व-साधारण मनुष्यों के लिये यह भविष्य वाणी करना प्रायः असम्भव ही होता है कि इस क्षुद्र बीज में इतना महान्-काय वृक्ष अन्तर्निहित है जिसकी शाखा प्रतिशाखायें न केवल आकाश की अपितु पाताल की ख़बर लेने से भी नहीं चूकेंगी।

इस प्रसङ्ग में संस्कृत साहित्य के प्रेमियों को मगध के महाराज नन्द तथा उनकी दासी सुमङ्गला की कथा का स्मरण हुये बिना नहीं रह सकता। महाराजा नन्द ने वट से विशाल काय वृक्ष के बीजों को मुंह में धरे, रेल गाड़ी के समान मार्ग चली जाती चींटियों को देखकर परमात्मा के सृष्टि-नैपुण्य का विचार करके स्मित किया। महाराज को स्मित करता देख, बिना उसका कारण समझे, दासी ने भी स्मित कर दिया। महाराज नन्द और दासी के स्मित में जो भेद है वह ज्ञानी तथा अज्ञानी पुरुष के वचन में—विशेषतया भविष्यत् के विषय में कहे गये वचन में – होता है।

महात्मा हनीमैन ने "समों" के चिकित्सा के सत्य-नियम रूपी क्षुद्रबीज के अपने मस्तिष्क में समा जाने पर ही तद्विषयक एक भविष्यद् वाणी की थी जो निम्न है—

"मेरा चिकित्सा विज्ञान का यह क्षुद्र बीज, चारों ओर से झाड़झङ्खाड़ों द्वारा घिरा होने पर भी, अङ्कुरित होकर आज तीन पतले २ तनों का एक छोटा सा पादप बन चुका है तथा मेरे देखते २ ही आस पास के अन्य सब वृक्षों से ऊंचा उठता चला जा रहा है।" आगे हनीमैन लिखते हैं "धैर्य पूर्वक इसके विकास को देखते जाइये—इसकी जड़ें पाताल में गहरी छोड़ रही हैं, तने मोटे होते चले जा रहे हैं तथा यह एक महाकाय वट-वृक्ष का

का रूप धारण करता चला आ रहा है; इसकी शाखा-प्रति शाखायें व्योम मण्डल को घेरती चली जा रही हैं तथा ऊपर अवकाश न पाकर भूतल की ओर झुककर अब पाताल में भी प्रवेश कर रही हैं। समय आने वाला है जबकि यह वृक्ष शीघ्र ही बड़े २ तूफानों से भी अप्रकम्प होकर भूमंडल भर में छा जायगा जिसकी शीतल छायामें, ग्रीष्मातप से संतप्त समस्त संसार के पथिक-गण परम शान्ति तथा विश्राम लाभ कर सकेंगे।"

हनीमैन की यह भविष्यद् वाणी क्या शुभकुला के स्मित के समान निरर्थक थी? क्या उसे परमात्मा के सृष्टि-नैपुण्य का परिज्ञान न था? क्या उसके मस्तिष्क में उस क्षुद्र बीज को इतना महान् विकास देने का सामर्थ्य विद्यमान न था? क्या क्रियासिद्धि महान् आत्माओं के सत्व में वास नहीं करती?

इन प्रश्नों का उत्तर होमियोपैथी के विकास के इतिहास का अनुशीलन करने पर सहज ही में मिल जायगा।

हनीमैन के मस्तिष्क में उगा यह "समों" के नियम का बीज, उसकी विचार धारा से सिञ्चित होकर तथा उसके परीक्षणों का ताप पाकर शीघ्र ही फूट निकला जो आदि-पुरुष के त्रिपाद् के समान (त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः) तीन तनों में ऊपर को उठा तथा उनमें से अनेक शाखा प्रतिशाखाओं के स्थान २ पर फूट निकलने पर शीघ्र ही वैसा महान् वृक्ष बन गया जैसा कि हनीमैन की भविष्यद्-वाणी में अभी दर्शाया गया है।

"समःसमंप्रशमयति" के बीज से उत्पन्न हुवे वे तीन मुख्य तने कौन से हैं तथा उन में से कौन २ सी शाखा-प्रतिशाखायें उत्पन्न हुई हैं—इसका वर्णन ही होमियोपैथी के विकास का इतिहास है जिसका संक्षिप्त-रूप पाठकों के परिज्ञान के लिये प्रस्तुत किया जाता है।

इस बीज से निकला सब से मुख्य तथा प्रथम तनाः—

Similar Remedy (समौषधि)

नाम का है जिसका अर्थ है रोगी के समान लक्षणों वाली औषधि। जो रोग लक्षण रोगी में दिखायी देते हैं यदि उन्हीं लक्षणों को कोई औषधि स्वस्थ मनुष्यों में भी उत्पन्न कर चुकी होती है तब वह Similar Remedy या "समौषधि" कहलाती है। ऐसी औषधि का उक्त रोगी में प्रयोग करने पर वह नीरोग या स्वस्थ हो जाता है। जिस प्रकार तुला में जब दोनों पलड़ों में एक दम समान भार हो जाता है तब तुला की डण्डी संतुलित हो जाती है—बिलकुल सीधी हो जाती है—उसी प्रकार जब रोगी के लक्षण तथा औषधि के स्वस्थ मनुष्यों पर उत्पन्न किये गये लक्षण एक दम समान होते हैं तब—और केवल तब ही—उक्त औषधि के प्रयोग से वह रोगी सर्वथा रोग मुक्त हो जाता है। उस पर के रोग का आक्रमण इस प्रकार अस्तित्व रहित हो जाता है जिस प्रकार पूर्ण-निस्तब्ध तालाब में एक कङ्कड़ के गिरने से उत्पन्न हुई २ वर्तुलाकार में बढ़ती तरङ्गें, पास ही दूसरे, उसके समान भार वार वाले कङ्कड़ के गिरने से उत्पन्न की गई तरङ्गों से टकराकर विनष्ट हो जाती हैं तथा तालाब तरङ्ग रहित होकर पुनः अपनी असली हालत में, स्तब्धावस्था में अथवा स्वस्थावस्था में आ जाता है।

चूँकि भिन्न २ रोगों के रोगियों में भिन्न २ रोग लक्षण प्रगट होते हैं अतः उन सबके समान लक्षणों वाली भिन्न २ औषधियों के परिज्ञान के बिना चिकित्सा का कार्य होना असम्भव हो जाता है। हनीमैन ने इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अनेक औषधियों के स्वस्थ मनुष्य पर परीक्षण द्वारा प्राप्त किये गये लक्षणों का संग्रह अपनी "Materia Medica Pura" नामक पुस्तक में प्रकाशित कर दिया है।

पाठकों के लिये यह जान लेना भी आवश्यक है कि होमियोपैथिक चिकित्सा विज्ञान में स्वस्थ मनुष्यों पर औषधियों के लक्षण उत्पन्न करने के परीक्षणों को "Provings" या "औषधित्व सिद्धि" कहते हैं तथा इस प्रकार उत्पन्न हुवे २ लक्षणों को Pathogenetic Symptoms या "औषधि-जन्य लक्षण" कहते हैं।

यदि कई औषधियों के मिश्रण द्वारा ये परीक्षण किये जांय तो यह पता चलना असम्भव हो जायगा कि किस औषधि द्वारा क्या २ लक्षण उत्पन्न होते हैं अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि इन परीक्षणों में अकेली २ औषधियों का ही प्रयोग किया जाय।

जब औषधियों के लक्षण-संग्रह अकेली २ औषधियों की औषधित्वसिद्धि द्वारा प्राप्त किये गये हैं तो उनका रोगियों में प्रयोग भी अकेले २ करना ही आवश्यक हो जाता है अतः "समौषधि" नामक मुख्य तने में से दूसराः-

[२] Single Remedy या एकौषधि

नाम का दूसरा तना स्वयं फूट निकलता है जिसका अर्थ है एक समय में "एकौषधि" का ही प्रयोग करना। इसके अनुसार न तो औषधित्वसिद्धि में ना ही चिकित्सार्थ रोगियों में, एलोपैथिक नुस्खों के समान कई औषधियों का मिश्रण होमियोपैथिक चिकित्सा में व्यवहार में लाया जा सकता है। रोगी की परीक्षा करने पर उसके लक्षण-समुदाय को लेखबद्ध कर लिया जाता है तथा उन लक्षणों के समान लक्षण रखने वाली औषधि का चुनाव कर लिया जाता है जिसका उचित मात्रा में प्रयोग करने पर रोगी रोग लक्षणों से विमुक्त हो स्वस्थ हो जाता है। यदि इस प्रकार एक औषधि का प्रयोग करने पर रोगी के सब लक्षणों का प्रशमन न हो पाय तो शेष बचे लक्षणों के समान लक्षण रखने वाली दूसरी औषधि का, पहिली औषधि के अपना कार्य समाप्त कर देने के पश्चात्, प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार प्रयुक्त हुई दूसरी औषधि को पहिली औषधि का "पूरक" या (Complementary Remedy) कहते हैं।

चूँकि रासायनिक समास के रूप में समस्त हुवे २ अनेक पदार्थों के वैयक्तिक गुण उसके समास में अस्तित्व नहीं रखते अतः रासायनिक समास एकौषधि के रूपमें ही प्रयुक्त होते हैं। इसीलिये सोडियम हरिद्(Solium–

(शेष पृष्ठ ६ पर)

गुरुकुल

२२ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

[ले० श्री आचार्य अभयदेव जी]

(गतांक से आगे)

कुछ धोखे की बातें

वर्तमान शोषण परायण आर्थिक व्यवस्था की कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे बचने के लिये कोई बिना मैं आगे नहीं चल सकता। ये ऐसी बातें हैं जो कि जैसा प्रचार किया गया है उसके अनुसार हमें ठीक लगती हैं अतएव हम (प्रायः अज्ञान में ही) इसके अनुसार चलते हैं और शोषण के भागीदार होते रहते हैं। पर यदि हम सचमुच धन के सदुपयोग में ही—धर्म कर्म में ही—हिस्सा बंटाना चाहते हैं तो हमें इन धोखे की बातों से सावधानी और यत्न के साथ बचना चाहिए।

(१) कुछ बातों से—पढ़े लिखे लोगों के मुंह से इन बातों को सुनते सुनते—मुझे चिढ़ हो गयी है। उन में पहली बात है सस्ते—महंगे की। 'सस्ता और मंहगा' इस पर मैंने एक बार 'अलङ्कार' में एक लेख भी लिखा था। जैसे धन का दुरुपयोग मैंने दो प्रकार का कहा वैसे धन का सदुपयोग भी दो प्रकार का है। जहां (शोषण कर्म में) धन का उपयोग नहीं करना चाहिये वहां धनोपयोग न करना भी उसका जरूरी सदुपयोग है। पर जब हम लोगों को, उदाहरणार्थ, विदेशी कपड़ा और मिल का कपड़ा सस्ता होने पर खरीदने से (वहां धन का उपयोग करने से) रोकते हैं और खादी को मंहगा होने पर भी— खरीदने को कहते हैं तो हमें सुना दिया जाता है कि यह तो अर्थशास्त्र का सिद्धान्त है 'सस्ता खरीदो और मंहगा बेचो'। पर मैं कहता हूं कि यदि अर्थ शास्त्र का सिद्धान्त इतना ही है तो इसके लिये तो किसी 'शास्त्र' की जरूरत नहीं। इतनी बात तो शास्त्रानभिज्ञ क्या एक बिलकुल बेपढ़ा आदमी भी, जो केवल जरा सी गिनती जानता है वह भी जान सकता है और जानता है। इसके लिए किसी शास्त्र की जरूरत नहीं है। शास्त्र तो वह होता है जो कुछ शासन (अनुशासन) करता है। मनुष्य की जो स्वाभाविक सी प्रवृत्तियां हैं उनके अनुसार तो मनुष्य अपने आप ही चलता है, शास्त्र का काम तो यह है कि वह उसके खतरे और बारीकियों का ज्ञान करा कर मनुष्य को अपने इस चलने को यथा समय नियन्त्रित करना और ठीक दिशा में ही गति करना सिखावे। इस लिये अर्थशास्त्र की जरूरत तो इस बात के लिये है कि वह मनुष्य को ऐसी बारीकी की और खतरे से बचाने वाली बातें बता सके कि अमुक अवस्था में मंहगा मोल लेने में (और सस्ता क्या, मुफ्त भी न लेने में) धन का सर्व श्रेष्ठ सदुपयोग है। सस्ता तो लो, पर सच्चा अर्थ शास्त्र कहता है कि पहले देखलो कि यह चीज सस्ती क्यों है। 'घरों को आग लगा देने से कोयला सस्ता मिल सकता है या भूकम्प आजाने से ईंटें सस्ती मिल सकती हैं।' हम सिर हिलायेंगे कि सस्ते के लिये अग्नि कांड और भूकम्प तो हमें नहीं चाहियें। पर सचमुच हम जो सुन्दर सुन्दर और अति सस्ती चीजें देखते हैं उनके पीछे ऐसी ही बर्बादी हुई हो चुकी होती है तभी वे सस्ती होती हैं। सस्ता तो चोरी का माल होता है। जिसने अपने श्रम से कोई चीज बनायी है उसे वह सस्ता नहीं दे सकता, अपनी मेहनत से भी सस्ता देते हुए उसे दर्द होगा। पर चोरी के माल के जितने भी पैसे उठ जांय उतने ही बहुत हैं अतः वह सस्ता दे सकता है। निःसंदेह अधिकांश सस्ती चीजों के सस्तेपन का कारण अन्ततः यह होता है कि उसके बनाने में श्रम करने वाले को कहीं कम मजदूरी दी जाती है उस पैसे की चोरी की जाती है। हम यहां रुपये का १६ सेर दूध लेते हैं, पर मैंने अपने पास ३-४ वर्ष से गौ पाली है और उसका पूरा पूरा हिसाब रखा है, मैं तो कह सकता हूं कि इतना सस्ता दूध (दूध न हो कुछ और हो तो और बात है) बिना चोरी किये कोई नहीं दे सकता है। पूरी तरह छानबीन करने में तो कहीं चोरी निकलेगी। हमारे अन्दर जो अन्धाधुन्ध सस्ता ही देखने की प्रवृत्ति है उसी का यह परिणाम है कि आजकल खाद्य पदार्थों का भी शुद्ध मिलना दुष्कर होगया है। कहते हैं कि पहिले समय में 'असभ्य' लोग धन पाने के लिये अमीरों को ज़हर देते थे। पर अब की सभ्यता में और क्या हो रहा है ? कमाई करने के लिये खाद्य पदार्थों में तरह तरह की मिलावट कर स्वास्थ्य की दृष्टि से उन्हें दूषित कर बेचना क्या रुपये पाने के लिये दूसरों को (एक को नहीं, सैंकड़ों को) ज़हर खिलाना नहीं है ? घी, दूध, तेल, आटा शहद कुछ भी शुद्ध मिलना आज कठिन हो गया है। इन सब में न जाने किन किन बुरी चीजों की मिलावट की जाती है। जो चीज़ शुद्ध होगी, जिसमें श्रमी को पूरी मजदूरी दी गई होगी वह अपेक्षया मंहगी होगी ही। अन्न और वस्त्र आजकल की हालत में अपेक्षया मंहगे होने चाहियें।

जो किसान दिन भर मेहनत करके अन्न जैसी अत्यन्त उपयोगी वस्तु उत्पन्न करता है, वह आज स्वयं भूखों मरता है क्यों कि उसके श्रम की कीमत नहीं लगाई जाती है— आर्थिक व्यवस्था ऐसी पैदा कर दी गई है कि उसे वञ्चित होकर अपने श्रम की उपज को सस्ता बेचना पड़ता है; सिक्के ने बीच में आकर सस्ते और महंगे पन के भेद को तीव्र बना दिया है। यदि किसान अनाज का ही विनिमय करे तो उसे इतनी मुश्किल न हो। गरीबी का उसका कष्ट कुछ कम हो जाय। अब तो उसका अनाज मंहगा बिकना चाहिए यही ठीक उपाय है—असल में तो कुछ ऐसा होना चाहिये—(ऐसी बात पहिले पहल विनोबा जी से सुनी थी तभी से जंच गयी है) कि मनुष्य को अपनी आमदनी का मुख्य भाग (मानो ८० फी सदी) खाने कपड़े में ही व्यय करना चाहिए। तभी अन्न वस्त्र आदि अत्यन्त

उपयोगी वस्तु (धन) पैदा करने वालों के साथ न्याय हो सकता है। यदि मेरे परिवार में ५०) मासिक खर्च होते हैं तो लगभग ४०) तो खाने कपड़े में ही व्यय होने चाहिये। इससे धन के सदुपयोग की आधार शिला रखी जायेगी। क्यों कि इससे जो अधिक से अधिक अधिकारी है उसके पास अधिकसे अधिक धन पहुंचेगा,श्रमको पूरा पूरा प्रतिफल मिलेगा। पर हो यह रहा है कि १००) वेतन लेने वाला कहता है कि मेरे खाने पर तो ५) महीना ही खर्च होता है। फिर खर्च और किस बात पर होता है? लोग दूध =) का पीते हैं पर उस दूध को पीने के लिये प्याली ।।) की रखते हैं। जिन चीजों से हमें वस्तुतः कुछ लाभ नहीं होता, जो आवश्यक नहीं, बल्कि हानिकारक हैं उन्हें खरीदने में हम बहुत, बेहद, बिना किसी अनुपात के खर्च करते हैं। यही कारण है कि ईमानदारी का और सब से आवश्यक श्रम करने वाले के पास तो कुछ नहीं पहुंचता। पर केवल बोलने का श्रम करने वाले को १०) २०) प्रति घन्टा तक आसानी से मिल जाता है।

और ऐसी अन्य विलासिता की चीज जिसकी लागत २ पैसे (।।। पैसे) भी नहीं होती हम खुशी से ।।) देकर लेते हैं, पर कुम्हार का एक घड़ा खरीदते समय उससे झगड़ते हैं। चार पैसे के भी दो पैसे देना चाहते हैं। और कहते हैं कि इसका मार्केट रेट (बाजार भाव) यही है।

(२) यह दूसरा शब्द आ गया जिस से मुझे चिढ़ है। यदि मैं किसी छोटा समझे जाने वाला श्रम करने वाले की कुछ अधिक दिहाड़ी या कुछ अधिक मासिक वेतन देना चाहता हूं तो लोग कहते हैं कि "क्या इन्हें आप मार्केट रेट से भी ज्यादा दे देंगे?" पर यह बाजार भाव (मार्केट रेट) क्या बला है, यह कभी नहीं सोचते। यह तो गरीबों पर दोहरा अन्याय करना है, और अपने को धोखा देना है।

हमने कीमत या भाव ही पहिले अन्याय से बनाये हैं, अतएव गलत बनाये हैं या बनने दिए हैं। पर यदि उस गलती के सुधारने की तरफ ध्यान खींचा जाता है तो उसे ठीक कर देने की जगह 'बाजार भाव' जैसा एक और बढ़िया शब्द बोल कर अपने आप को धोखा देते हैं। और गरीब के प्रति किये गये अन्याय को और आगे बढ़ाते जाते हैं। हम यह भी मान लेते हैं और कहते हैं कि बाजार भाव मांग और उपलभ्यता (प्राप्यता) (Demaud aud supply) से बनता है। पर पहिले तो बाजार भाव इन से (मांग और प्राप्यता से) स्वभावतः बनता नहीं है, कृत्रिम तौर से—धनशक्ति के दबाव से, व दुरुपयोग से बहुधा बनाया जाता है। धन की अधिकता होने से धनी व्यापारी निश्चिन्त होकर अपनी चीज को कुछ काल के लिये सस्ता बना कर (गरीब लोग तो अपनी चीज को सस्ता बना कर जी नहीं सकते) दूसरों के व्यापार को नष्ट कर देते हैं या फिर पूर्वोक्त किसी छिपी हुई बर्बादी या चोरी के कारण देखने में सस्ता कर लेते हैं और फिर मौका पाकर महंगा कर देते हैं और कहते हैं कि यह बाजार भाव है। अन्याय पूर्ण बाजार भाव हमने ही बनाया है। अब हमें समझ आयी है, और हम उसे ठीक करना चाहते हैं तो ठीक करने दो। उसे हम ठीक कर देंगे तो यही बाजार भाव हो जायगा और वह सच्चा बाजार भाव होगा। तब उस में बेशक मांग और प्राप्यता का सिद्धान्त भी लगाना। वैसे तो तब भी मांग और प्राप्यता को अंधे तौर पर नहीं चलने देना होगा, समाज के ऊंचे कल्याण के लिये धर्म नैतिकता और सचाई के अनुसार उत्कृष्ट चीजों की मांग को बढ़ाना (जैसे आज अधम चीजों की मांग नीची रुची को जगाने और बढ़ाने द्वारा बढ़ाई जाती है) होगा और किसी की प्राप्यता को घटाना होगा। यह ठीक है कि बाजार भाव के सच्चे न्याय के आधार पर व्यवस्थित कर दिये जाने पर भी वहां मांग और प्राप्यता का नियम स्वभावतः लगेगा और वह उतने अंश में उचित भी होगा। पर पहिले तो बाजार भाव किसी न्याय पर आश्रित हो, ऐसा कुछ यत्न हमें करना चाहिये। कम से कम ऐसा कुछ तो होना ही चाहिये कि जो भी मनुष्य दिन में आठ घण्टे (या जितने घण्टे जरूरी समझे जायं) समाज की दृष्टि से कोई उपयोगी श्रम करता है तो उसके श्रम का भाव (बाजार भाव) इतना जरूर होना चाहिये जिस से वह ठीक तरह (शारीरिक, मानसिक, आत्मिक उन्नति करता हुआ) जीवन व्यतीत कर सके। मैंने गुरुकुल में एक सपरिवार व्यक्ति के लिये यह जीवन निर्वाह का भाव कम से कम २५) रखा है। इससे कम किसी को नहीं मिलना चाहिये। इस से कम में (रुपयों की वर्तमान कीमत में) जीवन निर्वाह नहीं हो सकता। रुपयों की कीमत घटती बढ़ती रहती है। अतः मनुष्य की आवश्यकताओं की परिगणना की जा सकती है कि इतनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने लायक वेतन (कम से कम; सिक्कों या वस्तुओं के रूप में) प्रत्येक श्रम करने वाले को मिलना ही चाहिये। मैं यहां सूचना दे दूं कि गांधी सेवा-संघ ने एक उपसमिति बनायी है जो कि खोज कर यह निश्चय करेगी कि वर्तमान काल में हमारे देश में प्रत्येक परिवार की कम से कम आवश्यकताएं क्या हैं जिनकी पूर्ति उसके ८ घन्टे के अपने उचित श्रम के बदले में अवश्य की जा सके। तो तत्व बात यह हुई कि प्रत्येक श्रमी को उसके श्रम की पूरी पूरी कीमत मिल जानी चाहिये और वही उसका बाजार भाव होना चाहिये। आज कल का बाजार भाव या तो डाका है या जुल्म है। यदि गरीब लोग मजबूर होकर डाका डालें तो वह तो समझ में आता है। पर आज कल तो अमीर लोग गरीबों पर डाका डालते हैं और मजा यह है कि उस डाके को कोई डाका समझता ही नहीं। जब अन्याय से अपने स्वार्थ के लिये किसी चीज को मंहगा कर दिया जाता है तो उस सरासर डाके को बाजार भाव के नाम से छिपा दिया जाता है और दूसरी तरफ जब उसी तरह अन्याय से अपने स्वार्थ के लिये गरीब के श्रम को सस्ता कर दिया जाता है उस सरासर जुल्म को भी बाजार भाव कह के छिपा दिया जाता है।

किसी श्रम के बदले में आज हम ।~) देते हैं तो कुछ दिनों बाद गरीबी बढ़ जाने पर ।) देने लगते हैं, गरीबी के मारे बेचारे ।) पर भी राजी हो जाते हैं ; फिर ॥) कर देते हैं। इस तरह बाजार भाव बनता है। ज्यों ज्यों गरीबी बढ़ती जाती है त्यों त्यों हम उन्हें और सताते जाते हैं। उन का वेतन और और कम करते जाते हैं। चाहिये तो यह कि गरीबी बढ़ने पर उनका वेतन बढ़ाया जाय। सच बात तो यह है कि वे गरीब अपनी असली शक्ति को नहीं पहिचानते। असल में धन श्रम है और वह श्रम रूपी धन उनके पास है, अपने उस श्रम को वे जहां चाहें वहां दें, जहां न चाहे वहां न दें अपने इस बल को वे नहीं पहिचानते, इसलिये बेबस हैं। पर हम बड़े कहलाने वालों को तो न्याय करना चाहिये। ठीक ठीक न्याय तो यह है कि जिस से हमने श्रम कराया है उसे उसके श्रम की जो ठीक ठीक कीमत है वही नहीं किन्तु उससे कुछ अधिक देना चाहिये। ब्याज भी देना चाहिए क्योंकि यदि हम यह समझ गये हैं कि असली धन उपयोगी पदार्थ ही नहीं किन्तु उपयोगी श्रम है तो हम यह भी समझ सकते हैं कि जब हम किसी का श्रम लेते हैं, तो हम उसका श्रम रूपी धन उधार लेते हैं। क्योंकि जब किसी दूसरे के श्रम की जरूरत है तो वह उस की मर्जी है कि वह देवे या न देवे। हमें तो अपने ही श्रम पर अधिकार हो सकता है दूसरे के श्रम पर नहीं। पर यदि वह अपना श्रम रूपी धन दे देता है तो वह उधार देता है ऐसा समझना चाहिये। मतलब यह है कि गरीबों के श्रम की कीमत हम कितने अन्याय से लगाते हैं इस पर हमें अपनी आंख खोलनी चाहिये।

३. यहां एक और शब्द याद आगया है, स्पर्द्धा। लोग कहते हैं कि स्पर्द्धा होनी चाहिये। पर वह स्पर्द्धा क्या है, कैसे होती है? हमें एक नौकर की जरूरत है, १५) हम देंगे। नौकर बहुत से अपने आप को पेश करते हैं। तो १४), १२) या ११) १०) तक लेने को नीचे उतर आते हैं। और हमने १०) मांगने वाले को रख लिया तो हम समझते हैं कि हमने बड़ा अर्थशास्त्र जानने का काम किया। नौकरों में स्पर्धा हुई और हमने सस्ते में काम चलाया। हमने अपने गुरुकुल में कलई करानी है और इसके लिये कई ठेकेदार ठेका लेने को तय्यार हैं। तो जो कम बोली बोलता है उसे ठेका दे देना— यह भी न देखना कि कलई उसकी कैसी है, कलई सफाई से ठीक प्रकार से हो ऐसा उसके पास प्रबन्ध है या नहीं, यह देखना तो दूर रहा कि वह अपने नौकरों को मजदूरी भी ठीक देता है या नहीं—केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी उचित नहीं होता। हरद्वार स्टेशन से गुरुकुल जाना हो, बहुत से तांगे वाले हों तो हम उन में स्पर्द्धा कराते हैं और जो कम से कम पर तय्यार हो उसे ले आते हैं, चाहे उस का घोड़ा अड़ियल हो और रास्ते में तङ्ग होना पड़े। इस स्पर्द्धा से भला क्या उन्नति होती है? किस की उन्नति होती है? केवल अपने कुछ पैसे बच जाते हैं। यहां स्पर्द्धा शब्द का प्रयोग ऐसा ही है जैसे कि अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान को मुक्त व्यापार (Free trade) का उपदेश देते थे। मुक्त व्यापार (Free trade) होना चाहिये, कितना सुन्दर शब्द है। पर जब वे स्वयं अपने उद्योगों की वृद्धि करते थे तब तो उन्होंने भारत के हाथ बने कपड़ों पर भी २०० प्रतिशतक तक रक्षा कर लगाये, तब मुक्त व्यापार नहीं होने दिया, किन्तु जब उनके तो अपने उद्योग जम गये उनकी टक्कर में भारतीय उद्योग पनपने न पाये इस के लिये, जो अपने उद्योगों की रक्षार्थ भारतीय नेता रक्षा कर (Protection duty) लगाने की बात कहते तो उन्हें कहा जाने लगा, 'नहीं; व्यापार तो मुक्त होना चाहिये, खुली स्पर्द्धा होनी चाहिये'। यह सब केवल शब्द जाल है। हम गरीब श्रमियों में ऐसी स्पर्द्धा केवल इसलिए कराते हैं जिससे हमारा स्वार्थ सिद्ध हो और उनकी बेशक बर्बादी हो।

[क्रमशः]

(पृ० ३ का शेष)

chloride) या साधारण लवण, औषधित्व सिद्धि तथा चिकित्सा के कार्य में "एकौषधि" के रूप में उसी प्रकार प्रयुक्त होता है जिस प्रकार फौस्फोरस या सल्फर।

होमियोपैथी में जहां अनेक औषधियों के मिश्रण को प्रयोग में लाने का पूर्ण निषेध है वहां औषधियों का पर्य्याय (Alternation) में प्रयोग लाना भी सर्वथा निषिद्ध है। बहुत से भद्र होमियोपैथ Aconite तथा Belladonna नामक औषधियों को एक २ घण्टे बाद, एक के बाद दूसरी तथा दूसरी के पश्चात् पहिली औषधि का प्रयोग करते पाये जाते हैं। उनकी यह प्रक्रिया उनकी होमियोपैथिक-विज्ञान-शून्यता की परिचायक मात्र ही होती है। जिस प्रकार कैंची के प्रयोग से बड़े २ केश कट जाने पर शेष सफाई के लिए उस्तरे का प्रयोग किया जाता है इसी प्रकार एक औषधि द्वारा बहुत से मुख्य लक्षणों का प्रशमन हो जाने के पश्चात् शेष लक्षणों के लिए दूसरी औषधि का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु एक औषधि के पश्चात् दूसरी तथा दूसरी के तुरन्त पश्चात् पहिली का प्रयोग उसी प्रकार असंगत है जिस प्रकार कैंची के बाद उस्तरे का तथा उस्तरे के बाद फिर कैंची का प्रयोग। उस्तरे के प्रयोग के कुछ काल पश्चात् सम्भव है फिर कैंची की आवश्यकता पड़ जाय, तब उसका पुनः व्यवहार में लाना उचित ही है। इसी प्रकार एक औषधि के कार्य्य कर चुकने पर दूसरी तथा दूसरी के बाद तीसरी औषधि का प्रयोग युक्ति संगत है। परन्तु पहिली देकर दूसरी तथा दूसरी के बाद फिर पहिली का पर्य्याय में प्रयोग करना होमियोपैथिक-विज्ञान में सर्वथा निषिद्ध है। हां, एक के बाद दूसरी तथा दूसरी के बाद तीसरी तथा तीसरी के पश्चात् रोगी में पहिली औषधि के लक्षण पुनः अभिव्यक्त होने पर उसका प्रयोग चक्र-क्रम (Rotation) में हो सकता है। इस प्रकार पहिले सल्फर, उसके पश्चात् कैल्केरिया, उसके पश्चात् लाइको-पोडियम तथा उसके पश्चात् फिर सल्फर नामक औषधियां प्रायः चक्र क्रम में दी जाती हैं। इस प्रकार औषधियों का प्रयोग करने पर रोगी के समस्त लक्षण समुदाय का पूर्ण प्रशमन कर उसे सर्वथा रोगमुक्त किया जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य को उसकी भूख के अनुसार ही भोजन मिलना उचित है, कम या अधिक नहीं। जिस प्रकार भूख से अधिक भोजन देने पर हानि होने की सम्भावना रहती है तथा कम देने पर भूख की शान्ति नहीं हो पाती उसी प्रकार रोगी को उचित मात्रा से अधिक औषधि मिलने से हानि की सम्भावना रहती है तथा कम मिलने पर रोग का पूर्णतया प्रशमन नहीं हो पाता।

अतः आवश्यक है कि रोगी को उचित मात्रा में ही औषधि मिलनी चाहिये। औषधि की उचित मात्रा वही हो सकती है जिसको प्रयोग करने पर रोगी के रोग लक्षणों का तो पूर्ण प्रशमन हो जाय परन्तु साथ साथ औषधि के प्रयोग के कारण उसे विशेष अनावश्यक कष्ट भी न पहुंचने पावे। दूसरे शब्दों में इसे यूं भी कह सकते हैं कि औषधि न केवल रोगी के समान लक्षणों वाली चाहिये अपितु शक्ति में भी समान होनी चाहिये। इसके अनुसार:-

[३] Sim lar Dose या "समान मात्रा"

का तीसरा तना इसी बीज से स्वयं उत्पन्न हो जाता है।

हनीमैन ने प्रथम २ जब "धर्मों" के नियम के अनुसार कार्य्य करना प्रारम्भ किया तो उसने रोगी के समान लक्षणों वाली अकेली औषधि का उसके मूर्त-रूप की कम से कम मात्रा में प्रयोग करना प्रारम्भ किया था जिसका परिणाम यह हुआ कि कभी तो रोगोपशमन ही पूर्णतया न हो पाया तथा कभी रोगी पर औषधि के आवश्यकता से अधिक प्रभाव उत्पन्न कर देने के कारण रोगी को महान् कष्ट पहुंच गया। औषधियों के इस प्रभावाधिक्य (Aggravation) को दूर करने के लिए हनीमैन ने औषधि की एक बूंद मात्रा में भी पानी मिला कर उसे और हलका कर के प्रयोग में लाना प्रारम्भ किया। परन्तु इस प्रकार प्रयोग करने पर भी औषधियों के प्रभावाधिक्य के लक्षण जारी ही रहे।

इस दोष को दूर करने लिये हनीमैन ने औषधियों के १ बून्द मात्रा के घोल का भी विभाजन करना प्रारम्भ कर दिया। उसने पहिले औषधि की १ बून्द मात्रा को १०० बूंद जल में घोला तथा उसमें से १ बूंद लेकर उसे फिर १०० बून्द जल मे इस प्रकार प्राप्त किये घोल को उसने कई बार ज़ोर २ से हिला कर रोगियों पर प्रयोग किया। इस पर उसे पता चला कि औषधित्व बजाय घटने के और बढ़गया है—अर्थात् औषधि ने बहुत शीघ्र रोगोपशमन कर दिया है। हनीमैन ने अचानक प्राप्त हुई इस सफलता से प्रेरित होकर Dilution (घोल) Subdivision (विभाजन) तथा Succussion हिलाने की इस प्रक्रिया को और भी आगे बढ़ा दिया। इस प्रकार तय्यार की गयीं औषधियों का प्रयोग करने पर उसे पता चला कि उसकी उक्त प्रक्रियाओं द्वारा औषधियों के भौतिक तथा रासायनिक गुण ज्यूं २ लुप्त होते जाते हैं त्यूं २ उनमें कुछ ऐसे दिव्य गुण प्रादुर्भूत होते जाते हैं जिनका परिज्ञान उनके स्वस्थ मनुष्यों को बार २ देने तथा रोगियों पर प्रयोग करने पर ही हो सकता है।

हनीमैन ने औषधियों में दिव्य गुण उत्पन्न करने वाली-उनके सुषुप्त गुणों को जागृतावस्था में लाने वाली--इस Dilution, Subdivision तथा Succussion की प्रक्रियाओं को Dynamization (दिव्यीकरण) या Potentization (पुटीकरण) के नाम से प्रसिद्ध किया।

होमियोपैथी के त्रिपाद् की उत्पत्ति के पश्चात् "पादोऽस्येहाभवत्पुनः"— दिव्यीकरण का यह चौथा पाद् इस प्रकार, बाद को उत्पन्न हुआ, जिसके आविष्कार के कारण हनीमैन को वह दिव्य शक्ति प्राप्त हो गयी जिसके द्वारा उसने संसार के समस्त पदार्थों को, स्थावर और जङ्गम को साशन या अनशन को (Organic या Inorganic पदार्थों को) उस प्रकार आक्रान्त कर लिया—अपना दास बनालिया— प्राणिमात्र के कल्याण के लिये प्रयुक्त कर दिया जिस प्रकार आदि पुरुष के चतुर्थपाद ने— (ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि) कर दिया था।

हनीमैन का इस Dynamization की प्रक्रिया के विषय में Dr. J. T. Kent लिखते हैंकि His greatest & last attainment was his discovery of Dynamism, which has distinguished him from all men and established a Hahnimanism that will stand as long as the world stands.

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ३० नवम्बर को श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने (हरकी पैड़ी पर सत्याग्रह करने से एक दिन पूर्व) ब्रह्मचारियों की प्रार्थना पर गुरुकुल में पधार कर एक मनोरञ्जक एवं सार गर्भित व्याख्यान 'सत्याग्रह के महत्व' विषय पर दिया। व्याख्यान से पूर्व और अनन्तर आपसे ब्रह्मचारियों ने देश-विदेश की राजनीति के सम्बन्ध में अनेक रहस्य पूर्ण प्रश्न किए जिनका आपने बड़े उत्तम ढंग से उत्तर दिया। सायंकाल कुछ लघु आहार करके आप सत्याग्रह करने की उमंग में गुरुकुल से विदा हुए।

स्वास्थ्य समाचारः—गत सप्ताह जो ३० रोगी थे वे स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं। शेष ब्रह्मचारी अच्छे हैं।

छुट्टी की सूचना — प्रतिवर्ष की भांति 'श्रद्धानन्द-अंक' निकलने के अवसर पर 'गुरुकुल पत्र' एक अंक की छुट्टी लेता है। पाठकों से निवेदन है कि अगला अंक १६ दिसम्बर को न प्रकाशित होकर २० दिसम्बर को 'श्रद्धानंद अंक' रूप में प्रकाशित होगा।

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

श्रद्धाञ्जलियां

मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र स्मृति में सादर अञ्जलि समर्पित करता हूं और आशा करता हूं कि उनके उदाहरण को देश सामने रखकर उनके आदर्श से प्रेरणा लेगा।

—पं० जवाहरलाल जी।

आर्य धर्म तथा आर्य आदर्श का संसार में प्रचार हो तथा आर्य साम्राज्य की भारत में फिर स्थापना हो यही प्रत्येक सच्चे आर्य धर्मी का प्रयत्न और ध्येय होना चाहिये। संसार की सच्ची भलाई का यही मार्ग है।

—जुगलकिशोर बिड़ला।

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन, सर्वस्व समाज के लिये बलिदान करने का जीवन था। उन्होंने अपना कुछ भी अपने लिये न रखकर सभी समाज को अर्पित कर दिया था। यह आत्मबलिदान का सुनहरा नियम, मनुष्य के जीवन को सर्वोच्च बनाया करता है। इसी का अनुकरण आप में से प्रत्येक को करना चाहिये।

—महात्मा नारायण स्वामी जी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान-दिवस के सम्बन्ध में गुरुकुल के विद्यार्थियों के लिये मेरा यही संदेश है कि जिस अभिलाषा से प्रेरित होकर स्वामी जी ने गुरुकुल की नींव डाली थी उसे वे सदा हृदय में रखते हुए और अपने प्रति दिन के जीवन में आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर अपने को इतना शक्तिमान् बनायें कि वे देश के भविष्य निर्माण में ऊंचा भाग ले सकें।

— राजर्षि—पुरुषोत्तमदास टंडन।

मैं श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति में अपनी नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। स्वामी जी महात्मा थे और उन्होंने अपने जीवन को हिन्दु संगठन की बलिवेदी पर चढ़ा दिया था।

—बैरिस्टर सावरकर।

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दु जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी वर्षी मनाते समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही सन्देश है कि सब निर्भीक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।

बी. जी खेर, प्रीमियर बम्बई।

स्वर्गीय स्वामी जी का जीवन हमारे लिए एक आदर्श जीवन है। उन्होंने सांसारिक सुख को तिलांजलि देकर प्राचीन शिक्षा पद्धति को पुनर्जीवित और स्थापित करने में अपने जीवन का बहुत बड़ा अंश लगा दिया। निर्भयता के ज्वलंत उदाहरण—उन्होंने अपने प्राण भी सत्य की प्रतिष्ठा में ही उत्सर्ग किया। उनकी कीर्ति, उनका सारा जीवन हमारे लिए पथ प्रदर्शक है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हम सबको इसके योग्य बनावे जिससे जो काम अपूर्ण रह गया है उसे सम्पूर्ण करने में हम सब कुछ सहायता कर सकें।

—राजेन्द्रप्रसाद।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य तिथि पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। जिस निर्भीकता से आपने अपने जीवन को बिताया और जिस साहस से आपने राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और शिक्षा संबंधी अंगों को पुष्ट किया और हम सबको नये मार्ग बतलाए, वह हमारे लिए सदा आदर्श रहेगा। मैं तो यही आशा कर सकता हूं कि हम अपनी एतत्संबंधी हानिका परम्परा के अनुसार केवल इस वीर पुरुष की पूजा मात्र में अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझेंगे और तैंतीस कोटि देवताओं में एक को और न बढ़ा देंगे, पर इनके बतलाए मार्ग पर खुद भी साहस से चलकर देश और समाज को आगे ले चलने में सहायक होंगे।

—श्री प्रकाश।

स्वामी श्रद्धानन्द के संस्मरण

स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे, जिन्हें "यथावादी तथाकारी" कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिए अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।

—विधुशेखर भट्टाचार्य।

व भारत के प्राचीन वीर युग के पुरुष थे

स्वामी श्रद्धानन्द जी मेरी स्मृति और प्रीति की दृष्टि के सम्मुख आज भी खड़े हुए हैं, हमारी पीढ़ी की एक चिरस्मरणीय मूर्ति के रूप में और से आगे बढ़कर खड़े हुए हैं। मैं सदा अनुभव करती रही हूं कि स्वामी जी हमारे बीच में भारत के प्राचीन वीर युग के एक पुरुष थे। अपने भव्य विशाल शरीर द्वारा और अपने शानदार महान् व्यक्तित्व-द्वारा, दोनों तरह से स्वामी जी अपने सम-कालीन मनुष्यों में एक देव की तरह स्पष्ट औरों से ऊंचे उठे हुए दृष्टिगोचर होते थे। यद्यपि एक समय विद्याभ्यास के बड़े भारी शिक्षणालय (Academy) के मुख्याधिष्ठाता थे, तो भी वे कोरे विचार करने वाले अक्रियात्मक (Academic) पुरुष कभी नहीं थे। इसके विपरीत वे तो अपने जीवन के अन्तिम दिन तक जिसका अवसान एक शहीद की मृत्यु में हुआ था—भारतीय जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में उन बहुत से राष्ट्रीय सुधारों के लिये जिनके कि वे वीर नायक थे, शक्ति भंडार और कर्मण्यता के एक विलक्षण और अनुपम मूर्तिमान दृष्टान्त होकर जीये थे। मैंने सदा उनकी मनुष्य मात्र की सेवा की इस उदात्त भावना का प्रेममय पूजन किया है।

—सरोजिनी नायडू।

स्वामी जी की सेवाएं सूर्य की तरह रोशन हैं।

मैं इस बात के बताने की आवश्यकता नहीं समझता कि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दू जाति और देश की कौन कौन सी सेवाएं की हैं। यह सचाई सूर्य की तरह रोशन है कि उनका जीवन और उनकी मृत्यु दोनों ही धर्म और जाति के महायज्ञ में आहुति किये गये।

—भाई परमानन्द।

आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी

(ले० श्री प्रो० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी)

स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल-पद्धति के जन्मदाता थे। उन्हीं के कर कमलों से गुरुकुल कांगड़ी की नींव गंगा पार कांगड़ी ग्राम की भूमि में पड़ी थी। अन्य स्थानों में जो भिन्न २ गुरुकुल स्थापित हुए हैं वे स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल के अनुकरण रूप ही हैं। गुरुकुल-पद्धति के स्वरूप को स्वामी श्रद्धानन्द ने यथार्थ रूप में समझा हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम आचार्य थे। आचार्य का जो आदर्श स्वामी श्रद्धानन्द ने क्रियात्मक रूप में रखा है वह वास्तव में अनुकरणीय है। जिस समय कांगड़ी ग्राम की भूमि में गुरुकुल का बीज अंकुरित हुआ था, उस समय इस अंकुर की रक्षा तथा पालन पोषण जी-जान से इन्होंने किया। जब गुरुकुल के सब कर्मचारी तथा ब्रह्मचारी रात के समय सुख की गहरी नींद में सोया करते थे उस समय स्वामी श्रद्धानन्द एक लम्बे दण्ड को हाथ में लिये इनकी सुरक्षा के लिये चक्कर लगाया करते थे। सरदी के दिनों में सोये हुए ब्रह्मचारियों पर गरम वस्त्र डालते हुए स्वामी श्रद्धानन्द कई बार देखे जाते थे। एक बार ग्रीष्मऋतु की रात को सोए हुए एक ब्रह्मचारी की छाती पर एक फणियर सांप बैठा हुआ स्वामी जी ने देखा। सभी गहरी नींद सोए हुए थे। ब्रह्मचारी जरा पलटा लेता कि सांप अपना काम कर देता। परन्तु रातों रात जाग कर रक्षा करने वाले आचार्य ने जब यह दृश्य देखा तो बड़ी धीरता से अपने लम्बे दण्ड को ऐसा घुमाया कि सांप चोट खाते ही एक दम दूर जा पड़ा और मार दिया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द रातदिन सोचते रहते थे कि ब्रह्मचारियों में कहीं कुचेष्टाओं के अंकुर जम न जावें। इसके लिये वे अपने आचार्यत्व को पूर्ण रूप से सार्थक करने का प्रयत्न करते रहते थे।

रोगिशाला में दिन में दो-चार बार चक्कर लगा आना उनका नियम था। रोगी ब्रह्मचारियों के पास बैठना, उनसे प्रेमालाप करना, उन्हें आश्वासन देना तथा उनकी सेवा करना—इसे वे अपने पैतृक प्रेम का सार्थक होना समझते थे। आचार्य ब्रह्मचारियों का पिता ही गिना गया है। यहां तक कि यदि कोई कर्मचारी भी बीमार होता तब भी उस की देखभाल के लिये आचार्य श्रद्धानन्द उसके घर जाया करते थे। उसके औषधोपचार का ख़र्च पर्याप्त दिया जाता रहता थी।

ब्रह्मचारियों के खान-पान की देखभाल करना, उनके साथ व्यायाम करना, उनके साथ काम करना तथा अग्निहोत्र में शामिल होना—ये भी आचार्य श्रद्धानन्द के स्वेच्छा से स्वीकृत कर्म थे। ब्रह्मचारियों की खेलों में भी वे बहुत रुचि दिखलाया करते थे। खेलों में स्वयं उपस्थित होकर ब्रह्मचारियों का प्रोत्साहित किया करते थे। उनकी उपस्थिति में खेल में ब्रह्मचारियों का उत्साह कई गुणा बढ़ जाया करता था।

स्वामी श्रद्धानन्द को अपने आचार्यत्व का इतना ख्याल रहता था कि वे अपना गुरुकुल-वास ही अधिक पसन्द करते थे। गुरुकुल वास को छोड़ना उन्हें पसन्द न था। कार्यवश बाहर जाना भी पड़ा तो बहुत शीघ्र ही गुरुकुल वापिस लौट आने का यत्न किया करते थे। गुरुकुल भूमि उनके लिये सेनिटोरियम था। बाहर अगर वे बीमार पड़ जाते तो वे गुरुकुल शीघ्र लौट आया करते थे। उन्हें विश्वास था कि गुरुकुल लौटते ही वे गुरुकुल भूमि में स्वस्थ हो जायगे।

प्रतिवर्ष दो मास के अवकाश के दिनों में उनकी यह धारणा रहती थी कि वे ही स्वयं ब्रह्मचारियों के संग पर्वत-यात्रा या सरस्वती यात्रा किया करें। शिक्षा के लिए ब्रह्मचारियों को भिन्न २ स्थानों में ले जाने का नाम उन्होंने सरस्वती यात्रा रखा था। वे ब्रह्मचारियों के साथ को-जहां तक सम्भव हो-छोड़ना न चाहते थे।

गुरुकुल ही उनके लिये शिक्षा दीक्षा का स्थान था। वे कहा करते कि गुरुकुल ने ही उनका जीवन बनाया है, गुरुकुल ने ही उनके जीवन में स्फूर्ति का संचार किया है। गुरुकुल जीवन ही उनका दीक्षा-मन्त्र था।

इस प्रकार आचार्य श्रद्धानन्द ने अपने आचार्यत्व को खूब ही निभाया। उनका आचार्यत्व शिक्षा-संस्थाओं के सभी आचार्यों के लिये अनुकरणीय है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का सब से महान् कार्य

'ब्रह्मचर्याश्रम का पुनरुज्जीवन'

(ले० श्री पं० भगवद्दत्त वेदालंकार)

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द निस्सन्देह एक महान् आत्मा थे। भगवान् के इस सृष्टि-यज्ञ को हिंसा, अपूर्णता व असम रसता आदि दोषों से मुक्त करने के लिये महान् आत्माएं इस यज्ञ में अपनी विशेष आहुति प्रदान किया करती हैं। ये वे दिव्य यन्त्र होते हैं जिन से कि इस सृष्टि का महान् यज्ञी सृष्टि-चक्र को प्रतिचालित करता है।

स्वामी जी का जीवन एक ऐसा आदर्श और क्रियामय जीवन था कि समाज, जाति व देश के सुधार का कोई भी कार्यक्षेत्र उन से अछूता नहीं बचा था। आर्यसमाज, हिन्दूमहासभा, और कांग्रेस के क्षेत्र में सर्वत्र वे प्रधान एवं अग्रणी बन कर कार्य करते रहे। इस में कोई सन्देह नहीं कि आर्य धर्म का प्रचार, हिन्दू-संगठन एवं शुद्धि, हिन्दी प्रचार, दलित दुखियों एवं दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा, राजनीतिक आन्दोलन में प्रमुख सहयोग आदि उनके सभी कार्य महत्वपूर्ण तथा उनको महान् बनाने वाले थे। किन्तु उनकी अपनी हस्तलिखित जीवनी को पढ़ने से, उनके धर्मोपदेशों का अनुशीलन करने से तथा उनके समय समय पर निकले हार्दिक उद्गारों से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे भारतवर्ष में ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुज्जीवन को अपना जीवनोद्देश्य समझते थे। इसी कार्य को वे सब से अधिक

(शेष पृ० ७ पर)

गु रु कु ल

६ पौष शुक्रवार १९९७

"भारतवर्ष की एक विभूति"

[श्री आचार्य अभयदेव जी]

हमारे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारतवर्ष की एक विभूति थे। वे समय की मांग को पूरा करने के लिए जन्मे थे। अतएव वे उन आदर्शवान् महापुरुषों में से थे जो कि दुनियावी लोगों की बनाई पगडण्डियों पर ही चल कर सन्तुष्ट होना नहीं सह सकते परन्तु अपने आदर्श पर ठीक पहुँचने के लिए पहाड़ों, जंगलों, नदियों को चीर कर जाने वाली नई सड़कों को बनाते हैं जिन पर आगे आने वाले लोग चलने लगते हैं। जब महात्मा मुन्शीराम को गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली का दर्शन हुआ तो वे घर बार छोड़ कर उठ खड़े हुए, दर दर फिरे और विपरीत अवस्थाओं में भी गुरुकुल को स्थापित करके छोड़ा। यद्यपि लोग उन्हें पागल कह कर पुकारते थे और उन्हें उन दिनों ऐसी मुसीबतें झेलनी पड़ीं जिनकी कि आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। पर आज तो न केवल इस देश के किन्तु विदेश के शिक्षा-विद् भी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की तरफ आशाभरी निगाहों से देख रहे हैं। और इस देश में तो जो कोई नया शिक्षणालय खोलता है वह अपने नाम के साथ 'गुरुकुल' व 'आश्रम' जैसा कोई शब्द जोड़े बिना पूरी तरह गौरवान्वित नहीं हो पाता। जिस समय उन्होंने हिन्दी-भाषा के महत्व को समझ लिया उसी समय एक ही रात में अपने सद्धर्म प्रचारक को उर्दू से हिन्दी में कर दिया, लोग कहते रहे कि इसके ग्राहक '०' के बराबर रह जायेंगे, पर महात्मा मुन्शीराम का हुक्म था "नहीं, सद्धर्मप्रचारक कल से हिन्दी में ही निकलेगा।" और आज हमें मालूम है कि वह सद्धर्म प्रचारक अपने दिनों में उत्तर भारत के पत्रों में सबसे अधिक ग्राहक संख्या वाला रहा। यही स्वामी जी के जीवन की व्यापक कथा है। अपने आदर्श को सामने देखते हुए वे सत्यमार्ग को ग्रहण करने से कभी नहीं डरे, कभी नहीं झिझके, कभी 'विचार' में नहीं पड़े। क्या उनको श्रद्धापूर्वक पुकारने वाले भारतवासी उनकी वीरता के, इस आदर्शवादिता के, अनुयायी बनने का यत्न करेंगे! क्योंकि उनकी यह वीरता सत्यप्रियता और आदर्शवादिता ही असली और अमर श्रद्धानन्द थे, उनका नाशवान् शरीर नहीं।

सन्यासी की स्मृति में

(लेखक—आचार्य चन्द्रकान्त जी, वेदवाचस्पति सूरत)

वे सर्वीर्य गुप्त थे। जब किसी को भी मार्ग सूझ न था तब वे मार्ग पर चल रहे थे। मैकॉले के जादू ने यदि हिन्द को गुलाम बनाया था तो सन्यासी की मौलिकता ने भारत को स्वतन्त्रता का स्वप्न दिखाया था। मोन्टिसरी, डाल्टन, प्रोजेक्ट आदि शिक्षण पद्धतियों ने हमें मुक्ति के मार्ग को दिखाने का यत्न अवश्य किया है। आज के महापुरुष महात्मा गांधी जी ने वर्धा शिक्षण पद्धति के द्वारा भारत को आजाद बनाने का लक्ष्य अवश्य किया है। परन्तु शिक्षण का सच्चा रहस्य तो इस सन्यासी ने अपनी आर्ष दृष्टि से गुरुकुल प्रणाली के रूप में कभी का बता दिया है। क्षण २ परिवर्तनशील आज के विश्व में अर्वाक् शिक्षण के क्षेत्र में भी प्रतिपल परिवर्तन हो रहा है, जाति को अपने भावी के निर्माण का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है, तब भी हे महान् सन्यासिन्! तुम और तुम्हारा मानसपुत्र गुरुकुल, प्रकाश के पथ की अमर अंगुलि निर्देश कर रहा है। यद्यपि आज तुम अपने भौतिक रूप में यहां नहीं विचर रहे हो परन्तु तुम्हारी आवश्यकता आज भी जीवित एवं जागृत है अतः तुम मौजूद हो, अमर हो।

हे विशाल-काय राजर्षि! तुम्हारे हृदय की विशालता तो कैसी अनुपम थी! गुरु ने विष पिलाने वाले को यदि अमृत पिलाया तो तुमने भी हे अजात शत्रु!—कहे जाने वाले शत्रुओं को पलकों पर उठाया, और हृदय में बिठाया। तुम्हारा क्षात्र-धर्म ब्राह्म-धर्म से अछूता न था, तुमने असगरी बेगम को "शान्ति देवी" बनाया जुम्मा मसजिद के पवित्र आसन पर बैठकर हिन्दु-मुसलमानों को प्रेम का अमृत पिलाया, हिन्दु माताओं और बच्चों पर आंसू बहाते हुवे भी तुमने मोपला हत्या कांड के समय प्रभु से मुसलमान भाइयों की सद्बुद्धि की प्रार्थना की, डा० अन्सारी और हकीम अजमलखान की गोद में माथा रखने में तुम्हें जरा भी हिचकिचाहट न थी, ध्यान धर्मान्ध अब्दुल रशीद को तुमने अपनी छाती के खून का कटोरा पिलाया था—परन्तु हमें आश्चर्य और दुःख तो तब होता है जबकि लोग तुम्हें मुसलमान भाईयों का शत्रु बताते हैं। सर सिकन्दर हयात खां और फजलुल हक हमारी आर्य-भाषा का कलेवर बिगाड़ना चाहते हैं और मि० जिन्ना भारत माता के दो टुकड़े करना चाहते हैं—ऐसी अवस्था में भी महात्मा जी और राजा जी sporting offer करके अपूर्व उदारता की पराकाष्ठा कर रहे हैं परन्तु लोग घटने की जगह बढ़ता जाता है —मेरे मुसलमान भाई हम से दूरी ही अनुभव करते जा रहे हैं—फिर सर सप्रू की समझौते की पुकार, नक्कार खाने में तूती की आवाज क्यों न हो जाय! इस निराशा की निशा में स्वामिन्, हम निर्निमेष दृष्टि से तुम्हें देखना चाहते हैं—तुम किसी को लोकपाल के रूप में, तो किसी को इमामसाहब तो किसी को छत्रपति शिवाजी रूप में दीखते थे। तुमने स्कोलेस्टमोलक

को अपने आश्रम में भगवान् बुद्ध की मूर्तियों का दर्शन कराया था। हे सच्चे सेनापति! हम तुम्हारा वह रूप फिर देखना चाहते हैं। तुम ने जिस क्षेत्र में कदम रक्खा वहां श्रद्धानन्द ही श्रद्धानन्द दिखाई देता था—आवो! आज फिर तुम अपने विशाल-महान् रूप में प्रकट होवो—आशा का दीपक जगाओ—हम सब दीपक बन जग मगा उठें।

सौम्य-मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द

(लेखक—डाक्टर ओमप्रकाश विद्यालङ्कार होमियोपैथ बिजनौर)

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी का शरीर कितना भव्य, कितना विशाल तथा कितना आकर्षक था इसके विषय में हमें लिखने की कुछ विशेष आवश्यकता इसलिये प्रतीत नहीं होती है कि उसका जीता जागता चित्र हमारी दृष्टि के सामने आज भी उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार कि आज से पन्द्रह या बीस वर्ष पूर्व रहा करता था। गुरुकुल कांगड़ी के आलिक तो यज्ञशाला में चौकी पर विराजमान उपदेशामृत का पान कराते हुवे महात्मा मुन्शीराम का, तथा वार्षिकोत्सव पर पण्डाल में दीक्षान्त संस्कार के समय अन्तिम दीक्षा देते हुवे संन्यासी श्रद्धानन्द का दर्शन अपने मानसिक पट पर जब चाहें तब करते ही रहते हैं। अपि च, कभी किसी प्रलोभन से आकृष्ट होकर असन्मार्ग पर प्रवृत्त होते हुवे अपने पुत्रों को श्रद्धानन्द की वह मुस्कराती हुई सौम्य-मूर्ति भी जब तब दर्शन देकर सचेत करती ही रहती है।

जो वस्तु जिसे अनायास प्राप्त होती रहती है वह उसे कुछ विशेष महत्व नहीं दिया करता यह एक लोक-व्यवहार का साधारण नियम है।

परन्तु जिन महानुभावों के सम्मुख स्वामी श्रद्धानन्द की वह मूर्ति कभी कभी प्रगट होती रही है वे उससे प्रभावित होकर उसे कितना महत्व देते रहे हैं इसका परिज्ञान हमें स्वर्गीय रैम्जे मैक्डोनल्ड साहिब के उस लेख से सहज ही में हो सकता है जो उन्होंने १९१० के लगभग गुरुकुल में पधारने तथा महात्मा मुन्शीराम के सहसा दर्शन करने पर लिखा था। उन्होंने लिखा था कि "यदि किसी कलाकार को इस जमाने में महात्मा ईसा की मूर्ति तय्यार करनी हो तो उसे इस महात्मा की प्रतिकृति (Photo) सामने रख लेनी चाहिये।"

इङ्गलैण्ड के उक्त, भूतपूर्व प्रधानामात्य के इस कथन का स्मरण करते हुवे हमारी भी यह इच्छा होती है कि हम भी घोषणा करदें कि यदि किसी कलाकार को इस युग में महाकवि कालिदास द्वारा "रघुवंश" महाकाव्य में वर्णित "राजा दिलीप" का चित्र खींचना हो तो उसे भी नमूने के लिये महात्मा मुन्शीराम से अधिक उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल सकता। देखिये— राजा दिलीप के शरीर की प्रशस्ति में लिखे गये निम्न दो श्लोक महात्मा मुन्शीराम की आकृति पर उतारने पर किस प्रकार पूर्णतया समझ में आजाते हैं।

> "व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः, शालप्रांशुर्महाभुजः।
> आत्मकर्मक्षमं देहं, क्षात्रोधर्म इवाश्रितः॥
> सर्वातिरिक्त सारेण, सर्वतेजोभिभाविना।
> स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी, क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥

"व्यूढोरस्कः" का अर्थ उस वज्र-हृदय-शाली वक्षःस्थल का निरीक्षण करके समझ लीजिये जिसने देहली के घण्टाघर के पास बढ़ती चली आती गोरखों की फौज की चमचमाती संगीनों को चीन की दीवार के समान एकदम रोक दिया था। "वृषस्कन्धः" का अर्थ समझने के लिये उन उन्नत कंधों की ओर निहारिये जिन्होंने निरन्तर पच्चीस वर्ष तक एक महान् सार्वजनिक संस्था के भारी धुरों को धारण किया था। क्या सन्यासी श्रद्धानन्द का सहज-प्रसन्नता तथा तेज से जगमगाता हुवा मुखारविन्द प्रत्येक सभा, प्रत्येक संस्था तथा प्रत्येक समाज में, हिमालय के शिखर-निकरों में सुमेरु पर्वत के सुनहरे उत्तुङ्ग-शृङ्ग के समान सब से ऊंचे आसन पर विराजमान होता हुवा नहीं दीखा करता था? उसे स्मरण करते हुवे क्या पूर्व द्वितीय श्लोक का अर्थ प्रत्यक्ष नहीं हो जाता? आजकल के शिक्षित समुदाय में "शालप्रांशु" पुरुष कहां दिखायी देते हैं!

इसी प्रकार, महात्मा मुन्शीराम के उन भुज दण्डों का अवलोकन करें, जिन्होंने न केवल करीन्द्र शुण्डादण्डों के समान अनेक बीहड़ वनों के झाड़ झंखाड़ों का पलभर में सफाया कर दिया था अपितु कारीगरों की करनी (मकान चिनने का औज़ार) के समान अनेक विशाल तथा भव्य भवनों का निर्माण भी कर दिखाया था, "महाभुजः" का अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। क्या उसकी अपरिमेय भुजाओं ने न केवल भारत के कोने कोने में अपितु विदेशों के नगरों से भी रुपयों की थैलियां नहीं खींच डाली थीं। किसकी सामर्थ्य थी जो उस राजर्षि संन्यासी की झोली में बिना कुछ डाले बची हो। क्या सूर्य्य के समान तेजस्वी उस महापुरुष के प्रताप ने ही जनता से लिये उस धन को, उसी के कल्याणार्थ, वैदिक शिक्षा की घन पटलों में परिणत करके— अतएव उसे सहस्रगुणा करके— तथा नाना मतमतान्तरों की तप्तवातों से सूखती वैदिक सभ्यता की खेती पर बरसा कर, आज उसे फिर नये सिरे से हरा भरा तथा लहलहाता नहीं कर दिया है? इस प्रकार क्षत से— अपने स्व से सर्वनाश से—भारतीय सभ्यता की रक्षा करने वाले उस सच्चे क्षत्रिय का शरीर, क्या अपने कर्तव्य का पालन करने में अक्षम असमर्थ—हो सकता था? क्या उसके उस भव्य शक्ति शाली तथा विशाल शरीर को देखकर भी यह समझ में आये बिना रह सकता है कि क्षात्रधर्म भी साक्षात् मूर्तिमान हो प्रगट हो सकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का इस प्रकार का क्षात्रधर्म का मूर्तिमन्त अवतार रूप वह दिव्य शरीर यद्यपि संसार के प्रायः शत प्रति शत मनुष्यों को सदा प्रभावान्वित करता रहा है तथा करता ही रहेगा तथापि हमें तो उनकी वही

सौम्य मूर्ति ही आकृष्ट कर रही है जो भीषण से भीषण विषाद तथा महान् से महान् हर्ष के कारणों से भी बिना प्रभावित हुये उनके सदा समुज्ज्वल मुखारविन्द को धारण करती रही है।

हमें वह दिन कभी नहीं भूलता जब कि महात्मा मुन्शीराम का बीस हजार की लागत का स्टीम प्रेस, किसी गुप्त शत्रु द्वारा अचानक आग लगा दिये जाने के कारण, भस्म हो रहा था और वह धीर पुरुष मृत्यु शय्या पर पड़े अपने साधारण से एक भक्त को समाश्वासन देने के लिये उसी समय निःसंकोच चल पड़ा था। क्या "अमृतं राजसन्मानम्" के अनुसार, भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के निमन्त्रण का अमृतमय सम्मान पाकर भी उसने किसी प्रकार के हर्ष-चिन्हों को अभिव्यक्त किया था! इस प्रकार भगवान् राम के समान हर्ष विषाद से शून्य द्वन्द्वातीत पुरुष भी यदि सौम्य मूर्ति न होगा तो और कौन हो सकेगा!

गोस्वामी तुलसी दास जी राम के विषय में लिखते हैं:—

शील-सकोच-सिन्धु रघुराऊ,
सुमुख, सुलोचन, सरल स्वभाऊ।
नीति, प्रीति, परमारथ, स्वारथ,
कोउ न राम-सम जान यथारथ।
को रघुवीर- सरिस संसारा,
शील सनेह निबाहनि हारा॥

जिन सज्जनों को स्वामी श्रद्धानन्द जी के सहवास का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है वे इन चौपाइयों के अर्थ को कितनी भली प्रकार समझ सकते हैं!

राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् राजा रामचन्द्र जी जब अपने सब उपकारी महानुभावों को बड़े सत्कार, प्रेम तथा कृतज्ञता प्रकाशन के साथ विदा कर चुके तो अन्त में अक्रूर के विदा करने की बारी भी आ ही पहुँची। परन्तु वह राम के प्रेम पारावार में इतना निमग्न हो चुका था कि वह अपने घर लौटना ही नहीं चाहता था। अक्रूर की उस समय की दशा का चित्र तुलसी दास जी इस प्रकार खींचते हैं:—

अक्रूर हृदय प्रेम नहिं थोरा,
फिरि फिरि चितव राम की ओरा।
बार बार कर दण्ड प्रणामा,
मन अस, रहन कहहिं मोहि रामा।
राम-विलोकनि, बोलनि चलनी,
सुमिरि सुमिरि सोचत, हंसि मिलनी॥

क्या स्वामी श्रद्धानन्द के सहवास में रहकर लौटते हुये उनके भक्तों की भी ऐसी ही दशा नहीं हो आया करती थी? क्या वे उस सौम्य मूर्ति का "हंसि हंसि मिलनी" को आज भी भुला सकते हैं!

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

[लेखक—श्री जम्भूराम जी वैश्य आनन्दाश्रम लुधियाना]

नामी कोई बग़ैर मुशक्कत नहीं हुआ।
सौ बार जब अकीक कटा तब नगीं हुआ॥

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के गुणों से लाभ उठाओ।

सब से अधिक प्रशंसा में अगर कुछ लिखा या कहा जा सकता है इसके सिवाय कुछ विचार में नहीं आ सकता कि अमुक मनुष्य उच्च कोटि का दिल व दिमाग रखता है। प्रायः कई बार इन शब्दों का प्रयोग अपने स्थान पर नहीं होता, क्योंकि योग्यता जो दिमाग से सम्बन्ध रखती है और भलाई जो मन से सम्बन्ध रखती है यह दोनों प्रायः एक जगह एकत्रित नहीं होती। परन्तु मेरे स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी महाराज में जिस प्रकार बावजूद एक दूसरे के खिलाफ योग्यताएं एकत्रित थीं उसी प्रकार उनको ईश्वर ने दिल व दिमाग दोनों उच्च कोटि के दिये थे। यहां तक स्वामी जी के सम्बन्ध में यह कहना कठिन था कि उन में भलाई और बुद्धि में से किस की अधिकता थी परन्तु जहां तक विचार किया जाता है उनकी सम्मतियों में सम्भवतः भूल की सम्भावना हो। परन्तु उनके गुण उच्च थे इसी कारण उनके बलिदान के बाद डाक्टर अन्सारी ने लिखा था "स्वामी श्रद्धानन्द जी की सफाई-ए-दिल और जुर्रत का मैं दिल से मद्दाह था"। यद्यपि उनकी योग्यताएं उच्च थीं परन्तु उनके अखलाक और सफाई-ए-कल्ब इससे भी बढ़कर थे। बुजुर्गों का कहना है कि जो मनुष्य बुराई से रहित हो, मुन्सिफ मिज़ाज और अपनी आन का पक्का हो और अपने मातहतों पर मेहरबान हो, कर्मशील हो, बड़े २ कार्यों में वीरता और दृढ़ता से कूदने के लिये तैय्यार पर तैय्यार हो वह शरीफ है। इसमें यदि उदारता का गुण और बढ़ा दिया जावे तो कुछ सन्देह नहीं कि अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी पूर्णतया उच्च कोटि के पुरुष थे। जो अधिकार आप केवल इखलाक व योग्यता से हज़ारों नहीं बल्कि मनुष्यों के दिलों पर रखते थे वह किसी को अपने परिवार के मैम्बरान पर भी नहीं होता था। जिस कदर भी उनके इष्ट मित्र और मिलने वाले थे सभी उनके प्रशंसक थे और सभी उन से अगाध प्रेम करते थे। और उन पर दृढ़ विश्वास था। इसलिये पंजाब तो क्या कुल भारत वर्ष में उनके बलिदान पर ऐसा असह्य धक्का अनुभव किया गया जैसा कि किसी को अपने परिवार के ही व्यक्ति के वियोग पर होता है, इससे अधिक और मेरे स्वर्गीय स्वामी जी महाराज की महानता का क्या प्रमाण मिल सकता है। उनकी महानता की सबसे अधिक युक्ति उनकी असाधारण सफलता थी जो उनको अपने पवित्र लक्ष्य गुरुकुलादि कार्यों में हुई। क्योंकि योग्यताएं चाहे कितनी भी उच्चकोटि की क्यों न हों जब तक उनके साथ उच्चकोटि का इखलाक न हो कुछ परिणाम नहीं निकल सकता। उन्होंने अपनी अधिकतर आयु सार्वजनिक जीवन में बिताई। जिस में उनके अन्तिम २१ वर्ष इस

अवस्था में व्यतीत हुये कि उनके अपने ही उनके दोषों की घात में रहे। मित्र क्या, दुर्जन क्या सभी को उनके हरेक कार्य को परखने का अवसर मिला। विरोधियों की सदैव यह इच्छा रही कि कोई ऐसी बात हाथ लगे जिस से स्वामी जी को नीचा देखने का मौका मिले और गुरुकुल आदि उनके प्रिय कार्यों को हानि पहुंचे। इसके होते हुवे भी कोई ऐसा अवसर नहीं मिला और विरोधी सदैव की तरह निराश रहे। और कोई समय ऐसा न आया कि उनके पवित्र जीवन के विरुद्ध कोई प्रतिकूल बात हाथ आती। उनके उच्च जीवन का सब पर ही प्रभाव पड़ता था। उनकी भव्यमूर्ति देखते ही सामाजिक कार्यों में सेवाभाव का जोश दिलों में ठाठें मारने लगता था। उनकी अनथक शक्ति और दृढ़ता एक मौन उपदेश था। जो उनके चरण चिह्नों पर चलने के लिए सबको आग्रह करता था। इस में संदेह नहीं कि वह अपने उच्च जीवन से सारी आर्य जाति में आला इकबाल का बीज बो गये। वह सम्पूर्णगुण जो एक सत्याग्रही में होने आवश्यक हैं जैसे सच बोलना, सच्चा प्रेम, मित्रता, दिलेरी और स्वतन्त्रता उनकी विशेषताओं में से थीं। इसलिए उन्होंने अपनी सचाई के कारण एक समूह को अपना विरोधी बना लिया परन्तु जिस बात को यथार्थ जाना उसके करने और कहने में ज़रा भी संकोच नहीं किया। जिस पर आप दृढ़ हुवे उसके अनुकूल कहा और वैसा ही किया। और जिसमें भलाई समझी उसके करने में किसी विरोधी शक्ति की परवाह नहीं की। संभव है कि स्वामी जी को कोई बात समझने में भूल हुई हो परन्तु जहां तक मैं उनके स्वभाव को कल्पना कर सकता हूँ यह बात असम्भव थी कि उन्होंने कभी भी अपनी आत्मा के विरुद्ध कुछ कहा और किया हो। देश और जाति की तरफ से अपने कर्त्तव्य से विचलित करने में मौत भी उन्हें डगमगा नहीं सकी। कायर तो मरने से पहिले कई बार मर जाते हैं परन्तु बहादुर मौत का मज़ा एक बार चखते हैं। पूज्य स्वामी जी कर्म योगी थे ब्रह्मचर्य मर्यादा स्थापित करने और वैदिक सभ्यता को फैलाने के लिये गुरुकुल कांगड़ी स्थापित किया जो उनके त्याग का जीवित प्रमाण है। अन्त में उन्होंने अपना जान भी इसी आदर्श के लिये अर्पण करदी। हम सांसारिक प्रलोभनों में फंसे हुवे पुरुष उनके जीवन को अपना लक्ष्य बनाकर अपने को उन्नत कर सकते हैं। इसी में हमारा कल्याण है। बोलो, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द की जय!

(देखिए पृष्ठ ३ का शेष)

महत्त्व देते थे। ब्रह्मचर्याश्रम को पुनः प्रतिष्ठा, देश की संपत्ति रूप भावी संतति-देश के नवयुवकों और नवयुवतियों—के चरित्र-बल को उन्नत करना, उनके ब्रह्मचर्याश्रम की नींव को सुदृढ़ करना ही देश के अभ्युदय के लिये रामबाण औषध है ऐसी उन की अविचल श्रद्धा थी। सामान्यतया भी संपूर्ण देश के सदाचार का मान दण्ड उन्नत हुए बिना देश स्वतन्त्र, सुखी व समृद्ध नहीं हो सकता ऐसी उनकी निश्चित सम्मति थी। अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष-पद से अपना ऐतिहासिक भाषण देते हुए उन्होंने निम्न उद्‌गार प्रकट किये थे— "यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बन कर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। जब सदाचारी ब्रह्मचारी हों शिक्षक, और कौमी हो शिक्षापद्धति, तब ही कौम की ज़रूरतों को पूरा करने वाले नौजवान निकलेंगे, नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी।... ...जिस वेदना में से गुज़रने का पञ्जाब को सौभाग्य प्राप्त हुआ है उस का फल यह है कि जातिको 'तप' का गौरव मालूम हो गया। मार्शल—ला के दिनों में पता लगा कि पोलिटिकल अधिकारों का शोर मचाने वाले यदि चरित्रहीन हों तो वे देश को रसातल में ले जाते हैं। इसलिये सब से बढ़ कर काम चरित्र संगठन का है जिसे जाति को अपने हाथ में लेना चाहिये।"

ब्रह्मचर्याश्रम को पुनरुज्जीवित करने का विचार स्वामी जी के मन में कैसे आया इस संबन्ध में उनके अपने लेख काफी प्रकाश डालते हैं। किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्द के सत्संग के दिनों में ही स्वामी जी के मन में एक अलक्षित संकल्प घर कर गया था। महर्षि दयानन्द अगर पूरी आयु जीते रहते तो प्राचीन-पद्धति के अनुसार वर्णाश्रम को परिपाटी का पुनरुद्धार कर अपने वैदिक धर्म के प्रचार और संसार के उपकार के कार्य को बद्धमूल समझते। महर्षि के दर्शन के समय में ही उनके भावी पट्ट शिष्य, उनके मिशन पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी के चित्त पटल पर यदि महर्षि की इस हार्दिक कामना का प्रतिबिम्ब पड़ गया हो तो इस में कोई आश्चर्य नहीं समझना चाहिये।

महर्षि के ग्रन्थों के स्वाध्याय से पं० गुरुदत्त जी के मन में यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन के लिये गुरुकुल जैसी संस्था खोले बिना महर्षि का वैदिक धर्म का मिशन सफल नहीं हो सकता। पं० गुरुदत्त के अकाल देहावसान के पश्चात् स्वभावतः श्रद्धानन्द जी ने ही उन का स्थान ग्रहण किया और उनके दल के विचारों का नेतृत्व किया। स्वामी जी 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखा करते थे कि 'आश्रमव्यवस्था के बिना वर्ण व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आश्रमों पर ही वर्ण निर्भर हैं। जब गुरुकुल नहीं हैं, तब आश्रम पद्धति का उद्धार कैसे हो?" अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली में और डी. ए. वी. कालिज की प्रणाली में भी ब्रह्मचर्याश्रम की पद्धति का अभाव उनको बहुत खटका करता था। इसी लिये उन्होंने ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार को ही अपनी सब चेष्टाओं और क्रियाओं का परम लक्ष्य बनाया। गुरुकुल स्थापित करने के कई वर्ष बाद भी उस ब्रह्मचर्य का संदेश जनता तक पहुंचाने के लिये उन्होंने 'श्रद्धा' पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया। ब्रह्मचर्याश्रम की रक्षा और उसके उद्देश्यों का ठीक ठीक प्रचार करना 'श्रद्धा' का मुख्य उद्देश्य था।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"　　　Reg. No. A. 2947

एक प्रति का मूल्य -)　　[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]　　वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५]　　गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १३ पौष १९९७; २७ दिसम्बर १९४०　　[संख्या ३६

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

(श्री विनोबा)

मनुष्य का जीवन अनुभव का शास्त्र है। उस अनुभव से मानव समाज का बहुत विकास हुआ है। परन्तु हिन्दू-धर्म ने इस अनुभव का शास्त्र बना कर जो एक विशिष्ट साधना रूढ़ की है, वह है ब्रह्मचर्य। अन्य धर्मों में भी संयम तो है ही; परन्तु उसे शास्त्रीय स्वरूप देकर हिन्दू-धर्म ने जिस प्रकार उसके लिए एक शब्द गढ़ा है, उसी प्रकार का शब्द अन्यत्र नहीं पाया जाता। जब पौधा छोटा होता है, तब उसे अच्छे-से-अच्छे खाद की आवश्यकता रहती है। पोषण जन्म भर चाहिए; लेकिन कम-से-कम बचपन में तो वह सबको मिलना ही चाहिए। जिस दृष्टि से हिन्दू धर्म के ब्रह्मचर्याश्रम की योजना की। किन्तु आज मैं उस आश्रम के विषय में न कहकर 'ब्रह्मचर्य' इस वस्तु के सम्बन्ध में कहने वाला हूं।

मैं अपने अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि यदि आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करना हो, तो ब्रह्मचर्य की कल्पना अभावात्मक (नैगेटिव) नहीं होनी चाहिए। 'विषय-सेवन मत करो' यह अभावात्मक आज्ञा है। इतना काफी नहीं है। 'सब इन्द्रियों की शक्ति आत्मा में खर्च करो' इस प्रकार की भावात्मक (पोजिटिव) आज्ञा होनी चाहिए। ब्रह्मचर्य के विषय में 'अमुक मत करो,' कहने से काम नहीं चलेगा; 'अमुक करो' ऐसा कहना चाहिए।

'ब्रह्म' याने कोई भी बृहत् कल्पना। यदि कोई आदमी अपने पुत्र को परमात्म-स्वरूप मानकर उसकी सेवा करता है और पुत्र सत्पुरुष बने ऐसी इच्छा रखता है; तो पुत्र ही उसके लिए ब्रह्म बन जाता है। पुत्र के लिए ब्रह्मचर्य पालन करना उसके लिए आसान हो जायगा। मां अपनी सन्तान के लिए रात दिन खपती है। किन्तु वह सोचती है कि मैंने उसके लिए कुछ भी नहीं किया। कारण, उसका सन्तान के प्रति जो प्रेम है, उसके परिमाण में उसके कष्ट अल्प हैं। उसी प्रकार ब्रह्मचारी व्यक्ति का जीवन तप से—संयम से—परिपूर्ण होता है। किन्तु उसके सामने जो विशाल कल्पना होती है, उसके परिमाण में वह सारा संयम वह व्यक्ति अल्प ही समझता है। 'मैं इन्द्रिय निग्रह करता हूँ,' इस कर्तरि-प्रयोग के बदले 'इन्द्रिय-निग्रह किया जाता है,' यह कर्मणि-प्रयोग बाकी रह जाता है। हिन्दुस्तान की गरीब जनता की सेवा यदि किसी का ध्येय हो, तो वह सेवा उसका ब्रह्म बन गया। उसके लिए वह जो कुछ करेगा वह ब्रह्मचर्य है। सारांश, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालन के लिए एकाध विशाल कल्पना यदि नज़र के सामने हो, तो ब्रह्मचर्य आसान हो जाता है। ब्रह्मचर्य को मैं विशाल ध्येयवाद और तदर्थ संयमाचरण कहता हूं। ब्रह्मचर्य के संबंध में यह मुख्य की बात मैंने कही।

जो दूसरी एक बात कहनी है, वह यह है कि जीवन की छोटी-से-छोटी बातों में भी नियमन होना चाहिए। खाना, पीना, बोलना, देखना, सोना आदि सब बातों में नियमन होना चाहिए। चाहे जैसा जीवन व्यतीत करेंगे, और इन्द्रियनिग्रह साध्य करेंगे यह आशा व्यर्थ है। मटके में यदि छोटा-सा भी छिद्र हो, तो भी वह बेकार हो जाता है। उसी प्रकार जीवन में छिद्र नहीं होना चाहिए।

('सर्वोदय' से)

होमियोपैथी के विकास की पूर्णता

(ले० श्री० डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालङ्कार बिजनौर)

[६]

"रत्नैर्महार्हैस्तुतुषर्न देवाः
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥"

हनीमैन वह धीर पुरुष था जो परमात्मा के दरबार से यह प्रतिज्ञा करके चला था कि वह न केवल चिकित्सा के नाम पर होने वाले अत्याचार से प्राणिमात्र की रक्षा करेगा अपितु सत्य-चिकित्सा-प्रणाली की दिव्य-सुधा का पान कराकर उसके तीनों तापों की शान्ति भी करेगा। अपने जीवन के इस उच्च उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर,

"कार्य्यं वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्"

का मन्त्र जपते जपते अब उसने कर्तव्य-पथ की ओर और आगे पैर बढ़ा दिया। उसने देवताओं के सुधा-प्राप्ति करने के निश्चय के समान दृढ़-निश्चय कर लिया था कि वह होमियोपैथिक चिकित्सा को पूर्णता प्राप्त कराये बिना कदापि विश्राम न लेगा।

उसने प्रारम्भ में प्राप्त हुई अपनी एलोपैथिक चिकित्सा की सफलता को इस प्रकार लात मार दी थी जिस प्रकार सुधा-प्राप्ति के लिए कृत निश्चय देवताओं ने समुद्र-मन्थन के कार्य में प्रारम्भ में प्राप्त हुवे महार्ह रत्नों को तथा होमियोपैथी चिकित्सा प्रणाली के उच्चतम शिखर पर पहुंचने में आयी विघ्न-बाधाओं को इस प्रकार धक्का दे दिया था जिस प्रकार देवताओं ने कालकूट विष को। इस प्रकार प्रलोभनों तथा विभीषिकाओं से प्रभावित हुवे बिना वह अपने उच्च उद्देश्य की ओर—सत्यचिकित्सा-विज्ञान के उच्चतम शिखर की ओर—होमियोपैथी के विकास की पूर्णता की ओर तबतक निरन्तर बढ़ता ही चला गया जब तक कि उसने उसे पा नहीं लिया।

अपने लक्ष्य के उच्चतम शिखर पर पहुंचने में हनीमैन को जिस दिव्य प्रक्रिया ने—जादू की छड़ी ने सबसे अधिक साहाय्य प्रदान किया उसका नाम दिव्यीकरण (Dynamization) या Potentization (पुटीकरण) है जिसके विषय में गत अध्याय में संकेत किया जा चुका है। हनीमैन की जादू की यह छड़ी संसार के जिस पदार्थ पर भी फिर गई उसने अपना भौतिक तथा रासायनिक गुणों का पुराना चोला एकदम उतारकर फेंक दिया तथा एक दिव्य गुणयुक्त नवीन सूक्ष्म शरीर धारण कर लिया। संसार के समस्त पदार्थों ने "राम-प्रताप विषमता खोई" के अनुसार इस प्रक्रिया के प्रभाव में आकर अपने भिन्न २ रूपों की विषमता को खोकर एकसा शुभ्र रूप धारण कर लिया तथा बहुत से सुप्त गुणों को जागृत कर अपना वास्तविक दिव्यगुणयुक्त शुभ्र-स्वरूप प्रगट कर दिया।

पदार्थों के इस स्वरूप से संसार का कितना कल्याण हुवा तथा हो रहा है उसकी कल्पना कौन कर सकता है?

देखिये—इस जादू की छड़ी के प्रभाव में आकर ही कलमुंहा कोयला (Carbo-Vegitable) कपास का सा कोमल तथा धवल-रूप धारण करके हिम समान शीतल हुवे जीवों में भी उष्णता का संचार करने लगा है तथा हवा में भी जल उठने वाला "फास्फोरस"—अपने सब उत्तेजनात्मक रासायनिक गुणों का परित्याग करके रोगियों की जलन शान्त करने के कार्य में लग गया है। इसीप्रकार दिव्यीकरण की इस प्रक्रिया में मथा गया "संखिया (Arsenic), जो चखने मात्र से ही जीवों को मृत्यु-मुख में पहुँचा दिया करता था, अब मृत्यु-मुख में पहुँचे रोगियों को भी बलात् खींच लाने लग गया है तथा मनुष्य जाति का सब से भयङ्कर शत्रु "कोब्रासांप" (Naja Tripudians), जिसके दांत जाने पर ही प्राणियों का दिल कांप जाता था, अब हृदय की धड़कन के असाध्य-प्राय रोगियों को दिलासा देने के कार्य में लग गया है। "नमक" जैसा साधारण भोज्य पदार्थ भी इस जादू की लकड़ी के असर में आकर अब न जाने कितने जादू भरे कार्य करने लगा है तथा लाइकोपोडियम सा उदासीन पदार्थ, जो केवल पिल्स को पिलपिला होने से बचाने का ही काम किया करता था, आज उस सोटी से घुटकर खोटी तक़दीर वाले उन न्युमोनिया के मरीज़ों का रक्षक बन गया है जो अपने बलग़म के चुल्लूभर जल में ही डूब जाया करते थे।

पाठक वृन्द ! हनीमैन की इस जादू की छड़ी अथवा "दिव्यीकरण" (Dynamization) की प्रक्रिया का पूर्ण परिज्ञान प्राप्त करने के लिये कौन विज्ञान-प्रेमी पुरुष समुत्सुक न होगा?

मान लीजिये 'लोहे का दिव्यीकरण (Dynamization) करना है; अर्थात् उसके भौतिक तथा रासायनिक गुणों का अपहरण करके उसके अन्दर विलीन उन दिव्य गुणों को जागृत करना है जिनके द्वारा वह रोगियों को रोगमुक्त करने में पूर्णतया समर्थ हो जाता है। आप जानते हैं कि लोहा जल में सदा अघुलन शील रहता है—यह उसका भौतिक गुण है। अब इसे हनीमैन की इस दिव्य-प्रक्रिया में से गुज़ार दीजिये, लोहा घुलन-शील हो जायगा। इस कार्य को करने के लिये लोहे के कण तोलकर एक ग्रेन ले लीजिये और उसमें १०० ग्रेन दूध की शक्कर मिला कर पत्थर की (Porcelain) कूँडी में डालकर पत्थर के सोटे से खूब रगड़िये। तीन घंटे तक परस्पर मिलाने, रगड़ने, खुरचने तथा मिला कर फिर रगड़ने की प्रक्रिया के पश्चात् इस मिश्रण में से १ ग्रेन चूर्ण अलग तोल लीजिये और इसमें १०० ग्रेन दूध की शक्कर मिलाकर फिर उसी प्रकार ३ घंटे तक कार्य कीजिये। अब इसमें से एक ग्रेन चूर्ण लेकर उसमें १०० ग्रेन दूध की शक्कर मिलाकर उसी प्रकार रगड़ने इत्यादि के कार्य कीजिये, इस प्रकार प्राप्त हुवे चूर्ण को जिसमें गणित के अनुसार लोहे का १ का १० लाखवां भाग रह जाता है, शुद्ध जल में डालकर देखिये। आप देखेंगे कि यह चूर्ण जल में घुल जाता है; अर्थात् लोहे ने जल में अघुलन शीलता के अपने भौतिक गुण का परित्याग कर दिया है। घुलन शील हुवे २ इस चूर्ण का १ ग्रेन अब आप अलकोहल के १ भाग तथा ४ भाग शुद्ध जल के

मिश्रण की ६०० बूँदों में घोल लीजिये। इस घोल की १ बूँद १ छोटी सी शीशी में लेकर उसमें १०० बूँद अलकोहल मिलाइये तथा मिश्रण को १०० बार ज़ोर २ से झटका दीजिये, इस शीशी में अब लोहे की यह प्रथम "पुष्ट" Potency तय्यार हो जायेगी। इसमें से १ बूँद घोल लेकर उसमें फिर १०० बूँद अलकोहल मिला दिये तथा १०० बार Shakes दीजिये ऐसा करने पर लोहे की दूसरी Potency तय्यार हो जायगी। इसी प्रक्रिया द्वारा अगली पोटन्सियां बनाते चले जाइये। इसप्रकार तय्यार की गयी १२ वीं पोटन्सी में आप की किसी भी रासायनिक व भौतिक परीक्षा द्वारा लोहे के अस्तित्व का परिज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

जब किसी भी भौतिक तथा रासायनिक परीक्षा द्वारा इस घोल में लोहे के अस्तित्व का पता नहीं चल सकता। तो साधारणतया यही धारणा करनी पड़ती है कि इस घोल में लोहे का अभाव हो गया है। "परन्तु विज्ञान का यह नियम है कि किसी भी सत्तावान् पदार्थ का कभी अत्यन्ताभाव नहीं होता।" हनीमैन ने विज्ञान के इस नियम का स्मरण करते हुये यही निश्चय किया कि जब इस घोल में लोहे का सत्ता अवश्य विद्यमान है तो उसका परिज्ञान भी किसी न किसी प्रकार हो ही जाना चाहिये। जिस प्रकार तार में वर्तमान विद्युत् नेत्रों का विषय न होने पर भी त्वचा द्वारा सुगमता से ग्राह्य होती है उसी प्रकार भौतिक तथा रासायनिक परीक्षाओं द्वारा अग्राह्य होने पर भी लोहे की इस पोटन्सीज़ में लोहत्व के परिचायक गुणों का परिज्ञान किसी न किसी साधनान्तर से हो ही जाना चाहिये।

हनीमैन ने प्रयत्न करने पर पोटन्सीज़ में पदार्थों के अस्तित्व का परिज्ञान प्राप्त करने का एक नवीन साधन शीघ्र ही ढूँढ निकाला। उसने उपर्युक्त रीति के अनुसार तय्यार की गयीं पोटन्सियों को परीक्षणार्थ स्वस्थ मनुष्यों को खिलाना प्रारम्भ कर दिया जिसका फल यह हुआ कि कुछ पर असाधारण लक्षण उत्पन्न होने लगे। हनीमैन ने उन लक्षणों का लेखा तय्यार कर लिया तथा उन रोगियों को, जिनमें उसके लेख के समान रोगलक्षण दिखाई दिये, लोह की पोटन्सियां औषधिरूप से देनी प्रारम्भ कर दी, जिसके फल-स्वरूप वे रोगी नीरोग हो गये। इन परीक्षणों द्वारा हनीमैन को यह निश्चय हो गया कि लोहे को दिव्यीकरण की इस प्रक्रिया में से गुजारने से यद्यपि उसके भौतिक तथा रासायनिक गुणों का लोप हो जाता है तथापि लोहे के अस्तित्व का लोप नहीं हो जाता। अपितु उसके बहुत से विलीन गुणों का आविर्भाव हो जाता है क्योंकि लोहे में यदि वे गुण विद्यमान न होते तो लोहे की वे पोटन्सियां स्वस्थ तथा रोगी मनुष्यों पर कुछ भी प्रभाव उत्पन्न करने में कदापि समर्थ न हो पातीं।

इस प्रकार मनुष्यों पर किये गये परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर होमियोपैथिक औषधियों की पोटन्सीज़ में औषधित्व की सत्ता का प्रदर्शन हो जाने पर भी बहुत से तार्किक विद्वान् उसके विषय में तरह २ की शङ्का करते पाये जाते हैं। उनकी शङ्काओं का समाधान करने के लिये हम निम्न "दृष्टान्त" प्रस्तुत करते हैं।

यदि सौ सौ सैनिकों की सौ पंक्तियां एक दूसरे से सिमटा कर खड़ी करदी जांय तो उन १० हज़ार सिपाहियों में से केवल ४०० सिपाही ही, जो चौतर्फा खड़े होंगे, युद्ध करने में कुछ २ समर्थ हो सकेंगे। शेष ९६०० सिपाही इस लिये बेकार खड़े रहेंगे कि वे चौतर्फा खड़े सिपाहियों से घिर जाने के कारण हिलने जुलने तक में भी असमर्थ होते हैं। अब यदि उन सब सैनिकों को एक सीधी पंक्ति में एक दूसरे से सटाकर खड़ा कर दिया जाय तो वे युद्ध करने की यद्यपि पहिली अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक क्षमता प्राप्त कर लेंगे तथापि पूर्ण क्षमता तो वे तभी प्राप्त कर सकेंगे जब उनमें से प्रत्येक के बीच कम से कम इतना अन्तर तो दे दिया जाय जिससे वे स्वच्छन्दता पूर्वक अपने शस्त्रों का प्रयोग कर सकें। इस पर भी प्रत्येक सैनिक में क्या कार्य्य कुशलता या युद्ध क्षमता छिपी पड़ी है इसका पता चलना असम्भव ही रहता है। इसका परिज्ञान तो तभी हो सकता है जबकि प्रत्येक सैनिक को समुचित अवकाश देकर उसे अपना कौशल दिखाने के लिये प्रेरित या संक्षुब्ध भी कर दिया जाय। तब हम देखेंगे कि वह ऐसे २ विस्मयोत्पादक कौशलों का प्रदर्शन करने लगता है जिसके अस्तित्व का हमें स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता।

ठीक इसी प्रकार हनीमैन की दिव्यी करण की इस प्रक्रिया में पदार्थों को अपने प्रच्छन्न गुणों का प्रदर्शन करने के लिये न केवल अवकाश अपितु प्रेरणा भी मिलती चली जाती है।

प्रत्येक दृश्य पदार्थ अदृश्य मात्राओं की असंख्य संख्याओं के संयोग से बना हुआ होता है। ऐसी संघटित अवस्था में मात्रायें अपने सब गुण किसी प्रकार भी प्रदर्शित नहीं कर सकतीं। क्या नमक की एक बड़ी डली दाल में डालने से सारी दाल को नमकीन कर सकती है? उसको, अब, पानी में घोलकर दाल में डाल दीजिये-सारी दाल नमकीन होजाती है। क्यों? इस लिये कि इस घोल में नमक की असंख्य मात्राओं की असंख्य गड्डियां अब पहिले से (ठोसावस्था से) बहुत अधिक अवकाश पा लेती हैं जिन्हें अपना गुण प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। अब हम नमक के इस घोल में से १ बूँद लेकर १०० बूँद जल में मिलाकर उसे झटकते हैं तो अब इस प्रक्रिया द्वारा इस घोल में नमक की मात्राओं की गड्डियां और भी अधिक अवकाश पा जाती हैं तथा झटकने से आपसी के साथ एक दूसरे से अलग २ हो जाती हैं।

दिव्यीकरण की इस प्रक्रियामें जहां घोल (Delution) द्वारा मात्राओं को अधिक अवकाश प्राप्त होता चला जाता है वहां संघर्षण अथवा झटकन द्वारा मात्राओं का विघटन भी होता चला जाता है। झटकन की इस क्रिया द्वारा मात्राओं का न केवल विघटन ही हो जाता है अपितु उन्हें अपने गुणों का प्रदर्शन करने के लिये प्रेरणा (Excitement) भी प्राप्त होती रहती है। इस प्रकार अवकाश तथा प्रेरणा पाकर पदार्थों की मात्रायें अपने

[शेष पृ० ५ पर]

गु रु कु ल

१३ पौष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

[श्री आचार्य अभयदेव जी]

(६)

धन का सदुपयोग

हां यह तो ठीक है कि 'स्पर्धा में उन्नति होती है,' पर यह तब होती है जब स्पर्धा उन्नति के लिये कराई जाय। हम तो अंग्रेज़ी की किताबों के कुछ शब्द रट लेते हैं, यह नहीं जानते कि उनका असली उद्देश्य क्या है? स्पर्धा श्रम की कीमत कम कराने को नहीं किन्तु श्रम को उन्नत कराने के लिये करानी चाहिये। हरद्वार से गुरुकुल तक तांगे की कीमत तो उचित तौर पर निश्चित होनी चाहिये, और वह ज़रूर दी जानी चाहिये। उस कीमत पर चुनाव उस तांगे का करना चाहिये, जिसका घोड़ा अच्छा है, तांगा साफ़ सुथरा है, जिसका तांगे वाला गाली बकने वाला नहीं किन्तु प्रेम से मुसाफ़िरों से (और अपने घोड़े से भी) व्यवहार करने वाला हो इत्यादि। ऐसा करने से भी तांगे वालों में स्पर्धा होगी जिसका फल होगा कि तांगे वाले अपने घोड़ों को खिलायेंगे पिलायेंगे, तांगे को साफ सुथरा रखेंगे, उन्हें और अपने आप को शुद्ध रखेंगे। क्यों कि जो ऐसा करेगा उसी का तांगा अधिक पसन्द किया जायेगा, उसे काम मिलेगा। पहले तरह की स्पर्धा कराने में और इस तरह की स्पर्धा कराने में कितना फ़र्क है! पहले तरह की स्पर्धा से तो यह प्रवृत्ति होती है कि वे काम पाने के लिये अपनी कीमत घटाना चाहते हैं, उससे घोड़े को भी कम खिलाते हैं, अन्य आवश्यक बातों की तरफ़ ध्यान नहीं देते। इस प्रकार तांगे वालों का व्यवसाय सामूहिक तौर पर गुण में हीनतर होता जाता है। दूसरी तरह की स्पर्धा से तांगे वालों का व्यवसाय गुण में अधिकाधिक उत्कृष्ट हो यह प्रवृत्ति होती है। दोनों हालतों में मैंने काम तो एक ही तांगे वाले को दिया, दोनों हालतों में मेरी दृष्टि से बाकी सब बेकार रहे। अतः बेकारी को दूर करने की दृष्टि से दोनों एक समान हैं। यह नहीं कि कम पैसे देकर मैंने बेकारी ज़्यादा दूर कर दी (कम ही दूर की) परन्तु उनके श्रम का मूल्य पूरा देने से मैंने उनमें यह प्रवृत्ति भी डाली कि श्रम की पूरी कीमत देनी चाहिये तो वह तांगे वाला भी घास बेचने वाले से या बढ़ई से जो श्रम खरीदेगा उसकी भी वह पूरी कीमत देना ठीक समझेगा। इस तरह से समाज में एक स्वास्थ्यकर प्रवृत्ति की लहर चलेगी। सारी व्यवस्था सुधरेगी। अतः चाहिये यह कि प्रत्येक श्रम का न्याययुक्त मूल्य निश्चित होना चाहिये, और उससे अधिक या कम कराने में कोई स्पर्धा नहीं होनी चाहिये। कम कराने में नहीं तो अधिक कराने में भी नहीं। यदि हरद्वार स्टेशन से गुरुकुल तक तांगे का मूल्य ।≈) आना है तो तांगे वालों को भी अधिक सवारियां देख कर ॥।), १) नहीं मांगना चाहिये। अपना भाव चढ़ाना नहीं चाहिये। और वे अब बहुत करके अपना भाव बढ़ाते इसी लिये हैं चूंकि हम उन्हें बहुत बार कम करने को विवश करते हैं। दोनों तरफ से एक प्रकार के श्रम का मूल्य तो निश्चित होना चाहिये, व्यर्थ की बकवाद और समय गंवाना भी बन्द होना चाहिये। पर काम उसे मिलना चाहिये, जो कार्य को अच्छी तरह करता हो। तांगे वाले को भी अच्छी सवारी को ही बिठाने का अधिकार है, वह उसे बिठाये जिसे वह तांगे को न खराब करने वाला, पैसे ठीक तरह देने वाला या अच्छा व्यवहार करने वाला देखे। पर उसे कीमत नहीं बढ़ानी चाहिये। कीमत निश्चित होनी चाहिये। हम कलई का ठेका उसी आदमी को दें जो उत्तम चूना करने, जो कलई एक बराबर खूबसूरती से कराये और अपने मज़दूरों को ठीक पैसे देता हो। पर हमें कलई कराने का न्यायोचित जो निश्चित दाम है वह उसे (या जिसे हम चुनें ऐसे हरेक कलई करने वाले को) देने को सदा उद्यत होना चाहिये। ऐसा करने से समाज की सामूहिक सम्पत्ति बढ़ती है, हरएक श्रमी अपना श्रम अधिक से अधिक उत्तम प्रकार से करने को प्रवृत्त होता है। अतएव अन्त में प्रत्येक व्यक्ति को ही इस तरह लाभ पहुंचता है। मुझे समझना चाहिये कि मुझे चाहे ठीक भाव के मुताबिक तांगे के ।) की जगह ।≈) देने पड़ें पर असल में अन्ततः उस न्याय की लहर से मुझे भी आर्थिक दृष्टि से ही लाभ होगा, हानि नहीं।

ऐसी बातें हैं जो हमें समझनी चाहियें। और जो सच्चा अर्थशास्त्र है वह हमें ऐसी ही बातें सिखाता है जिनकी तरफ़ ऊपर से हमारा ध्यान नहीं जाता और जिनके न होने से सामाजिक सम्पत्ति का नाश होता है और अन्त में हमें हानि उठानी पड़ती है। तो असली स्पर्धा क्या है, वस्तुओं के मूल्य का निश्चय न्यायानुसार कैसे होना चाहिये, और वही बाज़ार भाव होना चाहिये, कोई चीज़ मंहगी क्यों है सस्ती क्यों है उसके कारण को जब कभी मंहगी वस्तु भी लेना हमारा कर्तव्य होता है—इत्यादि बातें हैं जिन्हें हमें अर्थशास्त्र द्वारा सीखनी चाहियें। इन्हें हम जब समझेंगे तभी हम धन का सदुपयोग कर सकेंगे। यह कह कर धन के सदुपयोग का प्रकरण समाप्त करता हूं।

(पृ० ३ का शेष)
उन विलीन गुणों का उद्घाटन करने लगती है जो गुण साधारणतया अदृश्य तथा अप्रत्यक्ष होने के कारण दिव्य गुण कहाते हैं। चूंकि पदार्थों के दिव्य गुणों का—यह प्रक्रिया प्रकाशन कर देती है अतः इसे दिव्यी करण की प्रक्रिया कहते हैं।

पदार्थों के सुषुप्त वा विलीन गुण संघर्षण द्वारा जागृत अथवा प्रगट हो जाते हैं इस बात में किसे सन्देह हो सकता है। क्या शीशा रेशम से रगड़ खाकर बिजली नहीं उगलने लगता !

क्या बांस, बांस से टकरा कर वन म आग लगाने का काम नहीं कर जाता ? क्या बुझी बुझाई सी आग सुलगाई जाने पर पुनः भड़क नहीं उठती ! क्या लकड़ी से छेड़ा गया सांप फुंकार नहीं मारने लगता ? क्या जीवन संग्राम में विपत्तियों की रगड़ खाकर मनुष्यों में दिव्य गुणों का उदय नहीं हो जाता ? महाकवि कालिदास लिखते हैं:—

"ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निः, विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः॥"

इस प्रकार, विभाजन तथा सघर्षण की मिश्रण भूत इस दिव्यीकरण की प्रक्रिया की सहायता से धीर हनीमैन चिकित्सा विज्ञान के उस उन्नतम शिखर पर जा पहुँचा जहां से वह हामियोपैथी के उस सुधामय प्रवाह को प्रवाहित करने में समर्थ हो गया जिसमें स्नान करने के पश्चात् प्राणिमात्र अपने त्रिविधतापों से पूर्णतया विमुक्त हो परम शान्ति लाभ करने लगे।

"सनों" के नियम के अनुसार औषधियों को पुटों में (Potencies में) प्रयोग में लाने पर, अब, हनीमैन को चिकित्सा के कार्य्य में आशातीत सफलता प्राप्त होने लगी। इस सफलता से अधिकाधिक प्रोत्साहित होकर, वह इस सूक्ष्मशक्तियों के रूप में परिवर्तित हुयी २ औषधियों के रोगोपशमन के कार्य्य में पूर्ण समर्थ होने के 'कारण' का अनुसन्धान करने में दत्तचित्त हो गया।

प्राचीन परिपाटी के विचारों के अनुसार वह भी हमारे इस शरीर का—इस मूर्त्त शरीर को ही—हमारा सब कुछ मानता चला आ रहा था। उसे अभी तक यह परिज्ञान न था कि हमारे इस मूर्त्त भौतिक शरीर में कोई अदृश्य सूक्ष्म शक्ति भी वास करती है। परन्तु जब उसने देखा कि सूक्ष्म शक्तियों के रूप में आयी औषधियां भी हमारे मूर्त्त शरीर पर लक्षण उत्पन्न करने में—उसे प्रभावित करने में—समर्थ हो रही हैं तो उसे हमारे शरीर के केवल मूर्त्तरूप होने में सन्देह उत्पन्न हो गया।

पाठकवृन्द ! इस सन्देह के कारण ही उसे उन दो सत्त्वों का और परिज्ञान प्राप्त हो गया जिन्होंने चिकित्सा जगत् में युगान्तर उपस्थित कर दिया। उसे पता चल गया कि हमारे स्थूल शरीर में अवश्य कोई सूक्ष्म शक्ति व्याप्त है जिसके ऊपर अधिकार करने पर ही उसकी सूक्ष्म शक्तियों के रूप में आयी औषधियां अपने लक्षण मूर्त्त शरीर पर अभिव्यक्त करने में समर्थ हो जाती हैं। इसी तर्कना के आधार पर उसे यह भी पता चल गया कि रोगोत्पादक पदार्थ अवश्य अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में होते हैं जो हमारे मूर्त्त शरीर के अन्दर व्याप्त अदृश्य सूक्ष्म आत्म शक्ति पर अधिकार करके अपने लक्षण उत्पन्न कर देते हैं तथा जिनका परिहार उसकी पुटों में आयी—अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में परिवर्तित हुयी २—औषधियां बड़ी आसानी से कर डालती हैं।

इस प्रकार Dynamization की प्रक्रिया के आविष्कार के कारण ही उसे हमारे मूर्त्त शरीर में एक अदृश्य सूक्ष्म आत्म शक्ति (Vital force) के अस्तित्व को, तथा रोगोत्पादक पदार्थों को भी अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के रूप में मानना आवश्यक होगया। इससे पूर्व हनीमैन भी रोगोत्पादक पदार्थों को मूर्त्त रूप में—बैक्टीरिया के रूप में मानता चला आता था परन्तु अब उसे उनके असली रूप का पता चल गया। इस विचार-परम्परा के कारण ही आज हनीमैन के अनुयायियों को मानना पड़ता है कि:-

"हम सूक्ष्म शक्ति हैं, सूक्ष्म शक्ति ही—
कर सकती हम पर अधिकार।
वह सूक्ष्म शक्ति के तार मारकर,
कर देता उसका संहार॥"

दिव्यी-करण की इस प्रक्रिया द्वारा हामियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली को पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुंचा देने के पश्चात् भी हनीमैन को चिकित्सा के कार्य्य में कुछ अड़चनें पड़ती ही रहीं। उसने देखा कि जो रोग-राक्षस उसकी दिव्य शक्तियों की मार से एकवार सर्वथा विलुप्त हो जाते थे वे कभी २ पुनः सिर उठा लेते थे। रोगों की इस आंख मिचौनी के खेल ने उसे बहुत ही अधिक परेशान किया। परन्तु वह धीर पुरुष इस विघ्न का विध्वंस करने के लिये भी प्राणपन से जुट गया।

१२ वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् उसे इस खेल के चोर का पता चल गया। उसने बताया कि संसार के प्रायः समस्त रोग, जो भिन्न २ नामों से पुकारे जाते हैं, Psora नामक सहस्रशीर्षा राक्षस के भिन्न २ रूप होते हैं तथा "Syphilis" और "Sycosis" नाम के उसके और दो भाई होते हैं। ये तीन रोग-राक्षस ही समस्त रोगों के मूल कारण (Fundamental Causes) हैं जिनसे भिन्न २ नामके रोग भिन्न २ रूपों में प्रगट होते रहते हैं। ये रोग-राक्षस कभी तो सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं। इनके इन दो अवस्थाओं में आने के कारण ही रोग-राक्षस आंख मिचौनी खेल खेलते दिखायी देने लगते हैं।

रोगों का इन दोनों अवस्थाओं में समूलोन्मूलन करने के लिये हनीमैन ने Antipsorics, Antisyphilitics तथा Antisycotic औषधियों का अनुसन्धान किया तथा उनके Provings (लक्षणसंग्रह) अपनी "Chronic Diseases" नामक पुस्तक में प्रकाशित कर दिये।

हनीमैन ने इस प्रकार हामियोपैथी के विकासोन्मुख सुधार को न केवल पूर्णिमा तक पहुँचाकर, अपितु उसे निष्कलङ्क बनाकर चिकित्सा जगत् के अन्तरिक्ष में प्रस्तुत कर दिया। तत्कालीन चिकित्सकों ने इस प्रभा-तरल ज्योति को उदित होता देखकर, प्रथम २, एकदम चकाचौंध हो जाने के कारण, किस प्रकार उससे मुंह मोड़ लिया तथा कुछ काल पश्चात् उसे सुधाकर की सुधास्यन्दिनी चन्द्रिका के समान सकल लोक कल्याणकारिणी चिकित्सा प्रणाली समझ कर अपना लिया इसका वर्णन अगले अध्याय में होगा।

प्रेम

[अनु०— श्री विद्यालंकार]

(गतांक से आगे)

विचारने पर प्रतीत होगा, कि आत्म समर्पण और आत्म सम्मान ये दोनों ही गुण आवश्यक हैं। और यदि इनको अपने समयानुसार अति (extreme) पर पहुँचा दिया जाये तो बहुत उपयोगी होंगे। प्रेम की अवस्था में पूर्ण समर्पण उपयोगी है, यदि ऐसा संभव हो सके तो फिर सन्देह और निराशा निरवकाश हो जायेंगे। किन्तु यदि एक प्रेमी की उपेक्षा हो रही है, और वह उसको अनुभव करता है, तथा अवांछनीय समझता है, तब उसे आत्म समर्पण पर कायम न रहना चाहिये। उसको पूर्ण आत्म सम्मानी बन जाना चाहिये। उस मनस्विनियों के आदर्श को 'त्यजत्यसूञ्शर्मचमर्गजनो वरं, त्यजत्वत न त्वेकमयाचितव्रतम्' ध्यान में रखकर प्रेमपात्र से किसी भी प्रकार की प्रार्थना न करनी चाहिये। परन्तु इस स्थिति को लाना बड़ा कठिन है। प्रेम एक ऐसा बन्धन है कि इसको छोड़ना चाहते हुए भी नहीं छोड़ा जा सकता। मान को विचारते हुए भी, प्रेमी अपने प्रेमपात्र को दर्शन, उससे याचना कर ही देता है। परन्तु दृढ़ निश्चयी क्या नहीं कर सकता। उसके लिये कुछ असंभव नहीं।

प्रेम के लाभ —

१. यह प्रेम और मित्रता यद्यपि प्रायः दुःखान्त होते हैं, किन्तु फिर भी इनका उपयोग और लाभ है। ईश्वर की सृष्टि में किसी भी वस्तु को सर्वथा अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहते हुए बहुतों के सम्पर्क में आता है। इनके विषय में उसकी कुछ सम्मतियां भी बन जाती हैं। इन सम्मतियों को वह खुले आम प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि कइयों के विषय में उसकी बुरी सम्मतियां होती हैं। और यदि वह इन्हें प्रकट करे तो उसको डर होता है कि दूसरे भी उसके विषय में ऐसी ही सम्मतियां प्रकट करेंगे। इसके अतिरिक्त उसकी ऐसी अनेक घटनाएं और चरित्र होते हैं, जिनसे वह स्वयं शर्माता है। पर साथही मनुष्यकी यह भी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी बातें किसी को बताना चाहता है। इससे वह अनुभव करता है कि उसका कुछ बोझ हलका होगया। इसलिये उसको एक साथी या प्रेमी की आवश्यकता होती है, (प्रेमी को ही साथी के रूप में परिवर्तित कर लिया जाये तो बहुत अच्छा), जिसको वह अपने मन की सब बातें कह सके। किसी ऐरे गैरे को भी ये बातें नहीं बताई जा सकतीं क्योंकि उनपर उसे अविश्वास होता है। इस प्रकार का साथी प्रेमी ही हो सकता है; क्योंकि इस पर उसे विश्वास भी होता है, और इसके सामने अपना हृदय भी खोल सकता है। यदि यह साथी केवल साथी हो, किसी समय प्रेमी न रहा हो तो उसके सामने बिल्कुल स्पष्ट वक्ता होना कठिन और प्रायः असम्भव होता है। दूसरे जब हमसे कोई अपना भेद खोल देता है तो हम उससे अपना भेद नहीं छिपा सकते। और इस प्रकार दोनों प्रेमियों में यह क्रिया पारस्परिक हो जाती है, परिणामतः विश्वास भी बढ़ता जाता है।

२. मनुष्य में आकर्षण स्वाभाविक है। यदि उसका एक प्रेमी या मित्र हो तो, उसको जगह २ भटकने का कम अवसर होता है। यही कारण है कि विकास करते हुए मनुष्य समाज ने विवाह बन्धन कायम कर लिया है। इस विवाह के कारण वह जीवन भर एक के साथ बन्धा रहता है। इसका एक लाभ यह भी है कि उसका एक चिरस्थायी मित्र बन जाता है। पुरानी प्रथा (जब विवाह प्रचलित नहीं हुआ था) यद्यपि मनुष्य का आकर्षण या संभोगेच्छा पूरी हो जाती थी, किन्तु उसका कोई सुख दुःख का साथी न रहता था।

३. मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः वह किसी का बनकर रहना चाहता है। प्रेमी या मित्र विहीन अवसरों में वह अपने को असहाय और अकेला अनुभव करता है। वह सोचता है यदि मुझ पर कोई मुसीबत आये तो कोई भी पूछने वाला नहीं। दुनिया तो पूछती नहीं, कोई मित्र होता तो वही मुझे चाहता होता; और यही कारण है, दो प्रेमी किसी की भी परवाह नहीं करते। उस समय वे एक दूसरे को अपने लिये पर्याप्त समझते हैं। एक और एक ग्यारह होते हैं, दो नहीं; यह प्रसिद्ध ही है। रात को या अंधेरे में भी हम अकेले जाते हुए डरते हैं, किन्तु दो होने ही सब डर गायब हो जाता है। अर्थात् अकेलेपन को दूर करने के लिये एक भी काफी है।

अभी तक प्रेमके उपयोग देखे। किन्तु कोई भी वस्तु एक पाक्षिक ही नहीं होती। इसका भी एक बड़ा अवगुण है। प्यार का अत्याचार प्रसिद्ध ही है। इस अत्याचार की खूबी यह है, कि इसका विरोध भी नहीं किया जा सकता। यथा-प्रेमी किसी विषय में उन्नति करने के लिये बाहिर जाना चाहता है, किन्तु प्रेमपात्र उसे अपने से अलग नहीं होने देना चाहता। इस अवस्था में प्रेमी लाचार हो जाता है। यह अत्याचार बन्दूक और तोप के अत्याचारों से भी बढ़कर है। उनका विरोध और प्रतिकार किया जा सकता है किन्तु इसका विरोध कल्पनातीत है। यदि यह विरोध कभी किया जा सकता है, तो तभी जब कि वास्तव में प्रेम समाप्त हो चुका होता है।

प्रेममय अवस्था की कुछ अजीब स्थितियां—

१. कई बार एक को दो चाहते हैं। परिणाम यह कि उनमें लड़ाई हो जाती है। इस बात के दृष्टान्त के तौर पर सुन्द उपसुन्द की कहानी मशहूर ही है।

२. कई बार एक दो को चाहते हैं। इस समय यदि उन प्रेमपात्रों को पता लग जाय तो वे दोनों उस पर अविश्वास करने लगते हैं। जो एक से दो का हुआ वह किसी का न रहा। (No one can serve two masters) इस लिये इस स्थिति को टालने के लिये वह दोनों प्रेमपात्रों को धोखा देता है, झूठ बोलता है, बहुत सी बातें छिपाता है।

३ प्रायः एक व्यक्ति अमुक और वह किसी दूसरे को चाहता है। भर्तृहरि ने इस सत्य को निम्न शब्दों में रक्खा है.— "यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,"

४. बहुधा प्रेमपात्र के प्रेमपात्र से प्रेम हो जाता है। इस समय वह दो को चाहने लगता है। यह भी एक अजीब समस्या है। इस को हल करना सहल नहीं।

५. दो नये प्रेमियों में से यदि एक के प्रेमपात्र को दूसरा चाहने लगे, तो वह अपने पुराने प्रेमपात्र से ईर्ष्या करने लगता है, क्योंकि वह उसके रास्ते में बाधक है।

इसी प्रकार और अनेक स्थितियां होती हैं। ये बड़ी अजीब पहेलियां हैं। इनका हल असंभव ही समझना चाहिये। क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से प्रेम चला आ रहा है, और उनकी समस्याएं भी विद्यमान हैं, पर उनका कोई हल नहीं हो सका। यदि संभव होता तो हो जाता।

प्रेम का क्षेत्र बड़ा विलक्षण है। इसे वही मनुष्य अनुभव करता है जिस पर बीत रही होती है। भुक्त भोगी भी दूसरे के दुःख का अनुभव नहीं कर सकता। मान लीजिये दो प्रेमी हैं। उनमें से एक अधिक आकृष्ट है। दूसरा एक अन्य को भी चाहता है। इस समय आकृष्ट व्यक्ति की हालत बहुत ही दयनीय होती है। किन्तु समय बदलता है। और अब वह व्यक्ति अधिक आकृष्ट हो जाता है, जो पहिले आकर्षण का विषय था। और जो पहिले आकृष्ट था, एक दूसरे को चाहता है। इस अवस्था में यद्यपि पहिला भुक्त भोगी है, फिर भी वह दूसरे के कष्ट की कल्पना नहीं कर सकता। इस समय दोनों के सिद्धान्त बदल जाते हैं। दोनों यह अनुभव करते हैं कि हम गल्ती पर थे। किन्तु वास्तव में बात यह है कि दोनों की प्रेम की मात्रा बदल जाती है।

इस प्रकार यही परिणाम है, कि प्रेम का अन्त बहुधा दुःख में है, पर फिर भी लोग इसके पीछे भागे चले जाते हैं। एक प्रेमपात्र से निराश होने के दुःख का अनुभव कर के भी वे दूसरे को अपना प्रेमपात्र बना लेते हैं, और फिर उसी दुःख के चक्र में पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि इसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। ————

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह कुलभूमि में श्रद्धानन्द सप्ताह तैयारी के साथ मनाया गया। यद्यपि इन दिनों गगन-मण्डल मेघों से आच्छादित रहा तथापि क्रीड़ा मन्त्री जी के उत्साह के कारण खेलों का प्रोग्राम सुचारु रूप से संपन्न हुआ। ता० २३ दिसम्बर को बड़ी यज्ञशाला में सबका सम्मिलित वृहद्-यज्ञ हुआ और तत्पश्चात् सभा हुई जिसमें मान्य उपाध्यायों के सारगर्भित व्याख्यान हुए।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में नये बालकों का प्रवेश

नये बालकों का निर्वाचन ईस्टर की छुट्टियों में गुरुकुल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर होगा। जो सज्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के इच्छुक हैं उन्हें शीघ्र ही प्रार्थना पत्र भेजकर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

नियमावली तथा प्रवेशफार्म 'कार्यालय' गुरुकुलकांगड़ी (जि० सहारनपुर) से मंगवाइये।

सत्यव्रत

मुख्याधिष्ठाता (गुरुकुल कांगड़ी)

गुरुकुल चित्तौड़गढ़

६ दिस० को प्रातःकाल स्वर्गीय प्रो० रामदेव जी (भूतपूर्व आचार्य गुरुकुल कांगड़ी) का स्मृति-दिवस गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में मनाया गया। गुरुकुल के प्रमुख प्रोफेसरों के श्री आचार्य के जीवन पर व्याख्यान हुए तथा ब्रह्मचारियों को उपदेश दिया कि वे अपने जीवन में उनके सद्गुणों को ग्रहण करनेका प्रयत्न करें। कार्यवाही से पूर्व उपस्थित सभ्यों ने दो मिनट के लिये मौन धारण किया तथा ईश्वर से प्रार्थना की कि परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। गुरुकुल का कार्य भी समस्त दिन के लिये बन्द रहा।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता श्री स्वामी व्रतानन्द जी की ४८वीं वर्ष-गांठ गुरुकुल चित्तौड़-गढ़ में बड़े समारोह पूर्वक मनाई गई। गुरुकुल का समस्त कार्य बन्द रहा ब्रह्मचारियों ने प्राणाभ्यास द्वारा श्री स्वामी जी के गुणों को अपने जीवन में बढ़ाने का निश्चय किया।

गुरुकुल वैद्यनाथधाम के ब्रह्मचारियों की बहादुरी

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम के निकटवर्ती जंगल में एक खूंख्वार बघेला आ गया था, जो आसपास के ग्रामीणों के पशुओं पर बुरी तरह आक्रमण करता था। ग्रामीण जनता उससे भयभीत हो रही थी। ८ दिसम्बर रविवार को प्रातः जबकि ब्रह्मचारी शौचार्थ बाहर निकले तो उस भयानक हिंस्र जन्तु की आवाज़ उन्होंने सुनी। ब्रह्मचारियों ने उसका पीछा किया। पहले तो वह गुर्राया किन्तु भीड़ देखकर जंगल से भाग निकला। ब्रह्मचारी लाठी और हाकी से बराबर उसका पीछा करते रहे। अन्त में दो मील पीछा करने के बाद ब्र० विश्वामित्र ने हाकी से ही उसे मार डाला। कुलभूमि में उसे देखने के लिए ग्रामीण जनता की बेहद भीड़ थी। इसके मारे-जाने से लोगों में बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वास्थ्य समाचार

रामकुमार ३ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, धर्मेन्द्र ५ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, सत्यानन्द ५ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, ओमप्रकाश १ श्रेणी ज्वर, युधिष्ठिर २ श्रेणी चोट, दिनेशकुमार २ श्रेणी चोट, सोमदत्त २ श्रेणी प्रतिश्याय, रमेशचन्द्र श्रेणी १२ चोट।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुये थे, अब सब स्वस्थ हैं।

कोषाध्यक्ष श्री दीवानचन्द जी का स्वर्गवास।

गत २० दिसम्बर को रात्रि के २ बजे गुरुकुल के कोषाध्यक्ष श्री ला० दीवानचन्द जी का पाण्डु रोग से अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इस शोकमें महाविद्यालय में अगले दिन होने वाली श्रद्धानन्द सप्ताह की सब खेलों का प्रोग्राम स्थगित कर दिया गया।

स्व० ला० दीवानचन्द जी अपने वैयक्तिक गुणों के अतिरिक्त जिस लगन, ईमानदारी और दक्षता के साथ गत ११ वर्ष से गुरुकुल की सेवा कर रहे थे उससे प्रत्येक कुलवासी परिचित है। उनके दिवंगत होने से निःसन्देह गुरुकुल की क्षति हुई है। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शांति तथा शोक-संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें। ————

चौधरी दुलासंराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २७ पौष १९९७; १० जनवरी १९४१ [संख्या ३८

गौ पालन की महिमा

(लेखक डा० रामस्वरूप जी रिटायर्ड पशु-चिकित्सक)

(३)

गौ से लाभ

१. ऋषि दयानन्द ने एक गाय के पालने से असंख्य प्राणियों की रक्षा को इस प्रकार समझाया है कि यदि एक गाय औसतन अपने ब्यात में ९९ मन दूध दे तो वह इतने दूध को औटा कर प्रति सेर १ छटांक चावल और १॥ छटांक बूरा डाल कर १९८० मनुष्यों को एक तृप्त कर सकती है। गाय कम से कम ८ बार तथा अधिक से अधिक १८ बार ब्याती है। यदि इसका मध्य भाग १३ मान लिया जाये तो २५७४० मनुष्यों को एक बार अपने जन्म भर के दूध से तृप्त कर सकती है। इस गाय की एक पीढ़ी में ६ बछिया तथा ७ बछड़े अगर मान लिए जांय और उनमें से एक के मरने पर उन बछियाओं (गौओं) के दूध मात्र से १५४४४० मनुष्यों का पालन हो सकता है अब ६ बैल रहे, एक जोड़ी बैल से दोनों फसलों का २०० मन अन्न उत्पन्न हो जाये तो ३ जोड़ी बैलों से ६०० मन अन्न उत्पन्न हो सकता है।। और उनके काम का मध्यभाग ८ वर्ष तक है इस गणना के अनुसार एक गाय के बछड़ों से ४८०० मन उत्पन्न हो सकता है। यदि प्रत्येक मनुष्य का ३ पाव अन्न प्रतिदिन का माना जाय तो २५६००० मनुष्यों का एक बार का भोजन होता है। दूध तथा अन्न को मिला कर देखने से यह निश्चय होता है कि ४१०४४० मनुष्यों का एक बार का भोजन एक गाय से हो सकता है। अब यदि ६ गौओं की पीढ़ी दर पीढ़ी का हिसाब देखा जाये तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है। तथा उसके मांस से अनुमानतः केवल ८० मांसाहारी एक बार तृप्त हो सकते हैं। देखो तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार कर असंख्य मनुष्यों की हानि करना कितना महापाप है। (गो करुणानिधि)

२ एक सज्जन मुसलमान भाई ने लिखा है कि एक गाय की प्राण रक्षा से [१ वर्ष में जब कि १००० मुरब्बा मील रकबा वाले क्षेत्र में जहां पर कि १००००० मनुष्य बसते हैं तथा जिसमें ५७ या ५८ गौएं प्रति दिन मारी जाती हैं] उनकी सन्तान के दूध, अन्न व पशुओं का मूल्य (१८ वर्ष का) इतना होगा कि प्रति मनुष्य की मासिक आय ७८॥ आने होगी। (पूरे विवरण के लिये देखिए पत्र "क्षत्रिय" मेरठ जुलाई व अगस्त सन् १९१४)

"एग्रीकलचर शाही कमीशन" की रिपोर्ट पैराग्राफ १५४ में कहा है कि इनका प्रथम कार्य हल व गाड़ी जोतना है। हिन्दुओं के यहां धार्मिक दृष्टि से जो गौ का महत्व माना गया है वह प्रशंसा के योग्य है। भारत की आधी जनता गोवध को बुरा मानती है। इससे सिद्ध होता है कि यह देश गौ तथा बैल को बहुत ही आदर की दृष्टि से देखता है। बैल के बिना न तो खेती ही हो सकती है और न ही अन्न मंडियों में पहुँचाया जा सकता है। यह उदाहरण सारे भारत में लागू हो सकता है। क्यों कि अब भी ऊंटों, गधों, घोड़ों तथा मशीनों से बहुत ही कम काम लिया जाता है।

प्रायः योरोप में खेती का कार्य्य घोड़ों तथा मशीनों द्वारा और मिस्र में गधों द्वारा लिया जाता है परन्तु फिर भी उन्हें दूध मक्खन व खाद प्राप्त करने के लिए गौओं को ही पालना पड़ता है।

५ गोजाति की उन्नति किस प्रकार हो ?

मेरी सम्मति में यदि निम्न बातों का ख्याल रखा जावे तो हम किसी अंश में गोवंश की वृद्धि कर सकते हैं —

१. प्रत्येक भारतीय को विशेष कर आर्य्य मात्र को गौ के ही घी, दूध, दही आदि का प्रयोग करना चाहिये। अतः प्रत्येक पुरुष को अपनी एक गाय रखनी आवश्यक है। यदि किसी कारण वह खरीदने में असमर्थ हो तो किसी प्रामाणिक गोशाला या गोपालक से दूध खरीद कर प्रयोग करे।

२ भैंसों का घी दूध केवल श्रमी पुरुषों (यथा कृषक मजदूर) के लिए आवश्यक है रोगी, बालक, विद्यार्थी या दिमाग़ी कार्य्य करने वालों के लिए यह दूध विशेष उपयोगी नहीं।

३. वनस्पति घी का प्रयोग सर्वथा त्याज्य है। इसकी अपेक्षा सरसों या तिल का तेल कहीं ज्यादा अच्छा है।

प्रत्येक कृषक को जो १०० बीघे भूमि बोता है कम से कम दो गौएं अवश्य रखनी चाहिए। इसी हिसाब से अधिक भूमि वाला अधिक गौएं पालें।

५. म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, देहाती पञ्चायत आदि के लिये आवश्यक होना चाहिए कि वे दूध, मक्खन, घी के व्यापार को चलाने के लिए कम्पनियां खोल कर उन्हें सुविधाएं दें।

६ चमड़े तथा हड्डियों के कारखाने भारत में ही खोले जाने चाहियें।

७. जंगल, नहर, व रेलवे के अधिकारियों की तरफ से चारे के लिये सुविधाएं मिलनी चाहिएं।

८ जिन ग्रामों में प्राचीन समय से गोचर भूमियां विद्यमान हैं वहां "कैटल ब्रीडिंग इम्प्रूवमैंट सोसायटी" या 'को आपरेटिव सोसायटी' जैसी संस्था की ओर से गोशालाएँ खुलनी चाहिएं। (बमूजिब कवाइद ऐक्ट नं० सन १९१२)।

९. वर्तमान गोशालाओं को दो भागों में बांट दें। प्रथम में अच्छी दुधार गौएं वा बछड़े हों तथा दूसरे में बेकार गौओं को रखें।

१० मेला, मण्डियों तथा कांजीगृहों की आमदनी का कुछ भाग गौओं की वृद्धि में व्यय किया जाय।

११. शिक्षित पुरुष जो बेकार हों उन्हें गोशाला की क्रियात्मक शिक्षा देने के अनन्तर उनको अच्छी चरागाहों पर गोशालाएं खुलवा कर नियुक्त करें। ऐसे स्थान सरकार अपने वनों तथा ताल्लुकेदारों से उचित उपायों द्वारा प्राप्त करके ले। पशु चिकित्सकों तथा कृषि विशेषज्ञों द्वारा इन स्थानों का भली प्रकार निरीक्षण कराना सरकार का कर्तव्य है।

१२ प्रत्येक जिले में गौओं की वृद्धि, तथा उनकी उन्नति के लिए कमेटियां बनाई जावें।

१३. स्कूलों तथा कालिजों में विद्यार्थियों को शुद्ध दूध का सेवन अवश्य कराया जावे गोपालन के विषय में उनकी दिलचस्पी पैदा हो, ऐसा किया जाय।

१४. राजा, महाराजा, ज़मींदार, ताल्लुकेदार और धनी लोगों को चाहिए कि उचित उचित जगहों पर गोशालाएं (Dairy Forms) व्यापारिक आधार पर स्थापित करें।

होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली की सर्वोत्कृष्टता----

(ले० श्री डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार बिजनौर)

१.

जब नागरिकों से लेकर ग्रामीण जनता तक, शिक्षित समुदाय से लेकर बे पढ़े लिखों तक तथा राजा से लेकर रङ्क तक इस नवीन चिकित्सा प्रणाली के श्रेष्ठ गुणों से पूर्णतया परिचित हो जायगें तो सम्भव नहीं कि इसका समुचित आदर व सत्कार न हो। जिस प्रकार अग्नि परीक्षा में से बिना आंच आये पार हो जाने के कारण श्री सीता जी आज भी सती-शिरोमणि मानी जाती हैं तथा भविष्य में भी मानी जाती रहेगी उसी प्रकार अगले सात अध्यायों में की गई विवेचनाग्नि-परीक्षा में से गुज़रने पर भी जब यह चिकित्सा-प्रणाली चमचमाते ही निकलेगी तब इसे सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा-प्रणाली मानने से कौन सहृदय पुरुष विमुख हो सकेगा! सम्भव है तब भी कोई विरला पुरुष इसे कलङ्क लगाने का साहस कर सके !!!

परन्तु खरे सोने को कसौटी पर चढ़ाने से क्या डर! उसका तो इस परख से उपकार ही होता है। इसी प्रकार इस दिव्य चिकित्सा प्रणाली को तर्क की कसौटी पर कसने से इसकी सर्वोत्कृष्टता ही सिद्ध होगी। अपि च, मणि जबतक शाण पर नहीं चढ़ती तबतक वह राजाओं के मुकुट में स्थान पाने की अधिकारणी भी नहीं हो पाती।

होमियोपैथी के गुणों का—उसकी सूक्ष्म विशेषताओं का—प्रकाशन तथा प्रदर्शन करना इसलिये भी परमावश्यक है कि जिस वस्तु के गुणों का प्रदर्शन नहीं हो पाता वह दिव्य-गुणयुक्त होने पर भी प्रायः तिरस्कार का उपहार ही पाती रहती है। इस विषय में पञ्चतन्त्रकार कहते हैं:—

"अप्रगटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते
निवसन्नन्तर्दारुणि लंघ्यो वह्निः न तु ज्वलितः॥

जिस प्रकार लकड़ी के अन्दर २ सुलगती हुई आग को कोई भी लांघ सकता है उसी प्रकार जिस वस्तु की शक्ति का प्रदर्शन नहीं हो पाता उसका तिरस्कार करना सब के लिये हंसी खेल हो जाता है। परन्तु जिस समय वह लाल लाल लपटों के जाल से व्योम मण्डल में मंडलाती जलती आग के समान, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने में समर्थ हो जाती है तब शक्तिशाली से शक्तिशाली प्राणी भी उसका तिरस्कार करने का साहस नहीं कर सकता।

होमियोपैथी को स्वतन्त्ररूप से भारत की सेवा करते हुवे लगभग एक शताब्दी व्यतीत हो चुकी है परन्तु भारत सरकार ने अभीतक इसे नहीं अपनाया है। यद्यपि इसके अनेक कारण हो सकते हैं तथापि हमें तो उन में से मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि भारत सरकार को होमियोपैथी के एक योग्य सेविका होने में अभीतक सन्देह बना हुआ है। वह समझती है कि होमियोपैथी में उन गुणों का अभाव सा है जोकि किसी एक योग्य सेवक सेविका में पाये जाने परमावश्यक हैं। किसी सेवक कहलाने वाले योग्य व्यक्ति में किन किन गुणों का होना परमावश्यक है इस विषय को निम्न श्लोक में कितनी भली प्रकार दर्शाया गया है।

"अप्रज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन किम्
प्रज्ञा-विक्रम शालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्ति हीनात्फलम्
प्रज्ञा-विक्रम-भक्तयः समुदिताः येषांगुणाः भूतये
ते भृत्याःनृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च॥"

इसके अनुसार किसी सच्चे तथा योग्य सेवक

कहलाने के अधिकारी व्यक्ति में भक्ति, शक्ति तथा प्रज्ञा इन तीनों गुणों का पाया जाना अनिवार्य्य है। यदि होमियोपैथी भारत सरकार की एक सम्मानित सेविका बनना चाहती है तो उसके लिये भी आवश्यक है कि वह अपने में इन तीनों गुणों की विद्यमानता पूर्णतया सिद्ध करदे।

होमियोपैथी की शक्ति का प्रदर्शन तो केवल एक इसी बात से भली प्रकार हो सकता है कि बहुत से प्रसिद्ध २ एलोपैथी के विद्वान् भी अपनी प्रेयसी का परित्याग करके, इस शक्तिशालिनी चिकित्सा-प्रणाली की शरण में आ चुके हैं तथा आते चले जा रहे हैं क्या, आये दिन, एलोपैथी द्वारा असाध्य कहकर छोड़ दिये गये रोगियों की भी सफलता-पूर्वक चिकित्सा कर दिखाने पर भी होमियोपैथी की उत्कृष्ट शक्ति का प्रदर्शन नहीं हो पाता। ? क्या एलोपैथी की भयावह तथा परम कष्ट दायिनी केवल शल्य चिकित्सा द्वारा ही साध्य उद्घोषित रोगियों को अपनी मीठी २ गोलियां खिलाकर हंसता खेलता कर देने वाली चिकित्सा-प्रणाली शक्ति हीन हो सकती है?

भक्त वह कहाता है जो अपने स्वामी पर किसी प्रकार की आपत्ति आने ही न दे। क्या होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली केवल अपने "समों" के नियम के आधार पर ही प्राणियों का रोगों के आक्रमण से परित्राण करने में पूर्ण समर्थ नहीं है? क्या एलोपैथी जैसी शक्तिशालिनी चिकित्सा-प्रणाली को भी परित्राण (Prophylaxis) के कार्य के लिये जिस चिकित्सा-प्रणाली के नियम का आश्रय लेना पड़ा है वह किसी भी चिकित्सा-प्रणाली से कम शक्त तथा भक्त हो सकती है? क्या एलोपैथी का Vaccination इत्यादि का परित्राण का काय अपने "विषयों" के सिद्धान्त के अनुसार सम्पन्न होता है?

होमियोपैथी की "विज्ञान शीलता" का प्रदर्शन भी इसी तथ्य से हो सकता है कि यह चिकित्सा-प्रणाली, चिकित्सा (Treatment) तथा परित्राण (Prophylaxis) का समस्त कार्य अपने एकमात्र "समों" के नियम के आधार पर ही निभाने में पूर्णतया समर्थ है। उसे आयुः विज्ञान विषयक किसी भी कार्य के लिये परमुखापेक्षी नहीं होना पड़ता। जो चिकित्सा-प्रणाली केवल अपने नियम के अनुसार ही आयुः विज्ञान विषयक समस्त कार्य स्वतन्त्र रूपेण निभा सकती है उसकी "विज्ञान शीलता" तथा बुद्धिमत्ता में क्यों सन्देह होना चाहिये? क्या विज्ञान की प्रस्तरमयी दृढ़ आधार शिला पर स्थित हुवे बिना होमियोपैथी यह सब कुछ कर दिखाने में समर्थ हो सकती है?

इसप्रकार होमियोपैथी की शक्ति, भक्ति तथा विज्ञान शीलता का संक्षेप में दिग्दर्शन करा देने पर यद्यपि यह स्वीकार किया जा सकता है कि होमियोपैथी में भारत की सेविका बनने की योग्यता विद्यमान है तथापि इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह प्रणाली अन्य प्रणालियों से-विशेषतया एलोपैथी से-उत्कृष्ट भी है।

होमियोपैथी की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जहां इसकी विशेषताओं का विस्तार से विवेचन किया जाय वहां अन्य चिकित्सा प्रणालियों के साथ २ उसकी तुलना भी की जाय।

यदि हमें मोर और मराल (हंस) में से कौनसा पक्षी उत्कृष्ट है इसका निर्णय करना हो तो हमारे लिये आवश्यक हो जाता है कि हम इन दोनों पक्षियों के न केवल बाह्य गुणों का निरीक्षण करके छोड़ दें अपितु इनके आन्तरिक गुणों का भी पूर्णतया विवेचन करें। देखिये: निरीक्षण मात्र से मोर कितना सुन्दर तथा आकर्षक लगता है। वह, जब अपने इन्द्रधनुष से रङ्ग-बिरङ्गे पंखों का पंखा खड़ा करके नाचता हुआ सुरीली तान अलापता है, तब तो यही प्रतीत होता है कि संसार भर में उससे उत्कृष्ट पक्षी हो ही नहीं सकता! अब जरा उसके आन्तरिक गुणों की ओर भी दृष्टिपात कीजिये। देखिये कि उसका भोजन भजन क्या है; उसका यह सुन्दर शरीर कैसे २ विषैले पदार्थों के पाचन का परिणाम है! तभी तो तुलसीदास जी ने असन्तों का वर्णन करते हुवे निम्न चौपाई लिखी है —

> बोलहिं बचन मधुर जिमि मोरा
> खाहिं महा अहि, हृदयकठोरा॥

क्या मोर के सुन्दर शरीर को देखकर उसकी इस करतूत का पता चल सकता है? इसी प्रकार, क्या हंस के सीधे सादे एक दम श्वेत शरीर को देखकर उसकी नीर-क्षीर-विवेकता का परिचय प्राप्त हो सकता है? क्या उसका यही प्रच्छन्न गुण उसे सन्तों का उपमान नहीं बना देता? क्या इस प्रसङ्ग में तुलसीदास जी का निम्न दोहा भुलाया जा सकता है?

> "जड़ चेतन, गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
> सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार॥

अब न केवल विभिन्न रूप रंग वाले अपितु समान वर्ण वाले पदार्थों की भी पूरी परख की जाती है तब उनके वास्तविक स्वरूप का पता चल ही जाता है। काक और कोयल यद्यपि दोनों कृष्ण वर्ण के होते हैं परन्तु कल-ध्वनि करने पर कोयल की पहिचान होने में कितनी देर लगती है।

इसी प्रकार भिन्न २ चिकित्सा प्रणालियों की सच्ची, वास्तविक तथा पक्षपात रहित गुण दोष-विवेचना करने पर यह निर्णय किया जा सकता है कि किसका संग्रह तथा किसका परित्याग किया जाय।

भारत में आज अनेक चिकित्सा प्रणालियां प्रचलित हैं। परन्तु उन में से कौन सी प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है इसकी परख करना क्या उतना भी आवश्यक नहीं है जितना कि आलुओं को ख़रीदने हुवे उनका उलट पलट कर देखना! कितने आश्चर्य की बात है कि बाज़ार से किसी साधारण सी वस्तु को खरीदने के लिये भी हम चार दूकानों पर उसकी देखभाल करते हैं परन्तु जब हमारे सामने चिकित्सा का प्रश्न उपस्थित होता है—उस वस्तु के प्राप्त करने का अवसर आता है जिस पर हमारी या

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

२७ पौष शुक्रवार १९९७

धन की शक्ति

[श्री आचार्य अभयदेव जी]

गतांक से आगे

(७)

धन के सम्बन्ध में या धन के लिये जो बुराई होने की प्रबल संभावना रहती है, उसी को लक्ष्य में रख मनु महाराज ने आर्थिक पवित्रता पर बल दिया है। क्या सुन्दर कहा है—

यो ऽर्थे शुचिः स शुचिः, न मृद्वारि शुचिः शुचिः ॥

मिट्टी और पानी से जो सफाई, शुचिता, पवित्रता करता है, वह क्या पवित्र होता है? असल में पवित्र (शुचि) तो वह है जो आर्थिक तौर से पवित्र है। रुपये पैसे के मामले में पवित्र होना चाहिये। ऐसी पवित्रता करना कुछ कठिन है, पर यही पवित्रता काम की है। वेद में एक सूक्त में (अथर्व वेद ७-११५) पापी लक्ष्मी और पुण्या लक्ष्मी का भेद बताया है। पापी लक्ष्मी से अपना पिण्ड छुड़ाने की, उसे फेंक सकने की प्रार्थना की है। उस अपवित्र धन, उन अपवित्र वस्तुओं को त्याग पवित्र होने की इच्छा की है। सचमुच कुछ अन्यायार्जित पाप की कमाई होती है जिस से अपना संबन्ध करने से—चाहे ऊपर से हमारे शरीर कितने ही साफ सुथरे रहें पर हमारा प्राण, मन, आत्मिक शरीर तक मलिन हो जाते हैं। बल्कि हमारे स्थूल शरीर में भी रोग हो सकते हैं। हम इन बातों को समझते नहीं। यह जो कहा जाता है कि किन्हीं रुपयों में बरकत होती है, बरकत वाला एक रुपया और बहुत से रुपयों को खींच ले आने वाला होता है-इसमें सचाई है। दूसरी तरफ यह भी सच है, जैसा कि उसी वैदिक सूक्त में कहा है—कुछ धन (पाप लक्ष्मी) ऐसा होता है जो हमें सुख देता है, हमारा सब जीवन रस निचोड़ लेता है शोषण कर लेता है, जैसे बन्दना बेल जिस पेड़ पर छा जाती है वह पेड़ सूख जाता है। ऐसे धन के आने से हम अन्दर से अशान्त, चिन्ता ग्रस्त रहने लगते हैं। हमें ज़रा सी सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हो तो कुछ धनों को (रुपये पैसे या वस्तुओं को) देख कर ही घृणा होगी, वे हमें आपत्ति, कष्ट से भरे हुये दिखाई देंगे। उन्हें (हमें चाहे कोई कितना देव, चाहे) हम ग्रहण नहीं कर सकेंगे। ऐसे धनों को अस्वीकार करने से या मौजूद हों तो त्याग कर देने से (फेंक देने से) निश्चित् रूप से आर्थिक पवित्रता और बन्धन मुक्तता प्राप्त होती है। ये मल रूप होते हैं। असल में तो यह मल, ऐसा धन उत्पन्न ही नहीं होना चाहिये। वह उत्पन्न इसी लिये होता है क्योंकि यज्ञ (सर्वहित के कार्य में उपयोग करते रहने) द्वारा, यज्ञ चक्र द्वारा, धन प्रवाहित नहीं होता रहता। जैसे न बहता पानी कहीं खड़ा रह कर सड़ांद पैदा करता है, जैसे रक्त प्रवाह कहीं रुक जाने से रोग पीड़ा, फुन्सी, पीप आदि को पैदा करता है, वैसे ही स्वार्थ अन्याय के कारण कहीं इकट्ठा होकर विकृत हुआ धन इन मल को पैदा करता है।

तो धन का उद्देश्य सुख है यह कहना भ्रम जनक है। भोगपरायणता में तो सुख नहीं है, सुख यज्ञ में है, त्याग पूर्वक भोगने में (त्यक्तेन भुंजीथा)। भोग लिप्सा तो यज्ञ चक्र को भग करती है, इसके चलने में बाधा पहुंचाती है। तो धन यज्ञ के लिये है, यज्ञ चक्र को प्रवर्तित रखने के लिये है। और चूंकि यज्ञ का अन्तिम विषय परमेश्वर प्राप्त है। धन का हमें एकमात्र वही उपयोग करना चाहिये जिस से हम किसी न किसी रूप में परमेश्वर के अधिक समीप हो सकें। यही उत्कृष्ट यज्ञ है। इसके लिये हर धन में भी परमेश्वर दृष्टि रखनी चाहिये। सब धन परमेश्वर का है यह भावना प्राप्त करनी चाहिये।

कस्य स्विद् धनम्? (यजुर्वेद ४०-१)

धन किस का है? किसी का नहीं। वह 'क' (सुख स्वरूप) का है। परमेश्वर का ही सब ऐश्वर्य है। इस सत्य को यदि हम समझ जांय तो आर्थिक पवित्रता रखना बहुत आसान हो जाय। क्यों कि तब धन में आसक्ति हट जाये। धन मेरा नहीं है, भगवान का है और भगवान के काम के लिये है। इस सत्य भाव में स्थिति करने से ही, जैसा कि श्री अरविन्द कहते हैं, धन शक्ति को जो आजकल मिथ्या प्राणशक्तियों के कब्जे में बुरी तरह आयी हुई है फिर भगवान के लिये जीती, प्राप्त की जा सकती है। अतः यह भी स्पष्ट है संरक्षकता-वाद (ट्रस्टीशिप थियेरी) जैसे महात्मा गांधी जी जैसे सन्त पुरुष कहते हैं, ही ठीक है, न कि समाजवादियों का विचार जबरदस्ती से धन ज़ब्त करना या क़ानून तौर पर समता लाने का यत्न करना ठीक इलाज नहीं है। पर यदि धनी लोग भी धन को अपना न मानें, देश का या भगवान का मानें, अपने आपको केवल उस धन के संरक्षक, मालिक की आज्ञा से केवल उसका उपयोग करने वाले मानें तो धन में गन्दगी उत्पन्न करने वाला, बुराई उत्पन्न करने वाला ज़हर न रहे। तब धन वस्तुतः सुख, शक्ति और समृद्धि को देने वाला हो। क्यों कि तब हम धन के गुलाम न रहें, मालिक हो जांय मज़ेदार बात है कि जब तक धन को हम अपना समझते हैं, उस में आसक्ति रखते हैं तब तक हम धन के गुलाम रहते हैं, पर जब उसे अपना नहीं समझते, परमेश्वर का समझते हैं, उसके असली स्वरूप को जान जाते हैं तब हम उसके स्वामी हो जाते हैं। धन का पूरा स्वामी तो ब्राह्मण होता है क्यों कि उसने धन शक्ति के सत्य स्वरूप और स्थान को पूरी तरह समझ लिया—साक्षात् कर लिया होता है।—

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः (अथर्व ५-१७-९)

ब्राह्मण तो सचमुच भौतिक धन को अपने परमेश्वर का ही समझता है और किसी का नहीं। इस लिये उसके

परमैश्वर्य में यह भौतिक धन भी उसे आवश्यकतानुसार प्राप्त है ऐसा उसे विश्वास रहता है। और अपने सत्य और ज्ञान के महान् ऐश्वर्य के सामने वह भौतिक धन को तुच्छ समझता है। क्षत्रिय भी धन के ईश्वरीय होने में ब्राह्मण जैसा जीवित विश्वास न रखता हो तो कम से कम धन को सारे देश की संपत्ति है ऐसी श्रद्धा रखता है अतः देश सेवा करता हुआ अपने उच्च भावनाओं के ऐश्वर्य्य के सामने भौतिक धन की चिन्ता नहीं रखता। क्यों कि देश वह तो उसे देगा ही ऐसी पूरी श्रद्धा और आत्मविश्वास उसे होता है। पर वैश्य धन की चिन्ता अवश्य करता है। क्यों कि वह उच्च भावना का बल या उच्च ज्ञान का प्रकाश प्राप्त न होने से धन की अपरिहार्य आवश्यकता को मानता है। पर उसे भी धन को परमेश्वर का ही मानना चाहिये। धन द्वारा परार्थ पूर्वक ही स्वार्थ साधन करना चाहिये। यही वैश्य का यज्ञ है। मनुष्य ज्यों ज्यों अपनी इस साधारण वैश्य अवस्था से विकास-करता हुआ धन के सार्वजनिक रूप और ईश्वरीय रूप को जानता जाता है त्यों त्यों वह क्षत्रिय या ब्राह्मण होता जाता है। इस लिये वैश्य के इस भौतिक और नाश-वान धन का उद्देश्य यह है कि वह क्रमशः उसे अधिकाधिक आन्तरिक दिव्य और अनश्वर धन को प्राप्त कराता हुआ उसे उन्नत करते जाने का साधन बने और अन्त में उसे परम आत्मीय परम दिव्य और परम अनश्वर धन को को अर्थात् परमैश्वर्यमय परमेश्वर को प्राप्त कराये। इस लिये हम देखते हैं कि भौतिक धन से जो ऊंची शक्तियां हैं उन्हें भी विविध रूप मे धन सम्पत्ति या ऐश्वर्य नाम से पुकारा जाता है। वेद में परमेश्वर को सर्वोत्तम धन कहा है। परमेश्वर के पाने के साधनभूत शम दम आदि को षद् सम्पत्ति कहा जाता है। गीता में अभय सत्य से शुद्धि आदि को दैवी सम्पत्त कहा है। ज्ञान और विद्या को अनमोल धन कहा जाता है। शौर्य तेज आदि को भौतिक ऐश्वर्य से उपमा दी जाती है। हृदय में या सिर में अक्षयकोश (खज़ाना) है। इत्यादि प्रकार के वचन वेद से लेकर आज कल की सब धर्म वाणियों में पाये जाते हैं। तो सचमुच वैश्य की शक्ति रूप वैश्य के पास जो भौतिक धन रहता है उसका उद्देश्य यही है कि वह उस के लिए यज्ञ द्वारा सर्वोच्च धन को प्राप्त कराने का साधन बने। इसी में धनशक्ति की सार्थकता है।

धनशक्ति के इस सामान्य विवेचन के बाद अब मैं वैश्य के गुणों और कर्मों का का वर्णन ठीक तरह कर सकूंगा।

बापू के दर्शन

[श्री केशव]

मैं बापू (म. गान्धी) के पीछे २ चल रहा था और सोच रहा था कि यह दिन कितना सौभाग्य शाली है मेरे जीवन में। मेरे जैसा स्वार्थी जीव आज संसार के अवतार-पुरुष के साथ जा रहा है।

मैं ने चलते २ गान्धी जी की चप्पलियों के चिन्हों पर अपने पैर रखने की कोशिश की। परन्तु मन ने चुपके से कहा "इस से क्या लाभ ?" खद्दर न पहन कर, क्रियात्मक प्रोग्राम को पूरा न करते हुए केवल चप्पलियों के चिन्हों पर चलने से क्या होता है !

× × ×

रविवार २४ नवम्बर की बात है। हम प्रातः ही उठ कर चल पड़े। सेवाग्राम वर्धा से लगभग ४ मील के फासले पर है। मार्ग में आचार्य काका कालेलकर जी के दर्शन हुए। वे प्रातः भ्रमण से वापिस लौट रहे थे। उनकी प्रतिभा-शाली सौम्य मूर्ति देखकर ऐसा लगा मानो शकुन हुआ है कि आज का दिन अच्छा गुजरेगा।

घण्टे भर तेज रफ्तार से चलने के बाद सेवाग्राम की झोंपड़ियां दिखाई दीं। वर्धा को ऊंची-नीची, नंगी (वृक्षादि से रहित) ज़मीन में ये आश्रम मानो रेगिस्तान में मीठा झरना है। छोटे २ कच्चे मकान, मिट्टी की दीवारें फूस व खपरैल के छप्पर और ग्राम-वासियों का सादा जीवन बड़ा आकर्षक प्रतीत हुआ। हमने समझा मानों गांधी जी ने भारत के लाखों ग्रामों का एक प्रतिनिधि दुनिया के सामने पेश किया है।

× × ×

ठीक समय पर बापू सैर के लिये अपनी कुटिया से निकले। दो-चार बच्चे, और ५-७ आश्रमवासी उनके साथ थे। हम भी उनके पीछे २ हो लिये।

कहते हैं कि भ्रमण के समय बापू से कोई भी बात कर सकता है। वो प्रत्येक का उत्तर बड़ी शान्ति से देते हैं। मार्ग में बच्चों से खेलते और हसते भी जाते हैं।

आज के दिन एक मद्रासी डाक्टर उनसे Blood Pressure (खून के दबाव) पर बात चीत कर रहे थे। मद्रासी धुआंधार अंग्रेज़ी बोल रहा था। बापू भी देर तक अंग्रेजी में जवाब देते रहे। लेकिन आखिर उनसे रहा न गया। बोल ही उठे "डाक्टर साहिब ! आप हिन्दुस्तानी क्यों नहीं सीखते !" "मैं जानता तो हूं पर गलतियां हो जाएंगी इस लिये संकोच होता है।"

"गल्तियां तो मैं खूब करता हूं। पर मुझे निश्चय है कि मेरे आशय को जनता भली भांति समझ लेती है।"

डाक्टर साहिब झेंपे और कहने लगे कि "अच्छा ! मैं अवश्य प्रयत्न करूंगा।

इसी समय एक वृद्ध ग्रामवासी उस मार्ग से गुज़रा और बड़ी श्रद्धा से बापू के चरणों पर प्रणाम किया।

बापू भी मुस्किराये।

इतने में आश्रम से एक छोटी लड़की "आभा" भी दौड़ती हुई बापू के पास पहुंची। बापू ने अपनी मुट्ठी तान कर उसकी ओर मारने का इशारा करते हुए पूछा "क्यों, इतनी देर से आई ?" उसने कुछ जवाब दिया जो स्पष्ट न था।

इस प्रकार हसते खेलते बापू ने प्रातः—भ्रमण समाप्त किया।

× × ×

बापू की कुटिया छोटी सी है। मिट्टी की दीवार और फूस की छत। बाहिर चरखे का निशान है। चारों ओर शान्ति का राज्य।

बापू की कुटिया में बिना आज्ञा नहीं जाना चाहिये। विशेषतः आज कल जब कि वो देश के अत्यावश्यक कार्य में व्यग्र हैं। उनका सारा समय और समूची शक्ति बेशकीमती है।

आज के दिन "चाइनीज़ मिशन" के Dr. Tai Chi Tao आए हुए थे। उनसे २ घण्टे तक बात चीत हुई।

स्टेट्समैन पत्रिका के सम्पादक मूर साहिब भी गांधी गांधी जी से लम्बी 'इण्टरव्यू' करके हट थे।

फिर मद्रास के प्रीमियर श्री राजगोपाल चारी जी भी आए थे। उनसे मद्रास— प्रान्त के सत्याग्रह का सारा प्रोग्राम बनाना था। शायद मूर साहिब के सुलह के इशारों पर भी विचार करना था।

मैं बापू की कुटिया के सामने खड़ा २ सोचता रहा "इस छोटे से व्यक्ति में कितनी महानता है। किस अतुल विश्वास पर वो सारे भारत की राजनीति यन्त्र रूपेण चला रहा है और किस अद्भुत आकर्षण के वश देश की विभूतियां वर्धा की ओर खिंची चली आती हैं।"

× × ×

इतने में सामने से चौधरी पृथ्वीसिंह जी आते दिखाई दिये। चौड़ी छाती, बलिष्ठ भुजाएं, वीर आकृति। परन्तु यहां तो सिंह भी अपनी हिंसा भूल जाते हैं। सच-मुच भेड़ और भेड़िया एक घाट पानी पीते हैं। सेवाग्राम के पृथ्वीसिंह को देख कर कौन कहेगा कि "यह महान् क्रान्ति कारी था।" हां! क्रान्तिकारी तो अब भी है। परन्तु अहिंसा और सेवा की क्रान्ति अब उसका ध्येय है। मारने से मरना अब उसे श्रेष्ठतर प्रतीत होता है। कितना मौलिक परिवर्तन है।

× × ×

आगे बढ़े तो श्री सुन्दरलाल जी के दर्शन हुए। इन्होंने ही प्रसिद्ध पुस्तक "भारत में अंग्रेज़ी राज" लिखी है। बापू इनसे सलाह मशविरा कर रहे हैं कि किस किस प्रकार देश में बढ़ते हुए साम्प्रदायिक विष को रोका जा सकता है।

सचमुच महान् पुरुषों की प्रवृत्ति बहु-मुखी होती है। और बापू के कार्य का क्षेत्र तो अत्यन्त विशाल है। देश के स्वराज्य से लेकर ताड़ के गुड़ और पत्तों के साग तक उनका विस्तार है। पाठक जानकर आश्चर्य करेंगे कि बापू ने सांपों के विषय में भी महान् अध्ययन व अनुभव किया है।

× × ×

दुपहरिया ढलने को आरही थी। हमने भी प्रणाम किया और वर्धा की ओर चले। मार्ग में सोचते रहे कि "जीते तो सभी हैं। पर उसी के जीने से लाभ है जो दूसरों के दुःख-दारिद्र्य को दूर कर उन्हें किसी अंश में सुखी बना सके।" यही दरिद्र-नारायण की सच्ची पूजा है।

[देखिए पृष्ठ ३ का शेष]

हमारे प्रियतम परिजनों की जीवन मरण की तुला संतुलित होती है—तब हम सिवाय उस बड़ी दुकान के, जो रङ्ग बिरङ्गी तथा आकर्षक पैकटों वाली औषधियों से लबालब भरी होती है और किसी छोटी मोटी दुकान की ओर नज़र उठाकर देखने का कष्ट उठाना भी सहन नहीं कर सकते!!! जिनके चित्त को मोर चुरा लेते हैं वे भला हंस की ओर नज़र घुमा भी कैसे सकते हैं?

क्या प्राचीनता अथवा अर्वाचीनता पदार्थों की उत्तमता तथा उत्कृष्टता की निर्णायक हो सकती है? क्योंकि एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली सदियों से चली आ रही है अतः यह सर्वोत्कृष्ट है इस युक्ति को विवेक शील पुरुष कैसे स्वीकार कर सकते हैं? क्या वे नहीं जानते कि:—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि नूनं नवमित्यवद्यम्
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।

इस श्लोक के अनुसार, क्या प्रत्येक विचार शील पुरुष का यह परम कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि वह प्राचीन व अर्वाचीन सभी चिकित्सा प्रणालियों की परख करने में प्रयत्न शील हो तथा परख करने के पश्चात् सर्वोत्कृष्ट मानी गयी चिकित्सा प्रणाली को ही अपनाने में अपना परम श्रेय समझे!

मनु महाराज कहते हैं:—

"न लिङ्गं धर्मकारणम्"

इसके अनुसार जब हम प्रत्येक कषाय वस्त्र धारी पुरुष को वास्तविक सन्यासी मानने के लिये तैयार नहीं तथा बिना भगवे कपड़े पहिने पुरुष को भी उसके गुणों के कारण सच्चा सन्यासी मानने का सम्मान प्रदान करने के लिये तैयार हैं तो हमें प्रत्येक चिकित्सा प्रणाली को भी उसके गुणों के अनुसार क्यों न आदर देना चाहिये?

इस लेखमाला के अगले सात अध्यायों में की गयी विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों की तुलनात्मक समीक्षा के अध्ययन से पाठकों को यह विश्वास हुये बिना नहीं रह सकता कि भारत में प्रचलित सब चिकित्सा प्रणालियों में होमियोपैथी ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा प्रणाली है। तभी तो-भारत सरकार द्वारा अभी तक सम्मानित न होने पर भी-यह चिकित्सा प्रणाली अन्य चिकित्सा प्रणालियों को स्थानान्तरित करती चली जा रही है तथा करती चली जायगी।

अब, होमियोपैथी के चिकित्सा नियम के अनुसार, यह बात निर्विवाद है कि:—

गुणवत्तर पात्रेण, छाद्यन्ते गुणिनां गुणाः
रात्रौ दीपशिखा कान्तिः, न भानावुदिते सति।

तो-होमियोपैथी को न केवल जनता का अपितु सरकार का भी अचिरात् सम्मान प्राप्त होना अवश्य भावी ही है। जिस प्रकार सूर्य के उदय हो जाने पर दीप शिखाओं की ज्योति स्वयं मन्द हो जाया करती है इसी प्रकार भारत सरकार द्वारा होमियोपैथी के अपनाये जाने पर गुण हीन अथवा अल्प-गुण युक्त चिकित्सा

प्रणालियों के प्रभुत्व का अन्त पड़ जाना भी सर्व सिद्ध है।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व दीवट या पतील सोतों में धरे तेल-बत्ती के खुले दीपक ही हमारे घरों में अन्धकार दूर करने का कार्य्य किया करते थे। वे दीपक न केवल आंधी पानी में हमारी सेवा करने से विमुख हो जाया करते थे अपितु कभी २ हमारे घरों में आग लगा कर हमारा सर्वस्व तक अपहरण कर लिया करते थे।

समय आया जब कि मट्टी के तेल वाली लालटैनों ने गुणवत्तर होने के कारण उन दीपकों को स्थान च्युत कर दिया।

आज हमें बिजली की बत्तियां प्राप्त हो रही हैं, जिन के कारण तेल बत्ती डालने का कष्ट देने वाली, चिमनियों की सफाई करने में समय नष्ट करने वाली, धुएँ की दुर्गन्ध से हमारा मस्तिष्क भ्रष्ट करने वाली, बैठे २ भड़भड़ाने वाली तथा यथेच्छ प्रकाश देने में भी असमर्थ, अनेक दोष पूर्ण लालटैनों का भी बहिष्कार हो रहा है। आज बिजली की बत्तियों को कौन नहीं अपना रहा है? क्या प्राचीन परिपाटी पर मर मिटने वाले वैदिक बटुओं ने भी इन पङ्क कलङ्क विहीन, शशि समान—शुभ्र ज्योत्स्ना-प्रदायिनी, परमाभा कारिणी तथा मणि-दीपा-नुकारिणी बिजली की बत्तियों को नहीं अपना लिया है? क्या वे गुणों के उपासक नहीं हैं? क्या उन्हें महाकवि भवभूति का यह पद:—

"शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगताम्
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः"
याद नहीं?

क्या ऐसे गुणानुरागी, विद्याव्यसनी, हंस-वंशावतंस विद्वज्जन, अपने गुणातिरेक के कारण अन्य-सर्व चिकित्सा प्रणालियों को निरंन्तर स्थानान्तरित करने वाली, सुख-साध्य, सर्वोपयोगी तथा सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा प्रणाली का वरण करने में कभी चूक सकते हैं? क्या ऐसे सज्जन पुरुषों का स्वभाव परीक्षा करने के पश्चात् उत्तम पायी गयी वस्तु को ग्रहण करने का नहीं होता?

महात्मा हनीमैन भी उनसे इससे अधिक आशा नहीं रखते हैं। देखिये वे क्या लिखते हैं:—

"Mine is an inductine system of Medicine, make the experiment for Yourself as I have indicatid, and is You do not Come to the some canclusions as myself, Through Homeopathy away and call me a lies."

"मेरी चिकित्सा प्रणाली परीक्षण-निरीक्षणात्मक है, अतः उसकी सचाई की जांच करने के लिये वैज्ञानिकों को आवश्यक है कि वे मेरे निर्देशानुसार उसकी स्वयं परीक्षा करें; तथा तदुपश्चात् भी यदि वे उन्हीं परिणामों पर न पहुंचे जिन पर कि मैं पहुंचा हूं तो उन्हें पूरा अधिकार है कि वे होमियोपैथी को रद्दी की टोकरी में फेंक दें तथा शौक से मुझे अवितथ-वादी कहें"।

क्या हनीमैन की श्लाघ्य घोषणा ही उसकी चिकित्सा प्रणाली में विश्वास उत्पन्न करने के लिये पर्य्याप्त नहीं है? अतः भारत की विविध-तापों से सन्तापित, दरिद्रता दलित जनता का भागीरथी के प्रवाह के समान परम कल्याण करने में पूर्ण समर्थ इस चिकित्सा प्रणाली का अब भी भारत में समुचित आदर न होगा तथा:—

"भले, भले कह छांड़िये, खोटे ग्रह जयदान"
ही होता रहेगा?

गीत

उपहार नहीं मांगा जाता—
खुद ही-फूला करता उपवन,
खुद ही-आया करता सावन,
हर रोज स्वयं करने आतीं—
ऊषा-सन्ध्यायें नीराजन-
यह रंग बिरंगा विधना से-
संसार नहीं मांगा जाता।
खुद ही-मचली है असफलता,
खुद ही-अम्बर का उर जलता,
अंधियाली काली रजनी में-
खुद ही-घन में छिप शशि चलता,
इस जीवन में परवशता से-
उर-भार नहीं मांगा जाता।—
अनजाने में लुट जाता मन,
थक जाते हैं ये कहीं नयन,
यों ही बस तट से टकराकर-
सरिता बदला करती जीवन,
ओ भोले मानव! दुनियां में-
यह प्यार नहीं मांगा जाता॥—

—श्री सूर्यकुमार

गुरुकुल-समाचार

इस सप्ताह सभा के प्रधान श्री विश्वम्भर नाथ जी यहां पधारे आप ने ब्रह्मचारियों को तीन उपदेश दिये जो कि सामयिक एवं शिक्षाप्रद थे।

गुरुकुल का हौकी दल बलरामपुर राज्य की ओर से होने वाले टूर्नामेंट में खेलने के लिये बलरामपुर गया हुआ है। प्रथम तीन मैचों में उसने अद्भुत सफलता प्राप्त की है. आशा है कि हमारा ये दल पूर्ण विजय करके ही लौटेगा।

श्री पं० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति का स्वास्थ्य अच्छा है। अब उनकी दशा प्रतिदिन सुधरती जा रही है।

इस सप्ताह कोई ब्रह्मचारी रुग्ण नहीं हुआ औषधालय बिलकुल खाली रहा। सब ब्रह्मचारी अपनी वार्षिक परीक्षा की तय्यारी में लग गये हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ५ माघ १९९७; १७ जनवरी १९४१ [संख्या ३९

सेवा ग्राम में

[श्री केशव]

"आप खद्दर कब से पहनते हैं।" एक आश्रमवासी ने पूछा। "सन् १९२० के करीब शुरू किया था। बरसों केवल खद्दर पहनता रहा। अब थोड़ा बहुत देसी मिलों का कपड़ा भी इस्तेमाल करता हूं।" हमने उत्तर दिया। "क्या शुद्ध खद्दर का व्रत नहीं ले सकते?"

"चाहिये तो। परन्तु............।"

हममें सामान्यतः एक बहुलवृत्ति है। हवा के रुख के साथ चलते हैं। पानी के वेग के साथ बहते हैं। हमारा ध्येय कुछ नहीं। जब जैसा, तब तैसा। बुद्धि-पूर्वक विचारते नहीं। स्थिर-वृत्ति से निश्चय नहीं करते। यों ही चले जाते हैं, जिधर मुंह उठा। परिणाम क्या होगा, इसे तो भगवान् ही जानें।

× × ×

हमारे साथ एक आश्रम-वासी था। उसे नीरा—खजूर की ताज़ी ताड़ी—पीने का शौक था। परन्तु दुर्भाग्य से देर हो गई। बापू के साथ सैर करने में समय व्यतीत हो गया। नीरा की जगह गुड़ मिला। मीठा था पर रुचिकर नहीं। देहली के गुड़ की तरह नहीं। शायद नई चीज़ होने से नहीं भाया। हां; गुड़ विभाग में एक विद्यार्थी मिला—जम्मू का रहने वाला। बड़ा जोशीला, बड़ा उत्साही। अभी लड़का सा ही लगता था। उसके कोमल मुख पर उस्तरे की धार न लगी था। गान्धी जी के ग्राम-सेवा कार्य की स्कीम से प्रभावित होकर यहां आया था। भिन्न २ विभागों में बारी २ से काम सीख रहा था। उससे बहुत बात चीत हुई। वह पंजाब के एक कालिज का ग्रेजुएट था। उसके व्यवहार में शालीनता थी। वह शीघ्र ही वापिस लौट कर एक ग्राम में आसन जमाएगा और ग्रामोद्योग द्वारा देश सेवा के कार्य में अग्रसर होगा। हम उसकी हृदय से सफलता चाहते हैं। रह २ कर इतना सन्देह होता है कि कालिज का एक शौकीन—मिज़ाज नौजवान कितने दिनों तक विभूति रमाए संयतावस्था में रहेगा?

× × ×

दो बजे। आश्रम वासी अपना २ चरखा लेकर हाल की ओर दौड़े। यह कातने का समय था। हमें भी कौतूहल वहां खेंच ले गया। कई बूढ़े, कई जवान, स्त्री-पुरुष लगे हुए थे कच्चे तार निकालने में। उनके चहरों पर तपस्या की कृशता थी। वह साधना कर रहे थे। भारत-माता की नग्नता को वो इस बारीक सूत से ढांपना चाहते थे।

× × ×

महात्मा गान्धी एक महान् यज्ञ कर रहे हैं। उसका उद्देश्य दानवों का दमन और देवताओं की प्रसन्नता है। ज्यों २ यज्ञ की अग्नि प्रचण्ड हो रही है। त्यों २ दानवों का ताण्डव भी बढ़ता जाता है। कई भक्त निराश होकर दुःख अनुभव करने लगे हैं। परन्तु गान्धी जी के लिये सुख-दुःख दोनों समान हैं। आशा निराशा में कोई भेद नहीं। वो तो फल की आकांक्षा छोड़कर ही अपने कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। कर्म में ही उनका अधिकार है। फल तो भगवदाधीन है।

× × ×

सेवाग्राम की सादगी बड़ी पसन्द आई। छोटी २ घास-फूस की कुटियें, सरल क्रियात्मक जीवन, सादा खाना, खद्दर के मोटे दो-चार कपड़े और देश-सेवा का आजन्म व्रत।

मैं वहां से चला तो सोचने लगा "कल यदि बापू कैद हो जांय अथवा उपवास आरम्भ कर दें?"

बापू सेवाग्राम की आत्मा हैं। उनके वहां से जाने पर ऐसा लगता है मानों अचेतन शरीर।

सेवाग्राम भारत के लाखों ग्रामों का प्रतिनिधि है। हमें सर्वत्र देश-सेवा का मन्दिर बनाना है और उसमें बापू की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करनी है।

× × ×

चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता-निर्णायक कसौटी

(ले० श्री डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार बिजनौर)

२.

अस्वस्थ मनुष्य को स्वास्थ्य लाभ कराने के लिये जो उपाय, उपचार या क्रिया की जाती है वह "चिकित्सा" कहाती है। तथा जो मनुष्य इस कार्य को करता है वह "चिकित्सक" कहलाता है।

चिकित्सक का एकमात्र महान् उद्देश्य इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि वह अस्वस्थ मनुष्य को ऐसी सहायता प्रदान करे जिसके द्वारा वह शीघ्र ही रोगमुक्त होकर स्वस्थ हो जाये। महात्मा हनीमैन इसी भाव को निम्न शब्दों में प्रगट करते हैं:—

"The physicians high and only mission is to restore the sick to health, to cure, as it is termed".

आयुर्वेद कहता है:—

"अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः
तमेव कारयेद् वैद्यः, यत् स्वास्थ्यं सदेप्सितम्"

अर्थात्—वैद्य को उसी प्रक्रिया का प्रयोग करना आवश्यक है जिसके द्वारा अस्वस्थ मनुष्य स्वस्थ हो जाय; क्योंकि अस्वस्थ पुरुष को स्वास्थ्य लाभ कराना ही सदा अभीष्ट है।

स्वस्थ कौन होता है इस प्रश्न का उत्तर स्वस्थ शब्द ही दे देता है। "स्वस्मिन्-आत्मनि-स्थितः, इति स्वस्थः" जो मनुष्य अपने में-आत्म शासन में-स्थित होता है वही स्वस्थ कहाता है। इसके प्रतिकूल, जो मनुष्य आत्म-शासन में स्थित नहीं होता—जिस पर किसी अपर शक्ति का शासन या अधिकार स्थापित हो जाता है-वह अस्वस्थ कहलाता है।

जो मनुष्य स्वस्थ होता है उसकी क्या पहिचान होती है, इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद कहता है.—

"प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते"

जिस मनुष्य का आत्मा, मन तथा इन्द्रियां सब प्रसन्न (At ease) हों उसे ही स्वस्थ समझना चाहिये तथा जिसकी आत्मा मन तथा इन्द्रियां प्रसन्नता की विपरीतावस्था में, अर्थात् At dis-ease हों उसे अस्वस्थ समझ लेना चाहिये।

आयुर्वेद के स्वस्थ शब्द की इस परिभाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अस्वस्थता के लिये शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की रचना में परिवर्तन (Tissue-Change) आजाना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि आत्मा मन तथा इन्द्रियों की प्रसन्नतावस्था में परिवर्तन आजाना। इसी कारण वह मनुष्य भी जिसका कि केवल जी मिचला रहा होता है अस्वस्थ्य कहाता है तथा रोगियों की श्रेणी में परिगणित हो जाता है।

महात्मा हनीमैन की Dis-ease (रोग) की निम्न परिभाषा भी ठीक इसी भाव का समर्थन करती है.—

"Disease is nothing more than alteration in the state of health of the healthy individual which is expressed by the altered normal sensations and functions of the body".

अर्थात्—रोग, स्वस्थ मनुष्य की स्वास्थावस्था की परिवर्तितावस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता; जो परिवर्तितावस्था शरीर के असाधारण लक्षणों—परिवर्तित हुवे हुवे साधारण संज्ञानों (Sensations) तथा कार्यों (functions)—द्वारा ही लक्षित हो जाती है।

रोग की इस परिभाषा से अनुमान इस बात में किसे सन्देह हो सकता है कि जो प्रक्रिया—रोगी की इन असाधारण संज्ञानों तथा कार्यों द्वारा लक्षित होती हुयी अवस्था के स्थान में साधारण संज्ञानों तथा कार्यों वाली अवस्था का प्रत्यावर्तन करा सकती है—वही सच्ची चिकित्सा कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है।

चिकित्सा का यह कार्य्य कि विविध प्रकार के साधनों द्वारा सम्पन्न होता चला आया है अतः चिकित्सा की अनेक प्रणालियां बन गई हैं, जिन्हें निम्न दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) प्रथम-औषधियों की सहायता द्वारा चिकित्सा करने वालीं।

(२) द्वितीय-औषधियों के बिना, साधनान्तर से चिकित्सा करने वालीं।

प्रथम विभाग में-यूनानी, मिसरानी, वैद्यक, एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणालियों के नाम मुख्यतया परिगणित किये जा सकते हैं। द्वितीय विभाग में—जल चिकित्सा तथा प्राकृतिक चिकित्सा का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। शल्य चिकित्सा भी इसी विभाग में आ जाती है।

बहुत से चिकित्सा विज्ञ संसार में प्रचलित सब चिकित्सा-प्रणालियों को (१) प्राकृतिक तथा (२) अप्राकृतिक इन दो विभागों में विभक्त करके प्राकृतिक चिकित्साओं को ही सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। परन्तु हमारी तुच्छ सम्मति में चिकित्सा प्रणालियों का इस प्रकार का विभाजन सम्भव ही नहीं हो सकता।

यदि जल-फलादिक को प्राकृतिक (प्रकृति-जन्य) माना जाय तो औषधियों को अप्राकृतिक मानने का क्या कारण हो सकता है! क्या औषधियां भी-जिनकी वेदों में भी बड़ी प्रशंसा लिखी है तथा उपादेय बताया गया है-प्रकृति-जन्य नहीं हैं? यदि मनुष्यों द्वारा रूपान्तर कर दिये जाने के कारण औषधियां अप्राकृतिक हो जाती हैं तो क्या जल को वाष्प-रूप में परिवर्तित करके उससे चिकित्सा करना भी अप्राकृतिक नहीं हो जाता? क्या वस्ती कर्म्म द्वारा आंतों में जल चढ़ाना प्रकृति-देवी से मिलता है? यदि नहीं—तो इस प्रकार की जल-चिकित्सा भी प्राकृतिक नहीं हो सकती।

वास्तविक प्राकृतिक चिकित्सा तो वही हो सकती है जिसमें प्राकृतिक पदार्थों का रूपान्तर किये बिना उनके प्राकृतिक-रूप में ही अस्वस्थ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ

कराने में सहायता ली जाय। ऐसी अवस्था में—क्या सर्व प्रकार के रोगियों को सहायता प्रदान करने के लिये इस प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ प्रत्येक समय सुगमता से उपलब्ध हो सकते हैं? यदि नहीं, तो इस प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व किस प्रकार स्थिर रह सकता है।

यद्यपि:—

'छिति जल पावक गगन समीरा

पञ्च रचित यह अधम शरीरा।'

के अनुसार हमारा यह शरीर इन पांच प्राकृतिक तत्वों से ही बनता है तथापि इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जब यह जीवितावस्था में होता है तब इसमें किसी सूक्ष्म चेतन शक्ति का संचार नहीं होता। जब यह शरीर सूक्ष्म प्राण शक्ति से अनुप्राणित होता है तब इस पर केवल मूर्तरूप में वर्तमान इन पांच तत्वों का क्या प्रभाव हो सकता है? अतः इन को भी जब तक हम सूक्ष्म शक्ति के रूप में परिवर्तित नहीं कर लेते तब तक इनका भी हमारे शरीर पर क्या प्रभाव हो सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक पदार्थों का भी रूपान्तर करना हमारे लिये आवश्यक हो जाता है।

जब चिकित्सा के कार्य्य के लिये प्राकृतिक पदार्थों का रूपान्तर किया जा सकता है तब औषधियों का परम लाभप्रद रूपान्तर क्यों नहीं किया जा सकता! तब, प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक विभाग को क्या आवश्यकता रह जाती है!

इस व्याख्य स्थिति के पश्चात् भी यदि यही माना जाय कि प्राकृतिक पदार्थों के प्राकृतिक स्वरूप द्वारा ही चिकित्सा का कार्य्य सम्पादन करना चाहिये, तब तो, नजीबाबाद वासियों के लिये प्राकृतावस्था में प्राप्त अपने कुओं का खारा जल ही न केवल पीने अपितु सर्व प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये भी प्रयोग में लाना आवश्यक हो जाता है।

ऐसी अवस्था में:--

"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः,

क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति"

वाली बात चरितार्थ हो जाती है तथा प्रतिदिन "धियो यो नः प्रचोदयात्" जपने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा का एक अर्थ यह भी समझा जाता है कि किसी प्रकार के रोगी को भी किसी प्रकार की वाह्य सहायता न देकर उन्हें रोगमुक्त होने के लिये प्रकृति की कृपा पर ही छोड़ देना चाहिये। जिस प्रकार प्रकृति में अन्धकार का नाश प्राकृतिक पदार्थों द्वारा स्वयं हो जाता है उसी प्रकार रोगी प्राकृतिक शक्तियों द्वारा रोगमुक्त हो जाता है।

यदि हमारी प्राण शक्ति रोगोत्पादक पदार्थों की बलवत्तर शक्ति से सम्मुख स्वयं ही मुक्त होने में समर्थ होती अथवा प्राकृतिक पदार्थ ही उसे उससे मुक्त कर देने में समर्थ होते तब तो चिकित्सा प्रणालियों का सब प्रपंच ही समाप्त हो जाता है।

"अर्के चेन्मधु विन्देत् किमर्थं पर्वतं व्रजेत्"

जब आक के पेड़ पर ही मधु (शहद) की उपलब्धि हो सकती हो तो कौन मन्द पुरुष पर्वत पर पहुँचने का प्रयास करना पसन्द करेगा!

हमारी प्राण शक्ति रोग शक्तियों से स्वयं मुक्त हो सकती है या नहीं—इस विषय में महात्मा हनीमैन की निम्न सम्मति है:—

"Unassisted, the vital force is no match to these hostile powers, it hardly opposes a force equal to the hostile operation, and this, indeed, with many signs of its own suffering."

अर्थात्—बलवत्तर, शत्रुभूत रोगोत्पादक शक्तियों से सामुख्य करती हुयी हमारी प्राणशक्ति-बिना किसी बाह्य शक्ति की सहायता के-उन्हें जीतने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती; क्यों कि, यदि ऐसा सम्भव होता तो वह उनसे आक्रान्त तथा अभिभूत हो क्यों हो पाता! बिना बाह्य शक्ति की सहायता के जब वह साधारण रोग शक्तियों के साथ साम्मुख्य करने में बहुत कुछ हानि उठा जाती है तब महाबल-शाली रोग राक्षसों का भला वह क्या मुकाबला कर सकती है!

हनीमैन का यह कथन निम्न उदाहरण में स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये कि एक मनुष्य न्युमोनिया से आक्रान्त होकर, बाह्य शक्ति की सहायता न पाने के कारण उक्त रोग की द्वितीयावस्था में पहुँच गया है। क्या उसकी जीवन रक्षा, अब भी बिना बाह्य सहायता के हो सकती है? यदि दैवात् वह बच भी जाता है तो क्या वह फिर न्युमोनिया का बारम्बार शिकार नहीं होने लगता, तथा अन्त में, क्षय–रोग से ग्रस्त हुये बिना बच सकता है! क्या, तब भी, करुणामयी प्रकृति–माता उसका मृत्यु पाश से उद्धार कर देती है! क्या शक्ति शाली मुसोलिनी से आक्रान्त एबीसीनिया की–ब्रिटिश सिंह का सहायता न पाने पर–दैव द्वारा रक्षा हो सकी है!

यद्यपि, ममता मयी माता के समान प्रकृति-देवी सर्वप्रकार के भयों से हमारी सदा रक्षा करती ही रहती है, परन्तु जब हम उसके नियमों का बारम्बार उल्लंघन करके उसे अप्रसन्न कर देते हैं तथा साथ २ अपनी प्राण शक्ति को भी निर्बल बना लेते हैं, तब भी क्या वह रोग राक्षसों से हमारी रक्षा करने के लिये समुद्यत रह सकती है! क्या तब भी वह हमें क्षमा प्रदान कर सकती है!

"क्रियासम अहारेण राज्यन्तं क्षमेत कः"

क्या, बार २ अपराध करने वाले को भी कोई क्षमा कर सकता है! क्या ऐसे समय में वह प्रेममयी माता एक कठोर-हृदया विमाता का रूप नहीं धारण कर लेती! जिस प्रकार केकयी ने रामचन्द्र जी को अयोध्या से निकाल कर ही दम लिया था; उसी प्रकार क्या वह हम हमारी पुरी (शरीर) में से निकालने पर नहीं तुल जाती! ऐसे संकट के समय, किसी बाह्य शक्ति की सहायता के बिना, क्या हमारा उद्धार होना सम्भव है! यह सहायता, सिवाय अमृतमय औषधियों के और किस रूप में प्राप्त

[शेष पृ० ६ पर

गुरुकुल

५ माघ शुक्रवार १९९७

आयुर्वेदालङ्कार वैद्य हैं या डाक्टर

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी)

पञ्जाब के एक कार्य कुशल स्नातक, "आयुर्वेदालङ्कार" लिखते हैं:-"

आयुर्वेद के स्नातकों के सामने एक समस्या होती है-वे अपने को डाकूर कहें या वैद्य। कुछ स्नातक डाक्टरी ठाठ से रहना पसन्द करते हैं और अपने बोर्ड पर भी डाक्टर लिखते हैं। आयुर्वेदालङ्कार डिग्री को उन्हें अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। O.M. Sc. (Kang.) A. V. A. (Kang.) आदि लिखना आम हो गया है। इस सम्बन्ध में आपके विचार जानना चाहता हूं। मुझे वैयक्तिक रूप से जवाब न देकर गुरुकुल पत्र में इस सम्बन्ध में लिख सकें तो और भी अच्छा है जिससे अन्य आयुर्वेद के स्नातकों को भी आपके विचार मालूम हो जांय।"

इसमें तो मेरे ख्याल में किसी को शक नहीं होगा कि गुरुकुल का आयुर्वेद महाविद्यालय आयुर्वेद पद्धतिका है जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, अतः 'वैद्य' और 'डाक्टर' ये दो शब्द जब भिन्न अर्थों में बोले जाते हों-और ये अवश्य भिन्न अर्थों के द्योतक होते भी हैं—तो हमारे इस महाविद्यालय के स्नातक वैद्य ही कहलाने चाहियें, डाक्टर नहीं। इस लिए इस विषय में मेरी सम्मति साफ है। किन्तु मेरी यह सम्मति जान लेना कठिन नहीं है, पर इस सम्मति पर अमल करना बहुतों के लिए अवश्य कठिन है। गुरुकुल की, गुरुकुल के अधिकारी की सम्मति तो इससे अतिरिक्त और हो ही क्या सकती है। पर फिर भी जब हम देखते हैं. जैसे कि इन भाई ने कहा है, कि बहुत से 'स्नातक डाकूरी ठाठ से रहना पसन्द करते हैं और अपने बोर्ड पर भी डाकूर लिखते हैं' तो इसका कारण अवश्य जानना चाहिये, और जान कर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी बात पर कुछ ध्यान खींचने के लिये मैं यह लेख लिख रहा हूँ। नहीं तो, इस विषयक सम्मति तो इतनी साफ है कि न तो इस पर कुछ लिखने की जरूरत है और न पूछने की हो।

केवल शब्द 'वैद्य' या 'डाकूर' को मैं कोई महत्व नहीं देता, पर ये शब्द जिन विभिन्न चिकित्सा पद्धति के द्योतक हैं, और अतएव इनके पीछे जो भावना और मनोवृत्ति विद्यमान है वह बहुत महत्व की है। वैसे तो यदि कोई आयुर्वेदालङ्कार—आयुर्वेद की भावना रखता हुआ और आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति करता हुआ भी-लोगों में डाक्टर कहलाने लगे तो वह कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि बहुत जगह तो चिकित्सक (इलाज करने वाले) के अर्थ में ही लोग डाक्टर शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। पर आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति और भावना में तथा पश्चिम से आई वर्तमान डाकूरी चिकित्सा पद्धति और भावना में आकाश पाताल का भेद है। यदि इस भेद को हम ठीक तरह नहीं समझते हैं और अपने को आयुर्वेद पद्धति की दिशा में ही विकसित नहीं कर सकते हैं तब तो गुरुकुल के साथ महान प्रयास करते हुए आयुर्वेद महाविद्यालय चलाना ही वृथा हो जाता है।

गुरुकुल के साथ आयुर्वेद महाविद्यालय चलाने का उद्देश्य यह है कि चार उपवेदों में जो एक आयुर्वेद है उसके ज्ञान को फिर से प्राप्त किया जाय और उसे प्रचारित किया जाय. लुप्त होती जाती हुई प्राचीन आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति को उसके मूल तक पहुँच कर और मूल से उसे सिंचित करके पुनः उसे हरा भरा किया जाय, उसमें आगये दोषों को हटा कर और नये आवश्यक सत्य-ज्ञानों को उसमें प्रवेश करा कर उसे जीवित जागृत और प्रवहमान रखा जाय। यह कार्य बेशक कठिन है, पर यही हमारा उद्देश्य है। एक तरफ प्राचीन विज्ञान के तत्त्व को जानने का यत्न करते हुए गम्भीर खोज करना, दूसरी तरफ वर्तमान चिकित्सा की उत्तम खोजों से भी सम्पर्क रखना ऐसा दोहरा काम हमें करना होता है। इसी लिये हम अपने आयुर्वेद महाविद्यालय में प्राचीन के साथ वर्तमान शरीर क्रिया विज्ञान (फिज़ियालोजी) शारीर (अनाटमी), विकृति विज्ञान (पैथोलोजी) शल्य क्रिया (सर्जरी) भी पढ़ाते हैं। पर ये सब अपने आयुर्वेद शास्त्र को समृद्ध और विस्तृत करने के लिये पढ़ाते हैं, न कि उसका उच्छेद कर उसकी जगह पढ़ाते हैं। गलती यही होती है कि इन दोनों को जुदा जुदा समझा जाता है। त्रुटि यह रहती है कि इन दोनों का ऐसा मेल नहीं बैठ पाता कि ये सब नये ज्ञान और तरीके आयुर्वेद रूपी अङ्गी के अङ्ग रूप होकर हमारे यहां संगृहीत हो सकें। हमारे महाविद्यालय में चिकित्सा पद्धति आयुर्वैदिक ही इसी लिए रखी गयी है। यहां वह अङ्गी है इसके अनुकूल अङ्ग रूप में अन्य सब सहायक ज्ञानों का सिखाया जाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति से मेरा मतलब त्रिदोष (वात पित्त कफ) सिद्धांत पर आश्रित उस चिकित्सा पद्धति से है जो रोगी की वैयक्तिक प्रकृति-जीवित जागृत वैयक्तिक प्रकृति का तथा उसी दृष्टि से वस्तुओं के दिव्य गुणों का ध्यान रख कर प्रवृत्त होती है। परीक्षित और उत्तम औषध द्रव्य तो इसमें नये नये भी लिये जा सकते हैं। विषमोपचार (एलोपैथी) के साथ इसमें समोपचार (होमिओपैथी) की चिकित्सा भी की जा सकती है। स्वस्थवृत्त (हाईजीन) और प्राकृतिक उपचार (नेचरोपैथी) तो आयुर्वेद के सब से आवश्यक भाग हैं। पर फिर भी जो आयुर्वैदिक पद्धति में और वर्तमान पाश्चात्य पद्धति में भेद है वह यही कि यह हमारी पद्धति ऋषियों द्वारा देखे जगत् में काम करने वाले और मनुष्य शरीर में भी काम करने वाले त्रिदोष नामक सत्य और गम्भीर सिद्धांत पर आश्रित है। पश्चिम के विद्वानों ने अपनी विद्या में निपुणता पाई है, कमाल भी किया है। भौतिक अन्वेषण, परीक्षण, शरीर के स्थूल भाग की ज्ञान-

बीन उन्होंने चरम सीमा पर पहुंचा दी है। पर उस सब की श्लाघा करते हुए भी हमें अपनी अधिक ऊंची चीज़ को बेकार समझ फैंक नहीं देना चाहिए। वात पित्त कफ का सम्बन्ध सूक्ष्म और बहुत अधिक प्रभाव रखने वाले तत्वों से है। इसका नाम शरीर-शास्त्र या चिकित्सा शास्त्र न रख कर आयुर्वेद रखने का यही मतलब है कि व प्राचीन ऋषि शरीर को जिस वस्तु का बाह्य रूप या छाया मात्र देखते थे ऐसे जीवन, प्राण (आयु) को ही वे महत्व देते थे और उसका साक्षात ज्ञान करते थे। और आगे कहें तो वे शरीर को आत्मा के लिये समझते थे, न कि आत्म विमुख भोग के लिए। इसे ही मैं आयुर्वेद की भावना कहता हूं। संक्षेप में कहें तो आयुर्वेद पद्धति अन्तर्मुखी है, आत्मा को मुख्यता देने वाली है, अतएव सूक्ष्म प्राण, वात पित्त कफ, धातु आदि सूक्ष्म किन्तु सजीव और परस्पर संबद्ध तत्वों एवं वैयक्तिक तथा विश्व प्रकृति के आधार पर चिकित्सा करने वाली पद्धति है। दूसरी आजकल की पद्धति बहिर्मुखी, आत्मा की अवहेलना करने वाली, अतएव सूक्ष्म किन्तु जीवित जागृत और बहुत प्रभाव रखने वाली शक्तियों और अतएव वैयक्तिक और जगत् प्रकृति को भी भुलाकर प्रवृत होती।

अतएव जब मैं अपने आयुर्वेद के स्नातकों में देखता हूं कि उनको नाड़ी परीक्षामें निपुण होनेकी जगह स्टेथस्कोप का उपयोग करने का अधिक शौक है, धैर्य पूर्वक रोगी की प्रकृति और रोग का मूल जानने की अपेक्षा अमुक रोग की अमुक औषध है यह जानने की जल्दी है, स्वास्थ्य रक्षा की जगह वे इलाज पर जोर देते हैं, अपने प्राकृतिक उपचार कल्प, पंच कर्म को बिल्कुल एक तरफ कर भस्मों या सूचीवेध में अधिक आस्था रखते हैं, रसायनों और त्रिफलादि सादी दिव्य औषध द्रव्यों की जगह आसुरी तीव्र औषधियां बताना तथा जहां तहां शल्य-क्रिया की सलाह देना उन्हें अच्छा लगता है तो मुझे दुःख होता है। मैं देखता हूं कि हम पथ भ्रष्ट हो रहे हैं। अस्तु। यह सब तो मैंने अपनी ठीक दिशा क्या है यह दिखाने के लिए लिखा है। ठीक दिशा यदि आंख से ओझल न हो जाय तो कुछ न कुछ देर में भटक भटका कर भी पथिक ठीक जगह पर पहुंच ही जाता है।

पर दिशा को बहुत कुछ जानते हुए भी हमारे इस तरह भटकने के दो कारण है—आन्तर और बाह्य। (१) पहिला (आंतर) कारण तो यह है कि गुरुकुल के इस अपने आयुर्वेद महाविद्यालय में ही हम आयुर्वेद का जैसा चाहते हैं वैसा वायु मण्डल नहीं बना सके हैं। इस के लिए गुरुकुल में ऐसे वैद्य आने चाहिये जो वैद्यक के ज्ञान और चिकित्सा में पूर्ण निष्णात और अनुभवी होने के साथ साथ आधुनिक चिकित्सा ज्ञान को भी जानते तथा उसके मुकाबिले में अपनी सुस्पष्ट उत्कृष्टता स्थापित कर सकने वाले हों। इसके सिद्ध होने में तो अभी समय लगेगा। इस बीच में मैं प्रार्थना करता हूं कि इस दिशा में सब महानुभाव, विशेषतः हमारे ही आयुर्वेद के स्नातक गुरुकुल की सब तरह से मदद करें। आयुर्वेद सम्बन्धी अन्वेषण का कार्य ही करने को बहुत है। पर उसमें लगने वाले, अपने को खपा देने वाले व्यक्ति नहीं मिलते। हमारे स्नातक ही अपने को बनाने का ऐसा यत्न करें, और ईश्वर करे वे इसमें सफल हों।

दूसरा (बाह्य) कारण बाहर का वायुमण्डल, विदेशी राज्य, दासता की मनोवृत्ति की प्रधानता है जिससे हमारे ऐसे स्नातक जिन्होंने अपनी आजीविका के लिए ही आयुर्वैदिक शिक्षा ली है पर जिनके सामने कोई आयुर्वेद का या अन्य आदर्श नहीं है अपने स्थान और समय के अनुसार डाक्टरों की तरह रहने में, डाक्टर कहलाने में अपना लाभ देखते हैं। पर मैं उनका ध्यान भी एक दो बातों की ओर खींचना चाहता हूँ जिससे शायद उन्हें यह मालूम होजायगा कि स्वार्थ की दृष्टि से भी उनका डाक्टर की अपेक्षा वैद्य बनना ही अधिक अच्छा है।

(१) गुरुकुलीय शिक्षा दीक्षा ही ऐसी है कि हमारे स्नातक आजकल की डाक्टरी बातों से सुपरिचित होते हुए भी वैद्य के तौर पर ही सफल हो सकते हैं, डाक्टर के तौर पर नहीं। असफल जीवन बिताना हो तो और बात है। पर हमारे स्नातकों के बढ़ने, चमकने, प्रसिद्ध और पारंगत होने की संभावना वैद्यक की दिशा में ही है। डाक्टरी दिशा में सफल होने के लिये हमें अपने को बहुत ही अधिक बदलना होगा जो दुःसाध्य है।

(२) गुरुकुल के स्नातकों से आशा ही जनता वैद्य होने की करती है, डाक्टर की कदापि नहीं। डाक्टरी आधुनिक ज्ञान भी होना हमारे स्नातकों को वैद्यों में ही अन्य केवल वैद्यों की अपेक्षा ऊंचे दर्जे का और अधिक सफल बनाने में सहायक होगा। पर यह हमें वैद्यों की जगह डाक्टर नहीं बना देगा। हमें भी ज़रूर पूरे ठाठ से रहना चाहिये, मगर वह ठाठ वैद्य का होना चाहिये। बंगाल में और विशेषतः कलकत्ते में वैद्यों को, कविराजोंकी इतनी धाक है कि वहां के डाक्टर भी वैद्य के ठाठ से रहते, रहने का यत्न करते हैं और बहुत से एम.बी.बी.एस. होने के बाद कविराज की उपाधि प्राप्त करने का यत्न करते हैं। अतः यदि आयुर्वेदालंकार या वैद्य के अतिरिक्त कुछ और कहलाना ही है तो डाक्टर की अपेक्षा 'कविराज' 'प्राणाचार्य' जैसे कुछ कहलाने की तजवीज़ बेशक करो। वैदिक शब्द चलाना चाहो तो 'भिषक्' कहलाओ। वैद्यों जैसा ही वेश रखो, और वैद्यों जैसा ही अपना औषधालय। डाक्टरी नकल करना पर-धर्म है 'परधर्मो भयावहः'।

(३) और दिनोंदिन अब ऐसा समय आ रहा है जब कि डाक्टरों की अपेक्षा वैद्यों की अधिक ज़रूरत होगी। कांग्रेस तथा अन्य प्रान्तीय सरकारों ने भी ग्रामकेन्द्रों में वैद्यों की ही व्यवस्था शुरू की है-और कुछ नहीं तो केवल इसलिये कि आयुर्वैदिक औषधियाँ और चिकित्सक सस्ते पड़ते हैं। ज्यों २ देश अपने आप में जागेगा त्यों २ आयुर्वेद की ही प्रतिष्ठा बढ़ने वाली है। अतः इस अदूर भविष्य की दृष्टि से भी वैद्य बनने का ही यत्न करना अच्छा है।

अपनी आयुर्वेदालंकार की उपाधि को भी जो अंग्रेज़ी ढङ्ग की बनाने की प्रवृत्ति है, उस पर मैं अगले सप्ताह लिखूँगा।

[पृ० ३ का शेष]

हो सकती है ! क्या तृषार्त, अतएव मृतप्राय चातक के जीवन की रक्षा करने में सिवाय स्वाती की बूँदों के और कोई रस समर्थ हो सकता है ! यदि नहीं, तो क्या ऐसे आड़े समय में भी उस रोगी को, सहृदय सुहृत् के समान प्राप्त हो सकने वाली औषधियों की सहायता से वञ्चित रखना किसी प्रकार भी समुचित हो सकता है ?

जिस प्रकार मित्र दो प्रकार के होते हैं उसी प्रकार औषधियां भी दो प्रकार की होती हैं। प्रथम प्रकार की वे होती हैं जो पारदर्शक सौहार्द-युक्त मित्र के समान सदा कल्याण करने वाली ही होती हैं। दूसरे प्रकार की औषधियां वे होती हैं जो "विषकुम्भं पयोमुखम्" मित्र के समान ऊपर से तो sugar-coated होने से, खरी मालूम होती हैं परन्तु अन्दर से विष-भरी होती हैं।

जिस रोगी को, भाग्य से, प्रथम प्रकार की औषधि समुपलब्ध हो जाती है, वह, उसका—सूखती खेती का धारासार में बरसते जल के समान—क्या उपकार नहीं कर गुजरती ! क्या ऐसी औषधि के अमृतमय जल-बिन्दुओं द्वारा उसमें नव-जीवन का सञ्चार नहीं होजाता ! तब यदि वह रोगी, निम्न सुन्दर शब्दों में किये गये:—

"शोकाराति-परित्राणं, प्रीति-विस्रम्भ-भाजनम्
केन रत्नमिदं सृष्टं, मित्र मित्यक्षरद्वयम्" ॥

एक सन्मित्र के अभिनन्दन के समान, उस औषधि का भी इसी प्रकार का अपूर्व स्वागत करे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात हो सकती है !

परन्तु जिस रोगी के सिर पर, भाग्य के फेर से, दूसरे प्रकार की औषधि पड़ जाती है, तो वह भी उसका—सूखती खेती पर पड़े ओलों के समान—सर्वनाश करने में क्या कसर छोड़ देती है ? तब यदि वह "विषकुम्भं पयोमुखं" मित्र के समान प्राप्त हुयी उस औषधि को सदा के लिये नमस्कार करना ही श्रेयस्कर समझने लगे तो इस में भी आश्चर्य की क्या बात हो सकती है ! तुलसी दास जी भी तो ऐसा करने की ही अनुमति देते हैं।

"आगे कह मृदु बात बनाई, पाछे अनभल मन कुटिलाई।
जाकर चित अहिगति सम भाई, अस कुमित्र परिहरे भलाई।"

जिन रोगियों को दो चार बार, द्वितीय प्रकार की औषधियों से वास्ता पड़ जाता है वे 'दूध से जला छाछ फूँक २ कर पीवे" की कहावत के अनुसार औषधि मात्र से सशङ्क हो ही जाते हैं। जिस प्रकार, मित्ररूप में आगे परन्तु शत्रु-रूप में प्रगट हुवे कुमित्रों से तङ्ग आये मनुष्य मित्रता करने से ही विमुख हो जाते हैं, उसी प्रकार द्वितीय प्रकार की औषधियों से तङ्ग आये रोगियों ने भी यदि औषधि मात्र का बायकाट करना प्रारम्भ कर दिया है तो इसमें आश्चर्य का क्या विषय है। उनके इस बायकाट के कारण ही आज नाना विविध प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियां फलती फूलती दिखाई दे रही हैं जिनका हम भी स्वागत करते हैं।

परन्तु, एक प्रकार की औषधियों से हानि उठाने के कारण औषधि-मात्र का बायकाट करना कहां तक न्याय-संगत है यह भी एक विचारणीय समस्या है।

क्या एक दो बादामों के कड़वा निकलने पर सब बादाम गोदाम में बन्द कर दिये जाते हैं ? क्या, प्रथम २ चम चमाते हुवे पीतल के आभूषणों को कुछ दिनों बाद मन्द-प्रभ होता पाकर धातु मात्र के आभूषण बनवाना बन्द कर दिया जाता है ! क्या संसार में कोई ऐसी धातु विद्यमान नहीं है जो न केवल वायु, अपितु जल तथा अम्लों से प्रभावित हुवे बिना अनन्तकाल तक अपनी आभा को बनाये रख सके ! यदि इस प्रकार की धातु उपलब्ध हो सकती है तो क्या कारण है कि विवेक-शील पुरुष आभूषण धारण करना ही छोड़ दें।

यदि चक्षु-विहीन पुरुष के सिर पर एक बार अचानक सर्प गिर चुका हो तो, वह तो पहरायी गई उत्तम से उत्तम पुष्पमाला या मणिमाला को भी सर्प समझ कर एकदम उतारकर फेंकने का ही प्रयत्न करेगा। परन्तु, क्या प्रज्ञा चक्षु संपन्न त्रिनेत्र पुरुषों को भी इसी प्रकार का व्यवहार करना समुचित हो सकता है ! तब, क्या बुद्धिमान् पुरुषों को भिन्न २ प्रकार की सब चिकित्सा-प्रणालियों का गुण-दोष विवेचन करने के पश्चात् ही संग्रह व त्याग का कार्य नहीं करना चाहिये !

जब कसौटी पर कस कस कर सब धातुओं की परीक्षा की जा सकती है तथा यह जाना जा सकता है कि इनमें से सर्वश्रेष्ठ धातु कौनसी है; तो क्या कारण है कि इसी प्रकार की किसी कसौटी द्वारा यह ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाय कि प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों में कौनसी चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है—अतएव उपादेय है !

चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता-निर्णायक कसौटी इसके अतिरिक्त और क्या हो सकती है कि:—

जो चिकित्सा-प्रणाली,—

(१) अपने सुबोध नियमों के आधार पर प्रवर्तित हो;
(२) मृदु-तम प्रक्रिया द्वारा, अस्वस्थ मनुष्यों को—
(३) शीघ्रातिशीघ्र तथा
(४) स्थायीरूपेण

स्वस्थ करने की शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हो, वही चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्कृष्ट समझी जाय।

चिकित्सा-प्रणालियों को—सर्वोत्कृष्टता-निर्णायक—इससे श्रेष्ठ और क्या कसौटी हो सकती है !

जिस चिकित्सा-प्रणाली के कर कमलों में, दुर्जन मनुष्यों के मन-गह्वर में कटूक्ति के समान, प्रतिक्षण तीक्ष्ण छुरी धरी रहती है उसका मृदुता से भला क्या सम्बन्ध हो सकता है ! जो चिकित्सा-प्रणाली दुग्ध-मुख बालकों तथा अबलाओं पर भी वज्र प्रयोग किये बिना नहीं चूकती उसे मृदुता का समर्थक कहना मृदुता का उपहास करना नहीं तो और क्या हो सकता है ?

क्या, दर्द-गुर्दा से मुर्दा हुवे मरीज़ को, शीघ्रातिशीघ्र यातना-विमुक्त कर देने के कारण जो मारफिया इञ्जेक्शन पहिले स्वर्गीय दूत सा दिखाई देता है, वही—स्थायी—

रूपेण रोग-विमुक्त करने में असमर्थ होने तथा नाना विध अन्य उपद्रव खड़े कर देने के कारण—बालकों—बुरी तरह नहीं खटकने लगता। इस प्रकार—चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी पर हर प्रकार से खोटा उतरने पर भी जो चिकित्सा-प्रणाली

"को जोधा जग मोहि समाना"

की घोषणा डङ्के की चोट के साथ कर सकती है उसे इसके सिवाय और क्या उत्तर दिया जा सकता है कि:—

"निज मुख-मुकुर-विलोकहु जाई"

जो धातु कसौटी पर स्वर्णीय आभा-युक्त रेखा देने में असमर्थ होने पर भी सर्वश्रेष्ठ धातु होने का दावा करे—उसे इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि अब उसे अपनी अन्तरङ्ग परीक्षा कराने के लिये तय्यार हो जाना चाहिये। यदि—

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदन-ताप-ताड़नैः
तथा चतुर्भिःपुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन, शीलेन,श्रुतेन, कर्मणा॥"

के अनुसार परीक्षा करने पर जो धातु छेदन, ताप, तथा ताड़न की अन्तरङ्ग परीक्षाओं —छिन्नभिन्न, मलिन तथा विदीर्ण हो जाती है, वह भला निघर्षण की बाह्य परीक्षा में किस प्रकार खरी उतर सकती है।

इसी प्रकार—आयुर्वेद के निम्न श्लोक—

"रोगमादौ परीक्षेत, तदनन्तरमौषधम्
ततः कर्मभिषग् सम्यग्-ज्ञान पूर्वं समाचरेत्।

के अनुसार—जिस चिकित्सा प्रणाली में:—

(१) रोगी में रोग का सम्यग्-ज्ञान
(२) औषधि में औषधित्व का सम्यग् ज्ञान तथा
(३) रोगी में औषधि के प्रयोग करने के नियम का सम्यग् ज्ञान नहीं पाया जाता, वह भला, रोगी को मृदुतम प्रक्रिया द्वारा, शीघ्रातिशीघ्र तथा स्थायी रूपेण किस प्रकार रोग-विमुक्त कर सकती है।

चिकित्सा-प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी पर खोटा उतरने पर भी, जब कुछ एक चिकित्सा प्रणालियां सर्वोत्कृष्ट होने का दावा करती ही चली जाती हैं, तब, उनका इन तीन अन्तरङ्ग परीक्षाओं में से गुजरना आवश्यक ही हो जाता है। अतः चिकित्सा-प्रणालियों की अन्तरङ्ग परीक्षा का यह दुष्कर कार्य अगले अध्याय से प्रारम्भ किया जायगा।

गुरुकुल-समाचार

गत सप्ताह आसमान में पर्याप्त बादल छाए रहे और वर्षा अच्छी हुई। १२ दिसम्बर को कुलभूमि में मकर संक्रान्ति का त्यौहार बड़े उल्लास पूर्वक मनाया गया। इस में सब कुल वासियों ने बड़ी उमंग के साथ भाग लिया।

बलरामपुर हाकी टूर्नामेन्ट में—गुरुकुल-दल का सुन्दर प्रदर्शन

इस वर्ष ४ जनवरी से प्रारम्भ होने वाले अखिल भारतीय बलरामपुर टूर्नामेन्ट में गुरुकुल का हाकी-दल पूरी तैयारी के साथ सम्मिलित हुआ। गुरुकुल के अतिरिक्त, रामपुर टाइगर्स, वी. वाई. ए. लखनऊ, भूपाल सिकन्ड्रियन, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, नैनीताल-गोल्डन कलब आदि सुप्रसिद्ध टीमें भी सम्मिलित हुई थी। नगर निवासियों और टूर्नामेंट कमेटी वालों में भी गत वर्षों की अपेक्षा अधिक उत्साह दृष्टि गोचर होता था। महाराजा साहब और महारानी साहिबा ने इन मैचों में पर्याप्त दिलचस्पी प्रदर्शित की। यूँ तो प्रति दिन ही क्रीड़ा क्षेत्र के चारों ओर जनता हजारों की संख्या में एकत्रित होती थी किन्तु जिस दिन गुरुकुल का मुकाबला होता था उस दिन भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था। खेल प्रारम्भ होने के घण्टों पूर्व से ही लोग उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करते थे। खेल प्रारम्भ होने पर जनता तथा हाकी के विशेषज्ञ दोनों ही, गुरुकुल के खिलाड़ियों के हस्तकौशल और सफाई की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे और शाबासी देकर उत्साह बढ़ाते थे। प्रथम मैच में गुरुकुल दल ने गोंडा-डिस्ट्रिक्ट की मशहूर टीम को ३ गोल से हराया। अगले दिन बनारस हिन्दूयूनिवर्सिटी और रामपुर टाइगर्स का मैच भी अत्यन्त दिलचस्प रहा। रामपुर टाइगर्स ने गत दो वर्ष तक लगातार इस टूर्नामेन्ट का कप जीता था, किन्तु इस वर्ष २ दिन तक सफल मुकाबला करने के पश्चात् भी तीसरे दिन यह दल हिन्दू यूनिवर्सिटी से २ गोल से पराजित हुआ। गुरुकुल दल का अगला मैच इसी हिन्दू युनिवर्सिटी की टीम से पड़ा। गुरुकुल दल के खिलाड़ी दुगने उत्साह और परिश्रम के साथ खेले और अन्त में ३ गोल से विजयी हुए। इस मैच में ब्रह्मचारियों की क्रीड़ा दक्षता, दृढ़ परिश्रम और सहन शीलता से प्रसन्न होकर राज्य की महारानी साहिबा ने १०१) उपहार में दिए और सुन्दर खेल की तारीफ की। सर्वत्र नगर में ब्रह्मचारियों के अद्भुत कौशल की प्रशंसा होती रही।

प्रदर्शनार्थ किए गए मैचों में, तथा प्रैक्टिस मैचों में गुरुकुल दल के २ सर्वोत्तम खिलाड़ियों को दुर्भाग्यवश भारी चोटें लगी जिनके कारण वे अन्ततक खेलने में अशक्त रहे। यद्यपि इन्हीं कारणों से गुरुकुल का दल लखनऊ की टीम से अतिरिक्त समय में पराजित हुआ तथापि १ घण्टे तक इस दल ने विपक्ष का जो सफल मुकाबला किया उसके कारण सर्वत्र प्रशंसा हुई। टूर्नामेन्ट समाप्त होने पर सर्वोत्तम दल (Best Team) का पारितोषिक 'गुरुकुल' को ही प्राप्त हुआ। बलरामपुर की जनता की यह गुण ग्राहकता प्रशंसनीय है।

गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० राजकुमार १३ श्रेणी कामला, ब्र० दिनमणि ११ श्रेणी मलेरिया, ब्र० विश्वामित्र ११ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० श्यामनिवास १ श्रेणी निमोनिया, ब्र० सन्तकुमार १ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० वीरेन्द्र ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० रामेश्वर २ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० कपिल ४ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० सत्यव्रत ५ श्रेणी मलेरिया ज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब अच्छे हो रहे हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ओ३म्॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १२ माघ १९९७; २४ जनवरी १९४१ [संख्या ४०

वेद (ब्राह्म) धर्म ही सर्वतोभद्र क्यों है ?

(लेखकः—आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति वेदमनीषी रिसर्च स्कोलर सूरत)

धर्म मानव आत्मा का स्वाभाविक रस है, असभ्य से असभ्य और नास्तिक से नास्तिक प्रजा में भी धर्म की ज्योति टिम टिमा रही होती है। सभ्यता एवं ज्ञान के विकास के साथ तो यह धर्म की ज्योति तीव्रतर और गंभीर होती जाती है इस लिये धर्म जहां स्वाभाविक है वहां आवश्यक भी है। धर्म के क्षेत्र में ऊंच नीच, नया पुराना आदि भेद निस्सार है। व्यवहार की अध्यात्म भाषा धर्म है और धर्म की लौकिक व्याख्या व्यवहार है। इस दृश्य जगत् से परे कोई गूढ अज्ञात तत्व आंख मिचौना खेल रहा है, यह सत्य शिव और सुन्दर है, इसकी झलक को पकड़ने में लगे हुवे सतृष्ण नयन ही धर्म के स्रोत हैं। उपनिषदों, गुह्याद्गुह्यतम वेदों के सूत्र, उच्छिष्ट एवं स्कंभ की उलझनों को जो धर्म अधिक से अधिक सरलता से सुलझा सकता है वही उत्कृष्ट समझा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जो धर्म जीवन में ओत प्रोत होकर सर्व देशी (Universal all sided) होवे वही सर्वतो भद्र होता है। इस कसौटी पर वेद धर्म ही कसा जाता है। वेद धर्म को ही ब्राह्म धर्म या हिन्दु धर्म कह सकते हैं। वेद-धर्म का मूल वेद हैं, श्रुति हैं। ये महान् प्रभु के "निःश्वसितमेतत्" निश्वास हैं। ब्रह्माण्ड के अणु अणु में प्रतिक्षण सुनाई देने वाले इस निश्वास को, गहरी ध्वनि को श्रुति और श्रुति-प्रतिपादित धर्म सुनाते हैं। अतः वेद धर्म ही शाश्वत और सनातन है; व्यापक एवं सर्वमतों का उद्गम स्थान है।

१. सब के लिये व्यवस्था:—धर्म का परम साध्य आत्मा की परम शांति है। मानव आत्माओं की विविध रुचि और अनुकूलता के भेद से इसे पाने के लिये अनेक मार्ग हैं। बालक—बूढा, सभ्य-असभ्य हर एक को जो धर्म अधिकार के अनुसार मार्ग बताता है वही धर्म सर्व प्रिय होता है—"अधिकारिभेदात् धर्मभेदः"। हरेक व्यक्ति अपनी अपनी वृत्ति के अनुसार जीव, शिव तथा प्रकृति की त्रिवेणी में स्नान किया करता है। इन सब वृत्तियों को संतोष देने के लिये जिस धर्म में पूर्ण साधन बताये गये हों वही धर्म, मूल-भूत धर्म है। यूं तो हर धर्म में समय समय पर आवश्यकतानुसार साधनों में परिवर्तन की प्रथा रही है परन्तु जिसमें ज्ञान, कर्म, भक्ति, त्याग, वैराग्य, परोपकार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि साधनों को सर्वांग सम्पूर्ण रूप में उपस्थित किया गया हो वही सर्व श्रेष्ठ धर्म है और ऐसा एक वेद धर्म ही है। इस में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी हर एक कोटि के मनुष्य के लिये स्पष्ट मार्ग तथा साधन हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र हर वर्ण के धर्म बताये गये हैं।

२. आत्मा तथा अनात्मा को योग्य महत्वः—वेद में ईश्वर, जीव तथा प्रकृति का स्वरूप बताते हुवे तीनों को ही उपादेय बताया गया है। ब्राह्म धर्म शब्द में ब्रह्म का अर्थ ईश्वर [ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति] जीव तथा प्रकृति [मम योनिः महद्ब्रह्म] तीनों ही है। इन तीनों तत्वों का क्रमशः अधिगत करके ही मानव आत्मा अपना कल्याण कर सकता है—यह ब्राह्म धर्म का रहस्य है। वेद में लिखा है—

"उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त: उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्" उत् (तम: matter) उत्तर तथा उत्तम इन तीन ज्योतियों को जानकर ही साधक पूर्ण ध्येय को पा सकता है। वेद धर्म जगत् को शून्य, अलीक एवं माया बताकर "पर" की माया मरीचिका में भटका कर साधक का इह तथा परलोक नष्ट नहीं करता है।

होमियोपैथी तथा अन्य-चिकित्सा प्रणालियों में रोगी-परीक्षा

(ले० श्री डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार बिजनौर)

जिस चिकित्सा-प्रणाली द्वारा रोगी में रोग का सम्यग्ज्ञान-यथार्थज्ञान—प्राप्त नहीं हो सकता, वह रोगी को मृदुतम प्रक्रिया द्वारा, शीघ्रातिशीघ्र तथा स्थायी रूपेण रोग-मुक्त भी किस प्रकार करा सकती है? अतः, आयुर्वेद कहता है:—

"यस्तु रोगमविज्ञाय, कर्माण्यारभते भिषग्
अप्यौषध विधानज्ञः, तस्य सिद्धिर्यदृच्छया।"

जो चिकित्सक, औषधियों के विधान से विज्ञ होने पर भी, रोग का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किये बिना चिकित्सा का कार्य्य करता है उसे घुणाक्षर न्याय से ही, कभी २, सफलता प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास तो विकार (रोग) का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किये बिना, चिकित्सा के आरम्भ करने का ही निषेध करते हैं:—

"विकार परमार्थतोऽज्ञात्वा, अनारम्भः प्रतिकारस्य"।

अतः चिकित्सक के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह, रोगी में उसके उस रोग-विशेष का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो जाय जिसका प्रतिकार करना उसे अभीष्ट है। चूँकि, चिकित्सक को, रोगी में ही रोग का प्रतीकार अभिप्रेत होता है अतः, उसके सम्मुख, सबसे प्रथम, यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि—

रोगी कौन है ?

इसका उत्तर स्पष्ट है कि जिसमें रोग रहता है वही रोगी हो सकता है। रोग किसमें रह सकता है—रोग का अधिकरण अथवा अधिष्ठान कौन होता है—इस विषय में भिन्न २ चिकित्सा प्रणालियों का भिन्न २ मत है।

एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली के मत में रोग का अधिष्ठान क्या है? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर तो पाया नहीं जाता, परन्तु, उसकी रोग की निम्न परिभाषा से कि "शरीर की रचना तथा कार्य्यों में परिवर्त्तन आजाने को ही रोग कहते हैं" ((Any alteration of structure or function of the body is called a Disease) यही प्रतीत होता है कि उसके मत में रोग का अधिष्ठान, इस प्रत्यक्ष लक्षित शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसकी Physiology की पुस्तकों का अध्ययन करने से भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है। एलोपैथ्स द्वारा लिखी गयीं "शारीरिक-विज्ञान" की किसी पुस्तक में भी शरीर सम्बन्धी विचार के अतिरिक्त अन्य किसी सूक्ष्म शक्ति या आत्मशक्ति का प्रसंग तक नहीं आया है ऐसी अवस्था में जब इस दृश्यमान मूर्त शरीर के अतिरिक्त आत्मा का अधिष्ठान भी इसके अतिरक्त और कहां हो सकता है! तब तो यही मानना पड़ता है कि इस शरीर का ही जी मिचलाता है, इसी के पेट में दर्द होता है तथा इसी के हाथ पैर कांपने लगते हैं। परन्तु जब इस शरीर को शव-स्वरूप मान लिया जाता है, तब इसमें से क्या निकल जाता है? जिसके अभाव में ना तो इसका जी ही मिचलाता है, न पेट में दर्द होने का अवसर ही आता है, नां ही इसके हाथ पैरों का कभी कंपन ही हो पाता है! इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि इसमें से निकल तो कुछ नहीं जाता परन्तु, चूंकि यह एक सर्वथा बिगड़ी मशीन के समान बेकार होजाता है अतः इसके पेट में दर्द इत्यादि का होना भी सदा के लिये समाप्त हो जाता है। इसी लिये, इसे तब अग्निसात् अथवा भूमिसात् कर दिया जाता है!

यदि मनुष्य का यह शरीर, साधारण मशीनों की ही समानता रखता है तो अन्य मशीनों के प्रतिकूल, यह अपने आप विकास तथा ह्रास को कैसे प्राप्त होजाता है, तथा, अपनी प्रतिकृति सी दूसरी मशीनें इसमें से ही कैसे उत्पन्न कर देता है? यद्यपि इन प्रश्नों का समुचित उत्तर देना एक अनात्मवादी के लिये बड़ी टेढ़ी खीर है, तथापि यह, "इस मशीन की ऐसी ही प्रकृति है" इत्यादि तर्कना शक्ति की कसौटी पर खोटे उतरने वाले कुछ न कुछ उत्तर देकर अपना पिण्ड छुड़ा ही लेते हैं।

परन्तु, उसके इस जड़वाद से संसार की चेतना-युक्त क्रियाओं की व्याख्या होना उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार गूदड़ के भेड़िये से भेड़ों को भगाना! क्या सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का सृष्टि-क्रम, अदृश्य सूक्ष्म शक्ति-स्वरूप आत्मा के अस्तित्व में संशय करने हुवे समझ में आ सकता है? क्यों, एक जीव, जन्मते ही, चामीकर की कलंगी से मधुमय पय चटाया जाकर, चांदी के गुदगुदे-गद्दोंदार पालने में झुलाया जाता है; तथा दूसरा जननी के स्तन्य से भी वञ्चित कराकर, सिसकियां भरता हुवा, उसी समय, सीधा स्वर्गलोक में पहुँचा दिया जाता है इत्यादि प्रतिदिन घटित होती घटनाओं की व्याख्या क्या, आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना हो सकती है? शास्त्र कहता है

"दारिद्र्य-रोग-दुःखानि, बन्धन व्यसनानि च
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्"॥

इस श्लोक से यह बात कितनी स्पष्ट होजाती है कि इन दारिद्र्य, रोग, दुःखादि का बोज बिना आत्मा के अधिष्ठान के और कहीं जम हो नहीं सकता। अन्यथा, शव-शरीर को रोग छोड़ते ही नहीं; दुःख, और कहीं डेरा डालते ही नहीं, तथा मुसीबत, फिर और किसी को सताती नहीं!

जिस चिकित्सा प्रणाली में रोग का अधिष्ठान केवल मूर्त्त शरीर को ही माना जाता है, उसमें—रोग का स्वरूप भी शरीर के तन्तुओं के परिवर्तन (Tissue-change) तथा उनके कार्यों में परिवर्तन आजाने के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है! उसमें, रोगी वही माना जाता है जिसका या तो जिगर—कोई अङ्ग, घट बढ़ गया हो गया हो या फिर उसके मलमूत्र का अदल बदल ही गया हो। परन्तु जिस मनुष्य की इच्छा, आत्मघात करने की होने लगती है, वह, इस चिकित्सा-प्रणाली में रोगी कैसे कहा सकता है? क्योंकि उसमें रोग का मूर्त्त रूप लक्षित नहीं हो पाता। जिस मनुष्य के सब

अङ्ग प्रत्यङ्ग यथास्थान सुरक्षित हैं तथा उनकी रचना या सब कार्य्यों में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाया है—वह, भला रोगी हो भी कैसे सकता है!

क्या एक एलोपैथी का उपासक उसे स्वस्थ कर सकता है? वह उसे स्वस्थ करने में प्रवृत्त तो तभी हो जब उसे वह पहिले अस्वस्थ तो मानले! परन्तु जिस मनुष्य के शरीर में कोई तन्तु-परिवर्तन ही दृष्टिगोचर नहीं होता उसे वह रोगी मान भी कैसे ले! उसके लिये तो ऐसे तथाकथित रोगी को स्वस्थ करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी लिये वह उसको उसका Neurasthenic अथवा अन्य कोई सुन्दर सा नामकरण संस्कार कर के, चलता कर देता है।

परन्तु, प्रश्न होता है कि वह मनुष्य, क्या वास्तव में ही रोगी नहीं है? यदि रोगी न होता तो उसके हृदय में रोगी होने का भाव ही क्यों उठता? उसको अन्तरात्मा उसे किसी चिकित्सक के पास ही क्यों पहुँचाती? जब उसका आत्मा, मन तथा इन्द्रियां अप्रसन्न-At-Disease हुयीं तभी तो, उनको-At-ease-या प्रसन्नावस्था में लाने के लिये, वह, चिकित्सक के पास पहुँचा! परन्तु जिस चिकित्सा प्रणाली में, आत्मा तथा तथा मन की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का कुछ विचार नहीं किया जाता, वह उसकी क्या चिकित्सा कर सकती है? जो चिकित्सा प्रणाली, अपने मूर्त्तवाद के कारण, अस्वस्थ मनुष्यों को अपने द्वार से कोरा लौटा देती है, वह भला-सर्वांगकुशलता का दावा क्या कर सकती है?

अब, एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में-रोग के अधिष्ठान तथा रोग के स्वरूप को मूर्त्तरूप में माना जाता है, तब उसमें रोगोत्पादक पदार्थों (रोग के कारणों) को भी मूर्त्तरूपधारी मानना आवश्यक हो जाता है। इसी लिये, उक्त प्रणाली में, सब रोगोत्पादक पदार्थ प्रायः कीटाणुओं के रूप में ही माने जाते हैं।

क्या मूर्त्त-शरीर-धारी कीटाणु, रोग का कारण हो सकते हैं? क्या, टाईफाइड-ज्वर से ग्रस्त रोगी के रक्त में जबतक कीटाणुओं की उपलब्धि नहीं हो जाती तबतक वह रोगी नहीं होता? यदि कहो- "होता है" तब तो उसका कीटाणुओं के बिना रोग-ग्रस्त होना सिद्ध हो जाता है। यदि उसके रुग्ण होने के पश्चात् कीटाणुओं की उपलब्धि होती है, तब कीटाणु रोग का कारण हुये अथवा कार्य्य? क्या विष्ठा के टोकरे उठा ले जाने वाले मेहतर गन्दगी का कारण होते हैं? क्या इसी प्रकार यह कीटाणु, रेड क्रौस सोसाइटी के सदस्य अथवा Scavengers नहीं हो सकते जो सदा मारपीट के बाद ही पहुँचते हैं? जिस प्रकार स्नान प्रायश्चित्तादिक करने के बाद मेहतर लोग विशुद्ध हो जाते हैं, क्या इसी प्रकार ये कीटाणु बार बार के परिमार्जन के बाद हानि-हीन नहीं हो जाते?

जिन रोगों के कीटाणुओं की उपलब्धि अभीतक नहीं हो पायी है, क्या, उनसे—उन सूक्ष्म शक्तियों से—मनुष्य प्रभावित नहीं होते? क्या चेचक तथा मसूरिका (Measles) के कीटाणुओं की अभीतक उपलब्धि हो सकी है? क्या इन रोगोत्पादक पदार्थों के वायु मण्डल में वर्त्तमान सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों से रोगी नहीं होते?

जिस चिकित्सा-प्रणाली में, रोग का अधिष्ठान, रोग का स्वरूप तथा रोग के कारण, यह सब ही मूर्त्त-रूप में माने जाते हों, उसमें चिकित्सा का प्रकार भी यदि मूर्त्त रूपता की पर काष्ठा को पहुँच जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात हो सकती है! टांसिल बढ़ गये हों तो छांट दो; कैन्सर हो गया हो तो-काट दो; व्रण हो गया हो तो-फाड़ दो' इत्यादि जङ्गली-लाठ-साहिबी चिकित्सा, इसी जड़-वाद की प्रस्तरमयी नींव पर आश्रित है।

क्या ऐसी चिकित्सा प्रणाली के उपासकों ने, शान्त चित्त से कभी इस बात पर विचार करने का कष्ट उठाया है कि उनकी इस कठोर चिकित्सा का रोगियों पर भविष्य में क्या प्रभाव होगा? क्या कटे टौंसिल वाले रोगी, बाद का, क्षय-रोग के मार्जार द्वारा नहीं दबोच लिये जाते? ऐसी अवस्था में, उन को यह चिकित्सा क्या कहा सकती है?

हमें याद है कि, एक बार स्कूल में बड़ी गड़बड़ी हो रही थी। समझा यह गया कि उक्त स्कूल के लड़के बड़े शरारती हैं। हेड मास्टर साहिब ने दो चार लड़कों को बेंत उड़ादी तथा कुछ को स्कूल की चार दीवारी से बाहर कर दिया। कुछ दिन तक तो इस दण्ड-विधान का ऐसा आतङ्क सा छा गया कि किसी ने चूँ कि तक भी न की। परन्तु शीघ्र ही एक छोटी सी बात पर सारा स्कूल अखाड़ा बन गया। ज्यों २ झगड़े को दबाने का यत्न किया जाने लगा त्यों २ फुटबाल के ब्लैडर के समान वह ऊपर को उछलने लगा। अन्त में इसकी सूचना इन्सपैक्टर साहिब को पहुंची। उन्होंने चुपके से एक नीति कुशल हेड मास्टर को भेज दिया जिसने शरद् ऋतु के समान आते ही, उस उफनती नदी को एक दम शान्त कर दिया।

क्या यह सब रगड़ा झगड़ा स्कूल के लड़कों के बिगाड़ के कारण उठा था? यदि नहीं—तो क्या हमारे शरीर में जो कुछ रोगों का उफान सा आया करता है वह केवल शरीर के बिगाड़ के कारण ही हुआ करता है? जिस प्रकार स्कूल के लड़कों के अधिष्ठाता के बिगाड़ या सुधार पर सारे स्कूल का बिगाड़ या सुधार निर्भर करता है, क्या, उसी प्रकार, इस शरीर के अधिष्ठाता के बिगाड़ या सुधार पर सारे शरीर का बिगाड़ या सुधार निर्भर नहीं होता? तब, इस शरीर का कोई अधिष्ठाता न मानना, और, उस पर किसी अपर शक्ति के अधिकार होने पर उसे अस्वस्थ हुवा हुआ तथा उसका प्रतिकार या परिहार हो जाने पर, उसे पुनः स्वस्थ हुवा न समझना, कहां तक न्याय-सगत हो सकता है?

क्या कलक्टर साहिब के नीति कुशल तथा सावधान रहने पर, ज़िले में बलवा हो सकता है? क्या, ज़िले में शान्ति-स्थापित रखने का श्रेय सिवाय ज़िलाधीश के किसी और को मिला करता है? इसीलिये मनु महाराज कहते हैं:—

"राजा कालस्य कारणम्"

[शेष पृ० ५ पर]

गुरुकुल

१२ माघ शुक्रवार १९८७

अंग्रेजी उपाधि का मोह

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी)

गत सप्ताह में एक आयुर्वेदालङ्कार बन्धु का पत्र उद्धृत कर चुका हूं जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'डाक्टरी ठाठ से रहने वाले स्नातकों को अपनी आयुर्वेदालङ्कार डिग्री को भी अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। O, M. Sc. (Kang), A. V. A (Kang) आदि लिखना आम हो गया है।' इसी विषय में एक और आयुर्वेद के स्नातक लिखते हैं। मैं उनके विस्तृत पत्र को लगभग समूचा ही नीचे उद्धृत करता हूं; क्योंकि इससे मेरा काम बहुत सा हलका हो जाता है :—

"अभी कुछ दिन हुए गुरुकुल के एक स्नातक के साथ गुरुकुल की उपाधियों के बारे में मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। वे एक वेदालङ्कार हैं परन्तु अपने नाम के साथ सदा विद्यालङ्कार लगाया करते हैं। मैंने उनसे पूछा था कि क्या यह उचित है? वे कहते हैं कि 'वेदालङ्कार' डिग्री को कोई नहीं जानता और विद्यालङ्कार काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी है, फिर वेदालङ्कार कहने से ऐसा लगता है कि मानों हमें वेद के सिवाय कुछ नहीं आता; हम पुराने पण्डितों जैसे तनीदार अङ्गरखे और पगड़ी वाले एक पण्डित होंगे, और विद्यालङ्कार कहने से कुछ दूसरी ही तरह का असर जमता है। मैंने उन्हें यह उत्तर दिया था कि जहां तक ख्याति का सम्बन्ध है विद्यालङ्कार डिग्री भी शुरू में उतनी ही नई और एक अजूबे की चीज़ रही होगी जैसा कि आपकी रायमें वेदालङ्कार है। इस उपाधिसे विभूषित स्नातकों ने ही इसे प्रसिद्ध किया है तो क्या वेदालङ्कार उपाधि वाले स्नातक यदि योग्यता रखते होंगे तो अपनी उपाधि को वैसा ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय न बनालेंगे। और फिर मैं तो यह मानता हूं कि गुरुकुल के स्नातक को अपने स्नातकपन अथवा अपनी उपाधि के सहारे खड़े होने की कोशिश ही न करनी चाहिये। मेरे ख्याल में उनका यह कर्तव्य है कि वे पहले अपने आप कुछ बन कर दिखाएं और फिर अपने बल पर गुरुकुल और उसकी दी हुई उपाधि का नाम उज्वल करें।

(यहां प्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकारनाथ जी का एक दृष्टांत देकर वे लिखते हैं)

'अस्तु, मैंने उन्हें लिखा कि आदर्श की बात भले हो जाने दीजिए पर यदि आप वास्तव में यह अनुभव करते हों कि आपकी उपाधि वेदालङ्कार की जगह विद्यालङ्कार होनी चाहिए तो आपको चाहिए था कि शुरूमें ही वेदमहाविद्यालय की जगह साधारण महाविद्यालय में प्रविष्ट होते और यदि स्नातक बनने के बाद आपको यह अनुभव हुआ हो तो आपको चाहिए कि आप अपनी सम्मति वाले स्नातकों के साथ मिल कर एक ही उपाधि कर देने का (क्योंकि पाठ्यक्रम साधारण तथा वेदमहाविद्यालय का लगभग एकसा ही है) आन्दोलन करें। परन्तु जब तक गुरुकुल आपकी उपाधि में परिवर्तन नहीं करता तब तक यदि आप अपनी उपाधि से भिन्न गुरुकुल की ही किसी अन्य उपाधि का उपयोग करते हैं तो यह अनुचित है।

"यह तो फिर भी कुछ कम है पर आयुर्वेद के स्नातक तो कमाल कर देते हैं। जनता की गुलामी की मनोवृत्ति के कारण संस्कृत शब्दों की अपेक्षा अंग्रेजी शब्दों का ज्यादा मान होता है अतः आयुर्वेद के स्नातक भी अपने आप को आयुर्वेदालङ्कार और वैद्य लिखने की जगह डाक्टर और O. M. Sc. अर्थात् आयुर्वेदालङ्कार का अंग्रेजी अनुवाद Ornament of medical science लिखते हैं यह कैसी हास्यास्पद चीज है! हां कई लोग O. M. Sc. (Kang) लिखते हैं जिससे जनता पर यह प्रभाव पड़े कि शायद यह विदेश की कोई बड़ी भारी डिग्री लेकर आए हुए हैं। इससे तो मुझे दासता की मनोवृत्ति और Inferiority Complex ही दिखाई देता है। पर क्या यह गुरुकुल की उपाधि का अपमान अथवा व्यङ्ग और जनता की कमजोरी से लाभ उठाने और उसे धोखा देने का प्रयत्न नहीं है? यदि गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से भी ABCD धारी डाक्टर ही निकलते हैं तो क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि आयुर्वेद-महाविद्यालय को बन्द करके उससे कहीं अधिक समृद्ध और सुसज्जित लखनऊ लाहौर अथवा बम्बई के मेडिकल-कालिजों को ही अपनाया जाय और इस प्रकार शक्ति और धन का अपव्यय रोका जाय। हां इन लोगों की देखादेखी कुछ वेदालङ्कार और विद्यालङ्कार भी V. A. लगाने लग पड़े हैं पर उन्हें तो इतना ही बता देना काफी है कि पञ्जाब विश्वविद्यालय के सामने यह प्रस्ताव है कि लड़कियों को B.A (Bachelor of Arts) की जगह (V.A. Virgin of Arts) उपाधि दी जाय।

"क्या आप इस बारे में गुरुकुल पत्र द्वारा अपनी राय देना पसन्द करेंगे।"

मैं इन भाई को यह बतला दूं कि आयुर्वेद वालों की देखा देखी नहीं, किन्तु जब आयुर्वेद की उपाधि देना शुरू भी नहीं हुआ था तभी कुछ (पर कुछ ही) विद्यालङ्कारों ने ही, यह दुःख की बात है, वी. ए. लिखना शुरू कर दिया था। निःसन्देह यह अंग्रेजी का मोह था, अंग्रेजियत की बैठी हुई धाक से लाभ उठाने की दासता पूर्ण मनोवृत्ति से ही प्रेरित था। दुःख की बात इसी लिए है क्यों कि ऐसी मनोवृत्ति को हटाना ही और इसकी जगह संस्कृत व राष्ट्रभाषा से प्रेम तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता का गौरव बैठाना और उसी में आत्म सम्मान समझना गुरुकुल का एक मुख्य कार्य था। पर यह प्रवृत्ति बहुत नहीं बढ़ी। इसका कारण यही है कि सचमुच विद्यालङ्कारों ने अपनी आन्तरिक योग्यता के कारण इस संस्कृत की उपाधि की प्रतिष्ठा स्थापित कर दी। पर 'विद्यालङ्कार' इस संस्कृत या हिन्दी की उपाधि को

अंग्रेजी में अंग्रेजी संक्षेप के ढङ्ग से लिखने के लिए V. A. लिख देना भी कुछ समझ में आ सकता है, अब अंग्रेजी में ही नाम आदि लिखना पड़े और विद्या अलङ्कार शब्द को भी रोमन लिपि में और साथ ही संक्षेप में लिखना जरूरी हो तो यह उचित भी कहा जा सकता है (यद्यपि प्रायः सदा ही V. A. लिखने का प्रेरक भाव अंग्रेजों के रोब में आना या उपाधि लिखने के इस परिश्रमी ढङ्ग से लाभ उठाना ही होता है), इसी तरह आयुर्वेद लङ्कार को A. V. A. लिखने के विषय में भी कहा जा सकता है, किन्तु आयुर्वेदालंकार को O. M. Sc. लिखने को तो मैं निरा कपट ही कह सकता हूं और कुछ नहीं। मुझे जो आयुर्वेद के स्नातक बन्धुओं के पत्र मिलते हैं उनमें मैं देखता हूँ कि कुछ ने तो अपने चिट्ठी के कागजों पर बाकायदा (O. M. Sc. Kang) ऐसा कुछ छपवा रखा है। यह तो कोई उपाधि नहीं है, कम से कम गुरुकुल से दी गई कोई उपाधि नहीं है। यह ऐसा है जैसे कोई गोपाल सेवक नाम वाला (जिसके माता पिता ने उसका यह नाम रखा हो) आदमी जहां के लोग गांधी जी को नहीं पहचानते वहाँ अपने को महात्मा गांधी बतला कर फायदा उठाये, और जब उससे पूछा जाय कि तुम तो गोपाल सेवक हो तुम गांधी जी कैसे बन गये तो कहे कि गोपाल का वही अर्थ है जो मोहन का और सेवक का अर्थ होता है दास, इस लिए मैं मोहनदास गांधी हूं। यदि इस तरह उपाधियों का भाषान्तर चलने लगे तब तो बड़ा अनर्थ होजाय। तब तो आयुर्वेद भूषण उपाधि वाले अपने को बेखटके आयुर्वेदालंकार ही न लिखा करें, क्योंकि अलंकार और भूषण एक ही बात तो है और इसमें तो भाषान्तर भी नहीं है एक ही भाषा के एक शब्द की जगह उसका दूसरा पर्याय वाची रख दिया गया है।

आशा है गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक बन्धु गुरुकुल की दी गयी उपाधि के ऐसे अनुचित रूप में दुरुपयोग किए जाने को अपने और इस कुल को कलंकित करने वाला कार्य अनुभव करेंगे और अंग्रेजी के मोह को छोड़ेंगे, बल्कि यह आत्मविश्वास रखेंगे कि (यदि गुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और गुरुकुल से उच्च कोटि के स्नातक निकलते रहे तो) ऐसा समय शीघ्र आयगा जब जिन्होंने कपट ही करना है वे अंग्रेजी अक्षरों की उपाधि की जगह हमारे अलंकार जैसा (गुरुकुल का उपाधि से मिलती जुलती) उपाधि लगाने में अपना फायदा समझेंगे।

वेदालंकार की तरह सिद्धान्तालंकार की उपाधि को भी कई स्नातक पसन्द नहीं करते हैं (यद्यपि कई 'सिद्धान्तालंकार' को भी पूरे गौरव के साथ अपने नाम के पीछे लगाते हैं)। किसी उपाधि में यदि वस्तुतः कुछ दोष है तो उसे दूर करवाना चाहिए। जैसे, वेदालंकार उपाधि के पाठ्यक्रम को बदलने का एक प्रस्ताव मैंने ही शिक्षा-पटल में पेश कर रखा है। वेदालंकार उपाधि वाले लकीर के फकीर और पुरानी चाल के समझे जायेंगे इसका तो मुझे कुछ डर नहीं है। यदि बहुत से हमारे स्नातक और विशेषतः वेदालंकार सचमुच ऐसा ही वेश अपना बनालें तो वे उस वेश में सजेंगे ही, इसमें कुछ बुराई नहीं है। पर साथ ही उनकी वेद सम्बन्धी योग्यता भी काफी होनी चाहिये। और वह योग्यता "पुराने अङ्क रखने वाले पण्डितों को कूपमण्डूकता वाली" न हो, बल्कि पुराने असली पाण्डित्य के साथ साथ नये ज्ञान वाले पुरुषों को भी प्रभावित कर सकने वाली हो। यह नहीं होना चाहिये कि न तो पुरानी पण्डिताई रहे और न नया ज्ञान। दोनों की अच्छाइयों का संग्रह होना चाहिये। अतः वेदालंकार उपाधि की यह शिकायत तो ठीक है कि उस उपाधि से वेद का विशेष ज्ञान जितना सूचित होता है उतना उत्तम नहीं होता। इस लिये कुछ ऐसा विचार है कि एकादश द्वादश में तो एक सामान्य पढ़ाई हो। पिछले दो सालों में वेदालंकार होने वाले वेद सम्बन्धी ज्ञान को विशेष रूप से प्राप्त करें। इस विषय में जो स्नातक-बन्धु और कुछ निर्देश या सुझाव भेजना चाहें वे अवश्य भेजने की कृपा करें। पर जो यह शिकायत है कि वेदालंकार को वेद के पण्डित (जिन्हें दुनियां का और कुछ पता नहीं) समझे जायेंगे वह तो कुछ समय में अपने आप हट जायगी, जैसे यह विद्यालंकार के सम्बन्ध में धीमे धीमे हट चुकी है। बल्कि अलंकार सम्बन्धी कोई भी उपाधि—(क्योंकि अलंकारान्त उपाधि गुरुकुल कांगड़ी जैसी एक उत्कृष्ट संस्था के स्नातकों की है यह लगभग प्रसिद्ध हो चुका है) हमारी प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली होगी। पर यह होगा तभी जब कि गुरुकुल कांगड़ी से उत्कृष्ट स्नातकों के निकलने की परम्परा जारी रहेगी, अर्थात् जब कि गुरुकुलीय स्नातक अपनी योग्यता, गुण और ज्ञान के बल पर ही अपने कुल के नाम और उपाधि को सुशोभित करने वाले बनने में अपने को गुरुकुल-ऋण से थोड़ा बहुत उऋण हुआ मानेंगे और इसके विपरीत जो गुरुकुल के नाम और उपाधि के बल से अपना काम चलाने की, अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कुल द्रोहिनी प्रवृत्ति की शुरुआत दीखने लगी है वह एक दम बन्द हो जायगी।

[पृ० ३ का शेष]

इसी प्रकार हमारे शरीर में जो कुछ भी गड़बड़ी-रोगलक्षण-दृष्टिगोचर होते हैं—वे सब अदृश्य अन्तःशासक (Internal Government) के बिगाड़ के कारण ही हो सकते हैं तथा उसके ठीक हो जाने पर हमारा कार्य इसप्रकार सुचारु रूप से चलने लगता है जैसे—शरद् में,

"चहु न रेणु, सोह अस धरणी
नीति-निपुण नृप की जस करणी।

इस प्रकार, युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा यह बात निर्विवाद हो जाती है कि मनुष्य, केवल शरीर मात्र ही नहीं होता अपितु उसमें एक अदृश्य शक्तिरूप शारीरी भी समन्वित होता है। परन्तु क्या इस बात की पुष्टि संसार की कोई चिकित्सा प्रणाली भी करने के तय्यार है?

इस प्रश्न के उत्तर में वृद्धआयुर्वेद का हाथ सबसे पहले उठता है। वह कहता है:—

"एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य; पुरुषस्तु चतुर्विंशति तत्त्व—जीवात्म-समवायः" ॥

इस संदर्भ से स्पष्ट है कि आयुर्वेद का उद्देश्य उस पुरुष की चिकित्सा करना है जो शरीर तथा शारीरी के समवाय सम्बन्ध से निर्मित होता है। शरीर तथा शारीरी का यह समवाय सम्बन्ध जब तक बना रहता है, तभी तक पुरुष चिकित्सा का विषय रहता है।

आत्म शक्ति के सूर्य्य को धारण करता हुआ-यह वृद्ध आयुर्वेद—१८वीं शताब्दी के अन्त तक-हिमालय के समान, उन्नत मस्तक किये अटल हो खड़ा रहा। परन्तु १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पश्चिमाञ्चल ने भी सिर उठाया, जिसने आत्म शक्ति के इस भास्कर को ऊंचा उठाकर—वहां के चिकित्सा जगत् को न केवल चकाचौंध ही कर दिया अपितु उसे पूर्णतया प्रकाशित करके एक युगान्तर भी उपस्थित कर दिया।

पाश्चात्य देशों में, महात्मा हनीमैन ही पहिला चिकित्सक हुवा है जिसने वहां के चिकित्सा जगत् में, प्रथमवार, भेरी नाद के साथ यह घोषणा की है कि "हमारा यह दृश्यमान जड़ शरीर, एक अदृश्य चेतन शक्ति का, बाह्य उपकरण मात्र होता है, जिसमें जीवितावस्था में, समवाय सम्बन्ध से वास करती हुयी वह शक्ति, उसके साथ एकत्व को प्राप्त हो जाती है"।

समस्त शरीर में व्याप्त, वह आत्म शक्ति ही इस शरीर पर निर्बाध-रूपेण शासन करती है तथा शरीर के सब अङ्ग प्रत्यङ्गों का सम्यकया संचालन करती रहती है; जिसके कारण, हमारा बुद्धि युक्त मन, इस शरीर-रूपी रथ को-जीवन के उच्च आदर्शों की ओर सदा अग्रसर करता रहता है। (देखिये-Organon ९०८ तथा ९)हनीमैन के इस लेख को पढ़कर, क्या उपनिषद् का निम्न श्लोक स्मरण हुवे बिना रह सकता है?

"आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव च
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च" ॥

यद्यपि, पाश्चात्य देशों के दार्शनिक तथा धार्मिक विद्वान् आत्मा के अस्तित्व को चिरकाल से स्वीकार करते चले आये हैं, तथापि चिकित्सा विज्ञान के प्रत्यक्ष वादी लोग, आज भी आत्मा के अस्तित्व की उपेक्षा कर रहे हैं, जिसके कारण उनका चिकित्सा-विषयक उन्नति स्तम्भित सी हुई पड़ी है। महात्मा हनीमैन का निरन्तर वज्रनिनाद होते हुवे भी, वे पक्षपात की गाढ़ निद्रा में निमग्न होने के कारण, "पश्यन्नपि न पश्यति" तथा "शृण्वन्नपि न शृणोति" की अवस्था में सोये पड़े हैं। परन्तु, महात्मा हनीमैन—अपने इस आविष्कार के प्रकाश में-चिकित्सा विज्ञान की दौड़ में उनसे कोसों आगे निकल गए हैं।

रोग के अधिष्ठान को सूक्ष्म शक्ति के रूप में निश्चित कर लेने पर, महात्मा हनीमैन को, प्राकृतिक रोगोत्पादक पदार्थों (Natural morbific Agents) को भी सूक्ष्म-शक्तियों के रूप में मानना आवश्यक हो गया। जब रोगोत्पादक पदार्थ, आत्म शक्ति के समान-सर्वथा अदृश्य ही हैं तब उनकी छान बीन में समय तथा शक्ति का दुरुपयोग करना हनीमैन को कैसे सह्य हो सकता था! वह, शीघ्र ही, कीड़े मकोड़ों के पीछे पड़ने के स्थान में, रोगी में प्रगट होने, रोग के स्वरूप को पहचान करने में दत्त चित्त हो गया। उसने बताया कि रोगी में, स्वस्थावस्था के प्रतिकूल, जो भी लक्षण समुदाय (Totality of symptoms), चिकित्सक को अपने आत्मा मन तथा इन्द्रियों द्वारा लक्षित होता है—वही उस रोगी में रोग का-स्वरूप-होता है तथा उसका प्रतीकार हो जाने पर वह रोग-मुक्त हो जाता है।

हनीमैन का यह दावा है कि रोगी में रोग के स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त करने का इससे सुगम तथा सम्यक् उपाय हो ही नहीं सकता!

जब तक, आत्म शक्ति का, निर्बाध रूपेण, शरीर पर शासन बना रहता है तब तक शरीर के सब संज्ञान वा कार्य्य, गम्भीर जल पर चलती नाव के समान, इस प्रकार सुचारु रूप से चलते रहते हैं कि कोई असाधारण संज्ञान वा कार्य्य लक्षित ही नहीं हो पाता। परन्तु, ज्योंही, किसी बलवत्तर विदेशीय शक्ति (Natural morbific Agent) का हमारे आत्म शक्ति पर अधिकार होजाता है त्यों ही बहुत से असाधारण संज्ञान वा कार्य (Abnormal sensation & function) शरीर में प्रगट होने लगते हैं। चूंकि असाधारण संज्ञानों (जैसे, भिन्न २ प्रकार की पीड़ाओं का होना, असाधारण गर्मी सर्दी का लगना, असाधारण क्षुत्पिपासा का होना, तथा जी मिचलाना इत्यादि) का परिज्ञान स्वयं रोगी को ही हो सकता है अतः ये स्वानुभूत लक्षण (Subjective Symptoms) कहाते हैं; तथा असाधारण कार्य्यों (जैसे उछल कूद, कंपन, लाली, लकवा इत्यादि) का परिज्ञान चिकित्सक को भी हो सकता है अतः ये परानुभूत लक्षण (Objective Symptoms) कहाते हैं।

इस प्रकार विदेशीय शक्ति से आक्रान्त हुयी २ आत्मशक्ति की प्रजा, इन स्वानुभूत लक्षणों के हा हा कार तथा परानुभूत लक्षणों की उछल कूद के मिष से अपने मित्रों (चिकित्सकों) की सहायता प्राप्त करने के लिये बारम्बार पुकार मचाती है। क्या, वह, अपने पर हुवे २ विदेशीय शक्ति के आक्रमण की सूचना, अपने मित्रों को, इन साधनों के बिना, किन्हीं अन्य साधनों द्वारा, अधिक सुगमता से तथा भली प्रकार पहुंचा सकती है? तब, क्या चिकित्सकों का भी यह कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि, इस सूचना को पाते ही वे अपने मित्रों को सहायता पहुंचाने में एक क्षण का भी विलम्ब न करें!

परम कारुणिक परमात्मा के सृष्टि-क्रम द्वारा रचा गया यह रोगों के आक्रमण के प्रकाशन का उपाय, क्या अपूर्ण हो सकता है? क्या इस उपाय द्वारा ही, चिकित्सकों को, रोगका पूर्ण-परिज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ न होना चाहिये। क्या, जब Stethoscope तथा तापमापक यन्त्र इत्यादि नहीं थे तब परम पिता परमात्मा की प्रजा का दुःख दर्द किसी को पता ही नहीं चलता था? क्या, केवल अणु-

वीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा ही रोगों का निदान हो सकता है ?

चतुर वैद्य तो,

"आकारैरेव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।
गर्भस्थं केतकी पुष्पं, आमोदेनैव षट्पदाः॥

के अनुसार, अनादि काल से आजतक, रोगी द्वारा अभिव्यक्त किये गये लक्षणों द्वारा ही रोग का निदान करने में पूर्ण समर्थ होते चले आये हैं। क्या निपुण-पुरुष हस्त-तुला पर तोलकर ही वस्तुओं का प्रमाण (भार) नहीं जान लेते ?

यह सब कुछ अङ्गीकार करते हुये, महात्मा हनीमैन का केवल लक्षण-समुदाय द्वारा ही रोग निदान करने का उपाय किस प्रकार अनुपयुक्त तथा असन्तोष जनक कहा जा सकता है ?

क्या होमियोपैथी में, उतने समय—टाइफाइड के रोगियों की चिकित्सा भी समाप्त नहीं हो जाती–जितने में कि, एलोपैथी में (रोगी के रक्त में उक्त रोग के कीटाणुओं की उपलब्धि न होने के कारण) पूरा निदान भी नहीं हो पाता ?

होमियोपैथी, अपने निदान के आधार पर ही, घोषणा करती है कि किसी भी रोग का कोई निश्चित काल (Course) नहीं होता, अपितु, प्रत्येक रोग लक्षण-समुदाय के आधार पर—प्रारम्भ में ही निःशेष किया जा सकता है।

इस प्रकार चिकित्सा के कार्य्य में असम्भव को सम्भव कर दिखाना, क्या रोगी में रोग का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किये बिना सम्भावित हो सकता है ?

जिस चिकित्सा प्रणाली में रोगी-परीक्षा का ऐसा उत्कृष्ट साधन विद्यमान है उसके सर्वोत्कृष्ट होने में किसे सन्देह हो सकता है ?

गुरुकुल-समाचार

गत सप्ताह अच्छी वर्षा हो जाने के कारण गुरुकुल की वाटिकाओं और किसानों के खेतों को पर्याप्त लाभ पहुँचा है। गुरुकुल के चारों ओर खेतों में फूले हुए सरसों वसन्तागम का शुभ सूचना दे रहे हैं। ब्रह्मचारी गण वसन्तोत्सव मनाने की तैयारी कर रहे हैं। इस बार की वसन्त पञ्चमी गंगा के उस पार मनाई जायगी। पिछली वर्षा के कारण यद्यपि शीत बहुत बढ़ गया है, २१३ दिन प्रातः ११ बजे तक घना कुहरा भी छाया रहा, तथापि ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर इसका कोई बुरा असर दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। चिकित्सालय में कोई रोगी प्रविष्ट नहीं हुआ।

संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव

विगत रविवार १६ जनवरी को महाविद्यालय की संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव श्री पं० विद्यानिधि जी सिद्धान्तालंकार के सभापतित्व में बड़ी सफलता के साथ मनाया गया। संस्कृत भाषा में ब्रह्मचारियों के ओजस्वी और प्रभाव शाली भाषण हुए। अन्त में श्री सभापति जी द्वारा सर्वोत्तम वक्ता, गद्य लेखक, कवि और समस्या-पूर्ति कर्त्ताओं को पारितोषिक दिए गए। सर्व प्रकार से यह सम्मेलन सफल कहा जा सकता है, इसके लिये संस्कृतोत्साहिनी के मन्त्री श्री विद्यासागर जी धन्यवाद के पात्र हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के वार्षिकोत्सव की धूम

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का ११ वां वार्षिकोत्सव १, २, ३, तथा ४ फरवरी १९४१ को होना निश्चित हुआ है आर्य जगत् के बड़े २ व्याख्यान दाताओं के भाषण होंगे। प्र० वीरेश्वर व्यायाम विशारद की अध्यक्षता में ब्रह्मचारी व्यायाम तथा खेलों का प्रदर्शन करेंगे। उत्सव की तैयारियां बड़े जोरों पर हैं। जनता से प्रार्थना कि वह अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित हो लाभ उठावें। उत्सव में नये बालकों का प्रवेश भी होगा। प्रवेशपत्र गुरुकुल चित्तौड़गढ़ कार्यालय से मगाये जा सकते हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में राजकुल के कुंवरों का प्रवेश

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में श्री महाराज शिवदानसिंह जी के सुपुत्र कुंवर मानसिंह का हाल ही में प्रवेश हुआ है। उदयपुर राजगृह का यह प्रथम बालक है। उदयपुर महाराज की छत्र छाया में गुरुकुल चित्तौड़गढ़ का भविष्य उज्वल ही होगा इस में क्या सन्देह है। जनता तथा राज के जागीरदारों से प्रार्थना है कि वे भी अपने बालकों को गुरुकुल में प्रवेश करा, आदर्श शिक्षा का लाभ उठावें।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में श्री प्रो० गोपाल जी की अध्यक्षता में एक डेपूटेशन फरीदाबाद बल्लभगढ़ तथा पलवल काम करता रहा। वहां आर्यभाइयों ने डेपूटेशन का स्वागत किया और नगर में घूमकर धन इकट्ठा करने में सहायता प्रदान की, जिसके लिये उनका हार्दिक धन्यवाद है। डेपूटेशन सफल रहा। गुरुकुल रजत जयन्ती का सन्देश इन सब स्थानों में अच्छी तरह उद्घोषित किया गया।

रजत-जयन्ती महोत्सव २१ फरवरी से २४ फरवरी १९४१ तक होना निश्चित हुआ है। इस से पूर्व १६ से २० फरवरी तक श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज की दीवान हाल देहली में कथा होगी, जिसका समय विभाग यथा समय प्रकाशित किया जायगा।

गुरुकुल रजत जयन्ती के उत्सव के लिये दुकानदारों के प्रार्थनापत्र अभी से आने प्रारम्भ हो गये हैं। दो हलवाई की दुकानें और एक ढाबा Reserve हो चुका है जो दुकानदार अपनी दुकानें उस में लेकर लगाना चाहें उनके लिये स्थान इसी समय Reserve किये जा सकते हैं। दुकानदारों का किराया निम्न प्रकार होगा।

हलवाई की दुकान	१०)
ढाबा	५)
फल	३)
पुस्तकें	१।
कपड़ा	१।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ओ३म्॥

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १९ माघ १९९७; ३१ जनवरी १९४१ [संख्या ४१

वेद (ब्राह्म) धर्म ही सर्वतोभद्र क्यों है ?

(लेखक:—आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति वेदभलीब रिसर्च स्कोलर सूरत)

(२)

वेद धर्म जगत् को शून्य, अलीक, एवं माया बताकर 'पर' की मायक मरीचिका में भटका कर साधक का इह तथा परलोक नष्ट नहीं करता प्रत्युत इसमें दोनों ही लोकों की उन्नति के लिये व्यापक दृष्टि रखी गई है। चार्वाक् ने जहां प्रकृति एवं इसके भोगों पर बल दिया—"ऋण कृत्वा घृतं पिबेत्," वहां बौद्ध धर्म ने "सर्वं दुःखम्, सर्वं शून्यं, सर्वं क्षणिकम्" जगत् को दुःखमय और निस्सार बताकर प्रकृति की उपेक्षा की और फलत: एक बार भिक्षु धर्म (सन्यास) अवश्य फैल गया; परन्तु साथ ही व्यावहारिक व्यवस्था भी विशृङ्खल होगई। ईसामसीह की बाइबल के Sermonon the mount में वृक्ष एवं पक्षियों के दृष्टान्त से अपरिग्रह के लिये दिये गये उपदेश से तो रोमन केथोलिक लोगों में सन्यास का धर्म फैला था परन्तु लगभग १६वीं शताब्दी में रोम और ग्रीस के संघर्ष ने इस पर व्यावहारिकता का रंग चढ़ाया था। अत: प्रोटेस्टेन्ट लोगों में देखी जाने वाला व्यावहारिकता का श्रेय ईसाइयत को नहीं अपितु ग्रीस और रोम का है। वेदधर्म में तो पद पद पर ऐहिक ऐश्वर्य के भोग और त्याग के उपदेश दिये गये हैं। गुरु की कुटीर में समित्पाणि आये हुए शिष्य को "मा विद्या या विमुक्तये" के साथ साथ "कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्" (तै० उ०) भूति का उपदेश भी दिया गया है। यही कारण है कि पाश्चात्य प्रजा के समग्र साहित्य में एकाङ्गिता (Onesidedness) है। वहां आर्यप्रजा ने वेद-उपनिषत्, महाभारत जैसे सर्वाङ्गीण सर्वदेशी साहित्य को कालसरिता की तरंगों में पढ़ाया है।

(ख) ज़रा जीव के विषय में विचार करके देखें। सेमेटिक (Semitic) धर्मों ने आत्मा की उत्पत्ति बताकर जड़वाद (Materialism) को अपनाया और जड़वादी होते हुवे भी विज्ञानवाद के जोश में आत्मा की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान जगत् के द्रष्टा के रूप में ईश्वर की सत्ता मान और यह भूल गये कि आत्मा को माने बिना जगत् और जगत् के द्रष्टा दोनों ही निस्सार हैं। बौद्धमत की बात ही निराली है। इसने तो आत्मा का सर्वथा बहिष्कार किया और आलय विज्ञान और प्रवृत्ति-विज्ञान के रूप में विज्ञान के प्रवाह Stream of Consciousness—को ऐसा बहाया कि सब कुछ ही बह गया, और शून्य ही शून्य रह गया। परन्तु वेदधर्म में आत्मा को अज कहा, ब्रह्म (महान्) कहा, अल्पज्ञ होते हुए हुवे भी अनादि, अनन्त, अजन्मा बताया बाल से भी अधिक सूक्ष्म होते हुवे भी जीवन की ज्योति बताया—"बालादेकमणीयस्कम्"।

(ग) ईश्वर के स्वरूप के बारे में वेद धर्म के विचार अद्वितीय हैं। ब्रह्म को अन्तर्यामी Immenant तथा पर (Transcendental), केन्द्र (Centre) और परिधि (Circumference) दोनों साथ ही साथ बनाया गया है "एष ते आत्मा ऽन्तर्याम्यमृत:" "स ओतश्च प्रोतश्च विभु:प्रजासु" यहूदीधर्म (Judaism), ने प्रभु को उग्रदण्ड राजा के भयंकर रूप में चित्रित किया है। ईसायत ने प्रारम्भ में तो प्रभु को मानव जाति के पिता (Fatherhood of God) के रूप में कल्पित करके ग्रीक-तत्वज्ञान के प्रभाव से धीमे धीमे प्रभु की कल्पना में उन्नति की है। बौद्ध धर्म ने तो पहले ईश्वर जीवादि अदृश्य तत्वों के विषय में विचार ही नहीं किया था और जब किया तब उस में हिन्दु धर्म का रंग चढ़ चुका था।

(घ) ईश्वर, जीव तथा प्रकृति का परस्पर क्या सम्बन्ध है इसका वर्णन वृक्षसुपर्ण तथा अजा-प्रजा के रूपक से जैसा वेद धर्म में किया गया है ऐसा संसार के किसी भी धर्म में नहीं है। जीव, प्रभु को राजा, पिता, माता, स्वामी, मित्र और पति के रूप में किस प्रकार अनुभव करता है यह अलौकिक दृश्य केवल वेद धर्म में ही है।

'पोखर'

(श्री अनन्त)

बैसाख जेठ की दोपहरी।
झिल्ली की झन झन स्वर लहरी॥
निष्पन्द वायु की ऊष्मा से।
हो गयी आँख भी थी गहरी॥१॥
मैं चला, चली प्रिय परछाईं :
अब भी वह थी कुछ अलसाई॥
उफ, मानव की आवश्यकता।
गर्मी लू में भी ले आई॥२॥
जिस तरह बना चलता आया।
अपने को यों छलता आया॥
जलते कदम्ब की छाया में।
मैं भी जलता जलता आया॥३॥
यद्यपि कृश उसकी काया थी।
पृथ्वी पर फिर भी छाया था॥
मैं रुका—, नहीं पर सोच सका।
ऊपर यह किसकी माया थी॥४॥
जब आँखें खुलीं, उधर देखा।
ऊसर देखा, बजर देखा॥
गँदला, छिछला जल लिये हुए।
इक छोटा सा पोखर देखा॥५॥
देखा पशु आये, खग आये।
गिरते पड़ते डगमग आये॥
अपनी कटु प्यास बुझाने को।
दुनिया के सब लगभग आये॥६॥
बुझ गयी सभी की प्रबल प्यास।
थे जितने मेरे आस पास॥
पर मैं, तृष्णा से लड़ा किया।
बैठा संयम का बना दास॥७॥
सबने उसके भीतर देखा।
भीतर निर्मल अन्तर देखा॥
पर मानव की दुर्बल पवित्रता
उसने बाहर बाहर देखा॥८॥

'मधुमास के दिन आ गए'

—श्री० श्री कुमार शर्मा

(१)

किसके करों के स्पर्श से
हिम राशि गिरि की घुल चली,
अति क्षीण सिकुड़ी सी सरित-
की राह सहसा खुल चली,
निर्मल नवल जलधार से
विस्तार कूलों को मिला—

(२)

हेमन्त वाताहत विटप
जर्जर खड़े थे बाग में,
निकले नए पल्लव कुसुम,
वे गा रहे मृदु राग में,
प्रत्येक शाखा सज गई
आधार फूलों को मिला—

(३)

अरमान पूरे हो गए
सूनी लता की गोद के,
मेरे सुदिन भी आयेंगे
सुख-हर्ष के आमोद के!
विश्वास हो वह क्यों न, जब
शृंगार शूलों को मिला—

गीत

सरसों के पीले फूलों पर अंकित मेरा ही पीलापन।
मेरे उर का ही मधु लेकर-
मधु ऋतु बिखराती आती है,
मेरा ही खोया गायन यह
पंचम में कोयल गाती है,
मैं देख रहा-कण कण में है बिम्बित मेरा बीता जीवन।
मेरे उर का उल्लास मुखर-
सब हंसते हैं, सब गाते हैं,
मैं भूल गया—मेरी छवियों से
ही सब मन बहलाते हैं,
धरती का यौवन बन कर यह आया मेरा ही पागल पन।
तरुओं के नव पल्लव दल पर
होता मेरा ही चित्रांकन,
मेरी उच्छ्वास सुरभि से भर,
चल पड़ती है यह मलय पवन,
उपवन की खिलती कलियों पर चित्रित मेरा ही हास रुदन।
सरसों के पीले फूलों पर अंकित मेरा ही पीलापन।

—'सूर्य कुमार'।

'पतझर का साथी कुसुमोत्सव'

१.

फिर आज हरे तरु, वन, उपवन।
विकसित लतिका के नव सुमन
जिस तरु से निठुर पतझर ने
दो पत्तों का भी किया हरण
वे पाते हैं नूतन पल्लव॥

२

सरिता के शीतल नील सलिल-
से बही खेलता मलयानिल।
पतझर में थी जो चली गई,
आ गई वही फिर से कोकिल
स्वर में ले मादक॥ अभिनव॥

३.

जब जब प्रसून नव खिलते हैं
झोंके समीर के चलते हैं;
ये पराधीनता में जकड़े
युवकों के बाहु मचलते हैं।
कर देने को नूतन विप्लव।
पतझर का साथी कुसुमोत्सव॥

४.

जग तो यद्यपि बहलाएगा
उर की पीड़ा सहलाएगा;
पर इतनी सारी सुषमा को
बोलो कैसे सह पायेगा
यह भाग्यहीन मुझसा मानव?

—"विराज"।

होमियोपैथी तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियों में रोगों का वर्गी-करण

(Classification)

(ले० श्री डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार बिजनौर)

रोगों के अधिष्ठान, स्वरूप तथा कारणों का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी, चिकित्सक को चिकित्सा के कार्य में सर्वतोमुखी सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब उसे प्रत्येक रोग का विशेष ज्ञान भी सम्यक्तया पहिले से उपस्थित हो।

अधिष्ठान भेद से एक रोग, भिन्न २ प्रकार का स्वरूप धारण कर लेता है इसमें किसे सन्देह हो सकता है। जिस प्रकार एक गुरु द्वारा पढ़ाया गया पाठ उसके दस शिष्यों पर प्रायः दस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता देखा गया है, उसी प्रकार एक रोगोत्पादक पदार्थ दस प्राणियों पर प्रायः दस प्रकार के रोग-लक्षण उत्पन्न कर देता है। क्या शीत का प्रभाव भिन्न २ मनुष्यों पर भिन्न २ प्रकार का नहीं होता? हम प्रतिदिन देखते हैं कि शीत के प्रभाव से, एक मनुष्य को केवल प्रतिश्याय, दूसरे को कास तथा तीसरे को न्युमोनिया तक हो जाता है। इसी प्रकार चेचक के दिनों में किसी बच्चे को हल्की खसरी, किसी को साधारण तथा किसी को घातक प्रकार की माता (चेचक) निकलती रहती है।

जिस प्रकार धारासार में बरसता पानी, मट्टी के ढेलों का चूरा कर देता है, लकड़ी को कुछ २ गला देता है परन्तु गिरिशिलाओं को पूरा गीला करने में भी असमर्थ रहता है, उसी प्रकार, एकाकी रोगोत्पादक पदार्थ किसी मनुष्य को एक दम बिछा देता है, किसी पर कुछ हल्का-प्रभाव प्रदर्शित करता है तथा किसी को, चिकने घड़े के समान, अछूता छोड़ देता है।

एकाकी रोगोत्पादक पदार्थ के इस प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रभाव को प्रदर्शित कराने वाले भिन्न अधिष्ठानों में निहित, इस कारण को रोगानुशयिता (Susceptibility) कहते हैं। जिस मनुष्य में यह रोगानुशयिता जितनी अधिक होती है, वह रोगोत्पादक पदार्थों से उतना ही अधिक प्रभावित है। इसलिये एक मनुष्य कभी मलेरिया, कभी टाईफाइड, कभी न्युमोनिया तथा कभी क्षय-रोग के पाश में बद्ध होता रहता है तथा दूसरा नीरोग रहता है।

यह रोगानुशयिता न केवल अधिष्ठान भेद से, अपितु, प्रत्येक रोगोत्पादक पदार्थ के लिये भी एक अधिष्ठान में भी, भिन्न २ पायी जाती है। जिस प्रकार कमल, दिनकर की कर माला से ही खिलते हैं, शीतल चन्द्र-किरणों से नहीं, उसी प्रकार कुछ मनुष्य कुछ विशेष रोगोत्पादक पदार्थों से ही प्रभावित हो पाते हैं सब से नहीं। इसी लिये यह आवश्यक नहीं होता कि जो मनुष्य, सुलगते लाल की गन्ध से प्रभावित हो दमे के से लक्षण प्रदर्शित करने लगते हैं वे क्षय रोग से भी उसी प्रकार सुगमता से प्रभावित हो जांय तथा जो नाज़ुक मिज़ाज़ महिलायें गुलाब की गन्ध से भी जुकाम पा जाती हैं वे हिस्टीरिया से भी अवश्य सतायी जायें? रोगाधिष्ठानों में, रोगोत्पादक पदार्थों के प्रति इस प्रकार की विभिन्नता उत्पन्न करने वाली यह रोगानुशयिता क्या होती है तथा कैसे उत्पन्न होती है इसका परिज्ञान इस अध्याय के अंतिम भाग में स्वयं हो जायगा।

भिन्न २ रोगोत्पादक पदार्थों से उत्पन्न किया गया रोग का स्वरूप ही न केवल भिन्न २ होता है अपितु उस के लिये काल की मात्रा भी भिन्न २ अपेक्षित होती है। इसी लिये, जो रोग, वर्षा नदी के समान, चटपट अपना काम समाप्त कर के चलते बनते हैं वे तीव्र रोग कहाते हैं। परन्तु जो रोग, शीतकाल के समान आते भी शनैः २ हैं और जाते भी शनैः २ हैं पर सदा के लिये मेहमान नहीं बन जाते, वे तानि तीव्र कहाते हैं। कुछ रोग ऐसे होते हैं जो, कुसंस्कारों के समान, एक बार प्रवेश पाकर अपना प्रभाव शनैः २ उत्पन्न करते रहते हैं परन्तु जाने का कभी नाम तक नहीं लेते, वे स्थायी रोग (Chronic Diseases) कहते हैं।

इस प्रकार, अधिष्ठान, कारण तथा काल इत्यादि के भेद से रोग-राक्षस "नानारूपधराः कोलाः विचरन्ति महातलं" के अनुसार, अनेक रूपों में प्रगट होते दिखायी देते हैं। रोगों के इन भिन्न २ रूपों के कारण रोगों की संख्या असंख्य सी हो जाती है जिसका सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने के लिये चिकित्सक को अनेक सौर्य संवत्सरों की अपेक्षा हो सकती है। परन्तु उसे इस कार्य के लिये कितना स्वल्प समय मिलता है!

चिकित्सक को दो एक वर्ष के अल्प काल में समस्त रोगों का परिज्ञान प्राप्त कराने के लिये, आयुर्वेद के आदि पुरुषों ने, रोगों के इस असंख्य परिवार का वर्गी-करण कर दिया है जिसके द्वारा रोगी-परीक्षा का यह महासागर एक कुंभ में समा जाने के कारण हस्तामलकवत् हो जाता है।

रोगों का ऐसा वर्गी करण वही हो सकता है जिसमें समस्त रोगों का केवल एक ही उद्गम-स्थान या मूलाधार हो। जिस प्रकार एक बड़े आकाश में पूरा हुआ ऊर्ण-नाभि (मकड़ी) का तन्तु सन्तान वितान (जाला) उसके शरीर से ही निकलता है तथा उसी में समा जाता है उसी प्रकार जब रोगों का समस्त परिवार एक ही उद्गम-स्थान से निकलता तथा उसी में समा सकता हो तभी उसका संक्षिप्त रूप हो सकता है।

रोग-परिवार का इस प्रकार का एक उद्गम-स्थान या मूलाधार है भी या नहीं, यदि है तो कौन सा है? यह एक बड़ी विकट समस्या है।

जिस प्रकार सूर्य्य वंशीय राजाओं की अनन्त वंशावली के अकेले मनु महाराज ही एक उद्गम-स्थान हैं तथा वृक्ष के असंख्य पत्र पुष्प फल, शाखा प्रति शाखा तने इत्यादि का एक ही मूलाधार होता है उसी प्रकार

[शेष पृ० ६ पर]

गु रु कु ल

१६ माघ शुक्रवार १९९७

साथ में अंग्रेजी उपाधि भी क्यों न दी जाय ?

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी)

गत अंक में मैं अंग्रेज़ी उपाधि के मोह की चर्चा कर चुका हूं। परन्तु युक्त प्रान्त के एक अच्छे कुशल. आयुर्वेद के स्नातक इस विषय में कुछ ऐसे लिखते हैं कि उस पर ध्यान दिये बिना नहीं रहा जा सकता। मुझे इनका कार्य और औषधालय स्वयं देखने का भी सुअवसर एक बार हुआ था और उसे देख कर मुझे खूब प्रसन्नता हुई थी। अपने एक पत्र में ये स्नातक लिखते हैं:—

"हम गुरुकुल के पढ़े चिकित्सकों को चिकित्सा के क्षेत्र में इस प्रदेश में पर्याप्त सफलता मिलती है परन्तु कुछ बातों में कठिनाई होती है जो क्रियात्मक जीवन आने से ही पता चलती है। इधर तीन वर्षों से लगातार चिकित्सा करते हुए मेरे सामने कुछ कठिनाइयां आयीं हैं उनको आपके ध्यान में ला देना अपना कर्तव्य समझता हूं। अतः आपको लिख देता हूं अगर आप उचित समझें तो इसमें सुधार करवाने की कोशिश करें।

"१—गुरुकुलेतर बाह्यजगत् अंग्रेज़ी भाषामय है क्योंकि इसी भाषा को राज मान्यता है। हमारी उपाधि को अहिन्दु जनता तथा अन्य हिन्दीभाषानभिज्ञ जन नहीं समझते और नाहीं उनसे इसका उच्चारण ही ठीक होता है अतः मेरी सम्मति में हमारी आयुर्वेदिक उपाधि का कुछ अंग्रेज़ी रूप भी होना चाहिये, जैसा कि अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं का है। जैसे D.I.M. (ऋषिकुल) H.B.M. हिन्दु यूनिवर्सिटी (आयुर्वेदाचार्य के लिये)। G.I.M.S. पटना विश्वविद्यालय इत्यादि। तात्पर्य यह है कि सभी आयुर्वेदिक संस्थाओं की उपाधियों का अंग्रेज़ी रूप भी है। आपको पता ही है कि हमारे बहुत से स्नातक O M.Sc. आदि लिखते हैं पर यह भी आपकी यूनिवर्सिटी से स्वीकृत उपाधि नहीं। अतः आप इसे ही अथवा अन्य किसी अंग्रेज़ी उपाधि को स्वीकृत कर लेवें तो बहुत अच्छा और सामयिक होगा। आप अंग्रेज़ी का प्रमाण-पत्र देते ही हैं अगर उसी के साथ G. A. A. M. S. (Graduate in Ayurvedic and Allopathic Medicine and Surgery) की उपाधि भी दें तो बहुत अच्छा हो इस विषय को आप गुरुकुलोपसभा में भी विचारार्थ रख सकते हैं।

"२—गुरुकुल की आयुर्वेदिक पाठ्यप्रणाली अगर विद्यार्थी ध्यान से और परिश्रम से पढ़ें तो मैं हिन्दुस्तान की समस्त आयुर्वेदिक शिक्षा संस्थाओं के देखने के बाद कह सकता हूं कि सर्वोत्तम है। परन्तु यू० पी० सरकार ने हिन्दु विश्वविद्यालय और ऋषिकुल को अधिक मान्यता सन् १९४० के Indian Medicine Act में दी है। गुरुकुल में एक कमी थी कि वहां का कोर्स ४ वर्ष का था पर अब तो आपने भी ५ वर्ष का कर दिया है इस लिये वे सब अधिकार आपको होने चाहियें, पर हैं नहीं। हिन्दु यूनीवर्सिटी के स्नातक तुरन्त स्नातक होने के बाद A class में तथा ऋषिकुल के B class में रजिस्टर्ड हो सकते हैं। आपके स्नातक ५ वर्ष प्रैक्टिस करने के बाद बी क्लास में, तथा १० वर्ष प्रैक्टिस करने के बाद ए० क्लास में रजिस्टर्ड हो सकते हैं। इस विचार से नौकरी इत्यादि में उन्हीं के स्नातकों को मान्यता दी जा रही है। १८० वैद्यों की यू० पी० गवर्नमेण्ट ने ग्रामों में नियुक्ति की जिस में १६२ हिन्दूयुनिवर्सिटी के स्नातक हैं, १० ऋषिकुल के, एक आपके गुरुकुल के। तथा शेष अन्य संस्थाओं के। हमारे गुरुकुल के अनेक स्नातक बन्धु उस विभाग में जाना चाहते थे। थोड़े में मैंने दो बातें लिखी हैं कृपया उचित व्यवस्था और प्रयत्न करने की कृपा करेंगे ऐसी आशा है।"

इन स्नातक भाई ने जो दूसरी बात लिखी है वह तो ठीक है। हमारे आयुर्वेद के स्नातक हिन्दु विश्वविद्यालय तथा ऋषिकुल के आयुर्वेदिक स्नातकों के कम से कम समकक्ष समझे जांय, जरा भी न्यून तो न समझे जांय इसके लिये आत्म सम्मान पूर्वक जो यत्न करना आवश्यक हो वह सब किया जाना चाहिये। युक्तप्रांत में ही क्यों पंजाब आदि प्रान्तों में भी हमारे आयुर्वेदालंकार सेवा के लिये सर्वथा योग्यता-सम्पन्न माने जाने चाहियें। इस दिशा में श्री मुख्याधिष्ठाता जी के कार्यालय द्वारा यत्न किया भी जा रहा है।

परन्तु इन्होंने जो पहिली बात लिखी है उसके साथ मैं सहमत नहीं हो सकता। यह तो अच्छा है कि ये उन में से नहीं हैं जिन्होंने अपने आप ही एक अंग्रेजी अक्षरों की उपाधि निःसंकोच होकर अपने साथ लगा ली है. अतः ये युक्ति और दलील तथा दृष्टान्त देते हुए अपील करते हैं कि गुरुकुल को स्वयं ही अपनी संस्कृत की उपाधि के साथ साथ एक अंग्रेजी उपाधि भी देनी चाहिये।

मेरा तो सीधा कहना यह है कि यदि हम ऐसा करने लगेंगे, अंग्रेज़ी उपाधि के बिना न रह सकेंगे—तो हम गुरुकुल न रहेंगे। स्नातक जी के पत्र में वर्णित जिन हिन्दु विश्वविद्यालय आदि शिक्षा संस्थाओं ने अंग्रेज़ी उपाधि देना भी आवश्यक समझा वे गुरुकुल नहीं हैं, उनका ध्येय गुरुकुल जैसा नहीं है। मेरी दृष्टि में उन्होंने तो धीरे धीरे गुरुकुल की तरफ़ आना है. उन्होंने साथ में संस्कृत की उपाधि दी है इतना किया है सो ही अच्छा किया है इस से वे एक क़दम आगे बढ़े हैं गुरुकुल की तरफ आये हैं। जब हमारा देश स्वराज्य में आयेगा—अपने आप को पा जायेगा तो हमारे देश में कोई भी विदेशी भाषा में उपाधि देने का विचार स्वप्न में भी अपने मन में न लायेगा। अतः हम ने तो इस संक्रमण काल में विदेशी भाषा के मोह से अन्यों को भी बचाना है, इस अवस्था में

निकालना है न इस में हमें ही फ़ंस जाना है। इस ठीक दृष्टि से जब हम देखेंगे तो हम यह नहीं सोच सकेंगे कि अंग्रेजी उपाधि देना गुरुकुल के लिये अच्छा है या सामयिक है।

यह हमारी पराधीनता, गुलामी के कारण है कि हमारी संस्कृत की उपाधि की अभी तक हमारे देश में कीमत नहीं; राज मान्यता नहीं। पर जो स्वतन्त्र देश हैं उन-विदेशों में हमारी उपाधि चलती है। क्यों कि वे उपाधि के अक्षरों को नहीं देखते, उपाधि धारी ने क्या पढ़ा है यह देखते हैं इस लिये विद्यालंकार और आयुर्वेदालंकार विदेश में जाकर तो पी. एच. डी. या एम. डी. हो जाते हैं, यहां वे एम. ए. या कुछ अन्य उपाधि की परीक्षा में बैठने योग्य भी नहीं होते। इस पराधीन मनोवृत्ति के मुकाबिले में ही हमें डटे रहना है, और इसे ठीक कर देना है, न कि स्वयं झुक जाना है।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी को सुनाई हुई वह बात फिर याद आती है कि उन्होंने सुप्रसिद्ध लाला हरदयाल जी के एक लेख को 'वैदिक मैगजीन' में प्रकाशित करते हुए उनके नामके आगे 'एम. ए.' भी छाप दिया था तो लाला जी बड़े नाराज हुवे थे। उन्होंने लिखा कि "बी. ए. एम. ए." आदि तो इस बात के सूचक हैं कि हम उस नीति-भ्रष्ट करने वाली और राष्ट्रीयता से भ्रष्ट करने वाली प्रक्रिया में से गुज़र कर आये हैं जो भारत के नौजवानों को नष्ट कर रही है, अतः ऐसे अपमान जनक शब्द को मैं अपने नाम के साथ लगाना नहीं चाहता।" इसी तरह श्री रामदासजी गौड़ ने (जो गुरुकुल में भी रसायनोपाध्याय रहे हैं) एक पुस्तक में शुद्धि अशुद्धि पत्र द्वारा अपने नाम के आगे लगाये गये एम. ए. शब्द को शुद्ध कराया था। रामदास गौड़ हमेशा हिन्दी में तार दिया करते थे। कुछ समय हुवा पं० जवाहरलालजी को हिन्दी में दिये गये तार अखबारों में छपे थे, अब तो और कई लोग ऐसा करते हैं। श्रीमान्य शिवप्रसाद गुप्त तो अपनी मोटर गाड़ी पर संख्या भी अंग्रेज़ी की जगह हिन्दी में लिखने के कारण दण्ड तक भोग चुके हैं। हमारे लिये तो सामयिक ये बातें हैं। इन कार्यों में यदि कुछ कट्टरता है तो वह कट्टरता भी गुरुकुल को शोभा देती है और अब तक देती रही है। गुरुकुल जैसी शुद्ध सच्ची राष्ट्रीय संस्था (अंग्रेजी की जगह) हिन्दी (या कहीं संस्कृत) ऐसा आग्रह रखे यह तो समय की सच्ची माँग है। अतः यदि कुछ गुरुकुल स्नातकों को अंग्रेजी की उपाधि की आवश्यकता प्रतीत होती है तो यह इसी बात का चिह्न समझा जाना चाहिये कि उन स्नातकों पर गुरुकुलीय भावना का रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ पाया है।

और क्या सचमुच अंग्रेज़ी की उपाधि न होने से स्नातकों को—आयुर्वैदिक या अन्य स्नातकों को—सफलता पाने में बाधा रहती है? मुझे तो इसमें सन्देह है। यदि कारण है भी तो यह बहुत ही थोड़ा है, नगण्य है। इसे तो स्वाभिमान पूर्वक सहना चाहिये और प्रसन्न होना चाहिए। पर मेरे विचार में बहुत बार तो असफलता के अन्य ही, कुछ कारण होते हैं और हम समझ या अविचार से, इसका दोष अंग्रेजी अक्षरों से रहित अपनी सादा संस्कृत उपाधि पर मढ़ देते हैं। आप निश्चय जानिए कि यदि हम सचमुच कुशल, सेवापरायण, समर्थ वैद्य या विद्वान् या अन्य प्रकार के कार्य कर्त्ता होंगे तो हम री उपाधि की कोई भी जांच पड़ताल न करेगा। देश के ऐसे बहुत से कार्यकर्त्ता हैं जिनका सर्वत्र सम्मान है पर लोग जानते भी नहीं हैं कि उनके पास कोई अंग्रेज़ी की उपाधि है भी या नहीं।

यह जो कहा गया है कि गुरुकुल की उपाधि को दूसरे लोग समझ नहीं सकते और उसका शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते सो तो पूरा विचार कर नहीं कहा गया। क्या इसका यह मतलब है कि अंग्रेज़ी की उपाधि को (उसके अर्थ को) लोग अधिक समझते हैं और अंग्रेज़ी उपाधि का (अंग्रेजी शब्दों का) उच्चारण अधिक शुद्ध करते हैं? क्या आयुर्वेदालंकार 'या' आयुर्वेद भूषण' की अपेक्षा, ओ. एम. एस. सी. या 'जी. ए. एम. एस. अधिक समझ में आजायगी? जब अर्थ समझना ही है तो G.A.M.S. अर्थात् Graduate in Ayurveda Medicine and Surgery की अपेक्षा सीधे आयुर्वेदालंकार का अर्थ समझना और समझाना हम लोगों के लिये कहीं अधिक आसान है। उच्चारण तो अंग्रेज़ी शब्द की अपेक्षा संस्कृत शब्द का ही एक भारतवासी (हिन्दु ही नहीं मुसलमान भी) हर हालत में ठीक करेगा। अंग्रेज़ी के 'Doctor' को ही ले लीजिये। अंग्रेज़ी दृष्टि से उसका शुद्ध उच्चारण करके कितने लोग (पढ़े लिखे भी) बोलते हैं। बल्कि वर्षों हम पढ़े लिखे लोगों के बीच में रहने वाले हमारे कर्मचारी भी मजे से 'डाकदार सा हब' या 'डाकतर' कहते हैं। वे यदि 'वैद्य जी' की जगह 'वैद जी' भी कहदेंगे तो क्या हर्ज है? अंग्रेजी का प्रमाण पत्र हम देते हैं वह और बात है। वह दीक्षान्त के समय नहीं दिया जाता वह तो हमारे प्रमाण पत्र के अंग्रेज़ी भाषान्तर के रूप में जिसे ज़रूरत होती है, जो इसे मांगता है उसे दे दिया जाता है। ऐसे तो आयुर्वेदालंकार को भी अंग्रेज़ी या किसी अन्य भाषा में भाषान्तर करके बताया जा सकता है, यदि ज़रूरत हो। पर उपाधि तो वेदालंकार ही रहेगी। भारतीय जनता ने गांधी को महात्मा [जैसे श्रीमान्य मालवीय जी आदि को भारत-भूषण आदि] कहना शुरू कर दिया, मानों ये उपाधि दे दीं। तो अंग्रेजी में भी उन्हें Mahatma Gandhi ही लिखते हैं, Great-soul Gandhi नहीं लिखे जाते। महात्मा का अर्थ अंग्रेजी में समझाना हो तो बेशक उस तरह समझायेंगे। फिर किसी विश्वविद्यालय की दी हुई उपाधि के शब्दों की पवित्रता तो और भी अधिक मानी जाती है, क्योंकि वह ऐसे ही नहीं किन्तु एक विधान के द्वारा दी जाती है।

मैं तो कोई प्रमाण पत्र अंग्रेजी में नहीं देता, यदि किसी को अंग्रेजी में भी चाहिये ही, तो अपने लिखे हिन्दी (या संस्कृत) के असली प्रमाण पत्र की अंग्रेजी भाषान्तर की प्रतिलिपि बेशक दे देता हूं। मतलब यह कि है

असली प्रमाण-पत्र हिन्दी या संस्कृत का ही होता है। शायद आम लोगों को यह पता न हो कि गांधी सेवा संघ का असली विधान हिन्दी वाला ही है, अंग्रेजी वाला नहीं; जबकि बहुत सी (प्रायः सभी प्रसिद्ध) राष्ट्रीय और धार्मिक संस्थाओं के भी असली प्रामाणिक विधान अंग्रेजी के होते हैं हिन्दी या उर्दू वाले उसके केवल अनुवाद होते हैं, वे प्रामाणिक नहीं होते। हमारे बहुत से नेता सोचते अंग्रेजी में हैं, असली प्रस्ताव भी अंग्रेजी में ही बनाते हैं, पीछे से उन्हें हिन्दी या हिन्दुस्तानी या उर्दू का रूप दिया जाता है। यही मानसिक गुलामी है जिसको जड़ से निर्मूल करने के लिये बल्कि ऐसी बातों के विद्रोह रूप में ही गुरुकुल खोला गया था।

जापान में एक जगह, कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अंग्रेजी में बोलने से इन्कार किया था कहा था कि मैं अंग्रेजी में सोच नहीं सकता अतः अंग्रेजी में यों ही बोल भी नहीं सकता और बंगला में बोले थे। यह है स्व-भाषा का महत्व जिसे (अन्य बातों के साथ) पोषित करने और इसे मूर्तिमन्त करने को गुरुकुल खोला गया था। अतः यदि गुरुकुल के स्नातकों में भी औरों के सदृश अंग्रेजीमयमनोवृत्ति ही पैदा हो जाती है तो यह इस बात का लक्षण जरूर है कि गुरुकुल-यन्त्र में कहीं कुछ दोष आ गया है, पर यदि गुरुकुल ही स्वयं अंग्रेजियत के आगे झुक जाता है जैसा कि स्नातक जी के प्रस्ताव का अभिप्राय प्रतीत होता है—तब तो मामला ही खतरे पर समझना चाहिये।

[पृ० ३ का शेष]

रोगों के इस असंख्य परिवार का केवल एक उद्गम-स्थान होना तो अवश्य चाहिये अन्यथा उसका वास्तविक वर्गीकरण हो ही नहीं सकता।

एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में तो रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर हो ही नहीं पाया है। यदि उस के शरीर के संस्थानों के आधार पर किये गये वर्गीकरण को स्वीकार किया जाय तो उसमें, उन रोगों का जिनका किसी संस्थान-विशेष से सम्बन्ध नहीं होता, (यथा चेचक, खसरा, इन्फ्लुएन्ज़ा इत्यादि) किसी संस्थान में (System) सन्निवेश नहीं हो पाता। यदि जन्म या उत्पत्ति के आधार पर किये गये वर्गीकरण को मान लिया जाय तो, जिन रोगों (जैसे मृगी, हिस्टीरिया, दमा इत्यादि) के उत्पादक कीटाणुओं का अभी तक पता नहीं चल पाया है वे शेष रह जाते हैं।

आयुर्वेद में समस्त रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर पाया जाता है या नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में यद्यपि हमें "नहीं" सुनायी दे रही है तथापि निम्न प्रमाणों के बल पर हम "हाँ" कहने का साहस कर सकते हैं। भाव प्रकाश लिखता है:—

"कर्मजा कथिता केचित्, दोषजाः सन्ति चापरे
कर्म दोषोद्भवाश्चान्ये, व्याधयस्त्रिविधा स्मृताः।

इस श्लोक में रोगों का वर्गीकरण उन तीन विभागों में किया गया है जिसमें, साधारण तया किया जाने वाला, वात. पित्त. कफ, वाला विभाग, केवल दोषज व्याधियों के अन्तर्गत हो जाता है। इस पर भी रोगों का वर्गीकरण एक आधार पर नहीं हो पाया है। परन्तु इस श्लोक की व्याख्या-स्वरूप निम्न संदर्भ से यह स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेद के मत में रोगों का मूलाधार केवल एक "दुष्कर्म" ही माना गया है जिससे ही वात पित्त कफ के त्रिदोष उत्पन्न होते हैं।

"मिथ्याहार-विहार-प्रकुपित-वात पित्त कफजाः दोषजा इत्युच्यन्ते"। इसमें शङ्का उठायी है "ननु मिथ्याहार-णामपि प्राक्तन सुकृतेनैव नैरुज्यं दृश्यत एव, ततो दोषजे ष्वपि प्राक्तन दुष्कर्मैव कारणम्—तत्कथं दोषजा इत्युच्यन्ते ?" इसका निम्न उत्तर दिया गया है "दोषजेष्वपि-वस्तुत आदि कारणं दुष्कर्म्म वर्तत एव; तत्र मिथ्याहार विहार कुपिताः दोषा हेतवो दृश्यन्ते—इति दोषजा उच्यन्ते।"

इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद के मत में समस्त रोगों का मूलाधार "दुष्कर्म्म" ही ठहरता है जिसमें से वात, पित्त, कफ के तीन मुख्य तने निकलते हैं। फिर इन तीन तनों में से ही भिन्न २ रोगों का समस्त परिवार, शाखा प्रति शाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक रूप में, प्रस्फुटित हो जाता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में भी रोगों का वर्गीकरण ठीक इसी प्रकार हुआ है। महात्मा हनीमैन समस्त रोगों का मूलाधार, दूसरों के प्रति किये गये दुश्चिन्तन, (Ill-thinking) को समझते हैं, जो दुश्चिन्तन एक "दुष्कर्म" के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? अतः मानना पड़ता है कि उक्त चिकित्सा प्रणाली में भी समस्त रोगों का मूलाधार केवल एक ही होता है और वह, "दुष्कर्म" है।

दुश्चिन्तन के इस बीज से कौन २ से अंकुर निकलते हैं तथा बाद में उनमें से शाखा प्रति शाखाओं के प्रस्फुटित होने पर किस प्रकार यह एक विशाल तथा घना रोग-वृक्ष बन जाता है—इत्यादि का वर्णन ही होमियोपैथी का रोगों का वर्गीकरण है जिसका संक्षिप्त रूप पाठकों के परिज्ञान तथा मनोरञ्जनार्थ नीचे दिया जाता है।

महात्मा हनीमैन लिखते हैं कि जब तक मनुष्य सृष्टि-नियमों के अनुकूल चलते रहे तब तक—रोग क्या होता है ?—इसका किसी को पता भी नहीं था। परन्तु, ज्यों ही उन्होंने, प्राणिमात्र के कल्याण के लिये विरचित परमात्मा के सार्वभौम महाव्रत का—सार्वभौतिक प्रेम का—दुश्चिन्तन द्वारा उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया त्यों २ परम कृपालु प्रकृति-माता ने उन्हें मर्यादा में सीमित रखने के लिये रोग रूपी बन्धनों का प्रादुर्भाव कर दिया। रोगों के इस अग्रदूत, दुश्चिन्तन को, महात्मा हनीमैन, मानसिक खर्जू (Mental itch) के नाम से पुकारते हैं। शरीर के अन्तरतम भाग में उत्पन्न हुआ २ दुश्चिन्तन की यह आग, उसके शासन को न जाने कहां तक कलुषित कर डालती, इस डर से प्रकृति माता उसे उसके राज्य की बहिः तम सीमा तक खदेड़ देती है जो वहां-त्वचा पर पहुंच कर, खाज मारते, लाल २ दानों के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है। चूंकि अन्तरात्मा का शासन, Influx नामक प्राकृतिक नियम के अनुसार, सदा केन्द्र से परिधि

की ओर प्रवाहित होता रहता है अतः मानसिक मर्ज़ का यह विकार भी उसी धार में बह कर अन्दर से बाहिर आ जाता है। दयालु प्रकृति अपने इस Influx द्वारा, केन्द्र से परिधि पर—त्वचा पर—फैंको गयी इस बाह्य मर्ज़ द्वारा (जिसे Psora कहते हैं) न केवल शारीरी के अन्तरङ्ग शासन को हानि पहुंचाने से बचा देती है, अपितु, उसमें चटपटी जलन तथा खाज उत्पन्न करके उसे सचेत भी कर देती है कि उसे (शारीरी को) उसके (प्रकृति के) नियमों का उल्लंघन करने पर इस प्रकार का पुरस्कार भी मिल सकता है।

ऐसी अवस्था में, शारीरी के लिये उचित तो यह था कि वह अपने शासन के प्राकृतिक प्रवाह में, अतिरिक्त प्रेम-जल बहा कर उस मालिन्य को सदा के लिये दूर करने का प्रयत्न करता, परन्तु, वह अपने दुष्कर्म के पुरस्कार में प्राप्त हुयी २ उस उत्कट खाज तथा विकट जलन से सहसा खीज तथा परेशान होकर, उसका सर्वनाश करने के लिये हकीम, वैद्य अथवा डाक्टरों की शरण में पहुंचता है। शूरवीर चिकित्सक लोग, त्वचा पर सामने बैठे उस रोग-राक्षस को अकेला तथा असहाय जान—उसे एक बाह्य रोग समझ कर—उसका विनाश करने के लिये, उस पर तीक्ष्णाति तीक्ष्ण औषधियों के शरों का प्रहार प्रारम्भ कर देते हैं। घर के बहिः द्वार पर पहुंचे हुये उस चोर पर जब सामने से मार पड़ने लगती है तब वह लाचार हो कर फिर उल्टे पैर लौट पड़ता है तथा घर की किसी अन्तरङ्ग कोठरी में लुक छिप कर जा बैठता है।

इस प्रकार त्वचा से तुरन्त काफूर हुयी २ वह मर्ज़, रोगी और चिकित्सक दोनों को, हर्षातिरेक से फुलाकर कुप्पा बना देती है। रोगी, भूत को इतनी सुगमता से भगा जान संतोष की एक सांस भरता है तथा डाक्टर साहिब मूज़ी को मलहम से मरा जान, इस प्रकार तड़क फड़ाक प्राप्त हुयी सफलता पर अपनी पीठ ठोंकता है। परन्तु न तो बिचारे रोगी को ही यह पता होता है कि उसका घर से बाहिर हुआ चोर, फिर अन्दर धकेल दिया गया है; नाही, लाठी चार्ज करा कर भीड़ को भगा देने वाले कलक्टर के समान, उस डाक्टर को ही यह डर होता है कि मिनटों में टला टलायी वह बला—उसके रोगी पर, न जाने कब, कैसी २ विषम विपत्तियों की बिजली गिराने वाली—काली घटा बनकर आ घिरेगी! त्वचा से चलती की गयी वह मर्ज़, बिजली बनकर, जब उस सन्न हुये २ (?) रोगी के किसी अन्तरङ्ग पर टूट चुकती है तब कहीं, उसकी गर्जना तर्जना सुनकर, चिकित्सक महाशय को पता चलता है कि उसके रोगी पर किसी नये रोग का गिरि-शिखर अचानक आ गिरा है। "कुछ बात नहीं" कहता हुआ वह अपने शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो, उस ग़रीब रोगी पर फिर पिल पड़ता है। रोगी का रोग राक्षस भी—धनुष्पाणि व्याध को आता देख, अपना वार कर चुकने के पश्चात् "मार कर भाग जा" को स्मरण करता हुआ, यह जा, वह जा हो, रोगी के किसी अन्तरङ्ग तम भाग में फिर जा छिपता है। परन्तु चिकित्सक की कड़ी मार का डर दूर हो जाने पर वह रोग राक्षस "काले काले च प्रतिमानुतिष्ठेत् कूर्म्म सर्पवत्" की नीति का अनुसरण करता हुआ फिर किसी भयङ्कर भेष में सामने आ खड़ा होता है। इस प्रकार, उसमें तथा चतुर चिकित्सक में एक प्रकार का गुल्लि-समर छिड़ जाता है। ऐसे संग्राम में किसकी विजय हुआ करती है, यह सभी युद्ध-विद्या-विशारद जानते ही हैं।

महात्मा हनीमैन, संसार के विचार-शील चिकित्सकों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं कि वे आन्तरिक रोग (Internal Disease) तथा बहिः रोग (External Diseases) के भेद को पूर्णतया समझने का प्रयत्न करें। क्या, जिन रोगों की जड़ शरीर के अन्तरङ्ग-तम भागों में जमी होती है वे बहिः रोग हो सकते हैं? क्या उनके प्रत्यक्ष लक्षित होने वाले स्वरूप का सफाया कर देने पर उनकी जड़ विनष्ट हो सकती है? क्या, जो माली, आक के पत्तों तथा शाखाओं को बारम्बार काटकर उसकी जड़ को उद्यान-पादपों के पास पृथ्वी में छिपा छोड़ देता है, वह माली कहलाने के योग्य हो सकता है? क्या उसकी ऐसी क्रिया से उद्यान-पादप पनप सकते हैं।

इसी प्रकार, शारीरी के अन्तरङ्ग तम मानस में पड़े दुश्चिन्तन के बीज से उत्पन्न हुयी २ यह ख़ाज-लता, क्या अपने बाह्य लक्षित स्वरूप के कट छंट जाने पर सदा के लिये समाप्त हो सकती है? क्या ऐसा होने पर यह, बढ़री के समान, और अधिकाधिक नहीं फलती फूलती? इसी लिये, महात्मा हनीमैन, इस Psora नामक मर्ज़ को सहस्र शीर्षा राक्षस (Hydra-headed Monster) के नाम से पुकारते हैं। यही अकेला मायावी, अपनी जागृतावस्था में, अधिष्ठान भेद से, दमा, कुष्ठी, बवासीर भगन्दर, उन्माद इत्यादि २ असंख्य रोगों के रूप में प्रगट होता रहता है, तथा अपनी सुषुप्त या विलासावस्था में मनुष्यों को उस दशा में ले आता है जिसमें वे न जीते ही हैं न मरते ही।

इस मायावी की सुषुप्तावस्था ही मनुष्यों में एक प्रकार की रोगानुशयिता (Susceptibility) उत्पन्न कर देती है, जिसके वशीभूत होकर वह श्वान के समान उतावला होकर इधर उधर फिरता हुआ कभी ऐसे स्थान पर भी जा पहुंचता है जहां पर उसे आतशक (Syphilis) तथा उपदंश (Sycosis) का शिकार हो जाना पड़ता है। ये दोनों रोग राक्षस भी, Psora के समान मौलिक तथा महा-भयङ्कर होते हैं। इन तीनों रोग राक्षसों के व्यस्त तथा समस्त रूपों से संसार के समस्त रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी लिये ये तीनों, आयुर्वेद के वात, पित्त तथा कफ के समान, रोगों के मूल-कारण (Fundamental-Causes) कहाते हैं।

जब, रोगों के मूल-कारण रूप ये तीनों रोग, व्यष्टि तथा समष्टि रूप से अपनी सुषुप्तावस्था में रहते हैं तब ये मनुष्यों में भिन्न २ प्रकार को रोगानुशयिता (Subceptibility) उत्पन्न कर देते हैं। यही रोगानुशयिता, होमियोपैथिक विज्ञान में, रोगों को प्रवर्त्तक कारण (Predisposing Cause) समझी जाती है। इस रोगानुशयिता

से अभिभूत पुरुषों पर जब भिन्न २ प्रकार के उत्तेजक कारण (Exciting Causes) प्रभाव डालते हैं तब उनमें नाना विध तीव्र रोग प्रगट हो जाते हैं। चूंकि मूल कारणों से उत्पन्न हुवे २ रोग, आकर, कभी जाते नहीं, (बिना उपचार के) अतः ये ही चिर-स्थायी रोग (Chronic Diseases) कहलाते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इन चिर-स्थायी रोगों की सुषुप्त दशा पर, जब जब, उत्तेजक कारणों (जैसे अति शीत तथा अति-आतपादि) का प्रभाव पड़ता है, तब तब, भिन्न २ प्रकार के तीव्र रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तीव्र रोग, चिर-स्थायी रोगों के प्रज्वलित रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते।

आजकल के सभ्य संसार में कोई विरला मनुष्य ही ऐसा मिल सकता है जिसमें यदि रोग नहीं तो, किसी न किसी प्रकार की रोगानुशयिता भी विद्यमान न हो। हजारों, लाखों वर्षों से होने वाले आने रक्त-सम्बन्ध के कारण इस रोगानुशयिता से कोई अछूता बच ही नहीं सकता। रक्त सम्बन्ध के कारण ही मनुष्यों में पैतृक रोग (Inherited Diseases) आ जाते हैं। इसी कारण जन्मते अबोध बालक भी रोग-ग्रस्त होते हैं। कभी २ पैतृक रोग, जो पहिले सुषुप्त दशा में रहते हैं, उत्तेजक कारणों द्वारा बाद में जागृतावस्था में प्रगट कर दिये जाते हैं।

यह रोगानुशयिता जिस मनुष्य में जितनी अधिक होती है वह उत्तेजक कारणों द्वारा उतना ही अधिक प्रभावित होता है तथा रोगों की उतनी ही तीव्र-रूपाग्नि प्रगट करता रहता है। जिस मनुष्य में रोगानुशयिता तो कम होती है परन्तु वह उत्तेजक कारणों के प्रभाव में बारम्बार आता रहता है उसमें भी रोगों को तीव्र-रूपाग्नि प्रगट हो ही जाती है, इसी लिये तुलसीदास जी लिखते हैं:—

"अति संघर्ष करै जो कोई।
अनल, प्रगट चन्दन ते होई॥"

परन्तु, जिस मनुष्य में रोगानुशयिता नाम मात्र को भी नहीं होती उसमें उत्तेजक कारण, रोग उत्पन्न करने में सर्वथा विफल हो जाते हैं। तब, वह,

"डगइ न शम्भु शरासन कैसे,
कामी वचन सती मन जैसे॥"

वाली अवस्था में पहुंच जाता है। क्या समाज में आज ऐसा एक पुरुष भी हाथ आ सकता है।

आजकल ऐसे मनुष्य तो अनेक मिल सकते हैं जिनमें तीनों प्रकार की रोगानुशयिता विद्यमान हो, अथवा जिनमें तीनों प्रकार के मूल कारण तीव्र रूप में लक्षित हो रहे हों। ऐसे पुरुष, तुलसीदास जी की निम्न चौपाई के अनुसार

काम वात कफ, लोभ अपारा,
क्रोध, पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनउ भाई,
उपजइ सन्निपात दुःखदाई॥

यदि, सन्निपात की यातना सहें तो उसमें क्या आश्चर्य हो सकता है?

परन्तु भिषगवरों की परीक्षा भी सन्निपात से पीड़ित करने में ही होती है।

रोगों के मूल कारण भूत, इन तीन रोग राक्षसों से सताया गया, अतएव, पिशाच की भांति ग्रसित हुये, २ रोगों के रक्तों को बदलता हुवा मनुष्य, जब किसी ऐसे चिकित्सा शास्त्री के पास पहुंच जाता है जिसे रोगों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तो उसकी वह मरम्मत बनती है जो पञ्चतन्त्र के मित्रभेद की ११ वीं कथा में, बालाक काक, सयाने सियार, तथा चतुर चीते से घिरे बहुचंद उष्ट्र महाराज की, शेर ने बनाई थी। क्या ऐसी चौकड़ी के हाथ पड़ा कोई भी जीव बच कर निकल सकता है!

यौवनं, धन सम्पत्तिः, प्रभुत्वमविवेकिता
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्।

यौवन, धन संपत्ति, प्रभुत्व तथा अविवेक अकेले २ ही महा अनर्थ कर डालने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार (1) Psora, (2) Syphilis (3) Sycosis तथा (४) अण्ड बण्ड चिकित्सा भी अकेले २ क्या २ गजब नहीं ढा सकती! परन्तु जब यह चाण्डाल चौकड़ी, उपर्युक्त चतुष्टय के समान संगठन होकर किसी को घेर लेती है तब तो उसका सिवाय परमेश्वर के और कौन रखवाला हो सकता है!

इस प्रकार दुर्भिक्षितन के बीज से उत्पन्न हुये २ इन तीन रोगोद्गमों (Miasms) से ही संसार के समस्त रोग प्रस्फुटित हो जाते हैं तथा इन्हीं तीन विभागों में पुनः सन्निविष्ट हो जाते हैं। अतः, होमियोपैथी का रोगों के वर्गीकरण का यह प्रकार, आयुर्वेद के त्रिदोष के वर्गीकरण के समान, पूर्णता की पराकाष्ठा को पहुंच जाता है, जिसका अध्ययन तथा मनन करके, चिकित्सक लोग, समस्त रोगों का सम्यग् ज्ञान, स्वल्प-सम काल में, प्राप्त कर सकते हैं।

इस वर्गीकरण का एक विशेष लाभ यह भी है कि रोगों के समान, समस्त औषधियों का वर्गीकरण भी—

(1) Anti -Psoric—कण्डूहर
(2) Anti—Syphilitic—आतशकहर
तथा (3) Anti—Sycotic—उपदंशहर

इन तीन विभागों में करके, चिकित्सा के कार्य्य में सर्वतो-मुखी तथा सुनिश्चित सफलता प्राप्त की जा सकती है।

जो चिकित्सा प्रणाली, आज तक, अनिश्चितता (Uncertainty) की खाई में खिसटती चिकित्सा की प्रक्रिया को सुनिश्चितता के सुमेरु पर्वत के उत्तुङ्ग शृङ्ग पर अधिष्ठित करदे, उसके सर्वोत्कृष्ट होने में किसे सन्देह हो सकता है?

होमियोपैथिक विज्ञान वेत्ताओं की सम्मति में, चिकित्सा को सुनिश्चितता के उच्चतम-शिखर पर पहुँचाने का सब से अधिक श्रेय, महात्मा हनीमैन की इस कण्डू-कल्पना (Psora-theory) को ही दिया जाता है; जिसके विषय में Dr. H. C. Allen लिखते हैं—

महात्मा हनीमैन ने जिस समय "कण्डू कल्पना" के राज-महल को खड़ा किया था उस समय उसे भी इसके वास्तविक मूल्य का पता नहीं था।" ———

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ ओ३म् ॥

रामानन्द-अङ्क

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २६ माघ १९९७; ७ फरवरी १९४१ [संख्या ४२

श्री महाराज जी !

(स्वर्गीय स्वा० रामानन्द जी)

(ले० त्रिरेफ)

दूर तक फैली हुई पथरीली अरावली पर्वतमाला, चमकती हुई चट्टानें, गर्मियों की लू, सर्दियों की चीरती हुई हवा, बिखरे हुए गोखरू, कटीली झरबेरियाँ, गहरे लाल रंग के टेसू, खजूर, और खजूरों के बीच में झरना, यही है गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ ।—

ऊंची ऊंची दीवारें, बड़े बड़े दरवाजे, लम्बे बैरकों से मकान, सब कुछ विशाल और मजबूत ।

पहाड़ी के ऊपर आश्रम और विद्यालय के बीच में फैला हुआ मैदान, मैदान में खेलते हुए छोटे छोटे बाल बालक, और दूर पर आश्रम के एक कोने में खड़ी मुस्कराती हुई एक काषाय मूर्ति ।

छोटा कद, चौड़ा माथा, घुटा सिर, चेहरे पर हलकी झुर्रियां, गम्भीर मुद्रा, आंखों में स्नेह, अनुभव में सराबोर यही हैं 'महाराज जी' श्री स्वामी रामानन्द जी ।

आप नमस्ते कीजिए । 'नमस्ते महाराज जी' जवाब पाएंगे । फिर वे आपको शुभ अभिलाषा की दृष्टि से देखते रहेंगे । हो नहीं सकता कि आपके हृदय में श्रद्धा का भाव न आए ।

मैं उनके निरीक्षण में ५ साल रहा हूं । सदा उन्हें घड़ी की सुई की तरह पाया है । घड़ी उनके कमरे में थी पर उसे भी उन्हें देख कर ठीक मिलाया जा सकता था ।

× × ×

सुबह के तीन बजे । वे अपनी चौकी पर ध्यान मग्न होंगे

'उठो महाराज जी' वे अपनी छोटी लालटेन लेकर सब ब्रह्मचारियों को उठा रहे हैं, अर्थात् साढ़े चार बजे हैं । कुछ लड़के तो शरारती होंगे ही । सर्दी में नहाने से बचना चाहेंगे । पर महाराज जी जरूर आपको स्नानागार के रास्ते में मिलेंगे । लड़के नमस्ते करते हैं अर्थात् 'हम नहाने जा रहे हैं ।' कुछ नमस्ते करके पीछे पीछे ही लौट भी आते हैं । पर संदेह कौन करे ? यह तो स्नेह का राज्य है ।

× × ×

पहाड़ी के नीचे महाराज जी ने खेती का काम शुरू किया हुआ है । खेती कराते नहीं खुद करते हैं । बूढ़ा शरीर, कोई अभिलाषा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, पर हर रोज शाम के साढ़े तीन बजे नीचे आकर आप उन्हें काम करते पाएंगे । (संभवतः वे सोचते हों 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः') ।

मनुष्य यदि जानते बूझते मशीन बन सकता है, तो वे थे । गरमी, सरदी, बरसात, उनकी जीवन गति उसी क्रम में निर्बाध चलती रहती ।

अपनी कुछ इच्छाओं की अपने ही लिए बलि कर लेना भी कठिन होता है । और दूसरे के लिए अपनी कुछ इच्छाओं की बलि कर देना और भी कठिन है । पर दूसरे के लिए अपनी इच्छामात्र को समाप्त कर देना उससे बहुत ही कठिन है । और उससे भी कठिन है दूसरे की इच्छा को ही अपनी इच्छा बना लेना । महाराज जी जो कुछ करते थे केवल इसलिए कि किसी तरह गुरुकुल उन्नत और विशाल हो सके । वे किसी के आगे हाथ पसारने वाले व्यक्ति नहीं । न अपने लिए, न दूसरों के लिए ।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का ऊपर का मैदान उन्हीं का तैयार किया हुआ है । पेड़ उनके ही लगाए हुए हैं । और इस सब कड़ी मेहनत की गहरी छाप उनकी आकृति पर थी । गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को अपने खून से सींचने वाले इस व्यक्ति ने न तो कभी इस सत्य का प्रचार ही किया और न अखबारों में प्रसिद्धि प्राप्त की और न कभी आकर्षक वक्तृताएं ही दीं । संभवतः बहुत अच्छी तो नहीं पर ऐसी वक्तृताएं तो वे बहुत दे सकते थे जैसी कि देकर आज के सन्यासीगण तथा अन्य लोग प्रसिद्ध हो जाते हैं । पता नहीं उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया । शायद उन्हें 'पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय-' रोके रहा ।

आज वे नहीं हैं । सुनते हैं किसी दूसरे लोक में चले गए हैं । शायद महाकवि 'ग्रे' को अपनी निम्न पंक्तियां लिखते हुए किसी ऐसे ही व्यक्ति का ध्यान रहा हो ।

> 'कितने अमन्द्रकान्त रत्न नीरनिधि की—
> अन्ध कन्दराओं में ही रहते विलीन हैं ।
> 'कितने प्रसून मृदु-हास्य लीला विधि की—
> खिल अनजाने में ही होते रसहीन हैं ।''

—o—

जीवित विद्यालय

ले० श्रीकुमार शर्मा

'अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय'

(१)

जिसके चरणों ने सिखलाया
इस जग में चलना सँभल सँभल,
जिसके हाथों ने सिखलाया
करना कठोर भी काम सरल,
अब वह न मिलेगा गुण-संचय !
अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय !

(२)

जिसके अधरों का लघुकम्पन
कहता था–'मत होना निराश',
जिसके मुख-मंडल की आभा
करती जीवन का तिमिर नाश,
अब वह न दिखेगा शोभामय !
अब वह न मिलेगा शुभ-आश्रय !

(३)

जिसके अन्तर की स्थिरता में
थे एक रूप, सम और विषम,
जिसकी गोदी का छिपा प्यार
सहला देता था कभी मरम,
अब वह न मिलेगा मृदुल हृदय !
अब वह मिलेगा शुभ-आश्रय !

था तुम्हें स्नेह हमसे गुरु वर !

वे बीते शैशव के कुछ पल—
स्मृति में आ दृग् में भरते जल,
जब हमें बनाने को तुमने—
दी हमें झिड़कियां थीं कोमल,
हम जाते थे गुस्से में भर !
अब शिशुसे मैं हो चला युवक,
तुम स्नेह मधुर थे हित चिन्तक,
केवल वह स्नेह नहीं मिलता—
मिलती है डांट डपट अबतक,
हम छूट गए आधे पथपर !
जीवन की ध्वनि थी राम राम,
तुम पूर्ण सफल तुम थे अकाम,
'तुम चले गए' ऐसा सुनकर—
मैं चकित रह गया हृदय थाम,
तुम चले गए इतने निःस्वर !
था तुम्हें स्नेह हमसे गुरुवर !!

—'विराज'

श्रद्धांजलि

वह सौम्य मूर्ति, चिर स्नेह भरी
शिशुओं के प्रति करुणा दुलार,
शिशुओं से भोले आनन पर
अंकित वत्सलता अमिट प्यार।
जग के जीवन में एक रूप
बन कर अस्तित्व विहीन स्वयम्,
जगकी गति ही अपनी गति है
यों ही चलते जाने का क्रम।
यह अथक साधना चिर सेवा-
व्रत का यह अन्तिम अनुष्ठान,
थी यशोकामना, अभिलाषायें
हुई उसी में लीयमान।
कुल उपवन के आधार भूत
बन चिर जीवित निष्काम राम,
तेरे चरणों में युग युग तक
है मेरी श्रद्धांजलि प्रणाम ॥—

—'सूर्यकुमार'

यह झांक रहा है क्या अम्बर ?
गुरु नहीं मगर गुरु से ऊपर
मानव तुम देव ! इसी भूपर
साक्षात सरलता के स्वामी ! तुम गए किधर? तुम गए किधर ?
यह झांक रहा है क्या अम्बर ?
दोनों संध्यायें ये आती हैं
तब धुंधली स्मृतियां लाती हैं
प्राणों में मेरे कूक रहा–तेरे बोले "सन्ध्या" के स्वर
यह झांक रहा है क्या अम्बर ?
हा सर्वनाश ! हा सर्वनाश !
हा स्वर्गवास ! हा स्वर्गवास !—
सुनकर यह मानव सिहर गया-यह कैसा विधि का स्वर्ग सुघर?
यह झांक रहा है क्या अम्बर ?
यह वेला भी बुरा होने की !
या कमजोरी थी दोनों की !
दोनों आपस में नाप रहे, है कौन तुच्छ ! है कौन प्रवर !
यह झांक रहा है क्या अम्बर ?

—श्री अमृतीश चन्द्र

त्याग का वह राग !

भर रहा मेरा हृदय है,
हर रहा मेरा हृदय है,
है छिपा इस राग में; कितना मधुर अनुराग !
गूंजते मधु वचन क्षण क्षण,
और होता ध्वनित जीवन,
आज मुझ में फूंकतीं हैं प्राण—स्मृतियां जाग !
क्यों न तब वे मुस्कराते,
और उनका गान गाते,
कह रहे—वह चेतना हम से गई है भाग !
त्याग का वह राग !!

— श्री सच्चिदानन्द ।

वह आदर्श जीवन

(ले०—श्री सतीशकुमार जी)

समाचार पत्र में काली २ मोटी रेखाओं के बीच में मैंने एक दुःखद समाचार पढ़ा, एक ऐसे व्यक्ति का जिसके चरणों में बैठकर मैं शिष्यभाव से विद्याध्ययन करता रहा हूँ स्वर्गवास हो गया था। वह व्यक्ति वीतराग था, उसका जीवन हमारे लिए आदर्श था। उस व्यक्ति ने एक धार्मिक संस्था में ही सेवा कार्य करते हुए निष्काम साधना करते हुए अपनी आयु के अन्तिम तीस लगते २ वर्ष गुजारे थे। वे स्वामी जी थे।

स्वामी जी के अतीत के जीवन के विषय में मुझे बहुत कम ज्ञात है। उनका वर्तमान जीवन ही इतना आकर्षक था कि मुझे कभी और जानने की उत्सुकता ही नहीं हुई। इतना मालूम है कि संन्यास से पहिले उनका नाम मुंशी राम सिंह था। स्वामी श्रद्धानन्द जी को वे अपना दीक्षा गुरु कहा करते थे।

जब मैं चतुर्थ श्रेणी में था तभी मुझे स्वामी जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु उनके निकट सम्बन्ध में मैं तब आया जब पंचम श्रेणी उत्तीर्ण करके गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ गया। स्वामी जी हमारे कई विषयों के अध्यापक थे। हमारे गणित, आर्यभाषा इतिहास, और धर्म शिक्षा आदि विषय उन्हीं के पास थे। सातवीं श्रेणी के भी यह सब विषय उन्होंने ही ले रखे थे। आठवीं श्रेणी को आर्यभाषा और इतिहास भी आप ही पढ़ाते थे। स्कूल में विशेषतः गुरुकुल में किसी के सब अन्तर भरे होना कोई आश्चर्य की बात नहीं परन्तु स्वामी जी के पास विषय भी बहुत थे। हमने स्वामी जी को कभी भी कुर्सी पर बैठ कर पढ़ाते हुए नहीं देखा। सब अन्तरों में खड़े रह कर ही पढ़ाते थे।

स्वामी जी का सारा जीवन चलता हुआ सा था। उन्होंने कभी भी अपने जीवन में विराम और विश्राम का अनुभव नहीं किया। प्रातः काल से लेकर ब्रह्मचारियों के सोने के समय तक वे एक गति चक्र की तरह घूमा करते थे। बाद में आश्रम अधिष्ठाता बनने पर रात को भी कई बार चक्कर लगाते और जिन ब्रह्मचारियों के वस्त्र उतर जाते उन्हें उढ़ाते थे। ब्रह्मचारियों को सुलाना, उठाना, सन्ध्या हवन कराना इत्यादि कामों को स्वामी जी स्वयं भी करते आते थे। वे नियम में रहकर नियम पालन सिखलाते थे। भोजन भण्डार में स्वामी जी सब को खिला पिला कर स्वयं सन्यास में कथित नियम के अनुसार अपनी रोटियों को पानी में भिगो कर खाते थे। एक ही समय आहार करते थे। ब्रह्मचारियों के प्रत्येक कार्य को उन्हीं की तरह करते, यात्राओं पर भी ब्रह्मचारियों के साथ ही जाते थे। गुरुकुल के इतिहास में यदि किसी व्यक्ति ने अपने दिन के अधिक से अधिक घण्टों को, अपने महीनों के अधिक से अधिक दिनों को, अपने वर्ष के अधिक से अधिक महीनों को और जीवन के अधिक से अधिक वर्षों को ब्रह्मचारियों के साथ एकाकार करने में बिताया है तो वे स्वामी जी ही थे।

छोटे बच्चों की इच्छा होती है। कि उन्हें सदा खेलना ही मिलता रहे। छठी श्रेणी में हमारी भी यही दशा थी। हम भी चाहते थे कि स्वामी जी अपने अन्तर में जितनी देर से आयें उतना अच्छा है, परन्तु स्वामी जी कभी देर से नहीं आये। हमने उनकी इस समय की नियमितता को देख कर उस समय शायद झुंझला कर बचपने में उन्हें 'लालगाड़ी' कहना प्रारम्भ कर दिया था, स्वामी जी यदि जीवित होते तो अपने इस नाम पर अब स्वयं हंसते। परन्तु आज हम अनुभव करते हैं कि हमने हास्य में ही उनके जीवन के एक गम्भीर सूत्र को जान लिया था। सब कामों को वे अपने निश्चित कदमों के साथ करते चले जाते थे। दार्शनिक काण्ट के समय के लिए जो बात सुनी थी, वही स्वामी जी के व्यवहार में हमने अनुभव की। स्वामी जी के जीवन की बहुत सी मनोरंजक घटनाएं भी हैं जिनकी स्मृति अब केवल विषाद ही लाती है। स्वामी जी के साथ अपने वैयक्तिक सम्बन्ध के विषय में मैं यही कह सकता हूं कि यदि मेरे जीवन में किसी ने मेरा सब से अधिक विश्वास किया है तो वे स्वामी जी ही थे। कौलिज में आने पर भी मैं प्रतिवर्ष उनके चरण छूकर आता था।

स्वामी जी की आयु उनके शरीर और कामों से बहुत अधिक थी। केवल उनकी आयु का ध्यान रखकर आप से अध्यापक का काम न लेने का विचार किया गया, परन्तु स्वामी जी ने कहा कि अभी मेरे में सामर्थ्य है और जब मैं अपने को असमर्थ समझूँगा तब स्वयं कह दूंगा कि मैं नहीं कर सकता हूँ। परिणामस्वरूप कुछ अन्तर कम कर दिये गये पर फिर भी वे पढ़ाते रहे। पीछे बहुत वर्षों बाद इस वृद्धावस्था में भी पढ़ाई लिखाई का कार्य करते हुए जब उनकी नेत्र ज्योति मन्द होगई तब उन्होंने अध्यापन का कार्य छोड़ दिया।

स्वामी जी एक सफल वैद्य भी थे। आस पास के ग्रामों के निवासी सदा ही स्वामी जी से औषधि ले जाया करते थे। यह कार्य आपने सदा परोपकार और कर्तव्यभावना से किया, मंहगी से मंहगी दवाई देने पर भी कभी पैसे नहीं लिये। स्वामी जी ने अपने जीवन की आवश्यकताओं के लिए जो कुछ अर्जन किया सब मजदूरों की तरह ही किया। इन्द्रप्रस्थ की बेडौल विशाल चट्टानों को अपने हथौड़े की अनथक चोट से तोड़ कर मैदान बनाकर ही उन्होंने कमाया। ऊंची २ जमीन को खोद कर तथा खड्डों को भर कर ही ।) के हिसाब से कमाई की। पथरीली जमीन को खेत का रूप देकर, उसे पानी से सींच २ कर स्वामी जी जो कुछ भी शाक-सब्जी उत्पन्न कर सके उससे ही उन्होंने कमाई की। स्वामीजी ने अपनी इस कमाई का उपयोग एक ऐसे सुन्दर कार्य के लिए किया जो सदा उनकी याद दिलाता रहेगा। अपनी इस गाढ़ी कमाई द्वारा एक २ पैसा जोड़ कर तथा अपने कुछ प्रिय शिष्यों द्वारा कुछ रकम इकट्ठा करके स्वामी जी ने एक भव्य श्रद्धानन्द पुस्तकालय भवन बनवा दिया है। अब उनकी शेष सम्पत्ति भी इस तरह उपयोग में आ गई है।

(शेष पृ० ७ पर)

गुरुकुल

२६ माघ शुक्रवार १९९७

स्वामी रामानन्द

(ले०—श्री प्रो० वेदव्रत जी इतिहासोपाध्याय)

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के निर्मोही सेवक श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज इस समय यद्यपि पर्याप्त वयोवृद्ध थे किन्तु फिर भी गत सप्ताह उनके स्वर्गवास के समाचार को सुनकर मुझे बहुत धक्का लगा। यह जानकर और अधिक दुःख हुआ कि उनका एक देहावसान एक लारी के नीचे आ जाने से हुआ। वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सामने वाली ग्राण्डट्रंक सड़क पर भ्रमण कर रहे थे कि एक फौजी लारी उन पर से गुज़र गई। क्योंकि भ्रमण के समय वे एकाकी थे अतः लारी वाले उन्हें अपने साथ ही दिल्ली ले गए और वहां इरविन हस्पताल में उनका स्वर्गवास हो गया। जिस महानुभाव ने अपने जीवन के ३०–३५ वर्षों का एक एक क्षण गुरुकुल की सेवा में व्यतीत किया हो उसके यूं दुर्घटनाग्रस्त होकर और गुरुकुल परिवार से दूर दिवंगत हो जाने पर गुरुकुल वासियों के हृदय में गहरी वेदना का उत्पन्न होना निःसन्देह अत्यन्त स्वाभाविक है। इसी मास में होने वाले गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के रजत जयन्ती समारोह पर स्वामी जी का अभाव बहुत खटकेगा। उचित तो यही था कि इस अवसर पर गुरुकुल-परिवार उनकी अनवरत निष्काम सेवा के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करता और उनका अभिनन्दन करता, लेकिन हुआ यह कि दैव ने उन्हें उससे पहले ही हमारे बीच से उठा लिया। इस बात के मन में आने पर उनका स्वर्गवास असामयिक और कष्टप्रद अनुभव होता है।

मुझे भी अनेक वर्षों तक स्व० श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर विद्याभ्यास और चरित्र निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। स्वामी जी का मेरे गुरुजनों से बहुत अच्छा परिचय और सम्बन्ध था। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि स्वामी जी की सबसे बड़ी इच्छा सदा यही रहती थी कि गुरुकुल की सेवा करें और विद्यार्थियों को सन्मार्ग पर ले जायें। इतने दीर्घ काल तक गुरुकुल की अवैतनिक सेवा करते हुए उन्होंने गुरुकुल जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे, किन्तु कभी भी गुरुकुल के प्रति खिन्नता या पराङ्मुखता का भाव उनके हृदय में अंकुरित नहीं हुआ। गुरुकुल को नैतिक उन्नति के पथ पर अग्रसर देखने की उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वे कभी कभी विद्यार्थियों व अधिकारियों की धमकी तक भी कर डालते थे। उनका 'पड़ताल' करना प्रसिद्ध था। किन्तु तारीफ़ की बात यह थी कि कभी भी किसी ने उन की डांट को बुरा नहीं समझा। क्योंकि उनकी शुभ कामना पर कभी किसी को सन्देह नहीं हुआ और सब उनका अधिकार समझते थे। वे एक प्रकार से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के वृद्धपितामह थे। उनके हाथों में पले ब्रह्मचारी सैकड़ों की संख्या में स्नातक हो चुके हैं। स्वामी जी के स्वर्गवास के समाचार से उन सब की स्मृतियां एक बार फिर ताज़ा हो जायेंगी और मेरे यह लिखने का समर्थन करेंगी कि स्वामी जी के उठ जाने से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ निर्धन हो गया है।

यह बिलकुल ठीक है कि विशाल प्रासादों के कंगूरे यद्यपि दूर से ही दीख पड़ते हैं किन्तु उन की स्थिति उन की बुनियादों पर होती है, जो बुनियादें अदृश्य और जमीन के नीचे रह कर ठोस सेवा करती हैं. बिना प्रतिफल या नाम की लिप्सा के स्वामी जी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के एक ऐसे ही ठोस और रचनात्मक कार्यकर्त्ता थे। इन्द्रप्रस्थ को वर्तमान रूप में देखने वालों का ध्यान इस ओर कम ही जाता होगा कि इसे यह रूप देने में स्वामी रामानन्द जी का कितना बड़ा हाथ था। यह ठीक है कि इन्द्रप्रस्थ की इमारतों को सेठ बिड़ला जी के कारीगरों ने कलामय बना दिया है, लेकिन इन्द्रप्रस्थ की असली इमारत स्वामी जी के खून, पसीने पर ही ठहर रही है। इन्द्रप्रस्थ की दुर्गम पथरीली जमीन पर सड़कें बनाना, उनके दोनों ओर सायादार पेड़ लगाना, खेलने के लिये मैदान तैयार करना, साग सब्जी के लिये बगीचा लगाना, ऊपर इमारतों के बीच में विशाल समथल मैदान निकालना, शानदार पुस्तकालय—स्वामी जी के ही पुण्य परिश्रम का फल हैं। स्वामीजी एक २ पौधा लगाकर उसे प्रतिदिन अपने हाथ से सींचा करते थे। एक भी पौधे के मरने या किसी डाल तोड़े जाने पर वे दुःख मनाया करते थे। यह उन दिनों की बातें हैं जब मैं इन्द्रप्रस्थ के हाई स्कूल में पढ़ता था। मुझे इस बात का फ़ख़ है कि मैंने भी श्री स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में सिर पर बजरी और मिट्टी की टोकरियां ढोई थीं और पत्थर फोड़े थे। सचमुच स्वामी जी जैसे कार्य-तत्पर और संयमी व्यक्ति के निकट रह कर एक जबर्दस्त प्रेरणा होती थी। यह सब काम स्वामी जी, बिना कुछ लिये, एक ऊंचे सेवा-आदर्श और कर्तव्य-निष्ठा से प्रेरित होकर करते थे। उन्होंने अपने आप को गुरुकुल के साथ ऐसा एक रूप कर दिया था कि कभी यह विचार ही मन में नहीं पैदा होता था कि यह भी कभी बाहिर से आये होंगे, या गुरुकुल से कभी इनका वियोग होगा। जीवन उनका इतना संयत और नियमित था कि उन्होंने अपने सारे सफ़ेद बाल फिर एक दफ़ा बिलकुल काले कर लिये थे।

ऐसे महानुभाव की क्षति गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिये एक जबर्दस्त धक्का है। इस दुःख में हम सब की समवेदना गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के साथ है। यह गुरुकुल ही स्वामी जी का परिवार था। आशा है, स्वामी जी की पुण्य स्मृति को स्थिर करने के लिये गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में अवश्य कोई प्रयत्न किया जावेगा। स्व० स्वामी जी के

पुराने शिष्य व परिचित जब कभी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ आया करेंगे तो उन्हें वहां कुछ कमी अनुभव हुआ करेगी। संभव है, एक सुन्दर सा स्मारक इस क्षति को कुछ अंश में पूर्ण कर सके। अन्त में, मैं दिवंगतात्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करता हूं।

वे गुरुकुल के एक स्तम्भ थे

स्व० स्वामी रामानन्द जी

(ले० श्री ब्र० सहदेव जी)

संसार में पारमार्थिक रूप से लक्ष्मीवानों की तरह जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति स्वल्प ही हुआ करते हैं। टाओइज्म (Taoism) के प्रवर्तक महात्मा लुट्जे के कथनानुसार "बुद्धिमान व्यक्ति बिना कुछ किये सब कुछ करने का यत्न करता है और अपने उद्देशों को वाणी का प्रयोग किये बिना ही दूसरों तक पहुंचाता है। अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति के आचरण द्वारा ही लोगों को मूक शिक्षा मिलती रहती है।" सचमुच महात्मा लुट्जे के उपरोक्त वचन स्वामी रामानन्द जी के जीवन में अक्षरशः चरितार्थ होते हैं। स्वामी जी कौन थे? उनकी जन्मभूमि कहां थी? इन प्रश्नों पर विचार न करते हुवे हम उनके गुरुकुलीय-जीवन के विषय में विचार करेंगे।

आज से चालीस वर्ष पूर्व विश्व शान्ति के उपासक महर्षि दयानन्द के विचारों को क्रियात्मक रूप देने के लिए अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द ने जब पंजाब के नगरों में प्रयाण किया तो उनके विचारों की छाप पंजाब की जनता पर पूर्ण रूप से अंकित हो रही थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी के कथनानुसार स्वामी रामानन्द जी ने अपना जीवन कुलपिता के चरणों में सदा के लिए अर्पित कर दिया था। गुरुकुल का उद्घाटन करते समय स्वामी श्रद्धानन्द जी के सामने जितनी समस्यायें उपस्थित थीं उनमें एक समस्या यह भी थी कि गुरुकुल में आर्य समाजी विचारों के लोग कहां से लाये जाएं? सचमुच उस काल में जब कि वैलेन्टाइन शिरोल ने गुरुकुल तथा आर्य समाज को राजनैतिक संस्था बता कर पाश्चात्य विचारों का सूत्रपात करना चाहा था, जिस समय आर्य समाज का नाम भी सुनाई न देता था, उस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी के सामने सच्चे आर्य प्राप्त करने की एक अत्यन्त असाध्य समस्या उत्पन्न हुई थी। लेकिन सर्व प्रथम अम्बाला ज़िला में ही स्वामी श्रद्धानन्द जी ने स्वामी रामानन्द जी को अपना प्रमुख शिष्य बनाया। स्वामी रामानन्द आर्य समाजी विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने जीवन को गुरुकुल की निस्वार्थ एवं अवैतनिक सेवा में व्यतीत करने का स्वामी श्रद्धानन्द जी के सामने प्रण किया था, जिसे वे आजीवन निभाते रहे।

गुरुकुल कांगड़ी में तो उन्होंने थोड़े ही वर्ष व्यतीत किये थे परन्तु उनके जीवन का शेष समय अरावली पर्वत के सुविस्तृत आंचल में अवस्थित गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की सेवाओं में ही व्यतीत हुआ था। स्वामी जी की सेवाओं से गुरुकुल का प्रत्येक निवासी भली भांति परिचित है। हमारे लिए उनके जीवन का एक २ क्षण भी बहुमूल्य प्रतीत होता था। वे गुरुकुल जगत् के सुदृढ़ स्तम्भ थे। यद्यपि मुझे उन की छत्रछाया में पलने का सौभाग्य आनुषङ्गिक रूप में ही प्राप्त हुवा है परन्तु मुझे पूर्ण आशा है कि गुरुकुल के शेष विद्यार्थी जो अब तक स्नातक हो चुके हैं या जो वर्तमान में विद्यालय में अध्ययन में तत्पर हैं, स्वामी जी के जीवन से भली भांति परिचित होंगे।

अरावली के उस दामन में, जहां पहले पत्थरों के टीले ही नज़र आते थे, आज उसी जगह पर स्वामी के खून और पसीने से अभिषिक्त नींवों वाली गगनचुम्बी अट्टालिकाएं और बुर्ज़ अपनी शान दिखा रहे हैं। इस महान् कार्य के लिए हम कुलबन्धु उनके सर्वदा ऋणी रहेंगे।

उनका जीवन गुण-गरिमा से पूर्ण था। यद्यपि वे वृद्ध थे परन्तु उनकी शक्ति नवयुवकों की सी थी। स्वामी जी के सेवक बनने से पहले वे शानदार महलों में ज़िन्दगी बसर किया करते थे। यदि वे चाहते तो आजीवन अमीरों की दुनियां में निवास कर सकते थे। लेकिन उन्होंने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को लात मार कर संन्यास के बीहड़ पथ पर, विश्व-प्रेम के विशाल प्राङ्गण में सहर्ष प्रयाण किया। सचमुच उनका जीवन तपोमय जीवन था, वह गीता के व्यावहारिक-दर्शन का परम साक्षी था, वह उत्सर्ग और त्याग की मूक कहानी था, दिव्य दिवानेपन की प्रतीक था। मेरा पूर्ण विश्वास है कि आर्यसमाज के वर्तमान इतिहास का अनुसन्धान करने पर भी ऐसे वीतराग और उत्सर्गवान् सन्यासी का मिलना नितान्त दुर्लभ है। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली से उन्हें अत्यन्त अनुराग था। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द के महायज्ञ को पूर्ण बनाने में ही अपना कल्याण समझा। इसी निमित्त उनका जीवन गुरुकुल की अमूल्य सेवाओं में व्यतीत हुवा है।

वे गुरुकुल में रहते हुवे बच्चों से पिता के समान व्यवहार करते थे। एक पिता को जिस प्रकार अपने बच्चे से मोह होता है उसी प्रकार उन्हें भी इन बच्चों से अनुराग था। रुग्ण विद्यार्थियों के दिल को बहलाना, उन्हीं के सुख दुःख में अपने को सुखी दुःखी समझना— उनके दैनिक जीवन की एक चर्या थी। वे केवल विद्यार्थियों से ही नहीं अपितु कर्मचारियों से भी प्रेम-पूर्वक बर्ताव करते थे। प्रत्येक विभाग का कर्मचारी उनसे सन्तुष्ट था। कार्य-संलग्नता उनके जीवन की एक प्रतीक थी! उनके प्रति यह ईश्वर की देन सर्वथा अनुशंसनीय थी।

गुरुकुल जगत् के निवासी इस चीज़ से भली भांति परिचित हैं कि उन्होंने किस प्रकार एक कृषक की भांति अविरत परिश्रम से संचित धन द्वारा गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के वीरान टीले पर एक शानदार भव्य-भवन का सृजन किया है। पारस्परिक कृत्रिम प्रेम के बन्धनों में जकड़े हुवे दुनियां के लोग भले ही उस तेजस्वी की स्मृतियों की उपेक्षा करते रहें लेकिन अरावली पर्वतमाला की उस तपोभूमि के टीले और बुर्ज जहां प्रजाविघातक सामन्तों के अत्याचार-मूलक समात्मक साम्राज्य का विनाश करके धर्मराज युधिष्ठिर ने विश्व बन्धुत्व का परिचय दिया था,

सहिष्णुता की दिव्य मूर्ति स्वामी रामानन्द जी के संस्मरणों पर प्रतिदिन विचार किया करेंगे।

क्या स्वामी जी का जीवन त्यागमय नहीं कहा जा सकता ? वे दानी थे, परन्तु आजकल के कीर्तिलोलुप दानियों की तरह के नहीं। वे दिये हुवे दान को गुप्त रखना चाहते थे। अपने बनवाये हुवे भवन पर उन्होंने अपना नाम तक भी अंकित नहीं किया। लोग इसे उपेक्षा-दृष्टि से देखते हैं परन्तु यह एक साहस पूर्ण चीज़ है। भले ही हम इस गुप्त त्याग को आदर की दृष्टि से न देखें लेकिन प्राचीन भारतीय दृष्टि से यह कार्य सर्वथा श्लाघ्य एवं अनुकरणीय है।

स्वामी जी ने "गुरुकुल" में एक लेख लिखते हुवे अपने शिष्यों से कुछ धन की याचना की थी। मैं इस चीज से सर्वथा अनभिज्ञ हूं वे अपने मनोरथ में सफल हुवे हैं या नहीं ? परन्तु मैं अपने कुल बन्धुओं से सानुरोध आग्रह करूंगा कि यदि वे स्वामी जी की इस अभिलाषा को उनके जीवित रहते पूर्ण नहीं कर सके तो वे इसी दिन से यथाशक्ति धनोपार्जन करके उनकी सद्भावना के नाम पर, उन्हीं की पुण्य स्मृति में एक विशाल स्तूप का निर्माण करें, ताकि गुरुकुल की भावी सन्तति उनका स्मरण कर उनके गुणों को अपने जीवन में ढालने का प्रयास कर सके।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को स्थापित हुवे आज २५ वर्ष हो चुके हैं। उसकी स्वर्ण जयन्ती दिन-प्रतिदिन निकट आ रही है। यह एक तथ्य है कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उत्सवों में स्वामी जी ने (गुप्त रूप से) जितनी सेवायें प्रदान की हैं संभवतः उतनी किसी ने न दी होंगी। गुरुकुलीय इतिहास की दिवारों पर उन की थापों के गहरे चिह्न लगे हुवे हैं। अत्यन्त खेद का विषय है कि उनकी असामयिक मृत्यु के कारण गुरुकुल की जो असीम क्षति हुई उसकी पूर्ति करने वाला आज कोई भी व्यक्ति दृष्टि गोचर नहीं हो रहा। जब स्वामी जी हमारे बीच में उपस्थित थे तो गुरुकुल-जीवन का बगीचा खिला हुवा सा प्रतीत होता था। लेकिन आज वह मुरझाया हुवा है क्या करें ? उद्यान के मायावी माली की ओर इशारा करते हुवे हमें अन्त में यही कहना पड़ता है—

हाय ! गुलचीने दहर से कैसी नादानी हुई !
फूल वह तोड़ा कि गुलशन-भर में वीरानी हुई !!

स्वामी जी ने मानव-जीवन की यातनाओं के साथ घोर संग्राम करते हुवे आज निर्वाण-पद प्राप्त किया है। अन्त में परमपिता करुणामय भगवान् से हमारी यह प्रार्थना है कि वे दिवंगतात्मा को सद्गति प्रदान करें।

(पृ० ३ का शेष)

उनकी धार्मिक और वैद्यक की पुस्तकें पुस्तकालय में पहुंच गई हैं। कमण्डलु भण्डार के अन्य बर्तनों में मिल गया है, दण्ड पहरेदार के पास है, मृगचर्म किसी छात्र ने ले लिया है। उनका अपना क्या था जो साथ ले जाते वे स्वामी ही तो थे।

कई लोग मृत्यु के कारणों को देख कर ही सारे जीवन का अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं, स्वामी जी के विषय में उनकी यह रचना मिथ्या ही सिद्ध होगी। स्वामी जी इस बात के अपवाद रहे। उनका जीवन जितना निस्वार्थ, साधनामय, और संयम पूर्ण था मृत्यु उस प्रकार नहीं हो सकी।

स्वामी जी हमारे गुरु थे, हमारे अधिष्ठाता थे, हमारे चरित्र के उत्तरदाता थे। एक तरह से वे हमारे सब कुछ थे। आज वे नहीं रहे हैं, इन्द्रप्रस्थ के विशाल छात्रावास की सबसे पहली कुटिया शून्य हो गई। आश्रम वृक्षों का कोई परिचारक नहीं है। इन्द्रप्रस्थ के जीवन का मुख्य गतियंत्र टूट गया है। प्रभातकाल में ब्रह्मचारियों को उठाने वाली चिर परिचित आवाज़ शून्य में विलीन हो गई है। सम्भव है ब्रह्मचारियों के नैत्यिक कर्म कुछ विलम्ब से हो रहे हों। उनके इस असामयिक निधन पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की अपार क्षति हुई है जो पूरी होनी असम्भव है।

स्वामी जी के सम्मान में हम कोई स्मारक बनाएं, स्वामी जी स्वयं अपना स्मारक अपने जीवनकाल में ही बना गये हैं जोकि उनकी कठोर तपस्या का परिणाम है। अरावली की पथरीली चोटियों के बीच में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ उसकी शुचिता, सात्विकता, माधुर्य और जो भी कुछ अच्छा है सब उनका स्मारक है जिसे हम आज भी देख सकते हैं।

मैं उस निस्वार्थ सेवी स्वर्गीय सन्यासी के चरणों में अपने अन्तस्तल की कोमलतम भाव भरी श्रद्धाञ्जलियां समर्पित करता हूं।

कर्मवीर सन्यासी

श्रद्धेय स्वामी रामानन्द जी—यद्यपि आज इस संसार में नहीं हैं तथापि उनकी जीती जागती मूर्ति भुलाई नहीं जा सकती वे एक अश्रान्त पथिक की न्याईं अपने नियत सेवा पथ पर धीर-गम्भीर गति से बढ़ रहे प्रतीत होते हैं उनके चेहरे पर निःस्वार्थ कर्तव्य-पालन के स्पष्ट चिन्ह चमक रहे हैं। आत्म संतोष, आनन्द और उल्लास उनके तेजस्वी मुख पर प्रतिबिम्बित हैं। आलस्य और प्रमाद उन्हें अभिभूत नहीं कर सकते।

× × ×

वे एक निःस्वार्थ कर्मयोगी थे। तथा-कथित कलियुगी सन्यासियों के लिये उनका जीवन आदर्श एवं अनुकरणीय था। उन्होंने अपने खून को पसीने की तरह बहा कर जो सच्ची प्रकृति (बाग बगीचे की पैदावार को मुद्रा में परिणित कर) पैसा को उस का भी उपभोग अपने आराम के लिये न कर के गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसे त्याग दिया। कहां तो अपनी गाढ़ी मेहनत की नेक कमाई और उसका परार्थ उपयोग; और कहां आज कल के सन्यासियों का दूषित दान से निर्वाह और उदरम्भरि विलासमय जीवन !

उन के इस अनुकरणीय जीवन का रहस्य उनका नियमित जीवन था। सोना-जागना, खाना-पीना, पढ़ना-पढ़ाना, बागवानी

आदि अन्न सेवा, हवन, देहाती, जनता की विविध प्रकार की सेवा, ये सभी कार्य नियम से—ऐसा तत्परता के साथ—होते थे। यही कारण था कि उन के चारों ओर के लोग उन्हें 'महाराज' शब्द से पुकारते थे। ऐसे किसी महत्ता सूचक शब्द के वे सचमुच अधिकारी थे।

उनका जीवन प्राकृतिक नियमों के इतना अनुकूल था कि प्रकृति उन्हें किसी रोग अथवा सर्वसाधारण जरा के पाश से नहीं बांध सकी। और आयु में भी वे दृष्टि-दोष को छोड़ कर—युवा ही प्रतीत होते थे, एक युवक की भांति समर्थ, कर्मठ और सतत-क्रियाशील दिखाई देते थे। अतः विधाता ने उन्हें एक मर्मान्तिक आघात से ही अचानक में काल-कवलित किया।

विधाता के विधान में न-नु-न-च करना अदूरदर्शिता है। वह परम पिता उस दिवंगत को सद्गति प्रदान करें और हम में वह बल दें, जिस से कि हम उन के जीवन से अपने जीवन को उन्नत बना सकें।

—श्री जगन्नाथ वेदालंकार।

श्री आचार्य अभयदेव जी की स्वास्थ्य-साधना

गत दो-तीन सप्ताह से श्री आचार्य अभयदेव जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए जनता के नाना प्रकार के पत्र गुरुकुल में आ रहे हैं। श्री आचार्य जी के अनेक सहयोगियों, भक्तों व प्रेमियों ने सीधे आचार्य जी के पास भी उनके स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता प्रकट करते हुए अपने पत्रों में यहां तक लिखा है कि "यदि आपकी आज्ञा हो तो हम यहीं (मालाबार में आकर आपकी सेवा में उपस्थित हों)।"

किन्तु अभी हाल में ही श्री आचार्य जी का जो स्वहस्तलिखित पत्र हमारे नाम आया है, उससे पता लगता है कि वे अच्छी हालत में हैं। जनता को उससे सूचित कराने के लिए हम उस पत्र को अविकल रूप से नीचे देते हैं—

श्री सम्पादक जी,

नमस्ते। मैं यह दूसरा पत्र आपको अपनी बीमारी के बारे में लिख रहा हूं क्योंकि मेरे इलाज के लिए इधर आने की बात फैल गयी है, और बहुत से सज्जनों के पत्र हाल जानने को आ रहे हैं। आश्चर्य और चिन्ता प्रकट की जा रही है। आश्चर्य की बात तो जरूर है क्योंकि लगभग २० वर्ष से मैं बीमारी से प्रायः अछूता रहा हूं—बीमारी की आदत तो बिलकुल नहीं रही है। पर चिन्ता की कुछ बात नहीं है। और असल में आश्चर्य की भी कुछ बात नहीं है, क्योंकि मेरे शरीर में कुछ भी नयी बात अब नहीं हो गई है। जिसका इलाज करा रहा हूं वह एक ऐसी त्रुटि है जो कि शरीर में बहुत पहिले से है, बचपन से है। नयी बात केवल यह हुई है कि अब यह परिज्ञान हुआ है कि इसको तुरन्त ठीक करना चाहिये नहीं तो ख़तरा है। अभी तक इतने वर्षों तक मैं इसे सहता रहा, इसकी उपेक्षा करता रहा। आसनों की व्यायाम करते रहने तथा स्वास्थ्य के नियमों के स्वाभाविक पालन के कारण यह विकार बढ़ने नहीं पाया, अभी तक कोई उपद्रव पैदा न करने पाया। अन्तरात्मा पिछले एक वर्ष से अन्तरात्मा निरन्तर शरीर की इस त्रुटि-पर ही अंगुलि रख रहा था, कहता था कि इसे ठीक किये बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते, अब उसके कथन का उल्लंघन करना असंभव हो गया है। यह तो अन्दर की दृष्टि से हुआ, बाहर से भी पता लगा कि यदि इस अवस्था में यह विकार ठीक न किया गया तो आगे हमेशा के लिये बिगाड़ हो जायगा। बस, इसीलिये मैं पहिले जैसा अच्छा भला दीखता हुआ भी बीमार बन गया हूं।

कहने को बीमारी इतनी ही है कि मेरे शरीर का वाम भाग विकृत रचना युक्त: सूखा, कठोर और आकुंचित सा है और यह बचपन से है। एवं इस विकार के बहुत पुराना हो जाने के कारण यह किसी जबरदस्त इलाज के बिना ठीक भी नहीं किया जा सकता। तो भी चिन्ता की बात इसलिए नहीं है चूंकि इसका ठीक हो जाना संभव है यह मुझे स्पष्ट होगया है।

शरीर की इस गंभीर त्रुटि की तरफ सबसे पहिले मेरा ध्यान तब गया था जब कि मैं १६,१७ वर्ष का हो चुका था, गुरुकुल में शायद अष्टम या नवम श्रेणी में पढ़ता था। तब योग की तरफ रुचि होने के कारण 'स्वरोदय' का ज्ञान होने पर मैंने आश्चर्य से देखा कि मेरे अन्दर इडा नाड़ी अर्थात् बायीं नासिका का स्वर नहीं चलता है। पिंगला या सुषुम्णा ही चलती थी। यह जान कर और भी घबराहट हुई कि छः महीने तक किसी का एक स्वर न चले तो वह मर जायगा। क्योंकि स्वरोदय की पुस्तक में ऐसा भी लिखा था। मैं दायीं करवट लेट-लेटकर वामस्वर चलाने का यत्न किया करता था। पर स्वयं स्वभावतः बायां स्वर नहीं चलता था। धीरे धीरे आसन प्राणायाम करने से कुछ थोड़ा सा लाभ हुआ, और वामस्वर न चलने पर भी अन्य कुछ विशेष हानि होती न देखकर मैंने इसकी उपेक्षा करनी शुरु कर दी। पर कुछ समय बाद आसन प्राणायामों से ही मुझे यह भी साफ दीखने लगा कि मेरा वाम स्वर नहीं चलता; इतना ही नहीं किन्तु मेरा संपूर्ण वाम भाग (वाम पैर, हाथ, पार्श्व और सिर) सूखा और सिकुड़ा हुआ है, उसमें प्राण-रस का ठीक तरह संचार नहीं हो रहा है।

अब कुछ महीने हुवे शरीर की इस विकृत रचना, विकार का एक कारण भी समझ में आया है वह यह है कि जब मैं ६,७ वर्ष का बच्चा था तो मेरे सिर के दायें भाग में ईंट घुस गयी थी और हरदोई के चिकित्सालय में शल्यक्रिया भी करनी पड़ी थी, उसके गहरे चिन्ह अभी तक मेरे सिर के दायें भाग में विद्यमान हैं। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि उस बचपन की चोट से स्नायवीय आघात पहुंच जाने से वाम पार्श्व की पुष्टि रुक गयी। स्नायुओं ने कुछ नयी रचना भी बना ली है जिनका कि बदलना अब इस ४३, ४४ वर्ष की आयु में कठिन है। अतः कुछ डाक्टरों की राय में—एक दो प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखाया है—उनके पास इसका कोई इलाज नहीं है। अस्तु, मेरे रोग को जानने की उत्सुकता निवृत्त करने के लिये इतना विवरण काफी होगा।

जब और कहीं इसका कुछ हल न होता दीखता नहीं था तो एक दो मान्य मित्रों ने मालाबार में प्रचलित यहां

की किसकी मालिश की पद्धति को आजमा लेने को कहा। इस पद्धति का कुछ हाल सुन और पढ़कर मुझे भी विश्वास होगया कि यहां मेरा यह विकार ठीक हो सकता है। इसलिये मैं यहां आगया हूं।

यहां की मालिश की पद्धतियों के विषय में तो मैं अगले पत्र में लिखूंगा। कई स्नातक बन्धुओं ने तथा मित्रों ने सेवा के लिये यहां आने की तथा अन्य प्रकार की चिन्ता प्रकट की है उनके उस प्रेम और कृपा के लिये हार्दिक धन्यवाद करता हुआ यह पत्र समाप्त करता हूं। यहां मुझे किसी ऐसी सहायता की ज़रूरत नहीं है। परमेश्वर की दया से यहां का काम अभी तक ठीक चल रहा है।

आप सबकी कुशलता चाहता हुआ—

आपका बन्धु—
अभय
आर्य वैद्यशाला
कोट्टकल, दक्षिण-मालाबार।
२३-१-४१

गुरुकुल समाचार

वार्षिक परीक्षा समीप आ जाने के कारण ब्रह्मचारी अध्ययन में पूरी तरह ध्यान दे रहे हैं। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की परीक्षा ७ मार्च से प्रारम्भ होगी। यद्यपि सब ओर अध्ययन का वायु मंडल ही दृष्टि गोचर होता है तथापि व्यायाम शाला, अखाड़ा, खेल आदि में भी ब्रह्मचारी खूब दिलचस्पी से भाग ले रहे हैं।

गुरुकुल में स्वतन्त्रता दिवस

गत २६ जनवरी, रविवार को गुरुकुल में बड़े उत्साह के साथ स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के एक बड़े दल ने प्रातः ३॥ बजे जाग कर गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्रत्येक भाग में घूम २ कर "वन्देमातरम्" के गान और तुमुल जयकार के साथ प्रभात फेरी की। उस दिन यद्यपि हिमालय की ओर से आने वाली ठंडी हवाएं लहू को भी जमा देने वाली शीतलता लिए हुए थीं तथापि ब्रह्मचारियों के उत्साह में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आई प्रत्युत उनका उत्साह इस बाधा के आने पर और भी बढ़ गया। प्रातःकाल के अन्धकार में ही ब्रह्मचारियों ने सर्द कपड़ों में ४५ मील का चक्कर लगाकर जगजीतपुर, जमालपुर, सीतापुर, ज्वालापुर, वानप्रस्थाश्रम, मुक्तिपीठ में स्वतन्त्रता दिवस का सन्देश, सूर्योदय से पूर्व ही पहुंचा दिया। बाल रवि के उदय होने पर सब कुल वासियों ने सम्मिलित होकर राष्ट्रीय पताका का अभिवादन किया। तत्पश्चात् ६ बजे से कबड्डी-कुश्ती दंगल हुआ जिसमें पंचपुरी निवासी भी आमन्त्रित थे। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले ३५ के लगभग सज्जन थे जिन में कुछ बहिनें भी थीं। दो घंटे तक यह प्रतियोगिता हुई जिसका परिणाम अगले अंक में प्रकाशित किया जायगा।

वार्षिकोत्सव सूचना

—गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव आगामी २२, २३, २४ मार्च को होना निश्चित हुआ है।

—गुरुकुल नारसैन का वार्षिकोत्सव ता० ७, ८, ९, फरवरी को होगा।

—गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उत्सव की तिथि २१, २२, २३, २४ फरवरी है।

—गुरुकुल मुलतान का वार्षिक समारोह १४ मार्च से प्रारम्भ होकर ३ दिन तक रहेगा।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० रामप्रकाश ४ श्रेणी ज्वर, ब्र० गोविन्द ४ श्रेणी कास ज्वर, ब्र० कपिल ५ श्रेणी कास ज्वर, ब्र० नारायण ५ श्रेणी ज्वर, ब्र० सत्यव्रत ५ श्रेणी चोट, ब्र० कर्मवीर ३ श्रेणी चोट, ब्र० राजेन्द्र ४ श्रेणी सिर दर्द। गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

सब कुलवासियों की यह सभा त्यागमूर्ति श्री पूज्य स्वामी रामानन्द जी महाराज की आकस्मिक तथा दुःखद मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट करती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

श्री पूज्य स्वामी जी महाराज ने जिस निस्वार्थ तथा निष्काम-भाव से गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल इ[illegible] है वह अद्वितीय है और हमारे लिये अनु[illegible] स्वामी जी महाराज एक उच्च कोटि के महात्मा थे। [illegible] गुरुकुल के लिये उन्होंने दिया हुआ था। रात और दिन उन्हें गुरुकुल की ही चिन्ता थी! ऐसे महात्मा के वियोग से गुरुकुल को अत्यन्त हानि पहुंची है।

हम सब कुलवासी उनकी पुण्य स्मृति में कोई भवन या कोई और स्मारक कायम करने के लिये सभा तथा उच्च अधिकारियों से प्रार्थना तथा अनुरोध करते हैं और प्रत्येक कुलवासी से यह आशा रखते हैं कि वह अवश्य इस स्मारक के निर्माण में पूरा २ सहयोग देगा।

अन्त में पुनः उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए ईश्वर से प्रार्थी हैं कि वह हमें बल दें कि हम उनके उच्च जीवन को अपने जीवन में क्रियात्मिक रूप दे सकें।

गुरुकुल में शोक-सभा

समाचार पत्रों द्वारा स्वामी रामानन्द जी की मोटर-दुर्घटना से आकस्मिक देहावसान का समाचार पाकर गुरुकुल विश्वविद्यालय में शोक छा गया। समस्त कुलवासियों की शोक सभा हुई जिस में परमात्मा से दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई। इस शोक में गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे।

चौधरी दुलारचन्द्र के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ओ३म्॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १० फाल्गुन १९९७, २१ फरवरी १९४१ [संख्या ४४

शक्ति का पुजारी योद्धा दयानन्द

(लेखक—मेहता जैमिनि जी बी० ए०)

आज समस्त हिन्दू शिवरात्रि का पर्व मना रहे हैं। परन्तु यह त्योहार गुजरात और काठियावाड़ में जिस समारोह से मनाया जाता है वैसा पञ्जाब और यू० पी० में नहीं। मूल शङ्कर को उस दिन न केवल सच्चे शिव का बोध हुआ बल्कि भारत की कमजोरियों का ज्ञान हुआ। अध्यात्मवादियों, ईश्वर भक्तों और शिव के पुजारियों की कमी भारत में नहीं थी, लेकिन सच्चे अर्थों में शिव जी के पुजारी समाप्त हो गये थे। इसलिये स्वामी दयानन्द जी ने एक ओर से सच्चे शिव जी की तलाश करने में जीवन व्यतीत किया। परन्तु साथ ही उन्होंने सच्चे शिव जी के पुजारी बनने का साधन बताया। इन अर्थों में हम कह सकते हैं कि स्वामी जी आत्मा और परमात्मा के योग-साधन से मिलाप के प्रचारक थे बल्कि उनका विश्वास था कि शक्ति देवी की पूजा के बगैर परमात्मा तक पहुंचना तो कहां हम संसार में जीवित नहीं रह सकते। जर्मनी के प्रोफेसर वारंगसी ने १९०३ ई० में एक भाषण में लूथर और दयानन्द जी की तुलना करते हुए बयान दिया कि स्वामी जी एक योद्धा थे जिन्होंने बड़ी वीरता से समस्त संसार के सम्प्रदायों का मुकाबला किया। लूथर को केवल कैथोलिक मत से लड़ाई लड़नी पड़ी थी। वारंगसी महोदय ने तो स्वामी जी को धार्मिक योद्धा वर्णन किया है परन्तु मैं तो उन्हें भारत की स्वतन्त्रता का योधा कहता हूं। स्वामी जी का ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' पढ़िये उसमें वे आर्यों को वीरता, ब्रह्मचर्य, राज प्राप्त करना बल्कि चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। स्वामी जी ने हिन्दुओं के रङ्ग का ज्ञान लिया था कि यह जाति कमजोर होने के कारण मुर्दा हो रही है। इसका सबसे बड़ा रोग शक्तिहीन होना है। इसलिये आर्यसमाज के नियमों में छठे नियम में सबसे पहले शारीरिक उन्नति पर जोर दिया। आत्मिक उन्नति पर जोर दिया। आत्मिक उन्नति को दूसरा स्थान और सामाजिक उन्नति को तीसरा स्थान दिया, इसलिये उनकी शिक्षा का निचोड़ यह है कि आर्यजाति न केवल आध्यात्मिक जीवन की विद्या और उपदेश से जीवित रह सकती है बल्कि इसके साथ राजनैतिक शक्ति, सैनिक शक्ति और सामाजिक-राष्ट्रीय शक्ति की आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने आर्य-समाज स्थापित की। स्वामी दयानन्द जी ने कोई नये-नये सिद्धान्त आर्यसमाज के नियमों में सम्मिलित नहीं किये हैं, बल्कि हिन्दू जाति को सङ्गठित और नियन्त्रण में रहने का साधन बताया।

(२) स्वामी जी का दूसरा दृष्टि कोण यह है कि आर्यजाति इस तरह निर्जीव हो चुकी है कि वह अत्याचार सहन करना क्षमा भाव समझती है, दुःख और कष्ट सह लेना अपना गुण समझती है। भाग्य पर विश्वास रखना धर्म समझती है। स्वामी जी का विचार था ऐसे विचार गुलाम और कमजोर जाति के हुआ करते हैं इसलिये उन्होंने बताया कि आर्य जाति का कर्तव्य न अत्याचार करना है और न अत्याचार सहना। आर्यजाति का कर्तव्य अत्याचारों और गुण्डों को क्षमा करना नहीं है बल्कि निर्बल को क्षमा करना है। इसलिये स्वामी जी का विचार था कि भारत का धर्म सभ्यता और संस्कृति कभी जीवित नहीं रह सकती जब तक कि ब्रह्मचर्य के बल से शक्तिशाली और योधा बन कर अपनी रक्षा करने के योग्य न बन जाये। स्वामी जी स्वयं सन्यासी, तपस्वी और योगी थे। ऐसे शक्ति शाली थे कि राजा कर्ण के हाथ से तलवार छीन कर उसके ही टुकड़े २ कर सकते थे। जबतक हमारे अन्दर सामना करने की शक्ति नहीं तब तक हम धर्म को फैला या बचा नहीं सकते हैं। हिन्दुओं के हजारों मन्दिर थे उनमें दिन रात पूजा होती थी। महादेव सोमनाथ, जगन्नाथ में सब जगह पूजा के घड़ियाल बजते थे बल्कि सुलतान महमूद दस हजार फौज लेकर आया। उनका सामना करने की शक्ति न थी इसलिये मन्दिर तोड़ दिये गये। देवता खण्डित हुए। यहां तक काशी के विश्वेश्वर नाथ कुंए में जा छिपे।

(३) स्वामी जी का विश्वास है और तात्पर्य यह था कि धर्म केवल अपने अच्छे अच्छे गुणों और उत्तमता से ही नहीं चलता परन्तु उनके साथ ही उसकी रक्षा करने की शक्ति और सहायता भी चाहिये। स्पेन ईसाइयों का गढ़ था।

परन्तु मुसलमानों ने शारीरिक और राजनैतिक शक्ति से सारे स्पेन को इस्लाम में परिवर्तन कर दिया; फिर ईसाईयों ने शक्ति प्राप्त की और कुरान को निकाल कर फिर ईसाई धर्म को स्थापित कर दिया और इस्लाम का नाम निशान भी स्पेन से मिटा दिया। बस धर्म के फैलाने में शक्ति का बहुत हाथ है। [असमाप्त]

चिकित्सा का एक मात्र सत्य-नियम

(The Law of Cure)

(ले०—डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालंकार, बिजनौर)

रोगी में रोग विशेष का सम्यग् ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात्, भेषजज्ञ चिकित्सक का औषधि-विधान द्वारा, रोगी में रोगापहरण करने में क्षण भर का विलम्ब करना भी ठीक वैसा ही सिद्ध हो सकता है जैसा कि सीता जी को अति-विकल होता देख कर भी रामचन्द्र जी का धनुष-भङ्ग करने में पलभर का विलम्ब कर देना। क्या ऐसी अवस्था में सीता जी के समान रोगी का भी एक एक पल, कल्प शत के समान नहीं व्यतीत हो रहा होता? क्या चिकित्सक की क्षणिक उपेक्षा से रोगी के अपार अपकार होने की सम्भावना नहीं बन जाती? और फिर—

"तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा,
मुए करइ का सुधा तड़ागा ॥"

अतः आयुर्वेद, चिकित्सक को आज्ञा देता है कि—

"यस्तु रोग-विशेषज्ञः, सर्वभैषज्य कोविद:
भेषजानां विधानेन, कुर्य्याच्छीघ्रं चिकित्सितम् ॥"

रोगी में रोग-विशेष का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर, भेषजज्ञ चिकित्सक को औषधि का प्रयोग करने में शीघ्र से शीघ्र प्रवृत्त हो जाना चाहिये। तब उसे (क्रिया कालं न हापयेत्) चिकित्सा के कार्य्य में तनिक सी भी देर न करनी चाहिये।

जिस चिकित्सक को चिकित्सा-विज्ञान के औषधि-प्रयोग के सत्य नियम का भी सम्यग् ज्ञान हो चुका हो, उसे धनुर्वेद-विशारद राम के समान, रोगी के रोग-रूपी जीर्ण-धनुष का अचिरात् भञ्जन करने में क्यों संकोच हो सकता है? उसे तो,

"लेत, चढ़ावत, खैंचत गाढ़े,
काहु न लखा, देख सब ठाढ़े।
तेहि क्षण, राम, मध्य धनु तोरा,
भरे भुवनध्वनि घोर कठोरा॥"

के समान, रोगी के रोग का विध्वंस करने के पल लगते हैं? वह तो बात की बात में रोगी के तीव्र से तीव्र रोग का विघात कर डालता है तथा—

"मुदित कहहिं जहं तहं नर नारी,
भंजेउ राम शम्भु धनु भारी"॥

की प्रशंसा रूपी पुष्प वर्षा के बीच—

"सिय, जयमाल, राम उर मेला।"

की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जब चिकित्सक, इस प्रकार के चिकित्सा के अद्भुत चमत्कार दिखाता है तो जनता भी उसे जीती-जागती प्रतिष्ठा की जयमाल पहिनाने से क्यों चूक सकती है!

परन्तु, जिस चिकित्सक को चिकित्सा-विज्ञान के साथ चिकित्सा-नियम का परिज्ञान नहीं होता वह कैसे निःशंक होकर चिकित्सा के कार्य्य में प्रवृत्त हो सकता है, और यदि हो भी जाय तो कैसे ऐकान्तिकी सफलता प्राप्त कर सकता है? ऐसी अवस्था में—क्या उसका रोगज्ञ तथा भेषजज्ञ होना लोक-व्यवहारानभिज्ञ पुरुष के सर्व शास्त्र-पारङ्गत होने के समान व्यर्थ नहीं हो जाता?

चिकित्सक के लिये, यह इसलिये आवश्यक हो जाता है कि वह चिकित्सा के सत्य नियम का परिज्ञान प्राप्त करने के लिये सबसे प्रथम प्रयत्न करे। क्या वह धनुर्धर जिसके पास सच्चा धनुष ही नहीं है, अनेक प्रकार के शरों से सुसज्जित होने पर भी लक्ष्य भेद कर सकता है? इसी प्रकार, जिस चिकित्सक के प्रकाण्ड भुज दण्डों में चिकित्सा के सत्य नियम का उद्दण्ड-कोदण्ड (Stethoscope नहीं) न लटकता हो, वह विविध औषधों के भण्डार का अधिपति होकर भी रोगी का क्या उपकार कर सकता है?

चिकित्सा का एकमात्र सत्य-नियम क्या है?—यह तो एक बड़ी जटिल समस्या है। परन्तु इससे पूर्व, चिकित्सक के सम्मुख दो एक और छोटे २ प्रश्न उपस्थित रहते हैं कि—"क्या, चिकित्सा का कार्य्य बिना किसी नियम के नहीं चल सकता? क्या, संसार के सब रोगी चिकित्सकों द्वारा ही नीरोग किये जाते हैं? क्या, साधु-महात्माओं की राखचुटकी अथवा जड़ीबूटी से ही अनेक रोगी रोग-विमुक्त नहीं हो जाते? क्या, इस प्रकार का चिकित्सा का कार्य्य भी किसी नियम के आधार पर सम्पन्न होता है?"

इन प्रश्नों का समुचित उत्तर तो यही हो सकता है कि चिकित्सा का प्रत्येक कार्य्य, सदा चिकित्सा के सत्य-नियम के आधार पर ही होता है; चाहे उसका पता चिकित्सा करने वाले को हो, या न हो। क्या सब मनुष्यों को यह पता होता है कि फूंक मारने से आग क्यों भड़क उठती है? क्या, ओषजन की अधिक मात्रा पहुँचाये बिना यह सम्भव हो सकता है? क्या नत्रजन से भरे जार के उलट देने पर भी बुझा-सा-कोयला, फिर बल उठ सकता है?

जब सर्व नियन्ता परमात्मा की बनायी इस सृष्टि में प्रत्येक कार्य्य किसी विशेष नियम के आधार पर ही प्रवर्तित हो रहा है, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि चिकित्सा का सा कार्य्य—जो परमात्मा की श्रेष्ठतम देन (मनुष्य शरीर) का श्रेष्ठतम कार्य्य (उसका सुधार) है—बिना किसी सत्य नियम के आधार के प्रवर्तित होरहा हो!

इस प्रकार, जब चिकित्सा का कार्य्य किसी एक सत्य-नियम के आधार के बिना हो ही नहीं सकता तो उसका परिज्ञान प्राप्त किये बिना चिकित्सक चिकित्सा के कार्य्य में किस प्रकार प्रवृत्त हो सकता है!

चिकित्सा के सत्य नियम का परिज्ञान प्राप्त करने से पूर्व चिकित्सक को यह जान लेना और भी अधिक आवश्यक है कि "चिकित्सा" किसे कहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद कहता है कि:—

"या क्रिया व्याधि-हारिणी, सा चिकित्सा निगद्यते"।

जो क्रिया, व्याधि का अपहरण करे वही चिकित्सा कहाती है। परन्तु, क्या चिकित्सा को यह परिभाषा पूर्ण हो सकती है? इसकी अपूर्णता का अनुभव करते हुये ह आयुर्वेद को कहना पड़ा है कि:—

"या ह्युदीर्णं शमयति, नान्यं व्याधिं करोति च।
सा क्रिया, नतु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत्॥"

जो क्रिया प्रत्यक्ष लक्षित होती व्याधि का तो प्रशमन (?) करदे परन्तु किसी अन्य व्याधि को खड़ा करदे वह क्रिया, चिकित्सा नहीं कहा सकती। अर्थात्, जिस क्रिया के करने पर एक रोग का तो संस्थापन (Suppression) हो जाय तथा दूसरा खड़ा हो जाय, वह चिकित्सा वास्तविक चिकित्सा नहीं हो सकती। वास्तविक चिकित्सा तो वही होती है जिसके द्वारा एक रोग का प्रशमन होने के पश्चात्, तत्सम्बन्धी कोई दूसरा रोग खड़ा हो न पावे। दूसरे शब्दों में हम यूँ कह सकते हैं कि चिकित्सा तो वही है जो रोग का स्थायी रूपेण (Permanently) प्रशमन (Cure) करदे, न कि संस्थापन या संमोहन (Suppression)। अर्थात्, चिकित्सा द्वारा किया गया व्याधि का वह प्रशमन, अवश्यमेव स्थायी रूपेण (Permanent) होना चाहिये।

स्थायी रूपेण होने वाला चिकित्सा का यह कार्य्य, यदि शीघ्रातिशीघ्र (Rapid) भी हो सके तो क्या कहने हैं, और यदि मृदुतम व्यवहार द्वारा (Gentle) भी सम्पन्न हो सके तो निस्सन्देह "सोने में सुगन्ध" आ जाती है। अतः 'चिकित्सा' की संपूर्ण परिभाषा यही हो सकती है कि:—

"जो क्रिया मृदुतम प्रयोग द्वारा, रोगी को शीघ्रातिशीघ्र तथा स्थायी रूपेण नीरोग करदे, वही चिकित्सा कहाती है।"

उक्त गुणों से विशिष्ट चिकित्सा किस नियम के आधार पर हो सकती है, यही एक प्रश्न अब उस चिकित्सक के सम्मुख शेष रह जाता है जो (१) रोगी में किसी प्राकृतिक रोगोत्पादक पदार्थ (Natural Morbific Agent) द्वारा उत्पन्न किये गये लक्षण समुदाय का—रोग विशेष का—निदान कर चुका है, तथा जिसे (२) अनेक कृत्रिम रोगोत्पादक पदार्थों (Artificial Morbific Agents=Medicines) द्वारा उत्पन्न किये गये भिन्न २ लक्षण समुदायों का सम्यग् ज्ञान भी हो चुका है।

चिकित्सा का प्रत्येक कार्य्य केवल दो नियमों के आधार पर होना ही सम्भव है:-

(१) प्रथम "समों" के नियम के आधार पर अर्थात् समोपचार।

(२) द्वितीय, विषमों के नियम के आधार पर अर्थात् विषमोपचार।

अब जिज्ञासु चिकित्सक को केवल यही जानना शेष है कि इन दोनों में से किसका अवलम्बन करने पर चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार, उसे चिकित्सा के कार्य्य में सफलता प्राप्त हो सकती है।

एक बच्चा मिठाई पाने के लिये रो रहा है। उसे भी केवल दो प्रकार से ही चुप किया जा सकता है (१) प्रथम-समोपचार द्वारा-अर्थात् उसे इष्ट वस्तु देकर-उसे सन्तुष्ट करके। (२) द्वितीय-विषमोपचार द्वारा-उसे डरा धमकाकर। जिस प्रकार इस उदाहरण में यह निर्णय करना अत्यन्त सुगम है कि बच्चे को किस प्रकार चुप कराना चाहिये, उसी प्रकार यह निर्णय करना भी कठिन नहीं है कि चिकित्सा के कार्य्य में उक्त गुण विशिष्ट सफलता, समोपचार द्वारा प्राप्त हो सकती है अथवा विषमोपचार द्वारा। परन्तु, एक नवीन चिकित्सक, विषमोपचार के प्रतिपादक चिकित्सकों के बाहुल्य, राज-सन्मान तथा चटक मटक से चौंधिया कर द्विविधा में पड़ जाता है। उसकी स्वकीय प्रज्ञा तो "समोपचार" का समर्थन करती है, परन्तु लोकाचार उसे "विषमोपचार" की ओर खींचता है। ऐसी अवस्था में—वह त्रिशङ्कु के समान, बीच में ही टंगा रह जाता है। शीघ्र ही उसकी यह सम्मति बन जाती है कि इस जञ्जाल में पड़ने से—यह निर्णय करने का कष्ट उठाने से कि कौनसा उपचार श्रेष्ठ है?—तो यही अच्छा है कि यह मान लिया जाय कि दोनों प्रकार ही अच्छे हैं। क्या दोनों प्रकारों के द्वारा चिकित्सा का कार्य्य आज तक सुचारु-रूप से सम्पन्न होता नहीं चला आ रहा है?

उक्त कथन के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि किसी कार्य्य का सुचारु रूप से (?) चलना और बात है तथा किसी वैज्ञानिक कार्य का उसकी परिभाषा के अनुसार सम्पन्न होना और ही बात है। जिस प्रकार दो बिन्दुओं को मिलाने वाली केवल एक ही सरल रेखा हो सकती है उसी प्रकार किसी विज्ञान का केवल एक ही मूल धार या नियम हो सकता है, किसी अवस्था में भी अनेक नहीं। क्या एक म्यान में दो तलवारें रह सकती हैं? क्या एक राज्य के दो राजा हो सकते हैं? क्या दो राजाओं के होने पर किसी राज्य का कार्य्य सुचारु-रूप से चल सकता है? पञ्चतंत्रकार कहते हैं:—

"एक एव हितार्थाय, तेजस्वी पार्थिवो भुवः
युगान्त इव भास्वन्तो बहवो ऽत्र विपत्तये।

क्या, जब अनेक सूर्य्य निकल आते हैं तो प्रलय नहीं मच जाती? क्या समान-बल-शाली राजा और मन्त्री के द्वित्व आधार पर भी एक राज्य स्थिर रह सकता है? नीतिकार कहते हैं—

"अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च,
विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः।
सा स्त्री स्वभावादसहा भरस्य,
तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति॥"

जिस प्रकार लक्ष्मी दो आधारों पर स्थिर नहीं रह सकती, उसी प्रकार कोई विज्ञान भी दो आधारों पर, कभी

(शेष पृ० ५ पर)

गुरुकुल

१० फाल्गुन शुक्रवार १९९७

गुरुकुल कांगड़ी में ५० हजार का वेद-भवन

श्री सेठ जुगलकिशोर बिड़ला का दान

गुरुकुल प्रेमी जनता को यह शुभ सम्वाद जान कर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी में दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने एक आदर्श 'वेद-भवन' निर्माण कराने का शुभ संकल्प किया है। यह वेद भवन एक आदर्श तथा दर्शनीय भवन होगा। जिस प्रकार सेठ जी दिल्ली में 'गीता-भवन' बनवा रहे हैं उसी प्रकार गुरुकुल में वे 'वेद-भवन' बनवाएंगे। सेठ जी उन इने गिने दानियों में हैं जिन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा देश जाति और धर्म के लिए न्योछावर कर दिया है। सेठ जी की गुरुकुल में यह एक चिरस्थाई यादगार होगी। विद्या प्रेमी जहां गुरुकुल देखने पधारेंगे वहां वह गुरुकुल भूमि में इस आदर्श भवन को भी देखकर गद्गद होंगे। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यह भवन सेठ जी के नाम के अनुरूप ही होगा। सेठ जी के नाम से न जाने कितनी संस्थायें चल रही हैं। आप का नियम है कि आप को जो आमदनी होती है वह प्रभु की आप के द्वारा देश सेवा के लिए देन है। भारत के हित के लिए कोई भी कार्य प्रारम्भ हो उसमें आपका हिस्सा ज़रूर होता है। इस धर्म कार्य के लिए बिड़ला जी ने रुपया भेजना आरम्भ कर दिया है। अनुमान है कि यह इमारत पचास-साठ हजार रुपये में बनेगी। हम इस पुनीत कार्य के लिए सेठ जी के हृदय से आभारी हैं और संस्था उन की सदा ऋणी रहेगी। हमारा अनुरोध गुरुकुल प्रेमी भाइयों से भी है कि इस समय गुरुकुल में आयुर्वेद महाविद्यालय और वेद महाविद्यालय की भी आलीशान इमारतें बन रही हैं। दानियों के लिए यह स्वर्ण अवसर है। आशा है उदार जनता यथा शक्ति दान देकर पुण्य की भागी बनेगी।

मालाबार की चिकित्साएं

[गुरुकुल पत्र के गत २६ माघ के अंक में श्री आचार्य अभयदेव जी का स्वास्थ्य सुधार के विषय में एक विस्तृत पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने अपनी बीमारी और उसकी चिकित्सा कराने का विचार प्रकट किया था। उनका एक दूसरा पत्र ता० १०-२-४१ का लिखा हुआ हमें अभी प्राप्त हुआ है। इस पत्र से जहां उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रेमियों, भक्तों व मित्रों को विशेष जानकारी प्राप्त होगी वहां पाठकगण मालाबार की विशेष चिकित्साओं (मालिश चिकित्साओं) से भी परिचिति प्राप्त करेंगे। हम श्री आचार्य जी के उस पत्र को यहां अविकल रूप से प्रकाशित करते हैं। —सं०]

श्री युत संपादक जी;

सप्रेम नमस्ते।

आपका १२-१०-९७ का पत्र मिला। अब मुझ पर चिकित्सकों की उतनी पाबन्दी नहीं रही। जैसे अच्छे कैदियों के लिए कोई २ जेलर जेल नियमों को ढीला कर देते हैं, वैसे ही मुझे अब यहां के वैद्यराज जी ने लिखने पढ़ने की काफी स्वाधीनता दे दी है। गत २६ जनवरी के दिन यहां की वैद्यशाला का वार्षिक उत्सव था, उस अवसर पर उन्होंने मुझे अनुमति नहीं दी; बल्कि आज्ञा दी कि मैं उस सभा में संस्कृत में भाषण दूं—सो पांच मिनट का भाषण भी मुझे देना पड़ा। अतः इस तरह चिट्ठी रूप में कुछ लिखते रहना मेरे लिए संभव हो गया है।

यहां की चिकित्सा पद्धति के विषय में जानने की तो दिलचस्पी आम लोगों को न होगी। पर मुझे यह तो बता ही देना चाहिए कि जब उत्तर भारत में बहुत से वैद्य महानुभाव थे जिनमें से कई मेरी चिकित्सा बड़े प्रेम से और शायद मुफ्त कर देते तो मुझे यहां इतनी दूर आने की क्यों जरूरत हुई। बात यह है; वास्तव में कुछ चिकित्सा पद्धतियां ऐसे हैं जो मालाबार के अपने हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। विशेषतः ये तैलों के मलने आदि के उपचार है। हमारे वैद्य श्री पं० धर्मदत्त जो विद्यालंकार इधर मद्रास रहे हैं। वे भी इधर की इन चिकित्साओं से परिचित हैं। उन्होंने भी मेरे मालाबार की चिकित्सा कराने का समर्थन किया। उधर पॉडिचेरी में एक मित्र ने मालाबार की चिकित्सा कराने को मुझे स्वयमेव कहा। कई इस प्रकार के रोगियों का हाल सुनाया जो मालाबार आकर अच्छे हो गए। इस पर मैंने उन की एक पुस्तिका देखी। उसे देखने से लगा कि ऐसी ही चिकित्सा की मैं खोज में था।

इधर वाग्भट के अष्टांग-हृदय का बहुत प्रचार है। कहते हैं वाग्भट यहां आकर रहे थे। आयुर्वेद के पंच-कर्मों में जो स्नेहन स्वेदन की प्रक्रियायें हैं उन्हें यहां और अधिक विकसित किया गया है। बस, ये ही यहां के विशेष उपचार हैं। मैं जिस बात से इधर आकृष्ट हुआ हूं वह अष्टांग हृदय के निम्न श्लोक में सुन्दरतया वर्णित है:—

"शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः
शक्यं कर्मण्यतां नेतुं किमु गात्राणि जीवताम्॥"

ऐसा कहना चाहिए यहां तेल मलने का खेल नहीं नहीं किया जाता किन्तु सचमुच तैल में स्नान कराया जाता है। वैसे तो मालिश आदि के बहुत से उपचार यहां प्रचलित हैं, जैसे पीचु, तलपोदिच्चल, पचक्की, उझीचल (यह पैरों से की जाती है) अभ्यंग, अभिषेक, नस्य स्नेहवस्ति आदि; परन्तु इन में मुख्य चार हैं (१) धारा (२) पिडिच्चल (३) नवराकिड़ि (४) शिरोवस्ती। इनमें से शिरोवस्ती कुछ उधर के वैद्य भी करते हैं पर वह भी यहां जैसी प्रचलित नहीं। पहिले

तीन उपचार तो मालाबार के ही हैं। इन में से मुझे शिरोवस्ती तथा पिज्हिचल क्रमशः ७ दिन और २१ दिन कराये गये हैं। शिरोवस्ती में सिर पर एक चमड़े की टोपी रख कर उसमें कुछ उष्ण तेल भर जाता है। पिज्हिचल में चार आदमी इधर उधर बैठ कर एक हाथ से कोष्ण तैल शरीर पर निचोड़ने जाते हैं और दूसरे हाथ से मालिश करते जाते हैं। मलयालम भाषा में 'पिज्हिचल' शब्द का अर्थ निचोड़ना होता है।

मेरे एक मित्र ने मेरे इस इलाज को शाही इलाज कहा है और शिरोवस्ती की टोपी को मुकुटसे उपमा दी है। मैंने उन्हें लिखा है कि जब पहले दिन वह टोपी मेरे सिर पर कसी गई तो मुझे मुकुट का तो ख्याल नहीं आया, बल्कि न जाने क्यों उस टोपी की याद आ गई जो कि कभी २ देशभक्तों को फांसी के तख्ते पर खड़ा करके पहनाई जाती सुनी गई है। पर पिज्हिचल के समय बेशक ऐसा लगता था मानो मुझे राज्याभिषेक का स्नान कराया जा रहा है। शिरोवस्ती में तो तकलीफ भी होती है पर पिज्हिचल सचमुच शाही इलाज है। सुना है कि इधर के अमीर लोग जैसे नंबोदरी ब्राह्मण बिना किसी रोग के भी—केवल ताज़गी, प्रफुल्लता या नव-जीवन के लिये ही—साल में एक बार पिज्हिचल करा लेते हैं।

यह तो मुझे कहना पड़ता है इस इस इलाज से भी —यद्यपि इलाज तो बिलकुल ठीक हुआ है—अभी तक (आज इलाज पूरा होने में केवल दो दिन शेष हैं) मुझे कुछ भी वैसा लाभ नहीं हुआ है जैसे कि मैंने आशा लगा रखी थी। शायद मैंने इस चिकित्सा से कुछ अधिक ही आशा लगा ली हो जैसी कि आर्य जनता ने गुरुकुल से निकलने वाले स्नातकों से लगा ली थी जो कि वर्तमान अवस्थाओं में ठीक नहीं उतर सकती थी। पर यह इलाज ज़रा भी व्यर्थ नहीं गया है—और कुछ प्रत्यक्ष लाभ भी अवश्य हुआ है। बल्कि मेरा ऐसा ख़्याल है कि यदि इसी उपचार में से मैं एक आध बार और गुजरूं तो बिलकुल ही ठीक हो जाऊंगा। ऐसा लगता है कि चूंकि मेरा रोग बचपन से है—लगभग ३५ वर्ष पुराना है—इस लिये इस अत्युत्तम चिकित्सा द्वारा भी ठीक होनेमें कुछ समय लगा।

यद्यपि ऐसी चिकित्सायें कराने के लिये लोग दूर २ से यहां (मालाबार) आते हैं—गत वर्ष प्रसिद्ध समाजवादी नेता जय प्रकाश नारायण जी ने यहां डेढ़ मास रह कर चिकित्सा करायी थी, हिन्दु-महासभा के प्रधान श्री सावरकर जी के भी इलाज के लिये यहां आने की कुछ बात चीत चली थी, मद्रास के एक एलोपैथिक डाक्टर आज-कल अपना इलाज यहां करा रहे हैं। एक अमेरिकन महिला अपना यहां इलाज करा कर अच्छी हुई है और वह अब यहां के चिकित्सक को अपनी बहिन के इलाज के लिए अमेरिका लेजाना चाहती है (युद्ध के कारण रुकी हुई है)—तो भी मैं यह नहीं समझता कि यह इलाज अन्य स्थानों के सुयोग्य वैद्य नहीं कर सकते। यहां के उपर्युक्त चारों प्रसिद्ध उपचारों को मैंने काफी ध्यान से देखा है। मैंने पाया है कि इन में न तो कोई गुप्त रहस्य है, न कोई ऐसा विशेष परंपरागत हस्त कौशल है जिसे अन्यों द्वारा हस्तगत न किया जा सकता हो। मेरे विचार में हम अपने गुरुकुल में भी इन उत्तम उपचारों को जारी कर सकते हैं—थोड़े से ही विशेष ध्यान द्वारा। पञ्जाब के प्रसिद्ध वैद्य श्री मान्य पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी अपनी सहज कृपा से मेरी इस चिकित्सा में विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं। उनकी आज्ञा से मैं यहां की चिकित्सा का ध्यान पूर्वक अध्ययन भी कर रहा हूं। मुझे आशा है कि उक्त मान्य वैद्य जी की देख रेख में तो हम आसानी से इन मालाबारी चिकित्साओं को अपना सकते हैं।

इन चिकित्साओं के समय में ही नहीं किन्तु उसके बाद भी जितने दिन की चिकित्सा हो उतने ही दिन का विश्राम (शारीरिक और मानसिक विश्राम) करना जरूरी होता है। उस विश्रामकाल को यहां की भाषा में 'मारुपथ्यम्' का समय कहते हैं। उसके कुछ सख़्त नियम हैं। सो आज कल मैं यहां आराम कर रहा हूं। प्रातःकाल का समय तो यहां के उपचार और नहाने धोने में ही बीत जाता है। श्रम के साथ साथ दिन में सोना भी वर्जित है। फलतः दिन भर हलके काम में लगा रहना पड़ता है अतः भोजन के बाद कुछ पत्र आदि लिखना और पढ़ना यही मेरी दिनचर्या है। आज कल 'हिन्दुस्तान' मानो अथ से इति तक पढ़ जाता हूं और दैनिक 'प्रताप' की 'यत्र तत्र सर्वत्र' जरूर पढ़ता हूं और हंस लेता हूं। और ५ से ६ तक कुछ कमरे के बाहर ही टहलना, ६ से ७॥ तक भजन और फिर दूध पीकर ८॥ जरूर सो जाना यह नित्य नियम है।

आशा है अगले सप्ताह से मुझे अधिक कार्य करने की स्वाधीनता हो जायगी।

आपका बन्धु—

अभय,

आर्य वैद्यशाला कोट्टकल

दक्षिण मालाबार

२०—२—४१

[पृष्ठ ३ का शेष]

भी खड़ा नहीं हो सकता। जिस प्रकार, दो जड़ों का होना और बात है तथा एक जड़ के अनेक नस्से होना और और बात है, उसी प्रकार किसी विज्ञान के दो परस्पर प्रतिकूल नियमों का होना और बात है। तथा एक नियम के अनेक उपनियमों का होना और बात है। क्या, किसी एक वृक्ष की जड़ के सब नस्से उसके गुणों से विशिष्ट नहीं होते? इसी प्रकार किसी भी विज्ञान के उपनियमों में उसका मूल-नियम सदा ओत-प्रोत रहता ही है।

अब, "समोपचार" तथा "विषमोपचार" नाम के चिकित्सा के दोनों प्रकार, आकाश पाताल, उत्तरीय तथा

दाक्षिणीय ध्रुव, एवं आम और बबूल के वृक्ष के समान, सर्वथा एक दूसरे से विभिन्न हैं, तब उन दोनों के आधार पर चिकित्सा-विज्ञान का वृक्ष किस प्रकार खड़ा रह सकता है?

अतः, जिज्ञासु चिकित्सक के लिये यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि चिकित्सा-विज्ञान का यह वृक्ष, इन दोनों नियमों में से किसके आधार पर खड़ा है। इसका निर्णय केवल एक प्रकार से ही हो सकता है कि जिस नियम का अवलम्बन करके, पूर्व निर्णीत चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार, चिकित्सा के कार्य्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है— वही, और केवल वही नियम, चिकित्सा-विज्ञान का एक मात्र सत्य-नियम हो सकता है।

महात्मा हनीमैन ने—(निम्न प्रकार से)—भिन्न २ दो प्राकृतिक रोगों के मिलने पर स्वयं हो जाने वाली चिकित्साओं के आधार पर यह सिद्ध कर दिखाया है कि चिकित्सा की निर्णीत परिभाषा के अनुसार, प्रकृति में चिकित्सा का कार्य्य, विषयों के सिद्धान्त के आधार पर होना सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार, जब विषमोपचार का सर्वथा निराकरण हो जाता है तो परिशेषात् "समोपचार" ही रह जाता है। महात्मा हनीमैन ने न केवल, विषमोपचार का खण्डन मात्र ही किया है अपितु 'समोपचार' का मण्डन भी पूर्णतया कर दिखाया है। इसप्रकार जब अन्वय-व्यतिरेक द्वारा यही सिद्ध हो जाता है कि 'समोपचार' ही चिकित्सा की परिभाषा को पूर्णतया निभाने में समर्थ है तो उसका 'समों' का नियम ही, चिकित्सा विज्ञान का केवल एक मात्र सत्य-नियम हो सकता है। चूंकि जिज्ञासु चिकित्सक को केवल उसी का अवलम्बन करने पर चिकित्सा के कार्य में यथार्थ सफलता मिल सकती है अतः उसको ही चिकित्सा-विज्ञान के एकमात्र सत्य-नियम के रूप में अङ्गीकार करके,समोपचार द्वारा ही चिकित्सा के कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये।

महात्मा हनीमैन बताते हैं कि प्रकृति में, जब कभी विषम-लक्षणों वाले दो रोग एक अधिष्ठान में (एक रोगी में) टकराते हैं तो केवल निम्न तीन अवस्थायें ही उत्पन्न हो सकती हैं -

(१) नवागत सबल रोग का पूर्वागत हीन-बल रोग को दबा देना = Suppression सुष्वापन।

(२) पूर्वागत सबल रोग का नवागत हीन-बल रोग को भगा देना = Repulsion निर्यासन।

(३) पूर्वागत रोग का नवागत समानबल रोग के साथ मिलकर Double Complex(द्विवशासन) स्थापित कर देना।

परन्तु कभी भी विषमलक्षणोपेत दो रोग आपस में टकरा कर एकदम चकनाचूर नहीं होते, अतः रोगी रोग-विमुक्त नहीं हो पाता।

यह तो तभी सम्भव हो सकता है जब कि दोनों रोग समान लक्षणोपेत हों। तब तो वे दोनों एकाभिप्राभिप्रायी होने के कारण एक स्थान में द्वन्द्व-युद्ध करते हुये आपस में लड़ मरते हैं और रोगी रोग-विमुक्त हो जाता है।

एक प्राकृतिक रोग का दूसरे प्राकृतिक रोग से टकराना, अथवा एक प्राकृतिक रोगोत्पादक पदार्थ (Natural Moribific Agent.) से उत्पन्न किये गये रोग लक्षण समुदाय का—दूसरे कृत्रिम रोगोत्पादक पदार्थ Artificial Moribific Agent = Medicine) से उत्पन्न किये गये रोग लक्षण-समुदाय से—द्वन्द्व युद्ध करना,एक ही बात है।

प्राकृतिक रोग-रोग के, अथवा रोगौषधि (रोग और औषधि) के द्वन्द्व युद्ध का चित्रण करने से पूर्व निम्न तीन बातें पुनः हृदयङ्गम कर लेनी चाहियें।

(१) मनुष्य रोग से आक्रान्त तभी होता है जब उसकी आत्मशक्ति बाह्य रोग-शक्ति से हीन बल होती है, तब उसके शासन के स्थान में रोग शक्ति का शासन स्थापित हो जाता है जिससे उत्पीड़ित हुई २ उसकी प्रजा असाधारण लक्षण समुदाय को प्रगट करके—रोग शक्ति से मुक्त होने के लिये किसी बाह्य शक्ति को पुकारती है जो उसे औषधि के रूप में प्राप्त हो सकती है।

(२) औषधियां रोग शक्ति से उत्पन्न किये गये लक्षण-समुदाय के समलक्षणसमुदायोपेत भी होती हैं तथा विषम लक्षण समुदायोपेत भी।

(३) रोग शक्ति से आक्रान्त आत्म शक्ति को मुक्त कराने के लिये, चिकित्सक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह ऐसी कृत्रिम शक्ति (औषधि) का प्रयोग करे जिसके द्वारा रोग शक्ति तो सर्वथा विनष्ट हो जाय परन्तु आत्म-शक्ति को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे अपितु आत्म-शक्ति का शासन, पुनः स्थापित हो जाय।

उक्त कार्य्य को करने के लिये, प्रकृति के समान चिकित्सक भी, पहिले विषमलक्षणोपेत (Dissimilar) औषधि का प्रयोग करता है। अब उनका द्वन्द्व-युद्ध निम्न चित्र-पट पर देखिये:—

(१) एक मनुष्य में (भारत में) कोई प्राकृतिक रोग (मुसलमान) चिरकाल से अड्डा जमाये बैठा हुवा है। अब यदि उस पर किसी बलवत्तर विषमलक्षणोपेत अन्य प्रकृति रोग का (अंग्रेजों का) आक्रमण हो जाय तो निश्चय से ही, पहिले हीन-बल रोग का प्रस्वापन (Suppression) हो जायगा तथा सबल रोग का शासन स्थापित हो जायगा।

प्रकृति में इस प्रकार के विषम रोगों की परस्पर टक्कर के अनेक उदाहरण मिलते हैं। Dr. Tulpis लिखते हैं कि एक बालक के मृगी के दौरे, उसके दाद से आक्रान्त होने पर एकदम बन्द हो गये। परन्तु शीघ्र ही दाद के बरबाद होते ही वह बालक मृगी के वशीभूत हो पुनः मृगी के समान उछलकूद मचाने लगा। अर्थात् नवागत, सबल विषम रोग (दाद) से प्रस्वापित Suppressed हीन-बल, पूर्वागत मृगी रोग, नवागत रोग के उससे भी हीन-बल होते ही पुनः उठ खड़ा हुवा। इससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि विषम रोगों के द्वन्द्व-युद्ध में आंख मिचौनी (Suppression expression) तो हो सकता है परन्तु प्रशमन (Cure) कदापि नहीं हो सकता। इसी

लिये अंग्रेज़ों के आक्रमण होने पर भी भारत स्वतन्त्र नहीं हो पाया।

(२) यदि पूर्वागत रोग, नवागत-विषम रोग से सबल होता है तो वह उसे अपने अधिष्ठान में फड़का भी नहीं होने देता। अर्थात् उसका तुरन्त निर्यासन Re-pulsion कर देता है। इसी लिये क्षय रोग से ग्रस्त मनुष्यों पर संक्रामक ज्वरों का आक्रमण होने सुना ही नहीं जाता। इस प्रकार, सबल रोग से आक्रान्त रोगी का बलहीन विषमौषधों (Allopathic Medicines) द्वारा क्या समाश्वासन हो सकता है? क्या एलोपैथिक औषधियों के समस्त-भण्डार द्वारा भी क्षय रोग का पराजय हो सकता है?

(३) कभी कभी जब पूर्वागत रोग, किसी मनुष्य (अफ्रीका महाद्वीप) के किसी भाग पर अधिकार करके सन्तुष्ट होकर बैठ जाता है तब वह अन्य रोगों (इटली, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि) को भी, अपने से विषम तथा बलहीन समझता हुवा, उसके अन्य भागों पर अधिकार कर देने देता है। इस प्रकार एक मनुष्य कई विभिन्न तथा विषम रोगों का एक साथ शिकार हो जाता है। तबतो वर्षा ऋतु में—

"निशि-तम, घन, खद्योत, विराजा,
जनु दंभिन कर मिला समाजा॥"

का मज़ा आ जाता है। क्या अफ्रीका महाद्वीप की ऐसी ही शोचनीय दशा नहीं हो रही है? इसी प्रकार, क्या आतशक से मारा रोगी, नाना-विध-विषमौषधों की चारों ओर से मार खाकर अधमरा नहीं हो जाता? धन्य हैं वे चिकित्सक, जो मघवा (इन्द्र) के समान "मुए मारि मङ्गल चहत" बने रहते हैं!

इस प्रकार इन तीनों संग्रामों को प्रत्यक्ष देखकर, चिकित्सक को पता चल जाता है कि इन विषम-विशिखों (Dis-similar medicines) द्वारा रोगी का रोग शक्ति से मुक्त होना तो दूर किनार रहा, अपितु वह और जञ्जाल में उलझ जाता है। विषमोपचार से निराश हुवे चिकित्सक के लिये अब रोगी के उद्धारार्थ केवल उसकी समलक्षणोपेत औषधि का प्रयोग करना ही शेष रह जाता है। वह ज्योंही "पत्तिं पदातिः, रथिनं रथेशः, तुरङ्ग सादी. तुरगाधिरूढम्" सी समोपचार की औषधि का प्रयोग करता है त्योंही मैदान साफ हो जाता है, रोग लक्षणों की सेना का सर्वनाश हो जाता है तथा उससे विमुक्त हुयी आत्म शक्ति की ध्वजा फहराने लगती है। सूर्य्य के प्रकाश के फैलते ही सब दीपक मन्द-प्रभ हो जाते हैं, फिनाइल के पड़ते ही नालियों की दुर्गन्ध दूर हो जाती है तथा कोयल की कूक के सुनायी देने हो कव्वों की 'कां-कां' कहां रह जाती है!

मेरे एक शेर ने (एक लघु-काय शशक ने) तो एक शेरको शेरकी परछाई दिखाकर ही मार गिराकर हर्षातिरेक से कुलांचे मारते हुवे पलभर में पशुओं की समाज में पहुंच समोपचार का यह चमत्कार आ सुनाया!

चिकित्सकों के लिये भी महात्मा हनीमैन ने मनुष्यों में प्राकृतिक रोगों द्वारा होने वाले समोपचार के अनेक उदाहरण संग्रहीत कर रक्खे हैं जिनमें से दो चार का यहां उदाहरण देना पाठकों अवश्य रुचिकर होगा।

(१) चेचक के आक्रमण काल में प्रायः नेत्र शोथ हो जाता है, यह सभी चिकित्सक जानते हैं। Dr. Leroy ने एक स्थायी नेत्रशोथ के रोगी को चेचक का टीका लगाने के पश्चात् उक्त रोग से सर्वथा विमुक्त होते देखा है।

(२) गाय के फफोलों (Cowpox) के रस से चेचक परित्राण करने का प्रकार तो पुराना हो चुका है, परन्तु यह बात कोई २ चिकित्सक ही जानता है कि उक्त रस की सूक्ष्म मात्राओं के प्रयोग से चेचक का उपचार भी हो जाता है।

(३) मसूरिका (Measles) में होने वाली कास, कुकरा खांसी से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है। Dr. Bosquillon लिखते हैं कि कुकरा खांसी के रोग-संक्रमण (Epidemic) में वे बच्चे जिन्हें खसरा निकल आया, कुकरा खांसी से सर्वथा बरी रहे।

(४) Dr. Hughes लिखते हैं कि भारत वर्ष के वैद्य मधु-मक्खियों पर गरम पानी डाल कर जो रस तय्यार करते हैं उससे वे भिन्न २ प्रकार के जलोदरों (Dropsy) का बड़ी सफलता पूर्वक उपचार कर लेते हैं। क्या मधु-मक्खियों के काटने पर शरीर का वह भाग जल-भरा सा नहीं हो जाता! भारत के इस प्रयोग के अनुकरण में विदेशों में अनेक परीक्षण किये गये तथा Apis Mellificia नामक औषधि तय्यार की गयी जिसके पुटीकृत रूप से (Potency से) आज होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में अनेक प्रकार के जलोदरों का उपचार किया जाता है। बच्चों के मस्तिष्क के आवरक की शोथ (Meningitis) के लिये तो यह औषधि रामबाण सिद्ध हुयी है। क्या एलोपैथी में इस रोग की चिकित्सा Lumbar Puncture इत्यादि से उत्कट प्रयोगों के बिना हो सकती है? क्या जो मनुष्य बात से मर सकता है उसे लात मारना समुचित हो सकता है? इस प्रसङ्ग में निम्न श्लोक को लिखने का लोभ संवरण करना हमारे लिये असम्भव सा हो हो रहा है:—

"वने प्रज्वलितो वह्निः, दहन् मूलानि रक्षति।
समूलोन्मूलनं कुर्य्यात्, वायुर्योमृदुशीतलः॥"

क्या, नलिनी को सुखाने के लिये हिम-सेक ही पर्य्याप्त नहीं होता?

इस प्रकार, इन प्राकृतिक समोपचार के उदाहरणों द्वारा, यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि रोगों का प्रशमन (Cure) तो केवल "समों" के नियम के आधार पर ही हो सकता है। यह पहिले सिद्ध किया जा चुका है कि "विषमों" के नियम के आधार पर चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार उपचार होना सम्भावित ही नहीं है। अतः अन्वय तथा व्यतिरेक, दोनों प्रकार से यही सिद्ध हो जाता है कि चिकित्सा का एक मात्र सत्य नियम "समों (Similars) का ही हो सकता है, तथा समोपचार द्वारा ही चिकित्सा की परिभाषा का पूर्णतया परिपालन हो सकता है।

समोपचार द्वारा रोगी किस प्रकार रोग-विमुक्त हो जाता है इसकी व्याख्या करते हुवे महात्मा हनीमैन बताते

हैं कि चूंकि समान लक्षणों वाली औषधि ठीक वहीं २ जा पहुंचती है जहाँ २ रोगशक्ति ने अधिकार कर रक्खा होता है, अतः, दोनों का समान बल होने पर, एक दूसरे से टकरा कर चकनाचूर हो जाना अनिवार्य्य हो जाता है; जिसके पश्चात् आत्मशक्ति पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाती है। क्या भारत की स्वतन्त्रता का गूढ रहस्य भी इसी समोपचार में नहीं छिपा हुआ है ?

समौषधि की रोग-शक्ति से कुछ थोड़ा सा बलवत्तर होना इसलिये आवश्यक है कि यदि दोनों शक्तियां सर्वथा समान-बल-शालिनी हों, तो उनका द्वन्द्-युद्ध प्रलय-काल तक भी समाप्त नहीं हो सकता।

अतः यद्यपि "समोपचार" का सूत्ररूपः—

"समः सम प्रशमयति"

का है, तथापि उसका पूर्ण रूप निम्न है:—

"A weaker dynamic affection is permanently extinguished in the living organism by a stronger one, if the latter (whilst differing in kind) is very similar to the former in its manifestations."

अर्थात्—जीवितावस्था में दिव्य-शक्ति-शाली रोग, लक्षण-सादृश्योपेत अन्य बलवत्तर रोग द्वारा स्थायीरूपेण शान्त हो जाता है।

अथवा

"बलवत्तर सम-शक्ति हो सके,
स्वल्प-शक्ति की प्रशमनहार।"

क्या इसके अतिरिक्त, चिकित्सा का एकमात्र सत्य-नियम कोई और हो सकता है ? इसी लिये हम संसार के सर्व प्रकार के चिकित्सक-मात्र से सानुरोध अभ्यर्थना करना चाहते हैं कि:—

धन्वी ? सम-उपचार है—
धनु में, औषधि तीर—
तान; मार इकतान हो,
मरै रोग, नहिं कीर॥

गुरुकुल समाचार

इधर कुछ दिनों से ऋतु की विषमता अपना प्रभाव दिखा रही है। गत सप्ताह कुछ दिन आकाश में बादल घिरे रहे। दो बार हल्की वर्षा भी हुई। ऋतु का इस विषमता का प्रभाव थोड़ा-बहुत ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। कुछेक ब्रह्मचारी श्लेष्मज्वर से पीड़ित हुए किन्तु अब ऋतु अनुकूल हो गई है। अतः ब्रह्मचारी स्वस्थ हो गए हैं।

वार्षिक परीक्षाओं के समीप आजाने के कारण कुलभूमि में सर्वत्र अध्ययनाध्यापन नज़र आता है। इन्हीं दिनों में गुरुकुल वृन्दावन के भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता व आचार्य श्री प० बृहस्पति जी गुरुकुल में पधारे। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की सभा में आपने "वेद का महत्व" विषय पर एक गवेषणापूर्ण और प्रभावशाली भाषण दिया। आप ने गुरुकुल में वेद के सम्बन्ध में एक व्याख्यान माला देनी थी किन्तु स्वास्थ्य के ठीक न रहने के कारण यह न हो सका।

गुरुकुल मुलतान का वार्षिकोत्सव

गु० कु० मुलतान का वार्षिकोत्सव १५-१६ मार्च १९४१ को होगा। जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं वे अब से उत्सव तक किसी समय भी करा सकते हैं। यह गुरुकुल कांगड़ी की सब से पुरानी शाखा है। इसके प्रबन्ध आदि की देख भाल श्री आचार्य जी गुरुकुल कांगड़ी के निरीक्षण में एक प्रबन्ध कर्तृ सभा करती है। मुलतान का जलवायु मशहूर है। पढ़ाई आदि का प्रबन्ध भी सन्तोष जनक है। इस शाखा में विशेषता यह है कि पढ़ाई के अतिरिक्त समय में कई एक आजीविका के साधन भी सिखाए जाते हैं। मासिक शुल्क पहिली से तीसरी तक १०) और चौथी, पांचवीं में १२), छटी से आठवीं तक १५) लिए जाते हैं। गुरुकुल की नियमावली और प्रवेशार्थ प्रार्थना-पत्र मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल मुलतान से मंगवा सकते हैं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का सालाना जलसा ७—८ और ९ मार्च को बड़ी धूम-धाम से मनाया जावेगा। उत्सव को सफल बनाने के लिये पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने के लिये गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री पंडित सोमदत्त जी बराबर आसपास के इलाके में घूम रहे हैं। अभी तक श्री पं० बुद्धदेव जी, प्रो० धर्मेन्द्र-नाथ जी, श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी, श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य उपदेशक महाविद्यालय लाहौर ने उत्सव में पधारना स्वीकार कर लिया है। श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार सम्पादक 'हिन्दुस्तान' के सभापतित्व में एक मनोरंजक वाद विवाद होगा। वाद विवाद का विषय होगा:—क्या हिन्दू मुसलिम ऐक्य के बिना स्वराज्य मिल सकता है ? पंजाब के प्रसिद्ध गायनाचार्य प्रो० देशबन्धु जी के सभापतित्व में सङ्गीत सम्मेलन होगा जिसमें म० चिरंजीलाल जी प्रिंसिपल शंकर संगीत विद्यालय, तथा म० धर्मवीर जी गायनाचार्य आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ भाग लेंगे। पंजाब सरकार की हिन्दी गुरुमुखी विरोधी नीति का विरोध करने के लिये एक कान्फ्रेंस भी करने का विचार है। ब्रह्मचारियों के शारीरिक व्यायाम के खेल होंगे तथा ब्रह्मचारी 'परिवर्तन' नाम का एक अभिनय भी करेंगे।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर २० नवीन ब्रह्मचारी प्रविष्ट किये जायेंगे, जिनका प्रवेश संस्कार ९ मार्च को होगा। जो महानुभाव अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं वे अभी से फार्म भरकर भेज दें। प्रवेश फार्म "मैनेजर गुरुकुल कुरुक्षेत्र, जि० करनाल" के पते से मिल सकते हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १७ फाल्गुन १९९७; २८ फर्वरी १९४१ [संख्या ४५

इन्द्रप्रस्थ के स्वामी रामानन्द जी

(लेखक—अभय)

(१)

जब मैं गतवार १, २ मार्गशीर्ष को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ गया था तो स्वामी रामानन्द जी से खास तौर से उन्हें बुलाकर मिला था। उनसे मिलने का खास तौर से विचार करके इन्द्रप्रस्थ गया था, पर उस समय मुझे क्या मालूम था कि मैं उनका अन्तिम दर्शन कर रहा हूँ। पौंडिचेरी से भी मैंने दो बार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सहायक-मुख्याधिष्ठाता श्री माघ गोपाल जी को पत्र लिखते हुवे यह इच्छा प्रकट की थी कि अब स्वामी रामानन्द जी का कर्तव्य के तौर पर सब काम छुड़ा दीजिये, उनकी जो इच्छा हो बस वही वे करें और आराम से जीवन व्यतीत करें ऐसा प्रबन्ध कर दीजिये, एक स्नातक बन्धु ने भी मुझे ऐसी प्रेरणा की थी कि स्वामी जी का अब कार्य भार छुड़ा देना चाहिये, पर उस समय मुझे क्या मालूम था कि जिन के बहुमूल्य देह की मैं इस तरह चिन्ता कर रहा हूं वह फौजी लारी के नीचे आकर बलिदान होने के लिये खिंचा जा रहा है?

(२)

'बलिदान' शब्द मैंने सप्रयोजन प्रयुक्त किया है। आज पश्चिम में तो विशेषतया "फौजीपन" बहुत से निरीह निर्दोष प्राणियों की दिन रात जान ले रहा है। उस का एक छोटा सा दृश्य हमारे सामने भी आगया। अन्धाधुन्ध फौजीपन का इस पृथ्वी तल से खात्मा करने के महान उद्देश्य से ही हमारे देश के कुछ उत्कृष्ट लोग सत्याग्रह कर रहे हैं—अपने स्वतन्त्र जीवन का बलिदान कर जेल जारहे हैं। पर जिसने केवल ऊपर ही भारत में पूजा जाने वाला पवित्र काषाय वस्त्र नहीं पहिना हुवा था बल्कि जो अन्दर से भी पवित्र, परमात्म-परायण शान्त और दिव्यता युक्त था ऐसे संन्यासी रामानन्द जी का फौजी लारी से टकरा कर मर जाना मुझे ऐसा ही लगता है कि वे जेल जाना ही नहीं, किन्तु अपने शरीर का भी बलिदान इस "फौजीपन" के लिये कर गये। इन्द्रप्रस्थ से जो मुझे समाचार मिला है उसके अनुसार लारी टकराने से उन्हें १०, १२ जगह चोट आयी; फिर भी वे अन्त तक होश में रहे। बिना क्लेश अनुभव किये जीवन के लिए अन्त तक संघर्ष करते रहे। पूर्व उनकी मृत्यु वीर की मृत्यु थी। महात्मा रामानन्द के जीवन का हम क्या मूल्य लगा सकते हैं? पर क्या भारत की सरकार जो अपने को वैसे 'फौजीपन' से जुदी होने का दावा करती है—रामानन्द जी के निधन से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को जो अपार क्षति पहुंची है उसका कुछ प्रतिशोध (मुआवज़ा) किये जाने के अपने कर्तव्य की तरफ ध्यान देगी?

(३)

इन्द्रप्रस्थ ही उनका वस्तुतः इस समय कुटुम्ब व परिवार था। समाचार में कहा गया है कि अन्त तक उन्हें गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का ध्यान बना रहा। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जिसका रजत जयन्ती उत्सव* अभी थोड़े दिनों बाद ही मनाया जाने वाला है—यह स्मरण आकर उनका वियोग बहुत ही अधिक दुःख दायी बन जाता है। मेरा विश्वास है कि स्थूल शरीर को छोड़ कर गया उनका अन्तरात्मा तब तक शायद अपने मानसिक और प्राणमय शरीर को नहीं छोड़ना चाहेगा, सम्भवतः नहीं छोड़ेगा जब तक कि वह अपने सूक्ष्म-शरीर द्वारा इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती के उत्सव को सफलता पूर्वक मनाया गया न देख लेगा। परमेश्वर करे कि उनको, सूक्ष्म-शरीर धारी उनको यह सन्तोष और सुख प्राप्त होवे। हम भी उस उस आत्मा को प्रसन्न और संतुष्ट कर सकने वाले उत्तम कृत्यों द्वारा उस आत्मा को तृप्त करने का यत्न करें।

(४)

मुझे यह सौभाग्य तो नहीं प्राप्त हुवा कि मैं उन से पढ़ा होऊं या उनके अधिष्ठातृत्व में रहा होऊ। पर हम विद्यालय विभाग में ही थे जब सुना था कि दो महानुभाव गुरुकुल में नये आये हैं जिन्ह ने अपना जीवन गुरुकुल को अर्पण किया है—उनमें से एक थे मुन्शी रामसिंह जी थे जो पीछे स्वामी रामानन्द जी हुवे। पर इनकी महिमा का पता तो बड़े होकर; बल्कि, स्नातक होकर ही चला। इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल बन जाने के बाद स्वामी रामानन्द जी ने अपने जीवन का मुख्यकाल इन्द्रप्रस्थ में ही बिताया और ऐसा कोई विरला ही अभागा होगा जो इन्द्रप्रस्थ में पढ़ा हो और रामानन्द जी के जीवन का प्रभाव उस पर बिलकुल न पड़ा हो। प्रारम्भ में उनकी कद्र न करना बल्कि कभी कभी उन्हें तंग भी करना पर पीछे से कम से कम दिल में उनकी कद्र करने लगना यह है एक सामान्य इतिहास जिसमें से बहुत से इन्द्रप्रस्थ में आये विद्यार्थी प्रायः गुजरते हैं। क्योंकि जीवन द्वारा पड़ने वाला प्रभाव प्रायः धीमे धीमे ही पड़ता है यद्यपि वही अन्दर तक पहुंचने वाला होता है और अतएव चिरस्थायी

---

* यह लेख गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती से पूर्व ही लिखा गया था, वहां की जयन्ती अभी २४ फर्वरी को सफलता पूर्वक समाप्त हो चुकी है—सं०

होता है। और स्वामी रामानन्द जी के विषय में ही यह . इससे अधिक कहा जा सकता है कि वे इन्द्रप्रस्थ में (यदि गुरुकुलीय दृष्टि से देखें एक ऐसे व्यक्ति थे।उनके जीवन का—न कि बातों या अन्य बाहरी व्यवहारों का प्रभाव पड़ता था।

इसलिये जब मुझे स्वामी रामानन्द जी के निधन का समाचार मिला तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो इन्द्रप्रस्थ से गुरुकुलीय पताका गिर गयी। उनका जीवन गुरुकुलीयता से ऐसा रंगा हुआ था कि वे निसदेह इन्द्रप्रस्थ में एक फहराती फिरती जीतीजागती गुरुकुल पताका थे। परमेश्वर गिरी हुई गुरुकुल पताका को फिर ऊँचा करे। आशा है गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सब मान्य अध्यापक वर्ग मिलकर इस के लिये अवश्य ही यत्न शील होंगे।

(२)

स्वामी रामानन्द जी का कोई स्थूल स्मारक तो गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में होना ही चाहिये। क्योंकि सामान्यतया लोगों को उद्बोधन देने के लिये स्थूल वस्तु बहुत सहायक होती है। परन्तु क्या ही अच्छा हो कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के विद्यार्थी स्वामी रामानन्द जी महाराज के दृढ़ अनुयायी हो जांय, गुरुकुलीय जीवन में उनके सच्चे शिष्य हो जांय, अर्थात् इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारी,स्वामी जी को आदर्श रख कर अपने नित्य कर्मों का अनुष्ठान तथा नित्य नियमों का पालन इतनी स्वाभाविकता तथा इतने प्रेम और आनन्द से करने वाले हो जांय कि इस विषय में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ अन्य सब गुरुकुलों के लिये दृष्टान्त स्वरूप बन जाय और जब जब गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की इस विशेषता की चर्चा हो तो इसके कारण के तौर पर सदा यह कहा जाय कि यहां के विद्यार्थियों के बीच में एक ब्रह्मानन्द संयमी ३० वर्ष तक रहे थे। यदि ऐसा हो जाय तो वह स्वामी रामानन्द जी महाराज का जीता जागता स्मारक होगा। यदि ऐसा हो जावगा तो चाहे स्वामी जी का वह देह इन्द्रप्रस्थ में अब चलता फिरता नहीं दिखायी देगा पर वे इन्द्रप्रस्थ के जीवन में अमर हो जायँगे।

काली कमली वाले बाबा मनीराम जी

पुण्य-भूमि भारत और उसमें भी तपस्वियों की भूमि हिमालय। हिमालय के मुख्य तीर्थ हैं कैलाश, गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ। इनमें से पहले को छोड़ कर बाकी सब तीर्थों तक जाने के लिए बाबा काली कमली वाले की धर्मशालाओं की पंक्तियां खड़ी हुई हैं। हज़ारों तीर्थ यात्री इसका दर्शन करके अपने को कृतार्थ मानते हैं। बड़ा अच्छा प्रबन्ध है।

ऋषिकेश में हज़ारों साधु और सैंकड़ों विद्यार्थी बाबा काली कमली वाले के दान से निश्चिन्त होकर जीवन यापन कर रहे हैं। हर साल लाखों का दान आता है और और लाखों का खर्च है।

इस संस्था मैनेजर, जिसे यह सब दान में मिलता है खूब गुलछर्रे उड़ाता होगा। मोटर तो उसके पास होगी ही। खर्च की कोई परवाह नहीं होगी, आज यहां कल वहां ऐसा ही सोचने की इच्छा होती है। क्योंकि सामान्य प्रवृत्ति ऐसी ही है।

धर्म के नाम पर ५६ लाख निठल्ले साधु खूब चीज़ें उड़ा रहे हैं ऐसे ही वह भी उड़ाता होगा, ज़रूर उड़ाता होगा!

पर क्या करूं, अगर मैंने उन्हें देखा न होता तो मैं चुप रह जाता। अब भी केवल विरोध के लिए नहीं कह रहा हूं बल्कि न कहने से पाप होगा इस लिए कहने लगा हूं।

मैं थका हुआ पहुंचा था। कपड़े मैले कुचैले, बाल बढ़े हुए और बिखरे हुए, एक छाता और एक झपना हाथ में था और साथ में कुछ नहीं। तुम देखते तो हँस पड़ते और तुम ही क्यों बाज़ार में चलते हुए एक पनवाड़ी की दुकान के शीशे में देखकर मुझे खुद भी हँसी आ गई थी। हां, तो मैं थका हुआ बाबा काली कमली वाले की ऋषिकेश की धर्मशाला के कार्यालय में पहुंचा था।

बड़ा देर तक तो यही समझ में न आया कि यह कार्यालय है या कथा मण्डली। क्योंकि सारा काम बड़े शान्त से वातावरण में हो रहा था। ज़मीन पर ही एक गद्दे पर बहुत से लोग बैठे हुए थे। कुछ लिख रहे थे, कुछ सज्जन बात कर रहे थे जो कि शायद दान के बारे में थी। कुछ बहीखाते खुले पड़े थे और यह सब जहां था वह कोई कमरा न था बल्कि टीन से ढँका हुआ धर्मशाला का एक कोना था। इतनी बड़ी धर्मशाला, इतना विस्तृत इन्तज़ाम, और उसके कार्यालय के नाम पर एक कमरा भी नहीं। कोई यूरोपियन होता तो ज़रूर चिढ़ जाता।

फिर यह कैसे पता चले कि मैनेजर कौन? पूछताछ से मालूम हुआ कि वे जो काली दाढ़ी वाले सज्जन बैठे हैं वही मैनेजर हैं क्या इस सारे प्रबन्ध यंत्र के सर्वे सर्वा हैं? पतले विनोबा जैसे आदमी, काले काले बड़े बाल और दाढ़ी, जिस पर पगड़ी बँधी हुई थी, सबके बीच में ऐसे बैठे थे मानो इस सब से कोई मतलब न हो। ये थे बाबा मनीराम जी 'काली कमली' के सर्वे सर्वा।

मैं पहुंचा। कहा कि 'ठहरना चाहता हूं।' 'कौन हो;' 'कहां से आए हो?' 'क्या करते हो?' पता नहीं कितने प्रश्न उठते। पर 'गुरुकुल' से आया हूं यह सुनकर वह सारी प्रश्नावली भविष्यत् में ही विलीन हो गई। मुझे ठहरने को जगह मिल गई और सारा इन्तज़ाम हो गया।

कोई बिना देखे चाहे कुछ कहे पर उन्हें देखकर 'गुलछर्रे' की बात तो दूर ऐसा लगता था कि मानो रोटी भी नहीं खाई है।

ऋषिकेश में बिजली की तारें हैं। पर काली कमली के कार्यालय में मुझे न तो बिजली के पंखे दीखे न बिजली के लट्टू। फिजूल खर्ची यदि कुछ हो रही है तो सबकी जानकारी में हो रही है। साधुओं को व्यर्थ बिना श्रम खिलाना यदि फिजूल खर्ची न हो तो और कुछ सम्पत्ति का दुरुपयोग वहां नहीं था।

उनके कार्यों की आलोचना व्यर्थ है क्योंकि उनकी नीयत पर संदेह नहीं किया जा सकता। वे जो कुछ कर रहे हैं वह सही है या गलत इस में किसी का मतभेद हो सकता है पर वे जिसे ठीक समझते हैं उसे ईमानदारी से कर रहे हैं इसमें मतभेद की कोई सम्भावना नहीं।

बाबा मनीराम श्वेत वस्त्रधारी, अविवाहित, काली दाढ़ी, काले बाल, अपने आचार्य श्री स्वा० अभयदेव जी

की याद आजाती है।

बाबा जी को साम्प्रदायिक कट्टरता छू भी नहीं गई थी। वे सनातनी; हम आर्य समाजी, पर हम सब का वे आश्चर्य जनक सत्कार करते थे। हम उनके साथ नहीं रहे पर पता नहीं कैसे उन्हें प्रत्येक गुरुकुल के व्यक्ति से प्यार था।

आज वही बाबा मनीराम जी इस संसार में नहीं हैं।

समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि वे अचानक ही इस देह को छोड़ गए हैं।

कीर्ति के जो फूल हम लोगों की स्मृति पर चढ़ने चाहिएँ पता नहीं किस प्राचीन कर्म विपाक के कारण इन्हें प्राप्त नहीं होते !

नहीं तो क्या निःस्वार्थ भाव से एक ही जगह एक ही नीरस काम में अपना जीवन खपा देना सरल है ? मुझे पता नहीं कि काली कमली के प्रबन्ध से तीर्थ यात्रियों को पुण्य प्राप्त होता है कि नहीं, पर यह स्पष्ट है कि काली कमली के प्रबन्ध से तीर्थ यात्री अनेक कष्ट पूर्ण कठिनाइयों से बच जाते हैं और उन्हें अपनी नितान्त आवश्यक तीर्थ यात्रा समाप्त करने में बड़ी सहायता और सुविधा होती है और कम से कम इनका पुण्य तो काली कमली के संचालक अवश्य ही पाने के अधिकारी हैं। परमात्मा उस निःस्वार्थ तथा स्नेहशील आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

———"विराज"

होमियोपैथी की शक्ति

(ले०—डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालंकार, बिजनौर)

चिकित्सा प्रणालियों की सर्वोत्कृष्टता निर्णायक कसौटी यही मानी गयी थी कि जो चिकित्सा प्रणाली, अपने सुबोध नियमों के आधार पर प्रवर्तित होकर मृदुतम प्रक्रिया द्वारा अस्वस्थ मनुष्यों को शीघ्रातिशीघ्र तथा स्थायीरूपेण स्वास्थ्य लाभ कराने की शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हो, वही सर्वोत्कृष्ट समझी जाय।

"समोपचार के सुबोध नियम वाली होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली, इस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न है या नहीं ?" इस प्रश्न का उत्तर पिछले चार अध्यायों में की गयी चिकित्सा प्रणालियों की अष्टाङ्ग परीक्षा द्वारा स्वयं ही दे दिया जाता है। जिस चिकित्सा प्रणाली में, रोगी-परीक्षा का प्रकार सर्वोत्कृष्ट हो जिसकी औषधियां औषधियों की षडाङ्ग परीक्षा में सबसे प्रथम स्थान प्राप्त करें तथा जिसका चिकित्सा का नियम वही हो जो कि चिकित्सा का एक मात्र सत्य नियम हो सकता है; उस चिकित्सा प्रणाली के ऐसी शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न होने में किसे सन्देह हो सकता है ? क्या, चिकित्सा प्रणालियों की अष्टाङ्ग परीक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त किये बिना कोई चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा-प्रणालियों की बाह्य परीक्षा में (चिकित्सा की परिभाषा के अनुसार चिकित्सा के कार्य्य में सफलता प्राप्त कराने की स्वर्गीय आभा-युक्त रेखा देने में) सर्व प्रथम स्थान प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है ? जो चिकित्सा प्रणाली, उक्त दोनों परीक्षाओं में सर्वोत्कृष्ट ठहरती है उसमें न केवल उक्त प्रकार की शक्ति का पाया जाना ही अनिवार्य्य है अपितु वह शक्ति उसमें सर्व श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक भी होनी चाहिये।

होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में यह शक्ति सर्वोत्कृष्ट रूप में तथा अधिक से अधिक मात्रा में विद्यमान है—इसको सिद्ध करने के लिये अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

क्या, महात्मा हनीमैन ने एलोपैथी द्वारा प्राप्त हुयी असफलताओं से निराश होकर ही उक्त चिकित्सा प्रणाली के अमृतमय महौषधों के सुमधुर तथा शीतल जल से परिपूर्ण मानसरोवर का अनुसंधान नहीं किया था ?
क्या उसी ने ही, विविध-विध व्याधियों से परिताषित जनता को उक्त सरोवर में स्नान कराने के पश्चात् रोग मुक्त करा कर, उसी से ही (जनता से) यह नहीं कहला लिया था कि वह जिसे जलाशय समझती थी वह केवल मृग-मरीचिका मात्र ही था तथा उसे वास्तविक सरोवर का तब तक परिज्ञान ही न था ? क्या थल में जल का तथा जल में थल का मति-भ्रम केवल मूर्खों अथवा दुर्योधन को ही होता रहा तथा हो चुका है ? क्या ऐसा ही मति-भ्रम अनेक चिकित्सकों को भी चिकित्सा के विषय में, अभी तक नहीं हो रहा है ?

समय ऐसा आता ही रहता है जब कि अपने प्रियतम परिजनों की चिकित्सा के लिये विषमोपचार वाली चिकित्सा प्रणाली की मृग-मरीचिका से निराश होकर लौटते हुये कुछ चिकित्सकों को बलात्, समोपचार के मानसरोवर पर पहुंचने का कष्ट उठाना पड़ ही जाता है तथा उसके द्वारा जीवन लाभ होने पर उनका मति-भ्रम सदा के लिये दूर हो जाता है जब मान सरोवर में स्नान करने ही अब उनके प्रियजनों का उद्धार हो जाता है, तो उनके लिये, इसके अतिरिक्त चारा ही क्या शेष रह जाता है कि वे विषमोपचार को सदा के लिये नमस्कार करके, समोपचार के अनन्य-भक्त तथा उपासक हो जायें ? क्या इस प्रकार अनेक एलोपैथ चिकित्सक, होमियोपैथिक की शरण में नहीं आ चुके हैं ? क्या महात्मा हनीमैन से लेकर डा० केण्ट, फरिङ्गटन, हेरिङ्ग, ह्यूजज, महेन्द्रलाल सरकार, गूमन इत्यादि चिकित्सा जगत् के विख्यात हाईकोर्ट के जज, इसी प्रकार समोपचार की शक्ति से आकृष्ट होकर इसकी शरण में नहीं आ चुके हैं ?

क्या आये दिन, अनेक रोगी भयङ्कर शल्य चिकित्सा द्वारा संदिग्ध नीरोगता प्राप्त करने की अपेक्षा यमराज के घर पहुंचना ही अधिक श्रेयस्कर समझते हुये, कभी २ समोपचार की अमृतमय औषधियों का गङ्गा-जल पान करने को बाध्य नहीं हो जाते ? क्या ऐसी अवस्था में भी जब समोपचार द्वारा उनका उद्धार हो जाता है तब वे उसके परम भक्त बने बिना रुक सकते हैं ? क्या ऐसे जीते जागते सर्वत्र विचरते प्रत्यक्ष प्रमाणों की उपस्थिति में भी, समोपचार की शक्ति की सिद्धि करने के लिये अन्य प्रमाणों की आवश्यकता रह जाती है ?

(देखिये पृष्ठ ५ पर)

गु रु कु ल

१७ फाल्गुन शुक्रवार १९९७

ज्ञानयोगी श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन

[ले०—स्नातक शंकरदेव जी विद्यालंकार]

आर्यशास्त्रों ने वैदिक तथा उपनिषत् कालिक ऋषियों को "त्रिकालदर्शी" नाम दिया है। उनका "त्रिकालदर्शन" मनोमय भूमिका से प्रसूत तर्कसिद्ध दर्शन नहीं होता था, अपितु मनोमय बुद्धि की उदात्त अवस्था "स्मृति" (Intuition) का सहज सिद्ध, स्वयं स्फुरित दर्शन होता था। महात्मा श्रीयुत अरविन्द घोष ने तो लोगों की इस सामान्य धारणा को बदल कर अपनी साधना और साक्षात्कार द्वारा ऐसा प्रतिपादित किया है कि वेदकालिक महर्षियों का दर्शन स्मृतिजन्य दर्शन नहीं था, अपितु मनोमय भूमिका से भी ऊर्ध्वस्थित, विज्ञानमय भूमिका में निष्पन्न हुए साक्षात्कारों का तेजस्वी, सौंदर्यमय और प्रतिमा पूर्ण प्रकटीकरण था। इस प्रकार की मौलिक स्थापना करके उन्होंने विज्ञानमय भूमिका के रहस्यों का विशद स्पष्टीकरण तथा विज्ञान (Supermind) की सिद्धि का अनुभवजन्य मार्ग अपने "पूर्णयोग" के पञ्चम खंड में—विज्ञानयोग में—प्रदर्शित किया है।

पाश्चात्य दार्शनिक अब बुद्धितत्त्व (Intellect) के विषय में संशोधन करने लगे हैं। नोबल पारितोषिक विजेता विश्रुत फ्रैंच दार्शनिक हेनरी बर्गसन की तो समस्त खोज ही "स्मृति" को केन्द्र मान कर की गई है। शंकराचार्य, देकार्ते, लाक, काण्ट, शापनहार, तथा बर्गसन आदि ने स्मृतिजन्य ज्ञान (इन्ट्यूटिव नालेज) के विषय में जो विचारणा और स्थापना की हैं, स्मृति, कल्पना और बुद्धि के विषय में हेगल और बर्गसन ने जो रूप प्रस्तुत किया है तथा दर्शन शास्त्र में स्मृति की आवश्यकता पर अफलातून अरस्तू, दकार्ते, स्पिनोज़ा, पास्कल, काण्ट आदि ने जैसा और जितना भार दिया है, उसकी जितनी महत्ता प्रदर्शित की है उन सब पर अब पुनर्विचार, संशोधन तथा नवीन मूल्यांकन होने लगा है। इस नवीन प्रतिपादना में श्रीयुत अरविन्द घोष के (Intuitive plane) का महत्व बहुत अधिक है। उन्होंने "स्मृति" के विषय में समन्वयात्मक, समर्थ और विशद धारणाएं प्रस्तुत की हैं। महात्मा अरविन्द घोष के पश्चात् जीवन दर्शन में स्मृति (Intuition) की सच्ची महत्ता को समझाने वाले हमारे आधुनिक तत्त्व-चिन्तकों (दार्शनिकों) में आचार्यवर सर्वपल्ली राधाकृष्णन महोदय का बहुत गौरव पूर्ण स्थान है। श्री राधाकृष्णन केवल तर्क कुशल पंडित नहीं हैं। न वे परम्परागत रूढ़ियों, मान्यताओं, धारणाओं और पूर्वग्रहों से आबद्ध पुरानी शैली के दार्शनिक हैं। बुद्धि के नवीन-नवीन आघातों द्वारा क्षण-भर के लिए विमूढ़ बना देने वाले केवल बुद्धिजीवी संशयात्मा (Sceptic) भी वे नहीं हैं। तत्वज्ञान, वस्तुतः केवल बुद्धि से उतना आबद्ध नहीं है जितना कि वह स्मृति की साधना के सौन्दर्य से तथा सामर्थ्य से देदीप्यमान सहजसिद्ध है। आचार्य राधाकृष्णन तो मनोमय जंगल में स्मृति की भूमिका (Intuitive plane) पर सत्यज्ञान का समागम कराने वाले जीवन द्रष्टा हैं। जीवन और जगत् को सचाई के साथ समझने वाले तथा जीवन संग्राम के पलों को निहार कर संस्कारिता सिद्ध करने वाले संस्कार-नेता हैं।

"इण्डियन फिलासोफी" नामक विपुल ग्रन्थ में इनकी तलस्पर्शी विद्वत्ता और सर्जनशील विचारणाएं हम देख सकते हैं। अपने Hindu View of life नामक ग्रन्थ में इन्होंने हिन्दु धर्म की मौलिक विशेषताओं पर नया ही प्रकाश डाला है। Philosophy of Upanishads में महर्षियों की मग्न दृष्टि को और उनके भव्य त्रिकाल-दर्शन को बड़ी ही खूबी के साथ समझाया है। The Vedanta according to Shankara and Ramanuja में इनकी गहरी विवेक शक्ति, तुलना शक्ति और सुस्पष्ट समझ का पता चलता है। The Reign of Religion in Contemporary Philosophy में तथा The Religion We *Need* जीवन के पुनर्विधान की स्वतन्त्र दृष्टि, धर्म के उपयोग के विषय में इन्होंने अनेक अनेक मौलिक और सुसंगत धारणाएं प्रस्तुत की हैं।

An Idealist View of life इनकी अपूर्व रचना है इसमें इन्होंने समग्र जीवन की नए सिरे से स्वतन्त्र विचारणा की है। मन, प्राण और आत्मा के सम्बन्ध में नई-नई धारणाएं बड़ी बोधक और समाधान-परक शैली में उपस्थित की हैं। "संस्कृति का भविष्य" नामक अपनी कृति में आने वाली संस्कृति का स्वतन्त्र, सहजसिद्ध दर्शन करके राधाकृष्णन ने अपनी स्मृतिकार होने की क्षमता बड़ी अच्छी तरह से सिद्ध की है।

आचार्य राधाकृष्णन की दृष्टि में Intuition is the extension of perception to regions beyond sense (परिज्ञान का इन्द्रियों से परे के क्षेत्र में प्रसार पाना ही सहज स्मृति है।) परन्तु ऊपर कथित "स्मृति-ज्ञान" द्वारा मनुष्य जीवन-स्वामी नहीं बन सकता। हां जीवन का प्रयोग-वीर बन सकता है। जीवन-स्वामी बनने के लिए तो मनुष्य को मनोमय बुद्धि से ऊपर रहने वाले विज्ञान (Super mind) की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। उसकी प्राप्ति के लिए विज्ञानमय कोश (Supramental plane) को प्राप्त करने का उदात्त साहस करना चाहिए।

(Intellect) बुद्धि का विवेकशील उपयोग करने वाला व्यक्ति सामान्य जनता से जुदा होता है। और Intuition का साधक तो बुद्धि-वादियों से भी बड़ी

और सभी ज्ञानसिद्धि को प्राप्त करता है। परन्तु 'बुद्धि ज्ञान" तथा "स्मृति ज्ञान" का विस्तार और प्रभाव भी सीमित है—परिमित है। इन अवस्थाओं में अन्तरात्मा अपना मूल ज्ञान और स्वरूप प्राप्त नहीं कर पाता, अतः इस अवस्था में अन्तरात्मा की शक्ति और सुन्दरता अपूर्ण और मर्यादित ही रहती है। बुद्धि की भूमिका में अज्ञान का स्थान रहता है और स्मृति ज्ञान की सिद्धि में परिमितता का वास होता है। परन्तु विज्ञान की सिद्धि में तो मानव आत्मवीर बनता है। उसे जीवन की दिव्यता का ठीक २ भान होता है। इसे ही दिव्य जीवन की भूमिका में जाना कहा गया है। महात्मा अरविन्द घोष इसी दिव्य जीवन की साधना को अनुभवजन्य बना रहे हैं। उनकी यह धारणा आज विश्व के बुद्धिवादियों को आश्चर्य विमूढ़ बना रही है। पश्चिम के महान् दार्शनिक उनकी साधना और स्थापना को देख कर बहुत विस्मय प्रदर्शित कर रहे हैं।

हमारी आर्य भूमि चिरकाल से ऐसे साधकों और उदात्त मानवों की क्रीड़ा भूमि रही है, जो क्रमशः बुद्धि, स्मृति और विज्ञान की भूमिका में विहार करते हुए दिव्य जीवन प्राप्त करते थे। इस युग में हमारे देश में श्री अरविन्द के पश्चात् इन उदात्त भूमिकाओं की ओर अभियान करने का सामर्थ्य आचार्य राधाकृष्णन में है। उनके बुद्धिजन्य विचारों में भी अनुभूति की गहरी छाप सुस्पष्ट प्रतीत होती है। इसी कारण हम उनको उदात्त-भूमि की ओर गया हुआ मनीषी कह सकते हैं। आचार्य राधाकृष्णन इस दृष्टि से अभिनव द्रष्टा हैं—विज्ञानयोग की ओर प्रयाण करने वाली उदात्त विभूति हैं। इसी कारण उनके विचारों को हृदयङ्गम करना बहुत सरल प्रतीत होता है। आर्य भूमि के इस विरल ज्ञान योगी को हमारे बहुत प्रणिपात हैं।

(देखिये पृष्ठ ३ का शेष)

जिस प्रकार, तुलसीदासजी की निम्न चौपायी के अनुसार: —

आवत एहि सर अति कठिनाई,
राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥

मान सरोवर पर पहुंचना अत्यन्त कठिन है तथा राम की कृपा के सहारे के बिना कोई पहुंच ही नहीं पाता, उसी प्रकार समोपचार के अदृश्य सरोवर पर पहुंचना भी अत्यन्त कठिन है तथा होमियोपैथिक साहित्य के महारथियों की पुस्तकों के अध्ययन की सहायता के बिना कोई उस तक पहुंच ही नहीं सकता। परन्तु, जिस प्रकार मान सरोवर की यात्रा करके लौटे यात्रियों के आदेशानुसार चलने से, वहां पहुंचना अत्यन्त सुगम हो जाता है, उसी प्रकार समोपचार द्वारा जीवन लाभ करने वाले रोगियों के विवरण द्वारा समोपचार के सरोवर तक पहुंचना भी अत्यन्त सुगम हो सकता है।

इस प्रकार होमियोपैथी की शक्ति का सुगमता से परिज्ञान प्राप्त कराने के लिये, यद्यपि अनेक धुरन्धर समोपचार-चिकित्सकों द्वारा जीवन लाभ कराये गये रोगियों का विवरण, उनकी पुस्तकों के उद्धरणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है; तथापि, इस कार्य्य के लिये यह अधिक उपयुक्त होगा कि उन दो तीन रोगियों का विवरण पाठकों की भेंट किया जाय, जिनको विषमोपचार द्वारा निराशा-नदी में डुबा दिये जाने के पश्चात् समोपचार द्वारा उद्धार पाते, लेखक ने स्वयं आंखों देखा है।

लेखक को समोपचार द्वारा जिस रोगी के जीवन लाभ करने पर होमयोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में प्रथम २ श्रद्धा उत्पन्न हुयी, उसका विवरण निम्न हैः—

रोगी विवरण (Case) १

सन् १९२५ में अप्रैल के महीने में, जब कि मैं गुरुकुल कांगड़ी के महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये गया हुआ था, मेरे १५ मास की आयु वाले पुत्र आनन्द प्रकाश को Cholera Infantine (बाल-विशूचिका) हो गया। उसके उक्त रोग से ग्रस्त होने की सूचना पाकर जब मैं घर पहुंचा तो उसे बड़ी ही शोचनीय दशा में पाया। पूछने पर पता चला कि उसकी चिकित्सा बिजनौर के सिविल-सर्जन साहिब कर रहे हैं। मेरे लिये इससे अधिक सन्तोष की बात और क्या हो सकती थी कि मेरे पुत्र की चिकित्सा बिजनौर के योग्यतम चिकित्सक के सुपुर्द थी। परन्तु जब मुझे यह पता चला कि उस दिन उसे लगभग चालीस दस्त आ चुके हैं तो मुझे कुछ घबराहट का अनुभव करना स्वाभाविक ही था। फिर भी यात्रा की थकान के कारण मैं बे-सुध सो गया। रात्रि के १२ बजे मुझे सहसा जगाया गया। मैंने जाकर देखा कि रोगी को उसी समय एक बड़ा सा दस्त हुवा है तथा उसने आंखें फाड़ दी हैं और वह एकदम मूर्छितावस्था में पड़ा है। उसके, इस प्रकार जीवन-प्रदीप को बुझता देखकर मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। ठीक मध्य रात्रि में किसी अन्य चिकित्सक को कष्ट देना उचित न समझ कर मैं स्वयं उसके लिये औषध विधान करने की इच्छा से लैम्प जलाकर Allen's Materia-Medica लेकर बैठ गया। उसके सब लक्षण Arsenic में पाये गये, परन्तु उसे प्यास का नामोनिशान तक भी नहीं था जो कि Arsenic का मुख्य परिचायक (Characteristic) लक्षण है। मैंने ढूंढना प्रारम्भ किया कि ऐसी औषधि मिल जाय जिसमें आरसनिक के से सब लक्षण मौजूद हों परन्तु प्यास का लक्षण न हो। चूंकि शिशु की जीवन-रक्षा करना परम-पिता को अभीष्ट था अतः ऐसी औषधि के मिलने में मुझे अधिक समय न लगा। मैंने Asthma Cyanosis की 200 Potency को १ बूंद जल में मिलाकर बालक की जीभ पर डाल दी और उसका प्रभाव देखने के लिये पास पड़ी आराम कुर्सी पर पड़ रहा। बालक में कुछ शुभ-लक्षणों को उदय होता देख, मैं शीघ्र ही निद्रा के वशीभूत हो गया।

जब उठा, तो देखा कि सूर्य्य-महाराज की कोमल किरण माला आंगन में अठखेलियां खेल रही हैं और आनन्द प्रकाश आनन्द मगन हो अंगूठा चूस रहा है। द्वार की ओर देखने पर पता चला कि कुछ महिलायें सफ़ेद सी चादर ओढ़े आकर बिना बात किए ही लौटी चली आ

रहीं हैं। गत सायंकाल ही सब को यह निश्चय हो चुका था कि रात कटनी असम्भव है, अतः उनके उस व्यवहार का अर्थ समझने में मुझे अधिक देर न लगी। परन्तु जब आनन्द कन्द भगवान को ही उस शिशु की रक्षा करनी अभीष्ठ थी तो उन भद्र-महिलाओं के अनुमान को-पलट देना ही उसके लिये कौन बड़ी बात थी। तभी तो तुलसीदासजी ने लिखा है:—

'गरल सुधा, रिपु करहिं मिताई, गो-पद सिंधु अनल शितलाई
गरुड़ सुमेरु रेणु सम ताहीं, राम कृपा कर चितवहिं जाहीं॥

जिस चिकित्सा प्रणाली द्वारा किसी का बच्चा, मौत के मुह में से इस प्रकार खींच लिया जाय, यदि उसके प्रति उसके हृदय में श्रद्धा का सागर भी उमड़ पड़े तो क्या आश्चर्य्य हो सकता है ?

बिजनौर की जनता के हृदय में समोपचार के प्रति किस प्रकार श्रद्धा उत्पन्न हुयी ?— इसका प्रदर्शक निम्न रोगी-विवरण दिया जाता है।

रोगी विवरण (Case) II

बाबू प्रतापसिंह जी, रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट जज के पौत्र की भुजा पर एक बहुत बड़ा फोड़ा निकल आया, जिसकी शल्य-चिकित्सा मसूरी के एक प्रसिद्ध अंग्रेज डाक्टर से कराने का निश्चय हो चुका था। दैवात् मेरे एक हितैषी महाशय ने जज साहिब को यह अनुमति दी कि वे Operation कराने से पूर्व लेखक को अवश्य दिखालें, शायद वह औषधि द्वारा ही उसकी चिकित्सा कर सके। बच्चे के पिता उसे लेकर मेरे पास आये। मैंने उसकी परीक्षा करते हुये यह लक्षण विशेषतया पाया कि वह न केवल फोड़े को ही छूने नहीं देता था अपितु बहुत चिड़चिड़ा भी हो रहा था। मुझे उक्त लक्षणों वाली औषधि का स्मरण होते देर न लगी। मैंने Hepar sulph 200 की चार मात्राएं बनाकर देदीं और यह आदेश दिया कि प्रतिदिन प्रातःकाल एक मात्रा बच्चे को पिलायी जाय।

बड़ी अन्य मनस्कता तथा उदासीन वृत्ति से उसके पिता वह औषधि लेकर चले गये तथा मैं भी उदासीन एक बरात में सम्मिलित होकर लाहौर चला गया। जब पांच दिन बाद लाहौर से लौटकर मैं अपने घर की ओर चला आ रहा था तो मार्ग में अचानक जज साहिब मिल गये जो मुझे देखते ही उछल पड़े और बड़े तपाक से बोले "I congratulate you Dr. Sahib for this excellent treatment, I never knew that such miracles can be performed by Homoeopathy !" मैंने उन्हें नमस्कार करते हुये उत्तर दिया "जज साहिब, मैं आपको बहुत २ धन्यवाद देता हूं इस लिये कि आपने मुझे होमियोपैथी की शक्ति का प्रदर्शन करने का एक सुअवसर तो प्रदान किया"।

इस चिकित्सा की चर्चा सारे बिजनौर नगर में, जल में तैल बिन्दु के समान फैल गयी। बहुत से सज्जनों ने यह कहते हुये कि "आपने मन्त्र पढ़ा पानी पिला कर ही उस भयानक फोड़े को अच्छा कर दिया" मुझे साधुवादों की बौछार से सराबोर कर दिया।

यद्यपि उक्त वाक्य विस्मय के आवावेश में ही कहा गया होगा, तथापि इसकी सचाई में भी कुछ विशेष आपत्ति नहीं हो सकती। क्या 'मन्त्र' का अर्थ 'विचार' के अतिरिक्त कुछ और हो सकता है ? तब क्या यह जल, मन्त्र पढ़ा—विचार पूर्वक दिया गया—नहीं था ? कुछ भी हो, समोपचार की इस चिकित्सा को देख कर बिजनौर की जनता के हृदय में होमियोपैथी के लिये अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी, जिसने कई व्यक्तियों को सज्जनों ने मुझसे होमियोपैथी पढ़ना भी प्रारम्भ कर दिया। जज साहिब को तो बाद को ऐसा अनुभव होने लगा, मानो:—

"बिनु औषधि व्याधि विधि खोई"।

बिजनौर के एलोपैथी के उपासक चिकित्सकों में होमियोपैथी के प्रति आदर भाव किस प्रकार उत्पन्न हुआ— इसका निदर्शन निम्न रोगी विवरण द्वारा हो सकेगा।

रोगी विवरण (Case) III

सन् १९३८ की बात है। फरवरी का महीना था, जब कि बिजनौर के सरकारी अस्पताल के असिस्टेन्ट सर्जन साहिब का दुग्ध-मुख बालक कुछ दिनों से बीमार चला आ रहा था, जिसका इलाज बिजनौर के सिविल सर्जन साहिब, एक अन्य योग्य रिटायर्ड सिविल सर्जन साहिब के मशवरे से कर रहे थे।

एक दिन रात्रि के ९ बजे एक आदमी अस्पताल से भागता हुआ आया, और मुझ से साथ चलने की प्रार्थना करने लगा। उससे पूछने पर मुझे पता चला कि डाक्टर साहिब का बच्चा ८ दिन से बीमार है तथा आज उसकी हालत कुछ अच्छी नहीं है। परन्तु भगवान का नाम ले मैं तो औषधियों का Handbag हाथ में ले तुरन्त अस्पताल जा पहुंचा। घर के अन्दर पैर रखते ही देखता हूं क्या, कि लगभग आधे दर्जन डाक्टर साहिबान पहिले से विद्यमान हैं। असिस्टैन्ट सर्जन साहिब का मुझे आदेश हुआ कि मैं बिना विलम्ब के रोगी की परीक्षा करके उसे होमियोपैथिक औषधि दे दूं। मैं कुछ देर के लिये तो एकदम सहम सा गया परन्तु शीघ्र ही धैर्य धारण कर कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। जब रोगी के लक्षणों को औषधि के लक्षणों में पूरा अनुरूप पा लिया तो तुरन्त औषधि की (Arsenic 30) एक मात्रा मैंने बच्चे को पिलादी। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह दो वर्ष का बच्चा उस सुधा-मधुर औषधि को बड़े चाव से पी गया। मैंने १५ मिनट बाद एक मात्रा और दी—और बस। इस दूसरी मात्रा के देने के साथ ही वह कसमसाता हुआ बच्चा एक दम शान्त हो गया। सब को सन्देह हुआ कि कहीं कुछ गड़बड़झाला तो नहीं है। नाड़ी तथा हृदय-परीक्षा करने के पश्चात् डाक्टर साहिब को यह निश्चय हो गया, कि बात बिगड़ नहीं रही है। मैं भी डाक्टर साहिब की सन्देह-निवृत्ति तथा बच्चे की माता के समाश्वासन के लिये लगभग आधा घंटा और बैठ रहा। अब डाक्टर साहिब को पूरा विश्वास हो गया कि न केवल बच्चा, अपितु उसकी माता भी वास्तविक सुख की नींद के पूर्व-

तथा वशीभूत हो गई है तो यथातथा मुझे भी प्रेमपूर्वक विदा किया गया।

प्रातःकाल, अभी आठ भी न बजे पाये होंगे कि मुझे अस्पताल से फिर बुलावा आया। सोचा, न जाने क्या मामला है परन्तु उसी समय फड़कती दक्षिण भुजा ने मुझे धीरज बंधा दिया कि जो कुछ भी हो, होगा भला ही।

डाक्टर साहिब की बैठक में पैर रखते ही मैंने बहुत से डाक्टरों तथा नवागन्तुक सज्जनों को वहां बैठे पाया, जिनसे नमस्कार विनिमय करने के पश्चात् डाक्टर साहिब ने अपने पिता जी से मेरा परिचय कराया जो मुजफ्फरनगर से वहां के एक प्रसिद्ध एलोपैथ डाक्टर साहिब को साथ लेकर रात्रि में २ बजे बिजनौर पधार चुके थे।

अब तक बच्चे के विषय में मुझ से किसी ने कुछ भी नहीं कहा; परन्तु सबके मुखारविन्दों पर खेलती प्रसन्नता को देख कर मैंने निःशङ्क-भाव से अनुमान कर लिया कि बच्चा अवश्य अच्छा है। मेरे पूछने पर कि "बच्चा कैसा है?" उत्तर मिला "चलकर देख न लीजियेगा"। अन्दर पहुंचकर मैंने बच्चे की ओर चक्षु-विक्षेप किया ही था कि मेरे कानों में एक मृदु-ध्वनि "डाक्टर साहिब, देखिये आपका यह मरीज़ अब तो खूब हंस हंस कर खेल रहा है" सहसा आ पड़ी। जिधर से यह सुधा-स्यन्दिनी-ध्वनि आ रही थी उधर आंख उठाते ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों बहुत से मालती-पुष्प मालाकार हो मेरी ओर बढ़ रहे हों। मैं भी नतमस्तक हो तुरन्त कह उठा। "बहिन जी, भगवान जिसे हंसावे वह क्यों न हंसे"। मैंने सुना "परन्तु हमें हंसाने के लिये तो आप ही भगवान बन कर आगये हैं।

मैंने कहा "भगवान के भेजे एक तुच्छ सेवक के रूप में तो मैं आपकी सेवा में अवश्य उपस्थित हुआ हूं"।

अस्तु। इस प्रकार उमड़ते प्रेम-पारावार में जब सबने मिल कर खूब स्नान कर लिया तब मैं भी बच्चे की परीक्षा तथा उसकी माता का समाश्वासन करके बाहिर बैठक में जा पहुंचा, जहां सब उपस्थित सज्जनों ने बधाइयों की पुष्प मालाओं से मेरा अपूर्व अभिनन्दन किया। परन्तु, मैं क्षुद्र जीव इतना बोझ कहां संभाल सकता था!

शीघ्र ही इस पूर्णता को प्राप्त सम्मान ने पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मेरे पीछे भी राहु और केतुओं को लगा दिया।

होमियोपैथी की यह पूर्णता यद्यपि राहु और केतु को निमन्त्रण दे ही चुकी थी तथापि यह कैसे हो सकता था कि पूर्ण विधु को देखकर उदधि के समान कोई भी ऐसा सज्जन वहां उपस्थित न होता जो होमियोपैथी की उस पूर्णता को उस पराई विभूति को—देखकर फूला न समा रहा हो। ऐसा सज्जन वहां उपस्थित था, और अवश्य उपस्थित था। परन्तु, तुलसीदास जी की निम्न चौपाई के अनुसार:—

"सज्जन, सकृत सिन्धु सम कोई,
देखि पूर-विधु बाढ़ई जोई"।

था, केवल एक ही। उक्त डाक्टर साहिब का सौहार्द्र य भी मेरी ओर इतना बढ़ा कि वह बढ़ते २ सहोदर भाई के समान मेरे गले आ लगा। डाक्टर साहिब ने होमियोपैथी की इस अभूतपूर्व सफलता का अवलोकन कर उससे परिचय प्राप्त करने के लिये, होमियोपैथी की पुस्तकों का अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया।

वाणी की प्रशस्ति में कहा गया महाकवि भारवि का यह निम्न श्लोकः—

"विविक्तवर्णा-भरणा सुख-श्रुतिः
प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्
प्रवर्त्तते नाकृत पुण्यकर्मणाम्-
प्रसाद गम्भीर पदा सरस्वती"॥

होमियोपैथी की प्रशस्ति में, कुछ परिवर्त्तनों के साथ, इस प्रसङ्ग में उद्धृत करना, क्या पाठकों के मनोरञ्जन का हेतु न होगा?

"विविक्त वर्णा, रसना, सुख-प्रदा
प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्
प्रवर्तिता किं हनिमैन ने यही,
नयी चिकित्सा विधि लोक विश्रुता"॥

श्री सेठ बिड़ला जी का गुरुकुल कांगड़ी में शुभागमन

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला २० फरवरी सांय काल लगभग ६॥ बजे दिल्ली से सीधे गुरुकुल में पधारे। आपने आयुर्वेद महाविद्यालय तथा वेद महाविद्यालय की इमारतों का अवलोकन किया और वेद-भवन के लिए भी स्थान की देख भाल की। जनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि वेद महाविद्यालय भवन की इमारत प्राचीन स्थापत्य कला के अनुसार बनवाई जा रही है।

वेद महाविद्यालय की बन रही इमारत को देख कर बिड़ला जी बहुत प्रसन्न हुए और आर्यशैली पर बनता देख सन्तोष प्रकट किया। इमारतों के देखने के पश्चात् ज्यों ही बिड़ला जी खड़े हुए थे कि उन्हें चारों ओर से छोटे ब्रह्मचारियों ने घेर लिया और इतने में ही एक छोटे ब्रह्मचारी ने बिड़ला जी से प्रश्न कर दिया कि आपका 'वेद-भवन' कब बनेगा? श्रीयुत बिड़ला जी ने उत्तर दिया कि तुम जितने ब्रह्मचारी खड़े हो तुम सब के सब वेद-भवन ही हो। बिड़ला जी और ब्रह्मचारी खूब प्रसन्न हुए और इसके पश्चात् श्री सेठ जी अपने निवास स्थान को चले गये। शनिवार को प्रातः काल श्री बिड़ला जी पुनः कुल-भूमि में पधारे। इमारतें आदि देख कर वेद-भवन के लिए स्थान का निरीक्षण किया। आशा है वेद-भवन निर्माण का कार्य शीघ्र ही आरम्भ हो जायगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का रजत-जयन्ती महोत्सव

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देहली का रजत-जयन्ती महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। हजारों की संख्या में लोग एकत्रित हुए। देहली नगर तथा ग्रामीण जनता दोनों ने बड़ी दिलचस्पी से इस में भाग लिया।

सोलह से बीस फरवरी तक गुरुकुल की ओर से दीवान हाल (देहली) में श्री स्वामी केवलानन्द जी की कथा हुई। तदनन्तर गुरुकुल भूमि में २१, २२, २३, २४ फरवरी को उत्सव प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष भीड़ अधिक होने के कारण खेमे वा छोलदारियाँ ज्यादह लगानी पड़ी। पण्डाल गत वर्षों की अपेक्षा ज्योढ़ा बनाया गया था तथा श्रोताओं की सुविधा के लिए महाघोष (Loud Speaker) का प्रबन्ध किया गया था।

प्रथम दिवस

उपदेशों तथा व्याख्यानों के अतिरिक्त श्री प्रो० सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति के सभापतित्व में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हुआ जिसमें भिन्न भिन्न वक्ताओं ने हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाए जाने के महत्व पर प्रकाश डालते हुए "हिन्दुस्तानी भाषा" विषयक कांग्रेस की नीति को देश के लिए अहितकर बताया।

रात को श्री सोहनलाल द्विवेदी (लखनऊ) की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें दूर २ के कवियों ने भाग लिया। श्री सभापति जी के अतिरिक्त श्यामकृष्ण जी दाल्जिन, श्री चतुरेश जी, मौलाना फौलक तथा प० नागेन्द्र एम० ए० प्रभृति की कविताएं पसन्द की गई।

द्वितीय दिवस

२२ फरवरी को श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति श्री स्वामी केवलानन्द जी तथा श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के सुन्दर उपदेश व व्याख्यान हुए तथा श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी के सभापतित्व में आगरा सम्मेलन हुआ जिसमें सार्वदेशिक सभा के निर्णयानुसार जाति-आर्य, धर्म वैदिक, भाषा हिंदी तथा लिपि देवनागरी लिखाने के लिए सब आर्य भाइयों से निवेदन किया गया।

रात को ब्रह्मचारियों के शारीरिक व्यायाम तथा छाती पर से मोटर गुजारने की खेलों के बाद संगीत सम्मेलन किया गया जो लगभग १ बजे समाप्त हुआ। इसमें विविध संगीत पार्टियों ने भाग लिया यह सम्मेलन बहुत सफलता से मनाया गया।

तृतीय दिवस

२३ फरवरी को श्री पं० सत्यव्रत जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल-कांगड़ी तथा पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के व्याख्यानों के बाद गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट तथा लगभग १५०००) के दान की घोषणा की गई। सायंकाल श्री युत एम एस अणे जी की अध्यक्षता में पाकिस्तान विरोधी सम्मेलन हुआ। इसमें श्री रघुवीरसिंह जी, डा० मूलसिंह जी बजाज़ तथा पण्डित अवनीन्द्र जी विद्यालंकार प्रभृति ने पाकिस्तान की योजना को देशघातक, अव्यवहार्य तथा विद्वेषमूलक बताया तथा भाषपन से इस का विरोध करने की अपील रात को श्री उपेन्द्रनाथ जी दास तिबियाकालिज की अध्यक्षता में स्वास्थ्य सम्मेलन तथा स्वामी केवलानन्द जी का उपदेश हुआ।

चतुर्थ दिवस

२४ फरवरी को श्री० प्रो० लालचन्द जी एम ए० तथा पं० सुखदेव जी वेदवाचस्पति के व्याख्यानों के पश्चात् ऋषिबोधोत्सव मनाया गया जिसमें भिन्न २ वक्ताओं के अतिरिक्त श्रीयुत दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने आर्यसंस्कृति के महत्व तथा उसके पुनरुद्धार पर बल देते हुए श्री स्वामी दयानन्द जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। साथ ही आर्यसमाज के कार्य की प्रशंसा करते हुए आर्य-जाति के भिन्न २ अंगों को संगठित करने की अपील की।

इन व्याख्यानों व सम्मेलनों के अतिरिक्त प्रतिदिन पहलवानों की कुश्तियों तथा वाली बाल, हाकी के साम्मुख्यों के कारण बहुत चहलपहल रही। देहली तथा बाहर की टीमें खेलीं। श्री० रामनारायण जी जज के करकमलों से विजेताओं को पारितोषिक वितरण करवाए गए। हाकी का कप गुरुकुल कुरुक्षेत्र तथा वोली बाल का विजयोपहार आर्यकुमार सभा दीवान हाल को दिया गया।

इस प्रकार यह उत्सव बड़े समारोह व धूमधाम के साथ सफलता पूर्वक समाप्त हुआ।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० विद्यारत्न १४ श्लेष्मज्वर (Influenza fever) ब्र० रणवीर १४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० योगेन्द्र १२ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० जगदीश ११ श्रेणी श्लेष्मज्वर ब्र० धर्मपाल १२ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० जगन्नाथ ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर ब्र० प्रद्युम्नकुमार ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० ओम्प्रकाश (देहरादून) ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० नारायणमूर्ति ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० धर्मपाल ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० रामप्रसाद (जौन०) ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० सत्यानन्द ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० हरिश्चन्द्र ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० विश्वनाथ ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० रणजीतसिंह ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० दमनेशकुमार २ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० देवेन्द्र (अम्बाला) ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। इन दिनों ऋतु परिवर्तन के कारण श्लेष्मज्वर (Influenza fever) की शिकायत है। उसके लिए आश्रम में भी ब्रह्मचारियों को दवाई दी जाती है और दूध आदि में तुलसी, दालचीनी, इला तथा पिप्पली उबाल कर देते हैं ताकि रोग से बचाव रहे। अब सर्दी हलकी होती जा रही है।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २४ फाल्गुन १९९७; ७ मार्च १९४१ [संख्या ४६

बन्धन से मुक्ति

(स्व० श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश से)

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

आदि और अन्त से शून्य, परमाणु-रूप अवस्था से जगत् को रचने वाले, नाना प्रकार से संसार में व्यापक होने वाले, पूर्ण प्रकाशमान् को जानकर मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

मनुष्य अपने से किसी अधिक बलवान् शक्ति को न जानकर बहुत बार संसार में स्वतन्त्रता के गहरे गढ़े में पड़ा हुआ क्या कुकर्म कर बैठता है। सारी सृष्टि के पदार्थों को अपना भोग्य पदार्थ जानकर इन्द्रियों पर अधिकार रखने के स्थान में इन्द्रियों का दास बन बैठता है। तमोगुण की नीच दशा को प्राप्त हो अपने असल स्वरूप को भी भूल जाता है। अपनी आत्मिक और शारीरिक विचित्र उत्पत्ति को स्रष्टा की दया के बिना पैदा हुआ जानकर अपने आन्तरिक शक्ति का दुरुपयोग करता है और संसार में अधिक अन्धेर फैलाने का कारण बनता है और स्वयं मोह और अहंकार के जाल में फंस कर कभी सुख और कभी दुःख मानता है। इन्द्रियों के विषयों से मिला सुख, क्षणभंगुर होने के कारण उसकी लालसा को बढ़ाता चला जाता है। संसार में चारों ओर क्लेश और असह्य दुःख की यह भयानक ध्वनि जगत् को दुःखमय प्रगट कर रही है। प्राकृतिक साधन हिमाच्छादित पर्वत, सुरम्य सरोवर, शीतल पवन, उत्तम जल के स्रोत और स्वादिष्ट वनस्पति सब के सब दुःखद यक बन रहे हैं और हा हा-कार की गूंज अन्दर और बाहर से बराबर आ रही है। आह! क्या मनुष्य स्वभाव से ही दुःख का कारण अथवा दुःख भोगने का हेतु बना है। मनुष्य सर्वप्राणियों में श्रेष्ठ बनकर इतना दुःख क्यों भोगता है? जबकि पशु पक्षी और सारी सृष्टि के जीव जन्तु सब अपने अपने भोगों को प्राप्त करके बड़े आराम और शान्ति से अपनी आयु व्यतीत कर रहे हैं। यदि मनुष्य भी सृष्टि नियम को समझता और स्रष्टा की आज्ञा का पालन करता तो यह दुःख स्वरूप जगत् शान्ति धाम बन जाता। इस अभिमान में पड़कर कि 'संसार में कर्मों का दण्ड-दाता कोई नहीं और इन्द्रियों के भोगों में ही आराम है' मनुष्य नास्तिक बनकर पशु समान खाने पीने सोने और मैथुन आदि को ही अपना कर्तव्य जान लेता है। परन्तु कर्म-गति विचित्र है। किये कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है और अज्ञान का फल तो दुःख ही है। कर्म करने से पूर्व ज्ञान की उपलब्धि होनी आवश्यक है। ज्ञान से मनुष्य, मनुष्य पदवी को प्राप्त होता है और संसार की उत्पत्ति तथा परमात्मा की अनन्त शक्तियों का विचार करता हुआ इस सम्पूर्ण रचना को ज्ञान के चक्षु से देखता है और संसार की उत्पत्ति तथा परमात्मा की अनन्त शक्तियों का विचार करता है कि अनादि जगतकर्त्ता कारण-रूप से प्रकृति को नाना प्रकार की सृष्टि में परिवर्तित कर रहा है और वेद द्वारा उपदेश देता है कि यह प्राकृतिक की वस्तुएं तुम्हारे भोग और सुख के कारण बनी हैं। यह हमारा ही दोष है कि उत्तम और लाभदायक पदार्थों को उपयोग में नहीं लाते हैं और यह हमारा ही अपराध है कि स्रष्टा, उसकी शक्तियों और उस के ज्ञान को न जानते हुये दुःख पाते हैं। इसलिये दर्शाया है कि हे मनुष्यो! तुम परमात्मा के ज्ञान को जानो और उसके अनुकूल अपने आचरण रक्खो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। परमात्मा के ज्ञान को उपलब्ध करके कर्म गति को समझते हुये उस अन्त और आदि से रहित सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी परमात्मा की संगत करो; इसी शक्ति से समस्त बन्धनों से छुटकारा पावोगे।

प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से—

'गुरुकुल' पत्र के अनुरागी पाठकों की सेवा में पुनरपि हमारा साग्रह निवेदन है कि जिन्होंने सम्वत् १९९७ का २॥) वार्षिक चन्दा अभी तक भेजने की कृपा नहीं की है वे शीघ्र ही भेज दें अथवा हमें वी. पी. भेजने की अनुमति दे दें, क्योंकि अब साल समाप्त होने ही वाला है। स्नातकों, आर्य समाजों और ग्राहक महानुभावों से हमारा विशेष निवेदन है।

महाकवि कालिदास एवं शेक्सपीयर

(श्री अ० रत्नदेव जी उपस्नातक)

शेक्सपीयर अंग्रेज़ी साहित्य में नाटककार के नाम से प्रसिद्ध है किन्तु कालिदास नाटककार व काव्यकार भी हैं। इन दोनों कवियों की तुलना करना मुश्किल है। एक तो महान् कवियों की तुलना करना ही खतरे से खाली नहीं है। फिर कालिदास और शेक्सपीयर अपने २ क्षेत्र में महान् हैं। इतनी समानता अवश्य है कि हमारे यहां जो श्रेष्ठता कालिदास को प्राप्त है वह वहां शेक्सपीयर को। शेक्सपीयर ने जीवन के कितने ही पहलुओं को लेकर लिखा है परन्तु कालिदास का क्षेत्र परिमित है। हमारे यहां संस्कृत साहित्य में ऐसे नियम थे कि नाटक सुखान्त ही लिखने चाहिएं; दुःखान्त नहीं। कवि कालिदास ने तीन नाटक रचे हैं—विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र। इन तीनों का संक्षेपतः कथानक इस प्रकार है कि दो प्रेमी हैं जो किन्हीं परिस्थितियों के कारण मिल नहीं सकते या अलग हो जाते हैं और अन्त में फिर मिल जाते हैं। किन्तु शेक्सपीयर के नाटक दुःखान्त और सुखान्त दोनों हैं; चूंकि इनके यहां कोई ऐसा नियम नहीं है जैसा कि हमारे यहां है। भवभूति का उत्तररामचरित यद्यपि दुःखान्त है किन्तु तो भी कवि ने उसे सुखान्त बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। शेक्सपीयर स्वतन्त्र था; वह कालिदास की तरह नियम बद्ध नहीं था।

विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र दोनों मधुरता और सौन्दर्य दृष्टि से अच्छे हैं किन्तु इन्हें उद्देश्य की दृष्टि से बहुत अच्छा कहना अत्युक्ति होगी। इन दोनों का कथानक इस प्रकार है कि एक राजा है जो अपनी रानी से विरक्त होकर किसी दूसरी सुन्दरी से विवाह करना चाहता है। अन्त में रानी उदार बनकर स्वयं राजा के सम्मुख उसकी नव-प्रणयिनी को उपस्थित कर देती है। कालिदास ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि नायिका नायक की अपेक्षा अधिक उन्नत है और साथ ही उसमें त्याग का भाव भी है। शेक्सपीयर के नाटकों के अनुशीलन से भी हमें यही प्रतीत होता है कि नायिका नायक की अपेक्षा कहीं उन्नत है।

कालिदास और शेक्सपीयर के नाटकों के विदूषक सफल विदूषक हैं। मृच्छकटिक का कवि कालिदास की अपेक्षा इस क्षेत्र में अधिक सफल है। मृच्छकटिक में कहीं भी नीरसता नहीं प्रतीत होती और विदूषक का पार्ट आदि से लेकर अन्त तक अच्छा चला जाता है। कालिदास के नाटक शृंगाररस प्रधान हैं। शृंगार के अतिरिक्त इसके नाटकों में वीररस भी पाया जाता है। हास्यरस इसके नाटकों में पाया जाता है काव्यों में नहीं। कुछ लोगों का मत है कि ये नाटक और काव्य अलग २ कालिदास के लिखे हुए हैं किन्तु यह मत सर्वथा हेय है यह प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है। इसके नाटकों और काव्यों में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि ये एक ही कवि द्वारा रचे गए हैं। यथा—"इति यदुच्यते अव्यभिचारितद्वचः" (अर्थात् इसका कहीं भी अपवाद नहीं मिलता)। इस तरह के कई स्थल हैं जो कुमार संभव और शाकुन्तल दोनों में ही समानतया पाये जाते हैं।

कवि कालिदास को जहां बाह्यप्रकृति से प्रेम है वहां उस पर अधिकार भी है; किन्तु, शेक्सपीयर अन्तः प्रकृति-अर्थात् मानसप्रकृति के भावों को चित्रण करने में मास्टर है। इसका मानसविषय में बहुत ही सूक्ष्म अध्ययन है। मानस भावों को इतना अधिक चित्रण करने वाला हमारे साहित्य में कोई भी कवि नहीं है। हां; कहीं २ इसकी झांकी अवश्य मिल जाती है। हमारे यहां भवभूति ने कालिदास की अपेक्षा मानस चित्रण ज़्यादा किया है किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसी मानस भाव का चित्रण कहां समाप्त हुआ है और कहां से वह प्रारम्भ होता है। शेक्सपीयर ने मानस भावों का यथार्थ चित्र खींचा है किन्तु साथ ही इससे नाटकों से कुछ हानि भी हुई है। हमारे यहाँ संस्कृत साहित्य में रंगमञ्च पर हत्या करना, प्रेम प्रदर्शन, लड़ाई आदि का अभिनय दिखाना निषिद्ध है किन्तु शेक्सपीयर के यहां ये चीज़ें सम्मान-प्राप्त हैं। इसके नाटकों में ऐसे दृश्य बहुत ज़्यादा देखने को मिलते हैं।

दोनों कवि संगीत प्रिय हैं। कालिदास का शाकुन्तल संगीत से प्रारम्भ होता है। एक जगह कालिदास ने संगीत सुनकर कहा—"अहो रागपरिवाहिणीगीतिः" ऐसे स्थलों से मालूम होता है कि कालिदास अच्छा रसिक रहा होगा। रघुवंश के २ य सर्ग में जब राजा दिलीप वन में जाकर प्राकृतिक सुन्दर परिस्थिति में पहुंचता है तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे संगीत चल रहा हो और राजा उसे सुन रहा हो। दिलीप को पक्षियों के शब्द में संगीत सुनाई पड़ता है। इस चीज़ को अनुभव करने के लिए एक विशेष प्रकार के सहृदय हृदय की आवश्यकता होती है।

कालिदास अहिंसा का उपासक है किन्तु शेक्सपीयर के नाटकों में प्राय. हिंसा का ही वातावरण है। ऐसा कहा जाता है कि बौद्ध-धर्म के चरम सीमा में पहुँच जाने पर हिन्दुओं ने उसके बदले में अश्वमेध-यज्ञ रचे थे। इसप्रकार हिन्दुओं के जीवन का पुनरुद्धार अश्वमेध-यज्ञ माना जाता है। किन्तु उसी समय कालिदास हुआ। उसके काव्यों को पढ़ने से कहीं भी हिंसा का वातावरण नहीं मिलता। रघुवंश में उसे अपने नायक को नीचा दिखाना पसन्द है किन्तु अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े की हिंसा कराना पसन्द नहीं। रघुकुलावतंस जिसने युद्ध में इन्द्र को नीचा दिखा दिया था क्या उसके लिये अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को छीनना मुश्किल था ? किन्तु रघु ने कहा —'अच्छा ! तुम यह घोड़ा न दो।' इसी तरह अपनी सेना सहित जब राजा 'अज' स्वयंवर के लिए जा रहा था तो मार्ग में नदी के किनारे उसे एक हाथी मिला जिसने सारी सेना में भगदड़ मचा दी थी। 'अज' ने उसे फलका रहित बाण मारा जिससे वह भाग गया। वह हाथी नहीं, अपितु मायावेषधारी एक गन्धर्व था जिसने प्रसन्न होकर 'अज' को सम्मोहनास्त्र दिया। इस अस्त्र की विशेषता यह थी कि शत्रु भी नहीं मरता था "न चारिहिंसा विजयश्च" परिणामतः स्वयंवर के पश्चात् अज और अन्य देश के राजाओं में जो लड़ाई हुई उसमें 'अज' ने अपने बचाव के लिए उसी अस्त्र का प्रयोग किया

जो उसे गन्धर्व ने प्रसन्न होकर दिया था। इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास को हिंसा से कितनी अधिक घृणा थी। शाकुन्तल को पढ़ते समय पशु हिंसा के सम्बन्ध में एक चुटकी मिलती है। मछलियों का शिकार करते समय धीवर ने एक मछली को पकड़ा। उसे काटने पर धीवर को उसमें से एक अंगूठी मिली। अंगूठी को बाज़ार में बेचते समय उसे एक सिपाही ने पकड़ लिया। जब उसे अदालत में लाया गया तो उसने कहा- 'पशुमारणकर्मदारुणः'—अर्थात् मछलियों को मारना हमारा वंशपरम्परागत कार्य है। जैसे पशुहिंसा करता हुआ भी पुरोहित पण्डित कहाता है ऐसे ही यह हमारा खानदानी काम है।

शेक्सपीयर की तीन सन्तानें थीं किन्तु कालिदास को सब प्रकार के सांसारिक सुख प्राप्त होते हुए भी सन्तान का सुख प्राप्त नहीं था ऐसा मालूम होता है। रघुवंश के प्रारम्भ में उसने कहा है "तया हीनं विधातर्मा कथं पश्यन्न दूयसे"। इधर शाकुन्तल में आलक्षदन्त मुकुलान...आदि से भी सन्तान के प्रति आतुरता ज्ञात होती है।

मालूम होता है कालिदास को दर्शनों से विशेष प्रेम था। "दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन। स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता" शाकुन्तल के इस पद्य से मालूम होता है कि कालिदास दार्शनिक था। उसके काव्यों में यह चीज़ व्यापक है। परमात्मा को भी ये मानो दर्शन का पाठ पढ़ा रहे हों।

मृत्यु के सम्बन्ध में—

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः" ऐसे विचार बहुत से नाटकों में आये हैं कि यह जन्म किसी अच्छे जन्म से गिर कर हुआ है जब कि हमारा विश्वास है कि मानव जन्म-जन्मान्तरों में विकसित हो रहा है। कालिदास का यह विचार बाइबिल से मेल खाता है। गन्धर्व का हाथी रूप आदि उसके उदाहरण हैं। इसी विचार को वर्ड्सवर्थ ने पुष्ट किया है—'हमारा जीवन का तारा इस लोक में कहीं से अस्त होकर आया है' इत्यादि।

होमियोपैथी की भक्ति

(ले०—डा० ओम्प्रकाश जी विद्यालंकार, बिजनौर)

जिस प्रकार एक स्वामी को एक शक्त तथा भक्त सेवक की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आयुर्वेद को (आयुषो वेदः)—चिकित्सा विज्ञान को—ऐसी चिकित्सा-प्रणाली की आवश्यकता है जो अस्वस्थ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ करा सकने के कारण न केवल शक्त ही हो, अपितु स्वस्थ मनुष्यों की स्वास्थ्य-रक्षा करने—रोगों के आक्रमणों से उनका परित्राण करने— में भी पूर्णतया समर्थ होने के कारण साथ २ भक्त भी हो।

हनुमान जी राजा रामचन्द्र जी के सच्चे सेवक कहलाते हैं; इसलिये कि उन्होंने न केवल श्रीराम जी पर आयी विपत्तियों का संहार करते हुवे अपनी असीम शक्ति का ही प्रदर्शन किया, अपितु आने वाली विपत्तियों से उनका पूर्णतया परित्राण करके अपनी अनन्य-भक्ति का भी समय २ पर अपूर्व परिचय दिया। यदि हनुमान जी ने निशिचर-निकर के संहार करने में अपनी अथाह शक्ति का प्रयोग करके अपने स्वामी को विजयी बनाया, तो उसी ने ही अपार पारावार को पार करके लायी गई जानकी जी को सुधरूपी सुधा द्वारा अपने स्वामी को वियोगाग्नि में भस्म होने से भी बचाया। यदि हनुमान जी में स्वामि भक्ति की लेशमात्र भी कमी होती तो क्या रामचन्द्र जी का शक्ति-मूर्छित लक्ष्मण के शोक-सागर से कभी भी निस्तार हो सकता था? क्या ऐसे सेवक को कोई स्वामी भुला सकता है? महादेव जी कहते हैं:—

"हनूमान सम नहिं बड़भागी, नहिं कोउ रामचरण अनुरागी
गिरिजा! जासु प्रीति सेवकाई, बारबार प्रभु निज मुख गाई।"

इसी प्रकार उस चिकित्सा-प्रणाली से बढ़कर भाग्य-शाली और कोई चिकित्सा-प्रणाली नहीं हो सकती जो चिकित्सा विज्ञान के दोनों कार्य (१) चिकित्सा (Treatment) तथा (२) परित्राण (Prophylaxis) केवल अपने नियम के आधार पर निभा सकने के कारण अपने स्वामी आयुर्वेद की पूर्ण शक्त तथा भक्त सेविका हो।

होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली अपनी दुर्गा के समान रोग संहारिणी शक्ति के कारण, आयुर्वेद की एक शक्त सेविका के रूप में स्वीकार की जा सकती है—इसका निश्चय गत अध्यायों के अध्ययन से पाठकों को हो ही चुका है। अब प्रश्न उठता है कि क्या होमियोपैथी काम-धेनु के समान, आयुर्वेद की एक भक्त सेविका भी हो सकती है? अर्थात्—क्या, चिकित्सा-प्रणाली द्वारा आयुर्वेद का स्वास्थ्य रक्षा या परित्राण का कार्य पूर्णतया सम्पन्न हो सकता है या नहीं? जिसप्रकार ऐलोपैथी, भिन्न २ प्रकार के टीके इत्यादि लगाकर भयङ्कर से भयङ्कर रोग-राक्षसों के आक्रमणों से स्वस्थ मनुष्यों के परित्राण करने का दावा रखती है, क्या होमियोपैथी भी इस प्रकार के परित्राण के कार्य का भार अपने सुकोमल कन्धों पर धारण करने के लिये तय्यार है? क्या होमियोपैथी की छोटी २ गोलियों की बौछार कौलरा, प्लेग, चेचक टाइफाइड से भीषण रोगराक्षसों को, मनुष्यों के स्वास्थ्य पर आक्रमण करने से विमुख करके मार भगाने में भी समर्थ हो सकती है?

इन सब प्रश्नों का उत्तर होमियोपैथी बड़ी दृढ़ता, प्रसन्नता तथा आत्म-विश्वास के साथ देती है कि वह आयुर्वेद के स्वास्थ्य-रक्षा विभाग का भार भी बड़ी सुगमता से वहन करने के लिये तैय्यार है। वह बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहती है कि उसकी "समों" के नियम की प्रस्तरमयी दृढ़ आधार-शिला, आयुर्वेद के भारी से भारी, विशाल से विशाल तथा उच्च से उच्च भवन के भार को वहन करने में सर्वथा समर्थ है। जब एलोपैथी, उसके समों के नियम के आधार पर अपना परित्राण का कार्य चला रही है, तो क्या वह अपनी आधार शिला पर परित्राण के कार्य का भार अत्यन्त

(पृष्ठ ६ पर देखिए)

गुरुकुल

२४ फाल्गुन शुक्रवार १९९७

गुरुकुल का उत्सव

'गुरुकुल' का यह अङ्क जब पाठकों के हाथ में पहुंचेगा तब उत्सव में केवल एक मास शेष रह जावेगा। गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आर्य समाज का सबसे बड़ा मेला है। इस अवसर पर भारत के कोने-कोने से प्रतिवर्ष सहस्रों नर-नारी श्रद्धा-भक्ति-भाव से आते हैं और उपदेशामृत से हृदय को परितृप्त कर लौटते हैं। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी न केवल आर्य समाज की सब से बड़ी और शानदार संस्था है बल्कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का सब से बड़ा केन्द्र भी है। यह संस्था आर्य समाज के बड़े गौरव की वस्तु है। इसकी शान आर्य जनता की शान है। लुप्त होती हुई आर्य-संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का पुनरुद्धार करने वाला गुरुकुल शिक्षणालय ही है। यह वह वाटिका है जिसे आर्यों ने कठिन परिश्रम करके सींचा है इसे हरा-भरा देखने की किसे प्रबल इच्छा न होगी? हर्ष का विषय है कि आपके अत्यन्त प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक-महोत्सव ११ मास की लम्बी प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है हम आपको सादर निमन्त्रित करते हैं कि यहां आकर अपनी इस लहलहाती वाटिका का निरीक्षण कीजिए। आपकी यह गुरुकुलोत्सव-यात्रा वास्तविक अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ सम्प्रति इस भारत में कौनसा है? आइये, इष्ट-मित्र, बन्धु बान्धवों तथा सकल परिवार के साथ पधारिये। विद्वानों और महात्माओं के अमूल्य उपदेश श्रवण कर लाभ उठाइये।

इसके साथ ही हम आपका कर्त्तव्य भी स्मरण करा देना चाहते हैं गुरुकुल इस समय एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं, अपितु विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है। इस संस्था का वार्षिक खर्च लगभग एक लाख साठ हजार है। इस वार्षिक व्यय का भार निस्सन्देह गुरुकुल प्रेमियों पर ही है। हमें आशा ही नहीं किन्तु पूरा निश्चय है कि आर्य जनता अपनी जिम्मेवारी समझ कर धन संग्रह के कार्य में जुट जावेगी और ऋषि दयानन्द के लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ने वाली इस संस्था पर किसी प्रकार का घाटा न आने देगी। गुरुकुल की उन्नति में आप की उन्नति है और गुरुकुल की शान में आप की शान। इस लिये सभी आर्य भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे गुरुकुल की आवश्यकताओं को समझें और उसकी पूर्ति के लिये तन-मन-धन से जुट जावें। यदि आप कटिबद्ध हो जावेंगे तो इस अर्थ-राशि का थोड़े समय में ही एकत्र होना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। उत्सव ज्यों २ समीप आता जावे आप द्विगुण उत्साह से गुरुकुल की सहायता के लिये कार्य आरम्भ कर दीजिये। एक बार आप तैयार होकर जुट जाइये, फिर आप देखेंगे कि आप ने आधा कार्य कर लिया है। आशा है आर्य भाई अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह से समझते हुए तन, मन, धन से गुरुकुल का सहयोग देंगे।

इस बार, उत्सव पर जब आप गुरुकुल भूमि में पधारेंगे तब यहां के नवीन निर्मित भव्य भवनों को देखकर आपका हृदय हर्षोत्फुल्ल हुए बिना न रहेगा और गुरुकुल को आप गत वर्ष की अपेक्षा एक कदम आगे बढ़ा हुआ पावेंगे।

अन्त में आर्य जनता को हमारा सादर निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर कुलवासियों के उत्साह को बढ़ायेगी तथा अधिक से अधिक आर्थिक सहायता पहुंचा कर कार्य कर्त्ताओं का हाथ बटायेगी।

गुरुकुलोत्सव पर उपस्थित होना केवल मनोविनोद या उपदेश-श्रवण की दृष्टि से ही नहीं अपितु एक कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व की दृष्टि से भी परमावश्यक है। इस लिये आप गुरुकुल चलने की शीघ्र ही तैय्यारी कीजिए।

पुस्तक समालोचना

श्रीअरविंदका योग

हमारा योग और उसके उद्देश्य:—श्रीअरविंदकी "योग एण्ड इट्स आबजेक्ट्स" नामक पुस्तकका अनुवाद; अनुवादक श्री मदन गोपाल गाड़ोदिया, संपादक आचार्य श्री अभयदेव विद्यालंकार, प्रकाशक श्री अरविंद ग्रन्थमाला पांडीचेरी, पुस्तक विभाग गुरुकुल कांगड़ी से प्राप्य, पृष्ठ संख्या ५६, मूल्य ॥)।

श्रीअरविंदका योग से क्या अभिप्राय है यह उन्होंने इस छोटी सी पुस्तक में सहज स्पष्ट और सुन्दर रूप से संक्षेप में वर्णन किया है। ऐसी उपयोगी पुस्तक का सरल और सुन्दर हिंदी अनुवाद कर अनुवादक ने देश की बहुत बड़ी सेवा की है, कारण कि वर्तमान समय में श्रीअरविंद के योग और उनके कार्य के विषय में केवल भ्रांत धारणा फैली हुई हो यही बात नहीं है, बल्कि स्वयं योग के संबन्ध में भी लोग ऊटपटांग विचार रखते हैं। आम धारणा ऐसी है कि योग सांसारिक जीवन से कोई भिन्न वस्तु है और यह केवल उन इने-गिने लोगों के लिये ही है जो जीवन का त्याग करने तथा संन्यासी या वैरागी बन जाने की प्रेरणा का अनुभव करते हों। योग के विषय में इस प्रकार की जो धारणा है वह योग की उन कतिपय प्राचीन काल से प्रचलित साधनाओं से संबंध रखती है जिनमें जगत् को मिथ्या माना गया है और शांत, अक्रिय और निराकार ब्रह्म को ही एकमात्र सद्वस्तु स्वीकार किया गया है, किंतु श्रीअरविंद का योग जीवन का त्याग नहीं करता, बल्कि उनके योग का उद्देश्य है जीवन को सर्वांग संपूर्ण बनाना। गीता के शब्दों में योग ही कर्म की सच्ची कुशलता है, इस

महत्व पूर्ण वाक्य के तात्पर्य को और आगे बढ़ाते हुए हम यह कह सकते हैं कि श्री अरविंद के दृष्टिकोण से योग जीवन और कर्म की सच्ची कुशलता तथा कला है। उनके योग के आधार हैं, हमें जीवन के सच्चे सिद्धांत को बताने वाले उपनिषद् और गीता हैं। "तब तुम उस ज्ञान में अधिकाधिक निवास कर सकोगे जिसे उपनिषद् और गीता ने जीवन का सिद्धांत माना है। तब तुम समस्त विद्यमान वस्तुओं में आत्मा को और आत्मा में समस्त विद्यमान वस्तुओं को देख पाओगे;तब तुमको समस्त वस्तुएं ब्रह्म ही भासित होंगी, 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'। परन्तु इस योग की चरम उपलब्धि तो तब होती है जब तुमको इस बात का ज्ञान होता है कि यह समग्र जगत् एक अनंत भागवत स्वरूप की ही अभिव्यक्ति, क्रीड़ा या लीला है।" वर्त्तमान समय में मानव जाति जगत् के इस स्वरूप में वास नहीं कर रही है, उसकी वर्त्तमान दृष्टि अहमात्मक है और उसको भगवान् जो सब किसी के एक आत्मा हैं, उनकी उपस्थिति का सचेतन ज्ञान नहीं है। मनुष्य अपने आपको अपने अहंकार के साथ, जिसकी सीमा उसके मन प्राण और शरीर तक ही होती है, तदाकार कर लेता है, और दूसरों की रोटी छीन कर अपने इस अहंकार की संतुष्टि और वृद्धि के लिये जीना चाहता है, और फलतः उसका दूसरे-दूसरे वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय अहंकारों के साथ संघर्ष होने लगता है और यही है मानव जाति की समस्त अनबन और विपद का मूल कारण। इस बात का ज्ञान कि अहंकार हमारा सत्य आत्मा नहीं है, बल्कि यह हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिये प्रकृति की एक अस्थायी रचना है, और साथ ही यह ज्ञान कि हम अपने सत्य आत्मा में समस्त मानव जाति और ईश्वर के साथ एक हैं, यही वह आध्यात्मिक सत्य है जिसको आधार बनाकर पूर्ण मानव-जीवन और समाज का विकास किया जा सकता है और यही है श्रीअरविंद के योग का उद्देश्य। श्रीअरविंद कहते हैं, "जिसकी योग साधना हम करते हैं वह केवल हमारे लिये नहीं है, बल्कि वह मानव जाति के लिये है। इसका उद्देश्य *व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है*, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है, बल्कि इसका उद्देश्य है मनुष्य जाति की मुक्ति। हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनंद को प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह है कि भागवत आनंद,—ईसा का स्वर्गीय सम्राज्य या हमारा सत्ययुग—को पृथ्वी पर उतार लाया जाय।"

इस काम को पूरा करने का क्या उपाय है? हठयोग, राजयोग, तन्त्रयोग, त्रिमार्गयोग, (ज्ञान, कर्म, भक्ति), इन सभी ने अपनी रीति से मनुष्य जीवन की छिपी हुई संभावनाओं को दिखाया है, किंतु इसके लिये तीव्र, कठोर साधनाएं करनी होंगी जो संसारी मनुष्य के लिये नहीं बनी हैं; और इनके द्वारा यद्यपि मनुष्य की अमुक शक्ति-विशेष का विकास होता है, फिर भी ये उसको पूर्ण नहीं बनातीं। परंतु यह पूर्णता जो मनुष्य को देवता या अति-मानव बना दे—यही वह लक्ष्य है जिसकी ओर मानव जाति समस्त परिवर्तनों के अंदर से होती हुई अग्रसर हो रही है; और सभी योगपद्धतियां तथा धार्मिक और आध्यात्मिक साधनाएं एवं मनुष्य ने अपने दीर्घकालीन अस्तित्व में जिन समस्त अनुभवों को प्राप्त किया है वे अनुभव ये सभी मानव जाति को इसी सिद्धि के लिये तैयार करते हुए आ रहे हैं। श्रीअरविंद को उनकी आध्यात्मिक दिव्य दृष्टि-द्वारा यह दिखायी दिया है कि इस प्रयास की पूर्णाहुतिका समय अब आ गया है और उनके योग की समस्त प्रक्रियाएं इस चरमउपलब्धि का ही निर्देश करती हैं।

जैसा लक्ष्य वैसा मार्ग। मानव जीवन और समस्त मानव कर्मण्यताओं को पूर्णरूप से रूपांतरित करके दिव्य बना देने का जो यह लक्ष्य है यही श्रीअरविंद के योग की विशेषता है जो पहले के किसी योग में नहीं है; वास्तव में यदि देखा जाय तो यह योग उन सभी योगों को पूर्ण बनाता है। इस योग में साधक अपने ही प्रयास पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वह अपने-आपको पूर्णरूप से भगवती माता के हाथों में सौंप देता है। "दूसरे-दूसरे मार्ग हैं जो अधिक तात्कालिक फल बताते हैं अथवा कम-से-कम तुम्हें कुछ ऐसी निश्चित क्रिया, जिसे तुम स्वयं कर सको, बता देने के द्वारा तुम्हारे अहंकार को एक तरह का संतोष करा देते हैं कि तुम कुछ कर रहे हो, जैसे आज इतने अधिक प्राणायाम किये, आज इतनी अधिक देर तक आसन जमाया, आज इतने अधिक जप किये, इतनी साधना हो गयी, इतनी प्रगति साफ-साफ देखने में आयी। परंतु जब तुमने इस मार्ग को एकबार चुन लिया है तो तुम्हें इसको पकड़े रहना चाहिये। दूसरे मार्ग मानव-निर्मित पद्धतियों के हैं, इस मार्ग की तरह नहीं जिसको अनंत शक्ति कार्यान्वित करती है। इस मार्ग में शक्ति कभी चुप-चाप और कभी-कभी बिलकुल अज्ञात रूप से ही अपने लक्ष्य की ओर चलती है, कहीं यह आगे बढ़ती है तो कहीं रुकी हुई सी दिखायी देती है और फिर अपनी शक्तिशालिता और विजयशीलता का परिचय देती हुई उस विशाल कार्य को जिसको उसने इस बीच में पूरा कर लिया होता है हमारे सामने लाकर उपस्थित कर देती है।" इस मार्ग में गीता के सर्वश्रेष्ठ वाक्य,

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज।
अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥"

का व्यावहारिक उपयोग किया गया है। "समस्त धर्मों का (समस्त सिद्धांत, नियम और हर तरह के साधन तथा धर्म विधान चाहे वे अपने पूर्व के अभ्यास और विकास द्वारा निर्मित हुए हों या बाहर से लाये गये हों) परित्याग कर और एकमात्र मेरी ही शरण में आ, मैं तुझे समस्त पापों और दोषों से मुक्त कर दूँगा—शोक मत कर। "मैं मुक्त कर दूंगा"—तुम्हें परेशान होने या संघर्ष में पड़ने की आवश्यकता नहीं, मानो जिम्मेवारी तुम्हारे ही ऊपर हो या सफलता तुम्हारे ही प्रयत्न पर निर्भर करती हो, कारण तुमसे कोई अधिक शक्तिशाली सत्ता इस काम को अपने हाथ में लिये हुए है।"

मानवजाति की मुक्ति का यही सच्चा रास्ता है। मानवप्रकृति का वास्तविक रूपांतर केवल राजनीतिक सामाजिक अथवा आर्थिक पुनर्संस्थापन से नहीं होगा,

यह काम धार्मिक और नैतिक अनुशासन द्वारा भी नहीं होगा। यह तो आत्मसमर्पणयोग द्वारा ही हो सकेगा। और जब तक मानव प्रकृति बदल कर दिव्य न बन जाय तब तक मानवजीवन की समस्या का वास्तविक हल होगा ही नहीं। भारतवर्ष ही वह देश है जिसे यह काम करके संसार को दिखा देना है। "परंतु अब वह समय आ गया है जब कि ऊपर की तरफ गति करने के लिये पहला पग उठाया जाय, अर्थात् एक नवीन सामंजस्य और नवीन सिद्धि की प्राप्ति के लिये प्रथम प्रयास किया जाय। यही कारण है कि मनुष्य समाज ज्ञान, धर्म और सदाचार की पर्यालना के लिये आजकल इतने तरह के विचार फैला रहे हैं। परंतु सच्चे सामंजस्यका पता अभी तक अप्राप्त है। केवल भारतवर्ष ही इस सामंजस्य का आविष्कार कर सकता है, कारण यह सामंजस्य मनुष्य की वर्त्तमान प्रकृतिका रूपांतर करके ही—उसके पुनर्व्यवस्थापन द्वारा नहीं—विकसित किया जा सकता है और इस रूपांतर का होना योग के बिना संभव नहीं है। मनुष्य और वस्तुओं की प्रकृति इस समय बेमेल हो गयी है, इनका सामंजस्य बेसुरा हो गया है। इसको पुनः सामंजस्य पूर्ण, सुरीली बनाने के लिये मनुष्य के हृदय, कर्म और मन के समग्र रूप से परिवर्तित होने की आवश्यकता है। यह परिवर्तन आंतरिक होगा बाह्य नहीं, न तो यह राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं द्वारा होगा, न धर्मसंप्रदायों और दर्शन शास्त्रों द्वारा ही, बल्कि यह होगा हम में और इस जगत् में भगवान् की उपलब्धि करके और उस उपलब्धि द्वारा जीवन को एक नये ही सांचे में ढाल करके। यह बात केवल पूर्ण योग द्वारा ही हो सकती है, जो एक ऐसा योग है जिसकी साधना किसी विशेष प्रयोजन को लक्ष्य कर नहीं की जाती, चाहे वह प्रयोजन मुक्ति या आनंद ही क्यों न हो, बल्कि जिसका ध्येय है दिव्य मानवता को अपने में और दूसरों में सिद्ध करना।"

यही है श्रीअरविंदका आदर्श और उनके महान् आध्यात्मिक प्रयास का तात्पर्य। क्या भारत इस साधना को आज से ही प्रारंभ कर देगा और उपनिषद् के इन शब्दों में संसार से कहेगा:—

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः"!

पुस्तक छोटी होने हुए भी बहु मूल्य है और हम चाहते हैं कि प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी इसे पढ़ें।

—अनिलवरण राय।

(पृष्ठ ३ का शेष)

सुगमता तथा उत्तमता से नहीं वहन कर सकती? क्या एलोपैथी का Vaccination (टीका लगवाना) द्वारा किया जाने वाला चेचक के परित्राण का कार्य, होमियोपैथी के नियम के अनुसार नहीं होता? क्या एलोपैथी की Anti-Cholera, Anti-Plague, तथा Anti-Typhoid इत्यादि के Serum, "समों" (Similars) के नियम के अनुसार कार्य नहीं करते?

इस कथन से हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि एलोपैथी द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले परित्राण के ये साधन, क्योंकि समोपचार के नियम के अनुसार कार्य करते हैं अतः होमियोपैथी को भी ये उसी रूप में—(जिस में एलोपैथी प्रयोग करती है) सर्वथा मान्य हैं।

होमियोपैथी इन साधनों के आधार को ठीक मानती हुयी भी इनके स्वरूप इनकी मात्रा तथा इनकी प्रक्रिया से एक दम असहमत है। वह एलोपैथी द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली Vaccination की भी भीषण प्रक्रिया को न केवल अनावश्यक, अपितु अत्याचार-पूर्ण भी समझती है।

सुकुमार बालकों को, दयाहुत कर चेचक का टीका लगा देने के पश्चात्, बांह सूजना, दस्त आना, ज्वर-ग्रस्त होना, तथा कभी २ सारे शरीर पर चेचक के से दाने निकल आना-इत्यादि २ जिस असह्य तथा कठोर-कष्ट-परम्परा में से गुज़रना पड़ता है उसका स्मरण करके किस सन्तानवान् पुरुष के हृदय में ठेस नहीं पहुंचती? कौन सहृदय पुरुष दिल से न ह सकता है कि उसके जिगर के टुकड़ों को इस प्रकार की कड़ी वेदना अकारण ही पहुँचे तथा उसके पहुंचाने में वे ही स्वयं एकमात्र कारण हों? यदि जनता को यह पता हो कि टीका लगवाने के सिवाय किसी अन्य मृदु उपाय द्वारा उनके लाल, शीतला की भेंट चढ़ने से बचाये जा सकते हैं तो वह सरकारी नियम का निरादर करना तथा दण्ड भोगना तो पसन्द कर सकती है परन्तु यह कभी भी सहन नहीं कर सकती कि उसके प्यारे दुलारों की कोमल भुजाओं को खुरच २ कर वह विषैला पदार्थ मलने दिया जाय, जिस के कारण उनमें से कुछ एक का तो मरण तथा बहुतों का एक दारुण-रोग-परम्परा में से गुजरना आवश्यक हो जाता है।

ऐसी अबोध जनता को होमियोपैथी, भेरी-घोष के साथ बतला ना चाहती है कि उसकी मधुर २ गोलियों में वह शक्ति भी विद्यमान है जिसके द्वारा वह उन बच्चों का, चेचक इत्यादि भीषण संक्रामक रोगों के आक्रमणों से भी परित्राण कर सकती है! खिलाइये आप होमियोपैथी की Variolinum की मीठी २ गोलियों को, और देखिये उनका चमत्कार! जिन बच्चों को चेचक के दिनों में उक्त औषधि की गोलियां मिल जायगी—हो नहीं सकता कि "माता" उन्हें नज़र लगा सके। हो नहीं सकता कि शीतला देवी उनमें से एक का भी बाल बांका कर सके; फिर भेंट मांगना तो दूर किनार रहा?

होमियोपैथी के इस दावे को जनता को एक बार परीक्षा तो अवश्य ही करनी चाहिये। परीक्षा करने पर ही उसके कथन में विश्वास उत्पन्न हो सकता है तथा उस विश्वास से ही उनके बालकों का परम कल्याण हो सकता है।

"कवनउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा"

यदि जनता में एक बार परीक्षा करने का साहस न हो तो उसे कम से कम उन विवरणों को तो अवश्य पढ़ना चाहिये जिन में बारम्बार किये गये ऐसे परीक्षणों का परिणाम प्रदर्शित किया गया है। अमेरिका में, होमियोपैथिक औषधियों के प्रयोग द्वारा चेचक से

परित्राण पाने के परीक्षण पचास वर्षों से हो रहे हैं, जिस की रिपोर्ट बताती है कि अमेरिका के होमियोपैथस् ने ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि, चेचक का परित्राण, होमियोपैथिक औषधियों के खिलाने पर भी ठीक वैसा ही हो जाता है जैसा कि बांह पर टीका लगाने से। परन्तु प्रथम रीति में एक विशेष यह गुण है कि उसके प्रयोग से किसी प्रकार के भयावह लक्षण कभी भी नहीं उत्पन्न होते। इन परीक्षणों के कारण ही आज अमेरिका राज्य का कोई ऐसा नियम नहीं है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति को चेचक का टीका लगवाने के लिये बाधित होना पड़े।

परित्राण का यह कार्य समोपचार के नियम द्वारा किस प्रकार सुगमता से सिद्ध हो सकता है- यह निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगा।

Scarlatina नामक रोग की चिकित्सा, समोपचार की प्रणाली में पुटीकृत (Patentized) बलाडोना नामक औषधि द्वारा हो जाता है, इसलिये कि उक्त औषधि, स्वस्थ मनुष्यों में वैसे ही लक्षण उत्पन्न कर देती है जैसे कि Scarlatina के रोग में पाये जाते हैं। उक्त रोग के प्रकोप के दिनों में कुछ स्वस्थ बच्चों को बलाडोना की एक २ मात्रा प्रतिदिन तीन दिन तक खिलाने पर पाया गया है कि वे बच्चे उक्त रोग के आक्रमण से सर्वथा मुक्त रहे। इस परीक्षण से क्रियात्मकरूप में यह सिद्ध हो जाता है कि बलाडोना, स्कारलाटीना का न केवल संहार कर्त्ता ही है अपितु उससे परित्राण करने वाला भी है।

इसी बात को विज्ञानात्मक रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है। जब हम स्वस्थ बच्चों को बलाडोना नामक औषधि खिलाते हैं तो उस का यह अर्थ होता है कि हम उनके हाथ में स्कारलाटीना के समान लक्षणों वाली तथा लगभग समान शक्ति वाली, एक तलवार पहिले से दे देते हैं। जिस समय स्कारलाटीना की तलवार का उन पर प्रहार होता है तो दोनों तलवारें एक दूसरे से टकरा कर चकनाचूर हो जाती हैं तथा वे बच्चे स्कारलाटीना की तलवार से-उसके रोग-लक्षणों से-आक्रान्त तथा क्षत-विक्षत होने से बच जाते हैं। चूंकि समोपचार द्वारा दी गई तलवार के समान लक्षणों वाली तथा सम-बल-वाली होती है अतः टक्कर होने पर उन में से कोई भी शेष नहीं रह जाती; एवं बच्चे स्वस्थ बने रहते हैं। चूंकि होमियोपैथिक औषधियां उसी प्रकार के सूक्ष्म रूप में होती हैं जैसे कि रोगोत्पादक पदार्थ; अतः समोपचार के अनुसार परित्राण का कार्य भी पूर्णतया निष्पन्न हो जाता है और रोगी को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं पहुंच पाता। यदि औषधि की शक्ति, रोगशक्ति से बल में कम रह जाती है तो उसकी मात्रा की आवृत्ति द्वारा उसे उचित रीति से बलवत्तर बनाया जा सकता है

परन्तु एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में, Vaccination इत्यादि द्वारा किया गया परित्राण कार्य, यद्यपि समों के नियम के आधार पर प्रयुक्त होकर सफल हो ही जाता है तथापि मात्रा के आवश्यकता से बहुत अधिक होने के कारण कभी २ बड़ा भयावह सिद्ध होता है। इसी कारण, टीका लगने के पश्चात् बच्चों को नाना-विध कष्ट परम्परा में से गुजरना पड़ता है, तथा इसी कारण प्लेग का टीका लगाने के पश्चात् किसी २ पूर्ण स्वस्थ मनुष्य का सहसा स्वर्गवास भी हो जाता है।

क्या एक निर्बल योद्धा के हाथ में एक भारी तलवार देने पर वह परेशान होने से बच सकता है? क्या टीका इत्यादि कृत्रिम रोगोत्पादक शक्तियां नहीं होतीं? क्या इनकी एक सी मात्रा को भिन्न २ रोगानुशयिता रखने वाले भिन्न २ प्राणी समान रूप से बर्दाश्त कर सकते हैं? क्या विषमोपचार की चिकित्सा-प्रणाली में, परित्राण के कार्य में व्यवहृत औषधियों को रोगोत्पादक पदार्थों के समान सूक्ष्म रूप दिया जा सकता है? तब फिर प्राकृतिक रोगोत्पादक-पदार्थों से टकराकर चूर होने से बची हुयी कृत्रिम रोगोत्पादक शक्ति, (औषधि-Vaccines, Serum इत्यादि) आत्मशक्ति पर अधिकार किये बिना कैसे चूक सकती है? यदि उस शेष शक्ति के अत्यन्त बलवान तथा अधिक होने पर आत्मशक्ति का शासन सदा के लिये भी शान्त हो जाय तो इसमें आश्चर्य का क्या विषय है?

क्या टीका लगाने के बाद भी अनेक बच्चों को चेचक नहीं निकलती रहती? क्या चिकित्सकों ने इसके वास्तविक कारण का परिज्ञान प्राप्त करने का कभी कष्ट उठाया है?

यदि विषमोपचार के पक्षपाती चिकित्सकों ने इस विषय पर गम्भीर विचार किया होता तो न केवल परित्राण के नाम पर होने वाला अनर्थ ही कभी का बन्द हो गया होता, अपितु चिकित्सा के रूप में होने वाला अत्याचार भी कभी का कथावशेष हो गया होता। क्या इस अनाचार की जड़, विषमोपचार का जड़वाद ही नहीं है? क्या वही जल, जो सूखती खेती में नव जीवन का सञ्चार कर देता है ओलों के रूप में बरस कर हरीभरी खेती का भी सर्वनाश नहीं कर गुज़रता?

क्या परित्राण के कार्य में समोपचार के नियम के अनुसार कार्य करती हुई एलोपैथी, अपनी मूर्त्तरूप में प्रयोग की गयीं औषधियों द्वारा वही कार्य नहीं कर गुजरती जो ओलों के रूप में बरसता जल?

क्या इस प्रकार मूर्त्तरूप में औषधियों का व्यवहार करने वाली चिकित्सा प्रणाली, आयुर्वेद-स्वामी की शक्त तथा भक्त सेविका हो सकती है? क्या जो चिकित्सा प्रणाली, सूक्ष्म शक्तियों के रूप में विद्यमान अपनी मधुमय महौषधों के पय का पान कराकर आयुर्विज्ञान विषयक समस्त कार्य सफलतया सम्पादन कर सकती है, वही, केवल वही, आयुर्वेद की भक्त तथा शक्त सेविका कहलाने की अधिकारिणी नहीं है?

क्या विज्ञ चिकित्सकों को परित्राण के कार्य के लिये भी समोपचार की चिकित्सा-प्रणाली को छोड़ कर अन्य किसी चिकित्सा प्रणाली का आश्रय ग्रहण करना उचित है? क्या उनके ऐसे करने पर—

"ते जड़, काम-धेनु गृह त्यागी,
खोजत आक फिरहिं पय लागी"

वाली बात चरितार्थ न हो जायगी?

पैरिन वाडिया हाकी कप टूर्नामैण्ट बड़ौदा में गुरुकुल सूपा की द्वितीय शानदार विजय

[लेखक—एक खिलाड़ी]

आज २१-१२-४० का दिन है। आज मैदान में उतरने की हमारी बारी थी। हमारा मैच ३॥ बजे Free Looters के साथ होना था। प्रतिपक्षी का बल अज्ञात होने से हमारे मनों में शंका होनी स्वाभाविक थी। हम खेल की ड्रैस पहिन कर ३। बजे ग्राउण्ड में पहुंच गये। पिछली बार विजयी होने के कारण क्रीड़ा जगत् हमको अच्छी तरह जानता था। हमारी टीम का आने देखकर लोगों ने कानाफूसी शुरू करदी। विभिन्न भाव पैदा हुवे। प्रतिपक्षियों के मनों में शूल सा चुभा, प्रशंसकों में हर्षातिरेक हुवा और टूर्नामैण्ट सञ्चालकों में टूर्नामैण्ट के सफलता की भावना उदबुद्ध हुई। ठीक ३। बजे खेल शुरू हुई। Camp Free looters अच्छे डंडे बाज थे। इन में एक सरदार जी भी थे। फिर क्या था रहा सही कमी भी पूरी होगई। सरदार जी का नाम 'बख्तासिंह' था। इनका मूलमंत्र यही था कि "सिर जावे तो जावे साडी बाल न जाने पावे"। टीम को खराब खेल न खेलने के लिये चेतावनी भी दीगई परन्तु सरदार जी की टीम Warning proof थी, उस पर कुछ असर न हुवा। हमने Free Looters को ८—२ गोलों से हराया। दो गोल उतरने से हमारी जमी हुई धाक को काफी धक्का पहुंचा और हमने अगले मैचों में यह कमी दूर करने का निश्चय किया।

दूसरा मैच यंग-मराठा-क्लब Young Maratha Club तथा Baroda College में हुवा। सब को उम्मीद तो यही थी कि कालिज जीतेगा। परन्तु हुआ बिल्कुल उल्टा। क्लब के फारवर्ड बहुत सुन्दर थे। उन्होंने कालिज के पिछाड़े को परेशान कर दिया और उन पर दो गोल चढ़ाये।

आज २२-१२-४० का दिन था। आज भी हमारा खेल ३॥ बजे शुरु होना था। हमारी प्रतिस्पर्धी टीम बड़ोदा-सिटी जीमखाना था। जीमखाने की टीम अच्छी थी परन्तु हमने उसकी खेल देख रखी थी इसलिये बराबर व्यूह रचना कर ली। कल की भूल का प्रायश्चित्त भी करना था इसलिये हम खूब डट कर खेले। जमखाने को बड़ी बुरी तरह दबाया और खेल समाप्ति तक उस पर ७ गोल चढ़ाए।

आज का दूसरा मैच यंग मराठा क्लब तथा कैम्प यूनियन का था। दोनों टीमें बहुत सुन्दर खेलने वाली थी खेल में खूब उतार चढ़ाव आये। कैम्प की सब फारवर्ड लाइन मजबूत थी परन्तु मराठा क्लब का पिछाड़ा कमजोर था। कैम्प ने इस कमजोरी का फायदा उठाया और २ गोलों से जीतगई। (शेष अगले अंक में)

श्री डा० राधाकृष्ण जी की विदाई

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के सुयोग्य उपाध्याय श्री डा० राधाकृष्ण जी गत १ मार्च को गुरुकुल-सेवा से विराम पा गए। आपने गत १८ वर्षों में बड़े उत्साह व लगन से गुरुकुल की सेवा की। आप 'दयानन्द-सेवा-सदन' के भी आजीवन सदस्य रहे। शल्य-क्रिया एवं चिकित्सा में आप बड़े ही सिद्धहस्त माने गए। आपने अपना सेवा काल निर्विघ्न समाप्त किया इसके लिये आपको बधाई है। समस्त कुल वासियों की सभा में आपकी विदाई पर दुःख प्रकट किया गया। वक्ताओं ने आपकी योग्यता, मिलनसारता, सद्-व्यवहार और जिन्दादिली का गुणगान किया। आपको ब्रह्मचारियों, उपाध्यायों तथा मित्र-मण्डलियों द्वारा पार्टियां दी गईं जिन्हें आपने प्रेम पूर्वक स्वीकार किया। आशा है यहां से विदा होकर श्री डाक्टर जी जहां कहीं भी जायंगे, गुरुकुल से स्नेह बनाए रखेंगे।

विदाई समारोह के पश्चात् डाक्टर जी प्रतिष्ठा पूर्वक गुरुकुल से विदा हो गए।

पुस्तकसमालोचना

खिलौना—लेखक डा० इन्द्रसेन जी मूल्य =) पृष्ठ सं० १६

यह छोटा सा ट्रैक्ट श्री डा० इन्द्रसेन जी के एक भाषण का परिवर्धित रूप है जो कुछ समय पहले उन्होंने आल-इण्डिया रेडियोस्टेशन देहली से ब्राडकास्ट किया था। उस समय भी श्रोताओं ने इस भाषण को बहुत पसन्द किया था। अब यह पुस्तिका के रूप में हमारे सामने आया है। श्री डाक्टर साहेब मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं और दर्शन विषय के अध्यापक भी हैं। जिस उत्तमता से खिलौना जैसी चीज़ को उन्होंने मनोवैज्ञानिक रूप देकर इन से बच्चों की शिक्षा तथा मानसिक उन्नति की ओर माता पिताओं का ध्यान आकृष्ट किया है उस के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने ठीक ही लिखा है कि भारतवर्ष में अभी तक हम बच्चों की ओर उतना ध्यान और उन्हें उतना महत्व नहीं देते। हमें आशा है कि डाक्टर साहेब अपनी ऐसी ही कृतियों द्वारा भविष्य में भी समाज के इस आवश्यक, महत्व पूर्ण तथा वर्तमान में उपेक्षित अंग की ओर ध्यान दिलाकर माता पिताओं की आंखें खोलकर भावी समाज के निर्माता बच्चों की सेवा करने में सहायक होंगे। यह निबंध रोचक है तथा पठन और मनन करने योग्य है।

—पं० रामरक्खा जी, गुरुकुल कांगड़ी

स्वास्थ्य समाचार

राजेन्द्र श्रेणी ३ श्लेष्म ज्वर, धमनेश कुमार श्रेणी २ श्लेष्म ज्वर, रामकुमार श्रेणी ३ श्लेष्म ज्वर, इन्द्रसेन श्रेणी ३ श्लेष्म ज्वर, कृष्णचन्द्र श्रेणी ५ चोट, सोमदत्त श्रेणी २ श्लेष्म ज्वर, रामकृष्ण श्रेणी ३ फोड़ा, रामप्रकाश श्रेणी ३ फोड़ा।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ७ चैत्र १९९७; १४ मार्च १९४१ [संख्या ४७

विराट्-पुरुष

(स्वा० श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश से)

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयोनज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

मुक्ति का स्वरूप समझ में आ चुका। उस वास्तविक सरोवर को प्राप्त करके जीवात्मा जो कुछ अनुभव करता है उस का भी ज्ञान हो चुका है। ऋषियों की साक्षी मिल गई। पूर्ण निश्चय हो गया कि ब्रह्मधाम में पहुंचना मनुष्य के लिये संभव है। परन्तु फिर व्याकुल जीवात्मा के अन्दर वही प्रश्न उठता है? ब्रह्म कहां है? उसे किस जगह ढूंढे? उसकी उच्चता को सुनकर भोला पुरुष समझ लेता है कि वह बहुत दूर है इसलिये चकित रह जाता है। समझ में नहीं आता कि हिमालय की ऊंची चोटियों तक कई मनुष्यों की पहुंच नहीं हो सकती। तो फिर उस ब्रह्म तक, जो दूर से दूर बतलाया जाता है किस प्रकार पहुंचे? और ऐसी अवस्था मे निर्बल जीवात्मा हाथ पैर ढीला छोड़ देता है! पुरुषार्थ को बिलकुल जवाब दे बैठता है। तब हृदय के अन्दर बड़ी तीव्र गति पैदा होती है। निराश जीवात्मा भी कुछ समय के लिये विषयों से उपराम सा हो जाता है। निराशता, अनुभव करने के उसे अयोग्य बना देती है। तब अन्तर्मुख होकर उसे एक प्रकाश दृष्टि गोचर होता है। उसको देखकर चकित होजाता है तब ऋषि हाथ पकड़ कर सावधान करते हैं। कहते हैं "क्या तुझे न कहा था कि मत घबरा। परमात्मा जहां उच्चता के कारण दूर से दूर है वहां अपनी व्यापकता के कारण समीप से समीप भी है।" प्रभु रोम रोम में रम रहे हैं। जीवात्मा के अन्दर निवास करते हैं। गंगा और काशी मे उसे ढूंढने की आवश्यकता नहीं। मक्का और मस्जिद की उससे मिलने के लिये आवश्यकता नहीं। गिरजा और मन्दिर उसकी खोज में जाने की आवश्यकता नहीं। वह समीप से समीप है। उससे अधिक समीप हमारा सम्बन्धी कोई भी नहीं। परन्तु केवल समीप होने ही से तो कठिनता दूर नहीं होती। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। उसकी महत्ता को समझना मनुष्य के लिये कब सम्भव है? फिर समीपता से भी क्या लाभ हुवा? जब हम उसे देख नहीं सकते, जब हम उसे दूसरी इन्द्रियों से अनुभव नहीं कर सकते, तो उसकी समीपता से हमें क्या लाभ पहुंचा? इस प्रकार की शंकायें जब मन को घेर लेती हैं तब ऋषि फिर जिज्ञासु का हाथ पकड कर उसे परमात्मा की महानता को दर्शाते हैं तब मालूम होता है कि वह जहां सूक्ष्म से सूक्ष्म है वहां बड़े से भी बड़ा वही है। उसकी उच्चता की कोई सीमा नहीं। चान्द और सूरज, तारागण और नक्षत्र, वायुमण्डल और अग्नि, पर्वत और जंगल, एक एक उसी परमात्मा की महानता और उच्चता की साक्षी दे रहे हैं। परन्तु इस प्रकार विस्तृत होने पर भी वह परमेश्वर ब्रह्माण्ड में व्यापक, दृढ़ वृक्ष की तरह निश्चल है। वह सारे जगत् को चला रहा है। परन्तु उसे कोई भी चलायमान नहीं कर सकता। वही प्रभु चारों ओर भरपूर होरहा है। वह एक ही है कोई उसका हिस्सेदार नहीं। सहायक नहीं। सारा ब्रह्माण्ड उसकी सत्ता से पूरित हो रहा है। इसलिये

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥

"उस अनुभव करने के योग्य प्रभु को जो परे से परे है वह और जो अदृश्य है, इन्द्रियों से जानने के अयोग्य और दुःख रहित है जो जानते हैं वे अमर होजाते हैं और जो उसे नहीं जानते निश्चय दुःखों को प्राप्त होते हैं।" परमेश्वर की समीपता प्राप्त करना इस लिये हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि मुक्ति को प्राप्त करे। दुःखों से मुक्त हो। बस कोई भी मनुष्य यह कह कर पीछा नहीं छुड़ा सकता कि उसे मुक्ति की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार सभ्य देशों में इसलिये शिक्षा को बाधित कर दिया गया है कि प्रत्येक मनुष्य देश के नियमों से परिचय प्राप्त करके और आपस में सामाजिक व्यवहार की उत्तमता को जानकर मनुष्य समाज के लिये योग्य बन जावे; इसी तरह हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अवश्य परमेश्वर प्राप्ति के साधनों को प्रयोग में लावे। क्योंकि जब मनुष्य समाज के अन्दर वास करता है तो जब तक एक एक मनुष्य मुक्ति के साधनों में तत्पर न हो जावे तब तक संसार के अन्दर सुख और शान्ति का राज्य आ नहीं सकता।

होमियोपैथी 'पूर्ण-विज्ञान' है

(ले०–डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार, बिजनौर)

होमियोपैथी को चिकित्सा तथा परित्राण के कार्य में प्राप्त होती अद्वितीय सफलता को देखकर बहुत से सज्जन यह कहते सुने जाते हैं कि "होमियोपैथी की दवा लग गयी तो तीर है नहीं तो तुक्का"। उनके कथन का अर्थ स्पष्टतया यही प्रतीत है कि होमियोपैथी-औषधियां भी "बाबा जी की राख की चुटकी" के समान होती हैं जो "अंधे की लाठी" अथवा "घुणाक्षर न्याय" से कभी २ अचानक स्वयं ऐसी ठीक बैठ जाती हैं कि भाग्य से निकली लाटरी के समान रोगी का एक दम बेड़ा ही पार कर देती हैं।

उनके इस कथन में एक यह गूढ़ाशय भी स्पष्ट झलक रहा है कि होमियोपैथी कोई विज्ञान थोड़े है जिसका नियमपूर्वक अध्ययन वा अभ्यास करने के पश्चात् चिकित्सा के कार्य में उससे सदा एकरस सफलता प्राप्त की जा सके!

होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ ऐसे सज्जनों के इस भ्रम का समूलोन्मूलन करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि होमियोपैथी का "विज्ञान" होना, युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा भी सिद्ध कर दिया जाय।

गणित को संसार के सब विज्ञान-वेत्ता पुरुष "विज्ञान" मानते हैं। क्यों? इसलिये कि वह "विज्ञान" की कसौटी पर पूरा उतरता है। प्रश्न होता है कि "विज्ञान" की कसौटी क्या है?" विज्ञान की कसौटी, विज्ञान की परिभाषा के अतिरिक्त क्या हो सकती है। शब्द-कोश में विज्ञान की निम्न परिभाषा पायी जाती है:—

"Science is a systemetised knowledge gained by making experiments & observations." अर्थात्—"विज्ञान उस क्रम-बद्ध विशेष ज्ञान का नाम है, जो परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर प्राप्त किया जाता है"। चूँकि गणित का जो ज्ञान परीक्षणों द्वारा प्राप्त होता है उसमें एक क्रम या नियम का निरीक्षण किया जाता है अतः गणित "विज्ञान" कहाता है। ये परीक्षण, चाहे हम पैसों से करें अथवा रुपयों से, हर हालत में दस में से पांच निकालने पर पांच ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार के अनेक परीक्षणों में, चूँकि हम एक क्रम या नियम का निरीक्षण करते हैं अतः गणित को हम "विज्ञान" मानते हैं। इसी प्रकार, रसायन (Chemistry) शास्त्र को भी विज्ञान माना जाता है, इसलिये कि उसके कार्यों में भी—रासायनिक समासों के बनने तथा टूटने इत्यादि में भी एक क्रम या नियम का निरीक्षण किया जाता है।

अब प्रश्न होता है कि होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में भी परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर क्या कोई ऐसा क्रम या नियम पाया जाता है जिसके कारण उसे भी 'विज्ञान' मान लिया जाय? इस प्रश्न के उत्तर में होमियोपैथी अपने 'समः समं प्रशमयति' के नियम को साभिमान संसार के सम्मुख प्रस्तुत करती है, जो केवल परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर ही स्थिर किया गया है।

होमियोपैथी के इस चिकित्सा-नियम की विद्यमानता में होमियोपैथी को विज्ञान न मानने का दुस्साहस वही अज्ञ पुरुष कर सकता है जिसे होमियोपैथी के उन परीक्षणों तथा निरीक्षणों का परिज्ञान न हो, जिनके आधार पर ही महात्मा हनीमैन ने होमियोपैथी के इस सत्य चिकित्सा-नियम का आविष्कार किया है।

हनीमैन को अपने ऊपर किये गये Cinchona के प्रसिद्ध परीक्षण द्वारा यह ज्ञात हुआ कि यह औषधि रोगियों में जिन लक्षणों का प्रशमन कर देती है उन्हीं लक्षणों को वह स्वस्थ मनुष्यों में उत्पन्न भी कर देती है। हनीमैन ने इस ज्ञान को विज्ञान का रूप देने के लिये अन्य बहुत सी औषधियों द्वारा परीक्षण प्रारम्भ कर दिये। उसने प्रत्येक औषधि द्वारा किये गये परीक्षण में यही निरीक्षण किया कि प्रत्येक औषधि उन्हीं रोग-लक्षणों का प्रशमन करने में समर्थ होती है, जिन्हें यह स्वस्थ मनुष्यों में उत्पन्न भी कर सकती है। उसने अपने इन सब परीक्षणों में एक क्रम या नियम का निरीक्षण किया जिसे उसने:—

"समः समं प्रशमयति"

के सूत्र-रूप में बद्ध कर दिया।

इस प्रकार होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली का यह नियम जब केवल परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर ही निश्चित किया गया है, तो होमियोपैथी को 'विज्ञान' मानने से कौन विज्ञान वेत्ता पुरुष विमुख हो सकता है!

चूँकि होमियोपैथी, केवल अपने इस नियम के आधार पर ही आयु विज्ञान विषयक चिकित्सा तथा परित्राण का समस्त कार्य पूर्णतया निभा सकने में समर्थ है अतः उसका "पूर्ण-विज्ञान" होना भी स्वयं सिद्ध हो जाता है।

युक्ति तथा प्रमाणों के बल पर, इस प्रकार होमियोपैथी का "पूर्ण-विज्ञान" होना सिद्ध हो जाने पर भी बहुत से एलोपैथिक चिकित्सक इसे एक साधारण विज्ञान मानने का सम्मान प्रदर्शित करना भी नहीं चाहते! उनका कहना है, कि चूँकि होमियोपैथी का चिकित्सा का सिद्धान्त प्रकृति के आचरण के सर्वथा प्रतिकूल है अतः उसके विज्ञान होने या न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने कथन की पुष्टि में वे यह युक्ति पेश करते हैं कि चूँकि प्रकृति में अंधकार का नाश प्रकाश से तथा प्रकाश का नाश अंधकार से होता है, अतः चिकित्सा का कार्य भी जिसमें रोगों के विनाश का कार्य होता है, प्रकृति के आचरण के अनुकूल "विषमों" के सिद्धान्त के अनुसार ही हो सकता है न कि "समों" के नियम के अनुसार। उनका यह कहना है कि "यदि चिकित्सा का कार्य "समों" के नियम के अनुसार सम्पन्न हो सकता है तो प्रकृति में भी अन्धकार का प्रशमन अन्धकार से तथा प्रकाश का प्रकाश से होना चाहिये था" बहुत कुछ युक्ति-युक्त ही प्रतीत होता है।

एलोपैथी की इन शङ्काओं के उत्तर में होमियोपैथी का कहना है कि प्रकृति में भी वास्तव में अन्धकार का प्रशमन उससे बलवत्तर अन्धकार से तथा प्रकाश का उससे बलवत्तर प्रकाश से ही होता है। प्रकाश का अन्धकार से तथा अन्धकार का प्रकाश से तो केवल संदमापन या सम्मोहन मात्र (Suppression) ही हो पाता है, परन्तु प्रशमन नहीं होता। समय आता है जब कि प्रकाश से दबाया गया अन्धकार प्रकाश के हीन-बल होते ही पुनः आ घिरता है। परन्तु सान्द्र अन्धकार से प्रशमित विरल अन्धकार, फिर कभी मुख तक नहीं उठा पाता। यह बात प्रकाश के उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जायगी।

देखिये:—ब्राह्म मुहूर्त में जलती हुई बिजलियों की बत्तियों का प्रकाश शनैः २ मन्द पड़कर अदृश्य हो जाता है। क्यों? इसलिये कि उससे बलवत्तर प्रकाश का (सूर्य का) उदय हो चुका होता है। क्या आकाश-मण्डल में खिन्न चन्द्रमा मध्याह्न में दिखाई देता है?

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रकृति में भी प्रशमन का कार्य समोपचार द्वारा ही सम्पन्न होता है, जिसके समर्थक अनेक उदाहरण न केवल प्रकृति में अपितु विद्वान् पुरुषों के वचनों में भी प्राप्त होते हैं।

सुनिये:—नक्कारखाने में तूती की आवाज़ क्यों नहीं सुनायी देती? क्या ढोल की ढमाढम में आप वीणा की सुमधुर झङ्कार सुन सकते हैं? सूँघिये:—क्या हिना का इत्र सूँघने पर गुलाब के फूल को आप सूँघकर पहिचान सकते हैं? चखिये;—खाण्ड के गिंदोड़े खाकर खाये गये अङ्गूर क्यों फीके लगते हैं? स्पर्श कीजिये:—सूजन के कारण दुखते हुवे शरीर के भाग पर गरम गरम पुल्टिस बांधिये, क्यों सुहाती है? इस प्रकार आपने देख लिया कि हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियां समोपचार के प्राकृतिक नियम की ही परिपुष्टि कर रही हैं।

मानसिक क्षेत्र में भी प्रशमन का यह कार्य इसी समोपचार द्वारा ही सम्यक्तया सम्पन्न होता है, इसका प्रदर्शन करने के लिये दो एक उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। क्या नयी हुयी २ विधवा के दिल की जलन, दूसरी दिल-जली विधवाओं के मिलन के बिना जा सकती है? क्या ऐसी महिलाओं का सिनेमा थियेटर इत्यादि से कुछ भी मनोरञ्जन हो सकता है? क्या अपने प्रेम-विह्वल परित्यक्त बन्धुओं के करुण-क्रन्दन से विदीर्ण होते नव-सैनिकों के दिल की संभाल, सिवाय मारू बाजे की गड़ गड़ाहट के अन्य किसी प्रकार से हो सकती है?

प्रकृति में प्रतिदिन यह सब कुछ होता देखकर भी क्या कोई विवेक-शील पुरुष यह कहने का साहस कर सकता है कि प्रशमन का प्राकृतिक नियम सिवाय समोपचार के कुछ और हो सकता है?

इसके अतिरिक्त पढ़िये—नीति शास्त्रकार क्या कहते हैं। यदि उनकी युक्तियां में कहीं "कण्टकेनैव कण्टकम्" लिखा मिलता है तो कहीं "शठे शाठ्यं समाचरेत्" का पाठ पढ़ाया जाता है। काव्यकार कहते हैं "अनुहुंकुरुते घन-ध्वनिं नतु गोमायुरुतानि केसरी" बादलों की गरज को सुनकर शेर दहाड़ने लगते हैं, क्यों? इसलिये कि वे अपनी आवाज़ के समान आवाज़ को सहन नहीं कर सकते। क्या शेर गीदड़ों की बोली पर भी कभी बोलते हैं? पञ्चतन्त्रकार कहते हैं "दग्धानां किल वह्निना हितकरः सेकोऽपि तस्योद्भवः" क्या अनुभवी पाचक लोग, अचानक हाथ जल जाने पर उस पर भीगी पट्टी बांधने के अभ्यस्त होते हैं? क्या जले हाथ को आग के सामने कर देने पर उसकी जलन तुरन्त ही शान्त नहीं हो जाती?

इसी प्रकार, क्या कामाग्नि को कोई भी मनुष्य ज्ञानाग्नि के बिना शान्त कर सकता है? क्या महादेव जी ने अपने तृतीय नेत्र द्वारा कामदेव को भस्म नहीं कर दिया था?

"तब शिव तीसर नयन उघारा,
चितवत काम भयउ जरि छारा"।

क्या किसी भी देव या महादेव के सृष्टि-नियम के प्रतिकूल, सिवाय ज्ञान-चक्षु के अन्य कोई तीसरा नेत्र हो सकता है? क्या मन में उत्पन्न होने वाली कामाग्नि, मन में उत्पन्न होने वाली ज्ञानाग्नि के बिना भस्म हो सकती है? क्या इस विषय की पुष्टि गीता के निम्न श्लोकों से नहीं हो जाती?

"आवृतं ज्ञानमेतेन, ज्ञानिनो नित्य वैरिणा।
काम रूपेण कौन्तेय, दुष्पूरेणानलेन च ॥"

अपिच "ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेर्जुन।

गौतम बुद्ध महाराज ने भी एक दुःखी आत्मा की जलन—अपने उपदेशामृत से शमन करने में असमर्थ होकर फिर सरसों बांटने भेजने के मिष से उसे अनेक दुःखितों की दर्दनाक कथायें सुनवाकर ही शान्त की थी।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी जब ज्ञान (पुरुष) द्वारा नारी के मोह को जीतने में असमर्थ रह गये, तो उन्होंने भक्ति-रूपा नारी का हृदय में प्रवेश कराकर ही नारी का मोह शान्त किया था। वे स्वयं लिखते हैं:—

"मोहे न नारि, नारि के रूपा,
पन्नगारि! यह रीति अनूपा"।

तुलसीदास जी इस रीति पर—समोपचार के इस नियम पर—आश्चर्य प्रगट करते हैं कि नारी, नारी के रूप पर कभी मोहित नहीं होती! अर्थात् भक्ति रूपा बलवती नारी, सुन्दरी के रूप पर कभी मोहित नहीं होती—उस के साथ कभी गुट-बन्दी नहीं करती—अपितु उसे सदा हरा देती है, उसके मोह का पूर्ण प्रशमन कर देती है। इस चौपाई का तात्पर्य यही है कि ज्ञान की तो—विषम होने के कारण (पुरुष होने के कारण) सुन्दरी से गुटबन्दी हो सकती है परन्तु भक्ति-रूपा नारी की उससे कभी भी नहीं पट सकती। ये दोनों एक सी तलवारें एक म्यान में कभी भी नहीं समा सकतीं!

तुलसीदास जी के इस कथन का मनन करने के पश्चात् भी, क्या कोई विद्वान् पुरुष यह कहने का साहस कर सकता है कि मानसिक क्षेत्र में भी प्रशमन का सर्वोत्कृष्ट साधन सिवाय समोपचार के कुछ और हो सकता है?

[शेष पृ० ५ पर]

गुरुकुल

२ चैत्र शुक्रवार १९९७

व्यक्ति समाज की सम्पत्ति है ?

(ले० श्री प्र० वेदराज जी उपस्नातक)

जीवन एक संग्राम है। जो आदमी सीना तान कर आफ़तों का मुकाबिला कर सकता है, आपत्तियों की घनघोर घटा में बिजली की तरह मुस्करा सकता है, शारीरिक मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक प्रत्येक दृष्टि बिन्दु से अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है; जो टूट जाना पसन्द करता है परन्तु मुड़ना नहीं, इस जीवन संग्राम में उसी वीर के माथे विजय का सेहरा बंधता है। व्यक्तिवाद राष्ट्र में इसी प्रकार की स्वावलम्बी व्यक्तियां उत्पन्न करता है जो अपने पैरों पर खड़ी हो सकें, अपने व्यक्तित्व का समुचित दिशा में विकास कर सकें। इसके विरुद्ध समाजवाद व्यक्तियों को साधन समझ कर उनके व्यक्तित्व को कुचल देता है मेरी समझ में नहीं आता कि यदि व्यक्ति विकसित न हो तो सारा समाज कैसे विकसित हो सकता है।

जीवन संग्राम में निरन्तर प्राकृतिक चुनाव हो रहा है जो संग्राम में नहीं टिक सकता उसका दुनिया से नामोनिशां मिट जाता है। परन्तु स्टेट के हस्तक्षेप से बहुत से अयोग्य व्यक्ति भी जो समाज के लिए अभिशाप हैं, अपनी जीवन रूपी मालगाड़ी को धीमे २ खींचते चले जाते हैं। कई बार मृत्यु संख्या को कम करने के लिए स्टेट की तरफ से कानून बनाए जाते हैं, हास्पिटल और पुअरहौसिज स्थापित किए जाते हैं; परिणामतः अवस्थाओं को अच्छा कर देने पर कमजोर लोग भी जीते रहते हैं। कमजोर और बलवान में विवाह से जाति की रचना खोखली हो जाती है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक प्रत्येक दृष्टि बिन्दु से समाज का स्टैंडर्ड गिर जाता है। ऐसे कानून जो व्यक्ति को इस योग्य नहीं बनाते कि वह अपने पैरों पर आप खड़ा हो सके, कहां तक उपयोगी है।

जीवन संग्राम की समस्याओं का हम लोग शक्ति द्वारा करते हैं। यदि कानून बना कर उनकी सब समस्याएँ हल कर दी जांय तो व्यक्ति की शक्ति का विकास असम्भव है। जब समाज का दृष्टि बिन्दु यह हो जाय कि व्यक्ति समाज की संपत्ति है और समाज हर बात में उसके जीवन को नियन्त्रित करना चाहता है तब व्यक्ति उन्नत होने के स्थान पर अवनत होता चला जाता है।

हमें इस विचार को भी अपनी आंखों से ओझल नहीं करना चाहिए कि राजनीतिक पक्षपात और सरकारी पक्षपात से प्रेरित होकर स्टेट, जनता की सुख समृद्धि के लिए नित नए २ कानूनों का बनाना आवश्यक समझता है। भट्टियों से उठने वाली चिनगारियों के समान सभी देशों की पार्लियामेण्ट नए २ कानून बनाती चली आ रही हैं। परन्तु वस्तु स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि बहुत बार कानूनों से अभीष्ट लाभ तो होते नहीं बल्कि जिन हानियों की ओर हम रो नज़र नहीं आती वे हो जाती हैं। इतिहास इस बात का जीता जागता सबूत है कि कानूनों के अत्यधिक निर्माण में चाहे उनका प्रेरक भाव कितना ही उत्तम क्यों न हो; लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका में शराबबन्दी का कानून पास हुआ परन्तु वह क्रिया रूप में परिणत नहीं किया जा सका। किराए की बग्घी वाले छिपा २ कर लोगों को शराब पिलाने लगे। केवल शराब पीने की खातिर ही बहुतों ने अमेरिका छोड़ दिया। इतिहास में इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है। रानी एलिजाबेथ के जमाने में इङ्गलैंड में गरीबों के पालन-पोषण के लिए जनता पर Poor Taxes लगाए गए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कानून बनाने वालों की दृष्टि बड़ी अच्छी थी परन्तु बाद में इसके बड़े बुरे परिणाम निकले। इसमें आलसियों को बहुत प्रोत्साहन मिला। जनता को गाढ़ी मेहनत की कमाई पर मुफ़्तख़ोरी का व्यवसाय करने वाले पलने लगे। समाज विज्ञान के गहरे अध्ययन तथा मानव प्रकृति के मनो वैज्ञानिक विश्लेषण से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जब तक व्यक्तियों का आचार उन्नत नहीं तब तक कानून का कोई फायदा नहीं। केवल कानून बना कर हम मानव प्रकृति को नहीं बदल सकते। व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सीमित न करके उसे नदी के प्रवाह की तरह बहने देना ही उसके व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से उत्तम है।

मनुष्य को एक निर्जीव मशीन नहीं माना जा सकता, उसे किसी मूर्ति की तरह नहीं घड़ा जा सकता, उससे ज़बर्दस्ती पूर्व निर्धारित कार्य नहीं कराया जा सकता। उसे परमात्मा ने स्वतन्त्र इच्छा शक्ति दी है और उसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। मनुष्य एक ढांचा नहीं अपितु एक वृक्ष है जो अपनी आन्तरीय शक्ति के अनुसार चारों तरफ बढ़ता और विकसित होता है। व्यक्तियों को अपनी स्वतन्त्र सम्पत्ति बनाने और उस पर आचरण करने का पूरा २ अधिकार होना चाहिए। व्यक्ति के लिए स्टेट का ग्रामोफोन होना आवश्यक नहीं, जिस पर स्टेट का रिकार्ड चढ़ा दिया जाय और वह ठीक उसी तरह सोचने, बोलने और क्रिया करने के लिए बाधित किया जाय जिस प्रकार स्टेट करती है।

सोवियट रूस में लोगों को बाधित किया जाता है कि वे वहां के तानाशाह स्टालिन के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से न निकालें। बहुत से नोजवानों को जो अगर जीवित रहते-न जाने अपने देश के लिए कितने उपयोगी सिद्ध होते, केवल इस लिए फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया कि उनके ख्यालात स्टालिन से नहीं मिलते थे। ट्राटस्की जो किसी जमाने में लेनिन का दाहिना हाथ समझा जाता था, जिसकी विद्वत्ता का सिक्का आज सारी दुनिया मानती

है, केवल इसलिए दर २ भटकता फिरा कि उसके तथा स्टालिन के सिद्धान्तों में विरोध था। आज सारा जर्मनी हिटलर के इशारे पर नाचता है। उसके विरुद्ध कोई अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट नहीं कर सकता। हिटलर के विरुद्ध बोलने पर Concentration Camps की हवाएं खानी पड़ती हैं। जर्मनी के जासूसी विभाग गेस्टापो का भूत हमेशा सिर पर सवार रहता है। होटल, पार्क उद्यान आदि सार्वजनिक स्थानों पर राजनीति चर्चा करते हुए दिल में एक डर सा बना रहता है। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि इटली में मुसोलिनी के विरुद्ध बोलने वाला व्यक्ति जिन्दा रह सकेगा? इन देशों में स्टेट रूपी मशीनरी जिस तरह व्यक्तियों को चलाती है उसी तरफ उन्हें चलना पड़ता है। इनकी दृष्टि में व्यक्ति स्टेट का साधन है साध्य नहीं। यह व्यक्तियों की स्वतन्त्रता पर बड़ा भारी कुठाराघात है। स्टेट के अत्यधिक हस्तक्षेप से व्यक्ति का पूर्ण विकास असम्भव है।

प्रतिभाशाली व्यक्ति स्वतन्त्रता के वायु-मण्डल में ही रह कर किसी मौलिक विचार धारा, साहित्य अथवा दर्शन का सृजन कर सकते हैं। कला का विकास सदा व्यक्ति में होता है। यदि हम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता लगेगा कि जब २ व्यक्ति को स्टेट का साधन समझा जाता रहा, उस पर अनुचित दबाव डाला जाता रहा, तब २ बड़े जोरों की प्रतिक्रिया हुई! मध्यकाल में यूरोप में जब पोप का बोलबाला था और उसके पास अनगिनत अधिकार थे जिनके द्वारा वह किसी भी व्यक्ति को यदि उसकी सम्मति कैथोलिक धर्म के खिलाफ हो मृत्युदंड दे सकता था। उस जमाने में स्वतन्त्र विचारधारा मौलिक दर्शन, विज्ञान तथा साहित्य को बिलकुल प्रोत्साहन नहीं दिया गया, परिणामतः सभ्यता का परम उत्कर्ष नहीं हो सका। जिन वैज्ञानिकों के सिद्धान्त कैथोलिक धर्म के विरुद्ध सिद्ध होते थे उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता था। प्रसिद्ध ज्योतिषि ब्रूनो को केवल इसलिए जिन्दा जला दिया गया क्योंकि उसका ज्योतिष-सम्बन्धी सिद्धान्त कैथोलिक धर्म से मेल नहीं खाता था। गैलीलियो पर अमानुषिक अत्याचार किए गए। जब क्रान्ति के लिए पर्याप्त मसाला इकट्ठा हो गया, एक महान् आत्मा प्रादुर्भूत हुई, उसने इस असत्य के विशाल पहाड़ में सत्य की एक छोटी सी चिनगारी लगादी। इतिहास में वह आत्मा ल्यूथर के नाम से अमर है। यदि समाज की सामूहिक शक्ति द्वारा ल्यूथर की आवाज को दबा दिया जाता तो क्या समाज का कल्याण सम्भव था। व्यक्ति के सच्चे विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित है उसके दमन में नहीं।

हमारा प्रतिदिन का अनुभव इस बात का साक्षी है कि प्रतियोगिता द्वारा मनुष्य की शक्तियों का विकास होता है। मुकाबिले में आकर आदमी पर एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की धुन सवार रहती है और उसकी वे शक्तियां जो पहले सुप्त थीं जागृत हो जाती हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन देता तथा परिपुष्ट करता है। इसके विपरीत जब समाज प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेता है और व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने का बीड़ा उठा लेता है तब व्यक्ति की शक्तियों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार वह विद्यार्थी जिसके सब सवाल अध्यापक ही स्वयं हल कर देता हो कभी योग्य नहीं हो सकता, इसी प्रकार जब व्यक्ति प्रत्येक चीज में स्टेट पर आश्रित रहता है तो उसकी शक्तियां कुण्ठित हो जाती हैं। व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करने के लिए व्यक्तिवाद पर बल देना आवश्यक है।

इस तथ्य से कोई भी इन्कार न करेगा कि स्टेट के नीचे जो पद या महकमे होते हैं वे आर्थिक दृष्टि से बड़े खर्चीले तथा प्रबन्ध की दृष्टि से बड़े रद्दी होते हैं। उनमें बराए-नाम दैनिकचर्या आदि को ही अधिक महत्व दिया जाता है। रिश्वत का बाजार सदा गर्म रहता है और बहुधा अयोग्य व्यक्ति ऊंचे २ पदों पर आसीन होते हैं। इसके विपरीत वैयक्तिक प्रबन्ध (Private Enterprise) आर्थिक दृष्टि से कम खर्चीले तथा व्यवस्था की दृष्टि से उत्तम होते हैं। क्योंकि वैयक्तिक प्रबन्ध में व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना जागृत होती है, उसमें उसे अपनापन दिखाई देता है और वह अपने को उस में खपा देता है।

ज्यों २ सरकार व्यक्ति में अधिक हस्तक्षेप करती है वह व्यक्ति की स्वावलम्बन की भावना को घटाती है। एक बार एक प्रसिद्ध अंग्रेज ने बड़े अभिमान से कहा था कि हमारा औपनिवेशिक राज्य व्यक्तियों की अदम्य शक्ति और साहस द्वारा जीता गया है, हालांकि सरकार ने पग-पग पर अनेक भूलें कीं। क्लाइव और उसके साथी, अपनी आंखों में बड़े २ स्वप्न लिए हुए भारतवर्ष में आए और उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा बुद्धिबल के आधार पर भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का झंडा गाड़ा।

अहिंसा तथा सत्य के परम उपासक, महात्मा गान्धी तथा विश्वविख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर किसी स्टेट रूपी मशीनरी की उपज नहीं हैं। यदि ये युग प्रवर्तक महान् आत्माएं स्वतन्त्रता के वायु मंडल में न पली होतीं तो संसार का कल्याण असम्भव था। व्यक्ति के सच्चे विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित है उसके दमन में नहीं।

[पृ० ३ का शेष]

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज, आर्य समाज का सातवां नियम यह बनाते हैं कि "सबसे प्रीति पूर्वक, धर्मानुसार, यथा योग्य बर्ताव करना चाहिये"। क्या इस नियम में पहिले दो क्रिया विशेषणों से ही काम नहीं चल सकता था? फिर इसमें "यथायोग्य" विशेषण क्यों बढ़ाया गया? इसका सन्निवेश इसलिये किया गया कि—शिवाजी महाराज, औरङ्गजेब के बल का जवाब बल से तथा छल का जवाब छल से दे कर भी सदा आर्य-शिरोमणि कहलाते रहे!

विषमोपचार की चिकित्सा का सिद्धान्त कितना अप्राकृतिक है—इसका स्पष्टीकरण केवल एक उदाहरण से हो जायगा।

एक बालक एक खिलौना पाने के लिये रो रहा है उसे आप खूब ज़ोर से डरा धमका दीजिये। निश्चय ही

उसका रोना धोना तुरन्त शान्त हो जायगा। अब आप परीक्षार्थ, उसकी आंखों से ओझल हो जाइये और छिपे २ देखिये कि क्या होता है। आप ९९% यही पावेंगे कि आपके दूर होते ही वह हिचकियां भरकर रोना प्रारम्भ कर देगा।

देख लिया आपने विषमोपचार का फल! क्या यही परिणाम एलोपैथी द्वारा चिकित्सा होने पर नहीं पाया जाता? उन्निद्र रोग के मरीज को दीजिये मार्फिया और देखिये उसका फल? पहिले दिन तो वह मोर्फिया देते ही अवश्य सो जाता है परन्तु दूसरे दिन उसकी बची खुची नींद भी काफूर हो जाती है। क्या उन्निद्र रोग के मरीज़ की नींद भगाना ही आपकी चिकित्सा का उद्देश्य था। क्या विषमोपचार के पक्षपाती चिकित्सकों को चिकित्सा के कार्य्य में प्राप्त हुयी इस प्रकार की सफलता से अब भी उन्निद्र न हो जाना चाहिये?

बहुत से एलोपैथिक चिकित्सक अपनी चिकित्सा-विषयक असफलताओं से तङ्ग आकर तथा समोपचार की सफलताओं को प्रत्यक्ष देखकर, यद्यपि होमियोपैथी के साम्य नियम को स्वीकार करने के लिये तैयार हो भी जाते हैं तथापि वे होमियोपैथी की पानी सी औषधियों में विश्वास लाने में असमर्थ होने के कारण होमियोपैथी को फिर—Quackery, Humbug, Bogus तथा Nonsense इत्यादि पदवियों से विभूषित करने लग जाते हैं।

होमियोपैथी की जल-समान औषधियों में औषधित्व का परिज्ञान प्राप्त करना भी जब परीक्षण तथा निरीक्षण का विषय है तो उसकी जांच करने से उन विज्ञान-वेत्ताओं को क्यों चूकना चाहिये? क्या वे Vitamines सी अदृश्य सूक्ष्मशक्तियों का अस्तित्व, केवल परीक्षण तथा निरीक्षण के आधार पर ही स्वीकार नहीं करते? क्या किसी शक्तिशाली से शक्ति शाली सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा भी Vitamines का अस्तित्व आज तक दृष्टि-गोचर हो सका है?

जिस प्रकार मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार के भोज्य पदार्थों को खिला २ कर ही, उनमें अदृश्य रूप में विद्यमान भिन्न २ प्रकार की Vitamines की सत्ता का परिज्ञान, उनसे उत्पन्न किये गये प्रभावों के निरीक्षण के आधार पर ही किया जा रहा है, क्या उसी प्रकार जल-समान पुटीकृत औषधियों में औषधित्व की सत्ता का परिज्ञान भी परीक्षण तथा निरीक्षण के आधार पर नहीं किया जा सकता?

प्रायः बहुत से एलोपैथस, अकेली Vinum Ipecac नामक औषधि की केवल एक बूंद मात्रा का वमन शान्त करने के लिये प्रयोग करते पाये जाते हैं। क्या इस प्रकार चिकित्सा करने पर उन्होंने होमियोपैथी के त्रिपाद का (१) सम औषधि (२) अकेली औषधि (३) स्वल्पतम मात्रा का अपहरण नहीं कर लिया है? क्या Ipecac का वमन शान्त करने के लिये प्रयोग में लाना विषमोपचार का समर्थक हो सकता है? क्या जब अकेली औषधि की एक बूंद मात्रा में औषधित्व की सत्ता, उसके रोगो पर प्रभाव दिखा देने के कारण स्वीकार की जा सकती है, तो क्या कारण है कि होमियोपैथी की पुटीकृत औषधियों के बारम्बार रोगियों पर प्रभाव दिखा देने पर भी उनमें औषधित्व की सत्ता को बिना ननुनच के न मान लिया जाय?

जब एलोपैथी के उपासकों ने Ipecac के समान अनेक औषधियों को अकेले २ तथा स्वल्पतम मात्रा में समोपचार के नियम के अनुसार प्रयोग में लाकर, होमियोपैथी के त्रिपाद् को आत्मसात् कर ही लिया है तो उनको उसके चतुर्थपाद (पुटीकृत औषधियों) को भी अपना लेने से क्यों चूकना चाहिये?

इस प्रकार जब एलोपैथ्स ने होमियोपैथी को कथावशेष करने के लिये अपना परम पुरुषार्थ प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर ही दिया है, तो अब उनके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे होमियोपैथी के चारों पादों का, न केवल आंशिक अपितु "पूर्ण-ग्रहण" शीघ्र से शीघ्र कर डालें। तब तो होमियोपैथी का:—

"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते"

हो जायगा। जिस विज्ञान का सब कुछ छिन जाने पर भी सब कुछ बचा रहे—उसके सिवाय, अन्य कुछ रहे ही नहीं—उसके पूर्ण होने में किसे सन्देह हो सकता है?

पैगिन वाडिया हाकी कप टूर्नामैण्ट बड़ौदा में गुरुकुल सूपा की द्वितीय शानदार विजय

(३)

[लेखक—एक खिलाड़ी]

आज २३-१२-४० का दिन है। टूर्नामैण्ट का चौथा अथवा अन्तिम दिन है। हमारा और कैम्प यूनियन का भाग्य निर्णय होना था। ४ बजे से ही ग्राउण्ड में प्रेक्षकों के ठट्ठ जमा होने लगे थे। सभी मैच शुरु होने की इन्तजार कर रहे थे। हमारी टीम ४॥ बजे ग्राउण्ड पहुंच गई। कैम्प यूनियन शामियाने के परले छोर पर पहिले से ही डटी हुई थी। हम भी मस्तानी चाल चलते हुवे निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गये। दोनों टीमें शाश्वत वैरियों के समान एक दूसरे की ओर घूरने लगीं। दोनों दलों में आज पूर्ण शान्ति विराज रही थी। ५॥ बजने से ५ मिनट पूर्व नायब दीवान श्री कर्नल शिवराज सिंह जी आये। विजेता दल को इन्होंने ही पारितोषिक वितरित करना था। गुरुकुल दल का कर्नल साहब से परिचय कराया गया और ५॥ बजते ही खेल की सीटी बज पड़ी।

आज वीर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस था और हमारा परीक्षा दिवस था। आज के दिन शक्ति पुञ्ज कुलपिता ने अपने जीवन की बलि देकर हमको जीता जागता वीरता का पाठ सिखाया था। आज हमको सच्चे अर्थों में वीर पूजा करनी थी।

खेल प्रारम्भ हुआ। हजारों की तादाद में दर्शक हाजिर थे। वे अपनी आंखों को भली प्रकार तृप्त करना चाहते थे। चारों ओर सन्नाटा था। यह सन्नाटा, श्मशान का नहीं

अपितु आंधी से पहिले का था। भयंकर आक्रमण प्रत्याक्रमणों का सूचक था। सीटी बजी, तुली हुई और ग्राउण्ड में भगदड़ मच गई। सब की आंखें भाग्य-विधातृ गेंद पर केन्द्रित हो गईं। परन्तु धन्य हो कुल पुत्रो! तुमने तो गजब किया। सैकड़ों मीलों से आकर, स्वजनों से दूर होकर, एक अजनबी विराट नगरी में आकर, गजब किया। अभी तो खेल शुरु हुवे ५ मिनट भी न हुवे थे कि कैम्प यूनियन का फट्टा बज गया। क्या गजब का धड़ाका हुवा। ग्राउण्ड में भी चुप्पी, दर्शक समूह में भी चुप्पी। सबके हृदय धुक् २ करने लगे। मानों उनकी आंखों ने कुछ आवाङ्मनसगोचर अप्रत्याशित दृश्य देख लिया हो। परन्तु कुल पिता की अमर अलौकिक आत्मा चारों ओर मधुर स्मित करती नज़र आती थी। हमारे दिलों की खुशी तो अंग २ से फूटी पड़ती थी। हमारे हाथ पैर इतनी निपुणता से काम कर रहे थे कि मानों वे किसी पारलौकिक शक्ति द्वारा सञ्चालित हो रहे हों। और इसी चमत्कार के कारण हमने सबके देखते देखते दूसरा गोल भी चढ़ा दिया। सब दिङ् मूढ़, निर्निमेष नयन हो ताकते रह गये।

परन्तु मरता क्या न करता। बुझने से पहिले छोटा सा दीपक भी अपनी समग्र जीवन शक्ति सञ्चित कर एकबार टिम टिमा उठता है। कैम्प के फाख्ते तो उड़ गये थे परन्तु उसने जोर मारा। हमारी समग्र टीम सिहर उठी सब जगह हंगामा मच गया। दर्शकों में सञ्जीवनी का सञ्चार हुवा। पासा पलटने की आशा होने लगी और वास्तव में आसार भी ऐसे ही थे। एकाएक तुमुल नाद हुवा! लो, देखो जी, कैम्प के फारवर्ड आगे बढ़े, गुरुकुल के हाफबैक पिछड़ गये, अब बैकों की बारी है; ओह, बैक भी पिछड़ गये। अरे यह क्या, नन्हें से शिशु की भांति गेंद हमारे जाल में झूलती दिखाई दी। बस फिर क्या था, मौनी बाबाओं के मुख खुल गये, चारों ओर कानों को बहरा कर देने वाला तुमुल हर्षनाद। आकाश पाताल एक हो गये सभी जगह सुख का समुद्र हिलोरे मारने लगा।

परन्तु यह सब क्षणिक सिद्ध हुवा। हमारे सामने शक्ति और आत्मविश्वास की जीती जागती मूर्ति उपस्थित थी। हमारे पीछे स्नेही जनों की उत्साह वर्धक मधुर स्मृतियां थी, हमारे निकट भटकों को मार्ग दिखाने वाले आचार्य श्री प्रियव्रत जी की उपस्थिति थी। फिर हमारे पस्त होने का क्या कारण? बढ़ो—कुलपुत्रो; बढ़ो—तुम्हें कौन रोक सकता है। हम बढ़े और इतना आगे बढ़े कि किसी को कल्पना तक न थी। फिर वही फट्टे बजने का दिल द्रावक शब्द। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। यह सन्नाटा आंधी से पूर्व का नहीं अपितु श्मशान की चिरशांति था। निशा देवी धीमे धीमे अपने आवरण आकाश में फैलाने लगी। भूतल के समस्त मुर्झाये चेहरों को अपने आंचल में छिपाने लगी। विजया ने आज हमको फिर से विजय माला पहिनाई। हमारे चेहरे अद्वितीय दीप्ति से दमक उठे और सर्वत्र कुलपिता का जय जयकार कर उठे।

शामियाने में बड़े २ अफसरों के साथ कर्नल साहिब बैठे हुवे थे। उनके सामने मेज पर छोटे बड़े कप सजे हुवे थे। दोनों टीमें उनके दायें बायें क्रमबद्ध खड़ी हो गईं। कर्नल साहिब ने छोटा सा प्रवचन किया और हमारी खेल तथा खिलाड़ीपन की भावना की भूरी भूरी प्रशंसा की। अन्त में करतलध्वनि के बीच, उन्होंने विजेता गुरुकुल दल को १ बड़ा चांदी का कप और प्रत्येक खिलाड़ी को १-१ छोटा चांदी का कप भी दिया और परम कृपालु प्रभु को धन्यवाद देते हुवे टूर्नामेंट समाप्ति की घोषणा की।

२६ दिसम्बर १९४० को गुरुकुल का विजयी दल कुल में पधारा। कुल बन्धुओं ने मुख्य मार्गों को झण्डियों और बन्दनवारों से खूब सजाया हुआ था। चिर प्रतीक्षा के बाद हमारी विजयवाहिनी ने मध्यान्ह के ३ बजे कुलभूमि में प्रवेश किया। रंगबिरंगे से वस्त्रों से सुशोभित नन्हें नन्हें बच्चे और कुलवासी स्नेह से गद्गद हो विजयी वीरों की आरती उतारने लगे। कदम कदम पर कुंकुम के टीकों और पुष्प मालाओं से स्वागत किया गया। जलूस मुख्य मार्गों से होता हुआ हाल में पहुंचा। वहां से विजयी दल अल्पाहार करके सुसज्जित सभामण्डप में पहुँचा। सभा में खिलाड़ियों ने अपने अनुभव सुनाये। बुज़ुर्ग-अनुभवी लोगों ने विजयी दल को अगली बार भी जीत कर चैम्पियन होने का आशीर्वाद दिया और परम प्रभु परमात्मा को निस्सीम कृपा के लिये धन्यवाद दिया। सभा विसर्जित हो गई। अगले दिन विजय के उपलक्ष्य में विद्यालय तथा सब विभाग बन्द रहे।

गुरुकुल में चक्षु--यज्ञ

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार के 'श्रद्धानन्द सेवाश्रम' में यूं तो सारे साल ही आपरेशन होते रहते हैं परन्तु इस वर्ष २५ मार्च से आंखों के आपरेशनों के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। जिन लोगों ने मोतिया बिन्द, पलक बन्दी आदि आंखों के आपरेशन कराने हों वा कमज़ोर नज़र के लिए चश्मे लेने हों उन्हें इस अवसर से लाभ उठाना चाहियें। इस धर्मकार्य के लिए मसूरी और देहरादून के प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक श्रीयुत डा० बी० एस० राथक साहब ने अपनी सेवाएं गुरुकुल श्रद्धानन्द-सेवाश्रम को प्रदान कर दी हैं।

रोगियों से किसी प्रकार की फीस आदि नहीं ली जायगी। रोगियों को अपना बिस्तर साथ लाना चाहियें। रहने का प्रबन्ध मुफ्त होगा।

रोगियों को २३-२४ मार्च तक गुरुकुल पहुंच जाना चाहियें।

मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

पिछले दिनों श्री आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी, राय साहेब ला० अमृतराय जी के साथ अचानक गुरुकुल में पधारे और प्रातः काल से सायम् काल तक गुरुकुल के प्रत्येक विभाग का पूरी तरह निरीक्षण किया और निम्न लिखित सम्मति सम्मति पुस्तक में लिख गये:—

"आज मुझे राय साहेब ला० अमृतराय जी के साथ

इस संस्था का निरीक्षण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक दिन में इन के सम्पूर्ण कार्य्य को भली प्रकार देखा और उसे सुप्रबन्ध में पाया। मुझे यह लिखते और स्वीकार करते प्रसन्नता है कि पं० सोमदत्त जी इस गुरुकुल के संचालन एवं इसे उन्नत करने में बड़ी दिलचस्पी एवं लगन से कार्य्य कर रहे हैं। मैं उन के इस शुभ कार्य्य में पूरी सफलता चाहता हूं। गुरुकुल की भूमि को अधिक उपजाऊ बनाकर गुरुकुल को उन्नति शील और स्वावलम्बी बनाने के लिये आप सतत् प्रयत्न कर रहे हैं। सब ब्रह्मचारी प्रसन्न तथा स्वस्थ हैं। मुझे यह सब गुरुकुलीय जीवन में आनन्द अनुभव करते हुये प्रतीत होते हैं। एक या दो कमियां भी मुझे दिखाई दीं यह आर्थिक कठिनाई के कारण हैं, और आसानी से दूर की जा सकती हैं। सादगी जिसे मैं बहुत पसन्द करता हूं इस संस्था की एक बड़ी विशेषता है। इस संस्था में बाहरी दिखावे तथा आडम्बर की कोई बात नहीं दिखाई देती।

सब ब्रह्मचारी आज्ञाकारी तथा शिष्ठ हैं। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि यह संस्था भविष्य में और भी अधिक फले फूले और अधिकाधिक लोक प्रिय हो।"

गुरुकुल इन्द्र प्रस्थ में

गौशाला का निर्माण

श्री पूज्य स्वामी रामानन्द जी जिन्होंने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिये अपना सर्वस्व अर्पण किया हुआ था और जिन्होंने ३५ वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी तथा इन्द्रप्रस्थ में निष्काम तथा निस्वार्थ भाव से सेवा की थी, दो मास हुआ उनका फौजी सागी मे देहावसान हो गया। उनके स्मारक रूप में यह गौशाला बनवाई जा रही है। श्री पं० मनमोहननाथ जी मोहन प्रदर्स वालों ने एक हजार रुपये देकर इस गोशाला का श्रीगणेश करवाया है। इसके अतिरिक्त श्री सेठ झम्मनलाल जी ने ५००) रुपये देने की कृपा की है। २५०) रुपये मिस्टर डी० सी० धीमान ने पांच गायें खरीद ने के लिये दिये हैं और आज्ञा दी है कि इससे अधिक भी व्यय होगा, तो वह भी दिया जायगा। पांच खुरलियों के लिये जो व्यय होगा, उसको भी देने के लिये उन्होंने वचन दिया है। ठा० भगतराम जी करौल बाग ने ७५) इसके लिये प्रदान किये हैं। कई भाइयों ने पच्चीस पच्चीस रुपये देकर गौशाला में एक खुरली बनवाने का संकल्प किया है।

इस प्रकार इस समय तक दो हजार रुपये एकत्र हो चुके हैं और अभी तीन हजार रुपयों की और आवश्यकता है। तभी यह गौशाला पूर्ण हो सकेगी। गौशाला बनने का काम प्रारम्भ है। एक मास में यह पूर्णतया बन कर तय्यार हो जायगी।

इसलिये दानी महोदयों से निवेदन है कि वे यथाशक्ति गोशाला निधि में दान देकर पुण्य के भागी बनें। इसके लिये दान मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देहली के पते पर भेजना चाहिये।

गुरुकुल मुलतान का निरीक्षण

मैं कुछ दिनों से गुरुकुल मुलतान में आया हुआ हूं जो कुछ भी यहां देखा है उससे जनता को सूचित करना अपना कर्तव्य समझता हूं और खास कर संरक्षकों को।

(१) इस समय सब ब्रह्मचारी स्वस्थ तथा नीरोग हैं और साफ सुथरे हैं।

(२) यहां सादा और बहुत अच्छा भोजन तय्यार किया जाता है और तथा सब्जी का ताज़ा ही प्रबन्ध है। गेहूं गुरुकुल में ही खरास पर पिसवाया जाता है। गोशाला में जो गौवें दूध देने वाली हैं वह मुख्याधिष्ठाताजी ने अपने निरीक्षण में रखी हुई हैं। उनके खिलाने पिलाने तथा दूध दुहाने का निरीक्षण वह स्वयं करते हैं अतः ब्रह्मचारियों को शुद्ध दूध पर्याप्त मिल रहा है।

(३) आश्रम में जहां ब्रह्मचारी रहते हैं उसके दक्षिण के कमरे में मुख्याधिष्ठाता जी व उत्तर के कमरे में शास्त्री जी उनकी देखभाल करते हैं जिस तरह माता पिता अपने बच्चों को पालते हैं वैसे ही मुख्याधिष्ठाता जी इन बच्चों की पालना कर रहे हैं।

(४) मुख्याधिष्ठाता जी अपने सहायक वर्ग के साथ दिल तथा प्रेम से बालकों शिक्षा देते हैं।

(५) सफाई का प्रबन्ध भी अच्छा है।

(६) यह गुरुकुल बहुत पुराना है और गुरुकुल कांगड़ी की सर्व प्रथम शाखा है। जहां तक मेरा अनुभव है यहां की जलवायु भी उत्तम है लेकिन आर्थिक अवस्था इस गुरुकुल की बहुत कमज़ोर है। संरक्षकों को चाहिए कि समय पर शुल्क भेज दिया करें और इसके अतिरिक्त जनता दान देते समय इस गुरुकुल का विशेष ध्यान रखें और अपने बालकों को यहां प्रविष्ट करें। जो स्नातक इस गुरुकुल में शिक्षा पा चुके हैं वह इस तरफ अधिक ध्यान दें। आशा है मेरी इस प्रार्थना पर सब भाई ध्यान देंगे और यश के भागी होंगे।

लाला बिहारीलाल
रिटायर्ड सुपरिन्टेन्डेन्ट इन्सपेक्टर,
देहली।

पानी की आवश्यकता

प्यासों को पानी पिलाइये

रियासत नालागढ़ में दलितों की भारी संख्या है और उनके पीने के लिये पानी का ठीक प्रबन्ध नहीं है। इस कारण से पानी का बड़ा कष्ट है। गरमी आ रही है और इस बात की कल्पना की जा सकती है कि पानी के न होने से गरमियों में कितना कष्ट होता है। उनके लिये कूप बनवाने की बड़ी आवश्यकता है। जिस पर २५०) व्यय होगा। हिन्दु जाति में प्यासों को पानी पिलाने की बड़ी भावना है। जो सज्जन यहां कूप बनवाकर सैकड़ों गरीबों को पानी देकर पुण्य का भागी बनना चाहें वह अपनी सहायता मन्त्री दयानन्द दलितोद्धार सभा गुरुदत्तभवन लाहौर को भेज दें ताकि गरमी आरम्भ होने से पहले ही वहां कूप बनवा दिया जाये।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"　　Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)　　[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]　　वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५]　　गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ९ चैत्र १९९७; २१ मार्च १९४१　　[संख्या ४८

अमृत प्राप्ति

(स्वा० श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश से)

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीशो मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

परमात्मा की खोज में बाहर घूमते हुवे कई मनुष्य-समुदायों को युग बीत गये परन्तु सुख और शान्ति की प्राप्ति का उनके लिये अभी पहला दिन ही है। बुतखाने और गिरजाघर, मस्जिदें और वेदी अनेक प्रकार के भव्य भवन बनवा बनवा कर मनुष्यों ने साम्प्रदायिक प्रभाव जमाने के प्रयत्न किये और उनके द्वारा पाप से जले हुवे हृदयों को शान्त करना चाहा। सामयिक उपाय कई अवस्थाओं में मनुष्यों को धोखे में डालने वाला हुवा है परन्तु अन्त में अशान्ति अधिक से अधिक बढ़ती गयी। यह क्यों? इसलिये कि वह परमात्मा चेतन प्रकाश स्वरूप और ज्ञानमय होने के कारण जीवात्मा के बहुत ही समीप है—निकट से भी निकट है। क्योंकि जिस हृदय आकाश के अन्दर जीवात्मा विद्यमान है उसी हृदयाकाश के अन्दर जीवात्मा को भी अपना शरीर बनाये हुवे परमात्मा विराजमान है। वे जीवात्मा के अन्दर परिपूर्ण हो रहे हैं और होना भी ऐसा ही था। क्योंकि जड़ प्रकृति की अपेक्षा जीवात्मा का अधिकतर निकटतम सम्बन्ध परमात्मा से है। यद्यपि अविद्यान्धकार में पड़कर इस समय हमने उस पवित्र सम्बन्ध को बिलकुल भुलादिया है। किसी युग और किसी अवस्था में भी जीवात्मा का परमात्मा से यह सम्बन्ध दूर नहीं होता। यह सम्बन्ध नित्य है। इसको तोड़ने की शक्ति किसी में भी नहीं है। फिर हम लोग कैसे मूर्ख हैं जो परमात्मा को खोज करने के लिये बाहर भटकते फिरते हैं जबकि वह हृदय का स्वामी सदा हमारे संग संग है। जिसके दर्शन हम हर समय बिना हिले जुले ही कर सकते हैं। उसके दर्शनों की इच्छा में जंगलों और निर्जन प्रदेशों में यदि भटकते फिरें तो हम सा मूर्ख कौन हो सकता है। और सांसारिक कठिन से कठिन कष्ट भी हमें इस लिये सताते हैं कि हम अपने असली सम्बन्ध को समझ नहीं रहे हैं। परमेश्वर की खोज और मुक्ति की प्राप्ति की प्रबल इच्छा रखते हुवे भी मनुष्य अपने मन के अन्दर बुरे से बुरे भाव उठाते हैं। जिसकी व्यक्ति किसी समय उनके बाह्य कर्मों के अन्दर भी हो जाती है। उसका कारण क्या है? क्या वह हिन्दू यात्री जो तीर्थों के अन्दर भी व्यभिचार, धोखा और छल से हटता नहीं, मुक्ति का अभिलाषी नहीं? क्या वह दीनदार मुसलमान जिसका मस्जिद में भी नमाज के समय दूसरे की जूती की ओर ध्यान है वास्तव में पापों से मुक्ति का अभिलाषी नहीं है? क्या वह ईमानदार ईसाई जिसकी दृष्टि गिरजे के अन्दर भी उसके विवाह के लिये किसी नव-युवती स्त्री की तलाश कर रही है, शान्ति का अभिलाषी नहीं है? यह सब मुक्ति के अभिलाषी हैं। परमात्मा हृदय का ईश्वर और मन का स्वामी है। जब हम लोग उसके अन्दर विद्यमान होते हुवे भी किसी का बुरा चिन्तन कर सकते हैं तो हमने परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को नहीं समझा। इस लिये हम उसके समीप होते हुवे भी अपने आपको उससे पृथक् समझ रहे हैं। ऐसी अवस्था में सुख और शान्ति की अभिलाषा रखना हमारे लिये व्यर्थ है। प्रिय बन्धुगण! परमात्मा हमारे मन और हृदय का स्वामी है। वह हमारे एक एक संकल्प को जानता है, उससे हमारा कोई भी विचार छुपा हुवा नहीं है। जब हमें निश्चय है कि हमारे अन्दर हरेक भाव का साक्षी विद्यमान है तो फिर हमारे लिये आवश्यक है कि हम अपने अन्तःकरण को हरेक बुराई से पवित्र करें। परन्तु हम सब निर्बल हैं। इस देवासुर संग्राम का सामना होते ही अधीर हो जाते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार के दल बादल की तरह उमड़े हुवे आते देखकर हमारे होश मारे जाते हैं। परन्तु क्या इन सबका हमारा तुच्छ हृदय सामना कर सकता है? कदाचित् नहीं। अपितु इस देवासुर संग्राम में भी हमको वही जगदीश्वर सहायता देते हैं। जिनकी समीपता हमारे लिये उच्च आनन्द का निश्चय दिला रही है। प्रभु धन्य हैं! उनकी महिमा धन्य है! इस लिये आओ; सच्चे मन से उन से सहायता मांगें जिससे आसुरी सेना का दमन होकर हमारे मनमें सच्चे सुख का प्रकाश हो।—

रमते-राम

[श्री ज्ञानी]

कहते हैं कि घूमते हुए चक्कर पर मिट्टी नहीं चिपकती। "रमते-राम" भी घूमते रहते हैं। पर इन पर थोड़ी सी सुनहरी मिट्टी चिपक गई है। इस लिये अब कुछ भारी हो रहे हैं। शायद इसी लिये अब घूमना-फिरना कम होने लगा है।

× × × ×

२१ फ़रवरी को पाण्डिचेरी में दर्शन का दिन था। सोचा कि बड़ी २ विभूतियां इकट्ठी होंगी। धूम-धाम रहेगी। चलो चलें, हम भी कुछ पुण्य लूट लें। २० की रात को मद्रास से चल कर २१ ता० की सुबह वहां जा पहुँचे। सैंकड़ों यात्री दूर २ से आये थे। बंगाली, गुजराती और हिन्दुस्तानी। मैं हैरान था कि क्षणभर के दर्शन के लिये इतनी दूर से आने और इतना कष्ट उठाने की ज़रूरत? श्री अरविन्द किसी से बोलते नहीं। किसी को समीप आने देते नहीं। और क्षण भर के दर्शन के समय भी हाथ उठाकर आशीर्वाद तक नहीं देते। फिर भी लोग चले आते हैं। सैंकड़ों, हज़ारों। इतना रुपया खर्च कर। काम-धन्धा छोड़ कर। और मुसीबतें झेल कर।

लोगों में भेड़-चाल ज़्यादह है। सोचना-विचारना नहीं। एक दूसरे के पीछे अन्धा-धुन्ध बढ़े चले जाना। और ख़ास करके जहां उन्हें धार्मिक व आध्यात्मिक अचम्भा सुनाई दे। श्री अरविन्दाश्रम में दर्शन के समय ज़्यादह भीड़ होने का हमारी समझ में तो यही कारण है।

× × × ×

हम भी गये और भीड़ में खड़े हो गये। अनेक स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान, भिन्न २ स्थानों से आए हुए थे। भीड़ में कुछ बच्चे भी थे। प्राय: सब ही नये वस्त्र पहिने थे। साधक भी अपनी पूरी वेशा-भूषा में थे। प्रायः दर्शकों के हाथों में मालाएं अथवा गुलदस्ते थे। हमने भी एक मित्र से कुछ फूल मांग लिये।

पंक्ति बहुत बड़ी थी। हमारी बारी आने में अभी १॥ घंटे की देरी थी। हम खड़े २ दर्शकों व साधकों की मुख-मुद्राओं का अध्ययन कर रहे थे। कुछ शान्त थे। कुछ गंभीर थे। कुछ चिन्तित थे। कुछ उत्सुक थे और कुछ तनाई थे।

धीरे २ पंक्ति आगे बढ़ने लगी। ज्यों २ हम समीप पहुंच रहे थे; त्यों २ हमारे हाथों के फूल मुरझा रहे थे। शाम का समय और सुबह के फूल। आखिर इन कोमल पंखड़ियों का जीवन ही कितना।

ऊपर पहुंचे। दीप जल चुके थे। आराध्यदेव—श्री अरविन्द सामने ही आसन पर विराजमान थे। उनके चरणों के समीप ही फूल-मालाओं के ढेर पड़े थे। थोड़े फ़ासले पर, एक लकड़ी की पेटी में, धन की भेंट भी थी!

हमने हाथ जोड़े। प्रणाम किया। आंखें मिलानी चाहीं। हिम्मत नहीं हुई। कुछ ऐसा भास हुआ मानो श्री अरविन्द नराज़ हैं। वो कह रहे हैं "अब तुम अनेक बार आ चुके हो। तुमने साहित्य भी पढ़ा है। अन्दर से 'परिवर्तन' की प्रेरणा भी है। लेकिन सांसारिक ममता को तुम नहीं छोड़ना चाहते। यदि इतना भी त्याग नहीं है तो यहां किस मुंह से चले आते हो। समझदार होकर, 'ज्ञानी' कहला कर, अज्ञानियों का सा जीवन बिताते हो।"

साथ ही माता जी विराज रही थीं। आज उन्हीं का जन्म दिन है। चलने से पूर्व उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने बड़े प्रेम से मुस्किरा दिया। मानो श्री अरविन्द की भर्त्सना उन्होंने भी सुनी। कहीं हमारे कोमल-हृदय पर आघात पहुंचा हो, उन्होंने अपने सहज हास्य से उसे 'आशा और धैर्य' की प्रेरणा में परिवर्तित कर दिया।

दर्शन करके बाहिर आया। मित्र लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरी गंभीर दशा उन्होंने देखी। इससे पूर्व कि वो कुछ पूछें मैं खुद-ब-खुद ही मुस्किराने लगा, मानो जो कुछ देखा वह केवल-मात्र दिवा-स्वप्न था।

× × × ×

रात का समय था। चांदनी खिल रही थी। हम ५-६ मित्र मोटर में बैठ कर मद्रास की ओर रवाना हुए। पाण्डिचेरी से मद्रास लगभग ११० मील है। सड़क इतनी अच्छी नहीं। रात के बारह बजे हम वापिस घर आए।

नींद का समय गुज़र जाने से मैं बिस्तर पर लोटता रहा। बार २ वही प्रश्न उठा "पाण्डिचेरी में क्या देखा?" दिल ने मुझे तौर से कहना चाहा "क्यों नहीं तुम अपने मार्ग का निर्णय करते? ऐसे दुविधा में कब तक पड़े रहोगे? तुमने भोग भोगे हैं। औरों को भी भोगते देखा है। ये चक्की तो इसी तरह चलती रहेगी। दाने आएंगे। कुछ देर चक्की में कूदें-फांदेंगे। फिर दो-पाटों के बीच में आकर दल जाएंगे। जब तुम यह सब जानते हो तो क्यों नहीं "अनासक्ति" का निश्चय करते? त्याग से तुम्हें क्यों डर लगता है? भोग की वासना को क्यों नहीं विदा कर देते?"

मन ने दबी ज़बान से पूछा कि "क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे भोग करते हुए भी त्यागी बन जाएं?" मन अपने प्रश्न पर स्वयं हंसा। शरीर के विषयों में रमते हुए आत्म-चिन्तन असंभव है। आग और पानी का पुराना बैर है। यहां तक कि उबलता हुआ पानी भी आग को बुझा देता है। उनमें समझौते की गुंजाइश नहीं।"

विषय की गंभीरता से सिर भारी हो रहा था। निद्रा-देवी ने हमें बेसुध बना दिया। हां! उठने से पहिले फिर स्वप्न देखा। वही श्री अरविन्द-दर्शन। परन्तु आज श्री अरविन्द प्रसन्न हैं। आंखों से ही "साधु-साधु" कह रहे हैं। आज हम सर्व-परित्याग कर आश्रम-वासी हो गये हैं। साधक बन चुके हैं। गुरु की चरण-रज को मस्तक पर चढ़ाया है। विषय-भोग की तृष्णा छोड़ कर त्याग-तपस्या का जीवन अपनाया है॥

महात्मा हनीमैन की संसार को देन

(ले०—डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार, बिजनौर)

दान की महिमा अपरम्पार है। ऊंचा पहुंचने का सर्वोत्कृष्ट साधन दान ही है। भारत के विश्व-विजयी सम्राट्-गण अपने उत्कर्ष की चरम-सीमा विश्वजित् यज्ञों द्वारा सर्वस्व दान करने में ही समझते रहे हैं। दान की सीढ़ी पर चढ़ने हुवे ही वे स्वर्ग के सौध-शिखर पर पहुंच पाये हैं। अग्नि में सर्वस्व अर्पण करती हुई आहुति, ऊंची उठ कर व्योम-मण्डल में व्याप्त हो जाती है। दान करने के लिये जल राशि को जमा करने वाली मेघमाला, हिमालय के उच्च से उच्च शिखरों पर जा विराजती है; परन्तु खारी सरिताओं का रस चूसने पर तुला हुआ सागर, सबसे नीची स्थिति पाता है। अपनी चमक दमक का दान देने वाली मणि, खान में उत्पन्न होकर भी राजाओं के मुकुटों में जा लगती है। पत्र, फल, पुष्पों का दान देने वाले अल्पकाय-वृक्ष पर्वतों के मस्तक पर स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

जिन महापुरुषों ने संसार के सुख की वृद्धि करने के लिये किसी प्रकार की भी उत्तम देन संसार को समर्पित की है, संसार उनका सदा समुचित आदर करता चला आया है। क्या रेल, तारबर्की, रेडियो, एरोप्लेन इत्यादि उत्तमोत्तम देनों को देने वाले पुरुषों के नाम, इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में नहीं लिखे जाते ?

जिस महापुरुष की देन जितनी ही उत्कृष्ट होती है—संसार की सुख-वृद्धि की साधक होती है—संसार उसको उतनी ही ऊंचाई पर बैठा कर उसका उतना ही सम्मान तथा पूजन करता है। यदि भारत की जनता, महात्मा गांधी को सर्वश्रेष्ठ विभूति के रूप में मान कर उनकी अपूर्व पूजा करती है तो इस लिये कि वह उनके विचारों की देन को निज कल्याण के लिये अद्वितीय समझती है।

हिन्दू जनता, गोस्वामी तुलसी दास का नाम क्यों इतने आदर तथा श्रद्धा के साथ याद करती है ? इसलिये कि उस महा-पुरुष ने उसको एक ऐसे 'मानस' की देन दी है जिसमें स्नान करने पर न केवल उसके त्रिविध तापों का ही शान्ति हो जाती है, अपितु उसका मनन-रूपी जल-पान करने पर उस के समस्त आभ्यन्तर मलों का प्रक्षालन हो जाने से उसे परम सुख की प्राप्ति भी हो सकती है।

महात्मा हनीमैन ने भी संसार को एक देन दान में दी है जिसका नाम—होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली—है। होमियोपैथी की इस देन से संसार का कुछ हित-साधन या कल्याण हो पाया है या नहीं, इसकी परख करने से पूर्व, हमें यह जानना आवश्यक है कि हनीमैन ने यह देन किस मनो-कामना अथवा उद्देश्य से संसार को समर्पित की है।

महात्मा हनीमैन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Chronic Diseases की भूमिका में लिखते हैं:—

"If I did not know for what purpose I was put here on earth—to become better myself as for as possible and to make better everything around me that is within my power to improve—I should have to consider myself as lacking very much in worldly prudence to make known for the common good, even before my death, an art which I alone possess, and which it is within my power to make as profitable as possible by simply keeping it secret".

"यदि मुझे यह पता न होता कि इस संसार में मुझे किस लिये भेजा गया है तो मैं उस विद्या को जो कि केवल मेरे मस्तिष्क की ही उपज है तथा जिसे गुप्त रखकर मैं असंख्य धन-राशि का स्वामी हो सकता हूं, अपने जीवन-काल में ही संसार पर प्रगट करता हुआ अपने आपको सर्वथा लोक व्यवहारानभिज्ञ समझता ! परन्तु चूंकि मुझे भली प्रकार विदित है कि मुझे इस संसार में इसलिये भेजा गया है कि मैं न केवल स्वयं उत्तम बनूं अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक पदार्थ को भी यथाशक्ति उत्तम बनाऊं, अतः मैं इस विज्ञान को संसार के सम्मुख प्रस्तुत करता हूं।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महात्मा हनीमैन ने होमियोपैथी की यह देन, केवल लोक-हित की कामना से प्रेरित होकर ही संसार को समर्पित की है। उसे यह निश्चय था कि उसकी इस देन को पाकर, संसार पहिले से कहीं अधिक सुखी हो सकेगा, अतः उसने अपने मस्तिष्क में समाये होमियोपैथी के इस गङ्गा-प्रवाह को समस्त भूमण्डल में प्रवाहित कर दिया।

गङ्गा के विषय में तुलसी दास जी लिखते हैं:—

"गंग सकल मुद मंगलमूला,
सब सुख करनि, हरणि सब शूला।।"

क्या यही बात हनीमैन की इस देन के विषय में नहीं कही जा सकती ? क्या यह चिकित्सा प्रणाली, सब शूलों का अपहरण कर सकने के कारण सारे सुखों की खान नहीं है ? क्या इसका यह अमृतमय-प्रवाह सकल मङ्गलों का मूल नहीं है ? क्या लाखों मनुष्य जो प्रतिदिन इसके प्रभाव से मौत के मुंह से बलात् खींच लिये जाते हैं, इस बात की साक्षी देने से विमुख हो सकते हैं कि होमियो-पैथी का यह प्रवाह ही सच्चा तथा वास्तविक गङ्गा-प्रवाह है ? क्या वे जीव जो अन्य चिकित्सा प्रणालियों द्वारा निराशा-नदी में डुबो दिये जाने के पश्चात् भी समोपचार की इस नाव द्वारा उबार लिये जाते हैं, पुकार २ कर यह नहीं सुना रहे कि संसार को सब देनों में से हनीमैन की यह देन ही सर्वोत्कृष्ट देन है ?

चौरासीलाख योनियों की परम्परा में से कर्म-वश गुज़रता हुवा यह जीव, बड़ी तपस्या तथा भाग्य से ही इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है तथा इसके द्वारा ही अपने लोक तथा परलोक को सुधार पाता है। इसी

[शेष पृ० ५]

गु रु कु ल

६ चैत्र शुक्रवार १९९७

गुरुकुल का उत्सव समीप है।

आपको यह जान कर अत्यन्त हर्ष होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १० से १४ अप्रैल तक बड़े धूमधाम से गुरुकुल-भूमि में मनाया जायगा। इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होने के लिये हम आप सब सज्जनों को सादर आमन्त्रित करते हैं।

गुरुकुल आर्य समाज की सबसे सफल और शानदार संस्था है। गुरुकुल खोलकर आर्य समाज ने न केवल शिक्षा-क्षेत्र में अभूत-पूर्व क्रान्ति की है अपितु संसार को एक सन्मार्ग भी दिखाया है। गुरुकुल आर्यसमाज की दीप्तिमान भावनाओं का जीता-जागता नमूना है। आर्य समाज के त्याग, उत्साह और धैर्य का गुरुकुल मानो एक दर्पण है जिस में आर्य जनता के ये गुण प्रतिबिम्बित देखे जा सकते हैं। प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी और आचार्य रामदेव जी इस गुरुकुल उपवन को अपने खून और पसीने से सींच गये हैं। उनकी लगाई हुई यह वाटिका सदा फलती फूलती रहेगी।

स्थापना से लेकर अब तक गुरुकुल ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सफल-आश्चर्यकारी परीक्षण किये हैं। इस समय गुरुकुल एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं अपितु विश्व-विद्यालय का रूप धारण कर चुका है। गुरुकुल कांगड़ी तथा उस से सम्बद्ध संस्थाओं में लगभग दो हज़ार विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में वेद, शास्त्र, उपनिषद्, संस्कृत-साहित्य, आयुर्वेद आदि प्राचीन विषयों के अतिरिक्त इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, रसायन, पाश्चात्य-दर्शन, पाश्चात्य चिकित्सा आदि आधुनिक विषयों का भी उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। इस समय गुरुकुल विश्व-विद्यालय भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां के विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, समाज सेवा, स्वदेश-प्रेम आदि गुण उत्कट रूप में पाये जाते हैं। यह संस्था आर्य समाज की बड़े गौरव और शान की वस्तु है। इसे आर्य जनता ने अपने तन, मन, धन से सींचा है। इस वाटिका को लहलहाता देखने की किस आर्यबन्धु को इच्छा न होगी। इसकी शान आर्य जनता की शान है।

गुरुकुल को सफल बनाने का काम केवल आर्यसमाज का ही नहीं सम्पूर्ण भारत वर्ष का भी है। आर्यसमाज ने गुरुकुल की स्थापना की, उसे पाला पोसा और यौवन तक पहुंचाया। भारत की आर्य (हिन्दु) जाति ने हृदय खोल कर इसका स्वागत किया, धन की सहायता दी और सबसे बढ़ कर अपने गोद के लाल देश-सेवा-कार्य के लिये दिये। गुरुकुल में ब्रह्मचारी केवल पंजाब से ही नहीं आते; पंजाब के अतिरिक्त युक्त प्रान्त, गुजरात बम्बई बिहार, बंगाल, हैदराबाद, मद्रास आदि सभी प्रांतों के विद्यार्थी यहां प्रविष्ट होते हैं।

हर्ष का विषय है कि आपके प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव लम्बी प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है। आपकी यह गुरुकुलोत्सव यात्रा सच्चे अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ आज-कल इस भारत में कौन सा है? आधुनिक तीर्थ तो अब यथार्थ तीर्थ नहीं रहे हैं। हिमालय की उपत्यका के सघन रमणीय वनों से घिरे हुए गंगा के पवित्र तट पर वेदध्वनि से पूर्ण गुरुकुल के विशुद्ध वातावरण में आर्य समाज के उच्चतम कोटि के विद्वानों और महात्माओं के सत्संग से बढ़ कर आनन्द की चीज़ इस संसार में और क्या हो सकती है? 'सन्त-समागम' और 'हरिकथा' दोनों अत्यन्त दुर्लभ वस्तुयें यहां पर आपको एक स्थान पर मिलेंगी। इस लिये आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्रों के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पहुंचिये। गुरुकुल में आपके ठहरने का, स्नान-ध्यान तथा खान पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

अन्त में जनता को हमारा पुनः सादर निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर जहां इस उत्सव को सफल बनायेगी वहां गुरुकुल की उन्नति के लिये भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेगी।

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी में
श्री डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर का
दीक्षान्त अभिभाषण

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३६ वां वार्षि-कोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १०, ११, १२, १३ तथा १४ अप्रैल को मनाया जावेगा। इस वर्ष दीक्षान्त अभिभाषण श्री डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर देंगे। —सत्यव्रत

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से----

'गुरुकुल' के अनुरागी पाठकों की सेवा में हम पहिले भी दो बार निवेदन कर चुके हैं कि जिन्होंने सं० १९९७ का पत्र का वार्षिक चन्दा २॥) अभी तक नहीं भेजा है वे शीघ्र ही भेजदें-किन्तु कई महानुभावों का चन्दा हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। कृपया वे महानुभाव शीघ्र इस सूचना को पढ़ते ही अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए मनीआर्डर से २॥) भेजदें। क्योंकि हिन्दी वर्ष समाप्त होने में अब कुछ ही दिन शेष हैं। हमें पूरी आशा है कि हमारे उदार-पाठक इस सूचना पर पूरा २ ध्यान देकर अब किसी प्रकार का प्रमाद न करेंगे। —सम्पादक

[पृ० ३ का शेष]

लिये महाकवि कालिदास कहते हैं "शरीरमाद्यं खलु धर्म्म साधनम् ।" इस मनुष्य-शरीर के विषय में गोस्वामी तुलसी दास जी लिखते हैं:—

"बड़े भाग्य मानुष तनु पावा,
सुरदुर्लभ सब ग्रंथहि गावा
साधन-धाम, मोक्षकर द्वारा,
भव सागर सन तारन हारा ॥"

ऐसा मनुष्य शरीर, क्या परमात्मा की सब देनों में सर्वोत्कृष्ट देन नहीं है? क्या इस शरीर-रूपी मशीन के ठीक प्रकार से चालू रहने पर मनुष्य, संसार की अन्य सब देनों को प्राप्त करने तथा अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकता?

परन्तु, उसमें थोड़ा सा भी बिगाड़ आजाने पर, क्या यह संसार की सब देनों से वञ्चित नहीं रह जाता?

एक धनी पुरुष, जिसे संसार की सर्व प्रकार की उत्तमोत्तम देनें, जैसे मोटरकार, रेडियो, सकुचन्दन, षड्रस - भोजन, भव्य भवन तथा मनोरम उद्यान इत्यादि २ सभी प्राप्त हों; परन्तु जिसका स्वास्थ्य बिगड़ चुका हो, वह इन सब देनों से क्या लाभ उठा सकता है? क्या ये सब सामग्रियां उसे तनिक भी सुखी कर सकती हैं! क्या ये सब देन, उसे, और भी अधिक सुखाने वाली नहीं हो जाती!

संसार की ये सब सुन्दर देन, उसे सुखी करने में तभी समर्थ हो सकती हैं जबकि पहिले उसे वह देन प्राप्त हो जाय जो उसकी बिगड़ी मशीन को ठीक २ सुधार दे।

मनुष्य शरीर रूपी मशीनों को सुधारने का काम भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियां करती चली आयी हैं तथा आज भी कर रही हैं। जिस प्रकार मनुष्यों को, परम-कल्याण का मार्ग प्रदर्शन करने के लिये ज्ञानमार्ग, कर्म-मार्ग तथा भक्ति मार्ग के उपासक यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते रहते हैं; उसी प्रकार रोगियों को रोग-पाश से मुक्त करने के लिये, एलोपैथी, होमियोपैथी, वैद्यक, यूनानी, मिसराभी इत्यादि अनेक चिकित्सा प्रणालियों के चिकित्सक, जहां तहां अपनी २ दूकान जमाये बैठे दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्था में—मनुष्य को, जिस प्रकार यह निर्णय करना महाकठिन हो जाता है कि उक्त मार्गों में से किसका अवलम्बन करने पर उसका परम कल्याण हो सकता है, उसी प्रकार उसे यह पता लगाना भी अत्यन्त दुष्कर हो जाता है कि इन भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियों में से कौन सी चिकित्सा प्रणाली ऐसी है जिसके द्वारा चिकित्सा कराने पर उसकी बिगड़ी मशीन, शीघ्र से शीघ्र पूर्णतया दुरुस्त होकर अपने लक्ष्य की ओर बेखटके अग्रसर हो सकती है।

परन्तु, परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि-रूपी सारथी की एक ऐसी देन दी है जो उसे दुस्तर से दुस्तर मार्गों में से भी निकाल ले जाती है। जिस प्रकार मनुष्य, इस सारथी की सहायता से अपने कल्याण मार्ग का निश्चय कर लेता है उसी प्रकार उस बुद्धि-रूपी सारथी की सहायता से वह यह भी पता लगा सकता है कि किस कारखाने में उसकी बिगड़ी मशीन सही २ दुरुस्त हो सकती है। बुद्धि-पूर्वक, थोड़ी सी जांच पड़ताल करने पर भी उसे पता चल सकता है कि किस कारखाने में ऊपर से लीपा-पोती करके भरपूर चार्ज कर लिया जाता है तथा किसमें कम कीमत पर ही मशीन के आभ्यन्तर मलों तक का परिशोधन करके उसे बाक़ायदा फ़िट कर दिया जाता है।

मनुष्य, जहां अन्य सब चिकित्सा प्रणालियों की परख करते रहते हैं, क्या कारण है कि वे वहां होमियोपैथी की परीक्षा करने से भी विमुख रहें? क्या उनका यह कर्त्तव्य नहीं है इस नवीन कारखाने की भी पूरी २ परख करें?

बहुत सम्भव है कि जांच पड़ताल करने पर उनके लिये होमियोपैथी का कारखाना ही सर्वोत्कृष्ट साबित हो! यदि बार २ परीक्षा करने पर उन्हें यह दृढ़ निश्चय हो जाय कि भक्ति-मार्ग के समान होमियोपैथी ही उनका सबसे अधिक हित साधन कर सकती है तो फिर उसके कारखाने को ही सदा के लिये अपनाने में उन्हें क्या संकोच हो सकता है।

भिन्न २ चिकित्सा-प्रणालियों की तुलनात्मक समीक्षा करने वाली इस लेखमाला के अध्ययन से विज्ञ-पाठकों को यह निश्चय हुवे बिना नहीं रह सकता कि होमियोपैथी ही ऐसी सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा-प्रणाली है जो हमारी शरीर-रूपी मशीन के आभ्यन्तर मलों तक का अपनी सूक्ष्म तथा गुणकारी औषधियों द्वारा पूर्ण परिष्कार करके, इसे इस योग्य बना सकती है कि यह फिर बिना किसी खट-खटाहट के अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती ही चली जाय।

तुलसीदास जी लिखते हैं:—

"प्रेम भगति जल बिनु रघुराई,
आभ्यन्तर मल कबहुं न जाई ॥"

जिस प्रकार मनुष्य के आभ्यन्तर मल, बिना भक्ति-जल के नहीं जा सकते, उसी प्रकार बुद्धिहीन की आंच से उत्पन्न होने वाले मानसिक रोग-रूपी आभ्यन्तर मल, बिना सूक्ष्म-रूप दिव्यौषधियों की भाफ के कैसे जा सकते हैं?

क्या धुंआ देने वाली बत्तियों से, अंधकार का नाश भली प्रकार हो सकता है? क्या वे छोड़े हुवे काजल के कारण अंधकार की और भी सहायक नहीं बन जातीं? तुलसी दास जी कहते हैं:—

'राम-भगति चिन्तामणि सुन्दर,
बसइ विमल जाकर उर अन्दर।
करत प्रकाश विशद दिन राती,
नहिं कुछ चाहिय दिया घृत बाती ॥

क्या इस प्रकार की भक्ति-रूपी चिन्तामणि के समान, हमें कोई ऐसी चिकित्सा प्रणाली प्राप्त नहीं है, जो स्वयं विशुद्ध-रूप होती हुई तथा बाह्याडम्बरों की अपेक्षा किये बिना, अपने दिव्य-गुणों से ही रोग-रूपी अंधकार का सर्वथा विनाश करके हमारे हृदयों को सुख के प्रकाश से पूर्णतया चमत्कृत कर सके? क्या होमियोपैथी का रत्न-प्रदीप यह कार्य्य नहीं कर रहा है? क्या उसका स्वरूप

पङ्क-कलङ्क विहीन होता हुआ पूर्ण-विशुद्ध नहीं होता ? क्या उसे किसी बाह्याडम्बर की आवश्यकता होती है ? क्या वह सदा लोकहित में निरत नहीं रहता ?

जिस प्रकार,

"राम-भगति-मणि उर बस जाके
दुःख लवलेश न सपनेहु ताके ।"

होता है, उसी प्रकार होमियोपैथी मणि-दीप से प्रकाशित अन्तःकरण में किसी प्रकार के भी रोग-जन्य दुःख का लवलेश हो नहीं रह सकता। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सिवाय होमियोपैथी के मणि-दीप के अन्य किसी प्रकार के भी प्रदीप को कदापि व्यवहार में न लावें। जिस प्रकार तुलसीदास जी राम चरित मानस के पाठकों से यह अपील करते हैं कि:—

"राम नाम मणि दीपधर, जीभ देहरी द्वार
तुलसी, भीतर बाहरेहु जो चाहसि उजियार ।"

उसी प्रकार क्या, इस लेखमाला के योग्य पाठकों से हमारी यह सानुरोध-प्रार्थना उचित न होगी कि वे भी यदि अपनी शरीर-रूपी मशीन को, बाह्य तथा आभ्यन्तर मलों से मुक्त कराना चाहते हैं तो उन्हें भी अपनी जीभ पर सिवाय होमियोपैथी की मधुमय दिव्यौषधियों के अन्य कोई कटुतिक्त औषधि कदापि धारण नहीं करनी चाहिये ?

हमारी इस अपील को अङ्गीकार करने वाले योग्य पाठकों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनको परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट देन मनुष्य शरीर रूपी मशीन, जब कभी भी भाग्यवश बिगड़ जाया करेगी तो वह महात्मा हनीमैन की इस उत्कृष्ट देन की सहायता से शीघ्र इस प्रकार सुगमता से सुधर भी जाया करेगी कि वह उनको संसार की सब देनों का पूर्णतया उपभोग कराती हुयी, उनको जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ाती ही चली जावेगी।

क्या परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट देन का इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट सुधार करने वाली होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली की देन, संसार की सर्वोत्कृष्ट देन कहलाने की अधिकारिणी नहीं है ?

क्या ऐसी अद्वितीय देन को देने द्वारा महापुरुष विश्व का अभिनन्दनीय नहीं है ?

"वदनं प्रसाद-सदनं, सदयं हृदयं, सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां—केषां न ते वन्द्याः ?"

जो अपने जीवन के प्रारम्भ-काल से ही दुःखितों को प्रसन्न-वदन करने में लगा रहा हो, जिसका हृदय दूसरों के परिताप से ही द्रवित होता रहा हो, जिसने न केवल अपनी परम कल्याणकारिणी वाणी द्वारा अपितु मधुमय महौषधों की सुधाधार द्वारा भी दूसरों का दुःख दूर करने में ही अपना समस्त जीवन समर्पण कर दिया हो, ऐसा परोपकारैक व्रत, संसार-हित-साधक, महापुरुष किसका वन्दनीय नहीं होगा ?

पाठक वृन्द ! आइये, हम सब भी मिलकर, ऐसे शिव-स्वरूप पुरुष का अभिनन्दन तथा जय-जय-कार करके अपनी वाणी को कृत-कृत्य करें। (समाप्त)

स्नान और स्वास्थ्य रक्षा

(कविराज शम्भुदत्त "सालवनीयः" प्राकृतिक चिकित्सालय-गुरुकुल कांगड़ी)

स्नान का स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि यह कह दिया जाय कि स्वास्थ्यरक्षा का मूल साधन ही स्नान है तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि प्रत्यक्ष देखने में आया है, कि जो पुरुष नियमित रूप से प्रतिदिन स्नान करते हैं, वह सदैव प्रसन्न चित्त, और आयेदिन नये २ रोगों व निराशा, निरुत्साह आलस्यादि दोषों से मुक्त और शारीरिक व मानसिक कार्य करने में चुस्त रहते हैं। उनके मुखमण्डल पर कान्ति और मस्तिष्क में शान्ति निवास करती है, शरीर विद्युत्-वत् चमकता रहता है। इसके विपरीत जो स्नान से काले नाग की तरह डरते रहते हैं और कदापि स्नान नहीं करते या नाममात्र को ऊपर पानी डाल कर झट उठ जाने को ही स्नान समझते हैं वह सदैव विविध व्याधियों में ग्रसित रहते हैं। कभी सिर में दर्द, कभी जुकाम, ज्वर, सर्दी, सन्निपात, दमा, खांसी की शिकायत, कभी बदहज़मी, कब्ज़ का आक्रमण आदि २। अस्तु क्योंकि हम केवल नाक और मुंह से ही श्वास नहीं लेते, अपितु हमारे शरीर में जो करोड़ों रोम छिद्र हैं, इनके द्वारा भी श्वास लेते हैं। जो स्नान न करते अथवा नाम मात्र का स्नान करते से मल से रुक जाते हैं। और शुद्ध वायु का प्रवेश यथावश्यकता हमारे शरीर के अन्दर नहीं होता। परिणाम स्वरूप हमारे शरीर के प्रधान अवयव फेफड़े शुद्ध वायु के अभाव में कमज़ोर हो जाते हैं।

बस फिर बनते हैं हम उपरोक्त रोगों तथा उन से भी भयङ्कर क्षय, शोथ, सन्निपात, संग्रहणी, उन्मादादि के शिकार और घूमने लगते हैं पागलों की तरह यत्र-तत्र अपने भाग्य व ईश्वर को कोसते हुए, कि हाय हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा था, ओ पापी ईश्वर; तूने हमारे साथ यह अन्याय क्यों किया, जिससे कि हमें यह दुःख देखने का नसीब हुआ आदि २।

पाठकगण, तनिक धैर्य से विचार कीजिए कि इसमें आप का भाग्य तथा ईश्वर का कौनसा अपराध है। अपितु यह सब आप का ही अपराध है क्योंकि आपने स्नान न करके उस अमृत (जल) से अपने शरीर को वञ्चित रक्खा है, जिस जल के अन्दर भयङ्कर से भयङ्कर रोगोंको समूल नष्ट करने की औषध-शक्ति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त है। देखिए हमारे धर्म ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान वेद में भी लिखा है।

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजम्। अथर्व १।४।४

अर्थ— (अप्सु अंतः) जलों के बीच में (अमृतम्) अमृत औषधि, रोग नाशक सामर्थ्य है।

अप्सु विश्वानि भेषजा। ऋग्वेद १०।६

अर्थ— (अप्सु) जलों में (विश्वानि) सब (भेषजा) दवाईयां हैं।

उपरोक्त वेद मन्त्रों के भावानुसार ही जल चिकित्सा के आविष्कर्ता जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर लुई कूने ने अनेक

प्रयोगों की आज़मा कर यह निश्चित किया है कि प्रत्येक रोग के लिये सबसे उत्तम स्नान (जल) चिकित्सा है। इस विषय पर उसने जो पुस्तक लिखी है लोगों ने उसे इतना पसन्द किया है कि अनेक भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं। लूई कूने का मत है कि मेदा ही सर्व रोगों की जड़ है। मेदे में जब गर्मी होती है तब शरीर के बाह्य अङ्ग में फोड़े फुंसी आदि निकलते हैं या गर्मी बाहर आकर सारे शरीर को गर्मी पहुंचाने लगती है। अतः मेदे की गर्मी उसमें ठंड पहुंचाने से ही मिटती है, इसी से उसने इस प्रकार ठंडे जल से स्नान करना बताया है जिस से मेदे के समीप भागों को ठंड पहुंचे। इस स्नान के लिये उसने विशेष प्रकार का टीन का टब बनाया है। परन्तु इसके बिना भी काम चल सकता है। पुरुष, स्त्री के भिन्न २ कद के अनुसार ३६ इञ्च के या उस से छोटे बड़े टीन के टब कुछ लम्बाई लिए गोल से बाज़ारों में बिकते हैं वह डा० लूई कूने कथित स्नान के लिए अच्छे हैं। डा० लूई कूने का कथन है कि इस टब का तीन चौथाई भाग जल से भर देना चाहिये, रोगी को इस प्रकार बैठना चाहिए कि उस के पैर, और धड़ जल से बाहिर रहें। नाभि से लेकर जन्घों तक भाग ही जल के अन्दर रहे। पैर किसी पीढ़े, या पटरे पर रख दिये जायें तो अच्छा हो। रोगी बिलकुल नग्न जल में बैठे। लेकिन यह स्नान ऐसी कोठरी में करना चाहिए जहां प्रकाश, वायु, तथा धूप आती हो। जल में बैठ कर रोगी को किसी छोटे खुरदरे वस्त्र से जल के अन्दर अपना पेडू- धीरे २ मलना चाहिए या अन्य से मलवाना चाहिए। इस प्रकार यह स्नान ५से ३० मिनट या इससे भी अधिक समय तक किया जा सकता है। प्रायः इससे तुरन्त ही प्रभाव होते देखा गया है। यदि रोगी को बादी हुई तो तुरन्त वायु सरने लगती है या डकारें आने लगती हैं। ज्वर हुआ तो स्नान के पांच मिनट बाद ही थर्मामीटर का पारा एक दो या अधिक डिग्री नीचे उतर आता है। इससे दस्त साफ हो जाता है। थके मनुष्य की थकान जाती रहती है। जिन्हें बिलकुल नींद नहीं आती उनका मस्तिष्क शान्त पड़ जाता है, और नींद आजाती है। जिन्हें नींद अधिक आती है वे जगने लग जाते हैं, तथा उनमें चैतन्यता आ जाती है। बहुत पुराना अंश भी स्नान तथा आहारादि के उपचार से नष्ट हो सकता है। यदि किसी को बार २ थूकने का अभ्यास हो तो उसे यह स्नान करना चाहिए। प्रारम्भ करते ही बड़ा लाभ होगा। इससे निर्बल मनुष्य भी बलवान हो जाते हैं। इससे अनेकों का संधिवात (गठिया) भी अच्छा हो गया है। रक्त स्राव के लिए यह बड़ा लाभकारी है। इससे रक्तविकार भी दूर हो जाता है। सिर की पीड़ा में कोई स्नान करे तो तुरन्त लाभ होगा। उन्मादादि रोगों पर भी इसका अच्छा प्रभाव प्रगट हुआ है। कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई भी रोग नहीं जिस पर स्नान (जल चिकित्सा) का अच्छा प्रभाव न देखा गया हो। अतः यदि आप भी रोग, औषधि, डाक्टर, वैद्यों के प्रपञ्च से बचकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते हों, तो नित्य प्रति प्रातः सदैव शीतल जल से स्नान किया करें।

उप-नयन

उस भुवन का उप नयन, जिसका सकल परिवार दीक्षित;
आज मानो हो रही दीक्षा स्वयं साकार दीक्षित।
यज्ञ का यजमान वह, जो यज्ञ मयि आचार्य दीक्षित,
आज मानों जा रही होने स्वयं संस्कृति सुसंस्कृत॥
फूल की माला न यह, पाकर जिसे मन फूल जाये
और अपने आप को भी मोह मद में भूल जाये।
नाम है उपवीत इसका, सूत्र सूल पुनीत इसका,
वेद भी गाते सनातन से रहे हैं गीत इसका॥
बन्धनों में डालकर यह बन्धनों से मुक्त करता
यज्ञ-शिशु इसका निरीक्षण प्राप्त कर दिन दिन उभरता।
चिन्ह शिव संकल्प का, अध्यात्म का शृङ्गार है यह,
यज्ञ मय जीवन भुवन का दिव्य बन्दन वार है यह॥
अस्त्र में बस ब्रह्म-दंड, न और कोई शस्त्र कर में;
दिग्विजय का नाद फिर भी गुंजरित है विश्व भर में॥

—श्री जगन्नाथ प्रसाद एम० ए०

गुरुकुल समाचार

पतझड़ के पश्चात् वसन्तागमन के कारण कुलभूमि के वृक्ष नये २ पत्तों से लद गए हैं, यहां की वाटिकाओं के आम्रवृक्षों पर गतवर्ष की अपेक्षा अधिक मौर आये हैं। आशा है मौसम के आने पर इन वृक्षों पर पर्याप्त फल लगेंगे और इस प्रकार ब्रह्मचारियों को प्रचुर मात्रा में फल दिये जा सकेंगे।

महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की वार्षिक परीक्षाएं समाप्त होने वाली हैं और सब उत्सव की तैयारी में लग गये हैं। छोटे ब्रह्मचारियों की परीक्षा उत्सव से १० दिन पूर्व प्रारम्भ होगी। इस बार का वार्षिकोत्सव कई कारणों से विशेष महत्व का होगा इस कारण उसकी प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है।

श्री आचार्य अभयदेव जी गत १४ मार्च को गुरुकुल पहुँच गये हैं और सारा कार्य भार संभाल लिया है।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर संरक्षकों की एक बड़ी संख्या यहां आती है, जो संरक्षक किसी कारणवश उस समय न पधार सकते हों वे अपने बालकों की फोटो अलंकार चित्र-शाला गुरुकुल कांगड़ी, से मंगवा सकते हैं।

स्वास्थ्य समाचार

चन्द्रकेतु ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्रजलाल १ श्रेणी चोट, कर्मवीर ३ श्रेणी चोट, रामकृष्ण ३ श्रेणी चोट, वीरेन्द्र ३ श्रेणी कास, ओम्प्रकाश १ श्रेणी कर्णशूल, गोविन्द ४ श्रेणी नेत्र रोग, विजय कुमार १४ श्रेणी चेचक।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"
Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १६ चैत्र १९९७; २८ मार्च १९४१ [संख्या ४६

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का

३९ वां वार्षिकोत्सव आगया

आर्य जनता को यह जान कर अपार हर्ष होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव १० से १४ अप्रैल तक बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया जायगा। इस पुनीत अवसर पर पधारने के लिए आप को हमारा सप्रश्रय-साग्रह निमन्त्रण है। आइये, अपने पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, इष्ट मित्रों समेत इस शान्तिधाम में पदार्पण कीजिए। प्रेम और भक्ति के साथ ज्ञान गङ्गा में गोता लगाइये। उपदेशामृत का पान करके सच्चे अमरत्व को प्राप्त कीजिए। वीतराग-महात्माओं के दिव्य-वचनों से अपने जीवन को सफल और प्रकाशमान बनाइये। पवित्र एवं हृदयहारी संगीत-सुधारस से अपनी अन्तरात्मा को उल्लसित कीजिए। इस दुर्लभ अवसर को न चूकिए और गुरुकुल चलने के लिए आज ही से तैयारी प्रारम्भ कर दीजिए।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव न सिर्फ़ आर्यसमाज का सब से बड़ा मेला है अपितु इस अवसर पर देश की तात्कालिक राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाता है। बड़े २ प्रतिष्ठित महात्माओं और नेताओं के सत्संग से जनता भरपूर लाभ उठाती है। अनेक आर्यसमाजें अपना आगामी वर्ष का प्रोग्राम यहां के उत्सव पर ही निर्धारित करती हैं। यहां के उत्सव पर आने वाले सभी महानुभाव, उत्सव के पश्चात् आध्यात्मिक भावनाओं की बहुमूल्य सम्पत्ति लेकर लौटते हैं। आप भी आइये और इस वार्षिक समारोह का अधिक से अधिक लाभ उठाइये। अपने आगामी वर्ष को अधिक सक्रिय, अधिक उत्साह पूर्ण और चिर-स्मरणीय बनाइये। अब विलम्ब न कीजिए, शीघ्र ही गुरुकुल चलने की तैय्यारी कीजिए।— आप के यहां आने पर ठहरने का, स्नान-ध्यान, खान-पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा प्रयत्न किया जायगा।

प्राचीन ऋषियों की इस तपोभूमि में, गंगा के पवित्र तट पर हिमालय के आञ्चल में स्थित,गुरुकुल की इस पुण्य-भूमि में पधारने पर आप के मानसिक कष्ट स्वयमेव दूर हो जायेंगे और आपका अन्तरात्मा निस्सन्देह प्रफुल्लित हो उठेगा। यहां आकर आप अमर-शहीद श्री स्वा०श्रद्धानन्दजी महाराज द्वारा लगाई हुई, और आचार्य रामदेव जी द्वारा परिपालित इस गुरुकुल वाटिका को लहलहाता हुआ देखेंगे। यहां आकर जीवन का उद्देश्य सफल कीजिए। गुरुकुल के पवित्र वातावरण में ऊँची आध्यात्मिक भावनाओं को उद्बुद्ध कीजिए। सायम्प्रातः ब्रह्मचारियों के वेद-मन्त्रों की ध्वनि से कर्ण-कुहरों को पवित्र कीजिए।

अपने जन्म दिन से ही गुरुकुल सब दिशाओं में निरन्तर उन्नति करता चला आ रहा है। आर्य जनता की लगन, तपस्या और उत्साह को आप यहां मूर्तरूप में देखेंगे। गुरुकुल का वर्तमान अधिकारी वर्ग, किस तत्परता से इसके उत्थान के लिए प्रयत्नशील है यह भी आप यहां आकर भली भांति देख सकेंगे। इस उत्सव को रोचक और शानदार बनाने का पूरा-पूरा यत्न यहां के कार्यकर्त्ता कर रहे हैं। हमें आशा है आर्य जनता पूरी तैयारी के साथ इस अवसर पर पधारेगी और बड़े उमङ्ग और उल्लास पूर्वक अपने तन, मन, धन से उत्सव को सफल बनाने में सक्रिय सहयोग देगी।

इसवार का उत्सव अनेक कारणों से तथा अनेक सम्मेलनों की आयोजना से ख़ास महत्व का होगा इस लिये आर्य जनता का कर्त्तव्य है कि वह भारी संख्या में एकत्र होकर पूरा लाभ उठावेगी कार्य कर्त्ताओं का उत्साह बढ़ायेगी।

११ अप्रैल को—

११ अप्रैल को विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का दीक्षान्त अभिभाषण होगा। इस अवसर पर विश्व-भारती (शान्ति निकेतन) के आचार्य क्षिति मोहन सेन भी पधार रहे हैं। प्रत्येक दृष्टि से उत्सव को सफल बनाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। पण्डाल में प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी लाऊड-स्पीकर का प्रबन्ध किया जा रहा है। अन्त में आप सब महानुभावों को हमारा सादर-साग्रह निमन्त्रण है कि इस महोत्सव पर अधिक से अधिक संख्या में एकत्र होवें।—०—०—

भारत में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली

(ले० प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार, साहित्याचार्य)

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास कर उसे उत्तम नागरिक बनाना है। यदि भारत में प्रचलित वर्तमान सरकारी-शिक्षा-प्रणाली की जांच इस दृष्टिकोण से की जाए तो अत्यन्त निराशा होती है। इस प्रणाली के प्रति निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष अधिक दबाया नहीं जा सकता। कितने ही प्रान्तों में इसके दोषों पर विचार करने तथा इस के उपायों का निर्देश करने के लिए कमीशन बनाए गए और उन्होंने अपने परामर्श पेश भी किए परन्तु अभी तक कुछ फल निकलता नहीं दीखता। बात यह है कि शिक्षा के कुछ मुख्य सिद्धान्त हैं, जब तक उनका अनुसरण नहीं किया जाएगा सफलता न होगी। मैकाले महाशय ने काले अंग्रेज़ उत्पन्न करने के लिए इस मैशीन का निर्माण किया था। इस ने कुछ समय तक खूब कार्य किया। परन्तु अब यह घिस चुकी है। दूसरी ओर भारत-वासी भी अब जाग गए हैं। फलतः काले अंग्रेज़ बनने के लिए उनकी धुन काफ़ी हद तक हट चुकी है। ऐसी दशा में इस शिक्षा प्रणाली का असफल होजाना बिलकुल स्वाभाविक ही था।

अपने, लगभग १०० वर्ष के जीवन काल में इस शिक्षा प्रणाली ने जो फल हमें दिया है वह अत्यन्त कटु है। यूरोप में शारीरिक विकास को शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग समझा जाता है किन्तु आज भारतीय शिक्षा में स्वास्थ्य रक्षा तथा शारीरिक उन्नति के लिए कोई स्थान नहीं है। शिक्षणालय प्रायः शहरों की घनी आबादी के बीच में बनाए जाते हैं जहां का दूषित वातावरण विद्यार्थी के शरीर तथा मन दोनों को अस्वस्थ करता रहता है। यूरोप में जहां प्रत्येक विद्यार्थी बाधित रूप से खेलों में भाग लेता है, उसे सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, वहां भारतीय विद्यार्थी के लिए इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। तङ्ग, अन्धेरे अस्वस्थ घरों में निवास, अपुष्टि-कारक अपर्याप्त भोजन, कुसङ्गति, निचले दर्जे के चल-चित्रपट और उस पर पढ़ाई लिखाई का अनावश्यक भारी बोझ, विद्यार्थियों के शरीर को पनपने नहीं देते। बचपन से ही वे असाध्य रोगों के शिकार होने लगते हैं। दुबला पतला शरीर आंखों पर ऐनक, बदहज़मी या बवासीर रोग विद्यार्थी के आवश्यक चिन्ह हैं। मतलब यह है कि विद्यार्थी उतना ज्ञान उपार्जन नहीं करता जितना रोग।

केवल पुस्तकें पढ़ा देने मात्र से ही यहां शिक्षकों के कर्तव्य की इति-श्री होजाती है। बालकों को बुरी आदतों से बचा कर उन्हें सदाचारी बनाने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। कोई २ शिक्षक तो उन्हें उलटे दुराचार की शिक्षा देने से भी नहीं चूकते।

घरों में माता या तो प्रायः अशिक्षित ही होती है। यदि कुछ शिक्षित भी हुई तो उसे गृह कार्यों से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती, जिससे कि वह बच्चे की ओर ध्यान दे सके। इस प्रकार की उपेक्षा से बच्चे का चरित्र बिगड़ता ही चला जाता है। किसी २ गरीब बालक को विद्यालय से लौट कर घर के कार्यों में सहायता करनी पड़ती है जिससे वह अपना सारा ध्यान एकमात्र पढ़ाई में नहीं लगा सकता। जिन विद्यार्थियों को बोर्डिंग हाउसों या होस्टलों में रहना पड़ता है उनको अवस्था और भी अधिक खराब होती है। इन आश्रमों का वातावरण प्रायः अत्यन्त दूषित होता है। पूर्ण नियन्त्रण के अभाव में बहुत सी बुराइयां इन आश्रमों में उत्पन्न हो जाती है। जिन्हें न तो कोई रोकने का यत्न ही करता है न वे रोकी ही जा सकती हैं। इन आश्रमों के विद्यार्थी और भी अधिक उच्छृङ्खल आचारहीन तथा शरारती हो जाते हैं। वे प्रायः किसी भी दुर्व्यसन से बचे नहीं रहते। इन आश्रमों में माता पिता की दृष्टि से दूर रह कर अमीर, फिज़ूलखर्च, बिगड़े हुए, फैशनेबल विद्यार्थियों की देखा देखी देहातों के सीधे सादे विद्यार्थी भी इन बुराइयों में फंस जाते हैं। विद्यार्थियों में दुराचार सम्बन्धी रोगों की संख्या तीव्र-गति से बढ़ रही है। शृङ्गार की सामग्री जितनी शहरों के विद्यार्थी खरीदते हैं उतनी साधारण सद्गृहस्थ महिलाएं भी नहीं खरीदतीं। नए से नए फैशन के शिकार पहले-पहल ये विद्यार्थी ही होते हैं। इस से यह स्पष्ट है कि देश के वे नवयुवक जिन्होंने जातीय भवन की नींव में एक दिन पत्थर का काम देना है, किस प्रकार खोखले और थोथे हो जाते हैं। क्या ये कभी राणा प्रताप और छत्रपति शिवा जी की तरह देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपने जीवन की आहुति दे सकते हैं।

सरकारी शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षित-नवयुवकों का मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो सकता। इस का सबसे बड़ा कारण शिक्षा का माध्यम मातृभाषा का न होना है। विद्यार्थी के जीवन का बहुत सा अमूल्य भाग तो केवल अंग्रेज़ी भाषा सीखने में ही व्यय हो जाता है। बी. ए. तक अंग्रेजी भाषा आवश्यक विषय के रूप में पढ़नी पड़ती है। तब भी उस पर विद्यार्थी को पूरा अधिकार प्राप्त नहीं होता। बोलचाल आदि के लिए काम चलाऊ अंग्रेजी सीख लेने पर भी उसमें गम्भीर तथा कठिन विषयों का अध्ययन वास्तविक अर्थों में किया ही नहीं जा सकता। भारतीय विद्यार्थियों के साथ किसी अन्य स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी की तुलना तो कीजिए, जिसे ज्ञान विज्ञान सीखने के लिए किसी विदेशी भाषा पर अपनी शिक्षा का सबसे अधिक समय खोना पड़ता है। यही कारण है कि अन्य देशों में साधारण ज्ञान तथा उच्च शिक्षा का स्टैंडर्ड यहां की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है।

इसका दूसरा दोष यह है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी का सम्बन्ध विद्यालय में केवल कुछ घण्टों के लिए होता है। ये अध्यापक भी श्रेणी में अच्छी तरह से नहीं पढ़ाते जिससे कि विद्यार्थी घर पर बुलाकर उनसे पढ़ें और इस प्रकार उन्हें आर्थिक लाभ हो। साथ ही यह भी बात है कि जब तक अध्यापक तथा विद्यार्थी में गुरु शिष्य की

पवित्र भावना न हो और विद्यार्थी गुरुओं के निकट सहवास में रह कर उनके आचार विचारों से निरन्तर कुछ न कुछ सीखते न रहें तब तक उनका विद्याभ्यास पूर्ण हो ही नहीं सकता। पुस्तकों तथा मौखिक उपदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा प्रभाव उच्च जीवन का पड़ता है। किन्तु भारतीय विद्यार्थी इससे सर्वथा वञ्चित रहता है यह उसका बड़ा दुर्भाग्य है ?

यह शिक्षा विद्यार्थी को योग्य बनाने के बदले अयोग्य बना देती है, अपने हाथ से काम करने में उसे शरम आती है, परिश्रम वह कर नहीं सकता। नौकरी आजकल मिलती नहीं, कला कौशल शिक्षणालयों में सिखाए नहीं जाते, व्यापार के लिये साधन नहीं, विद्यार्थी जीवन में आदत अपव्यय की पड़ जाती है, कौलिज की फीस देने से घर का दिवाला निकल जाता है आत्म-विश्वास है नहीं परिणाम यह होता है कि एक दिन वह आत्मघात द्वारा अपने जीवन के दुःखान्त नाटक का उपसंहार कर देता है।

इस दूषित शिक्षा का एक अत्यन्त विषमय प्रभाव यह हुआ है कि हम युरोपियन जातियों के मुकाबिले में अपने आपको हीन समझने लगे हैं। भारतीय विद्यार्थी अपने पूर्वजों के उज्वल इतिहास को, उनकी संस्कृति, उनकी सभ्यता को या तो जानता ही नहीं, यदि जानता है तो बिलकुल अशुद्ध। उसे यही पढ़ाया जाता है कि वेद गड़रियों के गीत हैं। भारतीयों का कोई धर्म कोई सदाचार कोई राज्य कभी रहा ही नहीं। भारत का जल वायु तथा भौगोलिक परिस्थितियां ही ऐसी है जिनमें कोई जाति किसी प्रकार की उन्नति कर ही नहीं सकती। इसलिए भारत सदा से बाहर के आक्रमण-कारियों द्वारा लुटता पिटता और जीता जाता रहा है। वह सदा से पराधीन रहा है। छोटी श्रेणियों से लेकर ऊपर तक यही विश्वास करने लगते हैं कि हमारे पाश्चात्य गुरु जो कहते हैं वह अक्षरशः सत्य है। हमारे पूर्वज जंगली थे, उन्होंने कभी कोई आविष्कार नहीं किया, धार्मिक या राजनीतिक उन्नति नहीं की, विजय नहीं की, दार्शनिक विचार, आध्यात्मिक चिन्तन नहीं किया। प्रकृति, जीवात्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी समस्याओं ने उनके ध्यान को कभी आकृष्ट किया ही नहीं। हम कपिल, व्यास, गौतम, कणाद, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, कालिदास आदि के विषय में उतना नहीं जानते जितना एरिस्टोटल, प्लेटो, सिकन्दर, शेक्सपीयर, मिल्टन, न्यूटन, कण्ट आदि के विषय में जानते हैं। इस शिक्षा ने सचमुच ही इन थोड़े से दिनों में हमारे हृदय को अभारतीय बना दिया है ! हमें अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों और महापुरुषों से प्रेम नहीं रहा। इस अनर्थ परम्परा की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। अब कालिजों में सह शिक्षा का भी परीक्षण और प्रचार हो रहा है। अमेरिका में इस सह शिक्षा ने जो गुल खिलायें हैं उन्हें देख कर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। हम अन्धे होकर यूरोप का अनुकरण कर रहे हैं। हमारी यह मानसिक दासता हमें कहां डुबाएगी ? नहीं कहा जा सकता।

हमारी औसत आयु २३, २४ वर्ष है। उनमें से २२ वर्ष के लगभग तो यहां की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में ही लग जाते हैं। उसके पश्चात् फिर विलायत जाकर भी न पढ़े तो क्या पढ़ें ? क्योंकि अच्छी नौकरी यदि मिल सकती है तो विलायती डिग्री के बल पर ही। हिन्दी और संस्कृत का उच्च अध्ययन भी विलायत में हो, इससे बढ़कर भारतीय शिक्षा प्रणाली का उपहास क्या होगा ? इतनी दौड़धूप करने के बाद भी मक्खी ने छींक दिया तो देखते ही रह जाते हैं। नौकरियां अब परीक्षाओं और योग्यता के आधार पर नहीं किन्तु जातीय अनुपात के आधार पर मिलने लगी हैं। जातीय अनुपात का आधार विचित्र गोरखधन्धा है। वह हमारी समझ में नहीं आता। यदि ईसाई और मुसलमान कम हैं तो कमी के कारण, और यदि अधिक हैं तो अधिकता के कारण नौकरी उन्हें ही मिलनी चाहिए। हिन्दू बड़े भाई हैं बहुपक्ष के हैं इसलिए उन्हें त्याग करना ही चाहिए।

यह तो हुई शिक्षा की बात, अब परीक्षा को लीजिए। प्रतिवर्ष परीक्षा परिणाम निकलने के पश्चात् असफल-विद्यार्थियों द्वारा आत्मघात करने के समाचार सुनने में आते रहते हैं। काली माई बकरों और भैंसों की बलि मांगती है तो परीक्षा-पिशाची नर बलि से कम में संतुष्ट नहीं होता। "विद्ययामृतमश्नुते" विद्या कभी अमृत-प्राप्ति का साधन थी आज वह मृत्यु का कारण बन गयी है।

शिक्षा-प्रणाली के दोष से परीक्षा को अनुचित महत्व मिल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिससे विद्यार्थी प्रति दिन याद करके साथ ही परीक्षा दे दें। परीक्षा क्या है ? रक्त-पिपासु महाजन का चिट्ठा है, जिसे वर्ष या दो वर्ष बाद चक्रव्याज के साथ अपना स्वास्थ्य, अपने शरीर का रक्त देकर चुकाना पड़ता है। सब शिक्षाविज्ञ स्वीकार करते हैं कि प्रचलित परीक्षा-पद्धति योग्यता की वास्तविक कसौटी नहीं। इसमें कुछ तो स्मृति शक्ति का खेल है, कुछ भाग्य की करामात, तो भी "पञ्चों का कहा सिर माथे, पर परनाला वहीं रहेगा।" अभागा विद्यार्थी एक वर्ष एक पर्चे में अनुत्तीर्ण होता है तो दूसरे वर्ष दूसरे में। शिक्षा के कर्णधार कसम खाए बैठे हैं कि जब तक सब पर्चों में एक साथ उत्तीर्ण न होगा आगे कदम न बढ़ाने देंगे। कोई इसके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहे तो नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है ? जो इस चक्की में से सही सलामत निकल गए, उन्हें क्या गरज पड़ी है कि इसके विरुद्ध आवाज उठाएं, जो इस में से निकले नहीं उनकी सुनता कौन है ?

समझ और स्मृति शक्ति में बड़ा अन्तर है। भारतीय विद्यार्थी के लिए अंग्रेजी भाषा सीखना, उतना समझने पर आश्रित नहीं जितना रटने पर। अपनी मातृभाषा में विषय का कितना ही विशद ज्ञान क्यों न हो, यदि विद्यार्थी उसे शुद्ध अंग्रेजी में नहीं लिख सकता तो परीक्षा की भूल-भुलय्यां से निकल सकना उसके लिए असम्भव है। मतलब यह कि भारतीय विद्यार्थी के लिए आज मातृभाषा नहीं किन्तु अंग्रेजी ही "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देवः" है। संस्कृत या फारसी की

गुरुकुल

१६ चैत्र शुक्रवार १९९७

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की मौलिक विशेषताएं

(प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी)

यदि किसी से प्रश्न किया जाय कि 'आधुनिक शिक्षा प्रणाली' की क्या विशेषता है तो इसका उत्तर सिवा इसके और क्या हो सकता है कि यह शिक्षा प्रणाली 'आधुनिक' है। जिस शिक्षा प्रणाली की एक मात्र विशेषता यह है कि वह 'आधुनिक' है आज कल चल रही है—यह अवस्थाएं बदलने पर कभी भी पुरानी, कल की, रद्दी शिक्षा प्रणाली हो सकती है। इस प्रणाली की अपनी कोई विशेषता या खूबी नहीं है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली अभीतक बराबर जारी है, इसका कारण यह नहीं है कि अन्य प्रणालियों के साथ दीर्घ काल तक संघर्ष होने के बाद इसने अपनी उपादेयता को सिद्ध कर दिया है, बल्कि इसके विपरीत इसका कारण यह है कि इसे किसी संघर्ष में से गुजरना ही नहीं पड़ा। संघर्ष में से न गुजरने का सबब यह नहीं है कि इस प्रणाली का क्रमशः स्वाभाविक विकास हुआ है। यह प्रणाली तो विदेशियों द्वारा पराधीन लोगों पर जबरदस्ती लादी गई है। यही वजह थी कि जब जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में राष्ट्र के भविष्य निर्माण की बागडोर आई तब शिक्षा विभाग में विशेष रूप से एक महान् आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। अचानक ही सब को इस बात का तीव्रता से भान हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में हम किसी स्पष्ट आदर्श का अनुसरण नहीं कर रहे, यों ही अन्धेरे में रास्ता टटोल रहे हैं। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में एक वर्ष से कम समय तक देश की बागडोर रही लेकिन इस थोड़े से अर्से में ही प्रचलित शिक्षा पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन करने के लिए अनेक योजनाएं देश के विचार-शील विद्वानों द्वारा पेश की गईं। अगर राष्ट्रीय सरकार के इस्तीफे की बदौलत बिल्कुल अचानक ही कांग्रेसी मन्त्री मण्डल न टूट जाते तो अवश्य ही शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की प्रक्रिया जारी रहती और हम अनेक विफलताओं और सफलताओं के पश्चात् वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर भारतीय मस्तिष्क की छाप डालकर नूतन पद्धति का आरम्भ कर लेते। भारत के ऋषि मुनियों द्वारा आविष्कृत गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्शों और सिद्धान्तों से वर्तमान समय में शिक्षा पद्धति के निर्माण में कहां तक और क्या सहायता मिल सकती है इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए इस लेख में कुछ विवेचन किया जायगा।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रथम विशेषता 'कुल' की भावना है। 'गुरुकुल'—इस शब्द का अर्थ है 'गुरु का घर'। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श के अनुसार विद्या के क्षेत्र में पदार्पण करते ही बालक मन, शरीर और आत्मा से अपने आप को गुरु के प्रति समर्पित कर देता है। विद्या से बालक का द्वितीय जन्म होता है। बालक का पहला जन्म तब होता है जब मां बाप के द्वारा उसका स्थूल देह इस संसार में आता है, और अब वह गुरुकुल में गुरु के सान्निध्य और सतत निरीक्षण में रहकर ज्ञान ज्योति के द्वारा पुनः आविर्भूत होता है। प्राचीन ऋषियों ने इस विचार को आलंकारिक भाषा में सुन्दरता के साथ प्रगट किया है: आचार्य ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में रखता है, और कठिन तपस्या के पश्चात् उसे जगत् के सम्मुख उपस्थित करता है। इस प्रकार बालक द्विजन्मा बनने के लिए गुरु को अपने पिता के रूप में वरण करता है। इस वरण के द्वारा गुरु के परिवार का बालक शिष्य भी एक सदस्य बन जाता है। भारतीय मनीषियों का कथन है कि वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति गुरु और शिष्य के इस निकट सम्बन्ध के आधार पर ही हो सकती है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार बालक मां बाप का घर छोड़ कर गुरु के घर में आ जाता है। यहां ध्यान देने योग्य चीज़ यह है। बालक अपने मां बाप से जुदा होता है, लेकिन गुरुकुल पद्धति बालक को घरेलू वातावरण से अलग हुआ नहीं देखना चाहती, घरेलू वातावरण को जारी रखने के लिए यह माता पिता के घर के स्थान पर बालक के लिए गुरु के घर का प्रबन्ध करती है। समाज के हित की दृष्टि से बालक को उत्तम से उत्तम शिक्षा-गृह मिलना चाहिये। सब घरों को आदर्श बना सकना एक दुष्कर कार्य है, किन्तु शिक्षागृह क्योंकि व्यवस्था और नियन्त्रण द्वारा शासित होते हैं इस लिए किसी हद तक इन्हें आदर्श के समीप ले जाया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य यह है कि विद्यालय में रहते हुए जहां विद्यार्थी ज्ञान लाभ करें वहां वे घरेलू वातावरण से वंचित न रहते हुए उसके फायदों को भी पूरी तरह से उठा सकें। प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि गुरुकुल के कठोर वातावरण में रहते हुए बालक घर के जीवन में उपलब्ध होने वाले स्नेह रस को प्राप्त नहीं कर सकता। लेकिन असल में वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। गुरुकुल में रहकर बालक अपने सब साथियों के साथ भाई का व्यवहार करना सीखता है, गुरुकुल में आकर उसे अपने सीमित घर की अपेक्षा एक विशाल घर प्राप्त हो जाता है, जहां उसके बड़े और छोटे भाई हैं और गुरुजन भी हैं।

परन्तु प्रश्न होता है कि एक अर्थ में हीन दरिद्र गुरु अपने इतने बच्चों का भरण पोषण कैसे कर सकता है? इसे समझने के लिए हमें दो बातें ध्यान में रखनी चाहिएं। पहली है, गुरु का अपना आदर्श और दूसरी तात्कालिक समाज रचना का ढांचा। भारतीय विचार परम्परा के अनुसार गुरु की दृष्टि में आर्थिक समृद्धि का विशेष महत्व नहीं है, उसके लिये अध्यात्मसम्पद् सर्वोपरि वस्तु है। दिन रात एक करके देश के होनहार

युवकों लिये गुरु उग्र तपस्या करता है, इस अवस्था में स्वभावतः देश उसकी भौतिक आवश्यकताओं से विमुख नहीं रह सकता। अफ़लातून अपने ग्रन्थ में तत्वज्ञानियों का वर्णन करता है। ये तत्वज्ञानी स्वेच्छापूर्वक ग़रीबी की ज़िन्दगी बसर करते हैं। इसमें शक नहीं कि ग़रीबी में तकलीफ़ है। लेकिन अपनी मर्ज़ी से अख़्त्यार की हुई ग़रीबी में तकलीफ़ के बदले उलटा आराम है, और गौरव है। भारत वर्ष के गुरु लोग अफ़लातून के आदर्श को मूर्तरूप में चरितार्थ करने वाले असली तत्वज्ञानी होते थे जिनके जीवन का एक-मात्र ध्येय सीखना और सिखाना होता था। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि वे अपने जीवन में भूखे, प्यासे और तंग हाथ होते थे। उनके रहन सहन का पैमाना दूसरे धन्धे करने वाले लोगों के समान ही होता था। अन्तर केवल इतना ही था, जहां सामान्य लोगों के सामने धन ही मुख्य लक्ष्य होता था वहां तपोवनों में निवास करने वाले गुरुओं का ध्येय नवसन्तति में ज्ञान का सृजन करना होता था। आजकल भारतीय शिक्षक के अध्यवसाय का क्षेत्र स्कूल के लिए टेक्स्ट बुक तैयार करना है, क्योंकि टेक्स्ट बुक लिखकर वह पैसा कमा सकता है। इस प्रकार के शिक्षकों से किसी मौलिक और प्रेरणा पूर्ण साहित्य की आशा रखना व्यर्थ है। प्राचीनकाल में भारतीय शिक्षक का आदर्श कुछ और ही था। ज़रूरत की सामान्य वस्तुओं से सन्तुष्ट रहना ही उसे अपने विशिष्ट जीवन के अनुकूल प्रतीत होता था। इतना ही नहीं, वह अपना कर्त्तव्य समझता था कि अपने विद्यार्थियों के लिए बिना किसी प्रकार के शुल्क के भोजन, वस्त्र तथा निवास स्थान का प्रबन्ध करे। यह तभी सम्भव था जब कि शिक्षण का सामाजिक संगठन में गौरवास्पद स्थान था प्रत्येक गृहस्थ का यह फ़र्ज़ था कि वह अपनी आमदनी के एक निश्चित भाग को इन निःशुल्क शिक्षा-केन्द्रों के लिए सुरक्षित रखे। इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की दूसरी विशेषता यह है कि गुरु के घर में बालकों को भोजन वस्त्र निवास आदि का खर्च लिए बग़ैर सब प्रकार से मुफ्त शिक्षा दी जाय। समाज को तथा शासन करने वाली सरकार को बिना किसी संकोच के उदारता पूर्वक इन निःशुल्क विद्या-मन्दिरों की सहायता करनी चाहिये। इसी रीति से हम मातृभूमि के पुत्रों में विशाल भ्रातृत्व के उदार भावों को भर सकते हैं। किसी भी शिक्षा प्रणाली में सब बालकों को उन्नति के लिए समान अवसर तभी हो सकता है जबकि ज्ञान का वितरण बिना मूल्य के हो और सामाजिक संगठन ऐसा हो जिसके आधार पर माता पिता को बालकों की शिक्षा के भार से मुक्त किया जा सके। इन्हीं अवस्थाओं में मानव-समाज अपने रत्नों से पूरा फ़ायदा उठा सकता है, अन्यथा किसे मालूम है कि कितनी ही विकासोन्मुख कलियां फूल बनने से पहले ही विषम परिस्थितियों में आकर सहसा काल-कवलित हो जाती हैं।

जिस प्रकार कुल भावना के साथ शुल्क सहित शिक्षा का सामञ्जस्य नहीं इसी प्रकार अमीरी गरीबी का भेद भी एक कुल में रहने वाले बच्चों के साथ नहीं किया जा सकता। कुल कुल ही है; उसके सब सदस्यों के अधिकार समान हैं। पुत्रों के साथ असमान व्यवहार करने वाला सच्चा पिता नहीं है। इस प्रकार कुल भावना के आधारभूत सिद्धान्त से ही सम्बद्ध तृतीय विशेषता गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का यह है कि सब बच्चों के साथ खानपान कपड़े आदि में एकसा व्यवहार होना चाहिए। समान बर्त्ताव का मतलब यह है कि कुलीनता या मां-बाप की ऊंची हैसियत के कारण किसी बालक को शिक्षणालय में विशेष महत्व नहीं दिया जायगा। असली गुरु का कुल वह है जहां के वातावरण में बालक अपनी जात पात तथा ग़रीब-अमीर के भावों को शीघ्र ही भूल जाय। गुरुकुल में रहने वाले सब सदस्य विद्या की अधिष्ठातृ देवता सरस्वती के उपासक हैं, कुल-पिता सबका समान रूप से संरक्षक है। गुरुकुलीय वातावरण का यह अद्भुत प्रभाव ही था जिसके कारण सुदामा और कृष्ण में अनन्य सौहार्द उत्पन्न हो सका जब कि दोनों के घर की हालत में आसमान-पाताल का फ़र्क था। पारिवारिक उपाधिनामों के समान प्राचीनकाल में एक ही गुरु के शिष्यों के भी एक जैसे उपाधिनाम होते थे, क्योंकि गुरु के घर में राजकुमार और कृषक पुत्र दोनों के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के समान अवसर होते थे। ठीक दिशा में विकास करने के लिए सब को सदृश अवसर देना अत्यन्त आवश्यक है और यह सब के साथ तुल्य व्यवहार के सिद्धान्त को मानकर ही हो सकता है। सिर्फ़ उचित बर्त्ताव के द्वारा ही कितने झगड़े शान्त किये जा सकते हैं। बच्चों के साथ दूसरे लोग क्या व्यवहार करते हैं, इसके प्रति वह उदासीन नहीं होता। धनी लड़का अगर सेव ख़रीद कर खाता है और ग़रीब इच्छा रहते हुए भी ग़रीबी के कारण सेब नहीं खा सकता, अपनी इस अवाञ्छनीय स्थिति की सतत अनुभूति के कारण ग़रीब लड़के की उन्नति के स्वाभाविक मार्ग में अनेक बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं। इसलिये बालक की बुद्धि के सर्वतोमुखी विकास के लिए जहां शिक्षा के क्षेत्र में निःशुल्क और खुला अवसर होने की ज़रूरत है, वहां खानपान आदि में समान बर्त्ताव होना भी वैसा ही ज़रूरी है।

गुरुकुल पद्धति की चतुर्थ विशेषता सहनशीलता और तपस्या है। अथर्व वेद के २६ मन्त्रों वाले ब्रह्मचर्य-सूक्त में १५ बार 'तपः' शब्द आया है। इससे ज्ञात होता है गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारी या विद्यार्थी के लिए तपस्या पर कितना अधिक बल दिया गया है। यदि सब बालकों का रहन सहन सर्वथा एक ही पैमाने पर होगा तो स्वभावतः उन पर होने वाला खर्च सीमित होगा। इसके अतिरिक्त ऊंचे प्रकार का महंगा रहन सहन बालक के विकास के भी अनुकूल नहीं पड़ सकता। बच्चों को इस योग्य बनाना चाहिये कि वे भावी जीवन में आने वाली कठिन दशाओं का सामना करने में समर्थ हों। इस क़िस्म की तालीम स्कूल के सिवा उन्हें और कहां मिल सकती है।

स्कूल या शिक्षणालय ही ऐसा स्थान है जहां बालक धैर्य, उत्साह, कार्य शक्ति आदि जीवन के कठिन और दुःखद प्रसंगों में काम आने वाले गुणों को अपने अन्दर समुन्नत कर सकते हैं। अगर ऐसे प्रसंग आते हों नहीं तो सब से अच्छी बात है, लेकिन आते हैं तो उनका कड़ा मुकाबला करने के लिए ताकत जमा की हुई होनी चाहिये। यदि हमारे युवक जिन्दगी के बदलते हुए हालात के साथ कदम न मिलाकर पीछे हटते हैं तो यह हमारी शिक्षा-पद्धति का दोष है। गुरुकुल के ब्रह्मचारी ने सैनिक बनना है। वह कठोर काष्ठ-शैया पर शयन करता है। मोटा खाता है, सर्दी गर्मी बर्दाश्त करता है, जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं को पूरा करके संतुष्ट रहता है। सब प्रलोभनों को वश में करता है, ये सब बातें उसे इस लायक बनाती हैं कि वह समाज का ऐसा योग्य सेवक बन सके जिसे अपनी सेवा कराने के लिये किसी अन्य व्यक्ति की जरूरत न हो। आजकल के विद्यार्थी इतना नाजुक जीवन बिताते हैं कि आपत्ति के लिए वे क्षमता का जरा भी संग्रह नहीं कर पाते। प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता विलियम जेम्स का तपश्चर्या के विषय में कथन है कि नियमित और वीरतापूर्ण तपश्चर्या बीमे की उस किस्त के समान है जो घर और सामान की सुरक्षा के लिए दी जाती है। इस किस्त से तत्काल कोई लाभ नहीं होता और सम्भव है समस्त जीवन में कभी लाभ न हो, लेकिन अगर अचानक आग लग जाए तो मेहनत से अदा की हुई किस्त सर्वनाश से बचाने में उपाय बन सकती है। इसी प्रकार जिस आदमी ने शारीरिक कष्ट सहन किये हैं ध्यान को एकाग्र करके अपने वश में किया है और कम से कम वस्तुओं से काम चलाने का प्रयत्न किया है एक शब्द में जिसने 'तप' किया है, वह तूफान आने पर स्तम्भ के समान अचल होकर खड़ा रहेगा और नाजुक तबीयत वाले उसके साथी भूसे की तरह इस आंधी में सर्वनाश की लपेटों से न बच कर अदृश्यता में विलीन हो जाएंगे।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की पञ्चम विशेषता चरित्र-निर्माण है। शिक्षणालय के प्रधान को प्राचीन समय में आचार्य कहते थे। निरुक्त-शास्त्र में आचार्य का लक्षण किया गया है 'आचारं ग्राहयतीति आचार्यः' अर्थात् जो शिष्यों को उत्तम चरित्र की शिक्षा दे वह आचार्य है। गुरुकुल में आचार्य का प्रधान उत्तरदायित्व ब्रह्मचारी के आचार को समुन्नत करना है। आजकल यह कार्य महत्व-पूर्ण होता हुआ भी प्रायः सब जगह इसकी उपेक्षा की जाती है। स्कूल के मास्टर का सारा ध्यान इम्तिहान के नतीजे की तरफ होता है, वह बालकों के वैयक्तिक चरित्र की ओर कोई दृष्टिपात ही नहीं करता। इसका मुख्य कारण यह है कि स्कूलों में विद्यार्थियों का अध्यापकों से सिर्फ़ किताबी सम्बन्ध होता है, पढ़ने पढ़ाने के बाद दोनों का एक दूसरे से मतलब नहीं रहता। लेकिन इसके विपरीत गुरुकुल में क्योंकि गुरु शिष्य २४ घंटे साथ रहते हैं अतएव उनका परस्पर गाढ़ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। गुरुकुल में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' कहकर पुकारा जाता है। इस शब्द के अनेक अर्थ किये जाते हैं किन्तु आमतौर पर वीर्य रक्षा के सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग होता है। आचार्य शिष्यों के सर्वांगीण विकास के लिये यत्न करते हुआ उनके ब्रह्मचर्य की ओर विशेष ध्यान रखता है। मनोविज्ञान का प्रसिद्ध विद्वान् फ्रायड मनुष्य की काम-प्रवृत्ति को सार्वत्रिक और सहज-प्रवृत्ति स्वीकार करता है, इसलिये जो शिक्षा पद्धति इस ओर से विमुख रहती है क्या उसे हम पूर्ण शिक्षा पद्धति कह सकते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि यह एक नाजुक और कठिन विषय है, लेकिन इसी लिये तो इसे आवश्यक समझ कर प्रत्येक शिक्षक को इस पर गौरव करना चाहिये। बालक के जीवन को इससे अधिक विक्षुब्ध करने वाली और कोई प्रवृत्ति नहीं है, अतएव शिक्षक को धैर्यपूर्वक इसका और इससे सम्बद्ध समस्याओं का समाधान करना चाहिये। पुरातन गुरुओं में आचार्य इस नाजुक विषय को साहस-पूर्वक अपने हाथ में लेता था और उचित दिशा में कामवेग को नियन्त्रित करके बालक को उसके मानस में इसके कारण उत्पन्न होने वाली अनेक जटिलताओं से बड़ी सफलता के साथ बचा ले जाता था। और सब बातों को रहने भी दिया जाए तो भी प्राचीन भारतीय शिक्षक के अकेले इस कार्य को देखते हुए आधुनिक शिक्षक के सामने उसकी श्रेष्ठता बड़ी आसानी से समझ में आ सकती है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सार यह है कि बिना किसी शुल्क के भोजन, वस्त्र, निवास आदि का प्रबन्ध करते हुए बालक को गुरु के परिवार का पूर्णरूप से अंग बनाना उसे सादे रहन सहन और तपस्या के वातावरण में रखना तथा चरित्र निर्माण करते हुए उसके बौद्धिक विकास में सहायक बनना। इन सब बातों के पश्चात् लिखने पढ़ने की बारी आती है। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की इन विशेषताओं को आवश्यक परिवर्तनों के साथ आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जा सकता है। मैं यह मानता हूं कि एक पुरानी प्रणाली हूबहू उसी ढंग से बीसवीं सदी में जारी नहीं की जा सकती, किन्तु गुरुकुल प्रणाली कोई बंधी हुई ठोस प्रणाली नहीं है, इसके कुछ आदर्श हैं, वे भिन्न २ परिस्थितियों में भी लागू हो सकते हैं। ये आदर्श और विचार नित्य हैं। आजकल भी अवस्थाओं से बाधित होकर अनजाने में शिक्षा-विद इन्हीं आदर्शों की ओर तेजी से कदम बढ़ा रहे हैं। शिक्षालय में घरेलू वातावरण होना यह जो गुरुकुल प्रणाली की विभेदक विशेषता है हरेक प्रणाली इसे अपनाना चाहती है और चाहेगी, क्योंकि वास्तविक शिक्षा केवल इसी उपाय द्वारा समुन्नत हो सकती है।

पृष्ठ ३ शेष

ऊंची परीक्षा देकर केवल अंग्रेज़ी में बी. ए. और एम. ए पास करने पर वह विद्यार्थी ग्रेजुएट बन सकता है जिसने एक भी विज्ञान नहीं पढ़ा, किन्तु मातृ-भाषा द्वारा कई विज्ञानों की उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी वह अपठित ही माना जाता है। हमारी लज्जा और वेदना की पराकाष्ठा हो जाती है जब हम अपने बड़े २ विद्यादिग्गजों और शिक्षा के कर्णधारों के मुख से यह सुनते हैं कि भारत में मातृ-भाषा द्वारा उच्च शिक्षा नहीं दी जा सकती। क्या परमात्मा ने संसार भर में छांट कर हिन्दी को ही ऐसा बनाया है कि उसमें वह टूटी फूटी शिक्षा भी नहीं दी जा सकती जिसे पूर्ण करने लिए विलायत जाने की आवश्यकता शेष रह जाती है। सचाई तो यह है कि हम अपनी भाषा का आदर करना ही नहीं जानते। जब गुरुओं की यह मनोवृत्ति है तो शिष्यों का कहना ही क्या ?

परीक्षक विद्यार्थी की वास्तविक योग्यता के विषय में वैयक्तिक रूप से कुछ भी नहीं जानता। वह केवल पर्चे को देखता है। एक एक परीक्षक को सैकड़ों पर्चों की घास काटनी होती है; फिर परीक्षक है भी मनुष्य ही। वह अपनी तात्कालिक मनोवृत्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता। उसका प्रभाव उसके अङ्क देने पर पड़ता है। कितनी ही बार परीक्षक के भ्रम या असावधानता से विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते हैं किन्तु उन्हें मुंह खोलने का अधिकार नहीं। खून के अपराधी को अपील का अधिकार है पर परीक्षार्थी उससे भी वञ्चित है। एक विषय में कुछ नम्बरों की कमी रही नहीं कि मामला फिर ३६५ दिन पीछे जा पड़ता है। गरीब विद्यार्थी के लघु जीवन के वर्ष कितने दयनीय रूप में सस्ते हैं! हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि हम अपने नव-युवकों के जीवन के श्रेष्ठतम भाग को व्यर्थ के प्रपञ्चों में व्यय न कर, उन्हें शीघ्र योग्य बना राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य में लग जाने दें।

धन, जीवन, स्वास्थ्य, सदाचार, स्वधर्म, और स्वसंस्कृति को खोकर प्राप्त किए हुए तथा-कथित शिक्षा के ये कुछ अक्षर कितने महंगे हैं ? इसका अनुमान कीजिए। देश में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली की असफलता को सिद्ध करने के लिए अब भी क्या किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है ?

महात्मा हनीमैन का अभिनन्दन

(१)

हो हनीमैन का जुग जुग जग में,
अभिनन्दन अरु जयजयकार।
जो हुआ लोकहित परमेश्वर का,
पञ्चम में आंशिक अवतार॥

(२)

बलवत्तर सम-शक्ति हो सके,
स्वल्प शक्ति की प्रशमनहार।
यह नियम प्रकृति का हमें सिखाकर,
किया जगत् का अति उपकार॥

(३)

यह देह हमारा हम हैं देही,
आत्म-शक्ति-आकर साकार।
यह ज्ञान कराकर किया हमारा,
रोगपाश से परमोद्धार॥

(४)

हम सूक्ष्म शक्ति हैं, सूक्ष्मशक्ति ही,
कर सकती है हम पर अधिकार।
यह सूक्ष्म शक्ति के तीर मार कर,
कर देता उसका संहार॥

(५)

अब अस्त्र शस्त्र का काम नहीं,
कटु तिक्त औषधी हैं बेकार।
जब मथा गया यह जीव जन्तुमय-
सागर, अमृत हुआ तय्यार॥

(६)

यह अमृत पीकर तुम प्यारो,
रोग-मुक्त हो भली प्रकार।
उस शिव-स्वरूप ऋषि हनीमैन का,
करो न मिल सब जय जय कार॥

डा० ओउम्प्रकाश जी
विद्यालंकार।

गुरुकुल समाचार

पिछले दिनों ऋतु की विषमता का जो बुरा प्रभाव ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर पड़ा था वह अब सर्वथा दूर हो चुका है। अब ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। गर्मी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। सब कुलवासी वार्षिकोत्सव की तैय्यारी में लग गए हैं।

कांगड़ी ग्राम पाठशाला का सफल उत्सव

गत २२, २३ मार्च को कांगड़ी ग्राम पाठशाला का उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। २२ ता. को आसपास के गांव में घूम २ कर भजन मण्डलियों ने प्रचार किया। २३ ता. को उत्सव में उपस्थिति पर्याप्त रही। रात्रि को 'जयद्रथ-वध' नाटक खेला गया। पं० प्राणेश्वर जी और पं० मूलचन्द जी के विशेष उत्साह के कारण यह उत्सव सफलता पूर्वक सानन्द समाप्त हुआ।

स्वास्थ्य समाचार

सूर्यप्रकाश ३ श्रे णी श्लेष्मज्वर, श्रीकृष्ण ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, शंकरदेव ५ श्रे णी विष० ज्वर, गोविन्द ४ श्रेणी नेत्र रोग गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ है।

गुरुकुल कमालिया के वार्षिकोत्सव की तिथि में परिवर्त्तन

निवेदन है कि गुरुकुल कमालिया का वार्षिकोत्सव ४. ५. ६ अप्रैल १९४१ को रखा गया था। श्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की आज्ञा से अब ३०. ३१ चैत्र या १ वैशाख तदनुसार ११. १२. १३ अप्रैल १९४१ को रक्खा गया है। संरक्षक महोदय या प्रेमी नोट कर लेवें ब्रह्मचारियों का प्रवेश रविवार वैशाखी के दिन १३ अप्रैल को कीजियेगा।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २३ चैत्र १९९७; ४ अप्रैल १९४१ [संख्या ५०

निमन्त्रण

मान्यवर !

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव २८ चैत्र से एक वैशाख १९९८ तदनुसार १०. ११. १२ १३ अप्रैल १९४१ को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया जावेगा। मैं बड़े प्रेम और आग्रह से आपको इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करता हूं।

गुरुकुल भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां वैदिक और संस्कृत-साहित्य के साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, रसायन आदि विविध विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम-प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिये विशेष उद्योग किया जाता है। इस समय गुरुकुल कांगड़ी तथा उसकी शाखाओं में एक हजार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जितने भी विद्यार्थी अब तक स्नातक हुए हैं, उनका बड़ा भाग देश, जाति, धर्म और साहित्य की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। आर्यसमाज का यह सबसे बड़ा धार्मिक मेला है। इसमें दूर दूर से हजारों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बहुत महत्वपूर्ण होगा। ईस्टर की छुट्टियों में जब सर्वत्र आपके दैनिक कार्य स्थगित से होंगे गुरुकुल के इस उत्सव पर आइये और अपनी आत्मा तथा मन को तृप्त कीजिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने परिवार, बन्धु तथा इष्ट-मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

आपका दर्शनाभिलाषी—

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का

३९ वां वार्षिकोत्सव

आकर्षक-कार्यक्रम

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में १०-११ १२.१३ अप्रैल १९४१ को बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा। विश्व-कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त भाषण श्रीयुत क्षितिमोहनसेन अध्यक्ष विद्याभवन, शान्ति निकेतन पढ़ेंगे। दीक्षान्त अभिभाषण ११ अप्रैल को प्रातःकाल १० बजे होगा।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, श्री नारायण स्वामी जी, श्री पं० बुद्धदेवजी, श्री पं० सत्यव्रत जी, श्री पं० इन्द्रजी, श्री पं० गंगाप्रसादजी रिटायर्ड दीवान टेहरी स्टेट तथा अन्य अनेक आर्य समाज के प्रसिद्ध नेताओं के सुन्दर सुमनोहर उपदेश व व्याख्यान होंगे। इस अवसर पर अनेकों सभा-सम्मेलन करने का आयोजन किया गया है। पूना के जगत् प्रसिद्ध संगीताचार्य श्री पं० विष्णुदिगम्बर जी के सुपुत्र श्री पं० दत्तात्रेय जी ने १३ अप्रैल की रात्रि को गुरुकुलोत्सव पर होने वाले संगीत सम्मेलन का सभापति-पद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है।

मुख्याधिष्ठाता

प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से—

'गुरुकुल' पत्र के अनुरागी पाठकों से निवेदन है कि जिन महानुभावों का संवत् ९७ का वार्षिक चन्दा २॥) हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है उनकी सेवा में हम २॥।) की वी० पी० भेज रहे हैं। आशा है गुरुकुल के हितैषी पाठक अवश्य वी० पी० छुड़ा लेंगे अपने कर्तव्य से विमुख न होंगे।

भारत में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली का एक मात्र उपाय

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

[२]

(ले० प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार, साहित्याचार्य)

कहते हैं कि एक तत्ववेत्ता दोपहर के समय प्रदीप लिए रोम की सड़कों पर घूम रहा था। किसी ने उससे प्रश्न किया कि 'तुम किसे ढूंढ रहे हो।' तत्ववेत्ता ने उत्तर दिया "मैं मनुष्य को ढूंढ रहा हूँ"। पूछने वाले ने फिर कहा कि मुझे सड़कों पर चारों तरफ मनुष्य ही मनुष्य दीख रहे हैं, तुम कहते हो "मनुष्य नहीं मिलता"। तत्ववेत्ता ने उत्तर दिया—"नहीं, ये मनुष्य नहीं हैं"। शताब्दियों पर शताब्दियां व्यतीत हो गईं पर ढूंढने वाले को आज भी मनुष्य नहीं मिलता। मनु महाराज ने लिखा है।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति"॥

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर आत्म निरीक्षण करे कि उसमें कितना अंश पशुओं का है और कितना सत्पुरुषों का। बात यह है कि बहुत सी प्रवृत्तियां मनुष्य और पशु में समान हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि शिक्षा द्वारा मनुष्य की प्रवृत्तियों को सुसंस्कृत कर दिया जाता है जब कि पशुओं में वे स्वाभाविक क्रम से विकसित होती रहती हैं। यदि मनुष्य की प्रवृत्तियां विवेक से नियन्त्रित न हों, और वह उनका दास बना रहे तो उसमें और पशु में कुछ भी भेद नहीं। गुरु शिष्य का उपनयन करके उस से एक-एक अङ्ग की बलि देता है। प्रत्येक संस्कार, प्रत्येक प्रवृत्ति के पाशविक अंश को काट कर तप की अग्नि में आहुति दे देता है। यही तो यज्ञ में पशुत्व का वध है। पशुत्व के वध को ही अलंकार के रूप में पशु-वध कह दिया है। आचार्य 'यम' है। उसके पास जाकर अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्मचारी उसके गर्भ में तीन रात्रि निवास करके दूसरा जन्म ग्रहण करता है। तब वह द्विज कहाता है। शिक्षणालय कैसा होना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर वेद ने यह दिया है कि वह माता के गर्भ के समान हो। माता के गर्भ में बालक पर बाहर के कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाते। संसार की बड़ी से बड़ी घटना, ऋतुओं के परिवर्तन, अपने भोजन आच्छादन की चिन्ता से वह अछूता रहता है। उसका काम उस समय केवल यही है कि वह एकान्त में आत्म - निर्माण करे। प्रकृति, पुरुष और परमात्मा सम्बन्धी तीन अज्ञान ही तीन रात्रियां हैं। केवल प्रकृति विषयक ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मचारी 'वसु' कहलाता है। गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र कृषि, यान्त्रिकी, पशुपालन, आदि प्रकृति संबन्धी विद्याओं में निपुण होकर वह धन कमाने के योग्य वैश्य स्नातक बन जाता है, यही उसका 'वसुत्व' है। दूसरा अज्ञान पुरुष विषयक है। मनोविज्ञान, राजनीति, व्यवस्था इतिहास आदि का भी अध्ययन कर ब्रह्मचारी 'रुद्र' बनता है। वह क्षत्रिय के लिये आवश्यक समस्त-ज्ञान प्राप्त कर चुकता है। इस प्रकार उस की द्वितीय रात्रि भी गुरु के गर्भ में व्यतीत हो जाती है। जिसकी ज्ञान पिपासा इससे भी शांत नहीं होती, वह परमात्मा सम्बन्धी उच्च अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन कर आदित्य के समान देदीप्यमान 'आदित्य' ब्रह्मचारी बन जाता है। आचार्य ने उपनयन करते समय उसे आदित्य के दर्शन कराए थे कि मैं तुम्हें ऐसा बना दूंगा। आज आचार्य की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है। ऐसे आदित्य ब्रह्मचारियों के रहते हुए संसार में अन्धकार नहीं रह सकता। "सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा"।

प्रलोभनों से रहित, अनुकूल परिस्थितियों में इतने दिन रह कर उसके अच्छे अभ्यास, साधु आचरण, शिष्ट-व्यवहार, शील आदि स्वभाव के रूप में परिणत हो जाते हैं। कोई प्रलोभन उसे विचलित नहीं कर सकता। वह महावृत्ति ब्रह्मचारी इच्छानुसार (रोदसी) अर्थात् दोनों लोकों में—स्त्रियों और पुरुषों में-विचरण करता है। उसका पैर कहीं फिसल नहीं सकता। उसके अन्दर देव अर्थात् मन सहित इन्द्रियां संयत होती हैं, अनुकूल होती हैं। फिर वह गृहस्थ होकर (पृथवीं दिवंच) ब्रह्मचारियों और सन्यासियों की पालना करता है। तथा अपनी सन्तान के भावी आचार्य के कार्य को अपने तप द्वारा सुगम बनाता है।

आर्य समाज

(ले० पं० सत्यदेव विद्यालंकार सम्पादक-'हिन्दुस्तान')

"आर्यसमाज के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा; उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब मिल कर प्रीति से करें। इस लिये जैसे आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"—यह है वह दावा, जो आर्यसमाज के सम्बन्ध में उसके संस्थापक ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के उस प्रकरण में किया है, जिसमें उन्होंने प्रार्थना समाजियों और ब्राह्म समाजियों में यह दोष बताया है कि "इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है।... अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उसके स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं।" फिर इसी प्रकरण में ऋषि ने लिखा है कि "भला हम जब आर्यावर्त देश में उत्पन्न भये और इसी देश का अन्न-जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी हकर शीघ्र एक

※ब्रह्मचार्येति चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति। स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ अथर्व ११-५ ॥

मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का हित और बुद्धि-कारक काम क्यों कर हो सकता है ?" थियोसोफिस्टों के साथ आप क्यों नहीं मिल सके, इसका कारण आपने यह बताया कि "जब अपने देश में सब सत्य विद्या, सत्य धर्म, ठीक ठीक सुधार और परम योग की सब बातें थीं और अब भी हैं, तब विचारिये कि थियोसोफिस्टों को एतद्देशवासियों के मत में मिलना चाहिये या आर्यावर्तियों को थियोसोफिस्ट होना चाहिये।" यह थी उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना और उज्ज्वल देश भक्ति, जिससे प्रेरित होकर ऋषि दयानन्द ने अपने देश को 'आर्यावर्त' कहने में गौरव अनुभव किया। यहां के निवासियों को 'आर्य' नाम दिया और आर्यावर्त एवं आर्यों की उन्नति के लिये 'आर्य-समाज' की स्थापना की। आर्यसमाज को एक कोरी धार्मिक या निरी साम्प्रदायिक संस्था मान कर जो लोग आर्यों को विशिष्ट जाति, समाज या सम्प्रदाय का नाम देते हैं, वे ऋषि दयानन्द के महान् और व्यापक मिशन को समझ नहीं सकते। उन्होंने ऋषि दयानन्द को सिर्फ एक धार्मिक समाज सुधारक और हिन्दू जाति का उद्धारक ही मान लिया है। वे ऋषि के राष्ट्रवाद को न समझते हैं और न समझना चाहते हैं। उन्होंने महान् क्रान्तिकारी, महान राष्ट्रवादी और महान् देशभक्त महापुरुष पर अपनी संकुचित मनोवृत्ति का जो परदा डाल दिया है, उसे वे दूर नहीं करना चाहते। आर्यसमाज में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिन्होंने इस महान् संगठन को एक कर्म-काण्डी, कोरी धार्मिक या निरी साम्प्रदायिक संस्था बना दिया और मान लिया है। इससे बड़ा कोई और अन्याय व ज्यादती ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के साथ नहीं की जा सकती। जिस संकुचित वृत्ति और साम्प्रदायिक मनो-वृत्ति ने हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म में भीषण क्रान्ति करने के लिये महात्मा बुद्ध से लेकर आज तक किये गये सब प्रयत्नों को विफल बना दिया है, उसने आर्यसमाज के रूप में सुलगाई गई क्रान्ति की महान् भट्टी की दहकती हुई भीषण आग को भी राख बना दिया है।

ऋषि दयानन्द तब कार्यक्षेत्र में पदार्पण करते हैं, जब १८५७ में किया गया देश की आजादी का अन्तिम प्रयत्न असफल हो चुका था, लार्ड क्लाइव द्वारा की गई तलवार की फतह के बाद लार्ड मैकाले का हिन्दुस्तानियों के दिल व दिमाग को जीतने का सफल उपक्रम बांधा जा चुका था और ईसाइयत की चकाचौंध में इस देश के लोग स्वाभिमान एवं स्वदेशाभिमान को तिलांजलि देते जा रहे थे। ऐसे समय में आर्यसमाज की स्थापना करके ऋषि ने देश में विद्रोह की, क्रान्ति की और विप्लव की आग सुलगाई थी। लार्ड मैकाले सरीखे कुटिल अंग्रेज़ राज-नीतिज्ञों ने इस देश के साहित्य, संस्कृति, धर्म, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और गत वैभव को जनता की नजरों से गिरा देने की जो कोशिशें जारी की थीं, उनके विरुद्ध आर्य समाज प्रगट हुआ था। ऋषि दयानन्द इस परि-णाम पर पहुंचे थे कि "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषया-सक्ति, मिथ्या भाषण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुलक्षण हैं।" इन कुलक्षणों को मिटाने में ऋषि ने अपने जीवन की बाजी लगा दी। "जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुख परस्पर न मानें, तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है"-इस सचाई को ऋषि ने अनुभव किया और राष्ट्रवाद की इस भावना को देश वासियों में पैदा करने का सतत प्रयत्न किया।

'सत्यार्थ प्रकाश' को सहसा आर्यसमाज का बाईबिल, कुरान या पुराण कह दिया जाता है। लेकिन, उसका असली स्वरूप उससे कहीं अधिक व्यापक है। उसे हर हिटलर के 'मैन्फ' से उपमा दी जा सकती है। लेकिन, उसमें भी एक अन्तर है। वह यह है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' सात्त्विक भावना से लिखा गया है और 'मीन कैम्फ' है पूर्ण आसुरी भावना से। फिर भी स्वदेश प्रेम, स्वराष्ट्र की चहुंमुखी उन्नति एवं प्रगति का जहां तक सम्बन्ध है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। "सत्यार्थ प्रकाश" में जहां देश की दुर्दशा का वर्णन किया गया है, वहां ऋषि की आत्मा रो पड़ती है और जहां देश के गौरव का उल्लेख किया गया है वहां देश भक्ति का स्रोत बह निकलता है। जब कांग्रेस का कहीं नाम न था, स्वराज्य की किसी को कल्पना तक न थी और स्वदेशी चर्चा भी कहीं सुन नहीं पड़ती थी, तब ऋषि ने स्वराज्य, स्वदेशी और अपने देश के चक्रवर्ती साम्राज्य आदि की चर्चा "सत्यार्थप्रकाश" में अत्यन्त ओजस्वी भाषा में की थी। स्वराज्य की उनकी कल्पना यह थी कि "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मतमतान्तर के आग्रह से रहित, अपने पराये के पक्षपात से शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं होता।" सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य के बारे में उन्होंने लिखा है कि "सृष्टि से लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।" "अब अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। क्या बिना देशदेशा-न्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ?" स्वदेशी की चर्चा करते हुये ऋषि ने लिखा है कि "देखो अंग्रेज अपने देश के बने हुवे जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लो कि अपने देश के बने जूतों की भी कितनी मान-प्रतिष्ठा करते हैं, उतनी भी अन्य देशस्थ मनुष्यों की नहीं करते।" जिन वेद-मन्त्रों और वैदिक ऋचाओं को सिर्फ धार्मिक प्रार्थना के लिये समझा जाता रहा है, उनसे ऋषि ने राष्ट्रीय प्रार्थनाओं का सूत्रपात किया है। "आर्याभिविनय" राष्ट्रीय प्रार्थनाओं की पुस्तिका है। ईश्वर के लिये राजा, साम्राज्य-प्रसारक,

(५०६ पर देखिये)

गु रु कु ल

२१ चैत्र शुक्रवार १९९७

गुरुकुल चलिये

सम्भवतः आर्य जगत् को यह भली-भांति ज्ञात होगा कि इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव १० से १४ अप्रैल तक गुरुकुल की सुरम्य भूमि में अपूर्व उत्साह एवं सजधज के साथ मनाया जायगा। आप जिस दिन की प्रतीक्षा उत्सुक-नयनों द्वारा एक साल से कर रहे थे वह दिन आने ही वाला है यह समाचार जानकर सारी आर्यजनता के हृदयों में अपार हर्ष उमड़ पड़ेगा। प्राचीन ऋषियों द्वारा शतशः प्रशंसित हरिद्वार की इस तपोभूमि में पदार्पण करते हुए आपका हर्ष क्यों न उमड़ेगा? गुरुकुल का इतना विशुद्ध-वातावरण और गंगा के किनारे हिमालय की उपत्यका में वेदशास्त्रों का चिन्तन, कितना आनन्ददायी है यह आप अनुभव करके ही जानेंगे। इतनी सुन्दर गंगा की धार और प्रकृति की अनुपम शोभा आपको अन्यत्र कहां उपलब्ध होगी और उस दृश्य की ज़रा कल्पना कीजिये जबकि ऐसे पुनीत स्थान पर गुरुकुल में वार्षिकोत्सव होगा जिसमें आर्य समाज के उच्चतम कोटि के सन्यासियों एवं विद्वानों के उपदेश तथा व्याख्यान होंगे। सोने में सुगन्ध होना इसी का नाम है। हमारा आप से साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, पुत्र-कलत्र के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पधारिये। आपके यहां आने पर ठहरने का, स्नान-ध्यान तथा खान-पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आप को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

इस उत्सव के साथ गुरुकुल अपने जीवन का एक अन्य वर्ष समाप्त कर रहा है। यद्यपि कहने को कुल का जीवन केवल ३९ वर्ष का है किन्तु इस थोड़े ही काल में हमारे देश ने शिक्षा-क्षेत्र में बहुं मुखी उन्नति की है। एक समय था जब कि शिक्षा के माध्यम, आश्रम जीवन आदि अनेक बातों में हमारे देश की शिक्षा संस्थाएं गुरुकुल से बहुत पिछड़ी हुई थीं। धीमे २ हमारे देश में क्रमशः समय के प्रभाव से देश की शिक्षा-संस्थाओं ने सिद्धान्त-रूप में उन सब बातों को स्वीकार कर लिया कि जिन के आधार पर गुरुकुल की शिक्षा अवलम्बित है। इस समय भारतीय शिक्षा के विकास में दूसरा युग आया। बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय, विजगापट्टम में आन्ध्र विश्वविद्यालय, व हैदराबाद में जामिया उस्मानिया का जन्म इसी युग में हुआ था। किन्तु उन्हीं दिनों महात्मा गांधी के नेतृत्व में वह प्रचण्ड लहर भी देश में आई जिसमें खुले रूप में देश का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी ज़माने में काशी, गुजरात, बिहार व जामिया मिलिया आदि विद्यापीठ कायम हुए। यह सन्तोष की बात है कि इन सब विद्यापीठों ने गुरुकुल के शिक्षा-क्रम व आश्रम जीवन को काफ़ी हद तक अपनाया। दिल्ली के निकट यमुना के पवित्र तट पर छोटे विद्यार्थियों के लिये जामिया-मिलिया द्वारा स्थापित नये आश्रम हमारी इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं और अब देश के शिक्षाक्रम में एक नयी क्रान्ति होने जा रही है। क्रान्ति की इस उथलपुथल में हमारा गुरुकुल क्या भाग ले सकता है इसका निर्णय करना हरेक गुरुकुल प्रेमी का कर्त्तव्य है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव उसी पुनीत कर्त्तव्य की याद दिलाता है। हमें आशा ही नहीं निश्चय है कि भारी संख्या में उपस्थित होकर जहां हम उत्सव को सफल बनायेंगे वहां गुरुकुल की उन्नति के लिए भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

कई सामयिक परिस्थितियों के कारण इस वर्ष का उत्सव विशेष महत्ता लिये हुए होगा। उत्सव को रोचक, आकर्षक और शिक्षाप्रद बनाने का अधिकारी वर्ग भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है इस महोत्सव का देश पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा। सरस्वती सम्मेलन, कविता सम्मेलन, वेद सम्मेलन आदि-आदि विविध सम्मेलन विशेष महत्त्वपूर्ण होंगे। ११ अप्रैल को दीक्षान्त संस्कार होगा और नवस्नातकों को उपाधि प्रदान की जायगी। विश्व कवि गुरुदेव श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर का दीक्षान्त भाषण होगा। आचार्य क्षितिमोहन सेन शान्ति-निकेतन गुरुदेव के विशेष सन्देश के साथ उनके भाषण को पढ़ेंगे। तदनन्तर अपना भाषण भी देंगे। उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए हम तो आप से यही प्रार्थना करेंगे कि प्रत्येक आर्य भाई को अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों समेत इस महोत्सव अवश्य में आना चाहिये और इस सारे प्रोग्राम का लाभ लेकर ही लौटना चाहिये। अन्त में हम पुनः आशा करते हैं कि आर्य जनता अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर गुरुकुलोत्सव को पूर्णरूपेण सफल बनाने का प्रयत्न करेगी।

'गुरुकुल-जन्मोत्सव' की तिथि में परिवर्तन

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर होने वाला 'गुरुकुल-जन्मोत्सव' पूर्व सूचनानुसार ९ अप्रैल को न होकर १५ अप्रैल को होगा। उत्सव पर पधारने वाले सज्जन नोट कर लें।

सत्यदेव
कुल मंत्री

छुट्टी की सूचना—

वार्षिकोत्सव आ जाने के कारण 'गुरुकुल-पत्र' का अगला अंक ११ अप्रैल को प्रकाशित न होकर १८ अप्रैल को प्रकाशित होगा। हमारे पाठकगण नोट कर लें।

———

गुरुकुल के ३६ वें वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम

१ अप्रैल १६४१ तदनुसार २६ चैत्र १६६७

प्रातः

७–२० से ८–१० तक हवन तथा भजन

८–३० से ६ तक उपदेश श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज

६ से १०–३० तक वेद सम्मेलन

ब्रह्मचारियों के वेद विषयक निबन्ध

सभापति—श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार

मध्याह्न—

१ से १–३० तक भजन

१–३० से २–३० तक व्याख्यान श्री पं सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति

२–३० से ३–३० तक व्याख्यान श्री पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थी

३–३० से ४–३० तक छोटे ब्रह्मचारियों की अन्त्याक्षरी

रात्रि—

७–३० से ८ तक भजन

८ से ६ तक व्याख्यान श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

विषय—"स्वाध्याय"

६ से १० तक व्याख्यान श्री पं० यशपालजी सिद्धान्तालंकार

११ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ११ तक दीक्षान्त संस्कार

विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त-भाषण होगा। आचार्य क्षितिमोहनसेन शान्तिनिकेतन गुरुदेव के विशेष सन्देश के साथ उनके भाषण को पढ़ेंगे। तदनन्तर अपना भाषण भी देंगे।

मध्याह्न—

१ से १–३० तक भजन

१-३०से २-३० तक व्याख्यान श्री पं० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्कशिरोमणि

विषय—"हिन्दुस्तान की मुसलिम समस्या'

२–३० से ३–३० तक अपील

श्री पं० सत्यव्रत जी, मुख्याधिष्ठाता

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से ६ तक व्याख्यान श्री पं० बुद्धदेव जी वि.अ.

विषय—'मैंने कविता क्यों छोड़ी ?"

६ से १० तक व्याख्यान श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

विषय—"शान्ति या शक्ति"

१२ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ७–३० तक भजन (मुख्य पंडाल)

७–३० से ६–३० तक आयुर्वेद महाविद्यालय का उद्घाटन श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य अमृतधारा के करकमलों द्वारा। यह उद्घाटन आयुर्वेद महा-विद्यालय की जो नई इमारत बनी है वहां होगा।

६–३० से ११ तक दलितोद्धार सम्मेलन

सभापति-श्री प० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार संचालक, दलितोद्धार विभाग, पंजाब।

मध्याह्न—

१ से १–३० तक भजन

१–३० से २-३० तक व्याख्यान श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति

२-३० से ३-३० तक व्याख्यान श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम ए. रिटायर्ड चीफ जज

३–३० से ४-३० तक व्याख्यान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

विषय—"संकल्प बल"

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक व्यायाम सम्मेलन

१३ अप्रैल १९४१

प्रातः—

७ से ६-३० तक वेदारम्भ संस्कार, श्री आचार्य अभयदेव जी नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों को उपदेश देंगे।

६-३० से ११ तक श्री पं० बिहारीलाल जी काव्यतीर्थ

विषय—"मतमतान्तरों का राजनीति पर प्रभाव"

मध्याह्न—

१ से १–३० तक भजन

१-३० से २–३० तक व्याख्यान डा० फुन्दनलाल जी

विषय—"यज्ञ के वैज्ञानिक लाभ"

२–३० से ३ तक भजन

३ से ४–३० कविता सम्मेलन

रात्रि—

संगीत सम्मेलन

१४अप्रैल १९४१ तदनुसार २ वैशाख१९९८

प्रातः ८ बजे गुरुकुल जन्मोत्सव

सूर्य-दर्शन-द्वारा दृष्टि सुधार

(उपनेत्र परित्याग)

(लेखक—श्री ठाकुर दास जी वानप्रस्थी, आर्यविरक्ताश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार)

मेरी आयु का इस समय ६७ वां वर्ष है, मैं २५ वर्षसे उपनेत्र (चश्मा) लगा कर ही पढ़ सकता था, किन्तु अब एक वर्ष से अधिक होगया है कि मैंने उपनेत्र (चश्मा) लगाना छोड़ दिया है और मैं उसके बिना ही सब प्रकार के अक्षर पढ़ और लिख सकता हूं। यह कैसे सम्भव हुआ, यह बात मैं पाठकों को सुनाना चाहता हूं, जिससे उनमें से कोई सज्जन भी इस विधि का प्रयोग करें, अनुभव करें और लाभ उठायें।

सन् १६३६ में मैं हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के कारण गुलबर्गा जेल में बन्द (कैद) था। वहां श्री नारायण स्वामी जी महाराज और ला० खुशहाल चन्द जी खुसन्द को जेल से पृथक एक अन्य बंगले में रखा गया था, मुझे भी वहां ही भेज दिया गया। यह बंगला ऊंची भूमि पर था; इसके अहाते की दीवारें चार पांच फुट से ऊंची नहीं थीं; उसके चारों ओर अन्य भवन या दूर तक वृक्षादि कुछ नहीं थे; इस लिये प्रातःकाल जब मैं बंगले के आंगन में भ्रमण किया करता था, तो भगवान् भुवन-भास्कर के दर्शन मुझे उदय के साथ ही हो जाते थे।

मैंने एक योगाभ्यासी से सूर्य के त्राटक की बात सुनी हुई थी; उस ने मुझे बताया था कि इससे उसके नेत्रों की ज्योति बहुत बढ़ गई थी। अतः मैंने भी उस अवसर को इस कार्य के लिए उचित समझा और मैंने सूर्य की रोशनी फैलने के आरम्भ होने के साथ ही अपने नेत्र उसके सन्मुख लगातार खोले रखना आरम्भ कर दिया। मैंने प्रथम ५ मिनट ऐसा किया, किन्तु शनैः २ बढ़ाकर मैं बीस मिनट तक ऐसा करने लगा था। जब मैं नेत्र सूर्य की ओर खोलता था, तो आरम्भ में चौंध लगती थी, किन्तु एक या दो मिनट के बाद ही चौंध लगना बन्द हो जाता था और सूर्य की किरणें बीच में से लुप्त जैसी होजाती थी तथा सूर्य का मंडल बहुत स्वच्छ दीखने लगता था। उस में कई रंगों की चमक भी दीखती थी और बड़ा शान दीखने लगता था। इस क्रिया से मेरे नेत्रों की ज्योति भी उन्नत होती हुई मुझे प्रतीत हुई। तीन चार मास बराबर (वर्षा के दिनों को छोड़ कर जब प्रातः सूर्य मेघों में उदय होता था) मैं इस क्रिया को करता रहा। तब मैंने बिना चश्मा पढ़ना और लिखना आरम्भ किया। प्रथम तो मैं साधारण अक्षर ही पढ़ सकता था, किन्तु धीरे धीरे शक्ति बढ़ गई और अब सूक्ष्म अक्षरों के पढ़ने में भी कोई कठिनाई नहीं होती है। यह भी बतला देना उचित होगा कि २५ वर्ष में मुझे तीन बार चश्मा लगा पड़ा था। पहिला १ + १५, दुबारा + २.५० और तिबारा + ३.२५ लिया था। यही चश्मा मैंने छोड़ा है अब भी मैं यदा कदा, जब संभव होता है जंगल में प्रातः काल उदय के पश्चात ही सूर्य की ओर नेत्र खोल कर ५ व १० मिनट तक उसका प्रभाव अपने नेत्रों में ले लिया करता हूं।

(पृ० ३ का शेष)

सुराज्यप्रद, राज्य विधायक, महाराजाधिराज, सम्राट् आदि शब्दों का प्रयोग करना भी उनकी उग्रतम राष्ट्रीयता का द्योतक है। उनके सारे ही जीवन में यही राष्ट्रीयता ओत-प्रोत थी। राजस्थान उनके कार्य का विशेष क्षेत्र रहा। यहीं बैठ कर उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' लिखा। यहीं पर 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना की। स्वामी रामदास ने जैसे शिवा जी को और गुरु गोविन्दसिंह जी ने जैसे बन्दा बैरागी को खोज निकाला था, वैसे ही ऋषि ने किसी क्षत्रिय की खोज में सारा राजस्थान छान मारा था और इसी खोज में उनके महान जीवन का उत्सर्ग हो गया।

आज आर्य समाज का स्थापना-दिवस मनाते हुए क्या हमारा ध्यान ऋषि के इस राष्ट्रीय स्वरूप की ओर जायगा और क्या हम ऋषि के महान मिशन की राष्ट्रीयता को हृदयंगम कर उसकी पूर्ति में अपने को लगा सकेंगे ? तब ही सारे विश्व में आर्यवर्त के साम्राज्य की स्थापना करके "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के नारे को हम सार्थक कर सकेंगे।

गुरुकुल वैद्यनाथ धाम

संरक्षकों से आवश्यक निवेदन

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम की अन्तरङ्ग सभा का गताधिवेशन 'जागृति' संचालक श्री मिहिरचन्द्र जी धीमान' के सभापतित्व में कुरुभूमि में संपन्न हुआ। सर्व सम्मति से निश्चय किया गया कि इस वर्ष का वार्षिकोत्सव पूजा की छुट्टी के दिनों में अर्थात् ३,४ और ५ अक्टूबर को समारोह के साथ किया जाय। ग्रीष्म ऋतु में यात्रियों को अनेक प्रकार की असुविधा रहती है इस-लिए वह समय छोड़ दिया गया।

गुरुकुल कांगड़ी से निरीक्षक नियुक्त होकर श्री प्रो० हरिदत्त जी वेदालंकार यहां आए और उन्होंने अच्छी प्रकार से ब्रह्मचारियों की पढ़ाई आदि का निरीक्षण किया। उनकी सम्मति में पढ़ाई बहुत संतोष जनक है। उनकी सम्मति के आधार पर ही गुरुकुल कांगड़ी की विद्यासभा इस बात का निश्चय करेगी कि गुरुकुल वैद्यनाथधाम की दशम श्रेणी (विद्यारत्न) परीक्षा को 'अधिकारी' परीक्षा के समकक्ष समझ कर उत्तीर्ण विद्यार्थी को सीधा गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट कर लिया जाय। राय बहादुर ब्रजनन्दनसिंह जी, रिटायर्ड एक्साईज़ कमिश्नर बिहार ने भी श्रेणियों का निरीक्षण किया और उनकी प्रगति पर संतोष प्रकट किया।

शिवरात्रि के पर्व पर श्री दयानन्द बोधोत्सव को धूम-धाम से मनाया गया। सवेरे ४। बजे से ही प्रभात फेरी करता हुआ जलूस समीपस्थ अनेक ग्रामों में घुमा और ऋषि का सन्देश पहुंचाया गया। बृहद् हवन और सभा के साथ यह कार्य समाप्त हुआ।

अनेक संरक्षक गुरुकुल की पुरानी नियमावली के अनुसार १२ वर्ष तक के लड़कों को प्रविष्ट कराने के लिए लेकर आ जाते हैं। पिछले दिनों अनेकों को निराश होकर लौट जाना पड़ा। जनता को इस भ्रांति से मुक्त करने के लिए सूचित किया जाता है कि नयी नियमावली के अनुसार १० वर्ष तक के ही विद्यार्थी प्रविष्ट किए जा सकते हैं। इसको ख्याल रख कर ही प्रार्थी आवेदन पत्र भेजेंगे।

—धीरेन्द्र, आचार्य।

गुरुकुल समाचार

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव समीप आ जाने के कारण गुरुकुल के सब विभाग तत्परता से कार्य कर रहे हैं। यद्यपि इन दिनों गर्मी बढ़ती जा रही है तथापि चारों ओर के वातावरण में क्रिया-शीलता और उत्साह नज़र आ रहा है। अधिकारी वर्ग अविराम गति से उत्सव को सफल और शानदार बनाने में लगे हुए हैं। आशा की जाती है कि यह उत्सव विशेष तौर से कामयाब होगा।

गत ३१ मार्च को दानवीर सेठ श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला के इंजिनीयर श्रीयुत राय महोदय गुरुकुल आए। आपने वेद-भवन के लिए उपयुक्त स्थान को पसन्द किया। आशा है वेद महाविद्यालय बनने के बाद शीघ्र ही 'वेदभवन' का कार्य प्रारम्भ कर दिया जायगा। इंजिनीयर साहब ने तैयार हो रही इमारतों में आवश्यकतानुसार थोड़ा परिष्कार करने की भी सम्मति दी जिसके कारण नई इमारतों की सुन्दरता और भी बढ़ जायगी।

स्वास्थ्य समाचार

धीरेन्द्र ३ श्रेणी वि० ज्वर, वेदभूषण ४ श्रेणी वि० ज्वर, लाजपत ४ श्रेणी नेत्र रोग।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र समाचार

वार्षिकोत्सव के बाद पढ़ाई नियमानुसार शुरू हो गई है। अब तक गुरुकुल में ८ म श्रेणी तक ही शिक्षा का प्रबंध था; इस साल से ९ म श्रेणी की पढ़ाई का भी यही प्रबंध कर दिया गया है। अगले वर्ष १० म की पढ़ाई भी शुरू कर दी जायगी। इस प्रकार ब्रह्मचारी यहां से पढ़ाई पूरी करके सीधे गुरुकुल कांगड़ी जा सकेंगे।

जो महानुभाव कारण वश गुरुकुल के उत्सव पर बालक प्रवेश कराने के लिये नहीं आ सके वे गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अपने बालक को गुरुकुल कुरुक्षेत्र के लिये प्रविष्ट करा सकते हैं। इस सम्बन्ध में सब बातचीत पं० सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता के पास करनी चाहिये। आप कांगड़ी के उत्सव में पहुंचेंगे।

गुरुकुल कमालिया

गुरुकुल कमालिया का वार्षिकोत्सव ११, १२, १३ अप्रैल १९४७ को मनाना निश्चित हुआ है। नये ब्रह्मचारियों का प्रवेश संस्कार १३ अप्रैल रामनवमी के पवित्र दिन होगा। जिस सज्जन ने अपने ब्रह्मचारी को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना हो वह मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कमालिया से सीधा पत्र व्यवहार करें। इस वर्ष केवल १० नये ब्रह्मचारी प्रविष्ट किये जाएंगे।

गुरुकुल मुलतान

उत्सव बड़ी रौनक के साथ समाप्त होगया। गत वर्षों की अपेक्षा बड़ा विस्तृत पण्डाल बनाया गया था। वह सब का सब भरा रहता था। उत्सव पर श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज, श्री पं० प्रियव्रत जी, प्रो० पं० सोमदत्त जी, श्री० पं० रामस्वरूप जी के व्याख्यान तथा पं० हरिश्चन्द्र जी के भजन होते रहे जिनको जनता ने बहुत पसन्द किया। इस अवसर पर हिन्दी भाषा, पाकिस्तान, संगीत आदि सम्मेलन भी हुए। श्री प० सोमदत्त जी की अपील पर तथा पहिले एकत्रित किया हुआ धन कुल २५००) हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मचारियों ने पं० सोमदत्त जी का बनाया 'परिवर्तन' नाम का नाटक किया और प्रो० विक्रम जी की अध्यक्षता में खेल दिखाए।

इस अवसर पर एक दानी ने आश्वासन दिया कि यदि कुछ सज्जन गुरुकुल में अपने बालकों को प्रविष्ट करना चाहते हों पर आर्थिक दशा के कारण गुरुकुल का नियत शुल्क १०) मासिक न दे सकते हो तो उनके बालकों को ८) मासिक पर ही ले लिया जाए। १० संख्या तक प्रविष्ट होने वाले बालकों का शेष धन २) रु० प्रति मास के हिसाब से २०) रु० प्रति मास वे दिया करेंगे।

अमर शहीद श्रद्धानन्द

बलिदान धर्म-देश की ख़ातिर वह होगया।
श्रद्धा आनन्द मरा नहीं जीना सिखा गया ॥१॥
ईश्वर औ' वेद की विद्या जब लुप्त हुई।
आचार्य्य की बताई हुई शिक्षा फैला गया ॥२॥
विधवा अछूत अनाथों का दुःख देख।
बिगड़ी दशा सुधार के दुखड़ा मिटा गया ॥३॥
बिछुड़े हिये के टुकड़ों छाती को लगा लगा।
मुस्लिम ईसाई होने से उनको बचा गया ॥४॥
हिन्दी जो हिन्द की भाषा बनी थी प्रिय।
शिक्षा में उच्च मान उसी को दिला गया ॥५॥
स्वाधीनता स्वदेशी का हामी बना अजब।
अभिमान देश जाति पै करना सिखा गया ॥६॥
राष्ट्रीय मेल मिलाप का अगुआ बना अजेय।
संगीन किर्च के वारों का ढाल बन गया ॥७॥
शुद्धि के प्रेम-मन्त्र की दीक्षा लिये प्रथम।
प्यारे की गोली हृदय रख मरना सिखा गया ॥८॥
था आर्य्य विश्व-प्रेम प्रचारक सदा अभय।
संसार के उपकार में जीवन बिता गया ॥९॥

"हितैष"

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध में गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ५]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ६ वैशाख १९९८; १८ अप्रैल १९४१   [संख्या ५१

दीक्षान्त-अभिभाषण

(श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

(गुरुकुलोत्सव पर शरीर की अस्वस्थता के कारण विश्व-कवि गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं उपस्थित न हो सके उनके लिखे भाषण को श्री क्षिति मोहन सेन आचार्य शान्ति निकेतन ने पढ़ा और तत्पश्चात् अपना दीक्षान्त अभिभाषण भी दिया)

—सम्पादक

मुझे दुःख है कि मेरा दुर्बल देह तथा दुःसह व्याधि मुझे इस महान् उत्सव में उपस्थित होने के आनन्द से वंचित कर रही है। आज इस गुरुकुल विश्वविद्यालय के तरुण स्नातकगण अपने गुरुओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किये ज्ञान से जीवनशक्ति लाभ करके और सब प्रकार से सुरक्षित होकर, कुलमाता को अन्तिम नमस्कार कर, विस्तृत संसार में निर्भीक भाव से प्रवेश करने के लिये उद्यत हैं। मैं इन तरुण स्नातकों के भावी प्रयत्नों में पूर्ण सफलता चाहता हूं तथा उनको अपने हृदय के अन्तस्तल से आशीर्वाद देता हूं।

जब से मैंने शिक्षक बनने का दुःसाध्य व्रत ग्रहण किया है तभी से शिक्षण कार्य के एक विशेष रूप ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। आज मैं एक बार फिर उस विशेषरूप पर ज़ोर देना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि मैं अपने पुराने विचारों का पिष्टपेषण कर रहा होऊंगा किन्तु यह मेरी अवस्था के व्यक्ति के लिये अनिवार्य है।

एक जाति के रूप में, हमें यह उपलब्धि पूर्णतया हो जानी चाहिये कि हम हैं क्या? यह उक्ति एक स्वतःसिद्ध सत्य है कि किसी जाति की एकता की उपलब्धि से उस जाति के व्यष्टि तथा समष्टि दोनों रूपों का पूर्ण ज्ञान अभिप्रेत होता है। परन्तु हम में से अधिकांश व्यक्ति भारतवर्ष के सम्बन्ध में इन दोनों दृष्टिकोणों से सर्वथा अपरिचित हैं, इतना ही नहीं, किन्तु हम में इस ज्ञान को विकसित करने की तीव्र आकांक्षा भी नहीं है।

राजनैतिक प्रचार में उग्रता के साथ अपनी राष्ट्रिय एकता को उद्घोषित करके, हम अपने को यह विश्वास दिला देते हैं कि हम में यह उपलब्धि विद्यमान है और इस प्रकार राजनैतिक दिवास्वप्नों के कल्पनालोक में रहा करते हैं।

सत्य तो यह है कि हमें अपने देश के विषय में ऐसी रुचि बहुत कम है जो मनुष्य के प्रति सहानुभूति के रूप में प्रकाशित होती है। हम राजनीति और अर्थशास्त्र की चर्चा करना पसन्द करते हैं, शास्त्रीय गूढ़ताओं के सूक्ष्म वायुमण्डल में ऊंची उड़ान लेने को उद्यत हैं, निरर्थक प्रमाणवाद के अरण्यों के छायालोक में भटकते हैं, परन्तु संकीर्ण सामाजिक सीमाओं को अतिक्रमण कर अपने प्रतिवेशी जनसमुदाय के द्वार तक आने की परवाह कभी नहीं करते। हम स्वयं यह जिज्ञासा भी नहीं करते कि आस-पड़ोस के ये सब लोग क्या सोचते हैं, क्या अनुभव करते हैं, कैसे अपने भाव को अभिव्यक्त करते हैं, और किस प्रकार अपने जीवन को ढाल रहे हैं।

मनुष्य के मानवप्रेम में स्वभावतः ही ज्ञान की क्षुधा रहती है। यदि हम में राजनैतिक वाद-प्रतिवादों के अतिरिक्त इस क्षुधा का सर्वथा अभाव हो तो भी कम से कम निष्काम ज्ञान-पिपासा ही हमें एक दूसरे के निकट ला सकती थी। परन्तु, इसमें भी हम असफल ही रहे और हम हानि उठानी पड़ी क्योंकि ज्ञान की दुर्बलता शक्ति की दुर्बलता की भित्ति है। जबतक हमारे मन में भारतवर्ष का पूर्णरूप से स्पष्ट बोध नहीं हो जाता तबतक हम भारतवर्ष को उसके सत्य स्वरूप में नहीं प्राप्त कर सकते। और जहां सत्य ही अपूर्ण है, वहां प्रेम का पूर्ण राज्य हो नहीं सकता। हमारे शिक्षण केन्द्रों का वरिष्ठ कार्य हमें आत्मानुशीलन में सहायता देना है और तभी इसके साथ ही साथ आत्म-निवेदन के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का दूसरा उद्देश्य भी पूर्ण हो जायगा।

योरोप की इतनी विशाल बौद्धिक शक्ति का कारण उसकी मानसिक शक्तियों का सहयोग है। योरोप ने एक ऐसे साधन का विकास कर लिया है जिसकी सहायता से उस महाद्वीप के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर सोच सकते हैं। विचारों की इतनी बड़ी संघटना अपनी गति के प्रचण्ड प्रवाह से स्वभावतः योरोप के विचारों के सब वैयक्तिक विकारों तथा अलौकिकता के आतिशय्य को मिटा देती है। यह योरोप की कल्पना की उड़ानों को उद्दाम नहीं होने देती और उसे उपयुक्त सीमा में रखकर शान्त किये रहती है। योरोप की विभिन्न विचार किरणें एक सामान्य

संस्कृति में केन्द्रित हो गई है और यह संस्कृत योरोप के सभी विश्वविद्यालयों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती है।

दूसरी ओर, भारत का चित्त विभक्त और विकीर्ण है। यहां कोई सामान्य मार्ग नहीं जिस पर चलकर हम इस तक पहुँच सकें। हम बड़े दुःख से देखना पड़ता है कि हमारी मानसिक शक्तियों का निर्माण करने वाली शालाय शिक्षा में संजीवनी-शक्ति की न्यूनता है। इन मनों द्वारा ज्ञान और सहानुभूति के सहयोग से देश के बृहत्तर मन को समुपलब्ध किया जा सकता है। हमारी शिक्षासंस्थाओं का सब से अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को उसके व्यक्तित्व की उपलब्धि करने में सहायता देना है। यह उपलब्धि ऐसी होनी चाहिये कि प्रत्येक विद्यार्थी यह उदारतापूर्वक अनुभव कर सके कि वह व्यक्ति रूप में सम्पूर्ण जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है और यह जानने में भी समर्थ हो सके कि इस विशाल मानव-जगत् में उत्पन्न होना उसके जीवन का महत्तम तथ्य है।

भारत में यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे भीतर जो कुछ श्रेष्ठ है उसकी अभिव्यक्ति का वह अवसर हमें नहीं मिलता जिससे संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। आजकल राष्ट्रों की संबंध-श्रृङ्खला पारस्परिक आशंकाओं की कड़ियों से बनी होती है। इस श्रृङ्खला की दृढ़ता आतङ्क पर आश्रित है। परिणामतः भ्रुकुटिविलास, भर्त्सना तथा भयप्रदर्शन की प्रतिस्पर्द्धा में साधनों का असाधारण अपव्यय हो रहा है। राजनीति के दुःस्वप्न के तमसावृत प्रदेश में सत्य के पवित्र प्रकाश को प्रविष्ट कराने वाली कोई महती वाणी श्रुतिगोचर होने की प्रतीक्षा कर रही है। परन्तु भारत में हमें अभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ है तथापि हमारी अपनी मानवीय वाणी है जिसकी सत्य को आकांक्षा है। उस क्षेत्र में भी जहां हम कार्य करने के लिये आमन्त्रित नहीं हैं, हमारा यह अधिकार है कि हम निर्णय करें और मानवमन का उचित दृष्टिबिन्दु की ओर पथप्रदर्शन करें तथा उसे यथार्थ के हृदय में विद्यमान आदर्शवाद की झांकी दिलायें।

दीक्षान्त अभिभाषण

(आचार्य क्षितिमोहनसेन)

विद्या-व्रत-स्नातक तरुण मित्रो,

विशाल है यह सभा। नाना देशों के ज्ञानी और गुणी विद्वज्जनों का यह महान सम्मेलन है। आज ज्ञान और तपस्या का महायज्ञ यहां अनुष्ठित होगा। इस महायज्ञ के जो अधीश्वर हैं उनके पूजाभिषेक के लिये भारत के नाना दिग्देश से यहां अर्घ्य उपनीत हुआ है। उत्तर-पूर्व भारत का पूजा इस महायज्ञ में उपस्थित करने का सौभाग्य लेकर मैं यहां आया हूँ। तथापि ऐसे ऐसे वरेण्य सत्पुरुषों के रहते हुए मेरे जैसा अनभिज्ञ व्यक्ति किसी प्रकार का सत्कार पाने का अधिकारी नहीं है। फिर भी मेरा एक महासौभाग्य है कि मैं अवस्था में ज्येष्ठ ज्ञान में श्रेष्ठ, भारतमाता के महाप्रतिभाशाली पुत्र महाकवि आश्रमगुरु रवीन्द्रनाथ का अर्घ्यपात्र वहन करके इस महायज्ञ में उपस्थित हुआ हूं।

मैं अपने किसी व्यक्तिगत गुण के लिये यह सम्मान नहीं पा रहा हूं। मुझे नहीं भूलना चाहिये कि जिस महान् व्यक्ति का अर्घ्य पात्र लेकर मैं यहां उपस्थित हुआ हूं, उनके गुणों के कारण ही मैंने यह सम्मान पाने का अधिकार पाया है। प्रिय स्वजनों के गृह से जो दास दासियां सौगात लेकर आती हैं वे अकिंचन होने पर भी सम्मान पाती हैं। प्रियजनों की वार्ता ले आने वाला मामूली कागज़ का टुकड़ा भी वरेण्य हो जाता है। फिर भी कागज़, कागज़ ही है और उसकी कीमत उस संदेश के कारण है जो वह लेकर उपस्थित हुआ है। यहां रवीन्द्रनाथ की एक छोटी कविता मुझे याद आ रही है—

> रथ-यात्रा लोकारण्य महा धूम धाम,
> भक्तेरा लुटाये पथे करिछे प्रणाम।
> रथ भावे आमि देव, पथ भावे आमि,
> मूर्ति भावे आमि देव, हासे अन्तर्यामी।

अर्थात् "रथयात्रा के समय लोगों की भीड़ जमी हुई है, धूम धाम के साथ उत्सव मनाया जा रहा है। भक्त भूलुंठित होकर प्रणाम कर रहे हैं। रथ सोचता है, मैं ही देवता हूँ, पथ सोचता है मैं ही देवता हूं और मूर्ति सोचती है कि वही असल देवता है। अन्तर्यामी देख देख कर हँस रहे हैं।" तो भी आप लोगों ने अगर मुझे मेरे संदेश से भी अलग करके सम्मानित किया है तो यह आपकी महिमा और गाढ़ प्रीति का ही परिचायक है, मैं अपने को सचमुच ही उस सत्कार और सम्मान का अधिकारी समझ कर आप की उस प्रीति और महिमा को छोटा करना नहीं चाहता।

इस उपलक्ष्य में इस महातीर्थ में आने का अवसर पाकर मैं स्वयमेव धन्य हुआ हूं। न जाने कितने दिनों से यह हरिद्वार तीर्थ और साधना का क्षेत्र है। नाना पुराणों और नाना शास्त्रों में इस क्षेत्र का माहात्म्य पुनः पुनः उद्घोषित किया गया है। यह इतिहास आप लोग मुझ से अच्छा ही जानते हैं। बार-बार सुनी हुई उन बातों को नये सिरे से दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। आज कार्य बहुत है, समय थोड़ा है।

इस तीर्थ के माहात्म्य को आपके इस गुरुकुल ने बहुत अधिक बढ़ा दिया है। इतने दिनों से कितने ही साधकों ने यहां ज्ञान की साधना की है और प्राचीन-साधना पीठ को नई प्राणधारा से और भी पवित्र, और भी प्राणवान तथा और भी महनीय बनाया है। उषा को ऋग्वेद (३. ६१. १) में "पुराणी युवती" कहा गया है। उषा का चिरन्तन सौन्दर्य प्रति रात्रि के अन्त में मृत्यु के समान घने तिमिर सागर में स्नान करके नित्य नया जन्म धारण करके और भी मनोरम हो उठता है। अतएव वह जीवन से जीवन्त है, यही कारण है कि वह चिर नवीन है, पुरानी युवती है। वेदों के सनातन संदेश में वही चिर-नवीन महिमा है। आपने इस पुराने साधनापीठ में शाश्वत वेद-वाणी को नवीन रूप में उपलब्ध किया है।

यह साधना उषा की भांति ही पुरानी युवती है फिर नवीनता लिये हुए है।

इस तपस्या के गुरु श्रीमत् स्वामी श्रद्धानन्द जी को उनके गार्हस्थ्य जीवन में भी देखा है और उनकी तापस अवस्था में भी मैंने देखा है। आज उनकी तपस्या को यहां मूर्तिमती देखकर ऐसा ज्ञान पड़ रहा है कि उनको सम्पूर्ण भाव से उपलब्ध कर रहा हूं। वे आज परलोक में नहीं हैं, आपकी इस तपस्या में पहले से कहीं अधिक जीवित हैं। उनके साथ जो परिचय हुआ था, वह परिचय मुझे पूर्ण और सार्थक ज्ञान पड़ता है।

परम सत्य के दो रूप हैं, एक स्थितिशील और दूसरा गतिशील। यूरोप के विचारकों की धारणा है कि हम पूरब के रहने वाले सत्य के स्थितिशील रूप के उपासक हैं और वे लोग गतिशील रूप के। किन्तु जब मैं देखता हूं कि वे अपने गतिशील विज्ञान की सहायता से अपनी आदिम स्थितिशील मनोवृत्तियों की ही पूजा करते हैं तो मुझे उनका भाग्य हमारी अपेक्षा बहुत आशा जनक नहीं दीखता। आदिम मानव के हाथ में जो काठ-पत्थर वगैरह अस्त्र थे वही कई गुना शक्तिशाली होकर वैज्ञानिक मशीनों के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। आगे के मनुष्यभक्षी एकाध व्यक्ति को खाया करते थे, आज एक पूरा राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल रहा है। इसे "ग्रूप-कैनिबलिज्म" या सामूहिक मनुष्यभक्षण न कहें तो क्या कहें। विद्वेष और रक्त शोषण की प्रवृत्ति ने जातीयता का नाम लेकर अपने को भद्रवेशी सभ्यता के रूप में विज्ञापित किया है। इस समय अचानक उसका रूप उद्घाटित हो गया है। जो रक्त-तृष्णा दूसरों के रक्त से इतने दिनों तक तृप्त होती रही है वह आज अपना ही रक्त चूसने के लिये भयंकर मूर्ति धारण कर रही है। कहानियों में कभी कभी राक्षसी सुन्दरी स्त्री का रूप धारण करके राजकुमार के पास आते सुनी गई है किन्तु ज्योंही उस तोते या अन्य पदार्थ पर, जिसमें कि उस (राक्षसी) का प्राण बसता है, किसी का हाथ पड़ता है त्यों ही उसकी वास्तविक राक्षसी मूर्ति अचानक प्रकट हो जाती है। यूरोप का भद्रवेशी सभ्यता का राक्षसी रूप आज विकराल भाव से फूट पड़ा है। उस सभ्यता का प्राण जिस स्वार्थपरता नामक तोते में वास करता था वह आज सुरक्षित नहीं है, इसी लिये यह विकरालता है।

मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि सारा यूरोप देश स्वार्थपर लोगों से ही भरा है। वहां की सभ्यता में प्रधान रूप से ऐसे लोगों का बाहुल्य है जो वस्तुतः आदिम वृत्तियों के ही उपासक हैं। वैसे व्यक्तिगत रूप से वहां बड़े बड़े साधक और तपस्वी आज भी विद्यमान हैं इस विषय में कोई दो मत नहीं हो सकते। किसी भी देश में सारा देश का देश तपस्या द्वारा आदर्श हो उठा है ऐसा कभी नहीं हुआ है। सर्वत्र अधिकार भेद होता है और सच पूछिये तो इस महान् भारतवर्ष के आधुनिक अधिवासी हम सचमुच ही सात्विक वृत्ति के हैं या नहीं इस बात की परीक्षा का मौका इस युग में अभी आया ही नहीं; उपयुक्त अवसर पाने पर हम क्या होंगे, कौन कह सकता है! उस परीक्षा का समय आवेगा। शीघ्र आयेगा। उसके लिये तुम्हारे प्रवीण पुरुषों ने कुछ कुछ तैयारी करनी शुरू की है। यह सभा उसी तैयारी का रूप है।

सो इस महाक्षेत्र में जो सब साधु सज्जन, भक्त और साधक गण पधारे हुए हैं और जिन महात्मा लोगों ने शिक्षा को ही जीवन का व्रत समझ कर ग्रहण किया है, उन सबको आज प्रणाम करता हूं।

किन्तु हे स्नातक गण, तुम्हें आज इतनी जल्दी छोड़ने से तो काम नहीं चलेगा। ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य के सन्धिक्षण में तुम उपस्थित हो। तुम जब हम से पथ-निर्देश की आशा करते हो तब तो चुप रहना सम्भव नहीं है।

दिन की जहां समाप्ति है और रात्रि का जहां आरम्भ है या फिर रात्रि की जहां समाप्ति है और दिन का आरम्भ होता है उन पवित्र सन्धिक्षणों को भागवत मुहूर्त कहते हैं। तुम्हारे भी छात्र-जीवन का अवसान और उत्तर जीवन का आरम्भ होने जा रहा है। इस भागवत पुण्य-क्षण में तुम्हें कुछ बताने के समय बताने वाले के भीतर तुम्हारे प्रति एक गम्भीर श्रद्धा की आवश्यकता है।

देश अंधकार से समाच्छन्न है और तुम्हारा दीप जल चुका है। अन्यान्य लोगों को मार्ग दिखाने का और मुझे दीपकों को जलाने का भार तुम्हारे ऊपर है। भविष्यत् युग के गुरु तुम्हीं हो। इस प्रकार तुम भी नमस्य हो।

आज की समस्या बड़ी जटिल है। प्राचीन काल की समस्या शायद इतनी गुत्थियों से भरी नहीं थी आज प्राच्य और पाश्चात्य, पुरातन और नूतन सभी समस्यायें यहां आकर उपस्थित हुई हैं। इस तट-हीन, वेला-हीन महा समुद्र में तुम्हें यात्रा करनी है। भूल भ्रान्ति की सम्भावना पद-पद पर है। इसी लिये जब तुम हमारी ओर, जिन्होंने कि इन रास्तों की कठिनाइयों का कुछ परिचय पा लिया है, मार्ग जानने की आशा से देखते हो तो चुप रहना ठीक नहीं।

मुझे केवल अपने बता सकने की योग्यता और अधिकार के सम्बन्ध में संदेह होता है। अतीत ही भविष्य के मार्ग को निर्दिष्ट करता है। भारतीय ज्ञान-साधना के क्षेत्र में जो भूतकाल के अधीश्वर हैं वही भव्य की गति निर्देश करें। इसी लिये हम इतिहास से ही रास्ते की बात पूछ सकते हैं। हमारी संकीर्ण बुद्धि उस महा-उपदेश को बाधाग्रस्त कर सकती है। पर इतिहास हमें निश्चित सत्य की ओर इशारा कर सकता है।

जिस प्रकार मिट्टी के नाना स्तरों के जमने से डेल्टा बना करते हैं उसी प्रकार भारत वर्ष की सभ्यता नाना जातियों की साधनाओं के एक दूसरे पर जमने से बनी है। वैदिक आर्यों की सभ्यता, उसके पूर्व की भी द्रविड़ जातियों की साधना और उसके भी पूर्व की द्रविड़-पूर्व जातियों की बहुत-सी चिन्तायें और साधनायें इस भूमि पर एकत्र हुई हैं। आगे चल कर और भी बहुत-बहुत

(शेष पृ० ५ पर)

गुरुकुल

६ वैशाख शुक्रवार १९९८

गुरुकुलोत्सव पर एक दृष्टि

गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी का ३९वां वार्षिकोत्सव १० अप्रेल को कुल भूमि में धूमधाम से प्रारम्भ हुआ। चार दिन तक यह धूमधाम बराबर बनी रही। दूर २ से आर्य सन्यासी और आर्यनेतागण इस उत्सव में भाग लेने के लिये पधारे। दर्शकगण बड़ी सख्या में बराबर आते रहे। अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्य सामयिक दिलचस्पी के सम्मेलन इस अवसर पर किये गए। चारों ओर रौनक और चहल पहल नज़र आ रही थी। सब कुलवासी प्रबन्ध में व्यस्त रहे।

१० अप्रैल को प्रातःकाल सन्ध्या हवन के साथ उत्सव की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। इसके बाद गुरुकुल के ही सुयोग्य स्नातक प्रसिद्ध आर्य संन्यासी स्वामी व्रतानन्द जी महाराज का धार्मिक उपदेश हुआ उसके बाद वेदों के प्रकांड विद्वान और गुरुकुल के वेदोपाध्याय पं० विश्वनाथ जी के सभापतित्व में वेद सम्मेलन हुआ, जिसमें वेदों के विभिन्न गम्भीर विषयों पर ब्र० ओमप्रकाश, भीष्मदेव और धर्मपाल ने निबन्ध पढ़े; जिन पर बाद में बहस भी हुई। सभापति महोदय ने अपने भाषण में वेदों के महत्व का प्रतिपादन किया।

डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दीक्षान्त भाषण

११ अप्रैल को गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी का दीक्षान्त समारोह (Convocation) बड़ी धूमधाम से सकुशल सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर भारत वर्ष के अनेक प्रसिद्ध साधु संन्यासी, नेतागण और शिक्षाविज्ञ उपस्थित थे। गुरुकुल विश्वविद्यालय के चांसलर और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान राय बहादुर दीवान बद्रीदास जी की अध्यक्षता में डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर का दीक्षान्त भाषण शान्तिनिकेतन के आचार्य क्षितिमोहनसेन ने पढ़कर सुनाया। डा० टैगोर स्वास्थ्य ठीक न होने तथा वृद्धावस्था के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके। डा० टैगोर ने अपने भाषण में पाश्चात्य और पुरातन भारतीय शिक्षा-प्रणालियों की तुलना करते हुए योरुप की आधुनिक समस्याओं का भी संकेत किया और गुरुकुल के नव-स्नातकों को संतप्त मानव समाज के सन्मुख पराजित भारतीय सत्यों को पेश करने का आदेश किया। आचार्य क्षितिमोहनसेन ने अपने पृथक् भाषण में बहुत सुन्दर ढंग से शिक्षा के वैदिक आदर्शों का प्रतिपादन किया और मार्मिक वाणी से नवस्नातकों का आह्वान किया कि मैदान में आकर भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रयत्न करें। ये दोनों भाषण इसी अंक में अन्यत्र छापे जा रहे हैं—
[संपादक]

अन्त में श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज और प्रधान राय बहादुर बद्रीदास जी ने आशीर्वाद दिये तथा संस्कार समाप्त किया। इस वर्ष गुरुकुल विश्व विद्यालय से २० स्नातक निकले हैं, जिन में श्री० ओम्प्रकाश सर्व प्रथम रहे और उन्होंने अनेक पदक प्राप्त किये।

लोहारू कांड सम्मेलन

स्वामी सत्यानन्द जी के सभापतित्व में आर्य जनता का एक विशाल आम जलसा हुआ, जिसमें लोहारू रियासत में आर्य समाज के जलूस पर आक्रमण की निन्दा की गई, घायल आर्यों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई, और भारत सरकार से प्रार्थना की गई कि वे हस्तक्षेप कर इस कांड की निष्पक्ष जांच करायें और ऐसा प्रबन्ध करें कि ये घटनायें मुसलमानी रियासतों में बार २ न हो सकें। पं० इन्द्र जी, श्री उपा० देवव्रत जी, राय साहब अमृतराय जी, प० विश्वनाथ जी और स्वामी सत्यानन्द जी ने प्रस्ताव पर ज़ोरदार भाषण दिये। आर्य जनता ने यह भाव भी प्रकट किया कि यदि जरूरत पड़े तो किसी प्रकार का सत्याग्रह भी किया जाय। रात को अपने पृथक् भाषण में स्वामी सत्यानन्द जी ने हिन्दुओं में और विशेषतया आर्य समाजियों में क्षात्र भाव पैदा करने वाला बड़ा ओजस्वी भाषण दिया। आपने कहा कि यदि आर्य समाज अपनी शक्ति का ठीक समझ कर उपयोग करे तो संयुक्त प्रान्त और पंजाब में वह प्रान्तीय मंत्रि-मंडलों के निर्माण में भी बड़ा भारी भाग ले सकता है।

स्वामी सर्वदानन्द जी का स्वर्गवास

आर्य समाज के वयोवृद्ध वीतराग नेता सन्यासी स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के स्वर्गवास का तार पाकर तमाम कुलभूमि और उत्सव कैम्प में एक दम शोक की लहर फैल गई। सब की ज़बान पर स्वामी जी की सेवा और निस्पृहता की चर्चा थी। राय बहादुर दीवान बद्रीदास जी के सभापतित्व में एक विशाल सभा दोपहर को हुई, जिसमें आचार्य अभय देव जी, डा० राम स्वामल जी, पं० भीमसेन जी, प० सत्यव्रत जी सभा मन्त्री गुरु दित्तामल जी आदि के भाषण हुए। तथा शोक प्रस्ताव करके स्वामी जी की सेवाओं का स्मरण किया गया और उनकी दिवंगत आत्मा के लिए सद्गति की प्रार्थना की गई।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय भवन

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज द्वारा उद्घाटन

१२ अप्रल को प्रातः श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने, एक विशाल जनसमुदाय के सन्मुख, गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय के नवीन विशाल भवन का उद्घाटन किया। यह इमारत इसी वर्ष तीस हजार रुपयों की लागत से बनकर तैयार हुई है। इससे संबन्धित आपरेशन भवन, रोगी-गृह आदि तो पहले से ही विद्यमान हैं।

गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो० सत्यव्रत जी ने अपने प्रारंभिक भाषण में गुरुकुल आयुर्वेद भवन और संबंधित श्रद्धानन्द सेवाश्रम का इतिहास बताते हुए इस पर प्रकाश डाला कि इन संस्थाओं की क्या उपयोगिता है। आपने एक्सरे, लेबारेटरी, रोगीशय्याओं के लिये धनकी मार्मिक अपील की, जिस पर कुछ रकमें मौके पर ही प्राप्त भी हो गई। जिनमें गुरुकुल के प्रेमी लब्भूराम जी नैयड़ का नाम उल्लेख योग्य है। स्वामी सत्यानन्द जी ने भी अपने भाषण में गुरुकुल की सेवाओं का जिकर करते हुए जनता से उदारता पूर्वक धन देने की अपील की।

अन्य हलचलें

मुख्याधिष्ठाता प्रो० सत्यव्रत जी ने संस्कृतियों के संघर्ष पर एक सुन्दर भाषण दिया और गुरुकुल की उपयोगिता बताई। आपके भाषण के बाद उपस्थित जनता में धन संग्रह हुआ। इस वर्ष कुल मिलाकर गुरुकुल के लिये ६,२०००) से अधिक दान प्राप्त हुआ। रात को पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति और पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के प्रभावशाली भाषण हुए। १२ ता० को ही प० यशपाल जी के सभापतित्व में दलितोद्धार सम्मेलन हुआ जिसमें कुछ हरिजनोद्धार सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।

गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों के खेल

१२ अप्रैल को बहुत अधिक हाजिरी थी। इतनी पिछले कुछ वर्षों से देखने में नहीं आई थी। इतना होने पर भी प्रबन्ध ऐसा अच्छा रहा कि कोई अशुभ वारदात नहीं हुई।

१२ ता० को रात राय साहिब अमृतराय जी के सभापतित्व में व्यायाम सम्मेलन बहुत कामयाबी से हुआ। छोटे-बड़े ब्रह्मचारियों के शारीरिक खेल और कसरतें देखने के लिये पंडाल नर नारियों से खचाखच भरा था। छोटे बच्चों के लेजिम, लाठी, ग्रुप-मेकिंग वगैरह के खेल बहुत पसन्द किये गये। विद्यालय और महा विद्यालय के विद्यार्थियों ने वजन उठाने, पैरेललबार, बाक्सिंग, रिंग, शर शैया, गले से सींख मोड़ना, इकट्ठी ताश की गड्डी फाड़ने आदि के चमत्कार पूर्ण खेल दिखाये जिन्हें दर्शकों ने बहुत पसन्द किया। पंडाल में उसी समय २०० रुपया से अधिक रुपये और मैडल इनाम के तौर पर इन ब्रह्मचारियों को मिले। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी शान्ति स्वरूप के व्यायाम बहुत पसन्द किये गये।

१३ ता० को सुबह नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का वेदारंभ संस्कार हुआ। इस वर्ष ५० ब्रह्मचारी नये दाखिल हुए। जिनमें भारतवर्ष के सब प्रान्तों के ब्रह्मचारी शामिल थे।

गुरुकुल के स्नातकों और ब्रह्मचारियों के संरक्षकों में इस दफा खास हलचल नजर आती थी। वे अपनी २ सभायें करके गुरुकुल की उन्नति और उसे और लोकप्रिय बनाने पर विचार करते रहे।

गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव सकुशल समाप्त

श्री दत्तात्रेय का मधुर संगीत

१३ ता० को सायंकाल एक बृहद् कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें बाहिर से पधारे व गुरुकुल के अनेक कवियों ने अपनी रचनायें सुनाईं। रात को संगीत सम्मेलन हुआ। इसके सभापति इस युग में संगीत के पुनरुद्धारक स्वर्गीय श्री विष्णु दिगंबर जी के योग्य पुत्र श्री दत्तात्रेय थे। आप की अवस्था अभी २० वर्ष की ही है, लेकिन आपके संगीत ने जनता को मंत्र मुग्ध कर दिया था। श्री पुलस्कर की वायलिन और दिल्ली के श्री विनयचन्द्र का गायन भी पसन्द किये गए।

१४ तारीख को जन्मोत्सव सभा के साथ गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव समारोह से सकुशल समाप्त हुआ।

इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बड़ा सफल रहा। पिछले वर्षों से दान भी अधिक प्राप्त हुआ, विद्यार्थी भी अधिक प्रविष्ट हुए और हाज़िरी तो पिछले कई वर्षों से इतनी देखने में नहीं आई थी। प्रबन्ध भी बहुत अच्छा रहा। प्रभु की कृपा से कोई अघटनीय घटना नहीं घटी।

(पृ० ३ का शेष)

जातियां यहां आती रही हैं और भारतीय साधना-यज्ञ में अपनी-अपनी आहुति देती रही हैं। अमेरिका और आस्ट्रेलिया में जिस प्रकार समूची की समूची पुरानी जातियों को साफ करके जातीय एकता की प्रतिष्ठा की गई है वैसा कभी इस देश में नहीं हुआ। यहां किसी जाति ने दूसरी किसी जाति के उच्छेद की बात नहीं सोची। आज हम जिस रूप में दिखाई दे रहे हैं उसमें उन आर्य-अनार्य बहुविध जातियों की देन है। हमारी सभ्यता नाना जाति की साधनाओं के सम्मिश्रण का फल है।

पुराने आर्य जन की शिक्षा का क्षेत्र यज्ञभूमि थी बीच-बीच में बड़े-बड़े सम्मेलनों में एकत्र होते थे। ये ही विशेष विशेष महायज्ञ कहे जाते थे। महायज्ञ बहुत कुछ आज के कानफरेंसों और कांग्रेसों के समान थे। इन यज्ञों के समय निर्णय को आश्रय करके ही भारतीय ज्योतिष विज्ञान समृद्ध हो उठा था।

यहां मैं आपको ऐतरेय महीदास का उपाख्यान स्मरण कराना चाहता हूँ। महीदास के पिता की दो पत्नियां थीं। एक ब्राह्मणी दूसरी इतरा या शूद्रा। यज्ञ के समय उन्होंने अपनी ब्राह्मणी पत्नी से उत्पन्न पुत्र को तो शिक्षा दी, लेकिन शूद्रा गर्भ से उत्पन्न महीदास को नहीं। महीदास ने दुःखित होकर माता को अपना दुःख बताया। वे बोलीं — हम मही (= पृथ्वी) की सन्तान हैं, मही के सिवा हमारा कौन है? माता के स्तव से मही देवी आविर्भूत होकर महीदास को अपने घर ले गई और जगत् के गम्भीरतम ज्ञान की शिक्षा देने लगीं। मही का शिष्य होने के कारण ही महीदास महीदास हुए और

चूंकि इतरा या शूद्रा के पुत्र थे इस लिये ऐतरेय कहलाये। इन्हीं का रचित ब्राह्मण ऋग्वेद का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण है।

अथर्व वेद के बारहवें काण्ड के आरम्भ में ही मही सूक्त है। यहां ऋषि पृथ्वी की स्तुति करते हैं, स्वर्ग की नहीं। इसी वेद के दसवें काण्ड का द्वितीय सूक्त और ग्यारहवें काण्ड का अष्टम सूक्त नृसूक्त है जो अपनी अपूर्व महिमा के कारण मनीषियों को मुग्ध किये हुए है।

तपोवन, प्रकृति और मनुष्य का सच्चा सम्मेलन है। यहां के समान कोई दूसरा गुरु नहीं है। प्रकृति के निकट जो शिक्षा मिलती है वही सच्ची और गम्भीर होती है। प्रकृतिमाता की गोद में बैठकर जहां सचमुच का मनुष्य गुरु के आसन पर आसीन होता है वह तपोवन ही शिक्षा का आदर्श साधना-पीठ है। भारत के इस प्राचीन आदर्श को सामने रखकर कविवर रवीन्द्रनाथ ने शान्ति-निकेतन आश्रम की स्थापना की थी। भारत के तपोवन एक दिन मानव-गुरु के ध्यान से और प्रकृति-गुरु के रस से परिपूर्ण होकर शिक्षा के उत्तम क्षेत्र बन सके थे। आज हमारे बालक इस आनन्दमय ज्ञान की गोद से परित्यक्त हैं।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने जीवन की सर्वावस्थाओं में सामंजस्य विधान करके ही चतुराश्रम की प्रतिष्ठा की थी। गार्हस्थ्य आश्रम के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा काल है और संन्यास आश्रम के लिये है वानप्रस्थ। ब्रह्मचर्य साधना का क्षेत्र ही तपोवन है। इस ब्रह्मचर्य का एक सुन्दर वर्णन अथर्व वेद के ग्यारहवें काण्ड के सप्तम सूक्त में है। यह कोई संकीर्ण जीवनचर्या नहीं है बल्कि समस्त क्षेत्रों में और समस्त दिशाओं में इसकी साधना की है। इसमें स्त्रियां दूर नहीं रखी गई हैं। उनका भी इसमें स्थान है (११. ७. १८)। कहा गया है कि राजा की राष्ट्र-तपस्या भी ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचारी ही पृथ्वी का पालक है, वही धरती की प्रतिष्ठा है, वही तपस्या से आचार्य को पूर्ण करता है, वही सारे लोक को आपदाओं से बचाता है।

मध्ययुग के ज्ञान का इतिहास गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का इतिहास है। आज तुम लोग जब गुरु और शिष्य के मणिपीठ पर उपविष्ट हो, तुममें से कई भावी युग के गुरु बनोगे, ऐसी हालत में उन पुरातन गुरुओं का इतिहास तुम्हें आना चाहिये।

हमारे देश में यह विश्वास किया जाता है कि मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। महान आदर्शों और विशाल सत्य को उपलब्ध करने के लिये मनुष्य शरीर से बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। इस देह को हमें लापरवाही से नष्ट नहीं कर देना चाहिये इसी लिये कठोपनिषद् ने कहा है—

पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः (१. ३. ११)

मनुष्य ही समस्त कर्म तपस्या, ब्रह्म और परम अमृत है, संक्षेप में मनुष्य ही सारा विश्व है। नाना मिथ्या के अज्ञान से यह मनुष्य समाच्छन्न है उसे जो पहचान सकता है वह अविद्या के बन्धन से मुक्त होता है—

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं

विकिरतीह सोम्य। मुण्डकोपनिषद् २. १. १०

मानव का स्वरूप विराट् है, विश्व ब्रह्माण्ड इस मनुष्य में ही मूर्तिमान् हुआ है, सब समुद्र का निरन्तर विराट् आलोडन इस मानव की नाड़ी में ही नित्य प्रतिस्पन्दित होता है—

समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः। अथर्व १०.७.१५

इस मानव में जिसने ब्रह्म को प्रत्यक्ष किया है उसीने उसके परमोत्तम परमेष्ठी स्वरूप को उपलब्ध किया है—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्। अथर्व १०. ७. १७

मानव के इस विराट्-स्वरूप की यथायोग्य उपलब्धि और सम्मान अब भी नहीं हुआ। मैंने सोचा था कि ज्ञान विज्ञान से इस पाश्चात्य सभ्यता में इस स्वरूप की उपलब्धि होगी। अन्ततः पश्चिमी विचारकों ने दावा कुछ इसी प्रकार का किया था। निस्सन्देह उन में यह योग्यता भी थी, क्योंकि उनके धर्म मत से मनुष्य ईश्वर का ही रूप है और मानव पुत्र यीशु के द्वारा ही उनकी उपासना होती है। किन्तु आज की इस मारामारी और छीना-झपटी को देखता हूं तो निराश होना पड़ता है, यह आशा भी धूलिसात् होती दीख रही है। इस महासत्य को व्यक्तिगत भाव से जिन्होंने उपलब्ध किया है ऐसे अनेक मनुष्य यूरोप में आज भी हैं परन्तु वहां की जनता उन्मत्त है उनके कान बहरे हो गये हैं। इसी लिये इस सत्य का सुनवाई अब उस देश में हो सकेगी ऐसी सम्भावना नहीं है। हम लोग यद्यपि मुंह से कहते रहते हैं कि 'यत्र जीवः तत्र शिवः' किन्तु तोभी यह सत्य क्या सचमुच हमारे भीतर यथार्थ स्थान पा सका है? इतनी बड़ी मारामारी काटाकाटी की सामर्थ्य हममें नहीं है और इसीलिये हम इस मारामारी में जुट नहीं गये। कौन जानता है उपयुक्त अवसर मिलने पर हमारा कैसा बीभत्स रूप प्रकट हो जाता। कुछ भी शक्ति न होने पर भी अस्पृश्यता के मामले में हमने अपनी जैसी हिंसा-पटुता प्रदर्शित की है वही सारे जगत् को स्तब्ध कर देने के लिये काफी है।

तो भी मानव-गत यह महासत्य हमारे ऋषियों के निकट उद्भासित हुआ था। हम यदि इस मानवोपलब्धि को साक्षात् कर सकें तभी भारतवर्ष के प्राचीन सत्य द्रष्टा ऋषिगण प्रसन्न और तृप्त होंगे।

इस महातपस्या का पथ दिखायेगा कौन? यहां भी मनुष्य के माहात्म्य की बात ही स्मरण करनी होगी। बुद्धदेव सदा ही कहा करते थे कि दूसरों पर अवलम्बित मत हो खुद अपने आपको दीपक बनाओ—"आत्म-दीपो भव।" उपनिषद् भी यही बात कहती हैं। मनुष्य तो विज्ञानमय है फिर चिन्ता किस बात की है (बृहदारण्यक २. १. १६) मानव ही तो स्वयं-ज्योति है (बृहदा. ४, ३, ६)।

तुम्हारे भीतर जो विज्ञानमय परम ज्योति विद्यमान है उसे आवाहन करके उद्बोधित करो। अन्तरस्थित महागुरु के सिवा ऐसा और कोई दूसरा नहीं है जो यह महा-आलोक दे सके। मानव के भीतर जो चिन्मय वेद है एक-

मात्र उसी के द्वारा परिपूर्ण सत्य की उपलब्धि हो सकती है। विश्व चराचर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उस अन्तर-वेद के लिये अगम्य हो। इतिहास-उपनिषद् में कहा गया है कि ऋक् मंत्र अगर तुमने जाना है तो अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि तुमने देवताओं का रहस्य जान लिया है, यजुर्वेद अगर तुमने जाना है तो यज्ञों का रहस्य ही समझा है, साम मन्त्र की जानकारी प्राप्त की तो माना कि और भी सब कुछ जान गये हो परन्तु मानव की अन्तरात्मा में जो अन्तर वेद है, उसे तुमने जाना है तभी ब्रह्म को जाना है—

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्
यजूँ ष यो वेद स वेद यज्ञम्।
सामानि यो वेद स वेद सर्वम
यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म।

(आडियार पब्लिकेशन, पृ० ११)

साधना के द्वारा अपने अन्तर स्थित चिन्मय ज्योति को उद्भासित करके परम सत्य को जानो, जाग्रत होओ। जाग्रत न होने से ब्रह्म को नहीं जाना जा सकता और न उनकी सेवा की जा सकती है। ये जो सब पुरोहित ब्राह्मणों के निद्रा-मग्न दल हैं उनके समान निद्रित होने से काम नहीं चलेगा—

मोषु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भव (ऋग० ८, ९२, ३०)

उद्यमी और जाग्रत लोग ही धन्य हैं, निद्रालु और प्रमाद ग्रस्त नहीं। अतन्द्र उत्साहशील लोग ही आनन्द-लोक के अधिकारी हैं। क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवता उसी के साथ साथ चलते हैं जो अग्रसर होकर चल पड़ा है:—

इन्द्र इच्चरतः सखा (७. १५. १)

पाप-पुण्य की समस्याओं को लेकर ही उपदेशकों के दल व्यस्त रहते हैं, ऐसे अवसरों के लिये ऐतरेय ब्राह्मण का सन्देश है कि बढ़े चलो तुम्हारा पाप तुम्हारे चलने के मार्ग में स्वयमेव हतवीर्य हो कर सो रहेगा—

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हता।

(ऐतरेय ७. १५. ८)

हम कह सकते हैं, कि हम दुर्भाग्यग्रस्त हैं, हम क्या इस मन्त्र की साधना कर सकते हैं? ऐतरेय ने इस आपत्ति का दृढ़ कंठ से प्रतिवाद किया है। भाग्य है क्या वस्तु? जो बैठा रहता है उसका भाग्य भी बैठा रहता है, जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है, जो सोया पड़ा रहता है उसका भाग्य भी सोया पड़ा रहता है। जो अग्रसर होता है उसका भाग्य भी अग्रसर होता है। इसलिये आगे बढ़ो—आगे बढ़ो—

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥
चरैवेति चरैवेति

(ऐत० ७. १५. ३)

यह कहना बेकार है कि इस कलियुग में यह बातें नहीं हो सकती। क्योंकि ऐतरेय में कहा है कि सो रहने को ही कलियुग कहते हैं। निद्रा छोड़कर जग पड़ना ही द्वापर है, उठ खड़ा होना ही त्रेता है और अग्रसर होना ही सत्ययुग है। अतः आगे बढ़ो—आगे बढ़ो।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।
चरैवेति चरैवेति।

(७. १५. ४)

शक्ति के अभाव की चिन्ता कभी न करना। सारे संसार को आलोक वितरण करने वाले सूर्य को कभी क्या आलोक का अभाव अनुभव हुआ है? ज्यों २ वह आलोक वितरित करता हुआ आगे बढ़ता गया है त्यों त्यों उसका आलोक-भण्डार पूर्ण होता गया है।

सूर्यस्य पश्य श्रमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।

(७. १५. ५)

मैं नहीं जानता कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस 'चरैवेति' मन्त्र से अधिक गतिशील और शक्तिशाली मंत्र जगत् के किसी अन्य जाति के शास्त्र में है या नहीं। हे तरुण मित्रो, जीवन में जब कभी तुम्हें अवसाद अनुभव हो, तुम इस मंत्र को जरूर याद करना, तुम जरूर नयी शक्ति अनुभव करोगे।

जब तक हम बैठे रहते हैं तब तक आगे और पीछे का भेद बिल्कुल ही नहीं मिटता। चलने के द्वारा ही हम अतीत और अनागत को, भूत और भविष्य को एक कर सकते हैं। काल के साथ काल का और स्थान के साथ स्थान का यह जो योग है उसे ही अंग्रेजी में (Synthesis) और हम 'योग' कहते हैं। हमारे देश में समस्त साधनाओं में श्रेष्ठ साधना योग की साधना है।

[अपूर्ण]

गुरुकुलसमाचार

वार्षिकोत्सव के पश्चात् विद्यालय और महाविद्यालय विभाग की पढ़ाइयां नियम पूर्वक प्रारम्भ होगई हैं। इस वर्ष अनेक नई इमारतों के बन जाने के कारण अध्ययनाध्यापन में पर्याप्त सुविधा हो गई है। गुरुकुल के सभी विभाग नव-वर्षारम्भ के साथ नये उत्साह से अपने कार्य में लग गए हैं।

गुरुकुल का हाकी दल कलकत्ता को—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का 'अ' दल इस वर्ष भी कलकत्ता में प्रतिवर्ष होने वाले बाइटन-कप हाकी टूर्नामेंट की ओर से स-सम्मान निमन्त्रित किया गया है। यह दल ता० १८ अप्रैल को श्र. प्रो० सत्यव्रत जी मुख्याधिष्ठाता की अध्यक्षता में यहां से प्रस्थान कर चुका है। आशा है इस वर्ष यह दल पूरी सफलता प्राप्त करके लौटेगा। इसमें भाग लेने वाले खिलाड़ियों के नाम नीचे दिए जाते हैं:—

सर्व श्री विद्यारत्न जी, योगेश्वर जी, पं० गणपति जी, विद्यानन्द, श्रीकान्त जी, शंकरदेव जी, केवल कृष्ण, व्रजनन्दन, दिलीपचन्द्र, महेन्द्र, पं० हरिवंश जी।

अतिरिक्त खिलाड़ी-सर्व श्री सर्यकुमार, सत्यपाल नरोत्तम, धर्मवीर।

चौधरी दुलासिंह के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"
Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)	[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]	वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ९]	गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १३ वैशाख १९९८; २५ अप्रैल १९४१	[संख्या ५२

एक पत्र

(लेखक श्री अम्बालाल पुराणी)

[पतित जीवन से फिर उठना चाहने वाले एक नवयुवक को लिखा गया यह पत्र और बहुत से नवयुवकों के लिये बड़े काम का हो सकता है अतः यह प्रकाशित किया जा रहा है। इस पत्र के लेखक श्री अम्बालाल पुराणी का परिचय मैं पहिले 'गुरुकुल' के पाठकों को करा ही चुका हूं। —अभय]

तुम्हारा—पत्र मिला। पढ़कर खुशी भी हुई और दुःख भी हुआ। आनन्द तो यह जानकर हुआ कि अब भी तुम्हारे दिल में पवित्र जीवन के लिये आकर्षण बाकी है और उसे अपने जीवन में घटाने के लिये अब भी तुम्हारे मन में लालसा है यह आशा किरण कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं है। यदि भगवत्कृपा का अवतरण हुआ तो वह सच्चे दिल से की गई इस मांग के उत्तर में ही होगा। जो लोग दल दल में फंस चुके हैं और यह जानना तक नहीं चाहते कि वे किस अवस्था में हैं उनके लिये तो ज़रा कम ही आशा है, दुःख इसलिये होता है कि लगभग शैशव से ही मैंने तुम्हें देखा है और तुम्हारे प्रति वात्सल्य की पवित्र भावना का भी अनुभव किया है। उस समय की निर्दोष मुख मुद्रा मुझे इतनी अच्छी तरह याद है कि यदि मैं चित्रकार होता तो अब ठीक ठीक चित्र बना दिखाता। उस समय मैंने सोचा था कि 'यह बच्चा बहुत पवित्र जीवन बिताने वाला होगा। पापों स्वार्थों और वासनाओं से एकदम अछूता रहेगा, ऐसे बच्चे जन्म से ही भगवान के समीप हुआ करते हैं।" आज इतनी मुद्दत के बाद तुम्हारा पत्र पाकर अपने हृदय की इस भावना को प्रकट कर रहा हूं।

तुम्हारा पत्र पढ़कर और यह जानकर कि मेरी आशा फलीभूत न हो पाई-दुःख हुआ। क्या संसार की काली काली घटाएं अपने घटाटोप अंधकार में सुन्दर और सुरम्य स्थानों को भी भ्रष्ट करके ही रहेंगी? क्या प्रयत्न करने पर भी मनुष्य इस से छूट न पाएगा। नकारात्मक उत्तर क्योंकर और कैसे दिया जाए?

हां, अब तुम्हारी बात पर आता हूं। मैं अत्यधिक आशावादी हूं, निराशा और निरुत्साह मुझे बहुत नापसन्द हैं। असफलता पर असफलता मिलने पर भी धैर्य के साथ प्रयत्न किये जाने में मेरी श्रद्धा है। इसका यह मतलब नहीं कि सिर्फ अपने बलबूते पर और अपने ही प्रयत्न से मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है। मेरा अनुभव है कि अपने प्रयत्नों को जारी रखते हुए सच्चे दिल से भगवान से सहायता मांगने वाले को देर में हो या जल्दी पर भगवान की सहायता मिलती अवश्य है। हमें भगवान को यह विश्वास दिलाना पड़ता है कि हम सचमुच अपनी त्रुटियां और अपनी अधमता को दूर किया चाहते हैं। चाहे मनुष्य के रूप में किये गए हमारे प्रयत्न भले ही सफल न हो पाएं पर धैर्य के साथ प्रयत्न जारी रखते हुए यदि भगवान की सहायता मांगी जाए तो उस सहायता के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाएंगे। यह श्रद्धा का विषय है और इसमें तर्क नहीं किया जा सकता। अनुभव द्वारा ही इसके सत्य को जाना जा सकता है। इसे आजमाए बिना यूँ ही किसी निर्णय पर पहुंच जाना अवैज्ञानिक (Unscientific) ढंग है।

तुम्हारी मुश्किल के मुझे दो हल सूझते हैं और वे दोनों तुम्हें बताए देता हूं। यदि मेरी सम्मति से तुम्हें कुछ लाभ हो सका तो मुझे बड़ा हर्ष होगा। जीवन का कार्यक्रम अथवा व्यवसाय निश्चित करने से पहले जीवन की सामान्य दिशा का निश्चय कर लेना ज़्यादह अच्छा है। एक रास्ता तो यह है कि सामान्य कुटुम्ब जीवन बिताते हुए यथासम्भव अपनी, कुटुम्ब की और देश की उन्नति करने में भाग लो और इस प्रकार आगे बढ़ने का यत्न करो।

और दूसरी राह यह है कि किसी आदर्श को अपना कर जीवन में उसे मूर्तिमान करने में सारी शक्ति लगा दी जाए इसमें कुटुम्ब जीवन आवश्यक नहीं है और यह भी जरूरी नहीं है कि कुटुम्ब जीवन से दूर ही रहा जाए। पर हां इस मार्ग में जीवन का ध्येय कुटुम्ब जीवन न होगा बल्कि मनुष्य किसी कला, आदर्श अथवा प्रभु को प्राप्त करने के लिये सारी शक्ति लगा देगा यदि इसके साथ साथ गृहस्थ जीवन भी चल रहा होगा तो वह बहुत ही गौण रूप में-इस प्रकार के लोगों का गृहस्थ जीवन गृहस्थ के रूप में कोई बहुत सफल नहीं हो पाता।

तुम्हें शीघ्र ही इन दोनों में से किसी एक रास्ते को चुनना होगा। साधारण कौटुम्बिक जीवन बिताना हो तो किसी अच्छे घर की सुसंस्कारों वाली कन्या के साथ विवाह करके तुम इस कठिनाई में से निकल सकते हो। पत्नी के साथ स्वाभाविक शारीरिक सम्भोग करने से प्रायः अस्वाभाविक आदतें जाती रहती हैं। 'हां, जो बहुत ही गिरी हुई दशा को पहुंच चुका हो उस को तो बात भी अलग है, पर ऐसे बहुत थोड़े होते हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि पति पत्नी के बीच शारीरिक सम्बन्ध और सम्भोग बढ़ाना चाहिये, परन्तु अस्वाभाविक वासनाओं के वश में होने की अपेक्षा इन्हें एक स्वाभाविक मार्ग देना ज़्यादह इष्ट है। इसमें भी शीघ्र ही संयम से काम लेने और बुद्धि पूर्वक और आंखें खोलकर प्रगति करने की आवश्यकता कुछ कम नहीं है। अन्यथा यह स्पष्ट है कि कुटुम्ब जीवन भी सुखी न बन पाएगा। कुटुम्ब जीवन का अर्थ पशु जीवन हर्गिज़ नहीं है। कुटुम्ब जीवन ज़िम्मेदारी और परस्पर आन्तरिक उन्नति करने की तैयारी और सहकार है। पत्नी पति की लौंडी अथवा बांदी नहीं है और इसी प्रकार सब के सामने आसन बिछा पुजे जाने वाली और तथाकथित स्वतन्त्रता का उपभोग करने वाली परन्तु अकेले में अपना शरीर पति की मिल्कियत में देने वाली गुलाम भी नहीं है। पत्नी है पति के स्वभाव की मूर्ति। जितने अंश में पत्नी गुलाम है उतने ही अंश में पति भी मानहीन है। कोई अपने ही अर्धांग का अपमान करे और आत्माभिमानी भी कहाए! "जब पत्नी की अधम दशा होती है तो उसका अकेली का ही पतन नहीं होता, उसके पति का भी साथ ही साथ पतन होता जाता है। मनुष्य अपने अन्दर चरित्र की अथवा आध्यात्मिक और नैतिक उच्चता देखना चाहता हो उसको पहले उसे पत्नी के साथ के व्यवहार में अनुभव करना चाहिये।"

यदि ऐसा हो तभी विवाह उन्नति में सहायक हो सकता है अन्यथा अधोगति को ही प्राप्त करता है। दो हो चार वर्ष में शारीरिक आकर्षण का कुतूहल समाप्त होने पर स्त्री पुरुष के जीवन का आनन्द घटना शुरु हो जाता है। हमारे कौटुम्बिक जीवन में असफलता का कारण यही हुआ करता है कि पति पत्नी में कोई आन्तरिक मेल नहीं होता। उनमें इस प्रकार की मैत्री की अभिलाषा नहीं होती और हो भी तो उसे क्रियात्मक रूप देना नहीं आता।

यदि गृहस्थ धर्म ही अपनाना हो तो जैसा ऊपर लिखा है कुछ इस प्रकार का कार्यक्रम बना कर कमाई के साधनस्वरूप कोई हुनर सीख कर धनोपार्जन के लिये नहीं अपितु आदर्श कुटुम्ब जीवन बिताने का ध्येय सामने रखकर उसके लिये एक साधनस्वरूप धन प्राप्त करो।

अगर तुम्हारा मन इस प्रकार के जीवन की ओर आकर्षित होता है तो फिर तुम्हें इसे ही अपनाना चाहिये। लेकिन यदि यह कोई आदर्श जीवन लगता हो और अन्दर में किसी आदर्श को सिद्ध करने की ज्वाला धधक रही हो तो तुम्हारा रास्ता दूसरा ही होगा।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी आदर्श के लिये प्रयत्न करने वाले के जीवन में तुम्हारी बताई हुई काम-वासना सम्बन्धी कठिनाइयों का हल निकल आए। बहुतेरे प्रयत्न करने वाले अपने आदर्श को तो अपने जीवन में मूर्तिमान कर लेते हैं पर तुम्हारी बताई हुई मुश्किलों का हल फिर भी नहीं कर पाते। यह भी हो सकता है कि जब ये दिक्कतें उनके मार्ग में आएं तो वे विवाह करके सामान्य पारिवारिक जीवन बिताते हुए वासना को सन्तुष्ट करें और अपने आदर्श की ओर बढ़ते जाएं पर ऐसे कम ही होते होंगे। बहुत से आदर्शसेवी युवकों को यह सवाल तंग करता ही रहता है और गृहस्थ जीवन में भी वे इससे छुटकारा नहीं पा सकते। उन्हें अपूर्णता खलती है पर पूर्णता के न तो दर्शन ही होते हैं और न उसे प्राप्त करने का मार्ग ही मिलता है।

मेरा तो यह विश्वास है कि भगवान की शरण जाने पर ही पूर्णता का मार्ग मिल सकता है. कोई भाग्यवान अपनी प्रकृति की अशुद्धियों से बच जाए तो ऐसा बचना कोई पूर्णता का चिन्ह नहीं कहा जा सकता। यह काम तो तभी हो सकता है जब भगवत्प्राप्ति को ही हम अपने जीवन का ध्येय बना लें। और यह मार्ग भी कोई छोटा नहीं है। यह बहुत ही लम्बा रास्ता है परन्तु इसे छोड़ दूसरी कोई राह भी तो नहीं है।

तुम लिखते हो अपने आपको अकेला पाकर मन हृदयवासी के पास जाकर बहुत रोया है, उससे प्रार्थना की है, बल मांगा है, कृपा और कृपापात्रता के लिए याचना की है"—हां यही तो सन्मार्ग का प्रारम्भ है! इस हृदयवासी अन्तर्यामी को जगा कर-उसे सतत जागृत रखते हुए-अन्दर और बाहर सब जगह उसी का राज्य स्थापित करना चाहिये—यही भगवान का मार्ग है।

हो सकता है कि शुरु शुरु में प्रलोभन बहुत बढ़ने लगें और असफलताओं का ही तांता बंध जाए, और तुम्हारी पूंजी की अपेक्षा ऋण कहीं अधिक मालूम पड़े पर फिर भी हिम्मत न हारना। याद रखो इसे छोड़ विजय प्राप्ति का और कोई रास्ता नहीं है। यह बिल्कुल निश्चित बात है कि सच्चे दिल से अपनी कमजोरियों को दूर करने की इच्छा रखते हुए धैर्यपूर्वक इस मार्ग को पकड़ने वाला एक दिन अवश्य सफलता प्राप्त करेगा। धैर्य पूर्वक प्रयत्न, श्रद्धा और दिल की सच्चाई—ये तीन चीजें मनुष्य की ओर से हों और भगवत्कृपा--उसे सामर्थ्य, ज्ञान, करुणा-चाहो सो नाम दे लो—हो तभी विजय मिल सकती है।

तीसरी बात यह है कि यदि तुम अपने प्रयत्न में ... ... की सहायता लेना चाहो तो वह भी मिल सकती है। यदि तुम्हारे अन्तर में उनके लिये श्रद्धा हो और तुम अन्तःकरण से अपनी कठिनाइयों के हल करने में उनकी सहायता मांगो तो वह अवश्य मिलेगी। उनकी सहायता भी तुम्हें सफल बना सकती है पर हां सहायता लेने की शक्ति तो होनी ही चाहिये।

दिन भर किसी न किसी काम में लगे रहो और यह श्रद्धा रखो कि तुम्हारा मन भगवान के संरक्षण में है।

भगवान से सदा यह प्रार्थना करते रहो कि हे भगवान मेरी रक्षा करो, मेरे अन्दर अनिष्ट विचार न घुसने पावें तुम्हारी रक्षा प्राप्त होगी तो मैं अपनी ओर से प्रयत्न करता जाऊंगा।

तुम अपनी ओर से पूरी तरह मन को काम में लगाए रखो फिर भी हो सकता है कि अवचेतना (Subconcious) इन्हीं विचारों और वासनाओं में फंसी रहे और बार बार उन विचारों को जागृतावस्था में अथवा स्वप्न में मनमें लाने की कोशिश करे। तुम काममें लगे हो और फिर भी अन्तर का कोई भाग अधम वृत्तियों में फंसा हो तो भी यह श्रद्धा रखो हमारे आसपास और अन्तर की गहराइयों में भी भगवान की कृपा और उनकी रक्षा विद्यमान है। ऐसी अवस्था में अपनी इच्छा शक्ति द्वारा मुश्किल को हल करने की अपेक्षा पूरी श्रद्धा के साथ भगवान की शक्ति से ही रक्षण के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रयत्न जारी रखते हुए परिणाम से सूचित करते रहना। दिन रात किसी न किसी स्थूल या सूक्ष्म कार्य में लगे रहना और जब जब मन उधर जाय तब तब भगवान से रक्षा करने के लिये प्रार्थना करना।

... ...

... .

श्री अरविन्दाश्रम स्नेहाधीन
पांडीचरी ......

दीक्षान्त अभिभाषण

(आचार्य क्षितिमोहनसेन)

(गतांक से आगे)

जगत् में एक बड़ी भारी संकीर्णता है। प्राचीन वर्तमान को स्वीकार नहीं करता और वर्तमान भी अतीत की उपेक्षा करना चाहता है। कोई नहीं समझता कि एक के बिना दूसरा पंगु और अर्थहीन है। आधुनिक लोगों का कहना है कि प्राचीन में केवल आचार-विचार है संयम है, Control और डिसिप्लिन है। उसमें गति नहीं है। प्राचीन गण कहते हैं, आधुनिकता में सिर्फ गति ही गति है, संयम नहीं है। इसलिये यूरोप ने गतिशील विज्ञान का सहारा लेकर संयमशील धर्म को छोड़ दिया। किन्तु आज जब विज्ञान की हिंस्र राक्षसी मूर्ति प्रकट हुई है तब यूरोप को कौन बचायेगा? हमारे इस देश की दुर्गति दूसरी तरह की है। हम संयमशील धर्म को पकड़ कर, गतिशील ज्ञान विज्ञान को छोड़ कर अवसाद-ग्रस्त हो मृतप्राय बने हुए हैं। इसका मतलब क्या है?

असल में अंध-पंगु न्याय से दोनों का योग आवश्यक है। घोड़े को छोड़ देने से लगाम निरर्थक है और लगाम के बिना घोड़ा भयंकर है। पतवार के बिना कौन समुद्र में डोंगी छोड़ने का साहस कर सकता है और जहाज को छोड़कर पतवार पकड़े रहने में ही कौन-सी बुद्धिमानी है। संस्कृत के दग्धरथाश्वन्याय में यही बात कही गई है।

हमारे देश में शास्त्र और आचार में प्राप्त जो संयम है वह हमारे भविष्य के मार्ग में हमारा सहायक हो और चलने के द्वारा हम उस संयम और आचार को सार्थक करें।

साधना के दो महाक्षेत्र हैं—देश और काल। देश (स्थान) में जो चर और अचर है वही काल में भूत और भव्य है। ये दोनों ही एक ही परम देवता के दो रूप हैं। उनमें तो कोई विरोध नहीं है। बृहदारण्यक में इसीलिये कहा गया है—ईशानं भूतभव्यस्य (४-४-१५) कठोपनिषद् (२-४-५) में भी यही बात कही गई है और शतपथ ब्राह्मण (२४-७-२-१८) में भी इसी सत्य की प्रतिध्वनि है। अथर्ववेद (१३-३-७) में परम देवता को 'भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः' कह कर स्मरण किया गया है। वस्तुतः परम देवता के इन दोनों रूपों में कोई विरोध नहीं है। फिर भी हममें से कुछ लोग भूतोपासना पुरातन पंथी और कुछ लोग भविष्यत् या भव्य के उपासक नूतन-पंथी बनकर एक अजीब टंटा खड़ा कर देते हैं। अतीत काल में जो पुरातन-पंथी के स्थाणु या भूतनाथ हैं वही भविष्यत् के नूतन-पंथी के भव्य-ईशान या भावी काल के चालक हैं।

हमारे देश में जो उनके एक स्वरूप को छोड़ कर अन्य स्वरूप की पूजा करते हैं वे पूजा के बहाने उस परम देवता का अपमान करते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि एक ही यज्ञ के भूत और भव्य ये दोनों रूप दिखाई देते हैं-- 'स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत' (१३-१-५५)। उसी से यह सब कुछ उत्पन्न हुआ है, तस्माद् यज्ञ इदं सर्वम्।' साधारण जगत् में भी, देखते हैं कि कल, आज और आगामी कल में कहीं विरोध नहीं है। गत के ऊपर ही आगत की प्रतिष्ठा है और आगत के ऊपर आगामी की प्रतिष्ठा है—

असति सत् प्रतिष्ठितम् सति भूतं प्रतिष्ठितम्
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितम्॥
(अथर्व १७-१-१९)

इसीलिये ऋषि ने कहा है, तुम्हीं भूत हो तुम्हीं 'भवत्—'भूतमसि भवद् सि' (कौशिक सूत्र ६२-१३)। भविष्यत से वियुक्त करके भूत को वे नहीं देखते। साम-मंत्रब्राह्मण का कहना है कि भूत को भविष्यत् के साथ जोड़ कर देखना चाहिये—भूतं भविष्यता सह (२-४-१०)। जैमिनीय ब्राह्मण (२-६२) में भी यही बात कही गई है। इसीलिये उन्होंने भूत और भविष्यत् को एक साथ आवाहन किया है—'भूताय त्वा भव्याय त्वा' (मैत्रायणी ब्रा० १-३-३५) और 'भुवे त्वा भव्याय त्वा भविष्यते त्वा' (तैत्तिरीय संहिता ७-१-१२-१)। शतपथ ब्राह्मण ने भूत और भविष्यत् की स्तुति एक साथ की है—'भूतं भविष्यत् प्रस्तौमि' (१०-४-१-६)।

भूत और भविष्यत् दोनों के मिलने से जो परम सत्य है उसी की आराधना यदि कर सकें तभी हमें अभय मिल सकता है।—'भूतं भविष्यदभयं विश्वमस्तु मे' (आश्वलायन गृह्य सूत्र २-४-१४)

इस पूर्णता का जो अंश छोड़ दिया जायगा उसी ओर से मृत्यु-बाण आयेगा, जिस प्रकार कहानी के एक-आंख-

[शेष पृ० ५ पर]

गुरुकुल

१६ बैशाख शुक्रवार १९९८

मैंने अपने सुपुत्र को गुरुकुल क्यों पढ़ाया ?

[श्रीमान् सुखदयाल जी, मुख्याधिष्ठाता और संस्थापक गुरुकुल कमालिया ऊपर छपे शीर्षक से लिखते हैं:—]

"आर्यसमाज के नियम धारा ३ (वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यो का परम धर्म है) का ज्ञान मुझे Non-cooperation १९२०-२१ के समय हुआ। मैं आर्य स्कूल का छात्र रहा था। नौकरी वा असहयोग आन्दोलन के समय तक मैं हिन्दी भाषा से भी अनभिज्ञ था ! हिन्दी शुद्ध वा अशुद्ध लिखनी शुरू करके कुछ सीख गया। इस समय तक भी कई अशुद्धियां हो ही जाती हैं ! उपरि लिखित धारा आर्यसमाज में प्रवेश करते समय मन में चुभी और शर्म भी आई' [मैंने चारों वेदों के यज्ञ को करके सुन लिया है अब स्वाध्याय कर रहा हूँ। यजुर्वेद की पूर्णाहुति वा सारे वेद का यज्ञ भी पूज्य महात्मा हंसराज जी द्वारा करवाया था।] विचार यह पैदा हुआ कि मैं स्वयं तो सीख न सका यदि मैं जीवित रहा तो मैं अपने बालक को जो उस समय लगभग एक वर्ष का था यह संस्कृत विद्या की सम्पत्ति उसे अवश्य जैसे भी हो सका दूंगा। इस पर उसे सात वर्ष की आयु में गुरुकुल में प्रविष्ट कराया गया।

"कमालिया में सं० १९८४ में गुरुकुल खोलने के बाद मुझे एक कष्ट यह भी हुआ कि इस विद्या के देने के लिये कर्मचारियों को हर समय अच्छे या बुरे आदमी से दान मांगना पड़ता है। निश्चय किया कि यदि मेरा बालक स्नातक हो गया (जो कि इस वर्ष स्नातक बन कर निकल रहा है) तो उसको किसी गुरुकुल में ५) जेब खर्च वा १०) बीमा खर्च (वह ५०००) का Insured है) लेकर काम करने के लिये हवाले कर दूंगा। मैंने अपने सुपुत्र से (जब वह पिछले वर्ष ग्रीष्मावकाश पर घर आया था) इस पर विचार कर के अनुमति ले ली है ! वह मेरी इच्छानुसार कार्य करने में तैयार होगया है। परमात्मा करे कि वह मेरी मनोकामना को अपनी आयु में पूरा करके दिखाये।"

[श्री सुखदयाल जी का यह सुपुत्र ब्र० रणवीर ११ अप्रैल को स्नातक होकर निकल चुका है। मैं भी इस सुयोग्य स्नातक की ब्राह्मण धर्म के कठिन मार्ग पर चल सकने में समर्थ होने के लिये शुभ कामना करता हूं।

अभय]

लोहारु कांड पर प्रस्ताव

वार्षिकोत्सव पर हुए सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था।

२९ मार्च १९४१ को मुस्लिम गुंडों और राज के कर्मचारियों ने जिनमें पुलिस के आदमी, फौज के सिपाही, पटवारी और नम्बरदार इत्यादि सम्मिलित थे, लोहारु में आर्यसमाज के शान्त धार्मिक जलूस पर अकारण ही जो बर्बरतापूर्ण आक्रमण किया है उस पर यह सभा घोर रोष और घृणा प्रकट करती है।

यह सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, भक्त फूलसिंह जी और सख्त घायल हुए अन्य १२ भाइयों और साधारणतया जख्मी होने वाले ३० आर्य भाइयों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति और सम्मान का प्रकाश करती है।

यह सभा राज्याधिकारियों विशेषतः राज्य की पुलिस के व्यवहार की घोर निन्दा करती है जिसने पुलिस के पहरे में जलूस निकालने के लिये आर्यसमाजियों को न केवल प्रेरणा ही की वरन् आग्रह भी किया साथ ही उसने जलूस का इस रीति से संचालन किया जिससे वह गुंडों की हिंसावृत्ति का सहज ही शिकार बन गया। इस अवसर पर पुलिस निरपेक्ष भाव से दर्शक के रूप में अलग खड़ी रही उनकी आंखों के सामने निस्सहाय जलूस वालों पर लाठियों कुल्हाड़ियों और फरसियों से निर्दयतापूर्वक प्रहार होता रहा।

राज्याधिकारियों के उपर्युक्त व्यवहार और आर्यसमाज के जन्मदिन से लोहारु के आर्य समाजियों पर हुए व्यवस्थित अत्याचारों को देखते हुए राज्य से किसी न्याय की आशा नहीं है, इसलिये यह सभा सम्राट् के प्रतिनिधि से प्रार्थना करती है कि वे लोहारु की दुःखद घटनाओं के सम्बन्ध में शीघ्र से शीघ्र निष्पक्ष जांच कराएं, आर्यसमाजियों की जान और माल की रक्षा के लिये तत्काल उपाय करें और धार्मिक अधिकारों और अनुष्ठानों के लिए उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाने की व्यवस्था करें।

दलितोद्धार सम्मेलन के प्रस्ताव

गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर हुए दलितोद्धार सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे।

यह सम्मेलन म्यूनिसिपेलिटी तथा ज़िलों के हाकिमों से आग्रह पूर्वक प्रार्थना करता है कि वह म्यूनिसिपेलिटी तथा ज़िलों के दानों से बने हुए कुओं को दलित जातियों के उपयोग के लिये भी खोलने की आज्ञाएं प्रचारित करें और आज्ञा भंग करने वालों को दंडनीय समझें। तथा साथ ही उन सवर्णों भाइयों के प्रति भी मनुष्यता के नाते, प्रार्थना करता है कि वे इस मार्ग में बाधक न बनें अपितु अपने पंचायती तथा वैयक्तिक कुओं पर भी चढ़ने के लिए दलित भाइयों को प्रोत्साहित करें।

प्रस्तावक स्वा० श्रद्धानन्द जी अनु० श्री० हरदेवसिंह जी

२—यह सम्मेलन सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं के सञ्चालकों से आशा करता है कि वे अपनी

शिक्षा-संस्थाओं में दलित बच्चों को अधिकाधिक संख्या में प्रविष्ट करने की कोशिश करें। तथा इन और सवर्णी बच्चों में व्यावहारिक भेद न होने दें। साथ ही इन दलित बच्चों की शिक्षोन्नति के लिए वज़ीफ़ों को भी नियत करें।

प्रस्तावक श्री क्षितीशकुमार जी वेदालंकार अनु० श्री धर्मवीर जी वेदालंकार

३—यह सम्मेलन दलित जातियों से भी आशा करता है कि वे अपने उपजाति सम्बन्धी छूआछूत तथा भेदभावों को सर्वथा परित्याग करेंगे। इस प्रकार अपने में सुसंगठित होकर स्वोन्नति के मार्ग पर अपने आप भी बढ़ेंगे और केवलमात्र सवर्णियों की सहायता पर अवलम्बित न रहेंगे तथा इस निमित्त स्वच्छता, भोजन शुद्धि और कमखर्ची की ओर भी अधिक ध्यान देंगे।

प्रस्तावक श्री० आनन्दराव जी विद्यालंकार अनु० स्वा० रामानन्द जी

[पृ० ३ का शेष]

वाले मृग के पास आया था। भारतवर्ष ने जिस दिन भूत की उपासना में संलग्न होकर भव्य की उपेक्षा शुरू की उसी दिन उस भव्य की ओर से ही उसके पास मृत्यु-बाण उपस्थित हुआ। इसी लिये जो साधना परिपूर्ण है उसमें नवीन और पुरातन का कोई द्वन्द्व नहीं है, इनमें कहीं विरोध नहीं है। पुरातन की दुहाई देकर हम यदि नूतन को स्वीकार न करें तभी उस साधना का विनिपात होता है। दक्ष-यज्ञ की कथा में इसी सत्य की धारणा की गई है। इसी तरह पुरातन को त्याग कर नूतन को भी नहीं ग्रहण किया जा सकता। एक ही देवता के दो स्वरूप हैं। इन दोनों स्वरूपों के साधक यदि परस्पर विवाद करें तो कल्याण कहां है? जहाज जब समुद्र के मझधार में हो और उसी समय उसके तख्ते आपस में लड़ कर अलग अलग हो जायें तो 'महती विनष्टि' के सिवा क्या हाथ आ सकता है? इसी लिये आश्वलायन गृह्य सूत्र में कहा है कि भूत और भविष्य दोनों मिल कर हमारा कल्याण करें—'भूतं भविष्यद्भद्रमस्तु मे'। अथर्ववेद में यह महत्त्वपूर्ण वाक्य कहा गया है कि हम भूत के द्वारा भी रक्षित रहें और भविष्यत् के द्वारा भी—'नूतन गुणों मध्यन वाह (१०-२-२६)। इसी लिये स्थितिशील (Static) और गतिशील (Dynamic) वस्तुओं में असल में कोई विरोध नहीं है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। समुद्र में चलता हुआ जहाज जब दिङ्मूढ़ होता है तो चलते हुए बादल उसकी सहायता नहीं करते, उसे अचल ध्रुव नक्षत्र ही मार्ग दिखाता है। तुम्हारी साधना में शिव और शक्ति का यह योग बराबर बना रहना चाहिये ताकि वह साधना सार्थक हो सके।

यह व्रत विराट् है, दुरूह है। किन्तु भय की कोई बात नहीं। तुम ने अपने योग्य गुरुओं से योग्य शिक्षा पाई है और समस्त अतीत का भण्डार तुम्हारे अन्तर में संचालित होकर तुम्हें चालित करेगा। और भी दो गुरु तुम्हारे अत्यन्त निकट सदा वर्तमान हैं। एक स्थाणु गुरु हिमालय, दूसरा जङ्गम गुरु गंगा। इन दोनों गुरुओं की दीक्षा यदि तुम समन्वित कर सको तभी तुम्हारी दीक्षा पूर्ण होगी।

नील नदी जिस प्रकार मिश्र का प्राण है उसी प्रकार गंगा भारतवर्ष का प्राण है। मां से हमने देह पाया है, प्राण पाये हैं—माता गुरु की भी गुरु है। गंगा से हमारे देश ने काया पाई है और आज भी इस माता का स्तन्य पान करके जी रहा है। अचल अटल हिमालय ने हमें ध्यान की दीक्षा दी है। और गंगा देती है प्रेम और सेवा की दीक्षा। अटल ध्यान के साथ जब नित्य सेवा का मिलन होगा तभी हमारी मुक्ति होगी।

वृक्ष में इन दो साधनाओं का आश्चर्यजनक समन्वय है। उसका मूल स्तब्ध होकर लोक लोचन के अन्तस्तल में अतल के रस को आत्मसात् करता है और उसकी शाखा और पल्लव, फूल और फल, छाया और शीतलता प्रति दिन प्राणिमात्र की सेवा में लगे हैं। इन दोनों में कहीं भी तो विरोध नहीं है। इसी लिये साधक को भी परिपूर्ण साधना के लिये इन दोनों भावों को स्वीकार करना होगा।

गंगा के तीर पर बड़े बड़े नगर, राज्य-साम्राज्य इतिहास, ज्ञान साधना सब जाग्रत हो गये हैं। मानव-मानव के बीच गंगा ने योग स्थापन किया है, जहां प्राण-दैन्य है वहां इस गंगा ने प्राण सञ्चार किया है। गंगा की धारा पकड़े हुए समुद्र में जाओ, सारे विश्व के साथ तुम्हारा योग स्थापित हो जायगा। इसी लिये गंगा परम-मुक्तिदात्री है। इसके तीर पर ही लगभग सारे तीर्थ हैं, देवालय हैं, आश्रम हैं। इस प्रकार की प्राणमयी गतिशील दीक्षा और कौन गुरु दे सकता है।

देवालय का द्वार बन्द करके पंडे और पुरोहित अपना व्यवसाय चलाते हैं, पर गंगा का द्वार कौन बन्द कर सकता है? धनी, दरिद्र, ऊंच, नीच सबके लिये इस महागुरु का द्वार सदा उन्मुक्त है। इस गुरु के यहां वर्ण-भेद नहीं है। उच्च नीच सभी इसके यहां स्नान पाते हैं और इससे प्राणमयी दीक्षा पाते हैं।

गंगा से एक और अपूर्व शिक्षा लेनी है। सर्व जीव की सेवा में दिन रात लगी रहने पर भी गंगा एक क्षण के लिये भी असीम समुद्र की ओर जाने वाली अपनी यात्रा भूलती नहीं। उसका दिन भर का कर्म उसके नित्य कर्तव्य का प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता। उसके प्रात्यहिक और शाश्वत कर्तव्य में कहीं भी विरोध नहीं है। ऐसा हो कि तुम्हारी साधना भी प्रात्यहिक कर्तव्य को तुच्छ न करे और सांसारिक आदर्श तुम्हारे शाश्वत कर्तव्य को उपहास योग्य न समझे। मनुष्य के भीतर ही प्रात्यहिक और शाश्वत साधना में विरोध की बात उठाई जाती है। पर सारी सृष्टि इस बात की साक्षी है कि विरोध गलत है। पृथ्वी एक ही साथ अपनी दैनिक और वार्षिक गति से चल रही है। कर्म और पूजा में जो कहीं भी विरोध नहीं है, यह शिक्षा गंगा तुम्हें देगी।

समस्त जीव जन्तु और लोकालय को तृप्त करने के बाद जो कुछ बाकी रह जाता है उसे ही लेकर गंगा असीम के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि लेकर चल पड़ती है। इस अपूर्व पूजा की गुरु गंगा है। क्षुद्र गुरु लोग कहा करते हैं, देवता को उच्छिष्ट नहीं देना चाहिये, किन्तु महागुरु गंगा कहती है कि सबको तृप्त कर लेने के बाद जो कुछ बच रहे उसी

में अनन्त की पूजा होती है। इसी बात को रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

सबारे वंचित करि, तव पूजा नाहे [नैवेद्य ४४]

सब को वञ्चित करके तुम्हारी पूजा नहीं हो सकती!

अन्य को अपवित्र और अस्पृश्य बना कर ही हमारी पवित्रता निभती है, गंगा की महिमा यह है कि वे सबको पवित्र करती हैं—इसी लिये तो वे पतितपावनी है। जो कोई भी धारा, चाहे वह जितनी भी मलिन क्यों न हो एक बार गंगा में आकर मिलने ही पवित्र हो जाती है। हमारी इस सामाजिक दुर्गति के दिनों में हम क्या गंगा की महत्व-पूर्ण शिक्षा को ग्रहण करने में असमर्थ ही रहेंगे?

सब की पूजित यह दिव्य धारा गंगा है, किन्तु सबसे नम्र, सबके निकट विलीन है—पैरों के नीचे से ही बही जा रही है। निम्नतम धारा को वहन करके वह चली है इसी लिये प्रत्येक धारा उन्हीं में आकर मिल गई है। और इस का फल यह हुआ है अपनी साधना के मार्ग में गंगा जितनी ही अग्रसर होती गई हैं, उतनी ही पुष्ट होती गई हैं उतनी ही गंभीर होती गई हैं। तुम भी यह शिक्षा ग्रहण करो। नम्र हो ओ, निरभिमान बनो, सब प्रकार के अहंकार त्याग करो। तभी तुम्हारी साधना दिन दिन शक्तिशाली होगी। भूल न जाना कि जो सर्व चराचर के गुरु हैं वही पृथ्वी बन कर हम सभी के पैरों तले पड़ी हुई हैं हमारी प्रतिष्ठा बनी हुई हैं।

कैसा अपूर्व प्रेम है इस गङ्गा का। पितृ गृह हिमालय में उनमें जैसी शीतलता थी, वैसी ही निर्मलता भी थी। अधम सन्तानों के प्रेम में उन्होंने उनका सारा ताप, सारा मालिन्य अंगीकार किया और उन्हें पवित्र बनाया, निर्मल बनाया। कब वह दिन आयगा जब हम लोग यह शिक्षण ग्रहण करेंगे? जो सात्विकता और शुचिता इस संसार के सर्व जीवों की दुःख दुर्गति मलिनता दूर करने में कुंठित होती है वह तो एक आध्यात्मिक विलासिता ही है। इस आदर्शगत विलासिता से गंगा हमें मुक्ति दान करें।

इस प्रकार के जीवन्त महागुरु के तीर बैठ कर तुमने दिन रात साधना की है, यह तपस्या यदि तुम्हारे जीवन में सत्य नहीं हुई तो फिर कैसे तुम यथार्थ स्नातक हो सकोगे? तुम्हारी असली गुरु-दक्षिणा ही बाकी रह गई।

पहले ऐतरेय ब्राह्मण की कथा सुना आया हूँ। इस ऐतरेय महीदास की शिक्षादात्री गुरु मही या पृथ्वी थीं। मही की शिक्षा पाकर उनकी वाणी में इतनी गम्भीरता और शक्ति आई थी। क्योंकि मही (Soil) में ही सारी शक्ति निहित है। जितने विज्ञान हैं; जितने शिल्प हैं सबका आश्रय यह मही या पृथ्वी ही है। इसी लिये ऐतरेय ब्राह्मण में ऋषि का ध्यानमय तपस्या और मही माता की स्नेहमयी और शक्तिमयी शिक्षा की दो धारायें युक्त वेणी की भांति प्रवाहित हैं। ईशोपनिषद् में कहा है विद्या और अविद्या दोनों युक्त न होने पर सत्य नहीं होता; इस ऐतरेय में दोनों ही युक्त हो सके थे इसी लिये वे परिपूर्ण संस्कृति की बात कह सके थे। पहले ही 'चरैवेति' मंत्र में हमने इसकी गतिशील प्रवृत्ति का अन्दाजा पा लिया है। कला या शिल्प के सम्बन्ध में इसीलिये वे एक उदार और महती दृष्टि दे सके थे।

शिल्प मर्म की कहानी ऐतरेय ने इस सुन्दरता से विवृत की है कि वह किसी भी काल में और किसी भी देश में पुरानी नहीं हो सकती।

"हमारे शिल्प के द्वारा उस देव शिल्प का ही स्तवगान किया जाता है। उस देव शिल्प के द्वारा हमारे सभी शिल्प Inspired हैं अर्थात् देव शिल्प की ही अनुकृति है।—

शिल्पानि शंसन्ति देवशिल्पानेतेषां वै शिल्पानामनु-कृतीह शिल्पमधिगम्यते।

जिन्होंने यह रहस्य समझा है वे ही शिल्प या कला के वास्तविक मर्म को जानते हैं—

"शिल्पं ह्यस्मिन्नधिगम्यते य एवं वेद।"

यज्ञ का फल तो हम जानते हैं, किन्तु जो पूजा शिल्प के द्वारा होती है उसका फल क्या है? उसके द्वारा क्या हम स्वर्ग पाते हैं? ऐतरेय कहते हैं, नहीं यह बात नहीं है। शिल्प अपने को ही संस्कृत करने के लिये है—

आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि।

जिसने यह संस्कृति पायी है उसने अपने को विश्व के छन्द के साथ एक छन्द में बांध रखा है अर्थात् उसने अपने को विश्व छन्द से छन्दोमय बनाया है—

छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते।

ऐतरेय ६-५-१

शिल्प या कला के सम्बन्ध में इससे बड़ी बात कहीं के आधुनिकतम शास्त्र में देखी है, ऐसा याद नहीं आता। इन सब वाणियों को हम आधुनिक नहीं कह सकते क्योंकि आज जो आधुनिक है वह कल जीर्ण और पुरातन हो जाता है। ये वाणियां शाश्वत हैं, सनातन हैं, Eternal हैं। जिसे ऋग्वेद में 'युवतिःपुराणी' कहा है।

स्नातक गण, तुमने आज तक प्राचीन शास्त्रों में ही ये बातें पढ़ी हैं, इन सब महा सत्यों को शास्त्र में ही बद्ध रखने से काम नहीं चलेगा। भगीरथ जिस प्रकार तप्त और मलीन मानव के लिये ब्रह्म कमण्डलु के समान पवित्र स्थान से भी गंगा को बाहर ले आये थे उसी प्रकार तुम लोग भी इन महा सत्यों को शास्त्र की पवित्र भूमि से निकाल कर जगत् को बचाओ और स्वयं भी धन्य होओ।

ज्ञान को यदि मुक्ति दे सको तभी तुम भी मुक्ति पाओगे। ज्ञान ही तो परम मुक्ति है। जिनका ज्ञान ही बद्ध है उन्हें कौन मुक्ति दे सकता है। ज्ञान यदि पा सके हो तो मुक्ति के विषय में कोई चिन्ता नहीं है। चीनियों ने कहा है कि शुष्क बीज को यदि रस से सींचा जाय तभी उस बीज का आवरण विदीर्ण होगा और तभी अंकुर मुक्ति पा सकेगा। ज्ञान प्रदीप्त होने ही सब कुछ को चुनौती देता है। अंग्रेज सरकार ने हमारे इस देश में क्लर्क तैयार करने के लिये कुछ अंग्रेजी विद्यालय खोले थे। उस दिन उन्होंने सोचा भी नहीं था कि भविष्य के लिये वे कितना बड़ा बखेड़ा कर रहे हैं। आज वह सब शिक्षित व्यक्ति मुक्ति की मांग रख रहे हैं। सिन्दबाद का दैत्य अपने पीपे से निकल कर फिर किसी प्रकार उसमें लौट आ सका था, पर ये शिक्षित किसी प्रकार अपनी

पुरानी अवस्था में लौट जाना नहीं चाहते। यही ज्ञान का अवश्यम्भावी फल है। दीप जलाया जायगा और अंधेरा भी बना रहेगा, यह कभी हो ही नहीं सकता। यदि दीप जलाये जाने पर भी अंधेरा दिखाई दे तो समझना चाहिये कि या तो दीप ही चित्र-लिखित और नकली है, या फिर जलाने वाला ही अंधा है। बाइबिल की कथा से जाना जाता है कि ज्ञान-वृक्ष का फल प्राप्त कर आदमी स्वर्ग को देने को प्रस्तुत है पर वह पुरानी मूढ़ता में रहने पर राज़ी नहीं है। तुम लोग इतने दिनों तक इस ज्ञान-क्षेत्र में निवास कर चुके हो, भावी जीवन तुम्हारी परीक्षा के लिये तैयार है कि भीतर और बाहर तुमने इस ज्ञानालोक को कितना आत्मसात् किया है।

भारत का प्राचीनतम ज्ञान का रत्न भाण्डार—उसका 'शेवधि'—वेदविद्या है। तुम में से प्रत्येक ही उस वेद विद्या के जीवित प्रतिनिधि हो। तुम यदि आत्म जीवन के द्वारा इस समय की दुनिया की समस्यायें न सुलझा सको तो तुम्हारे हाथों वेद विद्या का जो अपमान होगा वैसा अपमान कोई भयंकर वेद-शत्रु भी नहीं कर सकेगा। इसीलिये आज तुम्हारे ऊपर दावा उपस्थित किया जा रहा है कि आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान और शिल्प कला आदि में सब प्रकार अपने आपको पूर्ण करके सर्व मानव के अभाव मोचन में तुम आत्मोत्सर्ग करो।

हमारे देश में गुरु और शिष्य की सम्मिलित तपस्या में ही ज्ञान की साधना है। उस साधना का पुण्यपीठ तपोवन थे। मानव जीवन की तपस्या को चार भाग करके उसकी चिन्मय संपद की उपलब्धि और परिचय का अवसर तरुण जीवन को दिया था। तारुण्य का ब्रह्मचर्य ही चारों आश्रमों की प्रतिष्ठा भूमि थी। गुरु के चरण तले बैठकर तरुण गण जो ज्ञान पाते थे उसी ज्ञान को जीवन में प्रतिष्ठित करने का साधन था गृहस्थाश्रम और अपने जीवन को उस महान् आदर्श की ओर अग्रसर कर देने के लिये ही अन्तिम दो आश्रमों की व्यवस्था थी।

इसी लिये तपोवन भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा-भूमि थी। भारतीय संस्कृति का इतिहास तपोवन का इतिहास है। हमारे सिर पर जिस प्रकार चिन्मय आकाश है और नीचे मृन्मय पृथ्वी है उसी प्रकार तपोवन के एक ओर तो सत्य द्रष्टा ध्यान-परायण ऋषिगण गुरु हैं और दूसरी ओर है, स्नेहमयी शोभ.मयी प्रकृति माता। तपोवन का महत्व समझने के लिये कवि गुरु रवीन्द्रनाथ का 'तपोवन' नामक प्रबन्ध एक बार पढ़ने का अनुरोध करता हूं। तुम्हारे जीवन में यह तपोवन सार्थक हो उठे। शायद इससे बड़ी मांग मैं तुम्हारे सामने नहीं उपस्थित कर सकता।

प्राचीन काल में विद्या भारतवर्ष की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी। विद्या की साधना सब समाज की सम्मिलित साधना थी। इसीलिये समस्त समाज के निकट ब्रह्मचारी का दावा समान भाव से ही चलता। इस समय जैसे बाप मां ही सन्तान की शिक्षा का व्यय भार वहन करते हैं उन दिनों ऐसा रूप नहीं था। जिस जगह भी ब्रह्मचारी जाता, वहीं उसकी माता उपस्थित होती, वहीं उसे अन्न प्राप्त करने का अधिकार था। मानो यह घोषणा करने के लिये ही ब्रह्मचारी घर-घर जाकर अन्न की मांग पेश करते कि वे सारे समाज के हैं और समस्त समाज का उन पर दावा है।

ग्रीक गण मूल्य लेकर विद्यादान करते थे। भारतवर्ष में यह बात अत्यन्त निन्दित थी। भारतवर्ष में कोई विद्या बेच नहीं सकता था, श्रद्धा-सेवा और तपस्या के द्वारा यह विद्या पाई जा सकती थी और अर्थ लिये बिना इसे वितरण किया जा सकता था। इसी लिये इस देश में गुरु-शिष्य का संबन्ध निविड़ और जीवन्त था। बाहर के विधि-विधान या आईन-कानून इस सबन्ध में कोई विच्छेद या शिथिलता नहीं ले आ सकते थे। ग्रंथ और शास्त्र सबसे बड़े गुरु माने जाते थे। गुरु और शिष्य के भीतर किसी पुस्तक या पुस्तकालय को व्यवधान सृष्टि करने का अधिकार नहीं था।

[अपूर्ण]

गुरुकुल स्वास्थ्य-समाचार

धर्मेन्द्रनाथ ५ श्रेणी नेत्ररोग, रघुनाथ ३ श्रेणी नेत्ररोग, केशवदेव २ श्रेणी नेत्ररोग, सन्तोषकुमार १ श्रेणी नेत्ररोग, सुमन्तकुमार ५ श्रेणी शीतपित्त, जगन्नाथ ६ श्रेणी श्लेष्मज्वर, धर्मपाल ६ श्रेणी श्लेष्मज्वर, रामकुमार ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, वेदव्रत ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, देवदत्त ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, श्रीकृष्ण ४ श्रेणी मलेरिया-ज्वर, विद्याभूषण ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, उदयभानु २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, सत्यदेव २ श्रेणी खसरा, हमनेश ३ श्रेणी अजीर्ण, रूपनारायण मलेरियाज्वर, वेदभूषण मलेरिया ज्वर, प्रताप मलेरियाज्वर, कृष्णकुमार १२ श्रेणी श्लेष्मज्वर, अजयकुमार ११ श्रेणी व्रण।

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत दो सप्ताहों में रोगी हुए थे।

नेत्ररोगी ब्रह्मचारियों को दवाई लग रही है आशा है कि शीघ्र आराम आजावेगा। शेष सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं। आजकल दिन में पर्याप्त गर्मी तथा पिछला रात्रि में ठण्ड होती है। अधिकतम तापमान १०४ डिग्री फा० तथा न्यूनतम ८० डिग्री फा० होता है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में नये वर्ष की पढ़ाइयां शुरू होगई हैं। ६म, ७म तथा ८म श्रेणी का परीक्षा परिणाम निकल आया है। सब संरक्षकों को परिणाम भेज दिया गया है। अभी नवम तथा दशम श्रेणी का परिणाम नहीं निकला है।

५ मई १९४१ से ग्रीष्मावकाश के कारण गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ डेढ़ मास के लिये बन्द रहेगा। ब्रह्मचारियों के पर्वतीय यात्राओं पर भेजने का प्रबन्ध हो रहा है। संरक्षक महोदय मार्ग व्यय के लिये १५) शीघ्र यहां भेज दें।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २० वैशाख १९९८; २ मई १९४१ [संख्या १

दीक्षान्त अभिभाषण

(आचार्य क्षितिमोहनसेन)

(गतांक से आगे)

इसी लिये प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य दोनों की साधनायें मिलकर एक अखण्ड तपस्या की सृष्टि कर सकी थीं। शिष्यगण अपने को गुरु से स्वतंत्र करके नहीं सोच सकते थे, अपने समस्त ज्ञान में वे गुरु को ही विराजित देखते, शिष्य धारा में गुरु ही स्पन्दन हुआ करते। शिष्यगण अपने व्याख्यात ग्रंथ और ज्ञान को गुरु की ही वस्तु मानते थे इसी लिये एक शंकराचार्य के नाम पर सौ-सौ शंकराचार्यों ने ज्ञान दिया है। मध्ययुग में भी एक कबीर और एक नानक के पीछे कितने-कितने नानक सुनाई देते हैं। केर्न नामक यूरोपियन पंडित ने बृहत्संहिता की भूमिका में इस बात पर विस्मय प्रकट किया है।

बौद्धयुग का इतिहास बड़े-बड़े साम्राज्यों का इतिहास है। इसीलिये उस समय गुरु शिष्य के संबंध से रचित तपोवन बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के रूप में बदल गये। जो ज्ञान का परिवार था, वह ज्ञान की संस्था हो उठा। समस्त पृथ्वी से यहां ज्ञानार्थी अभ्यागतगण आया करते, विश्वविद्यालय के साथ ही साथ बड़ी लाइब्रेरियां संगठित हुईं। फिर भी उन दिनों भी गुरु-शिष्य का संबंध लुप्त नहीं हुआ। पुराण में, स्मृति में और तन्त्र में गुरु-शिष्य का संबंध एक घनिष्ठ प्रीति का संबंध है। इसीलिये जब भारत की स्वाधीनता नष्ट हुई तो उनके भीतर से विद्यापीठ फिर से जीवित हो उठे गुरु और शिष्यों ने युक्त तपस्या के बल से भारतीय संस्कृति को मरने से बचा लिया। कौन उन विश्वविद्यालयों को नष्ट कर सकता था? वे ईंट पत्थर के तो बने नहीं थे। एक-एक गुरु ही एक-एक विश्वविद्यालय थे। ग्रीस देश के सुकरात, अफलातून और अरस्तू, मध्ययुग के फ्रांस के एबेलार्ड, ये प्रत्येक ही एक-एक विश्वविद्यालय थे। भारतवर्ष में भी गुरुगण एक एक विश्वविद्यालय हो कर रह गये।

अंग्रेज लोग जब भारत में आये तो हमारे इस देश की शिक्षा और विद्या की व्यवस्था देखने के लिये W. Ward को नियुक्त किया गया। उन्होंने १८०७ ई० के आसपास तत्कालीन भारत-सरकार के पास अपनी रिपोर्ट पेश की थी। यह बहुत अनुकूल भाव से नहीं लिखी गई है, तब भी बंगाल और काशी आदि स्थानों में जिन संस्कृत पाठशालाओं और चतुष्पाठियों का विवरण उन्होंने दिया है उससे कोई भी सभ्य देश गर्वित हो सकता है। उन्होंने इस देश की प्रत्येक चतुष्पाठी को 'कालेज' नाम दिया है। ये गुरु और शिष्य गण उन दिनों राजा की सहायता से वंचित थे तो भी समाज की सहायता से उन दिनों शिक्षा आज की अपेक्षा अधिक फैली हुई थी। गृही गुरु गण एक-एक जगह बैठ कर शिक्षा दिया करते थे जब कि संन्यासी गुरु गण उसे एक कोने से दूसरे कोने तक फैला देते थे। इसीलिये एक प्रदेश की विद्या देखते-देखते नाना प्रदेशों में फैल जाती।

उन दिनों तीर्थ ज्ञानप्रचार के एक और साधन थे। एक-एक पुण्य-योग के अवसर पर नाना प्रदेश के लोग एकत्र हुआ करते थे। और ज्ञान अपने आप चला करता। यूरोप का Peripatetic अर्थात् जंगम शिक्षा की व्यवस्था हाल की कल्पना है, पर हमारे देश में यह बहुत-बहुत पुरानी है। ज्ञान का क्षेत्र समझ कर ही उन दिनों लोग तीर्थ में दान किया करते थे। इस समय दुर्भाग्यवश तीर्थगुरुगण अपनी प्राचीन तपस्या से भ्रष्ट हो गये हैं। उन दिनों तीर्थों में जो दान दिये जाते थे वे नाना भाव से ज्ञान की कल्याण धारा के रूप में सारे देश में संचालित होते थे। इधर तीर्थ में दिया हुआ धन केवल व्यक्तिगत और उद्देश्यहीन संचय के रूप में बदल गया है और नाना दुर्नीति अपकर्म में निःशेष हो रहा है। धारा जब चलती है तब पवित्र होती है और वह धारा जब बद्ध हो जाती है तो सड़ जाती है। तीर्थ की यह धारायें आदर्शच्युत होकर बद्ध हो गई हैं और उसमें सड़ान आ गई है।

प्राचीन काल में तीर्थ में जो दान होता था वह ज्ञान के लिये स्वेच्छा प्रदत्त दान था। देने वाले टैक्स की तरह उसे देने को बाध्य नहीं थे। वे दाता अपना सर्वस्व दान करके धन्य हुआ करते। वह टैक्स हम आज भी दे रहे हैं किन्तु व्यर्थ ही। आज विद्या की बात उठी नहीं कि नये टैक्स का प्रस्ताव आता है।

आजकल के टैक्स से गठित विद्या दान की व्यवस्था सफेद हाथी पालना है। यह सफेद हाथी किसी काम में नहीं आता पर उसकी भूख का अन्त नहीं है।

अकर्मण्य तीर्थ आज हमारे समाज के ऊपर श्वेत हस्ती के समान ही हैं। फिर यह नूतन शिक्षा-व्यवस्था नाम का एक दूसरा सफेद हाथी भी इस समाज की गर्दन पर सवार कराया गया है। दरिद्र देश इन दो भयंकर दबावों से पिसा जा रहा है। इस शिक्षा-व्यवस्था के लिये अधिकारियों की ओर से जो कुछ भी खर्च होता है उसका तीन चौथाई तो इमारत और लोहा-लक्कड़ में ही लग जाता है। बाकी एक चौथाई ही असली कार्य में खर्च होता है। यह भी Efficiency के नाम पर बहुत थोड़े स्थानों में खर्च किया जाता है। अर्थात् आज का अधिकारी वर्ग पिरामड की रचना उसके आधार की ओर से नहीं उसके सूक्ष्मग्र शिखर की ओर से करने को कटिबद्ध हुए हैं।

अब भी तीर्थगण एकदम शिक्षाहीन नहीं हुए। किन्तु वहां जो लोग वस्तुतः शिक्षा का कार्य सम्पादन कर रहे हैं वे अत्यन्त दुःखी और दरिद्र हैं। काशी आदि तीर्थों में इन निर्धन दुःखी गुरुगणों ने कितना कष्ट सहकर हमारी संस्कृति को बचा रखा है, वह कह के समझाया नहीं जा सकता।

गुरु के नाम के लिये देश के सर्वश्रेष्ठ मानवों की जरूरत होती है। यूरोप पैसा देकर ऐसे मनुष्यों को संग्रह करता है। भारतवर्ष ऐसों को श्रद्धा भक्ति देकर संग्रह करता था। इस देश में अध्यापकों के सम्मान की सीमा नहीं थी। आज यूरोप का अनुकरण करके हम श्रद्धा भी नहीं देना चाहते और फिर पैसा देने में भी असमर्थ हैं। इस शिक्षा के क्षेत्र में हम अच्छे आदमी की आशा नहीं कर सकते। इसके बाद जब देश में एक एक बार प्रचण्ड उत्तेजना की सृष्टि होती है, उस समय विद्यार्थियों के भले बुरे का विचार किये बिना उनकी तपस्या से हम उन्हें खींच लाते हैं। इस प्रकार नाना दुर्गति से हम अपने देश के भविष्य को नष्ट करने के लिये उद्यत हैं। मूर्ख किसान भी जानता है कि रोपे जाने वाले धान्यांकुरों की रक्षा अपने अन्तिम पसीने की बूँद से की जाती है। हम नाना भाव से अपने रोपे जाने वाले धान्यांकुरों को ही मारने चले हैं क्योंकि हमारे तरुण छात्र ही ये अंकुर हैं। हम से बड़ा अभागा और कौन है?

हे स्नातक गण, तुम्हीं भावी भारत के गुरु हो। तुम्हारा व्रत महान् है, पर बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस देश के लोग तुम्हारी योग्य तपस्या का कोई भी सम्मान नहीं कर सकेंगे। पैसा दे सकने की क्षमता भी इनमें नहीं है और श्रद्धा और भक्ति दे सकने योग्य महत्व भी इनके हृदय में नहीं रह गया है। तुम्हारी सेवा का महत्व कोई समझेगा हो नहीं। खूब संभव है लोग तुम्हारी अवज्ञा ही करेंगे, उपेक्षा ही करेंगे, फिर भी तुम्हें व्रत-भ्रष्ट नहीं होना होगा, क्योंकि तुम भारत की महत्तम परम्परा के इस युग में प्रतिनिधि हो। इस युग के दरबार में तुम पुरातन अतीत युग के राजदूत हो।

यदि तुम गुरु हो तो तुम्हारे पास गौरव होना ही चाहिये। सब को द्विजत्व देने वाले ही यदि नवजन्म न प्राप्त करें तो कैसे काम चलेगा। इसीलिये आज मैं तुम से कठिन मांग करूंगा। दुःख दारिद्र्य अश्रद्धा और विरुद्धता के होते हुए भी तुम्हें अपने पदोचित महत्व की रक्षा करनी होगी और अपने माहात्म्य का प्रमाण देना होगा। इस दरिद्र देश को ज्ञान-विज्ञान से, शिल्प-कला से इस प्रकार दीप्त कर दो कि यह उदात्त-कंठ से कह सकेः—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥
>
> मनु० २-२०

हमारी शक्ति कम ज़रूर है पर इसलिये दूसरों की ओर ताकते रहने से काम नहीं चलेगा। यदि व्यक्तिगत सामर्थ्य से वह संभव नहीं होगा तो सम्मिलित सामर्थ्य से उसे पूरा करना होगा। यह जो तुम्हारी आश्रम-पावनी गंगा बह रही है, इसे यदि बिन्दु बिन्दु अलग कर दिया जाय तो इन की महासमुद्र की यात्रा समाप्त हो जायगी, सब कुछ रास्ते में ही सूख जायगा। अगणित बन्दुओं के एकत्र होने से इनकी शक्ति अपराजेय है। भगवान् के निकट प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी व्यक्तिगत शक्ति परिमित होने पर भी तुम्हारी सम्मिलित शक्ति सकल बाधाओं को पार करके अपने अपार लक्ष्य की ओर अग्रसर हो।

गुरुकुल को किसी स्थान विशेष पर बद्ध देखना एक तरह की भौतिकता ही है। तुम्हीं तो वास्तविक गुरुकुल हो, प्राचीन गुरुओं की भांति तुम में से प्रत्येक एक एक जीवन्त और चलन्त विश्वविद्यालय बनो।

यूरोप में एक बड़ी भारी समस्या व्यक्तित्व और समाज को लेकर खड़ी हुई है। यदि मण्डली को बड़ा बनाना है तो व्यक्ति को मरना आवश्यक है और व्यक्ति को बड़ा होने देने में, समाज दुर्बल हो जाता है। इसीलिये कई धर्मों में व्यक्तित्व को पोस कर धर्म के संगठन को ही शक्तिशाली बनाया है। हमारी चतुराश्रम व्यवस्था में इन दोनों के सामंजस्य की व्यवस्था है। गृहस्थाश्रम में जहां समाज के सभी विधि निषेधों को स्वीकार किया गया है, वहां संन्यास आश्रम में उनकी उपेक्षा का अधिकार भी दिया गया है। किन्तु आज जीवन को पुराने जमाने के ढंग पर गृहस्थ और सन्यास आश्रम के रूप में बांट कर देखना ठीक नहीं होगा। हमारा आदर्श इसी जीवन में साथ ही साथ गृहस्थ और संन्यास के आदर्शों का सामंजस्य होना चाहिये। तभी हम व्यक्ति और समाज की समस्या का समाधान करेंगे।

यद्यपि मैं जानता हूँ कि तुम्हारे भावी जीवन में कठिनाइयां अनेक हैं, दुःख दुर्गति बहुत है फिर भी मैं तुम से बहुत कुछ आशा कर रहा हूं। और कहां और किसके सामने करूँ, देश के भावी तो तुम हो।

अन्तहीन दुःख का बोझ तुम्हारे सिर पर लाद दिया है, मन में तुम क्षुण्ण न होना। क्योंकि कठिन दुःख के सिवा हमारे अन्तर्निहित असीम संपद् का संधान हमें मिलता कहां है? काठ के भीतर की सुप्त अग्नि को मंथन

से जगाया जाता है। इसी लिये जब दुःख दुर्गति के दिन होते हैं तभी देश में बड़े बड़े महापुरुषों का आविर्भाव होता है। इसीलिये बड़ी बड़ी समस्याओं का आना देश का सौभाग्य है।। पराधीन देशों को ऐसे सौभाग्य सब समय नहीं मिलते और इसी लिये अपनी अन्तर्निहित शक्ति को जान सकने के सौभाग्य से वंचित रह जाते हैं। फिर भी दुःख कम नहीं है, हमारी समस्या भी छोटी नहीं है। तुम्हें इसी के भीतर से अपनी वास्तविक शक्ति खोजनी पड़ेगी।

अब तुमने आलोक पाया है तो जल कर भी तुम्हें दूसरों को आलोक देना पड़ेगा। आलोक का मूल्य ही सर्वस्व दान है। बिन्दु बिन्दु तैल क्षय कर के ही दीप प्रतिक्षण अपना आलोक पाता है। अपने अन्तिम बिन्दु तक को जब तक वह निःशेष न कर दे, उसको निष्कृति पाने का अधिकार नहीं है।

इतने बड़े महाव्रत के लिये स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी ने तुम्हें पुकारा था। अपने चित्त की दीनता के कारण उनकी पुकार को यदि छोटा करके देखोगे तो उनका अपमान करना होगा और यदि तपस्या में अवसन्न हो पड़ोगे तो अपने अन्तरात्मा का अपमान करोगे। आज इस समावर्तन के दिन तुम्हें स्मरण करा देता हूं कि उस महान् पुकार का जवाब तुम्हें देना होगा, किसी प्रकार की कातरता तुम में न रहे,—'क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ'। तुम्हें कहना होगा कि जगत में जो कुछ घोर है, जो कुछ क्रूर है, जो कुछ पाप है, हमारी तपस्या से वह सब शान्त हो, सबका कल्याण हो,—

शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं
तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥

(अथर्व० १६. ६. १४)

ॐ शान्तिः

वेद और राष्ट्र धर्म

[लेखक—श्री० ब्र० धर्मपाल]

[यह लेख गुरुकुल वार्षिकोत्सव पर हुए वेद सम्मेलन में पढ़ा गया था।]

आधुनिक युग में जहां व्यक्ति का व्यक्ति के साथ जाति का जाति के साथ तथा समाज का समाज के साथ संघर्ष चल रहा है वहां राष्ट्रों में भी आपस में घोर विरोध प्रकट हो रहा है। अतएव एक राष्ट्र के लिये अपने को सभी दृष्टियों से समुन्नत करने की चिन्ता करना अपरिहार्य है। उसे अपना शासन विभाग सुसंगठित और सुव्यवस्थित करना होता है, सेना की वृद्धि तथा शस्त्रास्त्रों से प्रत्येक सैनिक को लैस करना तो अत्यन्त आवश्यक कार्य है, और एकता तथा नियम में सम्पूर्ण राष्ट्र को बांध देना भी चिन्तनीय होता है।

इन सब उपर्युक्त सावधानियों के लिये आजकल जो उत्तम शासन व्यवस्था स्वीकार की गई है वह Democratic अर्थात् प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति है। जिस में प्रजा स्वयं अपने लिये अपने द्वारा शासन करती है।

परंतु यह शासन प्रणाली कोई नवीन उपज नहीं है सृष्टि के आरंभ में ही ईश्वरप्रदत्त सब सत्य विद्याओं के पुस्तक वेद में इस का स्थान स्थान पर बड़ी उत्तमता तथा स्पष्टता से उल्लेख है। तथा इस प्रणाली के अंग अंग का उस अंग के कर्तव्यों का तथा उत्तम रूप से शासन का उपदेश अत्यंत मनोरंजक और सरल ढंग से पाया जाता है। आइये थोड़े में वेद की इस विद्या पर विचार करें:—

राष्ट्र की उन्नति तथा सुव्यवस्था के लिये वेद ने एक उत्तम राजा की आवश्यकता बताई है। जिस के गुण इसी शब्द से प्रकट हो रहे हैं—'राजा रञ्जनात्'—'रञ्जयति प्रजां' जो प्रजा को प्रसन्न रखता है। तथा 'राजते इति राजा दीप्यमानः' जो स्वयं प्रकाशमान तथा दूसरों को प्रकाशित करने वाला है। जो स्वयं तेजस्वी होगा तथा जिस के शासन से राष्ट्र का तेज बढ़ेगा उस का भी नाम वेद की दृष्टि से राजा हो सकता है। इस राजा के लिये यजुर्वेद अध्याय २० में सुश्लोक सुमंगल आदि विशेषण आये हैं। जो सुश्लोक अर्थात् सु उत्तम श्लोक यश वाला हो अर्थात् राजा का आचार भाषण तथा सभ्यता हर प्रकार से प्रशंसनीय होनी चाहिए। तथा सुमंगल—उत्तम मंगल विचारों का प्रचार और कल्याणमय मंगल सत्कर्म करने वाला राजा होना चाहिए। और सत्य राजा होना चाहिए। पुरोहित कहता है:—

तेजसे ब्रह्मवर्चसाय अभिषिञ्चामि वीर्याय अन्नाद्याय अभिषिञ्चामि बलाय श्रियै यशसे अभिषिञ्चामि।—

मैं तेरा इसलिये राज्याभिषेक करता हूं कि तुम्हारे राज्यशासन से राष्ट्र का तेज बढ़ता रहे और ब्रह्मवर्चस ज्ञान का प्रभाव राष्ट्र में बढ़ता रहे तथा राष्ट्र की पौरुष शक्ति बढ़े और अन्न आदि पदार्थों की वृद्धि हो यहां—तेज और ब्रह्मवर्चस शब्दों द्वारा ब्राह्मणों का कर्म, वीर्य शब्द से क्षत्रियों का कर्म तथा अन्नाद्य शब्द से वैश्यों का कर्म बताया हो। अर्थात् राजा को बिना किसी पक्षपात के तीनों वर्णों की उन्नति करनी चाहिए।

तथा राष्ट्र में बल, श्री और यश की वृद्धि करनी चाहिए। राजा को कहा है—

"क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि
मात्वा हिंसी मा हिंसी।"

तू क्षत्र अर्थात् शौर्य का मूल कारण है और शौर्य वीर्य का तू नाभि (केन्द्र) है। णह् बन्धने जिस में सब वस्तुयें एकत्र करके बांधी जाती है। और हे राजन्, तेरा कोई हिंसा न करे और न तू हमारे में किसी की हिंसा कर। क्षत्र शब्द का अर्थ कालिदास लिखित रघुवंश के श्लोक से प्रकट है—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दः भुवनेषुरूढः' जिस गुण से क्लेशों से बचाया जाता है या क्षय विनाश से रक्षण किया जाता है। पुरोहित कहता है—

धृतव्रतः वरुणः पस्त्यासु आ निषसाद'

नियमों का धारण करने वाला तथा वरुणः—अनिष्ट का निवारण करने वाला 'वारयति अनिष्टमिति वरुणः' प्रजाओं

(शेष पृ० ५ पर)

गु रु कु ल

२० वैशाख शुक्रवार १९९८

इस वार का सफल उत्सव

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव गुरुकुल की पुनीत भूमि में जिस धूम-धाम और सफलता के साथ मनाया गया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। देश के वर्तमान विक्षुब्ध वातावरण में अपूर्व उत्साह के साथ जनता का इतनी भारी संख्या में यहां पधारना सचमुच अपनी कुछ विशेषता रखता है। इस उत्सव पर एकत्र हुई आर्य जनता की लगन, रुचि, कर्तव्य-परायणता को देखकर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि गुरुकुल का भविष्य उज्वल है। इस वर्ष ६० नवीन ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए और दान की रकम ६२ हज़ार रुपया थी। २२ ब्रह्मचारी स्नातक बन कर देश और जाति की सेवा में संलग्न हुए।

हमारे देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सदा निराशा के ही गीत गाना पसन्द करते हैं। वे अपने देश का भविष्य अन्धकारमय देखते हैं। अपनी शिक्षा संस्थाओं को कोसने और गुरुकुल प्रणाली को बुरा भला कहते हैं। इसे असामयिक और निरुपयोगी बताते हैं। किन्तु इस बार के उत्सव पर सामान्य पब्लिक का तो कहना ही क्या, ऐसे महानुभावों के चेहरों पर भी आशा की एक उज्वल मुस्कराहट नज़र आई और उन्होंने अनुभव किया कि गुरुकुल प्रणाली में स्वभावतः कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह प्रणाली सदा जीवित रहेगी और इसका नाश कभी हो नहीं सकता।

यूँ तो प्रतिवर्ष ही गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है लेकिन इस वर्ष का उत्सव सब दृष्टियों से अत्यन्त सफल रहा। वेद-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, व्यायाम सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, लोहारुकांड आदि सम्मेलनों के कारण उत्सव की अच्छी श्री-वृद्धि हुई। आर्य समाज के उच्चतम कोटि के विद्वान् तथा महात्मागण भी पधारे। सर्व श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, पं० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क शिरोमणि, पं० गंगाप्रसाद जी चीफ जज, पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति, पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार, स्वा० व्रतानन्द जी, स्वा० सत्यानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपने उपदेशामृत की वर्षा से जनता को परितृप्त किया। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अस्वस्थता के कारण न पधारने पर श्री आचार्य क्षितिमोहन सेन शान्ति निकेतन ने उनका भाषण पढ़ा और तत्पश्चात् अपना सार गर्भित हृद्य-भाषण भी दिया।

इस प्रकार धन-जन संग्रह की दृष्टि से यह उत्सव पूरी तरह सफल रहा, उत्सव के चारों दिन पंडाल भरपूर रहा। कहीं तिल रखने की भी जगह नहीं थी, गुरुकुल में चारों ओर नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दृष्टि-गोचर होते थे। इसके साथ ही धार्मिक जनों की आध्यात्मिक तथा मानसिक भूख को तृप्त करने और विविध विषयों की उपयोगी चर्चा होने के कारण यह उत्सव अन्य वर्षों के उत्सवों से एक कदम आगे बढ़ गया।

तूफ़ान

तूफ़ान चला तूफ़ान चला।
हर हर हर हर हर हर हर, हर हर हर तूफ़ान चला।
कुछ मेघ उठे कुछ धूल उठी,
फिर प्रलयंकर पवमान चला।

झर गए पत्र, झर गए फूल,
नव पल्लव सुख में उठे झूल,
तरु लचक लचक कर लहराए—
वल्लरियां सब कुछ गईं भूल,
सारी संसृति में गरज गरज—
यौवन का भीषण गान चला।

चाहे कितने ही फूल गिरें,
चाहे कितने तरु टूट गिरें,
चाहे वन की सब वल्लरियाँ—
वन की शोभा को लूट गिरें,
यह रौद्र रूप धर कर यौवन
कोमलता से अनजान चला।

यह धूल उड़ी जाती देखो,
लहरें झूल झूल गाती देखो,
सारी जगती इस झटके से—
नूतन जीवन पाती देखो,
हर पल्लव लतिका लहरों को
करता जीवन का दान चला।

भवनों से लड़, तरु से भिड़ कर,
लेकर पर्वत से भी टक्कर,
जो चीज़ मिली आगे उससे—
बिलकुल पागल पन से अड़कर,
हड़कम्प मचाता दुनियाँ में
जीवन संघर्ष महान् चला।

घण्टों तक भीषण घहर घहर,
कुछ बढ़ बढ़कर फिर ठहर ठहर,
सौ सौ बिच्छू का मिला ज़हर—
लेकर पीड़ा की एक लहर,
हो सम्वर्षण में परिवर्तित
निष्ठुर प्रियतम का ध्यान चला।

कितने तरुओं से नीड़ गिरे,
कितने बेलों से फूल झरे,
हा उजड़ गए उद्यान कई—
सुखमय, शोभामय हरे भरे,
यह साँस हमारी छाती का
झाकर बाहर नादान चला।

तूफ़ान चला तूफ़ान चला।

"विराज"।

पृ० ३ से आगे

विस्तृत तथा विकीर्ण करना चाहिए। प्रजाजनों को दीप्यमानः तेजस्वी बनाना चाहिए। और सम्राट् को 'सम्यक् राजते' पूर्णता से चमकने वाला बनना चाहिए। तथा विराट् 'विशेषेण राजते' विशेष प्रकार से चमकने वाला बनना चाहिए और 'स्वराट् स्वेनैव राजते' अपने ही बल से सुशोभित बनना चाहिए।

राजा को प्रजाजनों की उन्नति तथा सुख सम्पत्ति युक्त बनाने के लिए वेद ने निम्न मंत्रों द्वारा शिक्षा दी है—

'अमन्दान् स्तोमान्प्रभरे मनीषासिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः" ॥

ब्रह्मचारी कहता है—(सिन्धौ अधिक्षियतः) नदी तट पर निवास करने वाले (भाव्यस्य) आत्मत्व के इच्छुक राजा का कृपा से(अमन्दान् स्तोमान्) मैं उत्कृष्ट या अनेक विद्याओं से युक्त वेदों को (मनीषा प्रभरे) श्रद्धा पूर्वक या बुद्धि पूर्वक धारण करूं। (यः अतूर्तः राजा) जिस गम्भीर या जल्द बाज़ी न करने वाले राजा ने (श्रव इच्छमानः) प्रशंसा की इच्छा करते हुए (मे) मेरे जैसे ब्रह्मचारियों के लिए (सहस्रं सवान् अमिमीत) हज़ारों शिक्षणालयों का निर्माण किया है।

एवं इस मन्त्र में बतलाया गया है कि राजधानी सदा नदी तट पर होनी चाहिए और राजा का धर्म है कि वह अपने राज्य में स्थान २ पर उत्तम कोटि के शिक्षालय खुलवावे। जहां कि ब्रह्मचारी लोग वेदों का स्वाध्याय करें और इस शिक्षा दान से लाभ उठाने के लिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को गुरुकुल जाना चाहिए। और वहां श्रद्धा तथा बुद्धि पूर्वक वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

"न सायकस्य चिकिते जनासः लोधंनयन्ति पशु मन्यमानः"
नवाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति।

जो क्षत्रिय (लोधं पशुं मन्यमानः न नयन्ति) तपोलुब्ध ब्राह्मण को तत्वदर्शी समझते हुए युद्ध में नहीं पकड़ते, अपने से निर्बल पर हाथ नहीं उठाते और प्रबल शत्रु के सामने खड़े हो कर अपनी दीनता नहीं दिखाते (सायकस्य चिकिते) उन्हें राजा शस्त्रास्त्रों के अधिकारी समझे।

"अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः।

(पौरुकुत्स्यः) अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रधारक (मंहिष्ठः अर्यः सत्पतिः) प्रजा से पूजित, श्रेष्ठ, सज्जनों के रक्षक (त्रसदस्यु) दस्युओं को भयभीत करने वाले राजा ने मुझे १५ वधुएं प्रदान की अर्थात्—

पुरस्कार के रूप में सेनापति आदि उच्च राजकर्मचारी लोगों के पुत्रादि सम्बन्धियों के विवाह राजा राज्य की ओर से करवावे। ऐसा करने से उत्साह बढ़ता है। राजा और प्रधानमन्त्री का धर्म है कि वे परराष्ट्र में गये हुए प्रजा जनों की वहां भी पूर्ण रक्षा करें. और ऐसा न हो कि उस राष्ट्र के शत्रु के प्रबल होने से उन प्रजा जनों की उपेक्षा की जावे।

"य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन।"

(ऋतावृधा पज्रहोषिणा देवा इन्द्राग्नी) हे सत्य प्रचारक तथा अपनी आज्ञाओं को पालन कराने वाले देव, प्रधान मन्त्रिगण तथा राजन्! (यः सुतेषु तेषु वां स्तवत) जो मनुष्य अन्नादि सोम पदार्थों के उत्पन्न होने पर तुम्हारा सत्कार करता है। (भसथ) उस का तुम अन्न खाते हो (चनजोषवाकं वदतः न) परन्तु अयनशील सन्यासी का अन्न नहीं भोगते। इस मंत्र में यह बताया है कि जो मनुष्य केवल जप तप रत हैं और उनके पास सम्पत्ति नहीं उन ब्राह्मणादिकों से कर नहीं लेना चाहिए।

"नि सर्व सेन इषुधींरसक्त समर्यो गा अजति यस्यवष्टि
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामंमा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्धः।"

(इन्द्र) हे राजन् (अर्यः गाः समजति) जैसे वैश्य गौओं को रखता है (सर्वसेन इषुधिरसक्त) वैसे तुम अश्वारोही गजारोही पदाति सब प्रकार की सेनाओं से युक्त होते हुए शस्त्रास्त्रों को रखिए (यस्य वष्टि) जिस को तुम चाहते हो और (अधिप्रवृद्धः) ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी होते हुए (त्वंअस्मत् भूरि वामं चोष्कूयमाणः) तुम हमें अतिप्रशस्त न्याय के देने वाले बनो (पणिः मा भूः) तथा वैश्य मत हो जावो।

इस मंत्र में संक्षेपतः यह बातें बताई गई हैं (१) वैश्य का काम पशु पालन है (२) राजा का धर्म राज्य प्रबन्ध है (३) राजा बड़ा वृद्ध तथा ४८ वर्ष का ब्रह्मचारी होना चाहिए (४) और वह किसी तरह का व्यापार कार्य न करे। वैश्य राजा के होने से प्रजा नष्ट हो जाती है।

"कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्"
इन्द्रो विश्वान्वेकनाटां अहर्दृश उत क्रत्वा पणींरभि।

(अस्य महीः अधृष्टाः तविषीः कत् उ) इस राजा की बड़ी२ वीर सेनायें राष्ट्र के लिए सुखदायिनी हैं। (वृत्रघ्नः अस्तृतकत् उ) और शत्रु मर्दन राजा का अखण्ड बल सुखदायी हो (इन्द्रः वेकनाटाम् और राजा दुगना व्याज लेने वाले और (अहर्दृशः) यहीं के दिनों को देखने वाले (विश्व न् पणीन्) सब बनियों को (क्रत्वा अभि) न्यायकर्म के अनुसार दण्डित करे।

"दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दत्
कृणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः"

(इन्द्र) हे राजन् (दनः विशः मृध्रवाचः) करप्रदाता प्रजा को शिक्षा द्वारा मधुर वाणी वाली बनाइये (शारदीः) शरद् आदि छहों ऋतुओं के अनुकूल (सप्त यत्पुरः) विस्तृत प्रयत्नसाध्यनागरिकों को शर्मदर्त्) सुखप्रद बनाइये (अनवद्य) तथा हे पापरहित राजन्! (यूने पुरुकुत्साय) आप पुरुषार्थी कृषकों के लिए (अर्णाः अपः कृणोः) नहरों को जल पहुँचाइये (वृत्रं रन्धीः) एवं इन साधनों से क्लेश का नाश कीजिए।

एवं इस मंत्र में कर देने वाले मनुष्यों के लाभार्थ तीन राजकर्तव्य बतलाए हैं (१) शिक्षा प्रदान (२) छहों ऋतुओं के अनुकूल नगर बसाना जिससे सदा सुख मिले (३) और कृषकों के लिए नहरों द्वारा जल पहुँचाना।

इस प्रकार उपरोक्त गुणों से युक्त तथा प्रजाहितार्थ कार्य करने वाला मनुष्य ही राजा बन सकता है। वेद ने

किसी को पीढ़ी दर पीढ़ी से राजा बनाने की आज्ञा नहीं दी। वंशपरम्परानुसार राजा न हो कर गुणानुसार राजा ही वेद सम्मत है।

वह राजा प्रजाजनों द्वारा सर्व सम्मति से चुना जा कर शासन कार्य को सुचारु रूपेण चलाता है। ऋग्वेद दशम मण्डल १७३ सूक्त निर्वाचित होने की विधि को स्पष्ट करता है—

"आत्वा हार्षं अन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्"

(त्वा आहार्षं) राजन् मैंने तुम्हें राष्ट्र का स्वामी संवरण किया है, 'हृ संवरणे' (चुनना)' (अंतःएधि) तुम हमारे अंदर रहो (ध्रुवः अविचाचलीः तिष्ठ) ध्रुवतारे की भांति निश्चल रहो। (त्वा सर्वा विशः वाञ्छन्तु) तुमको सर्व प्रजा जन चाहते हैं (त्वत्) तेरे कारण (राष्ट्रं मा अधिभ्रशत्) राष्ट्र अधोगति को न पहुंचे।

(शेष अगले अङ्क में)

श्रेय और प्रेय मार्ग

(१)

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्यउप्रेयोवृणीते॥
—कठोपनिषद्

इस संसार में दो ही मार्ग हैं एक श्रेय अर्थात् आत्म-कल्याण का मोक्ष मार्ग है दूसरा प्रेय अर्थात् इस लोक के सुखोपभोग का मार्ग है। ये दोनों मनुष्य को भिन्न २ अर्थों में बांधते हैं, दृढ़ करते हैं। जो श्रेय मार्ग है वह मनुष्य को भक्ति, उपासना, उपकार, सेवाभाव, इन्द्रिय-निग्रह, पवित्रता, निर्भीकता तथा ज्ञानादि मोक्ष के साधनों में दृढ़ करता है पर जो प्रेय मार्ग है वह मनुष्य को विषयासक्ति, स्वार्थ, धन, मान के अभिमानादि में जकड़ रखता है। इन दोनों के फलस्वरूप श्रेय मार्ग की ओर चलने वाले का तो अन्त में "साधु भवति" कल्याण होता है परन्तु जो (मंद मति) "प्रेयोवृणीते" केवल प्रेय मार्ग को स्वीकार करता है वह अपने जीवन के उद्देश्य से गिर जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण जी ने यह कहा है कि—

शुक्लकृष्णे गतीह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥ ८. २६॥

जगत् में ज्ञान और अज्ञान ये दो मार्ग अनादि काल से चले आते हैं, इनमें से ज्ञान मार्ग से जाने वाला मोक्ष पाता है और अज्ञान मार्ग से जाने वाला जन्म मरण के चक्र में फंसता है। थोड़े से कथन-भेद से इन दोनों का भाव एक ही है। ज़रा हम इस बात का विचार करें कि हम ने इनमें से किस मार्ग को पकड़ा हुआ है? कोई भी मार्ग हम क्यों न पकड़ें, किसी मार्ग को पकड़ना या उस पर चलना यह बताता है कि हमने कहीं न कहीं पहुंचना है।

तो फिर हमने कहां पहुंचना है या हमारे जीवन का क्या उद्देश्य है? इस प्रश्न का हल सर्वप्रथम कर लेना चाहिये। हम ज़रा सचाई से अपने से यह पूछें कि क्या हमारे जीवन का कोई उद्देश्य भी है या यूँही व्यर्थ में ही इस संसार में जीते हैं? गहरी विचार दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होगा कि हम में से बहु-संख्या उन लोगों की है, जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं, जो जीते हैं इसलिए कि उन्हें जीना पड़ता है। दूसरे वे लोग हैं जो किसी निकृष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीते हैं। परन्तु "मनुष्याणां सहस्रेषु" हज़ारों में कोई एक सौभाग्यवान् जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पहचानता है।

हां, तो फिर मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है? योगि-राज श्री अरविन्द घोष के शब्दों में सुनिए।

"हमें अब भी कौन सी नई वस्तु प्राप्त करनी है।

"(१) प्रेम, क्योंकि अभी तक तो हम ने केवल द्वेष और आत्म संतोष ही पाया है। (२) ज्ञान, क्योंकि अभीतक तो हमें स्खलन, अवलोकन और विचारशक्ति की ही प्राप्ति हुई है। (३) आनंद, क्योंकि अभी तक सुख दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। (४) शक्ति, क्योंकि अभी तक निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है। (५) जीवन, अभी हमने जन्म वृद्धि और मरण ही तो पाया है। (६) ऐक्य, क्योंकि अभी तक तो युद्ध और संघ की ही उपलब्धि हुई है। एक शब्द में कहें तो हमें "भगवान्" को पाना है और अपने आप को उस के दिव्य स्वरूप की प्रतिमा के रूप में फिर से गढ़ना है।"

अतएव जितना शीघ्र हो सके हमें यह निश्चय कर लेना चाहिए कि मनुष्य न केवल खाने पीने आदि के लिए इस संसार में आया है और न ही इसके लिये जीता है किन्तु अपने परमात्मा को पहचानने के लिए ही जीता है। संसार की सुनहरी चमक दमक पर मोहित होने के कारण तथा अज्ञानवश यदि अभी तक यह बात हमारी समझ में नहीं आई, तो इसमें दोष हमारा ही है और हमें ऐसा समझना चाहिए कि हमारा अभी सौभाग्य का समय नहीं आया, ज़रा ठहर कर ज़रा सा प्रभु की कृपा का पात्र बनने पर हम यह स्वयमेव समझ में आ जावेगा और हम स्वामी रामतीर्थ जी की तरह कहने लगेंगे:—

बस एक आत्म ज्ञान है अमृत रस की खान।
और बचन बक बक मरन, झक झक मरना जान॥

कठ उपनिषत् में भी एक स्थान पर कहा है कि "प्राक् शरीरस्य विस्रसः" शरीर के छूटने से पहले ही, इस जीवन के सार, जिस के बिना यह जीवन व्यर्थ है, निस्सार है, ऐसे प्यारे प्रभु को जानने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली तब तो यह जीवन सफल कर लिया अन्यथा "महती विनष्टिः" (केनोपनिषद्) आगे बहुत बड़ा नाश है। हम प्रायः कई भाईयों से कहते हुए सुनते हैं कि मृत्यु आये तो हमारी इन सब दुःखों से जान छूटे किन्तु उन से कोई कहे कि क्या आगे आप के लिए कोई फूलों की सेज बिछी हुई है, आगे भी तो यही अज्ञान पूर्वक मरना जीना लगा ही हुआ है, फिर बुद्धिमानी इसी में है कि हम कोई ऐसा मार्ग ढूंढ

निकालें कि हम इस दुनियां के कष्टों, भयंकर क्लेशों, पापों तथा रोगादिकों का धीर वीर होकर मुकाबिला करते हुए, पवित्र कर्म करते हुए, प्रभु की किसी पूर्ण-शान्ति, पूर्ण-प्रकाश और पूर्णानन्द में निवास कर सकें। ऋषि लोग कहते हैं ऐसा वह पवित्र श्रेय मार्ग हमारे सामने खुला पड़ा है यदि हम उस पर चलना पसंद करें।

—कृष्ण देव।

उपालम्भ

(श्री वीरेश विद्यालङ्कार)

"हृदय हीन ध्वंस लीलाओं में मानव की अभिरुचि संहार की मर्मान्तिक व्यथाओं को पृथ्वी, समुद्र और अन्तरिक्ष के वीभत्स उत्पीड़नों में मुखरित कर रहा है। स्मृति के कमल से कोमल पृष्ठों पर हिंसावाद का यह कज्जल लेख अपने रौरव अक्षरों से उस पैशाचिक कृत्य को उद्घोषित करता है जिसका सानी अब तक का मानव समाज अपने घृणित से घृणित इतिहास में भी उपस्थित नहीं कर सका। यह बर्बर विजयेच्छु अधिकार और शक्ति के मद में वह रण ताण्डव रच रहे हैं जिनकी प्रतिस्पर्धा में सत्य, न्याय और स्वातन्त्र्य की अरक्षित देवी पग पग पर कुचली जाकर अपमानित हो रही है। क्या उन्हीं का नाम रणशूर है जो हिंसा और प्रतिहिंसा की ज्वाला जलाकर तोपों और बम्बों के विस्फोटक अट्टहास में सभ्य मानवता की बलि चढ़ाने को उत्सुक हैं। कहने दो उन्हें अपने आप को विजेता और योद्धा जोकि दूसरे के खून से नहीं परन्तु सर्वस्व लेकर भी तृप्त नहीं होते। और ऐसे ही रौद्र समरों के अधम काण्डों में वह अपनी विजय वैजयन्ती फहराते हैं जहां मानवता का खून होता है, सत्य और न्याय का गला घोंटा जाता है, कला और सौन्दर्य का सर्वस्व हरण होता है और स्वातन्त्र्य को पराधीनता के मरघट में दफनाया जाता है। हम नहीं जानते उन नर पशुओं को क्या कहें जो मानव प्रेम की पनपती हुई फुलवारी को युग युग से रौंदा करते हैं और अपने कठोर अभियानों के प्रलयङ्कर ध्वंस में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं॥"

गुरुकुल समाचार

वार्षिकोत्सव के पश्चात् नए सत्र की पढ़ाइयां नियम पूर्वक प्रारम्भ हो गई हैं। अधिकारी श्रेणी के आ जाने के कारण महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों की संख्या ८५ हो गई है। उपाध्याय गण तत्परता से अध्यापन कार्य में संलग्न हैं। गत सप्ताह श्री प्रो० वेदव्रत जी इतिहासोपाध्याय का महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के बीच "अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति" विषय पर एक ओजस्वी एवं गवेषणा पूर्ण व्याख्यान हुआ।

बाइटन कप-टूर्नामेन्ट की हार

गुरुकुल का हाकी दल कलकत्ता के 'लीग-टूर्नामेन्ट' के विजेता पुलिस-एथलेटिक क्लब से १ गोल से पराजित होकर गत २६ अप्रैल को गुरुकुल वापिस आ गया। गुरुकुल दल के खिलाड़ियों का हस्त कौशल पुलिस-क्लब से कहीं अच्छा था और लगभग सारे ही समय गुरुकुल दल ने पुलिस क्लब को दबाए रखा; किन्तु अकस्मात् समय की समाप्ति पर १ गोल चढ़ आने के कारण गुरुकुल-दल हार गया। कलकत्ता से निकलने वाले अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला सभी पत्रों ने गुरुकुल के खिलाड़ियों की प्रशंसा में अपने कालम रंग दिए। पर अफसोस; टीम हार चुकी थी! चलते समय टूर्नामेन्ट के गुण-ग्राही मन्त्री ने मुक्त कण्ठ से गुरुकुल दल के खेल की तारीफ की और आगामी वर्ष भी टूर्नामेन्ट में अवश्य सम्मिलित होने के लिए सप्रेम निमन्त्रित किया।

स्वास्थ्य समाचार

जगदीश ११ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्रजनन्दन ११ श्रेणी श्लेष्मज्वर, सत्येन्द्र ३ श्रेणी Measles, ओम्प्रकाश ३ श्रेणी Measles रूपनारायण ३ श्रेणी Chicken Pox, विद्याधर ३ श्रेणी मलेरियाज्वर, कृष्णदत्त १ श्रेणी श्लेष्मज्वर, सोमदत्त ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर रामदेव १ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द, धर्मवीर २ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द।

गतसप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० प्रताप १म श्रेणी को गत सप्ताह टायफायड से अधिक कष्ट था। अब वह भी स्वस्थ है। ब्र० सत्येन्द्र तथा ओम्प्रकाश ३ श्रेणी को खसरे के कारण ज्वर था अब उन्हें भी आराम है। ब्र० रामकृष्ण ४ श्रेणी की टांग में जख्म देर से चल रहा था अब वह भी ठीक है। आजकल यहां अधिकतम तापमान १०६ फा० तथा न्यूनतम ७३ फा० है।

पं० धारेश्वर जी का देहावसान

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के भूतपूर्व अध्यापक तथा कांगड़ी-ग्राम पाठशाला के वर्तमान कार्य कर्त्ता श्री प० धारेश्वर जी का गत १४ अप्रैल को अकस्मात् देहान्त हो गया। पं० धारेश्वर जी सन् १९१४ में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा बुलाये जाने पर गुरुकुल कुरुक्षेत्र में यहां आए थे और ४ साल तक गुरुकुल की पाठशाला में कार्य करते हुए कटारपुर केस में ७ साल के लिए जेल भी गए। वहां से लौटने पर कांगड़ी पाठशाला में १६ वर्ष तक शिक्षक का कार्य करते रहे तथा आसपास के ग्रामों में वैदिक धर्म का नाद गुंजाते रहे। उनकी सेवाएं अनगिनत थीं। अपने जीवन में पं० जी ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की जो सेवाएं की हैं उनसे आर्य जनता भली-भांति परिचित है। ईश्वर उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति दें।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २७ वैशाख १९९८; ९ मई १९४१ [संख्या २

कुल माता के प्रति श्रद्धाञ्जलि

[लेखक अध्यापक श्री० वेदराज वेदालंकार]

(१)

सायंकाल का समय था। सूर्य भगवान अस्ताचल की ओर जा रहे थे। मैं मस्ती में गाता हुआ वाटिका में घूम रहा था। फव्वारा चल रहा था, फूल खिल रहे थे, पंछी गा रहे थे, मन्द २ समीर बह रहा था, फूलों पर मस्त भ्रमर गीत गा रहे थे, आकाश में बादल कुछ गम्भीर गर्जन कर रहे थे। मैं अपने में मस्त था और प्रकृति के संगीत को सुन रहा था।

इतने में एक भद्र-पुरुष आए और प्रणामादि के उपरांत पूछने लगे कि आपके गुरुकुल की विशेषता क्या है ?

मैंने उन्हें बड़ी नम्रता से जवाब दिया कि यहां एक ऐसा विषय पढ़ाया जाता है जो बाहिर के और किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ाया जाता।

उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूछा वह कौन सा विषय है जो केवल आपके यहां ही पढ़ाया जाता है।

मैंने उन से कहा "वह विषय Science of Life" है। फिर उन्होंने पूछा Science of Life (जीवन - विज्ञान) के प्रोफेसर कौन है। मेरे पास एक गुलाब का फूल खिल रहा था, मैंने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा, ये हमारे Science of Life अर्थात् जीवन विज्ञान के प्रोफेसर हैं। यह सारी विशाल प्रकृति हमारी शिक्षका है। क्या ये गाते हुए पंछी, खिलते हुए फूल, उछलती हुई गङ्गा की तरङ्गें आपके मानस में नई उमङ्गें, जोश, जीवन और उत्साह पैदा नहीं करतीं? संसार में जितने भी समाहित साधक एवं महात्मा पुरुष हुए हैं उन्हें यह अतिरिक्त विषय Science of Life (जीवन विज्ञान) अवश्य पढ़ना पड़ता है। श्री स्वामी रामतीर्थ जी ने एक स्थान पर लिखा है कि मैं अपने जीवन का सबसे अच्छा संस्करण तब निकाल सका जब मैंने अपने को सम्पूर्ण प्रकृति के साथ एक कर दिया। गङ्गा और गिरिराज हिमालय के चरणों में बैठकर ही साधकों ने अपने जीवनों का निर्माण किया है। जितनी भी अच्छी २ दर्शनों या विचारधाराओं की जीवित जागृत टीकाएँ हैं, वे सब प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में आकर लिखी गई हैं। यदि वेदान्त की सब से अच्छी टीका देखनी हो तो मतवाले राम तीर्थ और अमेरिका की धर्म सभा में दहाड़ने वाले वेदान्तकेसरी विवेकानन्द के दर्शन करो, यदि गीता की सब से अच्छी टीका देखनी हो तो भगवान् तिलक के चरणों में जाओ, यदि आर्य समाज की सब से अच्छी टीका देखनी है, तो देव दयानन्द के दर्शनकर अपने को कृतार्थ करो। जिन महापुरुषों ने भी अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य और उज्वल चरित्र द्वारा संसार को कुछ दिया है, उन सबने प्रकृति माता के चरणों में बैठकर घोर तपस्या और साधना की है। बिना चरित्र निर्माण किए, बिना साधना किए हम विश्व को अनुप्राणित करने वाले साहित्य का सृजन नहीं कर सकते। महात्मा गांधी और विश्व-विख्यात कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य में उनकी दिव्य आत्मा का प्रकाश झलकता है। चरित्र निर्माण के लिए ये साधना और तपस्याएँ प्रकृति माता की गोद में बैठकर बहुत अच्छी तरह की जा सकती है और अपने जीवन के लक्ष्य को हम भली भांति अधिगत कर सकते हैं। यह सारा ज्ञान हम प्रकृति माता से प्राप्त करते हैं।

(२)

फिर वे सज्जन कहने लगे, गुरुकुल की और कोई विशेषता बतलाइए। मैंने उनसे कहना प्रारम्भ किया—भारतवर्ष की विश्व को सबसे बड़ी देन यज्ञ की भावना है। (यज्ञ की भावना से अभिप्राय—प्रेम, परोपकार, पवित्रता की भावना से है) आर्य संस्कृति का दृढ़ आधारभूत स्तम्भ यही यज्ञीय भावना है। हिन्दूसंस्कृति में प्रत्येक छोटे से छोटा कृत्य जबतक यज्ञीय भावना से ओत-प्रोत नहीं तब तक उस कृत्य को ऊँचे और सच्चे अर्थों में सफल नहीं कहा जा सकता। वैदिक संस्कृति के अनुसार जिस समय ब्रह्मचारी शिक्षा के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होता है उसकी शिक्षा "शिक्षायज्ञ" के नाम से पुकारी जाती है। प्राचीन भारतवर्ष में यह शिक्षा यज्ञ की भावना बहुत प्रबल रूप से कार्य करती हुई दिखाई देती है। सम्पूर्ण जनता ब्रह्मचारियों पर अपना अधिकार समझती थी और ब्रह्मचारी भी जनता की सेवा के लिए सदा कटिबद्ध रहते थे। आज हमारे इस गुरुकुल में भी

शिक्षायज्ञ की कुछ अवशिष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। आर्य जनता बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ इस शिक्षा यज्ञ में धन की आहुतियाँ डालती है और इस शिक्षायज्ञ से उठे हुए आ.तक रूप धूम्र, बादल बन कर केवल भारतवर्ष में नहीं, अपितु भारतवर्ष से भी बाहिर फ़िजी अफ्रीका आदि प्रदेशों में जहां २ आर्यसंस्कृति के विकास की आवश्यकता अनुभव हुई, वहां जाकर बरसे। जहां २ वे बरसे आर्य संस्कृति का पौधा लहलहा उठा। हमारी सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन है। विश्व के मन्दिर में यूनान, रोम, मिश्र तथा भारतीय अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का दीप जला कर एकत्र हुए। और सबके दीप बुझ गए, परन्तु आर्य संस्कृति का दीप अब भी जाज्वल्यमान प्रकाश के साथ प्रदीप्त हो रहा है। वेद, उपनिषदें और गीता आर्य संस्कृति का सर्वस्व हैं। इन्होंने ही विश्व को अमृतपान कराया है। गुरुकुल का ध्येय आर्य संस्कृति का चरम उत्कर्ष एवं विकास है। हम आर्य समाज के हैं, आर्यसमाज हमारा है।

(३)

फिर वे सज्जन कहने लगे- यहां की और कोई विशेषता बतलाइए। मैंने उनसे कहना शुरु किया—तिलक भगवान का वह नारा—"Swaraj is my birth right"(स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है) आज प्रत्येक तरुण हृदय में गुञ्जायमान हो रहा है और अनेकों भारतीय तरुणों ने मातृभूमि की बलिवेदी पर इस नारे का गान करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी। परन्तु हमारा सबसे पहला जन्मसिद्ध अधिकार दिव्यता है, जिसे कि हम धीमे २ खोते चले आ रहे हैं। जिस समय बच्चा अपने मधुरतम शैशव में प्रविष्ट होता है उसके चहरे पर मधुर दैवीय मुसकान खिलखिलाती है, वह साक्षात् दिव्यता का प्रतिनिधि होता है। हमारी संस्था की स्थापना इसी दैवीय भाव को सदा बनाए रखने के लिए हुई है। हमारी संस्था का नारा है—"दिव्यता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।" यदि हम अपनी दिव्यता का विकास करते चले जावें तो हमारी संस्था सच्चे अर्थों में सफल है।

(४)

प्रयाग राज में गङ्गा, यमुना, सरस्वती के सङ्गम की तरह, यहां धर्म, राष्ट्रियता और उदारतावाद का संगम होता है। उदारतावाद (Liberalism) की लहर धर्म और राष्ट्रियता को कट्टरता में परिणत होने से बचाती है। मेरी सम्मति में धर्म का दरजा राष्ट्रियता से ऊँचा है और धर्म राष्ट्रियता का दृढ़ आधार है। आज महात्मा गांधी अपने धर्माधार आत्मिक बल के प्रकाश से विश्व को जगमगा रहे हैं। धर्म के बिना सच्ची राष्ट्रियता विकसित नहीं हो सकती। राष्ट्रियता अगर फूल है तो धर्म उसका मज़बूत डण्ठल है। सच्चे राष्ट्रिय सेवकों के लिए धर्म की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। हमारे गुरुकुल की स्थापना इन्हीं श्रद्धावान् धार्मिक व्यक्तियों के जन्म के लिए हुई है।

(५)

अन्त में वे सज्जन कहने लगे--आप की संस्था में त्रुटियाँ और कमज़ोरियाँ भी तो बहुत सारी हैं।

मैंने उन्हें बड़ी नम्रता से जवाब दिया-श्रीमन्! त्रुटियाँ किस में नहीं होतीं। चन्द्र में कलङ्क है, फूलों के साथ काँटे भी हैं। बस मंगलमय भगवान् को छोड़ कर कौन पूर्ण है? हमारी संस्था अपूर्ण है, तभी तो आगे बढ़ने के लिए शेष है।

जिस तरह कूपर कहा करता था-England! with all thy faults I love thee still.
(इङ्गलैण्ड! दोष पूर्ण होते हुए भी तू मुझे बहुत प्यारा है।)

उसी तरह—

मेरे गुरुकुल! अनेक कमियों के होते हुए भी तू मुझे प्राणप्रिय है!!

श्रेय और प्रेय मार्ग

(२)

जैसे झूठ से सत्य की, क्रोध करके शान्ति को, पाप करके पवित्रता की तथा अन्धकार में खड़े रह कर प्रकाश की प्राप्ति असम्भव है, ऐसे ही विषय-भोगी संसारी मनुष्य बने रह कर, इस लोक में जैसे भी बने भोग-विलास करना चाहिए, विषय सुख भोगने चाहियें "किमन्यत्कामहैतुकम्" (गी० १६. ८.) इस विचार को मन में रख कर हम "श्रेय-मार्ग" पर नहीं चल सकते हैं, प्रभु की शान्ति, उसके प्रकाश तथा उसके आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। शायद हम में से कई लोगों की समझ में यह बात न आवे तो इसका कारण यह है कि जैसे ऊँट को कांटे चबाना ही भाता है, शूकर विष्ठा को देख कर आनन्द से खाने को दौड़ता है, कौवे को मनुष्य की नाक से निकला बलग़म बहुत स्वादु लगता है ऐसे ही जिन लोगों को संसार के विषय भोगों की मलिनताओं में ही अभी रस आता होगा उन्हें श्रेय का मार्ग, कल्याण का मार्ग, दुःख निवृत्ति का मार्ग, पवित्रता का मार्ग या जिसमें ज्यों २ आगे बढ़िये त्यों २ ज्ञान, आनन्द और शक्ति की प्राप्ति होती जाती है ऐसा यह सच्चा मार्ग प्यारा न लगे यह सम्भव है। इसी कठोपनिषत् में आगे चल कर यमाचार्य ने शिष्य से कहा भी है "न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्त मोहेन मूढम्" धन के मोह से मूढ़, आलसी अर्थात् विषय-विलास में फंसे हुवे बाल-बुद्धि अर्थात् विवेक रहित मनुष्य को यह परलोक मुक्ति की बात अच्छी नहीं लगती।

हम ज़रा आंखें खोल कर देखें तो हमें यह मालूम होगा कि हम में अगणित लोग ऐसे हैं जो पैसे के पीछे पागल हुवे फिरते हैं, पाप से, अत्याचार से जैसे भी बने धन कमाने की कोशिश करते हैं, कई लोग मान-प्रतिष्ठा तथा यश पाने के लिये मतवाले हो रहे हैं, फिर कई ऐसे भी हैं जिनको दूसरों को सताने और दुःख देने में ही मज़ा आता है, बहुत से स्त्री-पुत्रादि के अनुचित मोह में फंस रहे हैं, कई अभागे मनुष्यों को अपने देश को गुलामी ही प्यारी लगती है। भला हम केवल "प्रेय मार्ग" पर ही

बतलाने वाली तथा उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति को ही जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य मानने वाले मनुष्यों को कौन बतावे कि ये वस्तुएं मनुष्य के जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य नहीं हैं। जब धनी लोगों के धन जमा करने वाले बैंक फेल हो जाते हैं या जब अपने पिता-पितामह की इकट्ठी की हुई सम्पत्ति को चोर उठा ले जाते हैं या व्यापार में यकायक घाटा हो जाता है अथवा किसी अन्य प्रकार से धन का नाश हो जाता है तो इस धन में अनुचित मोह के कारण कई लोगों का तो दिल फेल हो जाता है, कई इन घटनाओं से पागल भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार अपमानित हो जाना, स्त्री आदि का वियोग हो जाना आदि अनेक घटनाएं (अपने आप को बड़ा आदमी समझने वाले परन्तु वास्तव में मामूली) हम मनुष्यों की परेशानी का कारण बनती हैं। लक्ष्मी, मान तथा विषय सुख भोग जिन पर यह अज्ञानी संसार मरता है ये सभी चञ्चल हैं, अनित्य हैं, नश्वर हैं, इन नाशवान पदार्थों का संयोग वियोग प्रतिदिन हमें धोखा देता रहता है, गीता में कृष्ण जी ने कहा भी है—

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गी० ५. २२.॥

अर्थात् इन अनित्य पदार्थों के मोह में विवेकी पुरुष नहीं फंसता है पर हम लोग मोह के इस अनुचित प्रेम के जाल में ऐसी बुरी तरह फंसे हैं कि कुछ सोचते नहीं। जब ये संयोग वियोग अनित्य हैं तब फिर इन नाशवान पदार्थों से प्रेम कर करके हम धोखा क्यों खावें, क्यों न किसी नित्य और विशाल वस्तु को अपने प्रेम का पात्र समझ कर उसमें अपने प्रेम को रख कर प्रेम के सच्चे सुख को प्राप्त करें।

तो फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे प्रेम का पात्र, सच्चा पात्र कौन है? वही जो हम सब के हृदयों का स्वामी है, जिस प्रेम पात्र ने सभी भक्तों के हृदयों को हर लिया है, जिसके प्रेम से वञ्चित हुये मनुष्य थोथा जीवन व्यतीत कर रहे हैं हम सभी के अन्दर ठहरा हुआ सच्चा प्रेम जिसकी प्रतीक्षा कर रहा है; हां वही एक प्रियतम जो सौंदर्य के द्वारा इस भौतिक जगत् में अभिव्यक्त हो रहा है, मानसिक जगत् में ज्ञानद्वारा, प्राणों में बल द्वारा तथा आध्यात्म जगत् में प्रेम द्वारा प्रकट होकर विश्व-लीला को चला रहा है। निश्चय जानिये "एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्" इसी का सहारा उत्तम है और इसी का आश्रय सर्वोत्तम है। यही एक सच्चा प्रेम-पात्र है जिनके प्रेम के सम्मुख त्रिलोकी का राज्य भी तुच्छ है। इसी एक के विस्तृत बाहुओं में आश्रय ग्रहण कर लेने से मनुष्य सब कठिनाइयों और संकटों से पार हो जाता है, सब पापों से मुक्त हो जाता है। यही एक जीवन का रहस्य है, यही एक जीवन की पहेली है, यही एक ऐसी प्यारी वस्तु है जिस के लिये इस एक शरीर की तो बात ही क्या है ऐसे अनेकों शरीर बलिदान किये जा सकते हैं, न्योछावर किये जा सकते हैं। इस का मार्ग सब के लिये खुला पड़ा है, इस का प्रेम सबके ऊपर अनादि काल से बरस रहा है; परन्तु जितनी जिसकी ग्रहण शक्ति है वह उतना ही उसे लेता है। इस के प्रेम फंद में फंस कर मनुष्य की सब फांसियां छूट जाती हैं। इस से प्रेम करने वाला विश्व से प्रेम करना सीख जाता है। ऐसे इस पूर्ण प्रेम पात्र की राह पर चलने वालों के लिये "प्रेम का मार्ग" खुला पड़ा है यदि कोई इस पर चलना पसंद करे।

—कृष्णदेव।

वेद और राष्ट्र धर्म

[लेखक—श्री० ब्र० धर्मपाल]

[२]

"इमभिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा
तस्मै सोमो अधिब्रवत्—तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः।"

(इमं ध्रुवं) इस ध्रुव राजा को (ध्रुवेण हविषा) स्थिर कर से (इन्द्रः) कोषामात्य धारण करे (तस्मै सोमः अधिब्रवत्) उसको शांत स्वभाव न्यायामात्य संमति प्रदान करे (तस्मै उ ब्रह्मणस्पतिः) और उसको वेद पारग प्रधानामात्य कर्तव्याकर्तव्य जतलावे।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्

राजन् (ते राजा वरुणः ध्रुवं) तेजस्वी अज्ञानांधकार निवारक शिक्षामात्य राष्ट्र को नियम बद्ध धारे। (देवः बृहस्पतिः ध्रुवं) पूज्य वेद पारग। प्रधानामात्य राष्ट्र को नियम बद्ध धारे और (इन्द्रः) कोषामात्य और (अग्निः) अग्रणी सेनामात्य राष्ट्र को नियम बद्ध धारण करें।

इस प्रकार इन मंत्रों में आये शब्दों से स्पष्ट होता है कि राजा को परामर्श देने के लिये एक मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता था जिस में निम्न मंत्री अपने २ कर्तव्यों पर अधिरूढ़ होकर शासन कार्य करते थे।

(१) इन्द्रः (इदं करोतीति इन्द्रः) (इदि परमैश्वर्ये- इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति इन्द्रः) ऐश्वर्यवान कोषामात्य।

(२) सोमः = शांतस्वभाव न्यायामात्य।

(३) बृहस्पति = ब्रह्मणस्पति = ज्ञानपति। चारों वेदों का ज्ञाता प्रधानामात्य।

(४) वरुणः = अज्ञानांधकार निवारक। शिक्षामात्य।

(५) अग्निः = अग्रणी सेनामात्य (अग्निर्वै देवानां सेनानी)

अर्थात् राजा उच्छृङ्खल न होने पावे और उस का राज्य का कार्यभार भी कुछ हल्का होकर अन्यों में बंट जावे, क्योंकि एक व्यक्ति एक काम को उतने अच्छे ढंग से नहीं कर सकता जितना एक एक व्यक्ति उस के एक २ भाग को लेकर कर सकता है। अतः एक सभा समिति की योजना को चालू किया गया जिसे ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में राजार्य सभा से सम्बोधित किया है। जिस के मन्त्रि शासन के एक २ भाग को अपने हाथ में लेकर राष्ट्र को उन्नत करते हैं।

"स विशो अनुव्यचलत्
तं सभा च समितिश्च सेना च
सुरा च अनुव्यचलन्"

जो राजा प्रजा का अनुसरण करता है उस का सभा ग्रामनिवासियों की सभा तथा A congregation राष्ट्रीय महासभा समिति होती है। यह दोनों तथा सेना और

(शेष पृ० ६ पर)

गु रु कु ल

२७ वैशाख शुक्रवार १९९८

मालाबार का प्रवास

(ले०—श्री आचार्य अभय देव जी)

१ परिचय

मालाबार में मैं चिकित्सा के लिये गया था। इसलिये यद्यपि मैं वहां के एक ग्राम में सवा मास तक एक स्थान पर ही रहा तो भी क्योंकि प्रारम्भ के दस बारह दिनों में चिकित्सा के लिये उचित स्थान ढूंढने के लिये मुझे लगभग सारे मालाबार प्रदेश में घूमना और भटकना पड़ा इसलिये मैं कह सकता हूं कि मैंने सारा मालाबार देख लिया है।

भाषा के अनुसार हमारी राष्ट्रीय महासभा ने जिन प्रान्तों में भारतवर्ष का विभाजन किया है उससे मालाबार 'केरल' प्रान्त में है। केरल प्रान्त की भाषा मलयालम है। मदरास प्रेसीडैंसी में मुख्यतया चार भाषायें हैं—तामिल-तैलगू-कनाड़ी और मलयालम। मलयालम भाषा बोलने वाले केरल प्रान्त का एक भाग मालाबार है। यह असल में दो जिलों से भी कम है। एक नदी की सीमा को मान कर उत्तरी मालाबार और दक्षिणी मालाबार इन दो भागों में मालाबार बंटा हुआ है। मुझे इन दोनों ही भागों में घूमने का अवसर हुआ। दक्षिणी मालाबार का मुख्य स्थान कालीकट है जो किसी समय भारतवर्ष का एक बहुत बड़ा व्यापारी नगर था। और उत्तरी मालाबार का मुख्य स्थान केनानोर है, जहां आज-कल एक अच्छी छावनी रहती है। इसके आगे महाराष्ट्र का कोंकण प्रदेश शुरू हो जाता है।

२ मालाबार प्रदेश

मालाबार का प्रदेश बहुत ही हरा भरा है। भिन्न २ प्रकार के ताड़, पान, सुपारी, नारियल, केले के वहां जङ्गल के जङ्गल खड़े हुए हैं। इधर के हिमालय प्रदेश की सी हरियावल वहां पर दृष्टिगोचर होती है। ऊंचे ऊंचे हरे-भरे वृक्षों से सुसज्जित यह प्रदेश तथा हरे हरे धान के खेतों से सस्यश्यामला वहां की भूमि मालाबार की विशेषता है। यह प्रान्त कुछ पर्वतीय सा है। पथरीला तो नहीं है लेकिन ऊंचा नीचा है। मिट्टी लाल रंग की सी है। बस्तियां या गांव छोटे २ हैं। दो चार बड़े शहरों या कस्बों को छोड़ कर शेष सब थोड़े २ घरों से बने हुए गांवों को देख कर यह आश्चर्य होता था कि ये लोग सुरक्षा के लिये अधिक बड़े २ जन समुदाय में मिल कर क्यों नहीं रहते।

३ वहां के निवासी

जैसे हमारे यहां पहाड़ी लोगों में चोरी डाका आदि की घटनायें कम होती हैं वहां के लोग अपने घरों में तोला भी बहुत कम लगाते हैं, वैसे ही मालाबार के गांवों में भी चोरी डाका आदि का विशेष डर नहीं होता। इस का यह मतलब नहीं है कि वहां पर लड़ाई दंगे नहीं होते। शायद मदरास के अन्य इलाकों की अपेक्षा यहां लड़ाई दंगे अधिक ही होते हैं। पर शायद यह शहरों और बड़ी बस्तियों तक ही सीमित होते हैं। अभी छः सात महीने हुए वहां के दंगे की ख़बर पाठक अख़बारों में पढ़ चुके होंगे। वहां के कांग्रेस में भी समाज वादियों का अधिक ज़ोर है ऐसा कहा जा सकता है। बाकी मदरास प्रान्त के अन्य लोगों की तरह मैंने मालाबारी भाइयों को भी रहन सहन में सीधे सादे, चपल और चतुर, फुर्तीले और समझदार पाया है।

४ मोपला लोग

सन् १९३० से मलाबार के मोपला लोगों से सब देशवासी परिचित हो चुके हैं। मालाबार के मुसलमान मोपला कहलाते हैं, जोकि अपने को सीधा (समुद्र मार्ग द्वारा) अरब से आया हुआ मानते हैं। इसलिये यह अधिक कट्टर होते हैं। भयंकर भी होते हैं। उनके यहां रोज़ा नमाज़ न करने वाला मार दिया जा सकता है। परन्तु मुझे मालूम हुआ है कि उनकी कट्टरता भी धीमे-धीमे कम हो रही है। इसका कारण कुछ अंश में शायद यह हो कि उनमें भी पाश्चात्य सभ्यता का असर हो रहा है। परन्तु अधिक बलिष्ठ कारण यह है कि उन में भी सूफी वाद का असर हो रहा है। यह असर वांछनीय है। वहां के एक राष्ट्रीय नेता श्री युत नारायण मेनन से जिन को कि सन् १९३० में मोपला लोगों को भड़काने के जुर्म में ही १४ वर्ष की जेल देदी गई थी मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया था। मोपलाओं के सम्बन्ध में मेरे इस ज्ञान के तथा मालाबार से मेरी अन्य परिचिति के बहुत कुछ जिम्मेवार ये मेरे मित्र श्री नारायण मेनन जी हैं। इन के साथ मुझे एक दिन भर मालाबार में घूमते हुए रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि वहां के मोपला लोग इतने भयंकर नहीं हैं जितनी कि हम कल्पना करते हैं।

५ आर्य समाज

पाठक यह जानना चाहेंगे कि मालाबार में आर्य समाज की क्या अवस्था है। मुझे यह भ्रम अवश्य दूर कर देना चाहिये कि दक्षिण मालाबार के जिस कोटकल नामक ग्राम की आर्य वैद्यशाला में मैं अपनी चिकित्सा करा रहा था उसका आर्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस वैद्यशाला के आरम्भ में जो 'आर्य' शब्द लगा है वह द्राविड़ शब्द के विरोध में जो आर्य शब्द बोला जाता है उस अर्थ में है। आर्य समाज का तो वहां बहुत कम, नाम मात्र का ही परिचय है। जितना परिचय है वह बहुत अधूरा और भ्रम जनक है। जिन दिनों मैं कोटकल में

रहता था उन दिनों जन गणना का आन्दोलन चल रहा था। गुरुकुल के सुयोग्य तथा प्रतिष्ठित स्नातक श्री पं० धर्म देव जी विद्यावाचस्पति जो उधर सार्वदेशिक सभा की तरफ से कार्य करते हैं की अंग्रेज़ी में लिखी हुई जनगणना सम्बन्धी एक पुस्तिका मुझे मिली जिस में यह अपील की गई थी कि आर्य समाज के सदस्य न होते हुए भी अमुक प्रकार से मानने वाले मनुष्य अपने आप को जनगणना में 'आर्य' लिखावें। वह अपील जब मैंने आर्य वैद्यशाला के मुख्य चिकित्सक को दिखाई और उनसे पूंछा कि वे क्यों न अपने को आर्य लिखावें, तो इस पर उन्होंने इंकार किया और कहा कि हम तो हिन्दू लिखावेंगे।

मालाबार में आर्य समाज के प्रचार का अभी तक कुछ ठीक, सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं हो सका है। उत्तर भारत के प्रचारक अभी तक वहां भोजन आदि के प्रतिकूलता के कारण टिक नहीं सके हैं ऐसा मालूम हुआ है। अतः आजकल केनानौर (उत्तरी मालाबार) में एक मलयाली महानुभाव ही उपर्युक्त श्री पं० धर्मदेव जी की देख रेख में कार्य कर रहे हैं। और कालीकट में (दक्षिण मालाबार) में होशियारपुर पंजाब के श्री युत भल्ला जी विशेष परिश्रम से कार्य कर रहे हैं, वे एक 'ऐडवाइज़र' नाम का अंग्रेज़ी का साप्ताहिक पत्र भी निकाल रहे हैं।

६. कथकली

मालाबार का एक नृत्य मशहूर है जो कथकली नृत्य कहलाता है। श्री उदयशंकर जी ने इस नृत्य को विशेष रूप से विख्यात कर दिया है। इसका विशेष सौन्दर्य क्या है यह तो विशेष तौर से नृत्यकला विज्ञों के चर्चा करने का विषय है। जब इसके विशेषज्ञ इसकी बड़ाई करते हैं तो इसमें कोई असमता होगी ही। पर मैं इतना ही जानता हूं कि यह कला भी बहुत श्रम के बाद हस्तगत होती है। कथकली सीखने के लिये १२ वर्ष की निरन्तर शिक्षा की आवश्यकता होती है ऐसा वहां के लोग कहते हैं। कोटक्कल की आर्य वैद्यशाला में भी इस की शिक्षा का प्रबन्ध था। और पांच छः शिक्षार्थी उसे सीखा करते थे। यहां के श्री वैद्यराज जी कथकली के प्रेमी हैं। इसका सिद्धान्त यही है कि विशेषतः हाथों और उंगलियों के संकेतों द्वारा बिना बोले अपने मन के भावों की पूरी पूरी अभिव्यक्ति करसकना।

मालाबारी लोग वैसे भी अधिक कलाप्रिय होते हैं। यह वहां जाने से स्पष्ट दीख जाता है। देहातो छतरियां पांडीचेरी में तामिल लोग भी बनाते हैं परन्तु वैसी ही छतरियां मालाबार की बनी हुई विशेष सुन्दर और कला पूर्ण होती हैं। वहां के देहाती लोग एक प्रकार का टोप बनाते हैं जो कि छतरी का भी काम देता है और इसे पहिन कर बरसात में किसान लोग अक्सर खेती का काम भी करते हुवे देखे जाते हैं।

७. संस्कृत भाषा काम में आई

मलयालम भाषा एक द्राविड़ भाषा कहलाती हुई भी संस्कृत-बहुल भाषा है, यह निःसंशय कहा जा सकता है। परन्तु भाषा के सम्बन्ध में जो मुझे वहां सब से अधिक आनन्द दायक अनुभव हुआ वह यह है कि वहां संस्कृत भाषा के माध्यम द्वारा बातचीत करने का अनिवार्य अवसर प्राप्त हुआ। मेरी संस्कृत भाषा काम में आई। विभिन्न प्रान्तों के दो भारतियों को जोड़ने का अंग्रेज़ी की जगह संस्कृत भाषा माध्यम हुई। मलयालम भाषा मैं नहीं जानता था और ऐसे लोगों से वास्ता पड़ता था जो अंग्रेज़ी या हिन्दी भी नहीं जानते थे परन्तु वे आयुर्वेद का अध्ययन करने के कारण संस्कृत जानते थे और संस्कृत के कारण देव नागर अक्षरों से भी परिचित थे। इस प्रकार इस वैद्यशाला के वार्षिक उत्सव की सभा में मुझे संस्कृत में भाषण करने के लिये कहा गया जो सबने समझा। इस सभा के सभापति मद्रास के एक एम. एल. ए. महानुभाव थे। उन्होंने अपने अन्तिम भाषण में मलयालम भाषा में बोलते हुवे मेरे भाषण की बहुत प्रशंसा की ऐसा कई लोगों ने मुझे अगले दिन सुनाया। शायद यही कारण था कि उसके बाद मुझसे मिलने आने वालों की संख्या कुछ बढ़ गई। तीन व्यक्ति मुझसे प्रायः प्रतिदिन मिलने आते थे। उनमें से एक तो विद्यार्थी था जो बहुत कुछ अपनी हिन्दी भाषा के बोलने का अभ्यास करने के लिये मेरे पास आता था, कुछ हिन्दी की पत्र पत्रिकाएं मुझ से ले जाता था, वह हिन्दी की कोई परीक्षा भी दे रहा था। दूसरे वहां के एक चिकित्सक थे जोकि मेरा हाल-चाल पूछने और मेरी आवश्यकताएं जानने आया करते थे। उनसे अंग्रेज़ी में बात चीत करना ही अनुकूल होता था, कभी २ आयुर्वेद सम्बन्धी बात होने पर संस्कृत के शब्दों का उपयोग करना आवश्यक होता था। तीसरे व्यक्ति जो "सांस खींचने वालों" की श्रेणी के थे। (मेरे पास आ कर आने वाले व्यक्तियों का जो तीन प्रकार का वर्गीकरण श्री पं० रामेश्वर जी स्नातक ने कर रक्खा है उन में से जो योग जिज्ञासा के कारण मेरे पास आते हैं उनका नाम उन्होंने 'सांस खींचने वाले' रख छोड़ा है) यह भाई अंग्रेज़ी भी नाम मात्र ही जानते थे इस लिये इन से मेरे साथ वार्तालाप हमेशा संस्कृत भाषा में ही होता था।

इस वैद्यशाला के संस्थापक वृद्ध वैद्यराज जी से यद्यपि पहिले तो अंग्रेज़ी और मलयालम जानने वाले दुभाषिये के द्वारा बात चीत हुई परन्तु पीछे से उनके साथ बात-चीत का माध्यम भी संस्कृत भाषा हो गई थी।

८. आर्य वैद्यशाला

इस आर्य वैद्यशाला के संस्थापक श्रीयुत पा. स. वरियर वैद्यरत्न हैं जिन की आयु ७२ वर्ष की है। वे स्वयं आज कल चिकित्सा का काम नहीं करते। किन्हीं विशेष २ रोगियों के लिये ही इन्हें कष्ट दिया जाता है। इनके कुछ सम्बन्धी और शिष्य ही जो अंग्रेज़ी पढ़ लिख गए हैं और आजकल के ढंगों से परिचित हो गये हैं इस

…वैद्यशाला को सफलता पूर्वक चला रहे हैं। इस वैद्यशाला की औषधियां अन्य स्थानों की अपेक्षा प्रामाणिक समझी जाती हैं। इन्हें आमदनी काफी होती है। इलाज का शुल्क भी ये अन्यों की अपेक्षा अधिक लेते हैं। यहां हरी औषधियां बहुत आसानी से मिलती हैं और आयुर्वेद का प्रचार होने के कारण कालीकट शहर के बाज़ार में प्रत्येक चार पांच दुकानों के बाद एक औषधियों की दुकान अवश्य दिखाई देती है। पर कोटकल के समीप होने के कारण वहां और भी अधिक सहूलियतें हैं। श्रम सस्ता है। गांव में गौओं के होने से (इधर भैंस नहीं होती) औषधियों के लिये गो दुग्ध और गोघृत बहुत आसानी से मिलता है। यहां के प्रसिद्ध क्षीरबला तैल में गोदुग्ध काफी मात्रा में पड़ता है।

यहां की विशेष चिकित्सा पद्धतियों के बारे में मैं पहले ही लिख चुका हूं। इस वैद्यशाला के उत्तम कार्यों की गणना में यह भी सूचित कर देना चाहता हूं कि यह अब अपने ही खर्च से एक अच्छा आयुर्वेद विद्यालय भी चला रहे हैं। जिसमें ८०-९० के लगभग छात्र पढ़ते हैं और कुछ क्रियात्मक भी सीखते हैं।

६. धन्यवाद

अन्त में मैं श्री श्याम जी भाई और श्री नारायण मेनन, बाबाभाई आदि का बिना धन्यवाद किये यह लेख नहीं समाप्त कर सकता जिनके कारण मालाबार में रहने हुए मेरे अन्दर यह भाव कभी नहीं आने पाया कि मैं परदेश में रह रहा हूँ। श्री नारायण मेनन का परिचय मैं ऊपर करा चुका हूँ। श्यामजी भाई सुन्दर दास के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह एक गुजराती हैं, कालीकट शहर के एक बड़े व्यापारी हैं, सार्वजनिक कार्यों में हिस्सा लेने वाले और जनता का ठीक नेतृत्व करने वाले सेवा परायण सज्जन हैं। धनी होते हुए भी इन की उमंग सदा यह रहती है कि इनका व इनके धन का उपयोग देश सेवा में हो। जब से इनसे परिचय हुआ तब से इन्होंने अपने घर के आदमी की तरह मुझे रक्खा, श्री नारायण मेनन से भी परिचय इन्होंने ही कराया।

(पृ० ३ का शेष)

कोश उस राजा का अनुसरण करते हैं। इस समिति में अन्य अमात्यों के साथ निम्न अधिकारी भी अपने २ क्षेत्र में कर्तव्य परायणता से कार्य कर राष्ट्र के आकाश में सदा उन्नति का सूर्य चमकाते हैं। ऋग्वेद दशम मंडल १४१ सूक्त में एतद् विषयक वर्णन है—

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः॥

अर्थ पर्याप्त यच्छतियच्छतीति अर्यमा = दानाध्यक्ष 'तमाहु: अर्यमा यो ददाति' राष्ट्र कोश को दान दे। भग = ऐश्वर्य वाला Finance minister बृहस्पति शिक्षा-सचिव-या युद्ध सचिव 'बृहती वाक् सेना वा तस्याः पतिः' तथा देवी दिव्य गुण व ली सूनृता सत्य प्रिय वाणी वाचका (धर्माधिकारी) अपने २ अधिकार का धर्म दान दें।

आदित्यान्विष्णुं सूर्य ब्रह्माणं च बृहस्पतिं

विष्णु 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञाधिकारी और सूर्य ब्रह्माणम् आदित्य ब्रह्मचारी जो चारों वेदों का ज्ञाता है। तथा—

इन्द्र वायू बृहस्पति सुहवा हवामहे
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ॥

इन्द्र = सेनापति वायु = वैश्य (व्यापार शक्ति) सुहवा जिन का सुगमता से आवाहन हो सकता है। उनका आह्वान करें।

"वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम्"

सरस्वती शिक्षा देवी को सविता राजाज्ञा-प्रकाशक आहवान करें।

इस प्रकार एक समिति द्वारा राजा के अधिकारों को सीमित तथा उस के कार्यभार को हलका कर दिया जाता है। जब कोई समस्या राष्ट्र में उठ खड़ी होती है तो तद्-विभागाध्यक्ष उस को हल करता है। यदि राष्ट्र की जनसंख्या इतनी वृद्धि को प्राप्त हो जावे कि उत्तम रूप से वहन सहन न हो सके, तो साधारण उपनिवेश बनाने की आकांक्षा राजा के मन में प्रगट होती है जहां अपनी प्रजा को बसाया जा सके। यह कार्य सेनापति को सौंप दिया जाता है कि किसी निर्बल राष्ट्र पर विजय प्राप्त कर इस उलझन को सुलझा दे—इस राष्ट्र विजय के लिये सेनापति अ[न्य] किसी सुभर्व राजा के राष्ट्र की तरफ दृष्टि दौड़ाता है—जो राजा 'सुप्रकारेण भर्वति अत्तिकर्मा' प्रजाजनों को बहुत सताता है उस के राष्ट्र पर चढ़ाई कर उसे सभ्यता का पाठ पढ़ाता है—ऋग्वेद दशम मण्डल १०२ सूक्त में आता है—

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय—

आजे मध्ये युद्धस्थलों के बीच में मुद्गलः ने इस वृषभं-वर्षतीति सतः मेघ को लाकर न्यक्रन्दयन् गरजवाया तथा अमेहयन्-बरसवाया। इस प्रकार कीचड़ उत्पन्न कर दिया, जिस में शत्रु दल फंस गये। इस विधि से सेनापति ने सूभर्व-प्रजा को सताने वाले राजा को जीता, तथा शतवत्सहस्रं गवां-गांव ज़िला प्रान्त रूप में सैकड़ों हज़ारों भूमियों को जीत लिया।

इस प्रकार बारूदखाने से विजय प्राप्ति का वर्णन एक और मन्त्र में भी है—

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु वृषभस्य मेघ के इस युक्त सहयोगी को देखो काष्ठाया मध्ये शयानम्-'आपोऽपि काष्ठा उच्यन्ते' जो जलों के बीच में सो रहा है अर्थात् विद्युत जिसकी सहायता से युद्ध में सेनापति ने विजय प्राप्त की।

सेनापति को अपनी सेना को सुव्यवस्थित तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित बनाने के लिये धन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसे वह कर विभाग के अध्यक्ष द्वारा प्राप्त करता है सेनापति कहता है—

मयि देवा द्रविणमायजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः
देवाः होतारः पूर्वे … —
देवाः—राष्ट्र के व्यवहारी लोग मुझ में द्रविण-धन की आहुति आयजन्तां देते रहें—और मुझे आशीर्वाद दें तथा—

वेदस्तुतिः—इस की निरन्तर मेरे में आहुति पड़ती रहे। आदि—

इस प्रकार दूसरे राज्य को विजित कर के जो एक राज्य स्थापित किया जाता है उसे साम्राज्य 'सम् इत्येकीभूतं राज्यम् साम्राज्यम्' कहते हैं।

परन्तु इस साम्राज्य की महत्वाकांक्षा से पहले दूसरे राज्य में दूती भेजने का वेद में वर्णन है। जिस से शत्रु को पहले सुधरने का मौका मिले। परन्तु यदि इस पर भी वह सीधे रास्ते पर न आये तो उसे उचित दण्ड दिया जाय। इस दूती के लिये 'सरमा' शब्द का प्रयोग है—

'सरतीति सरमा' जो दूसरे राष्ट्र में सरण कर के जाती हो। सर्व प्रथम यह शत्रुओं या असुरों को समझाती है—परन्तु सीधे रास्ते पर न आने पर उनको दण्ड दिलवाती है। अर्थात् साम दाम दण्ड आदि का यह पूर्ण प्रयोग करती है।

अन्य सचिव भी अपने २ काम को अच्छी तरह निबाहते हैं। रक्षा सचिव का या उद्योग सचिव लोम का यह प्रमुख कार्य रहता है कि राष्ट्र में नयेर उद्योगों को चालू करे। ऋग्वेद दशम मण्डल १०१ सूक्त में इन उद्योगों का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है।—

"मन्द्रा कृणुध्वम् धिय आतनुध्वम् नावमरित्रपरर्णी कृणुध्वं। इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः" (मन्द्रा कृणुध्वम्) आनन्द दायक कर्मों को किया करो, (नाव अरित्र पर्णी कृणुध्वम्) नोका बनाया करो जो शत्रुओं से बाधा कर सकने योग्य तथा पार करा सकने योग्य हो—या चप्पू द्वारा पार लगाने वाली हो। (इष्कृणुध्वम्) अन्न तैय्यार करो। (आयुधारं कृणुध्वम्) पर्याप्त आयुधों को तय्यार किया करो।

"युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्" हल जोता करो; आगे जुआ लगाया करो भूमि के तैय्यार हो जाने पर बीज बोया करो।

(शेष अगले अङ्क में)

गुरुकुल समाचार

गुरुकुलीय स्वास्थ्य विभाग की सफलता—

पिछले दिनों हरद्वार शहर में विसूचिका रोग फैलने की शिकायत सुनी जा रही थी। हर्ष का विषय है कि गुरुकुलीय स्वास्थ्य विभाग की सतर्कता के कारण इस रोग का प्रवेश कुल-भूमि में बिलकुल न हो सका। अब सर्वत्र स्थिति सुधर जाने के कारण यहां पर आम-पास गंगा-स्नान आदि पर से पिछली लगी हुई पाबन्दियां उठाली गई हैं और ब्रह्मचारी प्रति दिन गङ्गा स्नान से स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति लाभ कर रहे हैं।

तैरी-साम्मुख्य— प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी गर्मियों में गुरुकुल की ओर से तैरी प्रति योगिता का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें दूर २ के तैराक लोग भाग लेंगे। यह प्रति-योगिता २॥ मील तैरने की होगी; और सम्भवतः मई मास के ३ रे सप्ताह में होगी। थके हुए तैराकों को सहारा देने के लिए नहर-विभाग की ओर से नाव का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। प्रथम तीन विजेताओं को योग्य पुरस्कार दिया जायगा।

महाविद्यालय-प्रवेश-संस्कार—गत ३ मई, शनिवार के दिन महाविद्यालय विभाग की ११ वीं श्रेणी में प्रविष्ट हुए २२ ब्रह्मचारियों का प्रवेश-संस्कार श्री आचार्य अभयदेव जी ने कराया। ब्रह्मचारियों ने श्रद्धा-सहित व्रत धारण किया। इस अवसर पर श्री आचार्य जी ने ब्रह्मचर्य के संबन्ध में विद्यार्थी जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी भाषण दिया। जिसका ब्रह्मचारियों के हृदयों पर स्थायी असर पड़ा।

श्री प्रो० वेदरत्न जी का शुभागमन—गत ३० अप्रैल को गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के नव नियुक्त उपाध्याय श्री प्रो० वेदरत्न जी M. B. B. S. गुरुकुल पधारे। आप ने बड़े मनोयोग के साथ श्री प्रो० राधाकृष्ण जी के विषयों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया है। गुरुकुल के सब समारोहों में भी आप बड़ी दिलचस्पी से भाग ले रहे हैं। हम आपका हार्दिक स्वागत करते हैं।

गुरुकुल का वालीबाल-दल रुड़की को—गुरुकुल का वालीबाल-दल रुड़की में होने वाले टूर्नामेन्ट में भाग लेने के लिए १० मई को यहां से प्रस्थान कर रहा है। आशा की जाती है कि यह दल सफलता प्राप्त करके लोटेगा। इस दल की सफलता के लिए सब कुलवासियों के हृदयों में शुभकामना है।

वार्षिक परीक्षा का परिणाम—गत ७ मई को गुरुकुल विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा का परिणाम प्रकाशित हो गया। यद्यपि अभी तक सर्वांशतः पूर्ण रूप से परिणाम प्रकाशित नहीं हुआ तथापि १२, १३, १४ श्रेणियों का परिणाम अच्छा रहा ऐसी एक झलक मिलती है। ११ वीं श्रेणी आयुर्वेद महाविद्यालय का परिणाम अन्य वर्षों की भांति संतोष जनक नहीं रहा। इसलिए इस वर्ष ब्रह्मचारी साल के प्रारंभ से ही खूब मनोयोग पूर्वक अध्ययन कर रहे हैं।

स्वास्थ्य समाचार

वीरेन्द्र श्रेणी ५ कास, लोकनाथ श्रेणी ४ मलेरियाज्वर, राजकुमार श्रेणी ४ खसरा, देवराज श्रेणी १ Chicken Pox, दमनेश ३ श्रेणी विषमज्वर, सुखदेव ४ श्रेणी विषमज्वर, अविनाश १ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द, अजय कुमार १ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। चि. ब्र. प्रताप भारतीय १म श्रेणी को आन्त्रज्वर था अब बिलकुल आराम है। चि० ब्र० ओमप्रकाश ३ श्रेणी (डा० ब्र० मोहकम मल जी) को खसरे से अब आराम है। चि० ब्र० रामकृष्ण ४ र्थ का जख्म अब बिलकुल ठीक हो गया है। शेष सब ठीक हैं। इस सप्ताह अधिकतम ताप मान १०५ फा० तथा न्यूनतम ७५ फा० रहा। एक दिन बादल आकर दो बार बूंदें वर्षा पड़ी फिर बन्द हो गई।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

से अधिक हित किस में है अतः शरीर इसका निर्णय करता है कि हाथ काम करें और पैर चलें। अब हाथ का भी हित इसी में है कि वह काम करें। इसी प्रकार व्यक्ति जो कि राज्य का अंग है स्वयं अपना हित सोचने में असमर्थ है और राज्य की आज्ञा का पालन कर के ही वह अपना तथा राष्ट्र का विकास कर सकता है। प्रसिद्ध विचारक हैगल कहते हैं कि व्यक्ति जब तक अपना हित राज्य से अलग समझेगा वह दुःखी और अपूर्ण रहेगा। वह अपने आपको राज्य से अभिन्न करके ही सुखी हो सकता है। ऐसी अवस्था में उसे कानून में अपने मनोभावों की झलक दिखाई देगी और वह स्वेच्छा से अपने आपको राष्ट्र के प्रति समर्पित कर देगा जैसे कि रूस जापान युद्ध में राष्ट्रभक्त सिपाहियों ने अपने जीवित देहों से खाई को भर दिया था ताकि सेना गुज़र सके और राष्ट्र की विजय हो।

आजकल नात्सीज़्म और फेसिज्म तथा बोलशेविज्म इन्हीं विचारों के हैं। चाहे हम और कई कारणों से उनके समर्थक न हों पर यह तो साफ़ ही है कि जर्मनी की शक्ति बहुत संगठित है और उन्हें संघटित होने की शिक्षा मिलती है।

यदि पारिभाषिक शब्दों की उलझन से बच कर चलूं तो मैं कहूंगा कि मनुष्य की शक्ति संघ में है। पर किसी ईंट पत्थर के ढेर का हम संघ नहीं कह सकते, नहीं बाज़ार में दिन भर चलने वाली भीड़ को संघ कह सकते हैं क्योंकि उसमें प्रत्येक आदमी का उद्देश्य तथा क्रियाएं भिन्न भिन्न हैं।

(शेष अगले अङ्क में)

श्रेय और प्रेय मार्ग

(३)

विवेक —

ज्ञानी गुरु कहते हैं कि उस पूर्णप्रेमपात्र प्रभु की राह पर, श्रेय मार्ग पर, चलने के लिये मनुष्य को प्रथम धारण करना पड़ता है "विवेक"। क्योंकि विवेक ही यथार्थ में सब साधनाओं का मूल है जिसकी दृढ़ता के बिना आगे चला नहीं जा सकता। विवेक को विचार का परिणाम कहना चाहिये। संसार के सभी सुख नश्वर हैं, अनित्य हैं, ऐसा कोई भी सुख नहीं जो दुःख रहित हो। परन्तु मनुष्य चाहता है कि मुझे ऐसा सुख प्राप्त हो जो एक-रस हो, इसी सुख अथवा आनन्द की खोज प्रथम वह सांसारिक पदार्थों में करता है, खोजते २ जब जिज्ञासु को सांसारिक क्षणिक पदार्थों से शान्ति नहीं मिलती तब वह सभी सांसारिक सुखों को परिवर्तन-शील जान कर किसी नित्य सुख, पूर्णानन्द की खोज करने लगता है। इसी पूर्णानन्द को जानने के लिये वह सत् असत्, आत्मा-अनात्मा, विद्या अविद्या तथा नित्यानित्य वस्तु विवेक करने लगता है तथा आनन्द के मूल स्रोत सच्चिदानन्द परमेश्वर से प्रेम करने लगता है।

मैं क्या हूं, कहां से आया हूं, कहां जाऊंगा, संसार क्या है, परमेश्वर क्या है इत्यादि प्रश्न विवेकी मनुष्य के ही हृदय में उठते हैं। जितना जितना इन प्रश्नों की गहराई में वह घुसता है उतना २ उसके ज्ञान की वृद्धि होती जाती है। परन्तु अविवेकी मनुष्य केवल प्रेय मार्ग पर ही चल कर अर्थात् नाशवान वस्तुओं को प्राप्त करने में लग कर जीवन के उद्देश्य से बहुत दूर चला जाता है—(हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते)। सत्यासत्य, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य धर्माधर्म में अविवेकी मनुष्यों का सैंकड़ों प्रकार से नाश होता है (विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातःशतमुखः)। सत्पुरुषों का सङ्ग, स्वाध्याय, यम-नियमों का अनुष्ठान तथा परमेश्वर की कृपा विवेक प्राप्ति के साधन हैं।

वैराग्य —

विवेक के पश्चात् दूसरा साधन है "वैराग्य"। विवेक के बिना वैराग्य की प्राप्ति असम्भव है। "दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्" (योग-दर्शन) अर्थात् देखे और सुने विषयों की तृष्णा से रहित चित्त का जो वशीकार है उसे वैराग्य कहते हैं। जब विवेकी सांसारिक पदार्थों को नाशवान जान लेता है तो उसकी चाह तथा लालसा हट जाती है। जब मन बाह्य सांसारिक पदार्थों से हट जाता है तो स्वयं ही वह अन्तर्मुख होने लगता है, और वैराग्यवान् मनुष्य को हर समय यह निश्चय रहता है कि निरन्तर जो सुख का स्रोत है वह मेरी अन्तरात्मा में ही है। संसार के सौन्दर्य उसे लुभा नहीं सकते, नचिकेता की तरह वह हिरण्मय पाशों को, इन प्रलोभनों को पार कर जाता है क्योंकि उसे यह सत्य ज्ञान होता है कि सब सौन्दर्यों का सौन्दर्य प्रभु मेरे हृदय में है।

षट्क सम्पत्ति —

तीसरा साधन है षट्क सम्पत्ति। यह छः साधनों का समूह है। (शम) विवेक वैराग्य के प्राप्त होने पर जब मन में कुछ वासना और संकल्प नहीं आते तब शम की प्राप्ति समझी जाती है। (दम) इन्द्रिय और शरीर को अपने वश में रखना दम कहलाता है। (उपरति) सब प्रकार की भोगात्मक कामनाओं से उपराम हो जाना, यहां तक कि मान बड़ाई तथा यश आदि का भी त्याग करना। (तितिक्षा) इस मार्ग पर चलते हुए जो कठिनाइयां दुःख तथा क्लेश आवें उनको धीरज से सहन करना। (श्रद्धा) परम गुरु परमेश्वर में, वेदादि शास्त्रों तथा ज्ञानी जनों पर श्रद्धा रखना, (समाधान) मन को सर्वदा सम, शान्त, तथा स्थिर रखना।

मुमुक्षुत्व —

चौथा साधन है मुमुक्षुत्व; अर्थात् प्रकृति बन्धन से छूटने, आत्म स्वरूप तथा भगवान् को पाने की उत्कट-इच्छा, तीव्र अभीप्सा। "यथेह क्षुधिता बालाः मातरं पर्युपासते" जैसे भूखा बालक मां के पास दौड़ता है वैसे भगवान को चाहना या जैसे अत्यन्त प्यासे को जल के सिवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता, ऐसी तीव्र इच्छा प्रभु के लिये

होना, शान्त मन में उसी का संकल्प, हृदय में उसी की खोज हो, सर्वदा आत्मा में उसी का शुद्ध प्रेम भरा रहे।

ये चार साधन इस "श्रेय मार्ग" के यात्री के लिये आवश्यक हैं और साथ ही यह कह देना आवश्यक है कि जो कोई इस मार्ग पर पैर रखे तो बड़ी सावधानी से रखे, क्योंकि पग २ पर अविद्या का जाल फैला हुआ है। मोहमयी प्रमाद मदिरा इस जगत् को उन्मत्त सा बनाये हुये है। घोर अज्ञान तथा असन्तोष की गहरी छाप इस जगत् पर पड़ी हुई है। अतः परमेश्वर में अटूट धैर्य, अगंग श्रद्धा के साथ सजग होकर आगे बढ़ चलना पड़ता है, कभी प्रमाद वश गिरावट भी हो जावे तो फिर उठ खड़ा होना होता है। सैंकड़ों विफलताओं के आने पर भी बिना प्रयत्न अन्तिम विजय में विश्वास रखना होता है।

इस श्रेय मार्ग तथा इस पर चलने के साधनों के विषय में ऐसा ज्ञानी गुरुओं का हमारे लिये उपदेश है। इसका विशेष ज्ञान भी ज्ञानी गुरुओं से ही प्राप्त करना चाहिये।

(समाप्त)

— कृष्णदेव।

[पृ० ३ से आगे]

के सम्बन्ध में पर्याप्त से अधिक मात्रा में उन्माद दृष्टि-गोचर होता था।

हमारा पहला मैच

इस टूर्नामेंट में हमारा पहला मैच मिलिटरी-हास्पिटल,रुड़की की शक्तिशाली टीम के साथ ता० १० मई को शाम को ४॥ बजे हुआ। इस टीम को यह पूरा विश्वास था कि उन्हें छोड़ कर अन्य कोई टीम इस कप को जीत कर नहीं ले जा सकती। मैच प्रारम्भ होने में जब ३ मिनट बाकी थे और दोनों दल मैदान में उतर कर परस्पर बातें कर रहे थे तब मिलिटरी टीम का कैप्टेन अपनी शक्ति के मद में हमसे यह बोल उठा कि "आप से खेलने के बाद हमें फाइनल में मुजफ्फरनगर की टीम का तकड़ा मुकाबिला करना पड़ेगा"। उसका आशय अत्यधिक स्पष्ट था कि गुरुकुल- टीम को हम कुछ नहीं समझते!

उनकी इस उक्ति का हमारे खिलाड़ियों पर गम्भीर असर हुआ। खेल प्रारम्भ हुई तो गुरुकुल के खिलाड़ी एड़ी से चोटी तक का ज़ोर लगा कर खेलने लगे। सब ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि इस व्यर्थ डींग हांकने वाली 'अहम्मन्य' टीम को अवश्य पराजित करना है। गुरुकुल की ओर से प्रहारकर्ता (Smasher) श्री हरिप्रकाश और पूर्णसिंह थे। विपक्ष की ओर से प्रहारकर्ता लम्बे क़दवाले दो सिख थे। वस्तुतः उन दो सिखों में से एक तो अत्यन्त परिष्कृत-खिलाड़ी था जिसकी प्रताड़ित गेंदों को हमारे खिलाड़ी सुदृढ़ व्यूह रचना के द्वारा बड़ी मुश्किल से उठा सके। १०वें पोयन्ट तक दोनों दल लगभग बराबर रहे। इसके बाद जब गुरुकुल के १७ पोयन्ट हुए और मिलिटरी के १२ थे तब विपक्ष के प्रहार-कर्त्ता के चेहरे पर थकावट की एक हल्की रेखा दृष्टि-गोचर हुई; किन्तु उस समय हमारी खेल जमी हुई थी। फलतः देखते ही देखते हमारे पोयन्ट २१ की पूर्णता को पहुंच गए तथा उनके १९ ही रहे। इस प्रकार पहली खेल में मिलिटरी-दल अपनी महान् आशा के विरुद्ध पराजित हुआ।

दूसरी खेल के प्रारम्भ होते ही गुरुकुल ने दल उन्हें धर-दबोचा और विपक्ष के पैर उखड़ चले। इस अवसर पर उनकी टीम के कैप्टेन ने (जो मिलिटरी का डाक्टर था और खेल में प्रक्षेपक (Buster) था) कई बड़ी चुस्ती के हाथ दिखलाये। और अपनी पार्टी को डगमग होने से बचा लिया। किन्तु अगले ही मिनट उसकी नाक पर एक तेज शाट लग जाने पर वह पस्त हिम्मत हो गया और १३ पोयन्ट बना लेने के बाद मिलिटरी-हास्पिटल-क्लब पराजित हो कर मैदान छोड़ गया।

इन मैचों में हमारी टीम के निम्न खिलाड़ी खेले:— सर्व श्री मनोहर, सत्यपाल, दिलीपचन्द्र, पूर्णसिंह, पं० बलबीर जी, डा० हरिप्रकाश जी।

दूसरा मैच

हमारा दूसरा मैच इस टूर्नामेंट का सञ्चालन करने वाले अहबाब यूनियन क्लब की 'ए' टीम के साथ १० मई को सायंकाल ६ बजे हुआ। यह टीम साधारणतया तकड़ी थी किन्तु इस टीम के दिलों में यह बात घर कर गई थी कि "हम गुरुकुल के मुकाबिले में क्या खेलेंगे!"। इसी कारण इस टीम से संघर्ष-पूर्वक मुकाबिला न हो सका। इस कारण गुरुकुल-दल की सरल-विजय (Easy-Victory) हुई।

हमारा तीसरा मैच

गुरुकुल-दल का तीसरा मैच सकरौदा क्लब से ११ मई को प्रातः ७ बजे हुआ। इस टीम का प्रहार-कर्त्ता गेन्द को दबाने में सिद्ध-हस्त था। इस टीम की डिफेन्स भी हमारे मुकाबले में अधिक मजबूत न थी; फिर भी सकरौदा-क्लब ने अपनी ओर से अच्छा मुकाबला किया; किन्तु अन्त में पराजित हुई।

मुजफ्फर नगर की टीम

निचले राउण्ड में मुजफ्फर नगर की टीम सब से प्रबल और शक्ति शाली थी। हमारी टीम ऊपर के राउण्ड में थी। इस लिए ३ रे मैच को जीत लेने के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि सायंकाल मुजफ्फर नगर और गुरुकुल दल का मैच होगा। प्रातः काल रुड़की इञ्जिनियरिंग कालेज की ओवर-सीयर क्लब की टीम के साथ मुजफ्फर नगर का मैच हुआ था। जिसमें मेरठ के विख्यात प्रहार-कर्त्ता धर्मपाल और मकसूद अली भी थे। रुड़की की जनता ने हमें पहले ही बतला दिया था कि इन दोनों प्रहार-कर्त्ताओं के मुकाबिले के खिलाड़ी यू० पी० में दूर२ तक के इलाकों में नहीं मिल सकते, अतः हम इनकी खेल देखने के लिए प्रातः ६॥ बजे मैदान में जा पहुंचे। इञ्जिनियरिंग-कालेज की क्लब को मुजफ्फर नगर ने बात की बात में पराजित कर दिया। इसके अतिरिक्त खेल में इनका उछलना, उछल कर गेंद को मारना, और गेंद का भूमि से टकरा कर खूब ऊपर तक उछलना, लाजवाब वाली करना आदि खेल की खूबियां देख कर हम एक दूसरे की ओर आश्चर्य ताकने लगे कि शाम को फाइनल में मालूम नहीं क्या परिणाम निकलेगा !!

फाइनल

ता० ११ अप्रैल की शाम को ५ बजे हम पूरी तैयारी के साथ मैदान में पहुंचे। मैदान के चारों ओर लम्बी २ कतारों में रखी हुई कुर्सियों पर लोग बहुत पहले से बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। बीच की मेज पर शील्ड-कप सुशोभित हो रहे थे। हमारी टीम के साथ ही मुजफ्फरनगर की टीम भी पहुंची। सब खिलाड़ी पूर्व निर्धारित अपनी २ कुर्सियों पर शान्त हो कर बैठ गए। चारों ओर शान्ति छा गई, यह वह शान्ति थी जो तूफान आने के पहिले हुआ करती है या ज्वार आने के पहले समुद्र के तीर पर होती है। ५ मिनट के अनन्तर टूर्नामेन्ट के प्रतिष्ठापक श्री मिस्टर बिल, ज्वायंट मजिस्ट्रेट कड़की अपनी कार से उतरकर आये और बीच की कुर्सी पर बैठ गए। सीटी बजी और खिलाड़ी मैदान में आ कूदे। सारी जनता के मन में और स्वयं विपक्षी-दल के मन में शंका-रहित यह विचार था कि उन्हें गुरुकुल टीम कभी हरा नहीं सकती। इस लिए कप आदि ले जाने के लिये उन्होंने पहले से ही पूरा प्रबन्ध कर रखा था। किन्तु हमने अपनी उत्तम शक्ति और किसी खेल में अभी तक प्रकट नहीं की थी इस लिये न परिस्थिति पर गौर कर रहे थे। इतने में दूसरी सीटी बज गई।

शरीरों पर एक हल्की सी लहर सी लाती हुई खेल प्रारम्भ हुई; दर्शकों की आंखें गड़ गईं। प्रति सेकण्ड दर्शकों के चेहरों पर हर्ष-विषाद की छायें धूप-छांह का खेल खेलने लगीं। खेल की प्रगति इतनी सुचारु-रूप से अग्रसर होती गई कि दर्शक लोग वाह-वाह कर उठे! उन्हें पक्षी-प्रतिपक्षी का ध्यान ही न रहा। घात प्रतिघात, दांव-पेंच, मारना-बचाना आदि में दोनों ही दल अत्यन्त निपुण थे इस लिये जल्दी ही यह निश्चय नहीं किया जा सका कि कौनसा दल ओछा है और कौन श्रेष्ठ। दोनों ही एक दूसरे से बढ़ कर हस्त-कौशल दिखला रहे थे। इस खेल को जो लोग देख रहे थे वे अपने को बड़-भागी समझ रहे थे और जिन्होंने इसकी तारीफ़ ही बाद सुनी वे मन्द-भाग्य के लिये अपने को ही दैव को कोसते रहे। विपक्षी दल का कौशल यथार्थतः हम से कुछ प्रतीत हो रहा था 'पहली खेल में उनके जितने भी शूट पड़े उन पर बड़ी मुश्किलता से काबू किया जा सका। किन्तु, गुरुकुल टीम का पिछवाड़ा (डिफेन्स) तो लोहे का ढाल था जहां सख्त से सख्त गेंद टकरा कर उलटी लौट जाती थी। फिर भी विपक्ष के खिलाड़ियों से हमारा यह प्रथम परिचय ही था इस कारण पहली खेल में १३ और विपक्ष के १५ पोयन्ट होने के कारण पराजित रहे। किन्तु इस बार उनकी खेल हमने पूरी तरह समझ कर उस पर काबू कर लिया था।

दूसरी खेल के प्रारम्भ होते मानो सारी खेल हमारे हाथों में आ गई। सर्विस श्री प्रकाश करते थे, वाम-पार्श्व रक्षक श्री बलबीर थे, दक्षिणपार्श्व रक्षक मनोहर, केन्द्र-रक्षक सत्यपाल, प्रहार-कर्ता पूर्णसिंह और प्रक्षेपक (Buster) दल के मुखिया दिलीप थे। खेल खूब जम कर हुई और हमारा दल १५ और विपक्ष के सिर्फ ७ पोयन्ट होने के कारण विजयी हुआ।

तीसरी खेल प्रारम्भ होने पर अपने दल के खिलाड़ियों ने यह समझ कर खेल में ढील दे दी कि "अन्त में तो हम ही विजयी होंगे"। किन्तु इसी प्रमाद के कारण विपक्ष के पोयन्ट तेजी से बढ़ते गए और यह 'गेम' हाथ से निकल गया। किन्तु इस खेल के अन्त में गुरुकुल दल ने स्पष्टतया यह देख लिया कि विपक्षी-दल में कठोर परिश्रम के अनन्तर अब दम नहीं रहा और उन के खिलाड़ी हांफ चले हैं।

चौथी खेल के प्रारम्भ होने ही विपक्ष ने एड़ी से चोटी तक का पसीना बहा कर खेलना शुरू किया। यदि वे इस चौथी खेल में भी जीत जाते तो ५ में से ३ खेलों में विजयी होने के कारण, निस्संशय विजय-लक्ष्मी उन्हें ही प्राप्त होती! किन्तु हमारे उत्साही, धीर, परिश्रमी और चतुर खिलाड़ियों ने इस दृढ़ता से खेल की बागडोर थाम रखी थी कि वह प्रतिपक्ष द्वारा भरपूर जोर लगाने पर भी टस से मस नहीं हो सकी। इस खेल में श्री हरिप्रकाश ने नपी तुली हुई बड़ी बारीकी से जो सर्विसें की उनसे गुरुकुल दल के एक साथ ४ पोयण्ट बन गए। श्री बलवीर ने विचार-कुशलता (Idea) से जो कन्दुक-विन्यास किया उस से विपक्ष विचलित हो उठा। मनोहर ने बड़ी सतर्कता और होशियारी के साथ दक्षिण पार्श्व की रक्षा की। सत्यपाल ने खेल का मध्य-केन्द्र इस खूबी से सम्भाल रखा था कि वहां एक बार भी गेंद गिरने की गुंजायश नहीं थी, मध्य-मैदान में जो शूट विपक्ष द्वारा मारे गए उन्हें बड़ी सफलता के साथ प्रक्षेपक दिलीपचन्द्र के पास पहुंचा दिया गया। और दिलीपचन्द्र ने असाधारण कुशलता के साथ मैदान के किसी भी भाग में आई गेंद को ठीक अनुपात में निश्चित ऊंचाई तक उछलने में जो कमाल किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इन उत्तम गेन्दों को पूर्णसिंह ने जिस सफाई, फुर्ती और चीते की सी झपट के साथ दबाया वे गेन्दें भूमि पर पड़ने के बाद ही दृष्टि-गत हुईं। यूं तो सारे दल की खेल अत्यन्त संगठित हुई किन्तु दिलीपचन्द्र और पूर्ण सिंह की खेल में जो परस्पर तारतम्य हुआ उसने "मणि-काञ्चन-योग" का कार्य किया। दोनों की खेल एक दूसरे से अधिक सुशोभित हुई। और इस प्रकार चौथे खेल में ७ और १५ पोयण्ट से गुरुकुल-दल को विजय प्राप्त हुई।

पांचवीं खेल का महत्व पिछली चारों खेलों से अधिक था क्योंकि इसी खेल की विजय पर विजय-श्री का प्राप्त होना निर्भर था। दोनों दलों में जबर्दस्त होड़ लगी। गेंद गेरी तरह प्रताड़ित होकर कभी इस पक्ष में आती और कभी विपक्ष में तेजी से चली जाती। इस प्रकार दोनों दलों में देर तक अभूत-पूर्व संग्राम चलता रहा। ५ मिनट खेल होने के बाद ही गुरुकुल दल ने अपने सहज-धैर्य, उत्साह और वीरता के साथ जोर पकड़ना प्रारम्भ किया। देखते ही देखते गुरुकुल दल के पोयन्ट १२ तक पहुंच गए जबकि विपक्ष के सिर्फ ५ थे। और जब तक विपक्ष के पोयन्ट ८ तक पहुंचे तब तक गुरुकुल दल ने बचे हुए पोयन्ट को पूरा करके खेल को समाप्त कर दिया। तुमुल जय-घोष से दिशाएं गूंज गईं।

चारों ओर मानों हर्ष पारावार सा उमड़ पड़ा। रुड़की की जनता ने दौड़ कर गुरुकुल दल के खिलाड़ियों को कन्धों पर उठा लिया। थोड़ी देर के विक्षोभ के अन्तर आनन्द-सागर की तरंगें शान्त हुईं और मि० बिल ने विजयोपहार गुरुकुल-दल को अर्पित कर केप्टेन दिलीपचन्द्र से हाथ मिलाया और सब खिलाड़ियों को एक-एक कप दिया गया। सर्व श्रेष्ठ खिलाड़ी का पारितोषिक पूर्णसिंह को प्राप्त हुआ। इस के अतिरिक्त एक कप 'रोयल क्लब' की ओर से तथा एक मैडल रुड़की के एक प्रतिष्ठित सज्जन की ओर से भी पूर्णसिंह को दिया गया।

इस प्रकार इस टूर्नामेन्ट में गुरुकुल दल को पूरी सफलता प्राप्त हुई। हरद्वार जाने वाली ८ बजे की लारी से यह दल विजयोपहार सहित गुरुकुल रवाना हो गया।

गुरुकुल समाचार

सुहावनी ऋतु—गत सप्ताह दो बार अच्छी वर्षा हो जाने के कारण ग्रीष्म ऋतु का सारा परिताप दूर हो चुका है। ठंडी हवाओं के दिन भर चलते रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि अब यहां वर्षा ऋतु का आगमन हो चुका है। इन दिनों गगन-मण्डल के परिव्राजक बड़े २ मेघों के मण्डल प्रातः से सायंकाल तक गुरुकुल भूमि पर शीतल छाया करते हुए हिमालय की बद्रीनाथ आदि चोटियों की ओर गम्भीर गान करते हुए बढ़ते चले आ रहे हैं। महा कवि कालिदास बादलों की जिस श्यामल-स्निग्ध छवि पर तथा उनके मन्द्र गम्भीर घोष पर इतने मुग्ध थे वे दृश्य और वे गायन आज कल यहां प्रति दिन देखने और सुनने को मिलते हैं।

गुरुकुल में खेल की प्रगति— गत सप्ताह गुरुकुल में श्रेणी साम्मुख्यों के कारण अच्छी हलचल रही। हाकी में ११ वीं और १२ वीं श्रेणी के साम्मुख्य में ११ वीं श्रेणी १ गोल से विजयी हुई। १३ वीं और १४ वीं श्रेणी के साम्मुख्य में १३ वीं श्रेणी विजयी मानी गई। ११ वीं और १३ वीं श्रेणी के अन्तिम साम्मुख्य में १३ वीं श्रेणी ३ गोल से सर्व विजयी हुई।

बाली बाल के साम्मुख्य में ११ वीं और १२ वीं श्रेणी में १२ वीं श्रेणी विजयी हुई। १३ वीं और १४ वी श्रेणी में १३ वीं विजयी हुई। ११ वीं और १३ वीं के अन्तिम साम्मुख्य में १३ वीं श्रेणी सर्व विजयी हुई।

इन दिनों खेलें नियम पूर्वक हो रही हैं। श्री आचार्य जी की विशेष आज्ञानुसार सब ब्रह्मचारियों का खेलों में भाग लेना उतना ही आवश्यक हो गया है जितना कि पढ़ाई में। इसमें अनुपस्थित होने पर नम्बर काटने की व्यवस्था की गई है अतः खेलों की व्यवस्था अत्युत्तम हो गई है।

विजयोत्सव— गत ११ मई को गुरुकुल का बालीबाल दल रुड़की टूर्नामेन्ट को जीत कर विजयोपहार के साथ सकुशल गुरुकुल पहुँच गया। विजयी बन्धुओं के स्वागत में गुरुकुलीय-वाद्यदल के साथ एक बड़ा जलूस निकला। जलूस के बाद एक विराट् सभा में सब खिलाड़ियों के गले में स्नेह-सुरभित पुष्प-मालाएं पहिनाई गईं। इस सभा में श्री आचार्य जी, श्री मुख्याधिष्ठाता जी, उपाध्याय गण, अध्यापक वृन्द, छोटे बड़े ब्रह्मचारी तथा गुरुकुल के सब विभागों के कर्मचारी सम्मिलित हुए। ब्र० श्याम ने विजयी-भाइयों के स्वागत में एक सुन्दर गीति गाई। इस विजयोत्सव में सर्व श्री ब्र० धर्मपाल, ब्र० विश्वमूर्ति, ब्र० सहदेव, ब्र० सूर्यदेव ने अपनी संक्षिप्त वक्तृताओं द्वारा विजयी बन्धुओं को बधाई दी। इसके बाद श्री पं० हरिवंश जी वेदालंकार ने इस टूर्नामेन्ट का आंखों देखा सारा वृत्तान्त और खेलों की प्रगति का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया। इसके बाद श्री पं० वासुदेव जी वेदालंकार (मुलतान) ने खेलों और खिलाड़ियों पर चित्ताकर्षक टिप्पणी करते हुए टूर्नामेन्ट के दृश्यों का एक शब्द-चित्र खींच दिया।

सब के अन्त में गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री पं० सत्यव्रत जी ने प्राप्त हुई विजय-श्री पर हर्ष प्रकट करने के बाद खेलों की उपयोगिता दर्शाते हुए कहा कि "निस्सन्देह, खेल प्रोपेगेंडा का बहुत बड़ा साधन है, और पिछले दिनों हमारी हाकी टीम द्वारा कलकत्ते में गुरुकुल का बड़ा नाम हुआ है। हमारी इस संस्था में कोई विद्यार्थी प्रमादी नहीं होना चाहिए। गुरुकुल में चारों ओर क्रियाशीलता नज़र आनी चाहिये। ब्रह्मचारियों को चाहिए कि घूमने-फिरने को कसरत को छोड़ कर खेलों में, तैरी में, व्यायाम और खेती में भाग लें। घूमना-फिरना तो बूढ़ों-बीमारों का व्यायाम है। हमें चाहिए कि गुरुकुल में खेलों का वायु-मण्डल भी पढ़ाई के समान ही वर्ष भर बना रहे और इस संस्था में सदा इस प्रकार विजय-श्री आती रहे।"

उपाचार्य श्री प्रो० ज्ञानचन्द्र ने खिलाड़ियों को प्रोत्साहन देते हुए बधाई दी और उल्लास पूर्ण सभा विसर्जित हुई।

इस टूर्नामेंट का वृत्तान्त अन्य इसी अंक में प्रकाशित किया गया है।

गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

रामेश्वर ५ श्रेणी दन्त में दर्द, सोमदत्त ३ श्रेणी आमवात, राजकिशोर ४ थी चोट, अविनाशचन्द्र १ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द, राजेन्द्र श्रेणी ज्वर कास।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। चि० ब्र० राजकिशोर सोमदत्त को अभी ज्वर है। आशा है कि ये शीघ्र स्वस्थ हो जावेंगे। इस सप्ताह वर्षा होने से गर्मी कम रही और मौसम अच्छा रहा।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

स्नातक बन्धुओं से

प्रिय भाई,

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के स्नातक-मण्डल का सम्वत् १९९८ का वार्षिक अधिवेशन गुरुकुल के गत वार्षिकोत्सव के अवसर पर ११ और १२ अप्रैल १९४१ को क्रमशः पं० भीमसेन विद्यालंकार और पं० देवराज विद्यालंकार के सभापतित्व में हुआ।

(१) नए अधिकारियों का चुनाव इस प्रकार हुआ—

१. पं० देवराज विद्यालंकार लाहौर प्रधान
२ पं० भीमसेन विद्यालंकार लाहौर उपप्रधान
३. पं० प्रियव्रत विद्यालंकार गुरुकुल सूपा "
४. पं० सत्यदेव विद्यालंकार नई दिल्ली "
५. पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार लाहौर प्रधानमन्त्री
६ पं० सत्यदेव विद्यालंकार लाहौर मन्त्री
७. पं० धीरेन्द्र विद्यालंकार दिल्ली "
८ पं० प्रकाशचन्द्र लाहौर कोषाध्यक्ष
९ पं० अर्जुनदेव विद्यालंकार कलकत्ता आय-व्यय निरीक्षक।

निश्चय हुआ कि कार्य समिति में भी उक्त ६ सज्जन ही रहें।

(२) यह भी निश्चय हुआ कि स्नातक-मण्डल का वार्षिक चन्दा १) रु० रक्खा जाय और चन्दा देने पर ही मत देने का अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

(३) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का नया निर्वाचन मई १९४१ में हो रहा है। स्नातक मण्डल का अनुरोध है, कि पंजाब में रहने वाले स्नातक भाई अधिक से अधिक संख्या में प्रतिनिधि सभा में प्रतिनिधि निर्वाचित हों।

(४) निश्चय हुआ कि स्नातक मण्डल की राय में विद्या-सभा के विधान (Constitution) में परिवर्तन की आवश्यकता है। उसका उचित और अधिक प्रभावशाली विधान प्रतिनिधि सभा के आगामी अधिवेशन में पेश करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति नियत की जाती है—

१. प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति दिल्ली
२. पं० चन्द्रगुप्त जी लाहौर (नियोजक)
३. पं० भीमसेन जी लाहौर
४. प्रो० विश्वनाथ जी गुरुकुल कांगड़ी
५. प्रो० सत्यव्रत जी "
६. पं० बुद्धदेव जी मेरठ
७. डा० सत्यकेतु जी दिल्ली

(५) स्नातक मंडल का ध्यान इस तथ्य की ओर विशेष रूप से खींचा गया कि नए स्नातकों में बाहर की परीक्षाएं देने की प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ रही है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए तथा स्नातकों की आजीविका का प्रश्न हल करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति नियत हुई।

१. पं० देवराज लाहौर (प्रधान)
२. श्री चन्द्रगुप्त लाहौर (मन्त्री)
३. पं० भीमसेन " सदस्य
४. आचार्य अभयदेव जी गुरुकुल कांगड़ी
५. प्रो० सत्यव्रत " "
६. प्रो० वेदव्रत " "
७. पं० धर्मदेव बंगलौर "
८. प्रो० इन्द्र दिल्ली "
९. डा० सत्यकेतु " "
१०. पं० देवबन्धु " "
११. पं० वीरेन्द्र गुरुकुल वैद्यनाथ धाम "

(६) निश्चय हुआ कि स्नातकों में परस्पर अधिक सहयोग उत्पन्न करने तथा उन्हें सामाजिक जीवन के लिए प्रेरित करने के लिए यदि सम्भव और उपयुक्त समझा जाय तो एक वैतनिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाय।

(७) निश्चय हुआ कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के अधिकारी परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को 'विद्याधिकारी' का प्रमाणपत्र मिलना चाहिए।

इसके अतिरिक्त लगभग ५ घण्टों तक गुरुकुल संचालन की नीति पर भी विचार हुआ। यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया।

आप से अनुरोध है:—

१. उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में विशेषतः प्रस्ताव सं० ४ और ५ के सम्बन्ध में, अपने विचार मुझे लिखने का कष्ट कीजिए।

२. अपने सम्बन्ध की पूरी सूचनाएं (पता, कार्य, आय, दिक्कतें, रचनाएं आदि) मण्डल के कार्यालय में भेजने की कृपा कीजिए।

३. मण्डल का चन्दा, यदि आपने अभी नहीं भेजा तो भेज दीजिए।

४. यदि आप पंजाब में रहते हैं तो प्रतिनिधि सभा के सदस्य बनने का प्रयत्न बहुत शीघ्र कीजिए। इस सम्बन्ध में मण्डल के प्रधान पं० देवराज जी को इस पते पर सीधा पत्र लिखिए:—राम मैडिकल स्टोर (Opposit Bharat Building) लाहौर

५. यदि आपके यहां ४ या उससे अधिक स्नातक बन्धु हैं तो अपने यहां स्नातक मण्डल की शाखा संगठित कीजिए।

प्रश्नों का उत्तर अवश्य दीजिए।

आप का भाई—
चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार
प्रधान मन्त्री, स्नातक मंडल
१२ ए, ट्रैम्प रोड, लाहौर
२ मई १९४१

गुरुकुल

१० ज्येष्ठ शुक्रवार १९९८

हम सब बच्चे हैं

[लेखक—श्री आचार्य अभयदेव जी]

(१)

यद्यपि, सौभाग्य से या (कइयों की सम्मति में) दौर्भाग्य से मुझे इस जन्म में बाल बच्चों वाला गृहस्थी होने का अनुभव नहीं मिला है, तो भी मुझे बच्चों का बहुत अनुभव हुआ है। और शायद गृहस्थी कहलाने वाले लोगों की अपेक्षा बच्चों का बहुत अधिक ठीक और सच्चा अनुभव मिला है। क्योंकि गुरुकुल परिवार के या गुरुकुल से सम्बन्धित अन्य गृहस्थी परिवारों के बच्चों के अनुभव के अतिरिक्त मुझे बाल-बच्चों वाले गृहस्थी परिवारों में परिवार के एक अंग के तौर पर भी काफ़ी समय तक रहने का अवसर मिला है। इन सब जगह मैं निरन्तर बालकों की बाल-लीलाओं को ध्यान से देखता रहा हूं। और बालकों के बहुत से निपट अज्ञानयुक्त, अतएव भोले भाले और प्यारे व्यवहारों की, करतूतों की और बातों की छाप मेरे हृदय पर ऐसी पड़ती रही है कि उसे मिटाना कठिन है। पर यह सब बातें एक ही सीख मुझे सिखाती हैं, एक ही बात की तरफ़ अंगुलि-निर्देश करती हैं, एक ही धुन अलापती हैं—"हम सभी बच्चे हैं"।

(२)

जब मैं अपने चाचाजी के यहां रहता था तो मेरी छोटी बहिन एक दिन मदरसे से आने के बाद मौज में बोल रही थी कि "एक और एक दो,—दो और दो तीन, तीन और तीन चार"। मैंने उसे प्रेम से पुकार कर कहा "एक और एक दो तो ठीक है, पर दो और दो तीन नहीं होते, दो और दो चार होते हैं- अतः ऐसे बोलो 'एक और एक दो, दो और दो चार'। पर वह नहीं मानी, पहिले की तरह दो और दो तीन बोलने लगी। फिर मैंने टोका और आकर बोला 'दो और दो चार'। पर वह झुंझला कर बोली 'भाईजी तुम तो हमें भुलाते हो' मास्टर जी जी ने हमें यही बताया है 'दो और दो तीन।' मैंने कहा मास्टर जी ने "दो के बाद तीन, और तीन के बाद चार" ऐसा कुछ कहा होगा। पर वह मेरी बात मानने को तैयार न था, क्योंकि वह मदरसे में मास्टरजी जी से पढ़कर आई है इसका उसे उचित (मदरसे जाने के गौरव को मानो बालक को शोभा देने वाला) अभिमान था और ऐसा ही पढ़कर आई है इसका उसे पूरा आत्म विश्वास था। फिर मैंने उसे तरह तरह बाबा तरह से समझाया कि "दो और दो चार होते हैं।" उसी समय कुछ कंकरियां इकट्ठी करके दो कंकरियां उसके हाथ में दीं और दो अपने हाथ में लीं और फिर उसे कहा कि 'दो ये और दो ये, अब इन सब को गिनो।' उसकी गिनती में जब चार ग्रह हुई तो उसने यह कहकर कि "भाई जी, तुम तो गड़बड़ कराते हो" वे सब कंकरियां फैंक दीं। मैंने फिर मौका पाकर एक बार चार लड्डू लेकर, फिर चार रुपये लेकर उसे तथा उसकी छोटी बहिन को बांटकर उसे प्रत्यक्ष कराना चाहा कि दो और दो तीन नहीं होते. अन्त में, यद्यपि तब भी उसने यह स्वीकार तो नहीं किया कि उसका कहना ठीक नहीं है. मुझे यह साफ़ दीखने लगा कि अब वह वस्तुतः ऐसा अनुभव कर रही है कि मानो उसके ज्ञानाभिमान को बड़ा भारी धक्का पहुंचा है और वह इस सदमे के कारण दुःखी है।

मैं सोचने लगा, क्या हम सब की ही ऐसी ही हालत नहीं है ? हमने भी जब किसी सिद्धान्त को विरकाल से बिल्कुल सत्य या अटल माना हुआ होता है तब यदि कभी ऊंचा ज्ञान पाने पर या कहीं से अधिक ज्ञान प्रकाश की किरणें पड़ने पर उसमें कुछ ग़लती मालूम पड़ती है तो हम उसे सहसा स्वीकार करने को तैयार नहीं होते, उस बालिका की तरह उस नये सत्य को देखना तक नहीं चाहते, किसी न किसी तरह उससे पीछा छुड़ाना चाहते हैं। पर वह जब सामने चमकने ही लगता है तो हमारे ज्ञानाभिमान को भी बड़ी भारी ठेस लगती है, आघात पहुंचता है, हम व्याकुल हो जाते हैं। उस के बाद हम उसे मजबूरन स्वीकार करना आरम्भ करते हैं। उस बालिका को जैसे अपने मदरसे जाने का अभिमान था वैसे हम अपने शिक्षणालय या युनिवर्सिटी का अभिमान होता है। हमारा मन कहता है कि हम अमुक विश्वविद्यालय के स्नातक हैं. वहां हमने अपनी समझ के अनुसार जो अपने बड़े बड़े ग्रन्थों में पढ़ा है वही ठीक है। जब हमें सत्य और ही कुछ मालूम पड़ता है तब भी हम सोचते हैं यह मैंने अख़बार में पढ़ा है, किताब में पढ़ा है, अंग्रेज़ी की पुस्तक में पढ़ा है, फ़लाने बड़े भारी लेखक एल. एल. डी. के ग्रन्थ में पढ़ा है इत्यादि; वह कैसे ग़लत हो सकती है ? "उसके पास कोई डिग्रियां नहीं, उसका अध्ययन विशाल नहीं है, वह अंग्रेज़ी नहीं पढ़ा या वह संस्कृत नहीं पढ़ा" ऐसे विचार मन में लाकर हम आते हुए स्पष्ट सत्य को भी ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं। यह हमारा बालकपन ही तो है।

(३)

इसी तरह कन्या गुरुकुल में एक बहिन प्रथम श्रेणी में पढ़ती थी। हम उनसे मिल रहे थे सो देवराज जी सेठी ने पूछा "सरला ! तू पढ़कर क्या करेगी ? उसका सरल सा बिना बनावट का उत्तर था "पढ़ कर मैं बहिन जी की तरह ऐनक लगाऊंगी।" हम सब हंसे—मेरी सगी बहिन स्वर्गीया वेदवती (जिसे वह बहिन जी करके पुकारती थी) ऐनक लगाती थी, और काफ़ी पढ़ी थी, सो उसने भी सोचा कि पढ़ने का परिणाम यही होता कि मुझे भी ऐनक लगानी मिलेगी।

पर हम लोग—जो अपने को बच्चा नहीं समझते—अपनी शिक्षा का उद्देश्य और क्या अधिक समझते हैं ? मुझे याद है कि 'इस तक हो जाने पर हम किस वेश में

रहेंगे' इस चर्चा को चतुर्दश वर्ष की में-जब हम २३-२४ वर्ष के हो जाते हैं--काफ़ी महत्व दिया जाता था। हम या तो इस लिये पढ़ते हैं कि ऐसी माता पिता की इच्छा है या इस लिये कि सर्वत्र चलता है तो कुछ उपाधि तक ही पढ़ लो, उपाधि काम आयेगी। स्नातक, ग्रेजुएट हो जाने से कुछ इज़्ज़त बढ़ जाती है, या पेट पालने का आर्थिक सहारा हो जाता है अथवा इस इच्छा से पढ़ते हैं कि पढ़कर रुपया कमायेंगे, मौज करेंगे, ऐश करेंगे।

इस मौज और ऐश करने को या पढ़े लिखे होने के रौब से रहने को ही उस बालिका ने ऐनक लगाने के बहाने से कह दिया और सरलता से अपने असली आन्तरिक भाव को सच्चा, सही और सीधा कह दिया। हम लोग प्रायः ऊपर से कहना सीख गये हैं कि 'हम देश सेवा करेंगे या जनता जनार्दन की सेवा करेंगे, या वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे' पर या तो हम इनका अर्थ नहीं समझते या केवल रिवाज़ के तौर पर ऐसा बोलते हैं-- अन्दर की इच्छा यही होती है कि हम पढ़ कर ऐश मौज करने में या अन्य बे-पढ़े या कम पढ़ों पर रौब गांठने में एक हद तक समर्थ हो जायंगे इसी लिए अन्त तक पढ़ते हैं।

वैसे भी सोचें तो जिन जिन भी इच्छाओं से प्रेरित होकर हम पढ़ते हैं, क्या उन में से कोई भी वस्तुतः ऐसी होती है जो उस बालिका की ऐनक लगाने की इच्छा से वस्तुतः अधिक महत्व की हो ?

(४)

एक मज़ेदार बात सुनाती हूँ। एक बार रेल पर पहुँचने के लिये लगभग रात भर की यात्रा बैल गाड़ी पर करनी थी। साथ में एक बालक था। उसने शाम को भर पेट मिठाई खाई। क्योंकि लम्बी यात्रा के लिये घर से भोजन और मिठाई काफ़ी मात्रा में बना कर ले चले थे। प्रातः काल उसे शौच जाने की हाजत हो रही थी पर वह शौच नहीं जाता था। उसे रोक रहा था। पीछे से इसका कारण मालूम हुआ। कारण यह था कि बच्चा समझता था कि यदि वह शौच चला जायगा तो उसकी खाई हुई मिठाई निकल जायगी। इसी भय से वह शौच के लिये उठता नहीं था।

हम इस पर हंसेंगे। परन्तु मैं तो देखती हूँ कि हम दाढ़ी-मूंछ वाले बड़े बड़े बालक भी ऐसा ही करते हैं। एक-आध मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्यों के बड़े बड़े समुदाय तक ऐसा ही करते हैं। जिन रीति रिवाज़ों या प्रथाओं की अब ज़रूरत नहीं रही, जिनका काल व्यतीत हो चुका, जो अर्थ हो चुकी उससे प्रेम रखना, उसको त्यागते हुए दुःख होना ऐसा ही नहीं है तो क्या है? एक ब्राह्मण अपने को पवित्र मानता हुआ ईमानदारी के साथ यह समझता है कि यदि वह अछूत समझे जाने वाले किसी व्यक्ति से छू जायगा तो उसका कई जन्मों का कमाया हुआ पुण्य नष्ट हो जायगा। स्पर्शास्पर्श किसी काल की किन्हीं अवस्थाओं में किसी अंश में उपयोगी होगा। पर अब भी उसे उसके वर्तमान रूप में न छोड़ना, उसको छोड़ने में धर्म के नष्ट हो जाने का भय होना ऐसा ही है जैसा कि उस बालक को मल त्याग करने में यह भय था कि इससे खाई हुई उसकी प्रिय मिठाई नष्ट हो जायगी। नहीं तो मिठाई का मिठाईपन तो, उसका स्वाद और आनन्द तो तभी ख़त्म हो गया जब वह गले के नीचे उतर चुकी, जबकि वह जीभ का विषय नहीं रही। परन्तु अज्ञान और मोह के वश बालक उसके बाद भी, उसके जीर्ण रूप को भी छोड़ना नहीं चाहता। 'पवित्र' हिन्दू मुसलमानों के छू जाने से, उसके साथ अपने बर्तन का स्पर्श हो जाने पर आज भी अपने को भ्रष्ट हुआ मानता है। किसी समय जब मुसलमान लोग आक्रान्ता के रूप में भारत वर्ष में आये थे तब उनसे असहयोग करने के तौर पर कुछ ऐसी बातें शुरू हुई होंगी, पर अब इन बातों का क्या मतलब, जबकि हिन्दू और मुसलमान एक समान गुलामी का जीवन बिता रहे हैं? हम आर्य समाजी पुरानी निर्जीव रूढ़ियों के तोड़ने वाले हैं। पर हम अपने विषय में भी पूछ सकते हैं कि ऋषि दयानन्द के समय में खण्डन की जैसी ज़रूरत थी उसका इस समय क्या मतलब है? बात यह है कि जब अज्ञान, मोह, और तामसिकता का ज़ोर होता है तब सड़ी हुई, बीती हुई और त्यागने योग्य वस्तु को भी छोड़ते हुए भय होता है। हम समझ रहे होते हैं कि हम किसी बड़ी ही काम की चीज़ को छोड़ रहे हैं और इसके छोड़ने से हमारा नाश हो रहा है।

('अगले अंक में समाप्य)

वेद और राष्ट्र धर्म

[लेखक—प्रो० नं० धर्मपाल]

[३]

"प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्
द्रोणाहावं अवतमश्मचक्रं सिञ्चत नृपाणम्।"
(प्रीणीत अश्वान्-)अश्वों को तृप्त रखा करो। (हितं जयाथ) हितकर विजय प्राप्त किया करो। (रथमित्कृणुध्वम्-)रथ बनाया करो जो कि (स्वस्ति वाहं-)अच्छे ढंग से वहन करने वाला हो। (अवतं सिञ्चत) गढ़े को पानी से भरो, (द्रोणाहाव) लकड़ी का टब जिस के पास पड़ा है (अश्मचक्रं)पत्थर को जिस में चर्खी है, (अंसत्र कोशम)-कंधे का त्राण करने वाले बख्तर की तरह का जिस में डोल पड़ा है—

"व्रजं कृणुध्वम् स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि पुरः कृणुध्वं आयसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहतातम्-"
(व्रज कृणुध्वम्) गौशाला बनाया (स हि वो नृपाणो) वह तुम्हारी रक्षा करने वाली है, (वर्म सीव्यध्वं)-कवच सीया करो (बहुला) बहुत हों और (पृथूनि) बड़े २ शरीरों में आ सकें। (पुरः कृणुध्वम्)-नगर बनाया करो, (आयसीः) लोहे के समान दृढ़ हों और (अधृष्टा)-शत्रु से दुर्धर्षणीय हों-(चमस) चमचा ऐसे हों मा (सुस्रोत)-जिनमें छेद न हों।

"परिवृजश्च दश कक्ष्याभि, उभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त" दस पेटियों से वस्तुओं को पकड़ा करो। दोनों धुराओं में वह्नि को जोता करो अर्थात् Motor का निर्माण करो।

इस प्रकार वेद में राष्ट्र की उन्नति के लिये नाना प्रकार के उद्योगों का वर्णन है— इंजिन जहाज़ का वर्णन तो स्पष्ट ही है—

"देवाः कपोतः इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे"— ।

यहाँ (क अत्यस्य पोतः अलयान इति) स्पष्ट तौर से अतीव जहाज़ का वर्णन पाया जाता है। और जहाज़ दूसरे देश पर आक्रमण करने के लिये आता है।

इस प्रकार अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए तथा अन्य राष्ट्र पर आक्रमण की सामग्री को जुटाने के लिए राजा का आवश्यक कर्तव्य है कि राष्ट्र में उद्योगों का जाल बिछा दे। परन्तु इस उद्योग शाला की उन्नति या अपकर्ष शासन के प्रकार पर भी निर्भर है। वेद में भिन्न शासन संस्थाओं का वर्णन है।

"स्वस्ति साम्राज्य भौज्यं स्वराज्यं वैराज्यम् पारमेष्ठ्यम् राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौम सार्वायुष आंतादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्र पर्यंताया एकराडिति"॥

यह ऐतरेय ब्राह्मण का वचन है। इस में कई प्रकार के राज्यों का परिगणन किया है। इन में से (१) भोज्य (२) साम्राज्य (३) महाराज्य राज्यविस्तार सम्बन्धी तीन भेद है तथा (१) वैराज्यं (२) राज्यं (३) आधिपत्यमय राज्यं (४) सामन्त पर्यायी राज्यं (५) स्वराज्यं राज्य शासन विषयक ५ भेद हैं। पूर्वोक्त तीन राज्यों के उत्तरोक्त पांच प्रकार हो कर कई प्रकार की राज्य व्यवस्था होना सम्भव है। उस का स्पष्टी करण देखियेः—

(१ भोज्यम्- निसर्ग निर्मित भूभागों में जो राज्य रहता है उसे भोज्यं कहते हैं। राज्यविस्तार अर्थात् साम्राज्य निर्माण से यह पहले की अवस्था है।

(२) साम्राज्यम् 'समित्येकी भूतं राज्यं साम्राज्यम्' एक भोज्य का राजा अन्यों को पादाक्रांत कर के जब एक संगठित राज्य बनाता है, वह साम्राज्य नाम के योग्य होता है।

(३) 'महाराज्य'-जब साम्राज्यान्तर्गत भोज्यों का स्वरूप नष्ट हो जाय तो भोज्य समुदाय को महाराज्य कहते हैं।

शासन के पांच प्रकार देखिएः—

(१) वैराज्य शासन व्यवस्था (वि० विरुद्ध-राजकं वैराज्यम्) राज्य के बिलकुल विरोधी सत्ता जहां प्रधान होती है अर्थात् प्रजा तंत्र इसे कह सकते हैं।

(२) राज्यम् (राज्ञः इदं) राजा के लिये यह। जहां राजा प्रधान होता है।

(३) आधिपत्यमय शासन पद्धति-(पतिषु श्रेष्ठ अधिपति तस्य भाव अधिपत्य तन्मयं) छोटे २ पतियों का स्वामी महापति है; जहां इन द्वारा शासन हो वह आधिपत्य-मय है।

(४) सामन्तपर्यायी = माण्डलिक राजाओं के आधीन शासन सामन्त पर्यायी है।

(५) स्वराज्यं—(स्वस्यः आत्मनः इदं राज्यं) जिस राज्य शासन के हर एक प्रजाजन का हाथ लगता है। इसे Self Government कह सकते हैं।

इस प्रकार राष्ट्र शासन के भिन्न २ स्वरूप तथा राष्ट्र के भिन्न २ स्वरूप इस की शासन व्यवस्था के अंगों और क्रियाविधि पर स्पष्टतया प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में मैंने उस का यहां उल्लेख किया है। यदि इस आधार पर राष्ट्र का ढांचा हो तो पृथ्वी पर स्वर्ग लोक उतर आयगा, यह कहने में मुझे कोई अत्युक्ति प्रतीत नहीं होती। आर्य राजाओं का कर्तव्य है कि वो इस के अनुसार कार्य कर के यशःभागी हों।

ओ३म् शान्ति, शान्ति, शान्ति,

गुरुकुल समाचार

श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू का शुभागमन

गढ़वाल में एक लम्बा भ्रमण करके "डोला-पालकी" समस्या को सुलझाती हुई श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू [प्रेजीडेण्ट अखिल भारतीय हरिजन सेवा-संघ] २१ मई की रात्रि को १०। बजे गुरुकुल पधारीं। अगले दिन प्रातःकाल आपने श्री मुख्याधिष्ठाता जी तथा श्री प्रो० विश्वनाथ जी के साथ सारे गुरुकुल का सूक्ष्मता-पूर्वक निरीक्षण किया। उत्थान की ओर गुरुकुल की तीव्र-गति को देखकर तथा नव-निर्मित भव्य-भवनों को देखकर आप परम प्रसन्न हुईं। आज रात्रि को एक विशाल-सभा में आप का भाषण होगा जिसके लिए गुरुकुल में उचित प्रबन्ध किया जा रहा है।

गुरुकुलीय राष्ट्र-प्रतिनिधि का चुनाव

हिन्दू महासभा जीत गई

पिछले दो सप्ताह गुरुकुल में अत्यन्त उत्साह व चहल-पहल का वातावरण नज़र आया। गुरुकुल राष्ट्र प्रतिनिधि सभा सं० १९९८ के प्रधान मन्त्री का चुनाव होना था। २१ वैशाख को साहित्य-परिषद् की ओर से इसकी सूचना दी गई थी। चुनाव के नियमोपनियम प्रकाशित किये गए थे। हिन्दू महासभा, कांग्रेस, तथा खाकसार दलों की ओर से सूचनापट्ट पर नये नये ढंगों से विज्ञापन होना प्रारंभ हो गया। सर्व प्रथम खाकसार दल की ओर से जलूस व सभा की गई। पहले दिन का उत्साह विकट रूप धारण कर गया था। दूसरे दिन हिन्दू-महासभा ने जलूस व सभा का आयोजन किया। सभापति के आसन पर श्री उपाध्याय वागीश्वर जी विराजमान थे। मान्य उपाध्याय जी ने सभा को अपने समालोचना पूर्ण व्याख्यान से मुग्ध कर लिया था। अगले दिन कांग्रेस की ओर से जलूस निकाला गया। सुबह से इसके लिए तैयारियां की जा रही थीं। गांधी टोपी, तिरंगे झंडे व ऊंचे बिल्ले तैयार किए गए थे। व्यंग्य चित्रों का काफी प्रचार किया गया। जलूस के बाद मान्य उपाध्याय श्रीप्रो० विश्वनाथजी के सभापतित्व में सभा का कार्य संपन्न हुआ। सबने मिलकर राष्ट्र-गीत बड़े उत्साह से गाया। इस दिन की कार्यवाही शान्ति पूर्वक समाप्त हुई। सभा व जलूस के अतिरिक्त दिन में पोस्टर, व्यंग्य तथा राष्ट्र के सम्मुख गाने के बनाए गए लाउड-स्पीकरों से प्रचार कार्य किया जाता रहा।

३ ज्येष्ठ के दिन खाकसार दल ने परेड के साथ जलूस निकाला। बाद में मान्य उपाध्याय श्री प्रो० सत्यकाम जी की

चौधरी [illegible] के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ओ३म्॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १७ ज्येष्ठ १९९८; ३० मई १९४१ [संख्या ५

स्ववीर्य-गुप्त संस्कृति

[आचार्यवर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एम.ए. डी.लिट्.]

भारतीय संस्कृति के एक समीक्षक ने वर्षों पूर्व कहा था कि भारतीय संस्कृति का विनाश यद्यपि निश्चित हो चुका है, तो भी वह जीने के लिए कृत-निश्चय है। यह विरोधाभास ध्यान देने योग्य है। यह बताता है कि इस संस्कृति में ऐसी प्राणशक्ति है जो इसके जीवन को टिकाये हुए है। भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में हमको बहुत से जड़ और मृतप्राय तत्व उपलब्ध होते हैं। ऊपर अंकित-वाक्य के पूर्वार्ध में इन्हीं मृतप्राय तत्वों की ओर निर्देश किया गया है। वाक्य के उत्तरार्ध में जो विधान प्रस्तुत किया गया है, उसमें भारतीय संस्कृति के आदर्श की ध्वनि है। किन तत्वों की सुरक्षा करनी चाहिए तथा किन का अङ्कमूल से उच्छेद करना चाहिए, इसका विवेक कौन करेगा? पुनरुत्थान केवल भूतकाल का अनुसरण या अनुकरण मात्र नहीं है। विश्वव्यापक और मूलभूत भावनाओं के ऊपर ही उसका आश्रय हो सकता है।

पुरातत्व के नवीनतम अनुसन्धानों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि हमारी संस्कृति का उद्गम सिन्धु नदी की तराई में हुआ था। इस खोज में चित्रकारी, मृतिका शिल्प के अतिरिक्त कताई और बुनाई के नमूने प्राप्त हुए हैं। संस्कृति के इन बाह्य आविष्करणों के साथ ही कुछ एक मुद्राएं मिली हैं। एक मूर्ति ध्यानस्थ शिव की उपलब्ध हुई है। उससे अपनी संस्कृति की मनोदशा सूचित होती है। अपने देश की आध्यात्मिक मनोदशा पर ध्यान का प्रभाव प्रवर्तमान था। यह हमें बताती है कि जिसने मन को जीता है वह सच्चा विजेता है। नगरों और राज्यों के विजेता उसके सामने तुच्छ हैं। संस्कृति के इस भव्य आदर्श को भारतवर्ष ने अपने जीवन में अनुप्राणित किया था। भारत के इसी आदर्श ने पुराने समय में अन्य देशों पर अपना सांस्कृतिक प्रभाव स्थापित किया था। जर्मन मनीषी मैक्समूलर ने कहा था कि यदि हमें संसार की पुरानी से पुरानी पोथी देखनी पड़े तो हमको ऋग्वेद पढ़ना होगा।

+ + +

ग्रीस के विचार जीवन में दो प्रकार के प्रवाह स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक बुद्धिवादी है। यह नगर राज्यों के प्रति पूज्य बुद्धि रखता है और मानव जीवन को ही केन्द्रवर्ती और महत्त्वशाली मानकर सर्वप्रकार की आध्यात्मिक विचार सरणियों को परित्याज्य समझता है। परन्तु दूसरे प्रवाह में दूसरी प्रकार की मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। प्रवाह गूढ़ और रहस्यमय (Mystic) है। तपोमय साधु जीवन और अपरिग्रह के प्रति यह अपना मस्तक झुकाता है। इस वृत्ति का प्रेरक कौन है? निःसन्देह भारतवर्ष की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विचार सरणियों ने ही इन रहस्यवादी ग्रीक तत्वज्ञानियों को प्रभावित किया था। ईसाई संप्रदाय पर भी भारतीय संस्कृति ने अपनी ऐसी ही छाप डाली है। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध और ईसामसीह के आदेशों में जो समानताएं हैं उनका स्पष्टीकरण भी इसी में से प्राप्त होता है। उसके बाद मध्ययुग में भी भारत ने अपना संस्कार-प्रभाव पश्चिम पर स्थापित किया है। × × ×

वास्को-डि-गामा ने भारत में आकर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को अनुकूलताएं प्रदान कीं। उसके बाद भी संस्कार विनिमय की प्रवृत्ति चालू रही है और भारतभूमि ने रामायण, गीता, शाकुन्तल और उपनिषदों द्वारा पश्चिम को शुभङ्कर संस्कार प्रदान किये हैं। जर्मन विचारकों की विचार क्रान्ति को निहारो, ज्यार्ज-रसल आदि आयरिश मेधावियों की प्रवृत्तियों का अवलोकन करो। किसी भी प्रकार के प्रचार अथवा धूमधाम के बिना भारतीय संस्कार संपत्ति ने बाहर के जगत् को आध्यात्मिक किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम लोग सर्व प्रकार से समान हैं और हमको अब कुछ करना नहीं रह गया है। मैं पहिले ही कह चुका हूं कि संसार के आह्वान को स्वीकार किये बिना कोई संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। जगत् के वर्तमान परिबलों ने हमारी संस्कृति के प्रति आह्वान (चैलेंज) दिया है। हमको यह सिद्ध कर दिखाना है कि हमारी संस्कृति निष्फल नहीं हुई है। इसके लिए हमें जगत् के शुभङ्कर परिबलों को आत्मसात् करना होगा। परदेशी परिबलों का विरोध करने मात्र से काम नहीं चलेगा। हमें उनको अपनी संस्कृति में एकरस बनाकर समाविष्ट करना होगा। हमारी संस्कृति का इससे विजय ही होगा क्योंकि हमारी संस्कृति स्वयं पर्याप्त है—स्ववीर्य-गुप्त है।

अनुवादक—शंकरदेव विद्यालंकार

रामेश्वरी देवी नेहरू का भाषण

['गुरुकुल' के गत अङ्क द्वारा पाठकों को यह विदित हो चुका है कि अ. भा. हरिजन सेवा संघ की प्रधान श्री मती रामेश्वरी देवी नेहरू गुरुकुल में पधारीं थी। गुरुकुल की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने जो भाषण दिया उसे हम पाठकों की जानकारी के लिए नीचे प्रकाशित करते हैं। ——सं०]

"मारुडले में स्वामी श्रद्धानन्द जी से सुना था कि ब्रह्मचारियों ने शोर मचा दिया तभी से इस संस्था को देखने की इच्छा थी। मेरी यह इच्छा अर्से के बाद आज पूरी हुई है।

साधारणतया ऐसा समझा जाता रहा है कि गुरुकुल प्राचीनता का प्रेमी है और यह प्राचीन युग को लायगा परन्तु प्राचीन युग पूरे तौर पर नहीं लाया जासकता, उसमें अच्छे के साथ बुरे पहलू भी थे। तब से अब तक स्थितियां भी बहुत बदल गई हैं अतः प्राचीन युग सर्वांश में नहीं लाया जा सकता। मैंने दिवस भर के अपने गुरुकुल निरीक्षण में देखा है कि आपने बिजली का उपयोग किया है, उससे पानी निकालते हैं, मशीनें चलाते हैं। हस्पताल में आपरेशन के लिए पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र का उपयोग करते हैं, पाश्चात्य विद्याओं का अध्यापन करते हैं। इस प्रकार आपने प्राचीन और अर्वाचीन का सुन्दर समन्वय किया है।

आप सब खादी पहनते हैं, सादा जीवन बिताते हैं यह उपयुक्त ही है। गरीब देश में अमीराना ठाठ-बाठ अच्छा नहीं लगता, इससे विषमता पैदा होती है, साथ ही अमीरी जीवन से विलासिता भी आती है। सच्ची सेवा का कार्य भी अमीरी में नहीं हो सकता। खादी और ग्रामोद्योगों से ही अहिंसा चल सकती है। मिलों से प्रारम्भ से ही बेकारी पैदा होती रही है। व्यावसायिक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में लाखों कारीगर बेकार हुए। मिलों के कारण ही साम्राज्य-वाद बढ़ता है जिसका अन्त युद्धों में होता है। गत महायुद्ध साम्राज्यों के बाज़ारों के लिए लड़ा गया था तथा उसके अन्त में हुई वार्साई की सन्धि ने वर्तमान युद्ध की जड़ जमाई। युद्धों में दोनों ही पक्षों में डिक्टेटरशिप और हिंसा का प्रचार किया जा रहा है। मिलों के साथ हिंसा जुड़ी हुई है यह बात स्पष्ट है। रूस में सार्वजनिक सञ्चालन में मिल व्यवसायों को चलाने का विचार है पर वहां पर भी हिंसा का पूरा भरोसा किया जाता है और उसे अपनाया गया है। ताताननगर में और मैसूर की सोने की खान आदि में बिना आदमी के मैशीनरी जिनों, भूतों, और देवों की तरह कार्य कर रही है। अहिंसा की दृष्टि से खादी और ग्रामोद्योगों का प्रचार ही आवश्यक है। अहिंसा को ध्यान में रखते हुए ही उपयोगी यन्त्र भी अपनाए जा सकते हैं।

आर्यसमाज में हरिजनों के प्रश्न को छेड़ना ठीक नहीं। स्वा० दयानन्द, श्रद्धानन्द, ला० लाजपत राय जैसे आर्यसमाजी ही हरिजन सेवा के मुख्य कार्यकर्ता रहे हैं। मैं इतना ही कहना चाहती हूं कि अब तुम लोग स्नातक बनकर जाओ तो सनातनी भाइयों को भी हरिजन सेवा के लिए प्रेरणा करो।

सब से अन्त में मैं जिस पर बल देना चाहती हूं वह यह है कि हिंसा छोड़ते हुए डिसिप्लिन (नियन्त्रण) का पालन करो। तुम ड्रिल करो, स्काऊट बनो, समय पालन पर बल दो, तुम्हारे सब व्यवहारों में सेवा की भावना के साथ २ सैनिक नियन्त्रण हो, इससे तुम्हारे कदमों में दृढ़ता आयगी तथा विचारों में बल आयगा।

अन्त में—तुम सब ने शान्ति पूर्वक मेरा भाषण सुना है उस के लिए धन्यवाद करती हूं।"

——o——

स्वतन्त्रता

(ले० श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार)

आज कल वर्तमान भारत में हमारे पूज्य आदरणीय महात्मा गांधी जी के विचारों का बहुत प्रभाव है। आज स्वतन्त्रता शब्द का नाद चारों ओर सुनाई दे रहा है। जो आर्यसमाजी अपनी संस्था का राजनीति से सम्बन्ध नहीं मानते थे वे भी आज राजार्य-सभा स्थापित कर रहे हैं। कांग्रेस की ओर झुके आर्यसमाजी "राष्ट्रवादी दयानन्द" के समान पुस्तकें लिख रहे हैं। मौलवीमौलाना आज देश से सम्बन्धित मामलों को धार्मिक जामा पहना रहे हैं। दाढ़ी, कपड़े, भाषा, सभ्यता एवं संस्कृति का देश से सम्बन्ध है। धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु तो भी इन बातों का सम्बन्ध इस्लाम से समझा जा रहा है। यहां की सभ्यता, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य की निन्दा करने वाला ईसाई, जो नाम, वेशभूषा, भाषा, सभ्यता एवं इस देश की संस्कृति भी धर्म के साथ छोड़ चुका था, आज राष्ट्रीयता के भावों की घोषणा कर रहा है। सम्प्रदाय कर जैसे सरकारपरस्त लोग देश की स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। देश की आजादी में अटकने वाले रोड़ों को कूट कर सुन्दर राजपथ बना देना चाहते हैं। इतनी प्यारी स्वतन्त्रता लाखों लाखों बलिदानों तथा त्यागों के बाद अबभी हम से दूर है, यह भावना सभी स्वतन्त्रता प्रेमियों में दिखाई देती है। मैं तो इसका एक ही उत्तर दूंगा, वह यह है कि हम प्राचीन संस्कृति से दूर हो गए हैं। अन्यथा हम जिस प्राचीन संस्कृति के इस मनोहर शब्द को बार २ चिल्लाते हैं, उसे हम कुछ समझते भी। 'स्वतन्त्रता' शब्द के अर्थ में प्राचीन संस्कृति ने इस शब्द का इतिहास, विकास एवं भाव व्यक्त कर दिया है। 'स्वस्थ-स्वधर्म, स्वतन्त्रता आदि शब्द जिस संस्कृति ने प्रदान किये हैं—वह अमर रहेगी। हमारे भरोसे नहीं, किन्तु नित्य सत्य का परिचायक होने की वजह से, वैज्ञानिक व साइन्टिफिक या वैदिक सत्य होने की वजह से। हमारी आत्मा को गायत्री मन्त्र का उपदेश करने वाली संस्कृति "इयं आत्मा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यः" अथवा, "तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्" निर्वाण, मोक्ष या स्वतन्त्रता का नाद गुंजाती हुई अपने

अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचाता है। स्वतन्त्रता प्रेमी स्वतन्त्रता को अपने से बाहर समझता है। जिन सचाईयों को, "नियमों को चलाने का हक मैं पाना चाहता हूं। उन को ठीक या सच क्यों मानता हूं? उत्तर एक ही होगा-अपने दिल या आत्मा में जंचने के कारण। इस प्रकार (स्व = आत्मा, तन्त्र = राज्य) आत्मा की इच्छा की प्रबलता ही स्वतन्त्रता का मूल है। यही गायत्री मन्त्र सिखाता है। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" भी यही पाठ पढ़ाता है। अर्जुन या कृष्ण ने इस स्वतन्त्रता के लिये ही युद्ध किया। वाशिंगटन, गेरीबाल्डी लेनिन, की तरह भारतीय अवतारों ने भी यही स्वतन्त्रता का नाद सिखाया था। सुकरात का विषपान ईसा की सूली, मुहम्मद की हिजरत, तेग-बहादुर का शीश दान इसी स्वतन्त्रता के लिये होने वाले अमर युद्धों की याद है। राम की विजय, राजा के वेतन भोगी सैनिक राक्षसों पर, एक उद्देश्य लेकर लड़ने वाले वानरों की विजय का सूचक है। नैपोलियन की विजय राज्यक्रान्ति में उत्पन्न जोश में भरे फ्रांसिसियों की वीरता का परिचायक, और हार, जोश की जगह नैपोलियन को समझने का परिचायक है। किसी जाति का नेता पानी में बहते लट्ठ के समान धारा की दिशा बताता है। सच है तो यही है। "ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशे अर्जुनतिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ यह सत्य (ईश्वर) अपने प्रेम में सदा मनुष्य समाज को खींच कर क्रान्ति और स्वतन्त्रता को जन्म दिया करता है। इसी को वेद ईश्वर, कोई कर्त्तव्य बुद्धि, कोई स्वतन्त्रता समझ कर अपना रास्ता निश्चित करते हैं मैं अपनी Conscience या अन्तरात्मा की आवाज को नहीं ठुकराता तभी धर्मात्मा, स्वतन्त्रता प्रेमी, कर्त्तव्य-परायण बना रह सकता हूं। सूर्य के प्रतिबिम्ब को भिन्न २ नदियों में देख कर या स्वतन्त्रता, कर्तव्यपरायणता या धर्म का भेद देखकर उस एकता का विचार भुलाना नहीं चाहिए। आज धार्मिक क्षेत्र की सेवा या राष्ट्रीय क्षेत्र की सेवा में कई भेद समझते हैं। "राष्ट्रवादी दयानन्द" पुस्तक पढ़ कर इस मौजूद भ्रम की साक्षी ढूंढने की जरूरत नहीं रह जाती है। पुस्तक लेखक आर्यसमाज को गांधीवादी बनकर देशसेवा में लगने की सलाह देते हैं। इस से भी स्पष्ट होता है, कि वे आर्यसमाज तथा कांग्रेस को भिन्न पथ पर न समझ कर विरोधी पथ पर समझ रहे हैं।

आशा है, कि, मेरा लेख लोगों को इस भ्रम से छुड़ा देगा। स्वामी दयानन्द जी की राष्ट्र भक्ति जिस हद तक आर्यसमाजियों को अपनानी चाहिये थी। अभी तक वे उससे दूर हैं। स्वामी जी ने स्वतन्त्रता 'चतुर्मुखी-क्रान्ति का बीज' आत्मिक जागृति को समझा था। उसमें वैयक्तिक कुगुण एवं सामाजिक कुरीति का ही विनाश नहीं होता किन्तु राष्ट्रीय उन्नति में मौजूद बाधायें भी विनष्ट हो जाती हैं। अपने जाति भगड़ों को कायम रखने वाले कभी भी पाकिस्तान का उत्तर नहीं दे सकते। हिन्दुसभा का प्रचार मुस्लिम लीग का समर्थक है, न कि विरोधी। उसी प्रकार मुस्लिम लीग का प्रचार हिन्दुसभा का समर्थक है, न कि विरोधी। गाली का जवाब गाली से देने वाले मूर्ख के समान गलती है। इसी प्रकार आर्यसमाजियों में कुछ हिन्दुसभावादी हैं, कुछ गांधी या कांग्रेसवादी। ये दोनों आर्यसमाज के सत्य को बिना समझे बूझे बिगाड़ रहे हैं। हिन्दुसभा वाले आर्यसमाज को हिन्दुओं का दल बनाने में सहायक बनाना चाहते हैं। परन्तु आर्यसमाज हिन्दुओं में सत्य प्रचार द्वारा जागृति चाहता है। वैयक्तिक एवं सामाजिक बन्धनों से स्वतन्त्रता दिलाना चाहता है। कांग्रेसी आर्यसमाज के प्रचार में राष्ट्रीयता नहीं देखते। उनको गांधी जी की तरह स्वतन्त्रता के लिये उत्कट प्रेम पैदा होने पर 'हरिजन आन्दोलन' की आवश्यकता प्रतीत होगी या समाजवादियों की तरह गरीबी और अमीरी सत्य (ईश्वर) के विरुद्ध दिखाई देगी।

आर्य शब्द का अर्थ उन्नति शील अर्थात् अपनी गलती को समझने वाला। "यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः" इस धर्म को मानने वाला है। उन्नति करे-तो, किस दिशा में? उत्तर है-अविद्या-गरीबी (अभाव) या परतन्त्रता (अन्याय) का विनाश या विद्या आदि की स्थापना। इन में से किसी एक भी सामाजिक आवश्यकता को पूरा करने वाला आर्य कहाता है। सहायता करने वाला अनार्य तथा विरोधी दस्यु नाम वाला होता है आज कांग्रेस, आर्य समाज, समाजवाद तीनों को इस आर्यत्व की माला में देख कर मैं तो आर्य समाज को अपने सिद्धान्तों की विजय के साथ सफल होते देखता हूं। इन में कोई संस्था न तो, पुरानी सचाई पर जोर दे रही है-न नयी पर। किन्तु नित्य सचाई (ईश्वरीय नियम) या स्वतन्त्रता पर जोर दे रही है। यह भ्रम जरूर है, कि, कोई सचाई को पुराना समझता है, कोई नवीन। यह सचाइयां किसी देश की भी नहीं। तो भी कोई भारतीय प्राचीन सत्य, कोई भारतीय नवीन- (गांधी) सत्य, कोई भारतीय, कोई रूसी इसप्रकार अपनी२ समझ के अनुसार मानते चलते हैं। किन्तु स्वतन्त्रता अपनी आत्मा के अनुकूल सचाइयों को सत्य-मानने के सिवाय किसी दूसरी वस्तु का नाम नहीं है। अतः आत्मा में जिस सत्य का दर्शन होता है, उसे आप-ईश्वर, धर्म, गांधीवाद-समाजवाद कुछ भी नाम दें। वह स्वतन्त्रता की एक छाया होगी। इस स्वतन्त्रता को अपने से दूर ढूंढने की जरूरत नहीं। वह आपके दिल में मौजूद है। इसको दबाना आत्म हत्या है। इसी को 'यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः' इस वाक्य द्वारा वेद ने साफ किया है,

गुरुकुल

१७ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९८

हम सब बच्चे हैं

[लेखक—श्री आचार्य अभयदेव जी]

(५)

मेरी बहिन का नाम बुद्धिमती था। मेरे पिता जी तथा अन्य सब बड़े लोग उसे बुद्धि बुद्धि कह कर पुकारते थे। यह मालूम हो जाने के बाद एक और बालक की, मेरे भानजे की, एक बात सुनिये! वह एक बार ज्वालापुर महाविद्यालय के आचार्य पूज्य स्वामी शुद्ध बोध तीर्थ जी के यहां गया। बात चीत में उसकी कुछ नासमझी की बात देख कर स्वामी जी बोल पड़े "तेरी बुद्धि कहां गई है" उसने झट से उत्तर दिया "वे घर पर हैं"। सब लोग हंस पड़े।

पर मैं पूछता हूं कि क्या बड़े बड़े विद्वान ऐसा ही नहीं करते? विशेषतया वेद के विषय में क्या पश्चिमी विद्वान ऐसा ही नहीं करते हैं? मेरे भानजे ने यही किया न कि उसने "बुद्धि" इस भाव वाचक संज्ञा को व्यक्ति-वाचक संज्ञा में ले लिया। भाव की अपेक्षा व्यक्ति स्थूल चीज़ होती है और बालक के लिये सुग्रह होती है। परन्तु हमारे ये पश्चिमी विद्वान भी क्या वेद में आने वाले शब्दों का यथा शक्ति व्यक्तिवाचक अर्थ ही नहीं लेते हैं? आज जो यजुर्वेद के एक अध्याय का पाठ किया गया है उसमें भी 'पतङ्ग' और 'विश्व कर्मा' यह दो ऐसे शब्द आए हैं जिनका कि अर्थ पश्चिमी विद्वान यही करेंगे कि इस नाम के कोई ऋषि व्यक्तिविशेष थे उनका ही यह वर्णन है, 'पतङ्ग' का अर्थ गति-शील और 'विश्व-कर्मा' का अर्थ 'यह सब जगत जिसकी कृति है ऐसा एक देव' नहीं करेंगे।

(६)

एक बार देहली में एक मित्र के यहां ठहरा हुआ था। ऊपर जहां बाल बच्चे रहते थे वहां एक बड़ा दर्पण रक्खा हुआ था। एक बाहर के बालक ने उस दर्पण में अपनी प्रतिछवि देखी तो वह समझा कि कोई दूसरा बालक आ गया है। उसने उसे परे हटाने को अपना हाथ उठाया तो दर्पण में दीखने वाले बालक का भी हाथ उठा। बच्चे को आगे बढ़ने से रोक दिया गया नहीं तो कुछ उपद्रव हो जाता। इस पर उन गृहस्थ महानुभाव ने सुनाया कि एक चिड़िया इस दर्पण के आगे आकर दर्पण में दीखने वाली दूसरी काल्पनिक चिड़िया से अपनी चोंच मार २ कर कई दिनों तक लड़ती रही है। उसकी चोंच पर भी चोट पहुंची तो भी उसका यह भ्रम नहीं मिटा कि उससे लड़ने वाली वास्तव में और कोई दूसरी चिड़िया नहीं है।

पर क्या हम भी रोज़ ऐसा ही नहीं करते हैं? क्या हम दूसरे व्यक्ति को उसके शुद्ध रूप में देखते हैं? देख सकते हैं? क्या हम उसे अपने मन के बनाए हुए काल्पनिक रूप में ही नहीं देखते? अथवा, यों कहें, अपने मन के प्रतिबिम्ब भूत-रूप में ही हम उसे नहीं देखते? यदि तुम्हें आज पता लगे कि अमुक गोपाल नामक व्यक्ति मेरी निन्दा करने वाला हो गया है तब तुम उसी क्षण से गोपाल को एक परिवर्तित रूप में देखने लगोगे, उसने चाहे तुम्हारी निन्दा कभी न की हो, परन्तु यदि तुम्हारी ऐसी समझ हो गई है तो तुम्हें वह नए रूप में दीखेगा। असल में तुम अपने मन के प्रतिबिम्ब को ही उसके अन्दर देखते हो उसे नहीं देखते। और बहुत से लड़ाई झगड़ों का मूल ऐसा ही होता है। किसी व्यक्ति को दुश्मन दिखाने वाली तुम्हारी ही अपनी दुश्मनी की मनोवृत्ति होती है न कि वह व्यक्ति। इस तरह बहुधा हम अपने मन का ही प्रतिबिम्ब दूसरे में देखते हैं और उस पक्षी की तरह व्यर्थ में ही बेचैन बने रहते हैं और अपना ही नुकसान करते जाते हैं।

जब हमने किसी को दुश्मन समझ लिया तो फिर उसके प्रत्येक कर्म को हम उसी अर्थ में लेते हैं, दुश्मनी के भाव से प्रेरित ही समझते हैं। यह ऐसा ही है जैसा कि उस बालक ने अपने हाथ उठाने के प्रतिबिम्ब को देख कर समझ लिया कि उसका प्रतिद्वन्द्वी बालक उसे मारने के लिये हाथ उठाये खड़ा है।

(७)

मेरे पांडीचेरी से लौटने पर प्रथम श्रेणी का एक छोटा सा बालक पूछता था कि सुना है आप बड़ी दूर पांडीचेरी गए थे। मैंने पूछा 'कितनी बड़ी दूर?' उसने कहा 'इतनी बड़ी दूर जितनी कि देहरादून है।' वह बच्चा देहरादून को बहुत दूर समझता था। इसी सिलसिले में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में पढ़े हुए एक स्नातक भाई कहते थे कि जब हम गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में बालक थे तो हम समझा करते थे कि महरौली और कुतुब ही बस दूर से दूर जगह है, मानों वहां पृथ्वी का अन्त हो जाता है।

बालकों की दूरी की इस कल्पना पर हम हंस सकते हैं। पर देश और काल की दूरी की हमारी कल्पना भी क्या अनन्त की अपेक्षा से हास्यस्पद ही नहीं है? हम कहेंगे कि पांडीचेरी दूर है, अमेरिका और दूर है, परन्तु इस पृथ्वी पर एक बिन्दु जितनी सत्ता रखने वाले हम लोग यदि यह देखें कि हमारी पृथ्वी जैसी असंख्यों पृथिवियां बल्कि सौर-मण्डल इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं और यह ग्रह नक्षत्र इतनी दूर दूर फैले हुए हैं कि वैज्ञानिक बताते हैं कि उन में से करोड़ों का प्रकाश (जबकि प्रकाश एक सैकिंड में लाखों मील की गति से चलता है) अभी तक हम तक पहुंच नहीं सका है। अध्यात्म का अनुभव करने वाले लोग बताते हैं कि यदि हमें एक बार अनन्तता का अनुभव हो तो हम उसको सह नहीं सकेंगे, उसकी महत्ता, विशालता से ऐसे घबरा जांयगे कि शायद उससे हमारी उन्माद या मरने की सी अवस्था हो जाय। उस अनन्त की दृष्टि से देखें तो हमें अपनी देश या काल

की आजकल की बड़ी से बड़ी कल्पना निस्संदेह बच्चों को सी कल्पना मालूम होगी।

(८)

गुरुकुल के एक उपाध्याय बन्धु के साथ एक दिन सायंकाल में घूमने जा रहा था। उनका एक छोटा बालक भी उनके साथ था। इतने में रेल के नहर के पुल पर से गुज़रने की आवाज़ आई। बालक ने चौंक कर कहा कि रेल आ रही है। अगले ही क्षण जब रेल की वह आवाज़ और बढ़ी तो वह बिलकुल डर गया, वह समझ रहा था कि रेल उसके ऊपर आ जायगी और वह कुचला जायगा। मुश्किल से उसको आश्वासन दिया और उसे गोद में उठाकर सुरक्षित और शान्त किया।

यह ठीक है कि उसका भय बिल्कुल निराधार था। रेल का गुरुकुल की सड़क पर आ सकना असम्भव था। पर क्या ऐसे ही निराधार और असम्भव भी नहीं हो सकते, ऐसे भयों से हम दिन रात आक्रान्त नहीं रहते हैं? निस्संदेह हमें जो नाना विध भय और आशंकाएं दिन रात सताती रहती हैं उनमें से कम से कम तीन चौथाई तो बिल्कुल ही निराधार होती हैं। बहुत सी बीमारियों और आपत्तियों को तो हम असल में केवल अपने भय के कारण ही अपने ऊपर ले आते हैं वैसे उन में कुछ भी नहीं होता। सच तो यह है कि 'परमेश्वर' के इस जगत् में कहीं पर कोई भी कुछ भी भय का कारण नहीं है। जगन्माता का सर्वरक्षक और प्रेम करने वाला हाथ सब जगह सर्वकाल विद्यमान है। पर हम फिर भी अज्ञान-वश हमेशा डरते रहते हैं। एवं भय की दृष्टि से भी हम सब बालक ही हैं। भेद इतना ही है कि बचपन में भय और प्रकार के होते हैं और बड़े हो जाने पर ये कुछ दूसरे प्रकार के हो जाते हैं। पर जैसे ४ वर्ष का बच्चा योंही भयभीत होता और रोता है वैसे ही हम भी निष्कारण डरते और रोते चिल्लाते हैं।

(९)

आज जो दुनियां में बड़ी भयंकर सर्व-विध्वंसी लड़ाई चल रही है उसमें क्या बचपन या बच्चों की सी नादानी नहीं है? जैसे दो बच्चे पाठशाला के समय, भोजन के समय या बगीचे का काम करते समय लड़ पड़ते हैं कि तूने मेरे लिये थोड़ी जगह छोड़ी है, तूने मेरी जगह ले ली है या मेरा तो जगह यहां तक है; वैसे ही आजकल अपने अपने उपनिवेशों की यह लड़ाई है। और जब उन दोनों बालकों में बात चीत की लड़ाई से काम नहीं चलता और गुस्सा बढ़ जाता है तो वे जैसे तुरन्त भिड़ जाते हैं और गुत्थम-गुत्था हो जाते हैं और जो भी चीज़ सामने आ जाती है उसी से लड़ने लगते हैं थाली, कटोरा, तख़्ती, कलम की नोक, हाथ के नाखून आदि हर एक चीज़ का उपयोग हथियार के तौर पर ही होने लगता है वैसा ही आज दुनियां के इन लड़ाकू राष्ट्रों में हो रहा है। राष्ट्र की हर एक वस्तु को आज इसी दृष्टि से देखा जा रहा है कि उसका उपयोग मनुष्यों का घात करने में कैसे हो सकता है। वस्तुएं तो अन्य उत्तम उपयोग के लिए मनुष्य की नाना प्रकार की सेवा में आने के लिये रची गई हैं। चाकू की धार का उपयोग पेंसिल बनाना, काग़ज़ काटना, फल तराशना आदि बहुत से होते हैं परन्तु जब क्रोध आता है तब उसका उपयोग आते हुवे अपने दुश्मन की हत्या कर सकना ही एक रह जाता है। ऐसे ऐसे भयंकर—आश्चर्यजनक रूप से भयंकर काम करते हुवे भी हम बचपन से ऊपर कहां उठे हैं?

१०

बाल लीलाओं के वर्णन तो मैं और भी बहुत से सुना सकता हूं। पर वे हमारी आंख खोलने वाले हो सकें—हमें हमारा बचपन अनुभव करा सकें, इसके लिये तो ये वर्णन ही काफी हैं। सब बुराई तो यही है कि हम ज्ञान की दृष्टि से बच्चे हैं बिल्कुल अज्ञानी हैं पर फिर भी हम अपने को बच्चा समझते नहीं हैं। बच्चों की अच्छाई यही होती है कि वे अपने को बच्चा समझते हैं, स्वभावतः अपनी माता पिता की शरण में आने को तैयार रहते हैं और इस लिये रक्षा को प्राप्त करते रहते हैं। पर हम बड़े होकर बालकपन की सब अच्छाइयों को तो छोड़ ही देते हैं, बालक में जो कोमलता होती है, नई वस्तुओं के साथ एकता पाने के लिये जो लचक होती है, वेग से बढ़ने की जो शक्ति होती है, सरलता और निर्दोषता होती है, भोला भालापन होता है, वह सब तो हम छोड़ देते हैं और कठोर, न लचकने वाले, अप्रगतिशील, चालाक और कपटी बन जाते हैं। पर ज्ञान की दृष्टि से भी हम उन्नत नहीं होते, बड़े होकर अज्ञान का कुछ प्रकार भेद बेशक हो जाता है पर तत्वतः हम तब भी बालक जैसे ही अज्ञानी बने रहते हैं। इसी लिये हम इस जगत के अपने असली माता पिता को नहीं प्राप्त कर पाते, और उनकी कल्याणमयी रक्षा से सदा वंचित रहते हैं।

(११)

यदि हम बच्चे हैं ही तो क्यों न हम अपने को बच्चा ही समझें, बच्चों जैसा ही व्यवहार करें। क्योंकि हम बच्चे बनेंगे तभी हमारी जगद्व्यापिनी और सर्वशक्तिमती माता हमें पहिचानेगी, अपनायगी, और पुत्र करके स्वीकार करेगी।

मुझे तो अपने को बच्चा अनुभव करना, बच्चा कहलाना, बच्चा बनना और बच्चा रहना प्रिय है, बहुत ही प्रिय है। जब कोई मुझसे पूछता है कि 'तुम कौन हो' तो इसका जो उत्तर मेरे अन्दर से निकलता है वह तो यही होता है कि 'मैं माता का पुत्र हूं, बच्चा हूं'। इसमें तो कुछ सन्देह है ही नहीं कि यदि किसी की अभीप्सा, इच्छा और प्रयत्न यह हो कि वह 'माता का सच्चा पुत्र बने' तो वह केवल इस साधना से ही वहां पहुंच सकता है जहां किसी बड़ी से बड़ी साधना द्वारा मनुष्य पहुंचता है।

वेद में आयुर्वेद

[गुरुकुलोत्सव पर आयुर्वेद सम्मेलन में पठित]

(ले०— श्री ओमप्रकाश जी वेदालंकार)

आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व एक आर्ष वचन का उद्घोष हुआ था कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। उसका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"। इस आप्त वाक्य पर श्रद्धा और विश्वास रखते हुए जिन इने-गिने विद्वानों ने उन विद्याओं की खोज में जो थोड़ा बहुत प्रयत्न किया उसके अनुसार आज वे वेद को 'जादू का पिटारा' कहकर उसकी मज़ाक उड़ाने वालों का मुंह तोड़ जवाब दे सकते हैं और दावे के साथ यह कह सकते हैं कि वेद अध्यात्म-प्रधान या ईश्वर-परक होते हुए भी साधारण जनता लोगों के श्रद्धोत्पादनार्थ किंवा अध्यात्म शास्त्र के साधन के तौर पर अन्य शास्त्रों का भी प्रतिपादन करते हैं। जिन में दर्शन शास्त्र, समाज शास्त्र, धर्म शास्त्र, वैद्यकशास्त्र, आदि प्रमुख हैं। अल्पबुद्धि लोग वेद को 'जादू का पिटारा' कहकर भले ही अपने अज्ञ होने का परिचय दें लेकिन इन विद्वानों के इस अल्प कालिक के परिश्रम से यह कहने का पर्याप्त आधार मिल चुका है कि वेद विविध ज्ञान का एक भण्डार है।

आज इन्हीं विद्वानों की सहायता एवं कृपा का ही फल समझिये कि आज सम्मेलन में एक Layman या आयुर्वेद का विद्यार्थी न होते हुए भी मैं 'वेद में आयुर्वेद' का बीज दिखाने का प्रयत्न करने लगा हूँ। अपने प्रयत्न में सफलता की कोई आशा न रखते हुए भी मुझे इस बात का अत्यधिक खतरा है कि मेरे वक्तव्य में कुछ ऐसी बातें भी होंगी जो आप जैसे लोगों की दृष्टि में निराधार प्रलपन एवं हास्यास्पद हों और ऐसी आशा करना आपके लिए स्वाभाविक भी है। परन्तु मुझे इस बात की भी पूर्ण आशा करनी चाहिये कि आप मेरी सीमाओं का ध्यान रखते हुए मानवीय स्वभाव के आवश्यक भाग प्रवीणता-वृत्ति से शासित न होकर सहानुभूति पूर्वक मेरा साथ देंगे।

पूर्व इसके कि आयुर्वेद विषयक कुछ वेद मंत्रों द्वारा वेद को आयुर्वेद का आधार या उद्भव स्थान सिद्ध करके आयुर्वेद का गौरव बढ़ाया जाय हमारे लिये यह आवश्यक होगा कि आयुर्वेद शब्द का ठीक ठीक अर्थ जान लें या उसका सीमा बन्धन कर लें। 'आयुर्वेदः' या 'आयुरनेन विन्दति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सारा ही आयु विषयक ज्ञान एवं चिकित्सापद्धतियां चाहे वे किसी भी देश और काल से सम्बद्ध हों आयुर्वेद कही जा सकती हैं। किंतु सुना यह जाता है कि स्वयम्भू ने अथर्ववेद के उपांगरूप में आयुर्वेद का निर्माण किया और उसमें बीज रूप से रखा हुआ ज्ञान चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थ के रूप में वृक्षाकार में परिणत हुआ। यह ठीक हो या न हो लेकिन आज कल यह दोनों ग्रन्थ ही 'आयुर्वेद' शब्द से गृहीत होते हैं। और कुछ भी हो हमें घबराने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि वेदों में नाना चिकित्सा पद्धतियों का संक्षिप्त या विशदरूप से मिलता है और इस लिये जिस सरलता एवं स्पष्टता के साथ चरक सुश्रुत रूप आयुर्वेद का बीज वेदमंत्रों में दिखाया जायेगा उसी प्रकार वेद में अन्य नाना चिकित्सा-पद्धतियों का वर्णन देखने से यह भी अनुमान कर सकते हैं कि आयु विषयक सारा ही ज्ञान वेद में बीज रूप से निहित है। और वेद इन पद्धतियों के ज़रिये हमें स्थूल से स्थूल तत्व की ओर ले जाने का यत्न करता है।

इन नानाविध प्रचलित चिकित्सा प्रणालियों का वैदिक मूल दिखाने से पहले ज़रा यह भी देखिये कि चिकित्सा में वैद्य का चरक ने जो आदर्श "श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता। दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम्" इस श्लोक द्वारा उपस्थित किया है उसका मूल भी वेद में ही है उदाहरण के लिये ऋग्वेद में कहा है—

"वैद्य या चिकित्सक—अपने विषय में दक्ष, रोग निवारक, समस्त औषधि का संग्रह करने वाला, रोगबीज नाशक तथा रोगविमर्दन चतुर होना चाहिये।" जो धनार्थी लोग साइनबोर्ड लगाकर इस दैवी कार्य को राक्षसी पेशा बना रहे हैं वेद भगवान् उनसे बचने का आदेश करता है इस विषय में यजुर्वेद के १६ वें सूक्त का ५ वां मन्त्र भी देखने योग्य है।

औषधियों के अभाव में सामान्यतया वैद्य चिकित्सा करने में असमर्थ हो जाता है। वेद ने इस आपत्ति से बचने के लिये अन्य नाना प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालियों द्वारा आयु विषयक ज्ञान दिया है। अब हम क्रमशः उन्हें दिखाते हैं। चिकित्सा के विषय में अथर्ववेद में कहा है—है कि जल में अमृत निहित और उपचारक करो क्योंकि जल ही अत्यन्त तीव्र दवाई है।

इसी प्रकार वेद मंत्रों में जलके लिये दिये गये 'विश्वभेषजी,रसा' आदि विशेषण भी इस चिकित्सा का संकेत करते हैं और फिर 'अप्स्वन्तरमृतं अप्सुभेषजं' 'आप इद्वा उ भेषजीः आपो अमीवचातनीः' इत्यादि मन्त्र तो जल के प्रयोग से सम्पूर्ण रोगों का उपशमन कर रहे हैं। इस चिकित्सा से वैद्य लोगों को जेब भरने का मौका तो नहीं मिल सकता लेकिन बड़े से बड़े रोगों से पीड़ितों का उद्धार एवं उपकार अवश्य हो सकता है। चिकित्सा का वर्णन वेदों में पदे-पदे मिलता है किन्तु विस्तार भय से अधिक नहीं कहेंगे।

जल की तरह-वेद ने अग्नि को भी 'विश्वशम्भुवम्' 'रक्षो हा' आदि पदों से सम्पूर्ण दोष दूर करने वाला और रोगजन्तुओं का घातक कहा है-अग्नि द्वारा चिकित्सा का एक रूप हवन चिकित्सा है—

अथर्व वेद में— 'मुञ्चामित्वा' इस मंत्र के द्वारा स्पष्ट कहा गया है कि हवि अर्थात् यज्ञाहुति के द्वारा क्षय रोग भी दूर हो सकता है फिर अन्यों का तो कहना ही क्या।

इसके साथ साथ वेद में 'सूर्य किरणों' से की जाने वाली चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है। 'चरक' के खुड्डाक चतुष्पाद अध्याय में—

"विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते,
सुख संज्ञकमारोग्यं विकारो दुःख मेवतु॥"

इस श्लोक ने वातादि त्रिधातु तथा रसादि सात धातुओं की जिस विषमता को विकार का कारण माना है और जिस का मूल वेद में है इस विषमता के उत्पादक विष ही होते हैं। उदय कोप्राप्त हुआ सूर्य अपने किरणों से उस विष को दूर करता है और साथ ही शास्त्र शुद्ध वायु के सेवन पर ज़ोर देता है। 'ऋग्वेद' का कहना है—'द्वाविमौ वातो वात आसिन्धोरापरावतः दक्षं न अन्य आवातु परोऽन्यो वातुयद्रपः' आदि पद स्पष्ट ही वायु चिकित्सा का दिग्दर्शन कर रहे हैं परन्तु इन सब चिकित्साओं की अपेक्षा आत्मिक बल और मन की इच्छा शक्ति से होने वाली चिकित्सा अधिक महत्वपूर्ण है। 'यजुर्वेद के यज्जाग्रतो' आदि मन्त्रों में मन की प्रबल शक्ति का वर्णन मिलता है। हिप्नोटिज़्म के द्वारा मानसिक शक्ति को प्रबुद्ध तथा प्रबल करके जो चिकित्सा की जाती है उसका बीज ऋग्वेद के 'हस्ताभ्यांदशशाखाभ्यां जिह्वावाचः पुरोगवि ताभ्यां त्वोपस्पृशामसि' इस मन्त्र में स्पष्ट मिलता है।

इन सब चिकित्सा पद्धतियों के साथ साथ वेद में शल्यतंत्र (सर्जरी) के आधारभूत सिद्धान्त भी दिखाई देते हैं। यजुः ब्राह्मण के पशु संज्ञपन के प्रकरण पर दृष्टि डालिये। इसमें आये हुए शब्दों ने बाह्य और आन्तरिक अवयवों का पृथक् पृथक् संस्थान किया है तथा उसी लिस्ट में वसा और वपा में भेद दिखाकर सर्जरी की ओर हमारी प्रवृत्ति पैदा की गई है। इसी प्रकार अथर्ववेद में शरीर विज्ञान फिज़ियोलाजी सम्बन्धी ऋचा भी देखिये 'शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत' (?) [illegible] निर्विषामसि" अर्थात् मनुष्य के शरीर में सैंकड़ों मस नाड़ियें हैं जिन को शरीर में स्थिरता है।

अब वेद में कही हुई 'आयुर्वेद सम्बन्धी औषधियों को भी देखिये—

अथर्व वेद के छठे काण्ड के १०९ वें सूक्त में आयुर्वेद की मशहूर औषधि 'पिप्पली' का वर्णन 'पिप्पली क्षिप्तभेषजीउतातिविद्धभेषजी" आदि में इस प्रकार बताया है कि यह औषधि क्षिप्त अर्थात् पागल और क्रानिकल रोगों से पीड़ित व्यक्ति के लिए अति हितकर है। वैसे तो यह अकेली ही सम्पूर्ण आरोग्य के लिये पर्याप्त है। इसी प्रकार इसी वेद के प्रथम काण्ड के २३ वें सूक्त में 'श्यामा' औषधि के विषय में कहा है कि इसके तथा 'असिक्नी' आदि के उपयोग से (कील.स) और श्वेत बिन्दु (पलित) ठीक होकर त्वचा का रंग पूर्ववत् हो जाता है।

अथर्व वेद के ४ थे काण्ड के १७ वें सूक्त में 'अपामार्ग' को क्षुधा मार और तृष्णा मार बताते हुए वेद ने इसे अपच सम्बन्धी रोगों का नाशक भी कहा है।

अथर्ववेद छठे काण्ड के १३६-१३७ वें सूक्त में "नितत्नी" नामक औषधि को केशों को बढ़ाने, काला करने और दृढ़ करने वाला बताया है जो कि काचमाची फल जीवन्ती और भांगरे का गुण है।

(शेष अगले अङ्क में)

गुरुकुल समाचार

ऋतु—इस सप्ताह गर्मी पर्याप्त रही, पश्चिम की ओर से आने वाली गर्म हवाओं ने इस उष्णता को और भी अधिक बढ़ा दिया। दो दिन सायंकाल हल्की आंधियां भी आईं। इस बढ़ती हुई गर्मी को देख कर अनुमान किया जाता है कि अब शीघ्र ही वर्षा होगी।

महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का एक बड़ा दल तैरी-प्रतियोगिता के लिये प्रति दिन २ घंटा गङ्गा में तैर कर अपने अभ्यास को बढ़ा रहा है।

तैरी सान्मुख्य—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में इस वर्ष विशेष तैयारी के साथ तैरी-प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। विजेताओं को पुरस्कार देने के लिए नहर-विभाग रुड़की के एग्ज़िक्यूटिव इञ्जिनियर श्रीयुत प. नौबतराय जी पधार रहे हैं। आशा की जाती है कि प्रतियोगिता को देखने के लिये स्थानीय संस्थाओं के अतिरिक्त, पंचपुरी की जनता, अखाड़ों और मठों के साधु-महन्त तथा सरकारी विभागों के अफसर एक बड़ी संख्या में एकत्र होंगे। यह सान्मुख्य ४ जून बुधवार के दिन सायंकाल ४। बजे होगा। लम्बी तैरी के लिए सब तैराक मायापुर के पुल से छूटेंगे और २॥ मील तैर कर गुरुकुल घाट पर सर्वप्रथम पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। सिद्ध तैरी, डुबकी, कच्छप-तैरी, छलांग, पैराशूट आदि की प्रतियोगिताएं भी गुरुकुल-घाट पर ही होंगी। विजेताओं को पुरस्कार नक़द रुपयों और मैडल के रूप में दिए जायेंगे।

हमारे मान्य अतिथि—गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार सम्पादक 'हिन्दुस्तान' (दिल्ली) गत २५ मई, रविवार के दिन गुरुकुल पधारे। आपने बड़े मनोयोग पूर्वक गुरुकुल की प्रत्येक प्रगति का निरीक्षण किया। गुरुकुल के वायुमण्डल में चारों ओर नजर आने वाले उत्साह और क्रियाशीलता के लिए अपने ब्रह्मचारियों और अधिकारियों की सराहना की और संस्था की न्यूनताओं की ओर संकेत करते हुए उन्हें दूर करने का उपाय भी बताया। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की सभा में आपने बड़े मनोरञ्जक ढंग से राजनीति, धर्म, समाज आदि विषयों पर, वार्तालाप के तौर पर प्रकाश डाला। इस प्रकार गुरुकुल वासियों के हृदयों में चिरकाल के लिए स्नेह-सम्बन्ध स्थापित कर रात्रि की गाड़ी से आप विदा हुए।

स्वास्थ्य समाचार

श्रवणकुमार ११ श्रेणी मलेरिया ज्वर, महावीर ५ श्रेणी मलेरिया ज्वर, मदनगोपाल ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, इन्द्रदेव १ श्रेणी श्लेष्मज्वर, सत्यकेतु १ श्रेणी व्रण-कास, हरिमोहन १ श्रेणी व्रण—कास।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 220

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २४ ज्येष्ठ १९९८, ६ जून १९४१ [संख्या ६

यज्ञ का व्यावहारिक स्वरूप

[लेखक—श्री० भारतेन्दु वेदालंकार]

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वम्, एष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

"प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के शुरू में यज्ञ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा, इस यज्ञ के द्वारा अपने कार्यों को सम्पन्न करो. यह तुम्हारे लिये अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कराने वाला हो।" (गीता अ० ३, श्लो० १०)

समस्त प्राणिमात्र की यही अन्तिम इच्छा और उद्देश्य होता है कि मेरे सब काम सफल होवें, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो और इस प्रकार मुझे सुख और शान्ति मिले। हमारे सब तरह के दुःख दूर हो जायें और सब तरह से सुख ही सुख मिले, यही हमारा वास्तविक ध्येय होना चाहिये। भारतीय दर्शन एवं धर्म शास्त्र सभी एक स्वर से दुहाई देते हैं। इन सब का सार यही है, 'दुःखनिवृत्ति' या 'मोक्ष'। उपरोक्त श्लोक में इस अभीष्ट 'मोक्ष' का अचूक साधन दो अक्षरों में कहा गया है, और वह है 'यज्ञ'। वास्तव में देखा जाय तो यह 'यज्ञ' ही हमारी संस्कृति का प्राण आधारस्तम्भ है। यदि यह 'यज्ञ' इस महान् संस्कृति में से थोड़े क्षण के लिए भी अलग हो जाय, तो हमारी संस्कृति प्राण शून्य खोखली हो जाती है।

सृष्टि के महान् यज्ञ के साथ ही विधाता (परमात्मा) ने अनेक छोटे २ यज्ञ भी पैदा किए थे। ये छोटे २ यज्ञ ही इस महान् यज्ञ को चला रहे हैं, पूर्ण कर रहे हैं। इसी बात को अथर्ववेद के प्रसिद्ध 'पृथ्वी-सूक्त' में बहुत ही सुन्दर ढंग से कहा है, सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति'। यहां पर पृथिवी (जगत या राष्ट्र) को धारण करने वाले सत्य, तप आदि के साथ 'यज्ञ' को भी उचित साधन कहा गया है। इस प्रकार यज्ञ महत्त्व-पूर्ण वस्तु है, यह हम भली भांति समझ सकते हैं।

यज्ञ के इस महत्व और अनिवार्यता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि, हम इसके स्वरूप को ठीक २ समझ लें। यहां पर इसके गम्भीर या विशद स्वरूप को न कहकर केवल सामान्य या व्यावहारिक स्वरूप पर ही थोड़ा सा विचार करना उपयुक्त है। हमारे दैनिक नित्य-प्रति के व्यवहार और जीवन से इसका क्या सम्बन्ध है? इससे हमारे दुःख किस प्रकार दूर हो सकते हैं? और फिर सच्ची शांति या सुख कैसे मिल सकता है; इन पर संक्षिप्त प्रकाश डाल कर इसके सामान्य स्वरूप को जान सकते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, परमात्मा ने यज्ञ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न किया था। हरेक चर और अचर, स्थावर जंगम पदार्थ परमात्मा के इस यज्ञ को, अपने कर्तव्य (duty) को अदा करने के लिए उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, तारे वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी तथा बुद्धि रखने वाले हम मानवप्राणी सब के सब अपने निश्चित कर्त्तव्य को पूर्ण कर रहे हैं और इस प्रकार इस महान् यज्ञ को भी पूर्ण करने में सहायक होते हैं। यज्ञ का साधारण अर्थ है, 'श्रेष्ठ कर्म' ('यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म') इस लिये जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं जिससे समाज में या वृहद् राष्ट्र में सुख, शांति एवं व्यवस्था रहती है और जिस के न रहने से दुःख, अशांति, अव्यवस्था आदि उत्पन्न होते हैं, उन सबको 'यज्ञ' कहा जाता है।

यज्ञ का दूसरा समानार्थक शब्द है 'हवन'। साधारण दैनिक हवन को इस लिए 'देव यज्ञ' इस नाम से भी पुकारते हैं। 'हु = दानादानयोः' इस धातु से हवन शब्द बनता है। अर्थात् जो दान आदान के साथ या आदान के लिए होता है, वह 'हवन' है। यज्ञ में भी ये दो भावनाएं निहित हैं। यज्ञ से हम देवताओं की पूजा करते हैं दान देते हैं और फिर वे प्रसन्न होकर हमें स्वयमेव प्रति-दान करते हैं। अर्थात् जब हम कुछ देते हैं। तभी कुछ प्रतिफल ले सकते हैं। देवता सब दिव्य श्रेष्ठ गुण वाले पदार्थ को कहते हैं।

इस लिए जो वस्तु जड़ हो या चेतन हो, दूसरे का उपकार करते हैं, सुख देते हैं वे सब 'देवता' हैं। जैसे अग्नि देवता में हवि देते हैं तो वह हमें सूर्य या पर्जन्य देवता के द्वारा वृष्टि और धन, धान्य आदि प्रदान करते हैं इसी प्रकार विशाल समुद्र सूर्य को पानी देता है और उससे लेता है; अथवा यूं कहें, सूर्य समुद्र का पानी तब ही ले सकते हैं, जब वे पहिले देंगे।

गाय से दूध हम तभी ले सकते हैं, जब उसे कुछ खाने को देंगे या गाय तभी कुछ ले सकती है, जब वह

हमें कुछ देती है। इसी तरह से अन्य सभी कार्य परस्पर आदान और प्रदान पर निर्भर हैं। परन्तु ये आदान और प्रदान के कार्य उसी अवस्था में 'यज्ञ' नाम से कहे जा सकते हैं, जब वे 'निष्काम भावना' या परोपकार की दृष्टि से किये गये हों। हम नित्य प्रति देखते हैं कि सूर्य, चन्द्र, पशु, पक्षी आदि अचेतन या कम बुद्धि वाले देवता (पदार्थ) तो बिना किसी प्रतिफल या बदले को चाहते हुए नियमित रूप से अपने परमात्मा से निर्दिष्ट यज्ञ या हवन को कर रहे हैं।

परन्तु आज समय के फेर से हम जो अपनी बुद्धि पर गर्व करते हैं, परमात्मा के दिये कर्त्तव्य (duty) अथवा 'यज्ञ' को बिलकुल ही भूल गए हैं-आत्मभोगी हो गए हैं। हम से यह यज्ञीय भावना इतनी दूर हो गई है कि अब हम इसे देखने में समझने में अपने को बहुत ही असमर्थ पाते हैं इसलिए इसका परिणाम भी अनुभव कर रहे हैं। हम अग्नि को हवि देना नहीं चाहते, परन्तु बदले में वर्षा, अनाज आदि लेना चाहते हैं।

गौ को चारा आदि देना नहीं, और फिर खूब दूध और घी को दुहना चाहते हैं। मजदूर को पूरी मजदूरी (उचितभाग) के लिए तो हाथ खोलना अच्छा नहीं लगता और बदले में अच्छे काम की आशा रखते हैं! इसी तरह अन्य दैनिक जीवन में हमारे सभी कार्य ऐसे हो गए हैं कि हम बिना दिए बहुत कुछ लेने की इच्छा रखते हैं। हम बुद्धि पर व्यर्थ ही अभिमान करते हैं इतना भी नहीं सोचते कि क्या कोई दुकानदार बिना पैसे दिए अभीष्ट वस्तु देता है? क्या जमीन में गेहूँ डाले बिना वह मिल जायगा? हम कहते हैं 'नहीं', परन्तु फिर भी न जाने क्यों ऐसी आशा लगाए रहते हैं।

इसका एक मात्र कारण यही है कि हम स्वार्थपरायण या असुर वृत्ति वाले बन गए हैं। इस प्रकार अदानी असुर होते हुए इन देवताओं से कुछ लेने की इच्छा करते हैं, और जब वह नहीं देते हैं (वस्तुतः देने में असमर्थ होते हैं) तो हमें निराश एवं दुःखी होना पड़ता है। यदि इन देवताओं को सम्यक्तया प्रसन्न नहीं करेंगे तो वे भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकते और हम फलतः दुःखी होंगे। लोग दुर्भिक्ष अनावृष्टि,महामारी भूकम्प आदि दैवीय प्रकोप होने पर कह देते हैं कि यह तो परमात्मा की कुदरत की लीला है इसमें हम क्या कर सकते हैं; परन्तु हम अज्ञानान्धकार में पड़े नहीं देखते कि यह तो हमारे ही अ-दानभाव स्वार्थपन का (पाप का) फल है; इसको तो जरूर चखना ही पड़ेगा।

यदि हम इस पाप के फल को नहीं चखना चाहते हैं, तो वेद के इस मन्त्र को नहीं भूलना चाहिए "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।"

(जो केवलादी)—अकेला खाता है—किसी को देता नहीं है वह तो पाप को ही खाता है और फिर उसी प्रकरण में भगवान् कृष्ण भी तो इसकी प्रतिध्वनि करते हैं 'भुञ्जते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्' (जो अपने लिए पकाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं)। (गी० अध्याय ३, श्लोक १३)।

इसलिए यदि हमें पुण्य का, सुख का उपभोग करना अभीष्ट है, तो हम केवलादी या असुर बनना छोड़ देना होगा। परमात्मा की आज्ञा (duty) को अच्छी तरह निभाकर ही हम उसके सामने खड़े हो सकते हैं। "स्वयं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे। विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन॥" कवि शिरोमणि कालिदास ने यह बहुत ही ठीक कहा है। हमें इस यज्ञीय भावना को समझने के लिए इन संकुचित निर्जीव पुस्तकों की आवश्यकता नहीं है। उस अनादि गुरु (परमात्मा) ने हमारे लिए प्रकृति की विशाल और सजीव पुस्तक प्रदान की है। यदि हम इसका ठीक ठीक अध्ययन-निरीक्षण करेंगे, तो हम स्वतः ही इस 'यज्ञ' को ठीक ठीक समझ सकेंगे; इस में ज़रा भी संशय नहीं है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसी प्रकृति की दिव्य पुस्तक का अध्ययन करके ही 'यज्ञ' के माहात्म्य को क्रियात्मक रूप में समझा था। इसी तरह हमें भी इस 'यज्ञ' के स्वरूप और माहात्म्य को समझकर सुख और शांति का भागीदार बनना चाहिए। निस्सन्देह 'यज्ञ' ही 'इष्ट कामधुक्' कामधेनु है हमें इसकी पूर्णतया रक्षा करनी चाहिए।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः"

[श्री स्वा० शिवानन्द जी महाराज ऋषिकेश]

यह नारी शक्ति ही चैतन्य माया कही जाती है। यह महाकाली, महालक्ष्मी और महा-सरस्वती रूप से दुर्गा काली या पार्वती की विभूति है। यही विश्व की 'सृजनि' 'पालनि' और 'हरति' रूप; सृष्टि, स्थिति और संहार शक्ति है। संसार में यह 'पुरुष' नामधारी 'नर' रूप मनुष्य की सहचरी, सहधर्मिणी और जीवनकी चिर-संगिनी भी है। कवियों की उक्ति में इस स्त्री या नारी शरीर की रचना के लिये सृष्टि रचयिता ब्रह्माने चन्द्रमा का मुख मण्डल, सांप की वक्र गति, लताओं की आलिंगन शक्ति, तृण (घास) की नम्रता, गुलाब की मृदुलता, फूलों की स्निग्धता, पत्तियों की चपलता, मृगशावक (हिरण) की कटाक्षता, सूर्य किरणों की सजीवता, ओस-कणों की तरलता (रुदता), वायु की चञ्चलता, शशक (खरहे) की भीरुता (कायरता), मयूर की रूप गर्विता, नीलकण्ठ के कण्ठ की सुकोमलता, हीरे की कठोर हृदयता, मधु की सुमधुरता, व्याघ्र की निर्दयता, अग्नि की उष्णता, बर्फ (हिमकण) की शीतलता, नदी का कलरवता और (कबूतर) की कला कुशलता का ही सार भाग चुरा लिया था। नारी व स्त्री परिवार का शृङ्गार है। वह पुरुष वर्ग को अपने रूप का सुन्दरता, सुमधुर कण्ठ की कलरवता, हृदय की मृदुता, ममता, सलज्जता, लावण्यता, मधुरता, प्रीति या प्रेम की अधिकता, प्रसन्नता और अनन्य सेवा परायणता

के अतीव सुन्दर भावों से मोह लेती है! इस संसार में मनुष्य जीवन का पूर्ण सौन्दर्य एकमात्र इस नारी या स्त्री शक्ति में ही केन्द्र रूप से अधिष्ठित है। जाति या राष्ट्र रूप से मनुष्य जीवन की नेतृत्व करनेवाली शक्ति घोड़े की लगाम के रूप में, पथ प्रदर्शिका रूप से इस 'नारी' या स्त्री शरीर में ही है। यही गुप्त रूप से अपने छोटे से घर की रानी और भगवान के इस विराट शरीर की भी अधिष्ठात्री देवी है।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि पुरुष (नर) 'भूपति' पृथ्वी का नृपति रूप से या शासन करनेवाला भूस्वामी (भूदेव) है और नारी (स्त्री) इस भूदेव की भी हृदयाधिष्ठात्री देवी बनी हुई गृहस्वामिनी या स्ववश विहारिणी विश्व-विमोहिनी 'देवी' है। घर या संसार में इच्छा (प्रेरणाशक्ति) पुरुष की है पर गतिविधि, क्रिया या नेतृत्व शक्ति स्त्री या नारी की ही है। पाश्चात्य विद्वान सर थामस ज़गे ने कहा है कि हम (पुरुष जातिवाले) अपनी परवशता या परतन्त्रता को छिपा रखने की पूर्ण चेष्टा किसी भी रूप में क्यों न करें, पर ठोस सत्य या वास्तविकता तो यही है कि शासन की बागडोर नारी या स्त्री जाति के हाथ में है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी महाकवि वर्डसवर्थ ने भी लिखा है कि—

"नारी शरीर की रचना ही इस अतीव सुन्दर रूप में मनुष्य समाज को सुख प्रदान करने तथा अपने नेतृत्व और शासन में रखने के लिये ही हुई है। पुरुष चाहे कुछ भी क्यों न कहे, पर तथ्य (वास्तुस्थिति) यही है कि उनके शासन की बागडोर नारी जाति के ही हाथ है। उनका शासन स्त्रियां ही करती हैं अर्थात् वे सर्वथा नारी (शक्ति) के ही वश में हैं।"

नीति शास्त्र में कहा है कि सच्ची (कुल) धर्मपत्नी वही है जो पति के लिये (संकट के समय) गृह कार्य में मन्त्री का, सेवा के समय दासी का, और सहधर्मिणी रूप से लक्ष्मी का, सुन्दर रूप धारण करती है।

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, रूपेषु लक्ष्मी क्षमया धरित्री।
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा, षट्कर्म नारी कुल धर्मपत्नी॥

महाभारत में भी कहा है कि नारी धर्मपत्नी रूप से पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है सच्ची सलाह देनेवाली चिर सहचरी अनन्य सखी है। संसार की सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मयी त्रिगुणात्मिका (प्रकृति) शक्ति है। सहधर्मिणी के रूप में धर्मपत्नी ही मुक्ति की निसेनी (सीढ़ी) और मोक्ष की मूर्ति है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि अपनी पाणिगृहीता स्त्री या धर्मपत्नी के अभाव में पति को धर्म कृत्य रूप 'यज्ञ' करने का कोई भी अधिकार नहीं है। पत्नी रूप से स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। वह वामांगिनी रूप से सदा अपने पति के साथ ही रहती है, और सहधर्मिणी रूप से अग्निहोत्र आदि सभी गृहधर्म और यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में उचित सहायता पहुंचाती है। यज्ञ के लिये अग्नि धर्मपत्नी ही ले आती है और यज्ञ में पति के साथ खड़ी होकर, दर्भ या कुशाग्रास से पति का स्पर्श धर्मपत्नी ही करती है और पति को 'यज्ञकृत्य' पूर्ण करने की अनुमति भी धर्मपत्नी ही देती है।

शुभ संस्कृति, सुन्दर मति और पवित्र बुद्धिवाली आज्ञाकारिणी और मन, वचन, कर्म से पति का अनुगमन करने वाली पतिव्रता स्त्री साक्षात् वैकुण्ठ ही है। जहां पति-पत्नी दोनों ही अनन्य और शुद्ध प्रेम के धागे में 'मणि' रूप से गुंथे हुए हैं और अपना दाम्पत्य जीवन नित्य धर्म ग्रन्थों के अध्ययन, स्वाध्याय, जप, हरिनाम कीर्तन, ईश-स्मरण और ध्यान में ही व्यतीत करते हैं। एकमात्र अपने पति में ही अनुरक्त स्त्री पतिव्रता रूप से इस 'प्रकृति' रूप पुष्प वाटिका का दुष्प्राप्य पारिजात पुष्प ही है। घर का दीपक और परिवार या कुल को अपने सतीत्व या आत्म बल के तेज से ही प्रकाशित करने के लिये चमकते हुए "हीरे" का 'नगीना' है। अपने पति के हो शिरमौर का 'मुकुटमणि' है। पतिव्रता स्त्री इस घर और लक्ष्मी को बढ़ाने वाली साक्षात् 'लक्ष्मी' है। वह घर में नित्य सुख और आनन्द की वृष्टि करनेवाली स्वर्ग की देवी है। पति का भी यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह उसकी उचित पूजा करे। मनुस्मृति में भगवान मनु की स्पष्ट आज्ञा है कि—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूजिता भूषितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ ३-५५

केवल विवाह काल में ही नहीं, बल्कि विवाह के उपरान्त भी, पिता, भ्राता, पति, देवर आदि अपने आत्म-कल्याण की इच्छा करने वालों को 'स्त्री' की उचित पूजा करनी चाहिये और उसे अलङ्कार आदि से भी विभूषित करना चाहिए—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ ३-५६

अर्थात् जिस कुल में नारी (स्त्रियों) की पूजा होती है, वहां देवताओं का ही निवास होता है (देवता खेलते या रमण करते हैं) और जहां पूजा नहीं होती वहां सभी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

जिस कुल में कन्या, भगिनी स्त्री, पुत्री और पुत्रवधू आदि शोक करती या दुःखी होती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहां ये दुःख या शोक नहीं करतीं वह कुल सदा वृद्धि को ही प्राप्त होता है।

जिस कुल की भगिनी, पत्नी, पुत्रवधू आदि उचित पूजा या सम्मान न पाकर, दुःखित चित्त से शाप देती हैं वह (तत्काल नाश को ही प्राप्त करा देने वाले) कृत्यों द्वारा आहत या प्रताड़ित होकर 'सर्वनाश' को प्राप्त होता है।

अतएव विभूति या समृद्धि की चाह करने वालों का मुख्य कर्तव्य है कि वे यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञ, उत्सव आदि कार्यों के शुभ अवसरों पर भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से इनका उचित पूजन (सत्कार) सदा ही करते रहें।

जिस कुल में भर्ता (पति) भार्या (पत्नी) से ही सन्तुष्ट रहता है अर्थात् एकपत्नी-व्रत का पालन करता हुआ 'परनारी' की ओर देखता भी नहीं और जहां भार्या पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई एकमात्र अपने पति से ही सन्तुष्ट और तृप्त रहती है, वहां "कल्याण" (अभ्युदय निःश्रेयस और सिद्धि) निश्चित रूप से ही अपना 'घर' बना लेती है। इसी प्रकार जहां पति पत्नी में निरन्तर

(शेष पृ० ६ का० २ पर)

गुरुकुल

२४ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९८

अविद्या गरीबी और परतन्त्रता की समस्या

(ले० श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार)

आज हिन्दुस्तान आदर्श ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की खोज में है। उसको आदर्श पर पहुंचे लोगों को देख कर महान् आनन्द प्राप्त होता है। यहां तक कि, बहुतों को उसने अवतार तक बना डाला है। वह इसी महारूप में भगवान को देखकर खुश होना चाहता है, यद्यपि वह जानता है, कि तप एवं योग साधन से ही भगवान् को पाया जाता है परन्तु दिल सदियों की प्राचीनता का छाप लेकर आदर्श प्रिय बन चुका है। वह इसीलिये सन्यासी ऋषि महात्मा को देखकर भगवान् की महान् कृपा का अनुभव करके कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसको कालान्तर में अवतार अनुभव करने लग जाता है।

हिन्दु दिल महान् उदार है। उसने अपनी इसी उदारता के कारण लाखों शक हूण तथा यवनों को दाल में नमक के समान घोल लिया। इसके उदार एवं विशाल हृदय में संसार के सारे महापुरुष अपने भक्तों के साथ समाना चाहते हैं।

इस हिन्दु दिल में अपने प्राचीन जातीय जीवन में अनुभूत आदर्शों को सुनकर, महान् उल्लास पैदा होता है। जिसके कारण जागृति के नये २ सन्देशों के साथ जीवन ज्योति जगा करती है। आर्य समाज की उपज, इस हिन्दु दिल ने अपने जागृति के नये २ सन्देशों को संसार को सुनाने के लिये ही की है। आर्य समाज की वर्त्तमान सफलता का कारण यही है। आज आर्यसमाज सहस्रों रुपया प्रतिसाल सारे संसार में अविद्या गरीबी एवं परतन्त्रता को दूर करने में खर्च कर रहा है।

शिक्षाक्षेत्र में आर्यसमाज भारत की सभी राजनैतिक सामाजिक संस्थाओं से प्राचीन तथा आगे बढ़ा हुआ है। राष्ट्रीयभाषा, राष्ट्रीयसाहित्य द्वारा भारतीयता की छाप लेकर पुण्यात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना कर महान् साहस का परिचय दिया था। जनता के भरोसे खड़े होना कम महत्व की बात-उस जमाने में न थी। इसी से उनको "महात्मा" की उपाधि मिली थी। गुरुकुल ने सारी ब्रिटिश शासकवर्ग इसी का ध्यान खींच लिया था। वायसराय, प्रान्तों के शासक (गवर्नर), जिलाधीश ही केवल गुरुकुल में नहीं पधारे थे परन्तु स्व० श्रीयुत रामजे मैकडोनाल्ड (भू० पू० प्रधान मन्त्री ग्रेट ब्रिटेन) जैसे प्रतिभा एवं प्रभाव शाली अंग्रेज भी गुरुकुल पधारे थे।

इस समय आर्यसमाज सरकार की नजरों में विद्रोही संस्था हो चली थी। ईसाई पादरियों की कृपा से सरकारी कर्मचारी उससमय लार्डविलिङ्गटन के जमाने की तरह आर्य समाजियों पर पिले हुए थे। जाति बहिष्कार की कठिनाइयों के जमाने में नाई, धोबी आदि की ही कठिनाई न थी किन्तु सरकारी कर्मचारियों ने भी आर्य समाजियों की परीक्षा शुरु कर दी थी। यह जमाना विचित्र था, लोग इस समय पुलिस की लाल पगड़ी देखकर ही डरा करते थे। इस जमाने में कितने आर्य नौकरी से बर्खास्त हुए, कितने जेल और मारपीट के शिकार हुए, कितनों के यज्ञोपवीत टूटे, इसका कुछ पता ही नहीं। किन्तु आर्य समाज ने साहस, संगठन, प्रोपेगैण्डा सभी से सरकार को हराकर प्रत्युत्तर दिया।

उस समय अकाल पीड़ित क्षेत्र या बाढ़ आदि आने पर सबसे अधिक साहस, योग्यता एवं सेवा द्वारा जनता का ध्यान खींचने में तथा सहायता के लिए सरकार को मजबूर करने में आर्यसमाज सभी संस्थाओं से आगे बढ़ा हुआ था।

देश की आवश्यकताओं के अनुसार जनता के भरोसे खड़ा होकर स्वतन्त्र संस्थाओं को जन्म देकर आर्यसमाज ने वर्तमान स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिये आधारभूत क्रियात्मक शिक्षा दी थी। आर्यसमाज की प्रगति ने प्लेटफार्म, उत्सव प्रणाली, समाचार पत्र-प्रकाशन द्वारा जनता में जागृति पैदा करने की जो शिक्षा दी है यह भारत के हजारों दुःखों को हरने में जनता को शक्ति प्रदान कर रही है। हिन्दी एवं भारतीयता के प्रचार में आर्यसमाज ने इस स्वाभाविक शैली से भाग लिया है कि इस से जनता पर पड़े प्रभाव को जांचना भी मुश्किल है।

आर्यसमाज ने कभी अपनी आंख यूरोप पर नहीं लगाई थी वह अपनी प्रगति की दिशा के लिये परतन्त्र या पराङ्मुख नहीं बनना चाहता था। वह तो यूरोप की सभ्यता की तुलना में भारतीय सभ्यता की वस्तुएं ढूंढने में लगा था। वह इस प्रवृत्ति द्वारा जिस स्वतन्त्रता की दिशा की ओर मुंह किये था, वही सरकारी रोष का कारण हुआ। समाज अपनी प्रवृत्ति में असफल होता तो सरकार दमन न भी करती किन्तु उसने क्रमशः एक २ कला के साथ पूर्णिमा के चन्द्र के समान अपनी यश-ज्योत्स्ना फैलानी शुरु कर दी थी। आज भी वही धारा, वही विषय लेकर खड़े हो गये हैं, तो, लोग कहने लगे-'अब आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं रही'। नक्कालों ने असल को ही बाजारों में निकालने की कोशिश कर दी। परन्तु हैदराबाद की परीक्षा के समय असल और नकल साफ झलकने लग गये।

आर्यसमाज का संगठन प्रजातन्त्रीय है। उसने अपने संगठन को- विश्वव्यापी बना लिया है। उपनिवेशों में हिन्दी और हिन्दु की याद आर्यसमाज की बदौलत ही कायम है। आर्य समाज ही वहां की प्रगति का नेता है। आर्यसमाज मौलिकता, स्वतन्त्रता तथा प्रजा के भरोसे प्रतिदिन उन्नति करता जाता जाता है। पिछले १० सालों में वह ६५ प्रतिशत की गति से आगे बढ़ा है। अब

उसमें १०० प्रतिशत से कम की आशा नहीं है। उसके विशाल कार्यक्रम की भूमिका के साथ यह शीर्षक गूंज रहा है "अविद्या, गरीबी- एवं परतन्त्रता का नाश" अर्थात् मन, शरीर एवं आत्मा के भोजन की पूर्णव्यवस्था। इस भूमिका के साथ साथ हम विषय की छानबीन पर आते हैं।

संसार की आवश्यकतायें:—सदा से संसार में मनुष्य समाज अपनी तीन ही आवश्यकतायें महसूस करता रहा है क्योंकि समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की तीन ही आवश्यकतायें हैं। प्राचीन ऋषि मनुष्य-समाज को राजनैतिक-सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं की सत्यता तीन प्रश्नों की दृष्टि से ही समझते हैं।

वर्तमान में किसी छोटी या बड़ी प्रगतिशील संस्था को देखिये। मूर्ख, गरीब या परतन्त्र लोगों के लिये काम के लिये दावा करके जनता का वह सहयोग प्राप्त कर रही होगी। शिक्षा-संस्था मूर्खता पर रोती है। समाजवादी गरीबी पर तथा कांग्रेस परतन्त्रता पर रो रही है।

इस प्रकार प्रत्येक संस्था की आवाज़ में आप इन संस्थाओं की आवाज गूंजती हुई पायेंगे। रूस, योरप अमेरिका-जापान सर्वत्र इस समय इन्हीं समस्याओं पर सब संगठन बन-बिगड़ रहे हैं। अतः धार्मिक, राजनैतिक या आर्थिक संगठन समाज की सेवा करना चाहते हैं तो इन तीन आवश्यकताओं को ही मानव जाति पूरा किया करती है।

उपाय:— किसी भी काम को वही व्यक्ति पूरा कर सकता है जिसने उस काम को करने की रुचि हो-साथ ही योग्यता भी हो। धुन होने पर तो सोने में सुहागा हो जायगा। अतः तीन आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिये तीन व्यक्तियों की ज़रूरत है-जो इन में से किसी भी काम को चुन लें। उसके लिये उत्कट धुनी एवं योग्य बनकर लग जायें। उनकी जीविका के प्रबन्ध-चाहे सरकार करे, चाहे जनता,- यह पृथक् प्रश्न है; किन्तु योग्यता-रुचि एवं धुन वाला उस व्यक्ति का होना जरूरी है। अतः अविद्या के नाश के लिये अच्छी रुची, योग्यता एवं ध्येय रखने वाले पुरुषों की उत्पत्ति से बढ़ कर कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता। इसी प्रकार गरीबी एवं परतन्त्रता नाश का प्रश्न है। ऐसे पुरुष जो इनमें से किसी के प्रति रुचि रखने हों किन्तु अयोग्य हों; उनको सहायक बनकर सेवा करने का मौका प्राप्त हो सकेगा।

श्रम विभाग:—तीन आवश्यकताओं की दृष्टि से श्रम तीन प्रकार का है। किन्तु-श्रमिक चार प्रकार के होते हैं। अपनी रुचि योग्यता एवं ध्येय के मुताबिक किसी एक समाज की आवश्यकता को पूरा करने वाले तीन प्रकार के श्रमिक हैं। रुचि रखने वाला किन्तु योग्यता के बिना आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ व्यक्ति भी सहायक बनकर अच्छी सेवा कर सकता है। अतः चार प्रकार के श्रमिक योग्यता के अनुसार होते हैं।

वेद कहता है कि-"नाश्रान्ताय श्रीरस्ति" श्रम से थके हुए पुरुष के लिए ही धन है-न कि प्रमादी के लिए। अतः धन का हक बिना श्रम देना पाप है। हरएक पुरुष को याद रखना चाहिये "श्रमबिना धन नहीं।" अतः अन्तिम निर्णय निम्न है।

१-योग्यता के अनुसार काम मिलना चाहिये,

२-काम करने पर "भोग" (आवश्यकतानुरूप धन) मिलना चाहिये। आवश्यकता की पूर्ति के लिये जिस उपाय को ढूंढा गया उसकी पूर्ति कहां की जाय? प्राचीन परम्परा इसका उत्तर देती है-कि शिक्षणालयों में इन व्यक्तियों को तैयार किया जाय:—

परीक्षा एवं सफलता:-किसी भी विचार को अपनाने से पूर्व उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। जैसे पं० जवाहरलाल जी तथा श्री जय प्रकाश नारायण लाल जी आदि रूस में परीक्षित समाजवाद को लागू करने के लिये पूर्ण उत्साह एवं प्रेम जाहिर करते हैं क्योंकि उसी को उन्होंने पढ़ा और समझा है। ठीक इसी प्रकार प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार आदि प्राचीन भारत में अजमाई वर्णव्यवस्था को लागू करना चाहते हैं। क्योंकि उसको उन्होंने पढ़ा और समझा है। मेरा अपना विचार है, कि दोनों में कोई भेद नहीं। केवल झगड़ा है, कि रूस का सूर्य अच्छा है, कि भारत का। एक उसी परिणाम पर गुण कर्मानुसार व्यवस्था बनाकर पहुंचना चाहता है। दूसरा किसी भी प्रकार उसको पाकर व्यवस्था शनैः २ कायम करते रहना चाहता है। मुझे तो इसमें पहला पक्ष ही ठीक- जचता है। लड्डू दोनों खाना चाहते हैं-किन्तु एक, एक तरीके से खानाचाहता है-दूसरा दूसरे तरीके से खाना चाहता है।

श्रमिकों के नाम:—प्राचीनपुरुष श्रमिकों के नाम भी रखते थे। उनके नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य एवं शूद्र होते थे।

ब्राह्मण:—कोई व्यक्ति संसार में आदर्श एवं विद्या के अभाव में न भटके इस लक्ष्य को लेकर किसी गुरु से अनुभव पूर्ण शिक्षा लेकर देश सेवा में लगकर ब्राह्मण अपना ध्येय पूरा करता था।

क्षत्रिय:—कोई व्यक्ति, समाज, व देश अन्याय-अत्याचार एवं परतन्त्रता से पीड़ित न हो इस ध्येय को पूरा करने के लिये आवश्यक योग्यता प्राप्त कर-देश सेवक के रूप क्षत्रिय सेवा करता था।

वैश्य:—इस प्रकार देश सेवा में लगे ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करना अपना उद्देश्य बना कर आवश्यक योग्यता सम्पादन करके सेवा करना वैश्य का काम था।

शूद्र:—इन में से किसी भी एक बात में रुचि रखने पर भी योग्यता के अभाव में सहायक बन कर सेवा दान कर सकने वाला शूद्र होता है। विवाद चार नाम रखने पर हो सकता है। परन्तु वैज्ञानिक या वैदिक दृष्टि से चार प्रकार से अधिक श्रमिक क्या हो सकते हैं? तीन से अधिक प्रकार की क्या आवश्यकतायें हैं? यदि दोनों का उत्तर 'नहीं' हो, तो, नाम कुछ भी रहे—बात एक ही रहेगी।

पूंजी विभागः—श्रम विभाग के बाद पूंजी का नम्बर आता है। यह चार विभाग वेदोक्त रूप में निम्न हैं:— "ब्राह्मण ब्रह्म (समाज) का मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य पेट तथा शूद्र पांव हैं।" वेद की दृष्टि में पापी कौन होता है— "केवलाघो भवति"। स्वार्थी पापी होता है। पुण्यात्मा कौन होता है—"सब की उन्नति में अपनी उन्नति चाहने वाला।" यज्ञशेष को खाने वाला पुण्यात्मा होता है। यज्ञ-शेष अर्थात् यज्ञ से जो बचे-ऐसा भाग होता ही नहीं। अतः "सगच्छध्वं संवदध्वम्" " के अनुसार सबकी सम्पत्ति में से भोग्यभाग लेना ही यज्ञशेष है। जितना भोग सकते हो उससे अधिक मत रक्खो।

(शेष अगले अङ्क में)

वेद में आयुर्वेद

[गुरुकुलोत्सव पर आयुर्वेद सम्मेलन में पठित]

(ले०—श्री ओमप्रकाश जी वेदालंकार)

इसी वेद के ४ थे काण्ड में 'रोहिणी' वनस्पति को मांसादि वर्धक कहा है और इसी काण्ड के ३७ वें सूक्त में अश्वत्थ, न्यग्रोध, अर्जुन, अघाट, कर्करी आदि वनस्पतियों को विषैले जल-जन्तुओं को पास न फटकने देने वाला बताया है। आज कल लोग 'पुल्लिङ्ग सन्तान' की प्राप्ति के लिये नानाविध अतिव्यय साध्य उपाय करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते हैं लेकिन अथर्व वेद के ६ ठे काण्ड का ११ वां मन्त्र "शमीमश्वत्थ आरूढः" आदि बताया है कि शमी पर आरूढ़ (उत्पन्न) पीपल के यथा-विधि सेवन से स्त्री पुल्लिङ्ग सन्तान पैदा करती है। इसी बात को अथर्ववेद के ३ रे काण्ड में 'पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वः खदिरादधि" इन शब्दों में कहा है।

इस प्रकार के वृक्षों को 'वन्ध्या' या 'बान्ध्या' कहते हैं और इसका संस्कृत नाम 'पुत्रिणी' भी इसी ओर संकेत करता है कि यह पुत्रोत्पादक होता है। 'शब्द कल्पद्रुम' के अन्दर 'पीपल' को कफ पित्त विनाशी, 'रक्त दाहक' आदि और 'खदिर' को दन्त शोधक कृमि, प्रमेह, उदर, कुष्ट, शोथ पाण्डु आदि रोग दूर करने वाला लिखा है।

'पृश्निपर्णी' जिसे हिन्दी में पिठवन भी कहते हैं आयुर्वेद में सुप्रसिद्ध औषधि है। वेद इसकी उपयोगिता को कहता है। इस मन्त्र में 'असृक्पावान' शब्द से खून पीने या गिराने वाले 'रक्तपित्त' रोगों की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि पृश्निपर्णी से क्षय, बवासीर, नवसीर, स्त्रियों का रक्त प्रदर आदि रोग दूर होते हैं। लेकिन अभी तक आयुर्वेद वाले तो बवासीर और ६ ठे महीने के गर्भपात के लिये ही इसका प्रयोग कर सके हैं। वेद तो शरीर को बढ़ने न देने वाले एवं गर्भ रक्षक रोगों को दूर करने के लिये भी इसी को उपयोगी बताता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र 'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः' आदि में बताया है कि इन्द्र अपांफेन के साथ नमुचि का सिर कुचल देता है।

इन्द्र सूर्य को कहते हैं लेकिन अर्क भी सूर्य का नाम है और आक के पर्याय सूर्य वाचक शब्द हैं। आयुर्वेद में भी आक और सूर्य एक नामों वाले हैं। अतः इस मन्त्र में 'इन्द्र' शब्द का अर्थ बिना खेंचातानी के 'आक' किया जा सकता है। अपांफेन का अर्थ तो 'समुद्री झाग' है और नमुचि का अर्थ है 'न छोड़ने वाले अचिकित्स्य असाध्य रोग।' नमुचि का अर्थ 'नम् उच' अर्थात् ऐसे रोग भी हैं जिनमें शरीर का कोई भाग नीचा या ऊंचा हो जाय जैसे रसौली निकल आना, बवासीर के मस्से, भगन्दर का फोड़ा, नासूर आदि—वेद ने बताया है कि ये सब आक और समुद्र-झाग के उचित परिमाण और विधि से लगाने से ठीक हो जाते हैं।

वेद में तो 'गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि' आदि मन्त्रों से हृद्द्योत अर्थात् हृदय की जलन या 'कामला' रोग की चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है।

अथर्व वेद के तीसरे सूक्त में मूत्र-मोचन के लिये कर्पूर, आक आदि का उपयोग बताते हुए वहां (वेशन्ती) अर्थात् (कैथेटर) नामक उपयोगी उपकरण का भी नाम दिया गया।

वस्तुतः वेद ही आयुर्वेदिक औषधियों को 'मातरः' अर्थात् भग्न एवं क्षत शरीर का निर्माण करने वाली कह कर मनुष्यों को उन द्वारा चिकित्सा करने का उपदेश करता है।

इस प्रकार इस लघु-लेख में संक्षेप से यह दिखाया गया है कि सम्पूर्ण आयु विषयक ज्ञान या आयुर्वेद, वेदों से ही हम तक पहुंचा है। जिसकी साक्षी सुश्रुतकार यह कह कर दे गये हैं—

"इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य। अनुत्पाद्यैव प्रजाः—कृतवान् स्वयम्भूः" ॥ (समाप्त)

[पृ० ३ का० २ का शेष]

विरोध या कलह-द्वेष ही बना रहता है, वहां अवनति, दरिद्रता और दुःख रूप हानि ही हुआ करती है।

जहां सुमति तहां सम्पति नाना।
जहां कुमति तहां विपति निदाना॥

पति पत्नी दोनों के लिये भगवान मनु का यह विधान भी सदा स्मरण रखने योग्य है—

'यदि स्त्री प्रसन्न चित्त से सुरुचि पूर्वक अपने पति को आनन्दित नहीं कर सकती तो इस पति पत्नी रूप दम्पति से "सन्तान" की उत्पत्ति भी नहीं होती।'

स्त्री के एकमात्र अपने पति द्वारा ही सन्तुष्ट हो जाने पर अर्थात् पुरुष से स्नेह या संसर्ग होने से ही वह कुल भी सबों को गौरवान्वित, रुचिकर और प्रकाशमान प्रतीत होता है और उसके पति से सन्तुष्ट या शोभायमान न होने पर ही पति द्वेष या स्त्री का पर-पुरुष से स्नेह या संसर्ग रूप दोष से वह कुल सर्वथा मलिन और निन्दनीय होता है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सर्वत्र "स्त्री धर्म" की स्तुति ही की गई है और नारी गौरव के ही गीत गाये गये हैं। स्त्रियों को सर्वत्र उच्च स्थान ही दिया गया है। नारी धर्म की महिमा ही ऐसी है।

तैरी प्रतियोगिता

का

उत्साह पूर्ण समारोह समाप्त

गत ४ जून को तैरी-प्रतियोगिता होने के कारण गुरुकुल विश्वविद्यालय में विशेष चहल-पहल का वातावरण नज़र आया। प्रातः से सायंकाल तक गुरुकुल का क्रीड़ा-विभाग प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थाओं के करने में पूर्णतया व्यस्त रहा। सायंकाल ३॥ बजे इस प्रतियोगिता के मनोनीत सभापति श्रीयुत प० नौबतराय जी एग्जिक्यूटिव इन्जीनीयर रुड़की, पधारे। लम्बी तैरी के तैराकों को मायापुर के पुल तक पहुंचाने के लिए दो लारियों का प्रबन्ध किया गया था। ठीक ४। बजे ढाई मील की तैरी के तैराक मायापुर के पुल से कूदे, इनमें ४ पंचपुरी के तैराक भी शामिल थे। इस प्रतियोगिता में सर्व प्रथम आने के लिए सब प्रतिद्वन्द्वी बढ़-चढ़-कर हाथ मारने लगे। थक कर पिछड़े हुए तैराकों को सहारा देने के लिए नहर-विभाग की ओर से दो नावें साथ २ चल रही थीं। नहर की पटरी पर उत्सुक दर्शनार्थियों की कतारें पैदल और साइकिलों पर सवार होकर तैराकों के साथ २ भागता जा रही थी। इस २॥ मील की दूरी को २४ मिनट १० सेकण्ड में तय करके ब्र० गिरिधर सर्व प्रथम गुरुकुल घाट पर पहुंचे। गुरुकुल घाट पर इस समारोह को देखने के लिए गुरुकुल विश्व-विद्यालय के विशाल परिवार के अतिरिक्त, स्थानीय अन्य संस्थाओं के विद्यार्थी एवं प्रोफेसर, मठों और अखाड़ों के साधु-महन्त, आर्य विरक्त-वानप्रस्थ-आश्रम के विद्वान सन्यासी, पञ्चपुरी की जनता, आय देवियां बच्चे-बूढ़े सबके सब बड़ी संख्या में बहुत पहले से ही एकत्र थे। गुरुकुल घाट के खम्भे, मुण्डेरें, सीढ़ियां और पुल लोगों से आच्छादित हो गए। जन-समुदाय मधु-मक्खियों की तरह एक पर एक टूटा पड़ता था। इतनी भीड़ गत ६ वर्ष की तैरी प्रतियोगिताओं में देखने में नहीं आई। लम्बी तैरी का सर्व-प्रथम तैराक जब गुरुकुल घाट पर पहुंचा तब उपस्थित जनता ने तालियों से स्वागत किया। भीड़ अधिक होने के कारण सभापति जी को प्रतियोगिता देखने में कुछ दिक्कत हो रही थी इसलिए सुविधा के लिए उनकी कुर्सी घाट के खुले हुए चौड़े मुण्डेरे पर स्थापित की गई। इसके बाद श्री सभापति जी के पूर्ण-निरीक्षण में डुबकी, सिंह तैरी, छलांग, कच्छप-तैरी, पैराशूट आदि की प्रतियोगिताएँ हुईं जिनका परिणाम निम्न रहा:—

लम्बी तैरी	श्री गिरिधर	प्रथम
"	" दयाराम	द्वितीय
"	" प्रह्लाद	तृतीय
सिंह तैरी	" रमेशचन्द्र	प्रथम
"	" दयाराम	द्वितीय
डुबकी (गोता)	" गुरुदत्त	प्रथम
" (कच्छप तैरी)	" रोहिताश्व	प्रथम
पैराशूट-छलांग	" हरिवंश १३	प्रथम
कला-प्रदर्शन	" जयदेव	प्रथम

उपरोक्त विजेताओं को, सभापति श्रीयुत पं० नौबतराय जी ने एक-एक पदक के साथ रुपयों का पारितोषिक भी प्रदान किया तथा इन प्रतियोगिताओं में सोत्साह भाग लेने वाले ५ छोटे ब्रह्मचारियों को अपनी ओर से प्रत्येक को एक एक रुपया इनाम में दिया।

अन्त में सभापति जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में इस प्रतियोगिता के सम्बन्ध में हर्ष प्रकट करते हुए शारीरिक उन्नति के महत्व को प्रदर्शित किया।

सबके अन्त में श्री मुख्याधिष्ठाता जी ने पं० नौबतराय जी का हार्दिक धन्यवाद किया और इस प्रकार यह प्रतियोगिता अत्यन्त सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

इस सफलता का सारा श्रेय वर्तमान क्रीड़ा मन्त्री श्री विद्यानन्द उप-स्नातक को है। एक उत्तम तैराक होते हुए भी प्रबन्ध में व्यस्त होने के कारण ये प्रतियोगिता में भाग न ले सके।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का ग्रीष्मावकाश १६ जून को समाप्त हो रहा है, और विद्यालय नियम पूर्वक २० जून को खुल जायगा। इस समय ऋतु अनुकूल है। संरक्षक महानुभावों को चाहिए कि वे अपने २ ब्रह्मचारियों को १८ जून तक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ अवश्य पहुंचा दें जिससे कि पढ़ाई में कोई हानि न हो।

श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री की रिहाई—

गत ३० मई को श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री ६ मास की सजा काटने के बाद मुक्त होकर गुरुकुल पहुंचे। यहां पर आपका समस्त कुल वासियों ने बाजे दल के साथ स्वागत किया। गुरुकुल वासियों की एक विशाल सभा में आपने जेल-जीवन के अपने मनोरंजक वृत्तान्त सुनाए। इस सत्याग्रह में उत्साह-पूर्वक भाग लेने के लिए श्री आचार्य जी की ओर से तथा समस्त कुल वासियों की ओर से आपको बधाई दी गई। इस खुशी में आज के दिन विद्यालय बन्द रहा।

श्री प्रो० केशवदेव जी को बधाई—

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुकुल के मान्य उपाध्याय पं० केशवदेव जी ३२ वर्ष की साधना के पश्चात् आगामी १० जून को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की तैयारी कर रहे हैं। आपका विवाह संस्कार प्रयाग में होने जा रहा है। गुरुकुलीय उपाध्याय-मण्डल एवं कार्यकर्ताओं की ओर से आपको बधाई है।

स्वास्थ्य समाचार

ओम्प्रकाश ११ श्रेणी आन्त्रशूल, राजेन्द्र ५ श्रेणी (रुद्रीपुर) शीतज्वर, रामकुमार ४ श्रेणी शीतज्वर, रामकृष्ण ४ श्रेणी आतपज्वर, रवीन्द्र ४ श्रेणी आतपज्वर, विजयकुमार ३ श्रेणी मलेरियाज्वर, मधुसूदन ३ श्रेणी वातिकदर्द, हरिश्चन्द्र ३ श्रेणी खसरा, राजेन्द्र ३ श्रेणी खसरा, जगदीश ३ श्रेणी खसरा।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ३० मई को यहां का अधिकतम तापमान ११२.५ फा० रहा। इसके बाद वर्षा हो जाने से अब मौसम बहुत अच्छा है। दो दिन से अधिकतम तापमान ८७ फा० है।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी
की
प्रसिद्ध औषधियां

ब्राह्मी तैल

दिमाग को तरोताजा और चित्त को प्रसन्न रखता है, बालों को सुन्दर, मुलायम और काला करता है। प्रतिदिन स्नान के बाद सिर पर लगाइए।
मूल्य १) पाव
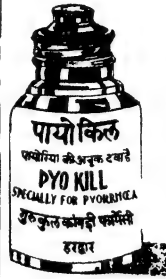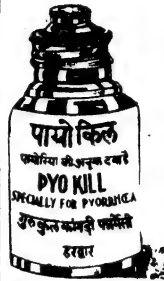
पायोकिल

दांतों को मज़बूत चमकीले और सुन्दर रखता है उत्तम मंजन है। पायोरिया की अकसीर औषधि है।
मूल्य ।।) शीशी।

चन्द्रप्रभा

इन गोलियों में लोह भस्म और शिलाजीत की प्रधानता है, उत्तम रसायन है। स्वप्नदोष जिगर की कमजोरी, खून की कमी आदि रोगों में विशेष लाभदायक है।
मूल्य ।।।) तोला

भीमसेनी सुरमा
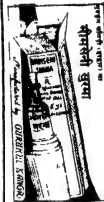
आंखों के सब रोगों की अकसीर औषधि है। चश्मा लगवाने या किसी और दवा के इस्तेमाल करने से पहिले हमारे भीमसेनी सुरमे का इस्तेमाल कीजिये।
मूल्य ।।।=) शीशी

ब्राह्मी शरबत

ब्राह्मी बूटी, बादाम आदि बुद्धि-वर्धक वस्तुओं से तैयार किया गया है। ठंडक और तरोताज़गी लाता है।
मूल्य १।) बोतल।

गुरुकुल फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी ज़ि. सहारनपुर

ब्रांच { देहली—चांदनी चौक। मेरठ— सिपट रोड।

एजेंसियां { उन्नाव—प० बालगोविन्द गया प्रसाद अवस्थी; बरेली—टाऊन हाल; आगरा—रावतपाड़ा

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 220

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ६]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ३१ ज्येष्ठ १९९८; १३ जून १९४१   [संख्या ७

पक्ष याग

(ले० श्री वीरेश जी विद्यालंकार)

पञ्च-महायज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ की विधि गृहस्थाश्रमवासियों के लिये शास्त्रकारों ने की है। इन यज्ञों के द्वारा जहां गृहस्थ परम प्रभु परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना उपासना, वायु वृष्टि वनस्पति जलादि की शुद्धि, माता पिता तथा अन्य पूज्य सम्बन्धियों की सेवा, घर के पालतू पशु-पक्षी प्राणियों को अन्न-जल दान तथा विद्वान् अभ्यागतों की सेवा द्वारा सत्संग का फल प्राप्त कर सकता है वहां वह अपने भले के साथ २ अपने आस पास के दायरे में इस प्रकार प्रेम-सहानुभूति-तथा परोपकार का आश्चर्य चित्त वायुमण्डल पैदा कर सकता है जिसकी कल्पना इस पृथ्वी पर स्वर्ग के उतर आने पर (यदि स्वर्ग जैसी वस्तु कहीं ऊपर के लोकों में हो) ही की जा सकती है। पञ्चमहायज्ञों का आज घर २ में प्रचार नहीं है, इनका पूरी तरह अनुष्ठान भी नहीं होता तो भी जैसे तैसे अधूरे रूप में जो कुछ इस समय हो रहा है उसमें सुधार और वृद्धि की जाय तो अवश्य ही पञ्च-महायज्ञों का वैदिक स्वरूप अपना व्यापक प्रभाव डाल कर देश के घर २ में नित्यप्रति होने वाली वस्तु बन जायेगी।

प्राचीन काल में नाना प्रकार के यज्ञ होते थे। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जितने भी यज्ञ होते थे उन सब में परोपकार की भावना प्रधान होती थी। यहां तक कि अश्वमेध यज्ञ जो कि 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' शत० ब्रा० १३. अ. १ इस शतपथ की उक्ति के अनुसार जो राष्ट्र का निर्माण रक्षण तथा संचालनरूप यज्ञ था वह भी राजा और प्रजा द्वारा तथा याजक और यजमान द्वारा इष्टपूर्त का महान् साधन होता था। 'इष्टपूर्त' अर्थात् 'इष्ट' व पूर्त का अपने इष्टदेव आत्मा-परमात्मा के दर्शन और ज्ञान के लिये उपासना आदि द्वारा चाहना करना तथा सम्पूर्ण, शिल्प कलाकौशलादि व्यवहार के द्वारा सुख-कामनाओं की पूर्ति करना यज्ञों के द्वारा ही सम्भव था। इस कारण प्राचीन आर्यों की यज्ञों में महती निष्ठा थी। वे यज्ञों को अपने सम्पूर्ण जीवन में व्यापक तत्त्व के तौर पर मानते थे और उसी यज्ञ-चक्र की शृङ्खला में बन्धे हुए अपने सब व्यवहार और परमार्थ की साधना तथा सिद्धि किया करते थे।

यह यज्ञ अनेक विध होते थे। कोई आत्मा सम्बन्धी, कोई अध्ययन- (स्वाध्याय) सम्बन्धी, कोई संस्कार सम्बन्धी, कोई नक्षत्र तथा ऋतुओं से सम्बन्ध रखने वाले, कोई पक्ष, मास तथा सम्वत्सर से सम्बन्धित होते थे। 'पूर्त' यज्ञ भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान था जोकि प्रायः वापी, कूप-तड़ाग, विश्रामागार तथा पाठशालादि निर्माण करने पर पूर्ण होता था। यह पूर्त प्रायःकर 'सकाम याग' था। परन्तु [illegible] का उपकार करना ही होता था। यही कारण है कि पूर्त याग की महिमा हिन्दू जाति के दिल में इतना घर कर गई थी कि गली-गली और कूचे २ में कूप तालाब तथा नगरों में धर्मशाला उद्यान (वृक्षारोपण) पाठशालादि का बनवाना एक समर्थ हिन्दू अपना धार्मिक कर्तव्य समझता था और इस कृत्य का उद्दिष्टफल यह समझता था कि जहां इस से नाम और यश प्राप्त होगा वहां मरने के बाद सुख लोक तथा सद्गति भी प्राप्त होगी ऐसा विश्वास रखता था।

पक्ष यज्ञ की परिपाटी कोई नवीन नहीं है। यह पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति देने के पश्चात् केवल तीन आहुतियों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। आहुतियां 'स्थालीपाक' अर्थात् मोहन-भोग, भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, आदि मधुर मिष्टान्न द्वारा दी जाती थीं। पौर्णमास्येष्टि की विशेष आहुति यह हैं,:—"ओम् अग्नये स्वाहा। ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओम् विष्णवे स्वाहा" इन तीन आहुतियों द्वारा 'भूः भुवः स्वः' अर्थात् पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवताओं का प्रीणन किया जाता था। उनकी तृप्ति कर उनसे उपकार प्राप्त करने का स्वाहाहुति द्वारा संकल्प बांधा जाता था। चन्द्रमा अन्तरिक्षस्थानीय देवता है। यह पूर्णिमा के दिन अपने 'अग्निषोमीय' गुण से प्रवृत्त होता है। उसकी इस प्रवृत्ति का हेतु ऋतुपक्ष का ईश्वरीय नियम है इसलिये इस अग्निषोमीय शीत-शान्त-सौम्य गुण के दाता प्रभु को हवि देने के द्वारा उसका तथा अग्निषोमीय गुण के प्राप्तिकर्ता पूनो के पूर्णचन्द्र का 'ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा' द्वारा हविर्दान और यजन किया जाता है।

अमावास्येष्टि में भी तीन आहुतियां इन मन्त्रों द्वारा दी जाती हैं। 'ओम् अग्नये स्वाहा। ओम् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ओम् विष्णवे स्वाहा' प्रथम और तृतीय आहुतियां समान हैं परन्तु मध्य की आहुति 'अग्नीषोमाभ्यां' के स्थान में 'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' यह होती है। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि सूर्य भी अन्तरिक्षस्थानीय है और चन्द्रमा के समान ही गोलाकार जड़ पिण्ड है तथापि पूर्ण प्रवृद्ध होने पर वह अपने ही गुणधर्मों से विशेष करके प्रकाशित होता है और वह गुण धर्म अनुपक्ष के ईश्वरीय नियम के अनुसार 'इन्द्राग्नि' इस सम्मिलित गुण के रूप में प्रवृद्ध हुआ २ अमावस्या के दिन तेज ओज और आलोक प्रदान करता है। वस्तुतः इन गुणों का प्रदाता और अधिष्ठाता स्वयं परमात्म देव ऊर्ध्वान्तरिक्षस्थानीय सूर्य द्वारा 'इन्द्राग्नि' गुणों से प्रकाशित होता है। इसलिये इन्द्राग्निभ्यां आहुति से चराचर के स्रष्टा और सर्वप्रेरक प्रभु की पूजा द्वारा 'इन्द्राग्नी' गुण के प्रतिकर्ता सूर्य देव के गुण की प्रशंसा हुई।

अध्यात्म पक्ष में यह तीनों आहुतियां वाक्, मन, प्राण की तथा इनकी अभिव्यक्ति द्वारा वाङ्मनस् तथा मनोवाङ् युगल (जागृति-स्वप्न) को अभियुक्त करके दी सकती हैं।

इस प्रकार देखा कि पक्षयाग अत्यन्त सहज-सुगम यज्ञ है। अन्य यज्ञों के संग में ही इसकी पूर्ति हो सकती है परन्तु भेद केवल यह है कि इसका 'दिन' अपना है और इसकी तीन आहुतियों की हवि भी अपनी है। गृहस्थाश्रमवासियों को इससे बेहतर आहुतियां सम्पन्न करने का अवसर तथा यज्ञशेष के रूप में मिष्टान्न खाने की मधुर वेला और नहीं है, यह योंही हाथ से न निकल जाय इसलिये लेखक की सविनय प्रार्थना है कि इस यज्ञ को भी सब बन्धु लगाने हाथ करने से कभी न चूका करें।

धर्मोपासक से

[वियोगी हरि]

धर्मोपासक, तुम्हारी तर्कवाहिनी, शास्त्रीय वाणी धर्म की क्या सारी ही प्राण-शक्ति को खींच लेगी? तुम्हारी गूढ़ उपासना किस तरह धीरे-धीरे महातत्त्व से धर्म का काया-कल्प करती आ रही है! अद्भुत अद्भुत!!

प्राचीन युग में इसके बिल्कुल उलटा होता था। तब का शोषक धर्म उपासकों के जीवन-तत्त्व का एक बिन्दु खींच लेता था। ऐसी निष्ठुर उपासना से उनका सिर्फ अस्थि-कंकाल भर रह जाता था। और उस अजीब क्रिया को 'तप' कहा जाता था!

तब का उपासक या साधक प्रायः क्षीणकाय होता था; आज का धर्म क्षीणकाय दिखाई देता है।

तुम्हारी नयी नयी शोधों ने सिद्ध कर दिया है कि तब का रक्त-शोषक बलिष्ठ धर्म भी अरक्षित था; और आज का शोषित दुर्बल धर्म भी सुरक्षित है।

तुम मानते हो कि असल बल तो 'उपासक' का बल है, धर्म का 'अपना' बल कोई बल नहीं।

धर्म का शोषण करके तुमने धर्म को संरक्षण दिया है। तुम्हारे कृतज्ञता-पाश में धर्म ऐसा बंध गया है कि तुम्हारे आदेशों से वह बाहर नहीं जा सकता।

पहले के उपासकों पर धर्म का शासन रहता था; अब उस पर तुम उपासकों का शासन है, और इसी लिए वह सुरक्षित है। तुम्हारी शोधों और प्रयोगों के पहले धार्मिक जगत् में लोग मानते थे कि धर्म स्वतः अपने से रक्षित है, धर्म की रक्षा तब धर्म से ही होती थी।

पर यह उनका भ्रम ही सिद्ध हुआ। साथ ही इसमें कोई पुरुषार्थ भी तो नहीं था। यह श्रेष्ठ आविष्कार तो तुमने किया कि धर्म की रक्षा अधर्म से भी हो सकती है, और होती है।

तुमने अनुभव किया कि तमस् और प्रकाश के बीच क्यों खामखा वैर या विरोध रहे? तुमने अपने धर्म-बल से दोनों को एक दूसरे की छाया तले सहज ही प्रतिष्ठित कर दिया!

प्राचीन धर्म-शोधकों के तो सारे प्रयत्न उलटे होते थे उनकी साधना जैसे एक अतुकान्त कविता थी। और फिर उसे वे 'सनातन—सिद्ध' करते थे। जैसे वे अवैर से वैर का, अक्रोध से क्रोध का और अहिंसा से हिंसा का शमन करना सिखाते थे।

मूल भूल उनकी, तब शायद यह रही होगी कि अक्रोध, अवैर, अहिंसा जैसी नकारात्मक चीजों को उन्होंने 'धर्म' मान लिया था। सहज को छोड़कर असहज की तरफ दौड़ना—भला, यह भी कोई धर्म साधना है?

इसी तरह एक और गलत रास्ता उन लोगों ने पकड़ लिया था। अर्थ और काम को भी वे धर्म से साधते थे; जब कि तुम्हारी सारी धर्म-साधना अर्थ और काम के द्वारा सम्पादित होती है।

तब वे लोग तो धर्म द्वारा असल में स्वरक्षा चाहते थे। धर्म को इतना कठोर और शक्ति-शाली मान रखा था कि कि उसकी रक्षा की उन स्वार्थ-साधकों को कोई परवाह नहीं थी।

उनकी दृष्टि में अरक्षित धर्म अपनी व्याख्या खुद बनाता था; जबकि उसकी व्याख्या आज तुम्हारी सहज युक्तियों द्वारा निर्णीत की जाती है। क्या यह कोई मामूली विकास है?

बुद्धिबल के अभाव में तब कोरे आचरण से काम लिया जाता था। 'धर्म-चर' का धुंधला दीपक उनके हाथ में रहता था। शुष्क आचरण पर वे तर्क-दुर्बल साधक भारी ज़ोर देते थे।

तब फिर वह अरक्षित धर्म अपने जड़ साधकों को किस तरह समृद्ध और सुखी बना सकता था? तभी तो वे भाग्यहीन 'ऋषि संज्ञक' प्राणी पर्णकुटियों या गिरिकंदराओं में वन्य मनुष्यों या पशुओं की तरह निष्क्रिय पड़े रहते थे। उन क्षीणकाय दरिद्रों के पास कौपीन और कमण्डलु के सिवाय और होता ही क्या था?

तुम मानते हो कि धर्म तो मूलतः अशक्त है—उसमें इतनी शक्ति नहीं कि वह खुद अपनी रक्षा कर सके।

तुम्हारी इस तर्क-शुद्ध मान्यता में भला कौन ग़लती निकाल सकता है !

नीति-बल से कभी धर्म की रक्षा हुई है? वह तो युक्तिबल और शरीरबल से ही होगी और दूसरे धर्मोपासक भी तो ऐसा ही कहते और करते हैं।

चाहे जैसे हो, जब तक भौतिक संगठन नहीं होगा, तबतक धर्म को ख़तरा ही रहेगा और ईश्वर भी उसे आशीर्वाद नहीं देगा।

और वे भी तो द्वेष, द्रोह, फूट, भेद और हिंसा को धर्मानुष्ठान में अलिंगन देते हैं। वे सब आज कैसे सुसंगठित और समृद्ध हैं! ईश्वर आज उनके वश में है—उनके ऊपर वह आशीर्वाद के फूल बरसाता है, और उनके शत्रुओं पर नरक की आग!

वह धर्म किस काम का, जो अर्थवाद में हमारा समर्थक न हो, जो काम-कांचन के निष्ठुर निग्रह से ग्रस्त हो, और हमारे शत्रुओं को जो हमारे ही शब्दों में अभिशाप न दे सके?

तुम्हें लगता है कि धर्म इसीलिए ख़तरे में पड़ गया था कि राजनैतिक स्वार्थों में उसका पूरा प्रयोग नहीं हुआ। द्वेष और हिंसा से उसे यथेष्ट पोषण नहीं मिला।

तुम्हारी यह धारणा सर्वथा सही है कि सत्यता, दया क्षमा और अहिंसा ने धर्म को निर्वीर्य कर डाला और यही कारण है कि उसका अस्तित्व तक ख़तरे में पड़ गया।

पर यह निश्चय है कि तुमने उसे नाश होने से बचा लिया। अच्छा हुआ कि तुमने द्वेष का संजीवन बीज बो दिया। तुम्हारे सत्प्रयत्न से बुद्धि-भेद पैदा हो गया है, समता के प्रति उपेक्षा हो चली है। मनुष्य में प्रति-हिंसक वृत्तियां जाग उठी हैं। राज-प्रकरण और अर्थवाद ने निष्प्रभ दुर्बल धर्म को तेजस्वी और शक्तिशाली बनाने का निश्चय कर लिया है।

तुम्हारे मत से धर्म के ह्रास का एक ज़बर्दस्त कारण उसके साधकों की 'निष्काम' या 'अहेतुक' साधना भी है।

प्रथम तो दया को धर्म का मूल घोषित करना, और फिर उसके प्रयोग में कोई 'हेतु' न रखना—ऐसी निरर्थ साधना से आख़िर लाभ ही क्या? वह तो व्यर्थ का एक अव्यापार हुआ!

तुम्हें यह स्पष्ट हो गया है कि धर्म की रक्षा होगी तो ख़ालिस व्यापारी बुद्धि से ही होगी। फल या फ़ायदे का विचार किये बग़ैर धर्म का आचरण कर बैठना निरी मूर्खता है।

अनासक्ति का उपदेश करने वाला धर्म आसमानी कल्पना की 'ब्राह्मी संपत्ति' को भले घर बैठे प्राप्त करा दे, पर प्रत्यक्ष में तो वह धर्म चार पैसे का भी फ़ायदा नहीं करा सकता।

इसीलिए तुम जिस धर्म की रक्षा का ज़िम्मा लेते हो, उसे पहले 'लाभ-वाद' की अचूक कसौटी पर कस लेते हो।

इतना काफ़ी है कि तुम्हारा साध्य शुद्ध है—तुम्हें इसकी चिंता नहीं कि साधन शुद्ध है या अशुद्ध। धर्म बच जायगा, तो साधन तो अपने आप शुद्ध हो जायेंगे। यह पुराना विचार ग़लत है कि धर्म-दृष्टि से देखा जाय तो साध्य और साधन में कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं। व्यवहार-मूढ़ ऋषियों की ही यह विचार धारा थी।

मंत्रों के जो स्रष्टा या द्रष्टा थे, उनका शायद व्यवहार-व्यापार से बहुत कम सम्बन्ध रहा होगा। उन्हें इस बात का पता नहीं था कि किन किन साधनों से धर्मोपासक को लाभ पहुंच सकता है। कम-से-कम तुम पुरातत्त्वशोधकों को ऐसा कोई आर्ष प्रमाण नहीं मिला।

तुमने देख लिया कि धर्म का आग्रह रखना अच्छा नहीं। तुम्हारी दृष्टि में आग्रह रखना तो जड़ता का लक्षण है। धर्म से चिपटे रहने में बुद्धिमानी नहीं। धर्मोपासना तो एक सुविधा की चीज़ होनी चाहिए। उसे चाहे जब हलकी मुट्ठी से पकड़ा जा सके और चाहे जब त्यागा जा सके।

सामान्य धर्म को कुंठित बुद्धि वाले आरण्यकों ने देशकाल परिस्थिति की परिधि से बाहर माना था, और उससे सदा चिपटे रहने का आदेश दिया था। निश्चय ही यह अविकसित बुद्धि की सूझ थी। विशेष धर्म के प्रति किसी अंश तक आग्रह रखने की बात तो कुछ समझ में भी आ सकती है, पर यह साधारण धर्म का आग्रह तो विचित्र ही है!

तुम्हारी धर्मोपासना तो तुम्हारी व्याख्या और तुम्हारे ही भाष्य का अनुसरण करेगी, कारण कि उसमें चेतना है, गुंजाइश और सुविधा है।

अतः धर्मोपासक, तुम्हारा ही मार्ग राजमार्ग है।

(सर्वोदय से)

——o——

स्रष्टा का छल

मैं खिंचा नहीं, पर खिंचा कौन ?
आत्मा या मेरा परमात्मा
मोही अन्तस् या प्राण हृदय ?
है कठिन नहीं, है बहुत सरल
संसृति का सुन्दर मधु अभिनय !
गङ्गातट, हिमगिरि का आंचल, टूटा छलिया का यहां मौन !
छाया कण कण में स्रष्टा की
सुन्दरता का उल्लास नूर !
मैं देख नहीं पाता कुछ भी
क्षण क्षण होता मैं बहुत दूर !
'वह दूर दूर, वह पास पास' श्रुति में कोलाहल मचा-कौन ?
वह मुझे खींचता जाता है
मैं उसका ही हूं अनुगामी,
कोयल बोली अमराई से
जैसा अनुचर वैसा स्वामी !
वैसे तो अब तक जगती में बोलो किसको है जैसा कौन ?
मैं खिंचा नहीं, पर खिंचा कौन !

—श्री सत्यभूषण 'योगी'।

गुरुकुल

३१ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९८

अविद्या गरीबी और परतन्त्रता की समस्या

(ले० श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार)

[२]

'ईशावास्य' सूक्त में कहा है:-"तुम लालच मत करो- प्रभु के अटल नियमों के मुताबिक जितना तुम भोग सकते हो-- उतना ही तुम्हारा है। शेष सब प्रजापति का समझो, अपना नहीं। काम करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो"।

मकान ईंटों का है-कपड़े रुई के हैं-बर्तन धातु के हैं; यह स्पष्ट देखकर भी मनुष्य कहता है-कि-मेरा है-कितना झूठ कहता है। जिन नियमों के मुताबिक यह बनते हैं-कायम रहते या मैं इन्हें भोगता हूँ उन नियमों से लाचार हो कर भी मैं नहीं समझता कि इन्हीं नियमों का सारा खेल है। मैं रख भी लूँगा-तो-भोग नहीं सकता। क्यों, मैं सबके लिए दूसरे के भोग में आने योग्य वस्तु को रोकता हूँ। यही वास्तव में ईश्वरीय नियम से चोरी है। इस प्रकार पूँजी का विभाग भी सार्वजनिक सम्पत्ति समझ कर ही हो सकता है। यहां पर दोनों पक्ष समाजवादी तथा आर्यसमाजी एक मत होंगे। कुछ लोग योग्यता के अनुसार पूँजी विभाग मानते हैं। योग्यता के अनुसार श्रम का विभाग होता है, न कि पूँजी का।

'पूँजी एवं श्रम' के विभाग के सम्बन्ध में जिन नियमों को मानकर आर्यसमाज चलता है वे नियम नित्य हैं- वे नियम मनुष्याधीन भी नहीं। उनको प्राकृतिक या ईश्वरीय कुछ भी कह सकते हैं। कार्लमार्क्स ने अन्तरात्मा तथा विचारों की बाबत लिखा है-जिस युग में जिस वर्ग या दल का शासन होता है-उसी के विचारों की प्रधानता रहती है।

कार्लमार्क्स इस प्रकार समझता है, कि कोई नित्य-निश्चित मत मनुष्य का बन नहीं सकता। आर्यसमाज भी इसी बात को मानता है। अतः यह मानवीयमत की जगह ईश्वरकृत नित्यमानुकूल निश्चित मत का ग्रहण करना उचित समझता है।

कार्लमार्क्स कहता है- "मनुष्य के अस्तित्व का आधार उसके विवेक या अन्तरात्मा के आदेश पर नहीं होता। वरन विवेक या अन्तरात्मा का आधार उसकी सामाजिक स्थिति या दशा पर होता है।"

कार्लमार्क्स की दृष्टि में मजदूर और पूंजीपति ही थे। नित्य नियम उस की दृष्टि से ओझल थे। मैं मानता हूं कि गरम पानी में पड़ा हाथ साधारण पीनेयोग्य पानी को ठण्डा कहता है। बर्फ में पड़ा हाथ गरम कहता है, तो क्या, वैज्ञानिक सत्य जाना नहीं जा सकता, ऐसा कह दें। गरीब ५) पाकर खुश है-अमीर ५) पाकर खुश नहीं होता; क्योंकि १००) की आशा रखता है। तो क्या, ५) पांच रुपये नहीं रखूंगे। सन्तोष तो मानवीय मूर्खता है, आपेक्षिक ज्ञान है- वैज्ञानिक नहीं। यही कारण है कि मार्क्स जिस की निन्दा कर रहा है- उसी की निन्दा हम भी करते हैं-आपेक्षिक ज्ञान होने से। किन्तु हम नित्यज्ञान या वैज्ञानिकज्ञान भिन्न मानते हैं। हमने पूँजी विभाग की बाबत "ईशावास्य सूक्त" का ही निश्चय मानते हैं-जो बताता है- "जितना भोग सकते हो, उतना ही तुम्हारा है।" वह भी परिवर्तन के अनुसार बदलता हुआ, कुछ देर के लिए तुम्हारा होता है। उस नित्य परिवर्तन शीलता के नियम के मुताबिक तुम भी परिवर्तन में निमित्त कारण बन जाते हो।

'कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो' में भी मार्क्स ने यही विचार लिखे हैं। इस प्रकार समाजवादी और आर्य समाजी श्रम विभाग एवं पूंजीविभाग में कितना मतभेद रखते हैं- यह साफ हो जाता है।

रियासतें और ब्रिटिश भारत

(श्री० गुरुदत्त, विद्यार्थी राजनीति तथा अर्थशास्त्र)

(१)

प्रकृति ने भारतवर्ष को जाति, भाषा तथा धर्म की दृष्टि से एक संगठित देश बनाया है परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं ने इसको अनेक भिन्न राजनैतिक राज्यों में विभक्त कर दिया है। भौगोलिक दृष्टि से रियासतों तथा ब्रिटिश भारत की सीमा कृत्रिम हैं। आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी इनमें भेद नहीं प्रतीत होता परन्तु राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष छोटी और बड़ी रियासतों का समूह माना जा सकता है।

राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष चार असमान भागों में विभक्त किया जा सकता है। ब्रिटिश, भारतीय, फ्रेन्च, पोर्तुगीज़। इनमें फ्रेन्च तथा पोर्तुगीज़ इन दोनों का संयुक्त भाग १८३४ वर्गमील में है जिसकी आबादी ९ लाख के करीब है। वह भारत के किंचिद् भाग में अपना राज्य करते हैं अतः यहां पर विचार के लिए हम उनको छोड़ देते हैं। हमारी दृष्टि में भारतवर्ष इस समय दो भागों में बंटा हुआ है। एक ब्रिटिश भारत जिसका शासन एक संगठित रूप में एक ही नियम के अन्दर प्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश गवर्नमैन्ट के अधीन है। दूसरे भारतीय रियासतें जिनका शासन शक्तिशाली राजाओं तथा रैज़ीडैन्टों के द्वारा भिन्न २ प्रकार के राज्यों में बिना किसी संगठन तथा एक नियमों के परस्पर अत्यन्त भिन्न शासन नियमों द्वारा किया जाता है।

वर्तमान रियासतों तथा ब्रिटिश भारत में जो राजनैतिक सम्बन्ध है वह एक क्रान्तिकारी प्रक्रिया का परिणाम है जो कि कई सदियों से होती रही है तथा वर्तमान समय में भी निरन्तर होती चली जा रही है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजाओं के साथ सन्धियों, सनदों को प्रदान करने तथा १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम स्वरूप भारतीय रियासतों ने एक नवीन संगठन का क्षेत्र Crown के नीचे रह कर स्वीकार किया है। १८५८ में रानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में स्पष्टतया यह घोषित किया था कि भारत के राजाओं के साथ जो सन्धियाँ तथा शर्तें तय हुई हैं वह पूर्णतया सुरक्षित रखी जावेंगी और उनका पालन अवश्यम्भावी होगा। राजाओं की मान मर्यादा, अधिकार तथा प्रतिष्ठा का पूरा २ ध्यान रखा जावेगा।

उस समय की रियासतों के राजाओं तथा सरदारों को किस प्रकार के वचन देकर उनकी झूठी सर्वोच्चसत्ता घोषित की गई इसका यहां पर वर्णन करना सुगम नहीं है परंतु जैसा कि सरटेलनी मेन ने कहा है कि भारतवर्ष में प्रत्येक प्रकार की विभिन्न २ सर्वोच्चसत्ताएँ प्राप्त हो सकती हैं इसमें तनिक सन्देह नहीं परन्तु वास्तव में वहां पर एक ही स्वतंत्रसत्ता है वह है ब्रिटिश गवर्नमैंट। ब्रिटिश भारत की प्रान्तीय सरकारें जिस प्रकार संगठित तथा दृढ़ हैं और उनका उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से ब्रिटिश पार्लियामैन्ट पर है। एवं भारतीय रियासतें असंगठित तथा राजनैतिकदृष्टि से परस्पर पृथक् पृथक् हैं। प्रत्येक रियासत का शासन भिन्न २ व्यक्ति द्वारा होता है और उनका आपस में किसी प्रकार का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता उनमें कोई भी ऐसी संयुक्त सरकार नहीं जो कि सामान्य विषयों में शासन करने का संयुक्त निश्चय कर सके। इन रियासतों में इसके सिवाय अन्य कोई समानता नहीं कि वह सब भारतीय राजाओं के द्वारा शासित की जाती हैं जिनमें सर्वोच्चसत्ता भारतीय राजाओं के हाथ में न रह कर ब्रिटिश गवर्नमैन्ट के हाथ में होती है। देशी राज्य किसी एक विशेष भूमि खण्ड में न रह कर प्रायशः भारत के अनेक भागों में ब्रिटिश भारत की भूमि द्वारा घिरे हुए हैं।

बहुत सी रियासतें अपने यातायात तथा व्यापार के लिए ब्रिटिश भारत पर पूर्णतया आश्रित है। इसके विपरीत ब्रिटिश भारत में भी अन्तर्प्रान्तीय व्यापार या यातायात भारतीय रियासतों में प्रवेश किए बिना असम्भव हैं। जैसे कि पटियाला के नरेश ने एक दफा कहा था कि, प्रत्येक सौ २ मील के बीच में बिना देशी राज्य में घुसे किसी भी व्यक्ति के लिए बम्बई से कलकत्ता, बम्बई से देहली तथा बम्बई से मद्रास की यात्रा करना असंभव होगा।

यह स्पष्ट है कि देशी राज्यों में आर्थिक तथा राजनैतिक प्रभाव ब्रिटिश भारत की आर्थिक नीति से तथा राजनैतिक योजनाओं से अवश्य पड़ता है।

अतएव कहा जा सकता है देशी राज्यों तथा ब्रिटिश भारत में केवल भौगोलिक एकता ही नहीं लेकिन आर्थिक एकता भी है इसी प्रकार धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि कोण से भी कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में जाति, भाषा, और धर्म की अत्यन्त भिन्नता है परन्तु इस दृष्टि से रियासतों तथा ब्रिटिश भारत में कोई भेद नहीं किया जा सकता। यदि ब्रिटिश भारत में हिन्दू मुस्लिम सवाल है तो रियासतों में भी यह समस्या प्रबल रूप में पायी जाती है। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से भारत एक है एक ही संस्कृति सारे ही भारत में विद्यमान है लेकिन राजनैतिक दृष्टि से दो विभाग किए जा सकते हैं एक ब्रिटिश भारत दूसरे देशी राज्य।

[२]

देशी राज्यों की जनसंख्या लगभग छः करोड़ छयासी लाख बावन हज़ार नौ सौ छहत्तर है जो कि लगभग पांच लाख आठ हज़ार एक सौ अट्ठतीस वर्ग मील में फैला हुआ है। इसका क्षेत्र देशी राज्यों समेत भारतवर्ष का ⅖ वां भाग है तथा जन संख्या कुल जन संख्या का ¼ है। यह देशी राज्य सारे भारत के प्रत्येक प्रदेश में फैले हुए हैं, प्रत्येक राज्य में भिन्न २ प्रकार की ऋतुएं, भूमियां तथा दृश्य होते हैं।

बटलर रिपोर्ट ने इसको बड़ी अच्छी तरह वर्णन किया है। भारत की रियासतों में प्रकृति की महान से महान तथा तुच्छ से तुच्छ दोनों प्रकार की ही कृतियां मिल सकती है। हिमालय के शाश्वत हिमाच्छादित शिखर पूर्व के रहस्यों तथा प्राचीन ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रतीक हैं। त्रावणकोर तथा कोचीन की शान्त तथा गम्भीर झील के सन्मुख प्राचीन संसार के पश्चिमीय साहस उपहासास्पद से प्रतीत होते हैं। मध्य भारत तथा राजपूताने के वह विस्तृत मैदान पर्वतीय फुर्तियों के साथ उन रोमांचक दृश्यों तथा शूरवीरता के दिनों की याद दिलाते हैं जो कि अभी जीवित से प्रतीत होकर बड़े २ कार्यों तथा विचारों को करने में प्रेरणा देते हैं ?

हैदराबाद और मैसूर की पहाड़ियां तथा मैदान हीरों, तथा सोने के लिए अभी तक विख्यात हैं, दरिया, जंगल तथा बड़े २ जल प्रपात हमारे प्राचीन इतिहास को बारम्बार याद दिला रहे हैं। भारतीय रियासतें कुछ प्राकृतिक समूहों में विभक्त हुई हैं। सर्व प्रथम उत्तर पश्चिम में काश्मीर और जम्मू की रियासतें हैं जो कि सौन्दर्य तथा प्राकृतिक छटा के लिए प्रसिद्ध हैं इसके अनन्तर ३४ रियासतें पंजाब की हैं जिनमें १८ तो शिमला की पहाड़ियों में हैं सारे संयुक्त प्रान्त में ३ ही रियासतें हैं जो कि परस्पर दूर २ हैं। बिहार और उड़ीसा के दक्षिण में २६ रियासतें हैं जो कि एक विशेष समूह में हैं।

बंगाल में दो रियासतें कूच बिहार और त्रिपुरा हैं। आसाम में एक रियासत मनीपुर है। उत्तर पूर्व में सिक्किम नाम की एक पहाड़ी रियासत है। भारत के सुदूर पश्चिम बिलोचिस्तान में दो रियासतें हैं। उसके नज़दीक ही २०६ रियासतों का एक बृहद् समूह है जो कि पश्चिमीय भारतीय देशी राज्य एजैन्सी के नाम से कहा जाता है। इसके बाद राजपुताने की २१ रियासतें हैं। पर भारत की महान ग्वालियर रियासत है जो कि इन समूहों से सर्वथा पृथक् है। इसके अनन्तर २ समूहों में मध्य भारत की ८० रियासतें हैं। मध्य प्रान्त में १५ रियासतें हैं। पश्चिमी किनारे पर मुख्य रियासत बड़ोदा है। बाम्बे में १५१ रियासतों का समूह है। दक्षिण में सब से बड़ी भारत

की रियासत हैदराबाद है। इसके भी दक्षिण में एक अन्य बड़ी रियासत है जो कि प्रत्येक प्रकार उन्नति की दृष्टि से बहुत बढ़ी चढ़ी है वह मैसूर है। मद्रास प्रैज़ीडैन्सी में ५ रियासतें हैं, जिनमें दो तो कोचीन और त्रावण कोर हैं।

इस प्रकार इस समय सारे भारत वर्ष में ५६३ रियासतें हैं। वर्तमान काल में वह सभी इतनी अधिक विभिन्न श्रेणियों में विभक्त हुई २ हैं कि उनका वैज्ञानिक श्रेणी विभाजन करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु फिर भी हम उन्हें अधिकारी वर्ग की दृष्टि से ३ विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) वह रियासतें जिनके शासक स्वाधिकार से नरेन्द्र मण्डल के सदस्य हैं। जिनकी संख्या १०८ है।

(२) वह १२७ रियासतें जिनको अपने में से नरेन्द्र मण्डल के लिए केवल १२ सदस्यों को चुनने का अधिकार है।

(३) तीसरी श्रेणी उन ३२७ रियासतों की है जिनका कोई भी प्रति निधि नरेन्द्र मण्डल में शामिल नहीं है। इस श्रेणी विभाजन का कोई क्रियात्मक उपयोग नहीं लेकिन सिर्फ नरेन्द्र मण्डल की दृष्टि से ही इसका विभाजन किया गया है।

एवं इससे पूर्व कई प्रकार के रियासतों के श्रेणी विभाजन किए गए हैं परन्तु उनमें कोई सन्तोष जनक नहीं है। यदि हम बड़ी और छोटी रियासतों के रूप में सबको विभक्त कर सकें (जो रियासत क्षेत्र फल, भूमि कर जन संख्या प्राचीन काल की महत्ता, तथा योग्यता में बढ़ी चढ़ी हो उसको बड़ी, तथा जो इनकी दृष्टि से न्यून हो उनको छोटी) तो यह अत्यन्त उत्तम होगा।

इनमें जो बड़ी रियासतें जिनका शासन प्रबन्ध आधुनिक मापदण्ड के अनुसार है जो कि आर्थिक दृष्टि से स्वात्म निर्भर हैं अकेली वही रियासतें ही ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य के संघ बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। अन्य छोटी तब तक उस संघ में प्रविष्ट न हों जब तक कि वह कुछ मिल कर अपना पर्याप्त आर्थिक संगठन न कर लें। हमारी यही सम्मति है, जिसके आधार पर हमने इस विषय को विशेष तौर पर छेड़ा है कि संघ बनाने में इन्हीं बड़ी रियासतों पर ही विचार करना चाहिए जो कि सभ्यता की दृष्टि से आधुनिक हों, तथा आर्थिक दृष्टि से संगठित हों। इस सम्बन्ध में पूरा विचार हम अगले अंक में करेंगे।

गुरुकुल संरक्षक सभा का विधान

१. उद्देश्य—

(१) ब्रह्मचारियों की शारीरिक तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार की देख रेख करना।

(२) उनके अभाव और त्रुटियों की ओर अधिकारी वर्ग का ध्यान आकर्षित करना तथा उचित उपायों द्वारा उन को दूर करना।

(३) अवस्था विशेष में असमर्थ संरक्षकों के ब्रह्मचारियों की सहायता करना।

(४) गुरुकुल की उन्नति में यथा शक्ति सहायता करना।

२. इसके पदाधिकारी निम्नलिखित होंगे—प्रधान १, उपप्रधान २, मन्त्री १, उपमंत्री २, कोषाध्यक्ष १, निरीक्षक १। (हिसाब सभा)

अन्तरङ्ग सभा ११ सभासद।

३. विविध नियम—

(१) इस सभा का वार्षिक अधिवेशन गुरुकुल के उत्सव पर हुआ करेगा और अवस्था विशेष में बीच में भी हो सकेगा।

(२) चुनाव उत्सव पर होगा।

(३) प्रत्येक संरक्षक इस सभा का सदस्य होगा।

(४) सदस्य शुल्क १) एक रुपया वार्षिक होगा।

(५) वार्षिक उत्सव पर जितने भी संरक्षक आये हों उनके एक तिहाई हिस्से की हाज़िरी का कोरम गिना जावेगा। स्थगित मीटिंग के लिये कोरम की आवश्यकता न रहेगी।

इस वर्ष संरक्षक सभा गुरुकुल कांगड़ी व इन्द्रप्रस्थ का अधिवेशन ११ अप्रैल १९४१ को सायंकाल गुरुकुल भूमि में हुआ चुनाव निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान—पण्डित रामकुमार जी, चविण्डा निवासी।

उप प्रधान—१ डा० सालगराम जी, बदायूँ यू० पी०।

२ म० लक्ष्मीदयाल जी मुख्तार, एटा।

३ म० मेहरचन्द जी धीमान, कलकत्ता।

मंत्री—म० हरिशंकर जी गर्ग बी० एस० सी०, एल० टी०, नजीबाबाद

उपमन्त्री—१ म० ब्रह्मदत्त जी, स्यालकोट।

२ म० हरिचरनलाल जी अग्रवाल, इन्दौर

कोषाध्यक्ष—गुरुकुल आफिस

निरीक्षक हिसाब—म० देवीदयाल जी

निम्न प्रस्ताव संरक्षक सभा के ११, १२, १३ अप्रैल १९४१ के अधिवेशनों में पर्याप्त वाद-विवाद व विचार विनिमय के पश्चात् सर्व सम्मति से पास हुए

१. गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के संरक्षकों की संख्या लगभग ४५० होने के कारण संरक्षक सभा यह आवश्यक समझती है कि इस सभा का गुरुकुल के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग स्थापित करने के निमित्त गुरुकुल की विद्या सभा में एक तिहाई सदस्य संरक्षक सभा की तरफ से और संरक्षकों में से चुने हुए सभासद् लिये जावें

२. संरक्षक सभा अपने मन्त्री जी को १०) दस रुपया तक एक वक्त में खर्च करने का अधिकार देती है।

३ संरक्षक सभा यह निश्चय करती है कि प्रत्येक संरक्षक गुरुकुल कार्यालय से पुरुषार्थ निधि का कापियां मंगा कर प्रतिवर्ष वार्षिकोत्सव पर चन्दा इकट्ठा करके थोड़ा बहुत अवश्य लाया करें ताकि वह धन ब्रह्मचारियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यय किया जाय।

४. संरक्षक सभा गुरुकुल के निरीक्षण के लिये म० लक्ष्मी दयाल जी मुख्तार एटा उपप्रधान व म० हरिशंकर जी गर्ग बी० एस सी०, एल. टी, नजीबाबाद को मंत्री नियुक्त करती है।

५. संरक्षक सभा निश्चय करती कि जब कभी किसी संरक्षक के पास उसके ब्रह्मचारी की किसी प्रकार के दुर्व्यवहार की सूचना गुरुकुल के संचालकों की ओर से मिले तब उस संरक्षक का प्रथम कार्य संरक्षक सभा को सूचित करना होना चाहिये ताकि ब्रह्मचारी की भूल को शीघ्र से शीघ्र दूर किये जाने का उद्योग किया जा सके, और जब कभी भी कोई संरक्षक गुरुकुल म आवे अपने गुरुकुल के अनुभव तथा हर प्रकार की शिकायत को विस्तार से लिखकर मंत्री संरक्षक सभा के पास अवश्य भेज देवे ताकि उन शिकायतों को दूर करने का उद्योग सभा की तरफ से किया जा सके।

६. संरक्षक सभा गत वर्ष के मंत्री के त्याग पत्र को सभा में पेश होने पर दुःख के साथ स्वीकार करके उनके पूर्व कार्य के लिये धन्यवाद देती है तथा उनसे प्रार्थना करती है कि सभा के जो कुछ कागजात व हिसाब उनके पास हों कृपा करके शीघ्र वर्तमान मंत्री के पास भेज देवें और आशा रखती है कि जहां तक हो सके वे भावी कार्य में भी अपना पूर्ण सहयोग देने की कृपा करें।

७. यह निश्चय किया गया कि संरक्षकों में पारस्परिक सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये संरक्षकों के पते सहित सूची छपा कर एक २ प्रति प्रत्येक संरक्षक के पास भेजी जावे।

भवदीय—
हरिशंकर बी एस. सी., एल. टी.
मंत्री संरक्षक सभा गुरुकुल कांगड़ी
नजीबाबाद (बिजनौर)
यू० पी०

गुरुकुल समाचार

होम्योपैथी पर व्याख्यान माला—

गत ६ जून को लायलपुर के प्रसिद्ध होम्योपैथ डाक्टर श्रीयुत हरिवंशलाल जी गुरुकुल पधारे। आप श्री मुख्याधिष्ठाता जी द्वारा निमन्त्रित होकर होम्योपैथी पर एक व्याख्यान माला देने के लिए आए हैं। होम्योपैथी के विभिन्न ७ विषयों पर आप व्याख्यान देंगे। १० जून से प्रतिदिन रात्रि को ८॥ बजे से ९॥ बजे तक आपके रोचक एवं प्रभावशाली व्याख्यान हो रहे हैं। अभी तक आपके तीन व्याख्यान हो चुके हैं। उपस्थित संतोष जनक रहती है। व्याख्यानों में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त अधिकारी वर्ग, प्रोफेसर तथा अन्य कार्यकर्ता गण भी बड़े उत्साह और दिलचस्पी से शामिल होते हैं। गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के कोर्स में इस वर्ष से होम्योपैथी की पढ़ाई भी प्रारम्भ की जायगी उसके लिये इन व्याख्यानों से होम्योपैथी के योग्य अच्छा वायु मण्डल गुरुकुल में तैयार हो रहा है।

इस व्याख्यान-माला के समाप्त होने के बाद, इसके आगे दूसरी व्याख्यान माला प्रारम्भ करवाने का आयोजन भी अधिकारी वर्ग कर रहे हैं।

गुरुकुल वैद्यनाथधाम का

गुरुकुल कांगड़ी से सम्बन्ध

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम का नवीन शिक्षा-सत्र इस सप्ताह से प्रारम्भ हो गया। पढ़ाई नियम पूर्वक चल रही है। १ जून को श्री सेठ दीपचन्द जी पोद्दार के सभापतित्व में अन्तरङ्ग सभा की बैठक हुई। इसमें यह महत्त्व पूर्ण निश्चय किया गया कि गुरुकुल में शिल्पकला को भी शिक्षा का आवश्यक अंग बना दिया जाय। इसका प्रारम्भ वस्त्रों की बिनाई और बागवानी से होगा। बिनाई के प्रारम्भिक व्यय के लिए श्री सेठ दीपचन्द जी ने १००) तथा श्री पं० मिहिरचन्द जी धीमान ने ५०) प्रदान करने की उदारता प्रदर्शित की है। बागवानी के लिए श्री रायबहादुर ब्रजनन्दनसिंह, रिटायर्ड एक्साइज कमिश्नर बिहार ने ३५०) की लागत का एक कूप बनवा दिया है। तदर्थ ये सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

बिहार और बंगाल प्रान्त की आर्य जनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल कांगड़ी की विद्या सभा ने अपने गत अधिवेशन में गुरुकुल वैद्यनाथधाम की "विद्यारत्न" परीक्षा को अपनी अधिकारी परीक्षा के समकक्ष स्वीकृत कर लिया है। इस स्वीकृति के कारण यहां से दशम श्रेणी पास करके विद्यार्थी गुरुकुल कांगड़ी के महाविद्यालय विभाग में सीधा प्रवेश पा सकेंगे। बिहार और बंगाल प्रान्त के अभिभावकों को जिन्हें गुरुकुल कांगड़ी के दूर होने तथा वहां शुल्क की कुछ अधिकता होने के कारण अपने विद्यार्थियों को भेजने में कठिनाई होती थी—अब स्वल्प व्यय में और समीप ही यहां पर अपने बालकों को पूर्ण योग्य बनाने का सुअवसर प्राप्त हो गया है। महाविद्यालय विभाग में आने वाले विद्यार्थियों को योग्यतानुसार श्री सेठ दीपचन्द जी द्वारा प्रदत्त छात्र वृत्ति भी मिल सकेगी। गुरुकुल वैद्यनाथधाम में प्रारम्भिक ५ श्रेणियों का मासिक शुल्क ११) तथा ऊपर की ५ श्रेणियों का १३) है। जो अभिभावक अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं। उन्हें गुरुकुल कार्यालय से प्रार्थनापत्र नियमावली आदि मंगा कर शीघ्र बालकों को प्रविष्ट करा देना चाहिए।

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वैद्यनाथधाम
सन्थाल परगना, बिहार।

स्वास्थ्य समाचार

अशोककुमार १४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, नित्यदेव १४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, प्रेमप्रकाश ५ श्रेणी विषमज्वर, रामचन्द्र ४ श्रेणी खसरा, सर्वमित्र ४ श्रेणी खसरा, कान्तिकुमार ४ श्रेणी खसरा, रूपनारायण ३ श्रेणी खसरा, बालचन्द्र ३ श्रेणी खसरा, श्यामबिहारी ३ श्रेणी खसरा, सत्यप्रिय ३ श्रेणी खसरा, रामप्रकाश बोली ४ श्रेणी विषमज्वर, मदन २ श्रेणी रक्तातिसार, विश्वदेव ४ श्रेणी विषमज्वर, महेन्द्र ४ श्रेणी विषमज्वर।

गतसप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। चि० ब्र० मदन को अभी आंव खून की शिकायत है आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा। आज-कल वर्षा होने से मौसम ठण्डा है।

——

चौधरी मूलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ७ आषाढ़ १९९८; २० जून १९४१ [संख्या ८

गुरुकुल कांगड़ी में बुनियादी तालीम का एक वर्ष

(ले० श्री प्रो० हरिदत्त जी वेदालङ्कार)

संवत् १९९७ की समाप्ति के साथ, गुरुकुल कांगड़ी में बुनियादी तालीम का पहला वर्ष खत्म होता है। इस एक साल में शिक्षा-सम्बन्धी अनेक नये अनुभव हुए। कताई के बारे में कई असली कठिनाइयाँ आयीं और उनके हल सोचे गये। जाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट में दिये गये पाठ्यक्रम को, खासकर उसके कताई-सम्बन्धी हिस्से को आदर्श मानकर, उसे अमल में लाने की भरसक कोशिश की गई। वर्ष के खत्म होने पर, सारी प्रगति पर नजर डालते हुए, यह देखना आवश्यक हो जाता है कि हम इस आदर्श को कितना निभा सके हैं और हमारे अनुभवों के आधार पर जाकिर हुसैन कमेटी के पाठ्यक्रम में किन परिवर्तनों की आवश्यकता है।

पहली छमाई की रिपोर्ट 'नई तालीम' के मार्च १९४१ के अङ्क निकल चुकी है। वर्षभर की आलोचना करने के पहले दूसरी छमाई की कताई की रिपोर्ट देना आवश्यक है। इसमें मज़दूरी की दर सूत के नम्बर के अनुसार अ० भा० चरखा संघ की मंजूर की गई दर से ही लगाई गई है। कताई के साथ धुनाई की मज़दूरी भी जोड़ी गई है। इस छमाई की यह विशेषता रही कि जितनी भी रुई विद्यार्थियों ने इस अर्से में काती वह सब उन्होंने स्वयं बोई, चुनी, ओटी और धुनी थी। इस तरह कताई और धुनाई में ७।≠)॥ और कपास की कीमत से १॥॥) हमें प्राप्त हुए। इसमें से गुम हुए और टूटे-फूटे सामान की क़ीमत ७) निकाल दी जाय, तो विद्यालय को १६।≠) की आमदनी हुई। इस प्रकार फ़ी विद्यार्थी आय ७ आना साढ़े ७ पाई हुई। इसके साथ पहली छमाई की १० आना साढ़े ५ पाई की कमाई जोड़ी जाय, तो हर विद्यार्थी की सालभर की कमाई १=, १ पाई हुई।

दूसरी छमाई की आय कम होने का कारण यह था कि इस छमाई में कताई बहुत कम हुई। पिछली बार कताई के दिन १३२ थे, मगर इसबार कुल ६० ही थे। कताई के दिनों की कमी के कई कारण हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि इस छमाई की विशेषता यह थी कि विद्यार्थियों ने कपास की खेती से लेकर सूत कातने तक सब प्रक्रियाएँ खुद की थीं। ये सब काम कताई के लिए नियत समय में ही हुए, इस कारण उस समय विद्यार्थी कताई न कर सके। साथ ही पहली छमाई में कताई के लिये डेढ़ घण्टा दिया जाता था, मगर इस छमाई में पढ़ाई की अधिकता के कारण सवा घण्टा ही दिया गया। परन्तु अपने आप धुनने का परिणाम बहुत अच्छा है। विद्यार्थियों की गति, सूत के नम्बर, मज़बूती व समानता में काफ़ी उन्नति हुई। उत्पादन की शक्ति भी बढ़ी। पिछली छमाई में डेढ़ घण्टा कताई की दैनिक आमदनी .६४ पाई थी; किन्तु इस छमाई में सवा घंटे की कताई में यह आमदनी १.०१ पाई हो गयी। यदि इसे ३ घंटे २० मिनट की अवधि में प्रकट करें; तो दोनों छमाइयों की कमाई क्रमशः २.०६ पाई तथा २.७ पाई हो गयी।

इसछमाही में कताई कराते हुए तार के न टूटने पर अधिक ध्यान दिया गया। इस बार का सूत अपनी धुनाई होने कारण अधिक अङ्क का, मज़बूत और समान था। कताई की परीक्षा के समय दूसरी बातों के साथ तार टूटने की संख्या भी ध्यान से देखी गयी और यह भी ख्याल किया गया कि विद्यार्थी टूटे तार को कितनी बार साँधते हैं और कितनी बार तोड़ कर फेंकते हैं। सारे विद्यालय में ऐसा कोई विद्यार्थी नहीं निकला, जिसका तार एक बार भी न टूटा हो; लेकिन अधिक से-अधिक बार तार टूटने की संख्या १५ थी और कम से कम २; फेंकने वालों की संख्या बहुत कम थी। २०२ विद्यार्थियों में केवल १५-२० विद्यार्थियों ने ही टूटा तार फेंका। बाक़ी सबने टूटा तार सांध लिया।

वर्तमान छमाही में धुनाई का काम खूब बढ़ाया गया। विद्यालय में काम आई हुई पूनियां विद्यार्थियों ने खुद धुन कर तैयार की थी। चौथी व पांचवीं कक्षा के सभी विद्यार्थी धुनाई अच्छी तरह सीख गये। तीसरी श्रेणी भी धुनाई का मामूली काम कर लेती है। पहली दूसरी के लिए चौथी पांचवीं धुनाई करती हैं। इस सत्र में ३१ तांतों के खर्च से विद्यार्थियों ने ६० सेरका धुनी। पिछले सत्र में

३५ सेर रुई ३२ तांतों से धुनी गयी थी। इससे स्पष्ट है कि इस काल में विद्यार्थियों ने धुनाई में काफ़ी तरक्की की है। कांकर का खर्च हमारे यहां बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि हम इसकी जगह सख्त चमड़े का व्यवहार करते हैं।

इस बार कुछ नया सामान भी मंगाया गया। ३० पेटी चर्खे लिये गये। बुनियादी तालीम के शिक्षा केन्द्रों तथा विद्यालयों में किसानचक्र के इस्तेमाल पर खास ज़ोर दिया जाता है। परन्तु अनुभव से हमें मालूम हुआ है कि अधिक दाम के होने पर भी पेटी चर्खा किसान-चक्र से कई बातों में ज्यादह मुफ़ीद है। लड़के किसान चक्र को बहुत जल्दी तोड़-फोड़ कर खराब कर देते हैं। पेटी चर्खे से किसान-चक्र ज्यादा जगह घेरता है, सुरक्षित कम होता है, और इसमें पेटी चर्खे जितनी सफ़ाई नहीं रखी जा सकती। पांचवीं श्रेणी में ६ महीने बाद जिन विद्यार्थियों ने तकली पर कताई और धुनाई में अभीष्टगति प्राप्त कर ली, उन्हें ही पेटी चर्खे पर सूत कातने की आज्ञा दी गयी। पेटी चर्खे के सिवाय, सलाई पटरी, ओटनी, धुनकियां, ३६ तांतें और एक धनुष-तकुआ भी मँगाया गया।

उद्योग के लिये यह ज़रूरी है कि हिसाब ठीक तरह से रखा जाय। हिसाब रखने का तरीक़ा न तो ऐसा होना चाहिये कि अध्यापक को क्लर्क बन जाना पड़े और न इतना कम कि सही सही हिसाब तैयार करने में दिक्कत हो। हमने अपने यहां हिसाब को इन दोनों दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है। विद्यार्थियों के रोज़ के तार उसी दिन अध्यापक तार बही में लिख लेता है और उनका कुल जोड़ भी कर देता है। मुख्याध्यापक से रोज़ के काम पर हस्ताक्षर कराये जाते हैं और वह तारों की संख्या की जाँच-पड़ताल करता है। बहुत फ़र्क हो तो उसका कारण भी पूछता है। तीसरी से पांचवीं तक के विद्यार्थियों को हर महीने में दो बार ओटी हुई रुई तौल कर दी जाती है। इसको धुनवाना, पूनी बनवाना और कतवाना अध्यापक के ज़िम्मे होता है। लड़के उस रुई को ममत्व-बुद्धि के कारण बहुत अच्छी तरह धुनते हैं। हर पखवाड़े में विद्यार्थियों से कता सूत वापस लेकर तौल लिया जाता है और उसका नंबर निकाल कर मज़दूरी का भी हिसाब लगा दिया जाता है? उस समय सूत की रिपोर्ट हर श्रेणी में भेजी जाती है। सूत ठीक न हो तो श्रेणी के अध्यापक का ध्यान उधर खींच दिया जाता है।

इस वर्ष कताई तो पांचों श्रेणियों में कराई गयी; किन्तु वर्धा शिक्षा पद्धति के अनुसार समवाय शिक्षा-पद्धति द्वारा पहली श्रेणी को ही पढ़ाया गया। विशेष विस्तार में न जाकर सब विषयों के उदाहरण देना ही ठीक रहेगा।

मूल-उद्योग—उद्योग कताई रखा गया। कताई का महत्व चित्त पर अंकित करने के लिये, कताई का धंधा शुरू में रखा गया। इसका दूसरा लाभ यह था कि आने वाले अन्तरों में अध्यापकों को कताई की प्रक्रियाओं से सम्बन्ध करने में सुगमता रहती थी। कताई के सिखाने में शुरू में बहुत दिक्कत पेश आई। २० विद्यार्थियों की श्रेणी को एक अध्यापक के लिये सिखाना बहुत कठिन जान पड़ा। अन्त में, पंचम श्रेणी के पांच लड़कों को चार चार विद्यार्थी सौंप दिये गये। उन्होंने अध्यापक की देखरेख में बच्चों को सिखाना शुरू किया। इस तरह १२ दिन में ही बच्चे कताई की कला की मुख्य मुख्य बातें सीख गये। इससे हमें यह अनुभव हुआ कि पुरानी और नई तालीम में यह महान अन्तर है। पुरानी तालीम तो कारखानों की सामूहिक उत्पत्ति (Mass Production) की तरह है जिसका परिणाम हिंसा, मारकाट और वर्तमान काल के भीषण युद्ध हैं किन्तु नई तालीम एक शिल्पी के कौशल के समान है जो गढ़ गढ़ कर सुन्दर मूर्ति का निर्माण करता है। कताई की परीक्षा के समय भी दूसरी श्रेणियों के विद्यार्थियों से सहायता ली गयी और अन्य बातों के साथ-साथ तार कितनी बार टूटता है, इस पर विशेष ध्यान दिया गया।

मातृभाषा—शुरू में छः महीने बातचीत के रूप में ज़बानी शिक्षा दी गयी। तकली के बारे में सुन्दर कविताएं याद करायी गयीं। बच्चों को आसपास के गाँवों में यात्राएं कराकर उन्हें गाँव के काम करने वालों का परिचय कराया गया। बढ़ई, लुहार, जुलाहा, किसान इन सबके काम को दिखाकर बाद में इनके सम्बन्ध में प्रश्न पूछ कर बच्चों से देखी हुई बातों को अभिव्यक्त कराने का प्रयत्न किया गया। किताब से पढ़ना तो ६ महीने बाद ही शुरू किया गया; किन्तु खेल-कूद में अक्षर-ज्ञान पहली छमाही में थोड़ा-बहुत शुरू हो गया था। कताई में काम आने वाली और आसपास की परिचित वस्तुओं के वाक्य बनाकर उनके सामने रखे गये और वाक्य-पद्धति से अक्षराभ्यास कराया गया।

सामाजिक विज्ञान—इसमें अमली तालीम पर ज्यादा ज़ोर दिया गया। बच्चों को उठने-बैठने के ढंग और नमस्कार की उचित प्रकार का अभ्यास कराया गया। जब लड़कों ने अध्यापक को अपना काम दिखाने की उतावली की, तब उन्हें अपनी बारी की बाट देखने और क़तार बांधने की पद्धति का महत्व बताया गया। इसी तरह कमरे के कूड़े दान पर भी पाठ दिये गये। और ध्रुव, प्रह्लाद वगैरह पुराने बालकों की कहानियां सुनाकर, कठोर परिश्रम, अध्यवसाय, निश्चय की दृढ़ता आदि चारित्रिक गुणों के विकास की ओर ध्यान दिया।

प्राकृतिक विज्ञान—स्कूल के चारों ओर के वातावरण को प्रत्येक ऋतु के अनुकूल पौधों, पेड़ों, पशु-पक्षियों का अच्छी तरह अवलोकन कर, तीन हिस्सों में बांट दिया गया। चैत-बैसाख में चारों तरफ़ आम के पेड़ मौर से लदे होते हैं। उस वक्त बच्चों को मौर दिखाकर वनस्पति-जगत के फूल और फल के क्रम को बताया गया। आमों पर बैठी कोयल का पाठ भी इसी के साथ दिया गया। वर्षा ऋतु में बादल, इन्द्र धनुष और बिजली की कुछ बातें बताई गयीं।

भाजियों में गाजर, मूली गोभी आदि तरकारियों का परिचय कराया गया।

गणित—गिनती, सूत के तारों की सहायता से सिखायी गयी। बच्चों को स्लेट पर लिखते समय पहले जो अंक बिलकुल निर्जीव जान पड़ते थे, अब उनमें एक नयी जान आ गयी। गणित जैसा शुष्क विषय अब उन्हें सरस मालूम होने लगा।

इसतरह समवाय पद्धति से शिक्षण देते हुए पहली श्रेणी में कोई बड़ी दिक्कत नहीं हुई। दूसरे विषयों का पाठ्यक्रम तो पूरा हो गया किंतु कताई का ज़ाकिर हुसेन कमेटी का पाठ्यक्रम पूरा नहीं हुआ। इसका कारण शायद यह था कि हमने कताई को ३ घंटे २० मिनट न देकर कुल १॥ घंटा ही दिया था। फिर भी हमने यह अनुभव किया है कि पहली श्रेणी की कताई के पाठ्यक्रम में दो बातों पर अवश्य विचार होना चाहिये।

(१) कमेटी ने पहली श्रेणी के पाठ्यक्रम में धुनाई को स्थान दिया है। हमने पहली श्रेणी के बच्चों से छोटी धुनकी चलवाने का प्रयत्न किया, किंतु चलाने की बात तो दूर रही, ६ से ९ वर्ष के बच्चे उस धुनकी को ठीक तरह से उठा भी नहीं सकते थे। अगर पहली श्रेणी के बच्चों की उमर १०-१२ बरस तक की हो, तो वे यह काम कर सकते हैं; किंतु ६-७ बरस की उम्र वाले बच्चों के लिये धुनकी का काम असम्भव है।

कमेटी ने पहली श्रेणी में बांये हाथ से तकली चलाने का प्रस्ताव किया है। तीन महीने बाद हमने बच्चों से बांये हाथ से तकली चलवानी चाही किन्तु वे चला नहीं सके। इसके बाद भी अनेक प्रयत्न किये गये किन्तु हम अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हो सके।

आशा है बुनियादी तालीम में दिलचस्पी रखने वाले इन सूचनाओं पर विचार करने की कृपा करेंगे।

अपमान का करारा जवाब

—मिस रैथबोन के पत्र पर कवीन्द्र रवीन्द्र—भारत की वर्तमान दुर्दशा की जिम्मेदारी अंगरेजों पर

'ब्रिटिश-पार्लमेन्ट' की सदस्या कुमारी इलीनर रैथबोन वहां के विश्वविद्यालयों का संयुक्त प्रतिनिधित्व करती हैं। सन् १९३१ में वे भारत भी आई थीं। उनका दावा है कि वे भारतीय स्त्रियों के हितों के लिए लड़ती रही हैं और १९३५ के शासन विधान में भारतीय स्त्रियों के अधिकारों का उन्होंने समुचित समावेश कराया है। इसी आधार पर उन्होंने भारत के असहयोगी नेताओं और विशेषकर पंडित जवाहरलाल नेहरू को लक्ष्य करके एक खुला पत्र लिखा है।

उस पत्र का संक्षिप्त आशय यह है कि इस समय युद्ध प्रयत्नों से असहयोग करके भारतीय नेता महान् निन्दात्मक काम कर रहे हैं। अगर सरकार ने बिना उनकी सलाह के युद्ध में उन्हें घसीट डाला तो कौनसा पाप हो गया। इस भद्दी भूल के यह अर्थ नहीं हैं कि इस संकट के समय भारत का सहयोग युद्ध से छीन लिया जाय। यदि भारतीय नेता इस समय 'हां' कह देते तो अब उन्हें आपत्ति करने की कौन सी गुंजाइश है। यदि वे "नहीं" कह देते हैं तो सरकार ने अच्छा ही किया है कि उनसे नहीं पूछा क्योंकि उस हालत में सरकार को यही कार्यवाही करनी पड़ती जो इस समय वह कर रही है।

सत्याग्रही नेता पुरानी ब्रिटिश भूलों को दोहराकर अपने मत की पुष्टि कर रहे हैं। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यह ब्रिटेन के संकट का समय है और आपस के सहयोग से वह समय शीघ्र आ सकता है जब भारत की वैधानिक गति को अधिक तीव्र और उन्नतिशील बनाया जाय।

—अंग्रेजों का दम्भ—

महाकवि रवीन्द्रनाथ ने इस पत्र का उत्तर देते समय कहा है कि मैं मिस रैथबोन को नहीं जानता। पर मैं समझता हूं कि वे साधारणतया शिष्ट विचार-सम्पन्न महिला हैं। उसका पत्र पं० जवाहरलाल को लक्ष्य करके लिखा गया प्रतीत होता है। आज वह योद्धा सत्याग्रही जेल में बन्द हैं। यदि पंडित जवाहरलाल बाहर होते तो वे मिस रैथबोन को करारा उत्तर देते। मैं बीमार हूं फिर भी उनके धृष्टता पूर्ण पत्र का उत्तर देने के लिए विवश हूं। अंग्रेजों की विचार-प्रणाली समझ चुकने के बाद हम में अब भी इतना आत्म-सम्मान बाकी है कि हम अपने गरीब देश वासियों के कष्टों की तरफ ध्यान दें। अंग्रेजों का यह दम्भ है कि हमने उनकी भाषा द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया है। यूरोप की किसी अन्य भाषा द्वारा भी हम ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।

अंग्रेजों ने हमारे लिए क्या किया? मैं अपने आस-पास भूखे सताये गये दुबले पतले आदमियों को रोटी-रोटी पुकारते देखता हूं। मैंने गांव में औरतों को पीने के पानी के लिए कीचड़ कुरेदते देखा है क्योंकि भारत के गांवों में कुएं स्कूलों की तादाद से भी कम हैं।

अंग्रेजों की बहादुरी —

अंग्रेजों ने हमारे देश का शोषण किया है। गरीबों के लिए उन्होंने क्या किया? भारत के स्त्री पुरुषों की गरीबी को मैंने अपनी आँखों से देखा है। अंग्रेज इंगलैंड में जिस तरह रहते हैं और भारत में जिस आराम की जिन्दगी बिताते हैं यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। जब बहुतेरे भारतीय मौत के घाट उतार दिए जाते हैं, हमारी धन सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, मां-बहिनों की बेइज्जती होती है तो इन बेहद ताक़तवर अंग्रेजों के हाथ नहीं हिलाते। पर समुद्र पार से हमें यही सबक़ पढ़ाया जाता है कि भारतीय अपना घर खुद नहीं सम्हाल सकते। इतिहास में ऐसी मिसालों की कमी नहीं है जबकि लड़ाई के हथियारों से पूरी तरह लैस लड़ाकों ने भी अपने से जबरदस्त ताक़त के सामने हथियार डाल दिए हैं।

[शेष पृ० ६ पर]

गु रु कु ल

७ आषाढ़ शुक्रवार १९९८

कवित्व

(लेखक —श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार साहित्याचार्य प्रोफेसर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी)

संस्कृत भाषा के ललित साहित्य में हृदय-सागर की अनन्त उर्मि-मालाओं को ९ मुख्य आवेशों के आधीन विभक्त कर दिया गया है। उन आवेशों के नाम निम्न लिखित हैं—१. रति या प्रेम, २. हास, ३. शोक, ४ क्रोध, ५. उत्साह, ६ भय, ७. जुगुप्सा या घृणा, ८. विस्मय, ९. तथा शम।

रति या प्रेम

किसी वस्तु की ओर मन के आकर्षण को रति कहते हैं 'रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्' (सा० दर्पण)। वे वस्तुएं जड़ और चेतन के भेद से दो प्रकार की हो सकती हैं जल में डुबकी लगा कर उठती हुई सुन्दरी के मुखचन्द्र की तरह, दूर समुद्र की सतह पर उदय होते हुए पूर्णचन्द्र मण्डल को देख कर हृदय तरंगित हो उठता है। वह सहसा उधर आकृष्ट हो जाता है। विश्व-कर्मा की इस अनुपम विभूति के लिये प्रशंसा का भाव उसके अन्दर गुदगुदी करने लगता है। यह प्रशंसा तटस्थ होती है। इस प्रशंसा के साथ चन्द्र को एक मात्र अपनी सम्पत्ति बना लेने की वासना नहीं होती।

सुन्दर फूलों अथवा मिठाइयों से सुसज्जित बढ़िया तश्तरी को देख कर प्रायः स्वभाव से ही मुख में पानी आ जाता है। यदि भूख भी लगी हो तब तो कहना ही क्या? मन किसी तरह भी उधर से हटना नहीं चाहता। इस आकर्षण में वस्तु को अपनाने की प्रवृत्ति प्रशंसा के भाव से प्रबल हो जाती है। अवस्थाओं के भेद से इसी खिंचाव के नाम आशा, प्रतीक्षा, कामना, लोभ, अनुराग, आसक्ति तथा प्रेम आदि हो जाते हैं।

अतीत स्मृतियों के स्वाप्निक स्वर्ग की सैर करते हुए पलने में पड़े नवजात शिशु के अधर पर सहसा ही मधुर हास्य की छटा छिटक जाती है जिसे देख कर पास बैठी ममतामयी माता का निःस्वार्थ हृदय आनन्द के सागर में हिलोर लेने लगता है। यह भी एक आकर्षण है। जिसके अन्दर स्वाधीनता, निःस्वार्थता, शीतलता तथा तृप्ति है। इस आकर्षण को वत्सलता कहते हैं। क्षण भर बाद ही दृश्य बदल जाता है। सोते हुए उसी शिशु की मुख मुद्रा कुछ विकृत सी होने ही लगती है कि स्नेह व्याकुल माता दौड़ कर उसे उठा हृदय से लगा लेती है। यह भी एक आकर्षण है। नाम इसका भी वही—वत्सलता है किन्तु इस के घटक कुछ भिन्न हैं—पराधीनता, समर्पण, उत्सुकता तथा कातरता।)

युद्धक्षेत्र में लड़ते हुए राजा को वीरगति प्राप्त हुई। सैनिकों का प्रयत्न असफल हुआ। सब नगर निवासियों को अपनी २ चिन्ता व्याकुल कर रही है। चारों ओर शत्रु लूट-मार, अत्याचार कर रहे हैं। इसी समय कुछ सहायकों के साथ बच निकलने का यत्न करती हुई महारानी उनके हाथ पड़ जाती है। असमर्थ अबला के धन, मान, प्राण यहां तक कि प्रतिज्ञा की रक्षा भी सन्देह में पड़ जाती है। वे दुष्ट, मार डालने के लिये उसके दूध-मुंहे बालक को निर्दयता पूर्वक गोद से खींचते हैं बालक यथा शक्ति वहीं चिपटता जाता है। वह बेचारा नहीं जानता कि माता उसकी तो क्या अपनी भी रक्षा करने में बिलकुल अशक्त है! किन्तु उसके लिये माता अमोघ अस्त्र, कठिन कवच, दृढ़ दुर्ग, सकल सम्पत्ति तथा एक मात्र उसकी अपनी वस्तु है। बालक के हृदय में विचारों की विभिन्नता नहीं होती। वह तो केवल इतना ही जानता है कि माता उसकी है। वह भय से या लोभ से इस सत्यता को नहीं भूल सकता। इस ममत्व में स्वार्थ नहीं। वह सोच नहीं सकता कि उसका सुख दुःख माता पर निर्भर है इसलिये उसे माता से पृथक् न होना चाहिये। वह तो अकारण ही उसे चाहता है। भगवान के प्रति भक्त की भावना भी अकारण होती है। इसीलिये बालक तथा परमहंस में कुछ थोड़ा सा ही अन्तर है। दोनों के लिये स्त्री मात्र मातृ-तुल्य हैं दोनों के लिये मणि लोष्टाश्म काञ्चन एक समान हैं। यहां तो अद्वैत है। दुःख यही है कि बालक ज्ञान के नाम से अज्ञान का ही अधिक उपार्जन करता है और तत्व ज्ञान के लिये उसे फिर वहीं लौटकर आना पड़ता है जहां से वह चला था। यह प्रयास एक कुवें को भर कर उसे पुनः खोदने के समान है। अस्तु, माता के प्रति बालक के इस पूर्व वर्णित आकर्षण के लिये संस्कृत भाषा में यदि कोई शब्द है तो कम से कम मैं उसे नहीं जानता। यही आकर्षण जब इससे कुछ अधिक आयु में अपनों से बड़ों की ओर छोटों के हृदय में उत्पन्न होता है तो इसे भक्ति या श्रद्धा कहते हैं। बराबर वालों के परस्पर आकर्षण का नाम मित्रता है। दुःखी के प्रति हृदय के आकर्षण को करुणा या दया कहते हैं। वस्तुतः यह तत्व मूल में हृदय की एक ही शक्ति है जो विषय के भेद से नाना रूपों में नाना नाम धारण कर प्रकट हो रही है।

बालक बालिका बचपन से एक साथ खेलते आ रहे हैं। प्रति दिन कितनी बार रूठने-मनाने की लीला होती है। वे अपने छोटे से संसार में पवित्र स्वर्गीय सुख लूटते फिरते हैं। उनके हृदय और जिह्वा में हमारी अपेक्षा बहुत कम दूरी है। हृदय जो कुछ सोचता है जिह्वा वही कह डालती है। बनावट या कपट का वहां कुछ काम नहीं। क्षणिक लड़ाई, क्षणिक सुलह—स्थिर कुछ भी नहीं। धीरे २ वाटिका में वसन्त की तरह उनके तन मन में भी नव-यौवन प्रस्फुटित हो उठता है। तब किसी एक सुन्दर प्रभात

में उद्यान निकुंज के निकट अचानक कुहुक उठी कोकिल की प्रथम कूक को सुन कर अकस्मात् आँखें चार होते ही ये दोनों उच्छृंखल हृदय एक अदृश्य मोहनग्रन्थि में जकड़े जाते हैं। देवता के कोप से विभाजित, अज्ञात काल से मिलने के लिये आतुर दो अर्ध, दो भ्रुवों से आकर एक हो जाते हैं। विधाता की अधूरी रचना पूर्णता को प्राप्त होती है। द्युलोक और भूलोक के संयोग से एक नवीन ब्रह्माण्ड का निर्माण होता है। प्रकृति का कण २ अलौकिक सुषमा से उल्लसित हो जाता है। अत्यन्त पुराना संसार नवीन प्रतीत होने लगता है। यह भी एक आकर्षण है। इस में मदिरा सी मादकता, मधु सी मधुरता, संगीत सी मोहकता तथा अमृत सी संजीवनी शक्ति है। इस का नाम प्रेम है। यही आदिरस शृङ्गार का मूल है।

साहित्य-शास्त्र के अनुसार दाम्पत्य प्रेम ही शुद्ध शृंगार का विषय है। अन्य प्रेम गुरु भक्ति तथा देशभक्ति आदि तो 'भाव' आदि के अन्तर्गत समझे जाते हैं। इसी प्रकार हास, शोक, क्रोध, आदि अन्य आवेश भी कुछ २ अवस्थाओं के भेद से बहु रूप तथा बहु नाम होकर हास्य, करुण, रौद्र आदि अनेक रसों अथवा रस भास आदि को उत्पन्न करते हैं।

कविता

नट इंगित चेष्टित से, मूर्तिकार अपनी छेनी की मार से, चित्रकार रेखाओं द्वारा, गायक स्वरों के उतार चढ़ाव से और कवि शब्दों द्वारा दूसरों के हृदय में इन्हीं आवेशों का संचार कर देते हैं। वस्तुतः ये सभी कवि हैं। ये सभी आदर्श जगत् में स्थित सत्य शिव, सुन्दर उस स्वरूप-सत्ता का आभास इस मर्त्य लोक में भी करा सकते हैं। तथापि कविता शब्द का मुख्य प्रयोग इस शब्द चित्र के लिये ही किया जाता है। इस प्रकार कविता का लक्षण यह हो सकता है—'हृदय के आवेशों का वह जीवित शब्द-चित्र जो दूसरों की हृदय वीणा से भी उन्हीं आवेशों को प्रतिध्वनित कर सके, कविता कहलाता है।' किसी वस्तु के नाप, तोल, रूप रंग आदि का वर्णन कर हम उसका एक चित्र सुनने वाले की कल्पनाशक्ति में उपस्थित कर सकते हैं किन्तु उसमें तथा कवि के शब्द चित्र में आकाश पाताल का अन्तर होगा। यह भी हो सकता है कि कवि के चित्र में सब अंग प्रत्यंगों का वर्णन न हो तथापि यह चित्र पहले चित्र की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक होगा। क्योंकि कवि का चित्र आवेशमय होगा। किसी वस्तु को प्रत्यक्ष देख कर हमें कुछ भी आनन्द प्राप्त नहीं होता किन्तु कविता में उसी का वर्णन पढ़ कर हमारा हृदय उछल पड़ता है इसका कारण यह है कि कवि का हृदय अत्यन्त मार्मिक होता है। जिस वस्तु का हमारे हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता कवि का हृदय उसी से तरंगित हो उठता है। फिर वही तरंग उसकी कविता को पढ़कर हमारे हृदय में भी उठने लगती है। जिनके अन्दर मार्मिकता नहीं होती उन्हें उत्तम कविता पढ़ कर भी आनन्द प्राप्त नहीं होता।

आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक-दोनों संसारों में अनन्त अदृश्य, नित्य नियम काम कर रहे हैं। साधारण मनुष्य पानी को बरसते हुए देखता है किन्तु वह वर्षा के सिद्धान्त को नहीं जानता। वह किसी से प्रेम, किसी से शत्रुता, किसी पर क्रोध, किसी पर करुणा करता है किन्तु ये क्या हैं—इस रहस्य को वह नहीं जानता। एक पढ़ा लिखा पुरुष भी इन दोनों प्रकार की घटनाओं को देखता है, इनके रहस्य को समझता है, इनका विश्लेषण कर सकता है किन्तु इनको एक जीवित शब्द का रूप नहीं दे सकता। वह वैज्ञानिक अथवा मनो-वैज्ञानिक है, कवि नहीं। एक तीसरा व्यक्ति इन रहस्यों को देखता है, समझता है और इनका ऐसा जीवित वर्णन करता है कि दूसरों का हृदय अपनी पृथक् सत्ता को भूलकर स्वयं भी उसी वर्णन के किल्पमय नाटक का एक पात्र बन जाता है। इसे ही साहित्य की परिभाषा में 'साधारणीकरण' कहा गया है। अनन्त प्राणियों से परिपूर्ण इस विशाल जगत् में मनुष्य की आत्मा अपने आपको अकेला अनुभव करती है। दूसरों की तो बात ही क्या, अपना ही हृदय उसके लिये एक अज्ञात पहेली होता है। एक सहृदय कवि की रचना को पढ़कर उसका हृदय उछल पड़ता है। वह कह उठता है—बिलकुल ठीक। यह तो मेरा ही अनुभव है। उसे आश्चर्य होता है कि वह अनुभव उसके अपने हृदय में उतना स्पष्ट नहीं जितना कि कवि के शब्दों में। यही कवि का क्रान्त दर्शित्व है। संसार में अनेक नित्य नियम कार्य कर रहे हैं, कवि उन्हीं नियमों का साक्षात् कर वर्णन करता है इस लिये उसकी कविता त्रैकालिक सत्य होती है। परमात्मा सब से बड़ा कवि है। इसी लिए उसकी कविता अमर है। वेद कहता है— 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' मार्मिक कविता में यह अनुभव कर कि उस ही की तरह के सुख, दुःख, यातना, यन्त्रणा भोगने वाले और भी बहुत हैं, मनुष्य की हिम्मत बँधती है और उसके हृदय में सम वेदना उत्पन्न होती है। हम कविता में रसास्वाद करते हैं इसका कारण यह सम वेदना ही है। कवि आदर्शवादी हो या यथार्थ वादी, मानव-प्रकृति तथा बाह्य-प्रकृति का पृथक् २ वर्णन करने वाला हो या मिश्रित, यदि उसकी रचना दूसरे हृदयों में सम वेदना उत्पन्न नहीं कर सकती तो वह कविता नहीं।

छन्द और तुक

छन्द और तुक कविता के आवश्यक अङ्ग नहीं हैं। इनके रहते हुए भी रस हीन रचना कविता नहीं कहला सकती तथा इनके बिना भी सरस रचना कविता कहलाती है। छन्द और तुक का कविता में वही स्थान है जो एक गुणवती, सुशील स्वभाव, सुन्दर रमणी के शरीर में बाह्य वेषभूषा का है। एक साधारण व्यक्ति जो कविता के गम्भीर गुणों को समझ नहीं सकता, गाई जाती हुई छन्दोबद्ध तुकान्त कविता को सुनकर पर्याप्त आनन्द अनुभव कर लेता है। साधारण जनता में ऐसी कविता उच्च कोटि की अतुकान्त अथवा छन्द-विहीन कविताओं से बाज़ी

ले जाती है। भाव पूर्ण, अत्यन्त उत्कृष्ट, बिना रंग के चित्र की अपेक्षा रंगीन चित्र की ओर ही जिस प्रकार बच्चों का अनुराग अधिक होता है ठीक उसी प्रकार भाव पूर्ण अत्यन्त उत्कृष्ट किन्तु छन्द तुक विहीन कविता की अपेक्षा छन्दोबद्ध तुकान्त कविता साधारण जनता की रुचि के अधिक अनुकूल होती है। छन्दोमयी रचना में यदि कवित्व का गन्ध भी आजाए तो वह बहुत हृदय-हारिणी हो जाती है इसलिये इन बाह्य साधनों का प्रयोग कर कवि थोड़े ही प्रयत्न से अधिक ख्याति लाभ कर सकता है। इसके साथ एक बात अवश्य ध्यान में रखने योग्य है वह यह कि यद्यपि छन्द और तुक को कविता का बाह्यांग समझा जाता है, कवि इनका आश्रय लेने के लिए बाधित नहीं है तो भी यदि वह इनका आश्रय लेता ही है तो इनके नियमों का पूर्णतया निबाहना उसका परम कर्तव्य हो जाता है। नहीं तो समालोचक उसे क्षमा नहीं कर सकते। वे कहेंगे कि जो कविता के बाहर के ढांचे को नहीं सँवार सका वह असली कविता क्या करेगा। इस प्रकार कवि को कवित्व शक्ति पर लांछन लगता है। इस लिये इनमें कभी शिथिलता न होनी चाहिए। छन्द नया पुराना या कवि का स्वयं गढ़ा हुआ हो—उसमें एक नियम अवश्य होना चाहिए। काल की नियमित गति में शब्दों का ऐसा बन्धन जिसकी विषमता में समानता हो, छन्द कहलाता है। काल की नियमित गति में शब्दों के उच्चारण में एक उतार चढ़ाव आ जाता है। यह उतार चढ़ाव ही विषमता है। इस विषमता के अभाव में माधुर्य नहीं रहता। इसका अनुभव करने के लिए आप हारमोनियम के एक ही पर्दे पर उंगली रखकर धोंकनी चलाते जाइए। कैसा बुरा मालूम होगा। इसी में नियमित विषमता ले आइए—एक सरगम बन जाएगी। समता उत्पन्न करने के लिए ही सम तथा अर्ध-सम छन्दों की रचना की गई है। विषम छन्दों में यद्यपि आवृत्तिकृत समता नहीं होती तो भी नियमित विषमता के कारण छन्द का माधुर्य कम नहीं होने पाता। यदि एक लम्बी कविता के प्रत्येक पद का छन्द बदलता चला जावे तो विषमता में समता न आए और कविता का आनन्द मंद हो जाए। आजकल कुछ छायावादी कवि स्वच्छन्द छन्द में कविता किया करते हैं उसमें किसी एक नियम का न होना ही नियम रहता है। पूछने पर वे लोग कहा करते हैं कि कविता एक स्वाभाविक वस्तु है। स्रोत में से जलधारा की तरह, लता में से मंजरी की तरह, मोती में से झलक की तरह, हृदय में से कविता स्वभाव से ही फूट निकलती है। स्रोत की जलधारा रेखा गणित के नियमों के अनुसार सीधी, तिरछी या वक्र रेखाओं में नियमित गति नहीं करती, इसी में उसकी सुन्दरता है। इसी प्रकार स्वाभाविक कविता नियमित छन्द में कैद होकर नहीं रह सकती। हमारा उनके लिए यही उत्तर है कि स्रोत की जलधारा यद्यपि रेखा गणित के नियमों को नहीं मानती तो भी नीचे की ओर बहना, अपने तल को सम रखने का यत्न करना आदि भौतिक नियमों का पालन वह अवश्य करती है इस लिए आप भी रेखा गणित के नियमों के अनुसार अवश्य ही अपनी कविता न बनावें पर पिंगल तथा साहित्य शास्त्र का उचित अनुसरण करने की कृपा अवश्य करें। कवि के अन्तस्तल में निगूढ़ रस-स्रोत गायक के मधुर कण्ठ से सहस्र धाराओं में प्रवहित हो रहा हो, आकाश के हृदय को तरंगित कर कानों में आते हुए स्वरों के कम्पन प्रकम्पन के साथ सहृदयों के सिर झूम रहे हों, वेदनामयी वीणा की तरल तन्त्री के साथ २ हृदय नाच रहे हों, मन्त्र-मुग्ध सा समीर भी एक क्षण के लिये श्वासावरोध कर ठहर गया हो, साथ मिलकर चलते हुए मर्म के सूक्ष्मतम स्वर में समस्त श्रोताओं की संयुक्त चेतना विलीन हो रही हो—इसी समय किसी एक के अचानक बेसुरा हो जाने का जो असह्य प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता है वही सुन्दर सरस कविता में छन्दोभङ्ग का होता है। सारा आनन्द एकदम किरकिरा हो जाता है। अप्रतिहत गति से चलता हुआ प्रवाह रुक जाता है। इस लिये छन्द की गति का पूर्णज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

मौजूदा लड़ाई में भी बहादुर अंग्रेज, फ्रांसीसी और ग्रीक लड़ के यूरोप के मैदान छोड़ भागने के लिए विवश हुए क्योंकि उनके सामने उनसे अधिक मजबूत व ताकतवर लड़ाके मौजूद थे।

—अफसरों की गुस्ताखी—

पर जब आज हमारे निहत्थे, गरीब, दीन हीन भाइयों को गुण्डों की मार के सामने भागना पड़ता है तो उस समय हमारे सरकारी अफसर शायद हमारी कायरता पर घृणा पूर्वक हँसते हैं।

इंगलैंड के प्रत्येक बाशिन्दे के पास हथियार हैं जिससे वह हमले के अवसर पर दुश्मन से अपनी जान माल की रक्षा कर सकता है। लेकिन इसके विपरीत भारत में तो ऐसा कानून है कि लाठी चलाने की तालीम देना भी जुर्म है। हमें जान बूझ कर निहत्था और कमजोर बनाया गया है न कि हम सदा अपने हथियार बन्द मालिकों की दया पर निर्भर रहें।

—अच्छी सरकार की कसौटी—

आज अंग्रेज नाज़ी सिद्धांत मानने वालों से घृणा करते हैं क्योंकि उन्होंने अंग्रेज़ों की दुनिया भर में फैली प्रभुता को ललकारा है। इनके विपरीत वे यह आशा करते हैं कि हम निहायत अज़ीज़ी के साथ पेश आयें। इसीलिए न कि उन्होंने हमारे गले में गुलामी का तौक डाला है? किसी सरकार की अच्छाई की कसौटी यह नहीं है कि उसके आला अफ़सर उसके बारे में क्या राय रखते हैं। असल कसौटी यह है कि उस सरकार ने साधारण जनता की भलाई के लिए कौन से अच्छे काम किये हैं।

हम अंग्रेज़ों को इस कारण नापसन्द नहीं करते कि उनके लिए हमारे दिलों में कोई जगह नहीं है। हम उन्हें इसलिए पसन्द नहीं करते कि वे हमारी भलाई के ठेकेदार बनने का बहाना करते हैं। हमारी भलाई का उन पर जो दायित्व (ट्रस्ट) था उसके प्रति उन्होंने घोर विश्वासघात किया है।

—सुख का सत्यानाश—

इंगलैंड के चन्द मुट्ठी भर पूँजीपतियों के फ़ायदे के लिए उन्होंने सारे भारत के करोड़ों नर नारियों का सुख सत्यानाश कर दिया है। मैं समझता था कि समझदार भले अंग्रेज अपनी इन गलतियों पर चुप रहेंगे और भारत वासियों को इस लिए धन्यवाद देंगे कि अंगरेजों की इन बुरी गलतियों हम पर मौन हैं। मिस रैथबोन को यह नहीं चाहिए था कि भारतीयों को इस क़दर चोट पहुंचाने के बाद उनके घावों पर इस तरह नमक छिड़कतीं। यह हद दर्जे की अशिष्टता है।

(आर्य मित्र से)

गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

श्रीमती वाग्वर्धिनी सभा ने शुक्रवार १३ जून ४१ को गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का समारोह सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जिसका सभापतित्व गुरुकुल के हिन्दी और संस्कृत साहित्य के उपाध्याय साहित्याचार्य श्र.० प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार ने किया।

प्रथम बैठक में आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगतियों पर वर्तमान कविता धारा और नये प्रगतिवाद की समीक्षा की गई। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों पर निबन्ध पढ़े गये उसके साथ ही गुरुकुल के कलाकारों ने अपनी सुरुचि पूर्ण कवितायें और गल्पें सुनाईं।

द्वितीय बैठक में निम्न शोक प्रस्ताव पास किया गया।

"यह सम्मेलन हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध लेखक और समालोचक श्री० रामचन्द्र शुक्ल के असामयिक देहावसान पर अत्यन्त दुख प्रकट करता है और उनकी हिन्दी सेवा की प्रशंसा करती है। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दें।"

हिन्दी के प्रचार और हिन्दी विरोधी प्रवृत्ति को दबाने के लिये भी प्रस्ताव पास किये गये। जिनके अन्दर रेडियों और अदालतों में हिन्दी भाषा की अवहेलना के विरोध में प्रस्ताव पास हुआ। विचार हुआ कि गुरुकुल की तरह अन्य विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में हिन्दी को माध्यम बनाया जाय यथा हिन्दी को M. A. वगैरह की उच्च-शिक्षा में स्थान दिया जाय इत्यादि विषयों के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने वैज्ञानिक परिभाषायें बनाने में जो हिन्दी के प्रति अन्याय किया है उसके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया; जिसका रूप यह था—

"यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार की उस नीति की ओर कि उसने वैज्ञानिक परिभाषा समिति बनाने में अपनी दृष्टि रक्खी है घोर निन्दा करती है, और उस नीति को हिन्दी-भाषा-भाषियों का तीव्र अपमान समझती है। हिन्दी भाषी जनता से अपील करती है कि उस नीति के परिवर्तनार्थ सर्वत्र संगठित अन्दोलन किये जावें।

आशा है हिन्दी का हित चाहने वाले इस ओर ध्यान देंगें और उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार हमारा यह अधिवेशन सानन्द समाप्त हुआ—आशा है आगे से प्रति वर्ष हम हिन्दी की इस प्रकार समुचित सेवा कर सकेंगे।

—देव मित्र
मन्त्री, वाग्वर्धिनी सभा।

गुरुकुल समाचार

ऋतु—इस सप्ताह विशेष वर्षा न होने पर भी मौसम अच्छा रहा। सप्ताह के प्रथम दो दिनों में, आकाश काले-काले बादलों से आच्छादित रहा; हल्की वर्षा भी हुई। श्रावण की इस सुहावनी ऋतु में गुरुकुल का सारा भूमि हरा-हरी घास से आच्छादित हो गई है। आमों की वाटिकाओं में भी बहार आ गई है और उनके मधुर फल ब्रह्मचारियों को प्रति दिन पर्याप्त मात्रा में दिये जाते हैं।

हिमालय पर अच्छी वर्षा हो जाने के कारण यद्यपि गङ्गा का पानी अब कषाय-वर्ण हो गया है तथापि बड़े ब्रह्मचारियों का एक दल नियमित रूप से गंगा-स्नान करके नव स्फूर्ति प्राप्त कर रहा है। अखाड़ों में कुश्ती, दण्ड बैठक आदि में भी ब्रह्मचारी बड़ी दिलचस्पी से भाग ले रहे हैं। पढ़ाई की ओर ब्रह्मचारी और प्रोफेसर पूरा-पूरा ध्यान दे रहे हैं। अर्थ शास्त्र के उपाध्याय श्री प्रो० केशवदेव जी विवाह करके प्रयाग से लौट आए हैं और उन्होंने नए जोश एवं नई उमङ्गों के साथ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया है। उपसत्र परीक्षाएं १ जुलाई से प्रारम्भ होंगी।

स्वास्थ्य—समाचार

वीरेन्द्र १४ श्रेणी म्लेष्मज्वर, रमेशचन्द्र १४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, नरेन्द्र १३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ओमप्रकाश ४ श्रेणी मलेरियाज्वर, रमेशचन्द्र ५श्रेणी मलेरियाज्वर, गोपालसिंह २ श्रेणी खारिश, देवप्रकाश २ श्रेणी खसरा, देवव्रत ५ श्रेणी खसरा, अरुण ५ खसरा, योगेन्द्र २ श्रेणी खसरा, राम कुमार १ कर्ण शूल, अजय कुमार १ श्रेणी कर्णशूल।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १४ आषाढ़ १९९८; २७ जून १९४१ [संख्या ६

गुरुकुल की विशेषताएं

(लेखक—साहित्याचार्य श्री प्रो. वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

प्रचलित शिक्षा प्रणाली के जिन दोषों का वर्णन हम 'गुरुकुल' के पिछले अंकों में कर चुके हैं उन से बचने के लिए, ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश में प्रतिपादित शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को आधार मान कर सन् १९०२ में अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। यहाँ हम गुरुकुल की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं।

प्राकृतिक परिस्थिति—

वेद ने ब्राह्मण की उत्पत्ति के योग्य स्थान पर्वतों के निकट नदियों के संगम ही बतलाए हैं। इसके अनुसार श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल की स्थापना अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में की थी। यहां एक ओर भारतीय आदर्श के समान उन्नत, तपस्वियों के जीवन सा कठोर, मनस्वी के निश्चय सा दृढ़ तथा महापुरुषों के हृदय जैसा सुविशाल हिमाचल खड़ा है। दूसरी ओर ऋषियों की शिक्षा के समान कल्याण कारिणी, महाकवि की प्रतिभा सी अमृतवर्षिणी, महात्माओं की विमल दृष्टि सी पाप हारिणी तथा माता के स्तन्य सी मधुर, भगवती भागीरथी अपने कल कल निनाद से किसी अलौकिक संदेश को सुना रही है। यहां का वायु-मण्डल कलाकार की कल्पना के समान स्वतन्त्र, शिशु की मुसकान सा निर्दोष तथा बाल-रवि की रश्मियों सा स्फूर्तिदायक है। यहां के सघन-सुनील आम्र कुंजों में किसी अलौकिक संगीत की ध्वनि गूंज रही है। हिमालय के इन्हीं प्रदेशों, भगीरथी के इन्हीं तटों, उत्तराखण्ड के इन्हीं वनों में वैदिक आर्यों की युग युग की साधना आज भी निःश्वास ले रही है। 'कुम्भ' महापर्व में अपनी शक्ति को अल्प देख, ऋषि दयानन्द ने सर्वमेध-यज्ञ कर इसी स्थान में तपस्या द्वारा असीम-बल संचय किया था। वर्ष की सभी ऋतुएं यहां खिल खोल कर अपनी ललित लीला का अभिनय करती हुई आती हैं और चली जाती हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में तो नव-युवकों की अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक पूर्ण विकास सम्भव है। वन्य पशुओं से व्याप्त भीषण निर्जन वनों में भ्रमण, हृदय को निर्भय बनाता है। हिमाच्छन्न गिरि शिखरों से अठखेलियां करने, मोटे से मोटे गरम कपड़ों में भी घुसकर हड़कम्प उत्पन्न करने वाले, गंगा की तरंगों से शीतल, पौष-माघ के पश्चिम पवन तथा वैशाख ज्येष्ठ की प्रखर सूर्य रश्मियों से संतप्त, लता द्रुमों को झुल-साती तीव्र लूहों से शरीर कष्ट सहिष्णु बनता है। वसन्त तथा वर्षा की वर्णनातीत प्राकृतिक शोभा मानव हृदय में कवित्व एवं दार्शनिकता की उद्भावना करती है। पर्वतों पर भागते भागते चढ़ जाना, नदी में मीलों तैरना, दूर दिगन्तों तक दृष्टि का अप्रतिहत प्रचार आत्म विश्वास तथा उत्साह के साथ साथ हृदय की भावनाओं को विशाल बनाते हैं। ग्राम और नगरों के दूषित प्रभाव यहां फटकने नहीं पाते।

शारीरिक विकास—

ऐसी उत्कृष्ट परिस्थिति में सदाचारी गुरुओं का सहवास, उत्तम भोजन व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोने में सुहागे का काम करते हैं। भोजन में घी दूध फल आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है और वर्ष में एकबार उनके स्वास्थ्य की विशेष परीक्षा अवश्य की जाती है। गुरुकुल का प्रत्येक ब्रह्मचारी खेल में भाग लेता है जिससे उसमें Sportsmanship का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती के अतिरिक्त गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करते हैं जोकि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़ मुक्तेश्वर के गंगा स्नान के मेले पर प्रतिवर्ष तैरने की खुली प्रतियोगिता होती है; उसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारी ही सदा प्रथम पारितोषिक सदा प्राप्त करते हैं। गुरुकुल की हाकी टीम दूर दूर तक प्रसिद्ध है। ब्रह्मचारियों का मुख्य कार्य खेल नहीं। प्रतिवर्ष कुछ खिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहां से चले जाते हैं इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है। इस त्रुटि के रहते हुए भी गुरुकुल की टीम ने कई प्रसिद्ध क्रीड़ा सान्मुख्यों में शान-दार विजय प्राप्त की है जिसके कारण उसे कलकत्ते के सान्मुख्यों में आग्रह पूर्वक प्रति वर्ष बुलाया जाता है। मेरठ, शाहजहांपुर, बिजनौर, सहारनपुर आदि स्थानों

में गुरुकुल पार्टी ने समय समय पर बहुत प्रशंसा प्राप्त की है।

मानसिक विकास—

श्रेणी के लिए नियत पाठ्य पुस्तक पढ़ने के साथ २ वक्तृत्व तथा लेखन कला की विशेष उन्नति करने के लिए ब्रह्मचारियों ने अपनी आश्रम-सभाएं बना रक्खी हैं। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी-तीनों भाषाओं में वाद विवाद तथा वक्तृत्व का अभ्यास करने के लिए अलग अलग सभाएं हैं। इन सभाओं की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी जब कभी हिन्दू-विश्वविद्यालय आदि हिन्दी तथा संस्कृत-व्याख्यान-प्रतियोगिताओं में भाग लेने गये तभी वे सर्व-प्रथम रहे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा गुरुकुल में छात्रों का मानसिक विकास कहीं अधिक होता है। अपने इस मानसिक विकास को बढ़ाने के लिए ब्रह्मचारी, समय २ पर अपने उपाध्यायों तथा बाहर के विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान भी करवाते हैं। लेखन कला की उन्नति के लिए ये सभाएं अपनी-अपनी पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती हैं, उनमें उच्चकोटि के निबन्ध, गल्प, कविताएं, सामयिक-टिप्पणियां आदि रहती हैं। इन सभाओं की बदौलत ही गुरुकुल के अनेक स्नातक सफल लेखक, यशस्वी कवि, कृतकार्य सम्पादक तथा प्रसिद्ध वक्ता बने हैं। तेईस, चौबीस वर्ष की छोटी सी आयु में ग्रन्थ रचना कर मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक प्राप्त करने का सौभाग्य गुरुकुल के स्नातकों को ही प्राप्त है।

गुरुकुल के स्नातक अन्य विश्वविद्यालयों के स्नातकों की अपेक्षा प्रायः अधिक धार्मिक वृत्ति वाले, देशभक्त, ईमानदार, सदाचारी, सेवाव्रती तथा तपस्वी होते हैं। हाथ से काम करने में वे संकोच या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुल में उन सब उपायों तथा साधनों पर विशेष बल दिया जाता है जिन से नवयुवकों के शरीर, मन तथा आत्मा का स्वाभाविक विकास अधिक से अधिक हो सके। गुरुकुल में प्राचीन शास्त्रों वेदों के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक नवीन विज्ञानों तथा अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य का भी उच्च ज्ञान उन्हें करवा दिया जाता है। अभी तक यह बात भारत के किसी भी अन्य विश्व-विद्यालय में नहीं है।

मातृभाषा द्वारा उच्चतम शिक्षा—

जो बुराई किसी भी सभ्य देश के विश्वविद्यालयों में नहीं है, तथा भारत का कोई भी शिक्षणालय जिस से बचा हुआ नहीं, वह है "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा।" हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा का माध्यम बन सकने की योग्यता अन्य भाषा में हो ही नहीं सकती। अन्य भाषा द्वारा साधारण से साधारण विषय को भी समझना विद्यार्थी के लिए कठिन होता है। कठिन विषय को तो प्रायः उन्हीं शब्दों में रट लेने के सिवाय अन्य कोई उपाय ही नहीं। इस प्रकार रटे हुए शब्द विद्यार्थी के मस्तिष्क में विजातीय द्रव्य की तरह संचित हो जाते हैं जो परीक्षा के बाद इस प्रकार उड़ जाते हैं जिस प्रकार पिंजरा खुलने पर पक्षी। उनमें निहित विचार विद्यार्थी के विचार के भाग नहीं बन जाते। विद्यार्थी विषय को समझ नहीं सकता इसलिये उसे बाज़ारू नोट्स तथा समरियां ज्यों की त्यों याद करने के लिए बाधित होना पड़ता है। यदि विषय समझ में आ जाए तो उसे रटने की आवश्यकता नहीं होती। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करते समय केवल विषय की कठिनाई को ही हल करना पड़ता है। किन्तु अन्य भाषा में पढ़ते हुए भाषा तथा विषय दोनों को समझना पड़ता है। कभी कभी भाषा के कारण ही विषय समझ में नहीं आता। अन्य भाषा द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी के मस्तिष्क पर दुगना बोझ पड़ता है, यह बड़ा भारी अत्याचार है। पुस्तकें मातृभाषा में हों तो अब की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान, वह भी बड़ी सुगमता से और थोड़े समय में प्राप्त किया जा सकता है। देश के नेताओं का ध्यान इस बुराई की ओर अब गया अवश्य है, किन्तु वे भी इसे दूर करने के लिये अभी पर्याप्त चिन्तित नहीं हैं। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसे बहुत पहले अनुभव कर लिया था। इस लिये उन्होंने गुरुकुल में प्रारम्भ से ही उच्च शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी को रक्खा। गुरुकुल की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है। यहां यह परीक्षण तीस वर्ष से सफलता पूर्वक चल रहा है। तो भी अनुदार विचारों के कुछ लोग इसे अक्रियात्मक कहते चले जाते हैं। गुरुकुल को इस बात का अभिमान है कि उसने माननीय श्री निवास शास्त्री की उक्त प्रकार की धारणा को बदल दिया था। उन्होंने अपने द्वारा नियत किये हुए आधुनिकतम राजनीतिक विषय पर गुरुकुल के विद्यार्थियों का संस्कृत भाषा में वादविवाद को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की थी। गुरुकुल में विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, इतिहास आदि विषयों में शिक्षोपयोगी हिन्दी पुस्तकें सब से प्रथम प्रकाशित हुईं।

वेदादि प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन—

गुरुकुल एक धार्मिक तथा राष्ट्रीय संस्था है, किन्तु यहां की शिक्षा अत्यन्त उदार है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके भी यहां के विद्यार्थी का झुकाव न तो नास्तिकता की ओर होता है। न वह किसी सिद्धान्त को आंख मीच कर यों ही मान लेने के लिये तय्यार होता है, उसमें अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता ही नहीं, पूर्ण सहानुभूति भी होती है। वेदों, दर्शनों तथा संस्कृत साहित्य का जितना गम्भीर, व्यापक तथा धार्मिक अध्ययन यहां करवाया जाता है उतना भारत के अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं करवाया जाता। भारतीय प्राचीन साहित्य की प्रायः सभी शाखाओं में यहां के विद्यार्थी की बेरोकटोक गति हो जाती है। वह उनमें अनुसन्धान के योग्य हो जाता है। वेदों पर पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का समाधान उसे बताया जाता है। वेद को समझने के लिए जिस साहित्य को पहले पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् व्याकरण, निरुक्त, प्रातिशाख्य, ज्योतिष आदि—यह सब उसे पढ़ाया जाता है। इस प्रकार वह वेद सम्बन्धी अपने अध्ययन को स्वतन्त्र-रूप में आगे बढ़ाने के योग्य हो जाता है। वह दर्शनों के

सिद्धान्तों को खूब समझता है, उन्हें दूसरों को सरल भाषा में समझा सकता है। संस्कृत साहित्य पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। वह कवियों की सूक्ष्म आलोचना तुलनात्मक, वैज्ञानिक, तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कर सकता है। उसे प्राकृत भाषा तथा पाली से भी परिचित करवा दिया जाता है जिस से कि वह जैन, बौद्ध साहित्य आदि में अनुसन्धान का कार्य कर सके। गुरुकुल का विद्यार्थी अंग्रेज़ी कवियों के साथ साथ वाल्मीकि, भास, कालिदास, भवभूति आदि को भी खूब जानता है।

इतिहास—

गुरुकुल में इतिहास शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता है। श्री आचार्य रामदेव जी ने इस दिशा में विशेष परिश्रम किया था।

जाति निर्माण के कार्य में इतिहास का बहुत बड़ा भाग होता है। उसको दृष्टि में रखकर गुरुकुल में इतिहास के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसमें हमारी दृष्टि शुद्ध राष्ट्रिय रहती है। गुरुकुल ने श्री पं० जयचन्द्र, विद्यालङ्कार, श्री डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार सरीखे उच्च कोटि के इतिहासज्ञ उत्पन्न किये हैं।

निःशुल्क शिक्षा—

अन्य शिक्षणालयों में विद्यार्थियों को भारी शिक्षा-शुल्क देना पड़ता है। किन्तु गुरुकुल में शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं। भोजन वस्त्र आदि का व्ययमात्र ही यहां लिया जाता है। बाहर के विद्यार्थियों को ट्यूशन के रूप में भी बहुत व्यय करना पड़ता है किन्तु यहां वह भी नहीं। विद्यार्थी जब भी, जिस गुरु से, जिस विषय में चाहे, सहायता प्राप्त कर सकता है। ऐसी सुविधा भला अन्यत्र कहां है?

सदाचार शिक्षा—

गुरुकुल की निचली कक्षाओं में विद्यार्थियों के साथ उनका अधिष्ठाता सदा रहता है जो उनकी देखभाल करता है, उनके आचार व्यवहार पर दृष्टि रखता है। समय समय पर उन्हें आचार्य द्वारा सदाचार के विभिन्न अंगों की शिक्षा भी दी जाती है। किन्तु महाविद्यालय विभाग में आने पर उन्हें इतने कठोर नियन्त्रण में नहीं रखा जाता। उन्हें इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे अपनी उत्तरदायिता को स्वयं समझें और नियमों का पालन कर्तव्य बुद्धि से करना सीखें। इस भय से नहीं कि उन्हें कोई देख रहा है। इस प्रयोजन के लिए यहाँ व्रताभ्यास प्रचलित किया गया है। यह एक परीक्षा है जिसमें आचार के विभिन्न अंगों के लिए अंक नियत हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार को देखकर प्रतिमास उन्हें अङ्क दिये जाते हैं। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना कोई विद्यार्थी स्नातक नहीं बन सकता। इस परीक्षा के मुख्य विषय यह हैं—आज्ञापालन, समय-पालन, सुशीलता, शिष्ट व्यवहार, सत्य, सेवा, ब्रह्मचर्य इत्यादि।

वर्धा शिक्षा—

आजकल देश में वर्धा-शिक्षा-योजना की बड़ी धूम है। शिक्षा के क्षेत्र में यह सचमुच एक क्रान्ति है। महात्मा गांधी ने इसमें विशेष मनोयोग प्रदान किया है। उन्हीं के निर्देशों के अनुसार इसकी रूपरेखा बनी है। इसके द्वारा शिक्षा, राष्ट्रिय, स्वाभाविक तथा स्वावलम्बिनी हो जायगी। इसके उपयोगी अंशों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित करके इसी वर्ष गुरुकुल की प्रारम्भिक कक्षाओं में प्रचलित कर दिया गया है। आशा है यह परीक्षण बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। इसके लिए गुरुकुल के दो सुयोग्य स्नातकों—श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार तथा श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार को वर्धा भेजकर विशेष रूप से तय्यार किया गया है।

परीक्षा प्रणाली—

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुकुल एक जीवित तथा प्रगतिशील संस्था है। जिन आदर्शों को सन्मुख रखकर इसकी स्थापना की गई थी उन्हें इसने पूर्ण किया है।

ऊपर हम प्रचलित परीक्षा प्रणाली की त्रुटियां देख आये हैं उनसे बचने के लिए गुरुकुल में नवीन प्रकार की परीक्षा-पद्धति प्रचलित की गई है। यहां दो दो वर्ष की परीक्षा एक साथ नहीं होती। प्रत्येक वर्ष में पढ़े पाठ की परीक्षा उसी वर्ष में हो जाती है। इससे विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर अधिक बोझ नहीं पड़ता। दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक विषय के दो विभाग कर दिये जाते हैं। एक भाग का परीक्षक उस विषय का उपाध्याय ही होता है तथा दूसरे भाग की परीक्षा उसी विषय का कोई बाहर का विद्वान लेता है। इस प्रकार परीक्षा में अनुचित कठोरता भी नहीं आने पाती और हमें यह भी पता लगता रहता है कि किसी विषय में हमारे विद्यार्थियों की योग्यता बाहर के विद्यार्थियों की योग्यता के मुकाबले में कम तो नहीं रही।

अन्त में सब का आदर्श गुरुकुल ही

जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। ३८ वर्ष पूर्व, जिन सिद्धान्तों के अनुसार गुरुकुल की स्थापना की गई थी, आज संसार उन्हें क्रिया रूप में स्वीकार कर रहा है। संयुक्त प्रान्त के हाईस्कूल बोर्ड ने यह नियम बना दिया है कि किसी भी स्कूल का विवाहित विद्यार्थी हाईस्कूल की परीक्षा में नहीं बैठ सकता। मातृभाषा ही शिक्षा तथा परीक्षा का उपयुक्त माध्यम हो सकती है; सिद्धान्त रूप में यह प्रायः सर्वत्र स्वीकृत हो चुका है। हाई स्कूल तक यह क्रियात्मक रूप भी धारण कर चुका है। बनारस विश्वविद्यालय इण्टर मीडियेट तक शीघ्र ही इसे बढ़ाने वाला है। आश्रमवास के महत्व को धीरे २ समझा जा रहा है। बोर्डिङ्ग-हाउसों को उन्नत करने का यत्न किया जा रहा है। विद्यार्थी विद्यालय द्वारा स्वीकृत बोर्डिङ्ग-हाउसों में ही रह सकते हैं। इस सबका अभिप्राय यही है कि उन्हें नगरों के दूषित प्रभाव से यथासम्भव बचाया जा सके। यद्यपि यह सब उपाय वायु को रोकने के लिए जाल लगाने के समान है तो भी इनसे यह प्रकट हो जाता है कि संसार गुरुकुल की ओर आ रहा है यद्यपि बहुत धीरे धीरे। देश के नेताओं का ध्यान इतिहास के अध्ययन की खराबी की ओर भी प्रबल रूप से आकृष्ट

[शेष पृ० ६ पर]

गु रु कु ल

१४ आषाढ़ शुक्रवार १९९८

प्रगतिशील-साहित्य

[हरिभाऊ उपाध्याय]

प्रगतिशील साहित्य पर कुछ लिखने के पहले हमें "प्रगति" और "साहित्य" का मतलब अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है। सवाल उठते हैं कि प्रगति किसकी? साहित्य क्या और किस लिए? जब इनकी गहराई में जाते हैं तो जवाब मिलता है—'प्रगति' जीवन की और 'साहित्य' जीवन के लिए। जो साहित्य जीवन को प्रगति की तरफ ले जाता है वही प्रगतिशील साहित्य है। और फिर साहित्य क्या है? सुन्दर शब्दों में जीवन की अभिव्यक्ति ही साहित्य है।

जब यह कहा जाता है कि साहित्य तो शाश्वत वस्तु है, राजनीति युग युग में पलटती रहती है, अतएव अस्थिर और अग्राह्य है, उसमें दलबंदियां हैं, छोटे दर्जे के जीवों का वह स्थान है, साहित्य उच्च, निर्मल, आकाश में सञ्चार करने वाला मनीषी है, तब मुझे यही लगता है कि हमने न साहित्य को समझने की कोशिश की है न राजनीति को न जीवन को। हमने एक-एक टुकड़े को ले लिया है, उसे ही 'पूर्ण' समझ लिया है और उन सबके एक सूत्र 'जीवन' तक पहुँचने की ज़रूरत ही नहीं समझी है। मेरी राय में तो जैसे साहित्य जीवन की शब्दों में अभिव्यक्ति है वैसे ही राजनीति व्यवस्था-रूपी कर्म विशेष में जीवन की अभिव्यक्ति है। राजनीति का उद्देश्य है जीवन को सुव्यवस्थित बनाना और प्रगति की ओर ले जाना। साहित्य का उद्देश्य है जीवन को प्रसन्न और सुसंस्कृत बनाना। और सहकारिता तथा व्यवस्थित प्रगति के ही साधन हैं। वास्तव में जीवन को हम किसी एक खाने में बांधकर या बन्द करके नहीं रख सकते। उसे समझने के लिए उसके कल्पित टुकड़े कर लेने पड़ते हैं।

अब यह सवाल पैदा होता है कि जीवन क्या है? मेरी समझ में जीवन शरीर में या आकारों में बँधा हुआ चैतन्य का कण या स्रोत है। गति, प्रवाह, वेग, हलचल, आन्दोलन, क्रिया, चमक ये चैतन्य के लक्षण हैं। शरीर या आकार में बँध जाने से चैतन्य या जीवन को एक मर्यादा जरूर प्राप्त हो जाती है लेकिन उसका असर इतना ही हो सकता है कि चैतन्य या जीवन की शक्ति कुछ कुंठित हो जाय, मगर उसके असली लक्षण तो उसमें जरूर ही पाये जायेंगे। साकार या शरीर बद्ध हो जाने से जहां उसकी शक्ति को मर्यादा में रहना पड़ता है, वहां उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। आकाश की बिजली में अधिक व्यापक ताकत है; लैम्प की बिजली की ताकत सीमित होती है। मगर इसलिए लैम्प निरंतर मधुर प्रकाश देता रहता है और आकाश की बिजली की चमक आँखों को चौंधिया देती है, और फ़ायदा कुछ नहीं।

जब जीवन चैतन्य है, उसमें क्रिया, हलचल, वेग, आदि हैं तो साहित्य और राजनीति आदि जो उसकी जुदा-जुदा अभिव्यक्तियां या साधन हैं, उनमें भी ये लक्षण दिखाई देने चाहिएँ। शाश्वत धर्म और युग-धर्म में फ़र्क या फ़ासला महज़ पैर और आंख का है। आंख ऊपर और दूर तक देखती है, पैर चलता है, धीरे-धीरे भी और दौड़ कर भी। मगर आँख जितनी तेजी उसमें नहीं। जो शख्स देखता दूर तक है, मगर चलता नहीं और जो शख्स चलता है मगर देखता नहीं उन दोनों में कुछ-कुछ खामियां हैं। असली मनुष्य वह है जो देखता भी है और चलता भी; और पूर्ण मनुष्य वह है, जिसके देखने और चलने में सामञ्जस्य है, मेल है। देखने वाला आदर्शवादी और चलने वाला व्यावहारिक कहलाता है। सच्चा मनुष्य व्यावहारिक आदर्शवादी ही हो सकता है। यानी वह तो आदर्श को अमल में लाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश करता है। आदर्श हमें शाश्वत धर्म की तरफ़ मुखातिब करता है और व्यवहार हमें युग-धर्म की उपयोगिता और महत्ता बताता है। यदि साहित्य शाश्वत धर्म का उपासक है तो राजनीति युग-धर्म से बँधी हुई है क्योंकि साहित्य कहता और इशारा करता है और राजनीति को करना पड़ता है। जिसे करना पड़ता है, उसे नजदीक, आगे-पीछे, आस-पास भी देखना पड़ता है और उसका हिसाब लगाना पड़ता है। साहित्य यदि भाव या विचार है तो राजनीति कर्म है, साहित्य यदि ऋषि है तो राजनीति सिपाही या कर्मयोगी है। जो दोनों में नाता नहीं देखते या उसे तोड़ डालना चाहते हैं वे साहित्य और राजनीति दोनों का—शाश्वत धर्म और युग-धर्म दोनों का द्रोह करते हैं।

साहित्य के भी दो रूप हैं एक उल्लास देने वाला, दूसरा ज्ञान और सुसंस्कार देने वाला। आजकल बहुतेरे लोग मनोरंजक, ललित या उल्लास देने वालों को ही साहित्य कहते हैं, शेष को शिक्षण या तत्त्वज्ञान में दाखिल करते हैं। लेकिन साहित्य के शाश्वत महत्त्व पर तो ज़ोर वही लोग दे सकते हैं, जो उसे व्यापक अर्थ में मानते हों, क्योंकि साहित्य का शिक्षण या तत्त्वज्ञान नामक अंग ही शाश्वतधर्म के अन्दर आ सकता है, मनोरंजक या ललित अंग नहीं। वह तो सोद्देश्य क्षणिक है।

गति जीवन का लक्षण है इसलिए साहित्य भी गतिमान होना चाहिए। लेकिन महज़ 'गति' के कोई मानी नहीं हैं जब तक कि उसका कोई उद्देश्य न हो। किसी लक्ष्य की तरफ जो गति होती है उसे प्रगति कहते हैं। तो जीवन का लक्ष्य क्या है? पूर्ण विकास से अच्छा बुद्धिगम्य नाम जीवन के लक्ष्य को नहीं दिया जा सकता। जीवन के जितने लक्षण या धर्म हैं उन सबका अधिक-से-अधिक विकास ही जीवन का लक्ष्य हो सकता है। लेकिन विकास किसलिए? मनुष्य ही नहीं जीवमात्र के सुख, समृद्धि, स्वतन्त्रता और शान्ति के लिए। इससे हम इस नतीजे

पर पहुंचे कि जो साहित्य जीवन को सुख, समृद्धि, स्वतन्त्रता और शान्ति की तरफ ले जाता है वही प्रगतिशील साहित्य कहा जा सकता है।

क्या हिन्दी का साहित्य प्रगतिशील है? 'प्रगति' शब्द शाश्वत धर्म के लिए लागू नहीं हो सकता, युग-धर्म पर ही लागू हो सकता है। वह समयसापेक्ष है। वह वर्तमान की अपेक्षा रखता है। वर्तमान की तुलना में ही आप किसी को प्रगतिशील या उससे उलटा बता सकते हैं। तो इस समय हिन्दुस्तान की आवश्यकता क्या है? हिन्दुस्तान का जीवन विकास की या प्रगति की किस अवस्था में है? यह साफ है कि हिन्दुस्तान अभी गुलाम है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद में यह बुरी तरह जकड़ा हुआ है और उसे उससे जल्दी-से-जल्दी छूटकर अपना पथ लेना है और बाद को तुरन्त ही ऐसे मानव-समाज का निर्माण करना है जो सुखी, समृद्ध, स्वतन्त्र और शान्तिमय हो। यह कशमकश, यह संघर्ष, यह आतुरता, व्याकुलता हिन्दुस्तान का वर्तमान जीवन है। क्या वर्तमान हिन्दी-साहित्य में हमारा यह जीवन अभिव्यक्त हो रहा है?

यह सच है कि हिन्दुस्तान की आज़ादी जनता की जागृति, संगठन और बल से मिलने वाली है। हम सब की सारी कोशिश यही है और होनी चाहिए कि जल्द से जल्द जनता को इसके लिए तैयार करें—हिन्दुस्तान का मानस जनता भिमुख हो। हिन्दुस्तान के जीवन की सबसे बड़ी पुकार है—क्या हिन्दी साहित्य में यह प्रतिध्वनित हो रही है?

हिन्दुस्तान को जो राज कायम करना है, जो समाज बनाना है वह मुट्ठी भर लोगों के लिए नहीं, सारी जनता के लिए होगा। तभी वह सच्चा राज और समाज बन और कहला सकता है। अब तक जो राज-व्यवस्था यहां रही है और जो समाज बना हुआ है उसने समाज के सुख का तो ध्यान रखा गया है मगर उसकी आज़ादी और आज़ाद भावों में बनने वाली प्रणालियां, संस्कृतियां और उनकी रक्षा का ख्याल नहीं किया गया है। अब जो राजप्रणाली बनेगी, जो संस्कृति रची जायगी उसमें स्वाधीन भावों का पूरा ख्याल रखा जायगा। क्या इस भावी राष्ट्र-निर्माण की कल्पनाओं का प्रतिबिम्ब हमारे वर्तमान साहित्य में मिलता है?

हिन्दुस्तान अहिंसात्मक साधन से आज़ादी हासिल करने के लिए प्रयत्नशील है और अब ऐसा दिखलाई देने लगा है कि इसी तरीके से वह आज़ाद हो जायगा। यदि ऐसा हुआ तो हमारी शासन रचना, सुधार, प्रगति सम्बन्धी कल्पनायें आमूल बदल जायेंगी। अब भी बदल रही हैं। अहिंसात्मक युद्ध का एक नया ही शास्त्र बन रहा है, इसी प्रकार अहिंसात्मक समाज-व्यवस्था का शास्त्र भी बनेगा और बनाना पड़ेगा। क्या इस प्रवृत्ति और इन प्रयोगों का परिचय हमारे वर्तमान साहित्य में अच्छी तरह मिलता है?

हम यह मोटे तौर पर कह सकते हैं कि हिन्दी के कुछ लेखकों और कवियों ने गुलामी की पीड़ा को अनुभव किया है, आज़ादी की पुकार को सुना है, लेकिन उसके सच्चे स्वरूप को, सफल हो सकने योग्य साधन को कितनों ने अच्छी तरह पहचाना है? भावी भारतीय समाज की कल्पना तो शायद ही किसी को छू तक गई हो। इस पर अगर किसी ने लिखा है तो वे "साहित्यसेवियों" में नहीं "राष्ट्रसेवकों" में रूपने वाले होंगे। इस प्रकार लिखने वाला, या राष्ट्रभाषा का प्रचार करने वाला को तो 'साहित्य सेवी' कहलाने वाले 'साहित्यसेवी' के आंगन में आने लायक भी नहीं समझते। इधर कुछ दिनों से हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में राष्ट्रीय वृत्ति के हिन्दी-सेवकों का प्रभाव बढ़ रहा है तो बस हमारे ऐसों तक "साहित्यसेवी" ऐसा मानने लगे हैं मानो 'साहित्य-सेवा' के क्षेत्र में अनधिकारी लोग घुस पड़े हों और साहित्य पर कुठाराघात हो रहा हो। उनके दिल में ऐसा डर न पैदा होता, वे इतने नाराज न होते, अगर हिन्दुस्तान के जीवन में उन्होंने अपने आपको डुबा दिया होता। वे उससे विलकुल या बहुत कुछ अछूते हैं इसलिए उनकी रचनायें पाठक के हृदय को छूती नहीं हैं और न जन समाज में प्रिय या प्रचलित ही होती हैं।

हिन्दी-साहित्यिकों को इस बात की बड़ी शिकायत रहती है, कि हिन्दी लेखकों और साहित्यसेवियों को कोई कद्र नहीं करता, उन्हें अर्थ-कष्ट से पीड़ित रहना पड़ता है और कुछ ऐसा लगता है, जैसे पुरस्कार, पारिश्रमिक या ऐसी ही कुछ कसौटी उन्होंने बना रखी है किसी लेखक की सफलता की, उसकी कद्र की। पुरस्कार रुपया रोटी की जिन्हें शिकायत रहती है उन्होंने क्या तो साहित्यिक के आदर्श और उसकी जिम्मेदारी को समझा है और क्या उनसे साहित्य-सेवा होगी या हुई होगी? यह समझना भूल है कि दिमाग़ की कोरी कल्पनाओं से मन की मस्त-हिलोरों से कोई साहित्य सृजन कर सकता है, जब तक कि वह जीवन की गहराई में गोते न लगाता हो और उसमें से रत्न चुन-चुन कर न लाता हो जिन कल्पनाओं भावों और विचारों का जीवन से, जीवन की अनुभूतियों से कोई नाता न हो, हमारे आसपास के नित्य और प्रत्यक्ष जीवन से जिनका लेन देन न होता हो उनसे न सजीव प्रेरणा रहती है, न वास्तविक अनुभूति की अभिव्यक्ति। वे कल्पना-जगत् की हैं अथवा मिथ्या हैं। इसलिए वे लोक-हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकतीं।

यह एक दुःखद प्रश्न है कि हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ, गांधी, गोर्की क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि हिन्दी में जीवन की बनिस्बत साहित्य को, साधना की बनिस्बत कल्पनाओं को, अनुभूति की अपेक्षा निराधार भावों को महत्त्व दिया गया है और दिया जाता है। हिन्दी के अधिकांश लेखक पुरस्कार या रोटी के लिए लिखते हैं, उससे ऊपर उठकर नहीं रहते। वे "फाकेमस्त" नहीं 'फाकेशिकायत" हैं। यदि उन्होंने सत्य जीवन की साधना के द्वारा अपना व्यक्तित्व बना लिया हो तो उनके पास जगत को देने के लिए नित-नयी अनमोल चीज़ें होतीं और जगत् उन पर अपने को न्यौछावर कर देता। और यह कहां की 'सेवा' है जो हर घड़ी "पुरस्कार" का हिसाब लगाती है और अपनी "भूख" का रोना रोती है? सरकारी नौकर,

'जी हुजूर,' ना-मर्दी, दब्बू, दुर्बल, पतित, कहीं सजीव मुक्ति और अमृतदायी साहित्य रच सकते हैं? यह लिखते समय मैं हिन्दी लेखकों की कठिनाइयों को कम नहीं आँक रहा हूं बल्कि एक उच्च साहित्यसेवी के कार्य और जिम्मेदारी का अपना अंदाज़ पेश कर रहा हूं। पं० जवाहरलाल जी को कोई साहित्यसेवी कहेगा? फिर क्यों उनकी लिखी चीज़ों को मामूली हिन्दी पढ़ा भी पढ़ना चाहता है और क्यों 'प्रियप्रवास' या 'बिहारी सतसई' या 'कविताकौमुदी' से दूर भागता है? एक ने जनता के हृदय को छुआ है। दूसरे ने थोड़े से उच्च रुचि रखने वालों को आह्लादित करने का प्रयत्न किया है? क्यों प्रेमचन्द के लिए सब रोते हैं, क्यों हमें मैथिलीशरण बरबस खींचते हैं? इसीलिए कि उन्होंने जनता में डूबने, जीवन की गहराई से अपना मेल साधने की कोशिश की है।

जीवन या मानव-जीवन अमर प्रेरणा, अनन्त अनुभूति और दिव्य संदेशों का स्रोत है। उससे दूर रहकर हम न खुद ही जीवन पा सकते हैं न दूसरों को दे सकते हैं। जीवन का लक्ष्य या आदर्श तो हमें सिर्फ इस बात के लिए जाग्रत और सावधान रखता है कि हम गलत दिशा में तो नहीं जा रहे हैं। परन्तु जीवन का वर्तमान हमें यह सिखाता है कि किस समय क्या कहें, क्या लिखें और क्या करें? घर में आग लग गयी हो, उस समय जो साहित्यसेवी उन्मत्त शृंगार रस का काव्य लिख रहा होगा, वह क्या सत्य की, जीवन की या साहित्य की सेवा का दावा कर सकता है? जो अनुभूति आसपास की विकलता, वेदना आनन्द, उल्लास यानी सुख-दुख से अछूती रहती है वह सत्य की अनुभूति कैसे हो सकती है? जिन साहित्य-सेवियों के उच्च विचार सुन्दर भाव और दिव्य तत्व उनके दैनिक जीवन में मेल नहीं खाते, उनकी साधना एक विद्रूप नहीं बनते, वे यदि लोगों को खोखले ही लगें, और लोगों में अधिक दिन तक न ठहरें तो यह किसका कसूर?

मेरे कहने का भाव यह है कि प्रगतिशील साहित्य की रचना हम तभी कर सकते हैं जब हम जीवन की प्रगति के साथ साथ रहें, चलें और दौड़ें। जो साहित्य जीवन के उतार-चढ़ाव से अछूता है वह प्रगतिशील साहित्य नहीं। हिंदी में प्रगतिशील साहित्य का अभाव तो नहीं है, परन्तु वह प्रभावशाली भी नहीं है, हिन्दी-सेवकों का इस तरफ ध्यान जाना चाहिए। यदि वे ध्यान देंगे तो उन्हें जीवन या युग-धर्म से दूर भागने और अपनी एक अलग जाति बना लेने की अपेक्षा जीवन में और वर्तमान में डूबने की प्रेरणा मिलेगी और उन डुबकियों से वे जो चीज़ें लाकर हिंदी जगत् को देंगे उनसे न केवल वे खुद अमर होंगे, बल्कि सारे हिन्दुस्तान को आज़ादी की ही तरफ नहीं अमरता की तरफ भी दौड़ा देंगे।

(जीवन-साहित्य)

[पृ० ३ का शेष]

हुआ है। राष्ट्रीय सरकारें राष्ट्रिय दृष्टिकोण से भारत के इतिहास को लिखवाने का प्रयत्न कर रही हैं। देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में एक ऐतिहासिक संस्था की स्थापना हुई है जिसके मुख्य कार्यकर्ता गुरुकुल के प्रसिद्ध इतिहासवित् शास्त्र श्री पं० जयचन्द्र विद्यालंकार हैं।

काशी आदि में वर्तमान संस्कृत कालिजों के विद्यार्थी प्रायः नवीन विद्याओं से सर्वथा अपरिचित रहकर कूप मण्डूक बन जाते थे। व्याकरण की पंक्ति की योजना के सिवाय उनके जीवन का कोई कार्य ही नहीं था। देश की समस्याओं से उनको कोई सरोकार न रहता था। इस दोष को दूर करने के लिये प्रान्तीय शिक्षा मन्त्री की प्रेरणा से काशी संस्कृत कालिज (क्वीन्स कालिज) ने अपनी पाठविधि को आमूलचूल बदल दिया है। उसकी रूपरेखा प्रायः गुरुकुल की पाठविधि के आदर्श पर ही बनाई गई है। दूसरी ओर सरकारी अंग्रेजी विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी भाषा तथा नवीन विद्याओं को इतनी अधिक प्रधानता दी गई है कि उनमें पढ़े विद्यार्थी प्रायः भारतीयता से ही वञ्चित हो जाते हैं। किन्तु गुरुकुल की पाठविधि में नवीनता तथा प्राचीनता का इतना सुन्दर समन्वय है कि भारतीयता की रक्षा के साथ साथ विद्यार्थी को नवीन ज्ञान-विज्ञान का अधिक से अधिक परिचय हमेशा प्राप्त हो जाता है। सरकारी विश्वविद्यालय भी अब करवट बदलने लगे हैं। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि आज सब गुरुकुल की ही ओर आ रहे हैं कोई जल्दी जल्दी, कोई धीरे धीरे। आदर्श सबका गुरुकुल ही है।

स्वागताध्यक्ष का भाषण

[गुरुकुलीय 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अवसर पर १३ जून को दिया गया भाषण]

अभ्यागत वृन्द,

आज इस तपोभूमि में आपका स्वागत है। हिन्दी भाषा के गौरव को सर्वप्रथम समझने वाले क्रान्तदर्शी ऋषि दयानन्द के अनुपम शिष्य महामहिम महनीय स्वामी श्रद्धानन्द के इस आश्रम में, मैं आपका मङ्गल-वचनों से स्वागत करता हूं।

आज आपका यहां स्वागत करते हुवे मुझे जो अपार हर्ष हो रहा है, उसका कारण यह है कि यह स्थान जहां आने के लिये आपने अपने आराम का इतना तिरस्कार करना स्वीकार किया, हिन्दी भाषा की उन्नति से एक विशेष और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रखता है। महर्षि दयानन्द हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे; स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने वाले पहले क्रान्तिकारी थे। इसी स्थान से हिन्दी भाषा में कठिन वैज्ञानिक और अन्य पाश्चात्य विचारों से परिचय कराने वाला साहित्य उत्पन्न हुआ। इस समय सारा भारतवर्ष हिन्दी को अपनी राष्ट्रभाषा उद्घोषित कर रहा है, सर्वत्र शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं; न जाने कितनों द्वारा नित्य नई वैज्ञा-

निक तथा अन्य प्रकार की पुस्तकें हिन्दी भाषा में प्रकाशित की जा रही हैं। मगर इस में क्या? पुत्र के कितना ही बड़ा हो जाने पर माता पिता का उस पर अधिकार कम नहीं हो जाता, सुवर्ण के आभूषण रूप हो जाने पर उस की खान को अरक्षित नहीं छोड़ दिया जाता! उसमें फिर भी सुवर्ण पैदा होगा, यह निश्चय है। आज यद्यपि हिन्दी भाषा इतनी उन्नत हो गई है कि अत्यन्त ऊंचाई पर पहुंचे हुओं को भी इसे आंखें ऊपर उठा कर देखना पड़ता है, और अतएव यह अनेकों की ईर्षा का पात्र बनी है। चारों ओर से हिन्दी के उन्नत और प्रचारित होते हुये साहित्य पर ईर्षाग्रस्त शनिदृष्टियां फेंकी जा रही हैं। किन्तु भारतीय जनता का जीवन और प्राण यह हिन्दी भाषा दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही है। अदालतों की हिन्दी के प्रति दुर्व्यवहार और रेडियो की तिरस्कार पूर्ण उपेक्षा हिन्दी को अपने स्थान से परिभ्रष्ट नहीं कर सकती; और न स्वार्थियों के असत्य और दुर्भावना पूर्ण प्रोपेगण्डे ही उसका कुछ बिगाड़ सकते हैं। अब हम हिन्दी भाषाभेषी एक ऐसी विस्तार की अवस्था में पहुंच चुके हैं; जहां से कोई भी स्थान दूर नहीं। मगर अपनी भाषा की इन सब महत्ताओं की ओर आपके ध्यान को ले जाता हुआ भी, इसके दूसरे पासे से आप मुख न मोड़ने की प्रार्थना करूंगा। निःसन्देह हमने बहुत कुछ कमा लिया है, मगर क्या सब कुछ?—आज भी हमारे सामने बहुत प्रश्न हैं; बहुत सी समस्याएं हैं। हमारे सामने अपने साहित्य के वर्गीकरण का प्रश्न है; अपने साहित्य की दिशा का मसला है। हमने यह भी सोचना है कि कैसे हमारे लेखक और कलाकार अपना उचित भाग प्राप्त कर सकते हैं और किस प्रकार हम अपने साहित्य को अधिक प्राणवान् और जनता का साहित्य बना सकते हैं।—यह सवाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं कि हिन्दी भाषा के भण्डार में उन विषयों की पुस्तकें भरी जांय जिन से हमारा साहित्य अभी तक अछूता है—जैसे वैज्ञानिक पुस्तकें आदि। अभी तक भी हिन्दी-भाषा को बहुत स्थानों पर इसके योग्य पद प्राप्त नहीं हो पाया है, जैसे कचहरी, रेडियो या तार आदि विभागों तथा सिक्कों आदि पर। इसी प्रकार हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनवाने में अभी हमने कहां तक सफलता प्राप्त की है?

एक और भी सवाल ऐसा है जिसने हमारी बहुत सी क्रिया शक्ति को व्यर्थ ही नष्ट किया है; और वह है हिन्दी-हिन्दुस्तानी का सवाल। यह सवाल अत्यन्त कृत्रिम और बनाया हुआ सवाल है जिसके पीछे कुटिल और संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाएं अपना खेल खेल रही हैं, स्वार्थियों ने इस प्रश्न के द्वारा हिन्दी को बहुत नुकसान पहुंचाने की चेष्टा की है। किन्तु हिन्दी भाषा भाषियों की सचेतनता ने सर्वत्र इसकी रक्षा की है।—इन सब प्रश्नों के साथ साथ अन्य भी अनेक विचारणीय प्रश्न यहां आए हुए अभ्यागत महानुभाव उपस्थित करेंगे और उन सब पर सहयोग पूर्वक आप विचार करेंगे, आइये, आज अपने पीछे दृष्टि फेंक कर हम अपने भूत से अनुभव लें, अपने वर्तमान को सक्षम और क्रियाशील बनाएं, तथा अपने स्वर्णिम भविष्य का निर्णय करके उस पर अपनी दृष्टि को गड़ाकर निरन्तर बढ़ते चलें, बढ़ते चलें।

अन्त में फिर एक बार आपका स्वागत करता हूं।

देवमित्र,

स्वागताध्यक्ष।

समर्पण

रवि किरणें सौंप रहीं सपने!
उदयाचल से जो लाई थीं,
ऊषा जिनकी परछाईं थी,
दिन भर बिखरे-संध्या में चुन-
कर किरणें सौंप रहीं सपने।

विस्मित इनसे कवि का जीवन,
संचित उर-इच्छायें उन्मन,
ये कर देंगे युग परिवर्तन-
जो किरणें सौंप रहीं सपने।

तारकिने! लो यह रत्नभार,
इनमें शशि तारक कर संवार,
जग की आंखों में भर देना-
जो किरणें सौंप रहीं सपने॥

—श्री सूर्य कुमार—

रण--गीत

ठहरो मरने चलने वालो! हमको भी तो आजाने दो,—
तुम कहां अकेले चले हमें बूढ़ों-मुर्दों सा छोड़ यहां,
यह उर साहस, यह बाहु शक्ति, लेगी किस रिपु से होड़ यहां,
यदि यहां रहे तो पड़े-पड़े कुत्तों जैसे मर जाना है,
भारत का एक वीर रण में होता है एक करोड़ यहां॥
हे वीर गिने जाने वालो हमको भी तो आजाने दो;
ठहरो आहुति देने वाले हमको भी तो आजाने दो;
छोड़ो न अभी आहुति ऋत्विक्, है अभी अधूरा घृत-प्याला,
है अभी नहीं धधकी पूरी यह समरानल भीषण ज्वाला॥
अब भी आहुति बन भारत के कितने क्षत्रिय आते होंगे,
देखो न छूट जाए कोई अरमान लिए आने वाला;
हम जैसे अभी अनेकों हैं उनको भी तो आजाने दो।
सेनापति का आमंत्रण है सादर सहर्ष स्वीकार हमें;
शायद उनसे भी बढ़ कर है जन्मभूमि से प्यार हमें।
जैसे पहले सब भारतीय अब तक करते आए हैं,
सब उसी भांति अब भी रिपुओं का करना है संहार हमें॥
संहार हेतु चलने वालो हमको भी तो आजाने दो,
पहले मारेंगे रिपुओं को लड़ते लड़ते मर जावेंगे;
मरने से पहले दुश्मन का हम दिल आधा कर जाएंगे।
यह ऐसी मार पड़ेगी फिर वह नाम न फिरने का लेगा
आशा है भारत जननी का क्लेश जरा कम होवेगा,
दुख जननी के हरने वालो; हमको भी तो आजाने दो॥

"श्री विराज"

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो चुकने पर भी इस सप्ताह विशेष गर्मी रही। अधिक उष्णता के कारण वातावरण में धुंधलापना छाया रहा। इस गर्मी से गुरुकुल वाटिका के पौधों को बचाने के लिए पक्की नालियों द्वारा जल पहुंचाने का उत्तम प्रबन्ध पहले से ही था इस कारण इस वर्ष वृक्षों को हानि पहुंचने की कम सम्भावना है। वर्षा की प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है।

गुरुकुल-क्रीड़ा भूमि का परिष्कार—गुरुकुल विश्वविद्यालय में एक अच्छी क्रीड़ाभूमि की आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रहीथी। हाकी आदि खेलों की प्रगति को सुचारु रूप से चलाना अच्छी क्रीड़ा-भूमि के अभाव में कुछ मुश्किल सा मालूम पड़ता था। हर्ष का विषय है कि महाराजा साहब बलराम पुर के एक-सहस्र रुपए के दान में से इस वर्ष ६००) व्यय करने की स्वीकृति आ. प्र. नि. सभा ने देदी है। इन रुपयों से शीघ्र ही गुरुकुल में एक अत्युत्तम खेल का मैदान तैयार करवाया जायगा।

श्रद्धानन्द-चित्रशाला—गुरुकुल विश्वविद्यालय में चित्रकला की उन्नति को दृष्टि में रख कर महाविद्यालय के कतिपय ब्रह्मचारियों ने यह चित्रशाला खोली है। गुरुकुलमें भारतवर्षके अतिरिक्त अमेरिका आदि दूर देशों से भी अनेक विख्यात चित्रकार समय २ पर आकर ब्रह्मचारियों को चित्रकारी सिखलाते रहे हैं। ब्रह्मचारियों की इस चित्र शाला में कला की दृष्टि से अनेक उत्कृष्ट चित्र तैयार हो चुके हैं जिन्हें देख कर अनेक कलाविद् दर्शक प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके। यह चित्रशाला दिन-दिन उन्नति करती चली जायगी, ऐसी पूरा आशा है। इसकी उन्नति में चित्र-कला-कुशल ब्र० शान्तिस्वरूप तन-मन से लगे हुए हैं। चित्रों के अतिरिक्त 'स्वागतम्' आद भी रंग-बिरंगे बेल-बूटों से अति सुन्दर चित्रित किए गए हैं जिन्हें जनता बड़े शौक से खरीद रही है। शीशे पर उत्तम कारीगरी के नमूने भी दर्शनीय हैं।

कवि-दर्बार का आयोजन—गुरुकुलीय वाग्वर्धिनी सभा की ओर से ब्रह्मचारियों की प्रतिभा के विकास के लिए एक विशाल 'कवि-दर्बार' का आयोजन किया जा रहा है जो कि १२ जुलाई को किया जायगा। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी बड़ी तत्परता एवं उत्साह के साथ इसकी तैयारी में लगे हैं। यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस कवि-दर्बार को सफल बनाने के लिए श्री० प० विद्यानिधि जी सिद्धान्तलङ्कार पूर्ण दिलचस्पी के साथ भाग ले रहे हैं। अभिनय में दिग्दर्शक का कार्य भी आप ने ही संभाल रखा है। इस बड़ी तैयारी को देख कर आशा की जाती है कि कवि दर्बार अच्छी सफलता पूर्वक सम्पन्न होगा।

लकड़ी काटने की मशीन बिकाऊ——

लकड़ी काटने की बिजली से चलने वाली मशीन गुरुकुल में बिकाऊ है। जो खरीदना चाहते हैं कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

पं० धर्मवीर जी वेदालंकार देहलीमें विदाई समारोह

श्री० पं० धर्मवीर जी वेदालंकार मन्त्री अखिल-भारतीय श्रद्धानन्द मैमोरियलट्रस्ट देहली को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का मुख्याधिष्ठाता बनाने पर देहली में उन के सम्मान में विदाई समारोह का आयोजन हुआ। दीवान हाल देहली में विदाई के उपलक्ष्य में एक सार्वजनिक सभा हुई जिस के प्रधान श्री ला० नारायणदत्त जी थे। श्री० लाला जी ने अखिल भारतीय श्रद्धानन्द ट्रस्ट देहली के प्रधान मन्त्री की हैसियत से पं० धर्मवीर जी की सेवाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। "हिन्दुस्तान" के सम्पादक श्री० पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार ने प० धर्मवीर जी के सार्वजनिक जीवन की सराहना करते हुए उनके वैयक्तिक चरित्र की महानता प्रकट की। डा० धर्म प्रकाश जी दलितों के नेता ने इन की दलित बन्धुओं की सेवाओं का वर्णन किया। इस के बाद पं० वेदालंकार जी को आर्य हिंदू नर नारियों की ओर से तथा दलितों की ओर से दो मान-पत्र भेंट किए गए जिन में उनकी हिंदू जाति के प्रति सेवाओं की प्रशंसा की गई। साम्प्रदायिक दंगे बिहार के ऐतिहासिक भूकम्प, विविध स्थानों में बाढ़ तथा अकाल से त्रस्त लोगों की सेवा, दलितों और विशेष कर छोटा नागपुर के मुंडा आदि जातियों के उत्थान कार्य तथा हैदराबाद के सत्याग्रह में उन की अमूल्य सेवाओं का उल्लेख किया गया। स्थानीय लगभग १ दर्जन सभाओं ने उन्हें पुष्पमालाएं अर्पित कीं। पं० धर्मवीर जी की सारगर्भित वक्तृता के बाद सभा समाप्त हुई।

शाम को 'स्नातक मंडल' की ओर से प० जी को पार्टी दी गई जिस में प्रो० सुधाकर जी, प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति आदि के भाषण हुए।

स्वास्थ्य-समाचार

महेन्द्र ४ श्रेणी विषमज्वर, जयदेव ४ श्रेणी विषमज्वर, सुभाषचन्द्र २ श्रेणी विदग्धज्वर, जीवनप्रकाश ५ श्रेणी विषमज्वर, रामकृष्ण ४ श्रेणी विषमज्वर, सत्यमित्र ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, सन्तोषकुमार १ श्रेणी नेत्र रोग, मधुसूदन ३ श्रेणी खसरा, परशुराम ५ श्रेणी खसरा, विद्याभूषण ३ श्रेणी खसरा, गुरुदेव ५ श्रेणी खसरा, देवदत्त ४ श्रेणी खसरा, विश्वसागर १ श्रेणी खसरा, रामप्रकाश ५ श्रेणी खसरा, योगेन्द्र २ श्रेणी खसरा, ओम्प्रकाश ५ श्रेणी खसरा, कान्तिकृष्ण ४ श्रेणी खसरा, प्रेमनिधि ३ श्रेणी खसरा, दीनबन्धु ३ श्रेणी खसरा, सुरेन्द्र ३ श्रेणी खसरा, रणवीर १ श्रेणी फोड़े, सत्यकाम ५ श्रेणी फ्रीहावृद्धि, सोमनाथ ३ श्रेणी कनफड़े, विश्वनाथ ५ श्रेणी मोच।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। आजकल वर्षा बन्द हो जाने से गर्मी बहुत पड़ रही है। अधिकतम तापमान १०८ डिग्री फा० रहता है।

चौधरी इलाहराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २१ आषाढ़ १९९८, ४ जुलाई १९४१ [संख्या १०

ब्रह्मचर्य का महत्व

(लेखक—श्री स्वामी शिवानन्द जी ऋषिकेष)

मनुष्य की वास्तविक शक्ति, वीर्य, जो कि जीवन-आधार है, जो कि प्राणों का प्राण है, जो कि नेत्रों को ज्योतिर्मय बनाता है, जोकि गालों में सुर्खी पैदा कर देता है, मनुष्यका सबसे बड़ा संग्रह करने योग्य कोष है। यह रक्त का सार है। खून के ४० बून्दों से वीर्य का एक बूंद तैयार होता है। सोचिये कि यह कितनी अमूल्य वस्तु आपके पास है।

अमरत्व प्राप्त करने का एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य से भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होती है। शान्ति धारण करने का जीवन में यही एक आधार है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि नीच वृत्तियों को पराजित करने का यही एक अवलम्ब है। अनन्त और अक्षय सुख का यही भण्डार है। इसके द्वारा अपूर्व शक्ति, विमल-बुद्धि, आत्म-बल, साहस, स्मरण शक्ति तथा विचार शक्ति प्राप्त होती है. केवल ब्रह्मचर्य द्वारा आप जीवन में शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नत कर सकते हैं।

वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति

शिक्षा की प्राचीन गुरुकुल पद्धति से यदि आप आधुनिक शिक्षा प्रणाली की तुलना करें तो आपको मालूम हो जायेगा कि दोनों में कितना अन्तर है। गुरुकुल के प्रत्येक छात्र को पूर्ण नैतिक शिक्षा प्राप्त होती थी। प्राचीन संस्कृति की यह एक सबसे बड़ी विशेषता है। प्रत्येक छात्र में नम्रता, आत्म-संयम, आज्ञाकारिता, सेवा तथा त्याग की भावना, शिष्टाचार, सौजन्यता एवं आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता रहती थी।

आधुनिक प्रणाली में, शिक्षा के नैतिक भाग को भुला दिया जाता है। आजकल के कालेजी छात्रों में नैतिकता का नामोनिशान भी नहीं रहता। आत्म-संयम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। लड़कपन से ही उनमें ऐशो-आराम की इच्छा प्रवेश कर जाती है। असहिष्णुता, उद्दण्डता, अवज्ञा आदि अधिकांश में देखी जाती है। वे अपने को अनीश्वर-वादी और भौतिक सभ्यतानुगामी बतलाते हैं, उन में ज्ञान, ब्रह्मचर्य तथा आत्मसंयम का अभाव पाया जाता है। फैशनेबल पहनावा, अवांछनीय खान-पान, बुरी सङ्गति, सिनेमा-थियेटर में विशेष रुचि आदि व्यसन उन्हें कमजोर और कामुक बना देते हैं। कलकत्ते के हेल्थ अफसर (स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी) ने बतलाया है कि कलकत्ते और ढाके के ८५ प्रतिशत छात्रों का स्वास्थ्य खराब रहता है। बम्बई के हेल्थ अफसर ने बताया है कि यहां के ६० प्रतिशत छात्रों स्वास्थ्य खराब रहता है। यह सर्व विदित है कि समस्त देश में छात्रों का स्वास्थ्य शोचनीय पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जिन कुव्यसनों और बुराइयों से स्वास्थ्य गिरता नज़र आता है वे बढ़ रही हैं। वर्तमान स्कूल और कालेजों में नैतिक वायुमण्डल का अभाव है। आधुनिक सभ्यता ने नवयुवक और नव-युवतियों का स्वास्थ्य चौपट कर दिया है। उनका जीवन कृत्रिम हो गया है। क्रमशः इसकी वृद्धि होती जा रही है और राष्ट्र का राष्ट्र उस की ओर अग्रसर होता दिखलाया पड़ता है।

शिक्षकों का कर्त्तव्य

स्कूल और कालेजों के छात्रों की प्रवृत्ति सदाचार की ओर फेरने तथा उनके चरित्र का निर्माण करने का एक महान दायित्व अध्यापकों पर है। सर्वप्रथम उनमें सद्-वृत्ति का होना अनिवार्य है, अन्यथा उनका पथ-प्रदर्शन उसी प्रकार होगा जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे को दे। अध्यापन कार्य करने के पूर्व शिक्षा कार्य के गुरुतर भार और दायित्व को महसूस कर लेना प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है। केवल पढ़ा देने या नीरस वक्तृता दे देने से छुटकारा नहीं हो जाता।

विश्व का भविष्य शिक्षकों और छात्रों पर अवलम्बित है। यदि शिक्षकगण छात्रों को उचित रीति और परिश्रम से शिक्षा दें तो विश्व में ऐसे नागरिक तैयार हों जिन से समस्त विश्व का कल्याण हो तथा ज्ञान, शान्ति, और सुख का आविर्भाव सदैव होता रहे।

आचार्यगण! चेतो! अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य, सदाचार और नीति का पाठ पढ़ाओ! उन्हें सच्चे ब्रह्मचारी बनाओ, इस पुण्य कार्य को आगे बढ़ाओ। इस कार्य का भार आपके ऊपर नैतिक रूप से पड़ा है। यही आप

की तपस्या है। यदि सच्चे मन से यह कार्य किया जायेगा तो आत्मज्ञान उत्पन्न होगा। आंखें खोलो और सत्य तथा लगन से इस कार्य को अग्रसर करो।

इस संसार में वही भाग्यवान है जो छात्रों को ब्रह्मचारी बनाता है। वह और भी अधिक भाग्यवान है जो स्वयं ब्रह्मचारी बनने की कोशिश करता है। उनपर सदैव भगवान की कृपा रहेगी। अध्यापकों तथा छात्रों का गौरव बढ़ेगा।

मैं अध्यापकों का ध्यान फिर इस ओर आकृष्ट करता हूं कि छात्रों को ब्रह्मचर्य का महत्व बतलाना उनका कर्तव्य है। उन्हें चाहिये कि छात्रों को बुराइयों से दूर-दूर बचने की तथा उसके उपायों की शिक्षा दें। छात्रों को भली भांति यह ज्ञात हो जाये कि उनमें आत्मशक्ति का आविर्भाव वीर्य-रक्षा से ही होगा। (सात्विक-जीवन)

ईश्वर

(ले० श्री सतोश विद्यालंकार)

ईश्वर क्या है? यह कहना इतना सरल नहीं है।

क्रिश्चियन पादरी ईसामसीह की खूब स्तुति करते हैं। उनका यह कहना है कि जो यीशु की शरण में जाते हैं वे ही मुक्ति प्राप्ति के अधिकारी हैं, और इनसे भिन्न सब लोग पापी हैं, नरक में जायेंगे।

मुसलमान मौलवी भी अपने पैगम्बर के विषय में यही बात कहते हैं। उनके उपदेश का सार यही है कि जो मुहम्मद के अनुयायी हैं उनका ही उद्धार होगा, शेष सब काफ़िर हैं उनके भाग्य में दुःख ही लिखा है।

हिन्दु-मन्दिरों में कीर्तन के समय पुजारी-गण इसी बात का निरूपण करते हैं कि हमारे तैंतीस कोटि देवताओं के शरण में जाने से ही स्वर्गलाभ है, अन्यथा कुम्भी पाक नरक मिलेगा। फिर ईश्वर क्या है?

ईश्वर विषयक कल्पना मुझे स्पष्ट समझ में नहीं आती। मैंने एक बात सुनी थी वही लिखता हूं।

बम्बई में एक उपहार-गृह (होटल) है। यह एक ईरानी का है इसलिए वहां भिन्न २ देशों के, नाना जातियों के लोग इकट्ठे होते हैं।

एक दिन एक ओराहिट्यन पारसी जाति का धर्म-गुरु उपहार गृह में आया, उसके साथ एक नीग्रो नौकर था। पारसी धर्म गुरु ने एक टेबुल पर बैठ कर शराब मंगवाई और पीनी प्रारंभ की। सवेरे नो दस बजे का समय होगा। उसका नौकर बाहर एक पत्थर पर बैठा था; धूप से तंग आकर उसने अपने मुख पर कपड़ा लपेट लिया था।

'ए गुलाम! ईश्वर है या नहीं?' पारसी धर्म-गुरु को नीग्रो नौकर से विवाद करने की उमंग उठी।

'हां, हां। है तो! यह देखो ईश्वर' इस प्रकार अपनी चामत्कारिक भाषा में बोलते हुए नीग्रो गुलाम ने अपनी कमर में खोंसी हुई एक लकड़ी की गुड़िया बाहर निकाली और अपने स्वामी के सामने रखदी! 'यही ईश्वर जन्म से लेकर अब तक मेरी रक्षा कर रहा है। जिस वृक्ष की शाखा से यह ईश्वर तय्यार किया गया है उस वृक्ष की हमारे देश के सब लोग पूजा करते हैं।

नीग्रो गुलाम और उसके स्वामी की परस्पर इस प्रकार की बातचीत को सुन कर उपहार गृह में बैठे हुए अन्य बहुत से प्रवासियों का ध्यान उधर खिंचा। इनमें सर्व प्रथम एक यहूदी, नीग्रो नौकर से टूटी फूटी हिन्दी में बोला—"कमर की खोंस में रहने वाला यह ईश्वर कैसा?" क्या वृक्ष की पूजा उचित है। वृक्ष कभी परमात्मा हो सकता है? और तेरे देश की मरु-प्राय भूमि में तेरा यह ईश्वर कैसे रहता होगा? इसके बाद इधर उधर देख कर, सिर पर से टोपी उतार कर टेबुल पर रखदी और बड़ी गम्भीर आवाज से बोला, इब्राहिम, आइज़क व जेकब का ईश्वर ही सत्य सनातन है। इन मनुष्यों के सिवाय परमात्मा को और कोई प्रिय नहीं, सृष्टि के प्रारंभ में उसने इन्हीं लोगों के राष्ट्रों पर कृपा की। आज कल हम सब इधर-उधर भटक रहे हैं, परमात्मा हमारी परीक्षा ले रहा है, परन्तु हम शीघ्र ही जेरुसलम के चर्च के पास इकट्ठे होंगे और इसराइल संसार का राजा होगा।' यह कहते २ यहूदी की आंखों में आंसू आ गये।

इन यहूदियों के परमात्मा की प्रतिष्ठा को कम करता हुआ 'रोमन-कैथलिक धर्म ही संसार में सर्व-श्रेष्ठ धर्म है' इस प्रकार प्रतिपादन करने के लिए तीसरी कुर्सी पर बैठा हुआ एक रोमन कैथलिक मिशनरी आगे बढ़ा।

रोमन कैथलिक मिशनरी की अभिमान पूर्ण बातों को पास ही बैठा हुआ प्रोटेस्टेन्ट मिशनरी सहन न कर सका। उसने पुराने कैथलिक सम्प्रदाय की तथा उसके प्रतिपादित मूर्ति-पूजा तथा आचार-विचार की भर्त्सना प्रारंभ की, और शुद्ध अन्तःकरण से यीशु-प्रभु की उपासना किस प्रकार करनी चाहिए इस के समर्थन के लिए बाइबिल के उदाहरण देने लगा।

इस प्रकार वाद विवाद को अपने पूर्ण यौवन में देख कर एक मौलाना साहिब दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले-प्यारे भाई, क्या 'रोमन कैथलिक' और क्या 'प्रोटेस्टेन्ट,' १२०० वर्ष पूर्व मुहम्मद पैगम्बर ने सत्य धर्म को प्रकट किया। देखो यूरोप, एशिया व चीन जैसे देशों में 'अल्ला' धर्म का प्रचार तेज़ी से हो रहा है। यहूदियों ने इसराइल से शिक्षा ली। इसको एक यहूदी ने ही अभी स्वीकार किया है। फिर चारों ओर शान्ति से हाथ पैर फैलाने वाले मुहम्मद पैगम्बर के धर्म को तुम क्यों नहीं स्वीकार करते। मोहम्मद-पैगम्बर सब से मोटा ताजा देव है। केवल उसी के अनुयायियों का सब से प्रथम और शीघ्र उद्धार होगा। (मौलाना साहेब स्वतः 'उमर' के अनुयायी थे) 'अली' के अनुयायी इसकी स्तुति ठीक नहीं करते हैं इसी लिए उन पर 'अल्ला' की दया दृष्टि शीघ्र नहीं पड़ती।

उपरोक्त शब्द अली के अनुयायी एक मौलाना के कान में पड़े, वह भी एक दम मैदान में आ कूदा।

इस प्रकार पारसी, यहूदी, क्रिश्चियन, मुसलमान आदि अनेक जातियों के व नाना पन्थों के अनुयायियों के द्वारा ईश्वर विषयक इस वाद विवाद से उपहार-गृह गूंज उठा।

इस उपहार गृह के कोने में हिन्द-संस्कृति का भक्त एक चीनी नव युवक बैठा था। वह सब की बातें बड़ी ध्यान से सुन रहा था पर उसने विवाद में भाग नहीं लिया।

ऊपर निर्दिष्ट 'उमर' के अनुयायी मौलाना ने उस चीनी युवक से कहा—'मित्रवर, तुम चुप क्यों हो? तुम भी इस वाद विवाद में भाग लेकर मेरे पक्ष को पुष्ट करो। तुम्हारे देश से आये हुए बहुत से चीनी व्यापारी मेरे मित्र हैं। ये सब अन्य धर्मों की अपेक्षा मुहम्मद पैगम्बर के धर्म को अधिक पसन्द करते हैं। इस लिए मेरे मत को पुष्ट करते हुए इन को समझाओ कि सर्वश्रेष्ठ ईश्वर पैगम्बर ही है।

इस पर अन्य मतावलम्बियों ने भी मिल कर उस चीनी युवक को बोलने के लिए बाध्य किया।

चीनी तरुण ने क्षण भर के लिए अपनी आंखें बन्द की हाथों को अपनी छाती पर स्वस्तिकाकार रखकर बड़ी शान्त गम्भीर आवाज में बोला—'प्रिय बन्धुओ, ईश्वर विषयक श्रद्धा के बारे में हम एक मत नहीं होते, इसका मुख्य कारण हमारे हृदयों में स्थित अहंभाव है। आपको कुछ सुनने की इच्छा है इसलिए अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए एक बात कहना चाहता हूं।

बोलो, बोलो, सब प्रवासियों ने स्वीकृति दी।

प्रवासियों के पास की एक कुर्सी पर बैठ कर चीनी तरुण ने कहना प्रारम्भ किया—सारे संसार का पर्यटन कर के आई हुई एक जर्मन किश्ती पर मैं अपने देश के 'केन्टन' नामक बन्दरगाह से चढ़ा। उसे ठीक करने के लिए सुमात्रा द्वीप के पूर्वी किनारे पर हमें उतरना पड़ा। हम सब नाना देशों के थे। हमने उतर कर नारियल के एक बन में अपने तम्बू गाड़ दिये।

हम अभी बैठे ही थे कि एक अन्धा मनुष्य हमारे पास आया। कुछ पूछताछ करने पर मालूम पड़ा कि सूर्य कैसा है यह प्रत्यक्ष देखने के लिए और उसके प्रकाश को पकड़ रखने की महत्वाकांक्षा से इसने सूर्य की ओर बहुत काल तक एकटक देखने का प्रयत्न किया और इसी कारण इसे अब दिखाई नहीं देता।

सूर्य की ओर एक टक देखने वाले इस व्यक्ति ने अपने मन में विचार किया कि सूर्य का प्रकाश प्रवाही पदार्थ नहीं है क्योंकि एक पात्र से दूसरे पात्र में पानी की तरह से हम सूर्य के प्रकाश को उड़ेल नहीं सकते हैं। सूर्य का प्रकाश अग्नि भी नहीं, क्योंकि यह पानी से बुझता नहीं है। और जड़ पदार्थ भी नहीं है हम जड़ पदार्थों की तरह इसे इधर उधर नहीं कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पानी, अग्नि और जड़ पदार्थ इनमें से सूर्य का प्रकाश कुछ भी नहीं हैं अतः यह कोई 'वस्तु' ही नहीं है। ऐसा विचार कर सूर्य की ओर एक टक देखते २ बेचारे की दृष्टि ही नष्ट होगई। आंखों के अभाव हो जाने पर वह इस परिणाम पर पहुंचा कि सूर्य ऐसी वस्तु है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं।

इस अंधे व्यक्ति के साथ एक नौकर था। उसने अंधे को एक नारियल के वृक्ष की छाया में बिठा दिया और वृक्ष के नीचे पड़े हुए एक नारियल को लेकर रात्रि को प्रकाश के लिए दिए का रूप देने के लिए उसे खरोंचना प्रारम्भ किया। नारियल की जटा से उसने एक बत्ती भी तैयार की। नारियल के खोपरे को एक पत्थर पर रख कर उसका तेल निकाला, फिर तेल और बत्ती को नारियल के कपाल में रख दिया। नौकर अपने इस काम में अभी व्यस्त ही था कि एक लम्बी सांस लेकर उसका स्वामी बोला—'रामा! 'सूर्य नहीं है' ऐसा मेरा कहना क्या ठीक नहीं? कितना घना अन्धकार है क्या तू इसे नहीं देखता है? फिर भी मूर्ख लोग कहते हैं कि सूर्य है, सूर्य यदि है तो बता वह कैसा है?

नौकर बोला 'सूर्य कैसा है मैं यह नहीं जानता मुझे इस बात से क्या अभिप्राय? परन्तु प्रकाश क्या है मैं इतना ही जानता हूं। ये देखो! रात्रि के लिए मैंने एक दीपक तय्यार किया है। इसके सहारे से अन्धकार के होने पर भी मैं तम्बू में से जिस वस्तु की आवश्यकता होती है निकाल कर ला सकता हूं।' ऐसा कहकर नौकर ने स्वतः तय्यार किये दीपक को हाथ में उठाया और स्वामी से बोला 'यही है मेरा सूर्य!'

इस संवाद को दूर बैठा हुआ एक लंगड़ा मनुष्य सुन रहा था, वह जैसे तैसे घिसट कर अन्धे के पास आकर बोला—'अन्धे दादा' तुम जन्मान्ध प्रतीत होते हो। मैं तुम्हें बताता हूं कि सूर्य आग का एक गोला है। वह हमारे द्वीप की एक पहाड़ी पर उदित होता है और बिल्कुल सामने की एक पहाड़ी पर अस्त हो जाता है। हम सब को ऐसा प्रतिदिन दिखाई देता है। यदि तुम्हारी आंखें होतीं तो तुम्हें भी दीखता।

लंगड़े व्यक्ति के इस कथन को सुन कर समीप-स्थित एक व्याध ने कहना प्रारम्भ किया:—लंगड़े मियां ऐसा लगता है कि तुम कभी भी अपने द्वीप से बाहर नहीं गये हो। मैं सदा समुद्र में भटकने वाला आदमी हूं। मैं अपनी आंखों से प्रतिदिन देखता हूं कि आग का गोला समुद्र के एक ओर से निकलता है और दूसरी ओर जाकर डूब जाता है।

हमारी किश्ती से उतरे हुए एक वृद्धे हिन्दु ने इसका विरोध करते हुए कहा—भोले भाइयो! आग का गोला समुद्र में डूबने के बाद क्या बुझ नहीं जायेगा? फिर दूसरे दिन किस प्रकार प्रकट हो सकता है—सुनो! सूर्य नारायण एक देवता हैं ये सोने के रथ पर बैठ कर प्रति दिन मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं। कभी २ राहु और केतु दो दुष्ट राक्षस इसे ग्रसते हैं। परन्तु हमारे तपस्वी मनुष्यों के तप के प्रभाव से उनका छुटकारा हो जाता है। केवल तुम्हारे जैसे एक द्वीप में रहने वाले अज्ञानी लोगों को ही ऐसा लगता है कि सूर्य केवल तुम्हारे लिए ही प्रकाश करता है।

उस हिन्दु गृहस्थ के भाषण को सुनकर एक मिश्र देश का व्यापारी भी आगे बढ़ कर बोला—बूढ़े बाबा! तुमने जरा भूल की। मैं सारे संसार का चक्कर लगा चुका हूं सूर्य कहीं किसी मेरु पर्वत के चारों ओर नहीं घूमता, वह

[शेष पृ० ६ पर]

गु रु कु ल

२१ आषाढ़ शुक्रवार १९९८

साम्राज्यवादी दाव और रियासतें

(श्री गुरुदत्त, विद्यार्थी राजनीति तथा अर्थशास्त्र)

आजकल देशी नरेशों को अपने राज्यों में आन्तरिक सुधार की समस्या की अपेक्षा यह अत्यन्त महत्वपूर्ण चर्चा प्रतीत होती है कि भविष्य में हमारा ब्रिटिश भारत के साथ कैसा सम्बन्ध रहेगा? परन्तु इस चर्चा से पूर्व हमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम देशी रियासतों तथा ब्रिटिश सम्बन्ध का प्राचीन इतिहास जान कर वर्तमान अवस्था का अध्ययन कर लेवें।

यहां पर उन सब भिन्न २ घटनाओं का विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं जिनमें से गुज़र कर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने सारे भारतवर्ष में अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करली परन्तु इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समय २ पर भारतीय रियासतों के साथ जो सम्बन्ध स्थापित हुए उनसे रियासतों की स्थिति तथा अवस्था क्या होती रही। दुनिया में ऐसी उथल पुथल मची हुई है कि पश्चिमी सभ्यता के सफाया हो जाने का डर है। ठीक इसी समय भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी कि वह युद्ध और शान्ति के बारे में अपने उद्देश्य फिर से स्पष्ट करे और हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग की बाबत उनका क्या रवैय्या है यह साफ़-साफ़ घोषित करके अपने दावों की सच्चाई सिद्ध करें। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इस चुनौती का सीधा जवाब देने में टाल-मटोल की है। बहाना उन्होंने यह निकाला है कि देशी राज्यों की समस्या बड़ी विकट है। यह लोग उलटे हमें ही दोष देते हैं कि हम राजाओं के साथ समझौता नहीं कर सके। उनका कहना है कि राजाओं के साथ हुई सन्धियों के कारण उनके जो कर्तव्य हैं उनका पालन करने की ज़बर्दस्त रुकावट के कारण वह लाचार हैं।

यदि हम भारतीय-रियासतों के प्रश्न को ज़रा इतिहास की दृष्टि से देखें तो मालूम होगा जो कठिनाइयां कही जाती हैं उनमें कुछ भी तथ्य नहीं है। आज तो वास्तव में देशी रियासतों की प्रतिनिधि सार्वभौम सत्ता ही है और इसी लिये उनके साथ समझौता करने की ज़िम्मेदारी न्याय से देखा जावे तो सार्वभौम सत्ता पर ही है। इसका युक्ति से उत्तर देने के बजाय प्रश्न को टाला जा रहा है और वही पुरानी हवा जिसकी कई बार पोल खुल चुकी है, फिर से खड़ा किया जा रहा है कि राजाओं के साथ सार्वभौम सत्ता ने जो सन्धियां की हैं उनसे वह मजबूर है, और राजाओं की सम्मति के बगैर उन्हें कैसे बदलें या तोड़ें।

हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के विरुद्ध अब यह युक्ति दी जाती है सो अब ज़रा इस युक्ति पर विस्तार से जांच करें। वे राजा कौनसे हैं जिसके साथ बातचीत करके समझौता किया जावे? वास्तव में इस तरह का समझौता करने का भार किस पर है? राजाओं के साथ जो सन्धियां हुई हैं उनसे पैदा होने वाली ज़िम्मेदारियां कैसी हैं? और कहां तक हैं?

अपने इतिहास में ब्रिटिशों की नीति ने समय-समय पर कई पहलू बदले हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रियासतों के प्रति रही नीति को हम दो भागों में विभक्त कर कर सकते हैं। प्रथम काल (१७५७ से १८१३ तक), द्वितीय काल (१८१३ से १८५७ तक)। प्रथम काल में किसी भी मामले में हस्तक्षेप न करने का लार्ड वैलेज़ली की योजना थी। द्वितीय काल में राजाओं को अपने अधीन किन्तु एक दूसरे से अलग रखने की नीति लार्ड डलहौज़ी ने स्वीकार की।

प्रथम काल (१७५७ से १८१३ तक) जैसा कि सर विलियम ली-वार्नर ने लिखा है कि इस प्रथम काल में ब्रिटिशों की आमतौर पर यह नीति रही थी कि अपने चारों तरफ़ एक बाड़ सी बना ली जावे और किसी मामले में हस्तक्षेप न किया जावे। यह ठीक है कि लार्ड वैलेज़ली ने दुबारा आने पर कुछ राजपूत रियासतों के साथ घेरा डालने की नीति के विरुद्ध सन्धि की थी परन्तु इसके बाद आने वाले उत्तराधिकारियों ने उसी हस्तक्षेप वाली नीति को ही स्वीकार किया। इस काल में जो सन्धियां, आक्रमण या रक्षा के लिए की गयीं वह राजनैतिक सत्ताओं को परस्पर समतुलित करने के ही उद्देश्य से की गयीं। उनकी समानता और स्वतंत्रता में परस्पर कोई भेद नहीं था। उसको हम ब्रिटिशों की सर्वोच्च सत्ता नहीं कह सकते। इस बात को दिखाने के लिए एक उदाहरण ले सकते हैं-१७९० की पहली जून को पेशवा, निज़ाम और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच टीपू सुल्तान के विरुद्ध जो सन्धि की शर्तें तय हुईं कि प्रत्येक का एक २ प्रतिनिधि दूसरे की सेना में रहेगा और प्रत्येक पार्टी की इच्छा और सुविधा को ध्यान में रख कर ही सन्धि की शर्तें तय की जावेंगी। इससे यह स्पष्ट है कि तीनों पार्टियां उस समय समान आधार पर थीं-और ब्रिटिशों की सर्वोच्च सत्ता का सवाल नहीं था। इस काल में जो भी सन्धियां हुईं उनका आधार हस्तक्षेप की नीति था उनमें पारस्परिक मैत्री, सुदृढ़ सम्बन्ध तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग इन्हीं पर ही अधिक बल दिया गया।

धीरे २ परिस्थितियां बदलती गयीं और लार्ड वेलेज़ली का यह तीव्र इच्छा थी कि भारतीय देशी रियासतों पर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करे इसके परिणाम स्वरूप अनेक भारतीय रियासतों, अवध, हैदराबाद, पूना, बड़ौदा, ग्वालियर इत्यादि से Subsidiary alliances (मैत्री) करवाने में वह सफल हुआ। भारत में वैलेज़ली का क्या उद्देश्य था? यह २ अक्टूबर सन् १८०० को कलकत्ते से अपने एक मित्र के नाम भेजे गए पत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है।—

"I will heap kingdoms upon kingdoms, victory upon victory, revenue upon revenue; I will accumulate glory and wealth and power until the ambition and avarice even of my masters shall cry mercy."

"मैं बादशाहतों के ढेर लगा दूंगा और विजय पर विजय तथा मालगुज़ारी पर मालगुज़ारी लाद दूंगा। मैं इतनी शान इतना धन और इतनी सत्ता इकट्ठा कर दूंगा कि एक बार मेरे महत्वाकांक्षी और धन लोलुप मालिक भी 'त्राहि, त्राहि' चिल्लाने लगेंगे।"

'सद-पीड़ा' का अर्थ आर्थिक सहायता और एतायन्त का अर्थ मिलता है। मतलब यह था कि हर देशी नरेश कम्पनी को निश्चित 'आर्थिक सहायता' देकर कम्पनी की सैनिक मदद प्राप्त कर सके।

द्वितीय काल (१८१३ से १८५७ तक) जहां हो यह अनुभव किया गया कि अगर कम्पनी तटस्थ राजाओं को कूट नीति पूर्ण समझौतों से अपनी आधीनता में आने के लिए मजबूर न करेगी तो संभव है कि गाल घेरे में मिली सुरक्षितता कहीं में पड़ जावे। लार्ड हेस्टिंग्ज (अर्ल आफ मइरा) (१८१४-१८२३) ने यह अनुभव किया कि भीतरी हिन्दुस्थान की रियासतों की वास्तविक स्थिति पृथक् और अधीनस्थ सहयोग (Subordinate Isolation) की है। इस नीति की तह में दो उद्देश्य थे—(१) राजाओं में परस्पर सहयोग असम्भव कर देना (२) उन्हें स्वतंत्र रूप से अपनी आत्म रक्षा तक करने में असमर्थ बना देना।

क्योंकि बाहिरी ख़तरा जाता रहा था, इसलिए दोस्तों की भी जो कि अब सहारे के बजाय भार रूप थे, कोई ज़रूरत बाकी नहीं रह गयी थी इसलिए अहस्तक्षेप की नीति हस्तक्षेप की नीति में परिणत कर दी गयी। लार्ड डलहौज़ी ने यह अधिकारपूर्ण फैसला किया कि "ब्रिटिश सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि उसके सामने रूपये की आमदनी बढ़ाने के जो भी उचित उपाय अपने आप समय समय पर आएं उन्हें उठाकर एक तरफ न रख दे।" इसी उद्देश्य को आग टॉड ने लार्ड विलायम बैंटिङ्क के बारे में बड़े मनोरंजक ढंग से लिखा है—कोई यह न समझे कि दूसरी रियासतों के साथ लार्ड विलियम बैंटिङ्क की नीति को इस प्रकार संक्षेप में चित्रित करने में हमने थोड़ा बहुत भी उस पर अपना रंग चढ़ाया है। हम उदाहरण के तौर पर एक मनोरंजक घटना बयान करते हैं जो कि उस समय के जीवित लोगों में केवल तीन या चार को मालूम है और जिससे इस कथन का काफी समर्थन होगा कि देशी रियासतों के अधिकारों के विषय में लार्ड बैंटिङ्क हजरत मूसा की उस दसवीं आज्ञा की बिलकुल परवाह न करता था जिसमें कहा गया है कि "अपने पड़ोसी का माल कभी न छीनना।" बात यह थी कि मिस्टर कैवेनडिश की जगह मेजर सदरलैंड रेजीडेंट नियुक्त हुआ। मेजर सदरलैंड यह जानने के लिए कि ग्वालियर पहुंच कर किस नीति का पालन किया जावे, अर्थात् वहां के रियासत के मामलों में हस्तक्षेप किया जाय या न किया जाय, गवर्नर जनरल से मिलने के लिए कलकत्ते गया। लार्ड बैंटिङ्क को मज़ाक का शौक था। उसने फौरन जवाब दिया—'मेजर इधर देखो' यह कह कर लार्ड बैंटिङ्क ने अपनी गरदन पीछे को लटका दी मुंह खोल दिया और अंगूठा और एक उंगली इस प्रकार मुँह में देकर, जिस प्रकार कि कोई लड़का मिठाई मुंह में डालने लगता है, चकित मेजर से कहा—यदि अब लश्कर की रियासत आपके मुंह में आकर गिर जाये तो आप मिस्टर कैवेनडिश की तरह अपना मुंह बन्द न कर लीजियेगा, बल्कि निगल जाइएगा, यही मेरी नीति है।"

इस घटना पर टीका करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय रियासतों की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति का यह एक खासा सच्चा चित्र है।

१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम स्वरूप तीसरा पहलू प्रारम्भ होता है। ब्रिटिश पार्लियामैंट निर्विवाद शासक और सर्वोच्च सत्ता के रूप में सामने आती है। प्रश्न था उसकी सत्ता की जड़ को मज़बूत बनाने का। इस बात पर एतराज उठाया गया था कि अगर गोद लेने की सनदें देकर रियासतों को हमेशा बने रहने देने की नीति स्वीकार करली जावेगी तो इससे आगे अपना साम्राज्य बढ़ाने के मौके मिलने बन्द हो जायेंगे। इस पर लार्ड कैनिंग का यह जवाब था— "अच्छी तरह प्रभावित या अपने काबू में आये हुए देशी नरेशों को बनाए रखने से हमारे शासन की सुरक्षा घटी नहीं, बढ़ी ही है।" उसने १८५७-५८ के अशान्ति पूर्ण और चिन्ता जनक दिनों की याद दिलाते हुए बताया कि किस तरह उस समय "इन छोटे छोटे रजवाड़ों ने उस तूफान से बचाने के लिए बांध का काम दिया जो इनके अभाव में एक ही झोंके में उड़ा ले जाता। जब कभी इंग्लैण्ड को किसी दूसरी जगह अपने स्वार्थ के लिए अपने पूर्वी साम्राज्य को असाधारण खतरे में डालने की ज़रूरत अनुभव होगी तब यही देशी रियासतें हमारा सब से बड़ा सहारा साबित होंगी। लेकिन उन्हें ऐसा बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि हम राजाओं के साथ सम्मान और उदारता से व्यवहार करें। साथ ही उन्हें यह भी विश्वास दिलाया जावे कि हमें हटा कर किसी नये शासक को बिठाने में उनका स्वयं कोई लाभ नहीं है।

सर जान मालकम ने बहुत पहले ही यह कहा था कि अगर हम सारे हिन्दुस्तान के ज़िले (या ब्रिटिश डिस्ट्रिक्ट) बनावें तो स्वाभाविक तौर पर हमारे साम्राज्य का ५० साल भी टिकना सम्भव न होगा, लेकिन अगर हम कुछ देशी रियासतें बिना किसी तरह की राजनैतिक सत्ता के कायम रख सकें तो हम तब तक हिन्दुस्तान पर अपनी हकूमत कायम रख सकेंगे जबतक यूरोप में हमारी समुद्री ताकत सबसे ऊपर बनी रहेगी।

—०—

[१० ३ का शेष]

तो सारी पृथ्वी के चारों ओर घूमता है यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। जैसा तुम सूर्य को देवता समझ रहे हो ऐसी बात नहीं है।

उपरोक्त संवाद सुन कर एक अंग्रेज मनुष्य ने अपनी विद्वत्ता प्रकट करने के लिये कहना प्रारम्भ किया:—हम इंगलिश लोगों को सूर्य के विषय में जितना ज्ञान है उतना संसार में और किसी को भी नहीं। मूर्खो! सूर्य न उदित होता है न अस्त ही होता है। वह निरन्तर पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। हम पृथ्वी के कोने २ पर गये हैं परन्तु कहीं भी सूर्य उदय होता हुआ और अस्त होता हुआ नहीं दीखता और न हमारी उसमें कभी टक्कर ही होती है। इस सब से क्या अनुमान निकलता है? इतना कह कर उस अंग्रेज ने अपनी टोपी पहनी और 'मेरी बात सबको समझ में आगई है' इस प्रकार चारों ओर बड़ी अभिमानपूर्ण दृष्टि फेंकी परन्तु किसी की भी आकृति पर उसकी बात ठीक है इस का सूचक कोई भाव प्रकट नहीं हुआ।

इस सम्पूर्ण विचार को सुन कर हमारी किश्ती का अनुभवी जर्मन कप्तान जो पास ही घूम रहा था बोला—भाइयो! तुम्हारे में किसी को भी ठीक बात समझ में नहीं आई। प्रत्येक की कहीं न कहीं गलती हो ही गई है। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता परन्तु पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है। वह अपने अक्ष पर २४ घन्टे में घूमती है इस प्रकार दिन और रात होते हैं। और एक लम्बे वर्तुल में घूमती ३६५ दिन में सूर्य का पूरा चक्कर करती है। तब नाना प्रकार की ऋतुएं आदि होती हैं। ऐसा कह कर पास के चित्रों और नकशों की सहायता से संसार का पर्यटन किए हुए उस अनुभवी जर्मन कप्तान ने सब को अपनी बात अच्छी प्रकार समझा दी।

फिर ईश्वर क्या है?

यह बात सुना कर चीनी युवक ने उपहार-गृह के सब प्रवासियों को देख कर फिर कहना प्रारम्भ किया—मित्रो! सूर्य के विषय में उन लोगों की दुरभिमान के कारण जो अवस्था थी वही अब तुम सब की है। इस दुरभिमान के कारण ही मनुष्य अपने हाथों से अपराध करता है और एक दूसरे से लड़ने को तैयार रहता है। प्रत्येक मनुष्य का अपना एक देव है। और प्रत्येक जाति व राष्ट्र का भी अपना २ देव है। जो ईश्वर अखिल-विश्व में समा नहीं सकता—उसे एक देश के एक मन्दिर में बन्द करने का प्रयत्न करते हैं, कितने दुःख की बात है।

संसार के सब मनुष्यों के लिए समान श्रद्धा के आसन पर एक ही धर्म भावना से बैठने के लिए परमात्मा ने जो प्रचंड देवालय निर्मित किया है—उस देवालय के सामने किसी मनुष्य का, जाति का अथवा किसी देश के संकुचित देवालय का कितना महत्व है? परमेश्वर के इस विशाल देवालय की मनुष्यों ने और मानव समाज ने अनुकृति की है। इन आकुंचित देवालयों में पुष्करिणी होंगी, कला विभूषित सुन्दर छतें होंगी, अद्भुत दीपक होंगे, चित्र होंगे धर्म-शास्त्रों की पुस्तकें होंगी, वसूतरे, यज्ञशालाएं, बाल व भिक्षुक वर्ग होंगे. परन्तु क्या समुद्र के समान प्रचंड पुष्करिणी और नक्षत्र खचित् आकाश के समान छत इनमें से किसी एक देवालय में भी है? सूर्य, चन्द्र व तारों के समान देदीप्यमान व सुन्दर एक भी दीया इन देवालयों में जलता है? दया से द्रवीभूत अन्तःकरण से दुःख पीड़ित मानव समाज की सेवा करने वाले मनुष्य मानवी देवालयों में मिलते हैं? प्रत्येक मनुष्य के हृदय-पट पर अङ्कित धर्मशास्त्र की तुलना में मनुष्य-कृत कोई भी धर्मशास्त्र समता नहीं रखता। प्रेम पूर्ण अन्तःकरण से संसार में स्त्री पुरुषों का परस्पर जो पवित्र व उन्नत धर्मयज्ञ हो रहा है—उस प्रकार का यज्ञ भिक्षुक-गण क्या किसी देवालय में करते हैं? हजारों के अन्तःकरण रूपी स्फटिक के समान निर्मल व शुचिभूत वेदि जिस में परमात्मा को साक्षी रख कर जनता जनार्दन के प्रति होम अर्पित किया जाय किसी देवालय में सम्भव है? ऐसी ही वेदि पर किए गये यज्ञ परमात्मा को प्रिय हैं। कई मन्दिरों में मलिन अन्तःकरण वाले कितने ही भिक्षुओं ने पत्थर मिट्टी के बने हुए स्थंडिलों पर मंत्र-तन्त्र पढ़ कर अग्नि में आहुतियां दी हैं परन्तु वे आहुतियां परमेश्वर को नहीं पहुंचती।

इस प्रकार के वर्णन में मस्त होकर चीनी युवक फिर बोला—'मनुष्य की परमात्मा विषयक कल्पना जितनी उच्च कोटि की होगी—उतना ही अधिक उसे परमात्मा स्पष्ट होगा और परमात्मा के इस स्वरूप को पहिचानने का उपाय क्या है? नैतिकता, दया और प्रेम ये परमेश्वर के गुण जिस व्यक्ति ने अपने अन्दर जितने अधिक धारण किए हैं वह परमात्मा के उतने ही निकट है ऐसा कहने में कोई वदतो-व्याघात नहीं है।'

चीनी युवक बोलता गया कि यदि किसी को सूर्य के प्रकाश और गति का परिपूर्ण ज्ञान होगया है तो उसके लिए सूर्य एक देवता ही है और वह उस देवता के एक किरण की छाया को भी तुच्छ नहीं मानता। इतना ही नहीं किन्तु 'सूर्य नहीं है' कहने वाले अन्धे का भी वह तिरस्कार नहीं करता है।

चीनी तरुण के इसप्रकार के गम्भीर भाषण को सुन कर उपहार गृह में शोर मचाने वाले सब प्रवासी चित्र-लिखित की भांति बैठे रहे।

'हिन्दूधर्म के उदार व विस्तृत तत्वज्ञान का अभ्यास करने पर ही ईश्वर विषयक कल्पना मुझे समझ में आई' यह कह कर उस तरुण-चीनी ने बड़ी शान्ति से सब का सम्मान किया।

इस वाद-विवाद को सुन कर 'ईश्वर क्या है?' इस विषय में मुझे कुछ स्फुरणा हुई है।

इस विषय पर मैं विस्तार में लिखना चाहता हूं अतः इसे यहीं समाप्त करता हूं।

सच्ची प्रगति

[गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पठित]

(लेखक—श्रीकुमार शर्मा)

यह 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की 'साहित्य परिषद्' बैठी हुई है। कुछ माननीय वक्ता आपके सामने साहित्य की उन्नति के विषय में कह चुके हैं और कुछ अभी कहने को बैठे हुए हैं। मैं भी उनके साथ अपना स्वर मिला कर साहित्यिक उत्थान के विषय पर कुछ कहूंगा।

साहित्य क्या है? जीवन से उसका क्या सम्बन्ध है? साहित्यिक के क्या कार्य हैं? यह सब आप जानते-समझते हैं। आज के साहित्य- युग का नारा है "प्रगतिशील साहित्य" या "प्रगतिवाद"—वह चाहता है साहित्य में वास्तविक जीवन के अन्तरंग और बहिरंग दोनों एकसम होकर रहें। एकसम कभी नहीं रहा होगा, इसी से तो एकसम बनाने के लिए यह गूँज उठ रही है। तो क्या ऐसा मान ही लिया जाये कि किसी समय साहित्य और जीवन में समरूपता का विलोप था? किन्तु हम ऐसा लगता अवश्य है जबकि आज से १०-२० वर्ष पहिले के साहित्य का, प्रकाशनों के आधार पर विश्लेषण करते हैं। तो जीवन से अलग रंग-रूप में रहकर साहित्य था क्या? यह तो साहित्य की प्रचलित परिभाषा—'साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है' के अनुसार 'साहित्य' की श्रेणी में भी उतर आते हैं।

मैं तो क्या, कोई भी उस छायावाद साहित्य को साहित्य-पद से नीचे उतारने की न तो इच्छा रखता है और न ऐसा कर ही सकता है। छायावादी साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है और सुन्दर प्रतिबिम्ब है। यदि यह ठीक है तो फिर हम उसमें प्रगतिशीलता की आवश्यकता क्यों अनुभव करते हैं। इसे देखने-भालने के लिए हम यह विचारें कि छायावादी साहित्य में क्या कमी थी?

छायावादी साहित्य में जीवन से असन्तोष की भावना बहुत गहरी और तीव्र है-ऐसा जगत्-जीवन के बहिरंग में दीखना भी है ही। किन्तु वह छायावादी साहित्य उस असन्तोष की भावना से त्रस्त होकर विश्व के एकान्त कोने का आश्रय लेता है-जहां न समाज के बन्धन हैं, न दुनिया के आकर्षण हैं। वह एक अजीब तरह का साधक या तपस्वी बनने का यत्न करता है—अजीब तरह का इस लए कि उस असन्तोष और निराशा में ग्रहण किये गए इस एकाकी निर्जन पथ का कोई लक्ष्य नहीं होता; इस उद्देश-हीनता में वह अपने से ही उलझता रहता है—'मैं' के पीछे पागल रहता है—रोता है—गाता है। 'मैं पाषाणों का अधिकारी'—मैं जीवन में कुछ कर न सका—मैं नीर भरी दुख की बदली आदि। "चलो, आगे कुछ करें, कुछ उद्देश्य बनायें, इस दुनिया से बिना पलायन किए—इसमें ही रहकर इसे समझें-बूझें और ठीक राह दिखायें"—ये थे कलाकार के वास्तविक उद्देश्य- और इसी से छायावादी कवि पलायन कर गया था। कवि ही नहीं, उस छायावाद-काल के सब साहित्यिक इसी प्रकार उलझ गए थे। उपन्यासकार-कहानीकार- दोनों समाज के साथ संघर्ष करने की इच्छा रखने पर विफल होकर जल-समाधि या वन-समाधि का मार्ग अपनाया करते।

छायावादी साहित्य-कार की कविता में, साहित्य में, जीवन के सब अंग, सब रूप, सब विचार आते थे पर अज्ञात तत्व के बने हृदय में से छन कर। न जाने वह क्या तत्व था! सब विचार भावनायें उस तत्व में से गुजर कर छायावादी कवि को अपने में उलझा देती थीं, यही अपने में उलझ जाना उस छायावादी कवि की कमी थी, जिस कमी के कारण आज हम चिल्ला उठते हैं कि "छायावाद नहीं, प्रगतिवाद चाहिये"। 'कवियो! आओ, कलाकारो! आओ, और जीवन के साथ साथ कदम बढ़ाते हुए हमें मार्ग दिखाओ— हमें हमारे उद्देश्य बताओ"।

यदि प्रगतिवाद को इतना ही समझ लिया जाये तो मैं प्रगतिवाद को पसन्द नहीं कर सकूंगा। मुझे यह प्रतिक्रियात्मक लगेगा— प्रतिक्रिया कोई वास्तविकता नहीं वह तो जड़ प्रकृति का परिणाम है- वह मानव की अपनी चीज नहीं। तो प्रगतिवाद से और क्या समझें?

आज 'प्रगतिवाद' पर लिखे गए बौद्धिक और सैद्धान्तिक लेखों को यदि आप पढ़ें और समझें तो पायेंगे कि उनके विचारों में छायावाद के प्रति कितनी अधिक प्रतिक्रिया है। प्रगतिवाद का जन्म कैसे हुआ? लखनऊ के कुछ नौजवानों ने एक ऐसोशियेसन में रूसी मार्क्सवाद के आधार पर 'प्रगतिवाद' की आवाज़ उठाई। छायावाद को पूँजीपतियों और मध्यम वर्ग की सम्पत्ति बताकर प्रगतिवाद को 'प्रोलेटेरियट लिटरेचर' के रूप में बोना चाहा। यह प्रगतिवाद भारत में फैलते हुए रूसी विचारों का नतीजा बने यह मुझे कम स्वीकार है। क्यों? क्योंकि तब यह प्रगतिवाद एक सामयिक क्रान्ति-मात्र रह जाता है जिसमें प्रतिक्रिया की बलवती प्रेरणा काम कर रही है। प्रगतिवाद पूँजीवाद की भीषण प्रतिक्रिया बन जाती है—और प्रतिक्रिया के बल पर देर तक नहीं टिका जा सकता। यही कारण है कि आज का अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मार्क्स, लेनिन, स्टालिन के समाज सिद्धान्तों के कहने और करने में बहुत अन्तर पाता है। सुनते हैं रूस में ही उस समाजवाद के पैर उखड़े-सीधे पड़ रहे हैं।

हाँ तो-'प्रगतिवाद' को यदि ऐसा ही माना जाये तो इसे कौन स्वीकार करेगा? कौन चाहेगा पल-पीछे मिटने वाले इस नव जागरण को?

पर प्रगतिवाद को मैं तो सिद्धान्त और स्वाभाविक दृष्टि से लेता हूँ। मानव जीवन के शाश्वत और चिरन्तन प्रवाह के साथ साथ साहित्य का सामञ्जस्य के साथ आगे बढ़ना ही मैं 'प्रगतिवाद' की मूल भावना मानता हूं। वास्तव में प्रगतिशील साहित्य जीवन से पूर्णतया रल-मिल जाना चाहता है।

इसका क्या अर्थ—अभिप्राय है इसे समझने के लिए साहित्य की कुछ आलोचना आवश्यक है।

साहित्य के विषय में कलाकार सदा ही 'अहं' का आश्रय लेकर विश्व को अभिव्यक्त करता है। यह 'अहं' कभी शरीर, कभी हृदय और कभी कल्पनाशील मन के स्वरूपों में आता रहता है। साहित्य इन्हीं तीन धाराओं में बहा है—हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल शरीर प्रधान है, इन कवियों ने साहित्य के शरीर को पुष्ट किया है। भक्तिकाल के सूर और तुलसी इत्यादि हृदय के कवि हैं। छायावाद की रचनाओं में कल्पनाओं के सुन्दर चित्र हैं—इस संघर्ष समाज से उठकर कल्पनाशील मन नूतन और आदर्श जगनिर्माण करता है। इन तीन 'अहं' के स्वरूपों में बहती हुई साहित्य धारा कभी केवल एक ही रूप में रही हो ऐसा नहीं समझना चाहिये। कभी ऐसा

होना भी नहीं है—प्रश्न सता और गोगता के अनुसार ही हमने उक्त वर्गीकरण कर दिया है जिससे आगे का कथन स्पष्ट हो सके। अब देखें, यह चला हुआ 'प्रगतिवाद' क्या है ?

'प्रगतिवाद' में मार्क्सवादी-साहित्य की तरह एक प्रकार का बौद्धिक अंश अधिक है। इस प्रकार लिखे गए साहित्य में जीवन की अनुभूतियों को हृदय और आत्मा का संस्पर्श कराए बिना यथा रूपेण प्रकाशन कर देने से पाठक को केवल बौद्धिक सहानुभूति ही उपलब्ध होती है। उसे किसी प्रकार का मार्ग-निर्णय करने वाला प्रकाश नजर नहीं आता। यदि प्रगतिवाद जीवन के असूलों—आत्मा के तत्वों के आधार पर खड़ा किया जाये—प्रगति शील साहित्य विश्व के अपरिवर्तनीय तत्वों को लेकर आगे जीवन पर प्रकाश डालने वाला हो—तो ही वह पाठक को एक उदात्त और स्थिर क्रान्ति की ओर ले जा सकता है। आज का प्रगति शील साहित्य 'प्रोपगण्डा' बनना चाह रहा है—पाठकों में अपने 'क्रश्चाहट' में क्षणिक भावोत्तेजना भर देना चाह रहा है। इस वर्ग के प्रगतिशील कवियों को जिनमें दिनकर, नवीन, भगवती चरण, अञ्चल आदि आते हैं—हमारे एक साथी साहित्यिक ने 'नाश वादी' कवि कहा है। प्रगतिवाद घोर प्रगतिवाद को केवल मस्तिष्क का साथ छोड़ कर आत्मा और हृदय का भी सहारा लेना होगा। तीनों तत्वों के समुचित सामञ्जस्य से ही प्रगतिवाद उत्थानशील हो सकता है अन्यथा नहीं।

पहिले—"साहित्य का जीवन से पूर्णतया मिल जाना प्रगतिवाद है" यह हमने कहा है। उसका अभिप्राय यह है कि साहित्य को भूत भविष्यत् दोनों जीवनों के साथ समरूप हो जाना है। हमारी यह संस्कृति भूतकाल की देन है—उसे, तथा हमारा आदर्श जो भविष्य का सुख स्वप्न है—उसे, दोनों को मिलाना ही मेरी समझ में प्रगति-शीलता है। एक पैर को उठाने और दूसरे पैर को रखने में ही वास्तविक गति है। वर्तमान का समाज, राजनीति, कर्तव्य-धर्म ये सब उसी प्रगतिशीलता में आते हैं। इन विचारों को मानने वाले शान्ति-प्रिय साहित्यिक गण जीवन को, शाश्वत देखकर साहित्यक में अंकित करते हैं न कि आज की आवश्यकता मात्र को देख कर। इनको युग धर्म के साथ साथ भविष्य धर्म भी पहिचानना होता है, केवल युग-धर्म की रचना वर्तमान के साथ ही साथ प्रभावहीन हो जायेगी। जीवन का स्थायी क्रान्ति हो इन कवियों की 'प्रगति' है। दूसरे प्रगतिवादी मात्र नये समाज का सृजन ही लक्ष्य समझते हैं। उत्थानशील कवियों में सियाराम शरण गुप्त ही ठीक स्थिति तक पहुँच सके हैं। पन्त थोड़ा पीछे हैं। साहित्य-क्षेत्र में नये प्रविष्ट हुए 'रूपान्तर' के कवि श्री जगन्नाथ प्रसाद एम. ए. एल. एल. बी. भी इस वर्ग में स्थान पा सकते हैं—'रूपान्तर' की निम्न पंक्तियां देखिये—

"मैं प्रलय सृष्टि में सन्धि अटल,
मैं शांति क्रान्ति में प्रेम विरल,
संशोधन करता रहता हूं
मैं अपनी कृतियों में अविरल"

(पृष्ठ २४)

उत्थानशील कवियों के हृदय में असन्तोष है पर रोष नहीं—ये निर्माणात्मक क्रान्ति के पुजारी हैं। इनकी विचार-धारा में विस्फोट नहीं, संयम है, आशा है, अतः शान्ति भी है। आग, तूफान, प्रलय का आह्वान इस श्रेणी के कवियों को नहीं रुच सकता।

'प्रगतिवाद' में मात्र प्रगति न होकर उत्थान होना भी आवश्यक है। आज की दुनिया में उत्थान शील साहित्य की ही मांग है—उत्थान ही प्रगति का सच्चा स्वरूप है।

गुरुकुल-समाचार

दो चार अच्छी वर्षा हो जाने के कारण मौसम ठण्डा है। दिन भर शीतल पवन के चलते रहने से वातावरण आनन्दमय हो गया है। गत १ जुलाई को प्रातःकाल काले-काले पर्वताकार बादलों ने आकाश को पूरी तरह आच्छादित कर लिया और चारों ओर अन्धकार सा छा गया। ऐसे रमणीक समय के आने पर ब्रह्मचारियों ने श्री आचार्य जी से मनोहर-दिवस का अवकाश ग्रहण किया और विद्यालय से छुट्टी लेकर गंगा के उस पार दूर २ तक बन-पर्वतों में भ्रमण करने के लिए गए। भ्रमणार्थ गए ब्रह्मचारियों के दो दल भटक जाने के कारण क्षुधा-पिपासा दृढ़-परिश्रम तथा आपत्ति में स्थिर-प्रज्ञत्व का विशेष सबक लेकर लौटे हैं। ब्रह्मचारियों का यह अध्यवसाय और उद्योग भविष्य जीवन में पूरी तरह इनका मददगार होगा।

गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी—गत सप्ताह गुरुकुल-वृन्दावन के विद्यालय विभाग के २४ ब्रह्मचारी श्री प० गंगादत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में गुरुकुल कांगड़ी पधारे। ब्रह्मचारियों की यह पार्टी ग्रीष्मावकाश के दिनों में मंसूरी आदि स्थानों में घूमती हुई यहां आई थी। आस-पास की संस्थाओं और दर्शनीय स्थानों को देख कर ३ दिन बाद यह दल वापस लौट गया।

स्वास्थ्य-समाचार

लक्ष्मण ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ओम्प्रकाश २ श्रेणी श्लेष्मज्वर, जगदीश ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, सत्यप्रिय ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, देवप्रकाश २ श्रेणी मोच, रामकुमार ४ श्रेणी कर्ण रोग।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं। गत सप्ताह भी वर्षा न होने से बड़ी गर्मी रही। अब एक-दो दिन से वर्षा होने से मौसम अच्छा हो गया है।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ओ३म्

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार

वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २८ आषाढ़ १९९८, ११ जुलाई १९४१ [संख्या १७

वेदों का उत्सर्जन और उपाकरण

[हरि रामचन्द्र दिवेकर]

जीवन और साहित्य का सम्बन्ध नित्य है। यदि जीवन में साहित्य नहीं, तो जीवन नीरस है और यदि साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, तो वह निष्प्राण है। दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध है और जैसे-जैसे यह सम्बन्ध छूटता जाता है, वैसे-वैसे क्या जीवन और क्या साहित्य केवल भारभूत होते जाते हैं। आज हमारे देश में यह सम्बन्ध छूटा-सा ही है। जिस साहित्य का आजकल निर्माण होता है, वह या तो होता है 'टकसाली' या होता है 'बाज़ारी।' जीवन के सामने जो समस्यायें मुंह फाड़े खड़ी हैं, उनका विवेचन साहित्य में प्रायः नहीं होता। उसी प्रकार हमारे लेखकों द्वारा जो नवीन कल्पनायें साहित्य में खड़ी की जाती हैं, वे बहुधा काल्पनिक होती हैं, और प्रत्यक्ष जीवन में उनका सम्बन्ध बहुत ही कम रहता है। इसका कारण है एकमात्र हमारी शिक्षा। हमारी शिक्षा-प्रणाली हमारे जीवन से बिलकुल बिछुड़ी हुई है। इसी कारण इस शिक्षा में रंगे हुए हमारे शिक्षित विद्वान, जो आजकल के साहित्य निर्माता हैं, प्रत्यक्ष जीवन की समस्याओं से पूर्णतया अपरिचित रहते हैं। तो फिर यह क्रमप्राप्त ही है कि इन अपरिचित लेखकों द्वारा जिस साहित्य का निर्माण हो, वह भी जीवन से असम्बद्ध ही रहे। कहने का मतलब यह नहीं कि जीवन और साहित्य बिलकुल टांग में टांग बांध कर चलें। यदि ऐसा किया जाय तो दोनों की प्रगति रुक जावेगी। पर दोनों के प्रवाह स्वतन्त्र और अव्याहत रखते हुए भी इनमें समन्वय करने की अत्यन्त आवश्यकता है। भारतवर्ष में पूर्व काल में यही समन्वय किया जाता था।

प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का एक सत्र रहता था। जिसमें ये लोग नये ज्ञान का विचार करते थे। इस कर्म को उपाकर्म या उपाकरण कहते थे। उपाकर्म का ऋषियों ने क्यों आरंभ किया इसका कारण शांखायन ऋषि अपने गृह्यसूत्रों में यों देते हैं—"अपनी विद्या तक-सी सतेज, सन्मान्य और समर्थ रखने के हेतु ऋषियों ने उपाकर्म खोज निकाला"[1]। आरंभ इस सत्र का होता था श्रावणी पूर्णिमा को या श्रावण शुक्लपक्ष में, जिस दिन हस्त नक्षत्र हो उस दिन। लगभग पांच महीने यह सत्र चलता था और फिर पौषी पूर्णिमा के लगभग किया जाता था वेदोत्सर्जन। उपाकरण और उत्सर्जन का अर्थ स्पष्ट है—स्वीकार और त्याग। वेदों का स्वीकार और त्याग करने से प्रयोजन है नई विद्याओं को अपने ज्ञान में सम्मिलित करना और निरुपयुक्त—नये आविष्कारों के कारण से मिथ्या-प्रतीतज्ञान का आग्रहरहित होकर त्याग करना। जब तक यह किया जाता था, तब तक आर्यों की विद्या सतेज, सन्मान्य, और समर्थ रहती थी। वह प्रत्यक्ष जीवन से संबद्ध रहती थी। साल भर में जो नया साहित्य निर्मित होता था उसका ग्रहण नवीन इस पंचमासिक सत्र में बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा होता था और फिर नये पुराने साहित्य में ग्राह्य क्या और त्याज्य क्या है, इसका निर्णय होकर ग्राह्य का स्वीकार करके, त्याज्य का उत्सर्ग किया जाता था।

परन्तु अब तो इन सब प्राचीन बातों का मतलब अज्ञात होकर कोरी बातें ही शेष रह गई। ब्राह्मण, आचार्यों का काम छोड़ कर सेवक हो गये, पर फिर भी अपने को 'ब्राह्मण' कहते रहे। वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' छोड़ कर हमने वेदों को चार संहितादि ग्रंथों की चहारदीवारी में बन्द कर दिया। अर्थात् वेदों का—इन वेदों का—न उपाकरण हो सकता, न उत्सर्जन। इस लिये 'वेद' शब्द का अर्थ ग्रंथ करके ग्रंथों का ही ग्रहण और त्याग बाकी रह गया। पर जैसे अलंकारों के जाते रहने पर भी अलंकार-धारण के लिये शरीर में जो छेद किये जाते हैं वे रहते ही हैं और प्राचीन अलंकारों की कम-से-कम स्मृति तो दिलाते ही हैं, वैसे ही अभी तक हमारे कर्मों की संकल्पों की भाषा वही रही है। आज भी उत्सर्जन और उपाकर्म दोनों एक ही श्रावणी पूर्णिमा के दिन करते हुए हम संकल्प करते हैं। उसमें कहते हैं—जिस ज्ञान का हमने अध्ययन किया है और अध्ययन करने वाले हैं उसमें योग्य स्थानों

1. शां० गृ० ४ था अध्याय, ५ वां खंड, १२ वां सूत्र

पर-बातों पर ज़ोर देने से और अयोग्य स्थानों पर ज़ोर देने से-- जो निःसारता पैदा होती है, उसे दूर करने के कारण इत्यादि इत्यादि।[१] अबतक यह कर्म बराबर वर्ष-प्रति वर्ष होता रहा, हमारा वाङ्मय, हमारा साहित्य, हमारा ज्ञान प्रगतिशील रहा और उसका अर्थ न समझकर जब केवल हवन करना, यज्ञोपवीत धारण करना इत्यादि केवल विधि बाकी रही, तो वही ज्ञान अप्रवाही--बँधे जल के समान सड़ने लगा, अनेक रोगबीजों का उत्पादक हुआ।

आज भी हमारे साहित्य की ठीक यही दशा है। साहित्य के विषय में आज पूर्ण अराजकता हो रही है। कोई किसी को नहीं पूछता और कोई किसी की परवाह नहीं करता। उनके लेखों का समाज पर या जीवन पर क्या परिणाम होगा, इसका विचार लेखकगण बिलकुल नहीं करते। छापने वाले भी इधर ध्यान नहीं देते और पढ़ने वालों का तो पूछना ही क्या? परिणाम यह होता है कि हमारा साहित्य मिथ्या, अनुपयुक्त, नकली, हानिकारक होता जाता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे विद्वान, निष्पक्ष, समाज के हितेच्छु पुरुषों की एक समिति हो जो सालभर में निर्मित हुए साहित्य की समीक्षा कर उसमें कौन-कौन से दोष आगये हैं, यह दिखलावें तथा कौन-सी समाजोपयुक्त कल्पनायें लेखकों ने प्रस्तावित की हैं, इसका प्रदर्शन कर उसका प्रचार करने का प्रयत्न करें। यदि इन नई कल्पनाओं के कारण कुछ पुरानी कल्पनायें त्याज्य ज्ञात हों, तो उनका भी त्याग करने का उपदेश करें और समाज को सन्मार्ग पर चलने में सहायता दें। यह काम सुलभ नहीं है; पर बिना इस प्रकार के काम के हमारे साहित्य की समुन्नति नहीं हो सकती। प्राचीन काल में यह काम बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा किया जाता था जिस का प्रतीक मात्र अब 'श्रावणी' रह गया है। अब श्रावणी का अर्थ भस्म-गोमय-मृत्तिकादि लगाकर स्नान, यज्ञोपवीत धारण तथा हवन करना--इतना ही रह गया है। इस वेदोत्सर्जन का ही उत्सर्जन करने का समय अब आ पहुँचा है; नहीं, वह होता ही जाता है। पुरानी प्रथायें नष्ट होने का डर नहीं, किन्तु न नई और न पुरानी हो ऐसी अकर्मण्यता का डर है। आशा है, पाठक इस पर विचार करेंगे और ज्ञान का उपाकरण तथा उत्सर्जन कर उसे सतेज और समर्थ रक्खेंगे।

१. "अर्थानानां छन्दसां अध्येष्यमाणानां च अध्यानोद्युक्तामादि-जनित-यातयामता-निरासेन इत्यादि।"

आहार के कुछ शास्त्रीय नियम

(लेखक—डा० पी० आ० जैन)

भारत वर्ष में आहार सम्बन्धी ज्ञान और साहित्य का वर्तमान समय में सर्वथा अभाव पाया जा रहा है। उस का कारण प्रधानतया हमारी अशिक्षा तथा वर्तमान शिक्षा-पद्धति है। अशिक्षा तो सभी प्रकार की बुराइयों की जड़ है इसमें किसी को मतभेद नहीं होना चाहिये। वर्तमान शिक्षा पद्धति इस अभाव का कारण यों है कि आहार-शास्त्र संस्कृत में है और वर्तमान शिक्षा-पद्धति का माध्यम अंग्रेज़ी है तथा संस्कृत को 'मृत' भाषा मानकर उसमें भरे अमूल्य रत्न से वंचित हो हम अपने आप ही अज्ञानी होते जा रहे हैं। संस्कृत पढ़ना आजकल समय-विरोधी कार्य समझा जाता है। दूसरी गलती इस सम्बन्ध में वैद्यों-डाक्टरों की है जोकि ऐसी व्यवस्था नहीं करते कि भारतीय आहार शास्त्र का ज्ञान सर्व साधारण को हो जाये और उसके अभाव से जो हानि हो रही है उससे देश की रक्षा हो। यदि समुचित रूप से सरल भाषा में आहार शास्त्र का ज्ञान सर्वसाधारण को कराया जाय तो निश्चय ही हममें खान-पान की जो बुराइयां घुस गयी हैं वे दूर हो जायें और थोड़े ही दिनों में हमें पूर्ण-विश्वास हो जाये कि हमारे पूर्वजों ने जो नियम इस सम्बन्ध में बनाये थे वे आधुनिक अनुसंधानों द्वारा रचित नियमों से अधिक विश्वसनीय नहीं तो उससे कम कदापि नहीं थे। वर्तमान शिक्षा पद्धति से अधिकांश में अंग्रेज़ी आहार-शास्त्र का थोड़ा ज्ञान हो जाता है लेकिन नित्य प्रति उनका आहार उससे भिन्न रहता है। फलतः वे न तो अपने और न अंग्रेज़ी आहार का नियम जान पाते हैं और न इधर के रहे न उधर के रहे, वाली कहावत चरितार्थ होती है। यदि किसी व्यक्ति ने आहार नियमानुसार करने की कोशिश की तो उसे केवल पश्चिमीय खाद्यपदार्थ अथवा अन्य अखाद्य का प्रयोग करने का विचार होगा, जबकि उसका आहार देश-कालानुसार कुछ और ही है, और नहीं है तो होना चाहिये। फलतः यह ज्ञान चेष्टा करने पर भी अपूर्ण ही रह जाता है और हानि उठाकर भी अनुभव का अभाव बना रहता है।

वास्तव में होना यह चाहिये कि विद्वान विशेषज्ञ भारतीय खाद्य पदार्थ का परीक्षण करें और अनुसन्धान एवं प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध और प्रचारित करें कि उनमें किन अंशों में गुण और अवगुण हैं और किस परिमाण में देश-कालानुसार उनका उपयोग करना चाहिये। उचित पथ प्रदर्शन के पूर्व यह कार्य होना अनिवार्य है। आयुर्वेद शास्त्र तथा अन्य प्राचीन साहित्य द्वारा जो नियम बने हैं और खोज की गयी है उन पर भली भांति विचार करके अनुसन्धानों द्वारा उन्हें प्रमाणित अथवा अप्रमाणित कर जनसाधारण में उन्हें प्रचारित कर देना चाहिये ताकि खाद्य पदार्थ के बेचने और खरीदने वाले तथा खाने और पकाने वाले इन नियमों और अनुसन्धानों से भली भांति परिचित हो जायें। देश का कल्याण तब तक असम्भव है जब तक हमारा खान-पान और रहन-सहन नियमित नहीं हो जाता।

आहार का प्रभाव मन पर विशेष रूप से पड़ता है और उसमें सुधार हो जाने से हमारी मनोवृत्ति पर भी असर पड़ेगा यह सर्वमान्य है। स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण हो जाने के बाद भी यदि समुचितज्ञान आहार शास्त्र का

न रहा तो निश्चय ही स्वादेन्द्रिय-संयम पूर्णतया लाभकर नहीं होगा। इसी लिये ब्रह्मचर्य तथा सफल जीवन के लिये यह अनिवार्य-सा हो जाता है कि इस सम्बन्ध में तन-मन-धन द्वारा पूर्ण उद्योग किया जाये और विस्तृत रूपमे कार्य किया जाये।

प्राचीन शास्त्र में आहार के नियम बड़े ही उपयोगी ढङ्ग से दिये गये हैं जिसका नमूना मात्र यहां पर दिया जा सकता है। हो सकता है कि कुछ लोगों को उसके प्रति कुछ सन्देह हो लेकिन सन्देह दूर करना एक दिन का काम नहीं वह ऊपर बताये गये उपाय द्वारा ही हो सकता है। तथापि भारतीय आहार शास्त्र की अपनी विशेषता है और यह निश्चित है कि ग्रन्थकारों ने पूर्ण-रूपेण अनुसन्धान करके ही उसकी रचना की थी।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

युक्ताहार-विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

६ अ० ११ श्लोक।

सारांश यह है कि परिमित आहार, विहार, चेष्टा, कर्म, आदि से युक्त व्यक्ति ही योग से लाभ उठा सकते है।

आहार का प्रभाव मन और बुद्धि तथा क्रमशः समस्त जीवन पर किस प्रकार पड़ता है उसका कितना अच्छा वर्णन निम्न श्लोक में होता है—

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ-
ध्रुवास्मिद्धिः ध्रुवा सिद्धिर्विप्रमोक्षः।

आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि तथा उससे पूर्ण सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार एक व्यक्ति आहार द्वारा शुद्ध मनसे ही मोक्ष का भागी हो सकता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्न-शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।

गीता अ० ६ श्लोक १७।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो आहार अपने शरीर के अनुरूप है वही रक्षा करेगा और रोग-दोष उत्पन्न नहीं होने पायेंगे। इसके विपरीत किया गया आहार निश्चय ही रोग-व्याधि का कारण बनेगा और शरीर की रक्षा करने में असमर्थ रहेगा।

मार्कण्डेय पुराण में बतलाया गया है कि बहुत खाकर या भूख से पीड़ित रहने पर, व्याकुल होकर अथवा श्रमयुक्त होकर, योगी ब्रह्म प्राप्ति की व्यर्थ चेष्टा न करे।

योगसूत्र में बतलाया गया है—

अर्द्धं स व्यंजनान्नस्य तृतीयमुदकस्यतु।
वायोः संचरणार्थन्तु चतुर्थमवशेषयेत्।

अर्थात् पेट के दो भाग अन्नादि के लिये, तीसरा जल के लिये तथा चौथा भाग वायु के लिये रिक्त रखना चाहिये। सारांश यह कि आधा पेट भोजन ही आहार शुद्धि है।

महाभारत उद्योगपर्व में लिखा है—

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रास्यं, ग्रस्तं परिणमेच्चयत्।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता॥

जो पदार्थ भोजन करने योग्य, पचने वाले तथा अन्त में गुणकारी हों उन्हीं पदार्थों का भोजन करना चाहिए, यदि आरोग्य रहना है।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।

(मनुस्मृति द्वितीय अध्याय)

अर्थात् बहुत भोजन करना आरोग्य, आयु और स्वर्ग के लिये हानिकारक है। ऐसे भोजन में कोई लाभ नहीं बल्कि उल्टी निन्दा होती है।

भगवान कृष्ण ने १७ वें अध्याय में बताया है कि आयु, जीवन की पवित्रता, बल, आरोग्य, सुख प्रेम को बढ़ाने वाला सरस, पुष्टिकर एवं रुचिकर आहार करना चाहिये—

आयुः सत्व बलारोग्य सुख-प्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विका प्रियाः।

और—

कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनाः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकामयप्रदाः।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तीखा, रूखा तथा अन्य प्रकार के राजसी आहार मनुष्य को दुःख, शोक रोगादि से पीड़ित रखते है।

आगे चलकर बतलाया गया है—

यातयाम गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्य भोजन तामसप्रियम्।

(गीता १७ अध्याय)

देर का रखा हुआ, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, सड़ा हुआ तथा मांसादि उच्छिष्ट भोजन तामसी वृत्तिवालों को प्रिय है। सारांश यह कि इस प्रकार का भोजन त्याज्य है।

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम्।
नान्तराभोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत्।

देवताओं ने मनुष्य के लिये दो बार ही भोजन करने की व्यवस्था की है। दोनों भोजनों के बीच में भोजन न करने से वही फल होता है जो उपवास करने से मिलता है।

बुद्धिलुम्पति यद्द्रव्य मदकारी तदुच्यते।

(शार्ङ्गधर ४ अध्याय)

जिस पदार्थ के सेवन से बुद्धि नष्ट हो वही मादक-द्रव्य है। राजसी और तामसी भोजन करते ही मनुष्य की मनोवृत्ति में अन्तर पड़ने लगता है। यही कारण है कि तामसी भोजन करने वाले व्यक्ति बहुधा क्रूर और कठोर स्वभाव के होते हैं।

आहार तीन प्रकार का है—सात्विक, राजस और तामस।

१-सात्विक—आहार—आयु, सात्विकवृत्ति, बल, आरोग्य, सुख-प्रीतिवर्द्धक, रसीले, चिकने, स्थिर और आनन्ददायक भोजन सात्विक आहार हैं। ऋषियों ने ऐसे लघुपाकी, अत्यन्त स्नेहन रसयुक्त मधुर एवं प्रिय आहार को सात्विक कहा है, जिनके सेवन से मनुष्यों की वृत्ति सतोगुणी हो जाती है। आहार में यव, मूंग, शालि, गेहूं, सांठी, चणक, अरहर, गोदुग्ध, गोघृत, चीनी, सैंधव, लघुपाकी शाक तथा शुद्ध पके हुए मधुर फल

(शेष पृ० ५ पर)

गुरुकुल

२८ आषाढ़ शुक्रवार १९९८

अंग्रेज़ी में आर्य वैदिक साहित्य

[ले०—प्र० स्ना० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति]

अभी कुछ दिन हुए मुझे श्रीयुत रामचन्द्र राव B. A. B. T. नामक एक बंगलौर के सुशिक्षित सज्जन का अंग्रेजी में निम्नलिखित पत्र ज्वालापुर में प्राप्त हुआ:—

"मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वेदों के अंग्रेजी में अनुवाद हैं यदि हां, तो वे कहां मिल सकते हैं। मैं उन्हें पढ़ने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूं। मैं जानता हूं कि यह दुर्भाग्य की बात है कि मैं उन्हें (वेदों को) अंग्रेजी अनुवाद द्वारा पढ़ूं किन्तु क्योंकि मैं संस्कृत नहीं जानता इसलिए मुझे इस बुरे व्यापार या दुर्भाग्य का अच्छे से अच्छा लाभ उठाना चाहिए। मैं आर्य समाज का सदस्य बनने और उसके प्रति अपनी तुच्छ सेवा समर्पित करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूं।"

इस पत्र को पढ़कर जहां मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि कि सुशिक्षित जनता में अब वेदों के पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न हो रही है और आर्य समाज के प्रति उनका प्रेम बढ़ रहा है वहां उनको यह सूचित करते हुए कि अभी तक दुर्भाग्यवश चारों वेदों क्या, एक वेद का भी अंग्रेज़ी में यथार्थ अनुवाद विद्यमान नहीं है मैंने अपने अन्दर जिस लज्जा का अनुभव किया उसे मैं ही जानता हूं।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक प्रमुख सदस्य जो मजदूर दल के थे, बँगलौर पधारे थे। मैं उन्हें वैदिक धर्म और आर्य समाज का परिचय देने के लिए गया। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य वेदों का देश-देशान्तर में प्रचार करके उनके द्वारा संसार का उपकार करना है इत्यादि बातें जब मैंने उन्हें बतलाईं तो वे वेदों के विषय में जानने को अत्यन्त उत्सुक हुए और उन्होंने मुझे वेदों के अंग्रेजी अनुवाद देने या उनके मिलने का पता बताने के लिये कहा। मैंने जब उन्हें सत्यार्थ प्रकाश का डा० चिरंजीव भारद्वाज कृत अँग्रेजी अनुवाद भेंट करने के अतिरिक्त स्व० पं० घासीराम जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अँग्रेजी अनुवाद तथा दो चार अन्य छोटी २ पुस्तकों का जिसमें कुछ वेद मन्त्रों का अनुवाद विद्यमान है पता दिया तो वे कहने लगे रुपये की पर्वाह नहीं मैं इसके लिये बहुत कुछ खर्च करने को तय्यार हूं। आप मुझे चारों वेदों के प्रामाणिक अँग्रेजी अनुवाद मिलने का पता बतलाइये जिससे मैं उन्हें खरीद लूं और उनसे लाभ उठाऊँ। क्या आपके पास केवल इतना ही वैदिक साहित्य अंग्रेजी में विद्यमान है?

उनकी इस बात को सुनकर मैं लज्जित हुआ क्योंकि मुझे यह बताना पड़ा कि अभी तक किसी भी वेद का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद विद्यमान नहीं है। हां, आशा है कुछ वर्षों के अन्दर यह तय्यार हो जायगा। तब तक आप इन्हीं पुस्तकों को पढ़ लें जिनसे वैदिक शिक्षाओं की महत्ता आपको ज्ञात हो जायगी।

इस तरह के पत्र अंग्रेजी में वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक बार आते रहते हैं और जब कभी सुप्रसिद्ध ईसाई या मुसलमान प्रचारकों के वेदों के प्रो० मैक्समूलर, ग्रिफिथ आदि यूरोपियन विद्वानों वा श्री सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि पौराणिक कालीन भारतीय विद्वानों द्वारा किये भाष्यों के आधार पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए हम लोग उनकी अप्रामाणिकता सिद्ध करते हैं तो वे हमसे वेदों के अँग्रेज़ी में यथार्थ प्रामाणिक अनुवाद मांगते हैं और तब हम लोगों को लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद अभी तक किसी वेद का भी विद्यमान नहीं है।

यह अवस्था वस्तुतः कितनी शोचनीय है कि जो वेद हमारे धर्म की आधार शिला हैं, जिन्हें ईश्वरीय पवित्र ज्ञान मानते हुए देशदेशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों में उनके प्रचारार्थ प्रयत्न करना आर्यसमाज अपना कर्तव्य समझता है उन वेदों का कोई अनुवाद अंग्रेजी या अन्य विदेशीय भाषा में विद्यमान नहीं है जिसे हिन्दी और संस्कृत आदि से अनभिज्ञ भारतीय या विदेशी विद्वानों को दिया जासके। प्रो० मैक्समूलर आदि के अनुवाद कई स्थानों पर अत्यन्त अस्पष्ट, अश्लील और उपहासजनक हैं इस बात को तो अब यूरोप अमेरिका के बड़े २ विद्वान भी स्वीकार करने लगे हैं। उदाहरणार्थ Sacred Books of the East Series के रशियन संस्करण के संपादक मि० बोलंगर (Boulanger) ने प्रो० मैक्समूलर के वेदों के अनुवाद से असन्तोष प्रकट करते हुए कुछ वर्ष पूर्व लिखा था —

उसका सारांश यह है कि दुर्भाग्यवश मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि रशियन जनता को वेदों का परिचय प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद द्वारा कराया जाय तो जनता की रुचि उनके अध्ययन में कभी उत्पन्न न हो सकेगी। मुझे प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद में जो बात बड़ी विचित्र लगी वह यह कि उसमें वाहियात अश्लील और अस्पष्ट वाक्यों की भरमार है। जहां तक मैं वेदों की शिक्षा को समझ सका हूं, वह इतनी उत्कृष्ट है कि प्रो० मैक्समूलर जैसे भ्रमोत्पादक अशुद्ध अनुवाद द्वारा रशियन जनता को परिचित कराना और इस प्रकार उन्हें उस आध्यात्मिक लाभ से वंचित रखना जो यह वैदिक शिक्षा लोगों को देती है, मैं बड़ा अपराध वा पाप मानता हूं। इत्यादि।

किन्तु प्रश्न तो यह है कि हम केवल प्रो० मैक्समूलर वा सायणादि के भाष्यों की समालोचना करके ही कब तक सन्तोष करते रहेंगे? क्या श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में जिसका एक मुख्य उद्देश्य 'आर्यावर्त' तथा अन्य देश देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार का प्रबन्ध करना है तथा वैदिक धर्म की उन्नति तथा वृद्धि और रक्षा के उपायों को प्रयोग में लाना है। ऐसा एक विभाग होना

उचित और आवश्यक नहीं जिसके द्वारा वैदिक साहित्य का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सुयोग्य विद्वानों द्वारा कराया जाये ? श्रीमती सार्वदेशिक सभा समय समय पर योग्य प्रचारकों को विदेशों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ भेजती रही है यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। किन्तु ऐसे प्रामाणिक अनुवाद तथा वैदिक धर्म सम्बन्धी अन्य उत्तम साहित्य के बिना उसमें विशेष सफलता मिलनी (विशेषतः वहां की सुशिक्षित जनता में) मेरे विचार में सर्वथा असम्भव है। अतः मेरा दृढ़ विचार है कि यदि अभी तक प्रतिष्ठित सभा का ऐसा कोई विभाग नहीं है तो उसे अवश्य ही अतिशीघ्र इस विभाग की स्थापना करनी चाहिये तथा अंग्रेजी में एक उच्च कोटि का मासिक पत्र भी अवश्य निकालना चाहिये जिसमें वेदों का प्रामाणिक अनुवाद और वैदिक धर्म के तत्त्व विषयक उत्तम लेख प्रकाशित होते रहें। स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी श्रीमती सार्वदेशिक सभा के अनेक वर्षों तक उपप्रधान रहे थे। उनका सच्चा स्मारक जो प्रतिष्ठित सभा स्थापित कर सकती है वह मेरी तुच्छ सम्मति में यही हो सकता है कि उन द्वारा सम्पादित 'वैदिक मैगज़ीन' को फिर से जारी किया जाये और ऐसा प्रबन्ध किया जाए कि वह पूर्व की उच्च स्थिति को फिर से प्राप्त करके वैदिक धर्म के प्रचार का उत्तम साधन बन सके। यदि प्रतिष्ठित सभा इस अत्यावश्यक कार्य को हाथ में ले तो मेरा विश्वास है कि कई योग्य सज्जन इस कार्यार्थ उसे मिल सकेंगे जो ऐसे पवित्र कार्य में सहयोग देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। आशा है मेरे इस नम्र निवेदन पर प्रतिष्ठित सभा उचित ध्यान देगी और शीघ्र ही इस लेख में प्रस्तुत विभाग की व्यवस्था करेगी।

(पृ० ३ का शेष)

सात्विक पदार्थ हैं, इनके सेवन से सतोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है।

२–राजसी आहार—कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त-उष्ण, तीखे, चरपरे तथा दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाले राजसी आहार हैं। शरीर विज्ञों ने अत्यन्त उष्ण, आवश्यकता से अधिक मीठा, कड़ुवा, तीता, नमकीन, रूखा, चरपरा खट्टा, दोषयुक्त पदार्थ, गंदी अर्थात् अपवित्रता से बनी हुई सामग्री, गरिष्ठ (पूड़ी कचौड़ी मालपूआ आदि) प्याज, लहसुन, गाजर, उड़द, मसूर, सरसों, मांस, मछली, अंडा, कबाब, चाय, काफी, कोको, सोडा, लेमन, तेल, हींग, मसाला, पान, तम्बाकू, गांजा, भांग, चरस, अफ़ीम, कोकीन आदि को राजसी आहार कहा है, इनके सेवन से मनुष्य रजोगुणी हो जाता है।

३–तामसी आहार—देर का रखा हुआ, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा और अपवित्र भोजन तामसी आहार कहलाता है। इसमें राजसी आहार की वस्तुयें भी सम्मिलित हैं। यह आहार अत्यन्त घृणित, निन्दित एवं निकृष्ट है। संसार को सदैव इससे बचना चाहिए। इससे मनुष्य पूर्ण तमोगुणी बन जाता है। मनुष्य के शरीर पर इसका बड़ा बुरा परिणाम प्रकट होता। यह निकृष्ट आहार मानवीय अन्तःकरण में दानवी वृत्ति उत्पन्न कर देता है। इसका प्रेमी सदा रोगी, दुःखी, बुद्धिहीन, लोभी, क्रोधी, कामी, मोही, व्यभिचारी, अविचारी तथा दरिद्री हो जाता है। निस्सन्देह-शीघ्र अल्पायु हो अकाल मृत्यु का कौर बन नरकगामी हो जाता है।

राजसी आहार शरीर में रजोगुण उत्पन्न करता है। इसके सेवन से स्थिर वृत्तियां भी चञ्चल हो उठती हैं। विषयों की ओर इन्द्रियां दौड़ जाती हैं जिससे मनुष्य कामी और पापी बन जाता है। चित्त का वातावरण चञ्चल हो उठता है। मन शक्ति के बाहर हो मनमाना करने लगता है जिससे रोग और शोक बढ़ने लगते हैं। आयु, तेज बल सामर्थ्य, सौन्दर्य, और सौभाग्य घटने लगते हैं। तामसी आहारवालों के समान राजसी आहार खाला भी ब्रह्मचर्य का अधिकारी नहीं हो सकता।

आहारों में सात्विक आहार श्रेष्ठ है, अतः जिन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना है, जो अपना उद्धार करना चाहते हैं, जिन्हें अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की उन्नति अभीष्ट है, जो अपने शरीर में सौन्दर्य बल एवं सामर्थ्य बढ़ाना चाहते हैं तथा जिन्हें अपनी परलोकावस्था पर ध्यान है—उन्हें चाहिये कि राजसी और तामसी आहार छोड़कर सुख शान्ति देने वाला सात्विक आहार सेवन करें।

वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को सूक्ष्म आहार करना चाहिये। सात्विक आहार भी विशेष मात्रा में हो जाने पर राजसी हो जायगा। ऐसा भोजन करो कि तुम आहार को खाओ, ऐसा न हो जाय कि आहार ही तुम्हें खा जाय। विशेष भोजन करने से बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि हीन हो जाने से मनुष्य सहज ही में पाप-पङ्क में फँस जाता है। अधिक भोजन करना ही बाह्य एवं अन्तर व्याधियों का कारण है।

चित्रकार और चित्रकला का विकास

(ले०— ब्र० शान्ति स्वरूप जी)

विश्व के जीवन में ललित कलाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है! मानवता को उच्च स्थिति पर पहुँचाने वाली ये ही कलायें हैं। मरुभूमि में शाद्वल की तरह मनुष्य जीवन में ये कलायें सरसता भरने वाली हैं। कविता संगीत और चित्र इनमें से किसी एक का भी आश्रय लेकर मनुष्य तन्मय हो सकता है। दुनिया से पृथक् रहकर भी इन कलाओं के आश्रय मात्र से कभी वह अपने को एकाकी नहीं समझता। ये उसको हंसने-बोलने वाला एवं स्नेह करने वाले संगाती की तरह हैं। कलाकार का जीवन-कलाकार की कला तन्मयता, अध्ययन और आनन्द की वस्तु है। ऊपर से रूखे सूखे बालों वाला, मैले फटे कपड़ों में ढका हुआ भी हृदय संसृति की सुन्दर से सुन्दर वस्तु से भी सुन्दर है।

तीनों कलायें अपने में पूर्ण और सरस होती हुई भी अन्योन्याश्रित हैं। कविता यदि शब्द चित्र है तो चित्र

रेखामयी कविता है संगीत सौन्दर्य का वह चित्र है जो ताल और स्वरों मे बन्धा हुआ है। चित्र जिसमें सरिता की लहरों का कलकल, चित्रकार की तूली मे बोल उठता है वहां हृदय का संगीत पीड़ा रुदन शब्दों में लिख कर कविता बन जाता है। अन्दर और बाहर की सम्पूर्ण भावनायें तथा सौन्दर्य चित्रकार की तूली मे रंजित होकर आंखों के सामने आजाते हैं, हृदय की कविता ऊषा और संध्या के सुहाग भरे चित्र संगीत की स्वर लहरी में घुल कर मानवीय हृदयों को रंग देते हैं।

लेकिन फिर भी तीनों का क्षेत्र अलग २ है। मानव हृदय की भावुकता, करुणा, पीड़ा या उल्लास चित्रकार की कृति मे उतनी आसानी से सामने नहीं लाये जा सकते जितनी कि आसानी से कविता में उसका शब्द द्वारा चित्र प्रगट होता है। लहरों में बहते हुए बेड़े में खड़ा हुआ नाविक उद्विग्नता के साथ अपना पथ खोज रहा है, शायद उसको कवि उतनी आसानी से सामने न रख सके जितनी आसानी से कि चित्रकार उसको सब हाव-भाव के प्रगट कर सकता है। इसी तरह कोकिल के पंचम-स्वर और संसृति की सम्पूर्ण स्वर लहरी को कवि या चित्रकार अपनी कलामे उतना सामने नहीं ला सकते जितनी आसानी से एक निपुण गायक!

अन्त में कला जब पूर्णता को प्राप्त हो जाती है तब तीनों एक रस होकर रस-सागर में अन्तर्लीन हो जाते है। सत्य शिव और सुन्दर मिलकर पूर्ण ब्रह्म का निर्माण करते हैं। चित्रकार का चित्र शब्दों में बोलता है। स्वरों में गाता है। कवि की कविता रंगों वाले चित्र खींच देती है। कोयल बनकर पंचम स्वर में गाती है और गायक का स्वर संगीत अपनी लहरों में संसृति के चित्र और भावनाओं को अनुरंजित कर देता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही कला मानव जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई। खून और चमड़े में छिपा हुआ मानव हृदय अपनी आवश्यकता की मांग करने लगा। उस युग की असभ्यता और जंगलीपने का समावेश लेकर भी हृदय, विश्व के कलापूर्ण सौन्दर्य की ओर खिंचता रहा! जंगल में सदा रहने वाला वसन्त, झरनों का स्वर संगीत और पहाड़ों की ऊंचाई अपनी कला से उसे सदा ही आकृष्ट करते रहे। अपने हाथों से टेढ़ी मेढ़ी लकीरें खींचकर मनुष्य अपनी कृति पर खुश होता रहा, स्वर पाकर उसने गुनगुनाना शुरु किया और भाषा पाकर उसने अपनी हृद्गत भावनाओं को सुन्दर तरीके से प्रगट करना चाहा; उसी से चित्र, संगीत और कविता की उत्पत्ति हुई। इसमें निरन्तर विकास होता गया और आज हमें तीनों कलायें पृथक् रुप से अपने में पूर्ण होकर हमारे सामने हैं।

हमारा विषय चित्रकला है; कविता और संगीत को छोड़ कर इस समय उसी पर विचार करना है।

रंगों से सभी को प्रेम होता है। हम आज भी गावों के अन्दर जायें तो देखेंगे कि वहां का प्राणी अपनी दीवारों को (भद्दे और जिनको शायद अपने को सभ्य कहने वाले लोग देखेंगे तो घृणा से मुंह फेर लेंगे,) रंगों से रंगते हैं। मनुष्य को रंगों से प्रेम है यह प्रेम ऊंचा हो नीचा हो पर प्रेम ही है। प्रकृति से भी सभी को प्रेम है, उछलते कूदते हुए झरने, जिनका दूध सा सफेद रंग है, ऊंचे हरे पत्ते वाले पेड़ भी हरे रंग से सुन्दर है। यह बात और है कि किसी को एक चीज पसन्द है तो दूसरी नहीं। यदि ऐसी बात न होती तो ये दिखाई देने वाले सात रंग न होते और कोई एक ही रंग होता! कलाकार सूखे गड्ढे और अस्तव्यस्त वस्तुओं में सौन्दर्य देख सकता है और दूसरा मनुष्य सुन्दर से सुन्दर चित्र की भी कीमत नहीं समझता। कुछ भी हो मानव जीवन में इस चीज का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

चित्रकला का जन्म क्यों हुआ कैसे हुआ? मैं समझता हूँ इस प्रश्न का उत्तर इसकी भूमिका से मिल जाता है। इस कला का विकास कैसे हुआ यह देखा जाय तो इतिहास के अध्ययन और प्राचीन प्राप्त वस्तुओं के अध्ययन से कला के विकास का सौन्दर्य स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन मनुष्य के पास इतने साधन न थे, उसकी सोच और दिमाग की पहुंच इतनी ऊंची न थी। उसका ज्ञान उसकी दृष्टि सीमित थी। उसका सम्पर्क अपने से ही था। उसका संसार मर्यादा में बद्ध था और उसी में उसे पूर्णता की प्रतीति होती थी परन्तु धीरे २ सभ्यता का विकास हुआ और मनुष्य ने उसकी सभ्यता में चलना सीखा, बोलना सीखा अपनी आवश्यकता को समझा और अपने सीमित और संकुचित आधार से निकल कर बाहर आया। इसी के साथ उसकी कला का भी विकास हुआ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक के चित्रों के अध्ययन से उस कला का विकास आसानी से समझा जा सकता है। पता चलता है कि किस प्रकार टेढ़ी मेढ़ी लकीर खींचकर उनमें भद्दे और मनमाने रंग भर कर मनुष्य आज उत्तम कला पूर्ण चित्र तय्यार करने लगा है

सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य में साधनों की उन्नति हुई। मनुष्य स्थिर हो कर एक जगह पर रहने लगा। उसने कृषि की उन्नति की, उसने घर बनाये उसे धातुओं का उपयोग पता लगा। अब वह समृद्ध था उसके पास बड़े २ नगर, बड़े २ भवन और आराम के साधन थे। उसे जरूरत हुई अपने को सुन्दर बनाने की, अपने भवनों को सुन्दरता से सजाने की और अपने नगरों को खूबसूरत बनाने की। उसके देवता थे, उसके मन्दिर थे, देव-प्रतिमायें थीं। उन सब के साथ उसकी समृद्धि थी, उसी समृद्धि को सौन्दर्य की समृद्धि में वह देखना चाहता था। इसलिये उसने अपनी दीवारों को रंगना शुरू किया, मूर्तियां बना कर उनको भिन्न २ रंगों से सजाया और अपनी भावनाओं और पसन्दगी के अनुसार उसका निरन्तर विकास होता गया।

सभ्यता और आगे बढ़ी मनुष्य एक जगह से उठकर दूसरी जगह जाने में समर्थ हुआ। एक देश ने दूसरे देश को जीता। भिन्न २ सभ्यतायें संस्कृतियां आपस में मिलीं और उनके अन्दर आदान प्रदान हुआ उसका प्रभाव कला पर भी पड़ा। भिन्न २ तरीकों के आपस में मिल जाने से कला और विकसित हुई।

इस समय की कला अत्यन्त उन्नत है, सुसंस्कृत है। फिर भी पूर्णता की कसौटी पर पूरी होगी यह नहीं कहा जा सकता। और कब पूर्ण होगी यह भी कहना मुश्किल है। यदि पूर्णता प्राप्त हो जाय तो वस्तु की इति भी समझनी चाहिये, इसलिये उस समय से लेकर अब तक निरन्तर विकास और प्रगति जारी है। साधनों के बढ़ने के साथ मनुष्य का ज्ञान भी बढ़ा और उसके साथ ही अपनी कला को सुन्दर और सुन्दरतर बना देने की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई।

आज के मनुष्य के पास विज्ञान है। उसके द्वारा नये आविष्कार हो रहे हैं। आज के मनुष्य के पास यन्त्र हैं यन्त्रों से मनुष्य और भी आसानी से कार्य सम्पादित करनेमें समर्थ होते हैं। इसी प्रकार के विकास से मनुष्य ने फोटो ग्राफी का आविष्कार किया। हर जगह और हर समय में चित्रकार अपनी आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाता। उसके अतिरिक्त आज समय की किफायत भी लोगों के चाहने की वस्तु बन गई। फोटोग्राफी उन सब आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसके अन्दर भी निरन्तर विकास हो रहा है इसी के फल स्वरूप आज के चलचित्र हमारे सामने हैं। यह कहना भी उचित है कि मनुष्य के ज्ञान का विकास हुआ पर परिश्रम का ह्रास भी होता गया। उस ज्ञान विकास के साथ परिश्रम का मूल्य घट गया। आज फोटोग्राफी की उन्नति से फिल्मी जगत् का आविर्भाव हो गया, परन्तु जीते जागते चित्र को दिखलाने वाले नाटक अदृश्य होगये जिसके कारण प्राचीनता का चित्रपट समूल नष्ट होगया। जहां हस्तरचित कृति की पूजा होती थी और प्राचीन काल में उस कृति के बदौलत कलाकार अपने परिश्रम का उचित फल पाता था, आज उसका कोई मूल्य नहीं, उसका मूल्य उस चित्र को प्रकाशित करने में मूल्य है। यदि उसको प्रकाशित करना भी चाहे तो गरीब चित्रकार के पास फूटी कौड़ी नहीं होती और वह अपने परिश्रम की कदर नहीं पाता, उसकी रचना की कदर प्रकाशित करने में है अन्यथा नहीं। परन्तु चित्रकार जो इस समय अपने चित्र को प्रकाशित करने में कदर या नाम प्राप्त करता है प्राचीन समय में राजा लोग उस कृति पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करते थे उस पर न्योछावर हो जाते थे, अपना राज्य तक लुटा देते थे। और कलाकार अपने परिश्रम का उचित फल पाता था। चाहे इस समय जैसा कहा जाता है कि कला का विकास हुआ और इस चित्रकला में विकास स्वरूप फोटोग्राफी की उन्नति को, उसकी सहायता से एक चित्र की कई प्रतियां बनाई जाती हैं फिर भी चित्रकार या कलाकार भूखा ही रहता है।

आज मनुष्य का विचार-जगत उन्नति पथ पर निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि कब तक यह बढ़ना जारी रहेगा। उसकी पहुंच बहुत दूर तक है। उसके साथ ही उसकी कला भी नये २ रूप में उसके साथ है। आज के चित्रकार के पास छाया चित्र हैं। वह छाया के अन्दर प्रकाश का आधान कर सकता है उसकी चित्र प्रतिमायें बोल उठती हैं। उसके चित्र का झरना कलकल कर उठता है उसके चित्र की सहकारी तरु पर बैठी हुई कोकिला कुहक उठ सकती है।

आगे जीवन के प्रवाह के साथ कला बहती रहेगी। जीवन के उतार चढ़ाव, विलास, वासना और अध्यात्म सब अपने २ रंगों में कला को अनुरंजित करते रहेंगे।

कलाकार की कला उसके प्रतिबिम्ब को मनुष्यों के सामने कर देती है। चित्रकार के बनाए चित्र में यदि हंसना नजर आता है और कहीं रुदन का झलकता है तो चित्रकार में ये दोनों गुण हैं जिससे वह किसी को हंसा सकता है एवं रुला भी सकता है। यदि उस चित्रकार की कृति को देख कर देखने वाला हंसता है तो चित्रकार हंसमुख प्रकृति का है वह अपनी कला में खुश रहता है। जब कि उसकी उस कला को देख कर दर्शक रोता ही रोता है तो वह चित्रकार किसी पीड़ा से पीड़ित है उसके अन्तःकरण में कोई पीड़ा या दुःख की आग जल रही है जिसके प्रतिबिम्ब स्वरूप वह चित्र उस कलाकार की मनोवृत्ति को प्रगट करता है। चित्रकार अपनी कला में पूर्ण तभी है जब वह दूसरों को हंसा सके, रुला सके दूसरों के दुःखित-हृदय को प्रसन्न कर सके और प्रसन्न हृदय को दुःख में परिवर्तित कर सके।

चित्रकार अपनी रचना में मस्त रहता है। यदि उसकी रचना उत्तेजित भावों को प्रगट कर देती है तो निश्चय कलाकार किसी से सताया हुआ है। यदि वही रचना सुन्दर एवं प्रसन्न भावों को दर्शाती है तो चित्रकार आज खुश होकर चित्र बनाने में रत है। इस प्रकार उसकी रचना मात्र ही उस चित्रकार के हाव-भावों को, उसकी प्रकृति को तथा उसके विचारों को प्रगट करती है।

प्रायः चित्रकार अपने को अपनी कला में अपूर्ण ही पाता है जब तक कि उसकी कृति की प्रशंसा न हो और मांग न हो! वह चाहे तो अपनी कृति को दर्शकों के सामने लाकर अपनी प्रशंसा करा सकता है, अपने भावों को उनके सामने प्रगट कर सकता है। अपनी हृद्गत अभिलाषा को दर्शक के सामने रख सकता है। और यदि उसकी कला या कृति अपने में पूर्ण है और वह सुन्दर है तथा परिश्रम से निर्मित है तो वह उस चित्रकार की हृद्गत अभिलाषा को अवश्य पूरा कर सकती है और करा सकती है! यह उस कलाकार की रचना पर अवलम्बित है।

आज चित्रकार की ही यह चित्रित रचना है जिस पर हम सब चलते फिरते नज़र आते हैं। यह चित्र उस चित्रकार का है जो अपनी अभिलाषा को, अपने कार्य को एवं प्रत्येक क्रिया को अपने बनाये चित्र द्वारा प्रगट करा रहा है उसको पूर्णता को प्राप्त करा रहा है।

उसका बनाया यह चित्र अटल एवं स्थायी रंगों वाला है जो कभी मिट नहीं सकता उसका रंग प्रत्येक पदार्थ जड़, चेतन, सब पर चढ़ा हुआ है जो मिटाये मिट नहीं सकता, धुलाये धुल नहीं सकता, रंगने पर रंग परिवर्तित नहीं कर सकता। यही चित्रकार की माया है यही चित्रकार की अभिलाषा है।

प्रकृति की संगीतशाला

(श्री प० वेदराज वेदालङ्कार आचार्य गुरुकुल चुंचन कट्टे)

मैसूर से चालीस मील दूर शस्यश्यामल पर्वत-मालाओं के बीच में प्राचीन तपोवनों की झांकी लिए, एक छोटा सा रमणीक स्थान है। इसका नाम है चुंचन कट्टे क्षेत्र। इस के समीप ही तटवर्ती प्रदेशों को अपने संगीत से गुंजाती, लताओं, पुष्पों और पल्लवों को अनुतोपम जल का अर्घ्यदान करती हुई कावेरी नदी बह रही है। ×

कावेरी के तीर पर गगन चुम्बी नारियल के वृक्ष अपनी अनुपम छटा दिखा रहे हैं और कावेरी को मानो आशीर्वाद दे रहे हैं—"जाओ पुत्री! लोकोपकार कर अपने जीवन को कृतार्थ करो, अपनी अमृतधारा से मुरझाए हुए फूलों और पेड़ों में नवजीवन डाल दो, वसुन्धरा को शस्य-श्यामला बनाओ, जाओ, जल्दी जाओ—तटवर्ती कृषक-बाल अपने हाथों में बांसुरी लिए हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं"। × ×

नदी का किनारा है, हरा मखमल का बिछौना बिछा है। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली नज़र आती है, स्थान २ पर पुष्प खिले हैं। ऐसा मालूम होता है कि हरी काश्मीरी चादर पर बेल बूटे कढ़े हों। खेतों में कदली-कुञ्ज अपनी निराली शान के साथ खड़े हैं जो सुन्दर समीर के बहने के साथ हिल उठते हैं और अपनी तरफ आने का संकेत सा करते हैं। × ×

ऐसा सुनने में आता है कि दीपक राग गाने से दीपक जल उठते हैं; पता नहीं—यह ठीक है या नहीं। परन्तु इस संगीतमय आध्यात्मिक वातावरण में बुझा हुआ 'मानसदीप' अवश्य जल उठता है। ऐसा सुनने आते हैं कि मल्हार राग गाने से मेघ बरस पड़ते हैं, पता नहीं यह ठीक है या नहीं। परन्तु इस संगीतमय आध्यात्मिक वातावरण में भगवान् की लीलाओं को देख कर नेत्रों से अनायास स्नेह-सुधा की वर्षा होने लगती है। × × ×

शहरों का संघर्ष मय जीवन एक संग्राम है, परन्तु इस प्रेममय, शान्त वातावरण में आकर अनुभव होता है, जीवन एक संगीत है, एक कविता है। शहरों का जीवन क्रूरता और भीषणता से ओत प्रोत है, परन्तु यहां शान्त रस की अमृतमयी दिव्य धारा बहती है। शहरों का जीवन जड़ है, यहां के जीवन में गति है। शहरों में आत्मा का फूल कुम्हला जाता है, परन्तु इस दिव्य वातावरण में आत्मा का फूल खिल उठता है। × ×

गुरुकुल-समाचार

श्री पं. रामेश्वर जी की रिहाई—गुरुकुल के प्रतिष्ठित स्नातक श्री पं० रामेश्वर जी सिद्धान्तालंकार १० मास की सजा काटने के उपरान्त जेल से मुक्त होकर गत ५-जुलाई को गुरुकुल पधारे। सर्व कुलवासियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। आपने अपने मनोरंजक एवं उपयोगी अनुभवों को सुना कर सब श्रोताओं को पूरा २ लाभ पहुंचाया है। सत्याग्रह संग्राम में भारी कष्टों को सहन करने के लिए समस्त कुलबन्धुओं की ओर से हम आप को बधाई देते हैं।

स्नातकों से—

गुरुकुल विश्वविद्यालय के शिक्षापटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। इस वर्ष शिक्षापटल का नया चुनाव होना है। नियमों के अनुसार स्नातकों के दो प्रतिनिधि शिक्षापटल में होते हैं। उन सब स्नातकों को प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिए वोट देने का अधिकार है, जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हों। वाचस्पति परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों के लिए यह तीन वर्ष की बाधा नहीं है। आप जिन दो स्नातकों को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करना चाहें, उनके नाम यथा-संभव शीघ्र ही प्रस्तोता कार्यालय में भेजने की कृपा करें। १२ अगस्त १९४१ को वोट गिने जायंगे, अतः आपका वोट ११ अगस्त, तक प्रस्तोता कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए।

भवदीय
वागीश्वर विद्यालंकार,
प्रस्तोता।

नोट—निम्नलिखित स्नातक अन्य प्रकार से शिक्षापटल के सदस्य हो चुके हैं, अतः अपना वोट देते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार (मुख्याधिष्ठाता होने के कारण)
प० वागीश्वर जी विद्यालंकार (प्रस्तोता होने के कारण)
पं० देवशर्मा जी (अभयदेव जी) विद्यालंकार (आचार्य होने के कारण)
पं० धर्मदत्त जी सिद्धान्तालंकार (उपाध्यायों के प्रतिनिधि)
प० सुखदेव जी विद्यालंकार (विद्यासभा के प्रतिनिधि)
पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार (उपाध्यायों के प्रतिनिधि)
प० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार (विद्यासभा के प्रतिनिधि)
पं० भारद्वाज जी विद्यालंकार (अध्यक्ष आयुर्वेद महाविद्यालय)
पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार (विद्यासभा के प्रतिनिधि)

स्वास्थ्य-समाचार

अमरसिंह २ श्रेणी विषमज्वर, बालकृष्ण २ श्रेणी विषमज्वर, अजयकुमार ? श्रेणी विषमज्वर, वासुदेव १ श्रेणी विषमज्वर, सत्यभूषण ११ श्रेणी विषमज्वर, नरेन्द्र १ श्रेणी खसरा, चन्द्रकान्त २ श्रेणी व्रण, रामेश्वर ५ श्रेणी खसरा, नरेन्द्र १३ श्रेणी अतिसार-अजीर्ण, गोपाल २ श्रेणी अतिसार अजीर्ण।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

आवश्यकता

मुलतान छावनी आर्यसमाज के लिए शीघ्र ही एक विद्वान् पुरोहित की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा के विद्वान्, आर्यसिद्धान्तों से पूर्ण परिचय रखने वाले तथा संगीत में निपुण महोदयों को विशेषता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार होगा। इस सम्बन्ध में प्रार्थना पत्र कविराज पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालंकार मुलतान छावनी के नाम भेजने चाहियें।

चौधरी दुलास राय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ओ३म्॥
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No. A. 2927

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य ३॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालंकार
वर्ष ६] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ३ श्रावण १९९८, १८ जुलाई १९४१ [संख्या १२

यज्ञ-भावना

(लेखक—श्रीयुत रा० सा० लाला लालचन्द्र जी)

यज्ञ-भावना का संसार में अभाव सा हो रहा है। निजी स्वत्व, निजी हित, निजी अधिकार आदि की धूम है। मनुष्य ने मनन छोड़ दिया मालूम होता है और गहरे विचार, ज्ञान और सत्य के विचार, अब उसे रुचिकर नहीं प्रतीत होते। साधारण दृष्टि में 'जो देखा उसी के पीछे हो लिये' यह रिवाज सा हो गया है। बाह्यदृष्टि, और विकारी मन, इन दोनों ने मिलकर एक उपद्रव मचा रखा है। आज ममता का युग है, प्रेम को देशनिर्वासन दिया जा चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मफल-त्याग के स्थान में दूसरे के कर्मफल पर भी स्वत्व जमाना चाहता है। अधिकार प्रिय लगने लगा है, कर्तव्य पीछे रह गया है। मनुष्य के समूह मिलकर दुर्बल मनुष्यों पर अत्याचार और अन्याय करना अपना अधिकार समझने लगे हैं। यह सत्य है कि दुर्बल रहना भी पाप है पर किसी का दूसरे के स्वत्वों पर ललचाना और उन्हें अपने वश में करके उन्हें दीन हीन बनाये रखना भी तो पुण्य नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य सभी अपने २ क्षेत्र में कर्तव्य परायण रहते हुए आगे बढ़ें, और उनकी अबाध उन्नति हो सके, ऐसी सुव्यवस्था होनी नितान्त आवश्यक है। इसके बिना संसार रत्नाकर हो रहा है और मनुष्य विवशता में त्राहि-त्राहि तो कर रहे हैं, पर इस घोर अवस्था से निकलने का उपाय नहीं करते। जगत् को भव-सागर अथवा दुःख-सागर मनुष्य के विकारों ने ही बनाया है; वरना वास्तव में जगत्-विहारी आनन्दकन्द भगवान् के इसमें होते हुए जगत् सुखमय ही होना चाहिये था। भगवान् तो निर्लेप हैं वे साक्षी हैं, चैतन्यशक्ति हैं उन पर मनुष्यों की कुचेष्टाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, पर मनुष्यों ने जो बेड़ियां अपने दूसरे भाइयों को जकड़ने के लिए बनाई थीं उनमें ही स्वयं अपने आपको जकड़े हुए देख रहे हैं और हाहाकार और चीत्कार हो रहा है। ऐसी विकट अवस्था को कैसे बदलें?

इसको बदलने का भी एक उपाय है, और वह है भी अति प्राचीन! वह इतना पुराना है जितना कि मनुष्य! भगवान् ने परम अनुग्रह से प्रजापति होने के नाते अपनी प्रजा के परमहित की—सृष्टि के आदि में ही—शिक्षा दी कि तुम यज्ञ द्वारा बढ़ो, फूलो फलो और यज्ञ ही तुम सबकी सारी कामना पूरी करेगा। कहते हैं, मनुष्यों में जो दिव्य-जन थे उन्होंने यज्ञ द्वारा यज्ञ-भगवान् का भजन किया और उनकी स्वर्ग में महिमा बढ़ी, उनकी प्रतिष्ठा हुई, वे सब सुखी हुए। वे यज्ञ के नियम सनातन हैं, शाश्वत हैं उनमें कभी न्यून अधिक करने की आवश्यकता नहीं। वे अविकारी हैं और सदा से सब मनुष्यों के परम हितकारी हैं। उन्हें धारण करने से अवश्य कल्याण होता है कभी किसी की हानि नहीं होती।

वे नियम हैं, देवपूजा, संगतिकरण और दान। ये तीनों समाज के जीवन-सूत्र हैं। (१) बड़ों का आदर, उनमें श्रद्धा, उन पर विश्वास, उनकी आज्ञा का पालन (२) आपस वालों से मेल और (३) अपने से छोटों के प्रति उदारता।

ये नियम समाज की उन्नति के आधार हैं। इन्हीं पर जातियें और देश निर्भर हैं। देश की भौगोलिक अवस्था तो बहुत कम बदला करती है पर जब उस देश के वासी सुनियमित व्यवस्था में नहीं रहते तो देश की सीमाएं वैसी की वैसी रहने पर भी देश की शान्ति भंग हो जाती है और सुख, अभ्युदय और कल्याण नहीं होता। देशवासियों के परस्पर के व्यवहार पर भी देश की अवस्था निर्भर हुआ करती है।

जिस देश के वासी परस्पर विश्वास, निस्वार्थ-कर्तव्य तथा सच्ची लगन आदि सद्भावना से प्रेरित होकर अपने कार्य करते हैं वे अवश्य ही एक उद्देश्य—एक ध्येय बना लेते हैं और उस देश में एक महान् शक्ति जागृत होती है जिसे राष्ट्र-शक्ति कहा जाता है। उस सह-ओज और सहयोग की अजेय शक्ति के आगे सभी झुका करते हैं। ऐसे देश में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और घृणा नहीं देखी जाती। सभी देश और जाति के हित के आगे अपने निजी हितों की आहुति देते हुए यश, शोभा और श्री पाते हैं। ऐसा देश ऐश्वर्यवान, धनवान, और शक्तिशाली माना जाता है।

निस्वार्थ, आत्मविश्वासी, पुरुषों के पुरुषार्थ से ही महान् कार्य हुए हैं और उन विजयों को उन्होंने अपने

भगवान् के ही अर्पण किया है। यह है यज्ञ-भावना। इस भावना से प्रेरित होकर किये हुए कार्य सदा सफल हुए हैं। इस भावना में निरन्तर का आनन्द है। ऐसी भावना से कार्य करने से पुरुषार्थ करने की शक्ति बढ़ती है और पुरुष की यह कामना होती है कि उससे जो कार्य हों वे सभी पूर्ण हों।

मनुष्य कृतकृत्य तभी होता है जब वह अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है तभी उसका उद्देश्य पूर्ण हुआ समझा जाता है।

उद्देश्य की पूर्ति तक उत्साह बना रहे, तभी साधक को सफलता मिलती है। सफलता के लिये प्रत्येक कार्य के सभी अंगों की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। ठीक-ठीक मर्यादा निश्चित होनी चाहिये। उसे दृढ़ता और स्थिरता से निभाना चाहिये। उसमें अपना तन मन धन सभी लगाना चाहिये। "व्यक्ति के कार्य निजी चेतनता सावधानता दृढ़ता और स्थिरता से सफल होते हैं, पर समाज अथवा जाति और देश के कार्यों के लिये संगठित जन-शक्ति ही किसी निस्स्वार्थ नेता के अधीन कार्य करने से सफल होती है। यह संगठन यह मर्यादा, यज्ञ-भावना में निहित है"। यज्ञ तो यजमान और विश्वेदेवाः—सभी सज्जनों के सहयोग के बिना पूर्ण हो नहीं सकता। यजमान चुन लेने पर उसकी आज्ञा का पालन करना और प्रत्येक का अपने अपने स्थान में निश्चित कार्यों को करना आवश्यक हो जाता है वरना यज्ञ की योजना में त्रुटि होने से यज्ञ सफल नहीं होता।

यज्ञ में देवपूजा, और संगतिकरण ही विशेष महत्त्व रखते हैं पर ये दोनों भाव उदारता पर निर्भर हैं। संकीर्ण मन वाले लोग न तो आपस में मिल ही सकते हैं, और न वे ईर्ष्या और घृणा किये बिना रह सकते हैं परिणाम परस्पर द्वेष होता है।

सभी सज्जन परस्पर उदारता के भाव धारण करते हुए आपस में मिलें और मिलकर किसी के आधीन रहकर कार्य करें तो मर्यादा से किया हुआ सार्वजनिक कार्य सदा सर्वहित, परमहित सम्पादन करने में समर्थ होता है। मिल कर किये गये विचार जब उद्देश्य पूर्ति की तीव्र इच्छा से कार्यों में परिणत होते हैं तो सकल अवश्य सफल हुआ करते हैं।

मनुष्य परस्पर मिलें, प्रतिदिन मिलें। मिलकर इकट्ठे होकर बैठें। परस्पर के विचार सद्भाव से सुनें, सुनाएं और सर्वहित के निश्चय पर पहुंचें तो क्या कुछ नहीं हो सकता! वास्तव में यज्ञमय जीवन ही सफलता का जीवन है। यज्ञभावना जागृत हुई हुई निरंतर उन्नत होती रहे तो यही स्वर्ग है। यह यज्ञ-भावना सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु ही है।

यज्ञ से ही यज्ञपुरुष का यजन होता है, यह सत्य है। यज्ञ में ही सबका कल्याण है। यज्ञ से ही सारी प्रजा का हित है। यज्ञ द्वारा सभी की उन्नति और सभी का अभ्युदय और निःश्रेयस सम्भव है।

साधक, साधन और साध्य ये तीनों साधारणतया पृथक् अंग दिखाई देते हुए भी एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध रखते हैं। साध्य की प्राप्ति के लिये साधक साधन जुटाता है और उसमें तत्पर होता है।

उदाहरण के तौर पर ब्रह्मयज्ञ को लें—

साधक आत्मतृप्ति और शान्ति का इच्छुक है। व्यापक प्रभु के अस्तित्व का उसे ज्ञान है। उसे निश्चय है कि भगवान् सत्-चित-आनन्द है, उसकी कृपा से शाश्वत शान्ति और पूर्ण आत्मतृप्ति मिल सकती है। साधक भगवान् की कृपा का पात्र कैसे बने? भगवान् तो नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव, सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् सब से महान् है। क्या साधक उसकी प्रसन्नता का लाभ कर रहा है? क्या साधक को निश्चय है कि भगवान् उससे प्रसन्न हैं और वह भगवत्प्रसाद का अधिकारी है? साधक अपने आपको देखता है। अपने साधनों को देखता है। अपने शरीर के अवयव उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हैं। उसके अन्तःकरण-चतुष्टय भी उसके सामने हैं। वह देखता है कि उसका अपना मन, बुद्धि, चित्त और उसका स्वभाव कैसा है। क्या वह भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त कर सकने योग्य है? यदि उसमें त्रुटि है तो सभी अवयव, सारी अपनी साधना कैसे योग्य बने जो भगवान् प्रसन्न हों, और साधक को पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो और शान्ति लाभ हो? भगवान्-शरणागति ही एक परम उपाय सूझ पड़ता है उसका अवलम्बन करता है। साध्य ही साधना में प्रेरणा देता है। साधक भगवत्-गुणों का मनन करता है और भगवान् को आदर्श मानकर उनके अनुकूल होने का यत्न करता है जिससे उसके अनुकूल गुण कर्म स्वभाव देखकर भगवान् उससे प्रसन्न हों। पवित्रता धारण करता है, सत्य, चैतन्य, प्रेम, आनन्द, सहनशीलता महत्त्व, उदारता आदि सभी दैवी गुणों को अपने में धारण करता है और अपने अन्दर निर्माणकला के सुन्दर भाव जागृत होने देता है।

शक्ति के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। साधक में दिव्यता आने लगती है। ऐश्वर्य, बल, ऐक्य सभी का अनुभव लेता है किन्तु ऐसी अवस्था में साधन में एक विघ्न सा आता सूझता है। साधक की जो शक्ति साधन द्वारा मिली है, वह उसे अहंकार वश अपनी निजी ही समझने लगता है। शक्ति तो प्राप्त हुई पर व्यक्तित्व में प्रभु-प्रसाद के प्रति कृतज्ञता नहीं आई और न दृढ़ नियम ही बने। शक्ति स्थिर नहीं हुई। यदि ऐसी ही अवस्था रहे तो साधक का पतन होगा इसलिये भगवान् के अटल सृष्टि नियम और उसकी महत्ता को देखकर उस पर विचार करके, साधक के लिए अगला साधन भगवान् के विभु और सर्वव्यापक होने का अनुभव लेना है। जिसके पश्चात् भगवत्साक्षात्कार होना है और साधक को उपासक होकर परमपूजनीय प्रभु का सामीप्य प्राप्त करना है और फिर भगवान् के परम श्रेष्ठ तेज को अपने अन्दर धारण करके अपने आपको कृतकृत्य पाकर भगवत्प्रसाद के लिए गद्गद् होकर धन्यवाद और पूजा के फूल अर्पित करना है।

सन्ध्या में साधक को साध्य की प्रेरणा ने ही साधन में तत्पर किये रक्खा और अन्ततः साध्य प्राप्त हुआ और प्रभु के तेज को अपने अन्दर अनुभव करके कृतकृत्य हुआ।

साधक की अपनी इच्छा पूर्ण हुई, अपनी कामना सफल हुई। अब उसे अपने द्वारा किसी विस्तृत हित सम्पादन करने की लग्न है। अपने हित की उसे परवाह नहीं है उसे निश्चय हो चुका है कि सर्वहित में निजहित आ ही जाता है। अब इस प्रकार व्यापक भाव का उदय होता है और साधक की संकीर्णता दूर होकर उसके जीवन का विकास होना आरम्भ होता है तो यह भावना ही यज्ञ भावना है। इस भावना में मनुष्य को दैवीय शक्ति की सहायता मिलती रहती है, यदि उसका जीवन दैवी रीति-नीति के अनुकूल बना रहे इस अवस्था में प्रलोभन सामने आते हैं और कई बार साधन ही साध्य सा भासने लगता है।

जैसे किसी व्यक्ति को यज्ञ से धन मिला। धन उपयोग के लिए है, पर वह यदि धन को ही साध्य समझ ले और यह समझे कि साधन वह कार्य थे जिन से धन मिला अब धन के आगे और ध्येय कुछ नहीं तो ये भाव उसे कृपण बना देंगे। उसका विकास रुक जायगा और उसकी उन्नति में बाधा पड़ेगी। साधन को साध्य मान लेना भूल है। यह ठीक है कि किसी अवस्था में साधन का परिणाम ऐसी भूल-भुलैय्या में साधक को डाल दे कि साधक उसमें फंस जाए।

मनुष्य का ध्येय चिरस्थायी शान्ति है जिसमें मनुष्य अपना विकास कर सके। किन्तु जगत् में सभी मनुष्य एक से नहीं। कई ऐसे भी हैं जो आरम्भ तो उत्साह से करते हैं पर बीच में ही यज्ञ छोड़ देते हैं, कई ऐसे भी हैं जो स्वयं तो उद्यम नहीं करेंगे पर लाभ होने पर अपना स्वत्व जमा लेंगे। ऐसी परिस्थिति में साधक को अथवा साधक मंडली को साध्य की प्राप्ति तक और वास्तव में प्राप्ति के होने पर भी सचेत और उद्यमी रहना ही पड़ता है। साध्य कई बार असावधानी से हाथ आया हुआ भी निकल जाता है।

इतिहास में ऐसे उदाहरण अनेकों हैं जहां असावधानी से व्यक्ति अथवा समाज में दोष आने से साधना लगातार दृढ़ता और स्थिरता से नहीं चलती और साध्य निकट दिखाई देता हुआ भी दूर होता जाता है।

साध्य के अनुकूल साधन हों और साधक साधनों को समय और परिस्थिति के अनुसार बदल कर सावधानता से चलता रहे तभी यहाँ कार्य सिद्ध होता है। अपने साध्य के प्रति श्रद्धा हो, उसकी प्राप्ति के लिए लग्न और यज्ञ बना रहे तब भी विघ्नों का सामना करके उनपर विजय लाभ करके साधन में तत्पर ही रहना होता है तब साध्य निकट होता है। कभी कभी साध्य आंखों से ओझल हो जाता है और साध्य के स्थान पर किसी छोटी सिद्धि को ही साधक पर्याप्त समझ कर तृप्त हो जाता है और ध्येय से दूर हो जाता है। साधक व्यक्ति अथवा समाज को, अपना साध्य, ध्येय अथवा उद्देश्य कभी मन्द नहीं होने देने चाहियें।

यज्ञ कैसे सफल हो, यह विचार साधक को सदा सावधान और कटिबद्ध बनाए रखता है। यज्ञ की पूर्णता तक साधन के प्रत्येक अंग को पूरी तरह साधना होगा और यज्ञ पूरा होने पर भी प्रमाद से, आलस्य से, बचना ही होगा वरना बना बनाया कार्य बिगड़ जाता है। यज्ञ में सावधानता, सतर्क रहना, स्वाध्याय अर्थात् देखभाल परम आवश्यक है। जिन कार्यों की जांच नहीं होती रहती वहां शिथिलता आ जाती है; तो ह्रास आरम्भ होता है। भगवान् असीम हैं, उन्नति की भी कोई सीमा नहीं इसलिए भगवान् के राज्य में महत्वाकांक्षा में किसी भी व्यक्ति अथवा समाज को, अपना यज्ञ ढीला कभी भी नहीं करना चाहिये। जैसे-जैसे साधनों द्वारा साध्य निकट आता जाएगा, नई नई समस्याएं आगे आएंगी और कई तो साधन बनकर सहायक होंगी, कई बाधाएं प्रतीत होंगी। साधन-सम्पन्न व्यक्ति अथवा समाज को आगे बढ़ना होगा और प्रत्येक विजय भगवान् को अर्पित करके आगे चलना होगा। इस प्रकार वह स्थिति मिलनी सम्भव है जिसे ब्राह्मी स्थिति कहते हैं जिसमें परमशान्ति और पूर्ण तृप्ति है, कृतकृत्यता है।

हमारे साधन पवित्र हों, हमारा साध्य कल्याणमय हो, सर्वहितैषी हो, तो भगवान् सदा हमारे सहायक होंगे। हमारी बुद्धि में दैवी गुण स्थिर रहेंगे और हमें भगवत्-प्रसाद और भगवत् प्रेरणा मिलती रहेगी। हमारा ध्येय अवश्य सर्वहित होना चाहिये, तभी वह देवयज्ञ होगा।

(आर्य से)

गीत

इस ठूँठ पर ! कविता बनाऊँ, आज किसने प्रेरणा दी !
हां ! उसी की छांह में ही
धूप से बच सो रहा था
पर न उसका ध्यान करने
को जग दिल हो रहा था

उन ? निकुंजों में न जाओ
सो रहे तुम ! क्यों यहां पर

इस तरह परिहास कर इसके लिये क्यों वेदना दी
इस ठूँठ पर ! कविता बनाऊँ, आज किसने प्रेरणा दी।
मध्याह्न का दुख भूल, जिसके
शान्त का सान्निध्य पाकर
सौख्य का यह सान्ध्य,सुन्दर
आज कुञ्जों में बिताकर

कह रहे हो ठूँठ ! उसको आज
मैं भी ! व्यर्थ कह कर

पैर पर मारी कुल्हाड़ी, व्यर्थ ही उत्तेजना दी
इस ठूँठ पर कविता बनाऊँ यह मुझे क्यों प्रेरणा दी।
आज तो यह ठूँठ ही है
धूप से हमको बचाता
जिस दिवस उड़ जायगा यह
आग जीवन की जलाता

काव्य क्या जग रच सकेगा
देख, आहुति का अमर स्वर—

जिसने निखिल निष्प्राण जग को यह अलौकिक चेतना दी
इस ठूँठ पर कविता बनाऊं आज किसने प्रेरणा दी

'श्री जगदीश चन्द्र'

गु रु कु ल

३ श्रावण शुक्रवार १९९८

एक प्रशंसापत्र

[कच्छ में भी एक गुरुकुल ५-६ वर्ष से स्थापित है। उसका नाम उसके मान्य संस्थापक जी के नाम पर 'ईश्वरदास जी गुरुकुल विद्यालय' है। इस गुरुकुल के आचार्य का कार्य गुरुकुल कांगड़ी के एक श्रेष्ठ स्नातक श्री पं० विनोदचन्द्र जी विद्यालंकार गत चार वर्षों से कर रहे थे। अभी उन्होंने इस कच्छ गुरुकुल को छोड़ा है क्योंकि वे अधिक सार्वजनिक क्षेत्र में काम करना चाहते हैं। इस अवसर पर इस कच्छ गुरुकुल के मान्य संस्थापक श्री-ईश्वरदास जी ने स्वयं जो पत्र गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य श्री स्वामी अभयदेव जी को लिखा है वह नीचे दिया जाता है। यह जहां श्री प० विनोदचन्द्र जी के लिये एक अनायास प्राप्त प्रशंसापत्र है वहां गुरुकुल कांगड़ी के लिये भी प्रतिष्ठा-गौरव को बढ़ाने वाला है। ——सं०]

श्री आचार्य अभयदेव जी,

सादर नमस्ते।

आपका और मेरा कोई व्यक्तिगत रूप से परिचय नहीं है किन्तु आपके योग्यतम स्नातक और शिष्य तथा हमारे गुरुकुल के आचार्य विनोदचन्द्र जी द्वारा आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। इसलिये शिष्य के उत्तम कार्य से गुरु खुश होते हैं। इसलिये आपको एक उत्तम समाचार सुनाता हूँ कि आपके स्नातक विनोदचन्द्र जी ने हमारे अत्यन्त पिछड़े हुए कच्छ देश में गुरुकुल प्रणाली से अनभिज्ञ ऐसे देश में चार वर्ष तक रह कर ४० वर्ष में जो काम नहीं हो सकता वह उत्तम कार्य किया है। उन्होंने अपनी कर्तव्य-परायणता, निष्कपटता, अदम्य उत्साहिता तथा सरलता से कच्छ देश में और हमारे दिलों में स्नातकों के प्रति मान बढ़ाया है। गुरुकुल कांगड़ी को मैं धन्यवाद देता हूँ कि जिसमें से इतने सुन्दर रत्न उत्पन्न होते हैं। यहां के अध्यापकों कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों के जीवन में उन्होंने अद्भुत परिवर्तन किया है। सबसे बड़ा परिवर्तन जो कच्छ की किसी भी संस्था में नहीं है वह स्वावलम्बन का शिक्षण यहां दिया है। सात, आठ वर्ष के ब्रह्मचारी भी अपनी निजू क्रियायें अपने हाथ से करके गुरुकुल को कितनी मदद पहुंचा सकते हैं उसका शास्त्रीय ज्ञान उन्होंने हमको कराया है। आचार्य श्री प्रियव्रत जी की सिफारिश से विनोदचन्द्र जी यहां नियुक्त हुये थे। और लिखते हुये आनन्द होता है कि प्रियव्रत जी की सिफारिश के अनुरूप उन्होंने कार्य किया है। कच्छ में लगातार दो वर्ष तक अकाल पड़ने के कारण संस्था के सुन्दर मकान के सिवाय कोई स्थायी फण्ड न हो सका और इस कारण भी विनोदचन्द्र जी को उनके कार्य के अनुरूप मैं वेतन न दे सका। फिर भी उन्होंने दो वर्ष तक स्वल्प वेतन में काम किया। हमारी इच्छाओं के अनुरूप विनोदचन्द्र जी ने काम किया इसलिये उनकी विद्या माता गुरुकुल कांगड़ी तथा पिता आपको हम खूब-खूब धन्यवाद देते हैं। बड़े संकोच के साथ मैंने आपको इतना लिखा है, वह आपको आनन्द देगा।

आपका

संस्थापक श्री ईश्वरदास जी गुरुकुल
कच्छ-प्रदेश।

ब्रह्मचर्य

(लेखक—श्री सांवरमल मोर)

ब्रह्मचर्य से लाभ और उसके न होने से हानि प्रत्येक मनुष्य के सर्वाधिक अनुभव की बात है। कितने ही व्यक्तियों का कहना है कि इस विषय में पूर्ण अनुभव किसी को नहीं हो सकता क्योंकि जहां इसकी पूर्ण हानि होती है वहां जीवन ही सम्भव नहीं और जहां ब्रह्मचर्य का अखण्ड पालन होता है ऐसे महापुरुष के दर्शन दुर्लभ हैं। परन्तु यह एक कुतर्क है, क्योंकि हम स्वामी रामतीर्थ जैसे महान पुरुष को पाते हैं जिन्होंने इसका पूर्णरूपेण अध्ययन किया और उसे समझने में समर्थ हो सके।

ब्रह्मचर्य वह सञ्जीवनी बूटी है जो मनुष्य को निरोग तथा अजर-अमर करती है। यह अमृत-रूप है। यह मानसिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक तीनों शक्तियों को पोसती है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही हमें आत्मानन्द, आत्मदया, परमोत्साह, उग्र कर्तव्यशीलता, सद्ज्ञान और मोक्ष का ज्ञान होने लगता है। इसके बल पर असाध्य से असाध्य कर्म अविलम्ब किये जा सकते हैं। इसकी शक्ति से तेज, शक्ति, शान्ति आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसी का पालन कर हम देश तथा जाति की सेवा करने में समर्थ हो सकते हैं। इसी की शक्ति से हम अपने अन्तःकरण को शुद्ध, शान्त तथा पवित्र बना सकते हैं, मनुष्य में प्रसन्नता, सुख, स्वास्थ्य उद्यमशीलता, स्वात्म-साधना तथा स्वाधीन विचार प्रदान करती है। आज हम देखते हैं कि, एक मुट्ठी मांस रखनेवाला, वह महात्मा सारे भारतवर्ष का नेतृत्व कर रहा है। सारे भारतवर्ष के मनुष्य उसके इशारे पर मरमिटने को तैयार हो जाते हैं। जिसका सम्मान आज उसका दुश्मन भी करते हैं जो इस हिंसक जमाने में यह दावा करता है कि वह अहिंसा से ही अपना मकसद पूरा करेगा। जिसे समझने के लिये आज समस्त संसार एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि रखता है। आखिर इसका कारण क्या है ? यदि हम उनकी लिखी पुस्तकों को पढ़ें तो हमें यह भली प्रकार ज्ञात हो जायगा कि यह केवल एक ब्रह्मचर्य की ही साधना है जोकि इन्हें इतना चमका रही है। ब्रह्मचर्य का ही तेज आज उसके चेहरे पर झलक रहा है। आज इस ब्रह्मचर्य को बदौलत वह देश, धर्म तथा जाति की सेवा तथा रक्षा करने में समर्थ हो रहा है।

हम देखते हैं कि जिस प्रकार सूर्य आकाश में रहकर संसार के प्रत्येक कोने में अपना दिव्य रूप फैलाता है और जिस प्रकार आकाश में मंडराते हुए वे काले बादल घोर गर्जना करते हुए इस इस पृथ्वी के हरेक अङ्ग का पालन करते हैं, अपने अमृतमय जल से पृथ्वी और पर्वतों को सींचते हैं और जिसप्रकार चन्द्रमा संसार के जड़ तथा चेतन वस्तुओं को अपने सुधामय किरणों से सुशोभित करता है, उसी प्रकार उपकार से संसार को सचेत करता हुआ, ब्रह्मचारी संसार का पालन करता है। वह संसार के प्रत्येक मनुष्य को उपदेश देता है तथा ब्रह्मचर्य्य रूपी अमृत की महत्ता दिखलाता है। जिस प्रकार सूर्य्य तथा मेघ इस संसार के प्राणियों के लिये लाभकर हैं उसी प्रकार एक ब्रह्मचारी भी देश, जाति तथा संसार के लिये लाभकर है।

आज जब हम भारतवर्ष की दशा देखते हैं तो रोना आता है। हमें सन्देह होने लगता है कि क्या यह वही महादेश है जहां की सभ्यता अपने अलौकिक गुणों के कारण एक बार उन्नति की चरम सीमा को पहुंच गई थी। क्या यह वही पुण्य-प्रधान भूमि है जहां का आलोक ग्रहण कर आधुनिक सभ्य तथा उन्नत कहलाने वाले देशों के निवासी विश्व में अपनी विजय-पताका फहरा रहे हैं। जहां के पुरुष सुख आनन्द तथा चैन से अपना दिन व्यतीत करते थे, जिसके सुख तथा वैभव को देखकर मैक्समूलर ने निम्न बातें लिखी थीं—'यदि कोई मुझसे कहे कि किस देश के आकाश के नीचे मनुष्य के अन्तःकरण को पूर्णता प्राप्त हुई, तो मैं कहूंगा कि वह देश भारतवर्ष है, जिसे पृथ्वी पर स्वर्ग कहने में भी मुझे आनन्द होता है'। क्या यह वही महादेश है जहां के मनुष्य बड़े ऊँचे हृष्ट-पुष्ट और पराक्रमी कहे गये थे, जो अपने धर्म के लिये अपने शरीर की आहुति दे देते थे। यहीं पर भीष्म पितामह, हनुमान, लक्ष्मण प्रभृति ब्रह्मचारी पैदा हुए थे। हम आज देखते हैं कि वही भारतवर्ष गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ है। आज यहां का हर-मनुष्य चिन्ताओं से घिरा रहता है। यहां के मनुष्य में वह आत्म बल नहीं, उनमें वह तेज नहीं, हाथों में वह ताकत नहीं और आंखों में वह ज्योति नहीं, जो एक पुरुषार्थी में होना चाहिये। यहां का वह आलोक जो किसी समय सब को आलोकित करता था क्षीणप्राय हो चला है। इसका एक-मात्र कारण है ब्रह्मचर्य की महत्ता को भूल जाना। आज वही आकाश, वही सूर्य्य, वही चन्द्रमा, वही पृथ्वी और वही हिमालय पर्वत, हम इस देश में पाते हैं। इन सब वस्तुओं को पाते हुए भी जब हम अपने इतिहास को देखते हैं तो हमें एक वस्तु का अभाव मालूम पड़ता है। वह है ब्रह्मचर्य।

इस प्रकार हम भारतवर्ष के पतन का कारण केवल ब्रह्मचर्य का अभाव ही पाते हैं। यदि हम भारत वर्ष को उन्नत करना चाहें, यदि अपने आपको परतन्त्रता की बेड़ी से छुड़ाना चाहें, यदि आज हम संसार की दौड़ में भाग लेना चाहें, यदि हम अपने भारतवर्ष को गड्ढे से निकाल कर उन्नति रूपी हिमालय के उच्च-शिखर पर बैठना चाहें, यदि आज हम अपने प्राचीन गुणों को वापस करना चाहें तो हमें चाहिये कि उस अब्रह्मचर्य रूपी काले बादल को अपने विवेक रूपी तेज हवा से तितर-बितर कर दें, जिसने ब्रह्मचर्य्य रूपी सूर्य को अपने अन्धकार में छिपा रखा है।

अधःपतन पर पहुंचे हुए भारत वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य ही संजीवनी बूटी है। यदि आज हम अपनी उसी ब्रह्मचर्य विद्या को पुनर्जीवित कर दें तो हमारे ख्याल से हम फिर एक दफा संसार में अपना मस्तक ऊंचा कर सकेंगे। हम अपनी वही पुरातन मर्यादा प्राप्त कर सकेंगे। इस लिये हमें चाहिये कि हम एक मनुष्य के नाते, इस मनुष्यत्व को प्रदान करने वाली दिव्य ज्योति के पुजारी बनें, पतित समाज में पवित्रता का प्रचार कर दें, और बच्चे-बच्चे में ब्रह्मचर्य्य का पुनीत भाव भर दें।

अप्रतिग्रह

[नानाभाई भट्ट]

कश्यप, अत्रि वशिष्ठ भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि ये सातों सप्तर्षि कहलाते हैं। वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती सदा उनके साथ ही रहती है, इस लिये उनकी गिनती भी सप्तर्षियों में हो जाती है।

एक बार ये आठों तपस्वी पृथ्वी की यात्रा को निकले थे। पृथ्वी-परि-भ्रमण के इन दिनों में पशुसख नामका एक शूद्र और गंडा नामक उसकी स्त्री इनकी सेवा में संलग्न रहते थे।

उसी बीच पृथ्वी पर भीषण अकाल पड़ा। मेघराज ने मेह बरसाने की मेहर नहीं की। खेत सब सूखे रह गये। कुओं और तालाबों का पानी तले में जा लगा। पृथ्वी को तृप्ति न मिल सकी। अतएव सारी प्रकृति असुन्दर हो उठी; पेड़-पत्ते सूखने लगे; पशु-पंछी अन्न और पानी के अभाव में छटपटाने लगे; और भूख और प्यास के सताये मनुष्य तो जो सामने आया, उसी को निगल कर जीने लगे। सप्तर्षियों को भी अकाल की सांसत का ठीक-ठीक अनुभव होने लगा।

एक बार ये सब किसी नगर के राज-मार्ग पर भूख और प्यास से छट-पटा रहे थे कि इतने में वृषादर्भि नाम का राजा उधर से निकला। इन तेजस्वी मूर्तियों को देखते ही राजा अपने रथ से नीचे उतरा और इन्हें प्रणाम करके बोला, "महाशयो! आप सब भूख से पीड़ित प्रतीत होते हैं। मेरे पास पुष्कल अन्न है। आप उसे स्वीकार कीजिये। धान,जौ,गेहूं, स्निग्ध पदर्थ आदि जो कुछ आपको चाहिये, मेरे पास है। आप प्रसन्न हूजिये और इन्हें स्वीकार कीजिये"।

वृषादर्भि की ये नम्रता पूर्ण बातें सुन कर ऋषियों ने कहा, "राजन्! परिस्थिति तो ऐसी है कि आप जो कुछ हमें दें, सो सब और उससे भी अधिक बहुत-कुछ हम आपसे ले सकते हैं। इस भीषण अकाल में भूख का मारा [illegible] आदमी को खाने हिच-किचाता नहीं

हैं। इस पर आपकी मीठी वाणी हमें और भी ललचाती है। किन्तु राजन्! आपतो जानते ही हैं कि राजाओं से कुछ लेना, कुछ प्रतिग्रह करना, शहद में घुले हुए विष की तरह त्याज्य है। हम ब्राह्मण हैं। महान् परिश्रम के बाद हमने जो थोड़ा-बहुत तप पाया है, उस तप का एक एक क्षण में विनाश करने वाले इस दान का आग्रह करके आप क्यों हमें गड्ढे में उतारा चाहते हैं! आपका कल्याण हो! आपके दान का कल्याण हो! आप दूसरे अनेक भूखों-प्यासों को अन्न जल देकर कृतार्थ हूजिये। पर हमें इस प्रतिग्रह के पथ पर न चढ़ाइये। हमारा यह मार्ग नहीं। ब्राह्मण प्रतिग्रह से जितने दूर रहें, उतने ही अच्छे!"

इस प्रकार राजा को जवाब देकर ऋषि राज-मार्ग का त्याग करके दूर के एक जंगल में चल गये। जंगल में गूलर के असंख्य पेड़ थे। राजा ने नगर में आकर जनता के प्रतिनिधियों को बुलाया और कहा :-"हमारे राज्य की हद में कुछ असाधारण तेजवाले ऋषि पधारे हैं। वे भूख और प्यास से व्याकुल होकर घूम रहे हैं मैंने उन्हें दान देना चाहा, लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। हमारे यहां भयङ्कर अकाल है; फिर भी ऐसी दशा नहीं कि आदमी पैसा खर्चे और अन्न न मिले। वे ऋषि पास के वन में गये हैं। वे सब अप्रतिग्रही हैं, इस लिये मैं सोचता हूं कि वन में जाकर वे गूलरों से अपनी भूख बुझायेंगे। आप सब वहां जाइये और गूलरों के अन्दर कुछ सुवर्ण-मुद्रायें रख आईये। जब वे लोग गूलरों को खाने लगेंगे, उन्हें मोहरें दिखाई देंगी, और अनायास प्राप्त समझ कर उन्हें स्वीकार कर लेंगे। ऐसे अप्रतिग्रही लोग सीधे साधे प्रतिग्रह नहीं करते, अतएव हमारा धर्म हो जाता है कि, हम उन्हें धोखा देकर भी प्रतिग्रह करावें। आप लोग जाइये और जैसा मैं बता चुका हूं, प्रबन्ध करके मुझे बताइये।

वृषादर्भि के ये वचन सुन कर उस नगर के कई नवयुवक वन की ओर चल पड़े। जिस समय ऋषि लोग नहाने-धोने में लगे थे, उसी समय का लाभ उठा कर इन लोगों ने ऋषियों द्वारा एकत्र गूलरों में मोहरें भर दीं और गूलरों को यथावत् रख कर स्वयं कुछ दूर पर छिपे खड़े रहे। वे जानना चाहते थे कि देखें ऋषिगण अब क्या करते हैं।

स्नानादि से निवृत्त होकर आठों ऋषि अपने स्थान पर आये। उन्होंने ज्यों ही उन फलों को खाने के विचार से उठाया, वे काफी वज़नदार मालूम हुये। ऋषियों ने भेद को तुरन्त ही समझ लिया। बोले :-'ये फल अब हमारे खाने योग्य नहीं रहे। राजा ने इनमें सुवर्ण-मुद्रायें रखवा कर इन्हें अपवित्र कर दिया है।'

वशिष्ठ ने कहा:-'हमारे लिये प्रतिग्रह से बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं।'

भरद्वाज बोले :-'तृष्णा वस्तु ही ऐसी है कि उसका कभी अन्त ही नहीं आता।'

जमदग्नि ने कहा :-"यदि ब्राह्मण को अपने तपोबल की रक्षा करनी है, तो उसे प्रतिग्रह का त्याग ही करना चाहिये। लोभ का नाम ही ऐसा है कि वह हर किसी बहादुर आदमी को फंसा सकता है। 'एकत्र धन का धर्म-कार्य में विनियोग करूंगा' ऐसी-ऐसी आत्मवंचना में भी आदमी इसके वश पड़ जाता है।"

अरुन्धती बोली :-"धर्म के लिये द्रव्य-संग्रह करने और संग्रहीत धन के लिये पुनः परोपकार करने की भावना एकांगी भावना है। धर्म के निमित्त द्रव्य-संग्रह करने की अपेक्षा हम उस तपोधर्म को ही क्यों न अपनायें, जिसमें द्रव्य के नाम पर एक पाई की भी ज़रूरत नहीं पड़ती?"

यों कह कर और गूलरों को ज्यों का त्यों छोड़कर ऋषिगण वहां से चल दिये। जब प्रजाजनों ने राजा को ये समाचार सुनाये तो राजा क्रोधान्ध हो उठा। वह बोला : "इन पढ़े-लिखे मूर्खों को धर्माधर्म का कोई ज्ञान नहीं! कमबख़्त जिस पूंछ को पकड़ते हैं, उसे किसी हालत में छोड़ते ही नहीं। मैं मानता हूँ कि ब्राह्मण को लोभ नहीं करना चाहिये। लेकिन यह कैसी बात है कि कोई स्वेच्छा से कुछ दे, और लेने वाला ऐसे दारुण दुर्भिक्ष में भी उसे लेने से इन्कार कर दे? अब मैं भी इन्हें देख लूंगा। नाकों चने न चबवाऊं, तो कहना। वृषादर्भि जैसा राजा और इस प्रजा जैसी प्रजा इन्हें आग्रह पूर्वक कुछ देना चाहता है, तो ये सिवा नखरों के बात नहीं करते!"

इस प्रकार कह कर उस क्रोधित अवस्था में ही वह अपनी यज्ञशाला में जा पहुंचा और अग्नि में होम करने बैठ गया। इस होम के फलस्वरूप अग्नि से कृत्या उत्पन्न हुई। राजा ने उसका नाम यातुधानी रक्खा। यातुधानी दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगी :-"महाराज! मुझे क्या आज्ञा होती है?"

वृषादर्भि ने उसी क्रोध में कहा : "तू इन सातों ऋषियों के पास जा और सब से पहले इनमें से हर एक का नाम लिख ले। ब्राह्मणत्व का दम्भ करने वाले इन ढोंगियों को मैं ज़रा पहचानूं तो सही! फिर इन सबका नाश करके तू अपने स्थान पर वापस चली आना। आज इन लोगों ने मेरी दान-वृत्ति पर कठोर प्रहार किया है, अतएव अब तो ये सर्वनाश के ही पात्र हैं। देखूंगा, बिना अन्न-जल के ये ब्राह्मण अपने तप को कैसे सुरक्षित रखते रखते हैं।"

राजा की आज्ञा को सिर-माथे चढ़ा कर यातुधानी उसी वन में जा पहुंची, जहां ऋषिगण विचर रहे थे। इस समय तक इस ऋषिमण्डल में एक सन्यासी और एक कुत्ता ये दो नये प्राणी और आ मिले थे। संन्यासी का शरीर खूब हृष्टपुष्ट था और उसका कुत्ता भी वैसा ही मोटा-ताजा था।

इस प्रकार बारह जनों का यह दल वन में आहार के लिये घूमता भटकता एक तलैया के पास आ पहुँचा। तलैया निर्मल जल से भरी हुई थी और उसमें नयन-मनोहर कमल खिले हुए थे। इसी ताल के किनारे वह यातुधानी भी बैठी थी।

दूर से तलैया का निर्मल जल और सुन्दर कमल देख कर ऋषिदल पुलकित हो उठा। निकट आकर जब उन्होंने

वहां यातुधानी को बैठा पाया, तो उससे पूछा – तू इस तलैया के किनारे क्यों बैठी है? तू कौन है? तेरा इरादा क्या है?"

ऋषियों के इन प्रश्नों की सम्पूर्ण उपेक्षा सी करती हुई वह यातुधानी बोली "मैं जो हूं सो हूं। तुमसे मतलब? तुम पूछने वाले कौन? मैं इस तलैया की हिफाजत करती बैठी हूं।"

ऋषियों ने कहा "हम सब भूखे हैं। हमारे पास खाने को कुछ भी नहीं है यदी अनुमति हो तो हम इस तलैया में से थोड़े कमल अपने लिए ले लें।

यातुधानी ने जवाब दिया "मैं इस तलैया की रक्षा में नियुक्त हूं। मुझे आज्ञा हुई है कि मैं तुम लोगों के नाम लिख रक्खूं तुम सब अपने अपने नाम मुझे लिखा दो फिर खुशी से कमलों का उपभोग करो।

यातुधानी की बात सुन कर सातों ऋषियोंने अरुन्धती ने पशुसख और गण्डा ने अपने अपने नाम लिखा दिये और फिर तलैया में पैठ कर नहाने लगे। अन्त में जब आठ संन्यासी की बारी आयी उससे भी नाम लिखाने को कहा गया। लेकिन उसने नाम लिखाने में कुछ ऐसी गड़बड़ मचायी कि यातुधानी ठीक ठीक समझ नहीं पायी उसने चिढ़ कर कहा "तूने अपना नाम सही नहीं नहीं लिखाया है, फिर से नाम लिखा।"

इस पर संन्यासी क्रुद्ध हो उठा और बोला – क्या हम सब तेरे बाप के नौकर हैं? मैं एक बार तुझे अपना नाम बता चुका हूं। फिर भी तू समझी नहीं इसलिए मैं अब इस दण्ड के प्रहार से तुझे जला कर भस्म किये डालता हूं। यों कह कर संन्यासी ने दण्ड उठाया और यातुधानी के सिर पर उसका एक प्रहार किया। वह बेचारी उसी क्षण धराशायी हो गई और जल कर खाक बन गयी फिर वह संन्यासी अपने दण्ड को पृथ्वी पर टेक कर तलैया के किनारे बैठ गया।

इस बीच ऋषिदल ने तलैया में से कमलों और कमल नालों को एकत्र किया और ला लाकर किनारे पर रक्खा। फिर तलैया में पैठ कर वे खड़े-खड़े तपण करने लगे।

तपण समाप्त करके ज्यों ही सब बाहर आये तो देखते क्या हैं कि तट पर न कमल हैं न कमल नाल हैं यह देख कर सब को अतिशय आश्चर्य हुआ। सब मन ही मन सोचने लगे "हम बहुत भूखे हैं इस समय किसी निर्दय आदमी ने हमें अपने इन कमलों से वंचित किया है?

फिर तो मारे भूख के वे आपस में एक दूसरे को ही शंका की दृष्टि से देखने लगे अन्त में इस तरह की शंकाओं का निवारण करने के लिये उनमें से प्रत्येक इस प्रकार शपथ लेने लगा "जिसने कमल चुराये हों, उसे यह पाप लगे वह पाप लगे उसकी ऐसी गति हो वैसी गति हो, उसे यह लोक मिले वह लोक मिले" इस प्रकार की विविध शपथें सातों प्राणियों ने लीं। अन्त में उस मोटे संन्यासी की बारी आयी। उसने भी हाथ में पानी ले कर यों कहना शुरू किया —"जिसने ये कमल चुराये हों उसे ब्रह्मचारी का पुण्य मिले जिसने यह कमल चुराये हों उसे आतिथ्य का पुण्य प्राप्त हो।

संन्यासी की इन शपथों को सुन कर सब पुकार उठे— हे देवेन्द्र! अब तुम चुप रहो! तुम्हीं ने हमारे कमल चुराये हैं।

संन्यासी ने कहा— "हां मैं ही आपके कमलों का चोर हूं। निर्दोष ऋषियो! आप लोगों का नाश करने के लिये भेजी गयी इस यातुधानी को मैंने ही जला कर भस्म किया है मैं इन्द्र हूं। आप लोग मारे भूख के अतिशय व्याकुल थे वृषादर्भि ने आपको भांति भांति के भोग प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की थी पर उसने तो बल से आपको कुछ देने का यत्न किया फिर भी आप लालच में आये नहीं इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। माता अरुन्धति! आपके समान निर्लोभ ऋषि मुनियों को जीवन यात्रा में दुःखों का सामना न करना पड़े, इसका पूरा प्रबन्ध ब्रह्मा ने कर रक्खा है। आज आप लोगों की तनिक सी सेवा का जो अवसर मुझे मिला उसके लिये मैं आपका अतिशय आभारी हूं। जिस पर ईश्वर की कृपा होती है वही आपके समान सन्तों की चरण रज को माथे चढ़ाने का सुयोग पाता है।"

यह कह इन्द्र ने उन सबको प्रणाम किया और वहाँ से विदा हो गया।

अनुवादक—काशिनाथ त्रिवेदी

जिज्ञासुओं की कुछ सेवा

यज्ञोपवीत संस्कार के विषय में

[एक सज्जन ने पत्रद्वारा श्री आचार्य अभयदेव जी से इसी सम्बन्ध में शंका की है हम प्रश्नोत्तर के दोनों पत्रों को नीचे उद्धृत करते हैं– सं०]

श्री आचार्य जी

सादर नमस्ते!

यद्यपि मैं आर्यसमाजी नहीं हूं तथापि इस धर्म व इसके सिद्धान्तों के प्रति मेरे हृदय में आदर व सम्मान है।

मुझे कुछ दिनों से एक शंका है और अंग्रेजी के कुछ विद्वानों के ससर्ग से यह शंका और भी अधिक बढ़ती आ रही है। यहां इसका समाधान न होने से आपसे प्रार्थना है कि इसका समाधान करने की कृपा करें –

शंका यह है — स्मृतियों में द्विजमात्र के लिए यज्ञोपवीत धारण करना (उपनयन संस्कार) आवश्यक क्यों बताया गया है? उस पर भी अलग २ वर्णों के लिए भिन्न २ समय क्या नियत किया गया है? इस संस्कार से क्या लाभ है और इसके न होने से क्या हानि होती है?

उक्त शंकाओं का समाधान करने के लिए मुझे शास्त्रीय तार्किक तथा वैज्ञानिक-सप्रमाण उत्तर की आवश्यकता है अतः पूर्ण विश्वास व आशा के साथ प्रार्थना है कि जल्दी ही ऐसा उत्तर भेजने की कृपा करें।

आपका —
उपदेशाभिलाषी–रामस्वरूप पुरोहित
हेडमास्टर बनारसपुर मिडिल स्कूल
मु० पो० असरामपुर (शेखावाटी)

इसका उत्तर श्री आचार्य जी ने लिख दिया:—

भाई रामस्वरूप जी, नमस्ते।

आपका ६-५-४१ का लिखा पत्र मिला। आपके प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में निम्न प्रकार है। इसका विस्तार आप स्वयं करलें।

यज्ञोपवीत धारण द्विज होने का चिन्ह है। विद्या द्वारा पिता या सावित्री माता के गर्भ से दूसरा जन्म पाने का चिन्ह है। या यूं कहिये कि दीक्षित होने का चिन्ह है। भिन्न २ वर्णों के लिए भिन्न २ समय इसलिये नियत किया गया है कि उन में साधारणतया ज्ञान पिपासा या दीक्षित होने की इच्छा अथवा व्रत ग्रहण करने की शक्ति साधारणतया भिन्न २ समय में (आयु में) होती है। साधारणतया ब्राह्मण में दीक्षित होने की इच्छा और शक्ति जल्दी उत्पन्न होती है, क्षत्रिय में उसके बाद और वैश्य में उसके भी बाद। अपवाद रूप में विशेष अवस्था होने पर इस समय से भी जल्दी उपनयन करने का विधान शास्त्र में है।

वैदिक संस्कार क्रिया का उद्देश्य सामान्यतया संस्कृत होने वाले के मन पर उत्तम और अनुकूल संस्कार दृढ़तया डालना होता है। उपनयन संस्कार द्वारा गुरु शिष्य को अपने नज़दीक लाता है, उसे अपना बनाता है उसके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ता है। उपनयन संस्कार की तो एक एक क्रिया का बहुत महत्व है। परन्तु संक्षेप में उपनयन संस्कार की क्रियाओं द्वारा वह गुरु का उत्तम शिष्य बने यह संस्कार डाला जाता है।

शुभ कांक्षी:—

'अभय'

गुरुकुल-समाचार

गोष्ठी सभा—इस वर्ष के प्रारम्भ से ही गुरुकुल में साहित्यिक वातावरण कायम रखने में गोष्ठी सभा ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। मास के प्रत्येक पक्ष में इसके अधिवेशन नियमित रूप से बड़े उत्साह के साथ किए जाते रहे हैं। पिछले पक्ष में बौद्ध कवि श्री नागार्जुन के सभापतित्व में सभा का एक साधारण अधिवेशन किया गया जिसमें सभापति जी के अतिरिक्त स्थानीय कवियों, गाल्पिकों एवं लेखकों ने अपनी उत्तम कृतियाँ सुनाईं। गत सप्ताह इसका एक अन्य सफल अधिवेशन गुरुकुल कुरुक्षेत्र के मुख्याधिष्ठाता श्री पं० सोमदत्त जी की अध्यक्षता में किया गया। कविताओं गल्पों और प्रहसनों के बाद श्री सभापति जी ने सब की कृतियों पर उचित समालोचना करते हुए गाल्पिकों को पथ-प्रदर्शन करने के लिए अपनी एक उत्तम गल्प सुनाई। इस प्रकार यह अधिवेशन ६॥ बजे रात्रि को समाप्त हुआ।

सभा के अधिवेशनों को पर्याप्त दिलचस्पी से करवाने का श्रेय इसके वर्तमान मन्त्री श्री सूर्यकुमार को है।

होम्योपैथी पर व्याख्यान—गत १७ जुलाई। महाविद्यालय विभाग के प्रोफेसरों और ब्रह्मचारियों के बीच डा० ओमप्रकाश जी विद्यालङ्कार का 'होम्योपैथी की मैटीरिया मेडिका' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। मान्य पंडित जी ने बड़ी योग्यता-पूर्वक विषय का प्रतिपादन किया और मनोरंजक उदाहरणों को देकर व्याख्यान को आकर्षक बनाया। आपके पश्चात् सभापति श्री प्रो० सत्यव्रत जी मुख्याधिष्ठाता ने कई आवश्यक बातों पर प्रकाश डालते-हुए विषय की व्यापकता का प्रतिपादन किया। लगभग २ घण्टे तक प्रस्तुत विषय की चर्चा होती रही, जिससे श्रोतृ-वृन्द ने पूरा २ लाभ उठाया।

गुरुकुलीय-कविदरबार

रविवार १३ जुलाई की रात को वाग्वर्धिनी सभा की ओर से एक विशाल कवि-दरबार का आयोजन किया गया था। जिसमें ब्रह्मचारियों ने बड़े उत्साह सहित भाग लिया और अपने अभिनय कौशल से दर्शकों का मनोरञ्जन किया। श्री पं० विद्यानिधि जी सिद्धान्तालङ्कार के निरीक्षण में उनकी तैयारी की गई थी। पं० जी के श्रम और कुशलता का लाभ उठा कर ब्रह्मचारियों ने अपना २ हिस्सा अच्छी तरह पूरा किया।

श्री पं० विद्यानिधि जी ने राजा का पार्ट उत्तमता के साथ निबाहा, उसके साथ ही श्री राजकुमार जी ने मंत्री का श्री नरेन्द्र जी ने राजकवि का और श्री सत्यपाल जी ने विदूषक का पार्ट पूरे तौरपर अदा किया। श्री हरिवंश जी, श्री सच्चिदानन्द जी, श्री अमरसिंह जी का अभिनय लोगों ने पसन्द किया। श्री शान्तिस्वरूप जी का प्रहसन अच्छा रहा। उससे इस आयोजन की मनोरञ्जकता और बढ़ गई। उसके साथ ही और भी ब्रह्मचारियों ने अपना २ पार्ट उत्तमता से पूरा किया।

दरबार देखने के लिए सारा कुल उपस्थित हुआ था। उनकी उत्सुकता से कवि दरबार में और जान आ गई और अन्ततक सबका उत्साह समान रूप से बना रहा। सब वाह-वाह करते हुए लौटे। कवि दरबार सफल रहा।

इस प्रकार के आयोजनों द्वारा ब्रह्मचारियों की प्रगति होती है और उनको प्रोत्साहन मिलता है। समय २ पर उन्हें मौका मिलता है कि वे अपनी शक्तियों का प्रकाश कर सकें। आशा है आगे भी ब्रह्मचारी अपनी इस योग्यता का परिचय देते रहेंगे।

इस सब के लिए ब्र० देवमित्र जी मन्त्री "वाग्वर्धिनी सभा" धन्यवाद के पात्र हैं। जिनके अदम्य उत्साह और अनथक परिश्रम से यह सब कुछ संभव हो सका।

स्वास्थ्य-समाचार

रामप्रकाश ५ श्रेणी Mumps, जयकृष्ण ११ श्रेणी टान्सिल, सुरेन्द्र ३ श्रेणी उदरशूल, महेन्द्र ४ श्रेणी विषमज्वर, सुभाषचन्द्र २ श्रेणी विषमज्वर, चन्द्रकान्त ५ श्रेणी टान्सिल, सुरेशचन्द्र ५ श्रेणी व्रण, कुलवन्त १ श्रेणी व्रण,

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं। गत सप्ताह श्री वर्षा न होने से पर्याप्त गर्मी रही,

चौधरी दुलाल राय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित